

श्रीमद् राजचन्द्रजैनशास्त्रमाला

श्रीमन्नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ति-रचित

लब्धिसार

(क्षपणासार गर्भित)

पंडितप्रवर श्री टोडरमलजीकृत सम्यग्ज्ञानचंद्रिका भाषाटीका सहित

सम्पादक

श्री पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री

प्रकाशक

श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास

वीरनिर्वाण संवत् २५०६ ईस्वी सन १९८० विक्रम संवत् २०३६

मूल्य रु०

प्रकाशक :
मनुभाई भ० मोदी, प्रमुख
श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल,
श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम
स्टेशन–अगास; वाया–आणंद,
पोस्ट–बोरिया–३८८१३० (गुजरात)

Rs 1 50

[प्रथमावृत्ति विक्रम सं० १९७३ प्रति १०००]
[द्वितीयावृत्ति विक्रम सं० २०३६ प्रति १०००]

मुद्रक :
बाबूलाल जैन फागुल्ल,
महावीर प्रेस,
भेलूपुर, वाराणसी ।



श्रीमद् राजचंद्र

जन्म : ववाणिया
वि. सं. १९२४ कार्तिक पूर्णिमा, रविवार

देहविलय : राजकोट
वि. सं. १९५७ चैत्र वद ५, मंगलवार

प्रकाशकीय

इस ग्रन्थकी प्रथमावृत्ति विक्रम सं० १९७३में पाढम निवासी पं० मनोहरलालशास्त्रीकृत संस्कृत छाया तथा संक्षिप्त हिंदी भाषाटीकासहित प्रकाशित की गई थी, पर वह बहुत संक्षिप्त होनेके कारण उस भाषानुवादमें सभी विषयोंका स्पष्टीकरण नहीं हुआ था। अबकी बार इस ग्रन्थका सम्पादन एकदम स्वतंत्र-रूपसे ही किया गया है। मूल प्राकृत गाथाएँ तथा संस्कृत छायाके सिवाय श्री टोडरमल्लजीकृत सम्यग्ज्ञान-चन्द्रिका भाषाटीका मूल ढूंढारी भाषामें ही रख दी गई है। इसके अतिरिक्त ग्रंथके प्रारम्भमें श्री टोडरमल्लजी द्वारा लिखी गई प्रस्तावना मूल ढूंढारी भाषामें ही दे दी है और ग्रंथके अंतमें अर्थसंदृष्टि अधिकार भी जोड़ दिया है। इस लब्धिसारकी सम्यग्ज्ञानचंद्रिका टीका संस्कृतवृत्ति सहित सर्वप्रथम भारतीय जैनसिद्धान्त-प्रकाशिनी संस्था, कलकत्तासे लगभग साठ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुई थी जो इस समय अनुपलब्धप्राय है। उसीको माध्यम बनाकर यह द्वितीयावृत्ति तैयार कराई गई है। विशेषमें पंडित श्री फूलचन्द्रजी शास्त्रीने प्रस्तावनाके साथ आवश्यक स्थलोंपर विशेषार्थ देकर मूल विषयको स्पष्ट करनेका सुंदर प्रयत्न किया है तथा अमुक जगहोंपर टिप्पणियाँ भी दी हैं। इसके फलस्वरूप प्रथमावृत्तिकी अपेक्षा इस ग्रन्थका कद तो लगभग तिगुना हो गया है किन्तु साथ ही ग्रन्थकी उपयोगिता भी बहुत बढ़ गई है जिसका विशेष अनुभव तो विद्वज्जन स्वयं ही करेंगे।

यह मूल ग्रन्थ श्री चामुण्डराय राजाके प्रश्नके निमित्तसे श्रीमन्नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तीने बनाया है जोकि कषायप्राभृत नामा जयधवलसिद्धान्तके पंद्रह अधिकारोंमेंसे पश्चिमस्कंध नामके पंद्रहवें अधिकारके अभिप्रायसे गर्भित है। इसकी सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामक भाषाटीका जयपुर निवासी श्रीमान् विद्वच्छिरोमणि टोडरमल्लजीने ढूंढारी भाषामें विक्रम संवत् १८१८में बनाई है। उसमें उन्होंने लिखा है कि उपशमचारित्रके अधिकार तक तो केशववर्णीकृत संस्कृतटीकाके अनुसार व्याख्यान किया गया है, किन्तु कर्मोंके क्षपणा अधिकारके गाथाओंका व्याख्यान श्री माधवचंद्राचार्यकृत संस्कृत गद्यरूप क्षपणासारके अभिप्राय अनुसार शामिल कर दिया गया है। इसीसे इस ग्रन्थका नाम "लब्धिसार (क्षपणासार गर्भित)" रखा गया है।

श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डलकी ओरसे श्रीमद्राजचन्द्रजैनशास्त्रमालाके अन्तर्गत इसकी यह प्रस्तुत नवीन संशोधित आवृत्ति प्रकट करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष होता है। विद्वान् पाठक एवं जिज्ञासु इसके पठन-मननसे अधिकाधिक लाभ उठाये इसीमें हमारे प्रकाशनका श्रम सफल है। शुभम् भूयात्।

—प्रकाशक



इस युगके महान् तत्त्ववेत्ता

श्रीमद् राजचन्द्र

जिस महापुरुषकी विश्वविहारी प्रज्ञा थी, अनेक जन्मोंमें आराधित जिसका योग था अर्थात् जन्मसे ही योगीश्वर जैसी जिसकी निरपराध वैराग्यमय दशा थी तथा सर्व जीवोंके प्रति जिसका विश्वव्यापी प्रेम था, ऐसे आश्चर्यमूर्ति महात्मा श्रीमद् राजचन्द्रका जन्म महान् तत्त्वज्ञानियोंकी परम्परारूप इस भारतभूमिके गुजरात प्रदेशान्तर्गत सौराष्ट्रके ववाणिया बंदर नामक एक शान्त रमणीय गाँवके वणिक कुटुम्बमें विक्रम संवत् १९२४ (ईस्वी सन् १८६७) की कार्तिकी पूर्णिमा रविवारको रात्रिके दो बजे हुआ था। इनके पिताका नाम श्री रवजीभाई पंचाणभाई मेहता और माताका नाम श्री देवबाई था। इनके एक छोटा भाई और चार बहनें थीं। श्रीमद्जीका प्रेम-नाम 'लक्ष्मीनन्दन' था। बादमें यह नाम बदलकर 'रायचन्द' रखा गया और भविष्यमें आप 'श्रीमद् राजचन्द्र' के नामसे प्रसिद्ध हुए।

बाल्यावस्था, समुच्चय वयचर्या

श्रीमद्जीके पितामह श्रीकृष्णके भक्त थे और उनकी माताजी देवबाई जैनसंस्कार लाई थीं। उन सभी संस्कारोंका मिश्रण किसी अद्भुत ढंगसे गंगा-यमुनाके संगमकी भाँति हमारे बाल-महात्माके हृदयमें प्रवाहित हो रहा था। अपनी प्रौढ़ वाणीमें बाईस वर्षकी उम्रमें इस बाल्यावस्थाका वर्णन 'समुच्चयवयचर्या' नामके लेखमें उन्होंने स्वयं किया है—

"सात वर्ष तक बालवयकी खेलकूदका अत्यंत सेवन किया था। खेलकूदमें भी विजय पानेकी और राजेश्वर जैसी उच्च पदवी प्राप्त करनेकी परम अभिलाषा थी। वस्त्र पहननेकी, स्वच्छ रखनेकी, खाने-पीनेकी, सोने-बैठनेकी, सारी विदेही दशा थी; फिर भी अन्तःकरण कोमल था। वह दशा आज भी बहुत याद आती है। आजका विवेकी ज्ञान उस वयमें होता तो मुझे मोक्षके लिये विशेष अभिलाषा न रहती।

सात वर्षसे ग्यारह वर्ष तकका समय शिक्षा लेनेमें बीता। उस समय निरपराध स्मृति होनेसे एक ही बार पाठका अवलोकन करना पड़ता था। स्मृति ऐसी बलवत्तर थी कि वैसी स्मृति बहुत ही थोड़े मनुष्योंमें इस कालमें, इस क्षेत्रमें होगी। पढ़नेमें प्रमादी बहुत था। बातोंमें कुशल, खेलकूदमें रुचिवान और आनन्दी था। जिस समय शिक्षक पाठ पढ़ाता, मात्र उसी समय पढ़कर उसका भावार्थ कह देता। उस समय मुझमें प्रीति—सरल वात्सल्यता—बहुत थी। सबसे ऐक्य चाहता; सबमें भ्रातृभाव हो तभी सुख, इसका मुझे स्वाभाविक ज्ञान था। उस समय कल्पित बातें करनेकी मुझे बहुत आदत थी। आठवें वर्षमें मैंने कविता की थी; जो बादमें जाँचने पर समाप थी।

अभ्यास इतनी त्वरासे कर सका था कि जिस व्यक्तिने मुझे प्रथम पुस्तकका बोध देना आरम्भ किया था उसीको गुजराती शिक्षण भली-भाँति प्राप्त कर उसी पुस्तकका पुनः मैंने बोध किया था।

मेरे पितामह कृष्णकी भक्ति करते थे। उनसे उस वयमें कृष्णकीर्तनके पद मैंने सुने थे तथा भिन्न-भिन्न अवतारोंके संबंधमें चमत्कार सुने थे, जिससे मुझे भक्तिके साथ-साथ उन अवतारोंमें प्रीति हो गई थी, और रामदासजी नामके साधुके पास मैंने बाल-लीलामें कंठी बँधवाई थी।.... उनके सम्प्रदायके महन्त होवें,

जगह-जगह पर चमत्कारसे हरिकथा करते होवें और त्यागी होवें तो कितना आनन्द आये ? यही कल्पना हुआ करती; तथा कोई वैभवी भूमिका देखता कि समर्थ वैभवशाली होनेकी इच्छा होती।····गुजराती भाषाकी वाचनमालामें जगतकर्त्ता सम्बन्धी कितने ही स्थलोंमें उपदेश किया है वह मुझे दृढ़ हो गया था, जिससे जैन लोगोंके प्रति मुझे बहुत जुगुप्सा आती थी····तथा उस समय प्रतिमाके अश्रद्धालु लोगोंकी क्रियाएँ मेरे देखनेमें आई थीं, जिससे वे क्रियाएँ मलिन लगनेसे मैं उनसे डरता था अर्थात् वे मुझे प्रिय न थीं।

लोग मुझे पहलेसे ही समर्थ शक्तिशाली और गाँवका नामांकित विद्यार्थी मानते थे, इसलिए मैं अपनी प्रशंसाके कारण जानबूझकर वैसे मंडलमें बैठकर अपनी चपल शक्ति दर्शानेका प्रयत्न करता। कंठीके लिए बार-बार वे मेरी हास्यपूर्वक टीका करते; फिर भी मैं उनसे वाद करता और उन्हें समझानेका प्रयत्न करता। परन्तु धीरे-धीरे मुझे उनके (जैनके) प्रतिक्रमणसूत्र इत्यादि पुस्तकें पढ़नेके लिए मिलीं; उनमें बहुत विनयपूर्वक जगतके सब जीवोंसे मित्रता चाही है। अतः मेरी प्रीति इसमें भी हुई और उसमें भी रही। धीरे-धीरे यह प्रसंग बढ़ा। फिर भी स्वच्छ रहनेके तथा दूसरे आचार-विचार मुझे वैष्णवोंके प्रिय थे और जगतकर्त्ताकी श्रद्धा थी। उस अरसेमें कंठी टूट गई; इसलिए उसे फिरसे मैंने नहीं बाँधा। उस समय बाँधने, न बाँधनेका कोई कारण मैंने ढूँढ़ा नहीं था। यह मेरी तेरह वर्षकी वयचर्या है। फिर मैं अपने पिताकी दूकान पर बैठता और अपने अक्षरोंकी छटाके कारण कच्छ-दरबारके उतारे पर मुझे लिखनेके लिए बुलाते तब मैं वहाँ जाता। दूकान पर मैंने नाना प्रकारकी लीला-लहर की है; अनेक पुस्तकें पढ़ी हैं, राम इत्यादिके चरित्रों पर कविताएँ रची हैं; सांसारिक तृष्णाएँ की हैं, फिर भी मैंने किसीको न्यून-अधिक दाम नहीं कहा या किसीको न्यून-अधिक तोल कर नहीं दिया, यह मुझे निश्चित याद है।" (पत्रांक ८९)

जातिस्मरणज्ञान और तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति

श्रीमद्जी जिस समय सात वर्षके थे उस समय एक महत्त्वपूर्ण प्रसंग उनके जीवनमें बना। उन दिनों ववाणियामें अमीचन्द नामके एक गृहस्थ रहते थे जिनका श्रीमद्जीके प्रति बहुत प्रेम था। एक दिन साँपके काट खानेसे उनकी तत्काल मृत्यु हो गई। यह बात सुनकर श्रीमद्जी पितामहके पास आये और पूछा—'अमीचंद गुजर गये क्या ?' पितामहने सोचा कि मरणकी बात सुननेसे बालक डर जायेगा, अतः उन्होंने, ब्यालू कर ले, ऐसा कहकर वह बात टालनेका प्रयत्न किया। मगर श्रीमद्जी बार-बार वही सवाल करते रहे। आखिर पितामहने कहा—'हाँ, यह बात सच्ची है।' श्रीमद्जीने पूछा—'गुजर जानेका अर्थ क्या ?' पितामहने कहा—'उसमेंसे जीव निकल गया, और अब वह चल-फिर या बोल नहीं सकेगा; इसलिए उसे तालाबके पासके स्मशानमें जला देंगे।' श्रीमद्जी थोड़ी देर घरमें इधर-उधर घूमकर छिपे-छिपे तालाब पर गये और तटवर्ती दो शाखावाले बबूल पर चढ़ कर देखा तो सचमुच चिता जल रही थी। कितने ही मनुष्य आसपास बैठे हुए थे। यह देखकर उन्हें विचार आया कि ऐसे मनुष्यको जला देना यह कितनी क्रूरता ! ऐसा क्यों हुआ ? इत्यादि विचार करते हुए परदा हट गया; और उन्हें पूर्वभवोंकी स्मृति हो आई। फिर जब उन्होंने जूनागढ़का गढ़ देखा तब उस (जातिस्मरणज्ञान) में वृद्धि हुई।

इस पूर्वस्मृतिरूप ज्ञानने उनके जीवनमें प्रेरणाका अपूर्व नवीन अध्याय जोड़ा। इसीके प्रतापसे उन्हें छोटी उम्रसे वैराग्य और विवेककी प्राप्ति द्वारा तत्त्वबोध हुआ। पूर्वभवके ज्ञानसे आत्माकी श्रद्धा निश्चल हो गई। संवत् १९४९, कार्तिक वद १२ के एक पत्रमें लिखते हैं—"पुनर्जन्म है—जरूर है। इसके लिए 'मैं' अनुभवसे हाँ कहनेमें अचल हूँ। यह वाक्य पूर्वभवके किसी योगका स्मरण होते समय सिद्ध हुआ लिखा है। जिसने पुनर्जन्मादि भाव किये हैं, उस पदार्थको किसी प्रकारसे जानकर यह वाक्य लिखा गया है।" (पत्रांक ४२४)

एक अन्य पत्रमें लिखते हैं—"कितने ही निर्णयोंसे मैं यह मानता हूँ कि इस कालमें भी कोई-कोई महात्मा गतभवको जातिस्मरणज्ञानसे जान सकते हैं; यह जानना कल्पित नहीं किंतु सम्यक् (यथार्थ) होता है! उत्कृष्ट संवेग, ज्ञानयोग और सत्संगसे भी यह ज्ञान प्राप्त होता है अर्थात् पूर्वभव प्रत्यक्ष अनुभवमें आ जाता है। जब तक पूर्वभव अनुभवगम्य न हो तब तक आत्मा भविष्यकालके लिए सशंकित धर्मप्रयत्न किया करता है; और ऐसा सशंकित प्रयत्न योग्य सिद्धि नहीं देता।" (पत्रांक ६४)

अवधान-प्रयोग, **स्पर्शनशक्ति**

वि० सं० १९४० से श्रीमद्जी अवधान-प्रयोग करने लगे थे। धीरे-धीरे वे *शतावधान तक पहुँच गये थे। जामनगरमें बारह और सोलह अवधान करने पर उन्हें 'हिन्दका हीरा' ऐसा उपनाम मिला था। वि० सं० १९४३ में १९ वर्षकी उम्रमें उन्होंने बम्बईकी एक सार्वजनिक सभामें डॉ० पिटर्सनकी अध्यक्षतामें शतावधानका प्रयोग दिखाकर बड़े-बड़े लोगोंको आश्चर्यमें डाल दिया था। उस समय उपस्थित जनताने उन्हें 'सुवर्णचन्द्रक' प्रदान किया था और 'साक्षात् सरस्वती' की उपाधिसे सम्मानित किया था।

श्रीमद्जीकी स्पर्शनशक्ति भी अत्यन्त विलक्षण थी। उपरोक्त सभामें उन्हें भिन्न-भिन्न प्रकारके बारह ग्रन्थ दिये गये और उनके नाम भी उन्हें पढ़ कर सुना दिये गये। बादमें उनकी आँखोंपर पट्टी बाँध कर जो-जो ग्रन्थ उनके हाथ पर रखे गये उन सब ग्रन्थोंके नाम हाथोंसे टटोलकर उन्होंने बता दिये।

श्रीमद्जीकी इस अद्भुत शक्तिसे प्रभावित होकर तत्कालीन बंबई हाईकोर्टके मुख्य न्यायाधीश सर चार्ल्स सारजन्टने उन्हें यूरोपमें जाकर वहाँ अपनी शक्तियाँ प्रदर्शित करनेका अनुरोध किया, परन्तु उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया। उन्हें कीर्तिकी इच्छा न थी, बल्कि ऐसी प्रवृत्ति आत्मोन्नतिमें बाधक और सन्मार्ग-रोधक प्रतीत होनेसे प्रायः बीस वर्षकी उम्रके बाद उन्होंने अवधान-प्रयोग नहीं किये।

महात्मा गांधीने कहा था

महात्मा गांधीजी श्रीमद्जीको धर्मके सम्बन्धमें अपना मार्गदर्शक मानते थे। वे लिखते हैं—

"मुझ पर तीन पुरुषोंने गहरा प्रभाव डाला है—टाल्सटॉय, रस्किन और रायचन्दभाई। टाल्सटॉयने अपनी पुस्तकों द्वारा और उनके साथ थोड़े पत्रव्यवहारसे, रस्किनने अपनी एक ही पुस्तक 'अन्टु दि लास्ट' से—जिसका गुजराती नाम मैंने 'सर्वोदय' रखा है, और रायचन्दभाईने अपने गाढ़ परिचयसे। जब मुझे हिन्दुधर्ममें शंका पैदा हुई उस समय उसके निवारण करनेमें मदद करनेवाले रायचन्दभाई थे....

जो वैराग्य (अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे ?) इस काव्यकी कड़ियोंमें झलक रहा है वह मैंने उनके दो वर्षके गाढ़ परिचयमें प्रतिक्षण उनमें देखा है। उनके लेखोंमें एक असाधारणता यह है कि उन्होंने जो अनुभव किया वही लिखा है। उसमें कहीं भी कृत्रिमता नहीं है। दूसरे पर प्रभाव डालनेके लिए एक पंक्ति भी लिखी हो ऐसा मैंने नहीं देखा।....

---

* शतावधान अर्थात् सौ कामोंको एक साथ करना। जैसे शतरंज खेलते जाना, मालाके मनके गिनते जाना, जोड़ बाकी गुणाकार एवं भागाकार मनमें गिनते जाना, आठ नई समस्याओंकी पूर्ति करना, सोलह निर्दिष्ट नये विषयोंपर निर्दिष्ट छंदमें कविता करते जाना, सोलह भाषाओंके अनुक्रमविहीन चार सौ शब्द कर्ताकर्मसहित पुनः अनुक्रमबद्ध कह सुनाना, कतिपय अलंकारोंका विचार, दो कोठोंमें लिखे हुए उल्टे-सीधे अक्षरोंसे कविता करते जाना इत्यादि। एक जगह ऊँचे आसनपर बैठकर इन सब कामोंमें मन और दृष्टिको प्रेरित करना, लिखना नहीं या दुबारा पूछना नहीं और सभी स्मरणमें रख कर इन सौ कामोंको पूर्ण करना। श्रीमद्जी लिखते हैं—"अवधान आत्मशक्तिका कार्य है यह मुझे स्वानुभवसे प्रतीत हुआ है।" (पत्रांक १८)

खाते, बैठते, सोते, प्रत्येक क्रिया करते उनमें वैराग्य तो होता ही। किसी समय इस जगतके किसी भी वैभवमें उन्हें मोह हुआ हो ऐसा मैंने नहीं देखा।....

व्यवहारकुशलता और धर्मपरायणताका जितना उत्तम मेल मैंने कविमें देखा उतना किसी अन्यमें नहीं देखा।"

'श्रीमद् राजचन्द्र जयन्ती' के प्रसंग पर ईस्वी सन् १९२१ में गांधीजी कहते हैं—"बहुत बार कह और लिख गया हूँ कि मैंने बहुतोंके जीवनमेंसे बहुत कुछ लिया है। परन्तु सबसे अधिक किसीके जीवनमेंसे मैंने ग्रहण किया हो तो वह कवि (श्रीमद्जी) के जीवनमेंसे है। दयाधर्म भी मैंने उनके जीवनमेंसे सीखा है।.... खून करनेवालेसे भी प्रेम करना यह दयाधर्म मुझे कविने सिखाया है।"

गृहस्थाश्रम

वि० सं० १९४४ माघ सुदी १२ को २० वर्षकी आयुमें श्रीमद्जीका शुभ विवाह जौहरी रेवाशंकर जगजीवनदास मेहताके बड़े भाई पोपटलालकी महाभाग्यशाली पुत्री झबकबाईके साथ हुआ था। इसमें दूसरोंकी 'इच्छा' और 'अत्यन्त आग्रह' ही कारणरूप प्रतीत होते हैं। विवाहके एकाध वर्ष बाद लिखे हुए एक लेखमें श्रीमद्जी लिखते हैं—"स्त्रीके संबंधमें किसी भी प्रकारसे रागद्वेष रखनेकी मेरी अंशमात्र इच्छा नहीं है। परन्तु पूर्वोपार्जनसे इच्छाके प्रवर्तनमें अटका हूँ।" (पत्रांक ७८)

सं० १९४६ के पत्रमें लिखते हैं—"तत्त्वज्ञानकी गुप्त गुफाका दर्शन करनेपर गृहाश्रमसे विरक्त होना अधिकतर सूझता है।" (पत्रांक ११३)

श्रीमद्जी गृहवासमें रहते हुए भी अत्यन्त उदासीन थे। उनकी मान्यता थी—"कुटुंबरूपी काजलकी कोठड़ीमें निवास करनेसे संसार बढ़ता है। उसका कितना भी सुधार करो, तो भी एकान्तवाससे जितना संसारका क्षय हो सकता है उसका शतांश भी उस काजलकी कोठड़ीमें रहनेसे नहीं हो सकता, क्योंकि वह कषायका निमित्त है और अनादिकालसे मोहके रहनेका पर्वत है।" (पत्रांक १०३) फिर भी इस प्रतिकूलतामें वे अपने परिणामोंकी पूरी सम्भाल रखकर चले।

सफल एवं प्रामाणिक व्यापारी

श्रीमद्जी २१ वर्षकी उम्रमें व्यापारार्थ ववाणियासे बंबई आये और सेठ रेवाशंकर जगजीवनदासकी दुकानमें भागीदार रहकर जवाहिरातका व्यापार करने लगे। व्यापार करते हुए भी उनका लक्ष्य आत्माकी ओर अधिक था। व्यापारसे अवकाश मिलते ही श्रीमद्जी कोई अपूर्व आत्मविचारणामें लीन हो जाते थे। ज्ञानयोग और कर्मयोगका इनमें यथार्थ समन्वय देखा जाता था। श्रीमद्जीके भागीदार श्री माणेकलाल घेलाभाईने अपने एक वक्तव्यमें कहा था—"व्यापारमें अनेक प्रकारकी कठिनाइयाँ आती थीं, उनके सामने श्रीमद्जी एक अडोल पर्वतके समान टिके रहते थे। मैंने उन्हें जड़ वस्तुओंकी चितासे चितातुर नहीं देखा। वे हमेशा शान्त और गम्भीर रहते थे।"

जवाहिरातके साथ मोतीका व्यापार भी श्रीमद्जीने शुरू किया था और उसमें वे सभी व्यापारियोंमें अधिक विश्वासपात्र माने जाते थे। उस समय एक अरब अपने भाईके साथ मोतीकी आढ़तका धन्धा करता था। छोटे भाईके मनमें आया कि आज मैं भी बड़े भाईकी तरह बड़ा व्यापार करूँ। दलालने उसकी श्रीमद्जीसे भेंट करा दी। उन्होंने कस कर माल खरीदा। पैसे लेकर अरब घर पहुँचा तो उसके बड़े भाईने पत्र दिखाकर कहा कि वह माल अमुक किमतके बिना नहीं बेचनेकी शर्त की है और तूने यह क्या किया? यह सुनकर वह घबराया और श्रीमद्जीके पास जाकर गिड़गिड़ाने लगा कि मैं ऐसी आफतमें आ पड़ा हूँ।

श्रीमद्‌जीने तुरन्त माल वापस कर दिया और पैसे गिन लिये। मानो कोई सौदा किया ही न था ऐसा समझकर होनेवाले बहुत नफेको जाने दिया। वह अरब श्रीमद्‌जीको खुदाके समान मानने लगा।

इसी प्रकारका एक दूसरा प्रसंग उनके करुणामय और निःस्पृही जीवनका ज्वलंत उदाहरण है। एक बार एक व्यापारीके साथ श्रीमद्‌जीने हीरोंका सौदा किया कि अमुक समयमें निश्चित किये हुए भावसे वह व्यापारी श्रीमद्‌जीको अमुक हीरे दे। उस विषयका दस्तावेज भी हो गया। परन्तु हुआ ऐसा कि मुद्दतके समय भाव बहुत बढ़ गये। श्रीमद्‌जी खुद उस व्यापारीके यहाँ जा पहुँचे और उसे चिन्तामग्न देखकर वह दस्तावेज फाड़ डाला और बोले—"भाई, इस चिट्ठी (दस्तावेज) के कारण तुम्हारे हाथ-पाँव बँधे हुए थे। बाजार भाव बढ़ जानेसे तुमसे मेरे साठ-सत्तर हजार रुपये लेने निकलते हैं, परन्तु मैं तुम्हारी स्थिति समझ सकता हूँ। इतने अधिक रुपये मैं तुमसे ले लूँ तो तुम्हारी क्या दशा हो? परन्तु राजचन्द्र दूध पी सकता है, खून नहीं।" वह व्यापारी कृतज्ञभावसे श्रीमद्‌जीकी ओर स्तब्ध होकर देखता ही रह गया।

भविष्यवक्ता, निमित्तज्ञानी

श्रीमद्‌जीका ज्योतिष-संबंधी ज्ञान भी प्रखर था। वे जन्मकुंडली, वर्षफल एवं अन्य चिह्न देख कर भविष्यकी सूचना कर देते थे। श्री जूठाभाई (एक मुमुक्षु) के मरणके बारेमें उन्होंने सवा दो मास पूर्व स्पष्ट बता दिया था। एक बार सं० १९५५ की चैत्र वदी ८ को मोरबीमें दोपहरके ४ बजे पूर्व दिशाके आकाशमें काले बादल देखे और उन्हें दुष्काल पड़नेका निमित्त जानकर उन्होंने कहा—"ऋतुको सन्निपात हुआ है।" तदनुसार सं० १९५५ का चौमासा कोरा रहा और सं० १९५६ में भयंकर दुष्काल पड़ा। श्रीमद्‌जी दूसरेके मनकी बातको भी सरलतासे जान लेते थे। यह सब उनकी निर्मल आत्मशक्तिका प्रभाव था।

कवि-लेखक

श्रीमद्‌जीमें, अपने विचारोंकी अभिव्यक्ति पद्यरूपमें करनेकी सहज क्षमता थी। उन्होंने 'स्त्रीनीति-बोधक', 'सद्‌बोधशतक', 'आर्यप्रजानी पडती', 'हुन्नरकला वधारवा विषे' आदि अनेक कविताएँ केवल आठ वर्षकी वयमें लिखी थीं। नौ वर्षकी आयुमें उन्होंने रामायण और महाभारतकी भी पद्य-रचना की थी जो प्राप्त न हो सकी। इसके अतिरिक्त जो उनका मूल विषय आत्मज्ञान था उसमें उनकी अनेक रचनाएँ हैं। प्रमुखरूपसे 'आत्मसिद्धि', 'अमूल्य तत्त्वविचार', 'भक्तिना वीस दोहरा', 'परमपदप्राप्तिनी भावना (अपूर्व अवसर)', 'मूलमार्ग-रहस्य', 'तृष्णानी विचित्रता' हैं।

'आत्मसिद्धि-शास्त्र'के १४२ दोहोंकी रचना तो श्रीमद्‌जीने मात्र डेढ़ घंटेमें नड़ियादमें आश्विन वदी १ (गुजराती) सं० १९५२ को २९ वर्षकी उम्रमें की थी। इसमें सम्यग्दर्शनके कारणभूत छः पदोंका बहुत ही सुन्दर पक्षपातरहित वर्णन किया है। यह कृति नित्य स्वाध्यायकी वस्तु है। इसके अंग्रेजीमें भी गद्य पद्यात्मक अनुवाद प्रगट हो चुके हैं।

गद्य-लेखनमें श्रीमद्‌जीने 'पुष्पमाला', 'भावनाबोध' और 'मोक्षमाला'की रचना की। इसमें 'मोक्ष-माला' तो उनकी अत्यन्त प्रसिद्ध रचना है जिसे उन्होंने १६ वर्ष ५ मासकी आयुमें मात्र तीन दिनमें लिखी थी। इसमें १०८ शिक्षापाठ हैं। आज तो इतनी आयुमें शुद्ध लिखना भी नहीं आता जब कि श्रीमद्‌जीने एक अपूर्व पुस्तक लिख डाली। पूर्वभवका अभ्यास ही इसमें कारण था। 'मोक्षमाला'के संबंधमें श्रीमद्‌जी लिखते हैं—"जैनधर्मको यथार्थ समझानेका उसमें प्रयास किया है; जिनोक्त मार्गसे कुछ भी न्यूनाधिक उसमें नहीं कहा है। वीतराग मार्गमें आबालवृद्धकी रुचि हो, उसके स्वरूपको समझें तथा उसके बीजका हृदयमें रोपण हो, इस हेतुसे इसकी बालावबोधरूप योजना की है।"

श्री कुन्दकुन्दाचार्यके 'पंचास्तिकाय' ग्रंथकी मूल गाथाओंका श्रीमद्‌जीने अविकल (अक्षरशः) गुजराती अनुवाद भी किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने श्री आनन्दघनजीकृत चोबीसीका अर्थ लिखना भी प्रारम्भ किया था, और उसमें प्रथम दो स्तवनोंका अर्थ भी किया था; पर वह अपूर्ण रह गया है। फिर भी इतने से, श्रीमद्‌जीकी विवेचन शैली कितनी मनोहर और तलस्पर्शी है उसका ख्याल आ जाता है। सूत्रोंका यथार्थ अर्थ समझने-समझानेमें श्रीमद्‌जीकी निपुणता अजोड़ थी।

मतमतान्तरके आग्रहसे दूर

श्रीमद्‌जी की दृष्टि बड़ी विशाल थी। वे रूढ़ि या अन्धश्रद्धाके कट्टर विरोधी थे। वे मतमतान्तर और कदाग्रहादिसे दूर रहते थे, वीतरागताकी ओर ही उनका लक्ष्य था। उन्होंने आत्मधर्मका ही उपदेश दिया। इसी कारण आज भी भिन्न-भिन्न सम्प्रदायवाले उनके वचनोंका रुचिपूर्वक अभ्यास करते हुए देखे जाते हैं।

श्रीमद्‌जी लिखते हैं—

"मूलतत्त्वमें कहीं भी भेद नहीं है, मात्र दृष्टिका भेद है ऐसा मानकर आशय समझकर पवित्र धर्ममें प्रवृत्ति करना।" (पुष्पमाला—१४)

"तू चाहे जिस धर्मको मानता हो इसका मुझे पक्षपात नहीं, मात्र कहनेका तात्पर्य यही कि जिस मार्गसे संसारमलका नाश हो उस भक्ति, उस धर्म और उस सदाचारका तू सेवन कर।" (पुष्पमाला—१५)

"दुनिया मतभेदके बन्धनमें तत्त्व नहीं पा सकी।" (पत्रांक—२७)

"जहाँ तहाँसे रागद्वेषरहित होना ही मेरा धर्म है ···मैं किसी गच्छमें नहीं हूँ, परन्तु आत्मामें हूँ यह मत भूलियेगा।" (पत्रांक—३७)

श्रीमद्‌जी ने प्रीतम, अखा, छोटम, कबीर, सुन्दरदास, सहजानन्द, मुक्तानन्द, नरसिंह मेहता आदि सन्तोंकी वाणीको जहाँ-तहाँ आदर दिया है और उन्हें मार्गानुसारी जीव (तत्त्वप्राप्तिके योग्य आत्मा) कहा है। फिर भी अनुभवपूर्वक उन्होंने जैनशासनकी उत्कृष्टताको स्वीकार किया है—

"श्रीमत् वीतराग भगवन्तोंका निश्चितार्थ किया हुआ ऐसा अचिन्त्य चिन्तामणिस्वरूप, परम-हितकारी, परम अद्‌भुत, सर्व दुःखका निःसंशय आत्यन्तिक क्षय करनेवाला, परम अमृतस्वरूप ऐसा सर्वोत्कृष्ट शाश्वत धर्म जयवन्त वर्तो, त्रिकाल जयवन्त वर्तो। उस श्रीमत् अनन्तचतुष्टयस्थित भगवानका और उस जयवन्त धर्मका आश्रय सदैव कर्तव्य है।" (पत्रांक—८४३)

परम वीतरागदशा

श्रीमद्‌जीकी परम विदेही दशा थी। वे लिखते हैं—

"एक पुराणपुरुष और पुराणपुरुषकी प्रेमसम्पत्ति सिवाय हमें कुछ रुचिकर नहीं लगता; हमें किसी पदार्थमें रुचिमात्र रही नहीं है····हम देहधारी हैं या नहीं—यह याद करते हैं तब मुश्केलीसे जान पाते हैं।" (पत्रांक—२५५)

"देह होते हुए भी मनुष्य पूर्ण वीतराग हो सकता है ऐसा हमारा निश्चल अनुभव है। क्योंकि हम भी अवश्य उसी स्थितिको पानेवाले हैं, ऐसा हमारा आत्मा अखण्डतासे कहता है और ऐसा ही है, जरूर ऐसा ही है।" (पत्रांक—३३४)

"मान लें कि चरमशरीरीपन इस कालमें नहीं है, तथापि अशरीरी भावसे आत्मस्थिति है तो वह भावनयसे चरमशरीरीपन नहीं, अपितु सिद्धत्व है; और यह अशरीरीभाव इस कालमें नहीं है ऐसा यहाँ कहें तो इस कालमें हम खुद नहीं हैं, ऐसा कहने तुल्य है।" (पत्रांक—४११)

अहमदाबादमें आगाखानके बँगलेपर श्रीमद्‌जीने श्री लल्लुजी तथा श्री देवकरणजी मुनिको बुलाकर अन्तिम सूचना देते हुए कहा था—"हमारेमें और वीतरागमें भेद न मानियेगा।"

एकान्तचर्या, परमनिवृत्तिरूप कामना

मोहमयी (बम्बई) नगरीमें व्यापारिक काम करते हुए भी श्रीमद्‌जी ज्ञानाराधना तो करते ही रहते थे और पत्रों द्वारा मुमुक्षुओंकी शंकाओंका समाधान करते रहते थे; फिर भी बीच-बीचमें पेढ़ीसे विशेष अवकाश लेकर वे एकान्त स्थान, जंगल या पर्वतोंमें पहुँच जाते थे। मुख्यरूपसे वे खंभात, वडवा, काविठा, उत्तरसंडा, नडियाद, वसो, राळज और ईडरमें रहे थे। वे किसी भी स्थान पर बहुत गुप्तरूपसे जाते थे, फिर भी उनकी सुगन्धी छिप नहीं पाती थी। अनेक जिज्ञासु-भ्रमर उनके सत्समागमका लाभ पानेके लिए पीछे-पीछे कहीं भी पहुँच ही जाते थे। ऐसे प्रसंगों पर हुए बोधका यत्किंचित् संग्रह 'श्रीमद् राजचन्द्र' ग्रन्थमें 'उपदेशछाया', 'उपदेशनोंध' और 'व्याख्यानसार' के नामसे प्रकाशित हुआ है।

यद्यपि श्रीमद्‌जी गृहवास-व्यापारादिमें रहते हुए भी विदेहीवत् थे, फिर भी उनका अन्तरङ्ग सर्वसंगपरित्याग कर निर्ग्रन्थदशाके लिए छटपटा रहा था। एक पत्रमें वे लिखते हैं—"भरतजीको हिरनके संगसे जन्मकी वृद्धि हुई थी और इस कारणसे जड़भरतके भवमें असंग रहे थे। ऐसे कारणोंसे मुझे भी असंगता बहुत ही याद आती है; और कितनी ही बार तो ऐसा हो जाता है कि उस असंगताके बिना परम दुःख होता है। यम अन्तकालमें प्राणीको दुःखदायक नहीं लगता होगा, परन्तु हमें संग दुःखदायक लगता है।" (पत्रांक २१७)

फिर हाथनोंधमें वे लिखते हैं—"सर्वसंग महास्रवरूप श्री तीर्थंकरने कहा है सो सत्य है। ऐसी मिश्रगुणस्थानक जैसी स्थिति कहाँ तक रखनी? जो बात चित्तमें नहीं सो करनी; और जो चित्तमें है उसमें उदास रहना ऐसा व्यवहार किस प्रकारसे हो सकता है? वैश्यवेषमें और निर्ग्रन्थभावसे रहते हुए कोटि-कोटि विचार हुआ करते हैं।" (हाथनोंध १–३८) "आकिंचन्यतासे विचरते हुए एकान्त मौनसे जिनसदृश ध्यानसे तन्मयात्मस्वरूप ऐसा कब होऊँगा?" (हाथनोंध १–८७)

संवत् १९५६ में अहमदाबादमें श्रीमद्‌जीने श्री देवकरणजी मुनिसे कहा था—"हमने सभामें स्त्री और लक्ष्मी दोनोंका त्याग किया है, और सर्वसंगपरित्यागकी आज्ञा माताजी देंगी ऐसा लगता है।" और तदनुसार उन्होंने सर्वसंगपरित्यागरूप दीक्षा धारण करनेकी अपनी माताजीसे अनुज्ञा भी ले ली थी। परन्तु उनका शारीरिक स्वास्थ्य दिन-पर-दिन बिगड़ता गया। ऐसे ही अवसर पर किसीने उनसे पूछा—"आपका शरीर कृश क्यों होता जाता है?" श्रीमद्‌जीने उत्तर दिया—"हमारे दो बगीचे हैं, शरीर और आत्मा। हमारा पानी आत्मारूपी बगीचेमें जाता है, इससे शरीररूपी बगीचा सूख रहा है।" अनेक उपचार करने पर भी स्वास्थ्य ठीक नहीं हुआ। अन्तिम दिनोंमें एक पत्रमें लिखते हैं—"अत्यन्त त्वरासे प्रवास पूरा करना था, वहाँ बीचमें सेहराका मरुस्थल आ गया। सिर पर बहुत बोझ था उसे आत्मवीर्यसे जिस प्रकार अल्पकालमें सहन कर लिया जाय उस प्रकार प्रयत्न करते हुए, पैरोंने निकाचित उदयरूप थकान ग्रहण की। जो स्वरूप है वह अन्यथा नहीं होता यही अद्भुत आश्चर्य है। अव्याबाध स्थिरता है।" (पत्रांक ९५१)

अन्त समय

स्थिति और भी गिरती गई। शरीरका वजन १३२ पौंडसे घटकर मात्र ४३ पौंड रह गया। शायद उनका अधिक जीवन कालको पसन्द नहीं था। देहत्यागके पहले दिन शामको अपने छोटे भाई मनसुखलाल

आदिसे कहा—"तुम निश्चिन्त रहना। यह आत्मा शाश्वत है। अवश्य विशेष उत्तम गतिको प्राप्त होनेवाला है। तुम शान्ति और समाधिपूर्वक रहना। जो रत्नमय ज्ञानवाणी इस देहके द्वारा कही जा सकनेवाली थी उसे कहनेका समय नहीं है। तुम पुरुषार्थ करना।" रात्रिको ढाई बजे वे फिर बोले—"निश्चिन्त रहना, भाईका समाधिमरण है।" अवसानके दिन प्रातः पौने नौ बजे कहा—"मनसुख, दुःखी न होना। मैं अपने आत्मस्वरूपमें लीन होता हूँ।" फिर वे नहीं बोले। इस प्रकार पाँच घंटे तक समाधिमें रहकर संवत् १९५७ की चैत्र वदी ५ (गुजराती) मंगलवारको दोपहरके दो बजे राजकोटमें इस नश्वर शरीरका त्याग करके उत्तम गतिको प्राप्त हुए। भारतभूमि एक अनुपम तत्त्वज्ञानी सन्तको खो बैठी। उनके देहावसानके समाचारसे मुमुक्षुओंमें अत्यन्त शोकके बादल छा गये। जिन-जिन पुरुषोंको जितने प्रमाणमें उन महात्माकी पहचान हुई थी उतने प्रमाणमें उनका वियोग उन्हें अनुभूत हुआ था।

उनकी स्मृतिमें शास्त्रमालाकी स्थापना

वि० सं० १९५६ में भादों मासमें परम सत्श्रुतके प्रचार हेतु बम्बईमें श्रीमद्जीने परमश्रुतप्रभावक-मण्डलकी स्थापना की थी। श्रीमद्जीके देहोत्सर्गके बाद उनकी स्मृतिस्वरूप 'श्री रायचन्द्रजैनग्रन्थमाला' की स्थापना की गई जिसके अन्तर्गत दोनों सम्प्रदायोंके अनेक सद्ग्रन्थोंका प्रकाशन हुआ है जो तत्त्वविचारकोंके लिए इस दुषमकालको बितानेमें परम उपयोगी और अनन्य आधाररूप है। महात्मा गांधीजी इस संस्थाके ट्रस्टी और श्री रेवाशंकर जगजीवनदास मुख्य कार्यकर्ता थे। श्री रेवाशंकरके देहोत्सर्ग बाद संस्थामें कुछ शिथिलता आ गई परन्तु अब उस संस्थाका काम श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम अगासके ट्रस्टियोंने सम्भाल लिया है और सुचारुरूपसे पूर्वानुसार सभी कार्य चल रहा है।

श्रीमद्जीके स्मारक

श्रीमद्जीके अनन्य भक्त आत्मनिष्ठ श्री लघुराजस्वामी (श्री लल्लुजी मुनि) की प्रेरणासे श्रीमद्जीके स्मारकके रूपमें और भक्तिधामके रूपमें वि० सं० १९७६ की कार्तिकी पूर्णिमाको अगास स्टेशनके पास 'श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम' की स्थापना हुई थी। श्री लघुराज स्वामीके चौदह चातुर्मासोंसे पावन हुआ यह आश्रम आज बढ़ते-बढ़ते गोकुल-सा गाँव बन गया है। श्री स्वामीजी द्वारा योजित सत्संगभक्तिका क्रम आज भी यहाँ पर उनकी आज्ञानुसार चल रहा है। धार्मिक जीवनका परिचय करानेवाला यह उत्तम तीर्थ बन गया है। संक्षेपमें यह तपोवनका नमूना है। श्रीमद्जीके तत्त्वज्ञानपूर्ण साहित्यका भी मुख्यतः यहींसे प्रकाशन होता है। इस प्रकार यह श्रीमद्जीका मुख्य जीवंत स्मारक है।

इसके अतिरिक्त वर्तमानमें निम्नलिखित स्थानोंपर श्रीमद् राजचन्द्र मंदिर आदि संस्थाएँ स्थापित हैं जहाँ पर मुमुक्षु-बन्धु मिलकर आत्म-कल्याणार्थ वीतराग-तत्त्वज्ञानका लाभ उठाते हैं—ववाणिया, राजकोट, मोरबी, वडवा, खंभात, काविठा, सीमरडा, वडाली, भादरण, नार, सुणाव, नरोडा, सडोदरा, धामण, अहमदाबाद, ईडर, सुरेन्द्रनगर, वसो, वटामण, उत्तरसंडा, बोरसद, बम्बई (घाटकोपर एवं चौपाटी), देवलाली, बेंगलोर, इन्दोर, आहोर (राजस्थान), मोम्बासा (आफ्रिका) इत्यादि।

अन्तिम प्रशस्ति

आज उनका पार्थिव देह हमारे बीच नहीं है मगर उनका अक्षरदेह तो सदाके लिए अमर है। उनके मूल पत्रों तथा लेखोंका संग्रह गुर्जरभाषामें 'श्रीमद् राजचन्द्र' ग्रन्थमें प्रकाशित हो चुका है (जिसका हिन्दी अनुवाद भी प्रगट हो चुका है) वही मुमुक्षुओंके लिए मार्गदर्शक और अवलम्बनरूप है। एक-एक पत्रमें कोई

अपूर्व रहस्य भरा हुआ है। उसका मर्म समझनेके लिये संतसमागमकी विशेष आवश्यकता है। इन पत्रोंमें श्रीमद्जीका पारमार्थिक जीवन जहाँ-तहाँ दृष्टिगोचर होता है। इसके अलावा उनके जीवनके अनेक प्रेरक प्रसंग जानने योग्य है, जिसका विशद वर्णन श्रीमद् राजचंद्र आश्रम प्रकाशित 'श्रीमद् राजचंद्र जीवनकला' में किया हुआ है (जिसका हिंदी अनुवाद भी प्रकट हो चुका है)। यहाँ पर तो स्थानाभावसे उस महान् विभूतिके जीवनका विहगावलोकनमात्र किया गया है।

श्रीमद् लघुराजस्वामी (श्री प्रभुश्री जी) 'श्री सद्गुरुप्रसाद' ग्रंथकी प्रस्तावनामें श्रीमद्के प्रति अपना हृदयोद्गार इन शब्दोंमें प्रकट करते हैं—• "अपरमार्थमें परमार्थके दृढ आग्रहरूप अनेक सूक्ष्म भूलभूलैयांके प्रसंग दिखाकर, इस दासके दोष दूर करनेमें इन आप्त पुरुषका परम सत्संग और उत्तम बोध प्रबल उपकारक बने हैं....संजीवनी औषध समान मृतको जीवित करें, ऐसे उनके प्रबल पुरुषार्थ जागृत करनेवाले वचनोंका माहात्म्य विशेष विशेष भास्यमान होनेके साथ ठेठ मोक्षमें ले जाय ऐसी सम्यक् समझ (दर्शन) उस पुरुष और उसके बोधकी प्रतीतिसे प्राप्त होती है; वे इस दुषम कलिकालमें आश्चर्यकारी अवलम्बन हैं। परम माहात्म्यवंत सद्गुरु श्रीमद् राजचंद्रदेवके वचनोंमें तल्लीनता, श्रद्धा जिसे प्राप्त हुई है या होगी उसका महद् भाग्य है। वह भव्य जीव अल्पकालमें मोक्ष पाने योग्य है।"

ऐसे महात्माको हमारे अगणित वन्दन हों !



प्राक्कथन

लगभग ७ वर्ष पूर्व मैंने श्री पं० बाबूलालजी फागुल्लके माध्यमसे श्री पं० बाबूलालजी गोयलीय अगासके विशेष अनुरोधवश श्री लब्धिसारके सम्पादनका कार्य हाथमें लिया था। मैं चाहता था कि इस कार्यको यथासम्भव शीघ्र सम्पन्न करके श्री जयधवलाके अवशिष्ट रहे कार्यको सम्पन्न करनेमें लगूँ, ताकि दूसरे कार्योंकी ओर भी ध्यान दे सकूँ। किन्तु जब इच्छा और होनहारमें सुमेल नहीं होता तब चाहकर भी अप्रशस्त कार्यको तो छोड़िये प्रशस्त कार्य भी सम्पन्न नहीं हो सकता। होनहार वस्तुगत योग्यता है। प्रयत्न और बाह्य योग उसीका अनुसरण करते हैं यह सहज सिद्ध नियम है। प्रधानतासे किसी एककी अपेक्षा कथन किया जाय यह दूसरी बात है।

मुद्रित ग्रन्थकी दृष्टिसे १४ फार्म तकका काम सम्पन्न करते-करते मुझे स्थायीरूपसे चारपाईकी शरण लेनी पड़ी है। उससे पूरी तरह छुटकारा अभीतक नहीं मिल सका है। फिर भी मेरा साहित्यिक-जीवन स्थायी होनेसे ऐसी अवस्थामें भी यथासम्भव मैं २-३ वर्षसे इस कार्यमें पुनः योगदान करने लगा हूँ। उसीका परिणाम है कि अब शीघ्र ही लब्धिसार परमागम स्वाध्यायके लिये सुलभ हो जायगा।

मुझे सूचित किया गया था कि संस्कृत वृत्ति और सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीका सहित ही इसका सम्पादन होना है। आप जहाँ भी आवश्यक समझें मूल विषयको स्पष्ट करते जायें और श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने किस मूल सिद्धान्त ग्रन्थके आधारसे इसकी संकलना की है उसे भी अपनी टिप्पणियों द्वारा स्पष्ट करते जायें। यह मेरी उक्त ग्रन्थके सम्पादनकी रूपरेखा है। अतः मैंने उक्त ग्रन्थके सम्पादनमें इस मर्यादाका पूरा ध्यान रखकर ही इसका सम्पादन किया है।

ऐसा नियम है कि प्रकाशित या अप्रकाशित जिस किसी ग्रन्थका सम्पादन किया जाय, उसका सम्पादन अनेक हस्तलिखित प्रतियोंके आधारसे करना ही उपयुक्त होता है। उसके बिना यह विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इसके सम्पादनमें यथासम्भव कोई त्रुटि नहीं रहने पाई है। किन्तु इसके लिये मैं प्रयत्न करनेपर भी अन्य हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध नहीं कर सका। अतः जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था कलकत्तासे प्रकाशित प्रतिके आधारसे ही इसका सम्पादन हुआ है। फिर भी कहीं-कहीं मूल गाथाके पाठमें कुछ परिवर्तन किया गया है। कुछ पाठ ये हैं—

गाथा	मूल पाठ	मुद्रित पाठ	सं० वृ०	स० च०
६७	उदरिय	ओदरिय	×	×
,,	उदीर्य	अवतीर्य	अवतीर्य	उतरि
६९	उक्कट्टिद-	ओकट्टिद	×	×
,,	उत्कर्षित-	अपकर्षित-	अपकर्षण भागहार	अपकर्षण भागहार
७३	उक्कट्टिदम्हि	अपकर्षिते	अपकर्षिते	अपकर्षण

२८४ उक्कट्ठिद-	ओकड्डिद-	अपकर्षिते	अपकर्षण
,, अपकर्षित-	अपकर्षित-	अपकर्षिते	अपकर्षण
४०१ उव्वट्टणा	ओवट्टणा	×	×
अतिस्थापना	अतिस्थापना	×	अतिस्थापन
सूचना-यहाँ पाठ अइट्ठवणा होना चाहिये ।			
४०३ उक्कट्ठदि	ओक्कड्डदि	×	×
,, उत्कृष्यन्ते	अपकृष्यन्ते	×	अपकर्षण
४३७ आवेत्त-	आजुत्त-	×	×
,, आवृत्त-	आयुक्त	(त्त)	आवृत्त
४६२ ओवट्टणिउट्टण	ओवट्टणुवट्टण	×	×
,, अपवर्तनोद्वर्तनं	अपवर्तनोद्वर्तनं	×	अपवर्तनोद्वर्तन
उक्कट्टिदं	ओक्कड्डिदं	×	×
अपकर्षितं	अपकर्षितं	×	अपकर्षण किया

(२) दर्शनमोहक्षपणा अधिकारके अन्तमें टिप्पणीमें कहा गया है कि गाथा १५६ 'सम्मे असंखवस्सिय' और गाथा १६७ 'उवणेउ मंगलं वो' इन दोनों गाथाओंकी संस्कृत वृत्ति और सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीकाका अर्थ नहीं किया गया है । किन्तु गाथा १५६ की संस्कृत वृत्ति भी है और सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीकामें अर्थ भी किया गया है । मात्र १६७ गाथा पर वृत्ति और टीका दोनों नहीं हैं, अतः हिन्दीमें इस गाथाके अर्थकी पूर्ति कर दी गई है ।

(३) गाथा ४७५ के उत्तरार्धमें मध्यका कुछ भाग त्रुटित है । इस बातको ध्यानमें रखकर पण्डित श्री टोडरमलजीने उत्तरार्धका अर्थ न लिखकर यह टिप्पणी की है—'इस गाथा विषैं लिखनेवालेने अक्षर केते इक न लिखे तातैं आधा गाथाका अर्थ न जानि इहाँ नाहीं लिख्या है ।' अतः हमने जयधवलासे प्रकरण देखकर उक्त अंशकी पूर्ति करके 'विशेष' में पूरे गाथाके अर्थका स्पष्टीकरण कर दिया है । पूर्वकी प्रतिमें उक्त गाथा इस प्रकार है—

विदियादिसु समयेसु वि पढमं व अपुव्वफड्ढयाण विही ।
णवरि य संखगुणूणं········पडिसमयं ।

यहाँ त्रुटित पाठ 'णिवत्तयदि' होना चाहिये ऐसा प्रकरणके अनुसार जयधवलासे समझ कर उक्त पाठकी पूर्ति कर दी है और जयधवलाके पूरे उद्धरणको टिप्पणमें दे दिया है ।

अपनी प्रस्तावनामें मैंने आवश्यक विषयोंपर ही प्रकाश डाला है । इतिहास लिखना मेरा प्रयोजन नहीं था, इसलिये समयादि सम्बन्धी कुछ विषयोंको मैंने गौण कर दिया है । इतिहास अनुसन्धानका विषय है और अभी तक इसपर जो कुछ भी लिखा गया उसमेंसे कुछ मुख्य विषय अभी भी विवादके विषय बने हुए हैं । फिर भी जिन तथ्योंको आवश्यक समझा उन्हींपर मैंने विशेष प्रकाश डाला है । अस्तु,

इस ग्रन्थके सम्पादनमें मेरे सामने अनेक कठिनाइयाँ रही हैं, फिर भी किसी प्रकार इसे सम्पन्न करनेमें मैं सफल हुआ इसकी मुझे प्रसन्नता है । यह श्री पं० बाबूलालजी गोयलीय अगास और श्री बाबूलालजी फागुल्लको निष्ठाका परिणाम है कि यह कार्य सम्पन्न हो गया । प्रूफ जैसे कष्टसाध्य कार्यको मुझे ही सम्पन्न करना पड़ा है, इसलिये अशुद्धियाँ रहना सम्भव है सो स्वाध्यायप्रेमी बन्धु उन्हें

सुधारकर ही ग्रन्थका स्वाध्याय करें। मुद्रण कार्य श्री बाबूलालजी फागुल्लकी देख-रेखमें महावीर प्रेसमें हुआ है। अतः उक्त दोनों बन्धुओंका मैं आभारी हूँ।

बी २/२४९ निर्वाण भवन
रवीन्द्रपुरी, वाराणसी–५
७–७–७९

फूलचन्द्र शास्त्री

प्रस्तावना

विषय परिचय

जैसा कि हम पहले ही लिख आये हैं, लब्धिसार ग्रन्थमें करणानुयोगके अनुसार सम्यग्दर्शन और सम्यक्‌चारित्रकी उत्पत्तिका कथन करनेके प्रसंगसे संक्षेपमें उसके फलका भी निर्देश किया गया है। उसमें भी सर्वप्रथम सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति किस विधिसे होती है यह दिखलाते हुए निमित्त भेदसे उसके तीन भेद किये गये हैं। यथा—औपशमिक सम्यग्दर्शन, क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन और क्षायिक सम्यग्दर्शन। तात्पर्य यह है कि दर्शनमोहनीयके अन्तरकरण उपशम और अनन्तानुबन्धी चतुष्कके अनुदयरूप उपशमपूर्वक मिथ्यात्वरूप पर्यायका अभाव होकर जो आत्मविशुद्धि प्राप्त होती है वह औपशमिक सम्यग्दर्शन है। उक्त सात प्रकृतियोंमेंसे छह प्रकृतियोंके क्षयोपशम और सम्यक्‌प्रकृतिके उदयपूर्वक जो आत्मविशुद्धि प्राप्त होती है वह क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन है तथा उक्त सातों प्रकृतियोंके क्षयपूर्वक जो आत्मविशुद्धि प्राप्त होती है वह क्षायिक सम्यग्दर्शन है। करणानुयोगके अनुसार यह इन तीनों सम्यग्दर्शनोंकी उत्पत्तिका प्रकार है। इन तीनों सम्यग्दर्शनोंमें आत्मविशुद्धि मुख्य है। जाति और स्वादकी अपेक्षा उनमें भेद नहीं है। भेद केवल कर्मोंके सद्भाव और असद्भावको मुख्य कर किया गया है।

प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन

प्रथम प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन है। यह मुख्य और भूमिस्वरूप है। मुख्य इसलिए है, क्योंकि सर्व प्रथम मोक्षमार्गका दरवाजा इस द्वारा ही उद्घाटित होता है और भूमिस्वरूप इसलिए है, क्योंकि मोक्षमार्गपर आरूढ़ होनेके लिए सर्वप्रथम यह जमीनका काम देता है। इसकी उत्पत्ति पाँच लब्धियोंके होनेपर ही होती है। वे ये हैं—क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि। इनमेंसे प्रारम्भकी चार लब्धियाँ यथासम्भव भव्यों और अभव्यों दोनोंके पायी जाती हैं। इतना अवश्य है कि जो मिथ्यादृष्टि भव्य जीव औपशमिक सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेके सन्मुख होते हैं वे इनके होनेपर ही करणलब्धिके सन्मुख होनेके पात्र होते हैं।

ऐसा नियम है कि दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयका उपशम और क्षय करणलब्धिके प्राप्त होनेपर ही होता है, इसलिये करणलब्धिके प्राप्त होनेके पूर्व जो क्षयोपशम आदि चार लब्धियाँ होती हैं उनमेंसे अन्तिम प्रायोग्यलब्धिके होनेपर जो कार्य होते हैं उनका विचार करते हुए बतलाया है कि आयु कर्मके बिना शेष कर्मोका बन्ध, स्थिति सत्त्व, अनुभागसत्त्व और प्रदेशसत्त्व न तो उत्कृष्ट होना चाहिये और न क्षपकश्रेणिके योग्य जघन्य ही होना चाहिये। वह एक तो उत्तरोत्तर विशुद्धिकी वृद्धि करता हुआ सातों कर्मोंकी अन्तःकोडाकोडीप्रमाण मध्यम स्थितिबन्ध करता है तथा चारों गतियोंमें स्थितिको घटाते हुए यथासम्भव प्रकृतिबन्धापसरण करता है जो सब मिलाकर ३४ होते हैं। आगे किस गतिमें कितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है इसका विचार कर किन प्रकृतियोंका कैसा अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध होता है इसका उल्लेख किया गया है।

उदयप्रकृतियोंका विचार करते हुए बतलाया गया है कि स्थितिकी अपेक्षा उदयप्राप्त एक स्थिति-निषेकका वेदक होता है, अनुभागकी अपेक्षा अप्रशस्त प्रकृतियोंके द्विस्थानीय अनुभाग तथा प्रशस्त प्रकृतियोंके

चतुःस्थानीय अनुभागका वेदक होता है तथा प्रदेशोंकी अपेक्षा अजघन्य-अनुत्कृष्ट प्रदेशोंका वेदक होता है। इसके साथ ही वह उदयप्राप्त इन सबका उदीरक होता है।

सत्त्वका विचार करते हुए जिन प्रकृतियोंका यथासम्भव सत्त्व सम्भव नहीं है उनका उल्लेख करनेके बाद जहाँ जितनी प्रकृतियोंका सत्त्व होता है उनकी स्थिति, अनुभाग और प्रदेश अजघन्य-अनुत्कृष्ट ही होता हैं यह बतलाया गया है।

यह सब प्रायोग्यलब्धिका समग्र विचार है जो भव्यों और अभव्यों दोनोंके सम्भव है। इस प्रकार हम देखते हैं कि क्षयोपशम आदि चार लब्धियाँ जैसे भव्योंके सम्भव हैं वैसे ही अभव्योंके भी हो सकती हैं। किन्तु जो भव्य जीव हैं वे ही इन लब्धियोंके होनेपर यथासम्भव करणलब्धिको प्राप्त करते हैं। करण परिणामविशेषकी संज्ञा है। ऐसे परिणामोंको जिनके होनेपर यह जीव नियमसे दर्शनमोहनीय और चारित्र-मोहनीयका यथासम्भव उपशम और क्षय करता है करणलब्धि कहते हैं। यद्यपि वेदक सम्यक्त्वकी प्राप्तिके समय भी किन्हीं जीवोंके अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरणरूप करणलब्धि होती है पर उसकी यहाँ विवक्षा न कर करणलब्धिका उक्त लक्षण कहा गया है।

करणलब्धिके तीन भेद हैं—अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। इनमेसे प्रत्येकका काल अन्तर्मुहूर्त है। उसमें भी अधःप्रवृत्तकरणका काल सबसे अधिक है, उसका संख्यातवाँ भाग अपूर्वकरणका काल है और उसका भी संख्यातवाँ भाग अनिवृत्तिकरणका काल है। नीचेके समयवर्ती किसी जीवके परिणाम ऊपरके समयवर्ती अन्य किसी जीवके परिणामोंके सदृश हो सकते हैं, इसलिए इसकी अधःप्रवृत्तकरण संज्ञा है। इसकी कहीं-कहीं यथाप्रवृत्तकरण संज्ञा भी पाई जाती है। जहाँ प्रत्येक समयमें जीवोंके परिणाम भिन्न-भिन्न होते हैं उसकी अपूर्वकरण संज्ञा है और जहाँ एक समयवर्ती सब जीवोंका परिणाम एक ही होता है उसकी अनिवृत्तिकरण संज्ञा है।

ये तीन करण हैं। इनमेंसे प्रथम करणमें गुणश्रेणिरचना, गुणसंक्रमण, स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात ये चार कार्य नहीं होते। हाँ प्रत्येक, समयमें उत्तरोत्तर अनन्तगुणी विशुद्धि होनेसे अप्रशस्त कर्मोंके अनुभागमें अनन्तगुणी हानि, प्रशस्त कर्मोंके अनुभागमें अनन्तगुणी वृद्धि होती रहती है। इसके साथ संख्यात हजार स्थितिबन्धापसरण भी होते हैं। एक स्थितिबन्धापसरणका प्रमाण पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण और काल अन्तर्मुहूर्त है। इस प्रकार अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें जितना स्थिति-बन्ध होता है, उसके अन्तिम समयमें वह घटकर संख्यातगुणा हीन हो जाता है। यदि वही जीव प्रथम सम्यक्त्वके साथ देशसंयम और सकलसंयमको प्राप्त करता है तो उक्त स्थितिबन्ध असंयतके जितना होता है उससे और भी संख्यातगुणा हीन हो जाता है।

परिणामोंकी अपेक्षा विचार करने पर नाना जीवोंकी अपेक्षा इस करणके प्रत्येक समयमें वे परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण होते हैं जो उत्तरोत्तर एक-एक समयमें विशेष अधिक होते जाते हैं। परिणामोंकी यह वृद्धि समानरूपसे होती है। यहाँ विशेषका प्रमाण लानेके लिए प्रतिभागका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है। प्रकृतमें अधः प्रवृत्तकरणका जितना काल होता है उसके संख्यातवें भागप्रमाण अनुकृष्टिकाल होता है। इसे निर्वर्गणा-काण्डक कहते हैं। एक निर्वर्गणाकाण्डकके जितने समय हों उतने प्रत्येक समयके परिणामोंके खण्ड होते हैं जो प्रथम खण्डसे लेकर उत्तरोत्तर एक-एक चयप्रमाण अधिक होते हैं। यहाँ भी चयका प्रमाण लानेके लिए प्रतिभागका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है। इस प्रकार प्रत्येक समयमें जितने खण्ड प्राप्त होते हैं उनमेंसे एक-एक खण्डमें भी असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम होते हैं जो षट्स्थान पतित वृद्धिसे युक्त होते हैं। प्रथम और

अन्तिम समयके प्रथम और अन्तिम खण्ड विसदृश होते हैं तथा शेष सब खण्ड यथासम्भव सदृश होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक समयके परिणामोंकी क्रमवार जो रचना बनती है उसके अनुसार द्विचरम समय तकके प्रथम खण्ड और अन्तिम समयके सब खण्डोंकी विसदृश पंक्ति बन जाती है। यहाँ विशुद्धिके तारतम्यका विचार ४८ संख्याक गाथामें किया गया है सो इसे संस्कृत और हिन्दी दोनों टीकाओंसे जान लेना चाहिये।

दूसरे करणका नाम अपूर्वकरण है। यहाँ प्रत्येक समयके परिणाम अन्य-अन्य होते हैं, इसलिए इसकी अपूर्वकरणसंज्ञा है। इस करणके भी प्रत्येक समयमें असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम होते हैं जो उत्तरोत्तर विशेष अधिक होते हैं। विशेषका प्रमाण लानेके लिए प्रतिभागका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है। यहाँ विशुद्धिका प्रमाण उत्तरोत्तर अनन्तगुणा पाया जाता है जो षट्स्थानपतित वृद्धिको उल्लंघन कर प्राप्त होती है। इस करणसे लेकर गुणश्रेणिरचना, गुणसंक्रमण, स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात ये कार्य प्रारम्भ हो जाते हैं जो सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीयके पूरण होनेके काल तक होते रहते हैं। स्थितिबन्धापसरण और स्थितिकाण्डकघातका काल समान है। तथा एक स्थितिकाण्डकघातके भीतर हजारों अनुभागकाण्डकघात होते हैं। गुणश्रेणिकी रचनाका आयाम अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके कालसे साधिक होता है। प्रकृतमें अपकर्षण और उत्कर्षणको ध्यानमें रखकर निक्षेप और अतिस्थापना आदिका विचार मूलमें विस्तारसे किया ही है। अधिक विस्तार होनेके कारण यहाँ उनपर विशेष प्रकाश नहीं डाल रहे हैं। यह गुणश्रेणिरचना आयुकर्मकी नहीं होती, शेष सभी कर्मोंकी होती है।

तीसरा अनिवृत्तिकरण है। इसके प्रत्येक समयमें एक ही परिणाम होता है, इसलिए इस करणका जितना काल है उतने इसके परिणाम जानने चाहिये। यहाँ स्थितिकाण्डकघात आदि सब कार्य नये होते हैं। इसका संख्यातवाँ भाग काल शेष रहनेपर दर्शनमोहनीयका अन्तरकरण प्रारम्भ होता है। प्रथम स्थिति और उपरितन स्थितिके मध्यकी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थितिके निषेकोंका उक्त स्थितियोंमें निक्षेपण करके अभाव करना अन्तरकरण कहलाता है। एक स्थितिकाण्डकघातमें जितना काल लगता है उतना ही अन्तरकरणका काल है। अन्तरका प्रमाण गुणश्रेणिशीर्षसे संख्यातगुणा है। अन्तरकरण क्रिया सम्पन्न होनेके बाद द्वितीय स्थितिमें स्थित दर्शनमोहनीयका उपशम (उदयके अयोग्य) करता है। तदनन्तर प्रथम स्थितिके गलनेके बाद अन्तरके प्रथम समयमें यह जीव प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि हो जाता है और यहींसे मिथ्यात्वके द्रव्यको मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यग्प्रकृतिमिथ्यात्व इन तीन भागोंमें विभक्त करता है। जब गुणसंक्रमका काल पूरा हो जाता है तब से विध्यात संक्रमके द्वारा मिथ्यात्वके द्रव्यको मिश्र और सम्यक् प्रकृतिरूपसे परिणमाता है। यहाँ दर्शनमोहनीयके स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात नहीं होते, शेष कर्मोंके होते हैं इतना विशेष जानना चाहिये। दर्शनमोहनीयका उपशम करनेवाला जीव मरणको नहीं प्राप्त होता और सासादनगुणस्थानको भी नहीं प्राप्त होता। हाँ उपशम सम्यग्दृष्टि होनेके बाद उसके कालमें अधिकसे अधिक छह आवलि और कमसे कम एक समय शेष रहने पर वह सासादनगुणस्थानको प्राप्त हो सकता है।

यहाँ संस्कृत टीकामें बतलाया है कि उपशमनकालके भीतर अर्थात् उपशमन क्रिया करते समय इस जीवके अनन्तानुबन्धीका उदय न होनेसे वह सासादन-गुणस्थानको नहीं प्राप्त होता, किन्तु मिथ्यात्व-गुणस्थानके अंतिम समय तक अनन्तानुबन्धी चतुष्कमेंसे किसी एकका उदय बना रहता है, इसलिए यहाँ ऐसा समझना चाहिये कि दर्शनमोहनीयकी उपशमन क्रिया करते समय भी यहाँ अनन्तानुबन्धीका उदय रहते हुए भी वह सासादनगुणस्थानको नहीं प्राप्त होता, क्योंकि उसके मिथ्यात्वका उदय बना हुआ है। श्री जयधवला टीकामें गाथा ९९ में आये हुए 'णिरासाणो' पदका यही अर्थ किया है।

उपशमकरण क्रियाके साथ प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी प्राप्तिके समय उपयोग, योग और लेश्याका विचार करते हुए बतलाया है कि दर्शनमोहके उपशमका प्रारम्भ करनेवाला अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्तकाल तक स्थापक कहलाता है। उस समय इसके नियमसे ज्ञानोपयोग ही होता है, किन्तु इसके बाद मध्य अवस्थामें और समाप्त करनेके समय साकार या अनाकार कोई भी उपयोग हो सकता है। योगका विचार करते हुए मनोयोग, वचनयोग और काययोगमेंसे किसी एकको ग्रहण किया गया है। तथा लेश्याका विचार करते हुए लब्धिसार संस्कृत टीकामें तो इतना ही बतलाया है कि तिर्यंच और मनुष्य मन्दविशुद्धिवाला होता है तथापि पीतलेश्याके जघन्य अंशमें विद्यमान होकर ही प्रथमोपशमका प्रारम्भ करनेवाला होता है। इस प्रकार लब्धिसारकी संस्कृत टीकामें जहाँ यह नियम किया गया है कि तिर्यंच और मनुष्य प्रथमोपशम सम्यक्त्वका प्रारम्भ पीतलेश्याके जघन्य अंशमें ही करता है वहीं जयधवलामें 'जहण्णए तेउलेस्साए' पदका यह स्पष्टीकरण किया गया है कि तिर्यंच और मनुष्य यदि अति मन्द विशुद्धिवाला हो तो भी उसके कमसे कम जघन्य पीतलेश्या ही होगी, इससे नीचेकी अशुभ लेश्या नहीं होगी। तात्पर्य यह है कि प्रथमोपशम सम्यक्त्वका प्रारम्भ करनेवाले तिर्यंच और मनुष्यके कृष्ण, नील और कापोत लेश्या नहीं होती।

जिस जीवने प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त किया है उसके दर्शनमोहनीयसम्बन्धी तीनों प्रकृतियाँ अन्तर्मुहूर्त कालतक सर्वोपशमरूप अवस्थाको प्राप्त रहती हैं अर्थात् प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इन चारों प्रकारसे वे उपशान्त रहती हैं। हाँ अन्तर्मुहूर्त कालके बाद यदि मिथ्यात्व प्रकृतिकी उदीरणा होती है तो उक्त जीव मिथ्यादृष्टि हो जाता है और यदि सम्यक् प्रकृतिकी उदीरणा होती है तो उक्त जीव वेदक सम्यग्दृष्टि हो जाता है।

इस प्रकार प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति कैसे होती है इसका विचार किया।

क्षायिक सम्यक्त्व

जो वेदकसम्यग्दृष्टि कर्मभूमिज मनुष्य तीर्थंकर केवली, सामान्य केवली और श्रुतकेवलीके पादमूलमें अवस्थित है वही दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रस्थापक होता है अर्थात् मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वके द्रव्यको अन्तर्मुहूर्त कालतक सम्यक्त्व प्रकृतिमें संक्रमित करता है। तब उक्त जीवकी प्रस्थापक संज्ञा होती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। किन्तु दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका निष्ठापक यथासम्भव चारों गतियोंका जीव होता है। विशेष इतना है कि दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाला उक्त जीव सर्वप्रथम त्रिकरणविधिसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उदयावलिके बाहर स्थित स्थितिकी विसंयोजना करता है। जब यह जीव अनिवृत्तिकरणमें प्रवेश करता है तब अनन्तानुबन्धी चतुष्कके स्थितिसत्त्वकी अपेक्षा चार पर्व होते हैं। प्रारम्भमें लक्षपृथक्त्वसागरोपम प्रमाण स्थिति सत्त्व शेष रहता है। पुनः क्रमसे घटकर एक सागरोपम प्रमाण स्थितिसत्त्व शेष रहता है। इसके बाद पुनः घटकर दूरापकृष्टि संज्ञाप्रमाण स्थितिसत्त्व शेष रहता है। पुनः अन्तमें उच्छिष्टावलिप्रमाण स्थितिसत्त्व शेष रहता है। यहाँ जब तक सागरोपमप्रमाण स्थितिसत्त्व नहीं प्राप्त होता तब तक स्थितिकाण्डकायाम पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है। उसके बाद दूरापकृष्टिसंज्ञक स्थितिसत्त्वके प्राप्त होने तक स्थितिकाण्डकायाम पल्योपमके संख्यात बहुभागप्रमाण होता है। पुनः इसके बाद उच्छिष्टावलिके प्राप्त होने तक काण्डकायाम पल्योपमके असंख्यात बहुभागप्रमाण होता है।

इस प्रकार क्रमसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करनेके बाद यह जीव अन्तर्मुहूर्त काल तक विश्राम करके तदनन्तर त्रिकरण विधिसे दर्शनमोहनीयकी तीनों प्रकृतियोंकी क्षपणा करता हुआ अनिवृत्तिकरणमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृतिका क्रमसे नाश करता है। इस विधिसे इनका नाश करते हुए दूरापकृष्टिसंज्ञक स्थितिसत्त्वके शेष रहनेके बाद भी, जब हजारों स्थितिकाण्डकघात हो लेते हैं तब सम्यक्त्वमोहनीयके असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा करता है। यहाँसे भागहार पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है, असंख्यात लोकप्रमाण नहीं। इस विधिसे दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करते हुए मिथ्यात्वकी उच्छिष्टावलिप्रमाण स्थिति शेष रहती है। पुनः सम्यग्मिथ्यात्वके संख्यात हजार स्थितिकाण्डकोंका घात होते समय अन्तिम स्थितिकाण्डकका पतन होने पर जब उच्छिष्टावलि प्रमाण स्थिति शेष रहती है उस समय सम्यक्त्वका स्थितिसत्त्व आठ वर्ष प्रमाण शेष रहता है। यहाँसे लेकर अवस्थित गुणश्रेणिका नया क्रम चालू हो जाता है, स्थितिकाण्डकका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त आयामवाला होता है। तथा अनुभागका प्रत्येक समयमें अपवर्तन होने लगता है। इस विधिसे जब अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिका पतन होता है तब वहाँसे लेकर इसकी कृतकृत्यवेदक संज्ञा हो जाती है।

इसका मरण भी हो सकता है। यदि प्रथम अन्तर्मुहूर्तमें मरण होता है तो वह मरकर नियमसे देव होता है। यदि दूसरे अन्तर्मुहूर्तमें मरण होता है तो नियमसे देव या मनुष्य कोई एक होता है। यदि तीसरे अन्तर्मुहूर्तमें मरण होता है तो देव, मनुष्य और तिर्यञ्चमेंसे कोई एक होता है और यदि चौथे अन्तर्मुहूर्तमें मरण होता है तो चारों गतियोंमेंसे किसी एक गतिमें जन्म लेता है। क्षायिक सम्यग्दर्शनका प्रारम्भ करनेवाला जीव जबतक कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि नहीं होता तब तक उसके जो लेश्या होती है वही रहती है। उसके अन्तर्मुहूर्त बाद यथासम्भव लेश्यापरिवर्तन हो सकता है। इस सम्बन्धमें जो विशेषता है उसे टीकामें स्पष्ट किया ही है। इस प्रकार कृतकृत्यवेदकका काल पूरा होने पर यह जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो जाता है। यहाँ प्रसंगसे अल्पबहुत्वका निरूपण किया है सो उसे मूलसे जान लेना चाहिये।

देशचारित्रलब्धि

चारित्र दो प्रकारका है—एक देशचारित्र और दूसरा सकलचारित्र। चढ़ते समय इन्हें प्राप्त करनेके अधिकारी मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनों हैं। जो मिथ्यादृष्टि जीव उपशम सम्यक्त्वके साथ देशचारित्रको प्राप्त करते हैं वे पूर्वोक्त तीनों करणोंके होनेपर ही उसे प्राप्त करते हैं। जो वेदकसम्यक्त्वके साथ देशचारित्रको ग्रहण करते हैं वे प्रारम्भके दो करण करके उसे प्राप्त करते हैं। इनके उस समय गुणश्रेणिरचना नहीं होती। किन्तु देशचारित्रके प्राप्त होनेपर अवस्थित गुणश्रेणि प्रारम्भ हो जाती है जो देशचारित्र कालके भीतर सदा प्रवृत्त रहती है। देशचारित्रके दो भेद हैं—एकान्त वृद्धि देशचारित्र और यथाप्रवृत्त देशचारित्र। इनमेंसे प्रथमका काल अन्तर्मुहूर्त है। यह देशचारित्रके प्राप्त होनेके प्रथम समयसे अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है। इस कालके भीतर समय समय परिणामोंकी विशुद्धि अनन्तगुणी बढ़ती जाती है। इस कारण इस कालके भीतर करण परिणामोंके बिना भी स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात क्रिया चालू रहती है। किन्तु यथाप्रवृत्त देशचारित्रकालके भीतर स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात क्रिया नहीं होती।

जो देशसंयत बाह्य कारणके बिना केवल अन्तरंग कारणके वश तीव्र संक्लेशको प्राप्त हो अन्तर्मुहूर्तके लिए असंयतसम्यग्दृष्टि होकर पुनः देशचारित्रको प्राप्त करता है उसके करणपरिणाम न होनेसे वह स्थिति-अनुभागकाण्डकघात नहीं करता। उक्त देशसंयत जीव कभी संक्लेशको प्राप्त होता है और कभी

विशुद्धिको भी। इस कारण उसके विशुद्धिकालमें अनन्त भागवृद्धि और अनन्त गुणहानिको छोड़कर यथासम्भव शेष चार प्रकारकी वृद्धिको लिये हुए गुणश्रेणि रचना होती है तथा संक्लेशकालमें अनन्त भागहानि और अनन्त गुणहानिको छोड़कर यथासम्भव शेष चार प्रकारकी हानिको लिए हुए गुणश्रेणि रचना होती है।

जो मनुष्य देशचारित्रसे च्युत होकर अगले समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त होता है उसके जघन्य देशसंयमस्थान होता है और जो मनुष्य अगले समयमें सकलसंयमको प्राप्त होता है उसके उत्कृष्ट देशसंयमस्थान होता है। मध्यम देशसंयमस्थान मनुष्य और तिर्यञ्च दोनोंके होते हैं।

देशसंयमस्थानोंके तीन भेद हैं। देशसंयमसे भ्रष्ट होनेके अन्तिम समयमें प्रतिपात स्थान होते हैं। देशसंयमको प्राप्त करनेके प्रथम समयमें प्रतिपद्यमान स्थान होते हैं। इनके बिना अन्य जितने देशसंयम स्थान होते हैं वे सब अनुभयगत स्थान कहलाते हैं।

संयमासंयमलब्धिको क्षायोपशमिक बतलानेका कारण यह है कि अप्रत्याख्यानावरणको तो संयतासंयत जीव वेदता नहीं, क्योंकि उसके अप्रत्याख्यानावरणका उदय नहीं पाया जाता। प्रत्याख्यानावरणका उदय होते हुए भी वह सकल संयमका घात करता है, इसलिए उससे संयमासंयमका किसी प्रकारका भी उपघात नहीं होता। अब रहे चार संज्वलन और नौ नोकषाय सो ये संयमासंयमको देशघाति करते हैं, इसीलिए संयमासंयमको क्षायोपशमिक स्वीकार किया गया है। यतः क्षयोपशमके असंख्यात लोकप्रमाण भेद हैं, इसलिए संयमासंयमके भी असंख्यात लोकप्रमाण भेद हो जाते हैं।

सकलसंयमलब्धि—क्षायोपशमिक सकलसंयमलब्धि

सकलसंयमलब्धि तीन प्रकारकी है—१ क्षायोपशमिक, २ औपशमिक और ३ क्षायिक। जो औपशमिक सम्यक्त्वके साथ क्षायोपशमिक संयमलब्धिको ग्रहण करता है उसका कथन प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी प्राप्तिका निर्देश करते समय कर आये हैं। जो मिथ्यादृष्टि, अविरत सम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीव वेदक सम्यक्त्वके साथ सकल संयमलब्धिको ग्रहण करता है वह प्रारम्भके दो करणपूर्वक उसे ग्रहण करता है। इसके गुणश्रेणि नहीं होती। मात्र संयमकी प्राप्ति होनेपर स्वस्थान गुणश्रेणि नियमसे होती है। जो जीव सकल संयमको प्राप्त होता है उसे सर्व प्रथम अप्रमत्त गुणस्थानकी प्राप्ति होती है। इसका शेष कथन संयमासंयमके समान जान लेना चाहिये।

ऐसा नियम है कि कर्मभूमिज और अकर्मभूमिज दोनों प्रकारके मनुष्य सकल संयमलब्धिको प्राप्त करनेके अधिकारी हैं। उन्हें ही यहाँ क्रमसे आर्य और म्लेच्छ कहा गया है। अकर्मभूमिज मनुष्य सकल संयमको कैसे प्राप्त होते हैं इसका समाधान उत्तरकालमें टीकाकारोंने इस प्रकार किया है कि चक्रवर्तीकी दिग्विजयके समय जो मनुष्य अकर्मभूमिज क्षेत्रसे आते हैं या अकर्मभूमिज राजाओंकी कन्याओंके साथ विवाह करनेपर जो सन्तानें उत्पन्न होती हैं वे सकलसंयमको ग्रहण करनेके अधिकारी होनेसे अकर्मभूमिज मनुष्योंके सकल संयमकी प्राप्ति बन जाती है।

यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि यहाँ जो मिथ्यादृष्टि मनुष्यों और तिर्यञ्चोंको देशसंयमकी प्राप्तिका और मिथ्यादृष्टि मनुष्योंको सकल संयमकी प्राप्तिका उल्लेख किया है सो उसका आशय यह है कि जिन मिथ्यादृष्टि मनुष्यों और तिर्यञ्चोंने आचार शास्त्रके अनुसार निर्दोष रीतिसे श्रावकाचारका और मिथ्यादृष्टि मनुष्योंने अनगाराचारका पालन करते हुए तत्त्वाभ्यासपूर्वक आत्मसन्मुख होकर तीन करण करके सम्यग्दर्शनके साथ भाव संयमसंयम और भावसंयमको प्राप्त किया है या वेदक सम्यक्त्वके साथ उक्त विधिसे भावसंयमासंयम और भावसंयमको प्राप्त किया है उन्हें लक्ष्य कर ही उक्त निर्देश किया गया है।

औपशमिक चारित्रलब्धि

जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि मनुष्य हैं वे तो गुणस्थान परिपाटीके अनुसार औपशमिक चारित्रको प्राप्त करनेके अधिकारी हैं ही, किन्तु जो वेदकसम्यग्दृष्टि जीव हैं वे यदि उपशम श्रेणिपर आरोहण करना चाहते हैं तो सर्व प्रथम वे अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके तथा दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंकी उपशमना करके द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि होकर ही उपशमश्रेणिपर आरोहण कर औपशमिक चारित्रको प्राप्त हो सकते हैं।

नियम यह है कि जो वेदक सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके दर्शनमोहनीयकी उपशमना करता है उसके अपूर्वकरणमें गुणसंक्रमके स्थानपर विध्यातसंक्रम और अधःप्रवृत्त संक्रम होते हैं। उसमें भी अधःप्रवृत्तसंक्रम अप्रशस्त कर्मोंका होता है। अनिवृत्तिकरणमें उसका संख्यात बहुभाग जानेपर असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा होती है। उसके बाद अन्तर्मुहूर्त कालतक दर्शनमोहनीयकी अन्तरकरण क्रिया करता है। तदनन्तर प्रथम स्थितिके समाप्त होनेपर यह जीव द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि हो जाता है।

इस प्रकार द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि होनेके प्रथम समयसे लेकर जितना गुणसंक्रमका पूरण काल है उससे संख्यातगुणे काल तक प्रति समय विशुद्धिकी वृद्धिके द्वारा उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त होता रहता है। तदनन्तर विशुद्धिकी वृद्धि और हानि द्वारा अप्रमत्त और प्रमत्त गुणस्थानोंमें अनेक बार परिवर्तन करता है। चढ़ते समय विशुद्धिको प्राप्त होता है और गिरते समय संक्लेश परिणामोंसे युक्त हो जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

इसके बाद यह जीव चारित्रमोहनीयकी २१ प्रकृतियोंका तीन करणविधिसे उपशम करता है। अन्य प्रकृतियोंका उपशम नहीं होता। ऐसा करते समय अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, स्थितिबन्धापसरण, क्रमकरण, देशघातिकरण, अन्तरकरण और उपशमकरण ये आठ कार्य विशेष होते हैं। इनमेंसे तीन करणोंका लक्षण जैसा पहले बतला आये हैं उसी प्रकार जानना चाहिये। प्रकृतमें दर्शनमोहनीयका क्षय कर यदि कषायोंको उपशमाता है तो उसके अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जो स्थितिकाण्डक प्राप्त होता है वह नियमसे पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है। किन्तु जो दर्शनमोहके उपशमद्वारा द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि होकर कषायोंका उपशम करता है उसके लिये ऐसा कोई नियम नहीं है। उसके जघन्य स्थितिकाण्डक पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है और उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक सागरोपम पृथक्त्वप्रमाण होता है। स्थितिबन्धापसरण पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है। अनुभागकाण्डकघात अशुभ प्रकृतियोंका ही होता है।

यहाँ उदयावलिसे बाह्य गलितावशेष गुणश्रेणि होती है जो आयामकी अपेक्षा अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायके कालसे कुछ अधिक प्रमाणवाली होती है। यहींसे नहीं बँधनेवाली नपुंसकवेद आदि अप्रशस्त प्रकृतियोंके गुणसंक्रमका भी प्रारम्भ हो जाता है।

यह सब क्रिया करते हुए जब हजारों स्थितिकाण्डकोंका घात हो जाता है तब सर्व प्रथम इस जीवके निद्रा-प्रचलाकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। जहाँ इनकी बन्धव्युच्छित्ति होती है वह अपूर्वकरणके सातवें भागप्रमाण है। यहाँसे अन्तर्मुहूर्त काल जानेपर परभवसम्बन्धी नामकर्मकी प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। ये सब प्रकृतियाँ अधिकसे अधिक ३० हैं। इनमें आहारक द्विक और तीर्थंकर ये तीन प्रकृतियाँ भी सम्मिलित हैं। जो इन तीनोंका बन्ध नहीं करते उनके २७ प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। जो आहारक द्विकका बन्ध नहीं करते उनके २८ प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। जो मात्र तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध नहीं करते उनके २९ प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। इन ३० प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति अपूर्वकरणके

६ वें भागके अन्तमें होती है। तदनन्तर अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें हास्य, रति, भय और जुगुप्सा इन चार प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति होती है।

इस प्रकार अपूर्वकरणको समाप्त कर यह जीव अनिवृत्तिकरणमें प्रवेश करता है। यहाँ स्थिति-काण्डकघात आदि नये कार्य प्रारम्भ होते हैं। इसके प्रथम समयमें ही सभी कर्मोंमेंसे जो कर्मपुञ्ज अप्रशस्त उपशमनारूप हैं, जो कर्मपुंज निधत्तिरूप हैं और जो कर्मपुंज निकाचितरूप हैं, उन तीनोंकी व्युच्छित्ति कर वे कर्मपुञ्ज क्रमशः उदीरणाके योग्य, संक्रम और उदीरणाके योग्य तथा संक्रम, उत्कर्षण, अपकर्षण और उदीरणाके योग्य हो जाते हैं। हम देखते हैं कि अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें ही ये कार्य प्रारम्भ हो जाते हैं और इस विधिसे जब मोहनीयकर्मादिका स्थितिबन्ध शेष कर्मोंके स्थितिबन्धसे कम होने लगता है तब अन्तमें सबसे कम मोहनीयका, उससे अधिक तीसिय प्रकृतियोंका, उससे अधिक वीसिय प्रकृतियोंका और उससे अधिक वेदनीयका स्थितिबन्ध होता है और इस प्रकार क्रमकरणकी विधि समाप्त होती है। इस विधिसे क्रमकरणके अन्तमें कर्मोंका जो स्थितिबन्ध होता है वह पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है तथा असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा होती है।

इसके बाद यह जीव हजारों स्थितिबन्धापसरणोंके व्यतीत होनेके बाद सर्वप्रथम मनःपर्ययज्ञानावरण और दानान्तरायका देशघातिबन्ध करता है। तत्पश्चात् उतने उतने ही स्थितिबन्धापसरणोंके व्यतीत होनेपर क्रमसे अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण और लाभान्तरायका तत्पश्चात् श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण और भोगान्तरायका तत्पश्चात् चक्षुदर्शनावरणका तत्पश्चात् आभिनिबोधिक ज्ञानावरण और परिभोगान्तरायका तथा सबके अन्तमें वीर्यान्तरायका देशघाती बन्ध करता है। तात्पर्य यह है कि इसके पहले इन कर्मोंका जो सर्वघाती द्विस्थानीय बन्ध होता था वह अब परिणामविशेषोंको निमित्तकर देशघाती द्विस्थानीय बन्ध होने लगता है।

तदनन्तर हजारों स्थितिबन्धापसरणोंके जानेपर मोहनीयकी २१ प्रकृतियोंका अन्तरकरण करता है। इनके अतिरिक्त अन्य कर्मोंका अन्तरकरण नहीं होता। यह क्रिया करते समय जिस संज्वलन कषाय और वेदका वेदन करता है उसकी प्रथम स्थिति अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थापित कर शेष १९ कर्मोंकी स्थितिको एक आवलिप्रमाण स्थापित करता है। अन्तरकरण करते समय स्थितिके तीन भाग करता है—१ प्रथम स्थिति, २ अन्तरके लिए गृहीत स्थिति और ३ द्वितीय स्थिति। प्रथम स्थितिसे अन्तरके लिये गृहीत स्थिति संख्यातगुणी होती है। उसके ऊपरकी शेष सब स्थितिकी द्वितीय स्थितिसंज्ञा है। उदयस्वरूप और अनुदयस्वरूप सभी प्रकृतियोंके अन्तरसे ऊपरकी प्रथम स्थिति सदृश होती है, क्योंकि द्वितीय स्थितिके प्रथम निषेकका सर्वत्र सदृशरूपसे अवस्थान होता है, किन्तु नीचे अन्तर विसदृश होता है, क्योकि अनुदय स्वरूप प्रकृतियोंकी प्रथम स्थिति एक आवलिप्रमाण और उदयस्वरूप प्रकृतियोंकी प्रथम स्थिति एक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्वीकार की गई है। यहाँ उदयवाली प्रकृतियोंके अन्तरायामका प्रमाण गुणश्रेणिशीर्ष और उससे संख्यातगुणा है तथा अनुदयवाली प्रकृतियोंके अन्तरायामका प्रमाण अवशिष्ट गुणश्रेणि और उससे संख्यातगुणा है। एक स्थितिकाण्डकके उत्कीरण करनेमें जितना काल लगता है उतना ही काल अन्तरकरण क्रियाको सम्पन्न करनेमें लगता है। अन्तर करनेके लिये जो द्रव्य ग्रहण किया जाता है उसे अन्तरायाममें निक्षिप्त नहीं करता है। केवल उदयवाली प्रकृतियोंके अन्तरकरणके लिए गृहीत द्रव्यको अपनी प्रथम स्थितिमें तथा उस समय बँधनेवाली सजातीय प्रकृतियोंकी द्वितीय स्थितिमें निक्षिप्त करता है। केवल बँधनेवाली प्रकृतियोंके अन्तरकरणके लिये गृहीत द्रव्यको उत्कर्षण कर उनकी द्वितीय स्थितिमें निक्षिप्त करता है। बन्ध और उदय उभयरूप प्रकृतियोंके अन्तरकरणके लिये गृहीत द्रव्यको उनकी प्रथम स्थिति और द्वितीय स्थितिमें निक्षिप्त

करता है। तथा बन्ध और उदयसे रहित प्रकृतियोंके अन्तरकरणके लिये गृहीत द्रव्यको बँधनेवाली अन्य सजीय प्रकृतियोंकी द्वितीय स्थितिमें निक्षिप्त करता है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर अन्तरकरण क्रिया सम्पन्न करता है।

इस प्रकार अन्तरकरण क्रिया सम्पन्न करनेके बाद सात करण प्रारम्भ होते हैं—१. मोहनीयकर्मका आनुपूर्वी संक्रम। २. लोभ संज्वलनका अन्य प्रकृतियोंमें संक्रमका न होना। ३. मोहनीयकी बँधनेवाली प्रकृतियोंका एक लतास्थानीय बन्ध होना। ४. नपुंसक वेदका आयुक्त करणके द्वारा यहाँसे उपशमन क्रिया प्रारम्भ करना। ५. छह आवलियोंके जानेपर उदीरणा होने लगना। ६. मोहनीयका एक स्थानीय उदय होने लगना तथा ७ मोहनीयका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षप्रमाण होने लगना। ये सात करण अन्तरकरण-के बाद नियमसे प्रारम्भ हो जाते हैं।

अन्तरकरणके बाद नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, सात नोकषाय तथा तीन क्रोध, तीन मान और तीन माया इनको क्रमसे उपशमाता है। मात्र नवकबन्धके एक समय कम दो आवलि प्रमाण समयप्रबद्धोंको छोड़कर उपशमाता है। इसके स्पष्टीकरणके लिए गाथा २६२ की टीका देखो।

अपगतवेदी होनेपर यह जीव पुरुषवेदके एक समय कम दो आवलि प्रमाण नवकबन्धके साथ जब तीन क्रोधोंका उपशम करता है तब प्रथम स्थितिमें तीन आवलि शेष रहने तक अप्रत्याख्यान क्रोध और प्रत्याख्यान क्रोधको संज्वलन क्रोधमें संक्रमित करता है। इसके बाद इनको मान संज्वलनमें संक्रमित करता है। और इस प्रकार क्रोधसंज्वलनकी प्रथम स्थिति एक आवलि प्रमाण शेष रहते समय तीनों क्रोधोंका उपशम हो जाता है। यहाँ जो क्रोधसंज्वलनकी उच्छिष्टावलि प्रमाण स्थिति शेष रही उसको क्रमसे स्तिवुकसंक्रम द्वारा मान संज्वलनमें संक्रम करता है।

इस प्रकार जिस समय तीन क्रोधोंका उपशम होता है उसके अनन्तर समयमें मानकी प्रथम स्थिति करनेके साथ उसका वेदक होता है। और इस प्रकार तीन मानोंका उपशम भी तीन क्रोधोंके समान करके तदनन्तर समयमें मायाकी प्रथम स्थिति करनेके साथ उसका वेदक होकर पूर्वोक्त विधिसे इनका भी उपशम करता है। इसके बाद लोभसंज्वलनकी प्रथम स्थिति करनेके साथ उसका वेदक होता है। और इस प्रकार प्रथम स्थितिका प्रथमार्ध व्यतीत होकर जब द्वितीयार्ध प्रारम्भ होता है तब लोभके अनुभागकी सूक्ष्म कृष्टी-करण क्रिया प्रारम्भ करता है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि उपशमश्रेणिमें न तो पूर्व स्पर्धकोंसे अपूर्वस्पर्धकोंकी रचना होती है और न ही बादर कृष्टियोंकी रचना होती है। किन्तु जघन्य स्पर्धकगत लोभसे नीचे सूक्ष्म कृष्टीकरणकी क्रिया सम्पन्न होती है। तात्पर्य यह है कि जो जघन्य स्पर्धकगत लोभ है उससे नीचे अनन्तगुणी हीन सूक्ष्म कृष्टियोंकी रचना करता है। यह क्रिया सम्पन्न करते हुए प्रति समय अपूर्व-अपूर्व कृष्टियोंकी रचना करता है। जैसे एक स्पर्धकमें क्रमवृद्धि या क्रमहानिरूप अविभागप्रतिच्छेद पाये जाते हैं उस प्रकार कृष्टियोंमें क्रमवृद्धि या क्रमहानिरूप अविभागप्रतिच्छेद नहीं पाये जाते। इस प्रकार कृष्टिकरणकी क्रिया सम्पन्न करते हुए जब कृष्टिकरणके कालमें एक समय कम तीन आवलि काल शेष रहे तब अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान लोभका संज्वलन लोभमें संक्रमण न होकर इनकी स्वस्थानमें ही उपशमन क्रिया सम्पन्न होती है। तथा जब संज्वलन लोभकी प्रथम स्थितिमें दो आवलि काल शेष रहता है तब आगाल-प्रत्यागालकी व्युच्छित्ति हो जाती है और प्रत्यावलिके अन्तिम समयमें संज्वलन लोभकी जघन्य उदीरणा होती है।

एक बात और है। वह यह कि बादर लोभकी प्रथम स्थितिमें यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि जब प्रत्यावलिमें एक समय शेष रहता है तब लोभसंज्वलनका स्पर्धकगत पूरा द्रव्य तथा पूरा अप्रत्याख्यान

लोभका द्रव्य और पूरा प्रत्याख्यान लोभका द्रव्य उपशान्त हो जाता है। मात्र एक समय कम दो आवलिप्रमाण नवक द्रव्य, उच्छिष्टावलिप्रमाण निषेकद्रव्य और सूक्ष्मकृष्टिगत द्रव्य उपशान्त नहीं होता।

इसके बाद तदनन्तर समयमें सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानको प्राप्त होकर सूक्ष्म कृष्टिकी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण प्रथम स्थितिका कारक और वेदक होता है। यहाँ सूक्ष्म कृष्टिकी प्रथम स्थितिका काल बादर लोभके वेदक कालसे कुछ कम दो भागप्रमाण होनेसे यही सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानका काल है और यह उदयादि अवस्थित गुणश्रेणिरूप है। परन्तु ज्ञानावरणादि कर्मोंकी जो गुणश्रेणि होती है वह गलित शेष होती है जिसका काल सूक्ष्मसाम्परायके कालसे कुछ अधिक है, क्योंकि इन कर्मोंकी जो गुणश्रेणि रचना अपूर्वकरणके प्रथम समयमें की रही वही यहाँ इतनी अवशिष्ट रहती है।

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें सब सूक्ष्म कृष्टियोंको नहीं वेदता, किन्तु जो वेदने योग्य हैं उनका वेदन करता है और शेषको उपशमाता है। इसका विचार मूलमें किया ही है वहाँसे जानना चाहिये।

यहाँ इस बातका संकेत कर देना आवश्यक प्रतीत होता है वह यह कि बन्ध प्रकृतियाँ होनेसे पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभका जो उस उस स्थानपर एक समय कम दो आवलिप्रमाण नवक द्रव्य शेष रहता आया है सो उसका क्रमसे क्रोध, मान, माया, लोभ और सूक्ष्मकृष्टिकी प्रथम स्थितिके कालमें समय समय असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा उपशमित करता है। उदाहरणार्थ पुरुषवेदका एक समय कम दो आवलिप्रमाण नवकबन्ध क्रोध संज्वलनकी प्रथम स्थितिके कालमें समय-समय उपशमित होता है। क्रोधसंज्वलनका एक समय कम दो आवलिप्रमाण नवक द्रव्य मानसंज्वलनकी प्रथम स्थितिके कालमें उपशमित होता है। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए।

इस विधिसे जब सूक्ष्म कृष्टिकी प्रथम स्थितिमें दो आवलिकाल शेष रहता है तब आगाल-प्रत्यागालकी व्युच्छित्ति हो जाती है, जब एक समय अधिक एक आवलि काल शेष रहता है तब जघन्य उदीरणा होती है और उच्छिष्टावलिप्रमाण निषेकोंके अवशिष्ट रहनेपर वे स्वमुखसे उदयरूप परिणम कर निर्जरित हो जाते हैं। तदनन्तर समयमें यह जीव उपशान्तमोह हो जाता है।

उपशान्तमोहमें मोहनीय कर्मका उदय न होनेसे सर्वत्र अवस्थित परिणाम रहते हैं। इसका काल अन्तर्मुहूर्त है। इसमें जो गुणश्रेणि रचना होती है वह उपशान्तमोहके कालके संख्यातवें भागप्रमाण कालवाली होती है। उससे अपूर्वकरणमें की गई गुणश्रेणिका शीर्ष संख्यातगुणा होता है। पूर्व समयसे यहाँ प्रथम समयमें असंख्यातगुणे द्रव्यका निक्षेप होता है। यह गुणश्रेणि रचना ज्ञानावरणादि कर्मोंकी जाननी चाहिये जो उदयादि अवस्थितस्वरूप होती है। यहाँ प्रत्येक समयमें अवस्थित परिणाम होनेसे द्रव्यका निक्षेप भी अवस्थितस्वरूप ही जानना चाहिये। प्रकृतमें इतनी विशेषता और जाननी चाहिये कि उपशान्तमोहके प्रथम समयमें की गई गुणश्रेणिके शीर्षका जिस समय उदय होता है उस समय ज्ञानावरणादि कर्मोंका उत्कृष्ट प्रदेश उदय होता है।

यहाँ प्रसंगसे कौन प्रकृतियाँ अवस्थित वेदक होती हैं और किन प्रकृतियोंका यह जीव किस प्रकार अनवस्थित वेदक होता है इसका विशेष विचार किया गया है जिसे हमने विशेषार्थ द्वारा (पृ० २७२) मूलमें स्पष्ट किया ही है, इसलिए उसे वहाँसे जान लेना चाहिये।

उपशान्तकषाय गुणस्थानसे पतन एक तो भवका अन्त होनेसे होता है और इस प्रकार मरणको प्राप्त हुआ यह जीव नियमसे असंयत सम्यग्दृष्टि वैमानिक देव होता है। उसके होनेके प्रथम समयमें ही सब करण उद्घाटित हो जाते हैं। अर्थात् उदयवाली मोह प्रकृतियोंका अपकर्षण कर वह उदयावलिसे लेकर

निक्षेप करता है और जो अनुदयवाली मोह प्रकृतियाँ हैं उनका उदयावलिके बाहर निक्षेप करता है। इसी प्रकार अन्य करणोंके विषयमें भी जानना चाहिये।

दूसरे उपशान्तकषाय गुणस्थानका काल समाप्त होनेपर इस जीवका पतन होता है। सो यहाँ ऐसा जानना चाहिये कि विशुद्धिवश यह जीव आरोहण करता है और संक्लेशवश उसका पतन होता है। इस प्रकार उपशान्तमोहसे गिरकर जब यह जीव सूक्ष्मसाम्परायमें प्रवेश करता है तब उसके प्रथम समयमें ही यह जीव अप्रत्याख्यान आदि तीन लोभोंकी प्रशस्त उपशामनाको समाप्तकर संज्वलन लोभकी उदयादि अवस्थित गुणश्रेणि करता है शेष दो लोभोंकी भी उदयावलि बाह्य अवस्थित गुणश्रेणि करता है जिनका काल संज्वलन लोभके कृष्टिवेदक कालसे एक आवलि अधिक कालप्रमाण होता है तथा आयु कर्मके बिना शेष कर्मोंकी सूक्ष्मसाम्पराय, अनिवृत्तिकरण और अपूर्वकरणके कालसे कुछ अधिक कालप्रमाण गुणश्रेणि रचना करता है।

उतरनेवाले इस जीवके अप्रशस्त कर्मोंका अनुभागबन्ध उत्तरोत्तर अनन्तगुणा बढ़ने लगता है और प्रशस्त कर्मोंका अनुभागबन्ध उत्तरोत्तर घटने लगता है। इसी प्रकार बन्धयोग्य सभी कर्मोंका स्थितिबन्ध यथाविधि बढ़ने लगता है। इतना ही नहीं, सूक्ष्म कृष्टिवेदनमें भी वृद्धि होने लगती है।

उतरते समय अनिवृत्तिकरणमें प्रवेश करनेपर उच्छिष्टावलिमात्र निषेकोंको छोड़कर शेष सूक्ष्म कृष्टियोंका प्रथम समयमें ही स्पर्धकगत लोभरूप परिणमन हो जाता है तथा उच्छिष्टावलिमात्र निषेकोंका स्तिवुक संक्रमण द्वारा उदयमें आनेवाले स्पर्धकरूप निषेकोंमें निक्षेप होता रहता है। यहाँसे मोहके आनुपूर्वी संक्रमका नियम नहीं रहता सो यह कथन शक्तिकी अपेक्षा किया है। आगे लोभवेदक कालको समाप्तकर यह जीव क्रमसे माया, मान और क्रोधवेदक कालमें प्रवेश करता है। यहाँ और आगे जो-जो कार्य विशेष होते हैं उन्हें मूलसे जान लेना चाहिये। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि जब यह जीव क्रोधसंज्वलनके वेदनके प्रथम समयमें स्थित होता है तब ज्ञानावरणादि कर्मोंके साथ बारह कषायोंका गलितशेष गुणश्रेणि निक्षेप होता है तथा तभी यह जीव अन्तरको धारता है। इसके बाद इस जीवके पुरुषवेदका उदय होते समय सात नोकषायोंका उपशमकरण नष्ट हो जाता है। यहाँ बारह कषाय और सात नोकषायोंकी ज्ञानावरणादि कर्मोंके समान गुणश्रेणि होती है। आगे स्त्रीवेदके अनुपशान्त होनेके प्रथम समयमें मोहनीयकी २० प्रकृतियोंकी गुणश्रेणिरचना होती है। आगे नपुंसकवेदके अनुपशान्त होनेपर मोहनीयकी २१ प्रकृतियोंकी गुणश्रेणि रचना होती है।

पहले चढ़नेवालेके छह आवलि काल जानेपर बँधनेवाली प्रकृतियोंके उदीरणाका नियम है यह बतला आये हैं। किन्तु उतरनेवालेके सूक्ष्मसाम्परायके प्रथम समयसे ही यह नियम नहीं रहता। संसारी जीवोंके समान बँधनेवाले कर्मोंकी एक आवलिके बाद उदीरणा होने लगती है। इसी प्रकार चढ़ते समय जिन कर्मोंका मात्र देशघाति बन्ध होने लगता है सो यथास्थान उसका अभाव होकर सर्वघाति बन्ध होने लगता है। तथा उतरनेवालेके यथास्थान असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणाका भी अभाव हो जाता है। इसी प्रकार चढ़नेवालेके जो स्थितिबन्धकी अपेक्षा क्रमकरण होनेका विधान कर आये हैं सो उसका भी अभाव हो जाता है।

इसके बाद जब यह जीव अपूर्वकरणमें प्रवेश करता है तब उसके प्रथम समयमें ही अप्रशस्त उपशामना, निधत्ति और निकाचन ये तीनों करण उद्घाटित हो जाते हैं। अर्थात् चढ़ते समय अनिवृत्तिकरणमें प्रवेश करनेके पूर्व जो कर्मपुञ्ज अप्रशस्त उपशामना आदिरूप थे वे पुनः उसरूप हो जाते हैं। इस विधिसे यह जीव क्रमसे अपूर्वकरणको पूरा कर अधःप्रवृत्तकरणमें प्रवेश करता है। यहाँ यह पुरानी

गुणश्रेणिसे संख्यातगुणी आयामवाली अवस्थित गुणश्रेणिकी रचना करता है। इस करणमें बन्ध प्रकृतियोंका अधःप्रवृत्त संक्रम होता है। अबन्ध प्रकृतियोंका विध्यात संक्रम होता है। यहाँ गुणसंक्रम नहीं होता।

अपूर्वकरणसे उपशमश्रेणिपर चढ़ने और उतरनेमें जितना काल लगता है उससे द्वितीयोपशम सम्यक्त्वका काल संख्यातगुणा है। यतिवृषभ आचार्यके उपदेशानुसार यदि उपशम श्रेणिसे उतरकर और सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर मरता है तो मर कर वह नरकगति, तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिमें जन्म नहीं लेता, नियमसे देव होता है, क्योंकि जिसके नरकायु, तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुकी सत्ता होती है वह देशसंयम और सकल संयमको प्राप्त करनेमें असमर्थ होनेके कारण उपशमश्रेणिपर आरोहण करनेमें असमर्थ है। इसलिए वहाँसे उतरकर और मरणकर उसका उक्त तीन गतियोंको प्राप्त करना किसी भी अवस्थामें नहीं बन सकता। किन्तु आचार्य भूतबलिके उपदेशानुसार उपशमश्रेणिसे उतरा हुआ मनुष्य सासादन गुणस्थानको नहीं प्राप्त होता ऐसा प्रकृतमें जानना चाहिये। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि उपशमश्रेणिपर चढ़ते समय जिस स्थानपर जिन प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति होती है, उतरते समय उस स्थानको प्राप्त होनेपर उनका पुनः बन्ध होने लगता है। तथा उतरते समय संज्वलन क्रोधादि चार और तीन वेद इनमेंसे जिस प्रकृतिका जिस स्थानपर पुनः उदय होता है उसकी गुणश्रेणिरचना करता है आदि।

यह मुख्यतया पुरुषवेद और क्रोधसंज्वलनके उदयसे चढ़े हुए जीवकी अपेक्षा प्ररूपणा है। किन्तु जो पुरुषवेदके साथ मान, माया या लोभसंज्वलनके उदयसे श्रेणिपर आरोहण करता है उसमें कुछ विशेषता है, वह विशेषता यह है कि यदि मानके उदयसे श्रेणिपर आरोहण करता है तो क्रोधके उदयसे श्रेणिपर चढ़े हुए जीवकी जितनी क्रोध और मानके निमित्तसे प्रथम स्थिति होती है उतनी अकेले मानके उदयसे श्रेणिपर आरोहण करनेवालेकी होती है। क्रोधके उदयसे श्रेणिपर चढ़े हुए जीवके क्रोध, मान और मायाके निमित्तसे जितनी प्रथम स्थिति होती है उतनी अकेले मायाके उदयसे चढ़े हुए जीवके होती है। तथा क्रोधके उदयसे चढ़े हुए जीवके क्रोधादि चारोंके निमित्तसे जितनी प्रथम स्थिति होती है। उतनी अकेले लोभके उदयसे चढ़े हुए जीवके होती है।

जिस कषायके उदयसे श्रेणिपर आरोहण करता है उसकी प्रथम स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थापित कर अन्तर करता है तथा शेष कषायोंकी एक आवलि प्रमाण प्रथम स्थिति स्थापित कर अन्तर करता है। एक यह भी नियम है कि क्रोधादि जिस कषायके उदयसे श्रेणिपर आरोहण करता है उसकी प्रथम स्थिति समाप्त होनेपर उसके अनन्तर समयमें उससे अगली मायादि कषायकी प्रथम स्थिति स्थापित करता है। क्रोधके उदयसे चढ़ा हुआ जीव जिस स्थानपर क्रोधत्रयको उपशमाता है, मानके उदयसे चढ़ा हुआ जीव उसी स्थानपर क्रोधत्रयको उपशमाता है आदि। तात्पर्य यह है कि किसी भी कषायके उदयसे श्रेणिपर आरोहण करे, परन्तु विवक्षित कषायके उपशमानेका जो स्थान है वहीं उसको उपशमाता है।

उपशमश्रेणिसे उतरते समय जो क्रोधके उदयसे श्रेणि चढ़ता है उसके लोभ, माया, मान और क्रोधका उदय क्रमसे होता है, इसलिए इन कषायोंमेंसे प्रत्येककी अपेक्षा अलग-अलग गलितशेष गुणश्रेणि होती है। जो मानके उदयसे श्रेणि चढ़कर गिरता है उसके क्रमसे लोभ और मानका उदय होता है, इसलिए इसके मानका उदयकाल क्रोध और मानके उदयकाल प्रमाण होता है। यह तीन प्रकारके मानका अपकर्षणकर ज्ञानावरणादिकी गुणश्रेणिके आयामप्रमाण गलितशेष गुणश्रेणि करता है। जो मायाके उदयसे श्रेणि चढ़कर गिरता है उसके क्रमसे लोभ और मायाका उदय होता है, इसलिए इसके मायाका उदयकाल क्रोध, मान और मायाके उदयकाल प्रमाण होता है। यह तीन प्रकारकी मायाका अपकर्षणकर

ज्ञानावरणादिकी गुणश्रेणिके समान गुणश्रेणि करता है। लोभके उदयसे चढ़कर गिरे हुए जीवके एक मात्र लोभका ही उदय होता है, इसलिए इसके प्रारम्भसे ही अन्य कर्मोंके समान गलितशेष गुणश्रेणी होती है।

मान, माया और लोभके उदयसे चढ़कर गिरा हुआ जीव क्रमसे नौ, छह और तीन कषायोंकी गलितावशेष गुणश्रेणि करता है। जिस कषायके उदयसे चढ़कर गिरा है उस कषायका उदय होनेपर अपकर्षणकर अन्तरको पूरा करता (भरता) है। स्त्रीवेदके उदयसे चढ़ा हुआ जीव अपगतवेदी होनेके बाद पुरुषवेद और छह नोकषायोंको एक साथ उपशमाता है। नपुंसकवेदके उदयसे श्रेणिपर चढ़ा हुआ जीव नपुंसकवेदका अन्तर करके पुरुषवेदके उदयसे चढ़े हुए जीवके जिस कालमें नपुंसक वेदका उपशम होता है उस कालके भीतर नपुंसकवेदका उपशमन करके पुरुषवेदके उदयसे चढ़े हुए जीवके जिस कालमें स्त्रीवेदका उपशम होता है उस कालके अन्तमें दोनों वेदोंको युगपत् उपशमाता है। इसके बाद पुरुषवेद और छह नोकषायोंको उपशमाता है।

क्षपिक चारित्रलब्धि (क्षापकश्रेणि)

चारित्रमोहकी क्षपणाका विचार इन अधिकारों द्वारा किया गया है—१. अधःप्रवृत्तकरण, २. अपूर्वकरण, ३. अनिवृत्तिकरण, ४. बन्धापसरण, ५. सत्त्वापसरण, ६. क्रमकरण, ७. क्षपणा, ८. देशघातिकरण, ९. अन्तरकरण, १०. संक्रमण, ११. अपूर्व स्पर्धककरण, १२. कृष्टिकरण, और कृष्टि अनुभवन। इन अधिकारोंमेंसे अधप्रवृत्तकरण आदि तीन करणोंका लक्षण पूर्ववत् जानना।

अधःप्रवृत्तकरणमें गुणश्रेणिरचना, गुणसंक्रम, स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात ये चार कार्य नहीं होते। मात्र प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धिको प्राप्त कर प्रशस्त कर्मोंका चतुःस्थानीय और अप्रशस्त कर्मोंका द्विस्थानीय अनुभागबन्ध करता है। तथा प्रत्येक अन्तर्मुहूर्तमें उत्तरोत्तर प्रत्येकमें संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिबन्ध कम करके स्थितिबन्ध करता है। इस करणके प्रथम समयमें होनेवाले स्थितिबन्धसे उसके अन्तिम समयमें संख्यातगुणा हीन स्थितिबन्ध होता है।

अपूर्वकरणके प्रथम समयमें गुणश्रेणि, गुणसंक्रम, स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डकघात और अन्य स्थितिबन्ध आरम्भ करता है। यहाँ गुणश्रेणिका आयाम अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय और क्षीणकषाय गुणस्थानोंसे कुछ अधिक होता है। यह गलितावशेष गुणश्रेणि है। अपूर्वकरणके प्रथम समयसे ही प्रति समय अनन्तगुणित क्रमसे द्रव्यका अपकर्षणकर गुणश्रेणिकी रचना करता है। जो अप्रशस्त अबन्ध प्रकृतियाँ हैं, असंख्यातगुणे क्रमसे उनके द्रव्यको अपकर्षणकर बँधनेवाली अपनी जातिकी प्रकृतियोंमें संक्रमित करता है। जघन्य अपवर्तनाका प्रमाण एक समय कम आवलिके एक समय अधिक त्रिभाग प्रमाण है। जिन कर्मोंका संक्रमण या उत्कर्षण करता है वे एक आवलि काल तक तदवस्थ रहते हैं। उसके बाद वे भजितव्य हैं। किन्तु जिस कर्मपुञ्जका आकर्षण होता है उसका तदनन्तर समयमें क्रियान्तर होना सम्भव है। अग्रस्थितिके कर्मपुञ्जके उत्कर्षण अपकर्षणका विशेष खुलासा मूलमें किया ही है, इसलिए इसे वहाँसे जान लेना चाहिये।

अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जघन्य स्थितिकाण्डक पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है और उत्कृष्ट उससे संख्यातगुणा होता है, अपूर्वकरणके थम समयमें स्थितिकाण्डक, स्थितिबन्ध और स्थितिसत्त्वका जितना प्रमाण होता है, उसके अन्तिम समयमें वे संख्यातगुणे हीन होते है। अपूर्वकरणके प्रथम समयमें स्थितिबन्ध अन्तःकोटाकोटि प्रमाण होता है तथा स्थिति सत्त्व उससे संख्यातगुणा होता है। एक एक स्थितिकाण्डकघातके भीतर हजारों अनुभागकाण्डकघात होते हैं। अशुभ प्रकृतियोंके अनुभागकाण्डकका प्रमाण अनन्त बहुभागप्रमाण है। किन्तु प्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभागका घात नहीं होता। इस गुणस्थानके पहले,

५८ प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति हो लेती है उनके अतिरिक्त इस गुणस्थानमें जिन ३६ प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति होती है उनका नाम निर्देश पहले हो कर आये है।

अपूर्वकरणका काल पूरा होनेपर यह जीव बादरसाम्पराय गुणस्थानमें प्रवेश करता है। इसके प्रथम समयमें स्थितिकाण्डक आदि नये प्रारम्भ होते हैं। इसी समयमें अप्रशस्त उपशामना, निधत्ति और निकाचन इन तीन करणोंकी व्युच्छित्ति होती है। इसके प्रथम समयमें पहला स्थितिकाण्डक विसदृश होता है। इसके आगे सब जीवोंके वे समान होते हैं। प्रथम जघन्य स्थितिकाण्डक पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है तथा उत्कृष्ट इससे संख्यातवें भाग अधिक होता है। शेष सब स्थितिकाण्डक सदृश होते हैं।

आगे स्थितिबन्ध और स्थितिसत्त्व क्रमसे घटते हुए जब क्रमकरणकी विधिसे मोहनीयका सबसे कम स्थितिबन्ध होने लगता है। उससे कुछ अधिक तीसिय प्रकृतियोंका उससे कुछ अधिक वीसिय प्रकृतियोंका तथा उससे कुछ अधिक वेदनीय प्रकृतिका बन्ध होने लगता है तब स्थितिसत्त्व भी उसी अनुपातमें घटता जाता है जिसका विशेष खुलासा गाथा ४२७ को टीकामें किया ही है। और इस प्रकार जब पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिबन्ध होता है तब असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा होने लगती है। इसके बाद संख्यात हजार स्थितिबन्ध होनेपर अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यानरूप आठ कषायोंका चार संज्वलन और पुरुषवेदमें संक्रमण करता है। इसके बाद स्थितिबन्धपृथक्त्वके जानेपर दर्शनावरणकी स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्राओं और नामकर्मकी नरकगति आदि तेरह प्रकृतियोंका संक्रम करता है। इसके बाद मनःपर्यय-ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंका देशघातिकरण करता है।

तदनन्तर यह जीव हजारों स्थितिकाण्डकोंके व्यतीत होनेपर चार संज्वलन और नौ नोकषायोंकी अन्तरकरण क्रिया सम्पन्न करता है। चार संज्वलन और तीन वेद इनमेंसे जिन दो प्रकृतियोंका उदय होता है उनकी प्रथम स्थिति अन्तर्मुहूर्तप्रमाण और शेष ग्यारह प्रकृतियोंकी एक आवलिप्रमाण प्रथम स्थिति स्थापित करता है। इन प्रकृतियोंके जिन निषेकोंका अन्तर किया जाता है उनकी निक्षेप विधिको उपशम-श्रेणिके समान जान लेना चाहिए। अन्तरकरण क्रिया सम्पन्न होनेके अनन्तर समयमें ये सात करण प्रारम्भ हो जाते हैं—१. मोहनीयका एक स्थानीय बन्ध, २. मोहनीयका एक स्थानीय उदय, ३. मोहनीयका संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध, ४. आनुपूर्वी संक्रम, ५. लोभका असंक्रम, ६. नपुंसकवेदका आयुक्तकरण संक्रम और ७. बन्धके बाद छह आवलिकाल जानेपर उदीरणाका प्रारम्भ। आनुपूर्वी संक्रमके अनुसार नपुंसकवेद और स्त्रीवेदके द्रव्यका पुरुषवेदमें संक्रम, सात नोकषायोंके द्रव्यका क्रोध कषायमें संक्रम, क्रोध संज्वलनका मानसंज्वलनमें संक्रम, मानसंज्वलनका मायासंज्वलनमें संक्रम तथा मायासंज्वलनका लोभसंज्वलनमें संक्रम होने लगता है। मात्र लोभसंज्वलनका अन्य किसी प्रकृतिमें संक्रम न होकर उसका स्वमुखसे ही क्षय होता है। अन्तरकरण क्रिया सम्पन्न होनेके बाद प्रतिलोभ संक्रम नहीं होता।

इसके बाद संख्यात हजार स्थितिबन्धोंके जानेपर नपुंसकवेदका पुरुषवेदमें संक्रम करता है। यहाँ पुरुषवेद आदि जिस प्रकृतिका बन्ध होता है उसके बन्धद्रव्यसे उदयद्रव्य असंख्यातगुणा और उदयद्रव्यसे संक्रम द्रव्य असंख्यातगुणा जानना चाहिए। यतः प्रदेशबन्ध योगोंके अनुसार होता है और योगोंमें चार प्रकारकी वृद्धि, चार प्रकारकी हानि और अवस्थान देखा जाता है तदनुसार प्रदेशबन्ध भी चार प्रकारकी वृद्धि, चार प्रकारकी हानि और अवस्थानकी अपेक्षा भजनीय जानना चाहिए। इसके बाद क्रमसे स्त्रीवेद और सात नोकषायोंका संक्रामक होता है। यहाँ इतना और जानना चाहिए कि जितने अनु-भागको लिए हुए कर्मका जितना बन्ध होता है उससे अनन्तगुणे अनुभागके साथ कर्मका उदय होता है

और उससे अनन्तगुणे अनुभागसे युक्त कर्मका संक्रम होता है। किन्तु इतना विशेष जानना चाहिए कि जो अप्रशस्त कर्म हैं उनका अनुभागोदय अनन्तगुणा हीन होता है और प्रदेशोदय असंख्यातगुणा अधिक होता है। मात्र संक्रम भजनीय है, कारण कि एक काण्डकघात होने तक वह तदवस्थ रहता है। उसके बाद काण्डकके बदलनेपर उसका प्रमाण अनन्तगुणा हीन हो जाता है।

इस प्रकार यह जीव सात नोकषायोंका संक्रामक होता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अन्तमें पुरुषवेदका जो एक समय कम दो आवलिप्रमाण नवक बन्ध शेष रहता है सो एक तो अपगतवेदी होनेके बाद ही उसका नाश करता है। दूसरे जिस समय यह जीव पुरुषवेदके प्राचीन सत्कर्मके साथ छह नोकषायों-का क्षयकर प्रथम समयवर्ती अपगतवेदी होता है उसी समयसे यह चार संज्वलनोंके अनुभागका अश्वकर्णकरण कारक होता है। प्रकृतमें अश्वकर्णकरणकी अपवर्तनोद्वर्तनकरण और हिंडोलकरण ये दो संज्ञाएँ होनेका कारण यह है कि संज्वलन क्रोधसे संज्वलन लोभ तकके अनुभागको देखनेपर वह उत्तरोत्तर अनन्तगुणा हीन दिखलाई देता है और संज्वलन लोभसे लेकर संज्वलन क्रोध तकके अनुभागको देखनेपर वह उत्तरोत्तर अनन्तगुणा अधिक दिखलाई देता है।

जिस समय यह जीव अनुभागकी अपेक्षा अश्वकर्णकरणको प्रारम्भ करता है उस समय काण्डकघात-के लिए अनुभागके जिन स्पर्धकोंको ग्रहण करता है वे क्रोधमें सबसे थोड़े होते हैं तथा मान, माया और लोभमें क्रमसे विशेष अधिक होते हैं। तथा घात करनेपर जो अनुभाग स्पर्धक शेष रहते हैं वे लोभमें सबसे कम रहते हैं तथा माया, मान और क्रोधमें अनन्तगुणे शेष रहते हैं। और ऐसा करते समय पूर्व स्पर्धकोंकी जघन्य वर्गणासे नीचे नये अपूर्व स्पर्धकोंकी रचना करता है। यहाँ जिस प्रकार इन अपूर्व स्पर्धकोंकी रचना करता है उसी प्रकार यथा सम्भव वे पूर्व स्पर्धकोंके साथ उदीर्ण भी होते हैं। इसी प्रकार द्वितीयादि समयों-में भी जानना चाहिए। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि प्रति समय जो अपूर्व स्पर्धक किये जाते हैं वे पूर्वमें किये गये अपूर्व स्पर्धकोंकी अपेक्षा उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे हीन होते हैं। ऐसा होते हुए प्रथम समयसे जिन अपूर्व स्पर्धकोंकी रचना होती है वे क्रोधके सबसे थोड़े होते हैं तथा इनसे मान, माया और लोभके उत्तरोत्तर विशेष अधिक होते हैं। इस प्रकार अश्वकर्णकरणके अन्तिम समय तक अपूर्व स्पर्धकोंकी रचना करता है। यह अश्वकर्णकरणका काल क्रोधवेदकके कालका सधिक तीसरे भाग-प्रमाण है।

तदनन्तर क्रोधादि चारों कषायों सम्बन्धी पूर्व और अपूर्व स्पर्धकोंका अपकर्षण कर कृष्टियोंकी रचना करता है। यहाँ ऐसा समझना चाहिए कि अपकर्षण किये गये द्रव्यमें पल्योपमके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे उतना सूक्ष्म कृष्टियों सम्बन्धी द्रव्य है, शेष बहु भागप्रमाण द्रव्य बादर कृष्टियों सम्बन्धी है। क्रोधादि चारों कषायोंमेंसे प्रत्येककी संग्रह कृष्टियाँ तीन-तीन हैं और अन्तर कृष्टियाँ अनन्त हैं। यहाँ इतना विशेष जानना कि जो क्रोध कषायके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके क्रोधादि चारों कषायोंकी बारह संग्रह कृष्टियाँ होती हैं। जो मानके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके मानादि तीन कषायोंकी नौ संग्रह कृष्टियाँ होती हैं। जो मायाके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़ता है उसके माया और लोभकी छह संग्रह कृष्टियाँ होती हैं और जो लोभके उदयसे श्रेणिपर चढ़ता है उसके एक मात्र लोभ-कषायकी तीन संग्रह कृष्टियाँ होती हैं। यह हम पहले ही बतला आये हैं कि एक-एक संग्रह कृष्टिकी अन्तर कृष्टियाँ अनन्त होती हैं। ये सब लोभसे लेकर क्रोध तक उत्तरोत्तर अनन्तगुणी होती हैं और क्रोधसे लेकर लोभतक अनन्तगुणी हीन होती हैं। यहाँ इन संग्रह कृटियोंके मध्य तथा नीचेकी अन्तर कृष्टिसे दूसरी अन्तर कृष्टिके मध्य जो अन्तर पाया जाता है उसे क्रमसे संग्रह कृष्ट्यन्तर तथा कृष्टयन्तर कहते हैं, सो

लोभसे लेकर क्रोधपर्यन्त स्वस्थान अन्तर अनन्तगुणे क्रमको लिए हुए है। उससे बादर संग्रह कृष्टियोंका अन्तर अनन्तगुणा है। सो इसका विशेष विचार मूलमें किया ही है, इसलिए इसे वहाँसे जानना।

ऐसा नियम है कि प्रति समय यह जीव संग्रह कृष्टियोंके नीचे नई पूर्व कृष्टियोंको करता है और पूर्वमें की गई कृष्टियोंके पार्श्वमें उनके समान अनुभागवाली कृष्टियोंको भी करता है। जो अनन्तगुणी हीन शक्तिवालीं कृष्टियाँ नीचे की जाती हैं उनकी अधस्तन् कृष्टि संज्ञा है और जो पार्श्वमें पूर्व कृष्टियोंके समान शक्तिवाली की जाती है उनकी पार्श्व कृष्टि संज्ञा है।

इस विधिसे दूसरे समयमें जो संग्रह कृष्टियाँ और उनके मध्य अन्तर संग्रह कृष्टियाँ की जाती हैं वे सब मिलकर तेईस प्रकारकी हो जाती हैं तथा इनके अतिरिक्त जो अन्तर कृष्टियाँ होती हैं इन सबमें होनेवाले प्रदेश विन्यासके क्रमसे ऊँटकी रचना बन जाती है। जैसे ऊँटकी पीठ पिछले भागमें ऊँची होकर पुनः मध्यमें नीची होती है तथा आगे भी नीच-उच्चरूपसे जाती है उसी प्रकार यहाँ भी प्रदेशपुंज आदिमें बहुत पुनः थोड़ा होता है तथा पुनः सन्धियोंमें थोड़ा बहुत होकर निक्षिप्त होता है, इसलिए दिये जानेवाले प्रदेशपुंजकी श्रेणि उष्ट्रकूटके समान हो जाती है। यहाँ दूसरे समयमें जैसे कृष्टियोंमें दिये जानेवाले प्रदेश-पुंजके तेईस उष्ट्रकूट बन जाते हैं उसी प्रकार आगे भी कृष्टिकरणके सभी कालोंमें जानना चाहिए। किन्तु सर्वत्र सब मिलाकर द्रव्यको देखने पर वह लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी नवीन जघन्य कृष्टिसे लेकर क्रोधकी तीसरी संग्रह कृष्टिकी पुरातन अन्न कृष्टितक अतन्नवाँ थाग घटता क्रम लिए दिखलाई देता है।

कृष्टियों और स्पर्धकोंमें यह अन्तर है कि प्रथम कृष्टिसे लेकर अन्त कृष्टि तक प्रत्येक कृष्टिका अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्तगुणा है। परन्तु स्पर्धकोंमें प्रथम वर्गणासे लेकर अन्तिम वर्गणा तक वह विशेष अधिक, विशेष अधिक पाया जाता है।

यह जीव जिस कालमें कृष्टियोंकी रचना करता है उस कालमें उसके पूर्व और अपूर्व स्पर्धकोंका उदय रहता है और इस प्रकार जब क्रोध संज्वलनकी प्रथम स्थितिमें उच्छिष्टावलिमात्र काल शेष रहता है तब कृष्टिकरणके कालको समाप्त करता है। तदनन्तर समयमें वह क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिकी प्रथम स्थिति करके मध्यकी कृष्टियोंको वेदता है। वहाँ क्रोधके उच्छिष्टावलिमात्र जो निषेक शेष रहे उन्हें तो वह परमुखसे वेदता है और जो दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवकबन्ध शेष रहता है उसे कृष्टिरूपसे परिणाम कर नाश करता है।

कृष्टियोंको रचनेवाला तो लोभसे लेकर क्रोधतक क्रम लिए कृष्टियोंकी रचना करता है, किन्तु कृष्टियोंका वेदक पहले क्रोधकी संग्रहकृष्टिको वेदना है, फिर मान, माया और लोभकी संग्रहकृष्टियोंको वेदता है। उसमें भी वेदनकालमें जो क्रोधकी तीसरी संग्रहकृष्टि है उसे पहले वेदता है। उसके बाद दूसरी और पहली संग्रह कृष्टियोंको वेदता है। इस प्रकार क्रोधकी तीसरी कृष्टिको वेदता हुआ यह जीव प्रथम समयमें सर्व कृष्टियोंके असंख्यातवें भागका नाश करता है, दूसरे समयमें उसके असंख्यातवें भागका नाश करता है। इस प्रकार उपान्त्य समय तक जानना चाहिए। यहाँ कौन कृष्टियाँ बन्ध-उदयसे रहित हैं, किन कृष्टियोंका उदय होता है और कौन कृष्टियाँ बन्ध उदय दोनों सहित हैं आदि, सो इसका विचार मूलसे कर लेना चाहिए।

कृष्टियोंके संक्रमणके विषयमें यह नियम है कि विवक्षित कषायकी प्रथमादि संग्रह कृष्टियोंका द्रव्य अपनी अगली संग्रहकृष्टियोंमें और अगले कषायकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें संक्रामित होता है। मात्र लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिका द्रव्य लोभकी द्वितीय और तृतीय संग्रहकृष्टियोंमें तथा लोभकी द्वितीय संग्रहकृष्टिका द्रव्य

उसीको तीसरी संग्रहकृष्टिमें संक्रमित होता है तथा लोभकी तृतीय संग्रहकृष्टिका द्रव्य अन्य किसीमें संक्रमित नहीं होता।

यह कृष्टिवेदक जीव प्रत्येक समयमें बारह कृष्टियोंके अग्र भागसे असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियोंका नाश करता है। यहाँ काण्डकघात नहीं होता तथा यहाँ जिस द्रव्यका संक्रमण होता है उसके असंख्यातवें भागप्रमाण द्रव्यसे अधस्तन अपूर्व कृष्टियोंको करता है तथा असंख्यात बहुभागप्रमाण जो संक्रमण द्रव्य शेष रहता है उसे अन्तर कृष्टियोंको देता है। बन्ध द्रव्यके सम्बन्धमें यह व्यवस्था है कि बन्धद्रव्यका अनन्तवें भागप्रमाण द्रव्य पूर्व कृष्टियों सम्बन्धी है, शेष अनन्त बहुभागप्रमाण द्रव्य अन्तर कृष्टियोंको प्राप्त होता है। क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिमें कषायसम्बन्धी संक्रमण द्रव्यका अभाव होनेसे मात्र उसके बन्धद्रव्यसे अपूर्व कृष्टियोंको करता है तथा शेष ग्यारह प्रकारकी संग्रह कृष्टियोंमें संक्रमण और बन्ध दोनों प्रकारका द्रव्य पाया जाता है, इसलिए यथा सम्भव उन दोनोंसे अपूर्व कृष्टियोंको करता है। एक नियम यह भी है कि जिस समय जिस कषायकी जिस कृष्टिका वेदन करता है उस समय उस कषायकी उसी कृष्टिको बाँधनेके साथ शेष कषायोंकी प्रथम कृष्टिको बाँधता है। तथा जिस समय जिस कृष्टिको वेदता है उस समय उसकी प्रथम स्थितिमें एक समय अधिक आवलिप्रमाण स्थिति शेष रहनेपर उसकी जघन्य उदीरणा होनेके साथ उसका अन्तिम समयवर्ती वेदक होता है। और इस प्रकार जब लोभसंज्वलनकी द्वितीय संग्रहकृष्टिमें एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण काल शेष रहता है तब यह जीव अनिवृत्तिकरणको समाप्त करनेके साथ लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिको सूक्ष्म कृष्टिरूप परिणमाता है। इस समय मात्र एक समय कम दो आवलिप्रमाण नवकबन्ध और एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण उच्छिष्ट द्रव्य बादर कृष्टिरूप शेष रहता है सो अगले समयमें सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानको प्राप्त होकर उस कालके भीतर उक्त दोनों प्रकारके द्रव्यको क्रमसे स्तिवुक संक्रमण द्वारा सूक्ष्म कृष्टिरूप परिणमाकर उनका अभाव करता है। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानको प्राप्तकर उसके प्रथम समयमें जो कार्य विशेष प्रारम्भ होते हैं उनका विवरण इस प्रकार है—

(१) सूक्ष्म कृष्टिकी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थितिके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिका एक स्थितिकाण्डकायाम होता है। (२) मोहके कृष्टिगत द्रव्यकी अनुसमयापवर्तना होने लगती है। (३) ज्ञानावरणादि कर्मोंका स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात पूर्ववत् चालू रहता है। तथा यहाँ नवीन उदयादि गुणश्रेणिकी रचना करता है। ऐसा करते हुए अपकर्षित किये गये द्रव्यके एक भागको गुणश्रेणिमें निक्षिप्त करता है, शेष रहे बहुभागप्रमाण द्रव्यको अन्तरके अन्तिम भागसे लेकर ऊपर द्वितीय स्थितिमें यथाविधि निक्षिप्त करता है।

इस विधिसे सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानका जब संख्यात बहुभाग प्रमाण काल व्यतीत होकर एक भागप्रमाण काल शेष रहता है तब अन्तिम स्थितिकाण्डकको ग्रहण करनेके साथ सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके कालके बराबर गुणश्रेणि करता है और इस प्रकार सूक्ष्मलोभका वेदन करता हुआ यह जीव क्रमसे इस गुणस्थानके अन्तिम समयको प्राप्त होकर मोहनीयका सर्वथा अभाव करता है।

तदनन्तर समयमें क्षीणमोहको प्राप्त होकर यह जीव उस गुणस्थानके प्रथम समयमें ज्ञानावरणादि छह कर्मोंकी गुणश्रेणि रचना साधिक क्षीणमोहके कालप्रमाण करता है। यहाँ मात्र सातावेदनीयका ईर्यापथ बन्ध होता है जिसका काल एक समय है। यहाँ घाति कर्मोंके स्थितिकाण्डकका प्रमाण एक मुहूर्तमात्र और अघाति कर्मोंके स्थितिकाण्डकका प्रमाण शेष रही स्थितिके असंख्यात बहुभागप्रमाण है। जिस समय यह जीव घाति कर्मोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकका पतन करता है उस समय इसकी कृतकृत्य छद्मस्थ संज्ञा होती है। इसके आगे घाति कर्मोंकी उदयावलिके बाहर स्थित स्थितिकी उदीरणा तब तक करता है जब जाकर उनकी स्थिति उदयावलिके बाहर स्थित रहती है। उदयावलिमें प्रवेश करनेपर क्रमसे उदय होकर उसका

विच्छेद होता है। इस गुणस्थानमें जिसके निद्रा और प्रचलाका उदय है उसके उनकी उपान्त्य समयमें उदय व्युच्छित्ति हो जाती है। शेष १४ घाति प्रकृतियोंकी अन्तिम समयमें व्युच्छित्ति होती है। वेद तीन हैं और कषाय चार हैं, सो इनके द्विसंयोगी भंग बारह होते हैं। इनमेंसे किसी एक वेद और किसी एक कषायके उदयसे जीव क्षपकश्रेणि पर चढ़नेका अधिकारी है। इस दृष्टिसे होनेवाली विशेषताको मूलसे जान लेना चाहिए।

इसके बाद चार घातिकर्मोंकी उदय और सत्त्व व्युच्छित्ति हो जानेके कारण यह जीव सर्वज्ञ-सर्वदर्शी सयोगी जिन हो जाता है। इसके प्रथम समयमें ही चार घाति कर्मोंका अभाव होनेसे अनन्त चतुष्टयकी युगपत् प्राप्ति होती है। ऐसा नियम है कि ज्ञानावरणके समूल नाशसे केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है। दर्शनावरणके समूल नाशसे केवलदर्शनकी प्राप्ति होती है। वीर्यान्तरायके नाशसे अनन्त वीर्यकी प्राप्ति होती है और नौ नोकषायों तथा शेष चार अन्तरायोंके नाशसे अनन्त सुखकी प्राप्ति होती है। यह पहले ही बतला आये हैं कि मोहकी सात प्रकृतियोंके क्षयसे क्षायिक सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती है और शेष चारित्रमोहनीयकी अप्रत्याख्यानावरण आदि बारह प्रकृतियोंके क्षयसे क्षायिक चारित्रकी प्राप्ति होती है।

नौ नोकषाय और दानान्तराय आदि चार अन्तरायोंके उदयका बल पाकर संसारी जीवोंके वेदनीयके उदयजन्य जो इन्द्रियज सुख-दुख देखे जाते हैं उनका इनके सर्वथा अभाव हो जाता है, क्योंकि उन कर्मोंका बल न मिलनेसे वेदनीयकर्म अपना कार्य करनेमें अक्षम है। इसके सातावेदनीयका एक समयवाला स्थितिबन्ध होनेसे सातावेदनीय निरन्तर उदय प्रकृति होनेके कारण जिस समय असातावेदनीयका उदय होता है वह सातारूप परिणम जाता है। इनके परमौदारिक शरीर होता है, क्योंकि एक तो बारहवें गुणस्थानके अन्तिम समय तक इनके शरीरमें रहनेवाले निगोद जीवोंका अभाव हो जाता है, दूसरे उनके गलित होकर प्रति समय शेष रही स्थितिप्रमाण दिव्यतम नवीन नोकर्म वर्गणाओंका बन्ध होता रहता है। इतनी विशेषता है कि समुद्घातरूप अवस्थामें दोनों प्रतर और लोकपूरणकालके भीतर तीन समयतक इन नोकर्म वर्गणाओंका बन्ध नहीं होता। सयोगी जिनके शेष कालमें उक्त वर्गणाओंका निरन्तर बन्ध होता रहता है।

जब आयुमें अन्तर्मुहूर्तकाल शेष रहता है तब शेष तीन अघाति कर्मोंकी स्थितिको आयुकर्मकी स्थितिके बराबर करनेके लिए यथासम्भव केवली जिन समुद्घात करते हैं। दण्ड, कपाट, प्रतर और लोक-पूरणके भेदसे वह चार प्रकारका है। इसके करने और समेटनेमें ८ समय लगते हैं। जिस समय केवली जिन समुद्घातके सन्मुख होते हैं तब आवर्जितकरण होता है। इसका काम केवली जिनको समुद्घातके सन्मुख करना है।

केवली जिनके स्वस्थान अवस्थाके रहते हुए तथा आवर्जित करणके कालमें स्थिति और अनुभागका घात नहीं होता। यहाँ उदयादि अवस्थित गुणश्रेणि आयाम है तथा गुणश्रेणिका द्रव्य भी अवस्थित रहता है। मात्र स्वस्थान केवलीके स्वस्थान गुणश्रेणि आयामसे आवर्जितकरण सम्बन्धी गुणश्रेणि आयाम संख्यात गुणा हीन होता है। स्वस्थान गुणश्रेणिके कालमें जितने द्रव्यका अपकर्षण होता है उससे आवर्जितकरणके कालमें असंख्यातगुणे द्रव्यका अपकर्षण होता है। इसका कारण अवशिष्ट रहे अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयुकर्मको जानना चाहिए। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि आवर्जितकरणके सम्पन्न होनेके बाद केवली जिन केवलिसमुद्घात क्रिया सम्पन्न करते हैं। आवर्जितकरण गुणश्रेणिका काल आवर्जितकरण करनेके समयसे लेकर शेष रहा सयोगी जिनका काल और अयोगी जिनके कालका संख्यातवाँ भाग इन दोनोंको मिलानेपर जितना होता है उतना होता है।

समुद्घात करते समय प्रारम्भके चार समयोंमें एक-एक समयके भीतर आयुकर्मके बिना शेष तीन अघाति कर्मोंकी अवशिष्ट रही स्थितिके असंख्यात बहुभागका घात करता है और अप्रशस्त कर्मोंके शेष रहे अनुभागके अनन्त बहुभागका घात करता है। इसके आगे स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डक अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण होता है। जिस समय यह जीव लोकपूरण क्रिया सम्पन्न करता है उस समय योगकी एक वर्गणा होती है। इसका तात्पर्य यह है कि इसके पहले आत्मप्रदेशोंमें योगके अविभाग प्रतिच्छेद हीनाधिक होते हैं यहाँ वे सभी प्रदेशोंमें समान हो जाते हैं सो ये सूक्ष्म निगोदिया जीवके जघन्य योगसम्बन्धी जघन्य वर्गणासे भी हीन होते हैं जो मात्र एक समय तक रहते हैं। इसके बाद पुनः हीनाधिक हो जाते हैं।

केवलिसमुद्घातके बाद केवली जिन योगनिरोधकी क्रिया सम्पन्न करते हैं। पहले जो बादर मन, वचन, काय होते हैं उन्हें यथाविधि सूक्ष्म करते हैं और इस प्रकार क्रमसे मनोयोग और वचनयोगका तथा बादर काययोगका अभावकर वे सूक्ष्म काययोगी होकर सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति ध्यानको प्राप्त होते हैं। तथा जिस समय सूक्ष्म काययोगका प्रारम्भ होता है उसी समयसे लेकर पहले योगसम्बन्धी पूर्व स्पर्धकोंसे नीचे अन्तर्मुहूर्त काल तक श्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण अपूर्व स्पर्धकोंकी रचना करते हैं। इनकी प्रथमादि समयोंमें किस प्रकार रचना होती है इसे मूलसे जान लेना चाहिए। परन्तु जीवप्रदेशोंके अपकर्षणकी विधि इससे उलटी है। अर्थात् योगको उत्तरोत्तर कम करनेके लिए प्रथम समयमें जितने जीवप्रदेशोंका अपकर्षण करते हैं, द्वितीयादि समयोंमें उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे जीवप्रदेशोंका अपकर्षण करते हैं। ये योगसम्बन्धी सभी अपूर्व स्पर्धकोंके समान जगश्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं।

इसके बाद वह अपूर्व स्पर्धकोंसे नीचे जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण सूक्ष्म कृष्टियोंको करते हैं जो अपूर्व स्पर्धकोंसे असंख्यातगुणी हीन शक्तिवाली होती हैं। जिस समय ये कृष्टिकरणकी क्रिया सम्पन्न करते हैं उसके अनन्तर समयमें दोनों प्रकारके स्पर्धकोंका अभावकर अर्थात् उन्हें सूक्ष्म कृष्टिरूप करके सूक्ष्म कृष्टिगत योगी हो जाते हैं। इस प्रकार सूक्ष्म कृष्टिगत योगी होकर प्रथम समयमें सब कृष्टियों के असंख्यातवें भागप्रमाण नीचेकी और ऊपरकी कृष्टियोंको मध्यम कृष्टिरूप परिणमाकर नष्ट करते हैं तथा बहुभागप्रमाण कृष्टियोंको उदय द्वारा नष्ट करते हैं। इसके बाद उत्तरोत्तर विशेष हीन कृष्टियोंका उदय होता है और इस प्रकार सूक्ष्म कृष्टिके वेदक सयोगी जिन तीसरे सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति ध्यानको ध्याते हैं। जब सयोग गुणस्थानका अन्तिम समय प्राप्त होता है तब जो कृष्टियोंके असंख्यात बहुभागप्रमाण मध्यकी कृष्टियाँ शेष रहती हैं उन सबका नाश करते हैं।

जिस समय सयोगी गुणस्थानका अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहता है उस समय वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मके अन्तिम स्थितिकाण्डकको नाश करनेके लिए ग्रहण करते हैं। इसमें सयोगी और अयोगी गुणस्थानके कालके जितने समय शेष रहते हैं तत्प्रमाण निषेकोंको छोड़कर गुणश्रेणिशीर्ष सहित सम्पूर्ण उपरिम स्थितिको ग्रहण करते है। इस प्रकार उक्त कर्मोंकी स्थितिको घटाते हुए अयोगी जिनके प्रथम समयमें आयुकर्मके समान शेष कर्मोंकी स्थिति शेष रह जाती है। तब ये अन्तर्मुहूर्तकाल तक शीलके ईशपनेको प्राप्त होकर समुच्छिन्नक्रियानिवृत्ति नामके ध्यानको ध्याते हैं। और इस प्रकार यह जीव सब कर्मोंसे विप्रमुक्त होकर सिद्धिगतिको प्राप्त हो जाता है। इस सिद्धिगतिको प्राप्त हुए वे सिद्ध भगवान् हमें उत्कृष्ट सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र लब्धिके साथ उत्कृष्ट समाधि प्रदान करें।

यह लब्धिसार ग्रन्थका संक्षिप्त सार है। इसमें उन विषयोंको कम स्पर्श किया गया है जिनके लिए बहु वक्तव्य अपेक्षित था। हो सकता है कि इसमें कहीं कोई त्रुटि रह गई हो तो जिज्ञासु जन मूल आगमसे मिलाकर उसका स्वाध्याय करेंगे और त्रुटियोंके लिए हमें क्षमा करेंगे।

२. ग्रन्थ और ग्रन्थकार

वाचना द्वारा प्राप्त आगम परम्परा

भगवान् महावीरके बाद तीन अनुबद्ध केवली और पाँच श्रुतकेवली हुए हैं। अन्तिम श्रुतकेवली भगवान् भद्रबाहु थे। इनके जीवनकाल तक समग्र अंग-पूर्वज्ञानकी परम्पराका महागंगा नदीके प्रवाहके समान विच्छेद नहीं हुआ था। इसके बाद उसमें क्रमसे कमी आती गई, जिसमें ६८३ वर्ष लगे। इस ६८३ वर्षकी परम्पराका उल्लेख त्रिलोकप्रज्ञप्ति तथा धवला, जयधवला आदि ग्रन्थोंमें अनेक आचार्योंने किया है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि आचार्य वीरसेनने धवलामें ६८३ वर्षप्रमाण कालगणनाका निर्देश नहीं किया है। वहाँ यह भी बतलाया है कि इस श्रुत विच्छेदकी कड़ीमें श्रुतका समूल विच्छेद कभी नहीं हुआ, उसका एक देश ज्ञान अविकल बना रहा[1]। इस कालमें जितना भी परम्परानुमोदित श्रुत लोकमें अवस्थित है यह उसीका सुपरिणाम है।

ऐसे ही मूल श्रुतके ज्ञाता जितने भी आचार्य हमारी दृष्टिमें आये हैं उनमेसे प्रकृतमें दो प्रमुख हैं—एक धरसेन और दूसरे गुणधर। धरसेन सोरठ देशके गिरिनारकी चन्द्रगुफामें ध्यान-अध्ययन करते हुए रहते थे[2]। लगता है कि जन्मसे लेकर इनका पूरा जीवन मुख्यतया सौराष्ट्रमें ही व्यतीत हुआ था।

आचार्य वीरसेनने धवला (पु० १, पृ० ६८ आदि) में षट्खण्डागमके समुद्धारका इतिहास लिपिबद्ध किया है उससे कई तथ्योंपर प्रकाश पड़ता है, यथा—

१. उस समय दक्षिणापथ और उत्तरापथके जितने भी दिगम्बर मुनिसंघ थे उनमें परस्पर सम्पर्क बना हुआ था।

२. उसे और मजबूत करनेके लिए ही दक्षिणापथके आचार्योंका आन्ध्र प्रदेशमें वहनेवाली वेण्णा नदीके तटपर एक सम्मेलन हुआ था।

३. उसी सम्मेलनमें सम्मिलित हुए आचार्योंको लक्ष्यकर गिरिनारकी चन्द्रगुफावासी धरसेन आचार्यने एक पत्र लिखा था, जिसके द्वारा ग्रहण-धारण करनेमें समर्थ योग्य दो साधुओंको भेजनेका संकेत किया गया था। इससे विदित होता है कि गौतम गणधरसे लेकर वाचनाका जो क्रम चालू था वह गुरुपरम्परासे उन तक आगे भी बराबर चालू रहा।

प्रश्न यह है कि आचार्य धरसेनने वाचना देनेके लिए दक्षिणसे ही योग्य दो साधुओंको क्यों बुलाया था; क्या सौराष्ट्र या उसके आस-पासके प्रदेशमें वाचना ग्रहण करनेमें समर्थ योग्य साधुओंका सर्वथा अभाव हो गया था, यदि हाँ तो क्यों? यह एक प्रश्न है जिसकी ओर अभी तक किसी भी इतिहास लेखकका ध्यान नहीं गया है। दक्षिण-प्रतिपत्ति पवाइज्जमाण–आचार्य परम्परासे आई हुई है और उत्तर प्रतिपत्ति अपवाइज्जमाण आचार्य परम्परासे आई हुई नहीं है इसके बीज इसमें छिपे हुए तो हैं ही। साथ ही इससे और भी कई तथ्योंपर प्रकाश पड़ना सम्भव है।

षट्खण्डागमकी उपलब्ध टीका धवला आदि ग्रन्थोंमें ६८३ वर्ष तक मूल अंग पूर्व सम्बन्धी श्रुत-परम्परा क्रमिक रूपसे न्यून होते जानेका जो निर्देश किया गया है उसे उत्तरोत्तर किस काल तक और

---

१. धवला पु० १, पृ० ६५।
२. धवला पु० १, पृ० ६८।

कौन-कौन आचार्य अपने पूर्ववर्ती गुरुसे अविकालरूपमें कितनी वाचना ग्रहण करनेमें समर्थ हुए मात्र इस तथ्यकी ओर ही संकेत करता है। इससे पुरुषोंली क्रमसे मूल आगममें वाचनाक्रमसे किस प्रकार प्रामाणिकता बनी रही यह स्पष्ट हो जाता है।

बौद्ध परम्परामें जो संगीतिके और श्वेताम्बर परम्परामें जो वाचनाके उल्लेख दृष्टिगोचर होते हैं, दिगम्बर परम्परा अनेक आचार्यों द्वारा किये गये अपनी-अपनी स्मृतिके द्वारा संकलनरूप वैसी वाचनाको स्वीकार न कर गुरुपरम्परासे मिलनेवाली क्रमिक वाचनाको ही स्वीकार करता है। इससे दिगम्बर परम्परामें वर्तमान कालमें उपलब्ध होनेवाले गुरुपरम्परानुसारी आगमकी प्रामाणिकता सुस्पष्ट हो जाती है।

इस विधिसे देखनेपर मालूम होता है कि धरसेन और गुणधरको अपने पूर्ववर्ती गुरुओंसे जो वाचना मिली थी वही धरसेन आचार्यने पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्यको दी और उस आधारपर पुष्पदन्त और भूतबलिने षट्खण्डागमकी रचना की। तथा गुणधर आचार्यने स्वयं कषायप्राभृतकी रचनाकर उसे क्रमसे आर्यमंक्षु और नागहस्तिको समर्पित किया। जिनसे क्रमशः वाचना लेकर आचार्य यतिवृषभने चूर्णिसूत्र लिखे।

वर्तमानकालमें षट्खण्डागम और कषायप्राभृतके अविकल रूपमें पाये जानेका यह संक्षिप्त इतिहास है। षट्खण्डागमपर यद्यपि आचार्य कुन्दकुन्द आदिने अनेक टीकाएँ लिखीं, पर वर्तमानमें एकमात्र आचार्य वीरसेन द्वारा लिखित टीका ही उपलब्ध होती है। तथा कषायप्राभृतपर सर्वप्रथम आचार्य यतिवृषभने चूर्णिसूत्र लिखे, उच्चारणाएँ भी अनेक लिखी गईं। जिनको सम्मिलितकर वर्तमानमें जयधवला टीका पाई जाती है। अस्तु,

कषायप्राभृत

जैसा कि हम पहले १४ पूर्वोंका संकेत कर आये हैं, पाँचवाँ पूर्व उनमेंसे एक है। उसके बारह वस्तु अधिकार हैं और उसके २० प्राभृत नामक अधिकार हैं। प्रकृतमें तीसरा पेज्ज-दोसपाहुड (कसायपाहुड) विवक्षित है। इसीको माध्यम बनाकर आचार्य गुणधरने २३३ गाथाओं द्वारा प्रकृत पेज्जदोसपाहुडकी रचना की है।

यद्यपि आचार्य गुणधरने गाथा २ में १५ अधिकारोंमें विभक्त १८० गाथाओंके बनानेकी प्रतिज्ञा की है, अतः कितने ही व्याख्यानाचार्य शेष ५३ गाथाओंको नागहस्ति आचार्य कृत मानते हैं। किन्तु जयधवला टीकाके रचयिता आचार्य वीरसेन उनके इस मतसे सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि यदि ये गाथाएँ गुणधरभट्टारककृत नहीं मानी जातीं तो उन्हें अज्ञताका प्रसंग प्राप्त होता है। स्पष्ट है कि आचार्य गुणधरने सभी २३३ गाथाओंकी रचना करके भी मात्र पन्द्रह अधिकार सम्बन्धी प्रयोजनीय १८० गाथाओंका ही उल्लेख किया है।

कषायप्राभृतमें निर्दिष्ट १५ अधिकारोंकी प्ररूपणाके अन्तमें एक चूलिका नामका स्वतन्त्र अधिकार भी उपलब्ध होता है। इसमें सूत्र गाथा संख्या १२ है। उनमेंसे क्षपणासम्बन्धी १० सूत्र गाथाएँ २३३ गाथाओंमेंसे ही ली गई हैं। प्रारम्भकी और अन्तकी शेष दो सूत्र गाथाएँ नई हैं। इनके रचयिता आचार्य गुणधर हैं या अन्य कोई इसका संकेत चूर्णिसूत्रोंसे तो इसलिए नहीं मिलता, क्योंकि इन पर चूर्णिसूत्रोंका सर्वथा अभाव है। जयधवला टीकामें अवश्य ही चूलिका अधिकारका स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार किया गया है। वहाँ लिखा है—

एवमेत्तियेण परूवणापबंधेण सत्थाणसजोगिकेवलिविसयं परूवणाविसेसं समाणिय संपहि एत्थेव चरित्तमोहणीयपुरस्सराणं घादिकम्माणं खवणाविही समप्पदि त्ति कयणिच्छओ एदस्सेव खवणाहियारस्स चूलियापरूवणट्ठमुवरिमाओ सुत्तगाहाओ पढइ तत्थ ताव पढमा सुत्तगाहा—

इतना निर्देश करनेके बाद चूलिकासम्बन्धी १२ गाथाऐं देकर जयधवलामें उनकी क्रमसे व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

प्रारम्भकी और अन्तकी दो गाथा सूत्र इस प्रकार हैं—

अण-मिच्छ-मिस्स सम्मं अट्ठणवुंसित्थिवेदछक्कं च।
पुंवेदं च खवेदि हु कोहादीए च संजलणे॥ १॥
जाव ण छदुमत्थादो तिण्हं घादीण वेदगो होइ।
अधणंतरेण खइया सव्वण्हू सव्वदरिसी य॥ १२॥

लगता है कि इन दो सूत्रगाथाओंके रचयिता भी स्वयं गुणधर आचार्य ही हैं। फिर भी उपसंहारात्मक सूत्रगाथाऐं होनेके कारण इन्हें २३३ मूल सूत्रगाथाओं के अतिरिक्त स्वतन्त्र रूपसे नहीं स्वीकार किया गया है। इसकी पुष्टि चूलिकाके अन्तमें पाये जानेवाले जयधवलाके समाप्तिसूचक इस वचनसे होती है—

तदो चरित्तमोहक्खवणासण्णिदो कसायपाहुडस्स पण्णारसमो अत्याहियारो समप्पदि त्ति जाणावणट्ठमुवसंहारवक्कमाह—चरित्तमोहक्खवणा त्ति समत्ता।

षट्खण्डागम और कषायप्राभृत

यह मूल आगम साहित्य है। इसे आगम इसलिये कहते हैं, क्यों कि भगवान् आदिनाथसे लेकर १४ पूर्वों और यथासम्भव ११ अंगोंमें जो निश्चित तत्त्व व्यवस्था निरूपित की गई और अन्तमें उसी रूपमें जिसकी प्ररूपणा भगवान् महावीरने की वही आचार्य परम्परासे आचार्य धरसेन और गुणधर को प्राप्त हुई। इसे सिद्धान्त कहनेका कारण भी यही है। यह किसीके चिन्तनका फल नहीं है, क्योंकि इस तत्त्वप्ररूपणाकी पृष्ठभूमिमें केवलज्ञानका माहात्म्य है। जितने भी तीर्थंकर जिन हुए उन्होंने कभी भी अपनी कल्पनाओंको उपदेशका माध्यम नहीं बनाया। केवलज्ञान होनेपर जो वस्तुव्यवस्था ज्ञानमें आई, उसीकी प्ररूपणा की और वही आचार्यपरम्परासे वाचना द्वारा आती हुई इन दोनों परमागमोंमें निबद्ध की गई।

षट्खण्डागम जीवस्थानको छोड़ कर शेष पाँच खण्डों की आधारभूत वस्तु महाकम्मपयडिपाहुड है।[1] तथा कषायप्राभृतकी आधारभूत वस्तु पेज्ज-दोसपाहुड (कसायपाहुड) है। जीवस्थानकी आधारभूत सामग्री अन्य मूल अंग-पूर्व भी हैं।[2]

धरसेन और गुणधर दोनों ही क्रमसे महाकम्मपयडिपाहुड और पेज्जदोसपाहुडके पूर्ण ज्ञाता आचार्य थे। इनमेंसे कौन अल्प ज्ञाता था और कौन अधिक ज्ञाता था, अपनी कल्पित तर्कणाको माध्यम बना कर ऐसा विधान जो कोई भी करता है वह उपहास्यास्पद ही प्रतीत होता है।[3]

---

१. धवला द्वि० आ०, भा० १ पृ० १२६।
२. धवला द्वि० आ० भा० १ पृ० १२४ आदि।
३. भगवान महावीर और उनकी आचार्य परम्परा पृ० २८।

वस्तुस्थिति यह है कि महाकम्मपयडिपाहुडमें आठों कर्मों को माध्यम बना कर प्ररूपणा हुई है और पेज्जदोसपाहुडमें मात्र मोहनीय कर्मको माध्यम बना कर प्ररूपणा हुई है। इसलिए यथासम्भव इन दोनों आगमोंकी विषयवस्तुका मूलके अनुसार होना स्वाभाविक है। स्पष्ट है कि आचार्य गुणधरने जो संक्रम, उदय-उदीरणाकी स्वतन्त्र प्ररूपणा की है वह महाकम्मपयडिके आधारसे न करके मात्र पेज्जदोसपाहुडके आधारसे ही की है। यह कैसे माना जाय कि पेज्जदोसदाहुडमें इन अधिकारों की प्ररूपणा नहीं की गई, अतः उन्होंने इसे महाकम्मपयडिपाहुडसे लिया है। यह मात्र कल्पना ही है। रहा अल्पबहुत्व अधिकार सो वह दोनों में समान है। अन्तर केवल इतना है कि महाकम्मपयडिपाहुडमें आठ कर्मोंको आश्रय बना कर उसकी प्ररूपणा हुई है और पेज्जदोसपाहुडमें मात्र मोहनीय कर्मको आश्रय बना कर उसकी प्ररूपणा हुई है। इसलिये कषाय प्राभृतमें भी इसकी प्ररूपणा पेज्जदोसपाहुडसे ही की गई है ऐसा स्वीकार करना ही तर्कसंगत प्रतीत होता है।

एक बात यह भी समझनी चाहिये कि मूल आगयको संक्षिप्तकर विषय विभागके क्रमसे पुस्तकारूढ़ करते समय यह पुस्तकारूढ़ करनेवाले आचार्य की इच्छापर निर्भर रहा हैं कि वह किसे प्राथमिकता दे। देखो कषायप्राभृतमें पहले मोहनीयकर्मके सत्त्वकी प्ररूपणा की गई, बन्धकी नहीं। जब कि सत्त्वकी प्ररूपणा बन्धके बाद ही होनी चाहिये थी ऐस्म कहा जा सकता है। यह भी एक तर्क हो है। इससे यथार्थतापर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। मेरी रायमें धवला और जयधवलामें जो श्रुतावतारका इतिहास दिया है उसे ही प्रामाणिक माना जाना चाहिये।[1] अपनी बुद्धिसे ऐसे सूक्ष्म विषयपर कुछ भी टीका-टिप्पणी करना आगमानुसारी तर्क संगत प्रतीत नहीं होना।[2]

चूर्णिसूत्र

आचार्य यतिवृषभने कषायप्राभृत की सूत्रगाथाओंपर चूर्णिसूत्रोंकी रचना की है। यद्यपि आचार्य गुणधरने पन्द्रह अधिकारोंको १८० गाथाओंमें निबद्ध करने की प्रतिज्ञा की है। किन्तु इसमें कुल गाथाएं २३३ हैं। इनके अतिरिक्त चूलिकामें दो गाथाएं और है। इन सबको जयधवलाटीकाकारने गाथा सूत्र कहा है तथा २३३ सूत्रगाथाओंमें से ५३ गायाकी रचना भी स्वयं गुणधर आचार्यने ही की है यह भी स्पष्ट किया है।[3]

१२ सम्बन्ध गाथाओंके तथा ३५ संक्रामण गाथाओंके साथ चूर्णिसूत्रों पर दृष्टिपात करनेसे भी यह स्पष्ट हो जाता है कि ये गाथाएं गुणधर आचार्य द्वारा ही निबद्ध होनी चाहिये। यथा—'पुव्वम्मि पंचमम्मि दु' इस प्रथम गाथा पर 'णाणपवादस्स पुव्वस्स' इत्यादि चूर्णिसूत्र हैं। 'गाहासदे असीदे' इत्यादि ११ गायाओंके पूर्व 'अत्थाहियारो पण्णारसविहो' यह चूर्णिसूत्र है। तथा उसके बाद चूर्णिसूत्रों द्वारा उनका नामनिर्देश किया गया है। १३, १४ वीं गाथाएँ तो १८० गाथाओंमें सम्मिलित हैं ही और ये गुणधर आचार्य द्वारा निबद्ध हैं ऐसे सबने एक स्वरसे स्वीकार किया है। उनमेंसे १४वीं गाथाका अन्तिम पाद 'अद्धापरिमाणणिद्देसो' है। इसके बाद ही अद्धापरिमाणका निर्देश करनेवाली 'आवलिय अणाहारे' इत्यादि छह गाथाएँ निबद्ध की गई हैं। गुणधर आचार्यके अभिप्रायानुसार १८० गाथाओंमें विभक्त जिन पन्द्रह अधिकारोंका नाम निर्देश किया गया है उनमें अद्धापरिमाण अधिकार सम्मिलित नहीं है। ऐसा होते हुए भी स्वयं गुणधर आचार्य

---

१. धवला द्वि० आ०, भा० १ पृ० ६८ जयधवला द्वि० आ०, भा० १, पृ० ७९।

२. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा भा०२, पृ० २८। कषायपाहुड सुत्त प्रस्तावना पृ. १४।

३. जयधवला द्वि० आ०, भा० १,पृ० १६५।

अद्धापरिमाण अधिकारका अलगसे उल्लेख करते हैं। इससे मालूम पड़ता है कि 'आवलिय अणाहारे' इत्यादि छ गाथाओंको भी स्वयं गुणधर आचार्यने निबद्ध किया है। अब रही संक्रमणसम्बन्धी ३५ गाथाएँ सो उनपर तो चूर्णिसूत्र हैं ही। इससे भी ऐसा ही ज्ञात होता है कि इन ५३ गाथाओंको निबद्ध करनेवाले आचार्य गुणधर ही हैं। यद्यपि आचार्य वीरसेनने अद्धापरिमाण अधिकारको सब अधिकारोंमें समान होनेसे स्वतन्त्र अधिकार माननेका निषेध किया है, पर उससे उक्त तथ्यके फलित करनेमें कोई बाधा नहीं आती।

यद्यपि कषायप्राभृतकी समाप्ति १५ अधिकारोंकी समाप्तिके बाद चूलिका नामक अनुयोगद्वारके समाप्त होने पर ही होती है। फिर भी यतिवषभ आचार्यने अपने चूर्णिसूत्रों द्वारा पश्चिम स्कन्ध नामक अधिकारकी रचना अलगसे की है। इस पर जयधवलकारने जो शंका—समाधान किया है उसका अनुवाद अविकल रूपसे हम यहाँ दे रहे हैं—

शंका—महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके २४ अनुयोगद्वारोंसे सम्बन्ध रखनेवाले इस पश्चिम स्कन्ध अधिकारकी इस कषायप्राभृतमें किसलिए प्ररूपणा की जा रही है?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि दोनों स्थलोंपर उसे स्वीकार करनेमें कोई बाधा नहीं आती। यथा—

महाकम्मपयडिपाहुडस्स चउवीसाणियोगद्दारेसु पडिबद्धो एसो पच्छिमक्खंधाहियारो कधमेत्थ कसायपाहुडे परूविज्जदि त्ति णासंका कायव्वा, उहयत्थ वि तस्स पडिबद्धत्तब्भुवगमे बाहाणुवलंभादो।

यह चूर्णिसूत्रोंका सामान्य स्वरूप है।

जयधवला टीका

इसमें जहाँ कषायप्राभृतके प्रत्येक गाथा सूत्रका अलगसे विवेचन उपलब्ध होता है वहीं प्रत्येक गाथा सूत्र पर जितने चूर्णिसूत्र आये हैं उनकी भी स्वतन्त्ररूपसे व्याख्या की गई है। इतना अवश्य है कि अधिकतर अधिकारोंमें पहले उस उस अधिकार सम्बन्धी सब गाथा सूत्र दे दिये गये हैं। उसके बाद उनपर जितने चूर्णि सूत्रोंकी रचना हुई है वे भी व्याख्याके साथ दिये गये हैं। इसके लिए देखो संक्रम अधिकार, वेदक अधिकार, उपयोग अधिकार आदि। एक चारित्रमोहक्षपणा अधिकार ऐसा अवश्य है जिसमें प्रत्येक गाथासूत्रपर चूर्णिसूत्र और जयधवला टीका अलग-अलग दी गई हैं। सम्भवतः इस प्रकारकी व्यवस्था चूर्णिसूत्रकार यतिवृषभ आचार्य द्वारा ही की गई प्रतीत होती है।

लब्धिसार और उसके कर्ता आचार्य नेमिचन्द्र

नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीने लब्धिसारकी रचनामें उक्त तीनों सिद्धान्त ग्रन्थोंका समानरूपसे उपयोग किया है। इसमें दर्शनमोह उपशमना अधिकारसे लेकर अन्त तकके सभी अधिकारोंका विषय सम्मलित किया गया है। उक्त जयधवला टीका ६०००० श्लोक प्रमाण मानी जाती है। इतने महा परिमाणवाले ग्रन्थके एक तिहाई भागको ६५३ गाथाओंमें संकलित कर देना यह कोई साधारण काम नहीं है। उल्लेखनीय बात यह है कि ऐसा करते हुए कोई विषय छूटने भी नहीं पाया है। साथ ही जिस विषयका जयधवला टीकामें विशेष स्पष्टीकरण किया गया है उसे भी लब्धिसारमें निरूपित कर दिया गया है। लब्धिसारमें ऐसी अधिकतर गाथाएँ हैं जिन्हें समझनेके लिए टीकाकी सहायता लेनी पड़ती है। नेमिचन्द्र

सिद्धान्त चक्रवर्तीने कब और किस स्थान पर बैठकर इस ग्रन्थकी रचना की इसपर आगे संक्षेपमें प्रकाश डाला जाता है। साथ ही यह भी देखना है कि इनके दीक्षागुरु और शिक्षागुरु कौन थे ? नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीकी तीन रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—गोम्मटसार जीवकाण्ड कर्मकाण्ड, लब्धिसार और त्रिलोकसार। क्षपणासार स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है, लब्धिसारका ही एक अंग है, ये तीनों रचनाएँ ऐसी हैं जिनसे उनकी बहुज्ञताको समझनेमें सहायता मिलती है, उनमेसे यहाँ हम लब्धिसारको ही लेते हैं। उसके अन्तमें प्रशस्तिके रूपमें ये दो गाथाएँ आई हैं—

वीरिंदणंदिवच्छेणप्पसुदेणभयणंदिसिस्सेण।
दंसण-चरित्तल-द्धी सुसूइया णेमिचंदेण ॥६५२॥
जस्स य पायपसाएणणंतसंसारजलहिमुत्तिण्णो।
वीरिंदणंदिवच्छो णमामि तं अभयनंदिगुरुं ॥६५३॥

आशय यह है कि वीरनन्दि और इन्द्रनन्दिके वत्स, अल्पश्रुतज्ञानी तथा अभयनन्दिके शिष्य नेमिचन्द्रने दर्शन-चारित्र लब्धिका भले प्रकार निबद्ध किया है ॥६५२॥ जिसके चरणप्रसादसे अनन्त संसार समुद्रको पार किया उन अभयनन्दिगुरुको मैं वीरनन्दि और इन्द्रनन्दिका वत्स नमस्कार करता हूँ ॥६५३॥

इनमेंसे प्रथम गाथासे तो यही स्पष्ट होता है कि नेमिचन्द्र आचार्य वीरनन्दि और इन्द्रनन्दिसे छोटे थे तथा अभयनन्दिके शिष्य थे। कैसे शिष्य थे इसका पता दूसरी गाथाके पूर्वार्धसे लगता है। नेमिचन्द्रने अभयनन्दिको संसार समुद्रसे पार करनेवाला कहा है। इससे मालूम पड़ता है कि नेमिचन्द्रने अभयनन्दिसे दीक्षा ली थी। तथा दूसरी गाथामें पुनः इस बातको दुहराया गया है कि नेमिचन्द्र वीरनन्दि और इन्द्रनन्दिसे छोटे थे। मेरी समझमें नेमिचन्द्रने स्वयंको वीरनन्दि और इन्द्रनन्दिका वत्स कहा है उसका भी तात्पर्य यही है।

अब देखना यह है कि उन्होंने दोनों मूल सिद्धान्त ग्रन्थोंकी वाचना किससे ली थी, क्योंकि उन्होंने दोनों सिद्धान्त ग्रन्थोंके आधारसे यथासम्भव गोम्मटसार जीवकाण्ड-कर्मकाण्ड और लब्धिसारकी रचना की है। लब्धिसारसे तो इसपर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। हाँ गो० कर्मकाण्डसे इस विषयका समाधान हो जाता है। वहाँ लिखा है—

जत्थ वरनेमिचंदो महणेण विणा सुणिम्मलो जादो।
सो अभणणंदिणिम्मलसुओवही हरउ पाणमलं ॥४०८॥

जिसका आश्रय पाकर उत्कृष्ट नेमिचन्द्र बिना मथन किये अत्यन्त निर्मल हो गये वह अभयनन्दिद्वारा प्ररूपित निर्मल श्रुतरूपी सागर हमारा पापमल हरो ॥४०८॥

यद्यपि कर्मकाण्ड गाथा ७८५ में इन्द्रनन्दिको श्रुतसागरमें पारंगत कहनेके साथ गुरु भी कहा गया है। पर मेरी समझमें यहाँ पर गुरु शब्द बड़प्पनके अर्थमें ही प्रयुक्त हुआ है। दक्षिणमें ऐसी प्रथा भी रही है कि जो सहपाठी होनेके साथ अपनेसे बड़ा हो उसे गुरु शब्द द्वारा सम्बोधित करनेकी परिपाटी रही है। इस बातका समर्थन गो० कर्मकाण्डकी इस गाथासे होता है—

वरइंदणंदिगुरुणा पासे सोऊण सयलसिद्धंतं।
सिरिकणयणंदिगुरुणो सत्तट्ठाणं समुद्दिट्ठं ॥३९६॥

उत्कृष्ट इन्द्रनन्दि गुरुके पास समस्त सिद्धान्तको सुनकर श्री कनकनन्दि गुरुने सत्त्वस्थानकी प्ररूपणा की ।।३९६।।

अथवा यह भी हो सकता है कि नेमिचन्द्रने प्रमुखरूपमें अभयनन्दिसे वाचना ली होगी और विशेष हृदयंगम करनेके अभिप्रायसे इन्द्रनन्दिको माध्यम बनाकर भी सिद्धान्त ग्रन्थोंका स्वाध्याय किया होगा। सत्त्वस्थानकी प्ररूपणाका सम्बन्ध कनकनन्दिसे आता है और इस बातको ध्यानमें रखकर ही उन्होंने कनकनन्दिको भी गुरु कहना मान्य रखा होगा। पर अभी यह बात विचारणीय है कि सत्त्वस्थानको ग्रन्थ रूप किसने दिया, क्योंकि जहाँ एक ओर नेमिचन्द्र आचार्य सत्त्वस्थानकी प्ररूपणाका श्रेय कनकनन्दिको देते हैं वहीं दूसरी ओर वे यह भी कहते हैं कि इस प्रकार विस्तारपूर्वक सत्त्वस्थानका मैंने सम्यक् वर्णन किया। जो इसे पढ़ता है, सुनता है और अभ्यासकर हृदयंगम करता है वह मोक्षसुखका भोक्ता होता है। यथा—

एवं सत्तट्ठाणं सवित्थरं वण्णियं मए सम्मं।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ णिव्वुदिं सोक्खं ।।३९५।।

सत्त्वस्थानकी स्वतन्त्र प्रतियाँ आराके जैन सिद्धान्त भवनमें उपलब्ध हैं। उनको सावधानीसे देखकर और उनका गो० कर्मकाण्डके सत्त्वस्थान प्रकरणसे मिलान करके ही यह निश्चय किया जा सकता है कि इस प्रकरणके संकलनमें किसका कितना योगदान है।

कनकनन्दिके गुरु इन्द्रनन्दि थे यह गो० कर्मकाण्डकी गाथा ३९६से ज्ञात होता है। उसकी संस्कृत टीकामें इन्द्रनन्दिको सूरि कहनेके साथ भट्टारक भी कहा गया है। यह संस्कृत टीका केशववर्णीकृत कर्णाटक वृत्तिका लगभग रूपान्तर है, इसलिए बहुत सम्भव है कि अपनी कर्णाटक वृत्तिमें केशववर्णीने भी इन्द्रनन्दिको भट्टारक समझ बूझकर लिपिबद्ध किया होगा। हो सकता है कि १०-११ वीं शताब्दिमें नग्न भट्टारकोंकी परम्परा प्रचलित हो गई हो। जो कुछ भी हो, यह विचारणीय अवश्य है। इससे कई तथ्योंपर बहुत कुछ प्रकाश पड़ना सम्भव है। ३९६ गाथाकी संस्कृत टीका इस प्रकार है—

सूरिमतल्लिकाश्रीमदिन्द्रनन्दिभट्टारकपार्श्वे सकलसिद्धान्तं श्रुत्वा श्रीकनकनन्दिसिद्धान्तचक्रवर्तिभिः सत्त्वस्थानं सम्यक् प्ररूपितम्।

इस प्रकार पूर्वोक्त विवेचनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती उसी समयके आचार्य हैं जब अभयनन्दि, वीरनन्दि, इन्द्रनन्दि और कनकनन्दि आदि मनीषी इस भूमण्डलको अपनी उपस्थितिसे अलंकृत कर रहे थे। इन सब आचार्योंका काल विक्रमकी ११वीं शताब्दि है, अतः इस हिसाबसे इन्हें भी विक्रमकी ११वीं शताब्दिका समझना चाहिये। इस विषयमें विशेष स्पष्टीकरण अन्यत्र से जानना चाहिये।

अब देखना यह है कि उन्होंने किस स्थान पर बैठकर सिद्धान्तादि ग्रन्थोंकी रचना कर करणानुयोगकी श्रीवृद्धिमें चार चाँद लगाये हैं। उन्होंने स्वयं तो इस सम्बन्धमें कुछ लिखा नहीं। परन्तु कर्मकाण्डके अन्तमें जहाँ भगवान् बाहुबलिके उतुंग जिन बिम्बका सम्मानके साथ उल्लेख किया गया है वहीं श्री वीरमार्तण्ड चामुण्डरायद्वारा निर्मापित श्री जिनमन्दिरका भी उल्लेख किया है। इससे प्रतीत होता है कि उन्होंने अपनी गोम्मटसार, लब्धिसार आदि ग्रन्थोंकी रचनाके लिए यही स्थान उपयुक्त समझा होगा।

लब्धिसारवृत्ति और उसके कर्ता

वर्तमान समयमें लब्धिसारपर चारित्र मोहउपशमना अधिकार तक ही एक वृत्ति पाई जाती है। वृत्तिका प्रारम्भ करते हुए ये दो अनुष्टुप् छन्द उपलब्ध होते हैं—

जयन्त्वन्वहमर्हन्तः सिद्धाः सूर्युपदेशकाः।
साधवो भव्यलोकस्य शरणोत्तममंगलम् ॥१॥
श्रीनागार्यतनूजातशान्तिनाथोपरोधतः ।
वृत्तिर्भव्यप्रबोधाय लब्धिसारस्य कथ्यते ॥२॥

प्रथम छन्दमें पञ्च परमेष्ठीका जय-जयकार कर भव्य जीवोंके लिए वे शरणभूत, उत्तम और मंगलस्वरूप हैं यह सूचित किया गया है। तथा दूसरे छन्दमें श्रीनागार्यके सुपुत्र शान्तिनाथको प्रेरणासे भव्य जीवोंको सम्यग्ज्ञानकी प्राप्तिके निमित्त लब्धिसारग्रन्थकी वृत्तिके निर्माणकी प्रतिज्ञा की गई है।

इन दोनों छन्दोंके बाद जो उत्थानिका दी गई है उससे ऐसा भी प्रतीत होता है कि लब्धिसारकी रचना सम्यक्त्व चूड़ामणि चामुण्डरायके प्रश्नके अनुसार हुई है।

इन दोनों छन्दोंमेंसे अन्तिम छन्द और उत्थानिका ऐसी है जिनसे लब्धिसारवृत्तिके निर्माण पर अंशतः प्रकाश पड़ता है। किन्तु इस वृत्तिका रचयिता कौन है यह स्पष्ट नहीं होता। गोम्मटसार कर्मकाण्डके अन्तमें जो प्रशस्ति उपलब्ध होती है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि मूलसंघ कुन्दकुन्दाम्नायी सूरत पट्टके[1] भट्टारक श्री ज्ञानभूषणके शिष्य और उनके उत्तराधिकारी भट्टारक प्रभाचन्द्रके द्वारा दिये गये सूरि या आचार्य पदसे अलंकृत श्री नेमिचन्द्रने कर्णाटकीय वृत्तिके अनुसार मात्र गोम्मटसार जीवकाण्ड-कर्मकाण्ड की वृत्तिकी ही रचना की थी और उसका नाम तत्वप्रदीपिका रखा था। श्री केशववर्णीने जिस कर्णाटक वृत्तिकी रचना की है वह भी गोम्मटसार जीवकाण्ड-कर्मकाण्ड तक ही सीमित है[2]। दोनों वृत्तियोंके अन्तरंगकी परीक्षा करने पर यह स्पष्ट हो जाता है—

१. गोम्मटसार जीवकाण्ड और कर्मकाण्डके प्रत्येक अधिकारके अन्तमें इस प्रकारका पुष्पिका वाक्य उपलब्ध होता है—

इत्याचार्य श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ तत्त्वदीपिकाख्यायां.... .... ।

जब कि लब्धिसारके प्रत्येक अधिकारके अन्तमें इस प्रकार अधिकारकी समाप्ति सूचक पुष्पिका वाक्य उपलब्ध होते हैं—

इति क्षायिकसम्यक्त्वप्ररूपणं समाप्तम्। इति देशसंयमलब्धिविधानाधिकारः। आदि।

२. उक्त उदाहरणोंसे यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि तत्वदीपिका यह नाम केवल जीवकाण्ड-कर्मकाण्ड वृत्तिका है, लब्धिसारवृत्तिका नहीं। लब्धिसार वृत्तिमें कुछ ऐसे उद्धरण भी उपलब्ध होते है जिनसे ऐसा प्रतीत होता है कि लब्धिसार वृत्तिकी रचना करते समय वृत्तिकारके सामने तत्सम्बन्धी टिप्पण रहे हैं[3]। एक दूसरे स्थल पर वृत्तिकार यह भी संकेत करते हैं कि दर्शनमोहक्षपणाके अवसरपर सम्भव ३३ अल्पबहुत्वपदोंका प्रवचनके अनुसार व्याख्यान किया[4]।

१-२. भट्टारक सम्प्रदाय पृ० २०१।२ प्रशस्ति गो० कर्मकाण्ड।

३. एवं दर्शनमोहक्षपणटिप्पणम्।

४. एवं दर्शनमोहक्षपणावसरे सम्भवदल्पबहुत्वपदानि त्रयस्त्रिंशत्संख्यानि प्रवचनानुसारेण व्याख्यातानि।

यहाँ टिप्पण और प्रवचनसे वृत्तिकारको कौन विवक्षित है यह स्पष्ट ज्ञात नहीं हो सका।

नागपुरके सेनगण मन्दिरमें कर्मकाण्ड टीकाकी एक हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है[1]। सम्भव है कि यह कर्मकाण्डकी मुद्रित टीकासे भिन्न होनी चाहिये, क्योंकि इसमें जो प्रशस्ति दी गई है उसमें और कर्मकाण्डकी मुद्रित टीकाकी प्रशस्तिमें अन्तर है। उक्त हस्तलिखित प्रतिमें जो प्रशस्ति दी गई है वह इस प्रकार है—

मूलसंघे महासाधुलक्ष्मीचन्द्रो यतीश्वरः।
तस्य पादस्य वीरेन्दुविबुधा विश्ववेदिनः॥
तदन्वये दयांभोधिज्ञानभूषो गुणाकरः।
टीकां हि कर्णकाण्डस्य चक्रे सुमतिकीर्तियुक्॥३॥

इस प्रशस्तिमें मूलसंघ बलात्कार गणके शिष्य-प्रशिष्यके रूपमें लक्ष्मीचन्द्र, वीरचन्द्र और ज्ञातभूषण इन भट्टारकोंके नाम देकर ज्ञानभूषणको भट्टारक सुमतिकीर्तिसे मिलकर कर्मकाण्डकी टीकाका रचयिता कहा गया है। जब कि मुद्रित कर्मकाण्डके अन्तमें पायी जानेवाली प्रशस्तिमें शिष्य-प्रशिष्यके रूपमें ज्ञानभूषण, प्रभाचन्द्र और नेमिचन्द्र ये तीन नाम देकर नेमिचन्द्रको गोम्मटसार जीवकाण्ड और कर्मकाण्डकी वृत्तिका रचयिता बतलाया गया है। साथ ही उसमें यह भी कहा गया है कि कर्णाकदेशके राजा मल्लिभूपालके अमुरोध-वश त्रैविद्य मुनिचन्द्रसे नेमिचन्द्रने सिद्धान्तकी शिक्षा लेकर श्री धर्मचन्द्र और अभयचन्द्र भट्टारक तथा वर्णी-लाला आदिके आग्रहसे गुजरातके चित्रकूटमें जिनदास द्वारा निर्मापित जिनालयमें बैठकर उक्त वृत्तिकी रचना की। इसके निर्माणमें खण्डेलवाल कुलतिलक साह सांगा और साह सहेस भी निमित्त हुए। नेमिचन्द्र ने यह वृत्ति त्रैविद्य विशालकीर्तिकी सहायतासे लिखी[2]।

ये दो प्रशस्तियाँ हैं। इनके आधारसे ये तथ्य फलित होते हैं—

१. गोम्मटसार कर्मकाण्डकी दो टीकायें हैं—एक ज्ञानभूषण भट्टारक द्वारा रचित और दूसरी उनके शिष्य नेमिचन्द्र द्वारा निर्मित।

२. नेमिचन्द्रने सिद्धान्तकी शिक्षा कर्णाटकके त्रैविद्य मुनिचन्द्रसे ली। तथा अपनी वृत्तिकी रचना कारंजा बलात्करगण पट्टके भट्टारक त्रैविद्य विशालकीर्तिकी सहायतासे की।

३. नेमिचन्द्रकी इस वृत्तिको संशोधित करके अभयचन्द्रने लिखा। ये भट्टारक ज्ञानभूषणके पूर्ववती भट्टारक वीरचन्द्रके सहाध्यायी तथा भट्टारक लक्ष्मीचन्द्रके शिष्य थे। इतना अवश्य है कि बलत्कारगण सूरत पट्टकी भट्टारकपरम्परामें नेमिचन्द्रका उल्लेख दृष्टिगोचर नहीं होता[3]।

इतने विवेचनके बाद हमें जो महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है वह यह है कि गोम्मटसार जीवकाण्ड-कर्मकाण्डकी वृत्तिकी रचनामें कारंजा, सूरत और कर्णाटकके भट्टारकोंने सम्यग्ज्ञान प्रसारकी दृष्टिसे परस्पर सहयोग किया है। कर्मकाण्डकी जिस दूसरी टीकाका हम पूर्वमें उल्लेख कर आये हैं उसकी रचना में सूरत और कर्णाटकके भट्टारकोंका परस्पर सहयोग होना चाहिये, क्योंकि उसकी प्रशस्तिमें जिन सुमति-कीर्ति भट्टारकका उल्लेख किया गया है वे सम्भवतः कर्णाटक प्रदेशीय ही होने चाहिये। गोम्मटसार

१. भट्टारकसम्प्रदाय पृ. १८३।
२. भारतीय जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था कलकत्ता।
३. भट्टारक सम्प्रदाय पृ० ३०१।

कर्मकाण्ड-जीवकाण्डकी वृत्तिमें जिन भट्टारक धर्मचन्द्र का नाम आता है वे बलात्कारगण कारंजा पट्टके भट्टारक थे यह इस गणकी कारंजा शाखाके अध्ययनसे ज्ञात हो जाता है ।

विशालकीर्ति नामके कई भट्टारक हुए हैं । यह सम्भावना की जाती है कि ये तत्त्वज्ञान तरंगिणीके रचयिता विशालकीर्ति ही होने चाहियें[1] । किन्तु इनकी गुरू परम्पराका मेल बलात्कार गण सूरत शाखासे बैठता है[2] न कि बलात्कार गण ईडरशाखाकी भट्टारक परम्परासे । अतः यह स्पष्ट है कि बलात्कार गण सूरत शाखाके जिन भट्टारक विशालकीर्तिके सहयोगसे कर्मकाण्डकी टीका रची जानेका उल्लेख मिलता है उन्हींके प्रशिष्य नेमिचन्द्रने कर्णाटक वृत्तिके अनुसार गो० जीवकाण्ड-कर्मकाण्डकी वृत्तिकी रचना की होगी ।

इतना सब होते हुए भी यह विवादास्पद ही है कि लब्धिसारकी वृत्तिकी रचना किसने की । जब तक कोई तथ्य सामने नहीं आते तब तक निर्विवादरूपसे नेमिचन्द्रको ही इसका रचयिता मानना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता[3] । इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इसकी रचना की शैली आदिको देखते हुए उसी कालके उक्त भट्टारकोंके सम्मिलित सहयोगसे इसकी रचना की गई होनी चाहिये । यदि किसी एक भट्टारकका यह काम होता तो वह या अन्य कोई रचयिताके रूपमें उनके नामका उल्लेख अवश्य करते, जो कुछ भी हो, यह विषय है विचारणीय ही ।

३. अर्थसंदृष्टि

लब्धिसारकी संस्कृत टीकामें बीजगणितके रूपमें अर्थदृष्टिका उपयोग किया गया है । प्रकृतमें गाथा संख्याके अनुसार तत्सम्बन्धी कुछ संकेतोंका उल्लेख यहाँ कर देना उपयुक्त प्रतीत होता हैं—

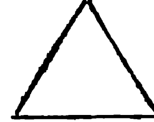
गाथा	३४	स्तोक अन्तर्मुहूर्त—२१	
,,	,,	संख्यातगुणा ,, २११	
,,	,,	पुनः सं. गु. ,, २ १११	
,,	३९	अन्तर्मुहूर्त ,, २ ११	
,,	,,	प्रभाण—प्र., फल—फ., इच्छा—इ अपसरणशलाका	
		२११ १ २१११ १	
,,	४०	अन्तःकोटाकोटि सागरोपम	सा० अंतः को. २
,,	,,	संख्यातगुणहीन ,, ,,	सा० अं. को. २
			४
,,	४१	अधःप्रवृत्तकरणमेंसे प्रथय समयसम्बन्धी स्थितिविशेष	सा. अं. को
			४
,,	,,	संख्यातगुणहीन ,, ,,	सा. अं. को २
			४ ४
,,	,,	पुनः ,, ,,	सा० अं० को २
			४ ४ ४
,,	४२	असंख्यात लोक	≡a

१. ती. महावीर और उनकी आचार्य परम्परा पृ. ४१८

२. भट्टारक सम्प्रदाय पृ. १८४–१८५ ।

३. जैनधर्मका प्राचीन इतिहास पृ. २६३ ।

यहां गा० ३४ संख्यानगुणेमें संख्यातका संकेत १ स्वीकार किया गया है और गा० ४१ में संख्यात गुणहीन बतलानेके लिए संख्यातका संकेत-४ स्वीकार किया गया है। तथा गाथा ४२में प्रतिहारके रूपमें स्वीकृत अन्तर्मुहूर्तके प्रमाणका संकेत २ १ १ १ १ २ स्वीकार किया गया है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्तका प्रमाण तीन रूपमें स्वीकार किया गया है। आगे भी इसी प्रकार यथा सम्भव जानना चाहिए।



गाथा ५६ अपवर्तित द्रव्य निरक्षेप रचना

सर्वत्र कर्मस्थिति—क०

गाथा ७० समयप्रबद्ध स०, साधिक बारहका संकेत १२-, गात कर्मोका संकेत ७, अनन्तका संकेत ख, मोहनीयकी सत्रह प्रकृतियोंका संकेत १७, अपकर्षणका संकेत ओ; पल्योयमका संकेत प०।

गाथा ७१–७२ आवलिका संकेत ८, द्विगुणहानिका संकेत १६
रूपोंनेका संकेत १ =

गाथा ७७ सागरोपमपृथक्त्व—सा० ८.।

गाथा ८४ अन्तर्मुहूर्त २१ का संख्यात बहुभाग २१ $\frac{४}{५}$, एक भाग २१ $\frac{१}{५}$, इसमें बहुभागका संकेत $\frac{४}{५}$ एक भागका संकेत $\frac{१}{५}$।

गाथा ८५ यहाँ अन्तर्मुहूर्तमात्र अन्तरकरणके कालका संकेत २१।३
४।४

यहां शीर्षसे संख्यातगुणेके संकेत २१३ में संख्यातगुणे का संकेत ३
४

अर्थसंदृष्टिके ये कतिपय संकेत हैं। स्वयं वृत्तिकारने अपने संकेतोंका कोई विवरण नहीं दिया है। संकेतोंमें कहीं-कहीं विविधता भी गृष्टिगोचर होती है। उदाहरणार्थ अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयके परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं। असंख्यात लोकका संकेत चिह्न ≡ a है। उसमें प्रथम समयके परिणामोंका संकेत उन्होंने यह रखा है— ≡ a $\frac{१}{२१११।१२।}$ $\frac{१\frown}{}$ इन्हें विशेषाधिक करनेके लिए $\frac{१}{२१११२१११२}$ $१\frown$ के स्थानमें $\frac{३}{}$ $१\frown$ ऐसा करके पहले १ के स्थानमें ३ अंक कर दिया है। तथा अन्तिम समयके परिणामोंका संकेत ≡ a $\frac{२१११।१२}{२१११२११११२}$ $१\frown$ इस प्रकार दिया है। यहां प्रथम समयके परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण होते हुए भी और असंख्यात लोकका संकेत a ≡ होते हुए भी इन परिणामोंकी कल्पना उक्त प्रकारके संकेतके रूपमें की गई है। अस्तु।

४. सैद्धान्तिक चर्चा

कर्णाटक वृत्तिके रचयिता केशववर्णी हैं। इन्होंने जीवकाण्ड प्रथम गाथाकी उत्थानिकामें षट्खण्डागमके छह खण्डोंका नामोल्लेख अवश्य किया है[1]। पर इससे ऐसा नहीं लगता कि उन्होंने षट्खण्डागमके छहोंखण्डोंका धवला टीका सहित पूरा अध्ययन करके अपनी जीवतत्त्वदीपिका वृत्तिकी रचना की होगी। यही स्थिति संस्कृत वृत्तिके रचयिताके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। इतना अवश्य है कि गुरुपरम्परासे वाचना द्वारा उन्हें यथासम्भव सिद्धान्त विषयक जितना ज्ञान प्राप्त हुआ उसी आधारपर इन वृत्तियोंकी रचना की गई है। उसमें भी नेमिचन्द्र रचित वृत्ति कर्णाटक वृत्तिका अनुकरण मात्र है। इसे स्पष्ट करनेके लिए यहाँ एक उदाहरण दे देना इष्ट समझते हैं—

(१) जीवकाण्डका अर्थ है गुणस्थानों और मार्गणास्थानोंके आलम्बनसे जीवोंकी विविध अवस्थाओं और परिणामोंको सूचित करनेवाला ग्रन्थ। आ० नेमिचन्द्र सि० च० ने इसका संकलन मुख्यतया जीवस्थान, क्षुल्लकबन्ध, जीवस्थानचूलिका, वेदनाखण्ड और वर्गणाखण्डके आधारसे किया है।

यह तो हम जानते हैं कि गुणस्थानोंकी प्ररूपणा मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र और अविरति आदि जीवोंके परिणामोंके आधारसे ही की गई है। अब रहे मार्गणास्थान, सो इनमें भी भावमार्गणाएँ ही विवक्षित हैं। द्रव्यमार्गणाएँ नहीं। इसके लिए क्षुल्लकबन्ध तो प्रमाणस्वरूप है ही। साथ ही इसकी पुष्टि जीवस्थान सत्प्ररूपणाके इस वचनसे भी होती है—

'इमानि' इत्यनेन भावमार्गणास्थानानि प्रत्यक्षीभूतानि निर्दिश्यन्त, नार्थमार्गणास्थानानि[2]....पृ० १३२।

सूत्रमें आये हुए 'इमानि' इस पदसे प्रत्यक्षीभूत भावमार्गणास्थानोंका निर्देश किया है, द्रव्यमार्गणाओंका निर्देश नहीं किया है।

आगे गति पदकी व्याख्याके प्रसंगसे जो वचन आया है उससे भी उक्त तथ्यकी पुष्टि होती है।[3]

इन तथ्योंसे स्पष्ट है कि सिद्धान्त ग्रन्थोंमें चौदह मार्गणाओंकी प्ररूपणा भावनिक्षेपके रूपमें ही हुई है, द्रव्यनिक्षेपके रूपमें नहीं। गतिमार्गणाके विषयमें भी ऐसा ही समझना चाहिये। श्वेताम्बरकार्मिक ग्रन्थोंमें भी यही व्यवस्था स्वीकार की गई है। (२) प्रकृतमें गतिमार्गणाकी अपेक्षा विचार करनेपर गतिमार्गणा चार भेदोंमें विभाजित की गई है—नारक, तिर्यञ्चयोनिज, मनुष्य और देव। नारक सब नपुंसकवेदी होते हैं, इसलिए उनमें अवान्तर भेद लक्षित नहीं होते। देव स्त्रीवेद और पुरुषवेद इन दो वेदोंमें विभाजित किये गये हैं। तदनुसार उनके देव और देवी ये दो भेद किये गये हैं। तिर्यञ्चयोनिज तीन भेदोंमें विभाजित किये गये हैं। साथ ही उनमें पर्याप्त और अपर्याप्त तथा पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और तदितर तिर्यञ्च ये दो भेद और लक्षित होते हैं। मनुष्य तीन वेदोंमें विभाजित किये गये हैं। उनमेंसे पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी पर्याप्त मनुष्योंकी आगममें मनुष्य पर्याप्त संज्ञा उपलब्ध होती है। स्त्रीवेदी मनुष्योंकी मनुष्यिनी संज्ञा उपलब्ध होती है तथा नपुंसकवेदी अपर्याप्त मनुष्योंकी मनुष्य अपर्याप्त संज्ञा उपलब्ध होती है। यह आगमिक व्यवस्था है। इसी तथ्यको ध्यानमें रखकर गो० कर्मकाण्ड उदय प्रकरणमें मनुष्यिनीके किस वेदका उदय होता है इसका निर्देश करते हुए लिखा है—

मणुसिणिएत्थीसहिदा तित्थयराहारपुरिससंढूणा।
पुण्णिदरेव अपुण्णे सगाणुगदिआउगं णेयं ॥३०१॥

१. जीवकाण्ड पृ० ९ भा० ज्ञानपीठ प्रकाशन।
२. जीवस्थान सत्प्ररूपणा १ जैन संस्कृति संरक्षक संघ सोलापुर। ३. वही पृ० १३६-१३७।

मनुष्यिनियोंमें स्त्रीवेदके उदयको सम्मिलित कर देना चाहिये तथा तीर्थंकर, आहारकद्विक, पुरुषवेद और नपुंसकवेदके उदयको कम कर देना चाहिये·····।।३०१।।

इस प्रकार सिद्धान्त ग्रन्थोंमें मनुष्यिनी पदसे मनुष्य द्रव्यस्त्रियाँ नहीं ली गई हैं यह स्पष्ट होते हुए भी दोनों वृत्तिकारोंने गो० जीवकाण्ड गाथा १५९ में आये हुए पज्जत्तमणुस्साणं तिचउत्थो माणुसीण परिमाणं। गाथाके इस पूर्वार्ध पदकी व्याख्या करते हुए 'मानुसीण' पदका अर्थ द्रव्यवेदवाली मनुष्यस्त्रियाँ किया है। यथा—

पर्याप्त मनुष्यरुगल राशि त्रिचतुर्भाग मानुषिरुय द्रव्यस्त्रीयर परिमाणमक्कुं ४२ = ४२ = ४२ $\frac{3}{4}$। क० वृ०

पर्याप्त मनुष्यराशेः त्रिचतुर्भागो मानुषीणां द्रव्यस्त्रीणां परिमाणं भवति ४२ = ४२ = ४२ = $\frac{3}{4}$।

जो युक्तियुक्त नहीं है। अतः यहाँ ऐसा समझना चाहिये कि वस्तुतः यह संख्या द्रव्यस्त्रियोंकी न होकर भाववेदकी अपेक्षा मनुष्यगतिके स्त्रीवेदी जीवोंकी है। द्रव्यवेदकी मनुष्य स्त्री अपेक्षा तीनों वेदवाली होती हैं। (देखो जीवस्थान सत्प्ररूपणा ९३ टीका)।

आगे गो०'जीवकाण्ड गाथा १६३ में भी 'माणुसी' पदका अर्थ भाववेदवाली मनुष्यिनी ही लेना चाहिये, द्रव्यवेदवाली मनुष्यस्त्रियाँ नहीं। आगे आलाप अधिकारमें भी मनुष्यिनियोंके एक स्त्रीवेद आलाप ही लिया गया है सो इससे भी उक्त तथ्यकी पुष्टि होती है। गो० जी० पृ० ९७७ आदि।

(२) इसी प्रकार गाथा १५० में तिर्यंचगतिके जीवोंके ५ भेद और मनुष्य गतिके जीवोंके ४ भेद किये गये हैं। तिर्यञ्चोंमें वहाँ एक भेद तिर्यञ्चयोनिनी भी है। किन्तु उसका वृत्तिकारोंने क्रमसे 'योनिमतितिर्यंचरेंदु' 'योनिमत्तिर्यञ्चः' यह अनुवाद किया है। हिन्दी टीकामें भी उसी बातको दुहराकर योनिमत् तिर्यंच अर्थ किया गया है। सिद्धान्त ग्रन्थोंके अनुवादके समय हम लोगोंसे भी ऐसी ही भूल हुई है। जैसा कि हम पहले लिख आये हैं कि आगममें सामान्य तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्ययञ्च पर्याप्त, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, अपर्याप्त ये पाँच भेद तथा मनुष्योंके सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी और मनुष्य अपर्याप्त ये चार भेद दृष्टिगोचर होते हैं। उन्हें ही संक्षेपमें इस गाथा द्वारा संकलित किया गया है। अतः अनुवाद करते समय न तो योनिमत्तिर्यञ्च ही लिखना चाहिये और न योनिमत् मनुष्य ही। सिद्धान्तकी अपेक्षा ही ये दोनों प्रयोग गलत हैं। द्वितीय आवृत्तिके समय धवलामें मैंने इस भूलका परिमार्जन करना प्रारम्भ कर दिया है।

(३) सर्वार्थसिद्धिमें 'सत्संख्या' इत्यादि सूत्रकी व्याख्या षट्खण्डागम जीवस्थानके अनुसार ही की गई है। उसमें कहीं भी मतभेदकी अपेक्षा ऊहापोह नहीं किया गया है। इसलिए सासादन गुणस्थानमें जो कुछ कम बारह बटे चौदह भाग प्रमाण स्पर्शन कहा गया है वह स्पर्शन अनुयोगद्वारके अनुसार मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा ही जानना चाहिये। अतः किसी किसी हस्तलिखित प्रतिमें जो यह वचन मिलता है—

अथवा येषां मते सासादन एकेन्द्रियेषु नोत्पद्यते तन्मतापेक्षया द्वादश भागा न दत्ताः।

सो यह वचन मूल सर्वार्थसिद्धिका नहीं है, क्योंकि सर्वार्थसिद्धिके सत्प्ररूपणामें जब एकेन्द्रियोंसे लेकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त जीवोंके केवल एकान्तसे एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही स्वीकार किया गया है[1] ऐसी अवस्थामें आचार्य पूज्यपादने स्पर्शन प्ररूपणामें मतभेदकी चर्चा नहीं की होगी यह स्पष्ट ही है। हमने

१. पृ० ३१।

सर्वार्थसिद्धिका सम्पादन करते समय सासादन गुणस्थानमें कुछ कम बारह बटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन कैसे बनता है इसका स्पष्टीकरण टिप्पणमें श्री धवला स्पर्शन प्ररूपणाके आधारसे किया ही है[1]। दूसरे विशेषकी अपेक्षा विचार करते समय एकेन्द्रियोंमें सर्वलोकप्रमाण ही स्पर्शन बतलाया गया है सो इससे भी उक्त तथ्यकी पुष्टि होती है। यदि पूज्यपादको अन्य आचार्योंके मतकी अपेक्षा एकेन्द्रियोंमें सासादन गुणस्थान स्वीकार कर स्पर्शन बतलाना इष्ट होता तो वे विशेषकी अपेक्षा एकेन्द्रियोंमें स्पर्शनकी प्ररूपणा करते समय 'येषां मते' इत्यादि कह कर सासादनमें एकेन्द्रियोंका स्पर्शन कुछ कम सात बटे चौदह राजु अवश्य स्वीकार करते। किन्तु उन्होंने ऐसा कुछ भी संकेत नहीं किया, इसलिए 'अथवा येषां मते' इत्यादि वचन सर्वार्थसिद्धिमें पूज्यपादका स्वीकार न कर प्रक्षिप्त ही जानना चाहिये। भावरूपणासे भी इसकी पुष्टि होती है। आशा है इससे जिस लेखकको कहीं भी किसी प्रकारका भ्रम हुआ है उसका परिहार हो जाता है।

(४) लब्धिसार गाथा ६१ से लेकर ६७ तक की गाथाओंमें उत्कर्षणसम्बन्धी निक्षेप अतिस्थापना आदिकी प्ररूपणा करते हुए गाथा ६५ की संस्कृत वृत्तिमें उक्त गाथामें निरूपित विषयको 'अथवा आचार्यान्तरव्याख्यानमतमेतत्' यह लिखकर भिन्न आचार्यके मतसे उक्त गाथाकी प्ररूपणाका निर्देश किया गया है। किन्तु वस्तुस्थिति यह नहीं है। वस्तुतः नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीने गाथा ६२,६३ और ६४ द्वारा एक प्रकार से उत्कर्षण विषयक उत्कृष्ट निक्षेपका निरूपण कर गाथा ६५ द्वारा दूसरे प्रकारसे उत्कृष्ट निक्षेपको घटित करके बतलाया है। प्रथम प्रकार यह है—

(१) कोई एक जीव है उसने मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध ७० कोड़ाकोड़ी सागरोपम किया। पुनः बन्धावलि काल जाने पर उसने अगले समयमें उक्त बन्धकी अग्रस्थितिके निषेकसम्बन्धी कुछ परमाणु पुंजका अपकर्षण कर उदय समयसे लेकर निक्षेप किया। पुनः अगले समयमें उस प्रदेशपुंजको उस समय बँधनेवाली अपनी उत्कृष्ट स्थितिमें उत्कर्षित कर सात हजार वर्षप्रमाण उत्कृष्ट आबाधाको छोड़ कर बन्धस्थितिमें निक्षिप्त किया। ऐसा करनेपर उत्कृष्ट निक्षेपका प्रमाण सात हजार वर्ष और एक समय अधिक एक आवलिकम उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि यहाँ बन्धावलिके बाद प्रथम समयमें अपकर्षण किया और दूसरे समयमें अपकर्षित द्रव्यका उत्कर्षण किया, इसलिए नये बन्धकी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे एक समय अधिक एक आवलि तो यह कम हो गया तथा नये बन्धकी आबाधामें उत्कर्षित द्रव्यका निक्षेप नहीं होता, इसलिए उत्कृष्ट स्थितिमेंसे उत्कृष्ट आबाधाकाल और कम हो गया। यह उत्कृष्ट निक्षेपका एक प्रकार अपकर्षणपूर्वक उत्कर्षणको लक्ष्यमें रखकर सूचित किया गया है।

आगे अकर्षण किये विना उत्कृष्ट निक्षेप किस प्रकार घटित होता है इसका निर्देश करते हैं— उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होनेके एक आवलिबाद आबाधाकालके ऊपर स्थित प्रथम निषेकका तत्काल बन्धको प्राप्त समयप्रबद्धमें द्वितीय निषेकसे लेकर उत्कर्षण करनेपर इस प्रकार भी उत्कृष्ट निक्षेप प्राप्त होता है। यहाँ प्रथम बार उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे लेकर एक आवलिकाल बाद अगले समयमें होनेवाले उत्कृष्ट स्थिति बन्धके आबाधाकालके बाद जो निषेक रचना है उसमें प्रथम बार हुई बन्ध स्थितिके प्रथम निषेकका उत्कर्षण होकर निक्षेप विवक्षित है। उदाहरणार्थ प्रथम बार हुए उत्कृष्ट स्थिति बन्धका उत्कृष्ट आबाधाकाल आठ समय है और बन्धावलिकालके दो समय बाद तीसरे समयमें जो पुनः उत्कृष्ट स्थितिबन्ध हुआ उसका भी उत्कृष्ट आबाधकाल आठ समय है। जो दसवें समयपर समाप्त होता है। यतः यहाँ प्रथम समयमें हुए प्राक्तन स्थितिबन्धके नौवें समयमें स्थित निषेकका नये स्थितिबन्धमें उत्कर्षण करना है और यह उत्कर्षण करनेवाला जीव तीसरे समयमें स्थित होकर उत्कर्षण कर रहा है, अतः इस नौवें समयके निषेकका उत्कर्षण

१. पृ० १ । पृ० ४६। ३ पृ० ४८

होनेपर उसका दसवें और ग्यारवें समयप्रमाण अतिस्थापनावलिको छोड़कर बारहवें समयके द्वितीय निषेक से लेकर नये बन्धकी उत्कृष्ट स्थितिमें निक्षेप होगा यहाँ नूतन स्थितिबन्धके नौवें और दसवें समयमें निषेक रचना नहीं है और प्राक्तन स्थितिबन्धके नौवें समयके प्रथम निषेकका उत्कर्षण होनेपर दसवें समयके साथ ग्यारहवाँ समय अतिस्थापनामें गया, इसलिए यहाँ भी उत्कृष्ट निक्षेप एक समय और एक आवलि अधिक उत्कृष्ट आबाधासे न्यून उत्कृष्ट बन्धस्थिति प्रमाण जानना चाहिये, क्योंकि प्राक्तन जिस बन्धस्थितिके प्रथम निषेकका उत्कर्षण करना है वह आबाधाके ऊपर स्थित है तथा जिस निषेकका उत्कर्षण करना है उसमें उत्कर्षित द्रव्यका निक्षेप नहीं होता तथा उस निषेकके आगे एक आवलिप्रमाण अतिस्थापनावलि है, इसलिए उत्कृष्ट स्थितिबन्धमेंसे एक समय और एक आवलिकाल अधिक उत्कृष्ट आबाधासमय कम करके उत्कृष्ट निक्षेपका निर्देश किया गया है।

यहाँ ऐसा समझना चाहिए कि प्रत्येक समयमें जिस निषेकका अपकर्षण होता है उससे नीचे अतिस्थानकी छोड़कर शेष स्थितिमें अपकर्षित द्रव्यका निक्षेप होता है। और प्रत्येक समयमें जिस निषेकका उत्कर्षण होता है उससे ऊपरसे लेकर यथासम्भव अतिस्थापना होता है जिसमें उत्कर्षित द्रव्यका निक्षेप नहीं होता। इसी तथ्यको ध्यानमें रखकर सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका टीकामें आवश्यक प्रकरणका स्वाध्याय करना चाहिये। संस्कृत वृत्तिमें 'इपरि' अग्रे, अन्तिमातिस्थापनावलि युक्त्वा। पाठ होनेसे ही सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका टीकामें भी उन्हीं पाठोंको ध्यानमें रख कर अनुसरण किया गया है। जब कि अपकर्षणमें जिस निषेकके प्रदेश पुंजका अपकर्षण किया जाता है ठीक उसके नीचे अतिस्थापना होती है और उत्कर्षणमें जिस निषेकके प्रदेशपुंजका उत्कर्षण किया जाता है ठीक उसके ऊपर अतिस्थापना होती है। अतः प्रकृतमें यह समझना चाहिये कि अतिस्थापनाके विषयमें उक्त टोकाओंमें जो कुछ निर्देश किया गया है उसका उक्त आशयके साथ स्वाध्याय करना चाहिये।

(६) उपशान्तकषाय गुणस्थानमें परिणामों और उदयके सम्बन्धमें आगमके अनुसार यह व्यवस्था है—

(१) वहाँ नियमसे अवस्थित परिणाम होता है, क्योंकि वहाँ परिणामोंके हीनाधिक होनेका कोई कारण नहीं पाया जाता।

(२) ज्ञानावरणादि ३५ प्रकृतियोंका वह अवस्थित वेदक होता है।

(३) इनके सिवाय अन्य प्रकृतियोंका षड्गुणी हानि, षड्गुणी वृद्धिरूप और अवस्थितवेदक होता है।

यह व्यवस्था चूर्णिसूत्र, जयधवला और लब्धिसार (गा० ३०६-३०७) में एक स्वरसे स्वीकार की गई है।

किन्तु लब्धिसार गा० ३०६ की वृत्तिमें एक तो स्वीकार कर लिया है कि उपशान्तकषाय गुणस्थान में संक्लेश-विशुद्धिरूप परिणाम होते हैं। दूसरे जिन केवल ज्ञानावरण आदि प्रकृतियोंका उक्त जीव अवस्थित वेदक होता है उनके उदयकी हानि-वृद्धि स्वीकार करके भी गा० ३०७ की वृत्तिमें उनका अवस्थित वेदक होता है यह भी स्वीकार कर लिया है जो युक्त नहीं है। अतः यहाँ आगमके अनुसार निर्णय करके स्वाध्याव करना चाहिये।

ये कुछ तथ्य हैं जिनका सैद्धान्तिक चर्चाके प्रसंगसे यहाँ निर्देश किया है।

विचारके लिए और भी विषय हो सकते हैं। पर तत्काल उनपर प्रकाश डालना सम्भव नहीं है।

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीका

समग्र जैन समाजमें ऐसा एक भी व्यक्ति ढूंढे नहीं मिल सकता जो आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी से सुपरिचित न हो। उनके द्वारा की गई साहित्य सेवा ही उनके पाण्डित्य और तलस्पर्शी ज्ञानका साक्ष्य है। आचार्यकल्प यह उपाधि उनकी केवल प्रशंसामात्र नहीं है। यदि उनकी अन्य रचनाओंको ध्यानमें न भी लिया जाय तो भी एकमात्र सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका टीका ही उनके वैदुष्यकी अमर साक्षी है। गोम्मटसार जीवकाण्ड-कर्मकाण्डकी वृत्ति लिखते समय नेमिचन्द्रकी जीवप्रबोधिनी वृत्ति और लब्धिसारकी अनाम संस्कृत वृत्ति तथा माधवचन्द्र त्रैविद्यदेवका क्षपणासार ग्रन्थ उनके सामने रहा हैं। उक्त वृत्तियों और क्षपणासारको शब्दशः आधार बनाकर ही उन्होंने इस टीकाकी रचना की है। साथ ही इन ग्रन्थोंपर उन्होंने विस्तृत भूमिकाएँ और दोनों वृत्तियोंमें आई हुई अर्थसंदृष्टियोंपर स्वतन्त्र अर्थसंदृष्टि प्रकरण भी लिखे हैं।

लब्धिसार मुख्यतया छह अधिकारोंमें विभक्त है। पाँचवेंका नाम चारित्रमोहनीय उपशमना है। इस ग्रन्थकी यहींतक संस्कृत वृत्ति पाई जाती है। इसकी रचना किसने की इसपर न तो वृत्तिकारने ही कोई प्रकाश डाला है और न अपनी टीकामें पण्डितजीने ही। अन्तिम अधिकार चरित्रमोहनीयक्षपणा है। इसकी स्वतन्त्र संस्कृत वृत्ति नहीं है। माधवचन्द्र त्रैविद्यदेवका स्वतन्त्र क्षपणासार ग्रन्थ है जो इस समय कहीं कहीं त्रुटितरूपमें दिल्लीके किसी शास्त्रभण्डारमें मौजूद है। उपलब्ध होनेपर उसे व्यवस्थित कर उसपर काम किया जा सकता है। पण्डितजीने अवश्य उसे ही माध्यम बनाकर चरित्रमोहक्षपण अधिकारकी अपनी टीका लिखी है। पण्डितजीने अपनी टीकामें जितना कुछ लिपिबद्ध किया है उसे यदि हम उक्त संस्कृत वृत्तियों और क्षपणासार का मूलानुगामी अनुवाद कहें तो भी कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इतना अवश्य है कि जहाँ आवश्यक समझा वहाँ भावार्थ आदि द्वारा उन्होंने उसे विशद अवश्य किया है।

पण्डितजीकी सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीका विशद और सुबोध है। संस्कृत वृत्तियोंकी तुलनामें मूल ग्रन्थोंमें प्रवेश करने और विषयको हृदयंगम करनेमें इससे विशेष सहायता मिलती है। जहाँ भी वृत्तियोंके आधारपर मूल विषयको समझनेमें कठिनाई आती है वहाँ विद्वान भी इसीका सहारा लेकर मूल विषयको समझनेमें समर्थ होते हैं। आमतौरपर जयधवलामें पहले मूल गाथाका स्पष्टार्थ लिखनेके बाद ही उसमें गर्भित अर्थका विशेष विवरण प्रस्तुत किया है पर लब्धिसार वृत्तिमें इस पद्धतिको नाममात्र भी स्पर्श नहीं किया गया है। इससे प्रायः चरित्रमोह उपशमना और क्षपणा प्रकरणमें गाथाके आधारसे अर्थबोध होना कठिन जाता है। सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका टीका यतः संस्कृत वृत्तिका ही अनुसरण करती है तो भी उन्होंने उसे बीजगणित (अर्थसंदृष्टि) से मुक्त रखकर इसका निर्माण किया है, इसलिए उसके आधारसे विषयको हृदयंगम करनेमें सरलता जाती है। पण्डितजीने एकादि स्थलपर ऐसा अवश्य ही संकेत किया हैं कि इसका अर्थ स्पष्टरूपसे मेरे लक्ष्यमें नहीं आया सो इसे उनकी सरलता ही समझनी चाहिये।

पण्डितजीने गोम्मटसारकी टीका विक्रम सं० १८१८ के माघ शुक्ला ५ को पूर्ण की थी ऐसा गोम्मटसारकी प्रशस्तिसे ज्ञात होता है पर उसी कालके भीतर लब्धिसारकी टीका भी गर्भित जानना चाहिये। विज्ञेषु किमधिकम्।

■

प्रस्तावना

आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी

सम्यग्दर्शनचरनगुत पाय कुकर्म खिपाय।
केवलज्ञान उपाय प्रभु भये भजौं शिवराय ॥१॥
जिनवानीके ज्ञानतैं होत तत्त्व श्रद्धान।
चरण धारि केवल लहै पावै पद निरवान ॥२॥
नेमिचन्द आह्लादकर माधवचंद प्रधान।
नमौं जास उजासतैं जाने निज गुणठान ॥३॥
लब्धिसारकौं पायकै करिकैं क्षपणासार।
हो है प्रवचनसार सो समयसार अविकार ॥४॥

ऐसें मंगलाचरण करि लब्धिसारके सूत्रनिका भाषारूप व्याख्यान करिए है ताका प्रयोजन कहा ? सो कहिए है—

श्रीमद्गोम्मटसार शास्त्रविषैं जीवकांड कर्मकांड अधिकारनिकरि जीव अर कर्मका स्वरूप प्रगट कीया ताकौं यथार्थ जानि मोक्षमार्गविषैं प्रवर्तना। जातैं आत्महित मोक्ष है तिसहीके अर्थि विवेकी जीवनिका उपाय है। सो मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्र है, सम्यग्ज्ञान भी मोक्षमार्ग है सो सम्यग्दर्शनका सहकारी ही जानना। तहां सम्यग्दर्शन तीन प्रकार औपशमिक १ क्षायोपशमिक २ क्षायिक ३। बहुरि सम्यक्चारित्र दोय प्रकार देशचारित्र १ सकलचारित्र २। तहाँ देशचारित्र तौ क्षायोपशमिक ही है अर सकलचारित्र तीन प्रकार है—क्षायोपशमिक १ औपशमिक २ क्षायिक ३। सो ऐसै सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्रकी लब्धि भएं केवलज्ञानकौं पाइ तहाँ सयोगी अयोगी जिन होइ सिद्धपदकौं प्राप्त हो है। सो इनि सबनिका स्वरूप नीकै जान्या चाहिए, जातैं एई आत्माके प्रयोजनभूत कार्य हैं, तातैं इनिकौं होतैं पूर्वे भए कर्मनिके बंध उदय सत्त्वकी कैसी कैसी अवस्था हो है अर जीवका परिणमन कैसें कैसें हो है ? इत्यादि विशेष जानना युक्त है। बहुरि याकौं जानै चौदह गुणस्थाननिका भी स्वरूप विशेषपने नीके जानिए है। अर जीव कर्मादिकी सर्व चर्चानिविषैं गुणस्थाननिकी चर्चा प्रधान है, तातैं इहां तिन औपशमिक सम्यक्त्व आदिका वर्णन अवश्य करना ऐसा प्रयोजन विचारि उद्यम कीया तब हम यंत्रादि रचना सहित लब्धिसार नाम शास्त्रका मूल गाथानिका एक पुस्तक देख्या। तहां तिन औपशमिक सम्यक्त्वादिकनिका विशेष वर्णन जानि तिनि गाथानिका भाषारूप व्याख्यान करनेका विचार भया। बहुरि लब्धिसारकी टीकाके पुस्तक देखे, तहां औपशमिक चारित्रका वर्णन पर्यंत गाथानिहीकी संस्कृत टीकाकरि समास करी। अवशेष क्षायिक चारित्रादिकका वर्णनरूप गाथानिकी संस्कृत टीका नाहीं। बहुरि एक क्षपणासार नामा जुदा ग्रंथ शास्त्र ताके पुस्तक देखे तहां गाथा तौ नाहीं अर संस्कृत धारारूप ही क्षायिक चारित्रादिकका वर्णन है। सो याके अर्थका अर तिनअवशेष लब्धिसारकी गाथानिके अर्थका प्रयोजन समानसा देख्या, सो ऐसें अवलोकि यह विचार कीया जो औपशमिक चारित्र पर्यंत गाथानिका व्याख्यान तौ संस्कृतटीकाके अनुसारि करना अर अवशेष गाथानिका व्याख्यान क्षपणासारके अनुसारि करना सो ऐसें अनुसार लीए लब्धिसारकी गाथानिका संक्षेप

अर्थ इहां लिखिए है। विस्तार होनेके भयतैं विशेष नाहीं लिखिए है वा कोई कठिन अर्थ मेरी समझिमैं नीके न आवनेतै इहां न लिखिए है, सो संस्कृत टीका वा क्षपणासारतैं जानियो। बहुरि अैसें व्याख्यान करतैं कहीं चूक होइ, बुद्धिकी मंदतातैं अन्यथा लिखों तहां विशेषज्ञानी संवारि शुद्ध करियो, जातैं अर्थ तौ गंभीर है अर बुद्धि मेरी तुच्छ है, तातैं कहीं चूक भी परै। अैसें विचारिकरि इस भाषा करनेका प्रारंभ कीजिए है। तहां प्रथम केते इक अर्थ वा संज्ञा विशेष दिखाइए है। जिनिकौं जानैं आगैं तिनिका वर्णन जहां आवै तहां इनिकौं यादिकरि नीके अर्थज्ञानी होइ। तहां इस शास्त्रविषैं दश करणनिका विशेष प्रयोजन है, तातैं प्रथम इनिका स्वरूप कहिए है—

कर्मनिकी दश अवस्था हैं—बंध १ सत्त्व २ उदय ३ उदीरणा ४ उत्कर्षण ५ अपकर्षण ६ संक्रमण ७ उपशम ८ निधत्ति ९ निकांचना १० ए दश करण हैं। सो इनिका स्वरूप गोम्मटसारका कर्मकांडविषैं दश करण चूलिका नामा अधिकार है तहां कह्या है सो जानना। इहां भी प्रयोजन जानि किछू लिखिए है—तहां नवीन पुद्‌गलनिका कर्मरूप आत्माकैं सम्बन्ध होना ताका नाम बन्ध है। सो च्यारि प्रकार हैं—प्रकृतिबन्ध १ प्रदेशबन्ध २ स्थितिबन्ध ३ अनुभागबन्ध ४। तहां कर्मरूप होने योग्य जे कार्मण वर्गणारूप पुद्‌गल तिनिका ज्ञानावरणादि मूल प्रकृति वा उत्तर प्रकृतिरूप परिणमना सो प्रकृतिबन्ध है। तहां जेती प्रकृतिनिका जहां बन्ध संभवै तहां तितनी प्रकृतिबन्ध जानना। बहुरि तिनि प्रकृतिरूप जितनी पुद्‌गल परमाणू परिणमीं तिनिका प्रमाणरूप प्रदेश बन्ध है, जातैं इहां प्रदेश नाम पुद्‌गल परमाणूका है सो अभव्य राशितैं अनन्तगुणा अैसा जो सिद्धराशिके अनन्तवां भागमात्र प्रमाण तिस प्रमाणमात्र परमाणू मिलि एक कार्मण वर्गणा हो है। अर तितनी ही वर्गणा मिलि एक समयप्रबद्ध हो है। इतनी परमाणू समय समय विषैं कर्मरूप होइ एक जीवकै बंधै, तातै याका नाम समयप्रबद्ध है। सो यहु सामान्य प्रमाण है। विशेष योगनिकी अधिक हीनताके अनुसारि समयप्रबद्धविषैं परमाणूनिकी अधिक हीनता जाननी। बहुरि एक समयविषैं ग्रह्या हूवा जो समयप्रबद्ध सो यथासम्भव मूल प्रकृति वा उत्तर प्रकृतिरूप परिणमैं। तहां तिन प्रकृतिनिके परमाणूनिके विभागका विधान गोम्मटसारका बन्ध सत्त्व उदय अधिकारविषैं प्रदेश बन्धका व्याख्यान करते कह्या हैं सो जानना। सो जिस प्रकृतिकैं जितनी परमाणू वटमें आवै तिस प्रकृतिका तितने परमाणूनिका समूहमात्र समयप्रबद्ध जानना। बहुरि जे परमाणू प्रकृतिरूप बन्धीं ते परमाणू तिसरूप इतना काल रहसी अैसा बंध होतैं स्थितिका प्रमाण होना सो स्थितिबंध है। तहां एक समयविषैं जो स्थितिबंध भया ताविषैं बंध समयतैं लगाय आबाधा काल पर्यंत तौ तहां बंधी हुई परमाणूनिके उदय आवने योग्यपनेका अभाव है, तातै तहां निषेकरचना है नाहीं। ताके पीछै प्रथम समयतैं लगाइ बंधी हुई स्थितिका अन्त समय पर्यंत एक एक समयविषैं एक एक निषेक उदय आवने योग्य हो है। तातैं प्रथम निषेककी स्थिति एक समय अधिक आबाधा कालमात्र है। द्वितीय निषेककी स्थिति दोय समय अधिक आबाधा कालमात्र हैं। अैसें क्रमतें द्विचरम निषेकको स्थिति एक समय घाटि स्थितिबंधप्रमाण है। अन्त निषेककी स्थिति सम्पूर्ण स्थितिबंधप्रमाण है। जैसें मोहको सत्तर कोडाकोडी सागरको स्थिति बंधो, तहां सात हजार वर्षका आबाधा काल है अर प्रथम निषेककी स्थिति एक समय अधिक सात हजार वर्ष है। द्वितीयादि निषेकनिकी क्रमतैं एक एक समय अधिक होइ अन्त निषेककी सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण स्थिति जाननी। अैसें ही आयु विना सात कर्मनिका विधान है। बहुरि आयुका स्थितिबंध विषैं आबाधा काल नाहीं गिनिए हैं, जातैं ताका आबाधा काल पूर्व पर्याय विषैं ही व्यतीत हो है। तहां तिस कायके उदय होने योग्यपनाका अभाव हैं, तातैं आयुका प्रथम निषेककी स्थिति एक समय द्वितीय निषेककी दोय समय अैसें क्रमतैं अन्त निषेककी सम्पूर्ण स्थितिबंधमात्र स्थिति जाननी। अैसें एक समय विषैं बंधी जो स्थिति तिहिविषैं विशेष जानना।

बहुरि सामान्यपनैं जो अंत निषेककी स्थिति तिसप्रमाण है तहां स्थितिबंध कहिए हैं, जातैं सामान्य कथनविषैं उत्कृष्टका ग्रहण कीजिए है।

बहुरि एक समयविषैं बंध्या जो प्रकृतिका समयप्रबद्ध ताके परिमाणूनिविषैं प्रथमादि निषेकनिका कैसैं विभाग हो है ? ताके जाननेकौं गोम्मटसारविषैं कर्मकांडका कर्मस्थिति रचना सद्भावनामा अंतका जो अधिकार तहां द्रव्यस्थिति गुणहानि नानागुणहानि अन्योन्याभ्यस्तराशि दो गुणहानिका प्रमाण कहि तहां विधान कह्या है सो जानना। इहां भी आगैं संक्षेपसा विधान कहिएगा। बहुरि इनि प्रथमादि निषेकनिकी रचना ऊपरि ऊपरि लिखिए है, तातैं प्रथमादि पहले निषेकनिकौं नीचेंके निषेक कहिए है अर पिछले निषेकनिकौं ऊपरिके निषेक कहिए है अैसा जानना। बहुरि जैसैं भाजनादि निमित्ततैं पुष्पादिक हैं ते मदिरारूप परिणमैं तिनमैं अैसी शक्ति हो है जो भक्षणकालविषैं हीनाधिक विशेष लीएं पुरुषकौं उन्मत्तता करै तैसैं रागादि निमित्ततैं पुद्गल हैं ते कर्मरूप परिणमैं, तिनमैं अैसी शक्ति हो है जे उदयकालविषैं हीनाधिक विशेष लीएं जीवकैं ज्ञान आच्छादनादि करैं। अैसैं बंध होतैं शक्तिका होना ताका नाम अनुभागबंध है। तहां एक प्रकृतिके एक समयविषैं बंधे जे परमाणू तिनविषैं नानाप्रकार शक्ति हो है सो कहिए है—

शक्तिका अविभाग अंश ताका नाम अविभागप्रतिच्छेद है। बहुरि तिनके समूहकरि युक्त जो एक परमाणू ताका नाम वर्ग है। बहुरि समान अविभागप्रतिच्छेदयुक्त जे वर्ग तिनके समूहका नाम वर्गणा है। तहां स्तोक अनुभागयुक्त परमाणूका नाम जघन्य वर्ग है। तिनके समूहका नाम जघन्य वर्गणा है। बहुरि जघन्य वर्गतैं एक अधिक अविभागप्रतिच्छेदयुक्त जे वर्ग तिनके समूहका नाम द्वितीय वर्गणा है। अैसैं क्रमतैं एक एक अविभागप्रतिच्छेद अधिक वर्गनिका समूहरूप वर्गणा यावत् होइ तावत् तिन वर्गणानिके समूहका नाम जघन्य स्पर्धक है। बहुरि जघन्य वर्गतैं दूणा अविभागप्रतिच्छेद युक्त वर्गनिका समूहरूप द्वितीय स्पर्धककी प्रथम वर्गणा हो है। बहुरि ताके ऊपरि एक एक अविभागप्रतिच्छेद अधिक क्रम लीएं जे वर्ग तिनिका समूहरूप वर्गणा यावत् होइ तावत् तिनि वर्गणानिका समूहरूप द्वितीय स्पर्धक हो है। अैसैं ही तृतीय चतुर्थादि स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके वर्गविषै तौ जघन्य स्पर्धकतैं (जघन्य स्पर्धककी प्रथम वर्गणाकैं वर्गनिके समूहतैं) तिगुणे चौगुणे आदि अविभागप्रतिच्छेद जानने। बहुरि इहां सर्व परमाणूनिका प्रमाण ऊपरि पूर्वोक्त एक एक अधिकका क्रम जानना। सो अैसा विधान यावत् सर्व परमाणू संपूर्ण होंइ तावत् जानना। बहुरि इहां सर्व परमाणूनिका प्रमाणमात्र तौ द्रव्य है अर वर्गणानिका प्रमाणमात्र अनंतप्रमाण लीएं स्थिति है अर अनुभागसंबंधी यथासंभव अनंतप्रमाण लीएं गुणहानि अर नाना गुणहानि अर अन्योन्याभ्यस्तराशि अर दो गुणहानि है। सो इनिकौं स्थापि तहां 'दिवड्ढगुणहाणि भाजिदे पढमा' इत्यादि आगे कहिए है सो विधान तातैं प्रथमादि गुणहानिनिका प्रथमादि वर्गणानिविषैं वर्गनिका प्रमाण ल्यावना। अैसी वर्गणा एक स्पर्धकविषैं जितनी पाइए ताका नाम एक स्पर्धक वर्गणाशलाका है। बहुरि एक गुणहानिविषैं जेता स्पर्धक पाइए है तिनिका नाम एक गुणहानि स्पर्धकशलाका है। अैसैं अविभागप्रतिच्छेदनिका समूह वर्ग है, वर्गनिका समूह वर्गणा है, वर्गणानिका समूह स्पर्धक है, स्पर्धकनिका समूह गुणहानि है। गुणहानिका प्रमाण सोई नाना गुणहानि है अैसा जानना। सो यहु कथन गोम्मटसारविषैं भी है तथा इहां भी आगै नीके कहिएगा।

बहुरि इन प्रथमादि स्पर्धकनिकी रचना ऊपरि ऊपरि करिए है, तातैं प्रथमादि पहिले स्पर्धकनिकौं नीचले स्पर्धक कहिए। अर पिछले स्पर्धकनिकौं ऊपरले स्पर्धक कहिए। बहुरि पूर्वोक्त विधानतैं प्रथमादि स्पर्धकनिविषै क्रमतैं परमाणूनिका प्रमाण तौ घटता घटता है अर अनुभाग बंधता बंधता है। तहां प्रथमादि सर्व स्पर्धकनिका च्यारि विभाग करिए है ते घातियानिका तौ लता दारु अस्थि शैलसमान अर अप्रशस्त अघाति-

यानिका निंब कांजीर विष हलाहलसमान अर प्रशस्त अघातियानिका गुड खंड शर्करा अमृतसमान च्यारि भाग जानने। बहुरि घातियानिविषैं लता भागके अर केताइक दारु भागके स्पर्धक देशघाती हैं। अवशेष सर्वघाती हैं। सो विशेष आगे आवेगा अैसें अनुभागविषैं विशेष है। सो स्थितिसंबंधी एक एक निषेकके परमाणूनिविषैं अैसा अनुभागका विशेष पाइए है। जैसें स्थितिके पहिले निषेक पहलैं उदय आवैं पिछले पीछैं उदय आवैं तैसैं अनुभागके पहिले स्पर्धक पहिले उदय आवनेका पिछले स्पर्धक पीछे उदय आवनेका नियम नाहीं है। बहुरि सामान्यपनैं जहां जो उत्कृष्ट अनुभाग पाइए सोई तहां अनुभागबंधका प्रमाण कहिए है। अैसैं बंधका स्वरूप कह्या।

बहुरि अनेक समयनिविषैं बंधे हुए कर्मनिका विवक्षित कालादिकविषैं जीवकैं अस्तित्व ताका नाम सत्त्व है सो च्यारि प्रकार प्रकृतिसत्त्व १ प्रदेशसत्त्व २ स्थितिसत्त्व ३ अनुभागसत्त्व ४। तहां अनेक समयनिविषैं बंधी जो ज्ञानावरणादिक मूल प्रकृति वा तिनकी उत्तर प्रकृति तिनिका जो अस्तित्व सो प्रकृतिसत्त्व है। बहुरि तिनि प्रकृतिरूप परिणमी अैसे जे अनेक समयनिविषैं बंधी ग्रही हुई पुद्गल परमाणू तिनिका अस्तित्व सो प्रदेशसत्व है, सो समय समय विषैं एक एक समयप्रबद्ध ग्रहे तिनके पूर्वोक्त प्रकार एक एक निषेक क्रमतैं निर्जरैं। तहां जिनि समयप्रबद्धनिके सर्व निषेक गले तिनिका तौ अस्तित्व रह्या ही नाही। बहुरि कोई समयप्रबद्धका अन्य निषेक गलि एक निषेक अवशेष रह्या, कोईके अन्य निषेक गलि दोय निषेक अवशेष रहै। अैसैं क्रमतैं जाका एक निषेक गल्या ताके तिस बिना सर्व निषेक अवशेष रहै हैं। जाका कोई निषेक न गल्या ताके सर्व ही निषेक अवशेष रहैं। अैसैं अवशेष रहे समस्त निषेक तिनके परमाणूनिका मिल्या हुवा प्रमाण किंचित् उन ड्योढ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण है। सो याका विधान गोम्मटसारका कर्मस्थिति रचना सद्भाव अधिकारविषैं त्रिकोण रचना करि दिखाया है सो जानना। अैसैं इनि परमाणूनिका अस्तित्व सो प्रदेशसत्व जानना। इहां जो एक प्रकृतिकी विवक्षा होइ तौ एक प्रकृतिसंबंधी समयप्रबद्ध ग्रहण करना। जो सर्व प्रकृतिकी विवक्षा होइ तौ सर्व प्रकृतिसंबंधी समयप्रबद्ध जानना। बहुरि तिनि अनेक समयनि विषैं बंधी प्रकृतिनिकी स्थिति ताका नाम स्थितिसत्व है तहां तिनि प्रकृतिनिका जिस समयप्रबद्धका एक निषेक अवशेष रह्या ताकी एक समयकी स्थिति हैं, जाका दोय निषेक अवशेष रहे ताके प्रथम निषेकको एक समय अर द्वितीय निषेकको दोय समय स्थिति है। अैसैं क्रमतैं जाका एक हू निषेक न गल्या ताकी प्रथमादि निषेकनिकी एक दोय आदि समयनिकरि अधिक आबाधाकालमात्र स्थितिका क्रमकरि तहां अंत निषेकको संपूर्ण स्थितिबंधमात्र स्थिति है। इहां सत्वविषैं अनेक समयप्रबद्धनिके एक समयविषैं उदय आवने योग्य अनेक निषेक मिलैं जो होइ सो एक निषेक जानना। सो इनि विषैं परमाणूनिका प्रमाण आगे कहेंगे। बहुरि सामान्यपनैं जो एक प्रकृतिकी विवक्षा होइ तौ ताके पहिले बंध्या वा पीछे बंध्या समयप्रबद्धनिविषैं जाके बहुत निषेक सत्ताविषैं पाइए तिस समयप्रबद्धके अंतका निषेकको जेती स्थिति तिस प्रमाण स्थितिसत्व कहना। अर सर्व प्रकृतिकी विवक्षा होइ तौ जिस प्रकृतिका समयप्रबद्धके अंत निषेकको बहुत स्थिति होइ ताका अंत निषेकको स्थितिप्रमाण स्थितिसत्व कहना। बहुरि तिन अनेक समयनिविषैं बंधी जे प्रकृति तिनिका जो अनुभाग सत्तारूप है ताका नाम अनुभागसत्व है। तहां एक समयविषैं उदय आवने योग्य अनेक समयप्रबद्धनिके निषेक मिलि भया सत्तासंबंधी एक निषेक ताके परमाणूनिविषैं अथवा अनेक समयनिविषैं बंधे समयप्रबद्धनिके गले पीछे अवशेष निषेक रहे तिन सबनिके परमाणूनिविषैं पूर्वोक्त प्रकार अविभागप्रतिच्छेद वर्ग वर्गणा स्पर्धकरूप अनुभागका विशेष जानना। तहां परमाणूनिका प्रमाण पूर्वोक्त प्रकार ल्यावना। बहुरि सामान्यपनैं तहां पूर्वोक्त च्यारि प्रकार अनुभागका ग्रहण जानना। अैसैं सत्वनिका निरूपण कीया।

बहुरि कर्मनिका अपने काल आएं फल देनेरूप होइ खिरनेकौं सन्मुख होना सो उदय है सो च्यारि प्रकार–प्रकृति उदय १ प्रदेश उदय २ स्थिति उदय ३ अनुभाग उदय ४। तहां यथासंभव मूल प्रकृति वा उत्तर प्रकृतिका फल देनेरूप उदय आवना सो प्रकृति उदय है। बहुरि तिस उदयरूप प्रकृतिके जे परमाणू खिरनेकौं सन्मुख होइ उदय आवैं सो प्रदेश उदय है। तहां अनेक समयनिविषैं बंधे समयप्रबद्धनिका तिस विवक्षित एक समयविषैं उदय आवने योग्य जे निषेक तिन सब निषेकनिके परमाणू तिस विवक्षित एक समयविषैं उदय हो हैं सो कहिए है—

जिस समयप्रबद्धका एकहू निषेक न गल्या ताका प्रथम निषेक उदय हो है। जाका प्रथम निषेक पूर्वे गल्या ताका द्वितीय निषेक तहां उदय हो है। अैसैं क्रमतैं जाके दोय निषेक अवशेष रहे ताका तहां उपांत निषेक उदय हो है। जाका एक निषेक ही अवशेष रह्या ताका सोई अंत निषेक तहां उदय हो है। अैसैं सर्व निषेक मिली एक समयप्रबद्धमात्र परमाणूनिका उदय हो है। बहुरि तहां उदीरणा उत्कर्षण अपकर्षण आदिका वशतैं विशेष है सो कहिए है—

ऊपरले नीचले अन्य समयनिविषैं उदय आवने योग्य निषेकनिके परमाणू तिस विवक्षित समयविषैं उदय आवने योग्य निषेकनिविषैं मिलाया होइ तौ ते परमाणू भी तिनही की साथि तिसही समयविषैं उदय हो हैं। जैसैं अंक संदृष्टि करि तरेसठिसै परमाणू तौ तिस समय उदय आवने योग्य निषेकनिके थे अर हजार परमाणू अन्य निषेकनिके तहां मिलाए तौ तहां तिहत्तरिसै परमाणूनिका उदय हो है। अैसैं ही तिस समय-विषैं उदय आवने योग्य निषेक तिनिके परमाणू अन्य निषेकनिविषैं मिलाए होंइ तौ तहां तिनिके अवशेष परमाणू उदय हो हैं। जैसैं तिरेसठिसै परमाणू तिस समयविषैं उदय आवनेयोग्य निषेकनिके थे तिनमैं हजार परमाणू अन्य निषेकनिविषैं मिलाए तौ तहां तरेपनसै परमाणूनिहीका उदय हो है। बहुरि तिस समय विषैं उदय आवने योग्य निषेकनिका केतेइक परमाणू अन्य निषेकनिविषैं अन्य निषेकनिका परमाणू तिनविषैं मिला-ए होंइ तौं तहां जेते परमाणू हीन अधिक भए तिनिहीका उदय हो है। जैसैं तिरेसठिसै परमाणू तिस समय उदय आवने योग्य निषेकके थे तिनमैं सातसै परमाणू तौ अन्य निषेकनिके मिले अर हजार परमाणू अन्य निषेकनिविषैं दीए तौं तिस समयविषैं छै हजार परमाणू ही का उदय हो है। अैसैं उदीरणादिककी अपेक्षा विशेष जानना। बहुरि विवक्षित एक समयविषैं जे तिस समयविषैं उदय आवने योग्य निषेक तिनिका ही उदय होइ। ताका उदय होतैं सत्तारूप स्थितिविषैं एक समय घटै है, तातैं तहां एक समयमात्र स्थिति उदय जानना। बहुरि कांडकविधानतैं अनेक समयमात्र स्थिति घटाइए है सो विधान आगै लिखेंगे। बहुरि तिस एक समय विषैं अनुभागका उदय होना सो अनुभाग उदय है। तहां तिस समयविषैं उदय आवने योग्य परमाणूनिविषैं पूर्वोक्त प्रकार अविभागप्रतिच्छेद वर्गणा स्पर्धक आदि विशेष जानना। बहुरि जो उत्कर्षण अपकर्षण कांडकादि विधानतैं अनुभागका घटना बधना भया होइ तौ तहां जैसा अनुभाग संभवै तितनाहीका उदय जानना। इहां प्रश्न–जो तिस समय विषैं उदय आवने योग्य परमाणूनिविषैं कोई परमाणूविषै स्तोक अनुभाग है कोई विषैं बहुत है तिनि सबनिका एक समय विषैं कैसैं उदय हो है? ताका समाधान–जैसै कोई वस्तु स्तोक शीतलता करनेकौं कारण है कोई बहुत शीतलता करनेकौं कारण है तिनि सबनिकी गोली एक भई ताका एक काल भक्षण कीया तहां सबनिकी शीतलता मिलै जैसी शीतलता होनी संभवै तैसी भक्षण करनवालोकैं शीतलता हो है तैसैं कोई परमाणूनिविषैं स्तोक अनुभाग है कोई विषैं बहुत अनुभाग है तिनि सबनिका एक निषेक भया ताका एक कालविषैं उदय आया तहां सबनिका अनुभाग मिलैं जैसा अनुभाग होना संभवै तैसा उदयवालेकैं अनुभाग उदय हो है। सामान्यपनै च्यारि प्रकार अनुभाग यथासंभव तहां जानना। अैसैं उदयका स्वरूप कह्या।

बहुरि अपक्वपाचन कहिए जो पच्या नाही—उदय कालकौं प्राप्त न भया जो कर्म ताका पाचन कहिए पचावना उदय कालविषैं प्राप्त करना अैसा है लक्षण जाका सो उदीरणा कहिए है। तहां वर्तमान समयतैं लगाए आवलीमात्र कालविषैं उदय आवने योग्य जे निषेक तिनिका नाम उदयावली है। ताके ऊपरिवर्त्ती निषेकनिकौं उदयावलीबाह्य कहिए है। तहां उदयावली बाह्य तिष्ठते जे निषेक तिनके परमाणूनिकौं उदयावलीके निषेकनिविषैं मिलावना। अैसैं बहुत कालविषैं उदय आवते ते अपक्व कहिए, तिनिकौं उदयावलीके निषेकनिका साथी उदय होने योग्य करना सो पाचन कहिए अैसा कार्य जिस समयविषैं होइ तिस समयविषैं उदीरणा नाम पावै है। तिस समयविषैं पीछे सोई द्रव्य सत्तारूप वा उदयरूप कहिए है। अैसैं उदीरणाका स्वरूप कह्या।

बहुरि स्थिति अनुभागका बंधना ताका नाम उत्कर्षण है। तहां स्तोक कालमैं उदय आवने योग्य जे नीचेके निषेक तिनिके परमाणू ते बहुत कालमें उदय आवने योग्य जे ऊपरिके निषेक तिनिविषैं मिलैं अैसैं स्तोक स्थितिका बहुत स्थिति होनेका नाम स्थिति उत्कर्षण है। बहुरि स्तोक अनुभागयुक्त जे नीचेके स्पर्धक तिनिके परमाणू ते बहुत अनुभागयुक्त जे ऊपरिके स्पर्धक तिनिविषैं मिलैं अैसैं स्तोक अनुभागका बहुत अनुभाग होनेका नाम अनुभाग उत्कर्षण है। बहुरि अैसैं ही स्थिति अनुभागके घटनेका नाम अपकर्षण जानना। तहाँ बहुत कालमें उदय आवने योग्य जे ऊपरिके निषेक तिनके जे परमाणू ते स्तोक कालमैं उदय आवने योग्य जे नीचेके निषेक तिनिविषैं मिलैं अैसैं बहुत स्थितिका स्तोक स्थिति होनेका नाम स्थिति अपकर्षण है। बहुरि बहुत अनुभागयुक्त जे ऊपरिके स्पर्धक तिनिके जेते परमाणू ते स्तोक अनुभागयुक्त जे नीचेके स्पर्धक तिनिविषैं मिलैं अैसैं बहुत अनुभागका स्तोक अनुभाग होनेका नाम अनुभाग अपकर्षण है। बहुरि तहाँ विवक्षित सर्व परमाणूनिके समूहकौं उत्कर्षण वा अपकर्षण भागहारका भाग दीएं जो एक भागमात्र परमाणू तिनिकौं ग्रहि यथायोग्य नीचैं वा ऊपरि मिलाइए तहाँ उत्कर्षण वा अपकर्षणका होना संभवै है। सो उत्कर्षणका वा अपकर्षण भागहारका प्रमाण आगे कहिए है—जो गुणसंक्रम भागहार तातैं तौ असंख्यातगुणा अर अधःप्रवृत्त संक्रम भागहारके असंख्यातवे भाग अैसा पल्यके अर्धच्छेदनिके असंख्यातवां भागमात्र जानना। अैसैं उत्कर्षण अर अपकर्षणका स्वरूप कह्या।

बहुरि अन्य प्रकृतिका परमाणू अन्य प्रकृतिरूप जो होइ ताका नाम संक्रमण है। जैसैं संक्लेशपनेतैं पूर्वै असाता वेदनी बांधी थी पीछे विशुद्धताके बलतैं ताका परमाणू साता वेदनीयरूप होइ परिणमैं। अैसैंही यथायोग्य अन्य प्रकृतिका भी संक्रम जानना। तहाँ संक्रमण होनेविषैं पांच प्रकार भागहार संभवै है—उद्वेलन १ विध्यात २ अधःप्रवृत्त ३ गुणसंक्रम ४ सर्वसंक्रम ५। सो इनका कथन गोम्मटसारका कर्मकांडविषैं पंच भागहार चूलिका अधिकार है तहाँ जानना वा यहां यथावसर कहेंगे। किछू स्वरूप अब भी कहिए है—

उद्वेलन प्रकृतिके जे परमाणू तिनकौं उद्वेलन भागहारका भाग दीएं एक भागमात्र परमाणू जहाँ अन्य प्रकृतिरूप होइ परिणमैं तहां उद्वेलन संक्रमण कहिए। बहुरि जहां मंद विशुद्धतायुक्त जीवकैं जाका बंध न पाइए अैसी जो विवक्षित प्रकृति ताके परमाणूनिकौं विध्यातभागहारका भाग दीएं एक भागमात्र परमाणू अन्य प्रकृतिरूप होइ परिणमैं तहां विध्यात संक्रमण कहिए। बहुरि जहां जाका बंध संभवै अैसी जो विवक्षित प्रकृति ताके परमाणूनिकौं अधःप्रवृत्त भागहारका भाग दीएं एक भागमात्र परमाणू अन्य प्रकृतिरूप होइ परिणमैं तहां अधःप्रवृत्त संक्रमण कहिए। बहुरि जहां विवक्षित अशुभ प्रकृतिके परमाणूनिकौं गुणसंक्रमण भागहारका भाग दीएं एक भागमात्र परमाणू अन्य प्रकृतिरूप होइ परिणमैं। बहुरि प्रथम समय जेती परमाणू परिणईं, तातैं दूसरे समय असंख्यातगुणी परिणमैं, तातैं तीसरे समय असंख्यातगुणी परिणमैं अैसैं समय समय गुणकार संभवैं तहां गुणसंक्रमण भागहार कहिए। बहुरि तहां विवक्षित प्रकृतिके परमाणू

अन्य प्रकृतिरूप समय समय परिणमता संता अन्त समयविषैं अन्त फालिरूप ही अवशेष परमाणू ते सर्व ही अन्य प्रकृतिरूप होइ परिणमैं तहां सर्व संक्रमण कहिए। अब इनि भागहारनिका प्रमाण कहिए है—

सर्व संक्रमण भागहारका तौ प्रमाण एक है, जातैं अवशेष रही परमाणूनिकौं एकका भाग दीएं सर्व परमाणूमात्र प्रमाण आवै है, तातैं असंख्यातगुणा ऐसा पल्यका अर्धच्छेद प्रमाणके असंख्यातवे भागमात्र गुणसंक्रमण भागहारका प्रमाण है। बहुरि तातैं असंख्यात गुणा जो उत्कर्षण वा अपकर्षण भागहार तिसतैं भी असंख्यातगुणा ऐसा पल्यके अर्धच्छेदनिके असंख्यातवें भागमात्र अधःप्रवृत्त संक्रमण भागहारका प्रमाण है। बहुरि तातैं असंख्यातगुणी जो संख्यात पल्यमात्र कर्मकी स्थिति तातैं भी असंख्यातगुणा ऐसा सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्र विध्यात संक्रमण भागहारका प्रमाण है। बहुति तातैं असंख्यातगुणा ऐसा सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्र उद्वेलन संक्रमण भागहारका प्रमाण है। ऐसैं संक्रमणका स्वरूप कह्या।

बहुरि विवक्षित प्रकृतिके जे उदयावलीतैं बाह्य निषेक तिनिके परमाणू जे उदयावलीविषै प्राप्त करने योग्य न होंइ सो उपशांत द्रव्य कहिए। इहाँ उपशम विश्रानतैं मोहका उपशम करिए है ताका ग्रहण न करना, जातैं उपशमभाव मोहहीका है अर उपशांतकरण सर्व प्रकृतिनिकैं पाइए हैं। अर उपशांत आदि तीन करण अष्टम गुणस्थान पर्यंत ही कह्या अर उपशमभाव ग्यारहवां गुणस्थान पर्यंत पाइए हैं।

बहुरि जे विवक्षित प्रकृतिके परमाणू संक्रमण होनेकौं वा उदयावलीविषैं प्राप्त होनेकौं योग्य न होंइ सो निधत्तिकरण द्रव्य है। बहुरि जो विवक्षित प्रकृतिके परमाणू संक्रमण करनेकौं वा उदयावलीविषैं प्राप्त करनेकौं वा उत्कर्षण अपकर्षण करने योग्य न होइ सो निःकाचना द्रव्य है। ऐसैं इन तीन करणनिका स्वरूप कह्या। इहां ऐसा नियमतैं जानना जो उपशांतादिरूप द्रव्य है सो उपशांतादिरूप ही रहै है। पूर्वै उपशांतादिरूप था पीछैं अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें उदीरणा आदिरूप होइ तौ पीछैं किछू दोष नाहीं है। या प्रकार दश करणनिका स्वरूप पहिचानना। अब इहां दर्शन-चारित्र लब्धिकरि मोक्षका साधन करिए है—

सो मोक्षकी प्राप्ति संवर निर्जरातैं होइ। संवर निर्जरा हैं ते बंध सत्त्वकी हानि भएं होंइ सो दर्शन-चारित्र लब्धिविषैं बंध सत्त्वकी हानि कैसैं होइ सो सामान्य स्वरूप इहां कहिए है। विशेष आगें कहिएगा। तहां च्यारि प्रकार बंध मिटनेका क्रम कहिए है—

दर्शन-चारित्र लब्धिके निमित्ततैं पहिलैं मिथ्यात्व नारकगति आदि अति अप्रशस्त प्रकृतिनिका पीछैं ज्ञानावरणादि अप्रशस्त प्रकृतिनिका वा प्रशस्त प्रकृतिनिका बंध अभाव हो है। तहां प्रकृतिबंधका क्रमतैं घटना ताका नाम प्रकृति बंधापसरण कहिए हैं, जातैं अपसरण नाम घटनेका है। बहुरि प्रदेशबंध योगनिके अनुसारि है, तातैं योगनिकी चंचलता हीन भए प्रदेशबंध हीन हो है। सर्वथा योग नाश भएं प्रदेशबंधका सर्वथा अभाव हो है। बहुरि स्थितिबंध कषायनिके अनुसारि है, सो मिथ्यात्व कषायादिककौं हीन होतैं स्थितिबंध घटै है। तहां बहुति स्थितिबंधका क्रमतैं घटना सो स्थितिबंधापसरण है, सो पूर्वै जेता स्थितिबंध होता था तातैं विवक्षित कालविषैं जेता स्थितिबंध घट्या तिस प्रमाण लोएं तहां स्थितिबंधापसरण जानना। बहुरि घटे पीछैं अवशेष जेता रह्या तितना तहां स्थितिबंध जानना। बहुरि स्थितिबंधापसरण भएं जेता कालविषै समान स्थितिबंध सम्भवै सो स्थितिबंधापसरणका काल जानना। इहां दृष्टान्त—जैसैं पूर्वै लक्षवर्षमात्र स्थितिबंध संभवै था, तातैं एक हजार वर्ष प्रमाण स्थितिबंधापसरण भया तब अवशेष निन्याणवै हजार वर्षमात्र स्थितिबंध रह्या। सो स्थितिबंधापसरणके कालका पहिला समयविषैं इतना स्थितिबंध होइ, बहुरि इतना ही दूसरे समय होइ, ऐसैं स्थितिबंधापसरणके कालका अंत समय पर्यन्त समान स्थितिबंध हूवा करै, पीछै आठसै वर्षमात्र अन्य स्थितिबंधापसरण भया तब अठ्याणवै हजार दोयसै वर्षमात्र अवशेष स्थितिबंध रह्या। सो तिस स्थितिबंधापसरण

कालके प्रथमादि समयनिविषैं तितना समान स्थितिबंध हूवा करै। ऐसैं ही यथासम्भव प्रमाण जानि स्वरूप जानना। ऐसैं स्थितिबंध घटतैं अपना व्युच्छित्ति होनेका समयविषैं जघन्य स्थितिबंध हो है, पीछै स्थितिबंधका नाश है। सो आयु विना सर्व प्रकृतिनिका ऐसैं क्रमतैं जानना। आयुका स्थिति-बंधापसरण न संभवै है, जातैं नरक विना तीन आयुका स्थितिबंध विशुद्धतातैं अधिक हो है। बहुरि अन्य सर्व शुभाशुभ प्रकृतिनिका स्थितिबंध संक्लेशतातैं तौ बहुत हो है अर विशुद्धतातैं स्तोक हो है। बहुरि अनुभागबंध है सो पापप्रकृतिनिका तौ संक्लेशतातैं बहुत हो है अर विशुद्धतातैं स्ताक हो है। बहुरि पुन्य प्रकृतिनिका संक्लेशतातैं स्तोक हो है अर विशुद्धतातैं बहुत हो है। सो अनंतगुणा वा यथासम्भव घटता वा बधता अप्रशस्त वा प्रशस्त प्रकृतिनिका अनुभागबंध अधिक हीन क्रमतैं जैसें जहां संभवै तैसैं तहां जानना। बहुरि प्रशस्त प्रकृतिनिका अनुभागबंध अधिक होनेतैं किछू आत्माका बुरा होता नाही, जातैं संसारविषैं रहना तौ स्थितिबंधके अनुसारि है अर घातियानितैं आत्माका बुरा होइ सो घातिया अप्रशस्त हो है, तातैं दर्शनचारित्रकी लब्धितैं प्रशस्त प्रकृतिनिके अनुभागकी अधिकता अप्रशस्त प्रकृतिनिके अनुभागकी हीनता हो है। तहां कषायनिका अभाव भए सर्वथा अनुभागबंधका अभाव हो है। ऐसैं बंधके अभावतैं संवर होनेका विधान जानना। अब सत्त्वनाशका क्रम कहिए है—

दर्शन-चारित्र लब्धिके निमित्ततैं पहलैं मिथ्यात्वादि अति अप्रशस्त प्रकृतिनिका पीछैं ज्ञानावरणादि अप्रशस्त प्रकृतिनिका वा प्रशस्त प्रकृतिनिका सत्त्व नाश हो है सो सत्त्वनाश स्वमुख उदय करि अर परमुख उदय करि दोय प्रकार हो है। तहां जो प्रकृति अपने ही रूप रहि अपनी स्थिति सत्त्वका अंत निषेकका उदय भए अभावकौं प्राप्त होइ ताका स्वमुख उदय करि सत्वनाश कहिए। जैसैं संज्वलन लोभ है सो क्षपक सूक्ष्मसांपरायका अंतविषैं अपने ही रूप उदय होइ नाशकौं प्राप्त हो है। बहुरि जो प्रकृति संक्रमणके वशतैं अन्य प्रकृतिरूप परिणमि करि अपना अभावकौं प्राप्त होइ ताका परमुख उदय करि सत्त्वनाश कहिए। जैसैं अनंतानुबंधीका विसंयोजन होतैं अनंतानुबंधी कषाय है सो अन्य कषायरूप परिणमि नाशकौं प्राप्त हो है। ऐसैं ही यथासंभव अन्यत्र जानना। बहुरि एक एक सत्ताके निषेकके परमाणू एक एक समयविषैं उदयरूप होइ निर्जरैं। बहुरि दर्शन-चारित्र लब्धिके निमित्ततैं ऊपरिके निषेकनिके परमाणू नीचले निषेक-रूप होइ परिणमं हैं। तहां एक एक समयविषैं साधिक समयप्रबद्धकी वा अनेक समयप्रबद्धनिकी निर्जरा होइ अर बंध समय समय प्रति एक एक समयप्रबद्धका हो होइ, तातैं तहां निर्जरा बहुत हो है अर बंध स्तोक हो है। अथवा किसी कालविषैं कोई प्रकृतिका बंध नाही हो है, केवल निर्जरा ही हो है। ऐसैं सर्व कर्म परमाणूनिका नाश भए सर्वथा प्रदेशसत्त्वका नाश हो हैं।

बहुरि स्थितिसत्व जो पाइए है तातैं एक एक समय व्यतीत होतैं तौ एक एक समय घटै ही है। बहुरि दर्शन-चारित्र लब्धिके निमित्ततैं स्थिति कांडकविधानतैं वा अपकृष्ट विधानतैं स्थितिसत्त्वका घटना हो है। तहां प्रथम कांडक विधान कहिए है—

बहुत प्रमाण लीए स्थितिसत्त्व था ताके समय समय विषैं उदय आवने योग्य बहुत ही निषेक थे तिनविषैं केते इक ऊपरिके निषेकनिका फालिक्रमसे नाश करि स्थितिसत्त्व घटावना। तहां तिनि नाश करने योग्य निषेकनिके जे सर्व परमाणू तिनिकौं नाश कीए पीछैं जो स्थिति रहेगी ताके आवलीमात्र ऊपरिके निषेक जिनमें मिलाया उनके ऊपरके निषेक छोडि सर्व निषेकनिविषैं मिलाइए है। तहां तिनि सर्व परमाणूनिविषैं केते इक परमाणू पहिले समय मिलाइए है, केते इक दूसरे समय मिलाइए है, ऐसैं यथासंभव अंतर्मुहूर्त काल पर्यंत परमाणूनिकौं नीचले निषेकनिविषैं प्राप्त करिए तहां अंत समयविषैं अवशेष रहे सर्व परमाणूनिकौं नीचले निषेकनिविषैं प्राप्त होते संतै तिनि नाश करने योग्य निषेकनिका नाश भया तब जितने निषेकनिका नाश भया तितना समयप्रमाण स्थितिसत्त्व तहां घटता भया। इहां दृष्टांत—

जैसैं स्थितिसत्त्व अठतालीस समयमात्र था ताके अठतालीस ही निषेक थे अर तिनि सर्व निषेकनिकी पचीस हजार परमाणू थीं तिनिविषैं आठ निषेकनिका नाश करना तहां तिनि निषेकनिके एक हजार परमाणू तिनिके अवशेष रहैंगे जे चालीस निषेक तिनिविषैं अन्तिम फालिकी अपेक्षा ऊपरिके दोय निषेक छोडि नीचेके अठतीस निषेकनिविषैं मिलाइए है, तहां तिन निषेकनिविषैं केते इक परमाणू तौ पहिले समय मिलाइए, केते इक दूसरे समय मिलाइए, ऐसैं च्यारि समय पर्यंत मिलाइए है। तहां चौथे समय अवशेष सर्व परमाणूनिकौं तिनि अठतीस निषेकनिविषैं मिलाए तिनि आठ निषेकनिका अभाव हो है। तिनिके अभाव होतैं अठतालीस समयका स्थिति सत्त्व था सो चालीस समयहीका रहै है। ऐसैं ही यथासंभव प्रमाण जानि दार्ष्टांतविषैं विधान जानना। अब इहां संज्ञा कहिए है—

ऐसैं ऊपरिके निषेकनिकौं क्रमतैं निचले निषेकरूप परिणमाइ स्थितिका घटावना ताका नाम स्थिति-कांडक है वा स्थितिखंड है। बहुरि इस एक कांडकविषैं निषेकनिका नाश करि जेती स्थिति घटाई ताके प्रमाणका नाम स्थितिकांडक आयाम है। जैसैं दृष्टांतविषैं आठ समय। बहुरि तिनिका नाश करने योग्य निषेकनिका जो सर्व द्रव्य ताका नाम कांडकद्रव्य है। जैसैं दृष्टांतविषैं एक हजार। बहुरि इस द्रव्यकौं अवशेष स्थितिके निषेकनिविषैं मिलावना तहां आवलीमात्र निषेकनिविषैं न मिलाया ताका नाम अतिस्थापनावली है। जैसैं दृष्टांतविषैं दोय निषेक। बहुरि या विना अन्य अवशेष स्थितिके निषेकनिविषैं तिस कांडक द्रव्यकौं मिलावना ताका नाम कांडकोत्करण है वा कांडकघात है। बहुरि एक कांडकका अपकर्षण अंत-र्मुहूर्त काल करि पूर्ण होइ ताका नाम कांडोत्करणकाल है। जैसैं दृष्टांतविषैं च्यारि समय। बहुरि इस कालके प्रथम समयविषैं तिस कांडक द्रव्यकौं ग्रहि जेते परमाणू अवशेष निषेकनिविषैं मिलाए ताका नाम प्रथम फालि है। द्वितीय समयविषैं मिलाए ताका नाम द्वितीय फालि है: ऐसैं ही क्रमतै अंत समय विषैं मिलाए ताका नाम चरम फालि है। अन्त समयतैं पहिले समय विषैं मिलाए ताका नाम द्विचरम फालि है। ऐसैं एक कांडक समाप्त भएं द्वितीय कांडक प्रारम्भ हो है। ऐसैं ही अनेक कांडक भएं स्तोक स्थितिसत्व अवशेष रहि जाइ तब कांडक क्रिया न हो है। एक एक समय व्यतीत होतैं एक एक समय क्रमतैं घाटि तिस अवशेष स्थितिका नाश हो है। ऐसैं कांडक विधान कह्या। अब अपकृष्टि विधान कहिए है—

विवक्षित कर्म प्रकृतिके सर्व निषेकसम्बन्धी सर्व परमाणू तिनकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीएं एकभागमात्र परमाणू ग्रहे ताका नाम अपकृष्ट द्रव्य है। तिस अपकृष्ट द्रव्यविषैं केते इक परमाणू तौ उदया-वलीविषैं मिलाए, केते इक परमाणू गुणश्रेणि आयामविषैं मिलाए, अवशेष परमाणू उपरितन स्थितिविषैं मिलाए। वहां वर्तमान समयतैं लगाय आवलीमात्र समयसंबंधी जे निषेक तिनका नाम उदयावली है। तिन विषैं उदयावली विषै देने योग्य जो द्रव्य ताकौं निषेक निषेक प्रति एक एक चय घटता क्रम करि मिलाईए। बहुरि तिनि आवलीमात्र निषेकनिके ऊपरिवर्ती यथासंभव अंतर्मुहूर्तके समयसंबंधी जे निषेक तिनिका नाम गुण-श्रेणी आयाम है। तिनिविषैं गुणश्रेणी आयामविषैं देने योग्य जो द्रव्य ताकौं निषेक निषेक प्रति असंख्यात-गुणा क्रम लीएं मिलाइए है। बहुरि तिनके उपरिवर्ती अवशेष सर्व स्थितिसंबंधी निषेक तिनका नाम उपरितन स्थिति है। तिनविषैं अन्तके आवलीमात्र निषेकनिविषैं तौ द्रव्य न मिलाइए है ताका नाम तौ अतिस्थापना-वली है। अर तिस विना अन्य निषेकनिविषैं उपरितन स्थितिविषैं देने योग्य जो द्रव्य ताकौं नाना गुणहानि रचना करि निषेक प्रति चय घटता क्रम लीएं मिलाइए है। इहां दृष्टांत जैसैं विवक्षित कर्म प्रकृतिकी स्थिति अठतालीस समय ताके निषेक अडतालीस, तिनके सर्व परमाणू पचीस हजार, तिनिकौं अपकर्षण भागहारका प्रमाण पांच ताका भाग दीएं पांच हजार पाए सो सर्व परमाणूनिमैंस्यौं इतनी परमाणू ग्रहिकरि तिनिविषैं

दोयसै पचास परमाणू तौ उदयावलीविषैं दई सो अठतालीस निषेकनिविषैं प्रथमादि च्यारि निषेक उदयावली के हैं तिनविषैं चय घटता क्रमकरि मिलाइए। बहुरि एक हजार परमाणू गुणश्रेणि आयामविषैं दई सो पांचवा आदि बारहवां पर्यंत आठ निषेक गुणश्रेणि आयामके हैं तिनविषैं असंख्यातगुणा क्रम लीएं मिलाइए। बहुरि तीन हजार सातसै पचास परमाणू उपरितन स्थितिविषैं दई सो छत्तीस निषेक अवशेष रहे तिनिविषैं अंतके च्यारि निषेक अतिस्थापनारूप छोडि अवशेष तेरहवां आदि चवालीस पर्यंत बत्तीस[1] निषेकनिविषैं नाना गुणहानिकी रचना लीएं चय घटता क्रमकरि मिलाइए। ऐसैं ही दार्ष्टांतविषैं यथासंभव प्रमाण जानि स्वरूप जानना। चय घटता क्रमकरि वा असंख्यातगुणा क्रमकरि मिलाइए। मिलावनेका विधान आगे कहेंगे। इहां यहु उदयावलीतैं बाह्य गुणश्रेणी आयामका स्वरूप दिखाया। बहुरि कहीं उदयादिक गुणश्रेणि आयाम हो है तहां अपकृष्ट द्रव्यविषैं केता इक द्रव्यकौं तौ गुणश्रेणि आयाम प्रमाण जे वर्तमान समयसंबंधी निषेकतैं लगाय निषेक तिनिविषैं असंख्यातगुणा क्रमकरि मिलावै। अवशेषकौं उपरितन स्थितिविषैं मिलावै सो इहां गुणश्रेणिआयामविषैं उदयावली गर्भित भई, तातैं उदयादि गुणश्रेणि आयाम कहिए।

बहुरि गुणश्रेणिके निषेकनिका प्रमाणमात्र जो यहु गुणश्रेणिआयाम कह्या सो कहीं गलितावशेष हो है, कहीं अवस्थित हो है। तहां गलितावशेष गुणश्रेणिका प्रारंभ करनेकौं प्रथम समय विषैं जो गुणश्रेणि आयामका प्रमाण था तामैं एक एक समय व्यतीत होतैं ताके द्वितीयादि समयनिविषैं गुणश्रेणिआयाम क्रमतै एक एक निषेक घटता होइ अवशेष रहै ताका नाम गलितावशेष है। बहुरि अवस्थित गुणश्रेणिआयामके प्रारंभ करनेका प्रथम द्वितीयादि समयनिविषैं गुणश्रेणिआयाम जेताका तेता रहै। ज्यूं ज्यूं एक एक समय व्यतीत होइ त्यूं त्यूं गुणश्रेणिआयामके अनंतरिवर्ती ऐसा उपरितन स्थितिका एक एक निषेक गुणश्रेणि आयामविषैं मिलता जाइ तहां अवस्थित गुणश्रेणिआयाम कहिए है। बहुरि इस गुणश्रेणि आयामके अंतके बहुत निषेकनिका नाम कहीं गुणश्रेणि शीर्ष कह्या है। कहीं अंतके एक निषेकका ही नाम गुणश्रेणी शीर्ष है। जातैं शीर्ष नाम ऊपरिवर्ती अंगका है। ऐसैं विवक्षित स्थानविषैं यथासंभव प्रमाण जानि गुणश्रेणि निर्जराका विधान जानना।

बहुरि इहां उदयावलीविषैं दीया द्रव्य ताका नाम उदीरणा जानना। बहुरि जहां स्तोक स्थिति सत्त्व अवशेष रहै है तहां गुणश्रेणिका भी अभाव हो है। अपकृष्ट द्रव्यविषैं केताइक द्रव्यकौं उदयावलीविषैं देइ अवशेषकौं उपरितन स्थितिविषैं दे है। बहुरि एक समय अधिक आवलीमात्र स्थिति रहैं आवलीके उपरिवर्ती जो एक निषेक ताका द्रव्यकौं अपकर्षणकरि उदयावलीके[2] निषेकनिविषं एक समय घाटि आवली-का दोय त्रिभागमात्र निषेकनिकौं अतिस्थापनारूप छोडि समय अधिक आवलीकौं त्रिभागमात्र निषेकनिविषैं मिलावै है। तहां जघन्य उदीरणा नाम पावै है। ऐसैं अपकृष्टि विधान है। इहां ऐसा जानना—

कांडकविधानतैं तौ स्थिति सत्त्वका घटना मूलतैं हो है जातैं तहां ऊपरिके केते इक निषेकनिका नाशकरि स्थिति सत्त्वका घटना मूलतैं है। बहुरि अनुकृष्टि विधानविषैं ऊपरिकी निषेकनिकी केती इक पर-माणूनिहीकी स्थिति घटाइए है। मूलतैं निषेक नाश नाहीं होइ, तातैं मूलतैं स्थितिसत्त्व घटना न हो है। बहुरि स्थितिसत्त्वविषैं आवलीमात्र अवशेष रहै ताका नाम उच्छिष्टावली है। तहां उदीरणा आदि कार्य न हो है। पूर्वे कार्य भए थे तिनिकरि एक एक समयविषैं उदय आवने योग्य ऐसे

---

१. यहाँ जिस ४८वें निषेकके कुछ द्रव्यका अपकर्षण हुआ है उसे भी अतिस्थापनावलिमें सम्मिलित कर उनका कथन किया गया है।

२. मुद्रित प्रतिमें 'अपकर्षणकरि उदयावलिके निषेकनिविषैं एक समयघाटि आवलिका उपरिवर्ती जो एक निषेकताका द्रव्यकौं अपकर्षणकरि उदयावलिके' ऐसा पाठ है।

अनेक समयप्रबद्धमात्र परमाणूके समूहरूप निषेक भए तिनकरि एक समय विषैं गलैं निर्जरैं हैं। याका नाम अधोगलन है। ऐसैं उच्छिष्टावली व्यतीत भये सर्वथा स्थितिसत्वका नाश हो है। ऐसैं मुख्यपनैं संक्षेप स्वरूप दिखाया है। विशेष आगे कहें ही गे। बहुरि सत्तारूप विवक्षित कर्म प्रकृतिके जे परमाणू तिनविषैं अनुभागकी अधिकता हीनताकरि स्पर्धक रचना है सो पूर्वें विधान कह्या है। तहां नीचेके स्पर्धक स्तोक अनुभाग युक्त हैं। ऊपरिके स्पर्धक बहुत अनुभागयुक्त है। तहाँ जो निषेक उदय आवैं है ताके अनुभागका भी उदय पूर्वोक्त प्रकार हो है। बहुरि दर्शन-चारित्र लब्धितैं अप्रशस्त प्रकृतिनिका अनुभाग घटावना हो है। तहाँ जैसे स्थिति घटावने विषैं कांडक विधान कह्या तैसे इहाँ भी विधान जानना। सो कहिए है—

बहुत अनुभाग युक्त ऊपरिके बहुत स्पर्धकनिका अभाव करि तिनके परमाणूनिकौं स्तोक अनुभाग युक्त नीचेके स्पर्धकनिविषैं क्रमतैं मिलाइ अनुभागका घटावना ताका नाम अनुभाग कांडक है वा अनुभाग खंडन है। ताकौं लांछित करना कहिए खंडन करना सो अनुभाग कांडकोत्करण है वा अनुभाग कांडकघात है। बहुरि एक अनुभाग कांडकका घात अंतर्मुहूर्तकालकरि संपूर्ण होइ तिस कालका नाम अनुभाग कांडकोत्करण काल है। तिस कालविषै नाश करने योग्य स्पर्धकनिके परमाणूनिकौं ग्रहि नाश कीएं पीछे जे अवशेष स्पर्धक रहे तिनिविषैं केते इक ऊपरिके स्पर्धक अतिस्थापनारूप छोड़ि अन्य सर्व स्पर्धकनिविषै मिलावैं है। इहां दृष्टांत—

जैसे विवक्षित प्रकृतिके पांचसै स्पर्धक थे तिनिका अनंतका प्रमाण पांच ताका भाग दीएं तहां बहुभागप्रमाण च्यारिसै स्पर्धकनिका नाश करना। तहां तिनिके परमाणूनिकौं अवशेष सौ स्पर्धक रहैंगे तिनिविषै दश स्पर्धक अतिस्थापनारूप छोडि निवै स्पर्धकनिविषै मिलावै हैं। ऐसे ही यथासंभव प्रमाण जानि दृष्टांतविषै स्वरूप जानना। बहुरि इहां एक अनुभाग कांडककरि जेता अनुभाग घटाया ताका नाम अनुभाग कांडक आयाम है। बहुरि नाश करने योग्य स्पर्धकनिके सर्व परमाणूनितैं ग्रहि करि अनुभाग कांडकका प्रथम समयविषै जेती परमाणू अवशेष स्पर्धकनिविषै मिलाईं ताका नाम प्रथम फालि है। द्वितीय समय विषै मिलाईं ताका नाम द्वितीय फालि हैं ऐसैं ही क्रम जानना। या प्रकार एक कांडकको समाप्त भएं अन्य कांडकका प्रारम्भ हो है सो ऐसे अनेक अनुभाग कांडकनिकरि अनुभाग घटाइए है। बहुरि जहां विशुद्धता बहुत हो है तहां अंतर्मुहूर्त करि होता था जो कांडकघात ताका अनुभाग हो है। अर समयापवर्तन हो है तहां समय समय प्रति अनंतगुणा क्रमकरि अनुभाग घटाइए है। पूर्व समय विषै जो अनुभाग था ताकौ अनंतका भाग दीएं बहुभागका नाशकरि एक भागमात्र अनुभाग अवशेष राखै है। ऐसैं समय समय प्रति अनुभागका घटावना भया तातैं याका नाम अनुसमयापवर्तन है।

बहुरि संज्वलन कषाय विषैं अनुभाग घटनेका क्रमकरि अपूर्व स्पर्धक रचना अर बादर कृष्टि रचना हो है। संज्वलन लोभ विषैं सूक्ष्म कृष्टि रचना हो है सो इनिका विशेष व्याख्यान आगैं होगा। बहुरि सर्वत्र स्तोक अनुभागयुक्तकी तौ नीचैं रचना अर बधती अनुभागयुक्तकी ऊपरि रचना जानना। ताकी अपेक्षा स्पर्धकनिकौं कृष्टिनिकौं नीचैं ऊपरि कहिए है। ऐसैं क्रमतैं अप्रशस्त प्रकृतिनिका अनुभागसत्वका नाश हो है। प्रकृतिसत्त्व नाश भएं सर्वथा तिनिका अनुभागसत्व नाश हो है। बहुरि प्रशस्त प्रकृतिनिका कांडकादि विधानतैं अनुभागसत्त्वका नाश करिए है। प्रकृतिसत्वका नाशकी साथि तिनिका अनुभागसत्वका नाश जानना। या प्रकार सत्त्वनाशका क्रमकरि निर्जरा होनेका विधान जानना। बहुरि संवर निर्जराके योगतैं सर्व कर्मका सर्वथा नाश भएं शुद्धात्माकी व्यक्त अवस्थारूप मोक्ष हो है सो यहु दर्शन-चारित्र लब्धिका फल है। इहां कोई क्रियानिका किंचित् स्वरूप दिखाया है। इनिका भी वा अन्य क्रिया अनेक हो हैं तिनिका विशेष व्याख्यान आगें ग्रंथ विषैं होइ हीगा। अब इहां केती एक संज्ञा कहीं वा आगैं संज्ञा कहैंगे तिनका स्वरूप दिखाइए है।

कर्म प्रकृतिनिका कथनविषैं तिनिकी परमाणूनिका नाम द्रव्य है। जैसें बंधरूप परमाणूनिका नाम बंध द्रव्य है, सत्त्वरूप परमाणूनिका नाम सत्त्वद्रव्य है। स्थिति कांडकके निषेकनिको परमाणूनिका नाम कांडक द्रव्य है। तहां प्रथमादि फालिनिके परमाणूनिका नाम प्रथमादि फालिनिका द्रव्य है। ऊपरिके वा नीचैके निषेक छोडि वीचिके केते इक निषेकनिका अभाव करनेरूप अंतरकरण हो है। तहां अभाव करनेरूप निषेकनिके परमाणूनिका नाम अंतरकरण द्रव्य है। उदय आवनेकौं अयोग्य कीए परमाणूनिका नाम उपशम द्रव्य है। विवक्षित सत्तारूप निषेक था तिस विषैं नवीन परमाणू मिलाइं तिनका नाम दीयमान द्रव्य है। आगैं सत्तारूप थीं अर ए नवीन मिलीं इनि सब परमाणूनिके समूहका नाम दृश्यमान द्रव्य है। अैसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि कांडक नाम पर्वका है अर जैसें साठानिविषैं पैली हो है तैसें मर्यादारूप स्थानका नाम पर्व है। जैसें स्थितिविषैं घटनेकरि मर्यादारूप स्थान भया ताका नाम स्थिति कांडक है। अनुभागविषैं घटनेकरि मर्यादारूप स्थान भया ताका नाम अनुभाग कांडक है। बहुरि अनंतानुबंधीकी स्थितिविषैं च्यारि स्थान कहे तहां च्यारि पर्व कहे। बहुरि अपकृष्ट द्रव्यके मिलावनेके जहां तीन स्थान हैं तहां तीन पर्व कहे। अैसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि आयाम नाम लंबाईका है सो कालके समय भी युगपत् न हो हैं, तातैं कालका प्रमाणविषैं आयाम संज्ञा कहिए है। वा कहीं ऊपरि ऊपरि रचना होइ तहां तिनिका प्रमाणविषैं भी आयाम संज्ञा कहिए है। जैसें स्थितिके प्रमाणका नाम स्थिति आयाम है। स्थिति कांडकके निषेकनिके प्रमाणका नाम स्थिति कांडक आयाम है। अंतरकरणविषैं जितने निषेकनिका अभाव कीया है ताका नाम अंतरायाम है। गुण श्रेणिके निषेकनिके प्रमाणका नाम गुणश्रेणि आयाम है। अैसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि गुण नाम गुणकारका है तहां गुणकारकी पंक्ति लीएं जहां निषेकनिविषैं द्रव्य दीजिए ताका नाम गुणश्रेणि है। समय समय गुणकार लीएं विवक्षित प्रकृतिकी परमाणू अन्य प्रकृतिरूप संक्रमण करै ताका नाम गुणसंक्रम है। गुणकार लीएं हानि कहिए हीनता घटवारी जहां होइ ताका नाम गुणहानि है। अैसें ही अन्यत्र जानना।

बहुरि कर्मस्थितिविषैं निषेकनिका प्रमाणरूप स्थिति कहिए है—जैसे विवक्षित निषेकनिके ऊपरिवर्ती निषेकनिका नाम उपरितन स्थिति है। गुणश्रेणिका कथनविषैं तौ गुणश्रेणि आयामतैं ऊपरिवर्ती निषेकनिका नाम उपरितन स्थिति है। केवल उदीरणाका कथनविषैं उदयावलीतैं ऊपरिवर्ती निषेकनिका नाम उपरितन स्थिति है इत्यादि जानना।

बहुरि विवक्षित प्रमाण लीएं नीचले निषेकनिका नाम प्रथम स्थिति है। बहुरि उपरिवर्ती सर्वस्थितिके निषेकनिका नाम द्वितीय स्थिति है। जैसें अंतरायामतैं नीचले निषेकनिका नाम प्रथम स्थिति, ऊपरले निषेकनिका नाम द्वितीय स्थिति है। अथवा संज्वलन क्रोधका जेता प्रमाण लीएं प्रथम स्थिति स्थापी ताके निषेकनिका नाम प्रथम स्थिति है। अवशेष सर्व स्थितिके निषेकनिका नाम द्वितीय स्थिति है। इत्यादि जानना।

बहुरि समुदायरूप एक क्रिया विषैं जुदा जुदा खंडकरि विशेष करना ताका नाम फालि है। जैसें कांडक द्रव्यका कांडकोत्करण काल विषैं अन्यत्र प्राप्त करना तहां प्रथम समय प्राप्त कीया सो कांडककी प्रथम फालि, द्वितीय समयविषैं प्राप्त कीया सो द्वितीय फालि, इत्यादि। बहुरि अैसें ही उपशमन कालविषैं पहले समय जेता द्रव्य उपशमाया सो उपशमकी प्रथम फालि, द्वितीय समय उपशमाया सो ताकी द्वितीय फालि इत्यादि अैसें ही अन्यत्र जानना। बहुरि अन्य निषेकके परमाणू अन्य निषेक विषैं मिलाइए तहां मिलावना वा देना वा निक्षेपण करना कहिए। जिनि निषेकनिविषैं दीएं ते निषेक निक्षेपणरूप जानने।

अर जिनि निषेकनिविषैं न मिलाइए ते निषेक अतिस्थापनरूप जानने। बहुरि द्वितीय स्थितिके निषेकनिका द्रव्यकौं प्रथम स्थितिके निषेकनिविषैं मिलाइए तहां आगाल संज्ञा कहिए है। अर प्रथम स्थितिके निषेकनिका द्रव्यकौं द्वितीय स्थितिके निषेकनि विषैं मिलाइये तहां प्रत्यागाल संज्ञा कहिये। बहुरि विवक्षितके कालका जो प्रमाण सोई ताका काल है। जैसें एक कांडकका घात करनेका जो काल ताका नाम कांडकोत्करण काल है। तहां प्रथम समयविषैं प्रथम फालिका पतन जो नीचले निषेकनिविषैं प्राप्त होना सो हो है। तातैं तिस प्रथम समयकौं प्रथम फालिका पतन काल कहिए। द्वितीय समयकौं द्वितीय फालिका पतन काल कहिए। ऐसैं ही अन्त समयकौं चरम फालि पतन काल कहिए। ताके पूर्व समयकौं द्विचरम फालि पतन काल कहिए। बहुरि जिस कालविषैं अंतरकरण करिए ताका नाम अंतरकरण काल है। बहुरि जिस कालविषैं क्रोधकौं वेदै ताके उदयकौं भोगवै ताका नाम क्रोध वेदककाल है। ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

बहुरि आवलीमात्र कालका वा तितने कालसंबंधी निषेकनिका नाम आवली है। तहां वर्तमान समयतैं लगाय आवलीमात्र कालकौं आवली कहिए वा तिनिके निषेकनिकौं भी आवली कहिए वा उदयावली कहिए। अर ताके ऊपरिवर्ती जो आवली ताकौं द्वितीयावली कहिए वा प्रत्यावली कहिए। बहुरि बंध समयतैं लगाय आवलीपर्यंत उदीरणादि क्रिया न होइ सकै ताका नाम बंधावली है वा अचलावली है वा आबाधावली है। बहुरि द्रव्य निक्षेपण करतैं जिनि आवलीमात्र निषेकनिविषैं नाहीं निक्षेपण करिए ताका नाम अतिस्थापनावली है। बहुरि स्थितिसत्त्व घटतैं जो आवलीमात्र स्थिति अवशेष रहि जाय ताका नाम उच्छिष्टावली है। बहुरि जिस आवलीविषैं संक्रमण पाइए सो संक्रमणावली अर उपशमन करना पाइए सो उपशमावली। इत्यादि ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

बहुरि अन्तः नाम माहीका है सो उक्त प्रमाणतैं किछू घाटि होइ तहां अंतः संज्ञा हो है, तहां कोडाकोडीके नीचैं कोडिके ऊपरि ताकौं अन्तःकोटाकोटी कहिये। मुहूर्त्ततैं घाटि आवलीतैं अधिक ताकौ अंतर्मुहूर्त कहिये। दिवसतैं किछू घाटि ताकौं अंतर्दिवस कहिये इत्यादि। बहुरि तीनके ऊपरि नवके नीचैं ताका नाम पृथक्त्व है। वा कहीं बहुत हजारोंका भी नाम पृथक्त्व है। सो यथासंबंध जानना। बहुरि कहीं दृष्टांत अपेक्षा संज्ञा हो है जैसें कोऊ गायका पूंछ क्रमतैं घटता हो है तैसें इहां एक एक चय घटता क्रमकरि निषेक पाइए तहां गोपुच्छ संज्ञा कहिए। बहुरि द्रव्य देनेविषैं जहां ऊंटकी पीठिवत् हीन अधिकपना होइ तहां उष्ट्रकूट संज्ञा कहिए। बहुरि जहां समान पाटीका आकारवत् सर्वस्थाननिविषैं समान रचना होइ तहां समपट्टिका कहिए इत्यादि जानना। या प्रकार जैसें व्याकरणविषैं केती इक संज्ञा तौ संज्ञा संधिविषैं कहीं, केती इक संज्ञा जहां प्रयोजन भया तहां कहीं तैसें इस ग्रंथविषैं केती इक संज्ञा तौ इहां पीठबंधविषैं कही हैं। केती इक संज्ञा आगै शास्त्रविषैं जहां प्रयोजन होगा तहां कहिएगा। अब इहां द्रव्यका विभाग करनेका विधानकौं कारण करण सूत्र कहिए हैं। तहां नाना गुणहानिविषैं चय घटता क्रमरूप द्रव्यके विभागका विधान कहिए है—

पहिलैं द्रव्य १ स्थिति २ गुणहानि ३ नाना गुणहानि ४ दो गुणहानि ५ अन्योन्याभ्यस्त ६ राशि इनका स्वरूप वा प्रमाण जानना। तहां प्रथम सम्बन्ध विषैं स्थिति रचनाकी अपेक्षा करि विवक्षित समयविषैं ग्रहण कीए जे समयप्रबद्ध परिमाण परमाणू सो द्रव्य है। ताकी आबाधारहित स्थितिबंधके समयनिका जो प्रमाण सो स्थिति है। तहां एक गुणहानिविषैं निषेकनिका प्रमाण सो गुणहानि आयाम है। स्थितिविषैं गुणहानिका जो प्रमाण सो नाना गुणहानि है। गुणहानि आयामतैं दूणा प्रमाण सो दो गुणहानि है। नाना गुणहानिमात्र दूवा माडि परस्पर गुणें जो प्रमाण होइ सो अन्योन्याभ्यस्त राशि है। जैसें मिथ्यात्वका द्रव्य तौ अपने समयप्रबद्धमात्र है। स्थिति सत्तर कोडाकोडी सागर है। स्थितिकौं नाना गुणहानिका भाग दीए जो प्रमाण होइ तितना गुणहानिआयाम है। पल्यके अर्धच्छेदनिविषें पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेद घटाएं जो होइ तितना नाना गुण-

हानि है। गुणहानि आयामतैं दूणा दो गुणहानि है। पल्यकौं पल्यको वर्गशलाकाका भाग दीजिए इतना अन्यो-न्याभ्यस्तराशि है। जैसैं ही अन्य प्रकृतिनिविषैं यथासम्भव प्रमाण जानना। अब अनुभाग रचनाकी अपेक्षा कहिए है—

विवक्षित कर्म प्रकृतिके परमाणूनिका प्रमाण सो तो द्रव्य हैं। तहां सर्व वर्गणानिका जो प्रमाण सो स्थिति है। एक गुणहानिविषैं वर्गणानिका प्रमाण सो गुणहानिआयाम है। स्थितिविषैं गुणहानिका प्रमाण सो नानागुणहानि है। दूणा गुणहानिमात्र दो गुणहानि है। नाना गुणहानिमात्र दूवानिकौं परस्पर गुणें जो होइ सो अन्योन्याभ्यस्तराशि हैं। सो सर्व प्रकृतिनिकी अनुभाग रचनाविषैं इन छहौनिका प्रमाण यथा-संभव हीनाधिकपनांकौं लीए अनन्त प्रमाण जानना। बहुरि जहां कांडकादि द्रव्य ग्रहिकरि यथायोग्य निषेकनि विषैं निक्षेपण करना होइ तहां कहिए है—

जेता द्रव्य ग्रह्या होइ सो तौंहि प्रमाण तो द्रव्य है। जितने निषेकनिविषैं देना होइ तिनिका प्रमाण मात्र स्थिति है। गुणहानिका प्रमाण बंधकी स्थितिरचना विषैं कह्या तितना है। याका भाग इहां सम्भवती स्थितिकौं दीएं नाना गुणहानिका प्रमाण आवै है। दूणा गुणहानिमात्र दो गुणहानि है। नाना गुणहानिमात्र दूवानिकौं परस्पर गुणें अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रमाण हो है। सो इहां इन छहौका प्रमाण विवक्षित स्थानविषैं जैसा संभवै तैसा जानना। अब इहां स्थिति रचना अपेक्षा निषेकनिविषैं द्रव्यका प्रमाण ल्यावनेकौं विधान कहिए है—

प्रथम दृष्टांत—जैसैं द्रव्य तरेसठिसै ६३००, स्थिति अठतालीस ४८, गुणहानि आयाम आठ ८, नाना गुणहानि छह ६, दो गुणहानि सोलह १६, अन्योन्याभ्यस्त राशि चौसठि ६४, स्थापि विधान कहिए है—"दिवड्ढ गुणहाणिभाजिदे पढमा" सर्व द्रव्यकौं साधिक ड्योढ गुणहानिका भाग दीएं प्रथम निषेक होइ जैसैं तरेसठिसै-कौं साधिक बारहका भाग दीएं पांचसै बारा होइ। बहुरि 'तं दोगुणहाणिणा भजिदे पचयं' तिस प्रथम निषेककौं दो गुणहानिका भाग दीएं चयका प्रमाण आवै है। जैसैं पांचसै बाराकौं सोलहका भाग दीएं बत्तीस होंइ सो द्वितीयादि निषेकनिविषैं एक एक चय प्रमाण द्रव्य घटता जानना। जैसैं द्वितीय निषेकनिविषैं च्यारिसै असी, तृतीयविषैं च्यारिसै अठतालीस इत्यादि जानना।

बहुरि ऐसैं क्रमतैं जिस निषेकविषै प्रथम निषेकतैं आधा प्रमाण होइ तहांतैं लगाय दूसरी गुणहानि जाननी। जैसैं दूसरी गुणहानिका प्रथम निषेक दोय सै छप्पन। बहुरि तहां चयका प्रमाण प्रथम गुणहानितैं आधा है। जैसैं सोलह। सो इहां भी द्वितीयादि निषेकनिविषैं एक एक चय घटता क्रम जानना। ऐसै प्रथम गुणहानितैं द्वितोय गुणहानिविषैं द्रव्य चय निषेकनिका प्रमाण आधा भया। याही प्रकार तृतीयादि गुणहानिनि-विषैं पूर्व पूर्व गुणहानितैं द्रव्य चय निषेकनिका प्रमाण क्रमतैं आधा आधा जानना। सो जितना नाना गुणहानिका प्रमाण होइ तितनी गुणहानिनि विषैं ऐसैं रचना करनी। जैसैं दृष्टांतविषैं रचना ऐसी—

२८८	१४४	७२	३६	१८	९
३२०	१६०	८०	४०	२०	१०
३५२	१७६	८८	४४	२२	११
३८४	१९२	९६	४८	२४	१२
४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३
४४८	२२४	११२	५६	२८	१४
४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५
५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६

बहुरि अन्यप्रकार विधान कहिए है—

सर्व द्रव्यकौ एक घाटि अन्योन्याभ्यस्त राशिका भाग दीएं अंत गुणहानिके द्रव्यका प्रमाण आवै है

जैसैं तरेसठिसैकौं तरेसठिका भाग दीएं सो होइ। बहुरि द्विचरम गुणहानि आदि विषैं दूणा दूणा होइ। आधा अन्योन्याभ्यस्त राशिकरि अंत गुणहानिके द्रव्यकौ गुणें प्रथम गुणहानिका द्रव्य हो हैं। जैसैं सोकौं बत्तीस करि गुणें बत्तीससै होइ। ऐसैं गुणहानिके द्रव्यका प्रमाण ल्याइ अब गुणहानिनिविषैं निषेकनिके द्रव्यका प्रमाण ल्याइए है, तहां प्रथम गुणहानिका सर्व द्रव्य वा निषेकनिका प्रमाण जानना।

जैसैं द्रव्य बत्तीससै ३२००, निषेक आठ, तहां 'अद्धाणेण सव्वधने खंडिदे मज्झिम-धणमागच्छदि' अध्वान जो निषेकनिका प्रमाणमात्र गच्छसोकरि सर्वधन जो सर्वद्रव्य सो भाजित कीएं बीचके निषेकका प्रमाणमात्र मध्यम धन आवै है। जैसैं बत्तीससैंकौं आठका भाग दीएं च्यारिसै होइ। बहुरि 'तं रूऊणद्धांणूणेण णिसेयभागहारेण हृदे पचयं' तिस मध्यम धनकौ एक घाटि गच्छका आधा प्रमाण करि हीन जो निषेक भागहार दो गुणहानि ताका भाग दीएं चयका प्रमाण आवै है। जैसैं सातका आधा साढा तीन ताकरि हीन सोलहकौं कीएं साढा बारह ताका भाग च्यारिसैंकौं दीएं बत्तीस पाये सो चयका प्रमाण है। बहुरि 'तं दोगुणहाणिणा गुणिदे आदिणिसेयं, तिस चयकौं दो गुणहानिकरि गुणैं प्रथम निषेकका प्रमाण आवै हैं। जैसैं बत्तीसकौं सोहलकरि गुणें पांचसै बारह होइ। बहुरि 'तत्तो विशेषहीणकमं' तहां पीछैं द्वितीयादि निषेकनिविषैं विशेष कहिए चयका प्रमाण ताकरि हीनक्रम जानना। एक एक चयमात्र घटता क्रमतैं जानना। तहां एक एक अधिक गुणहानिकरि चयकौं गुणैं अंत निषेकका प्रमाण हो हैं। जैसैं नवकरि बत्तीसकौं गुणें दोयसै अठ्यासी होइ। बहुरि ऐसैं ही द्वितीयादि गुणहानिका द्रव्य स्थापि तहां निषेकनिके द्रव्यका प्रमाण ल्यावना। द्वितीयादि गुणहानिनिविषैं पूर्व गुणहानितैं द्रव्यका वा चयका वा निषेकका प्रमाण क्रमतैं आधा आधा जानना। ऐसैं विधान कह्या।

बहुरि अनुभाग रचनाविषैं भी ऐसैं ही विधान जानना। विशेष इतना—इहां द्रव्यादिकका प्रमाण जैसा संभवै तैसा जानना। बहुरि तहां जैसैं निषेकनिविषैं परमाणूनिका प्रमाण ल्याया तैसैं इहां वर्गणानिविषैं परमाणूनिका प्रमाण ल्यावना। बहुरि ऐसैं ही देने योग्य द्रव्यविषैं भी विधान जानना। विशेष इतना—इहां द्रव्यादिकका प्रमाण जैसा संभवै तैसा जानना। बहुरि पूर्वोक्त प्रकार तहां निषेकनिका प्रमाण ल्याइ प्रथमादि निषेकनिका जो प्रमाण आवै तितना द्रव्य पूर्वैं जिनिविषैं द्रव्य देना तिनि सत्ताके प्रथमादि निषेकनिविषैं याकौं मिलाय देना। बहुरि जहां द्रव्यकौं स्तोक निषेकनिहीविषैं देनां होइ तहां गुणहानि रचना तौ संभवै नाही। तहां द्रव्य कैसैं देना ? सो कहिए है—

जैसैं एक गुणहानिके निषेकनिविषैं द्रव्यके प्रमाण ल्यावनेका विधान कह्या है तैसैं ही "अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे मज्झिमधणमागच्छदि" इत्यादि विधानतैं तहां प्रथमादि निषेकनिका प्रमाण ल्यावना। विशेष इतना—इहां जितने निषेकनिविषैं द्रव्य देना होइ तीहि प्रमाण गच्छ स्थापना। अर जेता द्रव्य तहां देने योग्य होइ तीहि प्रमाण द्रव्य स्थापना। ऐसैं कीएं जो प्रथमादि निषेकनिका प्रमाण आवै तितने द्रव्यकौं विवक्षितके पूर्वैं सत्तारूपी जे प्रथमादि निषेक पाइए हैं तिनविषैं मिलाय देना। उदयावलीविषैं द्रव्य देना होइ तहां वा स्तोक स्थिति रहि गएं उपरितन स्थितिविषैं द्रव्य देना होइ तहां वा अन्यत्र ऐसा विधान जानना। बहुरि गुणश्रेणी आयाम आदि विषैं द्रव्य देना होइ तहां विधान कहिए है—

'प्रक्षेपयोगोद्धृता मिश्रपिंडप्रक्षेपकाणां गुणको भवेदिति' इस करण सूत्र अनुसारि विधान जानना। सो कहिए है—जैसैं सीरके द्रव्यका नाम तौ मिश्रपिंड है। अर सीरीनिके विसवानिका नाम प्रक्षेप है। सो प्रक्षेपका जोड देइ ताका भाग मिश्रपिंडकौं दीएं जो एक भागका प्रमाण आवै सो प्रक्षेपक, जे अपने अपने विसवे तिनिका गुणकार हो है। सो इनकौं परस्पर गुणैं जो जो प्रमाण आवै सो सो अपने अपने विसवानिके स्वामी जे सीरी तिनिका द्रव्य जानना। इहां सीरका द्रव्य मिश्रपिंड सो सतरहसै १७००, बहुरि सीरीनिके विसवे

एकका एक, दूसरेके च्यारि, तीसरेके सोलह, चौथेके चौसठि १ । ४ । १६ । ६४ ए प्रक्षेप । बहुरि इनिका जोड पिच्यासी ताका भाग मिश्रपिंडकौं दीएं वीस पाए, ताकरि अपने अपने प्रक्षेप जे विसवे तिनकौं गुणैं पहिलेका वीस दूसरेका असी तीसराका तीनसै वीस चौथाका बारहसै असी द्रव्य आवै हैं । असैं ही गुणश्रेणीका आयामविषैं जेता द्रव्य देना सो तौ मिश्रपिंड जानना । बहुरि गुणश्रेणिआयामके प्रथम समयकी एक शलाका, द्वितीय समयकी तातैं असंख्यातगुणी शलाका, तृतीय समयकी तातैं असंख्यातगुणी शलाका इसहीं प्रकार असंख्यातगुणा क्रम लीएं ताका अंत समय पर्यंतकी शलाका जाननी । इसका नाम प्रक्षेपक है । इनिकौं जोडें जो प्रमाण आवै ताका भाग तिस सर्व द्रव्यकौं दीएं जो प्रमाण होइ तिसकरि अपनी अपनी शलाकानिका प्रमाणकौं गुणैं गुणश्रेणीआयामके प्रथमादि समयसंबंधी निषेकनि विषैं द्रव्य देनेका प्रमाण आवै है । इतना इतना द्रव्य गुणश्रेणीआयामके प्रथमादि निषेकनि विषैं मिलाइए है । बहुरि असैं ही गुणसंक्रमविषैं विधान जानना । इहां जो गुण संक्रमकरि अन्य प्रकृतिरूप परिणमावने योग्य सर्व द्रव्य सो मिश्रपिंड अर गुणसंक्रमकालके प्रथमादि समय संबंधी एक आदि क्रमतैं असंख्यातगुणी शलाका सो प्रक्षेपक है । इनिके जोडका भाग मिश्रपिंडकौं देइ लब्धकरि अपनी अपनी शलाकाकौ गुणैं गुणसंक्रमकालका प्रथमादि समयनिविषैं अन्य प्रकृतिरूप परिणमावने योग्य द्रव्यका प्रमाण आवै है । याही प्रकार अन्यत्र भी यथासंभव मिश्रपिंड वा प्रक्षेपनिका प्रमाण जानि जैसा जहां संभवै तैसा तहां जानना । या प्रकार द्रव्य देना आदि विषै विधान कह्या । अब सत्ताविषैं जे निषेक पाइए है तिनके द्रव्य जाननेका विधान कहिए है—

विवक्षित कोई एक समयविषैं जो सत्तारूप कर्म परमाणूनिका द्रव्य है तहां स्थितिसत्त्वका प्रथम समय वर्तमान है । तींहि विषैं उदय आवने योग्य जो द्रव्य सो प्रथम निषेकका द्रव्य है । ताका प्रमाण तौ संपूर्ण समयप्रबद्धमात्र है । काहेतैं ? सो कहिए है—

पूर्वैं जे समय समय प्रति समयप्रबद्ध बांधे तिनिविषैं जिस समयप्रबद्धका एक हू निषेक पूर्वैं गल्या नाही ताका तौ प्रथम निषेक इस समय विषैं उदय होने योग्य है । जाका एक निषेक पूर्वैं गल्या ताका द्वितीय निषेक इस समय विषैं उदय होने योग्य है । इसही क्रमतैं जाका एक निषेक विना अवशेष सर्व निषेक गले ताका अंत निषेक इस समय विषैं उदय होने योग्य है । असैं एक एक समयप्रबद्धका एक एक निषेक मिलि इस विवक्षित समयविषैं उदय आवने योग्य संपूर्ण समयप्रबद्धमात्र द्रव्य भया सो सत्ताका प्रथम निषेक है । जैसैं एक समयप्रबद्धका पांचसै बारह, दूसरेका च्यारिसै असी इत्यादि निषेकनिका द्रव्य मिलि तिरेसठिसै होइ । बहुरि स्थितिसत्त्वका दूसरे समयविषैं उदय आवने योग्य द्रव्य प्रथम निषेक घाटि समयप्रबद्ध मात्र है । कैसैं ? सो कहिए है—

प्रथम समयविषैं जिस समयप्रबद्धका प्रथम निषेक गलै ताका तो दूसरा निषेक है । अर जाका दूसरा निषेक गलै ताका तीसरा निषेक इत्यादि क्रमतैं दूसरे समय उदय आवने योग्य निषेक हैं सो सर्व मिलि प्रथम निषेक घाटि समयप्रबद्धमात्र हो हैं । सो यह सत्ताका द्वितीय निषेक है । इहां प्रथम निषेकमात्र चय घटता भया । जैसैं एक समयप्रबद्धका च्यारिसै असी, दूसरेका च्यारिसै अठतालीस इत्यादि निषेकनिका द्रव्य मिलि सत्तावनसै अठ्यासी होइ । इहां प्रथम समयविषैं जाका अन्त निषेक गल्या ताका तौ कोई निषेक रह्या नाहीं । अर प्रथम निषेक जाका इस दूसरे समयविषैं उदय होयगा असा समयप्रबद्ध न बधैगा तब वाका सत्त्व होइगा, इस समयविषैं है नाहीं, तातैं सत्ताके द्वितीय निषेकका प्रमाण पूर्वोक्त जानना । बहुरि स्थितिसत्त्वका तृतीय समयविषैं उदय आवने योग्य प्रथम द्वितीय निषेक घाटि समयप्रबद्धमात्र द्रव्य है । कैसैं ? सो कहिए है—

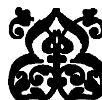
दूसरे समय जाका द्वितीय निषेक गल्या ताका तीसरा निषेक, जाका तीसरा निषेक गल्या ताका चौथा निषेक इत्यादि क्रमतै तीसरे समयविषैं उदय आवने योग्य है सो सर्व मिलि प्रथम द्वितीय निषेक घाटि समयप्रबद्धमात्र द्रव्य है। सो सत्ताका तृतीय निषेक है। इहां द्वितीय निषेकमात्र चय घटता भया। जैसें एक समयप्रबद्धका च्यारिसै अठतालीस, दूसरेका च्यारिसै सोला इत्यादि मिलि तरेपनसै आठ होइ। इहां भी पूर्ववत् कारण जानना। ऐसें ही क्रमतैं स्थिति सत्त्वका अन्त समयविषैं उदय आवने योग्य समयप्रबद्ध अन्त निषेकमात्र द्रव्य है। काहेतैं ? सो कहिए है—इस वर्तमान समयविषैं जो सत्त्व द्रव्य है तिसविषैं स्थिति-सत्त्वका अंत समयविषैं एक समयप्रबद्धकौं एक अंत निषेक अवशेष रहेगा। अवशेष सर्व समयनिविषै गलैंगे। बहुरि जिनिका आगामी कालविषैं बंध होइगा तिन समयप्रबद्धनिका तिस समय विषैं उदय आवने योग्य निषेक होंगे तिनिका अबार अस्तित्व नाहीं। तातैं समयप्रबद्धका एक अंत निषेकमात्र ही सत्ताका अन्त निषेक जानना। जैसै अंत निषेकके परमाणू नव, या प्रकार इन सर्व सत्ताके निषेकनिका जोड दीएं किंचिदून द्व्यर्ध गुणहानि गुणित समयप्रबद्धमात्र प्रमाण हो है सोइ सत्त्व द्रव्य जानना। जैसैं तरेसठिसै अर सत्तावनसै अट्यासी इत्यादि एक एक निषेक घाटि क्रम लीएं सत्ताके निषेक लिखि तिनिका जोड दीएं गुणहानि आयाम आठ ताका ड्योढ बारह तामैं किछू घटाइ ताकरि समयप्रबद्धका प्रमाण तरेसठिसै ताकौं गुणें इकहत्तरि हजार तीनसै च्यारि हो है। सो यहु कथन त्रिकोण यंत्रकी रचनाकरि गोम्मटसारविषैं दिखाया है सो जानना। या प्रकार स्थिति सत्त्वके निषेकनिका द्रव्य स्वयंसिद्ध तौ ऐसा क्रम लीएं जानना।

बहुरि जो उत्कर्षण अपकर्षण गुणश्रेणि संक्रमण आदिके वशतैं अन्य निषेकनिका द्रव्य अन्य निषेकनि-विषैं प्राप्त भया होइ वा अन्य प्रकृतिका द्रव्य अन्य प्रकृतिविषैं प्राप्त भया होइ तौ तहां यथासम्भव आय द्रव्यकी अधिकता कीएं व्यय द्रव्यकी हीनता कीएं जिस प्रमाण लीएं संभवै तिस प्रमाण लीएं सत्ताके निषेकनिकी रचना जाननी। इहां जैसें लोकविषैं जमा खरच कहिए तैसें विवक्षित विषैं और परमाणू आनि मिलैं ताका नाम आय द्रव्य है विवक्षितमैंस्यों परमाणू निकसि अन्यत्र प्राप्त भए ताका नाम व्यय द्रव्य जानना। विशेष इतना—जहां निषेकनिका द्रव्य चय घटता क्रम लीएं निकसै, जैसें निषेकनिका द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ एक भाग ग्रहण कीया तहां पूर्वे निषेकनिका सत्त्व जैसें चय घटता क्रम लीएं था तैसैं ही चय घटता क्रम लीएं द्रव्यका ग्रहण भया। बहुरि जहां निषेकनिविषैं चय घटता क्रम लीएं द्रव्य मिलाया, जैसे उदयावली आदिके निषेक पूर्वे चय घटता क्रम लीएं थे तिनविषै चय घटता क्रम लीएं ही द्रव्य दीया। तहां तौ आय व्यय होत संतै भी यथासम्भव चय घटता अनुक्रम रहै है। बहुरि जहां निषेकनिका द्रव्य हीनाधिक क्रम लीएं ग्रहण करिए वा कोई निषेकनिका द्रव्य ग्रहण करिए कोई निषेकनिका नाही ग्रहण करिए, बहुरि जहां हीनाधिक क्रमकरि वा गुणकार क्रमकरि द्रव्य दीया होइ तहां जो निकस्या वा मिलाया द्रव्य स्तोक होइ अर सत्त्व द्रव्य बहुत होइ तौ यथासम्भव चय घटता क्रम रहै अर निकस्या वा मिलाया द्रव्य बहुत होई अर सत्त्वद्रव्य स्तोक होइ तौ तहां चय घटता क्रम नाही रहै है। ऐसें स्थितिसत्त्वविषैं निषेकनिका प्रमाण आवै है। बहुरि अनुभाग सत्त्वविषैं वर्गणानिका प्रमाण पूर्वोक्त प्रकार त्यावना वा वर्गणानि-विषैं यथासम्भव द्रव्य निकासैं वा मिलाएं पूर्वोक्त प्रकार चय घटता क्रमका रहना वा न रहना जानना। बहुरि अनिवृत्तिकरणविषैं अपूर्व स्पर्धक वा कृष्टिनिका नवीन सत्त्व हो है। ताका विधान तहां अवसर आएं लिखैंगे सो जानना। ऐसें सत्वद्रव्यविषैं क्रम जानना।

या प्रकार इहां द्रव्य देना आदि विषैं विधान कह्या है सो ऐसें इहां जो यहु कथन कीया है ताकौं नीकैं यादि करि लेना। जो इस कथनका स्मरण होइगा तौ आगें ग्रंथविषैं नीकैं प्रवेश होगा अर अर्थकौं नीकैं पहिचानौगे। इस ही वास्तैं पहिलैं यहु केताइक कथन कीया है। जाका इहां व्याख्यान कीया ताका प्रयोजन ग्रंथविषैं जहां आवैं तहां कथन कीया ताके अनुसारि स्वरूप जानना। बहुरि व्याख्यान तौ सर्व आगें ग्रंथ-विषैं होइ होगा। ऐसें पीठबंध कीया। ■

विषयसूची

६ चारित्रमोहक्षपणा



लब्धिसार

■

ॐ

द्रव्यानुयोग परम गम्भीर और सूक्ष्म है, निर्ग्रन्थप्रवचनका रहस्य है, शुक्ल ध्यानका अनन्य कारण है। शुक्ल ध्यानसे केवलज्ञान समुत्पन्न होता है। महाभाग्यसे उस द्रव्यानुयोगकी प्राप्ति होती है।

दर्शनमोहका अनुभाग घटनेसे अथवा नष्ट होनेसे, विषयके प्रति उदासीनतासे और महत्पुरुषके चरणकमलकी उपासनाके बलसे द्रव्यानुयोग परिणत होता है।

ज्यों-ज्यों संयम वर्धमान होता है, त्यों-त्यों द्रव्यानुयोग यथार्थ परिणत होता है। संयमकी वृद्धिका कारण सम्यक्‌दर्शनकी निर्मलता है, उसका कारण भी 'द्रव्यानुयोग' होता है।

सामान्यतः द्रव्यानुयोगकी योग्यता पाना दुर्लभ है। आत्मारामपरिणामी, परम वीतरागदृष्टिवान्, परम असंग ऐसे महात्मा पुरुष उसके मुख्य पात्र हैं।

हे आर्य! द्रव्यानुयोगका फल सर्व भावसे विराम पानेरूप संयम है। इस पुरुषके इन वचनोंको तू अपने अंतःकरणमें कभी भी शिथिल मत करना। अधिक क्या? समाधिका रहस्य यही है। सर्व दुःखसे मुक्त होनेका अनन्य उपाय यही है।

❀ ❀ ❀

यदि मन शंकाशील हो गया हो तो 'द्रव्यानुयोग' विचारना योग्य है; प्रमादी हो गया हो तो 'चरणकरणानुयोग' विचारना योग्य है; और कषायी हो गया हो तो 'धर्मकथानुयोग' विचारना योग्य है; जड हो गया हो तो 'गणितानुयोग' विचारना योग्य है।

—श्रीमद् राजचंद्र



श्री आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती
विरचित

लब्धिसार

संस्कृत तथा हिन्दी टीकाद्वय सहित

जयंत्यन्वहमर्हंतः सिद्धाः सूर्युपदेशकाः। साधवो भव्यलोकस्य शरणोत्तममंगलम् ॥ १ ॥
श्रीनागार्यतनूजातशांतिनाथोपरोधतः। वृत्तिर्भव्यप्रबोधाय लब्धिसारस्य कथ्यते ॥ २ ॥

जो भव्य जीवोंके लिए शरणरूप और सर्वोत्कृष्ट मंगलस्वरूप हैं वे अरहंत सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु जयवन्त हों ॥१॥

श्री नागार्यके पुत्र शान्तिनाथके अनुरोधवश मैं (संस्कृत टीकाकार) भव्य जीवोंको उत्कृष्ट सम्यग्ज्ञानकी प्राप्तिके लिए श्री लब्धिसार ग्रन्थकी वृत्ति लिखता हूँ ॥२॥

श्रीमान्नेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्ती सम्यक्त्वचूडामणिप्रभृतिगुणनामांकितचामुंडरायप्रश्नानुरूपेण कषायप्राभृतस्य जयधवलाख्यद्वितीयसिद्धांतस्य पंचदशानां महाधिकाराणां मध्ये पश्चिमस्कंधाख्यस्य पंचदशस्यार्थं संगृह्य लब्धिसारनामधेयं शास्त्रं प्रारभमाणो भगवत्पंचपरमेष्ठिस्तवप्रणामपूर्विकां कर्तव्यप्रतिज्ञां विधत्ते—

अब कर्तव्यका प्रारंभ करिए है। आगैं चामुंडराय नामा राजाके प्रश्नके वशतैं कषायप्राभृत अर ताहीका द्वितीय नाम जयधवल ताके पंद्रह अधिकार तिनिविषैं पश्चिम स्कंधनामा पंद्रह्वां अधिकार ताका अर्थकौं ग्रहण करि श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती लब्धिसार नामा ग्रंथ कीया, ताके सूत्रनिका संक्षेपमात्र अर्थ लिखिए है। तहां प्रथम लब्धिसार टीकाके अनुसारि केतेइक सूत्रनिका अर्थ लिखिए है। टीकाविषैं विस्तारतैं व्याख्यान है। इहां ग्रंथ बधनेके भयतैं संकोचरूप व्याख्यान करिए है। तहां प्रथम ही मंगल करिए है—

विशेष—श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीने षट्खण्डागमके अन्तर्गत जीवस्थान खण्डके चूलिकानामक अर्थाधिकारकी ८ वीं चूलिका और कषायप्राभृतके स्वयं गुणधर आचार्य द्वारा स्थापित अन्तके ६ अर्थाधिकारोंका आलम्बन लेकर लब्धिसार और क्षपणासार महान् ग्रन्थकी रचना की है। कषायप्राभृतके अन्तमें पश्चिमस्कन्धनामक एक अनुयोगद्वार अवश्य है। किन्तु उसमें केवलिसमुद्घातके प्रथम समयसे लेकर सिद्धिगति प्राप्त होने तकके कार्यविशेषका मात्र निर्देश है। उसमें दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकी उपशमना और क्षपणाका विधान नहीं है।

चौपाई—श्री अरहंत सिद्धिवर सूरि। उपाध्याय धारै गुणभूरि॥
साधु परम मंगल जग श्रेष्ठ। जय शरणागतकौं परमेष्ठ॥

अथ मूल सूत्र

सिद्धे जिणिदचंदे आयरिय-उवज्झाय-साहुगणे।
वंदिय सम्मद्दंसण—चरित्तलद्धिं परूवेमो॥ १॥

सिद्धान् जिनेन्द्रचन्द्रान् आचार्योपाध्यायसाधुगणान्।
वंदित्वा सम्यग्दर्शनचारित्रलब्धिं प्ररूपयामः॥ १॥

सं० टी०—सिद्धान् जिनेंद्रचंद्रानाचार्योपाध्यांश्च साधुगणान् वंदित्वा सम्यग्यदर्शनचारित्रलब्धिं प्ररूपयामः। सम्यग्दर्शन-सम्यक्चारित्रयोर्लब्धिः—प्राप्तिर्यस्मिन् प्रतिपाद्यते स लब्धिसाराख्यो ग्रंथः तं प्ररूपयामः इति शास्त्रकारेण कृत्यप्रतिज्ञा दर्शिता। पूर्वं किं कृत्वा? वंदित्वा—स्तुत्वा प्रणम्य चेत्यर्थः। कान्? जिनेंद्रचंद्रान्-जिनेंद्रा अर्हन्तः चंद्रा इव चंद्राः, सकललोकप्रकाशकाल्हादकत्वात्। मुख्यो वायं चंद्रशब्दः। तथा सिद्धान्—कृतकृत्यानुपलब्धस्वात्मनश्च तथा आचार्यान् पंचाचारप्रवर्तनपरान् तथा उपाध्यायान्—उपेत्य विनयादधीयते भव्यलोका येभ्य इत्युपाध्यायास्तान् तथा साधुगणांश्च—साधयंति मोक्षमार्गमाराधयंतीति साधवस्तेषां गणान् देशान्तरकालान्तरवर्तिनः समूहान् गुरुकुलभेदभिन्नान् वा॥ १॥

स० चं०—जिनेंद्र अरहंत तेई भए सकल लोकके प्रकाशनेतैं वा आल्हाद करनेतैं चंद्रमा तिनिकौं अर कृतकृत्य भए सिद्ध भगवान तिनिकौं अर पंचाचारके प्रवर्तक आचार्य तिनिकौं अर अध्ययन करना करवानाविषैं अधिकारी उपाध्याय तिनकौं अर मोक्षमार्गके साधक साधुसमूह तिनिकौं वंदिकरि सम्यग्दर्शन—सम्यक्चारित्रकी लब्धि कहिए प्राप्ति सो जिसविषैं प्रतिपादन करिए अैसा लब्धिसार नामा शास्त्र ताकौं हम प्ररूपै हैं। अैसी आचार्य प्रतिज्ञा करी॥ १॥

एवं कृतपंचपरमेष्ठिस्तवप्रणामरूपमुख्यमंगल आचार्यः प्रथमोद्दिष्टसम्यग्दर्शनप्राप्त्युपायप्ररूपणं प्रक्रमते—

चदुगदिमिच्छो सण्णी पुण्णो गब्भज विसुद्ध सागारो।
पढमुवसमं स गिण्हदि पंचमवरलद्धिचरिमम्हि॥ २॥

चतुर्गतिमिथ्यः संज्ञी पूर्णः गर्भजो विशुद्धः साकारः।
प्रथमोपशमं स गृह्णाति पंचमवरलब्धिचरमे॥ २॥

सं० टी०—चतुर्गतिमिथ्यादृष्टिः संज्ञी पूर्णो गर्भजो विशुद्धः साकारः प्रथमोपशमं गृह्णाति पंचमवरलब्धिचरमे। अनादिः सादिर्वा मिथ्यादृष्टिरेव चतसृष्वपि गतिषूत्पन्नः दर्शनमोहस्य प्रथमोपशमं गृह्णाति करोतीत्यर्थः। तिर्यग्गतौ तु संज्ञी पंचेंद्रिय एव नान्यः। तिर्यग्मनुष्यगत्योस्तु पर्याप्तको गर्भश्चैव नान्यः। स च चतुर्गतिमिथ्यादृष्टिर्विशुद्ध एव क्षयोपशमलब्धिप्रथमसमयादारभ्य प्रतिसमयमनंतगुणवृद्धया वर्धमानविशुद्धिरित्यर्थः। सोऽपि साकारोपयोगवानेव, गुणदोषादिविचाररूपज्ञानोपयोगे सत्येव तत्त्वार्थश्रद्धानरूपसम्यक्त्व-

---

१. सो पुण पंचिदिओ सण्णी मिच्छाइट्ठी पज्जत्तओ सव्वविसुद्धो जी० चू० ८, सू० ४। सो देवो वा णेरइओ वा तिरिक्खो वा मणुसो वा। इत्थिवेदो पुरिसवेदो णवुंसयवेदो वा। मणजोगी वचिजोगी कायजोगी वा। कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई वा, किंतु हायमाणकसाओ। असंजदो। मदि-सुदसागारुवजुत्तो। तत्थ अणागारुवजुत्तो णत्थि, तत्थ वज्झत्थे पउत्तीए अभावादो। छण्णं लेस्साणमण्णदरलेस्सो, किंतु हायमाण असुहलेस्सो वड्ढमाणसुहलेस्सो। भव्वो। आहारी। ध० पु० ६, पृ० २०७। क० पा० पृ० ६१५।

प्राप्तिसंभवात्, अनाकारे दर्शनोपयोगे तद्विचाराभावात् । कस्मिन् काले प्रथमोपशमं गृह्णाति ? पंचमी लब्धिः करणलब्धिः तस्या वरः उत्कृष्टो भागः अनिवृत्तिकरणपरिणामः, तस्य लब्धिः प्राप्तिः तस्याः चरमसमये प्रथमोपशमसम्यक्त्वं गृह्णाति जीव इत्यर्थः । स च भव्य एव, अभव्यस्य तद्ग्रहणायोग्यत्वात् । विशुद्ध इत्यनेन शुभलेश्यत्वं संगृहीतम्, उदयप्रस्तावे स्त्यानगृद्ध्यादित्रयोदयाभावस्य वक्ष्यमाणत्वात् जागरत्वमप्युक्तमेव ॥२॥

तहां प्रथम ही प्रथमोपशमसम्यक्त्वका विधान कहिए है—

स० चं०—च्यारयो गतिवाला अनादि वा सादि मिथ्यादृष्टि संज्ञी पर्याप्त गर्भज मंद कषायरूप जो विशुद्धता ताका धारक, गुण दोष विचाररूप जो साकार ज्ञानोपयोग ताकरि संयुक्त जो जीव सोई पांचवीं करण लब्धिविषैं उत्कृष्ट जो अनिवृत्तिकरण ताका अंत समयविषैं प्रथमोपशम सम्यक्त्वकौं ग्रहण करै। इहां ऐसा जानना—

जो मिथ्यादृष्टि गुणस्थानतैं छूटि उपशम सम्यक्त्व होइ ताका नाम उपशम सम्यक्त्व है। बहुरि उपशमश्रेणी चढ़ता क्षयोपशम सम्यक्त्वतैं जो उपशम सम्यक्त्व ताका नाम द्वितीयोपशम सम्यक्त्व है, तातैं मिथ्यादृष्टिका ग्रहण कीया है। बहुरि सो प्रथमोपशम सम्यक्त्व तिर्यंच गतिविषैं असंज्ञी जीव हैं तिनकैं न हो है। अर मनुष्य तिर्यंचविषैं लब्धि-अपर्याप्तक अर सन्मूर्छन हैं तिनकैं न हो है। बहुरि च्यारयो गतिविषैं संक्लेशताकरि युक्त जीवकैं न हो है। बहुरि अनाकार दर्शनोपयोगका धारीकैं न हो है, जातैं तहां तत्त्वविचार न संभवै है। बहुरि आगैं तीन निद्राके उदयका अभाव कहैंगे, तातैं सूता जीवकैं न हो है। अर भव्यहीकै सम्यक्त्व हो है, तातैं अभव्यकैं न हो है। ए भी विशेषण इहां संभवै हैं॥ २॥

विशेष—यहाँ मुख्यरूपसे तीन बातोंका स्पष्टीकरण करना है—(१) जिस अनादि मिथ्यादृष्टि भव्य जीवका संसारमें रहनेका काल अधिकसे अधिक अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण शेष रहता है वह उक्त कालके प्रथम समयमें प्रथमोपशम सम्यक्त्वके योग्य अन्य सामग्रीके सद्भावमें उसे ग्रहण कर सकता है। उस समय उसे प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति नियमसे होती है ऐसा कोई नियम नहीं है। मुक्त होनेके पूर्व इस कालके मध्यमें कभी भी वह प्रथमोपशम-सम्यक्त्वको प्राप्त करता है। प्रथमोपशमसम्यक्त्वके छूटने पर सादि मिथ्यादष्टि जीव पुनः पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके जाने पर ही उसे प्राप्त करनेके योग्य होता है, इसके पूर्व नहीं। (२) संस्कृत टीकामें शुद्ध पदका शुभ लेश्यारूप अर्थ किया है। किन्तु नरकगतिमें शुभ लेश्याओंकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। जीवस्थान चूलिकामें विशुद्धपदके स्थानमें सर्वविशुद्ध पद आया है। वहाँ इस पदका अर्थ 'जो जीव अधःप्रवृत्तकरण आदि तीन करण करनेके सन्मुख है' यह जीव लिया गया है। प्रकृतमें विशुद्ध पदका यही अर्थ ग्रहण करना चाहिए। (३) यहाँ गाथामें अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें यह जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करता है ऐसा कहा गया है सो उसका आशय यह लेना चाहिए कि अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयके व्यतीत होने पर अगले समयमें यह जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करता है। शेष कथन सुगम है।

अथ पंचलब्धिनामोद्देशं तत्कार्यविभागं च कुर्वन्नाह—

खयउवसमियविसोही देसणपाउग्गकरणलद्धी य।
चत्तारि वि सामण्णा करणं सम्मत्तचारित्ते॥ ३॥

क्षयोपशमविशुद्धी देशनाप्रायोग्यकरणलब्धयश्च।
चतस्रोऽपि सामान्याः करणं सम्यक्त्वचारित्रे॥ ३॥

सं० टी०—क्षयोपशमविशुद्धिदेशनाप्रायोग्यताकरणलब्धयश्च चतस्रोऽपि सामान्यात् करणं सम्यक्त्वचारित्रे। लब्धिशब्द: प्रत्येकमभिसंबध्यते क्षयोपशमलब्धि: विशुद्धिलब्धि: देशनालब्धि: प्रायोग्यतालब्धि: करणलब्धिश्चेति एता: पंच लब्धय: । अत्र आद्याश्चतस्रोऽपि लब्धय: सामान्यादपि भव्याभव्यसाधारण्यादपि भवंति[2] । करण-लब्धि: पुनर्भव्यस्यैव सम्यक्चारित्रे च साध्ये भवति ।। ३ ।।

आगैं प्रथमोपशम सम्यक्त्व होनेतैं पहलैं मिथ्यादृष्टि गुणस्थानविषैं पंच लब्धि हो हैं तिनिका व्याख्यान करिए है—

सं० चं०—क्षयोपशम १ विशुद्धि १ देशना १ प्रायोग्यता १ करण १ ए पाँच लब्धि हैं। तहाँ आदिकी च्यारि तौ साधारण हैं। भव्यकैं वा अभव्यके भी हो हैं। बहुरि करण लब्धि भव्यहीकैं सम्यक्त्व वा चारित्रकौं साध्यभूत होत संतैं ही हो है ।। ३ ।।

अब क्रम प्राप्त क्षयोपशमलब्धिका स्वरूप कहते हैं—

अथ क्रमप्राप्तक्षयोपशमलब्धिस्वरूपं कथयति—

कम्ममलपडलसत्ती पडिसमयमणंतगुणविहीणकमा ।
होदूणुदीरदि जदा तदा खओवसमलद्धी दु[2] ।। ४ ।।

कर्ममलपटलशक्तिः प्रतिसमयमनंतगुणवि[हीनक्रमा] ।
भूत्वा उदीर्यंते यदा तदा क्षयोपशमलब्धिस्तु ।। ४ ।।

सं० टी०—कर्ममलपटलशक्ति: प्रतिसमयमनंतगुणहीनक्रमा भूत्वा उदीर्यंते यदा तदा क्षयोपशम-लब्धिस्तु—कर्मसु मलान्यप्रशस्तकर्माणि ज्ञानावरणादीनि तेषां पटलं समूह: तस्य शक्तिरनुभाग: सा यदा यस्मिन् समये अनंतगुणविहीनक्रमा अनंतैकभागप्रमाणीभूत्वा क्रमेणोदेति तदा तस्मिन समये तदनुभागानंतबहु-भागहानि: क्षयोपशमलब्धि: । तुशब्देन पुन: प्रतिसमयं तदनंतबहुभागहानिक्रम: सूच्यते । देशघातिस्पर्धकाना-मुत्कृष्टानुभागानंतैकभागमात्राणामुदये सत्यपि सर्वघातिस्पर्धकानामुत्कृष्टानुभागानंतबहुभागप्रमाणानामुदयाभाव: क्षय:, तेषामेवानुदयप्राप्तानां कर्मस्वभावेन सदवस्था उपशम:, तयोर्लब्धि: क्षयोपशमलब्धि: ।। ४ ।।

सं० चं०—कर्मनिविषैं मलरूप जे अप्रशस्त ज्ञानावरणादिक तिनिका पटल जो समूह ताकी शक्ति जो अनुभाग सो जिस कालविषैं समय समय प्रति अनंतगुणा घटता अनुक्रमरूप होइ उदय होइ तिस कालविषैं क्षयोपशम लब्धि हो है, जातैं उत्कृष्ट अनुभागका अनंतवां भागमात्र जे देश-घाती स्पर्धक तिनिके उदयकौं होतैं भी उत्कृष्ट अनुभागका अनंत बहुभागमात्र जे सर्वघाती स्पर्धक तिनिके उदयका अभाव सो तौ क्षय, अर तेई सर्वघाती स्पर्धक जे उदय अवस्थाकौं न प्राप्त भए तिनकी सत्ता अवस्था सो उपशम तिनकी प्राप्ति सो क्षयोपशमलब्धि जाननी ।। ४ ।।

विशेष—क्षमोपशम लब्धिमें यथासम्भव घाति और अघाति सभी अप्रशस्त कर्मोसम्बन्धी अनुभाग शक्तिकी प्रति समय अनन्तगुणहानि होना विवक्षित है। किन्तु इस जीवके विशु[द्धि.....] सातादि परावर्तमान प्रकृतियोंके बन्ध योग्य ही विशुद्धि होती है। असाता आदिके बन्ध योग्य संक्लेश नहीं होता ऐसा यहाँ समझना चाहिए।

---

१. खयउवसमियविसोही देसण-पाओग्ग-करणलद्धी य । चत्तारि वि सामण्णा करणं पुण होई समत्ते ।। ध० पु० ९, पृ० २०५ । (२) एदाओ चत्तारि वि लद्धीओ भवियाभवियमिच्छाइट्ठीणं साहारणाओ, दोसु वि एदाणं संभवादो । ध० पु० ९, पृ० २०५ । २. पुव्वसंचिदकम्ममलपडलस्स अणुभागफद्दयाणि जदा विसोहिए पडिसमयमणंतगुणहीणाणि होदूणुदी रज्जंति तदा खओवसमलद्धी होदि ।

अथ विशुद्धिलब्धिस्वरूपमाह—

आदिमलद्धिभवो जो भावो जीवस्स सादपहुदीणं ।
सत्थाणं पयडीणं बंधणजोगो विसुद्धलद्धी सो[1] ॥ ५ ॥

आदिमलब्धिभवो यः भावो जीवस्य सातप्रभृतीनाम् ।
शस्तानां प्रकृतीनां बंधनयोग्यो विशुद्धिलब्धिः सः ॥ ५ ॥

सं० टी०—आदिमलब्धिभवो यो भावो जीवस्य सातप्रभृतीनां शस्तानां प्रकृतीनां बंधनयोग्यो विशुद्धिलब्धिः सः । मिथ्यादृष्टिजीवस्य प्रागुक्तक्षयोपशमलब्धौ सत्यां सातादिप्रशस्तप्रकृतिबन्धहेतुर्यो भावो धर्मानुरागरूपशुभपरिणामो भवति तत्प्राप्तिर्विशुद्धिलब्धिरित्युच्यते । अशुभकर्मानुभागस्यानंतगुणहानौ सत्यां तत्कार्यस्य संक्लेशपरिणामस्य हानिर्यथा यथा भवति तद्विरुद्धस्य विशुद्धिपरिणामस्य तथा तथा संभवत्सुसंगत एवेति ॥ ५ ॥

अब विशुद्धिलब्धिका स्वरूप कहते हैं—

स० चं—पहली जो क्षयोपशम लब्धि तातैं उपज्या जो जीवकैं साता आदि प्रशस्त प्रकृति-बंध करनेकौं कारण धर्मानुरागरूप शुभ परिणाम होइ ताकी जो प्राप्ति सो विशुद्धि लब्धि है । सो अशुभ कर्मका अनुभाग घटैं संक्लेशताकी हानि अर ताका प्रतिपक्षी विशुद्धताकी वृद्धि होनी युक्त ही है ॥ ५ ॥

अथ देशनालब्धिस्वरूपमाचष्टे—

छद्दव्वणवपयत्थोपदेसयरसूरिपहुदिलाहो जो ।
देसिदपदत्थधारणलाहो वा तदियलद्धी दु[2] ॥ ६ ॥

षड्द्रव्यनवपदार्थोपदेशकरसूरिप्रभृतिलाभो यः ।
देशितपदार्थधारणलाभो वा तृतीयलब्धिस्तु ॥ ६ ॥

सं० टी०—षट्द्रव्यनवपदार्थोपदेशकरसूरिप्रभृतिलाभो यः, देशितपदार्थधारणलाभो वा तृतीय-लब्धिस्तु । षट्द्रव्याणि जीवपुद्गलधर्माधर्मकालाकाशानि । पंचास्तिकाया अत्रैवांतर्भूताः । नव पदार्थाः जीवाजीवा-स्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षपुण्यपापानि । सप्त तत्त्वान्यत्रैवांतर्भूतानि । तेषामुपदेशकराः आचार्योपाध्यायादयः, तेषां लाभो यस्तद्देशनाप्राप्तिः चिरातीतकाले उपदेशितपदार्थधारणलाभो वा स देशनालब्धिर्भवति । तुशब्देनोपदेशक-रहितेषु नारकादिभवेषु पूर्वभवश्रुतधारिततत्त्वार्थस्य संस्कारबलात् सम्यग्दर्शनप्राप्तिर्भवति इति सूच्यते ॥ ६ ॥

आगैं देशनालब्धिका स्वरूप कहै हैं—

स० चं—छह द्रव्य नव पदार्थका उपदेश करनेवाले आचार्यादिकका लाभ तिनके उपदेशकी प्राप्ति अथवा उपदेशित पदार्थके धारनेकी प्राप्ति सो तीसरी देशनालब्धि है । तुशब्दकरि नारकादि

१. पडिसमयमणंतगुणहीणक्कमेण उदीरिदअणुभागफद्दयजणिदजीवपरिणामो सादादिसुहकम्मबंधणिमित्तो असादादिअसुहकम्मबंधविरुद्धो विसोही णाम । तिस्से उवलंभो विसोहिलद्धी णाम । ध० पु० ६, पृ० २०४ ।

२. छद्दव्व-णवपयत्थोवदेसो देसणा णाम । तीए देसणाए परिणदआइरियादीणमुवलंभो देसिदत्थस्स गहण-धारण-विचारणसत्तीए समागमो अ देसणलद्धी णाम । ध० पु० ६, पृ० २०४ ।

विषैं जहां उपदेश देनेवाला नाहीं तहां पूर्व भवविषैं धारया हूवा तत्त्वार्थके संस्कार बलतैं सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति जाननी ।। ६ ।।

अथ प्रायोग्यतालब्धिस्वरूपं कथयति—

अंतोकोडाकोडी विट्ठाणे ठिदिरसाण जं करणं ।
पाउग्गलद्धिणामा भव्वाभव्वेसु सामण्णा[1] ।। ७ ।।

अंतःकोटाकोटिद्विस्थाने स्थितिरसयोः यत्करणम् ।
प्रायोग्यलब्धिर्नामा भव्याभव्येषु सामान्यात् ।। ७ ।।

सं० टी०—अंतःकोटाकोटिद्विस्थाने स्थितिरसयोर्यत्करणं प्रायोग्यतालब्धिनामा भव्याभव्येषु सामान्यात् । कश्चिज्जीवो लब्धित्रयसंपन्नः प्रतिसमयं विशुद्धयन् आयुर्वर्जितसप्तकर्मणां तत्कालस्थितिमेककांडकघातेन छित्वा कांडकद्रव्यमंतःकोटाकोटिमात्रावशिष्टस्थितौ निक्षिपति । अप्रशस्तानां घातिनामनुभागं वानंतबहुभागप्रमाणं खंडयित्वा तद्द्रव्यं लतादारुसमाने द्विस्थानमात्रे अघातिनां च निंबकांजीरसमाने अवशिष्टानुभागे निक्षिपति तदा जीवस्य तत्करणं प्रायोग्यतालब्धिर्नाम वेदितव्या, सा च भव्याभव्ययोः साधारणा भवति । विशुद्धया प्रशस्तप्रकृतीनामनुभागखंडनं नास्ति ।। ७ ।।

अब प्रायोग्यलब्धिका स्वरूप कहते हैं—

स० चं०—पूर्वोक्त तीन लब्धिसंयुक्त जीव समय समय विशुद्धताकरि वर्धमान होत संता आयु बिना सात कर्मनिकी अंतःकोटाकोटीमात्र स्थिति अवशेष राखै । तिस कालविषैं जो पूर्वैं स्थिति थी ताकौं एक कांडक घातकरि छेदि तिस कांडकके द्रव्यकौं अवशेष रही स्थितिविषैं निक्षेपण करै है । वहुरि घातियानिका लता दारुरूप, अघातियानिका निंब-कांजीररूप द्विस्थानगत अनुभाग इहां अवशेष रहै है । पूर्वैं अनुभाग था तामैं अनन्तका भाग दीएं वहुभागमात्र अनुभागकौं छेदि अवशेष रह्या अनुभागविषैं प्राप्त करै है । तिस कार्य करनेकी योग्यताकी प्राप्ति सो प्रायोग्यता लब्धि है । सो भव्यकैं वा अभव्यकैं भी समान हो है ।। ७ ।।

विशेष—विशुद्धिवश इसके प्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभागका घात नहीं होता है इतना यहाँ विशेष जानना चाहिए ।

अथ प्रसंगायातां प्रथमोपशमसम्यक्त्वग्रहणायोग्यतां प्रतिपादयति—

जेट्ठवरट्ठिदिबंधे जेट्ठवरट्ठिदितियाण सत्ते य ।
ण य पडिवज्जदि पढमुवसमसम्मं मिच्छजीवो हु[2] ।। ८ ।।

ज्येष्ठावरस्थितिबंधे ज्येष्ठावरस्थितित्रिकाणां सत्त्वे च ।
न च प्रतिपद्यते प्रथमोपशमसम्यक्त्वं मिथ्यजीवो हि ।। ८ ।।

सं० टी०—ज्येष्ठावरस्थितिबंधे ज्येष्ठावरस्थितित्रयाणां सत्त्वे च न च प्रतिपद्यते प्रथमोपशमसम्यक्त्वं मिथ्यादृष्टिर्जीवः खलु । सर्वसंक्लिष्टसंज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तजीवसंभविन्युत्कृष्टस्थितिबंधे सर्वविशुद्धक्षपकसंभविनि

---

१. सव्वकम्माणमुक्कस्सट्ठिदिमुक्कस्साणुभागं च घादिय अंतोकोडाकोडीट्ठिदिम्हि वेट्ठाणाणुभागे च अवट्ठाणं पाओग्गलद्धी णाम । ध० पु० ९, पृ० २०४ । २. एवदिकालट्ठिदिएहि कम्मेहि सम्मत्तं ण लहदि । जी० चू० ८, सू० १ । एदं देसामासियसुत्तं, तेण एदेसु कम्मेसु जहण्णट्ठिदिबंधे उकस्सट्ठिदिबंधे जहणुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मेसु जहणुक्कस्सअणुभागसंतकम्मेसु जहण्णुक्कस्सपदेससंतकम्मेसु च संतेसु सम्मत्तं ण पडिवज्जदि त्ति घेत्तव्वं । ध० पु० ६, पृ० २०३ ।

जघन्यस्थितिबंधे सर्वसंक्लिष्टसंज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तकसंभविन्युत्कृष्टस्थित्यनुभागप्रदेशसत्त्वे सर्वविशुद्धक्षपकसंभविनि जघन्यस्थित्यनुभागप्रदेशसत्त्वे प्रथमोपशमसम्यक्त्वं जीवो न प्रतिपद्यते, उत्कृष्टबन्धसत्त्वयोस्तीव्रसंक्लेश-निबंधनत्वात् जघन्यबंधसत्त्वयोश्च तीव्रविशुद्धिनिबंधनत्वेन मिथ्यादृष्टित्वाभावात् प्रागेव गृहीतसम्यग्दर्शनस्य क्षपकश्रेण्यारोहणात् । ततोऽन्तःकोटाकोटिस्थितिद्विस्थानानुभागबंधसत्त्वपरिणामकर्मणां जीवः प्रथमोपशमयोग्यो भवतीति तात्पर्यम् ॥८॥

अब प्रसंग प्राप्त प्रथमोपशमसम्यक्त्वके ग्रहणकी योग्यता बतलाते हैं—

स० चं०—संक्लेशी संज्ञी पंचेंद्री पर्याप्तके संभवता ऐसा उत्कृष्ट स्थिति बंध अर उत्कृष्ट स्थिति अनु-भाग प्रदेशका सत्त्व, बहुरि विशुद्ध क्षपक श्रेणीवालोंकै संभवता ऐसा जघन्य स्थितिबंध अर जघन्य स्थिति अनुभाग प्रदेशका सत्त्व इनिकौं होतैं जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वकौं न ग्रहै है ॥ ८ ॥

अथ प्रथमोपशमसम्यक्त्वाभिमुखस्य स्थितिबंधपरिणाममाह—

सम्मत्तहिमुहमिच्छो विसोहिवड्ढीहि वड्ढमाणो हु ।
अंतोकोडाकोडिं सत्तण्हं बंधणं कुणइ[1][2] ॥ ९ ॥

सम्यक्त्वाभिमुखमिथ्यः विशुद्धिवृद्धिभिः वर्धमानः खलु ।
अंतःकोटाकोटिं सप्तानां बंधनं करोति ॥ ९ ॥

सं० टी०—सम्यक्त्वाभिमुखमिथ्यादृष्टिर्विशुद्धिवृद्धिभिर्वर्धमानः खलु अंतःकोटीकोट्याः सप्तानां बंधनं करोति । प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखो मिथ्यादृष्टिर्जीवः प्रतिसमयमनंतगुणविशुद्धिवृद्ध्या वर्धमानः प्रायोग्यता-लब्धिकालप्रथमसमयादारभ्य आयुर्वर्जितसप्तकर्मस्थितिबंधं पूर्वस्थितिबन्धस्य संख्यातैकभागमात्रमंतः-कोटाकोटिप्रमितं बध्नाति ॥ ९ ॥

अब प्रथमोपशम सम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके स्थितिबन्धके योग्य परिणाम बतलाते हैं—

स० चं०—प्रथमोपशम सम्यक्त्वकौं सन्मुख भया मिथ्यादृष्टि जीव सो विशुद्धताकी वृद्धिकरि वर्धमान होत संता प्रायोग्यलब्धिका प्रथम समयतैं लगाय पूर्व स्थितिबंधके संख्यातवैं भागमात्र अंतःकोटाकोटी सागरप्रमाण आयु विना सात कर्मनिका स्थितिबंध करै ॥ ९ ॥

अथ प्रायोग्यतालब्धिकाले प्रकृतिबंधापसरणावतारमाह—

तत्तो उदहिसदस्स य पुधत्तमेत्तं पुणो पुणोदरिय ।
बंधम्मि पयडिबंधुच्छेदपदा होंति चोत्तीसा[2] ॥ १० ॥

ततः उदये शतस्य च पृथक्त्वमात्रं पुनःपुनरुदीयं ।
बंधे प्रकृतिबंधोच्छेदपदानि भवंति चतुश्चत्वारिंशत् ॥ १० ॥

सं० टी०—तत उदधिशतस्य च पृथक्त्वमात्रं पुनः पुनरवतीर्य बन्धे प्रकृतिबंधोच्छेदपदानि भवंति चतुस्त्रिंशत् । तस्मादंतःकोटाकोटिसागरोपमप्रमितात् स्थितिबन्धनात् पल्यसंख्यातैकभागोनां स्थितिमंतर्मुहुर्तं यावत्समानामेव बध्नाति । पुनस्ततः पल्यसंख्यातैकभागोनामपरां स्थितिमंतर्मुहूर्तं यावत् बध्नाति । एवं पल्यसंख्यातैकभागहानिक्रमेण पल्योनामन्तःकोटीकोटिसागरोपमस्थितिमंतर्मुहूर्तं यावद् बध्नाति । एवं पल्यसंख्यातैक-भागहानिक्रमेणैव पल्यद्वयोनां पल्यत्रयोनामित्यादिस्थितिमंतर्मुहूर्तं यावद् बध्नाति । तथा सागरोपमहीनां द्विसागरोपम-

१. एदेसिं चेव सव्वकम्माणं जावे अंतोकोडाकोडिट्ठिदिं बंधदि तावे पढमसम्मत्तं लब्भदि । जी० चू० ८, सू० ३ । २. एत्थ विसोधीए वड्ढमाणाए समत्ताहिमुहमिच्छादिट्ठिस्स पयडीणं बंधवोच्छेदकमो उच्चदे । ध० पु० ६, पृ० १३५ । क० पा०, पृ० ६१७ । जयध० पु० १२, पृ० २२१ ।

हीनां त्रिसागरोपमहीनां इत्यादिसप्ताष्टशतलक्षसागरोपम-पृथक्त्वहीनामंतःकोटाकोटिस्थितिमंतर्मुहूर्तं यावद् बध्नाति तदा एकं नारकायुःप्रकृतिबन्धापसरणस्थानं भवति, तदा नारकायुर्बंधव्युच्छित्तिर्भवतीत्यर्थः । पुनरपि पूर्वोक्तक्रमेण सागरोपमशतपृथक्त्वहीनामंतःकोटीकोटिस्थितिं यदा बध्नाति तदा तिर्यगायुर्बंधव्युच्छेदो भवति । एवमनेन सागरोपमशतपृथक्त्वहानिक्रमेण स्थितिबन्धे एकैकं प्रकृतिबन्धव्युच्छेदपदं भवति यावत् चतुस्त्रिंशत्तमं प्रकृतिबंध-व्युच्छेदपदं प्राप्नोति तावन्नेतव्यं ॥ १० ॥

अब प्रायोग्यलब्धिके समय होनेवाले प्रकृतिबन्धपसरणका कथन करते हैं—

स० चं—तिस अंतःकोटाकोटी सागरस्थितिबंधतैं पल्यका संख्यातवां भागमात्र घटता स्थिति-बंध अन्तर्मुहूर्त पर्यंत समानता लीएं करै । बहुरि तातैं पल्यका संख्यातवाँ भागमात्र घटता स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त पर्यंत करै । अैसैं क्रमतैं संख्यात स्थितिबंधापसरणनिकरि पृथक्त्व सौ सागर घटैं पहला प्रकृतिबंधापसरणस्थान होइ । बहुरि तिस ही क्रमतैं तिसतैं भी पृथक्त्व सौ सागर घटैं दूसरा प्रकृति-बंधापसरणस्थान होइ । अैसैं इस ही क्रमतैं इतना इतना स्थितिबंध घटैं एक एक स्थान होइ । अैसैं प्रक्तिबंधापसरणके चौतीस स्थान होंइ । इहां पृथक्त्व नाम सात वा आठका है, तातैं इहाँ पृथक्त्व सौ सागर कहनेतैं सातसै वा आठसै सागर जानने ॥ १० ॥

अथ चतुस्त्रिंशत्प्रकृतिबन्धापसरणस्थानानि गाथापंचकेनाह—

आऊ पडि णिरयदुगे सुहुमतिये सुहुमदोण्णि पत्तेयं ।
बादरजुद दोण्णि पदे अपुण्णजुद वि-ति-चसण्णि-सण्णीसु ॥११॥[1]

आयुः प्रति निरयद्विकं सूक्ष्मत्रयं सूक्ष्मद्वयं प्रत्येकं ।
बादरयुतं द्वे पदे अपूर्णयुतं द्वित्रिचतुरसंज्ञिसंज्ञिषु ॥ ११ ॥

सं० टी०—प्रथमं नारकायुषो व्युच्छित्तिपदं, द्वितीयं तिर्यगायुषः, तृतीयं मनुष्यायुषः, चतुर्थं देवायुषः, पंचमं नरकगतितदानुपूर्व्योः, षष्ठं सूक्ष्मापर्याप्तकसाधारणप्रकृतीनां संयुक्तानाम्, सप्तमं सूक्ष्मापर्याप्तकप्रत्येक-प्रकृतीनां संयुक्तानाम्, अष्टमं बादरापर्याप्तकसाधारणानां संयुक्तानाम्, नवमं बादरापर्याप्तकप्रत्येकानां संयुक्तानाम्, दशमं द्वीन्द्रियजात्यपर्याप्तकनाम्नोः संयुक्तयोः, एकादशं त्रीन्द्रियजात्यपर्याप्तकनाम्नोः, द्वादशं चतुरिन्द्रिय-जात्यपर्याप्तयोः, त्रयोदशं असंज्ञिपंचेंद्रियजात्यपर्याप्तयोः, चतुर्दशं संज्ञिपंचेन्द्रियजात्यपर्याप्तयोः ॥ ११ ॥

अब चौतीस स्थाननिविषैं क्रमतैं कैसी कैसी प्रकृतिका व्युच्छेद हो है सो कहिए है—

स० चं—पहला नरकायुका व्युच्छित्तिस्थान है । इहांतैं लगाय उपशम सम्यक्त्व पर्यंत नरकायुका बंध न होइ । अैसैं ही आगैं जानना । दूसरा तिर्यंचायुका है । तीसरा मनुष्यायुका है । चौथा देवायुका है । इहाँ प्रथमोपशम सम्यक्त्वविषैं आयुबंधका अभाव है, तातैं सर्व आयुबंधकी व्युच्छित्ति कही है । बहुरि पांचवाँ नरकगति-नरकानुपूर्वीका है । छठा संयोगरूप सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणनिका है । इहां संयोगरूप कहनेकरि तीनोंका मिलाप लीएं तौ इहाँ ही पर्यंत बंध होइ । अर इन तीनोंविषैं कोई प्रकृति बदलें यथासम्भव इनि प्रकृतिनिविषैं कोई प्रकृतिका बंध आगें भी होइ अैसा संयोगरूप कहनेका अभिप्राय जानना । आगैं संयोगरूप कहनेका अैसैं ही अर्थ समझना । बहुरि सातवाँ संयोगरूप सूक्ष्म-अपर्याप्त-प्रत्येकका है । आठवाँ संयोगरूप बादर-अपर्याप्त-साधारणनिका है । नवमा संयोगरूप बादर-अपर्याप्त-प्रत्येकका है । दशवाँ संयोगरूप बेंद्रीजाति-अपर्याप्तका है । ग्यारहवां संयोगरूप तेंद्री-अपर्याप्तका है । बारहवाँ संयोगरूप चौंद्री-अपर्याप्तका है । तेरहवाँ संयोगरूप असंज्ञी पंचेंद्रिय-अपर्याप्तका है । चौदहवाँ संयोगरूप संज्ञी पंचेंद्रिय-पर्याप्तका है ॥ ११ ॥

---

१. ध० पु० ६, पृ० १३५-१३९ ।

अट्ठ अपुण्णपदेसु वि पुण्णेण जुदेसु तेसु तुरियपदे ।
एइंदिय आदावं थावरणामं च मिलिदव्वं ॥ १२ ॥

अष्टौ अपूर्णपदेष्वपि पूर्णेन युतेषु तेषु तुर्यपदे ।
एकेंद्रियमातपः स्थावरनाम च मेलयितव्यम् ॥ १२ ॥

सं० टी—अष्टापूर्णपदेष्वपि पूर्णेन युतेषु तेषु तुर्यपदे एकेंद्रियमातपः स्थावरनाम च मेलयितव्यं । पंचदशं सूक्ष्मपर्याप्तसाधारणानां संयुक्तानाम्, षोडशं सूक्ष्मपर्याप्तप्रत्येकानां संयुक्तानाम्, सप्तदशं बादरपर्याप्तसाधारणानां संयुक्तानाम्, अष्टादशं बादरपर्याप्तप्रत्येकैकेंद्रियजात्यातपस्थावराणां संयुक्तानाम्, एकान्नविंशं द्वींद्रियजातिपर्याप्तयोः संयुक्तयोः, विंशं त्रींद्रियजातिपर्याप्तयोः, एकविंशं चतुरिंद्रियजातिपर्याप्तयोः, द्वाविंशं असंज्ञिपंचेंद्रियजातिपर्याप्तयोः ॥ १२ ॥

स० चं—पंद्रहवां संयोगरूप सूक्ष्म पर्याप्त साधारणनिका है । सोलहवाँ संयोगरूप सूक्ष्म पर्याप्त प्रत्येकनिका है । सतरहवां संयोगरूप बादर पर्याप्त साधारणनिका है । अठारहवां संयोगरूप बादर पर्याप्त प्रत्येक एकेंद्री आतप स्थावरनिका है । उगणीसवां संयोगरूप वेंद्री पर्याप्तका है । बीसवां संयोगरूप तेंद्री पर्याप्तका है । इकवीसवां चौंद्री पर्याप्तका है । बावीसवां असंज्ञी पंचेंद्री पर्याप्तका है ॥ १२ ॥

तिरिगदुगुज्जोवो वि य णीचे अपसत्थगमण दुभगतिए ।
हुंडासंपत्ते वि य णउंसए वाम-खीलीए ॥ १३ ॥

तिर्यग्द्विकोद्योतोऽपि च नीचैः अप्रशस्तगमनं दुर्भगत्रिकं ।
हुंडासंप्राप्तेऽपि च नपुंसकं वामनकीलिते ॥ १३ ॥

सं० टी०—त्रयोविंशं तिर्यग्गतितदानुपूर्व्योद्योतानां संयुक्तानाम्, चतुर्विंशं नीचैर्गोत्रस्य, पंचविंशं अप्रशस्तगमनदुर्भगदुःस्वरानादेयानां संयुक्तानाम्, षड्विंशं हुंडसंस्थानासंप्राप्तसृपाटिकासंहननयोः, सप्तविंशं नपुंसकवेदस्य, अष्टाविंशं वामनसंस्थानकीलितसंहननयोः ॥ १३ ॥

सं० चं०—तेईसवां संयोगरूप तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी उद्योतका है । चौईसवां नीच गोत्रका है । पचीसवां संयोगरूप अप्रशस्त विहायोगति दुर्भग दुःस्वर अनादेयनिका है । छबीसवां हुंडसंस्थान सृपाटिका संहननका है । सत्ताईसवां नपुंसकवेदका है । अठाईसवां बामन संस्थान कीलित संहननका है ॥ १३ ॥

खुज्जद्धं णाराए इत्थीवेदे य सादिणाराए ।
णग्गोध-वज्जणाराए मणुओरालदुग-वज्जे ॥ १४ ॥

कुब्जार्धनाराचं स्त्रीवेदं च स्वातिनाराचे ।
न्यग्रोधव[illegible]च मनुष्यौदारिकाद्वि[illegible] ॥ १४ ॥

सं० टी०—एकान्नत्रिंशं कुब्जसंस्थानार्द्धनाराचसंहननयोः, त्रिंशं स्त्रीवेदस्य, एकत्रिंशं स्वातिसंस्थाननाराचसंहननयोः, द्वात्रिंशं न्यग्रोधसंस्थानवज्रनाराचसंहननयोः, त्रयस्त्रिंशं मनुष्यगतितदानुपूर्व्यौदारिकशरीरतदंगोपांगवज्रवृषभनाराचसंहननानां संयुक्तानाम् ॥ १४ ॥

सं० चं०—गुणतीसवां कुब्ज संस्थान अर्धनाराच संहननका है। तीसवां स्त्री वेदका है। इकतीसवां स्वाति संस्थान नाराच संहननका है। बत्तीसवां न्यग्रोध संस्थान वज्रनाराच संहननका है। तेतीसवां संयोगरूप मनुष्यगति मनुष्यानुपूर्वी औदारिक शरीर औदारिक अंगोपांग वज्रवृषभ नाराच संहननका है॥ १४॥

अथिरअसुभजस-अरदी सोय-असादे य होंति चोतीसा।
बंधोसरणट्ठाणा भव्वाभव्वेसु सामण्णा[1]॥ १५॥

अस्थिर-अशुभायशः अरतिः शोकासाते च भवंति चतुस्त्रिंशं।
बंधापसरणस्थानानि भव्याभव्येषु सामान्यानि॥ १५॥

सं० टी०—चतुस्त्रिंशं अस्थिराशुभायशस्कीर्त्यरतिशोकासातानां संयुक्तानां प्रकृतीनां बंधव्युच्छित्तिपदं। प्रकृतिबन्धापसरणस्थानानि चतुस्त्रिंशदपि भव्याभव्ययोः समानानि भवन्ति। सर्वत्र सागरोपमशतपृथक्त्वहान्या आयुर्वर्जसप्तप्रकृतिस्थितिबन्धक्रमोऽपि पूर्ववद्द्रष्टव्यः॥ १५॥

सं० चं०—चौंतीसवां संयोगरूप अस्थिर अशुभ अयश अरति शोक असातानिका बंध व्युच्छित्तिस्थान है। ऐसैं ए कहे चौंतीस स्थान ते भव्य वा अभव्यके समान हो हैं॥ १५॥

विशेष—इन चौंतीस बन्धापरणोंमें बतलाई गई प्रकृतियोंमेंसे कुछ प्रकृतियाँ अशुभ हैं, कुछ प्रकृतियाँ अशुभतर हैं और कुछ प्रकृतियाँ अशुभतम हैं, अतः इनकी बन्धव्युच्छिति विशुद्धिको प्राप्त होनेवाले भव्य और अभव्य दोनोंके हो जाती है। किन्तु करणलब्धि भव्योंके ही होती है।

अथ एतेषां प्रकृतिबंधापसरणस्थानानां चतुर्गतिसंभवविशेषं कथयति—

णर-तिरियाणं ओघो भवणति-सोहम्मजुगलए विदियं।
तदियं अट्ठारसमं तेवीसदिमादि दसपदं चरिमं॥ १६॥

नरतिरश्चोरोघः भवनत्रिसौधर्मयुगलके द्वितीयं।
तृतीयं अष्टादशमं त्रयोविंशत्यादि दशपदं चरमम्॥ १६॥

सं० टी०—नरतिरश्चोरोघः। भवनत्रिकसौधर्मयुगले द्वितीयं तृतीयं अष्टादशं त्रयोविंशादीनि दशपदानि चरमं। मनुष्यगतौ तिर्यग्गतौ च प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखस्य मिथ्यादृष्टेः पदानि चतुस्त्रिंशदपि संभवंति। तद्बंधयोग्यानां सप्तदशोत्तरप्रकृतीनां मध्ये नारकायुरादिषट्चत्वारिंशत्प्रकृतिबन्धापसरणकथनात्। तथाहि—नारकायुरादिषु षट्सु पदेषु नव, अष्टादशे पदे तिस्रः, तत्तत्पदेषु द्वित्रिचतुरिंद्रियजातयस्तिस्रः, त्रयोविंशादिषु द्वादशसु पदेषु तिर्यग्द्विकोद्योतादयः एकत्रिंशत्। एवं चतुस्त्रिंशत्पदेषु षट्चत्वारिंशत्प्रकृतयो बन्धतो व्युच्छिन्ना इति सूत्रे सूचितत्वात्, शेषा एकसप्ततिप्रकृतयस्तेन बध्यंते। भावनादित्रये सौधर्मैशानयोश्च कल्पयोर्बन्धयोग्यानां त्र्यधिकशतप्रकृतीनां मध्ये तिर्यगायुरादिषु चतुर्दशसु पदेषु एकत्रिंशत्प्रकृतयो बन्धतो व्युच्छिन्नाः। शेषाः द्वासप्ततिप्रकृतयो बध्यंते॥ १६॥

नरक, तिर्यञ्च और देवगतिमें बन्धपसरणोंका निर्देश—

सं० चं०—मनुष्यतिर्यंचनिकैं तौ समान्योक्त चौंतीसौ स्थान पाइए है। तिनके बंधयोग्य

---

१. कुदो एस बंधवोच्छेदकमो? असुह-असुहयर-असुहतमभेएण पयडीणमवट्ठाणादो। एसो पयडिबंधवोच्छेदकमो विसुज्झमाणाणं भव्वाभव्वमिच्छादिट्ठीणं साहारणो। किन्तु तिण्णि करणाणि भव्वमिच्छादिट्ठिस्सेव, अण्णत्थ तेसिमणुवलंभादो। ध० पु ६, पृ० १३९।

एकसौ सतरह प्रकृतिनिविषैं चौतीस स्थाननिकरि छियालीस प्रकृतिकी व्युच्छित्ति हो है। तहां आदिके छह स्थाननिविषैं नव अर अठारहवाँ स्थाननिविषैं एकेंद्रियादिक तीन अर उगणीसवाँ आदि बीचिके स्थाननिविषैं वेंद्री तेंद्री चौंद्री ए तीन अर तेईसवाँ आदि बारह स्थाननिविषैं इकतीस ऐसैं छियालीसकी व्युच्छित्ति हो है। अवशेष इकहत्तरि बांधिए है। बहुरि भवनत्रिक सौधर्म युगलविषैं दूसरा तीसरा अठारहवाँ अर तेईसवाँ आदि दश अर अंतका चौंतीसवाँ ए चौदह स्थान ही संभवै हैं। तहां इकतीस प्रकृतिकी व्युच्छित्ति हो है। बंधयोग्य एकसौ तीनविषैं बहत्तरि प्रकृतिनिका बंध अवशेष रहै है॥ १६॥

विशेष—दर्शनमोहनीयकी उपशामना करनेवाले जीवके तीर्थंकर प्रकृतिकी सत्ता तो होती ही नहीं। सादि मिथ्यादृष्टिके कदाचित् आहारकद्विककी सत्ता सम्भव है, परन्तु आहारद्विककी उद्वेलना करनेके बाद ही उक्त जीव दर्शनमोहनीयके उपशमना करनेके योग्य होता है। कारण कि सम्यगमिथ्यात्व और सम्यक्त्वके उद्वेलना कालसे आहारकद्विकका उद्वेलना काल अल्प है। इसलिए भी दर्शनमोहनीयकी उपशमना करनेके सन्मुख हुए मिथ्यादृष्टि जीवके उक्त दो प्रकृतियोंकी सत्ता नहीं पाई जाती।

अथ नरकगतौ देवगतौ च विशेषेण बंधापसरणपदसंभवं कथयति—

ते चेव चोदसपदा अट्ठारसमेण हीणया होंति।
रयणादिपुढविछक्के सणक्कुमारादिदसकप्पे॥ १७॥

तानि चैव चतुर्दशपदानि अष्टादशेन हीनानि भवंति।
रत्नादिपृथ्वीषट्के सनत्कुमारादिदशकल्पे॥ १७॥

सं० टी०—तान्येव चतुर्दशपदानि अष्टादशेन हीनानि भवंति। रत्नप्रभादिपृथ्वीषट्के सनत्कुमारादिदशकल्पेषु नरकगतौ रत्नप्रभादितमःप्रभापर्यंते पृथ्वीषट्के प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखमिथ्यादृष्टेः प्रकृतिबंधापसरणपदानि पूर्वोक्तान्येव अष्टादशेन हीनानि त्रयोदश भवंति। तेषु तिर्यगायुरादयोऽष्टाविंशतिप्रकृतयो बन्धतो व्युच्छिन्नाः, तद्योग्यप्रकृतिशतमध्ये तदपनयने शेषाः द्वासप्ततिप्रकृतयो बध्यंते। एवं देवगतौ सनत्कुमारादिसहस्रारपर्यंतेषु दशसु कल्पेष्वपि बंधापसरणपदानि बंधव्युच्छिन्नप्रकृतयो बध्यमानप्रकृतयश्च ज्ञातव्याः॥ १७॥

रत्नप्रभा आदि छह पृथिवियोंमें और सनत्कुमार आदि दश कल्पोंमें बन्धापसरणोंका निर्देश—

स० चं०—रत्नप्रभा आदि छह नरक पृथ्वीनिविषैं अर सनत्कुमारादि दश स्वर्गनिविषैं पूर्वोक्त चौदह स्थान अठारहवाँ विना पाइए है। तिन तेरह स्थाननिकरि अठाईस प्रकृति व्युच्छित्ति हो हैं। तहाँ बंधयोग्य सौ प्रकृतिनिविषैं बहत्तरिका बंध अवशेष रहै है॥ १७॥

अथानतादिषु प्रकृतिबंधापसरणस्थानानि कथयति—

ते तेरस विदिएण य तेवीसदिमेण चावि परिहीणा।
आणदकप्पादुवरिमगेवेज्जंतो त्ति ओसरणा॥ १८॥

तानि त्रयोदश द्वितीयेन च त्रयोविंशतिकेन चापि परिहीनानि।
आनतकल्पाद् युपरिमग्रैवेयकांतमित्यपसरणाः॥ १८॥

सं० टी०—तानि त्रयोदश द्वितीयेन त्रयोविंशेन चापि परिहीनानि आनतकल्पाद्युपरिमग्रैवेयकांतं यावदपसरणानि। देवगतौ प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखस्य मिथ्यादृष्टेरानतप्राणतादिषूपरिमग्रैवयकपर्यंतेषु विमानेषु वर्तमानस्य

विशुद्धिविशेषात्तान्येव पूर्वोक्तानि त्रयोदश प्रकृतिबंधापसरणस्थानानि द्वितीयेन त्रयोविंशेन च हीनान्येकादशप्रकृतिबंधापसरणस्थानानि भवंति, तेष्वबध्यमानाः प्रकृतयश्चतुर्विंशतिः । तद्योग्यषण्णवतिप्रकृतिमध्ये तदपनयने शेषा द्वासप्ततिः प्रकृतयो बध्यंते ॥ १८ ॥

आनतकल्पसे लेकर नौग्रैवेयक तकके देवोंमें बन्धापसरणोंका निर्देश—

सं० चं०—आनत स्वर्गादि उपरिम ग्रैवेयक पर्यंतविषैं तेरह स्थान दूसरा तेईसवां विना पाइए। तहां तिनि ग्यारह स्थाननिकरि चौबीस घटाइ बंध योग्य छिनवै प्रकृतिनिविषैं बहत्तरि बांधिए है ॥ १८ ॥

अथ सप्तमपृथिव्यां बंधापसरणपदानि कथयति—

ते चेवेक्कारपदा तदिऊणा विदियठाणसंपत्ता ।
चउवीसदिमेणूणा सत्तमिपुढविम्हि ओसरणा ॥ १९ ॥

तानि चैवैकादशपदानि तृतीयोनानि द्वितीयस्थानसंयुक्तानि ।
चतुर्विंशतिकेनोनानि सप्तमीपृथिव्यामपसरणानि ॥ १९ ॥

सं० टी०—तान्येवैकादशपदानि तृतीयोनानि द्वितीयस्थानसंयुक्तानि चतुर्विंशेनोनानि तान्येव सप्तमपृथिव्यामपसरणानि । नरकगतौ सप्तमपृथिव्यां प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखस्य मिथ्यादृष्टेः प्रकृतिबंधापसरणस्थानानि पूर्वोक्तानि तृतीयस्थानरहितानि द्वितीयस्थानसहितान्येकादश चतुर्विंशेन स्थानेन रहितानि दश भवंति । तेष्वबध्यमानाः प्रकृतयस्त्रयोविंशतिः । उद्योतेन सह चतुर्विंशतिर्वा । तद्योग्यषण्णवतिप्रकृतिमध्ये तदपनयने त्रिसप्ततिर्द्विसप्ततिर्वा प्रकृतयो बध्यंते, उद्योतबंधाबंधयोस्तदा संभवात् ॥ १९ ।

सातवीं पृथिवीमें बन्धापसरणोंका निर्देश—

स० चं०—सातवीं नरक पृथ्वीविषैं जे ग्यारह स्थान तीसरा करि हीन अर दूसरा करि सहित चौईसवां करि हीन पाइए तहां तिनि दश स्थाननिकरि तेईसवां उद्योत सहित चौबीस घटाइ बंधयोग्य छिनवे प्रकृतिनिविषैं तेहत्तरि बांधिए है, जातैं उद्योतकौं बंध वा अबंध दोनों संभवैं हैं ॥ १९ ॥

अथ मनुष्यतिर्यग्गत्योः प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखमिथ्यादृष्टिना बध्यमानाः प्रकृतयः कथ्यंते—

घादिति सादं मिच्छं कसायपुंहस्सरदि भयस्स दुगं ।
अपमत्तडवीसुच्चं बंधंति विसुद्धणरतिरिया[1] ॥ २० ॥

घातित्रयं सातं मिथ्यं कषायपुंहास्यरतयः भयस्य द्विकम् ।
अप्रमत्ताष्टविंशोच्चं बध्नंति विशुद्धनरतिर्यंचः ॥ २० ॥

सं० टी०—ज्ञानावरणस्य पंच, दर्शनावरणस्य नव, अंतरायस्य पंच, सातवेद्यं, मिथ्यात्वं षोडशकषायाः पुंवेदो, हास्यं रतिर्भयं जुगुप्सा, अप्रमत्तस्याष्टविंशतिरुच्चैर्गोत्रमित्येकसप्ततिप्रकृतीः प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखा विशुद्धा मनुष्यतिर्यंचो बध्नंति, चतुस्त्रिंशद्बंधापसरणपदेषु षट्चत्वारिंशत्प्रकृतीनां बंधव्युच्छेदस्य प्रागेवोक्तत्वात् ॥२०॥

सर्वविशुद्ध मनुष्यों और तिर्यञ्चोंमें बन्धयोग्य प्रकृतियोंका निर्देश—

सं०चं०—ऐसैं व्युच्छित्ति भए प्रथम सम्यक्त्वकौं सन्मुख मिथ्यादृष्टि मनुष्य वा तिर्यञ्च

1. जी० चू० ३, सू० २ । जयध० पु० १२, पृ० २११ ।

हैं ते ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतरायकी उगणीस १९ सातावेदनीय १, मिथ्यात्व १ कषाय सोलह १६ पुरुषवेद १ हास्य १ रति १ भय १ जुगुप्सा १, अप्रमत्तकी अठाईस २८, उच्चगोत्र १ अैसैं इकहत्तरि प्रकृति बांधे हैं ॥ २० ॥

विशेष—प्रथमदंडकमें इस गाथासूत्रमें जिन ४३ प्रकृत्तियोंका क्रमोल्लेख है वे और अप्रमत्तसंयतके बँधनेवाली अन्य जो २८ प्रकृतियाँ हैं वे सब मिलाकर ७१ प्रकृतियाँ परिगणित की गई हैं।

अथाप्रमत्तस्याष्टाविंशतिं प्रकृतीरुद्दिशति—

देव-तस-वण्ण-अगुरुचउक्कं समचउर-तेज-कम्मइयं ।
सग्गमणं पंचिंदी थिरादिछण्णिमिणमडवीसं ॥ २१ ॥

देवत्रसवर्णागुरुचतुष्कं समचतुरस्रतेजः कार्मणकम् ।
सद्गमनं पंचेंद्रियस्थिरादिषण्णिर्माणमष्टाविंशम् ॥ २१ ॥

सं० टी०—देवत्रसवर्णागुरुचतुष्काणि समचतुरस्रसंस्थानं तैजसं कार्मणं सद्गमनं पंचेंद्रियजातिः स्थिरादिषट्कं निर्माणमित्यष्टाविंशतिः ॥ २१ ॥

अप्रमत्तजीवके बन्ध योग्य उक्त २८ प्रकृतियोंका निर्देश—

स० चं—देवचतुष्क ४, त्रसचतुष्क ४, वर्णचतुष्क ४, अगुरुलघुचतुष्क ४, समचतुरस्र १, कार्माण १, तैजस १, शुभविहायोगति एक १, पंचेंद्री १, स्थिर आदि छह ६, निर्माण १ ए अठाईस प्रकृति अप्रमत्तसंबंधी जाननी ॥ २१ ॥

अथ देवनरकगत्योः प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखमिथ्यादृष्टिना बध्यमानाः प्रकृतीरुद्दिशति—

तं सुरचउक्कहीणं णरचउवज्जजुद पयडिपरिमाणं ।
सुरछप्पुडवीमिच्छा सिद्धोसरणा हु बंधंति[1] ॥ २२ ॥

तत् सुरच[illegible]ष्कहीनं नरचतुर्वज्रयुतं प्रकृतिपरिमाणं ।
[illegible]रषट्पृथिवीमिथ्याः सिद्धापसरणा हि बध्नंति ॥ २२ ॥

सं० टी०—तत्सुरचतुष्कहीनं नरचतुष्कवज्रयुतं प्रकृतिपरिमाणं सुरषट्कपृथ्वीमिथ्यादृष्टयः सिद्धापसरणाः खलु बध्नंति । तिर्यग्मनुष्यबन्धप्रकृतिषु सुरचतुष्कमपनीय नरचतुष्के वज्रवृषभनाराचसंहनने च प्रक्लृप्ते द्विसप्तर्ति प्रकृतीः प्रसिद्धबन्धापसरणाः सुरमिथ्यादृष्टयः षट्पृथ्वीनारकमिथ्यादृष्टयश्च बध्नंति ॥ २२ ॥

देवों और छह पृथिवियोंमें बंधनेवाली प्रकृतियोंका निर्देश—

स० चं—तिन इकहत्तरिविषैं देवचतुष्क घटाइ मनुष्यचतुष्क वज्रवृषभनाराच मिलाएँ बहत्तरि प्रकृतिनिकौं सिद्ध भए हैं बंधापसरण जिनके अैसे मिथ्यादृष्टि देव छह पृथ्वीनिके नारकी बाँधै हैं। इहाँ देवचतुष्कविषैं देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर वैक्रियिकअंगोपांग जानना। अर मनुष्यचतुष्कविषैं मनुष्यगति मनुष्यगत्यानुपूर्वी औदारिक औदारिक अंगोपांग जानने।

विशेष—दूसरे दण्डकमें उक्त ७१ प्रकृतियोंमेंसे देवगतिचतुष्कको कम कर तथा मनुष्यगति-चतुष्क और वज्रर्षभनाराचसंहननको मिलाकर ७२ प्रकृतियाँ परिगणित की गई हैं।

१. जी० चू० ४, सू० २। जयध० पु० १२, पृ० २११।

अथ सप्तमपृथिव्यां बंधप्रकृतीरुद्दिशति—

तं णरदुगुच्चहीणं तिरियदु णीचजुद पयडिपरिमाणं ।
उज्जोवेण जुदं वा सत्तमखिदिगा हु बंधंति[1] ।। २३ ।।

तत् नरद्विकोच्चहीनं तिर्यग्द्विकं नीचयुतं प्रकृतिपरिमाणं ।
उद्योतेन युतं वा सप्तमक्षितिगा हि बध्नंति ।। २३ ।।

सं० टी०—तन्नरद्विकोच्चैर्गोत्रहीनं तिर्यग्द्विकनीचैर्गोत्रयुतप्रकृतिपरिमाणं उद्योतेन युतं वा सप्तमक्षितिगाः खलु बध्नंति । सुगमं ।। २३ ।। इति प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखमिथ्यादृष्टेः प्रकृतिबंधाबंधविभागः कथितः ।

सातवीं पृथिवीमें बंधनेवाली प्रकृतियोंका निर्देश—

स० चं—तिनि बहत्तरनिविषैं मनुष्यद्विक उच्चगोत्र विना अर तिर्यंचद्विक नीचगोत्र सहित बहत्तरि अथवा उद्योतसहित तेहत्तरि प्रकृतिनिकौं सातवीं नरक पृथ्वीवाले बांधै हैं ।। २३ ।। ऐसैं प्रकृतिबंध-अबंधका विभाग कह्या ।

विशेष—दूसरे दंडकमें उक्त ७२ प्रकृतियोंमेंसे मनुष्यगतिद्विक और उच्चगोत्रको कम कर तथा तिर्यंचगतिद्विक, उद्योत और नीचगोत्रको मिलाकर कुल ७३ प्रकृतियाँ तीसरे दण्डकमें परिगणित की गई हैं ।

अथ स्थित्यनुभागबंधभेदं कथयति—

अंतोकोडाकोडीठिदिं असत्थाण सत्थगाणं च ।
बिचउट्ठाणरसं च य बंधाणं बंधणं कुणइ[2] ।। २४ ।।

अंतःकोटाकोटिस्थितिं अशस्तानां शस्तकानां च ।
द्विचतुःस्थानरसं च च बंधानां बंधनं करोति ।। २४ ।।

सं० टी०—अंतःकोटीकोटिस्थितिं अशस्तानां शस्तानां च द्विचतुःस्थानरसं च च बंधानां बंधनं करोति । चतुस्त्रिंशद्बंधापसरणपदेषु पदं प्रति पदं प्रति सागरोपमशतपृथक्त्वहीनामंतःकोटीकोटिसागरोपम-प्रमितां बध्यमानप्रकृतीनां स्थितिं चतुर्गतिविशुद्धिमिथ्यादृष्टिर्बध्नाति । तत्र तत्र पदे अप्रशस्तप्रकृतीनां द्विस्थान-गतमनुभागं प्रतिसमयमनंतगुणहान्या बध्नाति, प्रशस्तप्रकृतीनामनुभागं चतुःस्थानगतं प्रतिसमयमनंतगुणवृद्ध्या बध्नाति, तद्विशुद्धेः प्रतिसमयमनंतगुणवृद्धिसंभवात् ।। २४ ।।

अब स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धके भेदका कथन करते हैं—

स० चं०—प्रथम सम्यक्त्वकौं सन्मुख च्यारयो गतिवाला मिथ्यादृष्टि जीव बध्यमान प्रकृतिनिकी चौंतीस बंधापसरण स्थाननिविषैं एक एक स्थान प्रति पृथक्त्व सौ सागर घटता क्रम लीए अंतःकोटाकोटी सागरप्रमाण स्थिति बाँधै हैं । अर अनुभाग अप्रशस्त प्रकृतिनिका तौ दोय स्थानकौं प्राप्त समय समय अनंत अनंतगुणां घटता बांधै है । प्रशस्त प्रकृतिनिका च्यारि स्थानकौं प्राप्त समय समय अनंतगुणा बंधता बांधै है ।। २४ ।।

---

१. जी० चू० ५, सू० २ । जयध० पु० १२, पृ० २१२ ।

२. ध० पु० ६, पृ० २०९ । जयध० पु० १२, पृ० २१३ ।

अथ सम्यक्त्वाभिमुखमिथ्यादृष्टेः प्रदेशबंधविभागं कथयति—

मिच्छणथीणति सुरचउ समवज्जपसत्थगमणसुभगतियं ।
णीचुक्कस्सपदेसमणुक्कस्सं वा पबंधदि हु[1] ॥ २५ ॥

मिथ्यानस्त्यानत्रिकं सुरचतुःसमवज्रप्रशस्तगमनसुभगत्रिकं ।
नीचैरुत्कृष्टप्रदेशमनुत्कृष्टं वा प्रबध्नाति हि ॥ २५ ॥

सं० टी०—मिथ्यात्वमनंतानुबंधिनः स्त्यानगृद्ध्यादित्रयं सुरचतुष्कं समचतुरस्रसंस्थानं वज्रवृषभनाराचसंहननं प्रशस्तविहायोगमनं सुभगत्रयं नीचैर्गोत्रमित्येकान्नविंशतेः प्रकृतीनामुत्कृष्टं वा प्रदेशं प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखो विशुद्धश्चातुर्गतिको मिथ्यादृष्टिर्बध्नाति ॥ २५ ॥

अब सम्यक्त्वके अभिमुख हुए मिथ्यादृष्टिके प्रदेशबन्धके विभागको कहते हैं—

सं० चं०—यहु जीव मिथ्यात्व १ अनंतानुबंधीचतुष्क ४ स्त्यानगृद्धित्रिक ३ देवचतुष्क ४ समचतुरस्र १ वज्रवृषभनाराच १ प्रशस्तविहायोगति १ सुभगादि तीन ३ नीच गोत्र १ इन उगणीस प्रकृतिनिका उत्कृष्ट वा अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध करै है ॥ २५ ॥

एदेहिं विहीणाणं तिण्णि महादंडएसु उत्ताणं ।
एकट्ठिपमाणाणमणुक्कस्सपदेसबंधणं कुणइ[2] ॥ २६ ॥

एतैर्विहीनानां त्रिषु महादंडकेषूक्तानाम् ।
एकषष्टिप्रमाणानामनुत्कृष्टप्रदेशबंधनं करोति ॥ २६ ॥

सं० टी०—एतैर्विहीनानां त्रिषु महादंडकेषूक्तानां एकषष्टिप्रमाणानां प्रकृतीनामनुत्कृष्टप्रदेशबन्धनं करोति ॥ २६ ॥

स० चं०—इनकरि जे हीन जे महादंडकनिविषैं कहीं ऐसी प्रकृतिनिविषैं इकसठि प्रकृतिनिका अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध करै है ॥ २६ ॥

अथैतत्प्रकृतिसम्भवं कथयति—

पढमे सव्वे विदिये पण तदिये चउ कमा अपुणरुत्ता ।
इदि पयडीणमसीदी तिदंडएसु वि अपुणरुत्ता ॥ २७ ॥

प्रथमे सर्वे द्वितीये पंच तृतीये चतुः क्रमावपुनरुक्ताः ।
इति प्रकृतीनामशीतिः त्रिदंडकेष्वपि अपुनरुक्ताः ॥ २७ ॥

सं० टी०—सिद्धांते प्रथमदंडके[3] सर्वाः घातित्रयादयः एकसप्ततिप्रकृतयः उक्ताः,। द्वितीयदंडके[4] नरचतुष्कं वज्रवृषभनाराचसंहननमिति पंच प्रकृतयः अपुनरुक्ता उक्ताः, तृतीयदंडके[5] तिर्यग्द्विकं नीचैर्गोत्रं उद्योत इति चतस्रः प्रकृतयः अपुनरुक्ता उक्ताः। एवं क्रमात्रिष्वपि दंडकेषु अपुनरुक्तानां प्रकृतीनामशीतिः प्रोक्ताः ॥ २७ ॥

---

(१) जयध० पु० पृ० १२, पृ० २१३, । ध० पु० ६, पृ० २१० ।

(२) जयध० पु० १२, पृ० २१३ । ध० पु० ६, पृ० २१० । (३) जीव० चू० ३, सू० २ । ध० पु० ६ पृ० १३३ । (४) जी० चू० ४, सू० २ । ध० पु० ६, पृ० १४० । (५) जी० चू० ५, सू० २ । ध० पु० ६, पृ० १४१ ।

अब तीन महादण्डकोंमें सम्भव प्रकृतियोंको बतलाते हैं —

स० चं—मनुष्य तिर्यंचकैं बंधयोग्य जो पहिला दंडक तीहिं विषैं सर्व इकहत्तर ही अपुनरुक्त बहुरि भवन त्रिकादिककैं योग्य जो दूसरा दंडक तीहिंविषैं मनुष्यचतुष्क; वज्रवृषनाराच ए पाँच अपुनरुक्त हैं। अन्य प्रकृति पहिला दंडकविषैं कही हीं थीं। अर सातवीं पृथ्वीवालोंकैं योग्य तीसरा दंडकविषैं तिर्यंचद्विक २, नीचगोत्र १, उद्योत १ ए च्यारि अपुनरुक्त हैं। अन्य प्रकृति पहिला दूसरा दंडकविषैं कहीं हीं थी। ऐसैं तीनों दंडकनिविषैं अपुनरुक्त असी प्रकृति जाननी ॥ २७ ॥

ऐसैं बंध कहि अब तिस ही जीवकैं उदय कहै हैं—

विशेष—प्रथम दंडकमें जिन ७१ प्रकृतियोंकी परिगणना की गई है उनका उल्लेख गाथा २० और २१ में किया गया है।

एवं प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखस्य विशुद्धमिथ्यादृष्टेः प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधाबंधभेदमभिधाय तस्यैवोदयप्रकृतिभेदमाह—

उदये चउदसघादी णिद्दापयलाणमेक्कदरगं तु।
मोहे दस सिय णामे वचिठाणं सेसगे सजोगेक्कं[1] ॥

उदये चतुर्दश घातिनः निद्राप्रचलानामेकतरकं तु।
मोहे दश स्यात् नामनि वचःस्थानं शेषकं सयोग्येकं ॥ २८ ॥

सं० टी०—नरकगतौ[2] प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखविशुद्धमिथ्यादृष्टेरुदये वर्तमानाः प्रकृतयो ज्ञानावरणस्य पंच, दर्शनावरणस्य स्त्यानगृद्ध्यादित्रयेण निद्राप्रचलाभ्यां च रहिताः चतस्रः, अंतरायस्य पंच, मोहनीयस्य दशकं नवकमष्टकं वा स्थानानि[3], नारकायुरेका, नाम्नो वाक्स्थानमेकान्नत्रिंशत् (प्रकृतयः) वेदनीयस्यैका, नीचैर्गोत्रं।

अत्र मोहनीयस्य ० अष्ट प्रकृतिस्थानेन युक्ताः कस्यचिज्जीवस्य चतुःपंचाशत्प्रकृतयः,

२ । २
१
४ । ४ । ४ । ४
१

तद्भंगाः मोहनीयस्याष्टौ, वेदनीयभंगाभ्यां गुणिताः षोडश, नामप्रकृतीनां स्थिरसुभगयुगद्वयवर्जितानां नरकगतावप्रशस्तानामेवोदयाद् भंगाभावः। पुनस्ता एव कस्यचिज्जीवस्य भयेन जुगुप्सया वा १ नवप्रकृतिस्थानेन युक्ताः

२ । २
१
४ । ४ । ४ । ४
१

१. ध० पु० ६, पृ० २१०।

२. ध० पु० ६, पृ० २११।

३. भयसहियं च जुगुच्छासहियं दोहिं वि जुदं च ठाणाणि। मिच्छादि-अपुव्वंते चत्तारि हवंति णियमेण गो० क०, गा० ४७७।

पंचपंचाशत्प्रकृतयः तद्भंगाः पूर्वे एव भयजुगुप्साभ्यां गुणिता द्वात्रिंशत्। पुनः कस्यचिज्जीवस्य ता एव भयजुगुप्साभ्यां २ दशप्रकृतिस्थानेन युक्ताः षट्पंचाशत्प्रकृतयः, तद्भंगाः प्राग्वत् षोडश।

२ । २
१
४ । ४ । ४ । ४
१

भयजुगुप्सयोर्युगपदुदयासंभवाद् भंगाभावः। तिर्यग्गतौ[1] पूर्वोक्तप्रकृतिषु संहनने प्रक्षिप्ते मोहाष्टकस्थानयुक्ताः पंचपंचाशत्प्रकृतयः, तद्भंगा ० मोहस्य चतुर्विंशतिः, वेदनीयस्य द्वौ, नामकर्मणः[2] 'संठाणे संहडणे विहायजुम्मे य २ । २ चरिमचदुजुम्मे'

१ । १ । १
४ । ४ । ४ । ४
१
१ । १
१ । १
१ । १
१ । १
१ । १
१ १ १ १ १ १
१ १ १ १ १ १

इत्यनेनोक्ता द्वापंचाशदुत्तराण्येकादशशतानि ११५२। चतुर्विंशत्या द्वाभ्यां च गुणितानि षण्णवत्युत्तरद्विशत्यधिकानि पंचपंचाशत्सहस्राणि ५५२९६ भवंति। पुनस्ता एव प्रकृतयः भयेन जुगुप्सया वा १ मोहनवकस्थानयुक्ताः षट्पंचाशद्भंगाः पूर्वभंगा एवं द्वाभ्यां गुणिता द्वानवत्युत्तरपंचशत्यधिकदशसहस्रसंयुक्तैकलक्षसंख्याः ११०५९२।

२ । २
१ । १ । १
४ । ४ । ४ । ४
१

पुनस्ता एव प्रकृतयो युगपद्भयजुगुप्साभ्यां २ मोहदशकस्थानयुक्ताः सप्तपंचाशत्, तद्भंगा भयजुगुप्साभंगद्वयरहितास्त एव षण्णवत्युत्तरद्विशत्यधिकानि पंचपंचाशत्सहस्राणि ५५२९६।

२ । २
१ । १ । १
४ । ४ । ४ । ४
१

पुनरेतान्येव त्रीणि स्थलान्युद्योतेनाधिकानि षट्पंचाशत्सप्तपंचाशदष्टपंचाशत्प्रकृतिकानि भवंति, भंगाः पुनः पूर्ववदेव। मनुष्यगतावपि[3] तिर्यग्गतिवत्। अयं तु विशेषः— उद्योतनामयुक्तं स्थलत्रयं नास्ति, तदुदयस्य तिर्यग्गतावेवेति नियमात्। उच्चैर्गोत्रस्याप्युदयोऽस्तीति तिर्यग्गतिभंगा एव गोत्रभंगद्वयेन गुणिताः मनुष्यगतौ भंगा भवंति

५५	५६	५७
११०५९२	२२११८४	११०५९२

।

---

१. ध० पु० ६, पृ० २१२। जयध० पु० १२, पृ० २१९।

२. संठाणे संहणणे विहायजुम्मे य चरिमचदुजुम्मे। अविरुद्धेगदरादो उदयट्ठाणेसु भंगा दु। गो. क०, गा. ५९९। ३. ध० पु० ६, पृ० ३१२।

देवगतावपि[1] नरकगतिवत् । अयं तु विशेषः—तत्र नामकर्मप्रकृतयः प्रशस्ता एव, उच्चैर्गोत्रमेव, मोहप्रकृतिषु नपुंसकवेदमपनीय स्त्रीपुंवेदद्वयमेलनात् द्विगुणभंगाः— ० अतः कारणात् स्थलत्रयेऽपि भंगा एवं—

२ । २
१ । १
४ ४ ४ ४
१

५४ ५५ ५६ । पुनर्निद्रया प्रचलया वा युक्ताः पूर्वोक्ता एव गतिचतुष्टये प्रकृतयः एकाधिका भवंति,
३२ ६४ ३२

भंगाश्च पूर्वोक्ता एव निद्राप्रचलाभंगद्वयेन गुणिता भवंति ॥ २८ ॥ अथ प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखस्य विशुद्ध-मिथ्यादृष्टेरुदययोग्यप्रकृतीनां स्थित्यनुभागौ व्याचष्टे—

अब प्रकृतमें उदय प्रकृतियोंको बतलाते हैं—

स० चं०—प्रथम सम्यक्त्व सन्मुख जीवकैं नरकगतिविषैं ज्ञानावरणकी पाँच ५, दर्शनावरणकी निद्रादि पाँच विना च्यारि ४, अन्तरायकी पाँच ५, मोहनीयकी दश १० वा नव वा आठ, आयुकी एक नरकायु, नामकी भाषापर्याप्ति कालविषैं उदय आवने योग्य गुणतीस, तिनिके नाम गति १, जाति १, शरीर ३, अंगोपांग १, निर्माण १, संस्थान १, वर्णचतुष्क ४, अगुरुलघु १, स्थिरयुगल २, शुभयुगल २, त्रस १, बादर १, पर्याप्त १, दुर्भग, अनादेय १, अयशस्कीर्ति १, प्रत्येक १, उपघात १, परघात १, उश्वास १, अशुभविहायोगति १, दुःस्वर १, ए जानने । बहुरि वेदनीयकी एक कोई, गोत्रकी एक नीच गोत्र असैं इनि प्रकृतिनिका उदय है। इहां मोहनीयकी वा नामकी उदय प्रकृतिनिका अर प्रकृति बदलनेतैं भंग हो है तिनिका गोम्मटसारविषैं कर्मकांडका जो स्थानसमुत्कीर्तन अधिकार तिहिविषैं विशेष वर्णन है तहाँतैं जानना । असैं मोहनीयकी मिथ्यात्व अर अनंतानुबंधी आदि च्यारि प्रकार क्रोधादिविषैं कोई एक अर नपुंसक वेद अर हास्य शोक युगलविषैं एक, रति अरति युगलविषैं एक असैं आठ प्रकृति सहित कोई जीवकैं चौवन प्रकृतिका उदय हो है । तहाँ मोहनीयके च्यारि कषाय अर दोय युगलके बदलनेतैं आठ भंग अर दोय वेदनीयके भंगनितैं गुणें सोलह भंग हो हैं । नामकी अप्रशस्तहीनिका इहां उदय है, तातैं नामकर्मकी अपेक्षा भंग नाहीं हैं । बहुरि भय वा जुगुप्सा विषै कोई एक मिलाएं मोहकी नव सहित पचवनका उदय होइ । तहां पूर्वोक्त सोलह भंगनिकौं भय जुगुप्साकरि गुणें बत्तीस भंग हो हैं । बहुरि भय जुगुप्सा दोऊनि करि युक्त मोहकी दश सहित छप्पन प्रकृतिका उदय होइ, तहां सोलह ही भंग जानने, जातैं इहां दोऊनिका उदय युगपत् है । इहां क्रोध सहित अन्य प्रकृति लगाएं प्रथम भंग, क्रोधकी जायगा मान कहैं दूसरा भंग, असैं ही प्रकृति बदलनेतैं भंगनिका होना जानना ।

बहुरि तिर्यंच गतिविषैं पूर्वोक्त प्रकृतिनिविषैं एक संहनन मिलाएं पचावन, छप्पन, सत्तावनका उदय जानना । तहां पचावन उदय विषैं इहां तीनों वेद पाइए, तातैं तिनके बदलनेतैं मोहके भंग चौईस हो हैं । अर वेदनीयके दोय हैं ही । अर नामके 'संठाणे संहडणे' इत्यादि सूत्रकरि छह संस्थान, छह संहनन, विहायोगतियुगल, सुभगयुगल, स्वरयुगल, आदेययुगल, यशस्कीर्तियुगल इनिके बदलनेतैं ग्यारहसै बावन भंग हो हैं, जातैं इहां इन सबनिका उदय संभवै है । असैं ए भंग कहे । इनकौं परस्पर गुणैं पचावन हजार दोयसै छिनवै भंग भए । बहुरि छप्पनका उदयविषैं भय-

---

१. ध० पु० ६, पृ० २१३ । जयध० पु० १२, पृ० २१९ ।

जुगुप्सातैं गुणैं तिनतैं दूणे ११०५९२ भंग भए। बहुरि सत्तावनका उदयविषैं पचावनकेवत् ही ५५२९६ भंग जानने। बहुरि तिनविषैं उद्योत प्रकृति मिलाएं तहां छप्पन सत्तावन अट्ठावनका उदय हो है। तहां भंग तीनों जायगा पूर्वोक्त प्रकार ही जानने।

बहुरि मनुष्यगतिविषैं तिर्यंचवत् उदय जानना। विशेष इतना—तहां उद्योत सहित उदय नाहीं है। बहुरि तहां दोऊ गोत्रनिका उदय संभवै है, तातैं तिर्यंचगतिविषैं कहे भंगनितैं तीनों जायगा गोत्रके बदलनेतैं दूणा भंग जानने।

बहुरि देवगतिविषैं नरकवत् उदय जानना। विशेष इतना—इहां नामकी प्रशस्त प्रकृतिनिहीका अर उच्चगोत्रका अर मोहविषैं नपुंसक वेद विना स्त्री पुरुषविषैं कोई एक वेदका उदय पाइए है। तहां दोय वेदके बदलनेतैं नरक गतिविषैं कहे भंगनितैं तीनों जायगा दूणे भंग जानने। ऐसैं ए भंग निद्राका उदय रहित जीवनिकी अपेक्षा कहे। बहुरि इन च्यारयो गतिविषैं जे उदय कहे तिनविषैं निद्रा प्रचलाविषैं कोई एक प्रकृति मिलाएं एक एक प्रकृतिनिकरि अधिक उदय हो है। तहां इन दोऊ प्रकृतिनिके बदलनेतैं सर्वत्र पूर्वोक्त भंगनितैं दूणे भंग जानने॥ २८॥

अब प्रकृतमें उदय योग्य प्रकृतियोंके स्थिति और अनुभागको बतलाते हैं—

उदइल्लाणं उदये पत्तेक्कठिदिस्स वेदगो होदि।
बिचउट्ठाणमसत्थे सत्थे उदयल्लरसभुत्ती[1]॥ २९॥

उदयवतामुदये प्राप्ते एकस्थितिकस्य वेदको भवति।
द्विचतुःस्थानमशस्ते शस्ते उदीयमानरसभुक्तिः॥ २९॥

सं० टी०—उदयवतां कर्मणामुदयं प्रति उदयमुद्दिश्य एकस्थितेरुदयागतस्यैकनिषेकस्य वेदकोऽनुभविता भवति स जीवः, उदयवत्प्रकृतीनामप्रशस्तानां द्विस्थानगतस्य रसस्य प्रशस्तानां चतुःस्थानगतस्य रसस्य भुक्तिरनुभवस्तेन जीवेन क्रियते॥ २९॥ अथ तस्य प्रदेशोदयमुदीरणां बभ्रवीति—

स० चं०—उदयवान प्रकृतिनिका उदय अपेक्षा एक स्थिति जो उदयकौं प्राप्त भया एक निषेक ताहीका भोक्ता सो जीव हो है। बहुरि अप्रशस्त प्रकृतिनिका द्विस्थानरूप अर प्रशस्त प्रकृतिनिका चतुःस्थानरूप अनुभागका भोगवना ताकौं हो है॥ २९॥

अब प्रकृतमें प्रदेशोदय और उदीरणाको बतलाते हैं—

अजहण्णमणुक्कस्सप्पदेसमणुभवदि सोदयाणं तु।
उदयिल्लाणं पयडिचउक्काणमुदीरगो होदि[2]॥ ३०॥

अजघन्यमनुत्कृष्टप्रदेशमनुभवति सोदयानां तु।
उदयवतां प्रकृतिचतुष्काणामुदीरको भवति॥ ३०॥

---

१. ध० पु० ६, पृ० २१३। जयध० पु० १२, पृ० २२०।

२. उदयस्सुदीरणस्स य सामित्तादो ण विज्जदि विसेसो। मोत्तूण तिण्णि ट्ठाणं पमत्त जोगी अजोगी य। गो० क०, गा० २७८।

सं० टी०—सोदयानां प्रकृतीनामजघन्यमनुत्कृष्टं च प्रदेशमनुभवति स जीवः। पुनरुदयवतां प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशानां चतुर्णामुदीरको भवति स जीवः, उदयोदीरणयोः स्वामिभेदाभावात्[1] ॥ ३० ॥ अथ तस्य सत्त्वप्रकृतीरुद्दिशति—

सं० चं०—उदय प्रकृतिनिका अजघन्य वा अनुत्कृष्ट प्रदेशकौं भोगवै है। जघन्य वा उत्कृष्ट परमाणूनिका इहां उदय नाहीं। बहुरि प्रकृति प्रदेश स्थिति अनुभाग जे उदयरूप कहे तिनहीका यहु उदीरणा करनेवाला हो है। जातैं जाकैं जिनिका उदय ताकौं तिनहीकी उदीरणा भी संभवै है ॥ ३० ॥

असैं उदय उदीरणा कहि अब सत्त्व कहै हैं—

दुति आउ तित्थहारचउक्कणा सम्मगेण हीणा वा।
मिस्सेणूणा वा वि य सव्वे पयडी हवे सत्तं ॥ ३१ ॥

द्वित्रिआयुःतीर्थाहारचतुष्कैः सम्यक्त्वेन हीना वा।
मिश्रेणोना वापि च सर्वेषां प्रकृतीनां भवेत् सत्त्वम् ॥ ३१ ॥

सं० टी०—अनादिमिथ्यादृष्टिः सादिमिथ्यादृष्टिर्वा प्रथमोपशमसम्यक्त्वयोग्यो भवति। तत्रानादिमिथ्यादृष्टेर्जीवस्याबद्धायुष इतरायुस्त्रयेण तीर्थकरत्वेनाहारकचतुष्केण सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वाभ्यां च दशभिः प्रकृतिभिरूनाः सर्वाः प्रकृतयः १३८ सत्त्वेन विद्यंते। तस्यैव बद्धायुषः नवभिरूनाः १३९, सादिमिथ्यादृष्टेरबद्धायुषः इतरायुस्त्रयं तीर्थकरत्वमाहारकचतुष्कमित्यष्टभिरूनाः १४०, तस्यैवोद्वेल्लितसम्यक्त्वस्य नवभिरूनाः १३९, तस्यैवोद्वेल्लितसम्यग्मिथ्यात्वस्य दशभिरूनाः १३८, तस्यैव बद्धायुषः इतरायुर्द्वयेन तीर्थकरत्वेनाहारकचतुष्केण वा सप्तभिरूनाः १४१, तस्यैवोद्वेल्लितसम्यक्त्वस्याष्टभिरूनाः १४०, तस्यैवोद्वेल्लितसम्यग्मिथ्यात्वस्य नवभिरूनाः १३९ समस्ताः प्रकृतयः सत्त्वेन विद्यन्ते। अनुद्वेल्लिताहारकचतुष्कस्य तीर्थकरसत्कर्मणश्च सादिमिथ्यादृष्टेः प्रथमोपशमसम्यक्त्वाभिमुखस्यासंभवात् ॥ ३१ ॥ अथ सत्कर्मप्रकृतीनां स्थित्यादिसत्त्वपूर्वकं प्रायोग्यतालब्धिमुपसंहरति—

सं० चं०—सम्यक्त्व सन्मुख अनादि मिथ्यादृष्टिकैं अबद्धायुकै तौ भुज्यमान विना तीन आयु ३, तीर्थंकर १, आहारकचतुष्क ४, सम्यग्मोहनी १, मिश्रमोहनी १, इनि दश विना एकसौ अठतीसका सत्त्व है। बहुरि तिस ही बद्धायुकैं एक बध्यमान आयु सहित एकसौ गुणतालीसका सत्त्व हो है। बहुरि सम्यक्त्व सन्मुख सादि मिथ्यादृष्टिकैं अबद्धायुकैं तौ भुज्यमान विना तीन आयु ३, तीर्थंकर १, आहारकचतुष्क ४ इनि आठ विना एकसौ चालीसका सत्त्व है। सम्यक्त्व मोहनीकी उद्वेलना भएं एकसौ गुणतालीसका सत्त्व हो है। मिश्रमोहनीकी उद्वेलना भएं एकसौ अठतीसका सत्त्व हो है। बहुरि तिस ही बद्धायुकैं बध्यमान आयु सहित एकसौ इकतालीस, एकसौ चालीस, एकसौ गुणतालीसका सत्त्व हो है। जातैं आहारकचतुष्टयकी उद्वेलना भएं विना अर तीर्थंकर सत्तावाला जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वके सन्मुख न हो है ॥ ३१ ॥

१. ध० पु० ६ पृ० २०९। जयध० पु० १२, पृ० २०७

अब सत्त्वप्रकृतियोंके स्थिति आदि तीनको कहते हैं—

अजहण्णमणुक्कस्सं ठिदीतियं होदि सत्तपयडीणं[1]।
एवं पयडिचउक्कं बंधादिसु होदि पत्तेयं ॥ ३२ ॥

अजघन्यमनुत्कृष्टं स्थितित्रिकं भवति सत्त्वप्रकृतीनाम् ।
एवं प्रकृतिचतुष्कं बंधादिषु भवति प्रत्येकम् ॥ ३२ ॥

सं० टी०—तस्य सत्कर्मप्रकृतीनामुक्तानां स्थित्यनुभागप्रदेशसत्त्वमजघन्यानुत्कृष्टं भवति, जघन्योत्कृष्टाभावस्य पूर्वमभिहितत्वात् । एवं बंधादिषु बंधोदयोदीरणासत्त्वेषु प्रकृतिचतुष्कं प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशाः प्रत्येकमुक्तप्रकारेण प्रतिनियमिताः । ईदृशः प्रकृतिबंधः, ईदृशः स्थितिबन्धः, ईदृशोऽनुभागबंधः, ईदृशः प्रदेशबंधः इत्यादि विभज्य रूपिताः प्रायोग्यतालब्धिकालचरमसमयपर्यंतं प्रत्येतव्याः ॥ ३२ ॥ अथ क्रमप्राप्तां करणलब्धिमाचष्टे—

सं० चं०—तिन सत्तारूप प्रकृतिनिका स्थिति अनुभाग प्रदेश हैं ते अजघन्य अनुत्कृष्ट हैं जघन्य वा उत्कृष्ट स्थिति अनुभाग प्रदेशका सत्त्व इहां न संभवै है। ऐसैं प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेशरूप चतुष्क है सो बंध उदय उदीरणा सत्त्वविषैं प्रत्येक कह्या। सो प्रायोग्यता लब्धि का अंत पर्यंत जानना ॥ ३२ ॥

अब क्रमप्राप्त करणलब्धिको कहते हैं—

तत्तो अभव्वजोग्गं परिणामं बोलिऊण भव्वो हु ।
करणं[2] करेदि कमसो अधापवत्तं अपुव्वमणियट्टिं[3] ॥ ३३ ॥

ततः अभव्ययोग्यं परिणामं मुक्त्वा भव्यो हि ।
करणं करोति क्रमशः अधःप्रवृत्तमपूर्वमनिवृत्तिम् ॥ ३३ ॥

सं० टी०—ततः पश्चादभव्ययोग्यं लब्धिचतुष्टयसंभविनं विशुद्धपरिणामं नीत्वा भव्यः खलु क्रमेणाधःप्रवृत्तकरणमपूर्वकरणयनिवृत्तिकरणं च विशिष्टनिर्जरासाधनं विशुद्धपरिणामं करोति ॥ ३३ ॥ अथ त्रिकरणपरिणामकालमल्पबहुत्वसहितं कथयति—

सं० चं०—तहां पीछे अभव्यकैं भी योग्य ऐसा च्यारि लब्धिरूप परिणामकौं समाप्तकरि भव्य है सोई अधःप्रवृत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरणको करै है। सो इन तीनों करणनिका व्याख्यान गोम्मटसारविषैं जीवकांडका गुणस्थानाधिकारविषै वा कर्मकांडका त्रिकोण चूलिका अधिकारविषैं विशेष व्याख्यान है तहांतैं जानना। इहां भी सामान्यसा गाथानिका अर्थ कहिए है ॥ ३३ ॥

अब तीन करणोंसम्बन्धी परिणामोंके कालको और उसके अल्पबहुत्वको बतलाते हैं—

अंतोमुहुत्तकाला तिण्णि वि करणा हवंति पत्तेयं ।
उवरीदो गुणियकमा कमेण संखेज्जरूवेण ॥ ३४ ॥

---

१. ध० पु० ६, पृ० २०८–२०९ । जयध० पु० १२, पृ० २०७ ।

२. कधं परिणामाणं करणसण्णा ? ण एस दोसो, असि-वासीणं व सहायतमभावविवक्खाए करणाणं करणत्तुवलंभादो । ध० पु० ६. पृ० २१७ । येन परिणामविशेषेण दर्शनमोहोपशमादिर्विवक्षितो भावः क्रियते निष्पाद्यते स परिणामविशेषः करणमित्युच्यते । जयध० पु० १२, पृ० २३३ । ३. क० पा० पृ० ६२१ । ध० पु० ६, पृ० २१४ ।

अंतर्मुहूर्तकालानि त्रीण्यपि करणानि भवंति प्रत्येकम् ।
उपरितः गुणितक्रमाणि क्रमेण संख्यातरूपेण ॥ ३४ ॥

सं० टी—एते त्रयोऽपि करणपरिणामाः प्रत्येकमंतर्मुहूर्तकाला भवंति । तथापि उपरितः अनिवृत्तिकरणकालात्क्रमेणापूर्वकरणाधःप्रवृत्तकरणकालौ संख्येयरूपेण गुणितक्रमौ भवतः । तत्र सर्वतः स्तोकांतर्मुहूर्तः अनवृत्तिकरणकालः २१ ततः संख्येयगुणः अपूर्वकरणकालः २११ ततः संख्येयगुणः अधःप्रवृत्तकरणकालः २१११ । अथाधःप्रवृत्तकरणस्वरूपं निरुक्तिपूर्वकं व्याचष्टे--

सं० चं०—तीनों ही करण प्रत्येक अंतर्मुहूर्त कालमात्र स्थितियुक्त हैं तथापि ऊपरतैं संख्यातगुणा क्रम लीएं हैं। अनिवृत्तिकरणका काल स्तोक है। तातैं अपूर्वकरणका संख्यातगुणा है। तातैं अधःप्रवृत्तकरणका संख्यातगुणा है ॥ ३४ ॥

विशेष—कषायप्राभृत चूर्णिसूत्रमें तीनों करणोंके साथ चौथी उपशामनाद्धाको पृथक् से परिगणित किया है। इस द्वारा उपशम सम्यग्दर्शनका काल लिया गया है।

अब अधःप्रवृत्तकरणका स्वरूप कहते हैं—

जम्हा हेट्ठिमभावा उवरिमभावेहिं सरिसगा होंति ।
तम्हा पढमं करणं अधापवत्तो त्ति णिद्दिट्ठं[1] ॥ ३५ ॥

यस्मादधस्तनभावा उपरितनभावैः सदृशा भवंति ।
तस्मात् प्रथमं करणं अधःप्रवृत्तमिति निर्दिष्टम् ॥ ३५ ॥

सं० टी०—यस्मात्कारणादधस्तनसमयवर्तिजीवविशुद्धिपरिणामाः उपरितनसमयवर्तिजीवविशुद्धिपरिणामैः संख्यया विशुद्धया च सदृशा भवंति तस्मात्कारणात्प्रथमः करणपरिणामः अधःप्रवृत्त इत्यन्वर्थतो निर्दिष्टः । तथाहि—

तत्काले प्रथमसमयद्वितीयपुंजस्य परिणामसंख्याविशुद्धी द्वितीयसमयप्रथमपुञ्जस्य परिणामसंख्याविशुद्धिभ्यां सदृशे । तथा प्रथमद्वितीयतृतीयसमयेषु तृतीयद्वितीयप्रथमपुंजानां परिणामसंख्याविशुद्धी अन्योन्यं सदृशे । एवमधस्तनोपरितनसमयपरिणामपुंजसंख्याविशुद्धिसादृश्यं नेतव्यं यावच्चरसमयचरमपुंजे परिणामाः अप्राप्ताः, प्रथमसमयप्रथमपुंजस्य चरमसमयचरमपुंजस्य च संख्याविशुद्धिसादृश्याभावात् ॥३५॥ अथापूर्वानिवृत्तिकरणयोः स्वरूपं निरूपयति—

सं० चं०—जातैं इहां नीचले समयवर्ती कोई जीवके परिणाम ऊपरले समयवर्ती कोई जीवके परिणामनिके सदृश हो हैं, तातैं याका नाम अधःप्रवृत्तकरण है। भावार्थ—करणनिका नाम नानाजीव अपेक्षा है सो अधःकरण मांडे कोई जीवकौं स्तोक काल भया कोई जीवकौं बहुत काल भया तिनके परिणाम इस करणविषैं संख्या वा विशुद्धताकर समान भी हो हैं ऐसा जानना ॥ ३५ ॥

विशेष—प्रथम समयसम्बन्धी प्रथम पुंजके परिणाम और अन्तिम समयसम्बन्धी अन्तिम पुंजके परिणाम ये किन्हीं परिणामों के सदृश नहीं होते। अन्य जितने परिणाम हैं वे यथायोग्य सदृश भी होते हैं और विसदृश भी होते हैं।

अब अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणका स्वरूप कहते हैं—

---

१. उवरिमपरिणामा अध हेट्ठा हेट्ठिमपरिणामेसु पवत्तंति त्ति अधापवत्तसण्णा । ध० पु० ६, पृ० २१७ । जयध० पु० १२, पृ० २३३ । गो० जी० गा० ४८ ।

समए समए भिण्णा भावा तम्हा अपुव्वकरणो हु[1] ।
अणियट्टी वि तहं वि य पडिसमयं एक्कपरिणामो[2] ॥ ३६ ॥

समये समये भिन्ना भावा तस्मादपूर्वकरणो हि ।
अनिवृत्तिरपि तथैव च प्रतिसमयमेकपरिणामः ॥ ३६ ॥

सं० टी०—अधःप्रवृत्तकरणकालस्योपरि अंतर्मुहूर्तकालपर्यंतं यस्मात्कारणात् समये समये भिन्ना एव अपूर्वा एव विशुद्धिपरिणामाः खलु भवंति, तस्मात्कारणात्सोऽपूर्वकरण इत्युच्यते । अधस्तनोपरितनसमयेषु विशुद्धिपरिणामानां संख्याविशुद्धिसादृश्यं नास्तीत्यर्थः ।

अनिवृत्तिकरणोऽपि तथैव पूर्वोत्तरसमयेषु संख्याविशुद्धिसादृश्याभावात् भिन्नपरिणाम एव । अयं तु विशेषः—प्रतिसमयमेकपरिणामः, जघन्यमध्यमोत्कृष्टपरिणामभेदाभावात् । यथाधःप्रवृत्तापूर्वकरणपरिणामाः प्रतिसमयं जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदादसंख्यातलोकमात्रविकल्पाः षट्स्थानवृद्धया वर्धमानाः संति न तथाऽनिवृत्तिकरणपरिणामाः, तेषामेकस्मिन् समये कालत्रयेऽपि विशुद्धिसादृश्यादैक्यमुपचर्यते ॥ ३६ ॥ अथाधःप्रवृत्तकरणस्य विशेषलक्षणं कथयति—

स० चं०—समय समयविषैं जीवनिके भाव भिन्न ही होंइ सो अपूर्वकरण है । भावार्थ—कोई जीवकौं अपूर्वकरण माडें स्तोक काल भया, कोईकौं बहुत काल भया । तहां तिनके परिणाम सर्वथा सदृश न होंइ । नीचले समयवालौंके परिणामतैं ऊपर समयवालोंका परिणाम अधिक संख्या व विशुद्धता युक्त होइ अर इहाँ जिनकौ करण माडें समान काल भया तिनके परिणाम परस्पर सदृश भी होंइ अथवा असदृश भी होंइ अैसा जानना । बहुरि जहां समय समय एक ही परिणाम होइ सो अनिवृत्तिकरण है । भावार्थ—जिनिकौं अनिवृत्तिकरण माडें समान काल भया तिनिके परिणाम समान ही होंइ । बहुरि नीचले समयवर्तीनितैं ऊपरि समयवर्तीनिके विशुद्धि अधिक होइ अैसा जानना ॥ ३६ ॥

अब अधःप्रवृत्तकरणका विशेष लक्षण कहते हैं—

गुणसेढी गुणसंकम ठिदिरसखंडं च णत्थि पढमम्हि ।
पडिसमयमणंतगुणं विसोहिवड्ढीहिं वड्ढदि हु[3] ॥ ३७ ॥

गुणश्रेणिः गुणसंक्रमं स्थितिरसखंडं च नास्ति प्रथमे ।
प्रतिसमयमनंतगुणं विशुद्धिवृद्धिभिर्वर्धते हि ॥ ३७ ॥

सं० टी०—प्रथमे अधःप्रवृत्तकरणे गुणश्रेणिविधानं गुणसंक्रमविधानं स्थितिकांडकघातोऽनुभाग कांडकघातश्च न संति तु पुनः प्रतिसमयमनंतगुणवृद्धया विशुद्धिर्वर्धते ॥ ३७ ॥

स० चं०—पहिला अधःकरणविषैं गुणश्रेणि, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात न होइ । बहुरि इहां समय समय प्रति अनंतगुणी विशुद्धता बधै है ॥ ३७ ॥

---

१. एदमणंतरपरूविदं समए समए अणुकट्टिवोच्छेदलक्खणमपुव्वकरणलक्खणमवहारेयव्वमिदि वुत्तं होइ । जयध० पु० १२, पृ० २५४ । ध० पु० ६, पृ०२२० । गो० जी० गा० ५१ । २. क० पा०, पृ० २५६, एत्थ समयं पडि एक्केक्को चेव परिणामो होदि, एक्कम्हि समए जहण्णुक्कस्सपरिणामभेदाभावा । ध० पु० ६, पृ० २२१ । गो० जी० गा० ५६-५७ । ३. क० पा०, पृ० ६२४ । ध० पु० ६, पृ० २२२ ।

सत्थाणमसत्थाणं चउविट्ठाणं रसं च बंधदि हु ।
पडिसमयमणंतेण य गुणभजियकमं तु रसबंधे[1] ।। ३८ ।।

शस्तानामशस्तानां चतुर्द्विस्थानं रसं च बध्नाति हि ।
प्रतिसमयमनंतेन च गुणभजितक्रमं तु रसबंधे ।। ३८ ।।

सं० टी०—अधःप्रवृत्तकरणपरिणामे वर्तमानो जीवः सातादिप्रशस्तप्रकृतीनां चतुःस्थानानुभागं प्रतिसमयमनंतगुणं बध्नाति, असाताद्यप्रशस्तप्रकृतीनां द्विस्थानानुभागं प्रतिसमयमनंतैकभागमात्रं बध्नाति ।। ३८ ।।

स० चं—अर सातादि प्रशस्त प्रकृतिनिका समय समय प्रति अनंतगुणा चतुःस्थानरूप अनुभाग बांधै है अर सातादि अप्रशस्त प्रकृतिनिका सगय समय प्रति अनंतवें भागमात्र अनुभाग बांधै है ।। ३८ ।।

पल्लस्स संखभागं मुहुत्तअंतेण ओसरदि बंधे ।
संखेज्जसहस्साणि य अधापवत्तम्मि ओसरणा[2] ।। ३९ ।।

पल्यस्य संख्यभागं मुहूर्तांतरेण अपसरति बंधे ।
संख्येयसहस्राणि च अधःप्रवृत्ते अपसरणानि ।। ३९ ।।

सं० टी० · अधःप्रवृत्तकरणकाले प्रथमसमयादारभ्यांतर्मुहूर्तपर्यंतं प्राक्तनस्थितिबंधात्पल्यसंख्यातैकभागन्यूनां स्थितिं बध्नाति, ततः परमंतर्मुहूर्तपर्यंतं पुनरपि पल्यासंख्यातैकभागन्यूनां स्थितिं बध्नाति । एवं तत्कालचरमसमयं यावत् स्थितिबंधापसरणानि संख्यातसहस्राणि भवंति । अनेनांतर्मुहूर्तेन प्र. एकस्यां अपसरणशलाकायां

१   २ ११

फ.एतावति काले—इ २ १ १ १ कियत्यः स्थितिबंधापसरणशलाका भवंतीति त्रैराशिकेण लब्धा अपसरणशलाकाः १ ।। ३९ ।।

स० चं०—अधःप्रवृत्तका प्रथम समयतैं लगाय अन्तर्मुहूर्त पर्यंत पूर्वस्थिति बंधतैं पल्यका संख्यातवां भागमात्र घटता स्थितिबंध हो है । बहुरि तहां पीछैं अंतर्मुहूर्त पर्यंत तातैं भी पल्यका संख्यातवां भागमात्र घटता स्थितिबंध है । ऐसैं एक अन्तर्मुहूर्त करि पल्यका संख्यातवां भागमात्र घटता स्थितिबंधापसरण होइ । ऐसैं अपसरण अधःप्रवृत्तविषैं संख्यात हजार हो हैं ।। ३९ ।।

आदिमकरणद्धाए पढमट्ठिदिबंधदो दु चरिमम्हि ।
संखेज्जगुणविहीणो ठिदिबंधो होइ णियमेण[3] ।। ४० ।।

आदिमकरणाद्धायां प्रथमस्थितिबंधतस्तु चरमे ।
संख्यातगुणविहीनः स्थितिबंधो भवति नियमेन ।। ४० ।।

सं० टी०—अधःप्रवृत्तकरणप्रथमसमये स्थितिबंधः अंतःकोटिसागरोपमप्रमितः । सा अंतःको २ । तस्माच्चरमसमये स्थितिबंधः संख्यातगुणहीनो नियमेन भवति सा अं को २/४ संख्यातसहस्रापसरणशलाकामहत्त्वेन तथाभावाविरोधात् ।। ४० ।।

१. अप्पसत्थकम्मंसे जे बंधइ ते दुट्ठाणिए अणंतगुणहीणे च, पसत्थकम्मंसे जे बंधइ ते च चउट्ठाणिए अणंतगुणे च समये समये । क० पा०, पृ० ६२४ ।

२. ट्ठिदिबंधे पुण्णे पुण्णे अण्णं ट्ठिदिबंधं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागहीणं बंधदि । क० पा०, पृ० ६२४ ।

स० चं०—ऐसैं होतैं प्रथम करणके कालविषैं प्रथम समयसम्बन्धी अन्तःकोटाकोटी सागर-प्रमाण स्थितिबंधतैं ताके अन्तसमयविषैं संख्यातगुणा घाटि हो है[1] ॥ ४० ॥

तच्चरिमे ठिदिबंधो आदिमसम्मेण देससयलजमं ।
पडिवज्जमाणगस्स वि संखेज्जगुणेण हीणकमो[2] ॥ ४१ ॥

तच्चरमे स्थितिबंध आदिमसम्येन देशसकलयमम् ।
प्रतिपद्यमानस्यापि संख्येयगुणेन हीनक्रमः ॥ ४१ ॥

सं० टी०—अधःप्रवृत्तकरणचरमसमये प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखस्य यः स्थितिबंधः सा अं को २/४ तस्मा-देशसंयमेन सह प्रथमसम्यक्त्वं प्रतिपद्यमानस्य स्थितिबंधः संख्यातगुणहीनः सा अं को २/४।४—तस्मात्सकलसंयमेन सह प्रथमसम्यक्त्वं प्रतिपद्यमानस्य स्थितिबंधः संख्यातगुणहीनः सा अं को २/४।४।४—॥ ४१ ॥

स० चं०—तींहि अंतसमयविषैं जो स्थितिबंध कह्या तातैं देशसंयम सहित प्रथमोपशम सम्यक्त्वकौं प्राप्त होनेवाले जीवकैं संख्यातगुणा घाटि स्थितिबंध हो है। तातैं सकलसंयम सहित प्रथमोपशम सम्यक्त्वकौं प्राप्त होनेवालेकैं संख्यातगुणा घाटि हो है ॥ ४१ ॥

आदिमकरणद्धाए पडिसमयमसंखलोगपरिणामा ।
अहियकमा हु विसेसे मुहुत्तअंतो हु पडिभागो[3] ॥ ४२ ॥

आदिमकरणाद्धायां प्रतिसंमयमसंख्यलोकपरिणामाः ।
अधिकक्रमा हि विशेषे मुहूर्तांतर्हि प्रतिभागः ॥ ४२ ॥

सं० टी०—अधःप्रवृत्तकरणकाले प्रथमसमयादारभ्याचरमसमयं त्रिकालगोचरजीवसंभविनो विशुद्धि-परिणामाः असंख्येयलोकमात्राः ≡ ә ते च प्रतिसमयं विशेषाधिकाः क्रमेण गच्छंति तत्र प्रथमसमये—

≡ ә १/२ ९ ९ ९ १/२ । ९ ^२/२ । द्वितीयसमयविशेषाधिकाः— ≡ ә ३/२ ९ ९ ९ २ ९ ९ ९ १/। ९ ^२/२ । एवं प्रतिसमयं
२ ९ ९ ९ २ ९ ९ ९ ९ २   २ ९ ९ ९ २ ९ ९ ९ । ९ २

१. अधापवत्तपढमसमयट्ठिदिबंधादो चरिमसमयट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणहीणो । ध० पु० ६, पृ० २२३ ।

२. एत्थेव पढमसम्मत्त-संजमासंजमाभिमुहस्स ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणहीणो । पढमसम्मत्तसंजमाभिमुहस्स अधापवत्तकरणचरिमसमयट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणहीणो । ध० पु० ६, पृ० २२३ ।

३. पढमसमयपाओग्गपरिणामा असंखेज्जा लोगा, अधाकरणविदियसमयपाओग्गा वि परिणामा असंखेज्जा लोगा । एवं समयं पडि अधापवत्तपरिणामाणं पमाणपरूवणं कादव्वं जाव अधापवत्तकरणद्धाए चरिमसमओ त्ति । पढमसमयपरिणामेहिंतो विदयसमयपाओग्गपरिणामा विसेसाहिया । विसेसो पुण अंतोमुहुत्तपडिभागिओ । ध० पु. ६, पृ० २१४ । जयध० पु० १२, पृ० २३५ । गो. जो., गाथा, ४९ ।

विशेषाधिकक्रमेण गत्वा चरमसमये परिणामा:– ≡ ३ २ १ १ १ । १ २ । एवं प्रतिसमयं विशेषाधिका
२ १ १ १ २ १ १ १ १ २

अपि तत्परिणामा आलापापेक्षया असंख्यातलोकमात्रा इत्युच्यंते। विशेषे आनेतव्ये आदिधनस्यांतर्मुहूर्तमात्र: प्रतिभागहारो भवति। तत्प्रमाणं– २ १ १ १ १ २। 'पदकदिसंखेण भाजिदे पचयं' इत्यनेनानीतं विशेषं
२

संस्थाप्य आदिधनगुणकारभागहाराभ्यामुपर्यधश्च गुणयित्वा गुणकारभूतं द्विकं हारस्य हारं कृत्वा समीक्ष्यमाणे आदिधनस्य भागहार:। अध:प्रवृत्तकरणकालात्संख्येयगुण: किंचिदूनो भवति सोऽप्यंतर्मुहूर्तमात्र एव ॥ ४२ ॥

स० चं०—पहला करणविषैं त्रिकालवर्ती जीवनिके जे कषायनिके विशुद्धस्थान कहे हैं तिनिविषैं अध:प्रवृत्तकरणविषैं संभवते असंख्यात लोकमात्र हैं। तिनविषै समय-समय प्रति संभवते असंख्यात लोकमात्र परिणाम हैं। ते प्रथम समयतैं द्वितीयादि समयनिविषैं क्रमतैं समान प्रमाणरूप एक-एक विशेष जो चय ताकरि बधते जानने। तहां आदि धन जो प्रथम समयसम्बन्धी परिणाम ताकौं अंतर्मुहूर्तमात्र भागहारका भाग दीएं विशेषका प्रमाण आवै है। 'पदकदिसंखेण भाजिदे पचयं' इस सूत्रकरि गच्छका वर्ग संख्यातगुणा ताका भाग सर्वधनकौ दीएं जो चयका प्रमाण आवै है सो प्रथमसमयसंबंधी परिणामनिकौं किंचिदून संख्यातगुणा अध:प्रवृत्तकरण कालमात्र जो अंतर्मुहूर्त ताका भाग दीएं भी इतना ही प्रमाण आवै है ॥ ४२ ॥

ताए अधापवत्तद्धाए संखेज्जभागमेत्तं तु।
अणुकट्टीए[1] अद्धा णिव्वग्गणकंडयं तं तु[2] ॥ ४३ ॥

तस्या अध:प्रवृत्ताद्धाया: संख्येयभागमात्रं तु।
अनुकृष्टया अद्धा निर्वर्गणकांडकं तत्तु ॥ ४३ ॥

सं० टी०—तस्या अध:प्रवृत्ताद्धाया: संख्येयभागमात्रोऽनुकृष्टयद्धा एकसमयपरिणामनानाखंडसंख्येत्यर्थ:। अनुकृष्टय: प्रतिसमयपरिणामखंडानि तासामद्धा आयाम: तत्संख्येत्यर्थ:। तदेव तत्परिणाममेव निर्वर्गणकांडकमित्युच्यते। वर्गणा समयसादृश्यं ततो निष्क्रांता उपर्युपरि समयवर्तिपरिणामखंडा तेषां कांडकं पर्व निर्वर्गणकांडकं। तानि च अध:प्रवृत्तकरणकाले संख्येयसहस्राणि भवंति ॥ ४३ ॥

स० चं—तिर्हि अध:प्रवृत्त कालप्रमाण जो ऊर्ध्वगच्छ ताके संख्यातवें भागमात्र अनुकृष्टिका गच्छ हो है। एक एक समयसंबंधी परिणामनिविषैं एते एते खंड हो हैं ते वर्गणा कांडक समान जानने। वर्गणा जो समयनिकी समानता ताकरि रहित ऊपरि समयवर्ती परिणाम खंड तिनिका कांडक जो पर्व ताका नाम निर्वर्गणाकांडक है। ते अध:करणके कालविषै संख्यात हजार हो हैं ॥ ४३ ॥

१. तेसिं (असंखेज्जलोगमेत्तपरिणामट्ठाणाणं) परिवाडीए विरचिदाणं पुणरुत्तापुणरुत्तभावगवेसणा अणुकट्टी णाम। अनुकर्षणमनुकृष्टिमन्योन्येन समानत्वानुचिन्तनमित्यनर्थान्तरम्।...............इह पुण तहा ण होइ, किंतु अंतोमुहुत्तमेत्तमवट्ठिदमद्धाणं सगद्धाए संखेज्जदिभागं गंतूणाणुकट्टिवोच्छेदो होदि। जयध० पु० १२, पृ० २३५। २. एदिस्से अद्धाए संखेज्जदिभागो णिव्वग्गणकंडयं णाम। ध० पु० ६, पृ० २१५। जयध० पु० १२, पृ० २३६।

विशेष—प्रथम समयवर्ती जीवके परिणामोंको उपरितन समयवर्ती जीवोंके जहाँ तकके परिणामोंके साथ समानता पाई जाती है वहीं तकके परिणामखंडोंमें अनुकृष्टिरचना बनती है। निर्वर्गणाकाण्डक भी उसीका नाम है। यह प्रथम समयके परिणामोंकी अपेक्षा कथन है। द्वितीयादि समयोंकी अपेक्षा भी इन दोनोंका इसीप्रकार विचार कर लेना चाहिए। एक निर्वर्गणाकाण्डक अधःप्रवृत्तकरणके कालके संख्यातवें भाग कालप्रमाण होता है।

पडिसमयगपरिणामा णिव्वग्गणसमयमेत्तखंडकमा।
अहियकमा हु विसेसे मुहुत्तअंतो हु पडिभागो[1] ॥ ४४ ॥

प्रतिसमयगपरिणामा निर्वर्गणसमयमात्रखंडक्रमाः।
अधिकक्रमा हि विशेषे मुहूर्तांतर्हि प्रतिभागः ॥ ४४ ॥

सं० टी० प्रतिसमयगाः परिणामाः निर्वर्गणसमयमात्रखंडाः कृताः अधःप्रवृत्तकरणकालसंख्यातैकभागमात्रखंडाः कृता इत्यर्थः। ते च संख्यातावलिसमयमात्रा एव जघन्यखंडात् आ उत्कृष्टखंडं विशेषाधिका गच्छंति। तद्विशेषे साध्ये आदिखंडस्यांतर्मुहूर्तमात्रः प्रतिभागहारः। सोऽपि पूर्ववदानेतव्यः ॥ ४४ ॥

स० चं—समय समयसंबंधी परिणामनिविषैं निर्वर्गणकांडक समान खंड कीजिए, ते भी प्रथम खंडतैं द्वितीयादि खंड क्रमतैं विशेष जो समानप्रमाण लीएँ चय ताकरि बधता हैं। तहाँ प्रथम खंडकौं अंतर्मुहूर्तका भाग दीएँ विशेषका प्रमाण आवै है ॥ ४४ ॥

पडिखंडगपरिणामा पत्तेयमसंखलोगमेत्ता हु।
लोयाणमसंखेज्जा छट्ठाणाणी विसेसे वि[2] ॥ ४५ ॥

प्रतिखंडगपरिणामाः प्रत्येकमसंख्यलोकमात्रा हि।
लोकानामसंख्येयाः षट्स्थानानि विशेषेऽपि ॥ ४५ ॥

सं० टी०—प्रतिनियताः खंडा जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्नाः तद्गताः परिणामाः विशुद्धिपरिणामविकल्पाः प्रत्येकमेकस्मिन्नेकस्मिन् खंडे असंख्येयलोकमात्राः संति। अनन्तभागवृद्धिरसंख्यातभागवृद्धिः संख्यातभागवृद्धिः संख्यातगुणवृद्धिरसंख्यातगुणवृद्धिरनंतगुणवृद्धिरिति षट्स्थानान्येकस्मिन् खंडे असंख्येयलोकमात्राणि संति। अनुकृष्टिविशेषेऽप्यसंख्येयलोकमात्राणि षट्स्थानानि भवन्ति ॥ ४५ ॥

स० चं०—तहां एक एक खंडविषैं जघन्य मध्यम उत्कृष्टता लीएं विशुद्ध परिणामनिके भेद असंख्यात लोकमात्र हैं। तहां जैसें गोम्मटसारका ज्ञानाधिकारविषै पर्याय समासविषै षट्स्थानपतित वृद्धिका अनुक्रम कह्या है तैसैं इहां एक एक खंडविषै वा एक एक अनुकृष्टि विशेषविषैं भी असंख्यात लोकमात्र बारह षट् स्थानपतित वृद्धि संभवैं हैं ॥ ४५ ॥

---

१. विवक्खियसमयपरिणामाणं जत्तो परमणुकट्टिवोच्छेदो तं णिव्वग्गणकंडयमिदि भण्णदे। संपहि एदाणि खंडाणि किमण्णोण्णं सरिसाणि आहो विसरिसाणि त्ति पुच्छिदे सरिसाणि ण होंति, विसरिसाणि चेवेत्ति घेत्तव्वं, अण्णोण्णं पेक्खिदूण जहाकममेदेसिं विसेसाहियकमेणावट्ठाणदंसणादो। एसो विसेसो अंतोमुहुत्तपडिभागिओ। जयध० पु० १२, पृ० २३६। ध० पु० ६, पृ० २१५।

२. अधापवत्तकरणपढमसमयप्पहुडि जाव चरिमसमओ त्ति ताव पादेक्कमेक्केक्कम्मि समये असंखेज्जलोगमेत्ताणि परिणामट्ठाणाणि छवड्ढिकमेणावट्ठिदाणि ट्ठिदिबंधोसरणादीणं कारणभूदाणि अत्थि। जयध० पु० १२, पृ० २३४। ध० पु० ६, पृ० २१४।

विशेष—जिस करणमें ऊपर-ऊपरके समयवर्ती जीवोंके परिणाम पूर्व-पूर्वके समयवर्ती जीवोंके परिणामोंके सदृश भी होते हैं उस करणको अधःप्रवृत्तकरण कहते हैं। इसका काल अन्तर्मुहूर्त है और इस करणमें होनेवाले परिणामोंका प्रमाण असंख्यात लोकप्रमाण है। फिर भी इसके प्रथम समयके योग्य परिणाम भी असंख्यात लोकप्रमाण हैं, दूसरे समयके योग्य परिणाम भी असंख्यात लोकप्रमाण हैं। इसी प्रकार अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समय तक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि ये प्रत्येक समयके परिणाम उत्तरोत्तर सदृश वृद्धिको लिये हुए विशेष अधिक हैं। यह अधःप्रवृत्तकरणके स्वरूपनिर्देशके साथ उसके काल और उसके प्रत्येक समयमें होनेवाले परिणामोंको क्रमवृद्धिको लिये हुए किस प्रकार कहाँ कितने परिणाम होते हैं इसका सामान्य निर्देश है। आगे इस करणके प्रत्येक समयमें परिणामस्थानोंकी व्यवस्था किस प्रकार है इसे स्पष्ट करके बतलाते हैं। ऐसा नियम है कि अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें जितने परिणाम होते हैं वे अधःप्रवृत्तकरणके कालके संख्यातवें भागप्रमाण खण्डोंमें विभाजित हो जाते हैं, जो उत्तरोत्तर विशेष अधिक प्रमाणको लिए हुए होते हैं। यहां पर उन परिणामोंके जितने खण्ड हुए, निर्वर्गणाकाण्डक भी उतने समय-प्रमाण होता है। आगे भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विवक्षित समयके परिणामोंकी जिससे आगे अनुकृष्टिका विच्छेद हो जाता है उसका निर्वर्गणाकाण्डक संज्ञा है। इस निर्वर्गणाकाण्डकमें प्रत्येक समयके परिणामोंके जितने खण्ड किये गये हैं उनमेंसे प्रथम खण्डसे दूसरे खण्डको और दूसरे आदि खण्डोंसे तीसरे आदि खण्डोंको विशेष अधिक कहा है सो उस विशेषका प्रमाण तत्प्रायोग्य अन्तर्मुहूर्तका भाग देनेपर प्राप्त होता है। ये सब खण्ड परस्परमें समान न होकर विसदृश ही होते हैं, क्योंकि प्रत्येक समयके परिणाम खण्ड उत्तरोत्तर विशेष अधिक प्रमाणको लिये हुए होते हैं। इनमेंसे प्रथम समयके प्रथम खण्डगत परिणाम तो नाना जीवोंकी अपेक्षा अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें ही पाये जाते हैं। शेष अनेक खण्ड और तद्गत परिणाम दूसरे समयमें स्थित जीवोंके भी होते हैं। साथ ही यहाँ असंख्यात लोकप्रमाण अन्य अपूर्व परिणाम भी होते हैं जो अन्तिम खण्डरूपसे दूसरे समयमें होते हैं। ये अपूर्व परिणाम प्रथम समयके अन्तिम खण्डमें तत्प्रायोग्य अन्तर्मुहूर्तका भाग देने पर जो लब्ध आवे उतने अधिक होते हैं। तीसरे समयमें दूसरे समयके जितने खण्ड और तद्गत परिणाम हैं। उनमेंसे प्रथम खण्ड और तद्गत परिणामोंको छोड़कर वे सब प्राप्त होते हैं। साथ ही यहाँ असँख्यात लोकप्रमाण अन्य अपूर्व परिणाम भी प्राप्त होते हैं जो अन्तिम खण्डरूपसे तीसरे समयमें पाये जाते हैं। इसी प्रकार इसी प्रक्रियासे अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयके प्राप्त होनेतक चौथे आदि समयोंमें भी परिणामस्थानोंकी व्यवस्था जान लेनी चाहिए।

यहां अंकसंदृष्टि द्वारा इसी विषयको स्पष्ट किया जाता है। अधःप्रवृत्तकरणका काल अन्तर्मुहूर्त है, जो अंक संदृष्टिसे १६ लिया गया है। कुल परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं, जो यहां ३०७२ लिये गये हैं। ये सब परिणाम प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय तक उत्तरोत्तर समान वृद्धिको लिये हुए हैं। इस हिसाबसे यहाँ समान वृद्धि या चयका प्रमाण ४ है। प्रथम स्थानमें वृद्धिका अभाव है, इसलिये प्रथम समयको छोड़कर १५ समयोंमें वृद्धि हुई है, अतः एक कम सब समयोंके आधे का चय और समयोंकी संख्यासे गुणित करनेपर १६ − १ = १५; १५ ÷ २ = $\frac{१५}{२}$; $\frac{१५}{२}$ × ४ × १६ = ४८० चयधनका प्रमाण होता है। इसे सर्वधन ३०७२ में से घटाकर शेष २५७२ में सब समयोंका भाग देने पर १६२ लब्ध आता है। यह प्रथम समयके परिणामोंका प्रमाण है। आगे इसमें चय ४ के उत्तरोत्तर मिलाते जाने पर द्वितीयादि समयोंके परिणामोंका प्रमाणक्रमसे १६६,

१७०, १७४, १७८, १८२, १८६ आदि होता है। १६वें समयके परिणामोंका प्रमाण २२२ होता है।

अब ऊपरके समयोंमें स्थित जीवोंके परिणामोंकी पूर्वके समयोंमें स्थित जीवोंके परिणामोंके साथ सदृशता और विसदृशता किस प्रकार है यह बतलानेके लिए अनुकृष्टि रचना करते हैं। अधःप्रवृत्तकरणके प्रत्येक समयके सब परिणामोंको उसीके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कालके संख्यातवें भागप्रमाण कालके समयप्रमाण भागोंमें विभक्त करे। इस हिसाबसे सख्यातका प्रमाण ४ स्वीकार करके उसका भाग १६ में देनेपर ४ लब्ध आये। निर्वर्गणाकाण्डकका प्रमाण भी इतना ही है। अतः प्रत्येक समयके परिणामोंको चार-चार खण्डोंमें विभाजित करना चाहिए। उसमें भी प्रथम खण्डसे द्वितीय खण्ड, द्वितीय खण्डसे तृतीय खण्ड और तृतीय खण्डसे चतुर्थ खण्ड विशेष अधिक है। यहाँ विशेष या चयका प्रमाण उक्त अन्तर्मुहूर्तका भाग निर्वर्गणाकाण्डकके प्रमाणमें देनेपर जो लब्ध आवे उतना है। पहले अंकसंदृष्टिमें निर्वर्गणाकाण्डकका प्रमाण ४ बतला आये हैं, अन्तर्मुहूर्तका प्रमाण भी इतना ही है। अतः अन्तर्मुहूर्तका प्रमाण ४ का भाग निर्वर्गणाकाण्डकके प्रमाण ४ में देनेपर लब्ध १ आया। यही प्रकृतमें विशेषका प्रमाण है। इस हिसाबसे यहाँ सब समयोंके प्रथम खण्डमें तो वृद्धिका प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरे, तीसरे और चौथे खण्डमें पहलेसे दूसरेमें, दूसरेसे तीसरेमें और तीसरेसे चौथेमें क्रमसे उत्तरोत्तर १-१ संख्याकी वृद्धि हुई है। अतः वृद्धिरूप चयधन १ + २ + ३ = ६ होता है। इसे पृथक्-पृथक् प्रथमादि समयोंके परिणाम पुंजोंमेंसे घटा देने पर क्रमसे १५६, १६०, १६४, १६८ आदि प्राप्त होते हैं। इनमें खंडप्रमाण संख्या ४ का भाग देने पर सर्वत्र प्रथमादि समयोंमें प्रथम समयके खण्ड क्रमसे ३९, ४०, ४१, ४२ आदि संख्याप्रमाण प्राप्त होते हैं। इनमें क्रमसे चयधनके मिलाने पर प्रत्येक समयके चारों खण्डोंके परिणाम पुंजोंका प्रमाण आ जाता है। रचना इस प्रकार है—

समय क्रम सं०	परिणामोंका प्रमाण	प्रथम खंड	द्वि० खंड	तृ० खंड	च० खंड
१	१६२	३९	४०	४१	४२
२	१६६	४०	४१	४२	४३
३	१७०	४१	४२	४३	४४
४	१७४	४२	४३	४४	४५
५	१७८	४३	४४	४५	४६
६	१८२	४४	४५	५६	४७
७	१८६	४५	४६	४७	४८
८	१९०	४६	४७	४८	४९
९	१९४	४७	४८	४९	५०
१०	१९८	४८	४९	५०	५१
११	२०२	४९	५०	५१	५२
१२	२०६	५०	५१	५२	५३
१३	२१०	५१	५२	५३	५४
१४	२१४	५२	५३	५४	५५
१५	२१८	५३	५४	५५	५६
१६	२२२	५४	५५	५६	५७

पढमे चरिमे समये पढमं चरिमं च खंडमसरित्थं।
सेसा सरिसा सव्वे अट्ठुव्वंकादिअंतगया ॥ ४६ ॥

प्रथमे चरमे समये प्रथमं चरमं खंडमसदृशम्।
शेषाः सदृशाः सर्वे अष्टोर्वंकाद्यंतगताः ॥ ४६ ॥

सं० टी०—अधःप्रवृत्तकरणकालस्य प्रथमसमये प्रथमखंडं ३९, चरमसमये चरमखंडं च ५७। उपरितनाधस्तनसमयखंडैरसदृशमेव, शेषाणि द्वितीयखंडादीनि द्विचरमसमयखंडपर्यंतानि सर्वाण्यपि खंडान्युपरितनाधस्तनसमयवर्तिखंडैः सदृशानि भवन्ति। तानि प्रथमादिचरमपर्यंतानि सर्वाण्यपि खंडान्यष्टांकादीनि उर्वंकांतानि भवंति, षट्स्थानानामादिरष्टांकः अनंतगुणवृद्धिरूपः अन्त उर्वंकः अनन्तभागवृद्धिरूप इति वचनात् ॥ ४६ ॥

सं० चं०—प्रथम समयका प्रथम खंड अंत समयका अंत खंड ए तौ कोऊ खंडनिके समान नाहीं, अवशेष सर्व खंड अन्य खंडनिकरि यथायोग्य समानता धरैं हैं। तहां खंडनिविषैं जो परिणामपुंज कह्या तीहिंविषैं पहिला परिणाम तौ अष्टांक कहिए। पूर्व परिणामतैं अनंतगुणा वृद्धिरूप है। अर अंतका परिणाम ऊर्वंक कहिए पूर्व परिणामतैं अनंतभाग वृद्धिरूप है, जातैं षट्स्थाननिकी आदि तौ अष्टांक अर अंत ऊर्वंक कह्या है ॥ ४६ ॥

विशेष—पिछली गाथाके विशेषार्थमें हम अंक संदृष्टि दे आये हैं। उसे देखनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रथम समयका प्रथम खण्ड और अन्तिम समयका अन्तिम खण्ड अन्य किसी खण्डके सदृश नहीं हैं। इनके अतिरिक्त सब समयोंके अन्य सब परिणाम खण्ड यथा सम्भव सदृश हैं।

चरिमे सव्वे खंडा दुचरिमसमओ त्ति अवरखंडाए।
असरिसखंडाणोली अधापवत्तम्हि करणम्हि ॥ ४७ ॥

चरमे सर्वे खंडा द्विचरमसमय इति अवरखंडैः।
असदृशखंडानामावलिरधःप्रवृत्ते करणे ॥ ४७ ॥

सं० टी०—अधःप्रवृत्तकरणकाले चरमसमयवर्तीनि जघन्यमध्यमोत्कृष्टानि सर्वाण्यपि प्रथमसमयादिद्विचरमसमयपर्यंतवर्तीनि जघन्यानि च खंडानि अंकुशाकारपंक्तिगतानि उपरि सादृश्याभावादसदृशानीत्युच्यन्ते ॥ ४७ ॥

स० चं—अधःप्रवृत्त करण कालविषैं अंत समयसंबंधी तौ सर्व खंड अर प्रथम समय तैं लगाय द्विचरम समय पर्यंतका प्रथम खंड हैं ते तिनिके ऊपरिके समयसंबंधी जे सर्व खंड तिनितैं समान नाहीं तातैं असदृश हैं ॥ ४७ ॥

विशेष—अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसे लेकर उपान्त्य समय तकके सब प्रथम खण्डोंका अपनेसे ऊपरके समयोंके अन्य किसी खण्डके साथ सादृश्य नहीं है। इसीप्रकार अन्तिम समयके सब परिणाम खण्ड भी उनसे ऊपर अन्य परिणाम खण्डोंका अभाव होनेसे विसदृश ही हैं। अतः इन परिणाम खण्डोंकी अंकुशाकार रचना इस प्रकार होती है—

---

१. ध० पु० ६, पृ० २१६।

३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५१ ५३ ५४
५५
५६
५७

इन सब परिणामोंका योग ९१२ होता है। अध:प्रवृत्तकरणके ३०७२ परिणामोंमेसे उक्त ९१२ परिणाम अपुनरुक्त हैं। शेष सब परिणाम पुनरुक्त हैं। उदाहरणार्थ प्रथम समयके १६२ परिणामोंमेंसे प्रारम्भके ३९ परिणाम अपुनरुक्त हैं। पहले समयके शेष दूसरे, तीसरे, और चौथे खण्डके परिणाम पुनरुक्त हैं, क्योंकि नाना जीवोंकी अपेक्षा ये द्वितीयादि तीनों खण्डोंके परिणाम दूसरे समयमें, तीसरे और चौथे खण्डके परिणाम तीसरे समयमें और चौथे खण्डके परिणाम चौथे समयमें भी पाये जाते हैं। इसीप्रकार यथा सम्भव आगे भी समझ लेना चाहिए।

अब अध:प्रवृत्तकरणसम्बन्धी परिणामोंमें विशुद्धिका तारतम्य बतलाते हैं—

पढमे करणे अवरा णिव्वग्गणसमयमेत्तगा तत्तो।
अहिगदिणा वरमवरं तो वरपंती अणंतगुणियकमा॥ ४८॥

प्रथमे करणे अवरा निर्वर्गणसमयमात्रकाः ततः।
अहिगतिना वरमवरमतो वरपंक्तिरनंतगुणितक्रमा॥ ४८॥

सं० टी०—अध:प्रवृत्तकरणकाले निर्वर्गणकांडकसमयमात्राः प्रतिसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामाः उपर्युपर्यनंतगुणितक्रमा गच्छंति। ततः प्रथमनिर्वर्गणकांडकचरमसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामात् प्रथमसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामोऽनन्तगुणः। ततो द्वितीयकांडकप्रथमसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामोऽनंतगुणः। ततः प्रथमकांडकद्वितीयसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामोऽनंतगुणः, ततो द्वितीयकांडकद्वितीयसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामोऽनंतगुणः एवं जघन्यादुत्कृष्टोऽनंतगुणः। उत्कृष्टाज्जघन्योऽनंतगुणोऽहिगत्या गच्छात यावच्चरमकांडकचरमसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामं प्राप्नोति। तस्माच्चरमकांडकप्रथमसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामोऽनंतगुणः। तस्मात्प्रतिसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामपंक्तिरनंतगुणितक्रमा गच्छति यावच्चरमकांडकचरमसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामं प्राप्नोति। सर्वत्र जघन्यपरिणामादुत्कृष्टपरिणामः असंख्यातलोकमात्रवारानंतगुणितः। उत्कृष्टपरिणामाज्जघन्यपरिणामः एकवारमनन्तगुणित इति विशेषो ज्ञातव्यः। सर्वजघन्यविशुद्धेरप्यविभागप्रतिच्छेदाः जीवराशेरनंतगुणाः संतीति अनंतगुणवृद्ध्यादिषट्स्थानसंभवः॥ ४८॥

स० चं—प्रथम करणविषैं विशुद्धताके अविभागप्रतिच्छेदनिकी अपेक्षा समय-समयसंबंधी प्रथम प्रथम खंड तिनके जघन्य परिणाम हैं ते उपरि उपरि अनंतगुणे हैं। बहुरि तहां पीछैं निर्वर्गण-

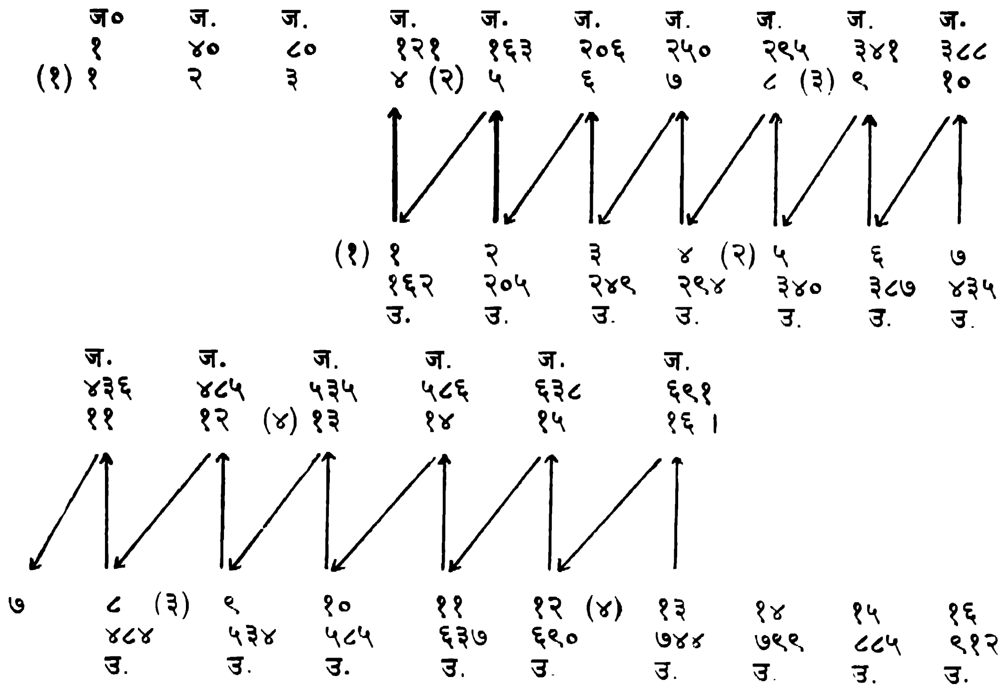
१. अधापवत्तकरणपढमसमए जहण्णिया विसोही थोवा। विदियसमए जहण्णिया विसोही अणंतगुणा। एवमंतोमुहुत्तं। तदो पढमसमए उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा। जम्हि जहण्णिया विसोही णिट्ठिदा तदो उवरिमसमए जहण्णिया विसोही अणंतगुणा। विदियसमए उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा। एवं णिव्वग्गणकंडयमंतोमुहुत्तद्धमेत्तं अधापवत्तकरणचरिमसमयो त्ति। तदो अंतोमुहुत्तमोसरियूण जम्हि उक्कस्सिया विसोही णिट्ठिदा तत्तो उवरिमसमए उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा। एवमुक्कस्सिया विसोही णेदव्वा जाव अधापवत्तकरणचरिमसमयो त्ति। क० पा० चू० पृ० ६२२। जयध० पु० १२, पृ० २४५-२५०। ध० पु० ६ पृ० २१८।

कांडकका अंत समयसंबंधी प्रथम खंडका जघन्य परिणामतैं पहिले समयके अंत खंडका उत्कृष्ट परिणाम अनंतगुणा है। तातैं द्वितीय कांडकके प्रथम समयके प्रथम खंडका जघन्य परिणाम अनंतगुणा है। तातैं प्रथम कांडकका द्वितीय समयके अंत खंडका परिणाम अनंतगुणा है। तातैं द्वितीय कांडकके द्वितीय समयके प्रथम खंडका जघन्य परिणाम अनंतगुणा है। ऐसैं जैसैं सर्प इधरतैं उधर उधरतैं इधर गमन करै है तैसैं जघन्यतैं उत्कृष्टका उत्कृष्टतैं जघन्यका अनंतगुणा क्रम है यावत् अंत कांडकका अंत समयके प्रथम खंडका जघन्य परिणाम होइ। बहुरि तातैं अंत कांडकका प्रथम समयके अंत खंडका उत्कृष्ट परिणाम अनंतगुणा है। तातैं समय समय प्रति अंत खंडके उत्कृष्ट परिणामनिकी पंक्ति अनंतगुणा क्रम लीएं है यावत् अंत कांडकका अंत समयके अंत खंडका उत्कृष्ट परिणाम होइ। इहाँ इतना जानना—जघन्यतैं उत्कृष्ट है सो तौ असंख्यात लोकमात्रवार अनंतगुणा है। अर उत्कृष्टतैं जघन्य है सो एकवार अनंतगुणा है। बहुरि सर्वतैं जघन्य विशुद्धताके भी अविभाग प्रतिच्छेद जीव राशितैं अनंतगुणे हैं, तातैं इहाँ षट्स्थान संभवै हैं॥ ४८॥

विशेष—श्री जयधवला दर्शनमोह उपशमना अधिकारमें विशुद्धिसम्बन्धी अल्पबहुत्वका विचार करते हुए अल्पबहुत्वके स्वस्थान और परस्थान ऐसे दो भेद करके स्वस्थान अल्पबहुत्वका खुलासा इस प्रकार किया है। अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयमें प्रथम खण्डका जघन्य परिणाम सबसे स्तोक है। उससे वहींके दूसरे खण्डका जघन्य परिणाम अनन्तगुणा है। उससे वहींके तीसरे खण्डका जघन्य परिणाम अनन्तगुणा है। उससे वहींके चौथे खण्डका जघन्य परिणाम अनन्तगुणा है। इस प्रकार प्रथम समयके अन्तिम परिणाम खण्डके जघन्य परिणामके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। इसी प्रकार प्रथम समयके प्रथम खण्डका उत्कृष्ट परिणाम सबसे स्तोक है। उससे वहींके दूसरे खण्डका उत्कृष्ट परिणाम अनन्तगुणा है। उससे वहींके तीसरे खण्डका उत्कृष्ट परिणाम अनन्तगुणा है। उससे वहींके चौथे खण्डका उत्कृष्ट परिणाम अनन्तगुणा है। इसी प्रकार प्रथम समयके अन्तिम खण्डके अन्तिम उत्कृष्ट परिणामके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। इसी प्रकार द्वितीयादि समयोंके सब खण्डोंसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट परिणामोंका स्वस्थान अल्पबहुत्व घटित कर लेना चाहिए। यह स्वस्थान अल्पबहुत्व है। अंक संदृष्टिके अनुसार प्रथम समयके चारों खण्डोंमें १६२ परिणाम पाये जाते हैं, उनमेंसे प्रथम खण्डमें एकसे लेकर उनतालीस तक ३९ परिणाम, दूसरे खण्डमें ४० से लेकर ७९ तक ४० परिणाम, तीसरे खण्डमें ८० से लेकर १२० तक ४१ परिणाम और चौथे खण्डमें १२१ से लेकर १६२ तक ४२ परिणाम परिगणित किये गये हैं। इनमेंसे प्रथम खण्डका १ संख्याक परिणाम विशुद्धिकी अपेक्षा सबसे स्तोक है, उससे दूसरे खण्डका ४० संख्याक जघन्य परिणाम अनन्तगुणा है, उससे तीसरे खण्डका ८० संख्याक जघन्य परिणाम अनन्तगुणा है और उससे चौथे खण्डका १२१ वाँ जघन्य परिणाम अनन्तगुणा है। उत्कृष्टकी अपेक्षा प्रथम खण्डका ३९ संख्याक उत्कृष्ट परिणाम सबसे स्तोक है; उससे दूसरे खण्डका ७९ संख्याक उत्कृष्ट परिणाम अनन्तगुणा है, उससे तीसरे खण्डका १२० संख्याक उत्कृष्ट परिणाम अनन्तगुणा है और उससे चौथे खण्डका १६२ संख्याक उत्कृष्ट परिणाम अनन्तगुणा है। इसी प्रकार आगेके द्वितीयादि सब समयोंमें स्वस्थान अल्पबहुत्व जान लेना चाहिए। यह स्वस्थान अल्पबहुत्वका स्पष्टीकरण है।

परस्थान अल्पबहुत्वकी अपेक्षा विचार इस प्रकार है—प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समय तक एकसे दूसरे और दूसरेसे तीसरे आदि समयोंमें जो जघन्य परिणाम प्राप्त होता है वह

उत्तरोत्तर अनन्तगुणी विशुद्धिको लिये हुए होता है। अंक संदृष्टिके अनुसार पहले समयका १ संख्याक जघन्य परिणाम अधःप्रवृत्तकरणके अन्य सब परिणामोंकी अपेक्षा सबसे स्तोक विशुद्धिको लिये हुए होता है यह स्पष्ट ही है। पहले समयके दूसरे खण्डका ४० संख्याक जो जघन्य परिणाम है वही दूसरे समयके प्रथम खण्डका ४० संख्याक जघन्य परिणाम है, इसलिए यह प्रथम खण्डके १ संख्याक जघन्य परिणामसे अनन्तगुणी विशुद्धिको लिये हुए होता है। प्रथम समयके तीसरे खण्डका ८० संख्याक जो जघन्य परिणाम है वही तीसरे समयके प्रथम खण्डका ८० संख्याक जघन्य परिणाम है, इसलिये यह भी दूसरे समयके ४० संख्याक जघन्य परिणामसे अनन्तगुणी विशुद्धिको लिये हुए होता है। इसीप्रकार प्रथम समयके चौथे खण्डका १२१ संख्याक जो जघन्य परिणाम है वही चौथे समयके प्रथम खण्डका १२१ संख्याक जघन्य परिणाम है, इसलिए यह भी तीसरे समयके ८० संख्याक जघन्य परिणामसे अनन्तगुणी विशुद्धिको लिये हुए होता है। इसप्रकार अन्तर्मुहूर्तप्रमाण प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयतक जघन्य विशुद्धिके अल्पबहुत्वका यह क्रम जानना चाहिए। अंक संदृष्टिकी अपेक्षा यह निर्वर्गणाकाण्डक चौथे समयमें समाप्त हुआ है, इसलिए चौथे समयसम्बन्धी प्रथम खण्डके १२१ संख्याक जघन्य परिणामतक उक्त अल्पबहुत्वका विचार किया गया है। आगे उक्त जघन्य परिणामसे प्रथम समयका उत्कृष्ट परिणाम अनन्तगुणा होता है, क्योंकि अंक संदृष्टिकी अपेक्षा पहले जो अधःप्रवृत्तकरणके चतुर्थ समयके प्रथम खण्डकी जघन्य विशुद्धि बतला आये हैं वही अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयके अन्तिम खण्डकी जघन्य विशुद्धि है, और यह उसी अन्तिम खण्डकी उत्कृष्ट विशुद्धि है, इसलिए यह उससे अनन्तगुणी होती है। अंक संदृष्टिकी अपेक्षा वह जघन्य विशुद्धि प्रथम समयके अन्तिम खण्डके १२१ संख्याक परिणामकी थी और यह उसी खण्डके १६२ संख्याक परिणामकी है, इसलिये यह उससे अनन्तगुणी बतलाई है। इस प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे द्वितीय निर्वर्गणाकाण्डकके प्रथम समयकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी होती है। अंक संदृष्टिकी अपेक्षा प्रथम समय सम्बन्धी अन्तिम खण्डके १६२ संख्याक परिणामकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे पाँचवें समय सम्बन्धी प्रथम खण्डके १६३ संख्याक परिणामकी जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है, क्योंकि प्रथम समयको उत्कृष्ट विशुद्धि द्वितीय समयसम्बन्धी द्विचरम खण्डके अन्तिम परिणामके सदृश होकर ऊर्वंकपनेसे (अनन्तभागवृद्धिरूपसे) अवस्थित है और यह जघन्य विशुद्धि दूसरे समयसम्बन्धी अन्तिम खण्डके अष्टांकरूप जघन्य परिणामरूपसे अवस्थित है, इसलिए यह उक्त उत्कृष्ट विशुद्धिसे अनन्तगुणी है। इससे अधःप्रवृत्तकरणके द्वितीय समयसम्बन्धी अन्तिम खण्डकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है, क्योंकि पूर्वकी जघन्य विशुद्धि द्वितीय समयके अन्तिम खण्डकी जघन्य विशुद्धिस्वरूप है, और यह उससे असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंको उल्लंघनकर स्थित हुए दूसरे समयके अन्तिम खण्डकी उत्कृष्ट विशुद्धिस्वरूप है, इसलिये यह उससे अनन्तगुणी हो जाता है। अंक संदृष्टिकी अपेक्षा द्वितीय समयके अन्तिम खण्डकी जघन्य विशुद्धि १६३ संख्याक जघन्य परिणामस्वरूप है और द्वितीय समयके अन्तिम खण्डकी यह उत्कृष्ट विशुद्धि २०५ संख्याक परिणामस्वरूप है, इसलिए यह उससे अनन्तगुणी है। इसीप्रकार आगमानुसार आगे भी विचार कर लेना चाहिए। यहाँ उसे समझनेके लिए अंक संदृष्टि दी जाती है—



(१) यह १ से लेकर १६ तक संख्या अधःप्रवृत्तकरणके समयोंकी सूचक है ।

(२) ( ) ब्रेकेटके भीतरकी संख्या कहाँसे किस संख्यावाला निर्वर्गणाकाण्डक चालू हुआ है इसकी सूचक है ।

(३) १, ४० आदि संख्या उस-उस समयके उस-उस संख्याक जघन्य परिणामकी सूचक है और १६२, २०५ आदि संख्या उस-उस समयके उस-उस संख्याक उत्कृष्ट परिणामकी सूचक है ।

(४) पहले गाथा ४६ में यह बतला आये हैं कि प्रत्येक षट्स्थान पतित वृद्धिमें उसका आदि अष्टांकप्रमाण होता है और अन्त ऊर्वंकस्वरूप होता है। तदनुसार पिछले उत्कृष्ट स्थानसे अगला जघन्य स्थान अनन्तगुण वृद्धिस्वरूप जानना चाहिए और प्रत्येक उत्कृष्ट स्थान अनन्तभाग वृद्धिस्वरूप जानना चाहिए ।

पढमे करणे पढमा उड्ढगसेढीय चरिमसमयस्स ।
तिरियगखंडाणोली असरित्थाणंतगुणियकमा ॥ ४९ ॥

सं० टी०—अधःप्रवृत्तकरणे प्रथमसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामादारभ्य द्विचरमसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामपर्यंता ऊर्ध्वगा जघन्यपरिणामश्रेणिः, चरमसमयतिर्यक्खंडपरिणामश्रेणिश्च उपरि सादृश्याभावादसदृशी अनंतगुणितक्रमा च वेदितव्या ॥ ४९ ॥ एवमधःप्रवृत्तकरणपरिणामस्वरूपं निरूपितम् ।

स० चं—प्रथम करणविषैं समय समयके परिणामनिकी ऊपरि ऊपरि पंक्ति कीएं अर अंत समयके परिणामनिकी बरोबरि तिर्यक्रूप पंक्ति कोएं अंकुशाकाररचना हो है । सो इनके ऊपरिके परिणामनितैं समानता नाहीं तातै असदृश हैं । बहुरि ए परिणाम अनंतगुणा क्रम लीएं विशुद्धतारूप जानना । ऐसैं अधःकरणका स्वरूप कह्या ॥ ४९ ॥

विशेष—अधःप्रवृत्तकरणका काल अन्तर्मुहूर्त है। उसका अंक संदृष्टिकी अपेक्षा प्रमाण १६ लिया है। इनमेंसे प्रारम्भके १५ समयोंमें ऊर्ध्वगत श्रेणिकी प्रथम पंक्तिमें क्रमसे ३९, ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३ परिणाम हैं तथा १६ वें समयकी तिर्यक् पंक्तिमें ५४, ५५, ५६ और ५७ परिणाम हैं। इन सब परिणामोंका योग ९१२ होता है जो परस्परमें विसदृश है। अर्थात् अंक संदृष्टिकी अपेक्षा अधःप्रवृत्तकरणके कालका प्रमाण १६ कल्पित करके उनमें जो ३०७२ परिणाम बतलाये गये हैं उनमेंसे उक्त ९१२ परिणाम अपुनरुक्त होनेसे परस्परमें विसदृश हैं—यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इन परिणामोंकी अंकुशाकार रचनाका निर्देश हम पहले ही कर आये हैं। इस प्रकार अधःप्रवृत्तकरणके परिणामोंके स्वरूपका निरूपण किया ॥ ४९ ॥

अथापूर्वकरणलक्षणमाह—

पढमं व विदियकरणं पडिसमयमसंखलोगपरिणामा।
अहियकमा हु विसेसे मुहुत्तअंतो हु पडिभागो[1] ॥ ५० ॥

प्रथमं व द्वितीयकरणं प्रतिसमयमसंख्यलोकपरिणामाः।
अधिकक्रमा हि विशेषे मुहूर्तांतर्हि प्रतिभागः ॥ ५० ॥

सं० टी०—यथाधःप्रवृत्तकरणपरिणामाः व्याख्यातास्तथापूर्वकरणपरिणामा व्याख्यातव्याः। अयं तु विशेषः—अधःप्रवृत्तकरणपरिणामेभ्यः अपूर्वकरणपरिणामा असंख्येयलोकगुणिता भवंति। ते च प्रतिसमयं विशेषाधिका गच्छंति यावदपूर्वकरणचरमसमयपरिणामान् प्राप्नुवंति। विशेष आनेतव्ये आदिधनस्यान्तर्मुहूर्तमात्रः प्रतिभागहारः स्यात् ॥ ५० ॥

अब अपूर्वकरणका लक्षण कहते हैं—

सं० चं०—प्रथम अधःकरणवत् दूसरा अपूर्वकरण है। तहां विशेष—जो असंख्यात लोकमात्र अधःकरणके परिणामनितैं अपूर्वकरणके परिणाम असंख्यात लोकगुणे हैं। ते समय समय प्रति विशेष जो समान प्रमाणरूप चय ताकरि अधिक हैं। सो प्रथम समयसंबंधी परिणामनिकौं अन्तर्मूहूर्तका भाग दीएं चयका प्रमाण आवै है ॥ ५० ॥

जम्हा उवरिमभावा हेट्ठिमभावेहिं णत्थि सरिसत्तं।
तम्हा विदियं करणं अपुव्वकणं ति णिद्दिट्ठं[2] ॥ ५१ ॥

यस्मादुपरिभावानामधस्तनभावैः नास्ति सदृशत्वम्।
तस्मात् द्वितीयं करणमपूर्वकरणमिति निर्दिष्टम् ॥ ५१ ॥

सं० टी०—यस्मात्कारणादुपरितनसमयवर्तिपरिणामानामधस्तनसमयवर्तिपरिणामैः सदृशत्वं नास्ति

---

१. एक्केक्कम्मि समए परिणामट्ठाणाणि असंखेज्जा लोगा जयध० भा० १२, पृ० २५२। अपुव्वकरणपढमसमए परिणाम-पंतिआयामो थोवो। विदियसमए विसेसाहिओ। केत्तियमेत्तो विसेसो? असंखेज्जलोगपरिणामट्ठाणमेत्तो। होंतो वि पढमसमयपरिणामपंतिमंतोमुहुत्तमेत्तखंडाणि कादूण तत्थ एयखंडमेत्तो। एवमणंतरोणिधाए विसेसाहियकमेण णेदव्वं जाव चरिमसमयपरिणामपंतिआयामो त्ति।

जयध० भा० १२, पृ० २५३।

२. णवरिं समए समए अपुव्वाणि चेव परिणामट्ठाणाणि।

जयध० भा० १२, पृ० २५३।

तस्मात्कारणात् द्वितीयकरणपरिणामः अपूर्वकरण इति निर्दिष्टः। प्रथमसमयसर्वोत्कृष्टविशुद्धेर्द्वितीयसमयजघन्य विशुद्धिरनंतगुणा भवतीति पूर्वोत्तरसमयपरिणामयोः सादृश्यं दूरोत्सारितमेव। अधःप्रवृत्तकरणचरमसमय अप्राप्ता एव परिणामा अपूर्वकरणप्रथमसमये जायंते। तत्राप्राप्ता एव परिणामास्तद्द्वितीयसमये जायंते। एवमातच्चरमसमयमपूर्वा एव परिणामा जायंते। इत्यन्वर्था अपूर्वकरणसंज्ञा ॥ ५१ ॥

स० चं—जातैं ऊपरि समयसंबंधी परिणाम हैं ते नीचले समयसंबंधी परिणामनिके समान इहाँ न होंइ। प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धतातैं भी द्वितीय समयसंबंधी जघन्यविशुद्धता भी अनंतगुणी है। ऐसैं परिणामनिका अपूर्वपना है तातैं दूसरा करण अपूर्वकरण कह्या है ॥ ५१ ॥

विशेष—जिसमें प्रति समय अपूर्व-अपूर्व परिणाम होते हैं उसे अपूर्वकरण कहते हैं। इसका काल अन्तर्मुहूर्त है जो अधःप्रवृत्तकरणके कालके संख्यातवें भागप्रमाण है। इस कालमें कुल परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण होकर भी प्रत्येक समयके परिणाम भी असंख्यात लोकप्रमाण होते हैं। वे सब परिणाम प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समयतक उत्तरोत्तर सदृश वृद्धिको लिये हुए हैं। प्रथम समयके परिणामोंमें अन्तर्मुहूर्तका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे उतना प्रथम समयसे लेकर उत्तरोत्तर वृद्धि या चयका प्रमाण है। प्रत्येक समयमें प्राप्त होनेवाले ये सब परिणाम अपूर्व-अपूर्व होते हैं, इसलिये यहां भिन्न समयवाले जीवोंके परिणामोंकी तद्भिन्न समयवाले जीवोंके परिणामोंके साथ अनुकृष्टि नहीं बनती। किन्तु एक समयवाले जीवोंके परिणामोंमें सदृशता-विसदृशता बन जाती है। यही कारण है कि इस गुणस्थानमें एक समयवाली ही निर्वगणा स्वीकार की गई है। अब अपूर्वकरणके उक्त स्वरूपको स्पष्ट करनेके लिये यहाँ कल्पित अंक संदृष्टि देते हैं—

कुल परिणामोंकी संख्या ४०९६; अन्तर्मुहूर्तका प्रमाण ८; चयका प्रमाण १६; नियम यह है कि एक कम पदके आधेको पद और चयसे गुणित करनेपर उत्तरधन प्राप्त होता है। यथा— ८ − १ = ७ ÷ २ = $\frac{7}{2}$ × ८ × १६ = ४४८। इसे सर्वधन ४०९६ मेंसे कम करनेपर ४०९६ - ४४८ = ३६४८ शेष रहते हैं। इसमें पद ८ का भाग देनेपर ३६४८ ÷ ८ = ४५६ लब्ध प्राप्त होता है। यह अपूर्वकरणके प्रथम समयके कुल परिणामोंका योग है। इसमें उत्तरोत्तर एक-एक चय १६ जोड़नेपर द्वितीयादि समयोंमें प्राप्त होनेवाले परिणामोंकी संख्या क्रमसे ४७२, ४८८, ५०४, ५२०, ५३६, ५५२ और ५६८ होती है। यथा—

समय	परिणाम		कुल योग
१	१ से ४५६ तक		४५६
२	४५७ से ४७२ ,,	नये परिणामोंका योग	९२८
३	९२९ ,, ४८८ ,,	,, ,,	१४१६
४	१४१७ ,, ५०४ ,,	,, ,,	१९२०
५	१९२१ ,, ५२० ,,	,, ,,	२४४०
६	२४४१ ,, ५३६ ,,	,, ,,	२९७६
७	२९७७ ,, ५५२ ,,	,, ,,	३५२८
८	३५२९ ,, ५६८ ,,	,, ,,	४०९६

विदियकरणादिसमयादंतिमसमओ त्ति अवरवरसुद्धी।
अहिगदिणा खलु सव्वे होंति अणंतेण गुणियकमा[1] ॥ ५२ ॥
द्वितीयकरणादिसमयादंतिमसमय इति अवरवरशुद्धिः।
अहिगतिना खलु सर्वे भवंत्यनंतेन गुणितक्रमाः ॥ ५२ ॥

सं० टी०—अपूर्वकरणप्रथमसमयादारभ्य आ अंतिमसमयं जघन्योत्कृष्टविशुद्धिपरिणामाः अनंतगुणाः। तद्यथा—तत्प्रथमसमये जघन्यविशुद्धिपरिणामादुत्कृष्टविशुद्धिपरिणामोऽनंतगुणः। तस्मादुपरितनसमयजघन्य-विशुद्धिपरिणामोऽनंतगुणः। तस्मात्तत्समयोत्कृष्टविशुद्धिपरिणामोऽनंतगुणः। एवं सर्वेऽपि जघन्योत्कृष्टविशुद्धि-परिणामा अनंतगुणितक्रमा अहिगत्या गच्छंति यावच्चरमसमयजघन्योत्कृष्टपरिणामौ। अत्रानुकृष्टिखंडविकल्पो नास्ति, अधस्तनसमयसर्वोत्कृष्टपरिणामादुपरितनजघन्यपरिणामस्यानंतगुणत्वसंभवात् ॥ ५२ ॥

अपूर्वकरणमें विशुद्धिके तारतम्यका निर्देश—

स० च—दूसरे करणका प्रथम समयतैं लगाय अंत समय पर्यंत अपने जघन्यतैं अपना उत्कृष्ट अर पूर्व समयके उत्कृष्टतैं उत्तर समयका जघन्य परिणाम क्रमतें अनंतगुणी विशुद्धता लीएं सर्पकी चालवत् जानने। इहाँ अनुकृष्टि नाहीं ॥ ५२ ॥

विशेष—प्रथम समयकी जघन्य विशुद्धि सबसे स्तोक है। उसी समयमें प्राप्त होनेवाली उत्कृष्ट विशुद्धि असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंका उल्लंघनकर प्राप्त होती है, इसलिए प्रथम समयकी जघन्य विशुद्धिसे यह उसी समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है। उससे दूसरे समयमें प्राप्त होनेवाली जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है जो मात्र अनन्तगुणवृद्धिरूप न होकर असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थान पतित विशुद्धिकी वृद्धि होने पर प्राप्त होती है। उससे उसी दूसरे समयमें प्राप्त होनेवाली उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है, क्योंकि यह असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानरूप विशुद्धिको उल्लंघनकर अवस्थित है। इसी प्रकार अंतिम समय तक प्रत्येक समयमें प्राप्त होनेवाली जघन्य और उत्कृष्ट विशुद्धिका यही क्रम जानना चाहिए। इस गुणस्थानमें जघन्यसे उत्कृष्ट, उत्कृष्टसे जघन्य, पुनः जघन्यसे उत्कृष्ट इत्यादि क्रमसे विशुद्धिको सर्पकी चालके समान बतलानेका यही कारण है।

अथापूर्वकरणपरिणामस्य कार्यविशेषज्ञापनार्थमाह—

गुणसेढीगुणसंकमठिदिरसखंडा अपुव्वकरणादो[2]।
गुणसंकमेण सम्मा-मिस्साणं पूरणो त्ति हवे ॥ ५३ ॥
गुणश्रेणीगुणसंक्रमस्थितिरसखंडा अपूर्वकरणात्।
गुणसंक्रमेण सम्यक्-मिश्राणां पूरण इति भवेत ॥ ५३ ॥

---

१. अपुव्वकरणस्स पढमसमए जहण्णिया विसही थोवा। तत्थेव उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा। विदियसमए जहण्णिया विसोही अणंतगुणा। समये समये असंखेज्जा लोगा परिणामट्ठाणाणि। एवं णिव्वग्गणा च। चू० सू०, जयध० भा० १२, पृ० २५२ आदि।

२. अपुव्वकरणपढमसमए ट्ठिदिखंडयं जहण्णगं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो, उक्कस्सगं सागरोवम-पुधत्तं। ट्ठिदिबंधो अपुव्वो। अणुभागखंडयमप्पसत्थकम्माणमणंता भागा। तस्स पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरफद्दयाणि थोवाणि। अइच्छावणाफद्दयाणि अणंतगुणाणि। णिक्खेवफद्दयाणि अणंतगुणाणि। आगाइदफद्दयाणि अणंत-गुणाणि। अपुव्वकरणस्स चेव पढमसमए आउगवज्जाणं कम्माणं गुणसेढिणिक्खेवो अणियट्टिअद्धादो अपुव्व-करणअद्धादो च विसेसाहिओ। जयध० भा० १२ पृ० २६० प्रभृति।

सं० टी०—अपूर्वकरणप्रथमसमयादारम्य गुणसंक्रमेण सम्यक्त्वमिश्रप्रकृत्योः पूरणकालचरमसमयपर्यंतं गुणश्रेणिविधानं गुणसंक्रमविधानं स्थितिखंडनमनुभागखंडनं च वर्तते ॥ ५३ ॥

स० चं—अपूर्वकरणके प्रथम समयतैं लगाय यावत् सम्यक्त्वमोहनी मिश्रमोहनीका पूरण-काल जो जिस कालविषैं गुणसंक्रमणकरि मिथ्यात्वकौं सम्यक्त्वमोहनी मिश्रमोहनीरूप परिणमावै है तिस कालका अंत समय पर्यंत गुणश्रेणि १ गुणसंक्रमण १ स्थितिखंडन १ अनुभागखंडन १ ए च्यारि आवश्यक हो हैं ॥ ५३ ॥

विशेष—अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर जो चार आवश्यक कार्य प्रारम्भ होते हैं वे हैं—गुणश्रेणी, गुणसंक्रम, स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात। इतना विशेष है कि मिथ्यात्व-का अन्तरकरण करनेके बाद उसकी प्रथम स्थिति आवलि और प्रत्यावलि अर्थात् दो आवलिप्रमाण शेष रहने पर उसका गुणश्रेणि रूपसे द्रव्यका निक्षेप नहीं होता, क्योंकि आवलि और प्रत्यावलिप्रमाण प्रथम स्थितिके शेष रहनेके एक समय पूर्व ही आगाल और प्रत्यागालका होना बन्द हो जाता है। यदि कहा जाय कि प्रत्यावलिमेंसे गुणश्रेणिनिक्षेप होनेमें कोई बाधा नहीं है सो यह कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि इस अवस्थामें उदयावलिके भीतर गुणश्रेणिनिक्षेपका होना असम्भव है। यदि कहा जाय कि प्रत्यावलिमेंसे अपकर्षित द्रव्यका उसीमें गुणश्रेणिनिक्षेप हो जायगा सो यह कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि वह स्वयं अतिस्थापनारूप होनेसे उसमें अपकर्षित द्रव्यका निक्षेप होना असम्भव है। इतने वक्तव्यसे यह स्पष्ट हुआ कि मिथ्यात्वके द्रव्यका गुणश्रेणिनिक्षेप उसकी प्रथम स्थितिके आवलि और प्रत्यावलिप्रमाण शेष रहनेके पूर्व समय तक ही होता है। अब रहे शेष तीन आवश्यक कार्य सो इनमेंसे मिथ्यात्वके द्रव्यके स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात ये दो कार्य विशेष तो मिथ्यात्वके प्रथम स्थितिके अन्तिम समय तक होते रहते हैं। तथा मिथ्यात्वके द्रव्यका गुणसंक्रम प्रथमोपशम सम्यक्त्वके हो जानेके बाद सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके पूरण होनेके अन्तर्मुहूर्त काल तक होता रहता है। यह मिथ्यात्व प्रकृतिकी अपेक्षा विचार है। इतनी विशेषता है कि अनुभागकाण्डकघात अप्रशस्त कर्मोंका ही होता है, क्योंकि विशुद्धिके कारण प्रशस्त कर्मोंकी अनुभागवृद्धिको छोड़कर उनके अनुभागका घात नहीं हो सकता।

अब प्रकृतमें स्थितिबन्धापसरण आदिके कालका विचार करते हैं—

ठिदिबंधोसरणं पुण अधापवत्तादापूरणो त्ति हवे।
ठिदिबंधट्ठिदिखंडुक्कीरणकाला समा होंति[1] ॥ ५४ ॥

स्थितिबंधापसरणं पुनः अधःप्रवृत्तादापूरण इति भवेत्।
स्थितिबंधस्थितिखंडोत्कीरणकालाः समा भवंति ॥

सं० टी०—स्थितिबन्धापसरणं पुनरधःप्रवृत्तकरणप्रथमसमयादारभ्य आगुणसंक्रमणपूरणचरमसमयं प्रवर्तते यद्यपि प्रायोग्यतालब्धिकाले स्थितिबन्धापसरणप्रारंभः कथितस्तथापि तत्र तस्यानवस्थितत्वेन अविवक्षितत्वात् करणपरिणामकार्यस्यावश्यंभावेन अवस्थितत्वाधःप्रवृत्तकरणप्रथमसमयादारम्य स्थितिबंधापसरणं विवक्षितं स्थितिबन्धापसरणस्थितिकांडकत्कोरणकालौ द्वावप्यंतर्मुहूर्तमात्रौ समानावेव ॥ ५४ ॥

---

१. तम्हि ट्ठिदिखंडयद्धा ट्ठिदिबंधगद्धा च तुल्ला। क० पा० चू०, जयध० भा० १२, पृ० २६६।

स० चं०—बहुरि स्थितिबंधापसरण है सो अधःप्रवृत्तकरणका प्रथम समयतैं लगाय तिस गुणसंक्रमण पूरण होनेका काल पर्यंत हो है। यद्यपि प्रायोग्य लब्धितैं ही स्थितिबंधापसरण हो है तथापि प्रायोग्य लब्धिकैं सम्यक्त्व होनेका अनवस्थितपना है, नियम नाहीं, तातैं ग्रहण न कीया। बहुरि स्थितिबंधापसरण काल अर स्थितिकांडकोत्करण काल ए दोऊ समान अंतर्मुहूर्तमात्र हैं॥ ५४॥

विशेष—करणपरिणामोंके कारण उत्तरोत्तर विशुद्धिमें वृद्धि होती जानेके कारण अपूर्वकरणसे लेकर जिस प्रकार एक-एक अन्तर्मुहूर्तकालके भीतर एक-एक स्थितकाण्डकका उत्कीरण नियमसे होने लगता है उसी प्रकार उत्तरोत्तर स्थितिबन्धमें भी अपसरण होने लगता है। इन दोनोंका काल समान अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। उसमें भी प्रथम स्थितिकाण्डकघात और प्रथम स्थितिबन्धापसरणमें जितना काल लगता है उससे दूसरे आदि स्थितिकाण्डकघात और स्थितिबन्धापसरणोंमें उत्तरोत्तर विशेष हीन काल लगता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि स्थितिकाण्डकघात और स्थितिबन्धापसरणोंका एक साथ प्रारम्भ होता है और एक साथ समाप्ति होती है। प्रकृतमें उपयोगी विशेष व्याख्यान टीकामें किया ही है।

गुणश्रेणिका स्वरूपनिर्देश—

गुणसेढीदीहत्तमपुव्वदुगादो दु साहियं होदि।
गलिदवसेसे उदयावलिबाहिरदो दु णिक्खेवो॥५५॥

गुणश्रेणिदीर्घत्वमपूर्वद्विकात् तु साधिकं भवति।
गलितावशेषे उदयावलिबाह्यतस्तु निक्षेपः॥ ५५॥

सं० टी०—गुणश्रेणिदीर्घत्वमपूर्वकरणानिवृत्तकरणकालाभ्यां साधिकं भवति २ ૭ गुणश्रेणिकरणार्थ-

४
२ ૭
२ ૭ ૭

मपकृष्टद्रव्यस्य निक्षेपयोग्यस्थित्यायाम इत्यर्थः। अधिकप्रमाणं पुनरनिवृत्तिकरणकालसंख्यातैकभागमात्रं २ ૭ उदयावलिबाह्यप्रथमसमयादारभ्य गलितावशेषे गुणश्रेण्यायामे अपकृष्टद्रव्यस्य निक्षेपो भवति॥ ५५॥

सं० चं०—गुणश्रेणिका दीर्घत्व कहिए निषेक निषेकनिका प्रमाणमात्र आयाम सो अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरणके कालतैं साधिक है। सो अधिकका प्रमाण अनिवृत्तिकरण कालके संख्यातवें भागमात्र जानना। सो यहु गुणश्रेणि आयाम गलितावशेष है। समय व्यतीत होतैं यहु गुण-

१. तम्हि चेवापुव्वकरणस्स पढमसमए आउगवज्जाणं गुणसेढिणिक्खेवो वि आढत्तो त्ति भणिदं होइ। किमट्ठमाउगस्स गुणसेढिणिक्खेवो णत्थि त्ति चे? ण, सहावदो चेव, तत्थ गुणसेढिणिक्खेवपवुत्तीए असंभवादो। सो पुण गुणसेढिणिक्खेवो केत्तिओ होइ त्ति पुच्छाए अणियट्टिकरणद्धादो अपुव्वकरणद्धादो च विसेसाहियो त्ति णिद्दिट्ठं। एत्थतणअपुव्वाणियट्टिकरणद्धाणं समुदिदाणं पमाणमंतोमुहुत्तमेत्तं होइ। तत्तो विसेसाहिओ एदस्स गुणसेढिणिक्खेवस्सायामो त्ति वुत्तं होइ। केत्तियमेत्तो विसेसो? अणियट्टिअद्धाए संखेज्जदिभागमेत्तो। णवरि गलिदसेसायामेण णिसिंचदि त्ति वत्तव्वं। जयध० भा० १२, पृ० २६४-२६५।

श्रेणि आयाम भी घटता होता जाय है। बहुरि उदयावलीतैं बाह्य है जातैं उदयावलीतैं ऊपरि गुणश्रेणि आयामके निषेक हैं। तिस गुणश्रेणि आयामविषैं गुणश्रेणिके अर्थि अपकर्षण कीया द्रव्यका निक्षेपण करिए है ॥ ५५ ॥

अब इहां प्रसंग पाइ निक्षेपण अतिस्थापनाका स्वरूपादिक कहिए है। तहां अपकर्षण कीया हूवा वा उत्कर्षण कीया हूवा द्रव्यकौं जिनि निषेकनिविषैं मिलाइए ते निषेक निक्षेपणरूप जानने। जिनि निषेकनिविषैं न मिलाइए ते अस्तिस्थापनरूप जानने। सो स्थिति घटाइ उपरिके निषेकनिका द्रव्य नीचले निषेकनिविषैं जहां दीजिए तहां अपकर्षण कहिए। बहुरि स्थिति बधाय नीचले निषेकनिका द्रव्यकौं ऊपरिके निषेकनिविषैं जहां दीजिए तहां उत्कर्षण कहिए। सो इनकी अपेक्षा निक्षेपण अतिस्थापन निषेकनिका प्रमाण कहिए है ॥५५॥

विशेष—प्रथम समयसे दूसरे समयमें तथा दूसरे समयसे तीसरे समयमें इस प्रकार उत्तरोत्तर गुणश्रेणिनिक्षेपका जितना काल है उसके प्रत्येक समयमें निर्जराके लिये उत्तरोत्तर विवक्षित निषेकोंमें अपकर्षित द्रव्यका देना गुणश्रेणिनिक्षेप कहलाता है। यह गुणश्रेणिनिक्षेप गलितावशेष और अवस्थितके भेदसे दो प्रकारका होता है, जिसमें अधस्तन एक-एक निषेकके गलित होते जानेके कारण उत्तरोत्तर गुणश्रेणिनिक्षेपमें एक-एक समय कम होता जाता है उसकी गलितावशेष गुणश्रेणिनिक्षेप संज्ञा है तथा जिसमें अधस्तन एक-एक निषेकके गलित होनेपर ऊपर एक-एक निषेककी वृद्धि होती जाती है उसकी अवस्थित गुणश्रेणिनिक्षेप संज्ञा है। प्रकृतमें गलितावशेष गुणश्रेणिनिक्षेप विवक्षित है। इसका आयाम (दीर्घता) अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके काल से कुछ अधिक है। अधिकका प्रमाण अनिवृत्तिकरणके कालके सख्यातवें भागप्रमाण है। आयुकर्मका गुणश्रेणिनिक्षेप नहीं होता, शेष सब कर्मोंका होता है। उसमें भी जिन प्रवृत्तियोंका वर्तमानमें उदय होता है उनका उदय समयसे लेकर निक्षेप होता है और जिन प्रकृतियोंका वर्तमानमें उदय नहीं होता उनका उदयावलिके उपरिम समयसे निक्षेप होता है। प्रकृतमें उदयवाली प्रकृतियोंके गुणश्रेणिरूपसे निक्षेपकी विधि इस प्रकार है—

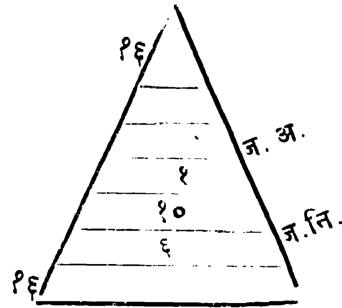
अपूर्वकरणके प्रथम समयमें डेढ़ गुणहानि प्रमाण समयप्रबद्धोंको अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारसे भाजित कर वहाँ लब्ध एक खण्ड प्रमाण द्रव्यका अपकर्षण कर उसमें असंख्यात लोकका भाग देनेपर जो एक भाग द्रव्य प्राप्त हो उसे उदयावलिके भीतर गोपुच्छाकाररूपसे निक्षिप्त कर पुनः शेष बहुभागप्रमाण द्रव्यको उदयावलिके बाहर निक्षिप्त करता हुआ उदयावलिके बाहर अनन्तर स्थितिमें असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण द्रव्यको निक्षिप्त करता है। उससे उपरिम स्थितिमें असंख्यातगुणे द्रव्यको निक्षिप्त करता है। इस प्रकार अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके कालसे विशेष अधिक गुणश्रेणिशीर्षके प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणित श्रेणिरूपसे निक्षिप्त करता है। पुनः गुणश्रेणिशीर्षसे उपरिम अनन्तर स्थितिमें असंख्यातगुणा हीन द्रव्य निक्षिप्त करता है। उसके बाद अतिस्थापनावलिके पूर्वकी अन्तिम स्थिति तक उत्तरोत्तर क्रमसे विशेष हीन विशेष हीन द्रव्य का निक्षेप करता है। यह उदयवाली प्रकृतियोंकी गुणश्रेणि की अपेक्षा निषेक रचना है। तथा जिन प्रकृतियोंका प्रकृतमें उदय न हो उनमें उदयावलिको छोड़कर पूर्ववत् गुणश्रेणिनिक्षेप विधि जाननी चाहिए। यहाँ अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जैसे गुणश्रेणिनिक्षेपकी विधिका निर्देश किया उसी प्रकार आगे भी द्वितीयादि समयोंमें इस विधिको घटित कर लेना चाहिए।

अथ निक्षेपातिस्थापनयोः स्वरूपभेदप्रमाणविषयान् कथयति—

णिक्खेवमदित्थावणमवरं समऊणआवलितिभागं ।
तेणूणावलिमेत्तं विदियावलिकादिमणिसेगे[1] ॥५६॥

निक्षेपमतिस्थापनमवरं समयोनमावलित्रिभागम् ।
तेन न्यूनावलिमात्रं द्वितीयावलिकादिमनिषेके ॥५६॥

सं० टी०—अव्याघातविषये अपकर्षणे द्वितीयावलिप्रथमनिषेके अपकृष्याधो निक्षिप्यमाणे समयो-



नावलित्रिभागसमयाधिको जघन्यनिक्षेपो भवति । तेन न्यूनावलिमात्रं जघन्यातिस्थापनं भवति । अपकृष्टद्रव्यस्य निक्षेपस्थानं निक्षेपः, निक्षिप्यतेऽस्मिन्निति निर्वचनात् । तेनातिक्रम्यमाणं स्थानमतिस्थापनं, अतिस्थाप्यते अति-क्रम्यतेऽस्मिन्निति अतिस्थापनं ॥५६॥

अब अव्याघातके विषयमें निक्षेप और अतिस्थापना कहाँ कितनी होती है इसका तीन गाथाओं द्वारा निर्देश करते हैं—

स० चं—जहाँ स्थितिकांडकघात न पाइए सो अव्याघात कहिए। तिस विषैं प्रथम वर्णन करिए है—द्वितीय आवलीका प्रथम निषेकनिका अपकर्ष करि निक्षेपण करिए तहाँ प्रथम आवलीके निषेकनिविषैं समय घाटि आवलीका त्रिभाग एक समय अधिक प्रमाण निषेक तौ निक्षेपरूप हैं। इनिविषैं सोई द्रव्य दीजिए है। बहुरि अवशेष निषेक अतिस्थापनरूप हैं। तिनिविषैं सो द्रव्य न दीजिए है। ऐसैं यहु जघन्य निक्षेप जघन्य अतिस्थापन जानना। अंक संदृष्टिकरि जैसैं प्रथमादि सोलह निषेक तौ प्रथमावलीके अर ताके ऊपरि सोलह निषेक द्वितीयावलीके हैं। जहां सतरह्वां निषेकका द्रव्य अपकर्षण करि नीचैं दीया तहां सोलहमैं एक घटाएं पंद्रह ताका त्रिभाग पांच तामैं एक मिलाएं छह सो प्रथमादि छह निषेकनिविषैं द्रव्य दीया सो यहु जघन्य निक्षेप है। बहुरि ताके ऊपरि दश निषेकनिविषैं द्रव्य नाहीं मिलाया सो यहु जघन्य अतिस्थापन है ॥५६॥

१. ओकड्डिता कधं णिक्खिवदि ट्ठिदिं। उदयावलियचरिमसमयअपविट्ठा जा ट्ठिदी सा कथमोकड्डिज्जइ ? तिस्से उदयादि जाव आवलियतिभागो ताव णिक्खेवो, आवलियाए वे-तिभागा अइच्छावणा। क० चू०, जयध० भा० ८, पृ० २४३। कथमावलियाए कदजुम्मसंखाए तिभागो घेत्तुं सक्किज्जदे ? ण, रूवूणं काऊण तिभागी-करणादो। तम्हा समयूणावलियवे-तिभागा अइच्छावणा। समयूणावलियतिभागो रूवाहिओ णिक्खेवो त्ति णिच्छओ कायव्वो। जय ध० भा० ८, पृ० २४४।

एत्तो समऊणावलितिभागमेत्तो तु तं खु णिक्खेवो[1] ।
उवरिं आवलिवज्जिय सगट्ठिदी होदि णिक्खेवो ॥५७॥
अतः समयोनावलित्रिभागमात्रस्तु तत्खलु निक्षेपः ।
उपरि आवलिवर्जिता स्वकस्थितिर्भवति निक्षेपः ॥५७॥

सं० टी०—इतः परं द्वितीयावलिद्वितीयनिषेके अपकृष्टे निक्षेपः स एव समयोनावलित्रिभागः समयाधिकः, अतिस्थापनं समयाधिकं भवति । तथा द्वितीयावलितृतीयनिषेकेऽप्यपकृष्टे स एव समयोनावलित्रिभागः समयाधिको निक्षेपो भवति । अतिस्थापनं तु द्विसमयाधिको भवति । एवं समयोत्तरक्रमेण समयोनावलित्रिभागमात्रस्य समयाधिकस्योपरितननिषेकेप्यपकृष्टे स एव समयोनावलित्रिभागः समयाधिको निक्षेपो भवति । अतिस्थापनं तु वर्द्धमानावलिमात्रं भवति । तदुत्कृष्टातिस्थापनम् । तदुपरि निक्षेपो वर्धते । अतिस्थापनं तु आवलिमात्रमवस्थितमेव । एवमुत्तरोत्तरनिषेकेष्वपकृष्टेषु निक्षेपो वर्द्धमानः चरमनिषेके अपकृष्टे अधःआवलिमात्रमतिस्थापनम्, तदूनकर्मस्थितिर्निक्षेपो भवति ॥५७॥

स० चं—यातैं ऊपरि द्वितीयावलीके द्वितीय निषेकका अपकर्षण कीया तहां एक समय अधिक आवलीमात्र याके नीचे निषेक हैं, तिनिविषैं निक्षेप तौ निषेक घाटि आवलीका त्रिभाग एक समय अधिक ही है। अतिस्थापन पूर्वतैं एक समय अधिक है। ऐसैं क्रमतैं द्वितीयावलीके तृतीयादि निषेकनिका अपकर्षण होतैं निक्षेप तौ पूर्वोक्त प्रमाण ही अर अतिस्थापन एक एक समय अधिक क्रमतैं जानना। तहां समय घाटि आवलीका त्रिभाग एक समय अधिकप्रमाण जे द्वितीयआवलीके निषेक तिनिके ऊपरिवर्ती जे निषेक ताका अपकर्षण किएं तहां निक्षेप तौ पूर्वोक्त प्रमाण अर अतिस्थापन आवलीमात्र हो है। सो यहु उत्कृष्ट अतिस्थापन है। अंक संदृष्टिकरि जैसैं अठारहवां उगणीसवां वीसवां आदि निषेकनिका द्रव्य अपकर्षणकरि प्रथमादि छह निषेकनिविषैं ही दीजिए है अर ग्यारह बारह तेरह आदि निषेकनिविषैं न दीजिए है। तहां तेईसवां निषेकका द्रव्य अपकर्षण कीएं आदिके छह निषेक तौ निक्षेपरूप हैं। अर सोलह निषेक अतिस्थापन भए सो यहु उत्कृष्ट अतिस्थापन है।

बहुरि इहातैं ऊपरिके निषेकनिका द्रव्य अपकर्षण कीएं सर्वत्र अतिस्थापन तौ आवलीमात्र ही जानना। अर निक्षेप एक एक समय क्रमतैं बधता जानना। तहां स्थितिके अंत निषेकका अपकर्षण होतैं ताके नीचेके आवलीमात्र निषेक तौ अतिस्थापनरूप जानने। तिस विना अवशेष सर्व निषेक निक्षेपरूप जानने। अंक संदृष्टिकरि जैसैं चौईसवां पचीसवां आदि निषेकनिका अपकर्षण होतैं प्रथमादि छह सात आदि एक एक बधता निषेक तौ निक्षेपरूप हो है। अर अतिस्थापनरूप सर्वत्र सोलह ही निषेक हैं। सो यहु क्रम अंत निषेकका अपकर्षण पर्यंत जानना॥ ५७॥

विशेष—आशय यह है कि जब तक एक आवलि प्रमाण अतिस्थापना नहीं होती है तब तक तो उत्तरोत्तर अतिस्थापनामें ही एक-एक निषेककी वृद्धि होती जाती है, निक्षेपका प्रमाण पूर्वोक्त ही

१. तदो जा विदिया ट्ठिदी तिस्से वि तत्तिगो चेव णिक्खेवो। अइच्छावणा समयुत्तरा। एवमइच्छावणा समयुत्तरा, णिक्खेवो तत्तिगो चेव उदयावलिबाहिरादो आवलियतिभागंतिमट्ठिदि त्ति। तेण पर णिक्खेवो वड्ढइ, अइच्छावणा आवलिया चेव। क० चू०, जयध० भा० ८, पृ २४४ आदि०।

रहता है। किन्तु आगे जहाँ-जहाँ अतिस्थापना एक आवलिप्रमाण सम्भव तो वहाँ-वहाँ अतिस्थापना तो एक आवलिप्रमाण ही रहती है, मात्र निक्षेप जिस स्थितिका अपकर्षण हुआ उसे तथा उसके नीचे अतिस्थापनावलिको छोड़कर शेष स्थितिप्रमाण होता है। इतना विशेष है कि यदि उदय प्रकृतिका अपकर्षण विवक्षित है तो उसके अपकर्षित द्रव्यका निक्षेप उदय समयसे लेकर होगा और यदि अनुदय प्रकृतिका अपकर्षण विवक्षित है तो उसके अपकर्षित द्रव्यका निक्षेप उदयावलिके ऊपरके निषेकोंमें ही होगा। इतना विशेष और है कि स्थितिकाण्डकघातके समय अन्तिम फालिका अपकर्षण होते समय यह नियम लागू नहीं होगा।

उक्कस्सट्ठिदिबंधो समयजुदावलिदुगेण परिहीणो।
ओकड्डिदम्मि चरिमे ठिदिम्मि उक्कस्सणिक्खेवो[1] ॥५८॥

उत्कृष्टस्थितिबंधः समययुतावलिद्विकेन परिहीनः।
उत्कृष्टस्थितौ चरमे स्थितौ उत्कृष्टनिक्षेपः ॥५८॥

सं० टी०—चरमनिषेके अपकृष्याधो निक्षिप्यमाणे समययुतावलिद्विकेन परिहीन उत्कृष्टकर्मस्थितिबन्धः सर्वोप्युत्कृष्टनिक्षेपो भवति क – ४। २ बंधसमयादाराभ्यावलिपर्यंतमपकर्षणरूपोदीरणानुपपत्तेराबाधाकाले अचलावलिरेका त्याज्या। अग्रे चरमनिषेकस्याधोऽतिस्थापनावलिरेका त्याज्या, चरम निषेक एकस्त्याज्य इति समयाधिकावलिद्वयमुत्कृष्टस्थितिबंधे अपनेतव्यं। एवं गाथासूत्रत्रयेणाव्याघातविषयापकर्षणे जघन्यातिस्थापनं, जघन्यनिक्षेपः, उत्कृष्टातिस्थापनमुत्कृष्टनिक्षेपश्च व्याख्याताः ॥५८॥

स० चं०—स्थितिका अन्तनिषेकका द्रव्यकौं अपकर्षणकरि नीचले निषेकनिविषैं निक्षेपण करतें तिस अन्त निषेकके नीचैं आवलिमात्र निषेक तौ अतिस्थापनरूप हैं अर समय अधिक दोय आवलीकरि हीन उत्कृष्ट स्थितिमात्र निक्षेप हो हैं सो यहु उत्कृष्ट निक्षेप जानना। इहां बंध भएं पीछैं आवलि कालपर्यंत तौ उदीरणा होइ नाहीं तातैं एक आवली तौ आबाधा विषैं गई अर एक आवली अतिस्थापनरूप रही अर अंत निषेकका द्रव्य ग्रह्या ही है, तातैं उत्कृष्ट स्थितिविषैं दोय आवली एक समय घटाया है। अंकसंदृष्टि करि जैसैं उत्कृष्ट स्थिति हजार समय तहां सोलह समय तौ आबाधाविषैं गये अर नवसै चौरासी निषेक हैं तहां अंत निषेकका द्रव्य अपकर्षण करि प्रथमादि नवसै सतसठि निषेकनिविषैं दीया सो यहु उत्कृष्ट निक्षेप है। अर ताके ऊपरि सोलह निषेकनिविषैं न दीया सो यहु अतिस्थापनावली है ॥ ५८ ॥

विशेष—स्थितिकाण्डकघातमें अन्तिम फालिके पतनको छोड़कर जो अपकर्षण होता है उसकी अव्याघात विषयक अपकर्षण संज्ञा है। समझो किसी जीवने मिथ्यात्वका सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम उत्कृष्ट स्थितिबन्ध किया। बन्धको प्राप्त नवीन द्रव्य एक आवलि काल तक सकल करणोंके अयोग्य होता है इस नियमके अनुसार उसकी एक आवलि काल तक उदीरणा नहीं हुई। तदनन्तर समयमें अन्तिम निषेकके द्रव्यकी अपकर्षणपूर्वक उदीरणा होनेपर अन्तिम निषेकके नीचे

१. उक्कस्सट्ठिदिं बंधिय बंधावलियं बोलाविय अग्गट्ठिदिमोकड्डिऊणावलियमेत्तमइच्छाविय उदयपज्जंतं णिक्खिवमाणस्स समयाहियदोआवलियूणकम्मट्ठिदिमेत्तुक्कस्सणिक्खेवसंभवोपलंभादो। जध० भा० ८, पृ० २५२।

एक आवलिप्रमाण द्रव्यको अतिस्थापित कर उसके नीचे उदय समय तक एक समय दो आवलि कम सत्तर कोड़ा-कोड़ी सागरोपमप्रमाण निषेकोंमें उसका निक्षेप करनेपर उक्त प्रमाण निक्षेप प्राप्त होता है। इसी प्रकार अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिके अनुसार सर्वत्र यथासम्भव उत्कृष्ट निक्षेप घटित कर लेना चाहिए ॥ ५८ ॥

व्याघातविषयक उत्कृष्ट अतिस्थापना और उत्कृष्ट निक्षेपका स्पष्टीकरण—

उक्कस्सट्ठिदिं बंधिय मुहुत्तअंतेण सुज्झमाणेण ।
इगिकंडएण घादे तम्हि य चरिमस्स फालिस्स ॥५९॥

चरिमणिसेयोक्कड्डे जेट्ठमदित्थावणं इदं होदि ।
समयजुदंतोकोडाकोडिं विणुक्कस्सकम्मठिदी[1] ॥६०॥

उत्कृष्टस्थितिं बंधयित्वा मुहूर्तान्तः शुद्धयता ।
एककांडकेन घाते तस्मिन् च चरमस्य फालेः ॥५९॥

चरमनिषेकापकर्षे ज्येष्ठमतिस्थापनमिदं भवति ।
समययुतान्तःकोटाकोटिं विना उत्कृष्टकर्मस्थितिः ॥६०॥

सं० टी०—केनचिज्जीवेन कर्मोत्कृष्टस्थितिं बद्ध्वा क्षयोपशमलब्धिमहिम्ना विशुध्यता बंधावलिमतिवाह्यांतर्मुहुर्तेनैककांडकघाते प्रतिसमयमसंख्येयगुणितफाल्यपनयने क्रियमाणे तस्मिश्चरमफाल्याश्चरमनिषेके अपकृष्याधोनिक्षिप्यमाणे समययुतांत.कोटीकोटिरहितकर्मोत्कृष्टस्थितिर्व्याघातविषयापकर्षणे उत्कृष्टातिस्थापनं भवति, उपरिमचरमनिषेकसमयः अधोनिक्षेपस्थितिरंतःकोटीकोटी च कर्मोत्कृष्टस्थितौ वर्जनीये । ततः समययुतांतःकोटीकोटिरहिता कर्मोत्कृष्टस्थितिर्व्याघातविषये उत्कृष्टमतिस्थापनमिति सिद्धं ॥५९–६०॥

स० चं०—अब जहाँ स्थितिकांडकघात होइ सो व्याघात कहिए। तहाँ कहिए है—कोई जीव उत्कृष्ट स्थिति बांधि पीछे क्षयोपशम लब्धिकरि विशुद्ध भया तब बंधी थी जो स्थिति तीहिविषैं आबाधारूप बंधावलीकौं व्यतीत भएं पीछैं एक अंतर्मुहूर्त कालकरि स्थितिकांडकका घात कीया तहाँ जो उत्कृष्ट स्थिति बांधी थी तिसविषैं अन्तःकोटाकोटी सागरप्रमाण स्थिति अवशेष राखि अन्य सर्व स्थितिका घात तिस कांडककरि हो है। तहाँ कांडकविषैं जेती स्थिति घटाई ताके सर्व निषेकनिका परमाणूनिकौं समय समय प्रति असंख्यातगुणा क्रम लीए अवशेष राखी स्थितिविषैं अंतर्मुहूर्त पर्यंत निक्षेपण करिए हैं। सो समय समयविषैं जो द्रव्य निक्षेपण कीया सोई फालि है। तहां अंतकी फालिविषैं स्थितिके अन्त निषेकका जो द्रव्य ताकौं ग्रहि अवशेष राखी स्थितिविषै दीया तहाँ एक समय अधिक अंतःकोटाकोटी सागरकरि हीन उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण उत्कृष्ट अति-

---

१. वाघादेण अइच्छावणा एक्का, जेणावलिया अदिरित्ता होइ! तं जहा—ट्ठिदिघादं करेंतेण खंडयमागाइदं। तत्थ जं पढमसमए उक्कीरदि पदेसग्गं तस्स पदेसग्गस्स आवलियाए अइच्छावणा। एवं जाव दुचरिमसमयअणुक्किण्णखंडगं ति। चरिमसमए जा खंडयस्स अग्गट्ठिदी तिस्से अइच्छावणा खंडयं समयूणं। क० चू०, जयध० भाग ८, पृ० २४८-२४९।

स्थापन हो है, जातैं इसविषैं सो द्रव्य न दीया। इहां उत्कृष्ट स्थितिविषैं अंतःकोटाकोटी सागरमात्र स्थिति अवशेष रही तिसविषैं द्रव्य दीया सो यहु निक्षेपरूप भया तातैं यहु घटाया अर एक अन्त निषेकका द्रव्य ग्रह्या ही है तातैं एक समय घटाया है। अंक संदृष्टि करि जैसैं हजार समयकी स्थितिविषैं कांडक घातकरि सौ समयकी स्थिति राखी तहां हजारवां समयसम्बन्धी निषेकका द्रव्यकौं आदिके सौ समयसम्बन्धी निषेकनिविषैं दीया तहाँ आठसै निन्याणवै मात्र समय उत्कृष्ट अतिस्थापन हो है ॥ ५९-६० ॥

विशेष—स्थितिकाण्डकघातमें अन्तिम फालिके पतनके समय जो अपकर्षण होता है उसकी व्याघातविषयक अपकर्षण संज्ञा है। उसकी अपेक्षा निक्षेप अन्तःकोड़ाकोड़ी स्थिति प्रमाण है और अतिस्थापना एक समय कम स्थितिकाण्डकप्रमाण है। जिन स्थितियोंमें अपकर्षित द्रव्य दिया जाता है उनको निक्षेप संज्ञा है तथा निक्षेपरूप स्थितियोंके ऊपर तथा जिस स्थितिके द्रव्यका अपकर्षण होता है उसके नीचे जिन मध्यकी स्थितियोंमें अपकर्षित द्रव्य नहीं दिया जाता उनकी अतिस्थापना संज्ञा है। स्थितिकाण्डकघातमें उपान्त्य फालिके पतन होने तक तो अतिस्थापना एक आवलिप्रमाण ही रहती है। परन्तु अन्तिम फालिके पतनके समय वह एक समय कम स्थिति-काण्डकप्रमाण प्राप्त होती है, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिके अन्तिम निषेकके द्रव्यका अपकर्षण विवक्षित है, अतः अन्तिम फालिका स्थितिकाण्डकगत स्थितियोंमें निक्षेप नहीं होता। स्थितिकाण्डकके नीचे जो अन्तःकोड़ाकोड़ी प्रमाणस्थिति निक्षेपरूप है उसीमें अन्तिम फालि सहित उसका निक्षेप होकर स्थितिकाण्डकगत समस्त स्थितिका उस समय समग्ररूपसे घात हो जाता है यह उक्त दोनों गाथाओंका तात्पर्य है। यहाँ उत्कृष्ट स्थितिके अन्तिम निषेकका अपकर्षण किया, इसलिए वह अतिस्थापनारूप नहीं है तथा नीचेकी अन्तःकोड़ाकोड़ी प्रमाणस्थिति निक्षेपरूप है, अतः वह अतिस्थापनारूप नहीं है। अतः एक समय सहित अन्तःकोड़ाकोड़ी प्रमाणस्थितिको छोड़कर शेष सब स्थिति अतिस्थापनारूप जाननी चाहिए।

आगे ६७वीं गाथा तक उत्कर्षणका विचार करते हैं—

सत्तग्गट्ठिदिं बंधे आदिट्ठिदियुक्कड्डणे जहण्णेण।
आवलि-असंखभागं तेत्तियमेत्तेव णिक्खिवदि ॥६१॥

सत्ताग्रस्थितिबन्ध आदिस्थित्युत्कर्षणे जघन्येन।
आवल्यसंख्यभागं तावन्मात्रे एव निक्षिपति ॥६१॥

१. वाघादेण कधं ? जइ संतकम्मादो बंधो समयुत्तरो तिस्से ट्ठिदीए णत्थि उक्कड्डुणा। जइ संतकम्मादो बंधो दुसमयुत्तरो तिस्से वि संतकम्मअग्गट्ठिदीए णत्थि उक्कड्डुणा। एत्थ आवलियाए असंखेज्जदिभागो जहण्णिया अइच्छावणा। जदि जत्तिया अइच्छावणा तत्तिएण अब्भहिओ संतकम्मादो बंधो तिस्से वि संतकम्मअग्गट्ठिदीए णत्थि उक्कड्डुणा। अण्णो आवलियाए असंखेज्जदिभागो जहण्णओ णिक्खेवो। जइ जहण्णियाए अइच्छावणेण जहण्णएण च णिक्खेवेण एत्तियमेत्तेण संतकम्मादो अदिरित्तो बंधो सा संतकम्मअग्गट्ठिदी उक्कड्डिज्जदि। क० चू०, जयध० भाग ८, पृ० २५७-२५९।

सं० टी०—अव्याघातव्याघातविषये कर्मस्थितेरुत्कर्षणे प्राक्तनसत्त्वस्य अग्रस्थितिचरमनिषेकं बंधे तत्कालबध्यमाने समयप्रबद्धे तत्समानस्थितेरुपरि आवल्यसंख्येयभागमतिच्छायातिक्रम्य तावन्मात्रे आवल्यसंख्येय-भागमात्रे एव निक्षपति इति जघन्यातिस्थापनं जघन्यनिक्षेपश्च कथितौ। उत्कर्षणे आभ्यां स्तोकयोरतिस्थापन-निक्षेपयोरभावात् ॥६१॥

सं० चं०—अव्याघातविषैं वा व्याघातविषैं कर्मस्थितिका उत्कर्षण होतैं विधान कहिए है—पूर्वै जे सत्तारूप निषेक थे तिनिविषैं जो अंतका निषेक था ताका द्रव्यकौं उत्कर्षण करनेका समयविषैं बंध्या जो समयप्रबद्ध तीहिंविषैं जो पूर्व सत्ताका अंत निषेक जिस समय उदय आवने योग्य है तिस समयविषैं उदय आवने योग्य जो बंध्या समयप्रबद्धका निषेक तिस निषेकके ऊपरि-वर्ती आवलीका असंख्यातवां भागमात्र निषेकनिकौं अतिस्थापनरूप राखि तिनके ऊपरिवर्ती जे तितने ही आवलीके असंख्यातवां भागमात्र निषेक तिनिविषैं तिस सत्ताका अंत निषेकका द्रव्यकौं निक्षेपण करिए है। यहु उत्कर्षणविषैं जघन्य अतिस्थापन अर जघन्य निक्षेप जानना। अंकसंदृष्टि-करि जैसैं पूर्व सत्ताका अंत निषेक जिस समय उदय होइगा तिस समयविषैं अब बंध्या समयप्रबद्धका पचासवां निषेक उदय होगा। बहुरि तिस सत्ताका अंत निषेकका द्रव्यकौं ग्रहि आवलीका प्रमाण सोलह ताका असंख्यातवां भाग च्यारि सो पचासवां निषेकके ऊपरि इक्यावनवां आदि च्यारि निषे-कनिकौं अतिस्थापनरूप राखि पचावनवां आदि च्यारि निषेकनिविषैं निक्षेपण करिए है ॥ ६१ ॥

विशेष—विवक्षित प्राक्तन सत्कर्मसे उसी कर्मका नवीन स्थितिबन्ध अधिक होनेपर बंधके समय उसके निमित्तसे सत्कर्मकी स्थितिको बढ़ाना उत्कर्षण कहलाता है। यह व्याघात और अव्या-घातके भेदसे दो प्रकारका है। जहाँ सत्कर्मसे नवीन स्थितिबन्ध एक आवलि और एक आवलिके असंख्यातवे भाग अधिकके भीतर होनेके कारण अतिस्थापना एक आवलिसे कम पायी जाती है वहाँ होनेवाले उत्कर्षणकी व्याघातविषयक उत्कर्षण संज्ञा है। और जहाँपर एक आवलिप्रमाण अतिस्थापनाके साथ निक्षेप कमसे कम आवलिके असंख्यातवें भागके होनेमें कोई व्याघात नहीं पाया जाता है वहाँ होनेवाले उत्कर्षणकी अव्याघातविषयक उत्कर्षण संज्ञा है। यहाँ ६१वीं गाथा में व्याघातविषयक उत्कर्षणका उल्लेख किया गया है। सत्त्वस्थितिके अग्रभागसे आवलिके दो असंख्यातवें भागोंसे एक समय कम भी यदि नवीन स्थितिबन्ध हो तो सत्त्वस्थितिके अग्रनिषेकके यथायोग्य कर्मदलका उत्कर्षण नहीं होता। हाँ यदि सत्त्वस्थितिके अग्रभागसे आवलिके दो असंख्या-तवें भागोंप्रमाण नवीन स्थितिबन्ध अधिक हो तो प्रथम आवलिके असंख्यातवें भागको अतिस्थापना रूपसे स्थापितकर द्वितीय आवलिके असंख्यातवें भागमें सत्त्वस्थितिके अग्रनिषेकका उत्कर्षण बन जाता है यह व्याघातविषयक उत्कर्षणका प्रथम भेद है।

उदाहरण—सत्त्व स्थितिका अन्तिम निषेक ५० संख्याक, नवीनबन्धका प्रमाण ५८, आवलि-का असंख्यातवां भाग ४।

अतः सत्त्वस्थितिके ५०वें अन्तिम निषेकका उत्कर्षण होकर उसका निक्षेप नवीन बन्धके ५५से ५८ तक चार निषेकोंमें होगा। ५१ से ५४ तकके चार निषेक अतिस्थापनारूप रहेंगे।

तत्तोदित्थावणगं वड्ढदि जावावली तदुक्कस्सं।
उवरीदो णिक्खेओ वरं तु बंधिय ठिदिं जेट्ठं ॥६२॥

वोलिय बंधावलियं ओक्कड्डिय उदयदो दु णिक्खिविय ।
उवरिमसमये विदियावलिपढमुक्कड्डणे जादे ॥६३॥

तक्कालबज्झमाणे वारट्ठदीए अदित्थियाबाहं ।
समयजुदावलियाबाहूणो उक्कस्सठिदिबंधो[1] ॥६४॥

ततोऽतिस्थापनकं बर्धते यादावलिस्तदुत्कृष्टम् ।
उपरितो निक्षेपो वरं तु बंधयित्वा स्थितिं ज्येष्ठां ॥६२॥

अपलाप्य बंधावलिकामपकर्ष्य उदयतस्तु निक्षिप्य ।
उपरितनसमये द्वितीयावलिप्रथमोत्कर्षणे जाते ॥६३॥

तत्कालबध्यमाने वरस्थित्या अतिस्थाप्याबाधां ।
समययुतावलिकाबाधोनः उत्कृष्टस्थितिबन्धः ॥६४॥

सं० टी०—ततः जघन्यातिस्थापनात् समयोत्तरक्रमेण अतिस्थापनं बर्धते यावदावलिमात्रमतिस्थापनं भवति । तस्यातिस्थापनस्योत्कर्षः वर उत्कृष्टो निक्षेपश्च उपरि वक्ष्यते । तत्कथं ज्येष्ठामुत्कृष्टां स्थितिं बध्वा तदाबाधायां बंधावलिमतिवाह्य चरमनिषेकमपकृष्य उदयनिषेकात्प्रभृति उपरि समयाधिकावलिं मुक्त्वा सर्वत्र निक्षिप्य उपरितनसमये अपकर्षणसमयानंतरसमये प्राक्निक्षिप्तद्वितीयावलिप्रथमनिषेकस्योत्कर्षणं भवति । तस्मिन्नुत्कर्षणे जाते तत्कालबध्यमाने उत्कृष्टस्थितिके समयप्रबद्धे समयाधिकावलिन्यूनामाबाधामतिक्रम्य प्रथमनिषेकात्प्रभृति उपरि समयाधिकावलिवर्जितोत्कृष्टकर्मस्थितौ उत्कृष्टद्रव्यं निक्षिपतीति समयाधिकावलिन्यूना आबाधा उत्कृष्टातिस्थापनं । समयाधिकावलियुक्ताबाधान्यूना उत्कृष्टकर्मस्थितिरुत्कृष्टनिक्षेपो भवति । अपकृष्टद्रव्यस्याधो निक्षिप्तस्य यावती शक्तिस्थितिरस्ति तावत्पर्यंतं स्थित्युत्कर्षणं घटते ॥६२-६४॥

स० चं०—तिस पूर्व सत्त्वके अंत निषेकतैं लगाय ते नीचेके निषेक तिनिका उत्कर्षण होतैं निक्षेप तौ पूर्वोक्त प्रमाण ही रहै अर अतिस्थापन क्रमतैं एक एक समय बंधता होइ सो यावत् आवलीमात्र उत्कृष्ट अतिस्थापन होइ तावत् यहु क्रम जानना । अंक संदृष्टिकरि सत्ताका अंत निषेकके नीचला उपांत निषेक जिस समयविषैं उदय होगा तिस समय हाल बध्या समयप्रबद्धका गुणचासवाँ निषेक उदय होगा सो तिस उपांत निषेकका द्रव्य उत्कर्षण करि ताकौं पचासवां आदि पांच निषेकनिकौं अतिस्थापनरूप राखि तिनके ऊपरि पचावनमां आदि च्यारि निषेकनिविषैं निक्षेपण करिए है । बहुरि ऐसैं ही उपांत निषेकतैं नीचले निषेकनिका द्रव्य उत्कर्षण करि बंध्या समयप्रबद्धका क्रमतैं गुणचासवां अठतालीसवां आदितैं लगाय छह सात आदि एक एक बंधते निषेक अतिस्थापनरूप राखि पचावनवां आदि च्यारि निषेकनिविषैं निक्षेपण करिए है । तहां हाल

---

१. तदो समयुत्तरे बंधे णिक्खेवो तत्तिओ चेव, अइच्छावणा वड्ढदि । एवं ताव अइच्छावणा वड्ढइ जाव अइच्छावणा आवलिया जादा त्ति । तेण परं णिक्खेवो वड्ढइ जाव उक्कस्सओ णिक्खेवो त्ति । उक्कस्सओ णिक्खेवो को होइ ? जो उक्कस्सियं ट्ठिदिं बंधियूणावलियमदिक्कंतो तमुक्कस्सयट्ठिदिमोकड्डियूण उदयावलिय-बाहिराए विदियाए ट्ठिदीए णिक्खिवदि । वुण से काले उदयावलियबाहिरे अणंतरट्ठिदिं पावेहिदि त्ति तं पदेसग्ग-मुक्कड्डियूण समयाहियाए आवलियाए ऊणियाए अग्गट्ठिदीए णिक्खिवदि । एस उक्कस्सओ णिक्खेवो । क० चू०, जयध० भाग ८, पृ० २५९-२६१ ।

बंध्या समयप्रबद्धका अठतीसवां निषेक जिस समयविषैं उदय होगा तिस समयविषै उदय आवने योग्य जो पूर्व सत्ताका निषेक ताका द्रव्यकौं उत्कर्षण करतैं हाल बंध्या समयप्रबद्धका गुणताली-सवां आदि सोलह निषेकनिकौं अतिस्थापनरूप राखै है सो यहु उत्कृष्ट अतिस्थापन है। इहां पर्यंत पचावनवां आदि च्यारि निषेकनिविषैं निक्षेपण जानना। बहुरि आवलीमात्र अतिस्थापन भए पीछैं ताके नीचे नीचेके निषेकनिका उत्कर्षण करतैं अतिस्थापन तौ आवलीमात्र ही रहै है अर निक्षेप क्रमतैं एक एक निषेककरि वधता हो है। अंक संदृष्टिकरि जैसैं हाल बंध्या समय-प्रबद्धका सैंतीसवां निषेक जिस समयविषैं उदय होगा तिस समयविषैं उदय आवने योग्य सत्ताके निषेककौं उत्कर्षण होतैं अठतीसवां आदि सोलह निषेक अतिस्थापनरूप हो हैं। चौवनवां आदि पांच निषेक निक्षेपरूप हो हैं। बहुरि ताके नीचेके निषेकका उत्कर्षण होतैं सैंतीसवां आदि सोलह निषेक अतिस्थापनरूप हो हैं तरेपनवां आदि छह निषेक निक्षेपरूप हो हैं। ऐसैं अतिस्थापन तितना ही अर निक्षेप क्रमतैं वधता जानना। अर उत्कृष्ट निक्षेप कहां होइ ? सो कहिए है—

कोई जीव पहिलैं उत्कृष्ट स्थिति बांधि पीछैं ताकी आबाधाविषैं एक आवली गमाइ ताके अनंतरि तिस समयप्रबद्धका जो अंतका निषेक था ताका अपकर्षण कीया तहां ताके द्रव्यकौं अंतके एक समय अधिक आवलीमात्र निषेकनिविषैं तौ न दीया अवशेष वर्तमान समयविषैं उदय योग्य निषेकतैं लगाय सर्व निषेकनिविषैं दीया ऐसैं पहिले अपकर्षण क्रिया करी। बहुरि ताके उपरिवर्ती अनंतर समयविषैं पूर्वे अपकर्षण क्रिया करतैं जो द्रव्य उदयावलीका प्रथम निषेकविषैं दीया था ताका उत्कर्षण कीया तब ताके द्रव्यकौं तिस उत्कर्षण करनेका समयविषैं बंध्या जो उत्कृष्ट स्थिति लीए समयप्रबद्ध ताके आबाधाकौं उल्लंघि पाइए है जे प्रथमादि निषेक तिनिविषैं अंतके समय अधिक आवलीमात्र निषेक छोडि अन्य सर्व निषेकनिविषैं निक्षेपण करिए है। इहाँ एक समय अधिक आवलीकरि हीन जो आबाधाकाल तीहि प्रमाण तौ अतिस्थापन जानना। काहेतं ? सो कहिए है—

जिस द्वितीयावलीका प्रथम निषेकका उत्कर्षण कीया सो तौ वर्तमान समयतैं लगाइ एक एक समय अधिक आवलीकाल भए उदय आवने योग्य है। अर जिनि निषेकनिविषैं निक्षेपण कीया ते वर्तमान समयतैं लगाय बंधी स्थितिका आबाधा काल भए उदय आवने योग्य हैं सो इनि दोऊनिके बीचि एक समय अधिक आवली करि हीन आबाधाकालमात्र अंतराल भया। द्वितीयावलिके प्रथम निषेकका द्रव्यकौं बीचिमैं इतने निषेक उल्लंघि ऊपरिके निषेकनिविषैं दीया सोई इहां अतिस्थापनका प्रमाण जानना। बहुरि इहां एक समय अधिक आवलीकरि युक्त जो आबाधाकाल तीहि करि हीन जो उत्कृष्ट कर्मस्थिति तीहि प्रमाण उत्कृष्ट निक्षेप जानना। काहेतैं ? सो कहिए है—

एक समय अधिक आवलीमात्र तौ अंतके निषेकनिविषैं न दीया अर आबाधाकाल विषैं निषेक रचना है ही नाहीं तातैं उत्कृष्ट स्थितिविषै इतना घटाया। इहां इतना जानना—अपकर्षण द्रव्यका नीचले निषेकनिविषैं निक्षेपण कीया ताका जो उत्कर्षण होइ तौ जेती बाकी शक्तिस्थिति होइ तहां पर्यंत ही उत्कर्षण होइ ऊपरि न होइ। शक्तिस्थिति कहा ? सो कहिए है—

विवक्षित समयप्रबद्धका जो अंतका निषेक ताकी तौ सर्व ही स्थिति व्यक्तिस्थिति है।

बहुरि ताकैं नीचे नीचेके निषेकनिके क्रमतैं एक समय घाटि, दोय समय घाटि आदि स्थिति व्यक्ति-स्थिति है। बहुरि प्रथमादि निषेकनिकैं सर्व ही स्थिति शक्तिस्थिति है। सो उत्कर्षण कीया द्रव्यकौं जेती शक्तिस्थिति होइ तहां पर्यंत ही दीजिए है। बहुरि पूर्वे निक्षेप अतिस्थापन कह्या ताका अंक संदृष्टिकरि स्वरूप दिखाए है—

जैसैं पूर्वे समयप्रबद्ध हजार समयकी स्थिति लीएं बंध्या तामैं सोलह समय व्यतीत भएं अन्त निषेकका द्रव्यकौं अपकर्षण करि आबाधाके ऊपरि तिस स्थितिके जे निषेक थे तिनविषैं सतरह निषेक अन्तके छांडि अन्य सर्व निषेकनिविषैं द्रव्य दीया। बहुरि ताके अनंतर समयविषैं जो तिस अंत निषेकका द्रव्य जो उत्कर्षण करनेका समयतैं लगाय सतरह्वां समयविषैं उदय आवने योग्य असा द्वितीयावलीका प्रथम निषेक तिसविषैं दीया था ताका उत्कर्षण कीया तब तीहि समय-विषैं हजार समयप्रबद्धप्रमाण स्थितिबंध भया ताकी पचास समय प्रमाण तौ आबाधा है अर नवसै पचास निषेक हैं तिनि निषेकनिविषैं अंतके सतरह निषेक छोडि अन्य सर्व निषेकनिविषैं तिस उत्कर्षण कीया द्रव्यकौं निक्षेपण करिए है। असैं इहां वर्तमान समयतैं लगाय जाका उत्कर्षण कीया सो तौ सतरहवां समयविषैं उदय आवने योग्य था अर जिस बंध्या समयप्रबद्धका प्रथम निषेकविषैं दीया सो इकावनवां समयविषैं उदय आवने योग्य भया सो इनिके बीचि अंतराल तेतीस समय भया सोई अतिस्थापन जानना। बहुरि हजार समयकी स्थितिविषैं पचास समय आबाधाके सतरह निषेक अंतके घटाएँ अवशेष नवसै तेतीस निषेकनिविषैं द्रव्य दीया सो यहु उत्कृष्ट निक्षेप जानना।

विशेष—पहले ६१वीं गाथाके आशयको स्पष्ट करते हुए व्याघातविषयक जघन्य अतिस्था-पना और जघन्य निक्षेपका स्पष्टीकरण कर आये हैं। उसके आगे नवीन बन्धके आश्रयसे एक आवलि कालप्रमाण अतिस्थापनाके प्राप्त होने तक एक-एक समयके क्रमसे अतिस्थापनामें वृद्धि होती जाती है, निक्षेपका प्रमाण पूर्वोक्त ही रहता है। इसका विशेष स्पष्टीकरण जयधवला भाग ८ पृ० २५० से २६१ तक के पृष्ठोंमें किया गया है। यहाँ पं० श्री टोडरमलजीने नवीन बन्धको पूर्ववत् रखकर तथा पूर्व सत्त्वके अन्त निषेकसे उत्तरोत्तर नीचेके निषेकोंका आलम्बन कर इस विषयको स्पष्ट किया है। जयधवलाके अनुसार प्रकृत विषयका सोदाहरण स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

५९ समयके स्थितिप्रमाण नवीन बन्धमें प्राक्तन सत्तामें स्थित ५० वीं अग्र स्थितिका उत्क-र्षण होनेपर ५१ से ५५ तक की नवीन बन्धसम्बन्धी स्थितियाँ अतिस्थापनारूप रहती हैं तथा ५६ से ५९ तककी स्थितियोंमें प्राक्तन सत्तामें स्थित स्थितिका निक्षेप होता है। इस प्रकार उत्तरोत्तर नवीन बन्धकी स्थितिमें एक-एक समयकी वृद्धि होनेपर एक आवलि कालके प्राप्त होने तक अतिस्थापना बढ़ती जाती है, निक्षेपका प्रमाण पूर्ववत् ही रहता है। उदाहरणार्थ नवीन स्थितिबन्ध ७० समय प्रमाण होनेपर ५१ से ६६ समय तककी स्थितियाँ अतिस्थापनारूप रहती हैं तथा ६७ से ७० समय तककी स्थितियोंमें प्राक्तन सत्तारूप ५० वीं अग्र स्थितिका निक्षेप होता है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि जब तक एक समय कम एक आवलिकालके प्राप्त होने तक अतिस्थापना और आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण निक्षेप रहता है तब तक उनकी व्याघातविषयक अतिस्थापना और निक्षेप संज्ञा है। इसके आगे एक आवलिप्रमाण अतिस्थापना-के होनेपर वे अव्याघात विषयक अतिस्थापना और निक्षेप संज्ञाको प्राप्त होते हैं। ये अव्याघात

विषयक जघन्य अतिस्थापना और जघन्य निक्षेप हैं। इससे आगे प्राक्तन सत्तासे एक आवलि और एक आवलिके असंख्यातवें भागसे अधिक नवीन स्थितिबन्ध हो और नवीन बन्धकी आबाधाके भीतर एक समय अधिक एक आवलि प्रवेश कर वहाँसे लेकर ऊपरकी सत्त्व स्थितियोंका उत्कर्षण हो तो अतिस्थापना एक आवलि प्रमाण ही रहेगी, मात्र निक्षेपमें वृद्धि होती जावेगी। पर इस प्रकार अव्याघातविषयक उत्कृष्ट अतिस्थापना और उत्कृष्ट निक्षेप नहीं प्राप्त होगा, इसलिये आगे अव्याघात विषयक उत्कृष्ट अतिस्थापनाके साथ उत्कृष्ट निक्षेप किस प्रकार प्राप्त होता है इसका स्पष्टीकरण करते हैं। कोई संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीव उत्कृष्ट संक्लेशवश सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कर बन्धावलिके बाद प्रथम समयमें आबाधाके बाहर स्थितियोंमें स्थित प्रदेशोंका अपकर्षण कर उदयावलिके बाहर निक्षिप्त करता है। यहाँ पर उदयावलिसे ऊपर दूसरी स्थितिमें अपकर्षण द्वारा निक्षिप्त हुआ द्रव्य विवक्षित है, क्योंकि उदयावलिके ऊपर प्रथम स्थितिमें निक्षिप्त हुए द्रव्यका अपकर्षण होनेके दूसरे समयमें उदयावलिमें प्रवेश हो जाता है। फिर दूसरे समयमें उत्कृष्ट संक्लेशके कारण उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाला वही जीव इस विवक्षित स्थितिके प्रदेशोंका उत्कर्षण कर उन्हें अबाधाके बाहर प्रथम निषेकसे लेकर अग्रस्थितिसे एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण स्थान नीचे उतर कर जो बन्धस्थिति है वहाँ तक निक्षिप्त करता है। यहाँ पर उत्कृष्ट निक्षेप तो एक समय और एक आवलि अधिक उत्कृष्ट आबाधासे न्यून उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण प्राप्त होता है और उत्कृष्ट अतिस्थापना उत्कृष्ट आबाधाप्रमाण प्राप्त होती है। यह उत्कृष्ट निक्षेप, जिस स्थितिके परमाणुओंका यहाँ उत्कर्षण किया गया है उससे ऊपर और आबाधाके भीतर जितनी प्राक्तन सत्ताकी स्थितियाँ हैं उन सभीका उक्त विधिसे, बन जाता है। मात्र आबाधाके बाहर प्रथम निषेककी स्थितिसे नीचेकी एक आवलिप्रमाण आबाधाके भीतरकी स्थितियोंका यह उत्कृष्ट निक्षेप सम्भव नहीं है। यहाँ अतिस्थापना एक-एक समय घटती जाती है और आबाधाके भीतर एक आवलि नीचे उतर कर उससे अनन्तर पूर्वकी स्थितिमें स्थित परमाणुओंका उत्कर्षण करनेपर वह एक आवलिप्रमाण रह जाती है। यहाँ पर उत्कृष्ट स्थितिबन्धकी अग्र स्थितिसे लेकर एक समय अधिक एक आवलि कम शेष बन्धस्थितियोंमें ही उत्कर्षणका विधान किया गया है। सो इसका कारण यह है कि नवीन बन्धके बन्धावलिप्रमाण कालके जानेपर ही पूर्व सत्ताके द्रव्यका अपकर्षण कराया गया है, इसलिए पूर्व सत्ताके अपकर्षित द्रव्यका उत्कर्षण होनेके पूर्व एक आवलि काल तो यह कम हो गया है तथा जिस समय अपकर्षण हुआ उस समय उत्कर्षण होना सम्भव नहीं है, इसलिए उसका उत्कर्षणके पूर्व एक समय यह कम हो गया है। इसलिए एक समय अधिक एक आवलि बाद पूर्व सत्ताके अपकर्षित द्रव्यका नवीन उत्कृष्ट बन्धस्थितिमें उत्कर्षण होनेसे उस उत्कर्षित द्रव्यमें उत्कर्षित होनेकी जितनी शक्ति स्थिति थी वहीं तक उसका उत्कर्षण हुआ है ऐसा यहाँ समझना चाहिए। विस्तार भयसे अंक संदृष्टि द्वारा इसे स्पष्ट नहीं किया गया है। विशेष स्पष्टीकरण यथासम्भव पं० जीने अपनी सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीकामें किया ही है।

अइवावलिगदवरठिदिपढमणिसेगे वरस्स बंधस्स।
विंदियणिसेगप्पहुदिसु णिक्खित्ते जेट्ठणिक्खेओ[1] ॥६८॥

---

१. जत्तिया उक्कस्सिया कम्मट्ठिदी उक्कस्सियाए आबाहाए समयुत्तरावलियाए च ऊणा तत्तिओ उक्कस्सओ णिक्खेवो। (क० चू०)। उक्कस्सट्ठिदिं बंधिय बंधावलियं गालिय तदणंतरसमए आबाहाबाहिर-

अथवावलिगतवरस्थितिप्रथमनिषेके वरस्य बंधस्य।
द्वितीयनिषेकप्रभृतिषु निक्षिप्ते ज्येष्ठनिक्षेपः ॥ ६५ ॥

सं० टी०—अथवा आचार्यान्तरव्याख्यानमतभेदात् उत्कृष्टस्थितिबंधस्य बंधावलिमतिबाह्य प्रथमनिषेके उत्कृष्टे तात्कालिकबध्यमानस्योत्कृष्टस्थितिसमयप्रबद्धस्य द्वितीयनिषेकप्रभृतिषु अग्रे अतिस्थापनावलिमुक्त्वा

१– १–

निक्षिप्ते समयाधिकावल्याबाधारहिता उत्कृष्टकर्मस्थितिरुत्कृष्टनिक्षेपो भवति । ४ । ४ । विवक्षितसमयप्रबद्धस्य

उ नि । क—आ

चरमनिषेकस्य सर्वा स्थितिर्व्यक्तिस्थितिः तस्याधो निषेकाणां समयोनद्विसमयोनादिस्थितयो व्यक्तिस्थितयः । प्रथमादिनिषेकाणां सर्वा स्थितिः शक्तिस्थितिरित्यभिप्रायः ॥६५॥

स० चं०—अथवा केई आचार्यनिके मतकरि निक्षेपणविषैं ऐसैं निरूपण है। उत्कृष्ट स्थितिबंध बांध्या था ताको बंधावलीकौं गमाइ पीछें ताका प्रथम निषेकका उत्कर्षण करि ताके द्रव्यकौं तिस उत्कर्षण करनेके समयविषैं बंध्या जो उत्कृष्ट स्थिति लीएं समयप्रबद्ध ताका द्वितीय निषेकका आदि दैकरि अंतविषैं अतिस्थापनावलीमात्र निषेक छोडि सर्व निषेकनिविषैं निक्षेपण कीया तहां एक समय अर एक आवली अर बंधी स्थितिका आबाधाकाल इन करि हीन उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण उत्कृष्ट निक्षेप हो है। इहां बंधी जो उत्कृष्ट स्थिति ताविषैं आबाधा कालविषैं तौ निषेक रचना नाही अर प्रथम निषेकविषैं द्रव्य दीया नाही अर अंतविषैं अतिस्थापनावलीविषैं द्रव्य न दीया तातैं पूर्वोक्त प्रमाण उत्कृष्ट निक्षेप जानना। इहां पूर्वोक्त प्रकार अंक संदृष्टिकरि कथन जानना ॥ ६५ ॥

विशेष—यहाँ बद्धकर्मके किस निषेककी कितनी शक्तिस्थिति और कितनी व्यक्तिस्थिति होती है इसका स्पष्टीकरण किया गया है। सो यह प्रत्येक कर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धकी अपेक्षा समझना चाहिए। उसमें भी प्रथमादि निषेकोंको शक्तिस्थितिका विचार करते समय उत्कर्षणके नियमानुसार शेष रही शक्तिस्थिति तक ही प्रत्येक निषेकका उत्कर्षण होता है।

उक्कस्सट्ठिदिबंधे आबाहागा ससमयमावलियं।
ओदरिय णिसेगेसुक्कड्डेसु अवरमावलियं[1] ॥६६॥

ट्ठिदिट्ठिदपदेसग्गमोकड्डिय उदयावलिबाहिरे णिसिंचदि। एत्थ विदियट्ठिदीए ओकड्डिय णिक्खित्तदव्वमहिकयं, पढमसमयणिसित्तस्स तदणंतरसमए उदयावलियब्भंतरपवेसदंसणादो। तदो विदियसमए उक्कस्ससंकिलेसवसेण उक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणो विवक्खियपदेसमुक्कड्डंतो आबाहाबाहिरपढमणिसेयप्पहुडि ताव णिक्खिवदि जाव समयाहियावलियमेत्तेण अग्गट्ठिदिमपत्तो त्ति। कुदो एवं? तत्तो उवरि तस्स विवक्खियकम्मपदेसस्स सत्तिट्ठिदीए असंभवादो। तम्हा उक्कस्साबाहाए समयुत्तरावलियाए च ऊणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिक्खेवो त्ति सिद्धं।········ जयध० भा० १२ पृ० २५६।

१. जाओ बज्झंति ट्ठिदीओ तासिं ट्ठिदीणं पुव्वणिबद्धट्ठिदिमहिकिच्च णिव्वाघादेण उक्कड्डणाए अइच्छावणा आवलिया। क० चू०, जयध० भा० १२ पृ० २५३।

उत्कृष्टस्थितिबंधे आबाधाग्रात्ससमयामावलिकाम् ।
अवतीर्य निषेकेषूत्कर्षेषु अवरमावलिकम् ॥६६॥

सं० टी०—उत्कृष्टस्थितिबंधे तत्कालबध्यमानसमयप्रबद्धे आबाधाग्रादाबाधांत्यसमयात् ससमयावलिकामवतीर्य तत्सामान्यसमयप्रबद्धनिषेकस्योत्कर्षणे आवलिमात्रं जघन्यमतिस्थापनं भवति । आबाधागतामावलिकामतिक्रम्य उपरि निषेकेषु अंतिमातिस्थापनावलिं मुक्त्वा सर्वत्र निक्षीपतीत्यर्थः ॥६६॥

स० चं०—उत्कृष्ट स्थिति लीएँ जो उत्कर्षण करनेके समयविषैं बंध्या समयप्रबद्ध ताकी आबाधाकालका जो अग्र कहिए अंत समय तीहिंसेती लगाय एक समय अधिक आवलीमात्र समय पहलैं उदय आवने योग्य ऐसा जो पूर्व सत्ताका निषेक ताका उत्कर्षण करतैं आवलीमात्र जघन्य अतिस्थापन हो है, जातैं तिस द्रव्यकौं आबाधाविषैं जो एक आवलीमात्र काल रह्या ताकौं अतिक्रम्य कहिए उल्लंघिकरि तिस बंध्या समयप्रबद्धकैं प्रथमादि निषेकनिविषैं अंतविषैं अतिस्थापनावली छोडि निक्षेपण करिए है। अंक संदृष्टिकरि जैसैं हजार समयकी स्थिति लीएं समयप्रबद्ध बंध्या ताका पचास समय आबाधा काल ताके अंत समयतैं लगाय सतरह समय पहलैं उदय आवने योग्य ऐसा वर्तमान समयतैं चौंतीसवां समयविषैं उदय आवने योग्य पूर्व सत्ताका निषेक ताका उत्कर्षण करि तत्काल बंध्या समयप्रबद्धका आबाधाकाल व्यतीत भएं पीछैं प्रथमादि समयविषैं उदय आवने योग्य नवसै पचास निषेक तिनिविषैं अन्तके सतरह निषेक छोडि प्रथमादि नवसै तेतीस निषेकनिविषैं निक्षेपण करिए है। इहां उत्कर्षण कीया निषेकनिके अर दीया प्रथम निषेकके वीचि अंतराल सोलह समयका भया सोई जघन्य अतिस्थापना जानना ॥ ६६ ॥

ओदरिय तदो विदीयावलिपढमुक्कड्डणे वरं हेट्ठा ।
अइच्छावणमाबाहा समयजुदावलियपरिहीणा ॥६७॥

अवतीर्य ततो द्वितीयावलिप्रथमोत्कर्षणे वरमधस्तना ।
अतिस्थापना आबाधा समययुतावलिकपरिहीना ॥६७॥

सं० टी०—ततस्ततः अधोऽवतीर्य अन्यस्य सत्त्वसमयप्रबद्धस्य द्वितीयावलिप्रथमनिषेकोत्कर्षणे अधःसमययुतावलिपरिहीणा आबाधा उत्कृष्टातिस्थापनं भवति । समयाधिकावलिहीनामाबाधामतिक्रम्य उपरि निषेकेषु अग्रे समयाधिकावलिं मुक्त्वा निक्षिपतीत्यर्थः ॥६७॥ एवं प्रसंगायातमपकर्षणोत्कर्षणविषयजघन्योत्कृष्टनिक्षेपातिस्थापनलक्षणप्रमाणविषयानाचार्यान्तराभिप्रायं च व्याख्याय अथ प्रकृतगुणश्रेणिनिर्जराविधानं प्रक्रमते—

स० चं०—तहांतैं उतरि तिसतैं पहिलैं उदय आवने योग्य ऐसा अन्य कोई सत्तारूप समयप्रबद्धसम्बन्धी द्वितीयावलीका प्रथम निषेक जो वर्तमान समयतैं आवलीकाल भएं पीछैं उदय आवने योग्य है ताका उत्कर्षण होतैं नीचैं एक समय अधिक आवलीकरि हीन आबाधाकाल प्रमाण उत्कृष्ट अतिस्थापन हो है। समय अधिक आवलीकरि हीन जो आबाधा ताकौं उल्लंघि ऊपरिके जे निषेक तिनिविषैं अंतके अतिस्थापनावलीमात्र निषेक छोडि अन्य निषेकनिविषैं तिस द्रव्यकौं दीजिए है। इहां पूर्वोक्त प्रकार अंक संदृष्टि आदिकरि कथन जानि लेना। ऐसैं प्रसंग पाइ इहां उत्कर्षण अपकर्षण अपेक्षा निक्षेप अतिस्थापनका विधान कह्या। सो जहां उत्कर्षणकरि **बा**

१. जयध० भा० १२, पृ० २५६ ।

अपकर्षण करि ऊपरिके वा नीचेके निषेकनिविषैं द्रव्य देना होइ तहां इस कथनके अनुसारि विधान जानना। जिस निषेकका द्रव्य ग्रह्या होइ तिस निषेकके द्रव्यकौं इहां निक्षेपरूप निषेक कहे तिनिविषैं तौ दीजिए है अर अतिस्थापनरूप निषेक कहे तिनिविषैं न दीजिए है। बहुरि बहुत निषेकनिका द्रव्य एकै काल ग्रहण करिए तौ तहां भी जुदे जुदे निषेकनिके द्रव्य देनेका वा न देनेका विधान इहां कह्या कथनके अनुसारि जानना। इहां जो व्याख्यान कीया तिसविषैं मंदबुद्धीनिके समझावनेके अर्थि अंकसंदृष्टि आदि कथन कीया है अर लब्धिसारकी संस्कृत टीकविषैं न था तिसविषैं कहीं चूक होइ सो ज्ञानी जन सवारि शुद्ध करियो ॥६७॥

या प्रकार प्रसंग पाइ कथनकरि अब गुणश्रेणिका विधान कहिए है—

उदयाणमावलिम्हि य उभयाणं बाहरम्मि खिवणट्ठं।
लोयाणमसंखेज्जो कमसो उक्कड्डणो हारो[1] ॥६८॥

उदीयमानानामावलौ चोभयानां बाह्ये क्षेपणार्थम्।
लोकानामसंख्येयः क्रमश उत्कर्षणो हारः ॥६८॥

सं० टी०—गुणश्रेणिनिर्जरार्थमपकृष्टानामुदयवतामेव कर्मणां मिथ्यात्वादीनां उदयावल्यां निक्षेपणार्थमसंख्येयलोकमात्रो भागहारो भवति। चशब्दात्तद्बहुभागमात्रद्रव्यस्योदयावलिबाह्येऽपि निक्षेपो भवति। उदयवतामेवोदयावल्यां निक्षेप इति नियम उक्तः। उभयेषामुदयवतामनुदयवतां च उदयावलिबाह्ये क्षेपणार्थमपकर्षणनामा भागहारो भवति। क्रमश इति वचनात् पल्यासंख्यातभागमात्रश्च भागहारो भवतीति व्यज्यते। वक्ष्यमाणभागहारक्रमस्य तथैव दर्शनात् ॥६८॥

सं० टी०—जिनि प्रकृतिनिका उदय पाइए है तिनहीके द्रव्यका उदयावलीविषैं निक्षेपण हो है। ताके अर्थि असंख्यात लोकका भागहार जानना। बहुरि जिनि प्रकृतिनिका उदय पाइए वा जिनिका उदय न पाइए तिनि दोऊनिके द्रव्यका उदयावलीतैं बाह्य गुणश्रेणिविषैं वा उपरितन स्थितिविषैं निक्षेपण हो है। ताके अर्थि अपकर्षण भागहार जानना। क्रमशः इस वचनकरि पल्यका असंख्यातवाँ भागका भी भाग प्रकट कीजिए है। सो इस कथनकौं आगैं व्यक्तकरि कहै हैं ॥६८॥

विशेष—यहाँ अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर उदयवाली और अनुदयवाली प्रकृतियोंका गुणश्रेणिनिक्षेप किस विधिसे होता है इस विषयका स्पष्टीकरण किया गया है। यहाँ बतलाया है

१. अपुव्वकरणपढमसमए दिवड्ढगुणहाणिमेत्तसमयपबद्धे ओकड्डुक्कड्डुणभागहारेण खंडेयूण तत्थेयखंडमेत्तदव्वमोकड्डिय तत्थासंखेज्जलोगपडिभागियं दव्वमुदयावलिब्भंतरे गोपुच्छायारेण णिसिंचिय पुणो सेसबहुभागदव्वमुदयावलिबाहिरे णिक्खिवमाणो उदयावलियबाहिराणंतरट्ठिदीए असंखेज्जसमयपबद्धमेत्तदव्वं णिसिंचदे। तत्तो उपरिमट्ठिदीए असंखेज्जगुणं देदि। एवमसंखेज्जगुणाए सेढीए णिसिंचदि जाव अपुव्वाणियट्टिकरणद्धाहिंतो विसेसाहियगुणसेढिसीसयं ति। पुणो उवरिमाणंतरट्ठिदीए असंखेज्जगुणहीणं देदि। तत्तो परं विसेसहीणं णिक्खवदि जाव चरिमट्ठिदिमधिच्छावणावलियमेत्तेण अपत्तो त्ति। एवमपुव्वकरणविदियादिसमएसु वि गुणसेढिणिक्खेवक्कमो परूवेयव्वो। णवरि गलिदसेसायामेण णिसिंचदि त्ति वत्तव्वं। जयध० भाग १२, पृ० २६५। ध० पु० ६ पृ० २२४।

कि उदयवाली प्रकृतियोंकी उदयावलिसम्बन्धी निषेकोंमें निक्षेप करनेके लिये अपने योग्य द्रव्यमें असंख्यात लोकोंका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतने द्रव्यका अपकर्षण करना चाहिए। किन्तु जयधवला पु० १२ पृ० २६५ में इसका विशेष खुलासा करते हुए यह बतलाया है कि अपने योग्य डेढ़ गुणहानिगुणित समयप्रबद्धमें अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे उसमें असंख्यात लोकोंका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे उतने द्रव्यको गोपुच्छाकाररूपसे तो उदयावलिमें निक्षिप्त करना चाहिए। शेष बहुभागप्रमाण द्रव्यको गुणश्रेणि-निक्षेपके विधानानुसार निक्षिप्त करना चाहिए। शेष कथन स्पष्ट ही है। लब्धिसारके अगले कथनसे भी यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है।

ओक्कड्डिदइगिभागे पल्लासंखेण भाजिदे तत्थ।
बहुभागमिदं दव्वं उव्वरिल्लठिदीसु णिक्खिवदि ॥ ६९ ॥

अपकर्षितैकभागे पल्यासंख्येन भाजिते तत्र।
बहुभागमिदं द्रव्यमुपरितनस्थितिषु निक्षिपति ॥ ६९ ॥

सं० टी०—सर्वकर्मसत्वमिदं स ∂ १२आयुर्द्रव्यस्य स्तोकत्वेन किंचिदूनं कृत्वा शेषे सप्तभिर्भक्ते मोहनीयद्रव्यं भवति। तस्मिन्ननंतेन खंडिते एकभागः मिथ्यात्वषोडशकषायरूपसर्वघातिद्रव्यं भवति। तस्मिन् सप्तदशभिर्भक्ते मिथ्यात्वप्रकृतिद्रव्यमिदं स ∂ १२— अस्मिन् गुणश्रेणिनिर्जरार्थमपकर्षणभागहारेण भक्ते तदेक-
७। ख। १७

१—
भागोऽयं स ∂ १२—तद्बहुभागः स्वस्थितिरचनायामेव तिष्ठति [१४] स ∂ १२—ओ पुनरपकृष्टैक
७। ख। १७ओ ७। ख १७। ओ

१—
भागपल्यासंख्येयभागेन खंडिते तद्बहुभागोऽयं स। ∂ १२–प इदं द्रव्यं गुणश्रेण्या उपरितनस्थितिषु
∂
७। ख। १७। ओ प
∂
निक्षिपति ॥ ६९ ॥

स० चं०—अपकर्षण भागहारका भाग दीएं तहां एक भागकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां बहुभाग उपरितन स्थितिविषैं निक्षेपण करैं हैं। इहां ऐसा जानना—कर्मके सत्तारूप स्थितिके निषेक तिनिविषैं वर्तमान समयतैं लगाय आवलोकालविषैं उदय आवने योग्य निषेक तिनिविषैं जो द्रव्य दीया ताकौं उदयावलीविषैं दीया कहिए। बहुरि ताके ऊपरि गुणश्रेणि आयाम प्रमाण जे निषेक तिनिविषैं जो द्रव्य मिलाया सो गुणश्रेणिविषैं दीया कहिए। बहुरि ताके ऊपरि अंतके अतिस्थापनावलीमात्र निषेक छोडि सर्व निषेकनिविषैं जो द्रव्य दीया सो उपरितन स्थितिविषैं दीया द्रव्य कहिए। अब इहां मिथ्यात्वके उदाहरणकरि विधान कहिए है—

सर्व कर्मका सत्त्वरूप द्रव्य है सो किंचिदून द्वयर्धगुणहानिगुणित समयप्रबद्धप्रमाण है तामें आयुका द्रव्य घटावनेकौं किंचित ऊन करि अवशेषकौं सात मूल प्रकृतिनिका विभागके अर्थि

सातका भाग दीएं मोहनीयका द्रव्य होइ। बहुरि ताकौं देशघाती सर्वघातीका भागके अर्थि अनंतका भाग दीएं तहां एक भागमात्र सर्वघातिनिका द्रव्य हो है। बहुरि ताके सोलह कषाय एक मिथ्यात्वके विभाग करनेकौं सतरहका भाग दीएं मिथ्यात्वका द्रव्य हो है सो याकौं पूर्वें पीठबंध-विषैं शक्तिप्रमाण लीए जो अपकर्षण नामा भागहार ताका भाग दिए तहां एक भाग विना अवशेष बहुभाग थे ते तौ पूर्वें सत्ताविषैं जैसें अपने निषेक रचनारूप तिष्ठे थे तैसें ही रहे। बहुरि जो एक भाग रह्या ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीए तहां बहुभाग उपरितन स्थितिविषैं निक्षेपण करै हैं॥ ६९॥

विशेष—यहाँ उपरितन स्थितियोंमें गुणश्रेणिशीर्षसे आगेकी अतिस्थापनावलिसे पूर्व तककी स्थितियाँ ली गई हैं। यहाँ इतना विशेष जानना कि जिस निषेक स्थितिमेंसे द्रव्यका अपकर्षण किया जाय उससे नीचे एक आवलिप्रमाण निषेकस्थितियाँ अतिस्थापनावलिरूप होती हैं और उससे नीचे तक उस निषेकस्थितिके द्रव्यका निक्षेप होता है।

सेसिगभागे भजिदे असंखलोगेण तत्थ बहुभागं।
गुणसेढीए सिंचदि सेसेगं च उदयम्हि॥ ७०॥
शेषैकभागे भजितेऽसंख्यलोकेन तत्र बहुभागम्।
गुणश्रेण्यां सिंचति शेषैकं च उदये॥ ७०॥

सं० टी०—पल्यासंख्यातैकभागोऽयं स। a १२– अस्मिन्नसंख्येयलोकेन भाजिते बहुभागद्रव्यमिदं—
७। ख। १७। ओ। प

१^– a
स। a। १२— = a गुणश्रेण्यां सिंचति गुणश्रेण्यायामे निक्षिपतीत्यर्थः। शेषैकभागं—
७। ख। १७। ओ। प = a
a
स। a। १२— उदये उदयावल्यां निक्षिपति। चशब्दः परस्परसमुच्चयार्थः॥७०॥
७। ख। १७। ओ। प = a
a

स० चं०—अवशेष एक भाग रह्या ताकौं असंख्यात लोकका भाग देइ तहां बहुभाग गुण-श्रेणि आयामविषैं देना। अर अवशेष एक भाग उदयावलीविषैं देना॥७०॥

उदयावलिस्स दव्वं आवलिभजिदे दु होदि मज्झधणं।
रूऊणद्धाणद्धेणूणेण णिसेयहारेण॥७१॥
मज्झिमधणमवहरिदे पचयं पचयं णिसेयहारेण।
गुणिदे आदिणिसेयं विसेसहीणे कमं तत्तो[1]॥७२॥

---

१. उदयपयडीणमुदयावलिबाहिराट्ठिदट्ठिदीणं पदेसग्गमोकड्डुणभागहारेण खंडिदेयखंडं असंखेज्जलोगेण भजिदेगभागं घेत्तूण उदए बहुगं देदि। विदियसमए विसेसहीणं देदि। एवं विसेसहीणं विसेसहीणं देदि जाव उदयावलियचरिमसमओ त्ति। ध० पु० ६, पृ० २२४।

उदयावलेर्द्रव्यमावलिभजिते तु भवति मध्यधनम् ।
रूपोनाद्धवानार्धेनोनेन निषेकहारेण ।।७१।।

मध्यमधनमवहरिते प्रचयं प्रचयं निषेकहारेण ।
गुणिते आदिनिषेकं विशेषहीनं क्रमं ततः ।।७२।।

सं० टी०—तदेकभागमात्रे उदयावलिसंबंधिद्रव्ये आवल्या भक्ते मध्यमधनं भवति स a १२—
७ । ख । १७ । ओ प ≡ a ८
a

रूपोनाध्वार्द्धेन रूपोनगच्छार्धेन ऊनेन रहितेन निषेकहारेण द्विगुणगुणहान्या तस्मिन् मध्यमधने भाजिते प्रचयो विशेषो भवति । स a १२— तस्मिन् प्रचये द्विगुणगुणहान्या गुणिते आदिनिषको
१^
७ । ख १७ । ओ । प । ≡ a ८ । १६ – ८
a २

भवति स । a । १२–१६ ततो द्वितीयादिनिषेकेषु विशेषहीनक्रमेण निक्षिप्यते
१^
७ ख । १७ । ओ । प । ≡ a । ८ । १६–८
a २ १^

यावच्चरमनिषेकः रूपोनावलिमात्रविशेषहीनप्रथमनिषेकमात्रो भवति स a १२–१६–८ ।।७१-७२।।
७^
७ । ख । १७ । ओ । प ≡ a । ८ । १६—८
a २

स० चं०—तहां उदयावलीविषैं दीया जो द्रव्य ताकौं आवलीके समय प्रमाणका भाग दीएं मध्यधन आवै । बहुरि तिस मध्य धनकौं एक घाटि जो आवलीप्रमाण गच्छ ताका आधाकौं निषेकहार जो दोगुणहानि तामैं घटाइ अवशेषका भाग दीएं चयका प्रमाण आवै है । बहुरि तिस चयकौं दोगुणहानिकरि गुणैं आवलीके प्रथम निषेकविषैं दीया द्रव्यका प्रमाण हो है तातैं द्वितीयादि निषेकनिविषैं दोया द्रव्य क्रमतै एक एक चयकरि घटता प्रमाण लीएँ जानना । तहाँ एक घाटि आवलीमात्र चय घटैं अंत निषेकनिविषैं दीया द्रव्यका प्रमाण हो है । ऐसैं उदयावलीके निषेकनिविषैं दीया द्रव्यका विभाग है ।।७१–७२।।

ओकड्डिदम्हि देदि हु असंखसमयपबद्धमादिम्हि ।
संखातीतगुणक्कममसंखहीणं विसेसहीणक्कमं ।।७३।।

अपकर्षिते ददाति हि असंख्यसमयप्रबद्धमादौ ।
संख्यातीतगुणक्रममसंख्यहीनं विशेषहीनक्रमम् ।।७३।।

सं० टी०—पुनर्गुणश्रेण्यर्थमपकृष्टद्रव्यस्य असंख्यातलोकभक्तबहुभागद्रव्यमिदं स a १२ – ≡ a
७ । ख । १७ ओ । प ≡ a
a

अस्मिन्नंतर्मुहूर्तमात्रे गुण्यश्रेण्यायामे प्रतिसमयमसंख्येयगुणितनिक्षेपाभ्युपगमात्, संख्यातावलिकाल.वर्गगुणकार-संयोगरूपेण प्रमाणराशिना भक्ते तदेकभागमसंख्यातसमयप्रबद्धमात्रं गुणश्रेण्यादिनिषेके ददाति, भागहारभूतपल्य-भागहारस्यासंख्येयस्य माहात्म्यादसंख्येसमयप्रबद्धमात्रं गुणश्रेणिप्रथमनिषेके निक्षिप्यत इत्यर्थः । ततो द्वितीयादि-निषेकेषु गुणश्रेण्यायामचरमनिषेकपर्यंतेषु प्रतिनिषेकमसंख्येयगुणितं द्रव्यं निक्षिप्यते । तत्रांकसंदृष्ट्या गुणश्रेणि-निषेकाश्चत्वारः । असंख्येयगुणकारसंदृष्टिश्चत्वारः । एवं च प्रथमे निषेके एको गुणकारः । द्वितीये चत्वारः । तृतीये षोडश । चतुर्थे चतुःषष्टिः । सर्वगुणकारसंयोग पंचाशीतिः । तत उपरितनस्थितिप्रथमनिषेके निक्षिप्तद्रव्य-

१ ^

मसंख्येयगुणहीनं, कुतः ? उपरितनस्थितौ निक्षिप्तद्रव्यमिदं स a १२ – प इदं नानागुणहानिषु निक्षिप्यत इति

a

७ । ख । १७ । ओ प

a

प्रथमगुणहानिप्रथमनिषेके 'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा' इत्यभिप्रायेण द्व्यर्धगुणहान्या भक्त्वा द्विगुणगुणहान्या अध उपरि च गुणयित्वा निक्षिप्यमाणे तद्द्रव्यागमनात् । ततो द्वितीयादिनिषेकेषु विशेषहीनक्रमेण अग्रे अति-स्थापनावलिं मुक्त्वा निक्षिपेत् । एवं गुणश्रेणिकरणप्रथमसमयापकृष्टत्रिद्रव्यनिक्षेपसंदृष्टिर्मूलग्रन्थे दृष्टव्या ॥७३॥

स० चं०—गुणश्रेणिके अर्थि अपकर्षण कीया द्रव्य ताकौं प्रथम समयकी एक शलाका यातैं दूसरेकी असंख्यात गुणी, यातैं तीसरेकी असंख्यातगुणी अैसें अंत समयपर्यंत असंख्यातगुणा क्रम लीएं जे शलाका तिनिका जोड देइ ताकौं भाग दोएं जो प्रमाण आवै ताकौं अपनी-अपनी शलाका-करि गुणें गुणश्रेणि आयामका प्रथम निषेकविषैं दीया द्रव्य असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण आवै है। जातैं इहां भागहार पल्यके असंख्यातवां भागहीका है। बहुरि तातैं द्वितीयादि निषेकनिविषैं द्रव्य क्रमतैं असंख्यातगुणा अन्तसमयपर्यंत क्रमतैं जानना । अैसें गुणश्रेणि आयामके निषेकनिविषैं दीया द्रव्यका विभाग है। बहुरि उपरितन स्थितिविषैं दीया द्रव्यकौं 'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा' इस सूत्रकरि साधिक ड्योढ गुणहानिका भाग दोएं ताका प्रथम निषेकविषैं दीया द्रव्यका प्रमाण हो है। सो गुणश्रेणिका अंत निषेकविषैं दीया द्रव्यके असंख्यातवे भागप्रमाण है। तातैं प्रथम गुणहानिका द्वितीयादि निषेकनिविषैं दीया द्रव्य चय घटता क्रम लीएं है। उपरि गुण-हानि गुणहानि प्रति निषेकनिका आधा-आधा द्रव्य जानना । अैसें गुणश्रेणि करनेका प्रथम समय-विषैं अपकर्षण कीया द्रव्यकौं तीन जायगा दीया ताकी संदृष्टि आगें लिखेंगे तहां देखनी ॥७३॥

पडिसमयमोक्कड्डदि असंखगुणियक्कमेण सिंचदि य ।
इदि गुणसेढीकरणं आउगवज्जाण कम्माणं[1] ॥ ७४ ॥

प्रतिसमयमपकर्षति असंख्यगुणितक्रमेण सिंचति च ।
इति गुणश्रेणीकरणमायुष्कवर्ज्यानां कर्मणाम् ॥ ७४ ॥

सं० टी०—एवं प्रतिसमयं च गुणश्रेणिकरणद्वितीयादिसमयेष्वपि गुणश्रेणिकरणकालचरमसमयपर्यंतेषु

---

१. तम्मि चेवापुव्वकरणस्स पढमसमए आउगवज्जाणं गुणसेढिणिक्खेवो वि आढत्तो त्ति भणिदं होइ । किमट्ठमाउगस्स गुणसेढिणिक्खेवो णत्थि त्ति चे ? ण, सहावदो चेव । तत्थ गुणसेढिणिक्खेवपवुत्तीए असंभवादो । जयध० भा० १२, पृ० २६४ ।

पूर्वापकृष्टद्रव्यादसंख्येयगुणं द्रव्यमपकर्षति सिंचति च, पूर्वोक्तविधानेन उदयावल्यां गुणश्रेण्यायामे उपरितनस्थितौ च तत्तद्द्रव्यं निक्षिपति । इत्यनेन प्रकारेणायुर्वर्जितानां सप्तप्रकृतीनां द्रव्यस्य मिथ्यात्वद्रव्यवदेव गुणश्रेणिकरणं त्रिद्रव्यनिक्षेपविधानं ज्ञातव्यं ।। ७४ ।।

स० चं—गुणश्रेणि करनेकौं द्वितीयादिक अंतपर्यंत समयनिविषैं समय समय प्रति असंख्यातगुणा क्रम लीएं द्रव्यकौं अपकर्षण करै है। बहुरि सिंचति कहिए पूर्वोक्त प्रकार उदयावली आदिविषैं ताका निक्षेपण करै है। ऐसैं मिथ्यात्ववत् आयु विना सात कर्मनिका गुणश्रेणिविधान समय समय प्रति हो है सो जानना ।। ७४ ।।

अथ गुणसंक्रमविधानार्थमाह—

पडिसमयमसंखगुणं दव्वं संकमदि अप्पसत्थाणं ।
बंधुज्झियपयडीणं बंधंतसजादिपयडीसु ।। ७५ ।

प्रतिसमयमसंख्यगुणं द्रव्यं संक्रामति अप्रशस्तानां ।
बन्धोज्झितप्रकृतीनां बध्यमानस्वजातिप्रकृतिषु ।। ७५ ।

सं० टी०—गुणसेढी गुणसंक्रम इति पूर्वमुद्दिष्टो गुणसंक्रमः अपूर्वकरणप्रथमसमये नास्ति तथापि स्वयोग्यावसरे भविष्यतस्तस्य स्वरूपं पूर्वोद्देशानुसारेणास्मिन प्रकरणे कथ्यते । तद्यथा—अप्रशस्तानां बंधोज्झितप्रकृतीनां द्रव्यं प्रतिसमयमसंख्येयगुणं बध्यमानस्वजातीयप्रकृतिषु संक्रामति । पूर्वस्वरूपं त्यक्त्वान्यस्वरूपं गृह्णातीत्यर्थः ।। ७५ ।।

आगैं गुणसंक्रमणकास्वरूप कहिए है—

स० चं—गुणसंक्रमण है सो अपूर्वकरणके पहले समयविषैं न हो है। अपने योग्य कालविषैं हो है तथापि याका स्वरूप इहां कहिए—

जिनका बंध न पाइए ऐसी जे अप्रशस्त प्रकृति तिनिका द्रव्य है सो समय समय प्रति असंख्यातगुणा क्रम लीए जिनका बंध पाइए ऐसी जे स्वजाति प्रकृति तिनिविषैं संक्रमण करै है अपने स्वरूपकौं छोडि तद्रूप परिणमै है ।। ७५ ।।

विशेष—औपशमिक सम्यग्दर्शनके प्राप्त होनेके प्रथम समयसे लेकर विध्यात संक्रमणके प्राप्त होनेके पूर्व समय तक गुणसंक्रमण द्वारा मिथ्यात्वके द्रव्यका सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वरूपसे संक्रमित करता है। इस विषयका विशेष विचार आगे किया ही गया है। यहाँ ७५ वीं गाथामें किन प्रकृतियोंका गुणसंक्रमण होता है, मात्र इतना सामान्य निर्देश किया गया है। तथा अन्य किन प्रकृतियोंका किस किस अवस्थामें गुणसंक्रमण होता है इसका निर्देश आगे ७६ वीं गाथामें किया गया है।

एवंविहसंकमणं पढमकसायाण मिच्छमिस्साणं ।
संजोजणखवणाए इदरेसिं उभयसेढिम्मि ।। ७६ ।।

एवंविधं संक्रमणं प्रथमकषायाणां मिथ्यात्व-मिश्रयोः ।
संयोजनक्षपणयोरितरेषामुभयश्रेणौ ।। ७६ ।।

सं० टी०—एवंविधं प्रतिसमयमसंख्येयगुणं संक्रमणं प्रथमकषायाणामनंतानुबंधिनां विसंयोजने वर्तते । मिथ्यात्वमिश्रप्रकृत्योः क्षपणायां वर्तते । इतरासां प्रकृतीनामुभयश्रेण्यामुपशमकश्रेण्यां क्षपकश्रेण्यां च वर्तते ।

यथा असातद्रव्यस्य श्रेण्यां बंधरहितस्य बध्यमाने सातद्रव्ये संक्रमणं, सातबंधकालोऽन्तर्मुहूर्तः २ । ᕮ असात-बंधकालस्तु ततस्संख्येयगुणोऽन्तर्मुहूर्त्तः २ ᕮ । ४ मिश्रकालः, प्र फ इ इति त्रैराशिकेन लब्धं

२ ᕮ ५ स ᗅ १२-२ ᕮ १

सातद्रव्यं वेदनीयद्रव्यस्य संख्यातैकभागमात्रं लब्धं स ᗅ । १२- । १ एतस्मात्संख्येयगुणमसातद्रव्यं स ᗅ । १२

७ । ५ ७ । ५

- । श्रेण्यां बंधरहितस्यासातद्रव्यस्य बध्यमाने सातद्रव्ये प्रतिसमयसंख्येयगुणं संक्रमणं भवति ॥ ७६ ॥

स० च—ऐसा असख्यातगुणा क्रम लीएं जो संक्रमण ताकौं गुणसंक्रमण कहिए सो अनंतानुबंधी कषायनिका तौ गुणसंक्रमण ताका विसंयोजनविषैं हो है। अर मिथ्यात्व मिश्रमोहनीका गुणसंक्रमण तिनका क्षपणाविषैं हो है। अर अन्य प्रकृतियोंका गुणसंक्रमण उपशमक वा क्षपक श्रेणीनिविषैं पाइए है। जैसैं श्रेणीविषैं बंधरहित जो असाता ताका द्रव्य है सो वध्यमान जो स्वजातीय साता तीहिंविषैं संक्रमण करै है सो कहिए है—

साता निरंतर बंधनेका काल अंतर्मुहूर्त अर असाताका तीहिस्यों संख्यातगुणा सो दोऊनिकों मिलाय ताका भाग वेदनीय कर्मके द्रव्यकौं देइ अपने अपने काल करि गुणें सातावेदनीयका द्रव्य वेदनीयका द्रव्यके संख्यातवें भागमात्र आवै है अर असाताका तातैं संख्यातगुणा आवै है सो श्रेणीविषैं ऐसैं असाताका द्रव्य समय-समय असख्यातगुणा क्रम लीएं सातारूप होइ परिणमै है। तहां गुणसंक्रमण जानना। ऐसैं ही अन्यका यथासंभव जानना ॥ ७६ ॥

अथ स्थितिकांडकघातस्वरूपं निरूपयति—

पढमं अवरवरट्ठिदिखंडं पल्लस्स संखभागं तु।
सायरपुधत्तमेत्तं इदि संखसहस्सखंडाणि[1] ॥ ७७ ॥

प्रथममवरवरस्थितिखंडं पल्यस्य संख्येयभागं तु।
सागरपृथक्त्वमात्रमिति संख्यसहस्रखंडानि ॥ ७७ ॥

सं० टी०—अपूर्वकरणप्रथमसमये क्रियमाणमवरं जघन्यं स्थितिखंडं पल्यसंख्यातैकभागमात्रं प तु पुनर्वर-

७ ᕮ

मुत्कृष्टस्थितिखंडं सागरोपमपृथक्त्वमात्रं भवति सा ८ यद्यपि तत्काले आयुर्वर्जितानां सप्तानां कर्मणां स्थितिरन्तःकोटीकोटिर्भवति तथापि विशुद्धिपरिणामभेदवशात् कस्यचिज्जीवस्य कर्मस्थितिर्जघन्या अल्पांतःकोटी-

१. अपुव्वकरणपढमसमये ट्ठिदिखंडयं जहण्णगं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो, उक्कस्सगं सागरोवमपुधत्तं। क० चू०। जहण्णेण ताव पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागायामं ट्ठिदिखंडयमागाएदि, दंसणमोहोवसामगपाओग्गसव्वजहण्णंत्तोकोडाकोडिमेत्तट्ठिदिसंतकम्मेणागदम्मि तदुवलंभादो। उक्कस्सेण पुण सागरोवमपुधत्तमेत्तायामं पढमट्ठिदिखंडयमाढवेइ, पुव्विल्लजहण्णट्ठिदिसंतकम्मादो संखेज्जगुणट्ठिदिसंतकम्मेण सहागंतूण अपुव्वकरणं पविट्ठस्स पढमसमये तदुवलंभादो। किं पुण कारणं दोण्हं पि विसोहिपरिणामेसु समाणेसु संतेसु घादिदसेसाणं ट्ठिदिसंतकम्माणं एवं विसरिसभावो त्ति णासंकणिज्जं, संसारपाओग्गाणं हेट्ठिमविसोहीणं सव्वेसु समाणत्ते णियमाणुवलंभादो। जयध० भा० १२ पृ० २६०। ध० पु० ६, पृ० २२४।

कोटिर्भवति । कस्यचित् पुनरुत्कृष्टा कर्मस्थितिरधिकांतःकोटीकोटिसागरोपमा भवति । तदनुसारेण स्थिति-

१—

१^

कांडकमपि जघन्यमुत्कृष्टं च संभवतीत्यर्थः । मध्ये कांडकविकल्पा असंख्येयाः प ♀ ♀ स्थितिकालश्च ततः ♀

१ —   १——   १——

१ ^   १^   १^

संख्येयगुणाः प ♀ ♀ एतावत्सु कांडकविकल्पेषु प्र० प ♀♀ यद्येतावंतः स्थितिविकल्पाः संभवंति फ प ♀ ♀ ♀

तदा एकस्मिन् कांडकविकल्पे कियंतः स्थितिविकल्पाः संभवेयुः इ ♀ इति त्रैराशिकलब्धाः एककांडकविकल्पे संख्येयाः स्थितिविकल्पाः लब्धं ♀ अंकसंदृष्टौ कांडकविकल्पाः पंचप्रमाणं प्र ५ स्थितिविकल्पा पंचदश फलं फ १५

इच्छाकांडकविकल्प एकः इ १ लब्धाः स्थितिविकल्पास्त्रयः लब्ध ३ । एवमपूर्वकरणप्रथमसमयं प्रारब्धस्थिति-कांडकमादि कृत्वा अंतर्मुहूर्ते अंतर्मुहूर्ते एकैकस्थितिकांडकोत्करणसमाप्तौ सत्यां अपूर्वकरणकाले संख्यातसहस्राणि स्थितिकांडकानि भवंति । अपूर्वकरणकालस्य २ ♀ ♀ संख्यातैकभागमात्रः स्थितिकांडकोत्कर्षणकालः, ततः एतावति काले प्र २ ♀ यद्येकं स्थितिखंडमुत्कीर्यते फ १ तदा एतावति काले इ २ ♀ ♀ कियंति स्थिति-खंडान्युत्कीर्यते ? इति त्रैराशिकेन लब्धानि अपूर्वकरणकाले संख्यातसहस्राणि स्थितिखंडानि भवंति । लब्ध ♀ ० ० ० ॥ ७७ ॥

आगैं स्थितिकांडकघातका स्वरूप कहैं है—

स० चं—अपूर्वकरणका पहिला समयविषैं कीया असा स्थितिखंड कहिए स्थितिकांडकायाम सो जघन्य तो पल्यका संख्यातवां भागमात्र अर उत्कृष्ट पृथक्त्व सागरप्रमाण है। पृथक्त्व नाम सात वा आठका जानना। एक कांडककरि एती स्थिति घटावै है। यद्यपि तहां सत्त्व स्थिति सामान्यतैं अंतःकोटाकोटी है तथापि कोइकैं तौ अंतःकोटाकोटी पल्यमात्र जघन्य स्थितिसत्व है कोईकैं अंतःकोटाकोटी सागरप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिसत्व है तातैं स्थितिके अनुसारि कांडक भी जघन्य उत्कृष्ट है मध्यविषैं कांडकके भेद असंख्याते हैं। तिनिमैं संख्यातगुणे स्थितिके भेद हैं। तातैं संख्यात स्थितिभेदनिविषैं एक कांडक भेद पाइए है। अंक संदृष्टि करि कांडक भेद पांच स्थिति भेद पंद्रह तहां त्रैराशिक कीए एक कांडक भेदविषैं तीन स्थितिभेद पावैं। असैं एक एक स्थिति कांडकका घात अंतर्मुहूर्त काल करि होइ सो असैं स्थितिखंड अपूर्वकरणके कालविषैं संख्यात हजार हो हैं जातैं अपूर्वकरणके कालके संख्यातवे भागमात्र स्थितिकांडकका काल है ॥ ७७ ॥

विशेष—समझो अपूर्वकरणके प्रथम समयमें ऐसे दो जीवोंने प्रवेश किया जिनके विशुद्धिरूप परिणाम समान होते हैं, फिर भी उनमेंसे एक जीव पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण स्थिति कांडक घातके लिए ग्रहण करता है और दूसरा जीव सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण स्थितिकाण्डक घातके लिये ग्रहण करता है। ऐसा क्यों होता है, क्योंकि जब उनके विशुद्धि परिणाम समान होते हैं तो उन द्वारा घातके लिये ग्रहण किया गया स्थितिकाण्डक समान होना चाहिए ? इस प्रश्नका समाधान करते हुए जयधवलामें बतलाया है कि अपूर्वकरणके प्रथम समयसे पूर्व जितने विशुद्धि परिणाम होते हैं वे सब संसारके योग्य होनेसे समान ही होते हैं ऐसा नियम न होनेसे अपूर्वकरणके प्रथम समयमें स्थितिकाण्डकोंमें यह विसदृशता देखी जाती है।

अथापूर्वकरणप्रथमचरमसमयस्थितिखंडादीनां अल्पवहुत्वं व्याचष्टे—

आउगवज्जाणं ठिदिघादो पढमादु चरिमठिदिसत्तो ।
ठिदिबंधो य अपुव्वो होदि हु संखेज्जगुणहीणो[1] ॥ ७८ ॥

आयुष्कवर्ज्यानां स्थितिघातः प्रथमाच्चरमस्थितिसत्त्वं ।
स्थितिबंधश्चापूर्वो भवति हि संख्येयगुणहीनः ॥ ७८ ॥

सं० टी०—अपूर्वकरणस्य प्रथमसमयवर्तिभ्यः स्थितिखंडस्थितिसत्त्वस्थितिबंधेभ्यः चरमसमयवर्तिनस्ते संख्येयगुणहीना भवंति । संदृष्टिः प्रथमसमये कांडकं प, स्थितिसत्त्वं अंत.कोटीकोटिः । स्थितिबंधः अंतःकोटीकोटिः ।
२ ४

चरमसमये कांडकं प । स्थितिसत्त्वं अंतःकोटीकोटिः । स्थितिबंधः अंत.कोटीकोटिः । संख्यातसहस्रस्थितिखंड-
२ २ ४ ४ । ४

स्थितिबंधापसरणवशात् स्थितिसत्त्वस्थितिबंधयोः संख्यातगुणहीनत्वं तदनुसारेण स्थितिकांडकस्यापि संख्यातगुणहीनत्वं युक्तमेव ॥ ७८ ॥

आगे स्थितिकाण्डकघातकी विशेषताएँ बतलाते हैं—

स० चं—अपूर्वकरणके पहिले समय जे स्थितिखंड अर स्थितिसत्व अर स्थितिबंध पाइए हैं तिनतैं ताके अंत समयविषैं ते सख्यातगुणे घाटि हैं । इहां सख्यात हजार स्थितिकांडकघाति करि स्थितिसत्त्वका, अर स्थितिके अनुसारि स्थितिकांडक है तातैं स्थितिकांडकका, सख्यात हजार स्थितिबंधापसरण करि स्थितिका अनुसार स्थितिबधका सख्यातगुणा घाटि होना जानना ॥ ७८ ॥

विशेष—अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जितना स्थितिसत्त्व है उसके अन्तिम समयमें वह संख्यातगुणा हीन हो जाता है, प्रथम समयमें जितना स्थितिकाण्डकका प्रमाण है अन्तिम समयमें वह भी सख्यातगुणा हीन हो जाता है तथा प्रथम समयमें जितना स्थितिबन्ध होता है अन्तिम समयमें वह भी संख्यातगुणा हीन होने लगता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

अथानुभागकांडकस्वरूपोत्करणकालविषयायामभेदानाह—

एक्केक्कट्ठिदिखंडयणिवडणठिदिबंधओसरणकाले ।
संखेज्जसहस्साणि य णिवडंति रसस्स खंडाणि[2] ॥ ७९ ॥

एकैकस्थितिकांडकनिपतनस्थितिबन्धापसरणकाले ।
संख्येयसहस्राणि च निपतन्ति रसस्य खंडानि ॥ ७९ ॥

१. अपुव्वकरणस्स पढमसमए ट्ठिदिसंतकम्मादो चरिमसमए ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणहीणं । क० चू०, जयध० भा० १२ पृ० २६९ । ट्ठिदिबंधो अपुव्वो । क० चू०, जयध० भा० १२ पृ० २६१ । णवरि अपुव्वकरणस्स पढमसमयट्ठिदिसंतट्ठिदिबंधेहिंतो अपुव्वकरणस्स चरिमसमयट्ठिदिसंत-ट्ठिदिबंधाणं दीहत्तं संखेज्जगुणहीणं होदि । ध० पु० ६ पृ० २२९ । णवरि पढमट्ठिदिखंडयादो विदियट्ठिदिखंडयं विसेसहीणं संखेज्जदिभागेण । एवमणंतराणंतरादो विसेसहीणं णेदव्वं जाव चरिमट्ठिदिखंडयेत्ति । जयध० भा० १२ पृ० २६८ । ध० पु० ६, पृ० २२८-२२९ ।

२. तम्हि ट्ठिदिखंडयद्धा ट्ठिदिबंधगद्धा च तुल्ला । एकम्हि ट्ठिदिखंडए अणुभागखंडयसहस्साणि घादेदि । क० चू०, जयध० भा० १२ पृ० २६६-२६७ । ध० पु० ६, पृ० २२८ ।

सं० टी०—एकैकस्थितिखंडनिपतनकाल:, एकैकस्थितिबंधापसरणकालश्च समानावंतर्मुहूर्तमात्रौ । तस्मिन्नंतर्मुहूर्ते संख्यातसहस्राण्यनुभागस्य खंडानि निपतंति । एकस्थितिखंडोत्करणस्थितिबंधापसरणकालस्य २ ११ संख्यातैकभागमात्रोऽनुभागखंडोत्करणकाल इत्यर्थ: २ १ । अनेनानुभागकांडकोत्करणकालप्रमाणमुक्तं ।। ७९ ।।

आगैं अनुभागकांडकघातकौं कहिए है—

स० चं—जाकरि एकबार स्थितिसत्त्व घटाइए असा स्थितिकांडकोत्करणकाल अर जाकरि एकबार स्थितिबंध घटाइए सो स्थितिबंधापसरण काल ए दोऊ समान हैं अतर्मुहूर्तमात्र हैं। बहुरि तिस एक विषैं जाकरि अनुभागसत्त्व घटाइए असा अनुभागखंडोत्करण काल संख्यात हजार हो हैं जातैं तिस कालतैं अनुभागखंडोत्करण यहु काल संख्यातवं भागमात्र है ।। ७९ ।।

विशेष—एक स्थितिकांडकघातका तथा एक स्थितिबन्धापसरणका काल समान अन्तर्मुहूर्त है। इनके कालके भीतर हजारों अनुभागकाण्डकोंका पतन हो जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

असुहाणं पयडीणं अणंतभागा रसस्स खंडाणि ।
सुहपयडीणं णियमा णत्थि त्ति रसस्स खंडाणि[1] ।। ८० ।।

अशुभानां प्रकृतीनामनन्तभागा रसस्य खण्डानि ।
शुभप्रकृतीनां नियमान्नास्तीति रसस्य खण्डानि ।। ८० ।।

सं० टी०—अशुभानामप्रशस्तानामसातादिप्रकृतीनां रसस्यानुभागस्य अनंतबहुभागमात्राणि खंडानि भवंति । शुभप्रकृतीनामनुभागस्य खंडानि नियमान्न संति इति हेतोरशुभप्रकृतीनामेव विशुद्धया अनुभागखण्डसंभव: । अपूर्वकरणप्रथमसमयानुभागस्यानंतबहुभागमात्रं प्रथमानुभागखण्डं व ९ ना ख (ऊपर: ३ १ _^) पुनरवशिष्टानंतैकभागस्यानंतबहुभागमात्रं द्वितीयखण्डं व ९ ना ख (ऊपर: ३ १ _^ ख) इत्यादि क्रमेणांतर्मुहूर्तेऽतर्मुहूर्ते २ १ एकैकमनुभागखण्डं (नीचे: ख ख) निपतति । प्रतिसमयमेकैकफाल्यपनयनं भवति, अनेन अनुभागकांडकायामशुभाशुभप्रकृतिविषयविभागश्च प्रदर्शित: ।। ८० ।।

स० चं—अप्रशस्त जे असातादि प्रकृति तिनका अनुभाग कांडकायाम अनंत बहुभाग मात्र है। अपूर्वकरणका प्रथम समयविषैं जो पाइए अनुभागसत्व ताकौं अनतका भाग दाए तहां एक कांडककरि बहुभाग घटावै । एक भाग अवशेष राखै है । यहु प्रथम खण्ड भया याकौं अनतका भाग दीएं दूसरे कांडक करि बहुभाग घटाइ एक भाग अवशेष राखै है । असैं एक एक अंतर्मुहूर्त करि एक एक अनुभागकांडकघात हो है तहां एक अनुभागकांडकोत्करणकालविषैं समय समय प्रति एक एक फालिका घटावना हो है। बहुरि सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतिनिका अनुभागकांडकघात नियमतैं नाहीं है ।।८०।।

१. अणुभागखंडयमप्पसत्थकम्मंसाणमणंता भागा । क० चू, अणुभागखंडयमप्पसत्थाणं चेव कम्माणं होइ, पसत्थकम्माणं विसोहीए अणुभागवड्ढि मोत्तूण तग्घादाणुववत्तीदो । जयध० भा० १२, पृ० २६१ ।

विशेष—प्रत्येक अनुभागकाण्डकके पतन होनेके बाद जो अनुभागसत्त्व शेष रहता है उसके अनन्त बहुभागप्रमाण अनुभागको लेकर उसके अगले अनुभागकाण्डककी रचना होती है जिसका एक स्थितिकाण्डकघातके संख्यात हजारवें भागप्रमाण अन्तर्मुहूर्त कालमें पतन होता है। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इस प्रकार अनुभागका घात अप्रशस्त प्रकृतियोंका ही होता है, प्रशस्त प्रकृतियोंका नहीं।

रसगदपदेसगुणहाणिट्ठाणगफड्डयाणि थोवाणि ।
अइत्थावणणिक्खेवे रसखंडेणंतगुणियकमा[1] ॥ ८१ ॥

रसगतप्रदेशगुणहानिस्थानकस्पर्धकानि स्तोकानि ।
अतिस्थापननिक्षेपे रसखण्डेऽनन्तगुणितक्रमाणि ॥ ८१ ॥

सं० टी०—रसगतान्यनुभागसंबंधीनि प्रदेशगुणहानिस्थानकस्पर्धकानि कर्मपरमाणुसंबंध्येकगुणहानि-स्थितिस्पर्धकानि स्तोकानि ९। ततः अतिस्थापनास्पर्धकान्यनंतगुणानि ९ ख। ततः निक्षेपस्पर्धकान्यनंतगुणानि ९ ख ख। ततः अनुभागकांडकस्पर्धकान्यनंतगुणानि ९ ख ख ख। अनेनानुभागकांडकायामाल्पबहुत्वं प्रदर्शितं ॥ ८१ ॥

स० चं—अनुभागकौं प्राप्त असे कर्म परमाणुसंबंधी एक गुणहानिविषैं स्पर्धकनिका प्रमाण सो स्तोक है। तातैं अनंतगुणे अतिस्थापनारूप स्पर्धक हैं। तातैं अनंतगुणे निक्षेप स्पर्धक हैं। तातैं अनंतगुणा अनुभागकांडकायाम हैं। इहां असा जानना—

कर्मनिके अनुभागविषैं स्पर्धक रचना है तहां प्रथमादि स्पर्धक स्तोक अनुभागयुक्त हैं। ऊपरिके स्पर्धक बहुत अनुभागयुक्त हैं। तहां तिनि सर्व स्पर्धकनिकौं अनंतका भाग दीएं बहुभाग मात्र जे ऊपरिके स्पर्धक तिनके परमाणूनिकौं एक भागमात्र जे नीचले स्पर्धक तिनिविषैं केते इक ऊपरिके स्पर्धक छोडि अवशेष नीचले स्पर्धकनिरूप परणमावै हैं। तहां केते इक परमाणू पहले समय परिणमावैं है, केते इक दूसरे समय परिणमावै है, असैं अंतर्मुहूर्त कालकरि सर्व परमाणू परिणमाइ तिनि ऊपरिके स्पर्धकनिका अभाव करे है। इहां समय-समय प्रति जो द्रव्य ग्रह्या ताका तौ नाम फालि है असैं अंतर्मुहूर्त करि जो कार्य कीया ताका नामकाण्डक है। तिस कांडक करि जिनि स्पर्धकनिका अभाव कीया सो कांडकायाम है। बहुरि तिनिका द्रव्यकौं जे कांडकघात भएं पीछैं अवशेष स्पर्धक रहैं तिनिविषैं, तिन प्रथमादि स्पर्धकनिविषैं मिलाया ते तौ निक्षेपरूप हैं अर जिनि ऊपरिके स्पर्धकनिविषैं न मिलाया ते अतिस्थापनरूप हैं ॥ ८१ ॥

विशेष—अनुभागगत एक प्रदेशगुणहानिमें जितना अनुभाग होता है उसे अनुभागगत प्रदेश गुणहानिस्थान कहते हैं। इसमें अनुभागस्पर्धक सबसे स्तोक होकर भी अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण होते हैं। इनसे अतिस्थापनागत अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणे होते हैं। अपकर्षणके समय जो अनुभागस्पर्धक अतिस्थापनारूप रहते हैं अर्थात् जिन अनुभागस्पर्धकोंको उल्लंघन कर उनसे नीचेके अनुभागस्पर्धकोंमें निक्षेप किया जाता है वे अतिस्थापनारूप अनुभाग-स्पर्धक अनुभागगत एक प्रदेशगुणहानिसम्बन्धी स्पर्धकोंसे अनन्तगुणे होते हैं ऐसा यहाँ समझना

---

१. तस्स पदेसगुणहाणिट्ठाणंतफयद्दयाणि थोवाणि। अइच्छावणाफद्दयाणि अणंतगुणाणि। णिक्खेवफद्द-याणि अणंतगुणाणि। आगाइदफद्दयाणि अणंतगुणाणि। क० चू०, जयध० भा० १२, पृ० २६१ आदि।

चाहिए, क्योंकि इन अतिस्थापनारूप स्पर्धकोंमें अनुभागसम्बन्धी अनन्त प्रदेशगुणहानियां पाई जाती हैं। इनसे जिनमें अपकर्षित द्रव्यका निक्षेप होता है वे निक्षेपगत अनुभागस्पर्धक अनन्त-गुणे होते हैं। इनसे अपकर्षणके लिए काण्डकरूपसे ग्रहण किये गये अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणे होते हैं, क्योंकि अपूर्वकरणके प्रथम अनुभागकाण्डकके पतनके समय जो अनुभाग सत्त्व होता है उसमें द्विस्थानीय अनुभागसत्त्वके अनन्तवें भागको छोड़कर प्रथम अनुभागकाण्डकघातमें शेष सब अनुभागसत्त्वका ग्रहण हो जाता है। आगेके अनुभागकाण्डकघातोंमें भी उत्तरोत्तर शेष रहे अनु-भागसत्त्वको ध्यानमें रखकर इसी विधिसे विचार कर लेना चाहिए। तात्पर्य यह है एक एक अनुभागकाण्डकके पतन द्वारा अनन्त बहुभागप्रमाण अनुभागस्पर्धकोंका पतन होता जाता है।

पढमापुव्वरसादो चरिमे समये पसत्थइदराणं।
रससत्तमणंतगुणं अणंतगुणहीणयं होदि ॥ ८२ ॥

प्रथमापूर्वरसात् चरमे समये प्रशस्तेतरेषाम्।
रससत्त्वमनन्तगुणमनन्तगुणहीनकं भवति ॥ ८२ ॥

सं० टी०—अपूर्वकरणप्रथमसमये प्रशस्तप्रकृतीनामनुभागसत्त्वात् चरमसमय अनुभागसत्त्वमनंतगुणं भवति। प्रतिसमयमनंतगुणविशुद्धया प्रशस्तानुभागस्यानंतगुणसत्त्वसम्भवात्। इतरासामप्रशस्तप्रकृतीनां प्रथम-समयानुभागसत्त्वात् चरमसमये तदनुभागसत्त्वमनन्तगुणहीनं भवति, अनुभागकांडकघातमाहात्म्येन तत्संभवात्। एवमपूर्वकरणपरिणामैः क्रियमाणं कार्यं व्याख्यातं ॥ ८२ ॥

स० चं—अपूर्वकरणके प्रथम समयसम्बन्धी प्रशस्त अप्रशस्त प्रकृतिनिका अनुभागसत्व जो है तातैं ताके अंत समयविषैं प्रशस्तनिका अनंतगुणा बधता अर अप्रशस्तनिका अनंतगुणा घटता अनुक्रमतैं अनुभागसत्त्व हो है। इहां समय समय प्रति अनंतगुणी विशुद्धता होनेतैं प्रशस्त प्रकृतिनि का अनंतगुणा अर अनुभागकांडकघातका माहात्म्यकरि अप्रशस्त प्रकृतिनिका अनंतवें भाग अनुभाग अंत समयविषैं संभवै है ॥ ८२ ॥

अथानिवृत्तिकरणपरिणामस्वरूपं तत्कार्यं च प्राह—

बिदियं व तदियकरणं पडिसमयं एक्क एक्क परिणामो।
अण्णं ठिदिरसखंडे अण्णं ठिदिबंधमाणुवई[1] ॥ ८३ ॥

द्वितीयमिव तृतीयकरणं प्रतिसमयमेक एकः परिणामः।
अन्ये स्थितिरसखंडे अन्यत् स्थितिबंधमाप्नोति ॥ ८३ ॥

सं० टी०—तृतीयकरणः अनिवृत्तिकरणः स च द्वितीयकरण इव व्याख्यातव्यः। यथा अपूर्वकरणे स्थितिखंडादयः कार्यविशेषाः प्रोक्तास्तथात्राप्यनिवृत्तिकरणे ते प्रवक्तव्या इत्यर्थः। अयं तु विशेषः—अस्मिन्न-निवृत्तिकरणकाले प्रतिसमयं नानाजीवपरिणामाः जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्परहिता एव भवन्ति। यथापूर्व-करणचरमसमये नानाजीवपरिणामाः षट्स्थानवृद्धिगताः परस्परतो जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्नाः संति न तथा

१. अणियट्टिस्स पढमसमए अण्णं ट्ठिदिखंडयं अण्णो ट्ठिदिबंधो अण्णमणुभागखंडयं। क० चू० जयध० भा० १२, पृ० २७१। ध० पु० ६, पृ० २२९।

अनिवृत्तिकरणप्रथमसमये परस्परतो भिद्यंते, तत्र तेषां सर्वेषामपि समानविशुद्धिकत्वात् । अत एव न विद्यते निवृत्तिः एकस्मिन् समये परस्परतो भेद एषामित्यनिवृत्तयः करणविशुद्धिपरिणामा इति अनिवृत्तिकरणसंज्ञा अन्वर्था । द्वितीयादिसमयेषु विशुद्धेरनंतगुणत्वेऽपि समये समये नानाजीवपरिणामाः सदृशा एव । तत्करणप्रथमसमये अन्यदेव स्थितिखंडमन्यदेवानुभागखंडमन्यदेव स्थितिबंधनं च प्रारभते, अपूर्वकरणकालचरमस्थितिखंडानुभागखंडस्थितिबंधानां तच्चरमसमये समाप्तत्वात् ॥ ८३ ॥

आगैं अनिवृत्तिकरणके कार्य कहै हैं—

स० चं—दूसरा अपूर्वकरणविषैं कहे स्थितिखंडादि कार्यविशेष ते तिस अनिवृत्तिकरणविषैं भी जानने । विशेष इतना—इहां समान समयवर्ती नाना जोवके एकसा परिणाम हैं, तातैं नाहीं है निवृत्ति कहिए परस्पर परिणामनिविषैं भेद जिनकैं ते अनिवृत्तिकरण हैं, तातैं समय समय प्रति एक एक परिणाम हो है । बहुरि इहां और ही प्रमाण लीएं स्थितिखंड अनुभागखंड स्थितिबंधका प्रारम्भ हो है, जातैं अपूर्वकरणसम्बन्धी जे स्थितिखंडादिक तिनका ताके अन्त समयविषैं ही समाप्तपना भया ॥ ८३ ॥

अथानिवृत्तिकरणकाले कार्यविशेषं प्ररूपयति—

संखेज्जदिमे सेसे दंसणमोहस्स अंतरं कुणई ।
अण्णं ठिदिरसखंडं अण्णं ठिदिबंधणं तत्थ[1] ॥ ८४ ॥

संख्येये शेषे दर्शनमोहस्यांतरं करोति ।
अन्यत् स्थितिरसखंडमन्यत् स्थितिबंधनं तत्र ॥ ८४ ॥

सं० टी०—अनिवृत्तिकरणकालमन्तर्मुहूर्तमात्रं २ ११ संख्येयरूपैर्भक्त्वा तद्बहुभागान् २ ११ ४/५ पूर्वोक्तस्थितिखंडादिविधानेन नीत्वा शेषतदेकभागे २ ११ १/५ दर्शनमोहस्यांतरविवक्षितस्थित्यायामनिषेकभावं करोत्यनिवृत्तिकरणविशुद्धिपरिणामो जीवः । तस्मिन्नंतरकरणकालप्रथमसमये अन्यदेव स्थितिखंडमन्यदेव रसखंडमन्यदेव स्थितिबन्धनं च प्रारभते, तद्बहुभागचरमसमये प्राक्तनस्थितिखंडादीनां परिसमाप्तत्वात् ॥ ८४ ॥

अब अनिवृत्तिकरणमें कार्यविशेषका कथन करते हैं—

स० चं०—ऐसें स्थितिखंडादिकरि अनिवृत्तिकरणकालका संख्यात भागनिविषैं बहुभाग व्यतीत भएं एक भाग अवशेष रहैं दर्शनमोहका अंतर करै है । विवक्षित केई निषेकनिका सर्व द्रव्यकौं अन्य निषेकनिविषैं निक्षेपणकरि तिनि निषेकनिका जो अभाव करना सो अन्तरकरण कहिए । तहां ताके कालका प्रथम समयविषैं और ही स्थितिखंड अनुभागखंड स्थितिबंधका प्रारंभ हो है ॥ ८४ ॥

विशेष—प्रकृतमें मिथ्यात्व कर्मको उपशमन विधिका निर्देश किया जा रहा है, इसलिए

१. एवं ट्ठिदिखंडयसहस्सेहिं अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु अंतरं करेदि । क० चू०, जयध० भा० १२, पृ० २७२ । पढमसम्मत्तमुप्पादेंतो अंतोमुहुत्तमोहट्टदि । जी० चू०, ध० पु० ६ पृ० २२० ।

उसकी अपेक्षा यहाँ अन्तरकरणके स्वरूप पर प्रकाश डाला जाता है। मिथ्यादृष्टि जीवके अनिवृत्तिकरण कालका बहुभाग जाकर एक भाग शेष रहने पर यह अन्तरकरणकी विधिका प्रारम्भ होता है। स्पष्टीकरण इस प्रकार है—यतः यह मिथ्यात्व गुणस्थानमें उदयवाली प्रकृति है, अतः उसके उदय समयसे लेकर ऊपरके अन्तर्मुहूर्तके कालके जितने समय हों उतने निषेकोंको छोड़कर उनसे ऊपरके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण अन्य निषेकोंका उत्कर्षण कर उनका यथासम्भव उन निषेकोंसे ऊपरके निषेकोंमें और अपकर्षण कर उन निषेकोंसे नीचेके निषेकोंमें निक्षेप कर उनका पूरी तरहसे अभाव करना अन्तरकरण कहलाता है। यहाँ जिन निषेकोंका अभाव किया उनसे नीचेकी स्थितिका नाम प्रथम स्थिति है और ऊपरके निषेकोंका नाम द्वितीय स्थिति है। यह जीव जिस समय अन्तरकरण विधिको प्रारम्भ करता है उस समयसे स्थितिकाण्डकघात अनुभागकाण्डकघात और स्थितिबन्ध ये तीनों कार्य विशेष नये प्रारम्भ होते हैं।

अथांतरकरणकालपरिमाणं प्ररूपयति—

एयट्ठिदिखंडुक्कीरणकाले अंतरस्स णिप्पत्ती।
अंतोमुहुत्तमेत्तं अंतरकरणस्स अद्धाणं[1] ॥ ८५ ॥

एकस्थितिखंडोत्करणकाले अंतरस्थ निष्पत्तिः।
अंतर्मुहूर्तमात्रमंतरकरणस्याध्वा ॥ ८५ ॥

सं० टी०—एकस्थितिखंडोत्करणकाले अंतरकरणस्य समाप्तिर्भवति स चांतरकरणस्याध्वा कालः अंतर्मुहूर्तमात्र एव २ ९। ३
४। ४

अब अन्तरकरण करनेमें लगनेवाले कालका निर्देश करते हैं—

स० चं०—एक स्थितिखंडोत्करण कालविषैं अन्तरकी निष्पत्ति हो है। एक स्थितिकांडकोत्करणका जितना काल तितने कालकरि अंतर करिए है याकौं अंतरकरणकाल कहिए है सो यहु अंतर्मुहूर्तमात्र है ॥ ८५ ॥

अथान्तरायामप्रमाणं तन्निषेकनिक्षेपस्थापनं चाख्याति—

गुणसेढीए सीसं तत्तो संखगुण उवरिमठिदिं च।
हेट्ठुवरिम्हि य आबाहुज्झिय बंधम्हि संछुहदि ॥ ८६ ॥

गुणश्रेण्याः शीर्षं ततः संख्यगुणां उपरितनस्थितिं च।
अधस्तनोपरि चाबाधोज्झित्वा बंधे संछुभति ॥ ८६ ॥

सं० टी०—गुणश्रेण्यायामकथनकाले अपूर्वानिवृत्तिकरणकालद्वयादधिकं यदनिवृत्तिकरणकालसंख्यातैकभागमात्रमित्युक्तं, तदस्मिन् प्रकरणे गुणश्रेणिशीर्षमित्युच्यते २ ९। १। ततः संख्येयगुणा उपरितनस्थितिषु
४

---

१. जा तम्हि ट्ठिदिबंधगद्धा तत्तिएण कालेण अंतरं करेमाणो गुणसेढिणिक्खेवस्स अग्गग्गादो संखेज्जदिभागं खंडेदि। क० चू०, जयध० भा० १२, पृ० २७३। ध० पु० ६, पृ० २३२।

२. गुणसेढिसीसयादो संखेज्जगुणाओ उवरिमट्ठिदीओ खंडेदि, अंतरट्ठं तत्थुक्किणपदेसग्गं विदियट्ठिदीए आबाधूणियाए बंधे उक्कड्डदि, पढमट्ठिदीए च देदि, अंतरट्ठिदीसु हंद णियमा ण देदि त्ति। ध० पु० ६, पृ० २३२। जयध० भा० १२, पृ० २७४।

१ —
निषेकाः २ ७ ७ उभयोप्यंतरायामः २ ७ ७ सोऽप्यंतर्मुहूर्तमात्र एव । शीर्षस्याधो गलितावशेषगुणश्रेण्यायामः
४ ४

अनिवृत्तिकरणकालसंख्यातैकभागमात्रः । सोऽपि शीर्षात्संख्येयगुणः २ ७ ३ । तत्रांतरायामे स्थितान्निषेकानु-
८

त्कीर्य प्रतिसमयमसंख्येयगुणाः फालीर्गृहीत्वा तत्कालबध्यमाने मिथ्यात्वप्रकृतिसमयप्रबद्धे अंतरायामस्याबाधा-वर्जिताधःस्थितिषु उपरितनस्थितिषु च निक्षिपति, अंतरायामसदृशस्थितिषु न निक्षिपतीत्यर्थः । अनादिमिथ्या-दृष्टिर्मिथ्यात्वप्रकृतेरेवांतरं करोति । सादिमिथ्यादृष्टिस्तस्या मिश्रसम्यक्त्वप्रकृत्योरन्तरं करोति । तयोन्तरोत्कीर्ण-द्रव्यमपि तत्कालबध्यमानमिथ्यात्वप्रकृतेरध उपरि च निक्षिपति । अनिवृत्तिकरणसंख्यातैकभागमात्रस्य शेषस्य संख्यातैकभागमात्रांतरकरणकालः २ ७ ३ उपरि तद्बहुभागमात्रो प्रथमस्थितिः २ ७ । ३ । ३ तदुपर्यंतर्मु-
४ । ४ ४ । ४ । ४

हूर्तमात्रोंऽतरायामः २ ७ ७ ॥ ८६ ॥
४ । ४

अब आगे अन्तरायामका प्रमाण और उसमें निषेक रचनाविधिको बतलाते हैं—

स० च०—गुणश्रेणि-आयामविषैं अपूर्व-अनिवृत्तिकरणतैं जो अधिक प्रमाण अनिवृत्तिकरण-का संख्यातवां भागमात्र कह्या था ताका नाम इहां गुणश्रेणिशीर्ष है। सो गुणश्रेणिशीर्षके सर्व निषेक अर यातैं संख्यातगुणा गुणश्रेणिशीर्षके उपरिवर्ती असे उपरितन स्थितिके सर्व निषेक इनि दोऊनिकौं मिलाएं अंतरायाम हो है। एते निषेकनिका अभाव करिए है सो भी अंतर्मुहूर्तमात्र है। इहां शीर्षके नीचैं अनिवृत्तिकरणका अवशेष कालमात्र गलितावशेष गुणश्रेणि-आयाम अनिवृत्ति-करणकालके संख्यातवें भागप्रमाण है सो भी शीर्षतैं संख्यातगुणा जानना। तहां अंतरायामविषैं तिष्ठते जे निषेक तिनिके द्रव्यके समय-समय अनंतगुणा क्रम लीएं जे फालि तिनिकौं ग्रहण करि तिस समय बंधता जो मिथ्यात्व कर्म ताकी स्थितिका आबाधाकाल छोडि अंतरायाम समान निषेकनिके नीचै वा ऊपरि जे निषेक तिनिविषैं निक्षेपण करै है। अंतरायाम समान कालसम्बन्धी जे निषेक तिनविषैं नाहीं निक्षेपण करै है। तहां अनादि मिथ्यादृष्टि जीव तौ मिथ्यात्व ही का अर सादि मिथ्यादृष्टी तीनों दर्शनमोहका अंतर करै है। बहुरि अंतरकरण करनेके कालका प्रथम समयतैं लगाय जो अनिवृत्तिकरणकालका संख्यातवां भागमात्र काल अवशेष रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीएं तहां एक भागमात्र तौ अंतरकरणकाल है अर ताके ऊपरि अवशेष बहुभागमात्र प्रथमस्थितिका काल है। बहुरि ताके ऊपरि जिनि निषेकनिका अभाव कीया सो अंतर्मुहूर्तमात्र अंतरायाम है ॥८६॥

विशेष—यहाँ जितने समयके निषेकोंका अभाव किया जाता है उनको अन्तरायाम संज्ञा है, एक तो यह बात बतलाई गई है और दूसरे अन्तर करते समय उसमें रहनेवाले निषेकोंका अन्तरायामसे नीचेके और ऊपरके किन निषेकोंमें निक्षेप होता है दूसरी यह बात बतलाई गई है। पहले गुणश्रेणिका काल अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके कालसे कुछ अधिक बतला आये हैं, वह अधिक काल ही गुणश्रेणिशीर्ष कहलाता है। गुणश्रेणिशीर्ष सम्बन्धी स्थितिका काल और उससे संख्यातगुणी स्थितिका काल इन दोनोंको मिलाकर जितना काल होता है तत्प्रमाण अन्तरायामका प्रमाण है जो अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है। प्रकृतमें इस अन्तरायाममें रहनेवाले निषेकोंका अभाव किया जाता है, इसलिए इसकी अन्तरायाम संज्ञा है। अब उस अन्तरायामसम्बन्धी निषेकोंका अभाव कर मिथ्यात्वकी किस स्थितिमें निक्षेप करता है इस तथ्यका निर्देश करते हुए प्रकृत गाथामें समुच्चयरूपसे मात्र इतना ही कहा गया है कि नीचे और ऊपर आबाधाको छोड़कर बन्धमें

निक्षेप करता है। किन्तु इसका विशेष खुलासा करते हुए श्रीधवलामें बतलाया है कि अन्तरके लिये ग्रहण किये गये प्रदेश पुंजका अन्तरायामके कालमें बँधनेवाली मिथ्यात्व प्रकृतिमें अर्थात् आबाधाको छोड़कर उसकी द्वितीय स्थितिमें और अन्तरायामसे नीचेकी प्रथम स्थितिमें निक्षेपण करता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृतमें उस समय बँधनेवाली मिथ्यात्व प्रकृतिका आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होकर भी प्रथम स्थिति और अन्तरायामसे बहुत अधिक होता है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि दर्शनमोहनीयके यह उपशमनका कथन अनादि मिथ्यादृष्टिकी अपेक्षा किया जा रहा है। यदि सादि मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक् प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तावाला हो तो वह इन दोनों प्रकृतियोंका अन्तर करते समय एक आवलिमात्र स्थितिसे मिथ्यात्वके अन्तरके समान अन्तर करता है। शेष सब कथन टीकासे जान लेना चाहिए।

अथान्तरकरणसमाप्त्यनन्तरसमयकर्तव्यं प्रतिपादयति—

अंतरकदपढमादो पडिसमयमसंखगुणिदमुवसमदि।
गुणसंकमेण दंसणमोहणियं जाव पढमठिदी[1] ॥ ८७ ॥

अन्तरकृतप्रथमतः प्रतिसमयमसंख्यगुणितमुपशाम्यति।
गुणसंक्रमेण दर्शनमोहनीयं यावत् प्रथमस्थितिः ॥८७॥

सं० टी०—एवमेकस्थितिकांडकोत्करणकालेनांतरकरणं निष्ठाप्यांतरकृतो भवति। अन्तरं कृतं यस्मिन् येन वासौ अंतरकृतः, अंतरकरणकालचरमसमयस्तस्यानंतरसमयः प्रथमस्थितिप्रथमसमयः तत आरभ्य यावत्प्रथमस्थितिचरमसमयस्तावत्प्रतिसमयमसंख्येयगुणितक्रमेण द्वितीयस्थितिस्थितदर्शनमोहनीयद्रव्यं गुणसंक्रमभागहारेण भक्त्वा लब्धफालीरुपशमयति। यद्यप्यधःप्रवृत्तकरणप्रथमसमयादारभ्यायं दर्शनमोहस्योपशमक एव तथापि तत्प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशानामस्मिन्नवसरे निरवशेषतः उपशमक इत्युच्यते ॥ ८७ ॥

अब अन्तकरणविधिके हो जानेके अनन्तर समयसे होनेवाले कर्तव्यका निर्देश करते हैं—

स० चं०—ऐसैं एक स्थितिकांडकोत्करण काल समान कालकरि कीया है अंतर जानैं ऐसा अन्तरकृत भया तिस कालके अनंतरवर्ती जो समय सो प्रथम स्थितिका प्रथम समय है तातैं लगाय ताहीका अंत समय पर्यंत समय समय प्रति असंख्यातगुणा क्रम लीएं जे अंतरायामके उपरिवर्ती निषेक तिनरूप जो द्वितीय स्थिति तीहिंविषैं तिष्ठता जो दर्शनमोह ताके द्रव्यकौं पीठविषैं उक्तप्रमाण जो गुणसंक्रमण भागहार ताका भाग दीएं जो प्रमाण आया तितने द्रव्यका समूहरूप जे फालि तिनकौं उपशमावै है। उदय आदि होनेकौं अयोग्य करना सो उपशम करना जानना। यद्यपि अधःकरण ही तैं यहु जीव दर्शनमोहका उपशमक ही है तथापि तिस दर्शनमोहके प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेशनिका निरवशेषपनैं इहां उपशमक कहिए है ॥ ८७ ॥

विशेष—यहाँ अन्तरकरण विधिके बाद जो उपशमन क्रिया होती है उसका निर्देश किया गया है। चूर्णिसूत्रकारने यहाँसे लेकर इसे उपशामक कहा है सो इसका स्पष्टीकरण करते हुए श्री

१. तदो पहुडि उवसामगो त्ति भण्णइ। क० चू०। जइ वि एसो पुव्वं पि अधापवत्तकरणपढमसमयप्पहुडि उवसामगो चेव तो वि एत्तो पाए विसेसदो चेव उवसामगो होइ त्ति भणिदं होइ।''''अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु संखेज्जदिभागसेसे अंतरं कादूण तदो दंसणमोहणीयस्स पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसाणमुवसामगो होइ त्ति परूवणावलंबणादो। जयध० भा० १२ पृ० २७६। ध० पु० ६, पृ० २३२-२३३।

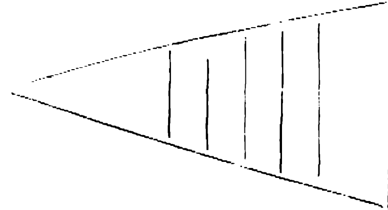
धवलाजीमें बतलाया है कि इस पदको मध्यदीपक करके शिष्योंको प्रतिबोधन करनेके लिये यतिवृषभ आचार्यने उक्त कथन किया है।

अथ दर्शनमोहोपशमनक्रियायां सम्भवद्विशेषनिर्णयार्थमाह—

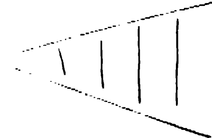
पढमट्ठिदियावलिपडिआवलिसेसेसु णत्थि आगाला।
पडिआगाला मिच्छत्तस्स य गुणसेढिकरणं पि ॥ ८८ ॥

प्रथमस्थितावावलिप्रत्यावलिशेषेषु नास्ति आगालाः।
प्रत्यागाला मिथ्यात्वस्य च गुणश्रेणिकरणमपि ॥ ८८ ॥

सं० टी०—प्रथमस्थितौ आवलिप्रत्यावलिद्वयं उदयावलिद्वितीयावलिद्वयं समयाधिकं यावदवशिष्यते तावदागालप्रत्यागालौ वर्तेते। गुणश्रेणिकरणमपि वर्तते। आवलिद्वये समयाधिके अवशिष्टे आगालप्रत्यागालगुणश्रेणिकरणानि न संति। दर्शनमोहादन्यकर्मणां गुणश्रेणिरस्त्येव केवलं समयाधिकद्वितीयावलिनिषेकानसंख्येयलोकेन भक्त्वा तदेकभागस्योदयावल्यां समयोनावलिद्वित्रिभागमतिस्थाप्याधस्तनत्रिभागे समयाधिके निक्षेपरूपप्रतिसमयोदीरणा वर्तते। द्वितीयस्थितिद्रव्यस्यापकर्षणवशात्प्रथमस्थितावागमनमागालः। प्रथमस्थितिद्रव्यस्योत्कर्षणवशात् द्वितीयस्थितौ गमनं प्रत्यागाल इत्युच्यते। एकस्यामेव प्रत्यावल्यामवशिष्टायां प्रतिसमयोदीरणापि नास्ति, तन्निषेकाणां प्रतिसमयधोगलनस्यैव संभवात्। उपशमविधानं तु प्रथमस्थितिचरमसमयपर्यंतमस्त्येव।



प्रथमफालिद्रव्यं स ƨ १२ – द्वितीयफालिद्रव्यं स ƨ । १२ – ƨ एवं प्रतिसमयमसंख्येयफालिद्रव्यं चरमफालिद्रव्यं—
७ । ख १७ गु, ७ । ख १७ । गु
स ƨ १२ – । ƨ । २ ९ । ३ । ३ चरमफालिद्रव्यस्य
७ । ख । १७ । गु । ४ । ४ । ४



असंख्ययेयगुणकाराः प्रथमस्थितिसमया रूपोना यावंतस्तावंतो भवंतीत्यर्थः ॥ ८८ ॥

अब दर्शनमोहकी उपशमन क्रियामें जो विशेष सम्भव है उसका निर्णय करनेके लिए कहते हैं—

स० चं०—प्रथम स्थितिविषैं आवली प्रत्यावली कहिए उदयावली अर द्वितीयावली एक समय अधिक अवशेष रहै तहाँ आगाल प्रत्यागाल अर मिथ्यात्वकी गुणश्रेणी न हो है। दर्शनमोह विना और

---

१. पढमट्ठिदीदो वि विदियट्ठिदीदो वि आगाल-पडिआगातो ताव जाव आवलि-पडिआवलियाओ सेसाओ त्ति। आवलियपडिआवलियासु सेसासु तदो प्पहुडि मिच्छत्तस्स गुणसेढी णत्थि। सेसाणं कम्माणं गुणसेढी अत्थि। आवलियाए सेसाए मिच्छत्तस्स घादो णत्थि। क० चू०, जयध० भा० १२, पृ० २७६-२७७। ध० पु० ६, पृ० २३३।

कर्मनिकी गुणश्रेणी होय ही है। तहाँ मिथ्यात्वकी उदयावलीविषैं निक्षेपण करनेरूप केवल उदीरणा ही पाइए है सो कहिए हैं—

समय अधिक द्वितीयावलीके निषेकनिके द्रव्यकौं असंख्यात लोकका भाग दीएँ जो प्रमाण आवै तितने द्रव्यकौं उदयावलीके निषेकनिविषैं अंतके समय घाटि आवलीके दोय तीसरा भागमात्र निषेक अतिस्थापन करि नीचेके एक समय अधिक आवलीके त्रिभागमात्र निषेकनिविषैं निक्षेपण करै है। ऐसैं समय समय प्रति उदीरणा पाइए है। द्वितीय स्थितिके निषेकनिके द्रव्यकौं अपकर्षण करि प्रथम स्थितिके निषेकनिविषैं प्राप्त करना ताका नाम आगाल है। अर प्रथम स्थिति निषेकनिके द्रव्यकौं उत्कर्षण करि द्वितीय स्थितिके निषेकनिविषैं प्राप्त करना ताका नाम प्रत्यागाल है। बहुरि तिस प्रथम स्थिति विषैं एक प्रत्यावली ही अवशेष रहैं उदीरणा भी न हो है। तिस प्रत्यावलीके निषेकनिका समय समय प्रति अधोगलन ही है। एक एक समय व्यतीत होतैं एक एक समय निर्जरै है बहुरि उपशमविधान प्रथम स्थितिका अंत पर्यंत है। तहाँ दर्शनमोहके द्रव्यकौं गुणसंक्रम भागहारका भाग दीएँ प्रथम स्थितिका प्रथम समयविषैं उपशम करने योग्य जो प्रथम फालि ताका द्रव्य हो है तातैं असंख्यातगुणा द्वितीय समयसम्बन्धी द्वितीय फालिका द्रव्य हो है ऐसैं क्रमतैं एक घाटि प्रथम स्थितिका समयप्रमाण बार असंख्यातका गुणकार भए अंत फालिका द्रव्य हो है॥ ८८॥

विशेष—प्रथम स्थितिके द्रव्यका उत्कर्षण कर द्वितीय स्थितिमें देना आगाल है और द्वितीय स्थितिके द्रव्यका अपकर्षण कर प्रथम स्थितिमें देना प्रत्यागाल है ये दोनों कार्य आवलि और प्रत्यावलिप्रमाण प्रथम स्थितिके शेष रहनेके पूर्व समय तक ही होते हैं। यहीं तक मिथ्यात्वका द्रव्यका गुणश्रेणिनिक्षेप भी होता है। जब मिथ्यात्वकी प्रथम स्थिति आवलि और प्रत्यावलिप्रमाण शेष रह जाती है तब वहाँसे लेकर ये तीनों कार्य बन्द हो जाते हैं। मात्र अन्य कर्मोंका गुणश्रेणिनिक्षेप होता रहता है। मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके आवलि और प्रत्यावलि प्रमाण शेष रहने पर उसके द्रव्यका गुणश्रेणिनिक्षेप न होनेका कारण यह है कि वहाँसे लेकर द्वितीयावलिके अपकर्षित द्रव्यका उदयावलिमें ही यथानियम निक्षेप होता है। इसलिए वहाँसे लेकर मिथ्यात्वके गुणश्रेणिनिक्षेपका भी निषेध किया है।

अथ प्रथमोपशमसम्यक्त्वाद्यग्रहणकालं तत्कार्यविशेषं च प्रतिरूपयति—

अंतरपढमं पत्ते उवसमणामो हु तत्थ मिच्छत्तं।
ठिदिरसखंडेण विणा उवट्ठाइदूण कुणदि तिधा॥८९॥

अंतरप्रथमं प्राप्ते उपशमनाम हि तत्र मिथ्यात्वम्।
स्थितिरसखंडेन विना उपस्थापयित्वा करोति त्रिधा॥८९॥

---

१. चरिमसमयमिच्छाइट्ठी से काले उवसंतदंसणमोहणीओ। ताधे चेव तिण्णि कम्मंसा उप्पादिदा। क० चू०। अणियट्टिकरणपरिणामेहिं पेलिज्जमाणस्स दंसणमोहणीयस्स जंतेण दलिज्जमाणकोद्दवरासिस्सेव तिण्हं भेदाणमुप्पत्तीए विरोहाभावादो। जयध० भा० १२, पृ० २८०-२८१। ओहट्टेदूण मिच्छत्तं तिण्णि भागं करेदि सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं। पट्खं० चू०। ण च उवसमसम्मत्तकालब्भंतरे अणंताणुबंधीविसंजोयणकिरियाए विणा मिच्छत्तस्स ट्ठिदिघादो वा अणुभागघादो व अत्थि, तधोवदेसाभावा। ध० पु० ६, पृ० २३४।

सं० टी०—अंतरायामप्रथमसमये प्राप्ते सति दर्शनमोहस्यानंतानुबंधिचतुष्टयस्यापि प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशानां निरवशेषोपशमनादौपशमिकं तत्त्वार्थश्रद्धानरूपसम्यग्दर्शनं प्रतिपद्यमानो जीवः प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिनामा भवति। स तत्रांतरायामप्रथमसमये द्वितीयस्थितौ स्थितं मिथ्यात्वप्रकृतिद्रव्यं स्थित्यनुभागकांडकघातं विना अपवर्त्य गुणसंक्रमभागहारेण भक्त्वा त्रिधा करोति मिथ्यात्वमिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिरूपेण परिणमयतीत्यर्थः ॥८९॥

अब प्रथमोशमसम्यक्त्वके ग्रहण करनेके कालका और उसमें होनेवाले कार्यविशेषका कथन करते हैं—

स० चं०—ऐसैं अनिवृत्तिकरण काल समाप्त भएं ताके अनंतरि अंतरायामका प्रथम समयकौं प्राप्त होतैं दर्शनमोह अर अनंतानुबंधीचतुष्क इनिके प्रकृति प्रदेश स्थिति अनुभागनिका समस्तपनैं उदय होने अयोग्यरूप उपशम होनेतैं औपशमिक तत्त्वार्थ श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शनकौं पाइ जीव औपशमिकसम्यग्दृष्टी हो है। तहां प्रथम समयविषैं द्वितीय स्थितिविषैं तिष्ठता मिथ्यात्वरूप द्रव्यकौं स्थितिकांडक अनुभागकांडकका घात विना गुणसंक्रमणका भाग देइ तीन प्रकार परिणमावै है ॥ ८९ ॥

विशेष—प्रथम स्थितिको समाप्त कर इस जीवके अन्तरायाममें प्रवेश करने पर दर्शनमोहनीयकी उपशम संज्ञा हो जाती है। करण परिणामोंके द्वारा निःशक्त किये गये दर्शनमोहनीयके उदयरूप पर्यायके बिना अवस्थित रहनेका नाम उपशम है। यहाँ सर्वोपशम सम्भव नहीं है, क्योंकि दर्शनमोहनीयका उपशम हो जाने पर भी उसका संक्रमण और अपकर्षण पाया जाता है। अतः यहाँसे दर्शनमोहनीयका उपशम करनेवाले जीवकी उपशम सम्यग्दृष्टि संज्ञा हो जाती है। यहींसे लेकर यह जीव मिथ्यात्व प्रकृतिको तीन भागोंमें विभक्त करता है। प्रथम भागका नाम वही रहता है। दूसरे और तीसरे भागको क्रमसे सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृतिमिथ्यात्व कहते हैं। अनन्तानुबन्धी कर्मका उदय प्रारम्भके दो गुणस्थानोंमें ही होता है ऐसा एकान्त नियम है, अतः इस गुणस्थानमें अनुदय रहनेसे उसके द्रव्यको भी उदयमें नहीं दिया जा सकता, इसलिये प्रथमोपशम सम्यक्त्वमें उसका उपशम स्वीकार किया गया है। अनन्तानुबन्धीका अन्तरकरण उपशम नहीं होता।

यहाँ संस्कृत टीकामें दर्शनमोहनीय और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंकी अपेक्षा निरवशेष अर्थात् सब प्रकारसे उपशम कहा है सो इसका यही तात्पर्य है कि इन सातों प्रकृतियोंके प्रकृति आदि चारों प्रकृतमें उदयके अयोग्य रहते हैं। संक्रमण और अपकर्षण होनेमें कोई बाधा नहीं, क्योंकि यहीं मिथ्यात्व प्रकृति तीन भागोंमें विभक्त होती है तथा अनन्तानुबन्धीका अपनी सजातीय प्रकृतिरूपसे संक्रमण हो सकता है तथा अनुदयरूप प्रकृति होनेसे उसका उदयावलिके बाहर उपरितन निषेक तक अपकर्षण भी हो सकता है।

स्थिति और अनुभागको अपेक्षा मिथ्यात्वके द्रव्यका तीनरूप विभाग किस प्रकार होता है इसका निर्देश—

मिच्छत्तमिस्ससम्मसरूवेण य तत्तिधा य दव्वादो।
सत्तीदो य असंखाणंतेण य होंति भजियकमा[1] ॥ ९० ॥

मिथ्यात्वमिश्रसम्यत्वरूपेण च तत्त्रिधा च द्रव्यतः।
शक्तितश्च असंख्यानंतेन च भवंति भजितक्रमाः ॥ ९० ॥

---

१. पढमसमयउवसंतदंसणमोहणीओ मिच्छत्तादो सम्मामिच्छत्ते बहुगं पदेसग्गं देदि। सम्मत्ते असंखेज्जगुणहीणं देदि। क० चू०, जयध० भा० १२, पृ० २८२। मिच्छत्ताणुभागादो सम्मामिच्छत्ताणुभागो अणंतगुणहीणो, तत्तो सम्मत्ताणुभागो अणंतगुणहीणो त्ति पाहुडसुत्ते णिद्दिट्ठत्तादो। ध० पु० ६, पृ० २३५।

सं० टी—गुणसंक्रमभागहारेण तन्मिथ्यात्वद्रव्यं अपवर्त्य विभज्य मिथ्यात्वमिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिरूपेण परिणममानं द्रव्यतोऽसंख्येयभागक्रमेण शक्तितोऽनुभागतोऽनंतभागक्रमेण च परिणमति । तथाहि—

मिथ्यात्वद्रव्यमिदं स ∂ १२—गुणसंक्रमभागहारेण भक्त्वा बहुभागमात्रद्रव्यं मिथ्यात्वप्रकृतिरूपेण
७ । ख । १७ १ ——

तिष्ठति—स ∂ १२ — गु तदेकभागमात्रद्रव्यमिदं स । ∂ । १२ — ∂ अत्राधिकरूपं पृथक्स्थाप्यावशिष्टं
७ । ख । १७ । गु

स । ∂ । १२—। ∂ । ७ । ख । १७ । गु ∂
७ । ख । १७ । गु ∂ १ ——

इदं सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिरूपेण परिणतं पृथक्स्थापितैकरूपमिदं स । ∂ । १२ — । १ सम्यक्त्वप्रकृतिरूपेण परि-
७ । ख । १७ । गु

णतं । अतः कारणादेताः प्रकृतयो द्रव्यतोऽसंख्येयभाजितक्रमा इति सूत्रे सूचितं । अनुभागतः मिथ्यात्वद्रव्यानुभागः—
३ ३

व । ९ । ना संख्यातानुभागकाडकावशिष्टत्वात् । अस्यानंतैकभागमात्रो मिश्रप्रकृत्यनुभागः व । ९ । ना असं-
ख ३ ख ख

ख्यातैकभागमात्रः सम्यक्त्वप्रकृत्यनुभागः व ९ । ना इदमनुभागाल्पबहुत्वमपि सूत्रसूचितमेव ॥ ९० ॥
ख ख ख

स० चं०—मिथ्यात्व मिश्र सम्यक्त्वमोहनीरूपकरि तीन प्रकार हो है सो क्रमतैं द्रव्य अपेक्षा असंख्यातवां भागमात्र अनुभाग अपेक्षा अनंतवां भागमात्र जानने । सोई कहिए है—मिथ्यात्वका परमाणुरूप जो द्रव्य ताकौं गुणसंक्रम भागहारका भाग देइ एक अधिक असंख्यातकरि गुणिए । इतना द्रव्य विना समस्त द्रव्य मिथ्यात्वरूप ही रह्या । अर गुणसंक्रम भागहारकरि भाजित मिथ्यात्व द्रव्यकौं असंख्यात करि गुणिए इतना द्रव्य मिश्रमोहरूप परिणान्या । अर गुणसंक्रम भागहारकरि भाजित मिथ्यात्व द्रव्यकौं एक करि गुणिए इतना द्रव्य सम्यक्त्वमोहरूप परिणम्या तातैं द्रव्य अपेक्षा असंख्यातवां भागका क्रम आया । बहुरि अनुभाग अपेक्षा संख्यात अनुभाग कांडकनिके घातकरि जो मिथ्यात्वका अनुभाग पूर्व अनुभागके अनंतवां भागमात्र अवशेष ताके अनंतवें भाग मिश्रमोहका अनुभाग है । बहुरि याके अनंतवें भागि सम्यक्त्वमोहका अनुभाग है ऐसैं अनुभाग अपेक्षा अनंतवां भागका क्रम आया ॥ ९० ॥

विशेष—प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि जीव उसके प्राप्त होनेके प्रथम समयमें सत्तामें स्थित मिथ्यात्वके द्रव्यके तीन टुकड़े कर मिथ्यात्वके द्रव्यमेंसे जितने प्रदेशपुंजको सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिको देता है, उससे संख्यातगुणा हीन द्रव्य सम्यक् प्रकृतिको देता है । यहाँ उक्त दोनों प्रकृतियोंके द्रव्यको लानेके लिये गुणसंक्रम भागहारका प्रमाण पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वके गुणसंक्रम भागहारसे सम्यक् प्रकृतिका गुणसंक्रम भागहार असंख्यातगुणा है । इस प्रकार इस अल्पबहुत्व विधिसे अन्तर्मुहूर्त कालतक मिथ्यात्वके द्रव्यसे सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृतिको पूरता है । इतनी विशेषता है कि प्रथम समयमें इन दोनों प्रकृतियोंको जितना द्रव्य दिया जाता है, द्वितीयादि समयोंमें उनसे उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे असंख्यातगुणे द्रव्यको देता है । इस प्रकार यह क्रम गुणसंक्रमके अन्तर्मुहूर्त काल तक चालू रहता है । अनुभागकी अपेक्षा प्रथम समयमें मिथ्यात्वका जितना अनुभाग होता है उसका अनन्तवाँ भागप्रमाण सम्याग्मिथ्यात्वको

प्राप्त होता है और उसका भी अनन्तवाँ भागप्रमाण अनुभाग सम्यक्प्रकृतिको प्राप्त होता है। इसी प्रकार द्वितीयादि समयोंमें भी जानना चाहिए।

कहाँ तक गुणसंक्रम होता है और आगे कहाँसे विध्यातसंक्रम होता है इसका निर्देश—

पढमादो गुणसंकमचरिमो त्ति य सम्ममिस्ससम्मिस्से।
अहिगदिणाऽसंखगुणो विज्झादो संकमो तत्तो[1] ॥९१॥

प्रथमात् गुणसंक्रमचरम इति च सम्यग्मिश्रसंमिश्रे।
अहिगतिनासंख्यगुणो विध्यातः संक्रमः ततः ॥९१॥

सं० टी०—अनन्तरप्रथमसमयादारभ्य द्वितीयादिषु समयेषु अन्तर्मुहूर्तमात्रगुणसंक्रमकालचरमसमयपर्यंतेषु प्रतिसमयमहिगत्या असंख्येयगुणं मिथ्यात्वद्रव्यं सम्यक्त्वमिश्रप्रकृतिरूपेण परिणमति। तद्यथा—

प्रथमसमये सम्यक्त्वप्रकृतिद्रव्यं स्तोकं स ∂ । १२ – १ / ७ । ख । १७ । गु ततोऽसंख्येयगुणंमिश्रप्रकृतिद्रव्यं स ∂ । १२ – ∂ / ७ । ख । १७ । गु ततो द्वितीयसमये सम्यक्त्वप्रकृतिद्रव्यमसंख्येयगुणं स ∂ । १२ – ∂ ∂ / ७ । ख । १७ । गु प्रथमसमयगृहीतद्रव्यात् द्वितीयसमयगृहीत-द्रव्यस्य द्विरसंख्येयगुणत्वात्। ततो मिश्रप्रकृतिद्रव्यमसंख्येयगुणं स ∂ । १२ – ∂ ∂ ∂ / ७ । ख । १७ । गु ततस्तृतीयसमये सम्यक्त्वप्रकृतिद्रव्यमसंख्येयगुणं स ∂ । १२ ∂ ∂ ∂ ∂ / ७ । ख । १७ । गु द्वितीयसमयगृहीतद्रव्यात्तृतीयसमयगृहीतद्रव्यस्य द्वि-रसंख्येयगुणत्वात्। ततो मिश्रप्रकृतिद्रव्यमसंख्येयगुणं स ∂ । १२ – ∂ ∂ ∂ ∂ ∂ / ७ । ख । १७ । गु एवं प्रतिसमयं द्विरसंख्येय-गुणितक्रमेण अहिगत्या गत्वा गुणसंक्रमकालचरमसमये सम्यक्त्वप्रकृतिद्रव्यस्य व्येकं पदं चयाभ्यस्तं तत्साद्यं-तधनमिति सूत्रेणानीता असंख्येयगुणकारशलाकाः द्विरूपोनसंख्यातावलिसमयमात्रा द्विगुणद्विरूपाधिका भवंति २ —— स ∂ १२ – ∂ । २ ၇ – २ २ / ७ । ख । १७ । गु मिश्रप्रकृतिद्रव्यस्यासंख्येयगुणकारः तत्सूत्रानीता रूपोनसंख्यातावलिसमयमात्रा द्विगुणरूपाधिका भवंति— १ —— / १^ स ∂ । १२ – ∂ । २ ၇ । २ततः परं गुणसंक्रमकालचरमसमयात्परं विध्यातसंक्रमभागहारेण मिथ्यात्व- ७ । ख । १७ । गु द्रव्यमपवर्त्यांतर्मुहूर्तपर्यंतं सम्यक्त्वमिश्रप्रकृत्योः संक्रमयति तदा विध्यातविशुद्धिकार्यत्वात् विध्यातसंक्रम इत्युच्यते। विध्यातशब्दस्य मन्दार्थत्वेन मन्दविशुद्धिकार्यस्य अंगुला-संख्यातभागमात्रविध्यातसंक्रमभागहारलब्धद्रव्याल्पत्वस्य सुघटत्वात् ॥ ९१ ॥

१. तत्तो परमंगुलस्स असंखेज्जदिभागपडिभागेण संकमेदि सो विज्झादसंकमो णाम। क० चू०, जयध० भा० १२, पृ० २८४। ध० पृ० ६, प० २३६।

स० चं०—अनिवृत्तिकरणके अनंतरि गुणसंक्रम कालका प्रथम समयतैं लगाय अंत समय पर्यंत समय समय सर्पका चालवत् असंख्यातगुणा क्रम लीए मिथ्यात्वका द्रव्य है सो सम्यक्त्व मिश्रप्रकृतिरूप परिणमैं है सोई कहिए है--

पहिले समय सम्यक्त्व प्रकृतिका द्रव्य स्तोक है। तातैं असंख्यातगुणा मिश्रप्रकृतिका द्रव्य है। तातैं असंख्यातगुणा दूसरे समय सम्यक्त्व प्रकृतिका द्रव्य है। तातैं असंख्यातगुणा मिश्रका द्रव्य है। तातैं असंख्यातगुणा तीसरे समय सम्यक्त्व प्रकृतिका द्रव्य है। तातैं असंख्यातगुणा मिश्रका द्रव्य है ऐसैं सर्पकी चालवत् सम्यक्त्व मोहनीतैं मिश्रमोहनीरूप मिश्रमोहनीतैं सम्यक्त्वमोहनीरूप परिणया द्रव्य असंख्यातगुणा क्रमतैं अन्त समयपर्यंत जानना। तहां अंत समयविषैं गुणसक्रमकाल संख्यात आवलीमात्र है तातैं दोय घटाइ ताकौं दूणाकरि तामैं दोय मिलाइए इतनीबार सम्यक्त्व-मोहनीकैं असंख्यातका गुणकार हो है। संख्यात आवलीमैं एक घटाइ ताकौं दूणा करि तामैं एक मिलाइए इतनीबार मिश्रमोहनीकैं असंख्यातका गुणकार हो है। बहुरि गुणसंक्रम कालका अंत समय-पर्यंत मिथ्यात्व विना अन्य कर्मनिकी गुणश्रेणि स्थितिकांडकघात अनुभागकांडकघात पाइए है। ताके अनंतरि तिस गुणसंक्रम भए पीछैं अवशेष रह्या मिथ्यात्व द्रव्य ताकौं विध्यातसंक्रम नामा भागहारका भाग दीए जो प्रमाण आवै तितने द्रव्यकौं सम्यक्त्वमोहनी मिश्रमोहनीरूप परिणमावै है। विध्यात शब्दका अर्थ मंद है सो इहां विशुद्धता मंद भई है तातैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागप्रमाण जो विध्यातसंक्रम ताका भाग दीए स्तोक द्रव्य आया तिसहीकौं तिनिरूप परिण-मावै है॥ ९१॥

अथानुभागकाण्डकोत्करणकालप्रभृतीनां पंचविंशतेः पदानामल्पबहुत्वप्ररूपणां प्रक्रमते—

बिदियकरणादिमादो गुणसंकमपूरणस्स कालो त्ति।
वोच्छं रसखंडुक्कीरणकालादीणमप्पबहु[1]॥ ९२॥

द्वितीयकरणादिमात् गुणसंक्रमपूरणस्य काल इति।
वक्ष्ये रसखंडोत्करणकालादीनामल्पं बहु॥ ९२॥

सं० टी०—अपूर्वकरणप्रथमसमयादारभ्य गुणसंक्रमणपूरणपर्यंतं क्रियमाणानुभागकांडकोत्करणकालादी-नामल्पबहुत्वं वक्ष्यामीति प्रतिज्ञावाक्यमिदम्॥ ९२॥

स० चं०—अपूर्वकरणका प्रथम समयतैं लगाय गुणसंक्रमण कालका पूर्णपना पर्यंत संभवते अनुभागकांडकोत्करण कालादिक तिनिका अल्पबहुत्व कहस्यों॥ ९२॥

अंतिमरसखंडुक्कीरणकालादो दु पढमओ अहिओ।
तत्तो संखेज्जगुणो चरिमट्ठिदिखंडहदिकालो[2]॥ ९३॥

---

१. जाव गुणसंक्रमो ताव मिच्छत्तवज्जाणं कम्माणं ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसेढी च। एदिस्से परूवणाए णिट्ठिदाए इमो दंडओ पणुवीसपडिगो। क० चू०, जयध० भा० १२, पृ० २८५-२८६। ध० पु० ६, पृ० २३६।

२. सव्वत्थोवा उवसामगस्स जं चरिमअणुभागखंडयं तस्स उक्कीरणद्धा। अपुव्वकरणस्स पढमस्स अणुभागखंडयस्स उक्कीरणकालो विसेसाहिओ। चरिमट्ठिदिखंडयउक्कीरणकालो तम्हि चेव ट्ठिदिबंधकालो च दो वि तुल्ला संखेज्जगुणा। क० चू०, जयध० भा० १२, पृ० २८६-२८७।

अंतिमरसखंडोत्करणकालतस्तु प्रथमो अधिकः ।
ततः संख्यातगुणः चरमस्थितिखंडहतिकालः ॥ ९३ ॥

सं० टी०—दर्शनमोहस्य प्रथमस्थितिसमाप्तिसमकालभावि (संपूर्णं भवतीत्यर्थः) शेषकर्मणां गुससंक्रम-चरमसमयसमकालभावि यदनुभागकाडकं तदंत्यानुभागकाडकमित्युच्यते । तस्योत्करणकालोऽतर्मुहूर्तमात्रो वक्ष्य-माणपदेभ्यः सर्वेभ्यः स्तोकः २ २ । १ पदं १ तस्मादपूर्वकरणप्रथमसमयादारब्धानुभागकांडकोत्करणकालो विशे-षाधिकः २ २ ५ । विशेपप्रमाणं पूर्वकालसंख्यातैकभागमात्रं २ २ १ । पद २ । तस्मात् प्रथमानुभागकांडकोत्करण-

४ ४

कालात् चरमस्थितिखंडोत्करणकालः चरमस्थितिबंधकालश्च द्वौ समौ संख्येय ४ गुणो २ २ । ५ । ४ एक-

४

स्थितिकांडकोत्करणकाले संख्यातसहस्रानुभागखंडसंभवात्, पदानि ४ ।। ९३ ॥

अब अनुभागकाण्डकोत्करणकाल आदि पच्चीस पदोंका अल्पबहुत्व बतलाते हैं—

स० चं०—दर्शनमोहका तौ प्रथम स्थितिका अंतविषैं संभवता, अन्य कर्मनिका गुणसंक्रम कालका अंत समयविषैं संभवता, ऐसा जो अनुभागकांडक ताके घात करनेका जो अंतर्मुहूर्तमात्र काल सो अंतका अनुभागखंडोत्करण काल है सो आगें जे कहिए है तिनितैं स्तोक है । १ । यातैं याहीका संख्यातवां भागमात्र विशेषकरि अधिक अपूर्वकरणका प्रथम समयविषैं जाका आरंभ भया ऐसा अनुभागकांडकोत्करणका काल है । २ । यातैं संख्यातगुणा अंतका स्थितिकांडकोत्करण काल । ३ । अर स्थितिबंधापसरण काल ए दोऊ परस्पर समान हैं ४ ॥ ९३ ॥

विशेष—अन्तिम स्थितिकाण्डकोत्करण काल और अन्तिम स्थितिबन्धकालसे प्रकृतमें मिथ्यात्वकी अपेक्षा उसकी प्रथम स्थितिके समाप्त होते समयके उक्त दोनोंको ग्रहण करना चाहिए तथा आयुकर्मको छोड़कर ज्ञानावरणादि शेष कर्मोंकी अपेक्षा गुणसंक्रमकालके समाप्त होते समयके उक्त दोनोंको ग्रहण करना चाहिए । ये दोनों प्रथम अनुभागकाण्डकोत्करणके कालसे संख्यात-गुणे हैं ।

तत्तो पढमो अहिओ पूरणगुणसेढिसीसपढमठिदी ।
संखेण य गुणियकमा उवसमगद्धा विसेसहिया[1] ॥९४॥

ततः प्रथमः अधिकः पूरणगुणश्रेणिशीर्षप्रथमस्थितिः ।
संख्येन च गुणितक्रमा उपशमकाद्धा विशेषाधिकाः ॥९४॥

१. अंतरकरणद्धा तम्हि चेव ट्ठिदिबंधगद्धा च दो वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ । अपुव्वकरणे ट्ठिदि-खंडयउक्कीरणद्धा ट्ठिदिबंधगद्धा च दो वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ । उवसामगो जाव गुणसंकमेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि पूरेदि सो कालो संखेज्जगुणो । पढमसमय-उवसामगस्स गुणसेढिसीसयं संखेज्जगुणं । पढम-ट्ठिदी संखेज्जगुणा । उवसामगद्धा विसेसहिया । वे आवलियाओ समयूणाओ । क० चू०, जयध० भा० १२, पृ० २८७-२९० ।

सं० टी०—ततश्चरमस्थितिकांडकोत्करणकालादंतरकरणकालस्तदात्वस्थितिबंधकालश्चान्योन्यं समानौ विशेषाधिकौ २ १ । ५ । ४ । ५ विशेषः पूर्वकालस्य संख्येयभागः । पदानि ६ । ततः प्रथमः अपूर्वकरण-
४ । ४
प्रथमसमयारब्धस्थितिखंडोत्करणकालस्तदात्वस्थितिबंधकालश्च द्वौ समौ विशेषाधिकौ २ १ । ५ । ४ । ५ । ५
४ ४ ४
विशेषः पूर्वस्य संख्यातैकभागः । पदानि ८ । ततो गुणपूरणकालः संख्येयगुणः २ । १ । ५ । ४ । ५ । ५ । ४
४ । ४ । ४
पदानि ९ । ततो गुणश्रेणिशीर्षः संख्येयगुणः २ १ । ५ । ४ । ५ । ५ । ४ । ४ । पदानि १० । ततः प्रथम-
४ । ४ । ४
स्थित्यायामः संख्येयगुणः— २ १ । ५ । ४ । ५ । ५ । ४ । ४ । ४ । पदानि ११ । ततो दर्शनमोहोपशमनकालो
४ । ४ । ४
विशेषाधिकः—२ १ । ५ । ४ । ५ । ५ । ४ । ४ । ४ । ४ विशेषः समयोनद्व्यावलिमात्रः । पदानि १२ ॥९४॥
४ । ४ । ४

स० चं०—तातैं ताहीका संख्यातवां भागमात्र विशेषकरि अधिक अंतरकरणकाल अर तहाँ अतरकरण करतैं हो संभवता स्थितिबंधापसरण काल ए दोऊ परस्पर समान हैं ।६। तातैं ताहीका संख्यातवां भागमात्र विशेषकरि अधिक अपूर्वकरणके पहिले समय जिनिका प्रारंभ भया ऐसे स्थिति-कांडकोत्करण काल अर स्थितिबंधापसरण काल ए नोऊ परस्पर समान हैं ॥८॥ तातैं संख्यात-गुणा गुणसंक्रमपूरण करनेका काल है ॥९॥ तातैं संख्यातगुणा गुणश्रेणिशीर्ष है ॥१०॥ तातैं संख्यातगुणा प्रथम स्थितिका आयाम है ॥११॥ तातैं समय घाटि दोय आवलीमात्र विशेषकरि अधिक दर्शनमोहके उपशमावनेका काल है ॥१२॥

विशेष—इस अल्पबहुत्वमें दसवाँ स्थान गुणश्रेणिशीर्ष है सो इससे अन्तर सम्बन्धी अन्तिम फालिका पतन होते समय गुणश्रेणिनिक्षेपके अग्राग्रसे संख्यातवें भागका खंडन कर जो फालिके साथ निर्जीर्ण होनेवाला गुणश्रेणिशीर्ष है उसका ग्रहण करना चाहिए। तथा प्रथम जो उपशामक कालको एक समय कम दो आवलि कालप्रमाण अधिक बतलाया है सो उसका कारण यह है कि अन्तिम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि जीव जो मिथ्यात्वका नया बन्ध करता है उसका एक समय तो प्रथम स्थितिके साथ ही गल जाता है, इसलिए प्रथम स्थितिके इस अन्तिम समयको छोड़कर उप-शमसम्यग्दृष्टिके कालके भीतर एक समय कम दो आवलिप्रमाण काल ऊपर जाने तक उस नवक-बन्धकी उपशमना समाप्त होती है, यही कारण है कि प्रथम स्थितिसे उपशमनाका काल उक्त परिमाणमें विशेष अधिक कहा है।

अणियट्टीसंखगुणो णियट्टीगुणसेढियायदं सिद्धं ।
उवसंतद्धा अंतर अवरवराबाह संखगुणियकमा[1] ॥९५॥

---

१. अणियट्टिअद्धा संखेज्जगुणा । अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा । गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ । उवसंत-अद्धा संखेज्जगुणा । अंतरं संखेज्जगुणं । जहण्णिया आबाहा संखेज्जगुणा । उक्कस्सिया आबाहा संखेज्जगुणा । क० चू०, जयध० भा० १२, पृ० २९०-२९३ ।

अनिवृत्तिसंख्यगुणं निवृत्तिगुणश्रेण्यायतं सिद्धम् ।
उपशांताद्धा अंतरमवरवराबाधा संख्यगुणितक्रमा ॥९५॥

सं० टी०—ततो दर्शनमोहोपशमनकालादनिवृत्तिकरणकालः संख्येयगुणः २ ७ । ५ । ४ । ५ । ५ । ४ । ४ । ४
४ । ४ । ४ । ४ । ४ अयमपवर्त्य गुणित एतवान् २ ७ । पदानि १३ । ततः अपूर्वकरणकालः संख्येयगुणः २ । ७ ७ पदानि । १४ । ततो गुणश्रेण्यायामो विशेषाधिकः २ ७ ७ । ४ विशेषोऽनिवृत्तिकरणकालस्तत्संख्येय-
४
भागश्च । निवृत्तिगुणश्रेण्यायतं सिद्धमित्यनेन करणत्रयावतारे 'उदरीदो गुणिदकमा कमेण संखेज्जरूवेणे' त्यनिवृत्तिकरणकालादपूर्वकरणकालस्य संख्येयगुणत्वं सिद्धं । गुणसेढीदीहत्तमपुव्वदुगादो दु साहियं होदीत्यत्र गुणश्रेण्यायामस्यापूर्वकरणकालाद्विशेषाधिकत्वं सिद्धमित्यनुवादः कृतः । पदानि १५ । ततः उपशमसम्यग्दर्शन-कालः संख्येयगुणः २ ७ ७ । ४ । ४ । पदानि १६ । ततोतरायामः संख्येयगुणः २ ७ ७ । ४ । ४ । ४ ।
४ ४
पदानि १७। तस्मान्मिथ्यात्वस्य जघन्याबाधा संख्येयगुणा – २ ७ ७ । ४ । ४ । ४ । ४ । सा प्रथमस्थितिचरम-
४
समये बध्यमानजघन्यस्थितेर्भवति । शेषकर्मणां गुणसंक्रमकालचरमसमये पदानि १८ । ततो मिथ्यात्वस्यो-त्कृष्टाबाधा संख्येयगुणा २ ७ ७ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । सा चापूर्वकरणप्रथमसमयस्थितिबन्धस्य ग्राह्या।
४
पदानि १९ ॥ ९५ ॥

स० चं०—तातैं संख्यातगुणा अनिवृत्तिकरणका काल है ॥१३॥ तातैं संख्यातगुणा अपूर्वकरणका काल है॥१४॥ तातैं अनिवृत्तिकरणका काल अर याका संख्यातवां भागमात्र विशेषकरि अधिक गुणश्रेणी आयाम है॥१५॥ तातैं संख्यातगुणा औपशमिक सम्यक्त्वका काल है॥१६॥ तातैं संख्यातगुणा अंतरायाम है॥१७॥ तातैं संख्यातगुणा जघन्य आबाधा है सो मिथ्यात्वकी तौ पृथक्त्वका काल है सो प्रथम स्थितिका अंत समयविषैं अर अन्य कर्मनिकी गुण-संक्रमण कालका अत समयविषैं जो स्थिति बंधै ताकी आबाधा जाननी ॥१८॥ तातैं संख्यातगुणा उत्कृष्ट आबाधा है सो अपूर्वकरणका प्रथम समयविषैं संभवता जो स्थितिबंध ताकी आबाधा ग्रहण करनी ॥१९॥९५॥

पढमापुव्वजहण्णट्ठिदिखंडमसंखसंगुणं तस्स ।
अवरवरट्ठिदिबंधा तट्ठिदिसत्ता य संखगुणियकमा[1] ॥९६॥[2]
प्रथमापूर्वजघन्यस्थितिखंडमसंख्यसंगुणं तस्य ।
अवरवरस्थितिबंधस्तत्स्थितिसत्त्वं च संख्यगुणितक्रमं ॥९६॥

सं० टी०—प्रथमस्थितौ एकस्थितिखंडोत्करणकाले अंतर्मुहूर्ते अपूर्णे अवशिष्टे यच्चरमस्थितिखण्डं पल्यसंख्यातैकभागमात्रमारब्धं तज्जघन्यस्थितिखंडमुच्यते । तच्च तस्मादुत्कृष्टाबाधात्रालतोऽसंख्येयगुणं

१. "वरमवरट्ठिदिसत्ता एदे य संखगुणियकमा ।" इत्यपि पाठः ।

२. जहण्णयं ट्ठिदिखंडयमसंखेज्जगुणं । उक्कस्सयं ट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं । जहण्णगो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । उक्कस्सगो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं । उक्कस्सयं ट्ठिदिसंत-कम्मं संखेज्जगुणं । एवं पणुवीसदिपडिगो दंडगो सम्मत्तो । क० चू०, जयध० भा० १२, पृ० २९३-२९६ ।

२ । पदानि २० । ततः अपूर्वकरणप्रथमसमयोत्कृष्टस्थितिखंडं संख्येयगुणं सागरोपमपृथक्त्वमात्रं सा ७ । पदानि
ॄ ८
२१ । ततः प्रथमस्थितिचरमसमये मिथ्यात्वस्य जघन्यस्थितिबन्धः संख्येयगुणोऽन्तःकोटीकोटिसागरोपमप्रमितः सा अं को २ । पदानि २२ । तस्मादपूर्वकरणप्रथमसमयोत्कृष्टस्थितिबन्धः संख्येयगुणः सा अं को २ । पदानि २३ ।
४ ४ ४ ४ । ४
ततः प्रथमस्थितिचरमसमये मिथ्यात्वस्य जघन्यस्थितिसत्वं संख्येयगुणं सा अं को २ । पदानि २४। ततोऽपूर्वकरण-
४
प्रथमसमये उत्कृष्टस्थितिसत्त्वं संख्येयगुणं सा अं को २ । पदानि २५ । इति दर्शनमोहोपशमकस्याल्पबहुत्वपदानि पंचविंशतिः कथितानि ।। ९६ ।।

स० चं०—तातैं असंख्यातगुणा जघन्य स्थितिकांडकायाम है सो प्रथम स्थितिविषैं एक स्थितिकांडकोत्करण काल अवशेष रहैं जो अंतका स्थितिखंड पल्यका असंख्यातवां भागप्रमाण प्रारंभ कीया सो ग्रहणा ।।२०।। तातैं संख्यातगुणा अपूर्वकरणका प्रथम समयविषैं संभवता उत्कृष्ट स्थितिकांडकायाम पृथक्त्व सागरप्रमाण है ।।२१।। तातैं संख्यातगुणा अपूर्वकरणका प्रथम समय विषैं प्रथम स्थितिका अंत समयविषैं संभवता मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिविषैं बंध है ।।२२।। तातैं संख्यातगुणा अपूर्वकरणका प्रथम समयविषैं संभवता उत्कृष्ट स्थितिबंध है ।।२३।। तातैं संख्यातगुणा प्रथम स्थितिका अंत समयविषैं संभवता मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्त्व है ।।२४।। तातैं संख्यातगुणा अपूर्वकरणका प्रथम समयविषैं संभवता उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व है ।।२५।। इहां जघन्य स्थितिबंधादि च्यारि पदनिका प्रमाण सामान्यपनैं अंतःकोटाकोटी सागरप्रमाण है। ऐसैं पचीस जायगा अल्पबहुत्व कह्या ।।९६।।

विशेष—इस अल्पबहुत्वमें २०वाँ अल्पबहुत्व जघन्य स्थितिकाण्डकोत्करण काल है, सो इससे मिथ्यात्व कर्मकी अपेक्षा प्रथम स्थितिमें स्तोक काल शेष रहने पर जो मिथ्यात्वसम्बन्धी अन्तिम स्थितिकाण्डकके पतनमें काल लगता है उसका ग्रहण करना चाहिए। तथा अन्य कर्मोंकी अपेक्षा गुणसंक्रम कालके स्तोक शेष रहने पर जो उनके अन्तिम स्थितिकाण्डकके पतनमें काल लगता है उसका ग्रहण करना चाहिए। इसी प्रकार जो २२ वाँ अल्पबहुत्व जघन्य स्थितिबन्ध है, सो इससे मिथ्यात्वकर्मका जो अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिबन्ध होता है उसका ग्रहण करना चाहिए तथा शेष कर्मोंका गुणसंक्रमके अन्तिम समयमें जो जघन्य स्थितिबन्ध होता है उसका ग्रहण करना चाहिए। इसी प्रकार २४ वें जघन्य स्थितिसत्त्वरूप अल्पबहुत्वका विचार करते समय मिथ्यात्वका मिथ्यादृष्टिके अन्तिम समय सम्बन्धी स्थितिसत्त्वको ग्रहण करना चाहिए तथा शेष कर्मोंका गुणसंक्रमकालके अन्तिम समयमें होनेवाले स्थितिसत्त्वको ग्रहण करना चाहिए।

अथ प्रथमोपशमसम्यक्त्वग्रहणसमयस्थितिसत्त्वमाह—

अंतोकोडाकोडी जाहे संखेज्जसायरसहस्से ।
णूणा कम्माण ठिदी ताहे उवसमगुणं गहइ ।।९७।।

अंतःकोटीकोटिर्यदा संख्येयसागरसहस्रेण ।
न्यूना कर्मणां स्थितिः तदा उपशमगुणं गृह्णाति ।।९७।।

सं० टी०—जाहे-यस्मिन् काले प्रथमोपशमसम्यक्त्वं गृह्णाति ताहे-तस्मिन् समये कर्मणां स्थिति-सत्त्वं संख्येयसागरोपमसहस्रोनांतःकोटीकोटिमात्रं भवति सा अं को २ । अथवा यस्मिन् काले अन्तरायामप्रथम-
४
समये कर्मणां स्थितिसत्त्वं संख्येयसागरोपमसहस्रोनांतःकोटीकोटिमात्रं भवति तस्मिन् काले प्रथमोपशमसम्यक्त्व-गुणं गृह्णाति ।। ९७ ।।

अब प्रथमोपशमसम्यक्त्वके ग्रहणके समय जो स्थितिसत्त्व रहता है उसका कथन करते हैं—

स० चं०—जिस अन्तरायामका प्रथम समयविषैं संख्यात हजार सागर करि हीन अंतः कोटाकोटीमात्र स्थितिसत्त्व होइ तिस समयविषैं उपशमसम्यक्त्वगुणकौं ग्रहण करै है ।।९७।।

विशेष—तात्पर्य यह है कि अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जितना स्थितिसत्त्व होता है उससे तीनों करण परिणामोंके द्वारा संख्यात हजार सागरोपम घटकर स्थितिसत्त्व प्रथमोपशम सम्यक्त्वके प्रथम समयमें शेष रहता है।

अथ देशसकलसंयमाभ्यां सह प्रथमोपशमसम्यक्त्वं गृह्णतः कर्मस्थितिसत्त्वविशेषमाह—

तट्ठाणे ठिदिसत्तो आदिमसम्मेण देससयलजमं ।
पडिवज्जमाणगस्स वि संखेज्जगुणेण हीणकमो ।।९८।।

तत्स्थाने स्थितिसत्त्वं आदिमसम्यक्त्वेन देशसकलयमं ।
प्रतिपद्यमानस्य संख्येयगुणेन हीनक्रमं ।।९८।।

सं० टी०—तट्ठाणं अंतरायामप्रथमसमये प्रथमोपशमसम्यक्त्वेन सह देशसंयमं प्रतिपद्यमानस्य पूर्वस्मा-दवस्थितिसत्त्वात् संख्येयगुणहीनं स्थितिसत्त्वं भवति सा अं को २ सम्यक्त्वकरणविशुद्धेः सकाशाद्देशसंयमकरण-
४ । ४
विशुद्धिविशेषस्यानंतगुणत्वेन तत्कार्यस्य स्थितिखंडायामस्य संख्येयगुणत्वोपलंभात् खंडितावशिष्टस्थितिसत्त्वस्य संख्येयगुणहीनत्वं युक्तमिति पुनस्तेनैव प्रथमोपशमसम्यक्त्वेन सह सकलसंयमं प्रतिपद्यमानस्य कर्मणां स्थिति-सत्त्वं पूर्वस्मात्संख्येयगुणहीनं भवति—सा अं को २ । देशसंयमहेतुविशुद्धेः सकाशात् सकलसंयमहेतुविशुद्धेरनंत-
४ । ४ । ४
गुणत्वेन तत्कार्यस्य स्थितिखंडस्य संख्येयगुणत्वात् खंडितावशिष्टस्थितिसत्त्वं ततः संख्येयगुणहीनं सुघट-मेवेति ।। ९८ ।।

अब देशसंयम और सकलसंयमके साथ प्रथमोपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करनेवालेके जितना स्थितिसत्त्व होता है उसका कथन करते हैं—

स० चं०—तिस ही अन्तरायामका प्रथम समयरूप स्थानविषैं जो देशसंयम सहित प्रथमो-पशम सम्यक्त्वकौं ग्रहै तौ ताकैं स्थितिसत्त्व पूर्वोक्ततैं संख्यातगुणा घाटि हो है अर जो सकल-संयमसहित प्रथम सम्यक्त्वकौं ग्रहै प्राप्त होइ ताकैं स्थितिसत्त्व तिसतैं भी संख्यातगुणा घाटि हो है। जातैं अनंतगुणी विशुद्धताके विशेषतैं स्थितिखंडायाम संख्यातगुणा हो है। तिनि करि घटाई हुई अवशेष स्थिति संख्यातवे भाग संभवै है ।।९८।।

१. ध० पु० ६ पृ० २६८ ।

विशेष—प्रथम सम्यक्त्वके अभिमुख हुए मिथ्यादृष्टि जीवके जो तीन करण परिणाम होते हैं उनकी अपेक्षा प्रथमोपशम सम्यक्त्वके साथ संयमासंयमको ग्रहण करनेवाले जीवके तीनों करण परिणाम अनन्तगुणी विशुद्धिको लिये हुए होते हैं, इसलिये केवल प्रथमोपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करनेवाले जीवके आयुकर्मके अतिरिक्त शेष कर्मोंका जितना स्थितिसत्त्व होता है उससे प्रथमोपशमसम्यक्त्व सहित संयमासंयमको ग्रहण करनेवाले जीवके उक्त कर्मोंका स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा हीन होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। सकलसंयमकी अपेक्षा भी इसी विधिसे विचार कर लेना चाहिए।

अथ दर्शनमोहोपशमनकाले संभवद्विशेषमाह—

उवसामगो य सव्वो णिव्वाघादो तहा णिरासाणो।
उवसंते भजियव्वो णिरासणो चेव खीणम्हि[1] ॥९९॥

उपशामकश्च सर्वः निर्व्याघातस्तथा निरासानः।
उपशांते भजितव्यो निरासानश्चैव क्षीणे ॥९९॥

सं० टी०—सर्वः सोपसर्गो निरुपसर्गो वा दर्शनमोहोपशमको निर्व्याघातः विच्छेदमरणलक्षणव्याघातरहित एव तथा निरासादनश्च। तदुपशमनकाले अनंतानुबंध्युदयाभावेन सासादनगुणप्राप्तेरभावात्। उपशांते दर्शनमोहे अंतरायामे वर्तमानः प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिः सासादनगुणप्राप्त्या भक्तव्यो विकल्पनीयः। कस्यचित्प्रथमोपशमसम्यक्त्वकाले एकसमयादिषडावलिकांतावशेषे सासादनगुणत्वसंभवात्। उपशमसम्यक्त्वकाले क्षीणे समाप्ते सति निरासादन एव तदा नियमेन मिथ्यात्वाद्यन्यतमोदयसंभवात् ॥ ९९ ॥

अब दर्शनमोहके उपशमनके समय जो विशेषता सम्भव है उसका कथन करते हैं—

स० चं०—सर्व ही दर्शनमोहका उपशम करनेवाला जीव निर्व्याघात कहिए विच्छेद वा मरण करि रहित है अर निरासादक कहिए सासादनकौं प्राप्त न हो है। बहुरि उपशम भए पीछैं उपशमसम्यक्त्वी होइ तब भजनीय है—कोई जीव सासादनकौं प्राप्त न हो है कोई जीव सासादन हो है। बहुरि क्षीणे कहिए उपशम सम्यक्त्वका काल समाप्त भएं पीछैं सासादन न होई। तहां नियमतैं दर्शनमोहकी तीनि प्रकृतिनिविषैं एकका उदय होय ॥९९॥

अथ सासादनस्वरूपं कालप्रमाणं चाह—

उवसमसम्मत्तद्धा छावलिमेत्ता दु समयमेत्तो त्ति।
अवसिट्ठे आसाणो अणअण्णदरुदयदो होदि[2] ॥१००॥

उपशमसम्यक्त्वाद्धा षडावलिमात्रस्तु समयमात्र इति।
अवशिष्टे आसादनः अनान्यतमोदयतो भवति ॥१००॥

सं० टी०—उपशमसम्यक्त्वस्य काले एकसमयादिषडावलिकांते अवशिष्टे अनंतानुबंधिनामन्यतमोदयेन उपशमसम्यक्त्वं विराध्य मिथ्यात्वमप्राप्य सासादनो नाम भवति, न सम्यग्दृष्टिर्नापि मिथ्यादृष्टिः किंतु सासादनोऽनुभयरूपः। अस्य कालः जघन्येनैकसमयः। उत्कर्षेण षडावलिका इत्यर्थः ॥ १०० ॥

---

१. कसाय०, गा० १००।

२. उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियावसेसाए तदो प्पहुडि सासणगुणपडिवत्तीए केसु वि जीवेसु संभवदंसणादो। जयध० भा० १२, पृ० ३०३।

अब सासादन गुणस्थानके स्वरूप और उसके कालप्रमाणका कथन करते हैं—

स० चं०—उपशम सम्यक्त्वका कालविषैं उत्कृष्ट छह आवलि जघन्य एक समय अवशेष रहैं अनंतानुबंधी क्रोधादिविषैं एक कोई उदय होनेतैं सम्यक्त्वकौं विराधि मिथ्यात्वकौं प्राप्त न होइ बीचिमें सासादन हो है ॥१००॥

अथ सिंहावलोकनन्यायेनोपशमसम्यक्त्वप्रारंभसामग्रीमाह—

सायारे पट्ठवगो णिट्ठवगो मज्झिमो य भजणिज्जो।
जोगे अण्णदरम्हि दु जहण्णए तेउलेस्साए[1] ॥१०१॥

साकारे प्रस्थापको निष्ठापकः मध्यमश्च भजनीयः।
योगे अन्यतरस्मिन् तु जघन्यके तेजोलेश्यायाः ॥१०१॥

सं० टी०—साकारे सविकल्पे उपयोगे ज्ञानोपयोगे वर्तमानो जीवः प्रथमोपशमसम्यक्त्वप्रारंभको भवति। तन्निष्ठापको मध्यमश्च भजनीयो विकल्पनीयः, साकारे वा अनाकारे वा उपयोगे वर्तत इत्यर्थः। अन्यतरस्मिन् योगे मनोवाक्काययोगानामेकस्मिन् योगे वर्तमानः प्रथमोपशमप्रारंभको भवति। तथा—यद्यपि तिर्यग्मनुष्यो वा मंदविशुद्धिस्तथापि तेजोलेश्याया जघन्यांशे वर्तमान एव प्रथमोपशमसम्यक्त्वारंभको भवति। नरकगतौ नियताशुभलेश्यात्वेऽपि कषायाणां मन्दानुभागोदयवशेन तत्त्वार्थश्रद्धानानुगुणकारणपरिणामरूपविशुद्धिविशेषसंभवस्याविरोधात्। देवगतौ सर्वोऽपि शुभलेश्य एव प्रथमोपशमसम्यक्त्वप्रारंभको भवति ॥ १०१ ॥

अब सिंहावलोकनन्यायसे उपशमसम्यक्त्वकी प्रारम्भिक सामग्रीका कथन करते हैं—

स० चं०—साकार जो ज्ञानोपयोग ताकौं होतैं ही जीवकैं प्रथमोशम सम्यक्त्वका प्रारंभ हो है। अर ताका निष्ठापक कहिए सम्पूरण करनेवाला अर मध्य अवस्थावर्ती जीव भजनीय है। साकार अथवा अनाकार उपयोग युक्त होइ। भावार्थ यहु—कै दर्शनोपयोगी होइ कै ज्ञानोपयोगी होइ। बहुरि तीन योगनिविषैं कोई एक योगविषैं वर्तमान प्रथम सम्यक्त्वका प्रारंभ हो है। बहुरि तिर्यंच मनुष्य है सो मंद विशुद्धतायुक्त है तौ भी तेजो लेश्याका जघन्य अंश ही विषैं वर्तमान जीव प्रथम सम्यक्त्वका प्रारंभक हो है। अशुभलेश्याविषैं न हो है। बहुरि यद्यपि नरकविषैं नियमतैं अशुभलेश्या है तथापि तहां जो लेश्या पाइए है तिस लेश्याका मंद उदय होतैं प्रथम सम्यक्त्वका प्रारंभक हो है। बहुरि देवकैं नियमतैं शुभलेश्या है, तहां वर्तमान जीव ताका प्रारंभक हो है॥१०१॥

विशेष—जो मन्द विशुद्धिवाला तिर्यञ्च और मनुष्य प्रथमोपशम सम्यक्त्वका उपार्जन करता है उसके कमसे कम पीतलेश्याका जघन्य अंश अवश्य होता है। केवल पीतलेश्याके जघन्य अंशके रहते हुए ही वह प्रथमोपशम सम्यक्त्वका उपार्जन करता है यह 'जहण्णए तेउलेस्साए' इस पदका अर्थ नहीं है। शेष कथन सुगम है।

१. सागारे पट्ठवगो णिट्ठवगो मज्झिमो य भजियव्वो। जोगे अण्णदरम्मि जहण्णगो तेउलेस्साए। कसाय, गा० ८९, जयध० भा० १२, पृ० ३०६ (अवलोकनीय)।

अथ प्रथमोपशमसम्यक्त्वकालात्परमुदयोग्यकर्मविशेषमाह—

अंतोमुहुत्तमद्धं सव्वोवसमेण होदि उवसंतो ।
तेण परमुदओ खलु तिण्णेकदरस्स कम्मस्स[1] ॥१०२॥

अंतर्मुहूर्तमद्धा सर्वोपशमेन भवति उपशांतः ।
तेन परं उदयः खलु त्रिष्वेकतरस्य कर्मणः ॥१०२॥

सं० टी०—अंतर्मुहूर्तमध्वानं अंतर्मुहूर्तकालपर्यंतं सर्वेषां दर्शनमोहस्य प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशानामुपशमेन उदयायोग्यभावेन जीवः उपशांतः उपशमसम्यग्दृष्टिर्भवति । तेण परं तस्मादुपशमसम्यक्त्वकालात्परं तिसृणां दर्शनमोहप्रकृतीनामेकतमस्य कर्मणः उदयो भवत्येव ॥ १०२ ॥

अब प्रथमोपशमसम्यक्त्वके कालके बाद उदय योग्य कर्मविशेषका कथन करते हैं।—

स० चं०—अंतर्मुहूर्त कालपर्यंत सर्व दर्शनमोहका उपशमकरि उपशम सम्यग्दृष्टि हो है। तातैं पीछैं तीन दर्शनमोहकी प्रकृतिनिविषैं एक कोईका उदय नियमतैं होइ, उपशम सम्यक्त्वके ऊपरि ताका उदय है ॥१०२॥

अथ दर्शनमोहांतरपूरणविधानांतरमाह—

उवसमसम्मत्तुवरिं दंसणमोहं तुरंत पूरेदि ।
उदयिल्लस्सुदयादो सेसाणं उदयबाहिरदो ॥१०३॥

उपशमसम्यक्त्वोपरि दर्शनमोहं त्वरितं पूरयति ।
उदीयमानस्योदयतः शेषाणामुदयबाह्यतः ॥१०३॥

सं० टी०—प्रथमोपशमसम्यक्त्वस्योपरि तत्कालचरमसमयस्योपर्यनंतरसमये दर्शनमोहस्य द्वितीयस्थितिद्रव्यमपकृष्य उदयवतोऽंतरमुदयावलिप्रथमनिषेकादारभ्य उदयहीनस्य उदयावलिवाह्यप्रथमनिषेकादारभ्य निक्षिप्य पूरयति ॥

अब दर्शनमोहके अन्तरको पूरण करनेकी विधि कहते हैं—

स० चं०—उपशम सम्यक्त्वके ऊपरि ताका अंत समयके अनंतरि दर्शनमोहकी अंतरायामके ऊपरिवर्त्ती जो द्वितीय स्थिति ताके निषेकनिका द्रव्यकौं अपकर्षण करि अंतरकौं पूरै है। भावार्थ यहु—उपशम सम्यक्त्वका कालतैं संख्यातगुणा जो अंतरायामके ऊपरिवर्त्ती जो द्वितीय अन्तरायाम तीहिविषैं उपशम सम्यक्त्वका काल प्रमाण निषेकरूप तौ अभावरूप रहे ते उपशम सम्यक्त्वकालविषैं व्यतीत भए। बहुरि अवशेष अंतरायामके निषेक रहे ते अभावरूप थे तिनिविषैं द्वितीय स्थितिका द्रव्य निक्षेपण करि बहुरि तिनिका सद्भाव करै हैं। तहां जिस प्रकृतिका उदय पाइए ताका तौ उदयावलिके प्रथम निषेकतैं लगाय अर उदय हीन प्रकृतिनिका उदयावलीतैं बाह्य निषेकतैं लगाय तिस अपकर्षण कीया द्रव्यकौं अंतरायामविषैं वा द्वितीय स्थितिविषैं निक्षेपण करै है ॥१०३॥

१. कसाय० गा० १०३ ।

ओक्कड्डिदइगिभागं समपट्टीए विसेसहीणकमं ।
सेसासंखाभागे विसेसहीणेण खिवदि सव्वत्थ ॥१०४॥

अपकर्षितैकभागं समपट्ट्या विशेषहीनक्रमम् ।
शेषासंख्यभागे विशेषहीनेन क्षिपति सर्वत्र ॥१०४॥

सं० टी०—प्रथमोपशमसम्यक्त्वकालं परिसमाप्यानंतरसमये तिसृणां दर्शनमोहप्रकृतीनां मध्ये या प्रकृतिरुदययोग्या भवति तत्प्रति द्रव्यं द्वितीयस्थितौ स्थितमपकृष्य उदयावल्यां तद्बाह्यांतरायामे द्वितीयस्थितौ च निक्षिपति । उदयायोग्ययोः शेषप्रकृत्योर्द्रव्यमपकृष्य उदयावलिबाह्यांतरायामद्वितीयस्थित्योरेव निक्षिपति । तद्यथा—

तत्र उदयोग्यं सम्यक्त्वप्रकृतिद्रव्यं स ∂ । १२—इदमपकर्षणभागहारेण खण्डयित्वा एकभागं स ∂ । १२—
७ । ख १७ गु ७ । ख १७ । गु ओ

गृहीत्वा असंख्येयलोकेन खण्डयित्वा तदेकभागं स ∂ । १२— उदयावल्यां 'उदयावलिस्स दव्वं आवलि-
७ । ख । १७ । गु । ओ । ≡ ∂

भजिदे दु, इत्यादि पूर्वोक्तविधानेन विशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत् । अवशिष्टासंख्यातलोकखंडितबहुभागं—

१^

स ∂ । १२ - ≡ ∂ गुणकारस्यैकरूपहीनतामविवक्षित्वा अपवर्तितं स ∂ । १२ अस्माद-
७ । ख । १७ । गु । ओ । ≡ ∂ १^ ७ । ख । १७ । गु । ओ

पकृष्टबहुभागमात्रं नानागुणहानिमात्रद्वितीयस्थितिद्रव्यमिदं स ∂ । १२ –ओ गुणकारस्यैकरूपहीनत्वमविव-
७ । ख । १७ । गु ओ

क्षित्वा अपवर्त्य 'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा' इत्यनेनानीतं तत्प्रथमनिषेकद्रव्यमिदं स ∂ १२ – 'पदहत-
७ । ख । १७ । गु १२

मुखमादिधनमि' त्यनेन संख्यातावलिमात्रेणांतरायामेन गुणितं समपट्टिकाद्रव्यं स ∂ । १२–२ ② पुनर्द्वितीय-
७ । ख । १७ । गु । १२

स्थितिप्रथमगुणहानिप्रथमनिषेकद्रव्यं द्विगुणितं तदधस्तनगुणहानिप्रथमनिषेकद्रव्यं भवति स । ∂ १२ – । २
७ । ख । १७ । गु । १२

अस्मिन् द्विगुणगुणहान्या भक्ते प्रचयो भवति–स ∂ । १२ – २ सैकपदाहतपददलचयहतमुत्तरधनमित्यनेनानीतं
७ । ख । १७ । गु १२ । १६

१— ।

स ∂ । १२ – २ । २ ② । २ ① । चयधनं पूर्वानीतादिधने साधिकं कृत्वा स ∂ । १२ – २ ① एतावद्द्रव्यं
७ । ख । १७ । गु । १२ – १६ । २ ७ । ख । १७ । गु । १२

स ∂ । १२ – अपकृष्टावशिष्टद्रव्याद् गृहीत्वांतरायामप्रथमसमये गच्छमात्रचयैरधिकं
७ । ख । १७ । गु । ओ

द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकमात्रं द्रव्यं निक्षिप्य द्वितीयादिसमयेषु विशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत् । अंतरायामचरमसमये एकचयाधिकं निक्षिपेत् । अपकृष्टावशिष्टद्रव्यं किंचिदूनमपवर्तितं— ।

स । ∂ । १२ – अस्मात्पुनरपि सविशेषसमपट्टिकाद्रव्यमिदं गृहीत्वा स ∂ । १२ – २ ② पूर्व-
७ । ख १७ । गु । ओ ७ । ख । १७ । गु । ओ । १२

वदंतरायामे निक्षिप्य अवशिष्टापकृष्टद्रव्यमिदं स a । १२ — दिवड्ढगुणहाणिभाजिदं पढमा, इत्यनेन
७ । ख । १७ । गृ ओ
द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकादारभ्य सर्वत्र विशेषहीनक्रमेण उपर्यतिस्थापनावलिं मुक्त्वा निक्षिपेत् । उदयायोग्ययोर्मिश्र-मिथ्यात्वप्रकृत्योर्द्रव्यमपकृष्टैकभागमुदयावलिबाह्यांतरायामे द्वितीयस्थितौ च पूर्ववन्निक्षिपेत् । मिश्रस्यांतराया-माधस्तनावल्यां कुतो न दीयते ? इति चेत् न तत्र प्रागपि निषेकसद्भावात् मिथ्यात्वोदयात्तद्द्रव्यमुदयावलि-प्रथमसमयादारभ्य निक्षिपेत् । अनुदययोः शेषयोर्द्रव्यमुदयावल्यां न निक्षिपेत् । सर्वत्र एकगोपुच्छाकारेण विशेष-हीननिक्षेपाभ्युपगमात् ॥ १०४ ॥

स० चं०—तहां उदयवान सम्यक्त्वमोहनी होइ तौ ताका द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ तहां बहुभाग तौ जैसैं थे तैसैं रहे । बहुरि एक भागकौं असंख्यात लोकका भाग देइ तहां एक भाग तौ उदयावलीविषैं देना सो 'उदयावलिस्स दव्वं' इत्यादि सूत्रकरि जैसैं पूर्वै विधान कह्या है तैसैं उदयावलीके निषेकनिविषैं चय घटता क्रमकरि निक्षेपण करना । बहुरि अपकर्षण कीया द्रव्यविषैं अवशेष बहुभागमात्र रह्या ताका नाम अपकृष्टावशिष्ट द्रव्य है । सो तिसविषैं अंतरायामके निषेकनिका अभाव था तिनिका सद्भाव करनेकौं कितना इक द्रव्य तौ तहां देना । सो कितना देना ताका जाननेकौं विधान कहिए है—नाना गुणहानिविषैं तिष्ठता ऐसा जो सम्यक्त्वमोहनीकी द्वितीय स्थितिका द्रव्य ताकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ एक भाग जुदा कीएं अवशेष बहुभाग-मात्र जो द्रव्य रह्या ताकौं 'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा' इस सूत्रकरि साधिक ड्योढ गुणहानि-प्रमाणका भाग दीएं तिस द्वितीय स्थितिका प्रथम निषेक होइ सो याके समान अंतरायामके सर्व निषेक चय रहित स्थापि जोडैं आदि धन होइ सो 'पदहतमुखमादिधनं' इस सूत्र करि अंतरायाम प्रमाण गच्छकरि तिस प्रथम निषेककौं गुणैं अंतरायामके निषेकनिका आदि धन भया । बहुरि द्वितीय स्थितिके नीचैं अंतरायामके निषेक हैं तातैं द्वितीय स्थितिका आदि निषेकतैं चय बधता क्रमरूप अंतरायामकौं निषेक कहिए सो चयका प्रमाण ल्याइए है—द्वितीय स्थितिकी प्रथम गुण-हानि ताका प्रथम निषेक ताके नीचैवर्ती जो अंतरायामसम्बन्धी गुणहानि ताका प्रथम निषेक दूणा प्रमाण लीएं चय कहिए । याकौं दो गुणहानिका भाग दीएं अंतरायामविषैं चयका प्रमाण आवै है । सो 'सैकपदाहतपददलचयहतमुत्तरधनं' इस सूत्रकरि इहां गच्छ अंतरायाममात्र सो एक अधिक गच्छकरि आदि गच्छका आधाकौं गुणि बहुरि चयकरि गुणैं उत्तरधन हो है । सो ऐसैं आदि धन उत्तरधनकौं मिलाएं जो प्रमाण भया तितना द्रव्य तिस अपकृष्टावशिष्ट द्रव्यतैं ग्रहिकरि अंतरा-यामविषैं देना । तहां द्वितीय स्थितिके प्रथम निषेकतैं गच्छमात्र चयनिकरि अधिक द्रव्य तौ अंत-रायामका प्रथम निषेकविषैं देना । इहां गच्छका प्रमाण अंतरायाम अर चयका प्रमाण पूर्वोक्त जानना । बहुरि द्वितीयादि निषेकनिविषैं एक एक चय घटता क्रम लीएं देना । अंत निषेकनिविषैं एक एक चय अधिक देना । ऐसैं दीएं जैसैं क्रम लीएं चहिए तैसैं अंतरायामके निषेकनिका अभाव भया था तिनिका सद्भाव भया । अब अपकृष्टावशिष्ट द्रव्यविषैं इतना द्रव्य दीएं किंचित् ऊन भया तिस अवशेष द्रव्यकौं अंतरायाम वा द्वितीय स्थितिविषैं देना । तहां अंतरायामविषैं तौ पूर्वै जैसैं आदि धन उत्तर धन मिलाइ द्रव्य प्रमाण ल्यावनेका विधान कह्या था तैसैं प्रमाण ल्याइ तितने द्रव्यकौं अंतरायामके निषेकनिविषैं देना । याकौं दीए पीछैं जो अवशेष रह्या ताकौं 'दिवड्ढगुण-हाणिभाजिदे पढमा' इत्यादि विधानकरि द्वितीय स्थितिके नाना गुणहानिसम्बन्धी जे निषेक तिन-विषैं अंतके अतिस्थापनावलीमात्र निषेक छोडि सर्वत्र देना । ऐसैं तौ उदय योग्य सम्यक्त्वमोहनीका

विधान कह्या। बहुरि उदयकौं अयोग्य जे मिश्र मिथ्यात्व प्रकृतिनिका द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ तहां एक भाग उदयावलीतैं बाह्य जो अंतरायाम तीहिंविषैं अर द्वितीय स्थितिविषैं पूर्ववत् निक्षेपण करना। उदयावलीविषैं निक्षेपण न करना। अैसैं ही जो मिश्रमोहनी अथवा मिथ्यात्वमोहनी उदय योग्य होइ, अवशेष दोय उदय योग्य न होंइ तौ तहां यथासम्भव विधान जानना। सर्वत्र जैसैं गायका पूंछ क्रमतैं मोटाई करि हीन हो है तैसैं चय घटता क्रम पाइए है तातैं तहां एक गोपुच्छाकार कहिए ॥१०४॥

अथ सम्यक्त्वप्रकृत्युदयकार्यं प्ररूपयति—

सम्मुदये चलमलिणमगाढं सद्दहदि तच्चायं अत्थं।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥१०५॥
सुत्तादो तं सम्मं दरसिज्जंत जदा ण सद्दहदि।
सो चेव हवदि मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदी[1] ॥१०६॥

सम्यक्त्वोदये चलमलिनमगाढं श्रद्दधाति तत्त्वमर्थम्।
श्रद्दधाति असद्भावमजानन् गुरुनियोगात् ॥१०५॥
सूत्रतस्तं सम्यक् दर्शयंतं यदा न श्रद्दधाति।
स चैव भवति मिथ्यादृष्टिर्जीवः ततः प्रभृति ॥१०६॥

सं० टी०—सम्यक्त्वप्रकृतेरुदये सति जीवस्तत्त्वार्थं चलनमलिनमगाढं च यथा भवति तथा श्रद्दधाति, तत्त्वार्थश्रद्धानस्य चलत्वमलिनत्वागाढत्वानि सम्यक्त्वप्रकृत्युदयकार्याणीत्यर्थः। अयं वेदकसम्यग्दृष्टिः स्वयं विशेषमजानानो गुरोर्वचनाकौशलदुष्टाभिप्रायगृहीतविस्मरणादिनिबंधनान्नियोगादन्यथा व्याख्यानासद्भावं तत्त्वार्थेष्वसद्रूपमपि श्रद्दधाति तथापि सर्वज्ञाज्ञाश्रद्धानात्सम्यग्दृष्टिरेवासौ। पुनः कदाचिदाचार्यांतरेण गणधरादिसूत्रं प्रदर्श्य व्याख्यायमानं सम्यग्रूपं यदा न श्रद्दधाति ततः प्रभृति स एव जीवो मिथ्यादृष्टिर्भवति; आप्तसूत्रार्थाश्रद्धानात् ॥ १०५-१०६ ॥

अब सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयके कार्यकी प्ररूपणा करते हैं—

स० चं०—उपशमसम्यक्त्वका काल पूर्ण भएं पीछैं नियमतैं तीनोंविषैं एक दर्शनमोहकी प्रकृतिका उदय होइ तहां सम्यक्त्वमोहनीका उदय होतैं जीव वेदक सम्यग्दृष्टी हो है। सो चल मलिन अगाढरूप तत्वार्थकौं श्रद्धहै है। सम्यक्त्वमोहनीके उदयतैं श्रद्धानविषैं चलपनौं हो है वा मल लागै है वा शिथिल भाव हो है। बहुरि सो जीव आप विशेष न जानता अज्ञात गुरुके निमित्ततैं असत् श्रद्धान भी करै है। परन्तु यह सर्वज्ञ आज्ञा अैसैं ही है अैसैं जानि श्रद्धान करै है, तातैं सम्यग्दृष्टी है। अर जो कदाचित कोई ज्ञात गुरु सूत्रतैं सम्यक् स्वरूप दिखावै अर हठादिकतैं श्रद्धान न करै तो तिस कालतैं लगाय सो मिथ्यादृष्टी हो है ॥१०५-१०६॥

---

१. सम्माइट्ठी सद्दहदि पवयणं णियमसा दु उवइट्ठं। सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा। मिच्छाइट्ठी णियमा उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि। सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं। कसाय० गा० १०७-१०८।

विशेष--श्री जयधवला भाग १२, पृ० ३२१ में मात्र वेदकसम्यग्दृष्टीका ग्रहण न कर सामान्य सम्यग्दृष्टी पद आया है। उसके अनुसार चाहे वेदकसम्यग्दृष्टि हो या उपशमसम्यग्दृष्टि, यदि गुरु नियोगसे वह अन्यथा श्रद्धा करता है और सूत्रसे सम्यक् अर्थके बतलानेपर भी वह हठाग्रही बना रहता है तो संक्लेशविशेषके बढ़ जानेके कारण वह उस समयसे मिथ्यादृष्टि हो जाता है। यहां किसका कितना काल है इस दृष्टिसे विचार नहीं किया है। किन्तु उक्त दोनों सम्यक्त्वोंमें यह संभव है इस दृष्टिसे वहां सामान्य सम्यग्दृष्टि पदका प्रयोग जान पड़ता है।

अथ मिश्रप्रकृत्युदयकार्यं व्याचष्टे—

मिस्सुदये सम्मिस्सं दहिगुडमिस्सं व तच्चमियरेण।
सद्दहदि एक्कसमये मरणे मिच्छो व अयदो वा ॥१०७॥

मिश्रोदये संमिश्रं दधिगुडमिश्रं वा तत्त्वमितरेण।
श्रद्दधात्येकसमये मरणे मिथ्यो वा असंयतो वा ॥१०७॥

सं० टी०—मिश्रस्य सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतेरुदये सति जीवस्तत्त्वमितरेणातत्त्वेन संमिश्रमेकस्मिन् समये पूर्वगृहीतमिथ्यादेवतादिश्रद्धानमत्यजन् अर्हन् देवतेत्यपि श्रद्दधाति। मिश्रं परस्परप्रदेशानुप्रविष्टं दधिगुडं यथा रसांतरपरिणामं लोके दृश्यते तथा मरणे सोऽन्तर्मुहूर्तमात्रे अवशिष्टे मिथ्यादृष्टिर्वा भवत्यसंयतसम्यग्दृष्टिर्वा भवति ॥ १०७ ॥

अब मिश्रप्रकृतिके उदयके कार्यकी प्ररूपणा करते हैं—

स० चं०—मिश्र जो सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति ताका उदय होतैं जीव मिश्र गुणस्थानवर्त्ती होइ सो एक समयविषैं तत्व अर इतर अतत्व इनिकौं मिश्ररूप श्रद्दहै है। जैसैं दही गुड मिल्या हूवा और ही रसांतरकौं प्राप्त हो है तैसैं इहां सत्य असत्य श्रद्धान मिल्या हूवा जानना। इहां मरण होनेतैं अंतर्मुहूर्त पहिलैं ही नियमतैं मिथ्यादृष्टी वा असंयत हो है। मिश्र विषैं मरण नाहीं है ॥१०७॥

अथ मिथ्यात्वप्रकृत्युदयकार्यं प्ररूपयति—

मिच्छत्तं वेदंतो जीवो विवरीयदंसणं होदि।
ण य धम्मं रोचेदि हु महुरं खु रसं जहा जुरिदो ॥१०८॥

मिथ्यात्वं वेदयन् जीवो विपरीतदर्शनो भवति।
न च धर्मं रोचते हि मधुरं खलु रसं यथा ज्वरितः ॥१०८॥

सं० टी०—मिथ्यात्वप्रकृतेरुदयमनुभवन् जीवो विपरीतदर्शनः अतत्त्वश्रद्धानो मिथ्यादृष्टिर्भवति। स च धर्मं वस्तुस्वभावमनेकांतं दयामूलं वा रत्नत्रयात्मकं मोक्षमार्गं न रोचते नेच्छति। अस्मिन्नर्थे उपमानमाह—यथा ज्वरितः पित्तज्वराक्रांतो मधुररसं स्फुटं न रोचते ॥ १०८ ॥

अब मिथ्यात्वप्रकृतिके उदयका कार्य कहते हैं—

स० चं०—मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयकौं जीव अनुभवता मिथ्यादृष्टी होइ सो विपरीत श्रद्धानी होइ। जैसैं ज्वरवालेकौं मीठा न रुचै तैसैं ताकौं धर्म जो अनेकांत वस्तुका स्वभाव वा रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग सो रुचै नाहीं ऐसैं जानना ॥१०८॥

मिच्छाइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥१०९॥
मिथ्यादृष्टिर्जीवः उपदिष्टं प्रवचनं न श्रद्दधाति ।
श्रद्दधात्यसद्भावमुपदिष्टं वा अनुपदिष्टम् ॥१०९॥

सं० टी०—यो मिथ्यादृष्टिर्जीवः उपदिष्टं प्रवचनं परमागमं न श्रद्धाति नाभ्युपगच्छति किंतूपदिष्टमनुपदिष्टं वा असद्भावमतत्त्वार्थं श्रद्दधाति ॥ १०९ ॥

एवं प्रथमोपशमसम्यक्त्वप्ररूपणः प्रथमोऽधिकारः ॥

स० चं०—मिथ्यादृष्टी जीव जिनेश्वर करि उपदेश्या वचनकौं नाहीं श्रद्धान करै है। बहुरि अन्यकरि उपदेश्या वा न उपदेश्या असद्भाव जो अतत्त्व ताकौं श्रद्धान करै है ॥१०९॥

इति प्रथमोपशमसम्यक्त्वप्ररूपण समाप्त भया ॥ १ ॥

क्षायिकसम्यक्त्वप्ररूपणाअधिकारः ॥ २ ॥

जयंत्यर्हद्विधूतांगसूर्युपाध्यायसाधवः ।
लोकेऽस्मिन् भव्यलोकानां शरणोत्तममंगलं ॥ १ ॥

अथ क्षायिकसम्यग्दर्शनोत्पत्तिसामग्रीं प्ररूपयति—

दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजो मणुसो ।
तित्थयरपायमूले केवलिसुदकेवलीमूले[1] ॥ ११० ॥

दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापकः कर्मभूमिजो मनुष्यः ।
तीर्थंकरपादमूले केवलिश्रुतिकेवलिमूले ॥ ११० ॥

सं० टी०—यो मनुष्यः पंचदशकर्मभूमिसमुत्पन्नः पर्याप्तः तीर्थंकरपादमूले इतरकेवलिश्रुतकेवलिनोः पादमूले वा सन्निहितः स एव दर्शनमोहस्य क्षपणप्रस्थापको भवति । प्रस्थापकः प्रारंभक इत्यर्थः । अन्यत्र दर्शनमोहक्षपणाकारणविशुद्धिविशेषाघटनात् । अधःप्रवृत्तकरणप्रथमसमयादारम्य मिथ्यात्वमिश्रप्रकृत्योः द्रव्यमपवर्त्य सम्यक्त्वप्रकृतौ संक्रम्यते यावत्तावदंतर्मुहूर्तकालं दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापक इत्युच्यते ॥ ११० ॥

अथ क्षायिक सम्यक्त्व प्ररूपणा लिखिए है—

स० चं—जो मनुष्य कर्मभूमिविषैं उपज्या तीर्थंकर वा अन्य केवली वा श्रुतकेवलीके पादमूलविषैं तिष्ठता होइ सोई दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रस्थापक कहिए प्रारंभक हो है जातैं अन्यत्र ऐसा विशुद्ध ज्ञान न हो है । अधःकरणका प्रथम समयस्यों लगाय यावत् मिथ्यात्व मिश्रमोहनीका द्रव्य सम्यक्त्वप्रकृतिरूप होइ संक्रमण करै तावत् अंतर्मुहूर्तकाल पर्यंत दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारंभक कहिए ॥ ११० ॥

विशेष—यहाँ कर्मभूमिज मनुष्यको दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रस्थापक बतलाया गया है सो उससे, जो जीव दुःषमा, अतिदुःषमा, सुषमसुषमा और सुषमा इन चार कालोंमें उत्पन्न हुए मनुष्य हैं वे दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ न कर शेष दो कालोंमें उत्पन्न हुए मनुष्य ही दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ करते हैं; ऐसा आशय यहाँ ग्रहण करना चाहिए । सुषम-दुःषमा कालमें उत्पन्न हुए मनुष्य दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ कैसे करते हैं इस शंकाका समाधान करते हुए धवला पु० ६ पृ० २४७ में बतलाया है कि वर्धनकुमार आदि जीव एकेन्द्रियोंमेंसे आकर मनुष्य हुए थे और उन्होंने उसी भवमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणा की थी । इससे विदित होता है कि सुषम-दुःषमा कालमें उत्पन्न हुए मनुष्य भी दर्शनमोहनीयकी क्षपणा का प्रारम्भ करते हैं ।

---

१. दंसणमोहपट्ठवगो कम्मभूमिजादो दु । णियमा मणुसगदीए णिट्ठवगो चावि सव्वत्थ ॥ क० पा० गा० ११०, जयध० भा० १३, पृ० २ । ध० पु० ६, पृ० २४५ । दंसणमोहणीयं कम्मं खवेदमाढवेंतो कम्हि आढवेदि ? अड्ढाइज्जदीव-समुद्देसु पण्णारसकम्मभूमीसु जम्हि जिणा केवली तित्थयरा तम्हि आढवेदि त्ति । जी० चू० ८, सू० ११, पृ० २४३ ।

णिट्ठवगो तट्ठाणे विमाणभोगावणीसु धम्मे य।
किदकरणिज्जो चदुसु वि गदीसु उप्पज्जदे जम्हा[1] ॥ १११ ॥

निष्ठापकः तत्स्थाने विमानभोगावनिषु घर्मे च।
कृतकृत्यः चतुर्ष्वपि गतिषु उत्पद्यते यस्मात् ॥ १११ ॥

सं० टी०—दर्शनमोहक्षपणाया निष्ठापकः मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वद्रव्यस्य सम्यक्त्वप्रकृतिरूपेण संक्रमणानंतरसमयादारभ्य क्षायिकसम्यक्त्वग्रहणप्रथमसमयात्प्राक् निष्ठापको भवतीत्यर्थः। स च तत्स्थाने दर्शनमोहक्षपणाप्रारंभभवे विमानेषु सौधर्मादिषु कल्पेषु कल्पातीतेषु च भोगभूमितिर्यग्मनुष्येषु च घर्मायां नरकपृथिव्यां च भवति। कुतः ? यस्मात् कारणात् कृतकृत्यवेदकः पूर्वं बद्धायुष्कश्चतसृष्वपि गतिषु उत्पद्यते तस्मात्कारणात्तत्रोत्पन्नो दर्शनमोहक्षपणं निष्ठापयतीत्यर्थः ॥ १११ ॥

स० चं०—तिस प्रारंभक कालके अनंतर समयवर्ती समयतैं लगाय क्षायिक सम्यक्त्व ग्रहण समयतैं पहिले निष्ठापक हो है। सो जहाँ प्रारंभ कीया था तहाँ ही वा सौधर्मादिक कल्प वा कल्पातीतविषैं वा भोगभूमिया मनुष्य तिर्यंचविषैं वा घर्मा नाम नरक पृथ्वीविषैं भी निष्ठापक हो है, जातैं बद्धायु कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि मरि च्यारथो गतिविषै उपजै है तहां निष्ठापन करै सो कथन आगैं होयगा ॥ १११ ॥

विशेष—मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय कर कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि होनेके वाद यह जीव दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका निष्ठापक कहलाता है। वह पहले जिस गतिकी आयुका बन्ध करता है उसके अनुसार उस गतिमें जन्म लेकर भी दर्शनमोहनीयकी क्षपणाको पूरा करता है।

अथ पूर्वमनंतानुबंधिविसंयोजनां प्ररूपयति—

पुव्वं तियरणविहिणा अणं खु अणियट्टिकरणचरिमम्हि।
उदयावलिबाहिरगं ठिदिं विसंजोजदे णियमा[2] ॥ ११२ ॥

पूर्वं त्रिकरणविधिना अनंतं खलु अनिवृत्तिकरणचरमे।
उदयावलिबाह्यां स्थितिं विसंयोजयति नियमात् ॥ ११२ ॥

सं० टी०—पूर्वमादौ त्रिकरणविधिना अनंतानुबंधिनः क्रोधमानमायालोभान् उदयावलिं मुक्त्वा तद्बाह्योपरितनस्थितिस्थितान् सर्वान् विसंयोजयन् अनिवृत्तिकरणचरमसमये निरवशेषं विसंयोजयति द्वादशकषायनोकषायस्वरूपेण संक्रामयति। तथाहि—

असंयतसम्यग्दृष्टिर्देशसंयतः प्रमत्तसंयतः अप्रमत्तसंयतो वा वेदकसम्यक्त्वः अधःप्रवृत्तकरणकालं प्रथमोपशमसम्यक्त्वग्रहणकालोक्तविधिना प्रतिसमयमनंतगुणविशुद्ध्या वर्धमानः परिसमाप्य तदनंतरसमये गुणश्रेणिगुणसंक्रमस्थितिकांडकानुभागकांडकघातानपूर्वकरणपरिणामैः प्रवर्तयति। तत्र प्रथमसम्यक्त्वोत्पत्तौ गुणश्रेणिद्रव्याद्देशसंयतगुणश्रेणिद्रव्यमसंख्येयगुणं। तस्मात्सकलसंयतगुणश्रेणिद्रव्यमसंख्येयगुणं। तस्मादसंख्येयगुणद्रव्यमपकृष्याय-

१. णिट्ठवगो पुण चदुसु वि गदीसु णिट्ठवेदि। जी० चू० ८, सू० १२, ध० पु० ६, पृ० २४७।

२. तत्थ ताव दंसणमोहणीयं खवेंतो पढममणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोएदि। अधापवत्तापुव्व-अणियट्टिकरणाणि काऊण। ध० पु० ६, पृ० २४८। जयध० भा० १३, पृ० १२।

मनंतानुबंधिविसंयोजको गुणश्रेणिं करोति। गुणश्रेण्यायामः पूर्ववदेवापूर्वानिवृत्तिकरणकालद्वयात्साधिकोऽपि संयतगुणश्रेण्यायामात् संख्येयगुणहीनः, समयं प्रति गलितावशेषश्च। अनुभागकांडकायामः पूर्वस्मादनंतगुणः। स्थितिकांडकायामश्च पूर्वस्मात्संख्येयगुणः, गुणसंक्रमद्रव्यं च पूर्वस्मादसंख्येयगुणं। गुणसंक्रमस्तु अनंतानुबंधिनामेव नान्येषां कर्मणां। एवं संख्यातसहस्रैः स्थितिखंडैः स्थितिबंधैरनुभागखंडैश्चापूर्वकरणकालं परिसमाप्य तदनंतरसमये अनिवृत्तिकरणं प्रविशयति ॥ ११२ ॥

अब सर्वप्रथम अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजनाका कथन करते हैं—

स० चं०—दर्शनमोहक्षपणाके पहले तीन करण करि अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभनिके उदयावलीतैं बाह्य जे सर्व निषेक तिनकौं विसंयोजन करता अनिवृत्तिकरणका अंत समयविषैं नियमतैं विसंयोजन करै है, बारह कषाय नव नोकषायरूप परिणमावै है। सोइ कहिए है—

असंयत वा देशसंयत वा प्रमत्त वा अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सो पहिलैं अधःकरण करै ताका विधान प्रथमोपशम सम्यक्त्व ग्रहणविषैं कह्या तैसैं जानना। तहां समय-समय अनंतगुणी विशुद्धताकरि बधता ताकौं समाप्त करि अपूर्वकरण कौं प्राप्त होइ तहां गुणश्रेणि गुणसंक्रमण स्थितिकांडकघात अनुभागकांडकघात ए च्यारि कार्य होइ तहां प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिसंबंधी गुणश्रेणिका द्रव्यतैं देशसंयतका अर तातैं सकलसंयतका अर तातैं इस अनंतानुबंधी विसंयोजनका गुणश्रेणिके अर्थि अपकर्षण कीया द्रव्य क्रमतैं असंख्यातगुणा है अर तिनके गुणश्रेणि आयामका प्रमाण क्रमतैं संख्यातगुणा घाटि है। सो अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरणके कालतैं साधिक गलितावशेषरूप जानना। बहुरि इहां अनुभागकांडक-आयाम पूर्वतैं अनंतगुणा है। बहुरि स्थितिकांडक-आयाम पूर्वतैं संख्यातगुणा है। बहुरि गुणसंक्रमण द्रव्य है सो पूर्वतैं असंख्यातगुणा है। इहां गुणसंक्रमण अनंतानुबंधीनिका ही है औरनिका नाहीं है ऐसा जानना। ऐसैं संख्यात हजार स्थितिखंड वा स्थितिबंध वा अनुभागखंडनिकरि अपूर्वकरणकौं समाप्तकरि अनिवृत्तिकरणकौं प्राप्त हो है ॥ ११२ ॥

विशेष—जो वेदकसम्यग्दृष्टि कर्मभूमिज मनुष्य केवली और श्रुतकेवलीके पादमूलमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ करता है वह इससे पूर्व अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करता है। किन्तु यह चतुर्थादि गुणस्थानोंमें उदयवाली प्रकृति नहीं है, इसलिये उदयावलिको छोड़कर शेष समस्त सत्त्वकी बारह कषाय और नौ नोकषायरूपसे विसंयोजना करता है। तथा उदयावलिमें प्रविष्ट हुए द्रव्यका स्तिवुक संक्रम द्वारा उदयवाली प्रकृतिमें संक्रमण करता है। विशेष स्पष्टीकरण मूल संस्कृत व हिन्दी टीकामें किया ही है। इतना और जानना चाहिए कि जो वेदक सम्यग्दृष्टि जीव नरकसे निकल कर तीर्थंकर होते हैं वे स्वयं मुनिपद अंगीकार कर जिनपदसंज्ञाके अधिकारी हो जाते हैं, अतः वे किसी अन्य केवली या श्रुतकेवलीके पादमूलमें उपस्थित हुए बिना स्वयं दर्शनमोहनीयकी क्षपणा कर लेते हैं।

अथानिवृत्तिकरणकाले क्रियमाणं कार्यविशेषमाह—

अणियट्टीअद्धाए अणस्स चत्तारि होंति पव्वाणि।
सायरलक्खपुधत्तं पल्लं दूरावकिट्टि उच्छिट्ठं[1] ॥ ११३ ॥

---

१. जयध. भा० १३, पृ० २००। ध. पु० ६, पृ० २५१।

अनिवृत्त्यद्धायां अनंतस्य चत्वारि भवंति पर्वाणि।
सागरलक्षपृथक्त्वं पल्यं दूरापकृष्टिरुच्छिष्टम् ॥ ११३ ॥

सं० टी०—अनिवृत्तिकरणप्रथमसमये अनंतानुबंधिनां स्थितिसत्त्वं सागरोपमलक्षपृथक्त्वं जातं। अपूर्वकरणकृतस्थितिखंडबाहुल्येनांतःकोटीकोटिसागरोपमसत्त्वस्य संख्यातगुणहान्या तदा तत्प्रमाणसंभवात्। शेषकर्मणां स्थितिसत्त्वमंतःकोटीकोटिसागरोपमप्रमाणमेव। इदमनंतानुबंधिनां प्रथमं स्थितिसत्त्वस्य पर्व। पुनः स्थितिखंडसहस्रेषु पल्यसंख्यातैकभागमात्रायामेषु गतेषु अनिवृत्तिकरणकालस्य संख्यातैकभागेऽवशिष्टे अनंतानुबंधिनां स्थितिसत्त्वमसंज्ञिस्थितिबंधसमं सागरोपमसहस्रप्रमितं भवति। पुनः पल्यसंख्यातैकभागमात्रायामेषु स्थितिखंडसहस्रेषु गतेषु चतुरिंद्रियस्थितिबन्धसमं सागरोपमशतमात्रं भवति। पुनस्तावदायामेषु स्थितिखंडसहस्रेषु गतेषु त्रींदियस्थितिबन्धसमं पंचाशत्सागरोपमप्रमितं तेषां स्थितिसत्त्वं भवति। पुनस्तावदायामेषु स्थितिखंडसहस्रेषु गतेषु द्वींद्रियस्थितिबन्धसमं पंचविंशतिसागरोपममात्रं तेषां स्थितिसत्त्वं। पुनस्तावदायामेषु स्थितिखंडसहस्रेषु गतेषु एकेंद्रियस्थितिबन्धसममेकसागरोपमप्रमितं तेषां स्थितिसत्त्वं भवति। पुनस्तावदायामेषु स्थितिखंडसहस्रेषु गतेषु पल्यमात्रमनंतानुबंधिनां स्थितिसत्त्वं भवति। इदं द्वितीयं पर्व। पुनः पल्यसंख्यातबहुभागमात्रायामेषु स्थितिखंडसहस्रेषु गतेषु दूरापकृष्टिसंज्ञं तेषां स्थितिसत्त्वं भवति तच्च पल्यसंख्यातैकभागमात्रं प

५।५।५।५

इदं तृतीयं पर्व। पुनः पल्यासंख्यातबहुभागमात्रायामेषु स्थितिखंडसहस्रेषु गतेषु अनन्तानुबंधिनां स्थितिसत्त्वमावलिमात्रमवशिष्यते तदुच्छिष्टावलिसंज्ञं। इदं चतुर्थं पर्व। एवमनंतानुबन्धिनां स्थितिसत्त्वे सागरोपमलक्षणपृथक्त्वं पल्यं दूरापकृष्टिरुच्छिष्टावलिरिति चत्वारि पर्वाणि भवंति ॥ ११३ ॥

अब अनिवृत्तिकरणके कालमें किये जानेवाले कार्यविशेषोंका कथन करते हैं—

स० चं०—अनिवृत्तिकरणका कालविषैं अनंतानुबंधीका जो स्थितिसत्व ताके च्यारि पर्व हो हैं। स्थिति घटनेकी मर्यादा करि च्यारि विभाग हो हैं। तहां पहले समय पृथक्त्वलक्ष सागरप्रमाण स्थितिसत्व हो है जातैं अंतःकोटाकोटी स्थितिसत्व था सो अपूर्वकरणविषैं स्थितिखंडनिकरि घटाएं इतना अवशेष रहै है। अनंतानुबंधी बिना अन्य कर्मनिका स्थितिसत्व इहां अंतःकोटाकोटी सागर ही जानना। यहु प्रथम पर्व भया। बहुरि पीछैं संख्यात हजार स्थितिखंड भएं क्रमतैं असंज्ञी पंचेंद्री चौंद्री तेंद्री बेंद्री एकेंद्री बंध समान हजार सागर अर सौ सागर अर पचास सागर अर एक सागर स्थितिसत्व हो है। बहुरि संख्यात हजार स्थितिखंड भएं पल्यमात्र स्थितिसत्व हो है। इहां इन स्थितिखंडनिका आयाम जो एक एक स्थितिखंडविषैं स्थितिसत्व घटनेका प्रमाण सो पल्यका संख्यातवां भागमात्र जानना। यहु दूसरा पर्व भया। बहुरि पल्यकौं संख्यतका भाग दीजिए तहां एक भाग बिना बहुभागमात्र आयाम करि युक्त अैसा हजारौं स्थितिखंड भएं दूरापकृष्टि है नाम जाका अैसा पल्यका संख्यातवां भागमात्र स्थितिसत्व हो है। यहु तीसरा पर्व भया। बहुरि पल्यकौं असंख्यातका भाग दीएं तहां एक भाग बिना बहुभाग मात्र आयाम धरैं अैसैं हजारौं स्थितिखंड भएं उच्छिष्टावली है नाम जाका अैसा आवली मात्र स्थितिसत्व अवशेष रहै है। यहु चौथा पर्व भया। अैसैं ए च्यारि पर्व जानने ॥ ११३ ॥

विशेष—इस प्रकरणमें श्रीधवला और जयधवलामें ऐसा स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है कि अनिवृत्तिकरणके प्रारम्भमें अनन्तानुबन्धियोंका स्थितिसत्त्व कितना रहता है, परन्तु उक्त गाथामें यह स्पष्ट बतलाया गया है कि अनिवृत्तिकरणके प्रारम्भमें उक्त प्रकृतियोंका स्थितिसत्त्व सागरोप-

मलक्षपृथक्त्वप्रमाण पाया जाता है। इससे ज्ञात होता है कि उक्त प्रकृतियोंका यह स्थितिसत्त्व प्रथम स्थितिकाण्डकके पतनके पूर्व प्रथम समयसे लेकर उक्त काण्डकके पतनके अन्तिम समय तक पाया जाता है। इसको प्रकृतमें प्रथम पर्व कहा गया है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

आगे प्रथमादि तीन पर्वोंमें क्रमसे स्थितिकाण्डकायामका प्रमाण बतलाते हैं—

पल्लस्स संखभागो संखा भागा असंखगा भागा।
ठिदिखंडा होंति कमे अणस्स पव्वादु पव्वो त्ति[1] ॥ ११४ ॥

पल्यस्य संख्यभागः संख्या भागा असंख्यका भागाः।
स्थितिखंडा भवंति क्रमेण अनंतस्य पर्वात् पर्वान्तं ॥ ११४ ॥

सं० टी०—अनंतानुबंधिनां स्थितिसत्त्वस्य प्रथमपर्वणः आरभ्य द्वितीयपर्वपर्यंतं पल्यसंख्यातैकभागः स्थितिखंडायामो भवति। द्वितीयपर्वणः आरभ्य तृतीयपर्वपर्यंतं पल्यसंख्यातबहुभागमात्रः स्थितिखंडायामः। तृतीयपर्वणः आरभ्य चतुर्थपपर्वयंतं पल्यासंख्यातबहुभागमात्रः स्थितिखंडायामः ॥ ११४ ॥

स० चं०—अनंतानुबंधीका स्थितिसत्त्वके पहले पर्वतैं दूसरे पर्वपर्यंत अर दूसरेतैं तीसरे पर्यंत अर तीसरेतैं चौथे पर्यंत जे स्थितिकांडक हो हैं तिनिका आयाम क्रमतैं पल्यका संख्यातवां भाग अर पल्यका संख्यात बहुभाग अर पल्यका असंख्यात बहुभागमात्र है सो कथन कीया ही है ॥ ११४ ॥

आगे दो गाथाओं द्वारा उन्हीं पर्वोंका क्रमसे खुलासा करते हुए उनमें विशेषताका निर्देश करते हैं—

अणियट्टीसंखेज्जाभागेसु गदेसु अणगठिदिसत्तो।
उदधिसहस्सं तत्तो वियले य समं तु पल्लादी ॥ ११५ ॥

अनिवृत्तिसंख्यातभागेषु गतेषु अनंतगस्थितिसत्त्वं।
उदधिसहस्रं ततो विकले च समं तु पल्यादि ॥ ११५ ॥

सं० टी०—अनिवृत्तिकरणकालस्य प्रथमसमयादारभ्भ संख्यातबहुभागेषु गतेषु अनंतानुबंधिनां स्थितिसत्त्वं क्वचित्सागरोपमसहस्रं। ततो विकलत्रयैकेंद्रियस्थितिबंधसमं। ततः पल्यादि भवति। आदिशब्दात् दूरापकृष्टिरुच्छिष्टावलिश्च गृह्यते प्रतिपर्व संख्यातसहस्रस्थितिखंडवशात् तत्स्थितिहानिसंभवात् ॥ ११५ ॥

सं० चं—अनिवृत्तिकरणके कालकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग द्रव्य व्यतीत भएं एक भाग अवशेष रहैं अनंतानुबंधीका स्थितिसत्व कहीं हजार सागरमात्र, पीछैं विकलेंद्रीका बंध समान, पीछैं पल्य अर आदि शब्दतैं दूरापकृष्टि अर आवली मात्र हो है ॥ ११५ ॥

उवहिसहस्सं तु सयं पण्णं पणवीसमेक्कयं चेव।
वियलचउक्के एगे मिच्छुक्कस्सट्ठिदी होदि ॥ ११६ ॥

उदधिसहस्रं तु शतं पंचाशत् पंचविंशतिरेकं चैव।
विकलचतुष्के एकस्मिन् मिथ्योत्कृष्टस्थितिर्भवति ॥ ११६ ॥

---

१. ध० पु० ६, पृ० २५१–२५२। जयध० भा० १३, पृ० २००।

सं० टी०—असंज्ञिपंचेंद्रियश्चतुरिंद्रियस्त्रींद्रियो द्वींद्रियश्च विकलचतुष्कं, तस्मिन्नेकेंद्रिये च यथाक्रमं सहस्रशतपंचाशत्पंचविंशत्येकसागरोपमप्रमितो मिथ्यात्वोत्कृष्टो स्थितिबंधो भवति। एवमनंतानुबंधिनां द्रव्यं

स a । १२ — गुणश्रेण्या अपकृष्टमधो निक्षिप्य स्थितिकांडकद्रव्यं प्र फ इ   लब्ध कां २   प्र
७ । ख । १७   प कां प २   कां
                               २ १   १

फ स a १२ – इ कां २   ल स a । १२ – गुणसंक्रमभागहारेण भक्त्वा लब्धफालीः प्रतिसमयमसंख्येय-
७ । ख १७   ७ । ख । १७ । २

गुणाः द्वादशकषायनोकषायेषु संक्रमय्य अनिवृत्तिकरणचरमसमये चरमकांडकफालिद्रव्यमुच्छिष्टावलिमात्रनिषेकवर्जितं विसंयोजयति। उच्छिष्टावलिद्रव्यं च प्रतिसमयमेकैकनिषेकरूपेणावलिकाले विसंयोज्यते ॥ ११६ ॥

स० चं०—विकलचतुष्क कहिए असंज्ञी पंचेंद्री चौंद्री तेंद्री बेंद्री अर एकेंद्री इनिकैं मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिबंध क्रमतैं हजार अर सौ अर पचास अर पचीस अर एक सागरप्रमाण हो है। इन समान स्थितिसत्त्व अनंतानुबंधीका हो हो है। सो कथन कीया हो है। बहुरि अनंतानुबंधीका द्रव्य ताकौं गुणश्रेणिकरि जो नीचले निषेकनिविषैं प्राप्त कीया अर स्थितिकांडककरि घटाई हुई स्थितिके निषेक अवशेष स्थितिके निषेकनिविषैं प्राप्त कीए बहुरि गुणसंक्रमकरि तिस द्रव्यकौं गुणसंक्रमण भागहारका भाग दीएं जो प्रमाण तिस प्रमाणमात्र द्रव्यका समूहरूप प्रथम फालि है अर तातैं समय समय प्रति असंख्यातगुणा द्रव्यरूप द्वितीयादि फालि है तिनकौं विसंयोजन करै ऐसैं अनिवृत्तिकरणका अंत समयविषैं उच्छिष्टावलीमात्र निषेक रहित अंत कांडकका अंत फालिका द्रव्यकौं विसंयोजन करै। बहुरि उच्छिष्टावलीमात्र निषेकनिका द्रव्यकौं एक एक समयविषैं एक एक निषेकनिकौं विसंयोजन करै है। इनिके परमाणूनिकौं बारह कषाय नव नोकषायरूप परिणमाय अभाव करनेका नाम विसंयोजन है। ऐसैं अनंतानुबंधीके विसंयोजनका विधान कह्या ॥ ११६ ॥

विशेष—अनिवृत्तिकरणमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कके स्थितिसत्त्वकी उत्तरोत्तर हानि होते हुए अन्तमें उच्छिष्टावलिप्रमाण स्थिति किस क्रमसे रह जाती है इसका स्पष्ट निर्देश तो मूलमें और उसकी टीकामें किया ही है। यहाँ इतना विशेष जानना कि अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अन्तरकरण नहीं होता, क्योंकि दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकी उपशमनाके समय तथा चारित्रमोहनीयकी क्षपणाके समय ही अन्तरकरण क्रिया सम्भव है, अन्यत्र नहीं।

अथ विसंयोजितानंतानुबंधिकषायचतुष्टयस्योत्तरकालकर्तव्यमाह –

अंतोमुहुत्तकालं विस्समिय[1] पुणो वि तिकरणं करिय।
अणियट्टीए मिच्छं मिस्सं सम्मं कमेण णासेइ ॥ ११७ ॥

अंतर्मुहूर्तकालं विश्रम्य पुनरपि त्रिकरणं कृत्वा।
अनिवृत्तौ मिथ्यात्वं मिश्रं सम्यक्त्वं क्रमेण नाशयति ॥ ११७ ॥

सं० टी०—पूर्वोक्तक्रमेण विसंयोजितानुबंधिक्रोधमानमायालोभकषायो जीवोऽन्तर्मुहूर्तकालं विश्रम्य क्रियांतरमकृत्वा स्वस्थानस्थितो भूत्वेत्यर्थः, पुनरपि त्रिकरणान् कृत्वा अनिवृत्तिकरणकाले मिथ्यात्वप्रकृतिं मिश्रप्रकृतिं सम्यक्त्वप्रकृतिं च क्रमेण नाशयति, वक्ष्यमाणप्रकारेण क्षपयतीत्यर्थः। तथाहि—

१. तदो अणंताणुबंधी बिसंजोइदे अंतोमुहुत्तमधापवत्तो जादो। क० चू०, जयध० भा० १३ पृ० २०१।

अनंतानुबंधिविसंयोजनानंतरमन्तर्मुहूर्तकालपर्यंतं विशुद्धचतिशयाभावादसंयतसम्यग्दृष्टिर्वा देशसंयतो वा प्रमत्तसंयतो वा अप्रमत्तसंयतो वा स्वस्थानस्थितो भूत्वा पुनर्दर्शनमोहक्षपणाभिमुखः सन् प्रतिसमयमनंतगुणवृद्धया विशुद्धिमापूर्य दर्शनमोहोपशमनोक्तप्रकारेणाधःप्रवृत्तकरणं कृत्वा अपूर्वकरणप्रथमसमये गुणश्रेणिनिर्जिरां कर्तुं प्रारभते। अनंतानुबंधिविसंयोजकस्य गुणश्रेणिकरणार्थमपकृष्टद्रव्यादसंख्येयगुणं द्रव्यमपकृष्य तद्गुणश्रेण्यायामात्संख्येयगुणहीनगुणश्रेण्यायामे तात्कालिकापूर्वानिवृत्तिकरणकालद्वयात्साधिके निक्षिपति। सम्यक्त्वोत्पत्त्यादिकरणत्रयकालादुत्तरोत्तरकरणत्रयकालस्य संख्यातगुणहीनत्वात् तदा अन्यदेव स्थितिखंडमन्यदेव स्थितिबंधनं पल्यसंख्यातैकभागहीनं प्रारभते मिथ्यात्वमिश्रद्रव्ययोर्गुणसंक्रमं च करोति। अपूर्वकरणप्रथमसमये जघन्यं स्थितिसत्त्वमंतःकोटीकोटिसागरोपमप्रमितं पूर्वस्मात् संख्येयगुणहीनं। तत्रैवोत्कृष्टं स्थितिसत्त्वं जघन्यात्संख्येयगुणं। तथाहि—

[1]एको जीवः पूर्वमुपशमश्रेणिमारुह्य तत्र कर्मणां स्थितिसत्त्वं बहुशः खंडयित्वा ततोऽवतीर्याविलंबितमेव दर्शनमोहक्षपणायां प्रवृत्तस्तस्य कर्मस्थितिसत्त्वं जघन्यं भवति। तस्तूपशमश्रेणिमनारुह्य दर्शनमोहक्षपणायां प्रवृत्तस्तस्य कर्मस्थितिसत्त्वं तस्मात्संख्येयगुणं भवति। तत्र जघन्यस्थितिसत्त्वस्य स्थितिकांडकायामः पल्यसंख्यातभागमात्रः। उत्कृष्टस्थितिसत्त्वस्य स्थितिकांडकायामः सागरोपमपृथक्त्वमात्रः[2], स्थितिकांडकानां स्थित्यनुसारित्वेन प्रवृत्तेः। एवंविधैः संख्यातसहस्रस्थितिकांडकघातैः ततः संख्येयगुणानुभागकांडकघातैः प्रतिसमयमसंख्येयगुणद्रव्यगुणश्रेणिनिर्जरया गुणसंक्रमविधानेन वापूर्वकरणचरमसमयं प्राप्तः, तत्र कर्मणां स्थितिसत्त्वं तत्प्रथमसमयस्थितिसत्त्वात् संख्येयगुणहीनं भवति। दर्शनमोहोपशमने प्रतिपादितो विशेषः सर्वोप्यत्रानुक्तोऽपि द्रष्टव्यः॥ ११७॥

अब विसंयोजनाको प्राप्त अनन्तानुबन्धीके विशेष कार्यका कथन करते हैं—

स० चं०—अनंतानुबंधीका विसंयोजन कीएं पीछैं अंतर्मुहूर्तकाल विश्राम करि अन्य क्रिया न करि तहाँ पीछैं बहुरि तीन करणनि करि अनिवृत्तिकरणका कालविषैं मिथ्यात्व मिश्र सम्यक्त्वमोहनीकौं क्रमतैं नष्ट करै है। सोई कहिए है—

दर्शनमोहकी क्षपणाके सन्मुख होत संता जीव समय समय अनंतगुणी विशुद्धता युक्त होइ। दर्शनमोहका उपशमनविषैं जैसैं विधान कह्या तैसैं अधःप्रवृत्तकरणकरि पीछैं अपूर्वकरणकौं प्राप्त भया। तहाँ प्रथम समय ही गुणश्रेणिका प्रारंभ भया। याके अर्थि अपकर्षण कीया द्रव्य है सो अनंतानुबंधी विसंयोजनवालेका गुणश्रेणि द्रव्यतैं असंख्यातगुणा है अर गुणश्रेणि-आयाम इहां ताके गुणश्रेणि-आयामतैं संख्यातगुणा घाटि है अपूर्वानिवृत्तिकरण कालतैं साधिक जानना। जातैं सम्यक्त्वोत्पत्तिविषैं जे तीन करण हो हैं तिनतैं उत्तरोत्तर तीन करणनिका काल संख्यातगुणा घाटि है। तहाँ पर्व स्थितिखंडादिक तैं घटता अन्य ही स्थितिखंड वा अनुभागखंडका प्रारंभ हो है अर अन्य ही स्थितिबंध पल्यका संख्यातवां भाग घटता प्रारंभ हो है। बहुरि मिथ्यात्व अर मिश्रमोहनीके द्रव्यका गुणसंक्रमण करै है। सम्यक्त्वमोहनीरूप परिणमावै है। बहुरि अपूर्वकरणका समयविषैं पूर्वतैं संख्यातगुणा घाटि ऐसा अंतःकोटाकोटी सागरप्रमाण जघन्य स्थितिसत्व है। यातैं उत्कृष्ट

१. क० चू०, जयध० भा० १३, पृ० २५–३०।

२. अपुव्वकरणस्स पढमसमए जहण्णगेण कम्मेण उवट्ठिदस्स ट्ठिदिखंडमं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो, उक्कस्सेण उवट्ठिदस्स सागरोवमपुधत्तं। क० चू०, जयध० भा० १३, पृ० ३१।

स्थितिसत्व संख्यातगुणा है। जातैं कोई जीव उपशमश्रेणि चढि तहां बहुत स्थितिखंडनकरि तहांतैं ऊपरि पीछैं शीघ्र ही दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारंभ करै है ताकैं जघन्य स्थितिसत्व हो है। अन्य कोई जीव श्रेणी न चढ्या होइ ताकैं उत्कृष्ट स्थितिसत्व है। तहाँ अघन्य स्थितिसत्वका स्थितिकांड-कायाम पल्यके संख्यातवे भागमात्र है। उत्कृष्ट स्थितिसत्वका पृथक्त्वसागरप्रमाण है। जातैं स्थितिके अनुसारि स्थितिकांडक हो है। ऐसैं संख्यात हजार स्थितिकांडक घातनिकरि अर तातैं संख्यातगुणे अनुभागकांडक घातनिकरि अर समय समय असंख्यातगुणा द्रव्यकी गुणश्रेणीनिर्जरा करि अर गुण-संक्रम विधानकरि अपूर्वकरणके अंत समयकौं प्राप्त भया तहाँ कर्मनिका स्थिति-अनुभागसत्व प्रथम समयके तिस स्थितिसत्वतैं संख्यातगुणा घाटि हो है। और भी दर्शनमोहका उपशम विधानविषैं जो प्ररूपण कीया है सो इहां भी यथासंभव जानना ॥ ११७ ॥

विशेष—दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाले जीवोंकी सत्त्वस्थितिमें सदृशता और विसदृ-शता किस प्रकार सम्भव है इसका चूर्णिसूत्रोंके आधारसे श्री जयधवला भाग १३ पृ० २५ से ३० तक विशेष खुलासा किया गया है। यथा—

(१) कोई एक जीव मध्यकालमें मिश्रगुणस्थानको प्राप्त कर उसके पूर्व और अनन्तर सब मिलाकर दो छयासठ सागरोपमकाल तक वेदकसम्यक्त्वके साथ रहनेके बाद दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ करता है और दूसरा जीव दो छयासठ सागरोपमकाल तक परिभ्रमण किये बिना ही वेदकसम्यग्दर्शनपूर्वक दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ करता है। इस प्रकार दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ करनेवाले इन दोनों जीवोंकी सत्त्वस्थितिमें अपूर्वकरणके प्रथम समयमें विसदृशता पाई जाती है, क्योंकि प्रथम जीवके स्थितिसत्कर्मसे दूसरे जीवका स्थितिसत्कर्म दो छयासठ सागरोपमकालके समय प्रमाण निषेकोंकी अपेक्षा विशेष अधिक होता है। इस विधिसे एक समय अधिक आदिसे लेकर दो छयासठ सागरोपमप्रमाणकालके भीतर जितने सत्त्वस्थितिविकल्प सम्भव हों वे सब यहाँ ग्रहण कर लेने चाहिए। और इसीलिए अपूर्व-करणमें यथासम्भव स्थितिकाण्डकायाममें भी विसदृशता बन जाती है।

(२) अथवा एक जीव अन्तर्मुहूर्त पहले उपशमश्रेणि पर चढ़ा और दूसरा जीव अन्तर्मुहूर्त बाद उपशमश्रेणि पर चढ़ा। अनन्तर उन दोनोंने एक साथ दर्शनमोहनीयकी क्षपणा की। तो इस प्रकार भी अपूर्वकरणके प्रथम समयमें उन दोनोंके स्थितिसत्कर्ममें विषमता बन जानेसे स्थिति-काण्डकायाममें भी विसदृशता बन जाती है, क्योंकि प्रकृतमें प्रथम जीवके स्थितिसत्कर्मसे दूसरे जीवका स्थितिसत्कर्म अन्तर्मुहूर्त निषेकप्रमाण अधिक देखा जाता है।

यह तो एक जीवके स्थितिसत्कर्मसे दूसरे जीवका स्थितिसत्कर्म विशेष अधिक कैसे होता है इसका विचार है। आगे एक जीवके स्थितिसत्कर्मसे दूसरे जीवका स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा कैसे होता है इसका खुलासा करते हैं—

(३) एक जीव कषायोंका उपशम करनेके बाद उतर कर दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करता है और दूसरा जीव उपशमश्रेणि पर आरोहण न कर दर्शनमोहनीयको क्षपणा करता है तो अपूर्व-करणके प्रथम समयमें इस दूसरे जीवके स्थितिसत्कर्मसे प्रथम जीवका स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा होता है, क्योंकि इस दूसरे जीवने उपशमश्रेणिपर चढ़कर स्थितिसत्कर्मका घात कर उसे संख्यातवें भागप्रमाण नहीं किया है। इसलिए इस दूसरे जोवका स्थितिकाण्डकायाम प्रथम जोवके स्थितिकाण्डकायामसे संख्यातगुणा होता है।

अथानिवृत्तिकरणं प्रविष्टस्य कार्यविशेषमाह—

अणियट्टिकरणपढमे दंसणमोहस्स सेसगाण ठिदी।
सायरलक्खपुधत्तं कोडीलक्खगपुधत्तं च[1] ॥ ११८ ॥

अनिवृत्तिकरणप्रथमे दर्शनमोहस्य शेषकानां स्थितिः।
सागरलक्षपृथक्त्वं कोटिलक्षकपृथक्त्वं च ॥ ११८ ॥

सं० टी०—अनिवृत्तिकरणप्रथमसमये दर्शनमोहस्य स्थितिसत्त्वं सागरोपमलक्षपृथक्त्वं। इदं प्रथमं पर्व। पृथक्त्वशब्दोऽत्र बहुत्ववाची, अंतःकोटीत्यर्थः। शेषकर्मणां स्थितिसत्त्वं कोटीलक्षपृथक्त्वं अंतःकोटीकोटीत्यर्थः, अपूर्वकरणकृतसंख्यातसहस्रस्थितिकांडकघातवशादेवंविधस्थितिसत्त्वसंभवात्। अत्र सर्वेषां जीवानां विशुद्धिपरिणामसादृश्येन जघन्योत्कृष्टविकल्पं बिना स्थितिसत्त्वमेकादृशमेव भवति। अतः परं दर्शनमोहस्य पल्यस्थितिपर्यंतं पल्यसंख्यातैकभागमात्रं स्थितिकांडकं भवति ॥ ११८ ॥

अब अनिवृत्तिकरणमें प्रविष्ट हुए जीवके कार्यविशेषको कहते हैं—

स० चं०—अनिवृत्तिकरणका प्रथम समयविषैं दर्शनमोहका तौ स्थितिसत्व पृथक्त्व लक्ष सागरप्रमाण है। इहाँ पृथक्त्व नाम बहुतका है सो कोटिके नीचैं अैसा अंतःकोटी प्रमाण जानना। बहुरि अवशेष कर्मनिका स्थितिसत्व पृथक्त्व लक्ष कोटि सागरप्रमाण है सो कोडाकोडीके नीचैं अैसा अंतःकोटाकोटी जानना। अपूर्वकरणविषैं संख्यात हजार स्थितिकांडकघात कीएं पीछैं इतना अवशेष स्थितिसत्व रहै है। इहां सर्व जीवनिके परिणाम समान हैं तातैं स्थितिसत्वविषैं जघन्य उत्कृष्ट भेद नाही है। बहुरि यातैं परैं दर्शनमोहकी स्थिति पल्यप्रमाण रहै तहाँ पर्यंत स्थितिकांडकायामका प्रमाण पल्यके संख्यातवे भागमात्र जानना ॥ ११८ ॥

अथानिवृत्तिकरणकाले क्रियमाणं कार्यविशेषमाह—

अमणंठिदिसत्तादो पुधत्तमेत्ते पुधत्तमेत्ते य।
ठिदिखंडेय हवंति हु चउ ति वि एयक्ख पल्लठिदी[2] ॥ ११९ ॥

अमनःस्थितिसत्त्वतः पृथक्त्वमात्रं पृथक्त्वमात्रं च।
स्थितिकांडके भवंति हि चतुस्त्रि द्वि एकाक्षे पल्यस्थितिः ॥ ११९ ॥

सं० टी०—सागरोपमलक्षपृथक्त्वमात्राद्दर्शनमोहस्य अनिवृत्तिकरणप्रथमसमयभाविनः स्थितिसत्त्वात् संख्यातसहस्रस्थितिकांडकघातवशेनासंज्ञिस्थितिबंधसमं सागरोपमसहस्रमात्रं स्थितिसत्त्वं भवति। ततो बहुषु स्थितिकांडकेषु गतेषु चतुरिंद्रियस्थितिबन्धसमं सागरोपमशतमात्रं स्थितिसत्त्वं भवति। ततो बहुषु स्थितिखंडेषु

---

१. अणियट्टिकरणस्स पढमसमए दंसणमोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं कोडिसदसहस्सपुधत्तमंतो कोडीए। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं कोडिसदसहस्सपुधत्तमंतो कोडाकोडीए। क० चू०, जयध० भा० १३ पृ० ४१। ध० पु० ६, पृ० २५४।

२. तदो ट्ठिदिखंडयसहस्सेहिं अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु असण्णिट्ठिदिबंधेण दंसणमोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं समगं। तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण चउरिंदियबंधेण ट्ठिदिसंतकम्मं समगं। तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण तीइंदियबंधेण ट्ठिदिसंतकम्मं समगं। तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण बीइंदियबंधेण ट्ठिदिसंतकम्मं समगं। तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण एइंदियबंधेण ट्ठिदिसंतकम्मं समगं। तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण पलिदोवमट्ठिदिगं जादं दंसणमोहणीयट्ठिदिसंतकम्मं। क० चू०, जयध० भा० १३, पृ० ४१–४३।

पतितेषु त्रींद्रियस्थितिबंधसमं पंचाशत्सागरोपमप्रमितं स्थितिसत्त्वं भवति। ततो बहुषु स्थितिखण्डेषु गतेषु द्वींद्रियस्थितिबन्धसमं पंचविंशतिसागरोपममात्रं स्थितिसत्त्वं भवति। ततो बहुषु स्थितिखंडेषु पतितेषु एकेंद्रिय-स्थितिबंधसमं एकसागरोपमप्रमितं स्थितिसत्त्वं भवति। ततो बहुषु स्थितिखंडेषु पतितेषु पल्यमात्रं स्थितिसत्त्वं भवति। इदं द्वितीयं पर्व ॥ ११९ ॥

अनिवृत्तिकरणके कालमें किये जानेवाले कार्यविशेषोंको कहते हैं—

स० चं०—दर्शनमोहकी पृथक्त्व लक्ष सागरप्रमाण स्थिति प्रथम समयविषैं संभवै है तातैं परैं संख्यात हजार कांडक भएं असंज्ञीका बंध समान हजार सागर स्थितिसत्व रहै है। ताके पीछैं बहुत २ स्थितिकांडक भएं क्रमतैं चौंद्री तेंद्री बेंद्री एकेंद्रीका स्थितिबंधके समान सौ सागर पचास सागर पचीस सागर एक सागर स्थितिसत्व हो है। पीछैं बहुत स्थितिखंड भएं पल्यप्रमाण स्थितिसत्व हो है। ऐसैं यहु दूसरा पर्व भया ॥ ११९॥

पल्लट्ठिदिदो उवरिं संखेज्जसहस्समेत्तठिदिखंडे।
दूरावकिट्टिसण्णिदठिदिसत्तं होदि णियमेण ॥ १२० ॥

पल्यस्थितित उपरि संख्येयसहस्रमात्रस्थितिखंडे।
दूरापकृष्टिसंज्ञितं स्थितिसत्त्वं भवति नियमेन ॥ १२० ॥

सं० टी०—तस्मात्पल्यमात्रस्थितिसत्त्वादुपर्युपरि पल्यसंख्यातबहुभागमात्रायामेषु संख्यातसहस्रस्थिति-कांडकेषु निपतितेषु दूरापकृष्टिसंज्ञं स्थितिसत्त्वं नियमेन भवति। का दूरापकृष्टिर्नामेति चेदुच्यते—पल्ये उत्कृष्टसंख्यातेन भक्ते यल्लब्धं तस्मादेकैकहान्या जघन्यपरिमितासंख्यातेन भक्ते पल्ये यल्लब्धं तस्मादेकोत्तर-वृद्धया यावंतो विकल्पास्तावन्तो दूरापकृष्टिभेदाः, तेषु कश्चिदेव विकल्पो जिनदृष्टभावोऽस्मिन्नवसरे दूरापकृष्टि-संज्ञितो वेदितव्यः। इदं तृतीयं पर्व ॥ १२० ॥

स० चं०—तातैं ऊपरि पल्यकौं संख्यातका भाग दीएं तहां बहुभागमात्र आयाम धरैं ऐसे संख्यात हजार स्थितिखंड भएं दूरापकृष्टिनामा स्थितिसत्व नियमकरि हो है। पल्यकौं उत्कृष्ट संख्यातका भाग दीएं जो प्रमाण आवै तातैं एक एक घटता क्रमकरि पल्यकौं जघन्य परीता-संख्यातका भाग दीएं जो प्रमाण आवै तहां पर्यंत दूरापकृष्टिके सर्व भेद जानने। तिनिविषैं इहां कोई संभवता भेद जानना। यहु तीसरा पर्व भया ॥ १२० ॥

विशेष—दूरापकृष्टि किसे कहते हैं इस प्रश्नका समाधान करते हुए श्री जयधवलामें बत-लाया है कि पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्कर्मसे अत्यन्त दूर उतरकर सबसे जघन्य पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण जो स्थितिसत्कर्म शेष रहता है उसकी दूरापकृष्टि संज्ञा है, क्योंकि पल्यो-

---

१. का दूरावकिट्टी णाम ? वुच्चदे—जत्तो ट्ठिदिसंतकम्मावसेसादो संखेज्जे भागे घेतूण ट्ठिदिखंडए घादिज्जमाणे घादिदसेसं णियमा पलिदोनमस्स असंखेज्जदिभागपमाणं होदूण चिट्ठदि तं सव्वपच्छिमं पलि-दोवमस्स संखेज्जदिभागपमाणं ट्ठिदिसंतकम्मं दूरावकिट्टि त्ति भण्णदे। जयध० भा० १३, पृ० ४५।

२. पलिदोवमे ओलुत्ते तदो पलिदोवमस्स संखेज्जा भागा आगाइदा। तदो सेसस्स संखेज्जा भागा आगाइदा। एवं ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु दूरावकिट्टी पलिदोवमस्स संखेज्जे भागे ट्ठिदिसंतकम्मे सेसे तदो सेसस्स असंखेज्जा भागा आगाइदा। क० चू० जयध० भा० १३ पृ० ४३—४४।

पमप्रमाण स्थितिसत्कर्मसे नीचे अत्यन्त दूर तक अपकर्षित की गई होनेसे और अत्यंन्त कृश-अल्प होनेसे यह स्थिति दूरापकृष्टि कहलाती है। अथवा इसका स्थितिकाण्डक अत्यन्त दूर तक अपकर्षित किया जाता है, इसलिये इसका नाम दूरापकृष्टि है। यहाँ से लेकर असंख्यात बहुभागोंको ग्रहण कर स्थितिकाण्डकघात किया जाता है, इसलिये भी यह दूरापकृष्टि कहलाती है; यह उक्त कथनका तात्पर्य है। वह दूरापकृष्टि एक विकल्पवाली है या अनेक विकल्पवाली है ? इस विषयमें कितने ही आचार्य कहते हैं कि वह एक विकल्पवाली है, क्योंकि वह पल्योपमके भेदरहित सबसे जघन्य संख्यातवें भागप्रमाण है, और वह निर्विकल्प पल्योपमका संख्यातवाँ भाग, पल्योपमको जघन्य परीतासंख्यातसे भाजित कर वहाँ जो भाग प्राप्त हो उसमें एक मिलाने पर जितना प्रमाण हो तत्प्रमाण है, क्योंकि इसमेंसे एक भी स्थितिविशेषकी हानि होनेपर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण विकल्पकी उत्पत्ति होती है। किन्तु वीरसेनस्वामीका निर्णय है कि वह अनेक विकल्पवाली है। इसका विशेष खुलासा जयधवला भाग १३, पृ० ४६–४७ में किया गया है।

पल्लस्स संखभागं तस्स पमाणं तदो असंखेज्जं।
भागपमाणे खंडे संखेज्जसहस्सगेसु तीदेसु ॥ १२१ ॥
सम्मस्स असंखाणं समयपबद्धाणुदीरणा होदि।
तत्तो उवरिं तु पुणो बहुखंडे मिच्छउच्छिट्ठं[1] ॥ १२२ ॥

पल्यस्य संख्यभागं तस्य प्रमाणं ततः असंख्येयं।
भागप्रमाणे खंडे संख्येयसहस्रकेषु अतीतेषु ॥ १२१ ॥
सम्यक्त्वस्यासंख्यानां समयप्रब[illegible]दीरणा भवति।
तत उपरि तु पुनः बहुखंडे मिथ्योच्छिष्टम् ॥ १२२ ॥

सं० टी०—तस्य दूरापकृष्टिस्थितिसत्त्वस्य प्रमाणं पल्यसंख्यातैकभागमात्रं भवति प / ५।५।५।५

ततो दूरापकृष्टिस्थितिसत्त्वात्पल्यासंख्यातबहुभागमात्रायामेषु स्थितिकांडेषु संख्यातसहस्रेष्वतीतेषु सम्यक्त्वप्रकृतेरपकृष्टद्रव्यस्य असंख्यातसमयप्रबद्धमात्रमुदीरणाद्रव्यमुदयावल्यां निक्षिप्यते। तथाहि—

सम्यक्त्वप्रकृतिद्रव्यमिदं स ३ । १२ / ७।ख।१७।गु — अस्मादपकृष्टं पल्यासंख्यातभागेन खण्डयित्वा तद्बहुभागद्रव्यं स ३ । १२ / ७।ख।१७।गु / १ ^

उपरितनस्थितौ देयं स ३ । १२ — प शेषैकभागं पुनः पल्यासंख्यातभागेन भक्त्वा तद्बहुभागद्रव्यं गुणश्रेण्यां ३ / ७।ख।१७।गु ओ प / ३

1. एवं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागिगेसु बहुएसु ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु तदो सम्मत्तस्स असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा। तदो बहुसु ट्ठिदिखंडएसु गदेसु मिच्छत्तस्स आवलियबाहिरं सव्वमागाइदं। क० चू०, जयध० भा० १३, पृ० ४८। ध० पु० ६, पृ० २५६।

१ ^- १ ^   १ ^-
प १
देयं—स a । १२ — प प   शेषैकभागद्रव्यमुदयावल्यां देयं स a । १२ — a पल्यभाग-
a a   ७ । ख । १७ । गु ओ प प
७ । ख । १७ । गु । ओ प । प   a a
a a

हारभूतासंख्यातस्य बाहुल्येन पल्यद्वये अपकर्षणभागहारे वा अपवर्तितेप्यसंख्यातगुणकारसंभवात्, इतः परं सर्वत्र पल्यासंख्यातभागखंडितमेव उदयावल्यां दीयते। ततो मिथ्यात्वप्रकृतेः पल्यासंख्यातबहुभागमात्रायामेषु बहुषु गतेषु स्थितिकांडकेषु चरमकांडकचरमफालिपतनसमये मिथ्यात्वस्य उच्छिष्टावलिमात्रा निषेका अवशिष्यंते। अन्त्यकांडकद्रव्यं सर्वं सम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतिरूपेण परिणतमित्यर्थः। आवलिमात्रनिषेकाश्च समयं प्रति द्विसमयोना गलंति ।। १२१-१२२ ।।

स० चं०—तिस दूरापकृष्टि नामा स्थितिसत्वका प्रमाण पल्यके संख्यातवे भागमात्र जानना। तातैं परैं पल्यकौं असंख्यातका भाग दीएं तहां बहुभागमात्र आयाम धरैं अैसे संख्यात हजार स्थितिकांडक भएं सम्यक्त्वमोहनीका द्रव्यकौं अपकर्षण कीया तिसविषैं असंख्यात समय-प्रबद्धमात्र उदीरणा द्रव्यकौं उदयावलीविषैं दीजिए है। सोई कहिए है—

सम्यक्त्वमोहनीका द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ तहां बहुभाग तौ जैसैं थे तैसैं ही रहैं अवशेष एक भागकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां बहुभाग उपरितन स्थिति-विषैं देना। अवशेष एक भागकौं बहुरि पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहांबहुभाग गुणश्रेणि-आयामविषैं देना अर एक भाग उदयावलीविषैं देना। सो इहां उदयावलीविषैं दीया द्रव्यकौं उदीरणा द्रव्य जानना सो पूर्वैं तौ उदयावलीविषैं द्रव्य देनेके अर्थि असंख्यात लोकका भाग देनेतैं द्रव्यका प्रमाण स्तोक आवै था, इहांतैं लगाय परैं सर्वत्र पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देना सो भागहार घटता होनेतैं द्रव्यका प्रमाण एक भागविषैं भी असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण आवै है अैसा जानना। बहुरि तातैं मिथ्यात्व प्रकृतिके पल्यकौं असंख्यातका भाग दीएं तहां बहुभागमात्र आयाम धरैं अैसे बहुत स्थितिखंड भएं इस मिथ्यात्व प्रकृतिके अन्त कांडककी अन्त फालिपतनका समयविषैं मिथ्यात्वके उच्छिष्टावलीमात्र निषेक अवशेष रहैं हैं। अन्य सर्व मिथ्यात्वप्रकृतिका द्रव्य है सो मिश्रमोहनी वा सम्यक्त्वमोहनीरूप परिणमै है। जे आवलीमात्र निषेक रहैं है ते समय समय प्रति एक एक निषेकरूप होइ यावत् दो समय अवशेष रहैं तावत् क्रमतैं निर्जरै हैं ।। १२१—१२२ ।।

विशेष—दूरापकृष्टिसे नीचे असंख्यात गुणहानिगर्भित संख्यात हजार स्थितिकाण्डकघात होनेपर भी जब तक मिथ्यात्वका अन्तिम स्थितिकाण्डक प्राप्त नहीं होता, इस अन्तरालमें सम्य-क्त्वके असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा प्रारम्भ हो जाती है। यहाँसे पूर्व सर्वत्र असंख्यात लोक-प्रमाण प्रतिभागके अनुसार उदययोग्य सब कर्मोंकी उदीरणा होती रही। परन्तु यहाँसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण प्रतिभागके अनुसार सम्यक्त्वकी उदीरणा प्रवृत्त हुई यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अपकर्षित होनेवाले सकल द्रव्यमें पल्योपमके असंख्यातवें भागका भाग देने पर जो लब्ध आवे उतने द्रव्यको उदयावलिके बाहर गुणश्रेणिमें निक्षिप्त करता है तथा गुणश्रेणिके भी असंख्यातवें भागमात्र द्रव्यकी, जो कि असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण होता है, समय समयमें उदी-रणा करता है। पुनः इसके आगे हजारों स्थितिकाण्डकोंके व्यतीत होनेपर मिथ्यात्वकी उच्छि-

ष्टावलिको छोड़कर उसके शेष समस्त स्थितिसत्कर्मको घातके लिए ग्रहण करता है, यह उक्त दोनों गाथाओंका तात्पर्य है। वेदकसम्यग्दृष्टि जीव ही क्रमसे मिथ्यात्व आदि तीनों प्रकृतियोंका क्षय कर क्षायिकसम्यग्दृष्टि बनता है, अतः जो जीव मिथ्यात्व प्रकृतिकी क्षपणा करते समय मिथ्यात्व प्रकृतिके संख्यात हजार स्थितिकाण्डकोंका घात करते हुए उसकी उच्छिष्टावलिमात्र स्थिति शेष रखनेके सन्मुख होता है तब उसके मध्य कालमें प्रति समय सम्यक्त्व प्रकृतिके असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा कैसे होती है इसी तथ्यका स्पष्टीकरण प्रकृतमें करते हुए यह बतलाया गया है कि सम्यक्त्वप्रकृतिके द्रव्यमें जितने द्रव्यका अपकर्षण होता है उसमेंसे बहुभागप्रमाण द्रव्यका तो गुणश्रेणिके ऊपरके निषेकोंमें निक्षेप करता है। जो शेष एक भाग रहता है उसमेंसे बहुभागप्रमाण द्रव्यका गुणश्रेणिमें निक्षेप करता है तथा शेष एक भागप्रमाण द्रव्यको उदयावलिमें देता है। यहाँ जो शेष एक भागप्रमाण द्रव्य उदयावलिमें दिया गया है वह भी असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। प्रकृतमें सर्वत्र पल्यका असंख्यातवाँ भागप्रमाण भागहार जानना चाहिए। शेष कथन स्पष्ट ही है।

जत्थ असंखेज्जाणं समयपबद्धाणुदीरणा तत्तो।
पल्लासंखेज्जदिमो हारो णासंखलोगमिदो[1] ॥ १२३ ॥

यत्रासंख्येयानां समयप्रबद्धानामुदीरणा ततः।
पल्यासंख्येयः हारो नासंख्यलोकमितः ॥ १२३ ॥

सं० टी०—यस्मिन्नवसरे असंख्येयानां समयप्रबद्धानां उदीरणा उपरितनस्थितिस्थितानामुदयावलिप्रवेशो भवति तत्समयादारभ्य उत्तरकाले पल्यासंख्यातभागमात्र एव उदयावलिनिक्षेपार्थः भागहारो नासंख्यातलोकप्रमितः ॥ १२३ ।

स० चं०—जिस अवसर विषैं असंख्यात समयप्रबद्धकी उदीरणा होइ ऊपरिके निषेकनिका द्रव्य उदयावलीविषैं प्राप्त होइ तिस समयतैं लगाय उत्तर कालविषैं उदयावलीविषैं द्रव्य देनेके अर्थि भागहार पल्यका असंख्यातवां भागमात्र ही जानना। पूर्ववत् असंख्यात लोकमात्र न जानना ॥१२३॥

मिच्छुच्छिट्ठादुवरिं पल्लासंखेज्जभागिगे खंडे।
संखेज्जे समतीदे मिस्सुच्छिट्ठं हवे णियमा[2] ॥ १२४ ॥

मिथ्योच्छिष्टादुपरि पल्यासंख्येयभागगे खंडे।
संख्येये समतीते मिश्रोच्छिष्टं भवेत् नियमात् ॥ १२४ ॥

सं० टी०—यस्मिन् समये मिथ्यात्वप्रकृतेरुच्छिष्टावलिमात्रमवशिष्यते शेषा सर्वापि स्थितिर्बहुभिः स्थितिकांडकैः खंडिता भवति, तस्मात्समयादारभ्य सम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृत्योः स्थितौ पल्यासंख्यातभागबहुभागायामेषु संख्यातसहस्रस्थितिकांडकेषु गतेषु चरमकांडकचरमफालिपतनसमये मिश्रप्रकृतेरुच्छिष्टावलिमात्रमवशिष्यते ॥ १२४ ॥

---

१. एत्तो पुव्वं व सव्वत्थेव असंखेज्जलोगपडिभागेण, सव्वकम्माणमुदीरणा। एण्हिं पुण सम्मत्तस्स पलिदोवमस्सासंखेज्जदिभागपडिभागेणुदीरणा पयट्टा त्ति जं वुत्तं होइ। जयध० भा० १३, पृ० ४९।

२. एवं संखेज्जेहिं ट्ठिदिखंडएहिं गदेहिं सम्मामिच्छत्तमावलियबाहिरं सव्वमागाइदं। क० चू०, जयध० भा० १३, पृ० ५३। ध० पु० ६, पृ० २५८।

स० चं०—मिथ्यात्वकी उच्छिष्टावलीमात्र स्थिति अवशेष रहनेके समयतैं लगाय मिश्रमोहनीकी स्थितिविषैं पल्यकौं असंख्यातका भाग दीएं तहाँ बहुभागमात्र आयाम धरैं अैसे संख्यात हजार स्थितिकांडक भएं तहाँ अंतकांडककी अंतफालिका पतनविषैं मिश्रमोहनोके निषेक उच्छिष्टावलीमात्र अवशेष रहै हैं ॥ १२४ ॥

विशेष—पहले मिथ्यात्वकी उच्छिष्टावलिको छोड़कर जिस विधिसे उसकी क्षपणाका विधान कर आये हैं उसी विधिसे सम्यग्मिथ्यात्वकी क्षपणाका विधान जानना चाहिए। यह प्रकृतमें उदय प्रकृति न होनेसे अन्तमें इसकी भी उच्छिष्टावलिको छोड़कर शेषकी क्षपणा स्थितिकाण्डकघातके क्रमसे हो जाती है। तथा उच्छिष्टावलिप्रमाण निषेकोंका स्तिवुकसंक्रमद्वारा सम्यक्त्वप्रकृतिमें संक्रमण होकर अभाव हो जाता है। मिथ्यात्वकी उच्छिष्टावलिका भी इसी विधिसे अभाव होता है।

मिस्सुच्छिट्ठे समये पल्लासंखेज्जभागिगे खंडे ।
चरिमे पडिदे चेट्ठदि सम्मस्सडवस्सठिदिसत्तो[1] ॥ १२५ ॥

मिश्रोच्छिष्टे समये पल्यासंख्येयभागगे खंडे ।
चरमे पतिते चेष्टते सम्यक्त्वस्याष्टवर्षस्थितिसत्त्वम् ॥ १२५ ॥

सं० टी०—यस्मिन् समये मिश्रप्रकृतेश्चरमकांडकचरमफालिपतने आवलिमात्रस्थितिरवशिष्यते तस्मिन्नेव समये सम्यक्त्वप्रकृतिस्थितौ पल्यासंख्यातभागबहुभागमात्रायामेषु संख्यातसहस्रस्थितिकांडकेषु गतेषु चरमकांडकचरमफालिपतने अष्टवर्षमात्रस्थितिसत्त्वमवशिष्य तिष्ठति ॥ १२५ ॥

स० चं०—जिस समय मिश्रमोहनीकी उच्छिष्टावलीमात्र स्थिति रहै है तिसही समयविषैं सम्यक्त्वमोहनीकी स्थितिविषैं पल्यकौं असंख्यातका भाग दीएं तहाँ बहुभागमात्र आयाम धरैं अैसे संख्यात हजार स्थितिखंड व्यतीत होनेतैं इहाँ तिस सम्यक्त्वमोहनीका अष्ट वर्षप्रमाण स्थितिसत्व अवशेष रहै। भावार्थ यहु—मिश्रमोहनीकी उच्छिष्टावलीमात्र स्थिति रहनेका अर सम्यक्त्वमोहनीकी आठ वर्षमात्र स्थिति रहनेका एक ही काल है ॥ १२५ ॥

विशेष—जिस समय सम्यग्मिथ्यात्वकी उच्छिष्टावलिप्रमाण स्थिति शेष रहती है उस समय सम्यक्त्वकी सत्त्वस्थिति कितनी शेष रहती है इस प्रश्नका समाधान करते हुए चूर्णिसूत्रोंमें बतलाया गया है कि इस विषयमें दो उपदेश पाये जाते हैं—अप्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार सम्यक्त्वकी संख्यात हजार वर्षप्रमाण सत्त्वस्थिति शेष रहती है और प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार आठ वर्ष प्रमाण सत्त्वस्थिति शेष रहती है। जो सर्व आचार्यसम्मत है तथा जो आर्यमंक्षु और नागहस्ति महावाचकोंके मुखकमलसे निकला है वह प्रकृतमें प्रवाह्यमान उपदेश है और इसके अतिरिक्त दूसरा अप्रवाह्यमान उपदेश है। आगे प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार व्याख्यान किया गया है इतना प्रकृतमें स्पष्ट समझना चाहिए।

---

१. ताधे सम्मत्तस्स दोण्णि उवदेसा। के वि भणंति—संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ट्ठिदाणि त्ति। पवाइज्जंतेण उवदेसेण अट्ठवस्साणि सम्मत्तस्स सेसाणि, सेसाओ ट्ठिदीओ आगाइदाओ त्ति। क० चू०, जयध० भा० १३, पृ० ५४।

मिच्छस्स चरमफालिं मिस्से मिस्सस्स चरिमफालिं तु ।
संछुहदि हु सम्मत्ते ताहे तेसिं च वरदव्वं[1] ।। १२६ ।।

मिथ्यात्वस्य चरमफालिं मिश्रे मिश्रस्य चरमफालिं तु ।
संक्रामति हि सम्यक्त्वे तस्मिन् तेषां च वरद्रव्यं ।। १२६ ।।

सं० टी०—मिथ्यात्वप्रकृतिस्थितौ पल्यसंख्यातभागबहुभागमात्रायामेषु संख्यातसहस्रस्थितिकांडकेषु गतेषु चरमकांडकचरमफालिं सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतौ निक्षिपति । सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिस्थितौ पल्यसंख्यातभागबहुभागमात्रायामेषु संख्यातसहस्रस्थितिकांडकेषु गतेषु चरमकांडकचरमफालिं सम्यक्त्वप्रकृतौ निक्षिपति । तस्मिन् चरमफालिपतनसमये तयोर्मिश्रसम्यक्त्वप्रकृत्योर्द्रव्यमुत्कृष्टं भवति ।। १२६ ।।

स० चं०—मिथ्यात्वप्रकृतिका अंत कांडककी अन्त फालि है सो जिस समयविषैं मिश्रमोहनीविषैं संक्रमण होइ तिस समयविषैं मिश्रमोहनीका द्रव्य उत्कृष्ट हो है । अर मिश्रमोहनी अंत कांडककी अंत फालिका द्रव्य जिस समय सम्यक्त्वमोहनीविषैं संक्रमण होइ तिस समयविषैं सम्यक्त्वमोहनीका द्रव्य उत्कृष्ट हो है ।। १२६ ।।

विशेष—प्रकृतमें मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अन्तिम स्थितिकाण्डकी अन्तिम फालिका पतन किसका किसमें होता है यह नियम करते हुए ही यह बतलाया गया है कि मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिका पतन सम्यग्मिथ्यात्वमें और सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिका पतन सम्यक्त्व-प्रकृतिमें होता है । पहले ऐसा नियम नहीं था, इसलिये यहाँ यह नियम किया गया है ।

जदि होदि गुणिदकम्मो दव्वमणुक्कस्समण्णहा तेसिं[2] ।
अवरठिदी मिच्छदुगे उच्छिट्ठे समयदुगसेसे[3] ।। १२७ ।।

यदि भवति गुणितकर्मा द्रव्यमनुत्कृष्टमन्यथा तेषाम् ।
अवरस्थितिर्मिथ्यात्वद्विके उच्छिष्टसमयद्विकशेषे ।। १२७ ।।

---

१. तदो ट्ठिदिखंडए णिट्ठायमाणे णिट्ठिदे मिच्छत्तस्स जहण्णओ ट्ठिदिसंकमो, उक्कस्सओ पदेससंकमो । ताधे सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सगं पदेससंतकम्मं । क० चू० । ताधे चेव सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्ममुवजायदे, मिच्छत्तदव्वस्स सव्वस्सेव किंचूणदिवड्ढगुणहाणिमेत्तसमयपबद्धपमाणस्स तस्सरूवेण परिणदत्तादो। जयध० भा० १३, पृ० ५१ । एदम्मि ट्ठिदिखंडए णिट्ठिदे ताधे जहण्णगो सम्मामिच्छत्तस्स ट्ठिदिसंकमो, उक्कस्सओ पदेससंकमो, सम्मत्तस्स उक्कस्सपदेससंतकम्मं । क० चू० । ताधे चेव सम्मत्तस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं होइ, सम्मामिच्छत्तुक्कस्ससंकमपडिग्गहवसेण तदुवलद्धीदो । जयध० भा० १३, पृ० ५५ ।

२. णवरि जइ एसो गुणिदकम्मंसियणेरइयपच्छायदो समयाविरोहेण सव्वलहुमागंतूण दंसणमोहक्खवणाए अब्भुट्ठिदो तो उक्कस्सओ मिच्छत्तस्स पदेससंकमो होइ । अण्णहा वुण अजहण्णाणुक्कस्सओ पदेससंकमो त्ति वत्तव्वं । सुत्ते पुण गुणिदकम्मंसियविवक्खाए उक्कस्सओ पदेससंकमो णिद्दिट्ठो त्ति ण किंचि विरुद्धं । ताधे चेव सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्ममुवजायदे । मिच्छत्तस्स सव्वस्सेव किंचूणविड्ढगुणहाणिमेत्तसमयपबद्धपमाणस्स तस्सरूवेण परिणदत्तादो । जयध० भा० १३, पृ० ५१ तथा ५५ ।

३. तदो आवलियाए दुसमयूणाए गदाए मिच्छत्तस्स जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं । क० चू० जयध० भा० १३, पृ० ५२ । एत्तो दुसमयूणाए गलिदाए सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्ममेयट्ठिदी दुसमयकालमेत्तं होइ त्ति अणुत्तं हि जाणिज्जदे, मिच्छत्तपरूवणाए चेव गयत्थत्तादो । जयध० भा० १३, पृ० ५५ ।

सं० टी०—अयं दर्शनमोहक्षपक आत्मा यदि गुणितकर्मांशः उत्कृष्टयोगादिसामग्रीवशेन उत्कृष्टकर्मसंचयवान् भवति तदा तयोर्द्रव्यमुत्कृष्टं भवतीति संबंधः, अन्यथा यद्युत्कृष्टसंचयवान्न भवति तदा तयोर्द्रव्यमनुत्कृष्टं भवति। मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्योरुच्छिष्टावल्यां समयद्विके शेषे सति जघन्यस्थितिर्भवति। उदयावलिचरमनिषेको भवतीत्यर्थः ॥

स० चं०—यहु दर्शनमोहका क्षय करनेवाला जीव जो गुणितकर्मांश कहिए उत्कृष्ट कर्मसंचय युक्त होइ तौ ताकै तिनि दोऊ प्रकृतिनिका द्रव्य तिस समयविषैं उत्कृष्ट हो है अर जो वह जीव उत्कृष्ट कर्मका संचययुक्त न होइ तौ ताकैं तिनिका द्रव्य तहां अनुत्कृष्ट हो है। बहुरि मिथ्यात्व अर मिश्रमोहनीकी स्थिति उच्छिष्टावलीमात्र रही सो क्रमतैं एक एक समय विषैं एक एक निषेक गलि तहां दोय समय अवशेष रहैं जघन्य स्थिति हो है। भावार्थ यहु—तहां उदयावलीका अंत निषेकमात्र स्थितिसत्व हो है ॥ १२७ ॥

विशेष—जो निरन्तर गुणितकर्मांशिक विधिसे कर्मस्थितिके काल तक मिथ्यात्वका बन्ध कर सातवें नरकमें दूसरी बार यथाविधि उत्पन्न होकर भवस्थितिके अन्तिम समयमें मिथ्यात्वका उत्कृष्ट संचय कर क्रमसे तिर्यञ्च पर्यायमें उत्पन्न हुआ और वहाँसे यथाविधि अतिशीघ्र कर्मभूमिज मनुष्य होकर क्रमसे वेदकसम्यक्त्वपूर्वक दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करने लगा उसके क्रमसे मिथ्यात्वके अन्तिम काण्डकको अन्तिम फालिके सम्यग्मिथ्यात्वमें और सम्यग्मिथ्यात्वके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिके सम्यक्त्वमें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रम होनेपर सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वका यथाक्रम उत्कृष्ट प्रदेशसंचय होता है। शेष कथन सुगम है।

मिश्रद्विककी अन्तिम फालिके कितने द्रव्यका गुणश्रेणिमें किस क्रमसे निक्षेप होता है इसका निर्देश—

मिस्सदुगचरिमफाली किंचूणदिवड्ढसमयपबद्धपमा।
गुणसेढिं करिय तदो असंखभागेण पुव्वं व[1] ॥ १२८ ॥

मिश्रद्विकचरमफालिः किंचिदूनद्व्यर्धसमयप्रबद्धप्रमा।
गुणश्रेणिं कृत्वा ततः असंख्यभागेन पूर्वं वा ॥ १२८ ॥

सं० टी०—मिश्रसम्यक्त्वप्रकृत्योश्चरमफालिद्वयद्रव्यं किंचिन्न्यूनद्व्यर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धप्रमाणं वा।

तथाहि सम्यग्मिथ्यात्वद्रव्यमिदं स a । १२ – a / ७ । ख । १७ । गु अस्मिन् मिथ्यात्वद्रव्ये स a । १२ – गु १ १—^ ^ / ७ । ख । १७ । गु a १— a संख्यात-

१. तक्कालभाविसगचरिमफालिदव्वेण सह सम्मामिच्छत्तचरिमफालिं घेत्तूण अट्ठवस्समेत्तसम्मत्तट्ठिदिसंतकम्मस्सुवरि णिक्खिवमाणो उदये थोवं पदेसग्गं देदि। से काले असंखेज्जगुणं देदि। एवं जावगुणसेढिसीसयं ताव असंखेज्जगुणं देदि। तदो उवरिमाणंतराए ट्ठिदीए असंखेज्जगुणं चेव देदि। किं कारणं ? सम्मामिच्छत्तचरिमफालिदव्वं किंचूणदिवड्ढगुणहाणिगुणिदसमयपबद्धमेत्तमोकड्डुणभागहारादो असंखेज्जगुणेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण खंडेदूण तत्थेयखंडमेत्तमेव दव्वं गुणसेढीए णिक्खिवय। जयध० भा० १३, पृ० ६४। ध० पु० ६, पृ० २५९।

सहस्रस्थितिकांडकगुणसंक्रमविधानेनोच्छिष्टावलिमात्रनिषेकान् वर्जयित्वा निक्षिप्ते सम्यग्मिथ्यात्वद्रव्यमियद्भवति —
स a । १२ – अत्रापि संख्यातसहस्रस्थितिकांडकगुणसंक्रमविधानेन चरमकांडकचरमफालिं विहाय इतरकांडकद्रव्यं
७ । ख १७
सर्वं सर्वद्रव्यासंख्यातैकभागमात्रं स । a १२— सम्यक्त्वप्रकृतिद्रव्ये स a । १२—
७ । ख । १७ । a ७ । ख । १७ । गु
स्वस्याष्टवर्षस्थितेरुपरि चरमकांडकचरमफालिद्रव्यं मुक्त्वा इतरसर्वकांडकद्रव्यमपि गुणसंक्रमकालद्विचरमसमय-
१२– १२–
पर्यंतं निक्षिप्य तच्चरमसमये मिश्रचरमफालिद्रव्यं स a । १२ – a, सम्यक्त्वचरमफालिद्रव्यं स a । १२ – a
७ । ख १७ a ७ । ख । १७ गु a
एतद्द्रव्यद्वये मिलिते एवं स a १२ – । इदं सर्वं मनस्यवधार्याचार्यैः "मिस्सदुमचरिमफाली किंचूणदिवड्ढसमय-
७ । ख । १७
पवद्धपमा" इत्युक्तं । अस्माच्चरमफालिद्वयद्रव्यात्पल्यसंख्यातैकभागं स a । १२ – गृहीत्वा सम्यक्त्वप्रकृते-
७ । ख १७ प
a
रवशिष्टाष्टवर्षमात्रस्थितौ उदयावलिप्रथमसमयादारभ्य प्रागारब्धगलितावशेषगुणश्रेणिशीर्षपर्यंतं प्रतिनिषेक-
मसंख्यातगुणितक्रमेण निक्षिप्य तदनंतरोपरितनैकसमयेऽप्यसंख्यातगुणं । इतः प्रभृत्यवस्थितगुणश्रेणिप्रतिज्ञानात्पुन-
१२–
स्तद्बहुभागद्रव्यमिदं स a । १२ – प ॥ १२८ ॥
a
७ । ख । १७ । प
a

स० चं०—मिश्रमोहनी अर सम्यक्त्वमोहनीकी जे अंतकी दोय फालि तिनिका द्रव्य किंचित् ऊन द्व्यर्धगुणहानिगुणित समयप्रबद्धप्रमाण है सोई कहिए है—

मिश्रमोहनीका जो द्रव्य ताविषैं उच्छिष्टावली विना अन्य सर्व मिथ्यात्व प्रकृतिके द्रव्यकौं संख्यात हजार स्थितिकांडक अर गुणसंक्रम विधानकरि निक्षेपण कीया तहां जो मिश्रमोहनीका द्रव्य भया तहां भी संख्यात हजार स्थितिकांडक अर गुणसंक्रमण विधान करि जो अंत कांडककी अन्त फालिका द्रव्य भया सो तौ जुदा राख्या अर इसके अन्य कांडक द्रव्य सर्व द्रव्यके असंख्यातवें भागमात्र हैं ताका सम्यक्त्व मोहनीविषैं निक्षेपण कीया अर सम्यक्त्वमोहनीका द्रव्य अपना आठ वर्षकी स्थितिके उपरिवर्ती जो अन्त कांडककी अंत फालिका द्रव्य ताकौं छोडि और सर्व कांडकनिका द्रव्यकौं भी संक्रमणकालका द्विचरम समयपर्यंत तहां अष्ट वर्षमात्र अवशेष स्थितिविषैं निक्षेपण करि तिस संक्रमण कालका अंत समयविषैं मिश्रमोहनीकी अर सम्यक्त्वमोहनीकी अंतकी जे दोय फालि तिनिका द्रव्य मिलाएं किंचित् ऊन द्व्यर्ध गुणहानिगुणित समयप्रबद्धप्रमाण द्रव्य हो है। भावार्थ यहु—मिश्रमोहनीका गुणसंक्रम करि यावत् सम्यक्त्वमोहनीरूप परिणमै तावत् गुणसंक्रम काल कहिए ताका अंत समयविषैं मिश्रमोहनीका उच्छिष्टावलीमात्र सम्यक्त्वमोहनीका अष्ट वर्षमात्र निषेक विना अन्य सर्व द्रव्य तिनिकी अंत दोय फालिनिका जानना सो किंचिदून द्व्यर्द्ध गुणहानिगुणित समयप्रबद्धप्रमाण है। सो अष्ट वर्ष स्थिति अवशेषकरणके समयविषैं इनि दोय फालिनिके पतन करनेके अर्थि तिनिके द्रव्यकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दोएं तहां एक

भागकौं उदयादि अवस्थित गुणश्रेणि आयामविषैं देना सो उदयावलीका प्रथम समयतैं लगाय पूर्वै जो गलितावशेष गुणश्रेणि आयामका प्रारंभ कीया था तामैं व्यतीत भएं पीछैं जो अवशेष गुणश्रेणि आयाम रह्या ताका अंत पर्यंत अर एक समय उपरितन स्थितिका तिनिविषैं देना।

भावार्थ—इहांतैं पहलैं तौ उदयावलीतैं बाह्य गुणश्रेणि आयाम था अब इहाँतैं लगाय उदय रूप वर्तमान समयतैं लगाय ही गुणश्रेण्यायाम भया तातैं याकौं उदयादि कहिए है। अर पूर्वै तौ समय व्यतीत होतैं गुणश्रेणि आयाम घटता होता जाता था अब एक समय व्यतीत होतैं उपरितन स्थितिका एक समय मिलाय गुणश्रेणि आयामका प्रमाण समय व्यतीत होतैं भी जेताका तेता रहै। तातैं अवस्थित कहिए, तातैं याका नाम उदयादि अवस्थिति गुणश्रेण्यायाम है ताके निषेकनिविषैं सो द्रव्य असंख्यातगुणा क्रम लीएं दीजिए है ऐसैं तिन दोऊ फालिनिके द्रव्यकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ एक भाग तौ गुणश्रेणिविषैं दीया ॥ १२८ ॥

विशेष—जिस समय मिश्रप्रकृतिका उच्छिष्टावलिको छोड़कर अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिका सम्यक्त्वप्रकृतिकी आठ वर्षप्रमाण स्थितिमें पतन होता है उसी समय सम्यक्त्व-प्रकृतिकी आठ वर्षप्रमाण सत्त्वस्थितिको छोड़कर उपरितन सत्त्वस्थितिस्वरूप अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिका सम्यक्त्वकी आठ वर्षप्रमाण सत्त्वस्थितिमें पतन होता है। उसमें भी इन दोनों फालियोंके द्रव्यमें अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारसे असंख्यातगुणे ऐसे पल्योपमके असंख्यातवें भागका भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आवे उसे पहलेके समान गुणश्रेणि करके गुणसंक्रमविधिसे निक्षिप्त करना चाहिए। अर्थात् उदय स्थितिमें सबसे स्तोक द्रव्यको निक्षिप्त करे। उससे उपरितन स्थितिमें असंख्यातगुणे द्रव्यको निक्षिप्त करे। इस विधिसे गुणश्रेणि शीर्षके प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे द्रव्यको निक्षिप्त करे। इन दोनों फालियोंमें संचित द्रव्य डेढ़ गुणहानि-गुणित समयप्रबद्धप्रमाण है, इसे टीकामें स्पष्ट किया ही है।

गुणश्रेणिसे ऊपरके निषेकोंमें अवशिष्ट द्रव्यके निक्षेपकी विधिका निर्देश—

सेसं विसेसहीणं अडवस्सुवरिमठिदीए संछुद्धे।
चरमाउलिं व सरिसी रयणा संजायदे एत्तो[1] ॥ १२९ ॥

शेषं विशेषहीनमष्टवर्षस्योपरिमस्थित्यां संक्षुब्धे।
चरमावलिरिव सदृशी रचना संजायतेऽतः ॥ १२९ ॥

सं० टी०—सेसं विसेसहीणमित्यादि गुणश्रेण्यायामांतर्मुहूर्तकालन्यूनाष्टवर्षमात्रोपरितनस्थितौ 'अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे इत्यादि' विधानेनानीतं प्रथमनिषेकद्रव्यं स a । १२–१६ १ —^ इदमुपरितन-
७ । ख १७ । व ८–१६–व ८
२

1. पुणो सेसबहुभागदव्वस्संतोमुहुत्तूणट्ठवस्सेहिं खंडियेयखंडस्स णिरुद्धगोपुच्छायारेण णिक्खेवदंसणादो। तम्हा एत्तो पहुडि सम्मत्तस्स उदयादि अवट्ठिदगुणसेढिणिक्खेवो होइ त्ति घेत्तव्वो। एवं गुणसेढिसीसयादो एवं णिक्खित्ते अणंतरोवरिमाए वि एक्किस्से ट्ठिदीए असंखेज्जगुणं पदेसग्गं णिक्खविऊण उवरि सव्वत्थ अणंतरोवणिधाए विसेसहीणं चेव देदि। जाव अट्ठवस्साणं चरिमसमओ त्ति। जयध० भा० १३, पृ० ६५।

प्रथमस्थितिप्रथमसमये निक्षिपेत् । पुनर्द्वितीयादिसमयेष्वष्टवर्षचरमसमयपर्यंतं एतादृशविशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत् । एवं निक्षिप्ते गुणश्रेणिचरमसमयद्रव्यात्तदनंतरोपरितनस्थितिप्रथमसमयद्रव्यमसंख्यातगुणितं भवति, पल्यासंख्यातबहुभागद्रव्यस्य तत्र निक्षेपात् ॥१२९॥

सं० चं०—अवशेष बहुभागनिके द्रव्यकौं गुणश्रेणि आयाममात्र अंतर्मुहूर्त घाटि अष्ट वर्षप्रमाण जो उपरितन स्थिति ताके निषेकनिविषैं 'अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे' इत्यादि विधानकरि प्रथम निषेकनिविषैं द्रव्य निक्षेपण करै अर तातैं द्वितीयादि निषेकनिविषैं समान प्रमाणरूप चय घटता क्रमकरि निक्षेपण करै है अैसैं ही दीएं गुणश्रेणिके अंत निषेकका द्रव्यतैं उपरितन स्थितिके प्रथम निषेकका द्रव्य असंख्यातगुणा हो है । जातैं इहां बहुभागका निक्षेपण करै है अर स्थितिका प्रमाण स्तोक है ॥ १२९ ॥

विशेष—पहले गुणश्रेणिमें कितने द्रव्यका निक्षेप होता है इसका विधान कर आये हैं । आगे गुणश्रेणिके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कालको छोड़कर जो अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्षप्रमाण सम्यक्त्वस्थितिसत्त्व शेष रहता है उसमें शेष बहुभागप्रमाण द्रव्यका किस विधिसे निक्षेप होता है उसका इस गाथासूत्रमें निर्देश किया गया है । आशय यह है कि यहाँसे लेकर प्रति समय गुणश्रेणिशीर्षके उपरितन निषेकमें जितना द्रव्य निक्षिप्त होता है उससे असंख्यातगुणा द्रव्य इससे उपरितन स्थितिमें निक्षिप्त होता है मात्र इससे आगेकी सब स्थितियोंमें उत्तरोत्तर एक-एक चय घटते हुए क्रमसे द्रव्यका निक्षेप होता है । इससे यह ज्ञात होता है कि यहाँसे लेकर उदयादि अवस्थित गुणश्रेणिकी रचना प्रारम्भ हो जाती है ।

सम्यक्त्वका आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्त्व होनेसे लेकर गुणश्रेणि और स्थितिकाण्डकके प्रमाणका निर्देश—

अडवस्सादो उवरिं उदयादिअवट्ठिदं च गुणसेढी ।
अंतोमुहुत्तियं ठिदिखंडं च य होदि सम्मस्स[1] ॥ १३० ॥

अष्टवर्षादुपरि उदयाद्यवस्थितं च गुणश्रेणी ।
अंतर्मुहूर्तिकं स्थितिखंडं च च भवति सम्यक्त्वस्य ॥ १३० ॥

सं० टी०—सम्यक्त्वप्रकृतेरष्टवर्षमात्रस्थितिकरणसमयादूर्ध्वमपि न केवलमष्टवर्षमात्रस्थितिकरणसमय एवोदयाद्यवस्थितिगुणश्रेणिरित्यर्थः, सम्यक्त्वप्रकृतेरन्तर्मुहूर्तायामं स्थितिखंडं भवति ॥ १३० ॥

सं० चं०—सम्यक्त्वमोहनीकी अष्ट वर्ष स्थिति करनेके समयतैं लगाय उपरि सर्व समयनिविषैं उदयादि अवस्थिति गुणश्रेणि आयाम है । बहुरि सम्यक्त्वमोहनीकी स्थितिविषैं स्थितिखंड अंतर्मुहूर्तमात्र आयाम धरै है । इहांतैं अब एक एक स्थिति कांडककरि अंतर्मुहूर्त अंतर्मुहूर्त स्थिति घटाइए है ॥ १३० ॥

१. एत्तो पाए अंतोमुहुत्तियं ट्ठिदिखंडयं । क० चू०, जयध० भा० १३ पृ० ५९ । तम्हा एत्तो पहुडि सम्मत्तस्स उदयादिअवट्ठिदगुणसेढिणिक्खेवो होइ त्ति घेत्तव्वो । जयध० भा० १३, पृ० ६४ ।

अनुभागके अपवर्तनका निर्देश—

विदियावलिस्स पढमे पढमस्संते च आदिमणिसेये ।
तिट्ठाणेणंतगुणेणूणकमोवट्टणं चरमे ॥ १३१ ॥

द्वितीयावलेः प्रथमे प्रथमस्यांते चादिमनिषेके ।
त्रिस्थानेऽनंतगुणेनोनक्रमापवर्तनं चरमे ॥ १३१ ॥

सं० टी०—यस्मिन् समये सम्यक्त्वप्रकृतेरष्टवर्षमात्रस्थितिमवशेषयन् चरमकांडकचरमफालिद्वयं पातयति तस्मिन्नेव समये सम्यक्त्वप्रकृत्यनुभागसत्त्वमतीतानंतरसमयनिषेकानुभागसत्त्वादनंतगुणहीनमवशिष्यते । तद्यथा—

सम्यक्त्वप्रकृतेश्चरमकांडकद्विचरमफालिद्वयपतनपर्यंतं लतादारुसमस्थानानुभागसत्त्वं कांडकघातवशेनानंतगुणहीनमायातं । पुनश्चरमफालिद्वयपतनसमये अनंतगुणहान्यापकृष्टा लतासमानैकस्थानं सम्यक्त्वप्रकृत्यनुभागसत्त्वमजनिष्ट इतः प्रभृत्यंतर्मुहूर्तकालसाध्योऽनुभागकांडकघातो नास्ति किंतु प्रतिसमयमनंतगुणहान्यानुभागापवर्तनं प्रवर्तते । अतीतानंतरसमयनिषेकानुभागसत्त्वा ९ ना दिदानीमष्टवर्षावशेषकरणप्रथमसमये उदया-
१ ^
वल्युपरितनावलिप्रथमनिषेकानुभागसत्त्वमनंतगुणहीनं ९ ना इदमवशिष्टं । शेषा बहुभागाः ९ ना ख अपवर्तिताः
ख ख
खंडिताः । तदानींतनशुद्धिविशेषमाहात्म्याद्विनाशिता इत्यर्थः । तथा तस्मिन्नेव समये द्वितीयावलिप्रथमनिषेकानुभागसत्त्वादुदयावलिचरमनिषेकानुभागसत्त्वमनंतगुणहीनमवशिष्यते ९ । ना शेषास्तद्बहुभागाः अपवर्तिताः
१ ^ ख ख
९ ना ख ख तथा तस्मिन्नेव समये उदयावलिचरमनिषेकानुभागसत्त्वात्तत्प्रथमनिषेकानुभागसत्त्वमनंतगुणहीन-
ख ख
१ ^
मवशिष्यते ९ ना शेषास्तद्बहुभागा अपवर्तिताः—९ ना ख ख ख एवमनंतगुणहीनमनुभागापवर्तनमष्ट-
ख ख ख ख ख ख
वर्षद्वितीयादिसमयेष्वपि प्रतिसमयमनंतगुणक्रमेणाष्टवर्षस्थितौ चरमे चयाधिकावलिं यावन्न प्राप्नोति तावज्ज्ञातव्यं । उच्छिष्टचरमावल्यां तु अतीतानंतरसमयनिषेकानुभागसत्त्वादुदयावलिप्रथमनिषेकानुभागसत्त्वमनंतगुणहीनं, तस्मात्तदनंतरसमये उदयनिषेकानुभागसत्त्वमनंतगुणहीनं । एवं प्रतिसमयमनंतगुणहीनक्रमेणोच्छिष्टावलिचरमसमयपर्यंतमनुभागापवर्तनं ज्ञातव्यं ॥ १३१ ॥

स० चं०—जिस समयविषैं सम्यक्त्वमोहनीकी अष्ट वर्ष स्थिति अवशेष राखी अर मिश्र-

१. जाधे अट्ठवासट्ठिदिगं संतकम्मं सम्मत्तस्स ताधे पाए सम्मत्तस्स अणुभागस्स अणुसमय-ओवट्टणा । एसो ताव एक्को किरियापरिवत्तो । क० चू० । तं पुण अणुसमयमोवट्टणमेवमणुमंतव्वं—अणंतरहेट्ठिमसमयाणुभागसंतकम्मादो संपहियसमये अणुभागसंतकम्ममुदयावलियबाहिरमणंतगुणहीणं, एण्हिमुदयावलिबाहिराणुभागसंतकम्मादो उदयावलियब्भंतरमणुप्पविसमाणमणंतगुणहीणं । तत्तो वि उदयसमयं पविसमाणमणंतगुणहीणं । एवं समये समये जाव सययाहियावलिअक्खीणदंसणमोहो त्ति । तत्तो परमावलियमेत्तकालमुदयं पविसमाणाणुभागस्स अणुसमयोवट्टणा त्ति । जयध० भा० १३, पृ० ६३ ।

मोहनी सम्यक्त्वमोहनीका अंत कांडककी दोय फालिका पतन भया तिस ही समयविषैं सम्यक्त्व मोहनीका अनुभाग पूर्व समयके अनुभागतैं अनंतगुणा घटता अवशेष रहै है। सोई कहिए है—

सम्यक्त्वमोहनीका अंत कांडककी द्विचरम फालि पतन समय जो अष्ट वर्ष स्थिति करनेका समयतैं पूर्व समय तहाँ पर्यंत तौ लता दारुरूप द्विस्थानगत अनुभाग है सो अनुभागकांडकघाततैं अनंतगुणा घटता भया। बहुरि यहु चरम फालि पतन समय जो अष्ट वर्ष स्थिति करनेका समय तिस विषैं अनंतगुणा घटता होइ लतासमान एक स्थानकौं प्राप्त अनुभाग भया। इहांतैं लगाय जो पूर्वैं अंतर्मुहूर्त कालकरि अनुभाग कांडकाघात होता था ताका अभाव भया अर समय समय प्रति अनंतगुणा घटता क्रम लीएं अनुभागका अपवर्तन होने लगा तहां अनंतरवर्ती अष्ट वर्ष करनेके समयतैं जो पूर्व समय तीहिविषैं निषेकनिका जो अनुभागसत्व था तातैं अनंतगुणा घटता अष्ट वर्ष स्थिति करनेका समयविषैं उदयावलीके उपरिवर्ती जो उपरितनावली ताके प्रथम निषेकनिका अनुभाग सत्व अवशेष रहै है। अवशेष अनंत बहुभागका विशुद्धताविशेषतैं अपवर्तन भया, नाश भया। बहुरि तिस ही समयविषैं उदयावलीके अंत निषेकका अनुभागसत्व तिस अपने उपरिवर्ती उपरितनावलीका प्रथम निषेकका अनुभागसत्वतैं अनंतगुणा घटता रहै है। अवशेषका नाश हो है। बहुरि तातैं अनंतगुणा घटता उदयावलीके प्रथम निषेकका अनुभागसत्व रहै है। अवशेषका नाश हो है। बहुरि तातैं अनंतगुणा घटता अष्ट वर्ष करनेके समयतैं लगाय अनंतरवर्ती आगामी समयविषैं अनंतगुणा घटता अनुभागसत्व हो है ऐसैं समय समय प्रति अनंतगुणा घटता अनुक्रमकरि उच्छिष्टावलीका अंत समय पर्यंत अनुभागका अपवर्तन जानना ॥ १३१ ॥

विशेष—जहाँ सम्यक्त्वका आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्त्व होता है वहाँसे लेकर उसके अनुभागका प्रत्येक समयमें अपवर्तन होने लगता है। क्रम यह है कि अनन्तर पूर्व समयमें जो द्विस्थानीय अनुभागसत्त्व था उससे वर्तमान समयमें उदयावलिसे उपरितन स्थितिमें अनन्तगुणा हीन एकस्थानीय अनुभाग सत्त्व हो जाता है। उससे उदयावलिके अन्तिम निषेकमें अनन्तगुणा हीन एकस्थानीय अनुभागसत्त्व हो जाता है और इसी क्रमसे उत्तरोत्तर कम होता हुआ उदय स्थितिमें अनन्तगुणा हीन एकस्थानीय अनुभागसत्त्व हो जाता है। आशय यह है कि सम्यक्त्वका आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्त्व रहनेके पूर्व प्रत्येक अनुभागकाण्डकका अन्तर्मुहूर्त—अन्तर्मुहूर्त कालमें घात करता था। अब प्रत्येक समयमें सम्यक्त्वके अनुभागका अनन्तगुणी हानिरूपसे अपवर्तन करता है। उसमें भी पहले जो लता-दारुरूप द्विस्थानीय अनुभागसत्त्व था उसका प्रत्येक समयमें लतारूप एकस्थानीय अनुभागरूपसे अपवर्तन करने लगता है। इसी तथ्यको समग्ररूपसे इस प्रकार जानना चाहिए कि अनन्तर पूर्व समयमें जो अनुभागसत्त्व था उससे वर्तमान समयमें उदयावलिके बाहर स्थित अनुभागसत्त्व प्रति समय अनन्तगुणा हीन होने लगता है। तथा इस उदयावलिके बाहर स्थित अनुभागसत्कर्मसे उदयावलिमें अनुप्रविशमान अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा हीन होता है और उससे भी उदय समयमें प्रविशमान अनुभागसत्त्व अनन्तगुणा हीन होता है। यह क्रम दर्शनमोहनीयके क्षय होनेमें एक समय अधिक एक आवलि काल शेष रहने तक जानना चाहिए। उसके बाद आवलिमात्र काल तक उदयमें प्रविशमान अनुभागसत्त्वकी अनुसमय अपवर्तना होती है।

आठ वर्षकी स्थितिके बाद कहाँ तक किस विधिसे द्रव्यका निक्षेप होता है इसका खुलासा—

अडवस्से उवरिमि वि दुचरिमखंडस्स चरिमफालि त्ति ।
संखातीदगुणक्कमविसेसहीणक्कमं देदि ॥ १३२ ॥

अष्टवर्षात् उपरि अपि द्विचरमखंडस्य चरमफालीति ।
संख्यातोतगुणक्रमं विशेषहीनक्रमं ददाति ॥ १३२ ॥

सं० टी०—मिश्रद्विकचरमफालिद्रव्यं सम्यक्त्वप्रकृतिस्थितेरष्टवर्षमात्रावशेषकरणसमये उदयसमयाद्यवस्थितिगुणश्रेण्यायामे प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेणांतर्मुहूर्तोनाष्टवर्षमात्रोपरितनस्थितौ च विशेषहीनक्रमेण निक्षिप्तं तथोपर्यपि प्रथमकांडकप्रथमफालिपतनसमयात्प्रभृति द्विचरमकांडकचरमफालिपतनसमयपर्यंतं उदयाद्यवस्थितिगुणश्रेण्यायामे प्रतिनिषेकमसंख्यातगुणितक्रमेणांतर्मुहूर्तोनाष्टवर्षमात्रोपरितनस्थितौ विशेषोनक्रमेणापकृष्टद्रव्यं फालिद्रव्यं च निक्षेप्तव्यं ॥ १३२ ॥

स० चं०—जैसैं अष्ट वर्ष स्थिति करनेके समयविषैं मिश्रमोहनी सम्यक्त्वमोहनीकी अंत दोय फालिनिके द्रव्यकौं उदयादि अवस्थित गुणश्रेणि आयामविषैं अर तातैं उपरिवर्ती उपरितन स्थितिविषैं देनेका विधान पूर्वैं कह्या तैसैं ही तिस अष्ट वर्ष स्थिति करनेके समयतैं ऊपर भी जे समय तिनिविषैं अंतर्मुहूर्त आयाम धरैं कांडक प्रारंभ भएं तिनिविषैं प्रथम कांडककी प्रथम फालिका पतनरूप जो प्रथम समय तातैं लगाय द्विचरम कांडककी अंत फालिका पतन समयपर्यंत गुणश्रेणि आदिके अर्थि अपकर्षण कीया द्रव्य ताका अर स्थिति घटावनेका अर्थि ग्रह्या स्थितिकांडककी फालिका द्रव्य ताकी उदयादि अवस्थित गुणश्रेणि आयामविषैं असंख्यातगुणा क्रम लीएं अर अंतर्मुहूर्त घाटि अष्ट वर्षप्रमाण उपरितन स्थितिविषैं चय घटता क्रम लीएं निक्षेपण हो है ॥ १३२ ॥

विशेष—सम्यक्त्वका आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्त्व होनेके समयसे लेकर द्विचरम स्थितिकाण्डकके पतनके अन्तिम समय तक प्रत्येक स्थितिकाण्डकके द्रव्यका फालिक्रमसे किस प्रकार अधस्तन स्थितियोंमें निक्षेप होता है इसी तथ्यको इस गाथामें स्पष्ट किया गया है। खुलासा इस प्रकार है—सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिके साथ सम्यक्त्वके पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तिम काण्डकको अन्तिम फालिके द्रव्यको सम्यक्त्वकी आठ वर्षप्रमाण सत्त्वकर्मस्थितिके ऊपर निक्षिप्त करता हुआ यह जीव उदयमें सबसे स्तोक कर्मपुञ्जको निक्षिप्त करता है। उससे अनन्तर दूसरी स्थितिमें असंख्यातगुणे प्रदेश पुञ्जको निक्षिप्त करता है। इस प्रकार पहलेके गुणश्रेणिशीर्षके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थितिमें उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जको निक्षिप्त करता है। उसके बाद गुणश्रेणिशीर्षसे उपरिम स्थितिमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुंजको निक्षिप्त करता है। तदनन्तर शेष रहे बहुभागप्रमाण द्रव्यको अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्षोंके समयोंसे खण्डित कर उस सब द्रव्यको उन सब समयोंमें एक-एक चय कम करते हुए निक्षिप्त करता है। यहाँसे लेकर अवस्थित गुणश्रेणि प्रारम्भ हो जाती है, इसलिए प्रति समय एक उदय समयके गलनेके साथ गुणश्रेणि शीर्षमें एक समयकी वृद्धि हो जाती है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

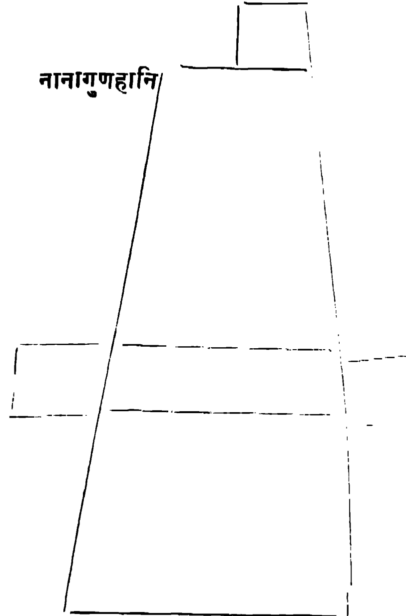
१. ताधे पाए ओवट्टिज्जमाणासु ट्ठिदीसु उदये थोवं पदेसग्गं दिज्जदे। से काले असंखेज्जगुणं जाव गुणसेढिसीसयं ताव असंखेज्जगुणं। तदो उवरिमाणंतरट्ठिदीए वि असंखेज्जगुणं देदि। तदो विसेसहीणं। क० चू०, जयध० भा० १३, पृ० ६४। एवं जाव दुचरिमट्ठिदिखंडयं ति। क० चू०, जयध० भा० १३, पृ० ७०।

अब इहां स्पष्ट अर्थ जाननेकें अर्थि अष्ट वर्ष करनेका समयतैं पहले समयविषैं वा अष्ट वर्ष करनेके समयविषैं आगामी समयनिविषैं संभवता विधान कहिए है—

अडवस्से संपहियं पुव्विल्लादो असंखसंगुणियं।
उवरिं पुण संपहियं असंखसंखं च भागं तु[1] ॥ १३३ ॥

अष्टवर्षे साम्प्रतिकं पूर्वस्मात् असंख्यसंगुणितं।
उपरि पुनः साम्प्रतिकं असंख्यसंख्यं च भागं तु ॥ १३३ ॥

सं० टी०—सम्यक्त्वप्रकृतेरष्टवर्षाविशेषकरणसमयात्प्राक्तनानंतरसमये मिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिद्विचरमफालिपतनयोग्ये सम्यक्त्वप्रकृतिद्रव्यमिदं स a । १२ / ७ । ख । १७ । गु —यद्यपि गुणसंक्रमकालप्रथमसमयादारभ्य तत्कालचरमसमयपर्यंतं प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेण गुणसंक्रमद्रव्यमायाति स a । १२ – a / ७ । ख । १७ गु तथापि गुणसंक्रमसामान्यविवक्षया सम्यक्त्वप्रकृतिसत्त्वद्रव्यं लिखितं स a । १२ – / ७ । ख । १७ गु इदं 'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा' इत्यनेन विधानेन उदयप्रथमनिषेकादारभ्य विशेषहीनक्रमेण नानागुणहानिषु विद्यते•इति तथान्यासीकुर्यात्—



चरमफालि

१ ^
स a । ११ – १६ । व ८
७ । ख १७ । गु । १२ । १६
०
०
०
स a । १२ – १६ – २ ९
७ । ख । १७ । गु । १२ १६
१
स a । १२ – १६ – २ ९
७ । ख । १७ गु । १२ । १६
०
०
०
स a । १२ – १६ – १
७ । ख । १७ । गु १२ १६
स a । १२ – १६
७ । ख । १७ । गु १२ । १६ १ ^

अस्मिन् सत्त्वद्रव्ये तत्कालापकृष्टद्रव्यमिदं स a । १२ – / ७ ख १७ गु ओ / a पल्यासंख्यातभागेन खंडयित्वा तद्बहुभागं स a । १२ – प / a / ७ ख १७ गु ओ प / a a

उपरितनस्थितौ 'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे' इत्यादिविधानेनापकृष्टमप्याबाधोऽतिस्थापनावलिं मुक्त्वा विशेषहीनक्रमेण

दद्यात्। पुनस्तदेकभागं स ३ । १२ − / ७ ख १७ गु ओ प / ३ ३ पल्यासंख्यातभागेन खंडयित्वा बहुभागं स ३ । १२ − प १ / ३ / ७ ख १७ गु ओ प प / ३ ३ ३

गुणश्रेण्यां दद्यात्। अवशिष्टैकभागं स ३ । १२ − १ / ७ ख १७ गु ओ प प / ३ ३ ३ उदयावल्यां दद्यात्। तन्निक्षेपन्यासोयं—

स ३ । १२ − ६४ / ७ । ख । १७ । गु । ओ । प ८५ गुणश्रेणि / ० ३ ३ / ०

स ३ । १२ − १६ − व ८ / ७ । ख १७ । गु । ओ । १२ । १६ / ० ३ / ०

स ३ । १२— / उपरितनस्थिति स । ख । १७ गु । ओ प ८५ / ३ ३

स ३ । १२ − १६ / ७ । ख । १७ । गु । ओ । १२ − १६ / ३

स ३ । १२ − १६ − ४ १ / ७ ख १७ गु ओ प प ४ १६ − ४ / ० ३ ३ ३ २ / ० उदयावलि

ख ३ । १२ − १६ १ / ७ । ख १७ गु ओ प प ४ । १६ − ४ / ३ ३ ३ २

अनेन गुणश्रेणिद्रव्येण सहितं सम्यक्त्वप्रकृतिसत्त्वद्रव्यं दृश्यमित्युच्यते, सर्वत्र तत्कालापकृष्टद्रव्यमुदयप्रथमसमयात्प्रभृति निक्षिप्यमाणं दीयमानं तेन सहितं सर्वसत्त्वद्रव्यं दृश्यमानमिति राद्धांतवचनात्। एवं निक्षिप्ते दृश्यमानन्यासोऽयं। तद्यथा—

उदयावल्यां दत्तद्रव्यं प्राक्तनसत्त्वद्रव्यस्यासंख्यातैकभागमात्रमिति तेन सत्त्वद्रव्यं साधिकं भवति। इदानीं गुणश्रेण्यां दत्तद्रव्यं प्राक्तनसत्त्वद्रव्यादसंख्यातगुणं गुणश्रेणिद्रव्यस्यापकर्षणभागहारसद्भावात् सत्त्वद्रव्यासंख्यातैकभागमात्रत्वदर्शनात्। कथं ततोऽसंख्यातगुणितं गुणश्रेणिद्रव्यमिति चेत् [1] पल्ये प्रविष्टासंख्यातभागहारबाहुल्यसामर्थ्यादिति ब्रूमः। अतः कारणात् गुणश्रेण्यायाममात्रसत्त्वनिषेकानिदानीं गुणश्रेण्यां निक्षिप्यमाननिषेकेष्वधिकं कुर्यात्। पुनरुपरितनस्थितौ गुणश्रेणिकरणेन निक्षिप्तं द्रव्यं तत्स्थितौ प्राक्तनसत्त्वद्रव्यस्यासंख्यातैकभागमिति सत्त्वद्रव्ये इदानीं निक्षिप्तद्रव्यमधिकं कुर्यात्। सत्त्वद्रव्यमपेक्ष्यापकृष्टद्रव्यस्यापकर्षणभागहारसद्भावात्। इदानीं निक्षिप्तद्रव्यं तदसंख्यातभागमात्रं सिद्धं। अत्र ऋणधनयोर्विवरणमुच्यते—

उपरितनस्थितौ प्राक्तनसत्त्वप्रथमनिषेक ऋणमिदं स ३ । १२ − २ ୨ / ७ । ख १७ गु १२ । १६। तदा निक्षिप्य द्रव्यमात्रं धनमिदं—स ३ । १२ − १६। / ७ । ख १७ गु ओ १२ । १६ / ३ तत्कालापकर्षणभागहारेण ऋणद्रव्यं समच्छेदीकृत्य द्व्यर्धगुणहानिमात्रसमय-

प्रबद्धस्य गुणकारभूतासंख्यातरूपाणि घनद्रव्यस्य •गुणकारभूतद्विगुणगुणहान्यामपनयेत् । अवशिष्टधनमिदं—
स ∂ । १२ – १७ – ∂ प्राक्तनोपरितनस्थितिसत्त्वप्रथमनिषेकेऽधिकं कुर्यात् । एवं कृते उपरितनस्थितिदृश्य-
७ । ख १७ गु ओ १२ १६
∂ ।
प्रथमनिषेक ईदृक् भवति स ∂ । १२ – १६ एवमुपरितनस्थितौ द्वितीयादिसत्त्वनिषेकेषु तत्कालाप-
७ ख । १७ । गु । १२ । १६
कृष्टनिक्षेपद्वितीयादिनिषेकान् ऋणभनविवरणावशिष्टान् प्रतिक्षिपेत् । एवं प्रक्षिप्ते द्वितीयादिदृश्यनिषेकाः प्रथमादिदृश्यनिषेकेभ्य एकैकचयहीना अवतिष्ठन्ते । एवं कृते मिश्रद्विकचरमफालिपतनयोग्ये गुणसंक्रमकालचरमसमये सम्यक्त्वप्रकृतिसर्वदृश्यद्रव्यन्यासोयं—

। १ ^
स ∂ । १२ – १६ – व ८ –
७ । ख १७ । गु । १२ । १६ उपरितन
०
०
। ०
स ∂ । १२ – १६
७ ख १७ गु १२ १६

। । १ ^
स ∂ । १२ – ६४ स ∂ १२ – १६ – ४
७ ख १७ गु ओ प ८५ ७ ख १७ गु १२ १६
० ∂ ∂ गुणश्रेणि ०
०
। ० ० उदयावलि
स ∂ । १२ – १ । ०
७ । ख १७ गु ओ प ८५ स ∂ । १२ – १६
∂ ∂ ७ ख १७ गु १२ १६

तदनंतरसमये मिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिचरमफालिद्वयद्रव्यमष्टवर्षसमयावस्थितिनिषेकप्रमाणेन प्रागुक्तसम्यक्त्वप्रकृतिसत्त्वेन—स ∂ । १२ – एतावता न्यूनद्वयर्धगुणहानिमात्रप्रथमसमयप्रबद्धप्रमाणं । मिस्सग इत्यादि-
७ । ख १७ गु
गाथाव्याख्यानोक्तविधानेन उदयाद्यवस्थितिगुणश्रेण्यामुपरितनस्थितौ चांतर्मुहूर्तोनाष्टवर्षप्रमितायां निक्षिपेत् । पुनस्तदनंतरसमये सर्वस्मात्सम्यक्त्वप्रकृतिद्रव्यादस्मादपकृष्टैकभागं स ∂ १२ – १ पल्यासंख्यातैकभागेन खंड-
७ । ख १७ गु ओ
यित्वा तदेकभागमुदयप्रथमसमयादारभ्यातीतानंतरचरमफालिगुणश्रेणिशीर्षपर्यंतं प्रति निषेकमसंख्यातगुणितक्रमेण निक्षिप्य तदुपरितनस्थितिप्रथमनिषेकेप्यसंख्यातगुणितमेव निक्षिपेत् । मिश्रद्विचरमफालिपतनसमयादारभ्य सम्यक्त्वप्रकृतिद्विचरमकांडकचरमफालिपतनपर्यंतमुदयाद्यवस्थितिगुणश्रेणिप्रतिज्ञानात् । शेषबहुभागं स ∂ । १२ – प
१ ^
∂
७ ख १७ गु ओ प
∂

उपरितनस्थितौ 'अद्धाणेण सव्वधणे खण्डिदे' इत्यादिविधानेन विशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत् । तस्मिन्नेव समये प्रथमकाण्डकप्रथमफालिद्रव्यस्याधः प्रवृत्तभागहारभक्तस्यैकभागहारमात्रं स ३ । १२— इदमपकृष्टद्रव्यस्या
७ । ख १ ९ ७ ९ छे
३ ३
स ३ । १२—संख्यातैकभागमात्रमिति मत्वापकृष्टद्रव्यैधिकं कृत्वा निक्षिप्तमिति न पृथग्लिख्येत । एवं
७ । ख १७ ९ छे
३ ३ ३
सम्यक्त्वप्रकृत्यष्टवर्षमात्रावशेषतृतीयादिसमयेष्वपि प्रथमकाण्डकद्विचरमफालिपतनसमयपर्यन्तं प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेणापकृष्टद्रव्यं फालिद्रव्यं च तत्कालोदयसमयादारम्य प्राक्तनानन्तरोपरितनस्थितिप्रथमनिषेकपर्यन्तमवस्थितगुणश्रेणिविधानेन तदुपरितनस्थितौ च विशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत् ।

१

पुनः प्रथमकाण्डकचरमफालिद्रव्यमिदम्—स ३ १२—३ । अस्योत्पत्तिक्रमोऽयम्—अन्तमुहूर्तमात्रा-
७ । ख १७ ९ ३
यामेन यद्येकं स्थितिकाण्डकमाकार्यते लांछयते तदाष्टवर्षमात्रायामे कियन्ति स्थितिकाण्डकानि लांछयते इति प्र २ ९ । फ १ । इ व ८ । त्रैराशिकेन स्थितिकाण्डकानि ९ एतावद्भिः काण्डकैः यद्येतावद् द्रव्यं निक्षिप्यते तदा एककाण्डकेन कियन्निक्षिप्यते इति—प फ इ, लब्धैककाण्डकद्रव्यं स ३ । १२—अस्मात्-
९ स ३ २२—कां ७ । ख १७ । ९
कां ७ ख १७ १
प्रथमादिद्विचरमफालिपर्यन्तमथाप्रवृत्तहारेण प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेण गृहीत्वा निक्षिप्तद्रव्यं काण्डकद्रव्यस्यासंख्यातैकभागमात्रं स ३ । १२ —अस्मिन् काण्डकद्रव्यादपनीतेऽवशिष्टबहुभागमात्रं चरमफालिद्रव्य-
७ । ख १७ ९ ३
मुत्पद्यते । एवं सर्वकाण्डकेषु चरमफालिद्रव्यानयनं ज्ञातव्यम् ।

तच्च प्रथमकाण्डकचरमफालिद्रव्यं पल्यासंख्यातभागेन खण्डयित्वा तदेकभागमुदयप्रथमसमयादारम्य द्विचरमफालिपतनसमयनिक्षिप्तद्रव्योपरितनस्थितिप्रथमनिषेकपर्यन्तमसंख्यातगुणितक्रमेण निक्षिप्य शेषबहुभागद्रव्यं तदुपरितनस्थितिनिषेकेषु विशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत् । एवं भवति 'अडवस्से संपहियं' इत्यादि सम्यक्त्वप्रकृतिस्थितेरष्टवर्षावशेषकरणसमये पतितमिश्रद्विकचरमफालिद्रव्यं स ३ १२ — इदं पुव्विल्लादोऽसंख-
७ । ख १७
संगुणियं प्राक्तनानन्तरसमये द्विचरमफालिपर्यन्तमागतगुणसंक्रमद्रव्येण स ३ । १२ — सहितात्सम्यक्त्व-
७ । ख १७ गु०
३
प्रकृतिसत्त्वद्रव्यात् स ३ । १२—असंख्यातगुणितं यथायोग्यगुणसंक्रमभागहारभक्तात्तद्भागहाररहितस्या-
७ । ख १७ गु०
संख्यातगुणितत्वसम्भवात् । 'उवरिं पुण संपहियं' अष्टवर्षद्वितीयसमयादारम्य प्रथमकाण्डकद्विचरमफालिपतनपर्यन्तमवकृष्टद्रव्यमष्टवर्षप्रथमसमयद्रव्यादसंख्यातगुणहीनं तत्रापकर्षणभागहारसम्भवात् । चरमफालिद्रव्यं तु अष्टवर्षप्रथमसमयद्रव्यात्संख्यातैकभागमात्रं काण्डकसंख्यया संख्यातप्रमितसर्वद्रव्यस्य विभक्तत्वात् ।। १३३ ।।

सं० चं०—अष्टवर्ष स्थिति करनेके समयतैं पहिले समय विषैं अनन्तरवर्ती पूर्व समयविषैं मिश्रमोहनी अर सम्यक्त्व मोहनीकी द्विचरम फालिका पतन हो है। तिस समयविषैं गुणसंक्रमकालका प्रथम समयतैं लगाय असंख्यात गुणा क्रम लीए गुणसंक्रमण द्रव्य होतैं जो सम्यक्त्व मोहनीका सत्व द्रव्य पाइए है सो 'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा' इत्यादि विधान करि तहां स्थितिविषैं सम्भवती जो नानागुणहानि तिनके निषेकनिविषैं पाइए है। तिस समयविषैं जो तिस द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ एक भागमात्र द्रव्य अपकर्षण कीया ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ बहुभाग तौ उपरितन स्थितिविषैं निक्षेपण करिए है तहां जिसका द्रव्य अपकर्षण कीया तिस निषेकका द्रव्यकौं तिस निषेकके नीचैं अतिस्थापनावली छोडि 'दिवड्ढ गुणहाणिभाजिदे पढमा' इत्यादि विधानकरि देना। बहुरि अवशेष एक भागकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां बहुभाग गुणश्रेणि आयामविषैं देना अर एक भाग उदयावलीविषैं देना। इहां अपकर्षणादि भए पीछैं जो विवक्षितविषैं सत्तारूप पूर्वै द्रव्य पाइए सो तौ सत्त्व द्रव्य कहिए। अर अपकर्षणादि कीया हूवा जो नवीन द्रव्य तहां मिलाया सो दीयमान द्रव्य कहिए। इन दोऊनिकौं मिलैं जो देखनेमैं आया द्रव्यका प्रमाण सो दृश्यमान द्रव्य कहिए। सो यहां उदयावलीविषै तौ दीयमान द्रव्य पूर्व सत्त्व द्रव्यके असंख्यातवें भागमात्र है ताकरि साधिक सत्त्व द्रव्यमात्र दृश्यमान द्रव्य तहां जानना अर गुणश्रेण्यायामविषैं दीयमान द्रव्य पूर्व सत्त्व द्रव्यतैं असंख्यातगुणा है। यद्यपि इहां गुणश्रेणिविषैं दीया द्रव्य सर्व सत्त्वद्रव्यके असंख्यातवें भागमात्र है तथापि निषेक इहां थोरे हैं तातैं असंख्यातगुणा पाइए है। तिस विषैं पूर्व सत्त्वद्रव्य साधिक कीएं तहां दृश्यमान द्रव्य होइ अर उपरितन स्थितिविषैं दीयमान द्रव्य पूर्व सत्त्वद्रव्यके असंख्यातवें भागमात्र है। ताकरि अधिक सत्व द्रव्य कीएं तहाँ दृश्यमान द्रव्य हो है। तहाँ उपरितन स्थितिके जे प्रथमादि निषेक तिनिविषैं अपकर्षण करि जेता द्रव्य घटाया सो तौ ऋण जानना। बहुरि जो इहाँ निक्षेपण कीया द्रव्य सो धन जानना सो धनविषैं ऋण घटाइ अवशेषकौं पूर्व सत्त्व विषैं मिलाएं द्वितीयादि निषेक हैं ते प्रथमादि निषेकनितैं एक एक चय करि घटता क्रमतैं होंइ ऐसैं करतैं मिश्र सम्यक्त्व मोहनीकी द्विचरम फालिका जाविषैं पतन होइ तिस गुण संक्रमकालका अन्त समयविषैं सम्यक्त्व मोहनीके दृश्य द्रव्यका प्रमाण आवै है। बहुरि ताके अनन्तरवर्ती अष्टवर्ष स्थिति करनेका समय तिसविषैं मिश्रमोहनी सम्यक्त्व मोहनीकी अन्त दोय फालिका द्रव्य सो अष्टवर्षके जेते समय तितने सम्यक्त्व मोहनीके निषेकनिका द्रव्य प्रमाणकरि हीन ऐसे किंचिदून द्वयर्ध गुणहानिमात्र हैं ताकौं 'मिस्सदुगे' इत्यादि गाथा व्याख्यानविषैं जैसैं पूर्वै वर्णन कीया है तैसैं उदयादि अवस्थित गुणश्रेणि आयाम वा उपरितन स्थितिविषैं द्रव्य देनेका विधान जानना। बहुरि ताके अनन्तरवर्ती जो अष्ट वर्ष स्थिति करनेका द्वितीय समय तिसविषैं सर्व सम्यक्त्व मोहनीका द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ तहाँ एक भाग ग्रहि ताकौं पल्यका असंख्यातवाँ भागका भाग देइ तहाँ एक भाग तौ उदयरूप प्रथम समयतैं लगाय अष्टवर्ष करनेके समय जो गुणश्रेणि आयाम था ताका शीर्ष पर्यंत अर एक समय व्यतीत भया सो एक समय उपरितन स्थितिका मिलाएं जो उदयादि अवस्थिति गुणश्रेणि आयाम ताके निषेकनिविषैं असंख्यातगुणा क्रमकरि निक्षेपण करना। अर अवशेष बहुभागनिका द्रव्यकौं ताके उपरिवर्ती अवशेष रहा जो उपरितन स्थिति ताके निषेकनिविषैं 'अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे' इत्यादि विधानतैं चय घटता क्रमकरि निक्षेपण करना। बहुरि इस ही समयविषैं अन्तर्मुहूर्तमात्र

जो स्थितिकांडकायाम ताके निषेकनिका जो द्रव्य ताकौं पीठ बन्धविषैं उक्त प्रमाण लीएं जो अधःप्रवृत्त भागहार ताका भाग देइ एक भागका प्रमाणमात्र जो प्रथम फालिका द्रव्य सो अपकृष्टका द्रव्यके असंख्यातवें भागमात्र है ताकौं अपकृष्ट द्रव्यविषैं अधिक जानना। पूर्वें अपकृष्ट द्रव्य दीया ताकी साथि फालि द्रव्य भी दीया सो सर्व द्रव्यकौं अपकर्षण भागहार दीएं प्रमाण आया था ताका नाम अपकृष्ट द्रव्य जानना। अर स्थिति कांडकायाममात्र निषेकनिका जो द्रव्य ताकौं कांडक द्रव्य कहिए ताकौं इहां अधःप्रवृत्तका भाग दीएं जो प्रमाण आया ताका नाम फालि द्रव्य है। बहुरि ऐसैं ही सम्यक्त्व मोहनीकी अष्टवर्ष स्थिति करनेका तीसरा समयतैं लगाय प्रथम कांडककी द्विचरम फालिका पतन समय पर्यंत समग्र समय असंख्यात गुणा क्रम लीएं जो अपकृष्ट द्रव्य वा फालि द्रव्य ताकौं एक समय व्यतीत भएं एक एक समय उपरितन स्थितिका मिलाएं भया जो उदयादि अवस्थिति गुणश्रेणि आयाम ताविषैं असंख्यात गुणा क्रमकरि अर तातैं उपरितन स्थितिविषैं चय घटता क्रमकरि देना। बहुरि कांडककालका अन्त समयविषै अंत फालिका पतन हो है। ताके द्रव्यका प्रमाण ल्याइए है—जो अन्तर्मूहूर्त आयाम लीएं एक कांडक होइ तो अष्टवर्ष स्थितिविषै केते कांडक होंइ? ऐसै त्रैराशिक कीएं कांडकनिका प्रमाण संख्यात आया बहुरि जो इन सर्व कांडकनि करि सम्यक्त्व मोहनीका सर्व द्रव्य निक्षेपण करिए तौ एक कांडकविषै केता करिए ऐसैं त्रैराशिक करि कांडक द्रव्यका प्रमाण सम्यक्त्व मोहनीका द्रव्यके संख्यातवें भागमात्र आवै है। बहुरि याकौं अधःप्रवृत्त भागहारका भाग दीएं प्रथम फालिका द्रव्य होइ तातैं असंख्यात भाग गुणा क्रम लीएं द्विचरम फालिनिका द्रव्य होइ। सो इन सर्व फालिनिका द्रव्य कांडक द्रव्यके असंख्यातवें भागमात्र भया। ताकौं तिस कांडकद्रव्यविषैं घटाएं अवशेष अंत फालिका द्रव्य जानना। ऐसैं सर्व कांडकनिविषैं अंत फालिके द्रव्यका प्रमाण ल्यावनेका विधान जानना। सो याका उदयादि अवस्थिति गुणश्रेणि आयामविषैं असंख्यात गुणा क्रमकरि अर उपरितन स्थितिविषैं चय घटता क्रमकरि निक्षेपण करना ऐसैं विधान जानि इस गाथाका अर्थ ऐसे जानना। जो 'अडवस्से संपहियं' कहिए अष्टवर्ष स्थिति अवशेष करनेका समयविषैं जो मिश्र सम्यक्त्व मोहनीकी अन्त दोय फालिनिका द्रव्य है सो 'पुव्विल्लादो असंखसंगुणियं' कहिए यातैं पूर्व समय संबंधी द्विचरम फालिका अंत पर्यंत जो गुण संक्रम द्रव्य सहित जो सम्यक्त्व मोहनीका सत्व द्रव्य तातैं असंख्यात गुणा है। जातैं तहां यथायोग्य गुण संक्रमका भागहार संभवै है। इहां अंत दोय फालिनिका द्रव्यविषैं सो नाही है तातैं असंख्यात गुणापना जानना। बहुरि 'उवरिं पुण संपहियं' कहिए ऊपरि अष्टवर्ष करनेका द्वितीय समयतैं लगाय अष्टवर्ष करनेका प्रथम समयसंबंधी जो दोय फालिनिका द्रव्य तातै 'असंख संखं च भागं तु' कहिए प्रथम कांडककी द्विचरम फालि पर्यंत तौ असंख्यातवें भागमात्र ही दीयमान द्रव्य है। जातैं तहां अपकर्षण भागहार सर्व द्रव्यकौं दीएं अपकृष्ट द्रव्य हो है। अर अंत फालिका द्रव्य संख्यातवें भागमात्र है। जातैं सर्व द्रव्यकौं कांडक प्रमाणमात्र संख्यातका भाग देइ किंचिदून कीएं अंतफालिका द्रव्य हो ॥ १३३ ॥

ठिदिखंडाणुक्कीरण दुचरिमसमओ त्ति चरिमसमये च।
ओक्कड्डिदफालिगदव्वाणि णिसिंचदे जम्हा ॥ १३४ ॥

स्थितिखण्डानुत्कीरणं द्विचरमसमय इति चरमसमये च।
अपकर्षितफालिगतद्रव्याणि निसिंचति यस्मात् ॥ १३ ॥

सं० टी०—अष्टवर्षप्रथमसमयद्रव्याद् द्वितीयादिसमयेषु स्थितिकाण्डकोत्करणकालद्विचरमसमय-पर्यन्तेषु अपकृष्टद्रव्यस्यासंख्यातगुणहीनत्वे चरमकाण्डकप्रथमफालिद्रव्यस्य संख्यातगुणहीनत्वे च कारणोपन्या-सार्थं सूत्रमिदमागतं । तथाहि—

सम्यक्त्वप्रकृतेरष्टवर्षमात्रस्थितेरन्तमुहूर्तमात्रायामस्थितिकाण्डकानि अष्टवर्षकरणद्वितीयसमये प्रारब्धानि । तेषां प्रथमादिद्विचरमकाण्डकपर्यन्तानां स्थितिकाण्डकानां प्रत्येकमुत्करणकालः यथायोग्यान्त-र्मुहूर्तमात्रः । तत्प्रथमसमयादारभ्य तद्द्विचरमसमयपर्यन्तं फालिद्रव्यसहितमपकृष्टद्रव्यं निक्षिप्यते । तच्च सम्यक्त्वप्रकृतिसत्त्वद्रव्यादपकर्षणभागहारवशात् असंख्यातगुणहीनं जातम् । स्थितिकाण्डकोत्करणकालचरम-समये चरमफालिद्रव्यं सर्वद्रव्यस्य संख्यातैकभागमात्रं दीयते इति हेतोः 'उवरिं पुण संपहियं असंख-संखं च भागं तु' इत्यनन्तरातीतगाथापश्चार्धकथितोऽर्थः सिद्धः ॥ १३४ ॥

सं० चं०—सम्यक्त्वमोहनीयकी अष्टवर्षप्रमाण स्थितिके अन्तर्मुहूर्तमात्र आयाम लीएं स्थितिकाण्डक अष्टवर्ष करनेके दूसरे समयविषैं प्रारम्भ लीएं तिनिका स्थितिकाण्डकोत्करण काल यथासम्भव अन्तर्मुहूर्तमात्र है। जिस कालके प्रथम समयतैं लगाय द्विचरम समय पर्यन्त फालिद्रव्य सहित अपकृष्ट द्रव्य निक्षेप करिए है सो सम्यक्त्वमोहनीके सत्त्व द्रव्यतैं असंख्यातगुणा घटता है, जातैं तहां अपकर्षण भागहार सम्भवे है। बहुरि ताका अंत समयविषैं जो अंतफालिका द्रव्य दीजिए है सो सर्वद्रव्यके संख्यातवें भागमात्र है। यातैं पूर्व कह्या 'उवरिं पुण संपहियं असंख-संखं च भागं तु' ताका अर्थ सिद्ध भया ॥ १३४ ॥

अडवस्से संपहियं गुणसेढीसीसयं असंखगुणं ।
पुव्विल्लादो णियमा उवरिं विसेसाहियं दिस्सं ॥ १३५ ॥

अष्टवर्षे सांप्रतिकं गुणश्रेणिशीर्षकं असंख्यगुणं ।
पूर्वस्मात् नियमात् उपरि विशेषाधिकं दृश्यम् ॥ १३५ ॥

सं०टी०—अष्टवर्षकरणप्रथमसमये निक्षिप्तमिश्रद्विकफालिद्रव्यस्योपरितनस्थितिप्रथमनिषेकद्रव्यं दृश्यं

।
स a १२ - १६ इदम् अस्मिन् प्रस्तावे गुणशीर्षमुच्यते । तस्याधस्तनाद् गुणश्रेणिचरमनिषेकाद्
१०
७ । ख । १७ । व ८ – १६ – व ८ –
२

रूपोनपल्यासंख्यातगुणकारेण गुणित्वात् गुणस्य गुणकारस्य श्रेणिः पंक्तिः गुणश्रेणिः तस्याः शीर्षमग्रमवसानमिति व्युत्पत्त्याश्रयेणोपरितनस्थितिप्रथमनिषेकस्य गुणश्रेणिशीर्षत्वसिद्धेः । इदं पूर्वस्मात् मिश्रद्वयद्विचरमफालिपतन-समयगुणश्रेणिशीर्षदृश्यद्रव्यात् स a । १२ – ६४ असंख्यातगुणमेव नान्यथा । उपर्यष्टवर्षसमयगुणश्रेणिशीर्ष-
७ । ख । १७ प ८५
a

दृश्यद्रव्यं पूर्वस्मात् अष्टवर्षप्रथमसमयगुणश्रेणिशीर्षदृश्यद्रव्याद् विशेषाधिकमेव नासंख्यातगुणम् । तथाहि—

।
अष्टवर्षप्रथमसमयगुणश्रेणिशीर्षदृश्यद्रव्यमिदम् स a । १२ – १६ अस्य द्वितीयसमये आगतं धन-
१०
७ । ख । १७ । व ८ – १६ व ८ –

मिदम् स ə । १२— ६४ अष्टवर्षोपरितनस्थितिद्वितीयनिषेकदृश्यद्रव्यमिदम् स ə । १२ - १६ - १
७ ख १७ ओ प ८५ १ॱ
ə ७।ख।१७।व८–१६–व८ –
२

तस्य ऋणमेकविशेषमात्रमिदम्—स ə १२ – १६ १ॱ । द्वितीयसमये गुणश्रेणिशीर्षद्रव्यमिदम्—
७ । ख । १७ ओ व ८ – १६ – ८
२

स ə । १२ – १६ १ॱ । अस्मात् प्राक्तनअवयवमात्रऋणमसंख्यातगुणहीनं द्विगुणगुणहानिमात्र-
७ ख । १७ । ओ व ८ – व १६ – ८
२

गुणकाराभावात् । द्वितीयसमयगुणश्रेणिचरमनिषेकद्रव्यम् स ə । १२ – ६४ । इदं वासंख्यातगुणहीनं रूपोन-
७ ख । १७ ओ प ८५
ə

पल्यासंख्यातमात्रगुणकाराभावात् । एतदेकचयमात्रऋणद्रव्यं द्वितीयसमयगुणश्रेणिचरमनिषेकद्रव्यं च तद्गुणश्रेणिशीर्षद्रव्ये किंचिन्न्यूनं कृत्वा द्विगुणहान्या अपकर्षणभागहारमपवर्त्य अवशिष्टासंख्यातरूपाणि—
स ə १२ – ə १ॱ अष्टवर्षप्रथमसमयगुणश्रेणिशीर्षसमाने तदनन्तरोपरितननिषेके निक्षिपेत् ।
७ ।ख १७ व ८ – १६ – व ८ –
२

एवं कृते अष्टवर्षप्रथमसमयगुणश्रेणिशीर्षदृश्यद्रव्यात् तद्द्वितीयगुणश्रेणिशीर्षदृश्यद्रव्यं साधिकमेव भवति—
स ə १२ – १६ १ॱ एवं तृतीयादिसमयेषु गुणश्रेणिशीर्षद्रव्याणि पूर्व-पूर्वगुणश्रेणिशीर्षद्रव्यात्
७ । ख १७ व ८ – १६ – व ८
२

साधिकमेव, नान्यथा ।। १३५ ।।

सं० चं०—गुणश्रेणिआयामका अन्तका निषेक ताकौं इहां गुणश्रेणिशीर्ष कहिए, जातैं गुण जो असंख्यातका गुणकार ताकी श्रेणि कहिए पंक्ति ताका शीर्ष कहिए अग्रभाग सो गुणश्रेणि-शीर्ष कहिए। तहाँ अष्टवर्ष करनेके समयविषैं गुणश्रेणिका शीर्ष जो अवस्थित गुणश्रेण्यायाम-विषैं उपरितन स्थितिका एक निषेक मिलाया था सो जानना। ताके पूर्व सत्त्वद्रव्यकौं अर निक्षेपण कीया द्रव्यकौं मिलाएं दृश्यमान द्रव्यका जो प्रमाण है सो याके अनन्तर पूर्व समय-संबंधी गुणश्रेणिशीर्षका दृश्यमान द्रव्य तौ ऊपरि अष्टवर्ष करनेका द्वितीयादि समयसंबन्धी गुणश्रेणिशीर्षका द्रव्य क्रमतैं पूर्व पूर्व गुणश्रेणिशीर्षका द्रव्यतैं विशेष करि अधिक है, असंख्यातगुणा नाहीं है। ताका स्वरूप संदृष्ट्यादिककरि संस्कृत टीकातैं व संदृष्टि वर्णनविषैं जानना ।। १३५ ।।

अडवस्से य ठिदीदो चरिमेदरफालिपडिददव्वं खु ।
संखासंखगुणूणं तेणुवरिमदिस्समाणमहियं सीसे ।। १३६ ।।

अष्टवर्षे च स्थितितश्चरिमेतरफालिपतितद्रव्यं खलु ।
संख्यासंख्यगुणोनं तेनोपरिमदृश्यमानमधिकं शीर्षे ।। १३६ ।।

सं० टी०—पूर्व-पूर्वगुणश्रेणिशीर्षदृश्यद्रव्यादुत्तरोत्तरसमयगुणश्रेणिशीर्षदृश्यद्रव्यं विशेषाधिकमित्यत्रो-पपत्तिदर्शनार्थमिदमाह । तद्यथा—

अष्टवर्षप्रथमसमये उदयादिचरमस्थितिपर्यंतं ये निषेकाः संति तेष्वेकैकनिषेकं प्रेक्ष्य प्रथमकांडक-

चरमफालिद्रव्यस्योदयादिचरमस्थितिपर्यंतं निक्षेप्यनिषेकाः प्रत्येकं संख्यातगुणहीना दीयंते। अष्टवर्षद्वितीयसमयादिप्रथमकांडकद्विचरमफालिपतनसमयपर्यंतमपकृष्टद्रव्यस्य ये निषेकास्ते पुनः प्रत्येकमसंख्यातगुणहीना निक्षिप्यंते। ततः कारणात्तत्र तत्र विवक्षितसमये अपकृष्टद्रव्यस्य गुणश्रेणिशीर्षद्रव्यं तदधस्तननिषेकद्रव्यादसंख्येयगुणं धनमागच्छति इति गुणश्रेणिशीर्षनिषेके दृश्यं विशेषाधिकमिति भावः ॥ १३६ ॥

सं० च०—अष्टवर्ष करनेका प्रथम समयविषैं मिश्र सम्यक्त्वमोहनीकी अंत दोय फालीनिका द्रव्य दीया संता उदयरूप प्रथम समयतैं लगाय स्थितिका अन्त समयपर्यन्त संबंधी निषेक जे सत्तारूप पाइए है तिनिविषै प्रथमकांडककी अंत फालिका द्रव्यकौं कांडककालका अंत समयविषैं जो निक्षेपण कीया तिसका प्रमाण एक एक निषेकविषैं पूर्वसत्तारूप द्रव्यका प्रमाणतैं संख्यातगुणा घटता जानना। अर अष्टवर्ष स्थिति करनेका द्वितीय समयतैं लगाय प्रथम कांडककी द्विचरम फालिका पतन समय पर्यंत समयनिविषैं जो अपकर्षण कीया द्रव्यकौं तिनि निषेकनिविषैं निक्षेपण कीया तिसका प्रमाण एक-एक निषेकनिविषैं पूर्वसत्तारूप द्रव्यका प्रमाणतैं असंख्यातगुणा घटता जानना। जातैं विवक्षित समयविषैं अपकर्षण कीया द्रव्य जो गुणश्रेणिशीर्षविषैं दीया सो ताके नीचेके निषेकविषै दीया अपकृष्ट द्रव्यतैं असंख्यातगुणा धन आवै है। बहुरि सर्व सत्तारूप द्रव्य अर निक्षेपण कीया द्रव्यकौं मिलाएं जो दृश्यमान द्रव्य भया सो पूर्व-पूर्व समयसंबंधी गुणश्रेणिशीर्षका द्रव्यतैं उत्तर-उत्तर समयसंबंधी गुणश्रेणिशीषका द्रव्य किछू विशेष करि ही अधिक है, गुणकाररूप नाही है ॥ १३६ ॥

जदि गोउच्छविसेसं रिणं हवे तो वि धणपमाणादो।
जम्हा असंखगुणूणं ण गणिज्जदि तं तदो एत्थ ॥ १३७ ॥

यदि गोपुच्छविशेषं ऋणं भवेत् तथापि धनप्रमाणात्।
यस्मादसंख्यगुणोनं न गण्यते तत्ततोऽत्र ॥ १३७ ॥

सं० टी०—अनन्तरोक्तविधानेन गुणश्रेणिशीर्षनिषेके दृश्यद्रव्यं तदधस्तनगुणश्रेणिशीर्षद्रव्याद्विशेषाधिकमित्यत्र एकचयमात्रं ऋणमस्तीत्याशंक्य तत्परिहारार्थमिदं सूत्रमाह। यद्यपि अष्टवर्षद्वितीयसमयेऽपकृष्टद्रव्यस्य गुणश्रेणिशीर्षनिक्षिप्तनिषेकद्रव्यादष्टवर्षप्रथमसमयगुणश्रेणिशीर्षस्योपरितनानन्तरनिषेकगतऋणमसंख्येयगुणहीनं यस्मात्कारणात्तेन कारणेनोपरितनगुणश्रेणिशीर्षदृश्यमानं साधिकमेवेति निर्णेतव्यम्। धनादृणस्यासंख्यातगुणहीनत्वेनाणगत्वात्। यावच्च य एतदृशो वर्तते तावत् गोपुच्छविशेष इत्युच्यते, क्रमहान्यपेक्षया गोपुच्छ इव गोपुच्छ इति गौणशब्दाश्रयणात् ॥ १३७ ॥

सं० चं०—जैसे गौका पूंछ क्रमतैं घटता हो है तैसें चय घटताक्रम जहां होइ तहां गोपुच्छ कहिए। अर यावत् समान चय होइ तावत् गोपूच्छ विशेष कहिए। सो नीचले गुणश्रेणिनिषेकका सत्त्व द्रव्यतै ऊपरिके गुणश्रेणिशीर्षका सत्त्वद्रव्यविषैं गोपुच्छ विशेषमात्र यद्यपि ऋण है। भावार्थ—यहु निषेकनिविषैं चय घटता क्रमतैं है तातैं पूर्व समयसंबंधी गुणश्रेणिशीर्षका सत्त्व द्रव्यतै उत्तर समयसम्बन्धी गुणश्रेणिशीर्षका सत्त्व द्रव्यविषैं चयप्रमाण द्रव्य घटता चहिए ताकौं न घटाया अर विशेष अधिक अधिक कह्या सो कारण कहा? ऐसै प्रश्न कीएं उत्तर कहै है—जु यद्यपि ऐसैं हैं तथापि बहु मिलाया हुआ जो अपकृष्ट द्रव्य तातैं यहु चयप्रमाण घटता द्रव्य है सो असंख्यातगुणा घटता है, सो इहां घटावने योग्य ऋणकौं मिलावने योग्य धनतैं असंख्यातवें भाग जानि स्तोकपनेतैं गिण्या नाहीं। पूर्व गुणश्रेणिशीर्षका दृश्य द्रव्यतैं उत्तर गुणश्रेणिशीर्षका द्रव्य विशेष अधिक ही कह्या ॥ १३७ ॥

तत्तक्काले दिस्सं वज्जिय गुणसेढिसीसयं एक्कं ।
उवरिमठिदीसु वट्टदि विसेसहीणक्कमेणेव ॥ १३८ ॥

तत्तत्काले दृश्यं वर्जयित्वा गुणश्रेणिशीर्षकमेकम् ।
उपरिमस्थितिषु वर्तते विशेषहीनक्रमेणैव ॥ १३८ ॥

सं० टी०—एवमुक्तप्रकारेण सम्यक्त्वप्रकृतिद्रव्यं यदा यदा अपकृष्टया उदयादिस्वस्थितिचरमसमयपर्यन्तनिषेकेषु निक्षिप्यते तस्मिन् तस्मिन् समये गुणश्रेणिशीर्षद्रव्यं दृश्यमेकैकं वर्जयित्वा तदुपरितनसर्वनिषेकेषु तत्तत्कालभाविदृश्ये विशेषहीनक्रमेणैव वर्तते, तत्र प्रकारान्तरासम्भवात् । एवमष्टवर्षमात्रसम्यक्त्वप्रकृतिस्थितेः प्रथमकाण्डकविधानेनैव द्विचरमकाण्डकचरमफालिपर्यन्तं अपकृष्टफालिद्रव्ययोर्निक्षेपक्रमो दृश्यक्रमश्चाव्यामोहेन ज्ञातव्यः ॥ १३८ ॥

सं० चं०—ऐसैं कहे विधान तैं जिस जिस विवक्षित समयविषैं सम्यक्त्वमोहनीका द्रव्यकौं अपकर्षण करि उदयादि स्थितिका अंतपर्यंत निषेकनिविषैं निक्षेपण करै है तिस तिस समयविषैं गुणश्रेणिशीर्षरूप भया जो एक एक निषेक ताकौं छोड़ि ताके उपरिवर्ती जे उपरितन स्थितिके सर्व निषेक तिनिविषैं तत्काल संभवना जो दृश्यमान द्रव्य सो विशेष घटना अनुक्रम लीएं ही जानना । जातैं तहां दीया द्रव्य वा पूर्वद्रव्य चयघटताक्रम लीएं ही है । या प्रकार अष्ट वर्षमात्र सम्यक्त्वमोहनीकी स्थितिविषैं जैसैं प्रथमकांडकका विधान कह्या तैसैं ही द्वितीय कांडकादि द्विचरम कांडककी अंतफालिपर्यंत अपकृष्टि द्रव्य अर फालि द्रव्य तिनिके निक्षेप करनेका अनुक्रम अर भया जो दृश्यमान द्रव्य ताका अनुक्रम जानना । ऐसैं अष्ट वर्षस्थिति अवशेष करनेका समयतैं लगाय सम्यक्त्वमोहनीका अंतकांडकतैं पहिला जो द्विचरमकांडक ताकी अंतफालिका पतन समयपर्यंत क्षपणाविधान कहि अब अंतकांडकका विधान कहिए है—

गुणसेढिसंखभागा तत्तो संखगुण उवरिमठिदीओ ।
सम्मत्तचरिमखंडा दुचरिमखंडादु संखगुणं ॥ १३९ ॥

गुणश्रेणिसंख्यभागाः ततः संख्यगुणं उपरितनस्थितयः ।
सम्यक्त्वचरमखंडो द्विचरमखंडात् संख्यगुणः ॥ १३९ ॥

सं० टी०—अष्टवर्षप्रथमसमयादारम्भ सम्यक्त्वप्रकृतेर्द्विचरमकाण्डकचरमफालिपतनसमयपर्यन्तं क्षपणविधानमभिधाय इदानीं तच्चरमकाण्डकप्रमाणमल्पबहुत्वपुरस्सरं प्रतिपादयितुमिदमाह । या अष्टवर्षप्रथमसमयादारभ्योदयाद्यवस्थितायामा अत्र यावत् गुणश्रेणिकृता तस्यास्संख्यातबहुभागैः २ ७ । ३/४ अपूर्वकरणप्रथमसमयादारभ्याष्टवर्षातीतानन्तरसमयपर्यन्तं या गलितावशेषायामा गुणश्रेणिः कृता तस्या अपूर्वानिवृत्तिकरणकालद्वयादधिकशीर्षस्य २ ७/४ संख्यातैकभागेन २ ७/४।४ अवस्थितिगुणश्रेणिशीर्षस्योपरितनस्थितौ द्विचरमकाण्डकस्याधः यावन्तो निषेका अवशिष्टास्तैश्चावस्थितिगुणश्रेणिबहुभागसंख्यातगुणैः २ ७ ४४४ परिमितं सम्यक्त्वप्रकृतिचरमकाण्डकमिदानीं लांछितम् । पुरातनगलितावशेषगुणश्रेण्यधिकशीर्षसंख्यातैकभागादारभ्योपरितनस्थित्यवशिष्टचरमनिषेकपर्यन्तं चरमकाण्डकप्रमाणमित्यर्थः । इदं द्विचरमकाण्डकायामप्रमाणात्

२ ❷ ४ । ४ संख्यातगुणितं सदपि तद्योग्यान्तर्मुहूर्तप्रमाणमेवेति ग्राह्यम् । तथा सति तच्चरमकाण्डकप्रमाण-
१—

मियद् भवति २ ❷ । ४ । ४ । ४ । चरमकाण्डकमधः अवशिष्टप्रमाणं च २ ❷ । ४ इदमवस्थितिगुण-
४

श्रेण्यायामसंख्यातैकभागमात्रं भवदपि गलितावशेषगुणश्रेण्यधिकशीर्षसंख्यातबहुभागमात्रेण कृतकृत्यवेदककालेन काण्डकोत्करणकालप्रमितेनानिवृत्तिकरणकालगलितावशेषेण च २ ❶ । निष्पन्नप्रमाणं २ ❷ । ४ अपवर्तिते
४ । ४ ४ । ४

एवं २ ❷ ॥ १३९ ॥

सं० चं०—अष्ट वर्ष स्थिति करनेका प्रथम समयतैं लगाय इहां द्विचरम कांडकका अंत पर्यंत जो अवस्थिति गुणश्रेणि आयाम है ताकौं संख्यात भाग दीएं तहां बहुभागनिका जो प्रमाण अर अपूर्वकरणका प्रथम समयतैं लगाय आठ वर्ष स्थिति करनेका समयतैं पूर्व समय पर्यंत जो गलितावशेष गुणश्रेणि आयाम था ताविषैं जो अनिवृत्तिकरण कालका संख्यातवां भागमात्र जो गुणश्रेणि शीर्ष कह्या ताकौं संख्यानका भाग दीएं एक भागका जो प्रमाण अर अवस्थिति गुणश्रेणिका अंत निषेकरूप जो शीर्ष ताके ऊपरिवर्ती निषेकरूप जो उपरितन स्थिति तीहि विषैं द्विचरम कांडक विषैं जिनि निषेकनिका अभाव कीया तिनिके नीचैं जे निषेक अवस्थिति गुणश्रेणि आयामका बहुभागतैं संख्यातगुणे अवशेष रहे। ऐसैं अवस्थिति गुणश्रेणि आयामका संख्यातवां भाग अर गलितावशेष गुणश्रेणिका संख्यातवां भाग अर उपरितन स्थितिके अवशेषनिषेक इन तीनोंकौं जोड़ैं जो प्रमाण होइ सोई अंतकांडकायामका प्रमाण है। भावार्थ यह—गलितावशेष गुणश्रेणि आयामका संख्यातवां भागतैं लगाय उपरितन स्थितिके जे निषेक अवशेष रहे तिनिका अंतपर्यंत अंत कांडकायामका प्रमाण है। सो यहु द्विचरमकांडकायामका प्रमाण तौ संख्यातगुणा है तौ भी यथायोग्य अंतर्मुहूर्तमात्र हो है। बहुरि तिस अंतकांडक करि घात कीएं पीछैं जो नीचैं अवशेष स्थिति रहै ताका प्रमाण अवस्थिति गुणश्रेणि आयामके संख्यातवें भागमात्र है सो पूर्वैं जो गलितावशेष गुणश्रेणि आयामविषैं अनिवृत्तिकरण कालका संख्यातवें भागमात्र जो गुणश्रेणि शीर्ष कह्या था ताकौं संख्यातका भाग दीएं बहुभागमात्र तौ कृतकृत्य वेदक काल अर व्यतीत भए पीछैं अवशेष रह्या जो अनिवृत्तिकरणका काल तीहिं प्रमाण अंतकांडकोत्करण काल इनि दोऊनिकौं मिलाएं तिस अवशेष स्थितिका प्रमाण हो है ॥ १३९ ॥

सम्मत्तचरिमखंडे दुचरिमफालि त्ति तिण्णि पव्वाओ ।
संपहियपुव्वगुणसेढीसीसे सीसे य चरिमम्हि ॥ १४० ॥

सम्यक्त्वचरमखण्डे द्विचरमफालीति त्रीणि पर्वाणि ।
साम्प्रतिकपूर्वगुणश्रेणिशीर्षे शीर्षे च चरमे ॥ १४० ॥

सं० टी०—सम्यक्त्वप्रकृतिचरमखण्डप्रथमफालिपतनसमयादारभ्य तद्द्विचरमफालिपतनसमयपर्यन्तं तत्काण्डकोत्करणकाले फालिद्रव्यस्यापकृष्टद्रव्यस्य च निक्षेपविशेषविधानार्थमिदं सूत्रमाह—**नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती** । तद्यथा—

तत्र सम्यक्त्वप्रकृतिचरमकाण्डकप्रथमफालिपतनसमये या उदयाद्यवशिष्टस्थितिचरमनिषेकपर्यन्ता-यामा गलितावशेषमात्री गुणश्रेणि।रब्धा तच्छीर्षपर्यन्तमेकं पर्व, ततः परं पूर्वावस्थितगुणश्रेणिशीर्षपर्यन्तमेकं पर्व, ततः परमुपरितनस्थितिचरमनिषेकपर्यन्तमेकं पर्व इति द्रव्यनिक्षेपे पर्वत्रयं रचयितव्यम् । अत्रायं विशेषः—फालिद्रव्यनिक्षेपे प्रथममेकमेव पर्व । अपकृष्टद्रव्यनिक्षेपे तु त्रीण्यपि पर्वाणि भवन्तीति ज्ञातव्यम् ।। १४० ।।

सं० चं०—सम्यक्त्व मोहनीका अंतका काण्डक ताकी प्रथम फालिका पतन समयतैं लगाय द्विचरम फालिका पतन समय पर्यन्त द्रव्य निक्षेपण करनेविषैं तीन पर्व जानने । पर्व नाम विभागका है । सो विभाग करि तीन जायगा द्रव्य देना । तहां अंतकोत्करण कालका प्रथम समयविषैं जाका आरंभ भया ऐसा जो उदयरूप प्रथम समयतैं लगाय अवशेष स्थितिका अंतनिषेक पर्यंत इहां जाका प्रारंभ भया ऐसा जो गुणश्रेणि आयाम ताका शीर्षपर्यंत तो एक पर्व जानना । बहुरि तातैं पूर्वें जो अवस्थित गुणश्रेणि आयाम ताका शीर्ष पर्यंत दूसरा पर्व जानना । बहुरि तातैं उपरिवर्ती जो उपरितन स्थिति ताका प्रथम समयतैं लगाय अंत समय पर्यंत तीसरा पर्व जानना । तहां कांडक द्रव्यविषैं ग्रहण कीया जो फालिद्रव्य ताका निक्षेपण तौ पहले ही पर्वविषै हो है । अर सर्व द्रव्य विषैं अपकर्षण कीया जो अपकृष्ट द्रव्य ताका निक्षेपण तीनौं पर्वविषैं हो है ऐसा जानना ।। १४० ।।

तत्थ असंखेज्जगुणं असंखगुणहीणयं विसेसूणं ।
संखातीदगुणूणं विसेसहीणं च दत्तिकमो ।। १४१ ।।

ओक्कड्डिदबहुभागे पढमे सेसेक्कभाग-बहुभागे ।
विदिये पव्वे वि सेसिगभागं तदिये जहा देदि ।। १४२ ।।

तत्रासंख्येयगुणं असंख्यगुणहीनकं विशेषोनम् ।
संख्यातीतगुणोनं विशेषहीनं च दत्तिक्रमः ।। १४१ ।।

अपकर्षितबहुभागे प्रथमे शेषैकभागबहुभागे ।
द्वितीये पर्वेऽपि शेषैकभागं तृतीये यथा ददाति ।। १४२ ।।

सं० टी०—प्राक् रचितपर्वे द्रव्यनिक्षेपक्रमविशेषप्रतिपादनार्थं गाथाद्वयमाह—तत्र साम्प्रतिकगुणश्रेणिशीर्षपर्यन्ते प्रथमे पर्वणि द्रव्यमसंख्येयगुणं दीयते । तथाहि—सम्यक्त्वप्रकृतिचरमकाण्डकद्रव्यं किंचिन्न्यून-द्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रं स a । १२—, प्राग्गलितनिषेकैः सर्वद्रव्यासंख्यातैकभागमात्रैर्न्यूनत्वात्
७ ख १७

स a । १२—तत्कालोचितापकर्षभागहारेण विभक्तादेकभागं स a । १२—पल्यासंख्यातभागेन खण्डयित्वा
७ । ख । १७ ७ । ख । १७ ओ

१० a

तद्बहुभागं स a । १२—प प्रथमे पर्वणि उदयनिषेकादारभ्य गुणश्रेणिशीर्षपर्यन्तमसंख्यातक्रमेण प्रक्षेप-
a
७ । ख । १७ ओ प
a a

करणविधिना निक्षिपेत् । पुनरपकृष्टद्रव्यासंख्यातैकभागं पुनरपि पल्यासंख्यातभागेन खण्डयित्वा तद्बहुभागं

द्वितीये पर्वणि प्रथमपर्वायामात् संख्यातगुणितायामे 'अद्धाणेण सव्वधणे' इत्यादिविधानेन स्वचरमनिषेकपर्यन्तं विशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत्। पुनरवशिष्टैकभागं तृतीयस्मिन् पर्वणि उपरितनस्थितिसमयादारभ्य तच्चरमनिषेकपर्यन्तं द्वितीयपर्वायामसंख्यातगुणत्वात् द्विचरमकाण्डकायामात् २ ७ । ४ । ४ संख्यातगुणितायामे २ ७ । ४ । ४ । ४ 'अद्धाणेण सव्वधणे' इत्यादिविधानेन विशेषहीनक्रमेण तत्तदपकृष्टनिषेकस्याधस्तादतिस्थापनावलिं मुक्त्वा निक्षिपेत्। अत्र साम्प्रतगुणश्रेणिशीर्षनिक्षिप्तद्रव्यात् काण्डकप्रथमनिषेके निक्षिप्तद्रव्यमसंख्यातगुणहीनं तदपकृष्टद्रव्यासंख्यातबहुभागस्य प्रथमपर्वणि निक्षेपात् तदेकभागस्य च द्वितीयपर्वणि निक्षेपात्। तथा द्वितीयपर्वचरमनिषेके निक्षिप्तद्रव्यात् तृतीयपर्वनिषेके निक्षिप्तद्रव्यमसंख्यातगुणहीनं एकभागासंख्यातबहुभागस्य द्वितीयपर्वणि निक्षेपात् शेषैकभागस्य च तृतीयपर्वणि निक्षेपात्। एवं चरमकाण्डकप्रथमफालिपतनसमयादारभ्य तद्द्विचरमफालिपतनसमयपर्यन्तं द्रव्यनिक्षेपक्रमो विशेषेण ज्ञातव्यः ॥ १४१-१४२ ॥

सं० चं०—तहाँ प्रथमपर्वविषैं द्रव्य असंख्यातगुणा दीजिए है सो कहिए है—सम्यक्त्वमोहनीका सर्वद्रव्यविषैं पूर्वनिषेकनिकरि सर्वद्रव्यके असंख्यातवें भागमात्र द्रव्य घटाएं अवशेष किंचिदून द्वयर्धगुणहानि गुणित समयप्रबद्धमात्र अंतकाण्डकका द्रव्य है। ताको अपकर्षण भागहारका भाग देइ तहां एक भागग्रहि ताकौं पल्यका असंख्यातवाँ भागका भाग देइ तहां बहुभाग तौ प्रथम पर्व विषैं 'प्रक्षेपयोगोद्धृत' इत्यादि विधानतैं असंख्यातगुणा क्रमकरि देना। बहुरि अवशेष एक भागकौं पल्यका असंख्यातवाँ भागका भाग देइ तहां बहुभाग दूसरा पर्व विषैं 'अद्धाणेण-सव्वधणे' इत्यादि विधानतैं चय घटता क्रमकरि देना। प्रथम पर्वतैं दूसरा पर्वका आमाम संख्यातगुणा जानना। बहुरि अवशेष एकभाग तीसरा पर्व विषैं 'अद्धाणेण सव्वधणे' इत्यादि विधानतैं चय घटता क्रमकरि अपकर्षण कीया निषेकनिके नीचै अतिस्थापनावलि छोडि नीचै निक्षेपण करना। द्वितीय पर्वतैं संख्यातगुणा द्विचरमकांडकका आयाम है तातैं भी तीसरे पर्वका आयाम संख्यातगुणा है। निषेकनिके प्रमाणका नाम इहां आयाम जानना। इहां अव जाका प्रारम्भ भया ऐसा जो गुणश्रेणिका आयामरूप प्रथम पर्व ताका शीर्ष जो अन्त निषेक ताविषैं जो द्रव्य निक्षेपण किया तातैं कांडकका प्रथम निषेकतैं जो दूसरे पर्वका प्रथम निषेक तीहिंविषैं निक्षेपण कीया द्रव्य असंख्यातगुणा घाटि है। बहुरि द्वितीय पर्वका अन्त निषेकविषैं जो द्रव्य निक्षेपण कीया तातैं तृतीय पर्वका प्रथम निषेकविषैं निक्षेपण कीया द्रव्य असंख्यातगुणा घाटि है। जातैं पूर्व कथनके अनुसारि ऐसैं ही सम्भवै है। ऐसैं ही अन्त कांडककी प्रथम फालिका पतनरूप जो अन्त कांडकोत्करण कालका प्रथम समयतैं लगाय द्विचरम फालिका पतनरूप जो अन्त कांडकोत्करण कालका उपान्त समय तहां पर्यंत द्रव्य निक्षेपण करनेका विधान जानना ॥१४१-१४२॥

उदयादिगलिदसेसा चरिमे खंडे हवेज्ज गुणसेढी।
फाडेदि चरिमफालिं अणियट्टीकरणचरिमम्हि ॥ १४३ ॥

उदयादिगलितशेषा चरमे खंडे भवेत् गुणश्रेणी।
पातयति चरमफालिमनिवृत्तिकरणचरमे ॥ १४३ ॥

सं० टी०—सांप्रतगुणश्रेणिस्वरूपनिर्देशपूर्वकं चरमफालिपातनकालनिर्देशार्थमिदं सूत्रमाह—सम्यक्त्वचरमकाण्डकप्रथमफालिपातनसमयादारभ्य विधीयमाना गुणश्रेणी तच्चरमफालिपातनपर्यंतं उदयसमयादिगलितावशेषायामा वेदितव्या। पूर्वोक्तविधानेन द्विचरमफालिपातने एकसमयावशेषः काण्डकोत्करणकालः, अनिवृत्ति-

करणकालश्च परिसमाप्तः। पुनरवशिष्टेऽनिवृत्तिकरणकालचरसमये सम्यक्त्वप्रकृतिचरमकाण्डकचरमफालिं पातयति ॥ १४३ ॥

सं० चं०—सम्यक्त्वमोहनीका अन्त कांडकको प्रथम फालिका पतन समयतैं लगाय द्विचरम फालिका पतन समय पर्यन्त उदयादि गलितावशेष गुणश्रेणि आयाम जानना। उदयादि वर्तमान समयतैं लगाय इहां गुणश्रेणि आयाम पाइए है तातैं उदयादि कहिए अर एक-एक समय व्यतीत होतैं एक-एक समय गुणश्रेणि आयामविषैं घटता जाय है तातैं गलितावशेष कह्या है। ऐसैं उदयादि गलितावशेष गुणश्रेणि आयाम जानना। बहुरि पूर्वोक्त विधानकरि अन्त कांडककी द्विचरम फालिका पतन होतैं कांडकोत्करण कालका अनिवृत्तिकरण कालविषैं एक समय अवशेष रह्या अनिवृत्तिकरणका अन्त समयविषैं अन्त कांडककी अन्तिम फालिका पतन हो है ॥ १४३ ॥

चरिमं फालिं देदि दु पढमे पव्वे असंखगुणियकमा।
अंतिमसमयम्हि पुणो पल्लासंखेज्जमूलाणि ॥ १४४ ॥

चरमं फालिं ददाति तु प्रथमे पर्वे असंख्यगुणितक्रमेण[1]।
अंतिमसमये पुनः पल्यासंख्येयमूलानि ॥ १४४ ॥

सं० टी०—सम्यक्त्वप्रकृतिचरमकाण्डकचरमफालिनिक्षेपक्रमप्रदर्शनार्थमाह—गलितावशिष्टे कृतकृत्यवेदककालप्रमिते सांप्रतगुणश्रेण्यायामे अनिवृत्तिकरणकालचरमसमये सम्यक्त्वप्रकृतिचरमकाण्डकचरमफालिद्रव्यमुत्कीर्य निक्षिपति। तथाहि—

तच्चरमफालिद्रव्यं किंचिन्न्यूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रं स a । १२—सर्वद्रव्यस्याधोगलित-
७ । ख । १७

निषेकैः कृतकृत्यकालान्तर्मुहूर्तमात्रनिषेकैश्च न्यूनत्वात्। तच्चरमफालिद्रव्यमसंख्यातगुणितपल्यप्रथममूलभागहारेण मू a अनेन खंडयित्वा तदेकभागं स a । १२—उदयसमयात्प्रभृति सांप्रतगुणश्रेणिद्विचरमसमयपर्यन्तं प्रक्षेप-
७ । ख । १७ मू a

विधिना प्रतिनिषेकमसंख्यातगुणितक्रमेण निक्षिपेत्। अत्रायं विशेषः—

द्वितीयनिषेके निक्षेपगुणकारात् तृतीयनिषेकनिक्षेपगुणकारः असंख्यातगुणितगुणकारगुणितः। एवं
१a

द्विचरमनिषेकपर्यन्तं गुणकारक्रमो ज्ञातव्यः। अवशिष्टबहुभागद्रव्यं स a । १२ – मू a इदं सांप्र.गुणश्रेणि-
७ । ख । १७ मू a

चरमनिषेके निक्षिपेत्। इदं सर्वं मनसिकृत्य सांप्रतगुणश्रेण्या उदयनिषेकात्प्रभृति द्विचरमनिषेकपर्यन्तं प्रथमपर्वेत्युक्तं। चरमनिषेके द्वितीयं पर्वेत्युक्तम् ॥ १४४ ॥

सं० चं०—इहां अनिवृत्तिकरणका अन्त समयविषैं व्यतीत भए पीछैं अवशेष रह्या सो ऐसा गलितावशेष गुणश्रेणि आयाम सो कृतकृत्य वेदककालका प्रमाण है। ताका द्विचरम समय पर्यंत तौ प्रथम पर्व अर ताका अन्त समय सो दूसरा पर्व जानना। तहां सम्यक्त्वमोहनीका सर्वद्रव्यविषैं व्यतीत भए निषेक अर अवशेष रहे कृतकृत्य कालमात्र निषेक तिनिका द्रव्य घटाएं

---

१. गुणगारो वि दुचरिमाए ट्ठिदीए पदेसग्गादो चरिमाए ट्ठिदीए पदेसग्गस्स असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि। क० चू०, जयध० पु० १३, पृ० ७९।

अवशेष किंचिदून द्व्यर्ध गुणहानि गुणित समय प्रबद्धप्रमाण अन्त कांडकका अन्त फालिका द्रव्य है। ताकौं असंख्यात गुणा जो पल्यका प्रथम वर्गमूल ताका भाग देइ तहां एक भाग तौ प्रथम पर्वविषैं 'प्रक्षेपयोगोद्धत' इत्यादि विधानतैं असंख्यातगुणा क्रमकरि देना। इतना विशेष— जो इहां असंख्यातका गुणकार समानरूप नाहीं। प्रथम निषेकतैं जिस असंख्यात करि गुणें दूसरा निषेक पर्यन्त क्रमतैं गुणकार होइ तिसतैं असंख्यातगुणा असंख्यातकरि दूसरा निषेकको गुणे तीसरा निषेक होइ ऐसैं द्विचरम निषेक पर्यन्त क्रमतैं गुणकार असंख्यातगुणा जानना। बहुरि एक भाग ऐसैं दीएं अवशेष बहुभागमात्र द्रव्य गुणश्रेणिका अन्त निषेकनिविषैं निक्षेपण करै है ॥ १४४ ॥

चरिमे फालिं दिण्णे कदकरणिज्जे त्ति वेदगो होदि।
सो वा मरणं पावइ चउगइगमणं च तट्ठाणे ॥ १४५ ॥

देवेसु देवमणुए सुरणरतिरिए चउग्गईसुं पि।
कदकरणिज्जुप्पत्ती कमेण अंतोमुहुत्तेण[1] ॥ १४६ ॥

चरमे फालिं दत्ते कृतकरणीयेति वेदको भवति।
स वा मरणं प्राप्नोति चतुर्गतिगमनं च तत्स्थाने ॥ १४५ ॥

देवेषु देवमनुष्ये सुरनरतिरश्चि चतुर्गतिष्वपि।
कृतकरणीयोत्पत्तिः क्रमेण अन्तर्मुहूर्तेन ॥ १४६ ॥

सं० टी०—कृतकृत्यवेदकसम्यक्त्वप्रारम्भसमयनिर्देशपूर्वकं तदवस्थाविशेषप्ररूपणार्थमिदं सूत्रद्वयमाह—

प्रागुक्तविधानेन अनिवृत्तिकरणचरमसमये सम्यक्त्वप्रकृतिचरमकाण्डकचरमफालिद्रव्ये अधोनिक्षिप्ते सति तदनन्तरोपरितनसमयात्प्रभृति पुरातनगलितावशेषगुणश्रेण्यधिकशीर्षसंख्यातभागमात्रेऽन्तर्मुहूर्तकाले २ ᒿ। ३
४ । ४
कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिरिति जीवः संज्ञायते, दर्शनमोहक्षपणयोग्यस्थितिकाण्डकादिकरणीयस्यानिवृत्तिकरणकाल-चरमसमये एव निष्ठितत्वात्। कृतं निष्ठितं कृत्यं करणीयं यस्य स कृतकृत्यः इति निरुक्तिसंभवात्। स एव कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिर्भुज्यमानायुषः क्षयवशाद्यदि मरणं नाप्नोति तदा सम्यक्त्वग्रहणात्पूर्वं बद्धनारकाद्यायुर्वशवर्तित्वेन चतसृषु गतिषु गच्छति। तथाहि—

तस्मिन्नेव कृतकृत्यवेदकसम्यक्त्वकाले चतुर्भागीकृते प्रथमसमयादारभ्यान्तर्मुहूर्तमात्रे प्रथमे भागे २ ᒿ। ३ मृतो देवेष्वेवोत्पद्यते नान्यगतिस्तेषु तत्काले इतरगतित्रयगमनकारणसंक्लेशपरिणामाभावात्।
४ । ४ । ४
तदनन्तरद्वितीये चतुर्थे भागे अंतर्मुहूर्तमात्रे २ ३। ३ मृतो देवमनुष्यगत्योरेवोत्पद्यते नान्यगतिद्वये, तत्काले
४ । ४ । ४
तद्गतिद्वयगमननिबंधनसंक्लेशपरिणामानुपपत्तेः। तदनन्तरतृतीये चतुर्थभागेऽन्तर्मुहूर्तमात्रे २ ᒿ ३
४ । ४ । ४

---

१. पढमसमयकदकरणिज्जो जदि मरदि देवेसु उववज्जदि णियमा। जइ णेरइएसु वा तिरिक्खजोणिएसु वा मणुसेसु वा उववज्जदि णियमा अंतोमुहुत्तकदकरणिज्जो। क० चू० जयध० पु० १३, पृ० ८६-८७।

मृतो देवमनुष्यतिर्यग्गतिष्वेवोत्पद्यते न नारकतौ तत्काले नारकगतिगमनहेतुसंक्लेशपरिणामासंभवात्। तदनन्तरचरमचतुर्थभागे मृतः कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिश्चसृष्वपि देवमनुष्यतिर्यग्नारकगतिषूत्पद्यते तत्काले तद्गतिगमननिबन्धनसंक्लेशपरिणामोपलम्भात्॥ १४५–१४६॥

स० चं० ऐसैं अनिवृत्ति करणके अन्त समयविषैं सम्यक्त्व मोहनीका अन्त काण्डकको अन्त फालिका द्रव्यकौं नीचले निषेकनिविषैं निक्षेपण किए पीछें अनन्तर समयतैं लगाय अनिवृत्ति करण कालका संख्यातवां भागमात्र अन्तर्मुहूर्त्त काल पर्यन्त जो पुरातन गलितावशेष गुणश्रेणि आयामका शीर्ष ताकौं संख्यातका भाग दीयें तहां बहुभागमात्र अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टी हो है जातैं दर्शनमोहकी क्षपणा योग्य स्थिति काण्डकादि कार्य सो अनिवृत्तिकरणका अन्त समय विषै ही समाप्त भया, तातैं कीया है करने योग्य कार्य जाने ऐसा कृतकृत्य नाम पावै है सो जीव भुज्यमान आयुके नाशतैं मरण पावै तौ सम्यक्त्व ग्रहणतैं पहलें जो बांध्या था आयु ताके वशतैं च्यारयौ गतिनिविषैं उपजै है। तहां कृतकृत्य वेदकके कालका च्यारि भाग एक एक अन्तर्मुहूर्तमात्र करिए। तहां प्रथमभागबिषैं मूवा तौ देव ही विषैं. दूसरा भागविषैं मूवा देव वा मनुष्यविषैं, तीसरा भागविषैं मूवा देव मनुष्य तिर्यञ्चविषैं चौथा भाग विषैं मूवा च्यारयो गति विषैं उपजै है। जातैं तहां तिनहीविषैं उपजने योग्य परिणाम हो हैं। ऐसैं क्रमकरि कृतकृत्य वेदककी उत्पत्ति जाननी॥ १४६॥

विशेष—कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि प्रथम समयसे लेकर प्रथम अन्तर्मुहूर्तके भीतर यदि मरता हैं तो वह नियमसे सौधर्मादि देवोंमें ही उत्पन्न होता है, क्योंकि इस कालके भीतर शेषगतियोंमें उत्पत्तिके कारणभूत लेश्याका परिवर्तन नहीं पाया जाता। प्रथम अन्तर्मुहूर्तके बाद यदि मरता है तो वह नारकियों, तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें भी उत्पन्न होता है। श्रीजयधवलामें कृतकृत्यवेदकके मरणके विषयमें मात्र इतना ही उल्लेख दृष्टिगोचर होता है। इसमें जो विशेषता है उसका उल्लेख गाथा १४५-१४६ की टीकासे जानना चाहिए।

करणपढमादु जावय किदकिच्चुवरिं मुहुत्तअंतो त्ति।
ण सुहाण परावत्ती सा धि कओदावरं तु वरिं॥ १४७॥

करणप्रथमात् यावत् कृतकृत्योपरि मुहूर्तान्त इति।
न शुभानां परावृत्तिः सा हि कपोतावरं तु उपरि॥ १४७॥

सं० टी०—अधःप्रवृत्तकरणप्रथमसमयादारभ्य कृतकृत्यवेदककालचरमसमयपर्यन्तं लेश्यापरावृत्तिसंभवासंभवप्ररूपणार्थमिदं सूत्रमाह। अधःप्रवृत्तकरणप्रथमसमये दर्शनमोहक्षपणाप्रारम्भकस्य तेजःपद्मशुक्ललेश्यानां शुभानां मध्ये यया लेश्यया क्षपणा प्रारब्धा तल्लेश्योत्कृष्टांशः प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्धिक्रमेणानिवृत्तिकरणचरमसमये परिपूर्णो भवति। पुनस्तदनन्तरकृतकृत्यवेदककालस्याभ्यन्तरे प्रथमभागे यदि म्रियते तदा तत्रापि तल्लेश्यापरावृत्तिर्नास्ति तस्य देवेष्वेवोत्पादात्। यदि द्वितीयभागे म्रियते तदा तस्य भोगभूमिजमनुष्यगतावुत्पत्तिसंभवात् प्रागारब्धशुभलेश्याया उत्कृष्टमध्यमजघन्यांशानां संक्रमक्रमेण हान्या मरणकाले कपोतलेश्या-

१. चरिमे ट्ठिदिखंडए णिट्ठिदे कदकरणिज्जो त्ति भण्णदे। ताधे मरणं वि होज्ज। लेस्सापरिणामं पि परणामेज्ज। काउ-तेउ-पम्म-सुक्कलेस्साणमण्णदरस्स। क० चू०, जयध० पु० १३, पृ० ८१-८२।

जइ तेउ-पम्म-सुक्के वि अंतोमुहुत्तकदकरणिज्जो। क० चू०, जयध० पु० १३, पृ० ८८।

जघन्यांशो भवति। अथ पुनस्तृतीयभागे यदि म्रियते तदा तस्यापि भोगभूमिजमनुष्यतिर्यग्गत्योरेव जन्मसंभवात् प्रागुक्तप्रकारेण कपोतलेश्याजघन्यांशो भवति। अथ पुनश्चतुर्थभागे यदि म्रियते तदा तस्यापि बद्धनरकायुषः प्रथमपृथिव्यामेवोत्पत्तिघटनात् पूर्ववत्कपोतलेश्याजघन्यांशो भवति। तद्भागमृतमनुष्यतिरश्चोः पूर्ववद्देवगत्यामुत्पद्यमानस्य सर्वेषु मृतस्य लेश्यापरावृत्तिर्नास्ति। इदं कृतकृत्यवेदककाले मरणापेक्षया भणितं तत्काले मरणरहितस्य पुनः प्रादुर्भूतक्षायिकसम्यक्त्वस्य पूर्वं चतुर्गतिषु बद्धायुषः मरणकाले गत्यनुसारेण लेश्यापरावृत्तिरुक्तप्रकारेण ज्ञातव्या ॥ १४७ ॥

सं० चं०—अधःकरणका प्रथम समयविषैं दर्शनमोहक्षपणाका प्रारम्भक जीवकैं पीत पद्म शुक्ल लेश्या जो होइ सो समय समय अनन्तगुणी विशुद्धताका क्रमकरि अनिवृत्तिकरणका अन्त समयविषैं तिस लेश्याका उत्कृष्ट अंश सम्पूर्ण होइ। बहुरि ताके अनन्तरि कृतकृत्य वेदक कालविषैं प्रथम भागविषैं मरै तौ लेश्या पलटै ही नाही, जातैं इहां मरि देवहीविषैं उपजना है। बहुरि जो दूसरा तीसरा चौथा भागविषैं मरै तौ शुभलेश्याकी क्रमतैं हानि होइकरि मरण समय कपोत लेश्याका जघन्य अंश होइ। जात द्वितीय भागविषैं मरि भोगभूमिया मनुष्य भी हो है। तीसरा भागविषैं मरि भोगभूमिया मनुष्य वा तिर्यञ्च भी हो है। चौथा भागविषैं मरि जाकैं नरकायु बन्ध्या सो जीव प्रथम नारक पृथ्वीविषैं भी उपजै है। बहुरि देव गतिविषैं ही उपजना होइ तौ ताकैं च्यारयो ही भागनिविषैं लेश्याकी पलटनि न हो हैं। ऐसैं वेदक कालविषैं मरण होइ तीहिं अपेक्षा कथन किया। बहुरि जो तहां मरण न होइ अर पूर्वें च्यारयो गतिविषैं कोई गति सम्बन्धी आयु बान्ध्या है ताकैं क्षायिक सम्यक्त्व भए पीछैं मरण समय गतिके अनुसारि लेश्यानिकी पलटन जाननी ।। १४७ ।।

विशेष—जयधवला टीकामें बतलाया है कि दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाले जीवके अधःकरणके प्रथम समयमें पीत, पद्म और शुक्लोंमेंसे जो लेश्या होती हैं, कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि होनेके पूर्व एकमात्र वही लेश्या रहती है। कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि होनेके बाद भी अन्तर्मुहूर्त कालतक वही लेश्या रहती है, क्योंकि कृतकृत्यभावको प्राप्त होनेवाले कर्मभूमिज मनुष्यके जिस लेश्यामें क्षपणाका प्रारम्भ किया उसीका उत्कृष्ट अंश होता है। पुनः उसके मध्यम अंशमें अन्तर्मुहूर्तकालतक अवस्थित रहकर अन्तर्मुहूर्तकालतक उसके जघन्य अंशरूपसे परिणमता है। इसके बाद ही लेश्या बदलना सम्भव है। इस सूत्रका दूसरा व्याख्यान इस प्रकार उपलब्ध होता है कि अधःप्रवृत्तकरणके प्रारम्भमें तो कोई भी लेश्या होती है, परन्तु दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके समाप्त होनेपर कृतकृत्यभावसे परिणमन करनेवाले जीवके नियमसे शुक्ललेश्या ही होती है, क्योंकि विशुद्धिकी उत्कृष्टताको प्राप्त हुए उक्त जीवके शुक्ललेश्याके होनेमें कोई विरोध नहीं है। अनन्तर उसका विनाश होनेसे आगमानुसार यदि पीत, और पद्मलेश्यारूपसे परिवर्तन होता है तो जबतक कृतकृत्य हुए अन्तर्मुहूर्तकाल व्यतीत नहीं हो जाता तबतक उक्त दोनों लेश्यारूपसे परिवर्तन नहीं होता। आचार्य यतिवृषभने कृतकृत्य सम्यग्दृष्टिके लेश्यापरिवर्तनका उल्लेख करते हुए यह भी कहा है कि इस जीवके जो लेश्यापरिवर्तन होता है वह कापोत, पीत, पद्म और शुक्ललेश्यारूप परिवर्तन होता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इसके कृष्ण और नील लेश्या तो कदाचित् भी नहीं होतीं। यदि उक्त जीवके संक्लेशकी बहुलता भी हो तो भी कापोत लेश्याके जघन्य अंशको छोड़कर अन्य अंशरूप न तो कापोत लेश्या ही होती है और न नील और कृष्ण लेश्या ही होती है।

अणुसमओवट्टणयं कदकिज्जंतो त्ति पुव्वकिरियादो ।
वट्टदि उदीरणं वा असंखसमयप्पवद्धाणं[1] ॥ १४८ ॥

अनुसमयोपवर्तनं कृतकरणीय इति पूर्वक्रियातः ।
वर्तते उदीरणा वा असंख्यसमयप्रबद्धानाम् ॥ १४८ ॥

सं० टी०—कृतकृत्यवेदककाले संभवत्क्रियाविशेषप्रतिपादनार्थमाह—दर्शनमोहनीयानुभागस्यानिवृत्तिकरणकालसंख्यातैकभागे यथा काण्डकघातं संहृत्य अनन्तगुणहान्या प्रतिसमयमपवर्तनं प्रारब्धं तथात्रापि कृतकृत्यवेदककालचरमसमयपर्यंतमप्रतिघातं वर्तत एव । पूर्वस्य करणपरिणामविशुद्धिविशेषस्य संस्कारशेषसंभवात् । तथा तत्रैव कृतकृत्यवेदककाले असंख्यातगुणितक्रमेण वर्तते ॥ १४८ ॥

स० चं०—अनिवृत्तिकरण कालका संख्यातवां भाग अवशेष रहें जैसें दर्शनमोहके अनुभागका कांडक घातकों मेटि समय समय अनंतगुणा घटता क्रम लीयें अनुभागका अपवर्तन कह्या था सो ही इस कृतकृत्य वेदक कालका अंतसमय पर्यन्त पाइए है, जातें करण परिणामनिकी विशुद्धताका संस्कारका अवशेष इहां संभवै है । बहुरि तिस कृतकृत्य वेदकका कालविषें यावत् एक समय अधिक उच्छिष्टावली अवशेष रहै तावत् समय समय असंख्यातगुणा क्रम लीयें असंख्यात समयप्रबद्धनिकी उदीरणा पाइए है ॥ १४८ ॥ ताका विधान कहै हैं—

विशेष—कषायप्राभृतचूर्णिके अनुसार यहाँ इतना विशेष समझना चाहिए कि कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि जीव चाहे संक्लेश परिणामको प्राप्त हो, चाहे विशुद्धिरूप परिणामको प्राप्त हो तो भी उसके एक समय अधिक एक आवलिकाल शेष रहने तक प्रत्येक समयमें असंख्यातगुणित श्रेणिरूपसे असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण उदीरणा होती रहती है ।

उदयबहिं ओक्कड्डिय असंखगुणसमुदयआवलिम्हि खिवे ।
उवरिं विसेसहीणं कदकिज्जो जाव अइत्थवण ॥ १४९ ॥

जदि संकिलेसजुत्तो विसुद्धिसहिदो अतो वि पडिसमयं ।
दव्वमसंखेज्जगुणं ओक्कट्टदि णत्थि गुणसेढी ॥ १५० ॥

जदि वि असंखेज्जाणं समयपबद्धाणुदीरणा तो वि ।
उदयगुणसेढिठिदीए असंखभागो हु पडिसमयं ॥ १५१ ॥

उदयबहिरपकर्षितं असंख्यगुणं उदयावलौ क्षिपेत् ।
उपरि विशेषहीनं कृतकृत्यो यावदतिस्थापनम् ॥ १४९ ॥

यदि संक्लेशयुक्तो विशुद्धिसहितो अतोऽपि प्रतिसमयम् ।
द्रव्यमसंख्येयगुणमपकर्षति नास्ति गुणश्रेणी ॥ १५० ॥

यद्यपि असंख्येयानां समयप्रबद्धानामुदीरणा तथापि ।
उदयगुणश्रेणिस्थितेरसंख्यभागो हि प्रतिसमयं ॥ १५१ ॥

---

१. उदीरणा पुण संकिलिट्ठस्सदु बा विसुज्झदु वा तो वि असंखेज्जसमयपबद्धा असंखेज्जगुणाए सेढीए जाव समयाहिया आवलिया सेसा त्ति । क० चू०, जयध० पु० १३, पृ० ८९ ।

सं० टी०—उदीरणाद्रव्यस्य प्रमाणं तन्निक्षेपविधानं च प्रदर्शयितुं सूत्रत्रयमाह—अत्र कृतकृत्यवेदककालमात्रस्थितिषु प्रविष्टस्य किंचिन्न्यूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रस्यापकर्षणभागहारेण खण्डितस्यैकभागमुदयावलिबाह्यनिषेकेभ्यो गृहीत्वा पुनः पल्यासंख्यातभागेन खण्डयित्वा तदेकभागमुदयप्रथमसमयादारभ्य तच्चरमसमयपर्यंतं प्रतिनिषेकमसंख्यातगुणितक्रमेण प्रक्षेपयोगेत्यादिना विधिना निक्षिपेत् । पुनस्तद्बहुभागद्रव्यमुदयावलिन्यूनोपरितनस्थितावन्तर्मुहूर्तप्रमाणायामुपरि समयाधिकामतिस्थापनावलिं वर्जयित्वा 'अद्धाणेण सव्वधणे' इत्यादिविधिना विशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत् । एवं द्वितीयादिसमयेष्वपि । यद्यपि विशुद्धिसंक्लेशपरावृत्तिवशेन कृतकृत्यवेदकस्य शुभाशुभलेश्यापरिणामसंक्रमो भवति तथापि प्राक्तनकरणत्रयविशुद्धिसंस्कारवशात् प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेण द्रव्यमपकृष्य उदीरणां कुरुते कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिः । गुणश्रेण्यायामं विना केवलमुदयावल्यामेव किंचिद्द्रव्यं प्रवेश्यावशिष्टस्योपरितनस्थितौ निक्षेपणमुदीरणा, इदमेव मनस्यवधार्याचार्यैः णत्थि गुणसेढी इत्युदीरणलक्षणमुदीरितम् । एवं प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेण द्रव्यमपकृष्य निक्षेपे समयाधिकावल्युपरितननिषेकादपकृष्टद्रव्यस्य बहुवारमसंख्यातगुणितस्य तदानींतनोदयनिषेकाद्धीनाधिकभावशङ्कायां परिहार उच्यते—यद्यप्यसंख्येयसमयप्रबद्धानामुदीरणा चरमपूर्वपूर्वोदीरणाद्रव्यादसंख्यातगुणितद्रव्या तथापि चरमफालिगुणश्रेण्यायातोदयनिषेकद्रव्यादसंख्यातैकभागमात्रमेवोदीरणाद्रव्यमुदयनिषेके दीयमानमकर्षणभागहारेण खंडितसर्वद्रव्यस्य पल्यासंख्यातभागेन भक्तस्यैकभागमात्रत्वात् उदयनिषेकस्य च सर्वद्रव्यस्यासंख्यातपल्यप्रथममूलभक्तस्यैकभागमात्रत्वात् । किं पुनः कृतकृत्यवेदकप्रथमादिसमयेषु उदीरणाद्रव्यं तत्र तत्रोदयावलिनिषेकेषु दीयमानं तत्तदुदयावलिनिषेकसत्त्वद्रव्यादसंख्यातगुणहीनमित्युच्यते । कृतकृत्यवेदककालस्य समयाधिकावलिमात्रेऽवशिष्टे सर्वाग्रनिषेकात्पूर्वपूर्वापकृष्टद्रव्यादसंख्यातगुणितद्रव्यमपकृष्य समयोनावल्याः द्वित्रिभागसमयाधिकावलिमात्रेऽवशिष्टे सर्वाग्रनिषेकात्पूर्वपूर्वापकृष्टद्रव्यादसंख्यातगुणितद्रव्यमपकृष्य समयोनावल्याः द्वित्रिभागमपि संस्थाप्य तदधस्तने तत्त्रिभागे रूपाधिके उदयसमयात्प्रभृति इदानीमपकृष्टद्रव्यस्य पल्यासंख्यातभागभक्तस्यैकभागं तद्योग्यासंख्यातसमयपर्यन्तमसंख्यातगुणितक्रमेण दत्त्वावशिष्टबहुभागद्रव्यं तथावलित्रिभागसमयेषु अतिस्थापनाधस्तनसमयं मुक्त्वा सर्वत्र विशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत् । एषैवोत्कृष्टोदीरणा । एवमनुभागस्यानुसमयमनन्तगुणितापवर्तनेन कर्मप्रदेशानां प्रतिसमयमसंख्यातगुणितोदीरणया च कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिः सम्यक्त्वप्रकृतिस्थितिमन्तर्मुहूर्तायामामुच्छिष्टावलिं मुक्त्वा सर्वां प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशविनाशपूर्वकं उदयमुखेन गालयित्वा तदनन्तरसमये उदीरणारहितं केवलमनुभागसमयापवर्तनेनैव प्राक्तनापवर्तनक्रमविलक्षणेनोदयप्रथमसमयात्प्रभृति प्रतिसमयमनन्तगुणितक्रमेण प्रवर्तमानेन प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशविनाशपूर्वकं प्रतिसमयमेकैकनिषेकं गालयित्वा तदनन्तरसमये क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्जायते जीवः ॥ १४९–१५१ ॥

सं० चं०—कृतकृत्य वेदक कालमात्र सम्यक्त्वमोहनीके निषेक रहैं तिनिका द्रव्य किंचिदून द्व्यर्धगुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण है ताकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ तहां एक भाग प्रमाण द्रव्यकौं जे उदयावलीतैं बाह्य उपरिवर्ती निषेक हैं सो तिनतैं ग्रहिकरि ताकौं पल्यका असंख्यातवाँ भागका भाग देइ तहां एक भाग तौ उदयावलीविषैं 'प्रक्षेपयोगोद्धृत' इत्यादि विधान करि प्रथम समयतैं लगाय अन्त निषेकपर्यंत असंख्यात गुणा क्रम लीएं दीजिए है। बहुरि अवशेष बहुभागमात्र द्रव्य तिस उदयावलीतैं उपरिवर्ती जो अवशेष अन्तर्मुहूर्तमात्र उपरितन स्थिति तहां अन्तविषै समय अधिक अतिस्थापनावली छोडि सर्व निषेकनिविषैं 'अद्धाणेण सव्वधणे' इत्यादि विधानकरि विशेष हीन क्रम लीएं निक्षेपण करै। ऐसैं उपरितन स्थितिका द्रव्य जो उदयावलीविषैं दीजिए है ताका नाम उदीरणा है ॥ १४९ ॥

सं० चं०—यद्यपि कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टी लेश्याकी पटलनितैं संक्लेश संयुक्त होइ वा

विशुद्धता सहित होइ तथापि पूर्व भए थे करणरूप परिणाम तिनिकी विशुद्धताका जो संस्कार ताके वशतैं समय समय प्रति असंख्यातगुणा द्रव्यकौं अपकर्षणकरि उदीरणा करै है। गुणश्रेणि आयाम विना किंचित् द्रव्यकौं उदयावलीविषैं देइ अवशेषकौं उपरितन स्थितिविषैं दीया तातैं इहां गुणश्रेणि नाहीं है ॥ १५० ॥

सं० चं०—यद्यपि असंख्यात समयप्रबद्धनिकी उदीरणा पूर्व-पूर्व समयसम्बन्धी उदीरणा द्रव्यतैं असंख्यागुणा क्रम लीएं है तथापि अन्तकांडककी अन्तफालिका द्रव्यकौं गुणें गुणश्रेणि आयामविषैं दीया था तिस गुणश्रेणिरूप जो उदय आया निषेक ताका द्रव्यतैं यहु उदीरणा द्रव्य असंख्यातवां भागमात्र ही है। जातैं यहु उदीरणा द्रव्य तौ सर्वद्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ तहां एक भागकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएं एक भागमात्र है अर जो तिस गुणश्रेणिका निषेक उदयरूप है ताका द्रव्य सर्व द्रव्यकौं असंख्यातगुणा पल्यवर्गमूलका भाग दीएं एक भागमात्र है तातैं कृतकृत्य वेदकका प्रथमादि समयसम्बन्धी निषेकनिविषैं इहां उदयावलीविषैं दीया द्रव्य उदीरणा द्रव्य सो पूर्वें पाइए है जो सत्तारूप द्रव्य तातैं असंख्यातगुणा घाटि है। बहुरि कृतकृत्य वेदक कालविषैं एकसमय अधिक आवली अवशेष रहैं पूर्वें अपकर्षण कीया द्रव्यतैं असंख्यातगुणा द्रव्यकौं स्थितिका अंतनिषेक जो उदयावलीतैं उपरिवर्ती एक निषेक तातैं अपकर्षणकरि ताके नीचैं एक समय घाटि आवलीका दोय तीसरा भाग प्रमाण निषेकनिकौं अतिस्थानपनरूप राखि ताके नीचैं एक समय अधिक आवलीका त्रिभागमात्र निषेकनिविषैं द्रव्य दीजिए है तहां तिस अपकर्षण कीया हूवा द्रव्यकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां एक भागमात्र द्रव्यकौं उदय समयतैं लगाय यथायोग्य असंख्यात समयसम्बन्धी निषेकनिविषैं असंख्यातगुणा क्रमकरि दीजिए है। तहां तिस अपकर्षण कीया हूवा द्रव्यकौं पल्यका असंख्यातवं भागका भाग देइ तहां एक भागमात्र द्रव्य तौ उदय समयतैं लगाय यथायोग्य असंख्यात समय-सम्बन्धी निषेकनिविषैं असंख्यातगुणा क्रमकरि दीजिए है अर अवशेष बहुभागमात्र द्रव्यकौं अतिस्थापना ताका जो नीचेका समय ताकौं छोडि ताके नीचैं अवशेष आवलीका त्रिभागमात्र निषेकनिविषैं विशेष घटता क्रमकरि निक्षेपण करिए है। यहु ही उत्कृष्ट उदीरणा है। यातैं अधिक उदीरणाका द्रव्य नाहीं। ऐसैं अनुभागका तौ अनुसमय अपवर्तनकरि अर कर्म परमाणूनिकी उदीरणा करि यहु कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टी, रही थी जो सम्यक्त्व मोहनीकी अंतर्मुहूर्त स्थिति तामैं उच्छिष्टावली विना सर्व स्थिति है सो प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेशनिका सर्वथा नाश लीएं जो एक एक निषेकका एक एक समयविषैं उदयरूप होइ निर्जरना ताकरि नष्ट हो है, बहुरि ताका अनन्तर समयविषैं उच्छिष्टावलीमात्र स्थिति अवशेष रहैं उदीरणाका भी अभाव भया, केवल अनुभागका अपवर्तन है सो पूर्वैं अनुभाग अपवर्तन कह्या था तातैं याका अन्य लक्षण है, उदयरूप प्रथम समयतैं लगाय समय समय अनन्तगुणा क्रमकरि वर्तै है ताकरि प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेशनिका सर्वथा नाश पूर्वक समय समय प्रति उच्छिष्टावलीके एक एक निषेककौं गालि निर्जरारूप करि ताका अनन्तर समयविषैं जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टी हो है ॥ १५१ ॥

विदियकरणादिमादो कदकरणिज्जस्स पढमसमओ त्ति ।
वोच्छं रसखंडुक्कीरणकालादीणमप्पबहु[१] ॥ १५२ ॥

---

१. दंसणमोहणीयक्खवगस्स पढमसमए अपुव्वकरणमादिं कादूण जाव पढमसमयकदकरणिज्जो त्ति

द्वितीयकरणादिमात् कृतकृत्यस्य प्रथमसमय इति ।
वक्ष्ये रसखंडोत्करणकालादीनामल्पबहुत्वम् ।। १५२ ।।

सं० टी०—अपूर्वकरणप्रथमसमयादारभ्य कृतकृत्यवेदकप्रथमसमयपर्यन्तमनुभागखण्डोत्करणकालादीनां उत्कृष्टस्थितिसत्त्वपर्यन्तानां त्रयस्त्रिंशतामल्पबहुत्वपदानि वक्ष्यामीति प्रतिज्ञासूत्रमिदम् ।। १५२ ।।

सं० चं०—दूसरा जो अपूर्वकरण ताका प्रथम समयतैं लगाय कृतकृत्य वेदकका प्रथम समय पर्यंत अनुभाग काण्डकोत्करण कालादिक तिनिका अल्पबहुत्वके तेतीस स्थान कहौंगा ।। १५२ ।।

रसठिदिखंडुक्कीरणअद्धा अवरं वरं च अवरवरं ।
सव्वत्थोवं अहियं संखेज्जगुणं विसेसहियं[1] ।। १५३ ।।
रसस्थितिखंडोत्करणाद्धा अवरं वरं च अवरवरं ।
सर्वस्तोकं अधिकं संख्येयगुणं विशेषाधिकम् ।। १५३ ।।
कदकरणसम्मखवणाणियट्टिअपुव्वद्ध संखगुणिदकमं ।
तत्तो गुणसेढिस्स य णिक्खेओ साहियो होदि[2] ।। १५४ ।।
कृतकरणसम्यक्क्षपणानिवृत्यपूर्वाद्धा संख्यगुणितक्रमं ।
ततो गुणश्रेण्याश्च निक्षेपः साधिको भवति ।। १५४ ।।
सम्मदुरिमे चरिमे अडवस्सस्सादिमे च ठिदिखंडा ।
अवरवराबाहा वि य अडवस्सं संखगुणियकमा[3] ।। १५५ ।।
सम्यग्द्विचरमे चरमे अष्टवर्षस्यादिमे च स्थितिखंडानि ।
अवरवराबाधापि च अष्टवर्षं संख्यातगुणितक्रमाणि ।। १५५ ।।
सम्मे असंखवस्सिय चरिमट्ठिदिखंडओ असंखगुणो ।
मिस्से चरिमे खंडियमहियं अडवस्समेत्तेण[4] ।। १५६ ।।

एदम्हि अंतरे अणुभागखंडय-ट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धाणं जहण्णुक्कस्सियाणं ट्ठिदिखंडय-ट्ठिदिबंध-ट्ठिदिसंतकम्माणं जहण्णुक्कस्सियाणं आबाहाणं च जहण्णुक्कस्सियाणमण्णेसिं च पदाणमप्पाबहुअं वतइस्सामो । क० चु०, जयध० भा० १३, पृ० ९० ।

१. सव्वत्थोवा जहण्णिया अणुभागखंडयउक्कीरणद्धा । उक्कस्सिया अणुभागखंडयउक्कीरणद्धा विसेसाहिया । ट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धा ट्ठिदिबंधगद्धा च जहण्णियाओ दो वि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ । ताओ उक्कस्सियाओ दो वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ । वही, पृ० ९१-९२ ।

२. कदकरणिज्जस्स अद्धा संखेज्जगुणा । सम्मत्तक्खवणद्धा संखेज्जगुणा । अणियट्टिअद्धा संखेज्जगुणा । अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ । वही, पृ० ९२-९३ ।

३. सम्मत्तस्स दुचरिमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं । तस्सेव चरिमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं । अट्ठवस्सट्ठिदिगे संतकम्मे सेसे जं पढमं ट्ठिदिखंडयं तं संखेज्जगुणं । जहण्णिया आबाहा संखेज्जगुणा । उक्कस्सिया आबाहा संखेज्जगुणा । अणुसमयोवट्टमाणस्स अट्ठवस्साणि ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं । वही, पृ० ९४-९५ ।

४. सम्मत्तस्स असंखेज्जवस्सियं चरिमट्ठिदिखंडयं असंखेज्जगुणं । सम्मामिच्छत्तस्स चरिम्मसंखेज्जवस्सियं ट्ठिदिखंडयं विसेसाहियं । वही, पृ० ९५ ।

सम्येऽसंख्यवर्षे चरमस्थितिखंडकोऽसंख्यगुणः ।
मिश्रे चरमे खंडितमधिकमष्टवर्षमात्रेण ॥ १५६ ॥

मिच्छे खवदे सम्मदुगाणं ताणं च मिच्छसंतं हि ।
पढमंतिमठिदिखंडा असंखगुणिदा हु दुट्ठाणे[1] ॥ १५७ ॥

मिथ्ये क्षपिते सम्यग्द्विकानां तेषां च मिथ्यसत्त्वं हि ।
प्रथमांतिमस्थितिखंडान्यसंख्यगुणितानि हि द्विस्थाने ॥ १५७ ॥

मिच्छंतिमठिदिखंडो पल्लासंखेज्जभागमेत्तेण ।
हेट्ठिमठिदिप्पमाणेणब्भिहियो होदि णियमेण[2] ॥ १५८ ॥

मिथ्यांतिमस्थितिखंडं पल्यासंख्येयभागमात्रेण ।
अधस्तनस्थितिप्रमाणेनाभ्यधिकं भवति नियमेन ॥ १५८ ॥

दूरावकिट्टिपढमं ठिदिखंडं संखसंगुणं तिण्णं ।
दूरावकिट्टिहेदूठिदिखंडं संखसंगुणियं[3] ॥ १५९ ॥

दूरापकृष्टिप्रथमं स्थितिखंडं संख्यसंगुणं त्रयं ।
दूरापकृष्टिहेतुः स्थितिखंडः संख्यसंगुणितः ॥ १५९ ॥

पलिदोवमसंतादो विदियो पल्लस्स हेदुगो जादु ।
अवरो अपुव्वपढमे ठिदिखंडो संखगुणिदकमा[4] ॥ १६० ॥

पलिदोपमसत्त्वतो द्वितीयं पल्यस्य हेतुकं यत्तु ।
अवरमपूर्वप्रथमे स्थितिखंडं संख्यगुणितक्रमं ॥ १६० ॥

पलिदोवमसंतादो पढमो ठिदिखंडओ दु संखगुणो ।
पलिदोवमठिदिसंतं होदि विसेसाहियं तत्तो[5] ॥ १६१ ॥

पल्योपमसत्त्वतः प्रथमं स्थितिखंडकं तु संख्यगुणं ।
पल्योपमस्थितिसत्त्वं भवति विशेषाधिकं ततः ॥ १६१ ॥

१. मिच्छत्ते खविदे सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पढमट्ठिदिखंडयमसंखेज्जगुणं । मिच्छत्तसंतकम्मियस्स सम्मत्त-सम्ममिच्छत्ताण चरिमट्ठिदिखंडयमसंखेज्जगुणं । वही, ९५-९६ ।

२. मिच्छत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडयं विसेसाहियं । वही. पृ० ९६ ।

३. असंखेज्जगुणहाणिट्ठिदिखंडयाणं पढमट्ठिदिखंडयं मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तमसंखेज्जगुणं । संखेज्जगुणहाणिट्ठिदिखंडयाणं चरिमट्ठिदिखंडयं जं तं संखेज्जगुणं । वही पृ० ९७ ।

४. अपुव्वकरणे पढमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं । वही, पृ० ९८ ।

५. अपुव्वकरणे पढमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं । पलिदोवममेत्ते ट्ठिदिसंतकम्मे जादे तदो पढमं ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं । वही पृ० ९८-९९ ।

विदियकरणस्स पढमे ठिदिखंडविसेसयं तु तदियस्स ।
करणस्स पढमसमये दंसणमोहस्स ठिदिसंतं[1] ॥ १६२ ॥

द्वितीयकरणस्य प्रथमे स्थितिखंडविशेषकं तु तृतीयस्य ।
करणस्य प्रथमसमये दर्शनमोहस्य स्थितिसत्त्वम् ॥ १६२ ॥

दंसणमोहूणाणं बंधो संतो य अवर वरगो य ।
संखेये गुणियकमा तेत्तीसा एत्थ पदसंखा[2] ॥ १६३ ॥

दर्शनमोहोनानां बंधः सत्त्वं च अवरं वरकं च ।
संख्येयगुणितक्रमं त्रायस्त्रिंशदत्र पदसंख्या ॥ १६३ ॥

सं० टी०—एकादशगाथासूत्रैः तान्येवाल्पबहुत्वपदानि प्रतिपाद्यन्ते । तद्यथा–दर्शनमोहस्य जघन्यानुभागखंडोत्करणकालः सम्यक्त्वप्रकृत्यष्टवर्षस्थितिकरणसमयात्प्राक्तनानन्तरावस्थायां संभवन् वक्ष्यमाणद्वात्रिंशत्पदेभ्यः स्तोकोऽल्प इत्यर्थः । ज्ञानावरणाद्यायुर्वर्जितशेषकर्मणां जघन्यानुभागखंडोत्करणकालोऽनिवृत्तिकरणचरमभागे संभवन् सर्वतः स्तोकमिति सामान्येन जघन्यानुभागखंडोत्करणकालः संख्यातावलिमात्रोऽपि उत्तरपदापेक्षयाल्प इत्युच्यते । एकं पदं १ । तस्मादपूर्वकरणप्रथमसमये प्रारभ्यमाणोत्कृष्टानुभागखंडोत्करणकालो विशेषाधिकः २ ७ ५, विशेषप्रमाणं जघन्यानुभागखंडोत्करणकालसंख्यातैकभागमात्रं द्वितीयं पदं २ ।
४

तस्मादनिवृत्तिकरणचरमभागे संभवन् जघन्यस्थितिकांडकोत्करणकालः संख्यातगुणः २ ७ । ५ । ४ तृतीयं
४

पदं ३ । तस्मादपूर्वकरणप्रथमसमये घटमानः उत्कृष्टस्थितिखण्डोत्करणकालो विशेषाधिकः २ ७ ५ ४ ५
४

चतुर्थं पदं ४ । तस्मात्कृतकृत्यवेदककालः संख्यातगुणः २ ७ । ५ । ४ । ५ । ४ इदमपवर्त्य लिखिते एवं
४

२ ७ ७ पंचमं पदं ५ । अस्मात्सम्यक्त्वप्रकृतिक्षपणकालः अष्टवर्षकरणप्रथमसमयादारभ्य कृतकृत्यवेदकचरमसमयपर्यंतमुपपद्यमानः संख्यातगुणः २ ७ ७ । ४ षष्ठं पदं ६ । अस्मादनिवृत्तिकरणकालः संख्यातगुणः २ ७ ७ । ४ । ४ सप्तमं पदं ७ । तस्मादपूर्वकरणकालः संख्यातगुणः २ ७ ७ । ४ । ४ । ४ अष्टमं पदं ८ । अमुष्मादपूर्वकरणप्रथमसमये प्रारब्धगुणश्रेण्यायामो विशेषाधिकः २ ७ ७ । ४ । ४ । ४ । ४ विशेषप्रमाणमनिवृत्तिकरणकालस्तत्संख्यातभागश्च ९ । तस्मात्सम्यक्त्वप्रकृतेर्द्विचरमस्थितिकांडकायामः संख्यातगुणः २ ७ ७ । ४ । ४ । ४ । ४ गुणिते एवं २ ७ दशमं पदं १० । अस्मात्सम्यक्त्वप्रकृतिचरमस्थितिकांडकायामः संख्यातगुणः २ ७ ४ एकादशं पदं ११ । एतस्मादष्टवर्षप्रथमसमये सम्यक्त्वप्रकृतिस्थितिकांडकायामः संख्यात-

१. अपुव्वकरणे पढमस्स उक्कस्सट्ठिदिखंडयस्स विसेसो संखेज्जगुणो । दंसणमोहणीयस्स अणियट्टिपढमसमयं पविट्ठस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं । वही, पृ० ९९ ।

२. दंसणमोहणीयवज्जाणं कम्माणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । तेसिं चेव उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । जहण्णयं दंसणमोहणीयवज्जाणं जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं । तेसिं चेव उक्कस्सियं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं । वही । वही, पृ० ९९-१००

गुणः २ ②४ । ४ द्वादशं पदं १२ । तस्मात्कृतकृत्यवेदकप्रथमसमये संभवज्ज्ञानावरणादिकर्मस्थितिबंधस्य जघन्याबाधाकालः संख्यातगुणः २ ② ४ । ४ । ४ त्रयोदशं पदं १३ । अस्मादपूर्वकरणप्रथमसमयसंभवज्ज्ञानावरणादिकर्मस्थितिबन्धस्योत्कृष्टाबाधाकालः संख्यातगुणः—२ ② । ४ । ४ । ४ । ४ एतावत्पर्यंतं प्रागुक्तसर्वायामाः प्रत्येकमंतर्मुहूर्तमात्रा एव । चतुर्दशं पदं १४ । अमुष्मात्सम्यक्त्वप्रकृतेः खंडितस्थित्यवशेषोऽष्टवर्षायामः संख्यातगुणः व ८ । अन्तर्मुहूर्ताद्दिनमासवर्षप्रमितसंख्यातगुणकारस्य दर्शनात् पंचदशं पदं १५ । अमुष्मात्सम्यक्त्वप्रकृतेरष्टवर्षावशेषकरणनिमित्तपल्यासंख्यातैकभागमात्रचरमस्थितिकांडकायामोऽसंख्यातगुणः प — व ८ षोडशं पदं १६ । तस्मात्सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतेश्चरमकांडकायामो विशेषाधिकः प विशेषप्रमाणं
a a a a a a

चोच्छिष्टावल्योनाष्टवर्षमात्रं, सप्तदशं पदं १७ । तस्मान्मिथ्यात्वे चरमस्थितिकांडकफालिद्रव्यं मिश्रप्रकृतौ

१०

संक्रम्य क्षपिते तदनंतरसमये प्रारब्धे मिश्रसम्यक्त्वप्रकृत्योः प्रथमस्थितिकांडकायामोऽसंख्यातगुणः प a
a a a

अष्टादशं पदं १८ । तस्मान्मिथ्यात्वद्रव्यसत्त्वे चरमकांडकावशेषमात्रे सति तत्काललांछितमिश्रसम्यक्त्वप्रकृति-

१०

चरमस्थितिकांडकायामोऽसंख्यातगुणः प a । एकान्नविंशं पदं १९ । एतस्मान्मिथ्यात्वद्रव्यचरमकांडकायामो
a a

विशेषाधिकः प विशेषप्रमाणं च मिथ्यात्वसत्त्वकाले मिश्रसम्यक्त्वप्रकृत्योश्चरमकाण्डकावशिष्टाधस्तनस्थितिमात्रं
a

विंशं पदं २० । तस्माद्दर्शनमोहत्रयस्य दूरापकृष्टिमात्रावशेषस्थितौ प्रविष्टपल्यासंख्यातबहुभागमात्रप्रथमस्थिति-

१०

काण्डकायामोऽसंख्यातगुणः प a एकविंशं पदं २१ ।
५ । ५ । ५ । ५ । a

अमुष्माददूरापकृष्टिस्थित्यवशेषहेतुभूतपल्यसंख्यातबहुभागमात्रस्थितिकाण्डकायामः संख्यातगुणः प ४
५।५।५।

द्वाविंशं पदं २२ । तस्मात्पल्यमात्रावशिष्टस्थितौ प्रविष्टद्वितीयस्थितिकाण्डकायामः संख्यातगुणः प ४ त्रयो-
५ ५

विंशं पदं २३ । तस्मात्पल्यमात्रावशेषकरणनिमित्तपल्यसंख्यातैकभागमात्रस्थितिकाण्डकायामः संख्यातगुणः प
②②

पल्यप्रविष्टकाण्डकभागहारात्पल्यहेतुकांडकभागहारस्य संख्यातगुणहीनत्वात् । चतुर्विंशं पदं २४ । एतस्मादपूर्वकरणप्रथमसमयं प्रारब्धजघन्यस्थितिकाण्डकायामः संख्यातगुणः प पंचविंशं पदं २५ । अस्मात्पल्यमात्रा-
②

वशेषस्थितौ प्रविष्टपल्यसंख्यातबहुभागमात्रप्रथमकाण्डकायामः संख्यातगुणः प ४ षड्विंशं पदं २६ ।
५

अमुष्मात्पल्यमात्रावशेषस्थितिसत्त्वं विशेषाधिकं प विशेषप्रमाणं च पल्यसंख्यातैकभागमात्रं । सप्तविंशं पदं २७ । तस्मादपूर्वकरणप्रथमसमये जघन्योत्कृष्टकाण्डकयोर्विशेषः पल्यसंख्यातभागन्यूनसागरोपमपृथक्त्वमात्रः संख्यात-

गुणः सा ७ – प अष्टात्रिंशं पदं । २८ । एतस्मादनिवृत्तिकरणप्रथमसमये दर्शनमोहस्य स्थितिसत्त्वं संख्यात-
८ ९
गुणं स ७ ल एकान्नत्रिंशं पदं । २९ । तस्माद्दर्शनमोहवर्जितानां ज्ञानावरणादिशेषकर्मणां जघन्यस्थितिबन्धः
८
कृतकृत्यवेदकप्रथमसमयसम्भवी संख्यातगुणः सा अं को २ । त्रिंशं पदं ३० । तस्मादपूर्वकरणप्रथमसमये
४ । ४ । ४
तेषामेव कर्मणामुत्कृष्टस्थितिबन्धः संख्यातगुणः सा अं को २ एकत्रिंशं पदं ३१ । तस्मात्तेषामेव कर्मणा-
४ । ४
मनिवृत्तिकरणचरमभागे सम्भवि जघन्यस्थितिसत्त्वं संख्यातगुणं सा अं को २ । द्वात्रिंशं पदं ३२ । तस्मात्ते-
४
षामेव कर्मणामपूर्वकरणप्रथमसमये सम्भवदुत्कृष्टस्थितिसत्त्वं संख्येयगुणं सा अं को २ त्रयस्त्रिंशं पदं । ३३ । एवं दर्शनमोहक्षपणावसरे संभवदल्पबहुत्वपदानि त्रयस्त्रिंशत्संख्यानि प्रवचनानुसारेण व्याख्यातानि ॥ १५३ ॥

सं० चं०—सम्यक्त्वमोहनीका तौ अष्टवर्ष स्थिति करनेके समयतैं पहले समयनिविषैं सम्भवता अर आयु विना अन्य कर्मनिका अनिवृत्तिकरण कालका अन्त भागविषैं सम्भवता ऐसा जो जघन्य अनुभाग खण्डोत्करणकाल सो संख्यात आवलीमात्र हैं तौ भी वक्ष्यमाण सर्व-स्थाननितैं स्तोक है ॥ १ ॥ तातैं याका संख्यातवां भागमात्र विशेषकरि अधिक अपूर्वकरणका प्रथम समयविषैं जाका प्रारम्भ भया ऐसा उत्कृष्ट अनुभाग खंडोत्करणका काल है ॥ २ ॥ तातैं संख्यातगुणा अनिवृत्तिकरणका अन्त भागविषैं सम्भवता ऐसा जघन्य स्थिति कांडकोत्करणकाल है ॥ ३ ॥ तातैं याका संख्यातवां भागमात्र विशेषकरि अधिक अपूर्वकरणका आदिविषैं संभवता ऐसा उत्कृष्ट स्थिति कांडकोत्करणका काल हैं ॥ १५३ ॥

सं० चं०—तातैं संख्यातगुणा कृतकृत्यवेदकका काल है ॥ ५ ॥ तातैं संख्यातगुणा अष्टवर्ष करनेका समयतैं लगाय कृतकृत्य वेदकका अन्त समय पर्यन्त सम्यक्त्वमोहनीका क्षपणाका काल है ॥ ६ ॥ तातैं संख्यातगुणा अनिवृत्तिकरणका काल है ॥ ७ ॥ तातैं संख्यातगुणा अपूर्वकरणका काल है ॥ ८ ॥ तातैं अनिवृत्तिकरणकाल अर याका संख्यातवां भागमात्र विशेषकरि अधिक अपूर्वकरणका प्रथम समयविषैं जाका प्रारम्भ भया ऐसा गुणश्रेणि आयाम है ॥ १५४ ॥

सं० चं०—तातैं संख्यातगुणा सम्यक्त्वमोहनीका द्विचरम स्थितिकांडकका आयाम है ॥ १० ॥ तातैं संख्यातगुणा सम्यक्त्वमोहनीकी अन्त स्थितिकांडकका आयाम है ॥ ११ ॥ तातैं संख्यातगुणा सम्यक्त्वमोहनीका अष्टवर्ष स्थितिका प्रथम स्थितिकांडक आयाम है ॥ १२ ॥ तातैं संख्यातगुणा कृतकृत्यवेदकका प्रथम समयविषैं संभवता जो ज्ञानावरणादिक कर्मनिका स्थितिबन्ध ताका जघन्य आबाधा काल है ॥ १३ ॥ तातैं संख्यातगुणा अपूर्वकरणका प्रथम समयविषैं सम्भवता स्थितिबन्धका उत्कृष्ट आबाधा काल है ॥ १४ ॥ इहां पर्यन्त ए सर्वकाल प्रत्येक यथासम्भव अन्तर्मुहूर्तमात्र ही जानने। तातैं संख्यातगुणी सम्यक्त्वमोहनीकी अष्टवर्ष प्रमाण स्थिति है ॥ १५५ ॥

सं० चं०—तातैं असंख्यातगुणा सम्यक्त्वमोहनीकी आठवर्षमात्र स्थिति करनेके अर्थि-पल्यका असंख्यातवां भागमात्र अन्तका स्थितिकांडक आयाम है ॥ १६ ॥ तातैं उच्छिष्टावली

घाटि अष्टवर्षमात्र विशेषकरि अधिक मिश्रमोहनीका अन्तका स्थितिकांडक आयाम है ॥ १७ ॥ तातैं असंख्यातगुणा अन्त स्थितिकांडककी अन्तफालिका द्रव्यकौं मिश्रमोहनीविषैं संक्रमणकरि मिथ्यात्वका क्षय करनेका समयतैं अनन्तरवर्ती समयविषैं सम्भवता मिश्रमोहनी वा सम्यक्त्व-मोहनीका प्रथम स्थितिकांडक आयाम है ॥ १८ ॥ तातैं असंख्यातगुणा मिथ्यात्वका सत्त्व द्रव्य अन्तकांडक प्रमाण अवशेष जहां रहैं तिस कालविषैं सम्भवता मिश्रमोहनी वा सम्यक्त्वमोहनी-का अन्तकांडकका आयाम है ॥ १९ ॥ १५६-१५७ ॥

सं० चं०—तातैं मिथ्यात्वका सत्त्व जिस कालविषैं पाइये तिस विषैं मिश्र सम्यक्त्व-मोहनीका अन्तकांडकका घात भए पीछें अवशेष रही जो तिन दोऊनिकी नीचेकी स्थिति पल्यका असंख्यातवां भागमात्र ताकरि अधिक मिथ्यात्वका अन्तकांडकका आयाम है ॥ २० ॥ १५८ ॥

सं० चं०—तातैं असंख्यातगुणा दर्शनमोहत्रिककी दूरापकृष्टि नामा स्थितिविषैं प्राप्त भया ऐसा पल्यका असंख्यात बहुभागमात्र स्थितिकांडक आयाम है ॥ २१ ॥ तातैं संख्यातगुणा दूरापकृष्टि स्थितिकौं कारण ऐसा पल्यका संख्यात बहुभागमात्र स्थितिकांडक आयाम संख्यात-गुणा है ॥ २२ ॥ १५९ ॥

सं० चं०—तातैं संख्यातगुणा पल्यमात्र अवशेष स्थिति होतैं पाइए ऐसा द्वितीय स्थिति-कांडकका आयाम है ॥ २३ ॥ तातैं संख्यातगुणा पल्यमात्र स्थितिकौं कारणभूत ऐसा पल्यका संख्यातवां भागमात्र स्थितिकांडक आयाम है ॥ २४ ॥ तातैं संख्यातगुणा अपूर्वकरणका प्रथम समयविषैं जाका प्रारम्भ भया जो जघन्य स्थितिकांडक ताका आयाम है ॥ २५ ॥ १६० ॥

सं० चं०—तातैं संख्यातगुणा पल्यमात्र अवशेष स्थितिविषैं प्राप्त ऐसा पल्यका संख्यात-बहुभागमात्र प्रथम कांडकका आयाम है ॥ २६ ॥ तातैं पल्यका संख्यातवां भागमात्र विशेषकरि अधिक पल्यमात्र स्थितिसत्त्व है ॥ २७ ॥ १६१ ॥

सं० चं०—तातैं संख्यातगुणा अपूर्वकरणका प्रथम समयविषैं जघन्य अर उत्कृष्ट कांडकनि-विषैं बीचिके विशेषका प्रमाण पल्यका संख्यातवां भागकरि हीन पृथक्त्व सागर प्रमाण है ॥ २८ ॥ तातैं संख्यातगुणा अनिवृत्तिकरणका प्रथम समयविषैं सम्भवता दर्शनमोहका स्थिति सत्त्व है ॥२९॥ तातैं संख्यातगुणा कृतकृत्य वेदकका प्रथम समयविषैं संभवता दर्शनमोह विना अन्य कर्मनिका जघन्य स्थितिबंध है ॥ ३० ॥ तातैं संख्यातगुणा अपूर्वकरणका प्रथम समयविषैं संभवता तिनही कर्मनिका उत्कृष्ट स्थितिबंध है ॥ ३१ ॥ तातैं संख्यातगुणा अनिवृत्तिकरणका अंत भागविषै संभवता तिनही कर्मनिका जघन्य स्थितिसत्त्व है ॥ ३२ ॥ तातैं संख्यातगुणा अपूर्व करणका प्रथम समयविषैं संभवता तिनही कर्मनिका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व है ॥ ३३ ॥ ऐसें दर्शन मोहकी क्षपणाका अवसरविषैं संभवते अल्पबहुत्वके तेतीस स्थान हैं ॥ १६२-१६३ ॥

विशेष—जयधवला टीकाके अनुसार अब उक्त अल्पबहुत्वका स्पष्टीकरण करते हैं—अनु-भागकाण्डकका जघन्य उत्कीरण काल सबसे स्तोक होता है, क्योंकि अल्पबहुत्वके प्रसंगसे आगे कहे जानेवाले सब पदोंके कालसे अनुभागकाण्डकका जघन्य उत्कीरणकाल सबसे अल्प है। यहाँ दर्शन-मोहनीयका आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्म रहने पर जो पूर्वका अनुभागकाण्डक है उसका सबसे जघन्य उत्कीरणकाल ग्रहण करना चाहिये। परन्तु ज्ञानावरणादि शेष कर्मोंकी अपेक्षा कृतकृत्य होनेके प्रथम समयमें जो पहलेका अनुभागकाण्डक है उसका अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें

सबसे जघन्य उत्कीरण काल ग्रहण करना चाहिये ॥ १ ॥ उससे अनुभागकाण्डकका उत्कृष्ट उत्कीरणकाल विशेष अधिक है, क्योंकि अपूर्वकरणके प्रथम समयसे होनेवाले सब कर्मोंसम्बन्धी अनुभागकाण्डकका उत्कीरण काल यहाँ ग्रहण किया गया है ॥ २ ॥ उससे स्थितिकाण्डकका जघन्य उत्कीरणकाल और जघन्य स्थितिबन्धकाल ये दोनों परस्पर समान होकर भी संख्यातगुणे हैं। ये सम्यक्त्वके अन्तिम स्थितिकाण्डक उत्कीरणकालके प्राप्त होने पर वहीं शेष कर्मोंके स्थितिकाण्डक उत्कीरणकाल और स्थितिबन्धकालको लेना चाहिये ॥ ३ ॥ उससे इनका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है, क्योंकि इन सभीका उत्कृष्ट अपूर्वकरणके प्रथम समयमें प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ उनसे कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टिका काल संख्यातगुणा है, क्योंकि इस कालके भीतर संख्यात हजार स्थितिबन्धोंका अपसरण देखा जाता है ॥ ५ ॥ उससे सम्यक्त्वका क्षपण होनेका काल संख्यातगुणा है, क्योंकि मिथ्यात्व और सम्यङ्मिथ्यात्वकी क्षपणा होनेके बाद सम्यक्त्वकी आठ वर्षप्रमाण स्थितिके क्षपण होनेमें इतना काल लगता है ॥ ६ ॥ उससे अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातगुणा है, क्योंकि अनिवृत्तिकरणके कालके संख्यात बहुभाग जानेपर तथा उसके एक भाग रहने पर सम्यक्त्वकी क्षपणाका प्रारम्भ होता है ॥ ७ ॥ उससे अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है, क्योंकि ऐसा स्वभावसे ही है ॥ ८ ॥ उससे गुणश्रेणिनिक्षेप विशेष अधिक है, क्योंकि इसमें कुछ अधिक अनिवृत्तिकरणका काल सम्मिलित है। यह इसलिये है कि अपूर्वकरणके प्रथम समयमें प्रारम्भ हुई गुणश्रेणिरचना अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके कालसे कुछ अधिक होती है ॥ ९ ॥

उससे सम्यक्त्वका द्विचरम स्थितिकांडक संख्यातगुणा है। यह अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है, फिर भी गुणश्रेणिनिक्षेपके कालसे यह संख्यातगुणा होता है ॥ १० ॥ उससे सम्यक्त्वका अन्तिम स्थितिकांडक संख्यातगुणा है। यह यद्यपि अन्तर्मुहूर्तमात्र है, फिर भी पिछले पदसे संख्यातगुणा है इस विषयमें पहले ही स्पष्टीकरण कर आये हैं ॥ ११ ॥ उससे सम्यक्त्वकी आठ वर्षप्रमाण स्थिति शेष रहनेपर जो स्थितिकांडक होता है वह संख्यातगुणा है। यहाँ गुणकार संख्यात समय है ॥ १२ ॥ उससे जघन्य आबाधा संख्यातगुणी है। यहाँ कृतकृत्यवेदकके प्रथम समयमें बन्धको प्राप्त होनेवाले ज्ञानावरणादि कर्मोंकी आबाधा ली गई है ॥ १३ ॥ उससे उत्कृष्ट आबाधा संख्यातगुणी है। यहाँ अपूर्वकरणके प्रथम समयमें बन्धको प्राप्त ज्ञानावरणादि कर्मोंकी आबाधा ली गई है ॥ १४ ॥ उससे प्रत्येक समयमें अनुभागकी अपवर्तना करनेवाले जीवके सम्यक्त्वका प्रथम समयमें प्राप्त आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा है, क्योंकि आठ वर्षमें अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥ उससे सम्यक्त्वका असंख्यात वर्षप्रमाण अन्तिम स्थितिकांडक असंख्यातगुणा है, क्योंकि यह पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ १६ ॥ उससे सम्यग्मिथ्यात्वका असंख्यात वर्षप्रमाण अन्तिम स्थितिकाण्डक विशेष अधिक है। यहाँ विशेषका प्रमाण एक आवलि कम आठ वर्ष है ॥ १७ ॥ उससे मिथ्यात्वका क्षय होनेपर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका प्रथम स्थितिकाण्डक प्राप्त होता है वह असंख्यातगुणा है। कारण यह है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जो अन्तिम स्थितिकाण्डक है उससे द्विचरम स्थितिकाण्डक असंख्यातगुणा है। उससे त्रिचरम और चतुःचरम आदि स्थितिकाण्डक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे हैं। इस प्रकार संख्यात हजार स्थितिकाण्डक प्रमाण स्थान पीछे जाकर मिथ्यात्वके क्षय होनेपर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जो स्थितिकाण्डक प्राप्त होता है वह इन दोनोंका प्रथम स्थितिकाण्डक है। इस कारण वह असंख्यातगुणा है यह सिद्ध होता है ॥ १८ ॥ उससे मिथ्यात्वकी सत्तावाले जीवके

सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तिम स्थितिकाण्डक असंख्यातगुणा है। कारण कि पूर्वमें कहे गये स्थितिकाण्डकसे यह उससे पहलेका स्थितिकाण्डक है ॥ १९ ॥ उससे मिथ्यात्वका अन्तिम स्थितिकाण्डक विशेष अधिक है। कारण कि इस स्थितिकाण्डकमें मिथ्यात्वका उदयावलि बाह्य पूरा द्रव्य लिया गया है। परन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उस समय अधस्तन स्थितियोंको छोड़कर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण उपरिम बहुभागप्रमाण स्थितियोंका ग्रहण हुआ है। इस कारण अधस्तन असंख्यातवें भाग स्थितियाँ मिथ्यात्वके स्थितिकाण्डकमें सम्मिलित होनेसे वह विशेष अधिक हो गया है ॥ २० ॥

उससे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके असंख्यात गुणहानिवाले स्थितिकाण्डकोंमेंसे प्रथम स्थितिकाण्डक असंख्यातगुणा है। कारण कि पूर्वके स्थितिकाण्डकसे संख्यात हजार स्थितिकांडक असंख्यातगुणित क्रमसे पीछे जाकर दूरापकृष्टिसंज्ञक स्थितिके असंख्यात बहुभागको ग्रहणकर यह स्थितिकाण्डक बनता है ॥ २१ ॥ उससे संख्यात हजार स्थितिकाण्डकोंमें जो अन्तिम स्थितिकाण्डक है वह संख्यातगुणा है। कारण कि इसमें दूरापकृष्टिप्रमाण स्थितिको छोड़कर उपरिम संख्यात बहुभागप्रमाण स्थितिको ग्रहणकर यह काण्डक बना है ॥ २२ ॥ उससे पल्योपमप्रमाण स्थिति सत्कर्मके रहते हुए दूसरा स्थितिकाण्डक संख्यातगुणा है। कारण कि पूर्वके स्थितिकाण्डकसे पश्चादानुपूर्वीके अनुसार संख्यात गुणवृद्धिरूप संख्यात हजार स्थितिकाण्डक पीछे जाकर यह काण्डक उपलब्ध होता है ॥ २३ ॥ उससे जिस स्थितिकाण्डकके समाप्त होनेपर दर्शनमोहनीयका पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्कर्म शेष रहता है वह स्थितिकाण्डक संख्यातगुणा है। यद्यपि यह पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण है, किन्तु पूर्वके स्थितिकाण्डकसे उक्त-सूत्रके अनुसार इसे संख्यातगुणा ही जानना चाहिए। यहाँ गुणकार तत्प्रायोग्य संख्यात है ॥ २४ ॥ उससे अपूर्वकरणमें प्रथम स्थितिकाण्डक संख्यातगुणा है। कारण कि अपूर्वकरणके प्रथम समयमें प्राप्त हुए स्थितिकाण्डकसे विशेष हीन क्रमसे जो कि तत्प्रायोग्य संख्यात अंकप्रमाण स्थितिकाण्डक गुणहानिगर्भ संख्यात हजार स्थितिकाण्डकोंके व्यतीत होनेपर पूर्वका स्थितिकाण्डक उत्पन्न हुआ है। और इस स्थितिकाण्डकके पूर्व स्थितिकाण्डकसम्बन्धी गुणहानियाँ असिद्ध भी नहीं हैं, क्योंकि अपूर्वकरणके भीतर प्रथम स्थितिकाण्डकसे संख्यातगुणाहीन भी स्थितिकाण्डक होता है। इसलिए पूर्वके स्थितिकाण्डकसे यह स्थितिकाण्डक संख्यातगुणा होता है यह सिद्ध हुआ ॥ २५ ॥

उससे पल्योपमप्रमाण स्थितिके अवशिष्ट रहनेपर होनेवाला प्रथम स्थितिकाण्डक संख्यातगुणा है। कारण कि अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण दोनोंमें पल्योपमप्रमाण स्थितिके अवशिष्ट रहनेके पूर्वतक स्थितिकाण्डक पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है। किन्तु अनिवृत्तिकरणमें पल्योपमप्रमाण स्थितिके अवशिष्ट रहनेपर जो प्रथम स्थितिकाण्डक होता है वह पल्योपमके संख्यात बहुभागप्रमाण होता है। इसलिए पूर्वपदसे यह पद संख्यातगुणा कहा है ॥ २६ ॥ उससे पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्त्व विशेष अधिक है, क्योंकि पूर्वोक्त प्रथम स्थितिकाण्डकसे जो पल्योपमका एक भागप्रमाण स्थितिसत्त्व शेष रहा, यह पद उतना अधिक है, इसलिए पूर्वोक्त पदसे यह पद विशेष अधिक कहा है ॥ २७ ॥ उससे अपूर्वकरणमें प्रथम उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका विशेष संख्यातगुणा है, क्योंकि यह पृथक्त्व सागरोपमप्रमाण है। तात्पर्य यह है कि अपूर्वकरणमें जो जघन्य स्थितिकाण्डक होता है उससे यह स्थितिकाण्डक इतना बड़ा है। वहाँ जघन्य स्थिति-

काण्डक पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है, इसलिए पूर्वोक्तपदसे यह पद संख्यातगुणा सिद्ध हुआ ॥ २८ ॥ उससे अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें प्रविष्ट हुए जीवके दर्शनमोहनीयका स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है। कारण कि वहाँपर दर्शनमोहनीयकी स्थिति सौ सागरोपम पृथक्त्व-प्रमाण पाई जाती है, इसलिए पूर्वपदसे यह पद संख्यातगुणा हो जाता है ॥ २९ ॥ उससे दर्शन-मोहनीयको छोड़कर शेष कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है, क्योंकि कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टिके प्रथम समयमें जो उक्त कर्मोंका स्थितिबन्ध होता है वह अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण होता है जो पूर्वोक्तपदसे संख्यातगुणा होता है, इसलिए पूर्व पदसे यह पद संख्यातगुणा कहा गया है ॥ ३० ॥ उससे उन्हीं कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है, क्योंकि इसमें अपूर्वकरणके प्रथम समयमें होनेवाला स्थितिबन्ध ग्रहण किया गया है, इसलिए पूर्वपदसे यह पद संख्यातगुणा है यह स्वाभाविक ही है ॥ ३१ ॥ उससे दर्शनमोहनीयको छोड़कर शेष कर्मोंका जघन्य स्थिति-सत्त्व संख्यातगुणा है, क्योंकि चारित्रमोहनीयकी क्षपणाके सिवाय अन्यत्र सम्यग्दृष्टिके उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे भी जघन्य स्थितिसत्त्व इसी प्रकार प्राप्त होता है यह नियम है, इसलिए पूर्वपदसे इस पदको संख्यातगुणा कहा है ॥ ३२ ॥ उससे उन्हीं कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है, क्योंकि अपूर्वकरणके प्रथम समयमें उक्त कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण पाये जानेका नियम इसलिए है कि अभी उसका घात नहीं हुआ है, इसीलिए पूर्वोक्त पदसे इस पदको संख्यातगुणा कहा है ॥ ३३ ॥ यह उक्त तेत्तीस पदोंका अल्पबहुत्व है।

सत्तण्हं पयडीणं खयादु खइयं तु होदि सम्मत्तं।
मेरु व णिप्पकंपं सुणिम्मलं अक्खयमणंतं ॥ १६४ ॥

सप्तानां प्रकृतीनां क्षयात् क्षायिकं तु भवति सम्यक्त्वम्।
मेरुरिव निष्प्रकंपं सुनिर्मलमक्षयमनंतम् ॥ १६४ ॥

दंसणमोहे खविदे सिज्झदि तत्थेव तदियतुरियभवे।
णादिक्कदि तुरियभवे ण विणस्सदि सेससम्मंव ॥ १६५ ॥

दर्शनमोहे क्षपिते सिद्धयति तत्रैव तृतीयतुर्यभवे।
नातिक्रामति तुर्यभवं न विनश्यति शेषसम्यगिव ॥ १६५ ॥

सत्तण्हं पयडीणं खयादु अवरं तु खइयलद्धी दु।
उक्कस्सखइयलद्धी घाइचउक्कखएण हवे ॥ १६६ ॥

सप्तानां प्रकृतीनां क्षयादवरा तु क्षायिकलब्धिस्तु।
उत्कृष्टक्षायिकलब्धिर्घातिचतुष्कक्षयेण भवेत् ॥ १६६ ॥

[1]उवणेउ मंगलं वो भवियजणा जिणवरस्स कमकमलजुयं।
जसकुलिसकलससत्थियससंकसंखंकुसादिलक्खणभरियं ॥ १६७ ॥

---

१. रायचन्द्रजैनशास्त्रमालीयमुद्रितपुस्तके तथा सम्यग्ज्ञानचन्द्रिकायां च टीकायां सम्मे असंखवस्सिय इत्यादिषट्पञ्चाशदधिकशततमा 'उवणेउ मंगलं वो' इत्यादि सप्तषष्टयधिकशततमा च गाथा नोपलभ्यते।

उपनयतु मंगलं वो भविकजनान् जिनवरस्य क्रमकमलयुगं।
झषकुलिशकलशशंखकशशांकशंखांकुशादिलक्षणभरितं ॥ १६७ ॥

सं० टी०—सत्तह्लमित्यादिगाथात्रयस्यार्थः सुगमः, किन्तु निष्प्रकम्पं निश्चलं सुनिर्मलं अतिशयेन शङ्कादिमलरहितं अक्षयं गाढं अहीनशक्तिकत्वेन शिथिलत्वाभावात्। अनन्तं–अपर्यवसानं तुर्यभवं भोगभूमि-भवापेक्षया। जघन्यक्षायिकलब्धसंयतसम्यग्दृष्टौ उत्कृष्टक्षायिकलब्धिः परमात्मनि भवति ॥ १६४–१६७ ॥ एवं दर्शनमोहक्षपणाटिप्पणं।

सं० चं०—अनंतानुबंधी चतुष्क दर्शनमोहत्रिक इन सात प्रकृतिनिका क्षयतैं क्षायिक सम्यक्त्व हो है सो निष्कंप कहिए निश्चल है। सुनिर्मल कहिए शंकादि मलकरि रहित है। अक्षय कहिए शिथिलताके अभावतैं गाढा है। अनन्त कहिए अंत रहित है ॥ १६४ ॥

सं० चं०—दर्शनमोहका क्षय होतैं तिस ही भवविषैं वा तीसरा भवविषैं वा मनुष्य तिर्यंचका पूर्वैं आयु बांध्या होइ तौ भोगभूमि अपेक्षा चौथा भवविषैं सिद्ध पद पावै। चौथा भवकौं उलंघै नाही। बहुरि औपशमिक क्षायोपशमिक सम्यक्त्ववत् यहु नाशकौं प्राप्त न हो है ॥ १६५ ॥

सं० चं०—सात प्रकृतिनिके क्षयतैं असंयत सम्यग्दृष्टीकैं क्षायिक सम्यक्त्ववत् जघन्य क्षायिक लब्धि हो है। बहुरि च्यारि घातिया कर्मनिके क्षयतैं परमात्माकैं केवलज्ञानादिरूप क्षायिक लब्धि हो है ॥ १६६ ॥

विशेष—१६७ नंबरकी गाथा भाषाटीकामें नहीं है। उसका अर्थ यह है कि—मत्स्य, वज्र कलश, शंख आदि नाना शुभलक्षणोंसे सुशोभित जिनेंद्र भगवान्के चरण कमल भव्य लोगोंको मंगल प्रदान करें ॥

इति क्षायिकसम्यक्त्वप्ररूपणं समाप्तं ॥

चारित्रलब्धि–अधिकार ॥ ३ ॥

तस्मिन् देशचारित्रलब्धिः

अथ दर्शनमोहक्षपणाविधानप्ररूपणानन्तरं देशसकलसंयमलब्धिप्ररूपणार्थमिदं सूत्रमाह—

दुविहा चरित्तलद्धी देसे सयले य देसचारित्तं[1] ।
मिच्छो अयदो सयलं ते वि व देसो य लब्भेई ॥ १६८ ॥

द्विधा चारित्रलब्धिः देशे सकले च देशचारित्रम् ।
मिथ्योऽयतः सकलं तावपि च देशश्च लभते ॥ १६८ ॥

सं० टी०—चारित्रस्य लब्धिः प्राप्तिः चारित्रमेव वा लब्धिः, सा द्विविधा देशेन साकल्येन च । तत्र देशचारित्रं मिथ्यादृष्टिरसंयतसम्यग्दृष्टिश्च लभते । सकलचारित्रं तौ च देशसंयतश्च लभन्ते ॥ १६८ ॥

अब देशसंयमलब्धि और सकलसंयमलब्धिका कथन करनेके लिए उक्त सूत्रका अर्थ कहते हैं—

सं० चं०—चारित्रकी लब्धि कहिए प्राप्ति सो चारित्र देश सकल भेदतैं दोय प्रकार है। तहां देश चारित्रकौं मिथ्यादृष्टी वा असंयतसम्यग्दृष्टि प्राप्त हो है। अर सकलचारित्रकौं ते दोऊ अर देशसंयत प्राप्त हो है ॥ १६८ ॥

विशेष—चारित्रलब्धिके दो भेद हैं—देशचारित्र और सकलचारित्र। इनका क्रमसे संयमासंयमलब्धि और संयमलब्धि भी नाम है। कषायप्राभृतमें इन दोनोंका निरूपण करनेवाली मात्र एक गाथा[2] आई है। गाथाका भाव यह है—संयमासंयमलब्धि और चारित्रलब्धि इनकी उत्तरोत्तर वृद्धि अथवा वृद्धि-हानि तथा पूर्वबद्ध कर्मोंकी उपशामना किस प्रकार होती है यह जानने योग्य है। इस गाथाकी व्याख्या करते हुए जयधवलामें संयमासंयमलब्धिका स्वरूप इस प्रकार बतलाया है—देशचारित्रका घात करनेवाले अप्रत्याख्यानावरण कषायोंके उदयाभावसे हिंसादि दोषोंके एकदेश विरतिस्वरूप अणुव्रतोंको प्राप्त होनेवाले जीवके जो विशुद्धिरूप परिणाम होता है उसे देशचारित्र या संयमासंयमलब्धि कहते हैं। अप्रत्याख्यानावरण कषाय देशसंयमकी प्रतिबन्धक है, अतः देशसंयमके कालमें उसकी अनुदयलक्षण उपशामना रहती है। प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन और नौ नोकषायोंका उदय होने पर भी वहाँ उनका उदय सर्वघाति न होनेसे उनका उदय रहते हुए भी देशसंयमके होनेमें कोई बाधा नहीं आती। कषायप्राभृतकी उक्त गाथाके तीसरे पादमें 'वड्ढावड्ढी' पद आया है। जयधवलामें उसके दो अर्थ किये हैं। प्रथम अर्थ है कि

---

१. का संजमासंजमलद्धी णाम हिंसादिदोसाणमेकदेसविरइलक्खणाणि अणुव्वयाणि देसचारित्तघादीणमपच्चक्खणकसायाणमुदयाभावेण पडिवज्जमाणस्स जीवस्स जो विसुद्धपरिणामो सो संजमासंजमलद्धि त्ति भण्णदे। जयध०, पु० १३, पृ० १०७।

२. लद्धी संजमासंजमस्स वड्ढी तहा चरित्तस्स। वड्ढावड्ढी उवसामणा य तह पुव्वबद्धाणं।

संयमासंयमलब्धि और संयमलब्धिके प्रथम समयसे लेकर अन्तमुंहूर्तकाल तक प्रति समय अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे विशुद्धिरूप परिणामोंमें वृद्धि होती रहती है। दूसरा अर्थ यह है कि 'वड्ढावड्ढी' पदका पदच्छेद करने पर वड्ढि और अवड्ढि ऐसे दो पद निष्पन्न होते हैं। जिसमें आये हुए 'अवड्ढि' पदसे यह अर्थ फलित होता है कि जब जीव संयमलब्धि और संयमासंयम लब्धिसे गिरनेके सन्मुख होता है तब संक्लेशरूप परिणामोंके कारण प्रति समय विशुद्धिरूप परिणामोंकी अनन्तगुणी हानि होने लगती है। वड्ढी शब्दका अर्थ पूर्ववत् है। इस सम्बन्धमें अन्य स्पष्टीकरण यथावसर आगे करेंगे।

तत्र मिथ्यादृष्टर्देशसंयमलब्धौ सामग्रीमाह—

अंतोमुहुत्तकाले देसवदी होहिदि त्ति मिच्छो हु।
सोसरणो[1] सुज्झंतो करणं पि करेदि सगजोग्गं ॥ १६९ ॥

अन्तर्मुहूर्तकाले देशव्रती भविष्यतीति मिथ्यो हि।
सापसरणः शुध्यन् करणान्यपि करोति स्वयोग्यम् ॥ १६९ ॥

सं० टी०—यस्मात्परमन्तमुहूर्तकालं नीत्वा मिथ्यादृष्टिर्देशव्रती भविष्यति तस्मिन् काले सुविशुद्धमिथ्यादृष्टिः प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्धया वर्धमानः आयुर्वर्जितकर्मणां बन्धसत्त्वयोरन्तःकोटीकोटिमात्रावशेषकरणेन स्थित्यपसरणमशुभकर्मणामनन्तैकभागमात्रावशेषकरणेनानुभागापसरणं च कुर्वन् स्वयोग्यं करणपरिणामं कुरुते ॥ १६९ ॥

मिथ्यादृष्टिके देशसंयमकी प्राप्तिके पूर्व जो सामग्री होती है उसका स्पष्टीकरण—

सं० चं०—अंतर्मुहूर्त काल पीछैं जो देशव्रती होसी सो मिथ्यादृष्टि जीव समय समय अनंतगुणी विशुद्धताकरि वर्धमान होतौ आयु विना सात कर्मनिका बंध वा सत्व अंतःकोटाकोटीमात्र अवशेष करनेकरि तौ स्थिति बंधापसरणकौं करता अपने योग्य अर अशुभ कर्मनिका अनुभाग अनंतवां भागमात्र करनेकरि अनुभागबंधापसरणकौं करता अपने करण योग्य परिणामकौं करै है ॥ १६९ ॥

विशेष—जो मिथ्यादृष्टि जीव अन्तमुंहूर्तकालके भीतर संयमासंयमको प्राप्त करता है वह जैसे अशुभकर्मोंके अनुभागबन्धको द्विस्थानीय करता है वैसे ही उन कर्मोंके सत्त्वको भी द्विस्थानीय करता है इतना यहाँ अशुभकर्मोंके विषयमें विशेष समझना चाहिए।

तत्र मिथ्यादृष्टेर्देशसंयमलब्धौ सम्यक्त्वविभागेन करणपरिणामविभागप्रदर्शनार्थमिदमाह—

मिच्छो देसचरित्तं उवसमसम्मेण गिण्हमाणो हु।
सम्मत्तुप्पत्तिं वा तिकरणचरिमम्हि गेण्हदि हु[2] ॥ १७० ॥

१. संजमासंजममंतोमुहुत्तेण लभिहिदि त्ति तदो प्पहुडि सव्वो जीवो आउगवज्जाणं ट्ठिदिबंधं ट्ठिदिसंतकम्मं च अंतोकोडाकोडीए करेदि, सुभाणं कम्माणमणुभागबंधमणुभागसंतकम्मं च चउट्ठाणियं करेदि, असुभाणं कम्माणमणुभागबंधमणुभागसंतकम्मं च दुट्ठाणियं करेदि।

कसाय० चू०, जयध० पु० १३, पृ० १२४।

२. उवसमसम्मत्तेण सह संजमासंजमं पडिवज्जमाणस्स तिण्हं पि करणाणं संभवो अत्थि। जयध०, पु० १३, पृ० ११३।

मिथ्यो देशचारित्रं उपशमसम्येन गृह्णन् हि।
सम्यक्त्वोत्पत्तिमिव त्रिकरणचरमे गृह्णाति हि ॥ १७० ॥

सं० टी०—यदानादिमिथ्यादृष्टिर्वा सादिमिथ्यादृष्टिर्वा जीवः औपशमिकसम्यक्त्वेन सह देशचारित्रं गृह्णानः दर्शनमोहोपशमविधानेन प्रागुक्तप्रकारेण सम्यक्त्वोत्पत्तौ त्रिकरणचरमसमये देशचारित्रं गृह्णाति । यथा दर्शनमोहोपशमने प्रकृतिबन्धापसरणं स्थितिबन्धापसरणं प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्धिवृद्धिः अप्रशस्तप्रकृतीनां प्रतिसमयमनन्तगुणहान्यानुभागबन्धः अधःप्रवृत्तादिकरणपरिणामाः स्थितिकाण्डकघातादयश्च ये कार्यविशेषाः ते सर्वेऽपि औपशमिकसम्यक्त्वचारित्रयोर्युगपद्ग्रहणेऽन्यूनं वक्तव्या विशेषाभावादित्यभिप्रायः ॥ १७० ॥

उपशम सम्यक्त्वके साथ देशसंयमको ग्रहण करनेवाला जीव क्या कार्य करता है इसका निर्देश—

सं० चं०—अनादि वा सादि मिथ्यादृष्टी जीव उपशम सम्यक्त्व सहित देश चारित्रकौं ग्रहै है सो दर्शनमोहका उपशम विधान जैसैं पूर्वैं वर्णन कीया है तैसैं ही विधान करि तीन करणनिका अंत समयविषैं देशचारित्रकौं ग्रहै है । प्रकृतिबंधापसरण स्थितिबंधापसरण आदि जे कार्य विशेष तहां कहे हैं ते सर्व हो हैं विशेष किछू नाहीं ॥ १७० ॥

अथ सादिमिथ्यादृष्टेर्वेदकसम्यक्त्वेन सह देशचारित्रग्रहणे संभवद्विशेषप्रतिपादनार्थमिदं गाथाद्वयमाह—

मिच्छो देसचरित्तं वेदगसम्मेण गेण्हमाणो हु ।
दुकरणचरिमे गेण्हदि गुणसेढी णत्थि तक्करणे[1] ॥ १७१ ॥
सम्मत्तुप्पत्तिं वा थोवबहुत्तं च होदि करणाणं ।
ठिदिखंडसहस्सगदे अपुव्वकरणं समप्पदि हु[2] ॥ १७२ ॥

मिथ्यो देशचारित्रं वेदकसम्येन गृह्णन् हि।
द्विकरणचरमे गृह्णाति गुणश्रेणी नास्ति तत्करणे ॥ १७१ ॥
सम्यक्त्वोत्पत्तिमिव स्तोकबहुत्वं च भवति करणानाम् ।
स्थितिखंडसहस्रगतं अपूर्वकरणं समाप्यते हि ॥ १७२ ॥

सं० टी०—वेदकसम्यक्त्वयोग्यः सादिमिथ्यादृष्टिर्जीवो वेदकसम्यक्त्वेन सह देशचारित्रं गृह्णानः अधः-प्रवृत्तापूर्वकरणपरिणामद्वयं प्रतिपद्यमानो गुणश्रेणिवर्जितानि स्थितिखण्डादीनि सर्वाण्यपि कार्याणि कुर्वन् अपूर्वकरणचरमसमये वेदकसम्यक्त्वं देशचारित्रं च युगपद् गृह्णाति तत्रानिवृत्तिकरणपरिणामं विनापि वेदक-सम्यक्त्वदेशचारित्रप्राप्तिसंभवात् । अधःप्रवृत्तकरणकालात् संख्यातगुणहीनोऽपूर्वकरणकाल इत्यनयोः करण-परिणामयोः कालः स्तोकबहुत्वमन्यान्यपि कार्याणि यथा सम्यक्त्वोत्पत्तौ प्रतिपादितानि तथात्रापि वेदित-

१. गुणसेढी च णत्थि । कसाय० चू०, पृ० १२१ । किं कारणं ? ण ताव सम्मत्तुप्पत्तिणिबंधणगुण-सेढीए एत्थ संभवो, पढमसम्मत्तग्गहणादो अण्णत्थ तदणुवणंभादो । ण संजमासंजमपरिणामणिबंधणगुणसेढीए वि अत्थि संभवो, अलद्धप्पसरूवस्स संजमासंजमगुणस्स गुणसेढिणिज्जराए वावारविरोहादो । जयध०, पु० १३, पृ० १२१ ।

२. एवं ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु अपुव्वकरणद्धा समत्ता भवदि कसाय० चू०, जयध० पु० १३, पृ० १२२ ।

व्यानीत्यर्थः । एवमपूर्वकरणकालाभ्यन्तरे संख्यातसहस्रेषु स्थितिखण्डेषु गतेषु अपूर्वकरणकालः परिसमाप्यते । एवमसंयतसम्यग्दृष्टिरप्यधःप्रवृत्तापूर्वकरणद्वयकालचरमसमये देशचारित्रं प्रतिपद्यते तस्य गुणश्रेणिविनावशिष्ट-सर्वकार्याणि अपूर्वकरणचरमसमयपर्यन्तमविशेषेण ज्ञातव्यानि । मिथ्यादृष्टिग्रहणमुपलक्षणं तेन व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिरिति न्यायमवलम्ब्यासंयतवेदकसम्यग्दृष्टेरपि देशचारित्रग्रहणक्रमो दर्शितः । सिद्धान्तेऽपि तथैव व्याख्यानात् । अत्रापूर्वकरणकाले कुतो गुणश्रेण्यभावः ? इति चेत्—उपशमसम्यक्त्वाभावात्तन्निबन्धनगुणश्रेण्य-भावः । देशसंयमस्याद्याप्यग्रहणात् तन्निमित्तकगुणश्रेणेरप्यभावः वेदकसम्यक्त्वस्य च गुणश्रेणिहेतुत्वाभावात् इति ब्रूमहे । अनिवृत्तिकरणपरिणामं विना कथं देशचारित्रप्राप्तिरित्यपि नाशङ्कनीयं, कर्मणां सर्वोपशमनविधाने निर्मूलक्षयविधाने चानिवृत्तिकरणपरिणामस्य व्यापारो न क्षयोपशमविधाने इति प्रवचने प्रतिपादितत्वात् ॥ १७१–१७२ ॥

सादि मिथ्यादृष्टि जीवके वेदक सम्यक्त्वके साथ देशसंयमको ग्रहण करते समय जो विशेषता होती है उसका निर्देश—

सं० चं०—सादि मिथ्यादृष्टी जीव वेदक सम्यक्त्व सहित देशचारित्रकौं ग्रहण करै ताकैं अधःकरण अपूर्वकरण ए दोय ही करण होंइ । तिनविषैं गुणश्रेणि निर्जरा न हो है, अन्य स्थिति खण्डादिक सर्व कार्य हो हैं सो अपूर्वकरणका अन्त समयविषैं युगपत् वेदक सम्यक्त्व अर देश चारित्रकौं ग्रहै है । जातैं अनिवृत्तिकरण विना ही इनकी प्राप्ति सम्भवै है । तहाँ प्रथमोपशम सम्यक्त्वका उत्पत्तिवत् करणनिका अल्पबहुत्व है तातैं इहाँ अधःकरणकालतैं अपूर्वकरणका काल संख्यातवें भाग प्रमाण है । बहुरि अपूर्वकरणका कालविषैं संख्यात हजार स्थितिखण्ड भएं अपूर्वकरणका काल समाप्त हो है । ऐसैं ही असंयत वेदक सम्यग्दृष्टि भी दोय करणका अन्त समयविषैं देशचारित्रकौं प्राप्त हो है । मिथ्यादृष्टि ही का व्याख्यानतैं सिद्धान्तके अनुसारि असंयतका भी ग्रहण करना । इहाँ उपशम सम्यक्त्वका तौ अभाव तातैं तिस सम्बन्धी गुणश्रेणि नाहीं अर देशसंयतका अब ताईं ग्रहण भया नाहीं तातैं इहां अपूर्वकरणविषैं गुणश्रेणिका अभाव कह्या है । बहुरि कर्मनिका उपशम वा क्षय विधान ही विषैं अनिवृत्तिकरण हो है । क्षयोपशम-विषैं होता नाहीं तातैं अनिवृत्तिकरण न कह्या ऐसा जानना ॥ १७१–१७२ ॥

अथ देशसंयमकालप्राप्तितदानींतनगुणश्रेणिकरणप्रतिपादनार्थमाह—

से काले देसवदी[1] असंखसमयप्पबद्धमाहरियं ।
उदयावलिस्स बाहिं गुणसेढीमवट्ठिदं कुणदि[2] ॥ १७३ ॥

तस्मिन् काले देशव्रती असंख्यसमयप्रबद्धमाहृत्य ।
उदयावलेर्बाह्यां गुणश्रेणीमवस्थितां करोति ॥ १७३ ॥

सं० टी०—अपूर्वकरणचरमसमयादनन्तरसमये जीवो देशव्रती भूत्वा आयुर्वर्जितकर्मणां सत्त्वद्रव्यात्—

---

१. तदो से काले पढमसमयसंजदासंजदो जादो । कसाय० चू० जयध० पु० १३, पृ० १२२ । पुव्विल्लमसंजमपज्जायं छंडिऊण देससंजमपज्जाएण एसो जीवो करणादिलद्धिवसेण परिणदो त्ति भणिदं होइ । जयध० पु० १३, पृ० १३३ ।

२. असंखेज्जे समयपबद्धे ओकड्डियूण गुणसेढीए उदयावलियबाहिरे रचेदि । गुणसेढिणिक्खेवो अवट्ठिदगुणसेढी तत्तिगो चेव । कसाय० चू० जयध० पु० १३, पृ० १२४–१२५ ।

स $\frac{a}{७}$ । १२ — असंख्यातैकभागमपकृष्य स $\frac{a}{७ \text{ ओ}}$ । १२ — इदं पल्यासंख्यातभागेन खण्डयित्वा बहुभागद्रव्यमुपरितनस्थितौ निक्षिपेत् । पुनस्तदेकभागसंख्यातलोकेन भक्त्वा तदेकभागमुदयावल्यां दत्त्वा तद्बहुभागमसंख्यातसमयप्रबद्धमात्रं गुणश्रेण्यायामे निक्षिपेत् । अयं च गुणश्रेण्यायामः देशसंयमप्रथमसमयादारभ्य द्वितीयादिसमयेष्ववस्थित एव न गलितावशेषमात्रः । एतद्गुणश्रेण्यायामप्रमाणं प्रथमोपशमसम्यक्त्वोत्पत्तिगुणश्रेण्यायामेन संख्यातगुणहीनं २ १ १ ॥ १७३ ॥

देशसंयमकी प्राप्तिके प्रथम समयसे कार्य विशेषका निर्देश—

सं० चं०—अपूर्वकरणका अन्त समयके अनन्तरवर्ती समयविषैं जीव देशव्रती होइ करि अपने देशव्रतका कालविषैं आयु विना अन्य कर्मनिका सत्त्वद्रव्य ताकौं अपकर्षण भागहारमात्र असंख्यातका भाग देइ एकभागविषैं असंख्यात समय प्रबद्धप्रमाण द्रव्यकौं ग्रहि करि ताकौं पल्यका असंख्यातवाँ भागका भाग देइ बहुभाग उपरितन स्थितिविषै देना अवशेष एक भागकौं असंख्यात लोकका भाग देइ एक भाग उदयावलीविषैं देना अरु बहुभाग असंख्यात समयप्रबद्धमात्र है सो गुणश्रेणि आयामविषैं देना । सो यहु गुणश्रेणि आयाम अवस्थित है गलितावशेष नाहीं है अर प्रथमोपशम सम्यक्त्वसम्बन्धी गुणश्रेणि आयामतैं संख्यातगुणा घटता है । ऐसैं देशव्रती होइ उदयावलीतैं वाह्य अवस्थित्ति गुणश्रेणि करै है ॥ १७३ ॥

विशेष—गुणश्रेणि दो प्रकारकी होती है—एक गलितशेष गुणश्रेणि और दूसरी अवस्थित गुणश्रेणि । गलितशेष गुणश्रेणि तत्प्रायोग्य अन्तर्मुहूर्तके जितने समय होते हैं तत्प्रमाण आयामवाली होती है सो उदयावलिके एक एक निषेकके गलने पर उसके प्रमाणमेंसे एक एक समयकी कमी होती जाती हैं । अवस्थित गुणश्रेणि भी यद्यपि अन्तर्मुहूर्तकालप्रमाण आयामवाली होती है । परन्तु उसमेंसे उदयावलिके एक निषेकके गलने पर गुणश्रेणिशीर्षमें एक निषेकको वृद्धि होती जाती है । इसलिये इसका प्रमाण सदा स्थिर रहनेसे इसे अवस्थित गुणश्रेणि कहते हैं । संयमासंयमकी उत्पत्तिकालमें तो गुणश्रेणि रचना नहीं होती । पर संयमासंयमकी प्राप्तिके प्रथम समयसे ही अवस्थित गुणश्रेणिका क्रम प्रारम्भ हो जाता है । इतना अवश्य है कि इसके उदयावलिके निषेकोंको छोड़कर ऊपरके अन्तर्मुहूर्तकाल प्रमाण निषेकोंमें ही गुणश्रेणि रचना होती है ।

अथ देशसंयमस्यावस्थाविशेषतत्कार्यविभागप्रदर्शनार्थमाह—

दव्वं असंखगुणियक्कमेण एयंतवड्ढिकालो त्ति ।
बहुठिदिखंडे तीदे अधापवत्तो हवे देसो ॥ १७४ ॥

द्रव्यमसंख्यगुणितक्रमेण एकांतवृद्धिकाल इति ।
बहुस्थितिखंडेऽतीते अधाप्रवृत्तो भवेद्देशः ॥ १७४ ॥

सं० टी०—अयं देशसंयतः प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्धिवृद्ध्या वर्धमानोऽन्तर्मुहूर्तपर्यन्तं द्रव्यमसंख्यात-

१. कुदो पुण करणपरिणमेसु उवसंहरिदेसु ट्ठिदिखंडयादीणमेत्थ संभवो त्ति णासंका कायव्वा, करणपरिणाभावे वि एयंताणुवड्ढिदसंजमासंजमपरिणामपाहम्मेण ठिदिघादाणमेत्थ पवुत्तीए बिरोहाभावादो । जयध० पु० १३ पृ० १२४ ।

गुणितक्रमेणापकृष्यावस्थितिगुणश्रेण्यायामे निक्षिपन् स्थितिकाण्डकादिकार्यं कुर्वन् एकान्तवृद्धिदेशसंयत-इत्युच्यते। एकान्तवृद्धिकालादन्तर्मुहूर्तमात्रात्परं वृद्धिं विना अवस्थितया विशुद्धया परिणतः स्वस्थानदेश-संयतः अथाप्रवृत्तदेशसंयतः इत्युच्यते। तस्याथाप्रवृत्तदेशसंयतस्य कालो जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। उत्कर्षेण देशोन-पूर्वकोटिवर्षाणि ॥ १७४ ॥

पूर्वोक्त आवश्यक कार्यविशेषका विशेष खुलासा—

सं० चं०—देशसंयतका प्रथम समयतैं लगाय अन्तर्मुहूर्त पर्यंत समय समय अनन्तगुणा विशुद्धताकरि बधै है सो याकौं एकान्तवृद्धि कहिए सो याका कालविषैं समय समय असंख्यात-गुणा क्रमकरि द्रव्यकौं अपकर्षण करि अवस्थिति गुणश्रेणि आयामविषै निक्षेपण करै है। तहां एकान्तवृद्धिका कालविषैं स्थितिकाण्डकादि कार्य हो है। बहुरि बहुत स्थिति खण्ड भएं एकान्त वृद्धिका काल समाप्त होनेके अनन्तरि [illegible] वृद्धि रहित होइ स्वस्थान देशसंयत होइ याकौं अथाप्रवृत्त देशसंयत भी कहिए। ताका काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त अर उत्कृष्ट देशोन कोडि पूर्ववर्षप्रमाण है ॥ १७४ ॥

विशेष—देशसंयतके दो भेद हैं—एकान्त वृद्धिदेशसंयत और अथाप्रवृत्त या यथाप्रवृत्त देशसंयत। एकान्त वृद्धि संयतका काल अन्तर्मुहूर्त है। यह देशसंयतके प्राप्त होनेके प्रथम समयसे अन्तर्मुहूर्तकाल तक होता है। इस कालके भीतर समय-समय परिणामोंकी विशुद्धि अनन्तगुणी बढ़ती जाती है। इस कारण इस कालके भीतर करण परिणामोंके विना भी स्थिति-काण्डकघात और अनुभाग काण्डकघात क्रिया चालू रहती है। इतना अवश्य है कि एकान्त वृद्धि का काल समाप्त होने पर स्थिति-अनुभागकाण्डकघातकी क्रिया नहीं होती। मात्र गुणश्रेणि-निर्जरा सब काल होती रहती है।

तस्मिन्नथाप्रवृत्तदेशसंयतकाले संभवत्कार्यविशेषप्रतिपादनार्थमिदमाह—

ठिदिरसघादो णत्थि हु अधापवत्ताभिधाणदेसस्स।
पडिउट्ठिदे मुहुत्तं संतेण हि तस्स करणदुगा[1] ॥ १७५ ॥

स्थितिरसघातो नास्ति हि अथाप्रवृत्ताभिधानदेशस्य।
प्रतिपतिते मुहूर्तं संयतेन हि तस्य करणद्विकम् ॥ १७५ ॥

सं० टी०—अथाप्रवृत्तदेशसंयतकाले स्थितिखण्डनमनुभागखण्डनं वा नास्ति। [illegible]देशसंयत-चरमसमये खण्डितावशेषयावन्मात्रस्थित्यनुभागानि कर्माणि तावन्मात्राण्येव अथाप्रवृत्तदेशसंयतकाले अवतिष्ठन्त इत्यर्थः। यः पुनस्तीव्रसंक्लेशकारणबहिरङ्गद्रव्यादिनिरपेक्षः केवलान्तरङ्गकर्मोदयजनितसंक्लेशपरिणामवशेन देशसंयमात्प्रच्युत्यासंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानं प्राप्यात्यल्पान्तर्मुहूर्तं तत्र स्थित्वा शीघ्रमेव देशसंयमं गृह्णाति तस्यापि स्थित्यनुभागकाण्डकघातो नास्ति करणद्वयपरिणामं विनैव देशसंयमग्रहणात्। यः पुनस्तीव्रविराधनाकारण-बहिरङ्गद्रव्यादिसन्निधाने देशसंयमं सम्यक्त्वं च विराध्य मिथ्यात्वं गत्वा दीर्घमन्तर्मुहूर्तं संख्यातासंख्यात-

---

१. अधापवत्तसंजदासंजदस्स ठिदिघादो वा अणुभागघादो वा णत्थि। जदि संजमासंजमादो परिणाम-पच्चयेण णिग्गदो, पुणो वि परिणामपच्चएण अंतोमुहुत्तेण आणीदो संजमासंजमपडिवज्जइ, तस्स वि णत्थि ट्ठिदिघादो वा अणुभागघादो वा। कसाय० चू० जयध पु० १३, पृ० १२७।

वर्षाणि वा वेदकयोग्यकालप्रमितानि स्थित्वा पुनरपि लब्धिवशेन वेदकसम्यक्त्वं संयमासंयमं च युगपत्प्रतिपद्यते तस्याधःप्रवृत्तापूर्वकरणद्वयपरिणामसंभवात् स्थित्यनुभागकाण्डकघातोऽस्ति ॥ १७५ ॥

अथाप्रवृत्त संयतासंयतके कालमें होनेवाले कार्यविशेषका खुलासा—

सं० चं०—अथाप्रवृत्त देशसंयतका कालविषैं स्थिति खण्डन वा अनुभाग खण्डन न हो है। जो एकान्त वृद्धि देशसंयतका अन्त समयविषैं घात कीए पीछैं अवशेष स्थिति अनुभाग रह्या सोई तहाँ रहै है। बहुरि जो जीव तीव्र संक्लेशका कारण बाह्य निमित्त विना केवल अन्तरङ्ग-कर्मका उदयकरि निपज्या संक्लेश करि देशसंयततैं भ्रष्ट होइ करि असंयत सम्यग्दृष्टी होइ तहाँ स्तोक अन्तर्मुहूर्त कालमात्र रहि शीघ्र ही देशसंयमकों ग्रहै ताकैं भी स्थिति अनुभाग काण्डकका घात न हो है जातैं दोय करण कीएं बिना ही देशसंयमकौं ग्रहै है। बहुरि जो जीव बाह्य कारणतैं सम्यक्त्व वा देशसंयमतैं भ्रष्ट होइ करि मिथ्यादृष्टी होइ तहाँ बड़ा अन्तर्मुहूर्त वा संख्यात असंख्यातवर्ष पर्यन्त रहि बहुरि-वेदक सम्यक्त्व सहित देशसंयमकौं ग्रहै ताकैं अधः-प्रवृत्त अपूर्वकरण हो है। तातैं स्थिति-अनुभागकाण्डक घात भी हो है ॥ १७५ ॥

अथाप्रवृत्तदेशसंयतस्य गुणश्रेणिद्रव्यप्रमाणार्थमिदमाह—

देसो समये समये सुज्झंतो संकिलिस्समाणो य ।
चउवड्ढिहाणिदव्वादवट्ठिदं कुणदि गुणसेढिं[1] ॥ १७६ ॥

देशः समये समये शुध्यन् संक्लिश्यन् च ।
चतुर्वृद्धिहानिद्रव्यावस्थितां करोति गुणश्रेणीम् ॥ १७६ ॥

सं० टी०—अधःप्रवृत्तदेशसंयतः समयं समयं प्रति विशुद्धयन् वा संक्लिश्यमानो वा चतुर्वृद्धिहानि-द्रव्यादवस्थितिगुणश्रेणिं करोत्येव। तथाहि—

विवक्षितस्य यस्य कस्यापि कर्मणः सत्त्वद्रव्यं स ə । १२— अस्मादयमथाप्रवृत्तदेशसंयतो तदा
७

संक्लेशपरिणामं गत्वा पुनर्विशुद्धिमापूरयति तदा तद्विशुद्धिपरिणामानुसारेण कदाचिदसंख्यातभागाधिकं
१— १__

स ə । १२ –ə कदाचित् संख्यातभागाधिकं स ə । १२ – ९ कदाचित्संख्यातगुणितं स ə १२ – ९
७ । ओ ə ७ । ओ ९ ७ ओ

कदाचिदसंख्यातगुणं च—स ə । १२ – ə द्रव्यमकृष्य गुणश्रेणिं, यदा तु विशुद्धिहान्या संक्लेशपरिणामं
७ । ओ

१०

गच्छति तदा तत्संक्लेशपरिणामानुसारेण कदाचिदसंख्यातभागहीनं स ə । १२ – ə कदाचित्संख्यातभागहीनं
७ । ७ ə

१. जाव संजदासंजदो ताव गुणसेढिं समये समये करेदि। विसुज्झंतो वि असंखेज्जगुणं वा संखेज्जगुणं वा संखेज्जभागुत्तरं वा असंखेज्जभागुत्तरं वा करेदि। संकिलिसंतो एवं चेव गुणहीणं वा विसेसहीणं वा करेदि। कसाय० चू०, जयध० पु० १३, पृ० १२९–१३०।

१८
स ३ । १२ – ९ कदाचित्संख्यातगुणहीनं स ३ । १२ – कदाचिदसंख्यातगुणहीनं स ३ । १२ – वा
७ ओ ९ ७ ओ ९ ७ । ओ ३
द्रव्यमपकृष्य गुणश्रेणिनिक्षेपं करोति । विशुद्धिसंक्लेशपरिणामपरावृत्तिवशेनैवंविधद्रव्यापकर्षणसंभवात् । एवं स्वस्थानदेशसंयतो जघन्येनान्तर्मुहूर्तपर्यन्तमुत्कर्षेण देशोनपूर्वकोटिपर्यन्त च गुणश्रेण्यायामे द्रव्यं निक्षिपतीत्यर्थः ॥ १७६ ॥

अथाप्रवृत्त संयतासंयतके गुणश्रेणिद्रव्यकी प्ररूपणा—

सं० चं०—अथाप्रवृत्त देशसंयत जीव सो कदाचित् विशुद्ध होइ कदाचित् संक्लेशी होइ तहाँ विवक्षित कर्मका पूर्व समयविषैं जो द्रव्य अपकर्षण कीया तातैं अनन्तर समयविषैं विशुद्धताकी वृद्धिके अनुसारि कदाचित् असंख्यातवें भाग बँधता कदाचित् संख्यातवाँ भाग बँधता, कदाचित् संख्यातगुणा कदाचित् असंख्यातगुणा द्रव्यकौं अपकर्षण करि गुणश्रेणिविषैं निक्षेपण करै है। बहुरि विशुद्धताकी हानिके अनुसारि कदाचित् असंख्यातवें भाग घटता, कदाचित् संख्यातवें भाग घटता, कदाचित् संख्यातगुणा घटता, कदाचित् असंख्यातगुणा घटता द्रव्यकौं अपकर्षणकरि गुणश्रेणिविषैं निक्षेपण करै है। ऐसैं अधाप्रवृत्त देशसंयतका सर्वकालविषैं समय समय यथासम्भव चतुःस्थान पतित वृद्धि हानि लीएं गुणश्रेणि विधान पाइए है ॥ १७६ ॥

विशेष—देशसंयतका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है और उत्कृष्ट काल आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त कम एक कोटिवर्ष प्रमाण है। इसलिये इस कालके भीतर परिणामोंमें स्वभावतः संक्लेश और विशुद्धिका क्रम चलता रहता है। तदनुसार गुणश्रेणिमें निक्षिप्त होनेवाले द्रव्यमें भी फेर-फार होता रहता है। इसी तथ्यको इस गाथामें स्पष्ट करके बतलाया है। यद्यपि वृद्धियाँ छह और हानियाँ छह मानी गई हैं, पर यहाँ अनन्त भागवृद्धि और अनन्त गुणवृद्धि तथा अनन्त भागहानि और अनन्त गुणहानि इस प्रकार दो वृद्धि और दो हानि सम्भव न होनेसे परिणामोंके विशुद्धिकालमें यथासम्भव चार वृद्धियाँ होती हैं और संक्लेशकालमें यथासम्भव चार हानियाँ होती हैं। इनके विषयमें विशेष स्पष्टीकरण टीकामें किया ही है।

देशसंयतस्यानुभागखण्डोत्करणकालादीनामल्पबहुत्वप्रतिपादनप्रतिज्ञाप्रदर्शनार्थमिदमाह—

विदियकरणादु जावय देसस्सेयंतवड्ढिचरिमेत्ति ।
अप्पाबहुगं वोच्छं रसखंडद्धाणपहुदीणं[1] ॥ १७७ ॥

द्वितीयकरणात् यावत् देशस्यैकांतवृद्धिचरमे इति ।
अल्पबहुत्वं वक्ष्ये रसखंडाध्वानप्रभृतीनाम् ॥ १७७ ॥

सं० टी०—अपूर्वकरणप्रथमसमयादारभ्य एकान्तवृद्धिदेशसंयतपर्यंतं संभवतां जघन्यानुभागखण्डोत्करणकालादीनामष्टादशपदानामल्पबहुत्वं प्रवक्ष्यामीति प्रतिज्ञार्थः ॥ १७७ ॥

---

१. तदो एदिस्से परूवणाए समत्ताए संजमासंजमं पडिवज्जमाणस्स पढमसमयअपुव्वकरणादो जाव संजदासंजदो एयंताणुवड्ढीए चरित्ताचरित्तलद्धीए वड्ढदि एदम्हि काले ट्ठिदिबंध–ट्ठिदिसंतकम्म–ट्ठिदिखंडयाणं जहण्णुक्कस्सयाणमाबाहाणं जहण्णुक्कस्सियाणमुक्कीरणद्धाणं जहण्णुक्कस्सियाणं अण्णेसिं च पदाणमप्पाबहुअं वत्तइस्सामो । कसाय० चू०, जयध० पु० १३, पृ० १३२ ।

देशसंयतके अनुभागकाण्डकोत्करणकाल आदिके अल्पबहुत्वका निर्देश—

सं० चं०—अपूर्वकरणतैं लगाय एकान्त वृद्धि देशसंयतका अन्त पर्यन्त सम्भवते जे जघन्य अनुभागखण्डोत्करणकालादिकरूप अठारह् स्थान तिनिका अल्पबहुत्व कहौंगा ।। १७७ ।।

अथ तान्येवाल्पबहुत्वपदानि प्ररूपयितुं गाथाषट्कमाह—

अंतिमरसखंडुक्कीरणकालादो दु पढमओ अहिओ ।
चरिमट्ठिदिखंडुक्कीरणकालो संखगुणिदो हु[1] ।। १७८ ।।

अन्तिमरसखंडोत्करणकालतः प्रथमोऽधिकः ।
चरमस्थितिखंडोत्करणकालः संख्यगुणितो हि ।। १७८ ।।

पढमट्ठिदिखंडुक्कीरणकालो साहियो हवे तत्तो ।
एयंतवड्ढिकाले अपुव्वकालो य संखगुणियमकमा[2] ।। १७९ ।।

प्रथमस्थितिखंडोत्करणकालः साधिको भवेत् ततः ।
एकांतवृद्धिकाले अपूर्वकालश्च संख्यगुणितक्रमः ।। १७९ ।।

अवरा मिच्छतियद्धा अविरद तह देससंजमद्धा य ।
छप्पि समा संखगुणा तत्तो देसस्स गुणसेढी[3] ।। १८० ।।

अवरा मिथ्यात्रिकाद्धा अविरता तथा देशसंयमाद्धा च ।
षडपि समाः संख्यगुणा ततो देशस्य गुणश्रेणी ।। १८० ।।

चरिमाबाहा तत्तो पढमाबाहा य संख्यगुणियकमा ।
तत्तो असंखगुणिये चरिमट्ठिदिखंडओ णियमा[4] ।। १८१ ।।

चरमाबाधा ततः प्रथमाबाधा च संख्यगुणितक्रमा ।
ततः असंख्यगुणितः चरमस्थितिखंडको नियमात् ।। १८१ ।।

१. सव्वत्थोवा जहण्णिया अणुभागखंडयउक्कीरणद्धा । उक्कस्सिया अणुभागखंडयउक्कीरणद्धा विसेसाहिया । जहण्णिया ट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धा जहण्णिया ट्ठिदिबंधगद्धा च दो वि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ । कसाय० चू०, जयध० पु० १३, पृ० १३३ ।

२. उक्कस्सियाओ विसेसाहियाओ । पढमसमयसंजदासंजदप्पहुडि जं एयताणुवड्ढीए वड्ढदि चरित्ताचरित्तपज्जत्तयेहिं एसो वड्ढिकालो संखेज्जगुणो । अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा । कसाय० चू०, जयध० पु० १३, पृ० १३३-१३४ ।

३. जहण्णिया संजमासंजमद्धा सम्मत्तद्धा मिच्छत्तद्धा संजमद्धा असंजमद्धा सम्मामिच्छत्तद्धा च एदाओ छप्पि अद्धाओ तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ । गुणसेढी संखेज्जगुणा । कसाय० चू०, जयध० पु० १३, पृ० १३४ ।

४. जहण्णिया आबाहा संखेज्जगुणा । उक्कस्सिया आबाहा संखेज्जगुणा । जहण्णयं ट्ठिदिखंडयमसंखेज्जगुणं । कसाय० चू०, जयध० पु० १३, पृ० १३५ ।

पल्लस्स संखभागं चरिमट्ठिदिखंडयं हवे जम्हा ।
तम्हा असंगुणियं चरिमट्ठिदिखंडयं होइ ॥ १८२ ॥

पल्यस्य संख्यभागं चरमस्थितिखंडकं भवेत् यस्मात् ।
तस्मादसंख्यगुणितं चरमं स्थितिखंडकं भवति ॥ १८२ ॥

पढमे अवरो वल्लो पढमुक्कस्सं च चरिमठिदिबंधो ।
पढमो चरिमं पढमट्ठिदिसंतं संखगुणियकमा[1] ॥ १८३ ॥

प्रथमे अवरः पल्यः प्रथमोत्कृष्टं च चरमस्थितिबंधः ।
प्रथमः चरमं प्रथमस्थितिसत्त्वं संख्यगुणितक्रमाणि ॥ १८३ ॥

सं० टी०—सर्वतः स्तोको देशसंयतस्य एकान्तवृद्धिचरमसमये संभवज्जघन्यानुभागखंडोत्करणकालः २ २ । १ तस्मादपूर्वकरणप्रथमसमये संभव्युत्कृष्टानुभागखण्डोत्करणकालो विशेषाधिकः २ २ । ५ । २ ४ एतस्माद्देशसंयतस्यैकान्तवृद्धिचरमसमयसंभविजघन्यस्थितिखण्डोत्करणकालः संख्येयगुणः २ २ ५ । ४ ॥ ३ ४ तस्मादपूर्वकरणप्रथमसमयसंभवदुत्कृष्टस्थितिखण्डोत्करणकालो विशेषाधिकः २ २ । ५ । ४ । ५ ॥ ४ ४ । ४ अस्माद्देशसंयमग्रहणप्रथमसमयादारम्य तद्विशुद्धेरेकान्तवृद्धिकालः संख्येयगुणः २ ० २ ॥ ५ एतस्माद्देशसंयतस्यापूर्वकरणकालः संख्येयगुणः २ २२ । ४ ॥ ६ । अस्मान्मिथ्यात्वस्य सम्यग्मिथ्यात्वस्य सम्यक्त्वप्रकृतिपरिणामस्यासंयमस्य देशसंयमस्य सकलसंयमस्य च जघन्यकालः संख्येयगुणः, परस्परं तु षण्णां समानः २ २ ० । ४ । ४ ॥ ७ । अस्मादपूर्वकरणप्रथमसमये प्रारब्धो देशसंयतस्य गुणश्रेण्यायामः संख्यातगुणः २ २२ । ४ । ४ । ४ ॥ ८ एतस्मादेकान्तवृद्धिचरमसमयसंभविजघन्यस्थितिबन्धाबाधाकालः संख्येयगुणः २ ० २ २ ॥ ९ । एतस्मादपूर्वकरणप्रथमसमयसंभव्युत्कृष्टस्थितिबन्धाबाधाकालः संख्येयगुणः—२ २२२ ४ ॥ १० । एते प्रागुक्ताः सर्वेऽपि कालाः अन्तर्मुहूर्तमात्राः । तस्मादेकान्तवृद्धिचरमसमयसंभव्यजघन्यस्थितिखण्डायामोऽसंख्यातगुणः प २२ ॥ ११ । प्राक्तनकालस्यान्तर्मुहूर्तमात्रत्वेन चरमस्थितिखण्डायामस्य च पल्यसंख्यातभागमात्रत्वेन तस्मादसंख्यातगुणितत्वसंभवात् । तस्मादपूर्वकरणप्रथमसमयसंभविजम्यस्थितिखण्डायामः संख्येयगुणः प २ ॥ १२ । अस्मात्पल्यं संख्येयगुणं प ॥ १३ । अस्मादपूर्वकरणप्रथमसमयसंभव्युत्कृष्टस्थितिखण्डायामः संख्यातगुणः सा ७ ८ ॥ १४ । तस्मादेकान्तवृद्धिचरमसमयसंभविजघन्यस्थिति-

१. अपुव्वकरणस्स पढमं जहण्णयं ट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं । पलिदोवमं संखेज्जगुणं । उक्कस्सयं ट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं । जहण्णाओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं । उक्कस्सयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं ।
कसाय० चू०, जयध० पु० १३, पृ० १३५-१३७ ।

बन्धः संख्येयगुणा सा अं को २ ॥ १५ । तस्मादपूर्वकरणप्रथमसमयसंभव्युत्कृष्टस्थितिबन्धः संख्येयगुणः
४ । ४ । ४

सा अं को २ ॥ १६ । अस्मादेकान्तवृद्धिचरमसमयसंभविजघन्यस्थितिसत्त्वं संख्येयगुणं सा अं को २ ॥ १७ ।
४ । ४ ४

एतस्मादपूर्वकरणप्रथमसमयसंभवदुत्कृष्टस्थियिसत्त्वं संख्येयगुणं सा अं को २ ॥ १८ ॥ १७८–१८३ ॥

सं० चं०—सर्वतैं स्तोक तौ देशसंयतका एकान्तवृद्धि कालका अंतविषैं संभवता जघन्य अनुभाग खण्डोत्करण काल है । १ । तातैं किछू विशेषकरि अधिक अपूर्व करणका प्रथम समविषैं संभवता उत्कृष्ट अनुभाग खण्डोत्करण काल है । २ । तातैं संख्यातगुणा देशसंयतका एकांतवृद्धि कालका अंतसमयविषैं सम्भवता जघन्य स्थितिकांडकोत्करण काल है । ३ ॥ १७८ ॥

सं० चं०—तातैं किछू विशेषकरि अधिक अपूर्वकरणका प्रथम समयविषैं संभवता उत्कृष्ट स्थितिखण्डोत्करण काल है । ४ । तातैं संख्यातगुणा एकांतवृद्धिकाल है । ५ । तातैं संख्यातगुणा अपूर्वकरणका काल है । ६ ॥१७९ ॥

सं० चं०—तातैं संख्यातगुणा मिथ्यात्व अर सम्यग्मिथ्यात्व अर सम्यक्त्वमोहनी इन तीनोंका उदयकाल अर असंयम अर देशसंयम अर सकल संयम इन छहौंका जघन्य काल परस्पर समान है ॥ ७ ॥ तातैं संख्यातगुणा अपूर्वकरणका प्रथम समयविषैं जाका आरम्भ भया ऐसा देशसंयमसम्बन्धी गुणश्रेणि आयाम है । ८ ॥ १८० ॥

सं० चं०—तातैं संख्यातगुणा एकान्तवृद्धिका अन्तसमयविषैं सम्भवते स्थितिबन्धका जघन्य आबाधाकाल है । ९ । तातै संख्यातगुणा अपूर्वकरणका प्रथम समयविषैं सम्भवते स्थितिबन्धका उत्कृष्ट आबाधाकाल है । १० । इहां पर्यन्त ए कहे सर्वकाल ते प्रत्येक अन्तर्मुहूर्तमात्र ही जानने । तातैं असंख्यातगुणा एकान्तवृद्धिका अन्तसमयविषैं सम्भवता जघन्य स्थितिकाण्डक आयाम है । ११ ॥ १८१ ॥

सं० चं०—यहु कह्या अन्तविषैं सम्भवता जघन्य स्थितिकाण्डकायाम सो पल्यका संख्यातवाँ भागमात्र है । तातैं पूर्वोक्त अन्तर्मुहूर्तकालतैं यहु अन्त खण्ड असंख्यातगुणा कह्या है ॥ १८२ ॥

सं० चं०- तातैं संख्यातगुणा अपूर्वकरणका प्रथम समयविषैं सम्भवता जघन्य स्थितिकाण्डक आयाम है । १२ । तातैं संख्यातगुणा पल्य है । १३ । तातैं संख्यातगुणा अपूर्वकरणका प्रथम समयविषैं सम्भवता पृथक्त्व सागरप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकायाम है । १४ । तातैं संख्यातगुणा एकान्तवृद्धिका अन्त समयविषैं सम्भवता ऐसा जघन्य स्थितिबन्ध है । १५ । तातैं संख्यातगुणा अपूर्वकरणका प्रथम समयविषैं सम्भवता ऐसा जघन्य उत्कृष्ट स्थितिबन्ध है । १६ । तातैं संख्यातगुणा एकान्तवृद्धिका अन्त समयविषैं सम्भवता ऐसा जघन्य स्थितिसत्त्व है । १७ । तातैं संख्यातगुणा अपूर्वकरणका प्रथम समयविषैं सम्भवता ऐसा उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व है । १८ । ॥ १८३ ॥ ऐसैं कालका अल्पबहुत्वके स्थिति कहि देशसंयमविषैं परिणामनिकी विशुद्धतारूप लब्धि ताका अल्पबहुत्व कहिए है—

एवमल्पबहुत्वपदानि व्याख्याय देशसंयमस्य जघन्योत्कृष्टलब्ध्यवसरं तदल्पबहुत्वं च प्रतिपादयितुमाह—

अवरवरदेसलद्धी से काले मिच्छसंजमुववण्णे ।
अवरादु अणंतगुणा उक्कस्सा देसलद्धी दु[1] ।। १८४ ।।

अवरवरदेशलब्धिः स्वकाले मिथ्यसंयममुपपन्ने ।
अवरादनंतगुणा उत्कृष्टा देशलब्धिस्तु ।। १८४ ।।

सं० टी०—यो जीवः देशसंयमघातिकर्मोदयवशाद्देशसंयमात्प्रतिपतन् तत्कालचरमसमये मिथ्यात्वाभिमुखो वर्तते तस्य तत्कालचरमसमयवर्तिनो मनुष्यस्य सर्वजघन्या देशसंयमलब्धिर्भवति । यः पुनरनन्तगुणविशुद्धिवृद्धया देशसंयमपरमप्रकर्षं प्राप्य तदनन्तरसमये सकलसंयमं प्राप्स्यति तस्य मनुष्योत्कृष्टदेशसंयमलब्धिर्भवति । एवमुक्तजघन्यदेशसंयमाविभागप्रतिच्छेदेभ्यः उत्कृष्टदेशसंयमाविभागप्रतिच्छेदा अनन्तानन्तगुणाः । तद्गुणकारः अनन्तानन्तगुणितसर्वजीवराशिप्रमाणः १६ ख ।। १८४ ।।

देशसंयमकी जघन्य और उत्कृष्ट लब्धिके साथ उनके अल्पबहुत्वका स्पष्टीकरण—

सं० चं०—जो जीव देशसंयमका घाती जो कर्म ताके उदयके वशतैं देशसंयमतैं पड़ता जो मिथ्यात्वके सन्मुख भया मनुष्य ताके तिस देशसंयमका अन्त समयविषैं जघन्य देशसंयमलब्धि है। बहुरि अनन्तगुणी विशुद्धताकरि देशसंयमके उत्कृष्टपनाकौं पाइ अनन्तर समयविषैं सकल संयमकौं प्राप्त होसी ऐसा मनुष्यकैं उत्कृष्ट देशसंयमलब्धि हो है। बहुरि जघन्य देशसंयमके अविभाग प्रतिच्छेदनितैं अनन्तानन्तगुणा जीवराशि प्रमाणमात्र गुणकार करि गुणित उत्कृष्ट देशसंयमके अविभाग प्रतिच्छेद हैं ।। १८४ ।।

अथ जघन्यदेशसंयमाविभागप्रतिच्छेदप्रमाणप्रदर्शनार्थमिदमाह—

अवरे देसट्ठाणे होंति अणंताणि फड्डयाणि तदो ।
छट्ठाणगदा सव्वे लोयाणमसंखछट्ठाणा[2] ।। १८५ ।।

अवरे देशस्थाने भवंत्यनन्तानि स्पर्धकानि ततः ।
षट्स्थानगतानि सर्वाणि लोकानामसंख्यषट्स्थानानि ।। १८५ ।।

सं० टी०—सर्वजघन्ये प्रागुक्ते देशसंयमस्थाने अनन्तानन्तानि स्पर्धकान्यविभागप्रतिच्छेदाः सर्वोत्कृष्टदेशसंयमाविभागप्रतिच्छेदेभ्योऽनन्तगुणहीनाः सन्ति । ते च जघन्यदेशसंयमाविभागप्रतिच्छेदाः अनन्तानन्तगुणितसर्वजीवराशिप्रमाणा इति सिद्धान्तप्रतिपादिता द्रष्टव्याः । तस्मात्सर्वजघन्यदेशसंयमस्थानात्सर्वाणि सर्वोत्कृष्टपर्यन्तदेशसंयमलब्धिस्थानानि षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धया वर्धमानानि असंख्यातलोकगुणितानि भवन्ति एकवारषट्स्थानपतितानि देशसंयमलब्धिस्थानि यद्येतावन्ति १ – १ – १ – १ – १ – तदा असंख्यात-

२ २ २ २ २

a a a a a

---

१. उक्कस्सिया लद्धी कस्स ? संजदासंजदस्स सव्वविसुद्धस्स से काले संजमग्गाहयस्स । जहण्णिया लद्धी कस्स ? तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स से काले मिच्छत्तं गाहदि त्ति । जहण्णिया संजमासंजमलद्धी थोवा । उक्कस्सिया संजमासंजमलद्धी अणंतगुणा । कसाय० चू०, जयध० पु० १३, पृ० १३९-१४१ ।

२. जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंताणि फद्दयाणि । तदो विदियलद्धिट्ठाणमणंतभागुत्तरं । एवं छट्ठाणपदिदलद्धिट्ठाणाणि असंखेज्जलोगा । कसाय० चू०, जयध० पु० १३, पृ० १४३-१४६ ।

लोकमात्र ≡ a वारेषु कियन्ति इति त्रैराशिकेन सिद्धानि प्रतिपर्वासंख्यातलोकभागमात्राणि। सर्वेषु पर्वसु मिलित्वाप्यसंख्यातलोकमात्राण्येव षट्स्थानपतितानि देशसंयमलब्धिस्थानानीत्यर्थः ॥ १८५ ॥

जघन्य देशसंयमके अविभागप्रतिच्छेदोंका कथन—

सं० चं०—सर्वतैं जघन्य पूर्वोक्त देशसंयमका स्थान ताविषै स्पर्धक कहिए अविभाग प्रतिच्छेद अनन्तानन्त पाइए हैं। ते उत्कृष्ट देशसंयमके अविभाग प्रतिच्छेदनितैं अनन्तानन्त गुणे घाटि हैं तौ भी सर्व जीवराशितैं अनन्तगुणे हैं। बहुरि इस जघन्य स्थानतैं लगाय असंख्यात लोकमात्र देशसंयम लब्धिके स्थान हैं। एक जीवकैं एक कालविषैं सम्भवै ताका नाम स्थान जानना। ते षट्स्थानपतित वृद्धि लीएं हैं सो इनिका अनुक्रम गोम्मट्टसारका ज्ञानमार्गणा अधिकारविषैं पर्याप्त समास श्रुतज्ञानका स्थान वर्णनविषै जैसें कीया है तैसें जानना सो एक अधिक सूच्यंगुलकौं पाँचवार माडि परस्पर गुणें जो प्रमाण होइ तितने स्थाननिविषैं जो एकबार षट्स्थानपतित वृद्धि पूर्ण होइ तौ देशसंयतके असंख्यात लोकप्रमाण सर्वस्थाननिविषैं केती वार होइ ऐसें त्रैराशिक कीएं देशसंयतके स्थाननिविषैं प्रतिपातादि पर्व कहे तिनिविषैं वा मिलिकरि सर्वस्थाननिविषैं असंख्यात लोकमात्रवार षट्स्थानपतित वृद्धि सम्भवै है ॥ १८५ ॥

अथ देशसंयमप्रकारस्वरूपं पर्वान्तरप्रमाणं च प्ररूपयितुमिदमाह—

तत्थ य पडिवायगया पडिवज्जगया त्ति अणुभयगया त्ति।
उवरुवरिलद्धिठाणा लोयाणमसंखछट्ठाणा[1] ॥ १८६ ॥

तत्र च प्रतिपातगता प्रतिपद्यगता इति अनुभयगता इति।
उपर्युपरि लब्धिस्थानानि लोकानामसंख्यषट्स्थानानि ॥ १८६ ॥

सं० टी०—तत्र तेषु संयमलब्धिस्थानेषु मध्ये कानिचित्प्रतिपातगतानि कतिचित् प्रतिपद्यमानगतानि कतिचिदनुभयगतानीति त्रिप्रकाराणि सर्वाण्यपि देशसंयमलब्धिस्थानानि भवन्ति। प्रतिपातस्थानानामुपर्यसंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानपतितानि देशसंयमलब्धिस्थानानि अन्तरयित्वा प्रतिपद्यमानस्थानानि भवन्ति। तेषामुपर्यसंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानानि अन्तरयित्वा अनुभयस्थानानि भवंति तत्र प्रतिपातस्थानान्यसंख्यातलोकमात्राण्यपि सर्वतः स्तोकानि ≡ a तेभ्योऽसंख्येयलोकगुणानि प्रतिपद्यमानस्थानानि ≡ a ≡ a तेभ्योऽसंख्यातलोकगुणान्यनुभयस्थानानि ≡ a ≡ a ≡ a इति विशेषो ज्ञातव्यः ॥ १८६ ॥

देशसंयमके भेदों व उनमें अन्तरका कथन—

सं० चं०—तहाँ देशसंयमके जघन्य स्थान तीन प्रकार हैं—प्रतिपातगत १ प्रतिपद्यमानगत १ अनुभयगत १ तहाँ देशसंयमतैं भ्रष्ट होतैं अन्त समयविषैं सम्भवते जे स्थान ते प्रतिपातगत हैं बहुरि देशसंयमके प्राप्त होतैं प्रथम समयविषैं सम्भवते जे स्थान ते प्रतिपद्यमानगत है। इन विना अन्य समयनिविषैं सम्भवते जे स्थान ते अनुभय गत हैं। ते उपरि उपरि हैं। सोई कहिए है—

---

१. जहण्णए लद्धिट्ठाणे संजमासंजमं ण पडिवज्जदि। तदो असंखेज्जे लोगे अइच्छिदूण जहण्णयं पडिवज्जमाणस्स पाओग्गं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं। कसाय० चू०, जयध० पु० १३, पृ० १४६-१४७।

एत्थ पडिवादट्ठाणद्धाणं थोवं। पडिवज्जमाणट्ठाणद्धाणमसंखेज्जगुणं। अपडिवादापडिवज्जमाणट्ठाणद्धाणमसंखेज्जगुणं। गुणगारो पुण असंखेज्जा लोगा। जयध० पु० १३, पृ० १४९।

देशसंयमका जो जघन्य स्थान संभवते थोरी विशुद्धतायुक्त सो तौ नीचै ही नीचै लिख्या। ताके ऊपरि तातैं अनन्तवाँ भागमात्र अधिक विशुद्धतायुक्त द्वितीय स्थान लिख्या ऐसैं क्रमतैं उपरि उपरि उत्कृष्ट स्थानपर्यन्त रचना भई। तहाँ जघन्य स्थान आदि केते इक नीचेके स्थान ते तौ प्रतिपातरूप जानने। बहुरि तिनके ऊपरि जिनका कोई स्वामी नाहीं ऐसे असंख्यात लोकमात्र स्थान षट्स्थानपतित वृद्धि लीयें अन्तरालविषै होंइ तिनके ऊपरि प्रतिपद्यमान स्थान पाइए है। बहुरि तिनके ऊपरि असंख्यात लोकमात्र स्थान षट्स्थान पतित वृद्धि लीयें अन्तरालविषै होंइ तब तिनके ऊपर अनुभयगत स्थान पाइए है। तहाँ प्रतिपातस्थान थोरे हैं, तेऊ असंख्यात लोकमात्र हैं अर तिनतैं असंख्यात लोकगुणे प्रतिपद्यमान स्थान हैं। अर तिनतैं असंख्यात लोकगुणे अनुभय स्थान हैं॥ १८६॥

अथ मनुष्यतिर्यग्जीवदेशसंयमलब्धिस्थानानां प्रतिपातादिभेदभिन्नानां जघन्योत्कृष्टस्थानावसरं प्ररूपयितुमिदमाह—

णरतिरिये तिरियणरे अवरं अवरं वरं वरं तिसु वि।
लोयाणमसंखेज्जा छट्ठाणा होंति तम्मज्झे॥ १८७॥

नरतिरश्चि तिर्यग्नरे अवरं अवरं वरं वरं त्रिष्वपि।
लोकानामसंख्येयानि षट्स्थानानि भवंति तन्मध्ये॥ १८७॥

सं० टी०—देशसंयमस्य सर्वजघन्यं प्रतिपातस्थानं मनुष्ये संभवति। ततः परमसंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानपतितानि मनुष्यसंबन्धीन्येव देशसंयमलब्धिस्थानान्युल्लङ्घ्य तिर्यग्जीवसंबन्धिजघन्यप्रतिपातस्थानं भवति। ततः परं नरतिर्यग्जीवसाधारणान्यसंख्यातलोकमात्राणि देशसंयमलब्धिस्थानान्यतिक्रम्य तिर्यग्जीवस्योत्कृष्टप्रतिपातस्थानं जायते। ततः परमसंख्यातलोकमात्राणि देशसंयमलब्धिस्थानानि नीत्वा मनुष्यस्योत्कृष्टं प्रतिपातस्थानमुत्पद्यते। ततः परमसंख्यातलोकमात्राणि देशसंयमलब्धिस्थानानि तत्परिणामयोग्यस्वामिनामभावादन्तरयित्वा मनुष्यस्य जघन्यं प्रतिपद्यमानस्थानं भवति। ततः परं मनुष्यसंभवीन्येवासंख्यातलोकमात्राणि देशसंयमलब्धिस्थानानि नीत्वा तिर्यग्जीवस्य जघन्यं प्रतिपद्यमानस्थानं भवति। ततः परमसंख्यातलोकमात्राणि नरतिर्यग्जोवसाधारणानि देशसंयमलब्धिस्थानानि गमयित्वा तिर्यग्जीवस्योत्कृष्टं प्रतिपद्यमानस्थानं जायते। ततः परमसंख्यातलोकमात्राणि मनुष्यसंबन्धीन्येव देशसंयमलब्धिस्थानान्युल्लङ्घ्य मनुष्यस्योत्कृष्टं भवति। ततः परमसंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानपतितानि देशसंयमलब्धिस्थानानि पूर्ववदन्तरयित्वा मनुष्यस्य जघन्यमनुभयस्थानं जायते। ततः परमसंख्यातलोकमात्राणि मनुष्यसंबन्धीन्येव देशसंयमलब्धिस्थानानि नीत्वा तिर्यग्जीवस्य जघन्यमनुभयस्थानमुत्पद्यते। ततः परं नरतिर्यग्जीवसाधारणान्यसंख्येयलोकमात्राणि देशसंयमलब्धिस्थानानि नीत्वा तिर्यग्जीवस्योत्कृष्टमनुभयस्थानमुत्पद्यते। ततः परं नरसंबन्धीन्येवासंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानपतितानि देशसंयमलब्धिस्थानान्यतिस्थाप्य मनुष्यस्योत्कृष्टमनुभयस्थानमुत्पद्यते। यथासंख्येन नरतिरश्चोस्तिर्यग्नरयोश्च जघन्यं जघन्यमुत्कृष्टमुत्कृष्टं च त्रिष्वपि प्र[illegible]नानुभयस्थानेषु संभवति। तेषां नरजघन्यतिर्यग्जघन्यादीनां मध्येऽन्तराले षट्स्थानपतितान्यसंख्यातलोकमात्राणि देशसंयमलब्धिस्थाननि भवन्तोति गाथासूत्रव्याख्यानं निरवद्यम्॥ १८७॥

देशसंयमके जघन्य और उत्कृष्टरूपसे उक्त भेद किसके कौन होते हैं इसका खुलासा—

सं० चं०—देशसंयमका सर्वतैं जघन्य प्रतिपात स्थान मनुष्यकैं हो हैं। तातैं ऊपरि षट्-

स्थानपतित वृद्धि लीएं असंख्यात लोकमात्र प्रतिपातस्थान ऐसे हैं जे मनुष्य ही कैं होंइ तातैं परैं तिर्यंचकैं सम्भवता जघन्य प्रतिपातस्थान होइ। तातैं ऊपरि मनुष्य वा तिर्यंच दोऊनिकैं सम्भवैं ऐसे असंख्यात लोकप्रमाणस्थान होइ उपरि तिर्यंचका उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान है। तातैं परें मनुष्य ही कैं सम्भवै ऐसे असंख्यात लोकमात्र स्थान होंइ उपरितन स्थित मनुष्यका उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान है। ताके उपरि असंख्यात लोकमात्रस्थान ऐसे हैं जिनका कोऊ स्वामी नाहीं ते किसी जीवकैं न होंइ, तिनका अन्तराल करि तातैं परै मनुष्यका जघन्य प्रतिपद्यमान स्थान है तातैं परै मनुष्यकै होइ ऐसे असंख्यात लोकमात्रस्थान होइ परैं तिर्यंचका जघन्य प्रतिपद्यमान स्थान है। तातैं परैं मनुष्य वा तिर्यंचकैं सम्भवते ऐसे असंख्यात लोकमात्र स्थान होंइ ऊपरि तिर्यंचका उत्कृष्ट प्रतिपद्यमान स्थान है तातैं उपरि मनुष्यहीकैं सम्भवते असंख्यात लोकमात्र स्थान होइ उपरि मनुष्यका उत्कृष्ट प्रतिपद्यमानस्थान है तातैं परै असंख्यात लोकमात्र स्थान ऐसे हैं जिनका कोऊ स्वामी नाहीं, तिनिका अन्तरालकरि परे मनुष्यका जघन्य अनुभयस्थान हो है। तातैं परै मनुष्यहींकै सम्भवते असंख्याततलोकमात्र स्थान होंइ उपरि तिर्यंचका जघन्य अनुभय स्थान है। तातैं परैं मनुष्य वा तिर्यंचकैं सम्भवते असंख्याततलोकमात्र स्थान होंइ उपरि तिर्यंचका उत्कृष्ट अनुभय स्थान है। तातैं परैं मनुष्यहीकैं सम्भवते असंख्याततलोकमात्र स्थान होंइ उपरि मनुष्यका उत्कृष्ट अनुभय स्थान हो है। ऐसैं क्रमतैं मनुष्य तिर्यंचका जघन्य अर जघन्य उत्कृष्ट अर उत्कृष्ट प्रत्येक प्रतिपात प्रतिपद्यमान अनुभय स्थानविषैं सम्भवै हैं ते जानने। अर बीचिमें अन्तराल स्थान जानने ते स्थान असंख्याततलोकमात्र षट्स्थानपतित वृद्धि युक्त हैं। ऐसैं गाथाका अर्थ समझना ॥ १८७ ॥

अथ प्रतिपातादीनां लक्षणं तत्स्वामिभेदं च प्रदर्शयितुमिदमाह—

पडिवाददुगवरवरं मिच्छे अयदे अणुभयगजहण्णं।
मिच्छचरबिदियसमये तत्तिरियवरं तु सट्ठाणे ॥ १८८ ॥

प्रतिपातद्विकावरवरं मिथ्ये अयते अनुभयगजघन्यं।
मिथ्याचरद्वितीयसमये तत्तिर्यग्वरं तु स्वस्थाने ॥ १८८ ॥

सं० टी०—प्रतिपातो वहिरन्तरङ्गकारणवशेन संयमात्प्रच्यवः। स च संक्लिष्टस्य तत्कालचरमसमये

१. तिव्व-मंददाए अप्पाबहुअं। सव्वमंदाणुभागं जहण्णयं संजमासंजमस्स लद्धिट्ठाणं। मणुसस्स पडिवदमाणयस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणं तत्तियं चेव। तिरिक्खजोणियस्स पडिवदमाणयस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं। तिरिक्खजोणियस्स पडिवदमाणयस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं। मणुससंजदासंजदस्स पडिवदमाणगस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं। मणुसस्स पडिवज्जमाणगस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं। तिरिक्खजोणियस्स पडिवज्जमाणगस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं। तिरिक्खजोणियस्स पडिवज्जमाणयस्स उक्कसयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं। मणुसस्स पडिवज्जमाणगस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं। मणुसस्स अपडिवज्जमाण अपडिवदमाणयस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं। तिरिक्खजोणियस्स अपडिवज्जमाण-अपडिवदमाणयस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं। तिरिक्खजोणियस्स अपडिवज्जमाण-अपडिवदमाणगस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं। मणुसस्स अपडिवज्जमाण-अपडिवदमाणयस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं। कसाय० चु०, जयध० पु० १३ पृ० १४९–१५३।

विशुद्धिहान्या सर्वजघन्यदेशसंयमशक्तिकस्य मनुष्यस्य तदनन्तरसमये मिथ्यात्वं प्रतिपत्स्यमानस्य भवति । तत्र सम्यक्त्वदेशसंयमयोर्विनाशसंभवात् । तथा तिर्यग्जीवस्य जघन्यं प्रतिपातस्थानं सम्यक्त्वदेशसंयमाभ्यां प्रच्युत्य मिथ्यात्वं गमिष्यतो देशसंयमकालचरमसमये संभवति । एतच्च मनुष्यजघन्यप्रतिपातस्थानादनन्तगुणविशुद्धिकं ज्ञेयम् । असंख्यातलोकवारषट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धया वर्धमानत्वात् । तथा तिर्यग्जीवस्य स्वयोग्यसंक्लेशवशेन देशसंयमात्प्रच्यवमानस्य तत्कालचरमसमये उत्कृष्टं प्रतिपातस्थानमसंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानं प्राप्स्यतो भवति । इदमपि तिर्यग्जघन्यप्रतिपातस्थानादनन्तगुणविशुद्धिकं प्राग्वज्ज्ञेयम् । तथा मनुष्यस्य देशसंयमात्प्रच्युत्य स्वयोग्यसंक्लेशवशेनानन्तरं वेदकासंयतगुणस्थानं गमिष्यतः उत्कृष्टं प्रतिपातस्थानं भवति । इदमपि तिर्यगुत्कृष्टप्रतिपातस्थानादनन्तगुणविशुद्धिकं प्राग्वद् ज्ञेयम् ।

मनुष्यजघन्यप्रतिपातस्थानादारभ्य तिर्यग्जीवस्यानुत्कृष्टप्रतिपातस्थानपर्यंतं संभवन्ति प्रतिपातस्थानानि मिथ्यात्वाभिमुखस्यैव देशसंयमकालचरमसमये दृष्टव्यानि तिर्यगुत्कृष्टप्रतिपातस्थानादारभ्य मनुष्योत्कृष्टप्रतिपातस्थानपर्यन्तं सन्ति प्रतिपातस्थानानि असंयतसम्यक्त्वाभिमुखस्य स्वकालचरमसमये घटन्त इत्यर्थविशेषो ग्राह्यः । तिर्यगुत्कृष्टप्रतिपातस्थानान्मनुष्योत्कृष्टप्रतिपातस्थानं पूर्ववदनन्तगुणविशुद्धिकं ज्ञातव्यम् ।

तथा मनुष्यस्य पूर्वं मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा पश्चात्सम्यक्त्वेन सह देशसंयमं प्रतिपद्यमानस्य तत्प्रथमसमये संभवज्जघन्यप्रतिपद्यमानस्थानं मनुष्योत्कृष्टप्रतिपातस्थानादनन्तगुणविशुद्धिकं अन्तरेऽसंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानान्युल्लङ्घ्य समुत्पादात् तथा तिर्यग्जीवस्य मिथ्यादृष्टिचरस्य सम्यक्त्वदेशसंयमौ युगपत् प्रतिपद्यमानस्य तत्प्रथमसमये वर्तमानं जघन्यं प्रतिपद्यमानस्थानं मनुष्यजघन्यप्रतिपद्यमानादनन्तगुणविशुद्धिकं प्रतिपत्तव्यम् । तथा तिर्यग्जीवस्य प्रागसंयतसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा पश्चाद्देशसंयमं प्रतिपद्यमानस्य तत्प्रथमसमये संभवदुत्कृष्टप्रतिपद्यमानस्थानं तिर्यग्जघन्यप्रतिपद्यमानस्थानात्प्राग्वदनन्तगुणविशुद्धिकं बोद्धव्यम् । तथा मनुष्यस्यासंयतसम्यग्दृष्टिचरस्य देशसंयमं प्रतिपद्यमानस्य तत्प्रथमसमये घटमानमुत्कृष्टं प्रतिपद्यमानस्थानं तिर्यगुत्कृष्टप्रतिपद्यमानस्थानात् पूर्ववदनन्तगुणविशुद्धिकं निश्चेतव्यम् । मनुष्यजघन्यप्रतिपद्यमानात्प्रभृति तिर्यगनुत्कृष्टप्रतिपद्यमानस्थानपर्यन्तं संभवन्ति प्रतिपद्यमानस्थानानि मिथ्यादृष्टिचरस्येति ग्राह्यम् । तिर्यगुत्कृष्टप्रतिपद्यमानस्थानादारभ्य मनुष्योत्कृष्टप्रतिपद्यमानस्थानपर्यन्तं विद्यमानानि स्थानानि असंयतसम्यग्दृष्टिचरस्य भवन्तीति ज्ञातव्यम् ।

तथा मनुष्यस्य मिथ्यादृष्टिचरस्य सम्यक्त्वेन सह देशसंयतं प्रतिपद्य द्वितीयसमये वर्तमानस्य जघन्यमनुभयस्थानं मनुष्योत्कृष्टप्रतिपद्यमानस्थानादनंतगुणविशुद्धिकं अन्तरेऽसंख्यातलोकमात्रषट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धया वर्धमानत्वात् । तथा तिर्यग्जीवस्य मिथ्यादृष्टिचरस्य सम्यक्त्वेन सार्धं देशसंयमं प्रतिपद्य द्वियोयसमये वर्तमानस्य जघन्यमनुभयस्थानं मनुष्यजघन्यानुभयस्थानात्पूर्ववदनन्तगुणविशुद्धिकम् । तथा तिर्यग्जीवस्यासंयतसम्यग्दृष्टिचरस्य देशसंयमं प्रतिपद्य एकान्तवृद्धिचरमसमये स्वगतियोग्यसर्वविशुद्धिविशिष्टस्योत्कृष्टमनुभयस्थानं तिर्यग्जघन्यानुभयस्थानात्प्राग्वदनन्तगुणं तथा मनुष्यस्यासंयतसम्यग्दृष्टिचरस्य देशसंयमं प्रतिपद्य एकान्तवृद्धिचरमसमये सर्वविशुद्धिविशिष्टस्य सकलसंयमाभिमुखस्योत्कृष्टमनुभयस्थानं तिर्यगुत्कृष्टानुभयस्थानात्प्राग्वदनन्तगुणविशुद्धिकं ग्राह्यम् । मनुष्यजघन्यानुभयस्थानादारभ्यतिर्यगनुत्कृष्टानुभयस्थानपर्यन्तं संभवन्ति स्थानानि मिथ्यादृष्टिचरस्येति ग्राह्यम् । तिर्यगुत्कृष्टानुभयस्थानादारभ्य मनुष्योत्कृष्टानुभयस्थानपर्यन्तं दृश्यमानानि स्थानानि असंयतसम्यग्दृष्टिचरस्येति ।

प्रतिपातद्विकस्य प्रतिपातप्रतिपद्यमानयोः अवरं मिथ्यात्वे पततः मिथ्यादृष्टिचरस्य संभवति वरमुत्कृष्टं देशसंयमलब्धिस्थानादसंयते पतिष्यतः असंयतचरस्य च संभवति । अनुभयजघन्यं मिथ्यादृष्टिचरस्य देशसंयमग्रहणद्वितीयसमये वर्तमानस्य भवति । अनुभयोत्कृष्टं तु असंयतचरस्य एकान्तवृद्धिचरमसमये मनुष्यस्य सकल-

संयमाभिमुखस्य तिर्यग्जीवस्य च एकान्तवृद्धिचरमसमयरूपस्वकीयस्थाने एव स्थितस्य संभवतीति सूच्यते। एवं गाथासूत्रव्याख्यानमुक्तम् ॥ १८८ ॥

इति देशसंयमलब्धिविधानाधिकारः समाप्तः ॥

उक्त भेदोंका स्वरूप और उनमेंसे किसका कौन स्वामी है इसका स्पष्ट निर्देश—

सं० चं०—प्रतिपात नाम संयमतैं भ्रष्ट होनेका है सो संक्लेश परिणामनितैं संयमतैं भ्रष्ट होतैं देशसंयतका अन्त समयविषैं प्रतिपातस्थान हो है। अर प्राप्त भयाका नाम प्रतिपद्यमान स्थान है। सो देशसंयतका प्रथम समयविषैं प्रतिपद्यमान स्थान हो है। अर दोऊरहितका नाम अनुभय है। सो देशसंयतके इनि बिना अन्य समयनिविषैं अनुभयस्थान हो है। तहां मिथ्यात्वकौं सन्मुख मनुष्यकैं जघन्य प्रतिपातस्थान हो है अर मिथ्यात्वकौं सन्मुख तिर्यंचकैं जघन्य प्रतिपात-स्थान हो है। अर असंयतकौं सन्मुख तिर्यंचकैं उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान हो है। अर असंयतकौं सन्मुख मनुष्यकैं उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान हो है। अर मिथ्यात्वतैं चढ्या तिर्यंचकैं जघन्य प्रति-पद्यमानस्थान हो है। अर मिथ्यादृष्टितैं भया देशसंयतका दूसरा समयविषैं मनुष्यकैं जघन्य अनुभयस्थान हो है। अर मिथ्यादृष्टितैं भया देशसंयतका दूसरा समयविषैं तिर्यंचकैं जघन्य अनुभयस्थान हो है। अर असंयततैं भया देशसंयतकैं एकान्तवृद्धिका अन्त समयविषैं तिर्यंचकैं उत्कृष्ट अनुभयस्थान हो है। अर असंयततैं भया देशसंयतकैं एकान्तवृद्धिका अन्त समयविषैं सकलसंयमकौं सन्मुख मनुष्यकैं उत्कृष्टस्थान हो है।

ए बारह स्थानक कहे तिनविषैं पूर्व-पूर्व स्थानकी विशुद्धतातैं उत्तर-उत्तर स्थानविषै असंख्यातलोकबार भई जो षट्स्थानपतितवृद्धि ताकरि वर्धमान ऐसी अनन्तगुणी विशुद्धता क्रमतैं जाननी। बहुरि इतना जानना—

प्रतिपातस्थाननिविषैं मनुष्यका जघन्यतैं लगाय तिर्यंचका अनुत्कृष्ट स्थान पर्यंत जे स्थान हैं ते तौ मिथ्यात्वकौं सन्मुख जीवहीकैं होंइ। अर तिर्यंचका उत्कृष्टतैं लगाय मनुष्यका उत्कृष्ट पर्यंत जे स्थान हैं ते असंयतका सन्मुख जीवकैं ही हो हैं। बहुरि प्रतिपद्यमान स्थाननिविषैं मनुष्यका जघन्यतैं लगाय तिर्यंचका अनुत्कृष्टपर्यन्त जे स्थान हैं ते तौ मिथ्यादृष्टितैं देशसंयत भया ताहीकै होंइ अर तिर्यचका उत्कृष्टतैं लगाय मनुष्यका उत्कृष्टपर्यन्त जे स्थान हैं ते असंयततैं देशसंयत भया ताकैं होंइ। बहुरि अनुभय स्थानविषैं मनुष्यका जघन्यतैं लगाय तिर्यंचका अनुत्कृष्ट पर्यन्त जे स्थान है ते तौ मिथ्यादृष्टितैं भया देशसंयतहीकैं होंइ। अर तिर्यंचका उत्कृष्टतैं लगाय मनुष्यका उत्कृष्ट पर्यन्त जे स्थान हैं ते असंयततैं भया देशसंयतहीकें होंइ ॥ १८८ ॥

विशेष—संयमासंयमसे गिरने, संयमासंयमको प्राप्त करने और इन दोनों से अतिरिक्त गिरने और संयमासंयमको प्राप्त करनेके अतिरिक्त स्वस्थानमें अवस्थित रहनेकी अपेक्षा संयमा-संयम तीन प्रकारका है। अधिकारी भेदसे ये तीनों स्थान छह प्रकारके हो जाते हैं क्योंकि मनुष्य और तिर्यग्योनि जीव इन स्थानोंको प्राप्त करते हैं। उसमें भी ये जघन्य और उत्कृष्ट रूप दोनों प्रकारके होते हैं। इस प्रकार कुल बारह भेदरूप संयमसंयमलब्धि है। उक्त अल्पबहुत्व द्वारा उसीका निर्देश किया गया है। चूर्णिसूत्रमें ये स्थान तेरह निर्दिष्ट किये हैं। सो पहला स्थान ओघसे कहकर वह स्थान गिरकर मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले संयतासंयत मनुष्यके सम्भव है,

इसलिये चूर्णिसूत्रमें मनुष्यके जघन्य प्रतिपातस्थानका निर्देश करते हुए ओघ कर उसीको दुहराया है। इतना यहाँ स्पष्टीकरणके रूपमें विशेष जानना चाहिये कि जहाँ तिर्यञ्चोंके बाद मनुष्योंके प्रतिपातस्थान समाप्त होते हैं वहाँसे लेकर मनुष्योंके जघन्य प्रतिपद्यमान स्थानोंके प्राप्त होनेके मध्य असंख्यात लोकप्रमाण अन्तर जानना चाहिए। इसी प्रकार मनुष्योंके उत्कृष्ट प्रतिपद्यमान-स्थान और उन्हींके जघन्य अप्रतिपद्यमान-अप्रतिपतमान स्थानके मध्य असंख्यात लोकप्रमाण अन्तर जानना चाहिए। अन्तरका अर्थ है कि यहाँ जो अन्तर कहा है वह संयमासंयमलब्धिसे रहित है। प्रतिपातस्थान संयमासंयमसे गिरनेके अन्तिम समयमें होते हैं। प्रतिपद्यमानस्थान संयमासंयमको प्राप्त करनेके प्रथम समयमें प्राप्त होते हैं तथा अप्रतिपद्यमान-अप्रतिपतमान स्थान उक्त दोनों प्रकारके स्थानोंके मध्य संयमासंयममें अवस्थित रहते हुए रहते हैं। वैसे सब विशेषताओंका निर्देश संस्कृत और हिन्दी टीकामें किया ही है। स्पष्टीकरणकी दृष्टिसे कुछ विशेषताओं-का निर्देश यहाँ किया है।

अन्तमें संयमासंयमलब्धिको समाप्त करते हुए चूर्णिसूत्रोंके अनुसार जयधवलामें जिन तथ्योंका निर्देश किया गया है उनकी यहाँ मीमांसा कर लेना आवश्यक है। यथा—१. संयता-संयत जीव अप्रत्याख्यानकषायको नहीं वेदता, क्योंकि उसके अप्रत्याख्यानकषायकी उदयशक्ति-का अत्यन्त परिक्षय होता है। इससे संयमासंयमलब्धि औदयिक नहीं है यह सिद्ध होता है। २. प्रत्याख्यानावरणीय कषायका उदय होते हुए भी वे संयमासंयमको आवृत नहीं करते। उनका उदय संयमासंयमका कुछ भी उपघात नहीं करता यह इसका तात्पर्य है, क्योंकि वे सकलसंयमके प्रतिबन्धक होनेसे देशसंयममें उनका व्यापार नहीं स्वीकार किया गया है। ३. शेष चार संज्वलन और नौ नोकषाय उदीर्ण होकर वे देशसंयमको देशघाति करते हैं। इसलिए देशसंयमको क्षायोपशमिक स्वीकार किया गया है, क्योंकि वे संयमासंयमको देशघाति करते हैं इसका अर्थ है कि वे संयमासंयमको क्षायोपशमिक करते हैं। उनके उदयको देशघाति नहीं माना जाय तो संयमासंयमकी उत्पत्तिका विरोध हो जायगा। इसलिए चार संज्वलन और नौ नोकषायोंके सर्वघाति स्पर्धकोंका उदयाभावी क्षय होनेसे और उन्हींके देशघाति स्पर्धकोंका उदय होनेसे संयमासंयम क्षायोपशमिक स्वीकार किया गया है। ४. संयमासंयम जीव अप्रत्या-ख्यानावरणका तो वेदन करता नहीं। प्रत्याख्यानावरणका वेदन करता हुआ भी वह संयमा-संयमका न तो उपघात ही करता है और न अनुग्रह ही करता है। इसलिए प्रत्याख्यानावरणका वेदन करता हुआ भी वह यदि चार संज्वलन और नौ नोकषायका वेदन न क तो संयमासंयम-लब्धि क्षायिक हो जायगी। अर्थात् जैसे क्षायिकलब्धि एक प्रकारकी होती है वैसे संयमासंयम-लब्धि भी एक प्रकारकी हो जायगी। पर ऐसा सम्भव नहीं है, इसलिए वहाँ चार संज्वलन और नौ नोकषायोंका उदय देशघाति होता है, अतः संयमासंयमलब्धि क्षायोपशमिक होती है ऐसा स्वीकार किया गया है। और क्षयोपशमके असंख्यात लोकप्रमाण भेद हैं, इसलिए संयमासंयम-लब्धि भी असंख्यात लोकप्रमाण स्वीकार की गई है।

इसप्रकार देशसंयमलब्धि समाप्त हुई।

अथ सकलसंयमलब्धिः ॥४॥

अथ सकलचारित्रप्ररूपणमुपक्रममाण इदं सूत्रमाह—

सयलचरित्तं तिविहं खयउवसमि उवसमं च खइयं च ।
सम्मत्तुप्पत्तिं वा उवसमसम्मेण गिण्हदो पढमं[1] ॥ १८९ ॥
सकलचारित्रं त्रिविधं क्षायोपशमिकं औपशमिकं च क्षायिकं च ।
सम्यक्त्वोत्पत्तिमिव उपशमसम्येन गृह्णतः प्रथमम् ॥ १८९ ॥

सं० टी०—सकलचारित्रं त्रिविधं क्षायोपशमिकमुपशमजं क्षायिकं चेति । तत्र प्रथमं क्षायोपशमिकचारित्रमुपशमजसम्यक्त्वेन सह गृह्णतो जीवस्य प्रथमोपशमसम्यक्त्वोत्पत्तौ यथा प्रक्रिया प्रागुक्ता यथा अत्रापि निरवशेषं वक्तव्या ॥ १८९ ॥

अथ सकल चारित्रकौं प्ररूपैं हैं—

सं० चं०—सकल चारित्र तीन प्रकार है—क्षायोपशमिक १ औपशमिक २ क्षायिक । १ । तहां पहला क्षायोपशमिक चारित्र सातवें वा छठे गुणस्थानविषैं पाइए है । ताकौं जो जीव उपशम सम्यक्त्वसहित ग्रहण करै है सो मिथ्यात्वतैं ग्रहण करै है ताका तौ सर्व विधान प्रथमोशम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिविषैं कह्या है सो जानना । क्षायोपशमिक चारित्रकौं ग्रहता जीव पहलैं अप्रमत्त गुणस्थानकौं प्राप्त हो है ॥ १८९ ॥

विशेष—सकल सावद्यके विरतिस्वरूप पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्तियोंको प्राप्त होनेवाले मनुष्यके जो विशुद्धिरूप परिणाम होता है उसे संयमलब्धि या सकलसंयम कहते हैं। अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायोंकी उदयाभावलक्षण उपशमनाके होनेपर यह उत्पन्न होता है । यद्यपि यहाँ चार संज्वलन और नौ नोकषायोंका उदय है । परन्तु वहाँ उनके सर्वघातिस्पर्धकोंका उदय न रहनेसे उनका भी देशोपशम पाया जाता है । स्थिति उपशमना दो प्रकारसे सम्भव है—एक तो अनुदयवाली पूर्वोक्त प्रकृतियोंकी स्थितियोंका उदयरूप न होना स्थिति उपशमना है। दूसरे सभी कर्मोंकी अन्त:कोड़ाकोड़ीसे उपरिम स्थितियोंका उदयरूप न होना स्थिति उपशमना है । पूर्वोक्त बारह कषायोंके अनुभागका उदयरूप न होना अनुभाग उपशमना है । तथा उदयरूप कषायोंके सर्वघाति स्पर्धकोंका उदय न होना अनुभाग उपशमना है । ज्ञानावरणादिकर्मोंके भी त्रिस्थानीय और चतु:स्थानीय अनुभागके परित्यागपूर्वक द्विस्थानीय अनुभागकी प्राप्ति अनुभाग उपशमना है । अनुदयरूप उन्हीं पूर्वोक्त कषायोंके प्रदेशोंका उदय नहीं होना प्रदेश उपशामना है । ये सब विशेषताएँ संयमासंयमलब्धिके प्राप्त होते समय भी रहती

---

१. का संजमलद्धी णाम ? पंचमहव्वय-पंचसमिदि-तिण्णिगुत्तीओ सयलसावज्जविरइलक्खणाओ पडिवज्जमाणस्स जो विसोहिपरिणामो सो संजमलद्धि त्ति विण्णायदे, खओवसमियचरित्तलद्धीए संजमलद्धिववएसालंबणादो । ओवसमिय-खइयसंजमलद्धीओ एत्थ किण्ण गहिदाओ ? ण, चारित्तमोहोवसामणाए तक्खवणाए च तासिं पबंधेण परूवणोवलंभादो । जयध० पु० १०७ ।

हैं। अन्तर केवल इतना है कि संयमासंयमलब्धिके कालमें प्रत्याख्यानावरण कषायका निरन्तर उदय रहा आता है। यहाँ संयमलब्धिमें चार संज्वलन और नौ नोकषायोंके सर्वघाती स्पर्धकोका उदयाभावरूप क्षय और उपशम बना रहता है, इसलिए यह भी संयमासंयमलब्धिके समान क्षायोपशमभावरूप है ऐसा यहाँ समझना चाहिए। संयमलब्धि उपशमरूप संयमलब्धि और क्षायिकरूप संयमलब्धि भी होती है, पर उनकी प्रकृतमें विवक्षा नहीं है।

अथ वेदकयोग्यमिथ्यादृष्टयादीनां सकलसंयमं गृह्णतां प्रक्रियाविशेषप्रदर्शनार्थमिदमाह—

वेदगजोगो मिच्छो अविरददेसो य दोण्णिकरणेण।
देसवदं वा गिण्हदि गुणसेढी णत्थि तक्करणे ॥ १९० ॥

वेदकयोगो मिथ्यो अविरतदेशश्च द्विकरणेन।
देशव्रतमिव गृह्णाति गुणश्रेणी नास्ति तत्करणे ॥ १९० ॥

सं० टी०—वेदकसम्यक्त्वग्रहणयोग्यो मिथ्यादृष्टिर्वा वेदकसम्यग्दृष्टिरविरतो वा देशव्रती वा देशव्रतग्रहणवदधःप्रवृत्तापूर्वकरणद्वयपरिणामैरेव सकलसंयमं गृह्णाति। तत्करणद्वयेऽपि गुणश्रेणीः नास्ति सकलसंयमग्रहणप्रथमसमयादारभ्य गुणश्रेण्यस्ति ॥ १९० ॥

सं० चं०—वेदक सम्यक्त्वसहित क्षायोपशम चारित्रकौ मिथ्यादृष्टि वा अविरत वा देशसंयत जीव है सो देशव्रतग्रहणवत् अधःप्रवृत्त वा अपूर्वकरण इन दोय ही करणकरि ग्रहै है। तहां करणविषै गुणश्रेणि नाहीं है। सकल संयमका ग्रहण समयतैं लगाय गुणश्रेणि हो है ॥ १९० ॥

इतः परं देशसंयमवदेवात्रापि प्रक्रिया भवतीत्यतिदेशार्थमिदमाह—

एत्तो उवरिं विरदे देसो वा होदि अप्पबहुगो त्ति।
देसो त्ति य तट्ठाणे विरदो त्ति य होदि वत्तव्वं ॥ १९१ ॥

अत उपरि विरते देश इव भवति अल्पबहुकत्वमिति।
देश इति तत्स्थाने विरत इति च भवति वक्तव्यम् ॥ १९१ ॥

सं० टी०—इतः परमल्पबहुत्वपर्यन्तं देशसंयते यादृशी प्रक्रिया तादृश्येवात्रापि सकलसंयते भवतीति ग्राह्यम्। अयं तु विशेषः—यत्र यत्र देशसंयत इत्युच्यते तत्र तत्र स्थाने विरत इति वक्तव्यं भवति। तद्यथा—

अधःप्रवृत्तकरणादीनां कालाल्पबहुत्वं सम्यक्त्वोत्पत्तिवत् स्थितिखण्डसहस्रेषु गतेष्वपूर्वकरणकालः समाप्यते तदनन्तरसमये सकलसंयतः सन् असंख्यातसमयप्रबद्धद्रव्यमपकृष्यावस्थितिगुणश्रेणिं पूर्ववत्करोति। एवं प्रतिसमयमसंख्यातगुणक्रमेण द्रव्यमपकृष्य एकान्तवृद्धिचरमसमयपर्यन्तमवस्थितगुणश्रेणिं करोति। तत्काले बहुषु स्थितिकाण्डकसहस्रेषु गतेषु तदनन्तरसमयादारभ्य स्वस्थानसकलसंयतो भवति। तत्र तत्र स्वस्थानसकलसंयतकाले स्थित्यनुभागकाण्डकघातो नास्ति गुणश्रेणी पुनरवस्थितायामा सकलसंयमनिबन्धना प्रवर्तत एव। तदा संक्लेशस्तोकवशेन सकलसंयमात्प्रच्युत्यासंयतगुणस्थानं गत्वा तत्र कर्मस्थितिमवर्धयित्वा शीघ्रान्तर्मुहूर्तेन पुनः संयमं प्रतिपद्यमानस्याधःप्रवृत्तापूर्वकरणपरिणामः स्थित्यनुभागखण्डनं च नास्ति। यस्तीव्रसंक्ले-

शेन सकलसंयमात्प्रच्युत्य मिथ्यात्वं गत्वा तत्र दीर्घमन्तर्मुहूर्तं वा चिरकालं वा स्थित्वा स्थित्यनुभागौ वर्धयित्वा पुनर्वेदकसम्यक्त्वेन सह सकलसंयमं गृह्णाति तस्याधःप्रवृत्तापूर्वकरणद्वयं स्थित्यनुभागखण्डनं च विद्यत एव । तदा विशुद्धिसंक्लेशपरावृत्तिवशेन स्वस्थानसकलसंयतः असंख्यातभागाधिकं संख्यातभागाधिकं संख्यातगुणमसंख्यातगुणं वा असंख्यातभागहीनं संख्यातभागहीनं संख्यातगुणहीनमसंख्यातगुणहीनं वा द्रव्यमपकृष्यावस्थितायामां गुणश्रेणिं करोत्येव । जघन्यानुभागखण्डोत्करणकालः सर्वतः स्तोकमित्यादिषु देशपदस्थाने विरतपदं निक्षिप्याल्पबहुत्वपदान्यष्टादशापि पूर्ववद् व्याख्येयानि ॥ १९१ ॥

देशसंयमके समान सकलसंयममें प्रक्रियाका निर्देश—

सं० चं०—इहाँतैं ऊपरि अल्पबहुत्व पर्यन्त जैसै पूर्वैं देशविरतविषैं व्याख्यान किया है तैसैं सर्व व्याख्यान इहां जानिये है। विशेष इतना—वहाँ जहाँ देशविरत कह्या है इहां तहां सकल विरत कहना सो कहिए है—अधःप्रवृत्त करणादिकके कालका अल्पबहुत्व अर प्रथमोपशम सम्यक्त्ववत् जो हजारों स्थितिखण्ड भएं अपूर्वकरणकौं समाप्तकरि अनन्तर समयविषैं सकल संयमविषैं संयमकौं ग्रहै तहां प्रथम समयतैं लगाय एकान्तवृद्धिका अन्त समय पर्यन्त समय-समय असंख्यातगुणा ऐसा असंख्यात समयप्रबद्ध प्रमाण द्रव्यकौं ग्रहि अवस्थिति गुणश्रेणि करै है। तहां बहुत स्थितिकाण्डक भएं एकान्तवृद्धिका अन्त समय पीछैं अनन्तर समयतैं लगाय स्वस्थान सकलसंयमी हो है। तहां स्थिति अनुभागकाण्डकका घात नाहीं है। गुणश्रेणि है ही। जो जीव सकलसंयमतैं भ्रष्ट होइ शीघ्र ही सकलसंयमकौं प्राप्त होइ ताकैं करण वा स्थितिकाण्डकादि न हो है। अर जो सकलसंयमतैं भ्रष्ट होइ मिथ्यात्वकौं प्राप्त होइ तहां बड़ा अन्तर्मुहूर्त वा बहुत काल रहि स्थिति अनुभाग बँधाय बहुरि वेदक सम्यक्त्वसहित सकलसंयमकौं ग्रहै है ताकैं दोय करण वा स्थितिकाण्डक घातादि हो हैं। बहुरि स्वस्थान सकलसंयम विशुद्धताकी वृद्धि हानितैं चतुःस्थान पतित वृद्धि हानि लीएं द्रव्यकौं अपकर्षण करि समय-समय गुणश्रेणि करै है। बहुरि जघन्य अनुभाग खण्डोत्करण कालादिक अठारह स्थाननिविषैं पूर्वोक्तवत् तहां अल्प बहुत्व जानना ॥ १९१ ॥

विशेष—गाथा १९१ में यह सूचना की गई है कि देशविरत जीवके प्ररूपणामें जो प्रक्रिया की गई है वही सब संयतजीवके विषयमें भी जाननी चाहिए। मात्र उसमें जहाँ-जहाँ देशविरत शब्दका प्रयोग किया गया है वहाँ-वहाँ संयतपदका प्रयोग करना चाहिए। यह उक्त सूत्रकथनका अर्थ है। हाँ, जयधवलामें इस सम्बन्धमें कुछ विशेष सूचनाएँ की गई हैं। उनका निर्देश हम यहाँ कर देना चाहते हैं—

१. जो वेदकसम्यग्दृष्टिजीव संयमके अभिमुख होता है उसके अधःकरण और अपूर्वकरण ये दो ही करण होते हैं। उसमें अधःकरणके अन्तमें सर्वप्रथम उपशम सम्यक्त्वके सन्मुख हुए जीवके सम्बन्धमें जिन चार गाथाओंका उल्लेख कर आये हैं उनको लक्ष्यमें रखकर व्याख्यान करना चाहिए। इतना अवश्य है कि यहाँ उनका व्याख्यान संयमके सन्मुख हुए वेदकसम्यग्दृष्टिको लक्ष्यमें रख करना चाहिए। विशेष व्याख्यान जयधवला (पु० १३, पृ० १५९-१६३) से जान लेना चाहिए।

२. संयमको प्राप्त होनेवाले उक्त जीवके अधःकरण और अपूर्वकरणमात्र ये दो करण होते हैं। इनका व्याख्यान संयमासंयमकी प्राप्तिके समय जैसा कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी करना

चाहिए। इस प्रकार अपूर्वकरणकी क्रियाको समाप्त कर तदनन्तर समयमें यह जीव संयत हो जाता है। तथा संयत होनेके प्रथम समयसे लेकर उसके अन्तर्मुहूर्त काल तक प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धिको लिये हुए चारित्रलब्धिमें वृद्धि होती जाती है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कालतक चारित्रलब्धिमें निरन्तर वृद्धि होती जानेसे उस संयमको एकान्तानुवृद्धि संयम कहते हैं। तथा उस समय यह जीव अपूर्वकरण इस संज्ञावाला स्वीकार किया जाता है। कारण कि जिस प्रकार अपूर्वकरणमें प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धि होनेसे उसकी अपूर्वकरण संज्ञा है उसी प्रकार यहाँ भी प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धि प्राप्त होनेसे उसे अपूर्वकरण कहा गया है। संयमको प्राप्त करनेके सन्मुख हुए जोवके जो विशुद्धि होती है वही यहाँ होती है ऐसा उसका अर्थ नहीं है। किन्तु अपूर्वकरणके समान यहाँ भी प्रति समय अपूर्व-अपूर्व विशुद्धिकी प्राप्ति होती है, इसलिए ही यहाँ एकान्तानुवृद्धि संयतको अपूर्वकरण संज्ञक संयत कहा गया है।

४. गुणश्रेणिकी दृष्टिसे विचार करनेपर संयमकी प्राप्तिके पूर्व तो गुणश्रेणि रचना नहीं होती। मात्र संयम प्राप्तिके प्रथम समयसे लेकर संयमके निमित्तसे अवस्थित गुणश्रेणि रचना प्रारम्भ हो जाती है। जो एकान्तानुवृद्धि संयमके अन्ततक असंख्यातगुणित क्रमसे होती रहती है। उसके बाद स्वस्थानपतित अधःप्रवृत्तसंज्ञावाले उसके विशुद्धि और संक्लेशके कारण चारित्रलब्धिमें कदाचित् वृद्धि होती है, कदाचित हानि होती है और कदाचित्‌ वह अवस्थित रहती है। तदनुसार यहाँ चार वृद्धियाँ और हानियाँ सम्भव हैं। चार वृद्धियाँ ये हैं—असंख्यात भागवृद्धि, संख्यात भागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि और असंख्यातगुणवृद्धि। चार हानियाँ ये हैं—असंख्यातभागहानि, संख्यात भागहानि, संख्यात गुणहानि और असंख्यातगुणहानि। प्रति समय विशुद्धिके समय कोई एक वृद्धि होती है और संक्लेशके समय कोई एक हानि होती है। नियम यह है कि पूर्व समयमें जो संयमविशुद्धि है उससे अगले समयमें उसमें कितनी वृद्धि या हानि हुई है या वह अवस्थित रही है। तदनुसार प्रति समय गुणश्रेणिमें रचनामें भी वृद्धि, हानि होती रहती है।

५. इतना विवेचन करनेके बाद जयधवलामें अपूर्वकरणसे लेकर अधःप्रवृत्तकालके भीतर जघन्य अनुभाग उत्कीरणकालसे लेकर उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मंतकके पदोंका अल्पबहुत्व चूर्णिसूत्रके अनुसार निर्दिष्ट किया गया है जिसे जलधवला (पु० १३, पृ० १६८-१७०) से जान लेना चाहिए। विशेष प्रयोजन न होनेसे उसका हमने यहाँ उल्लेख नहीं किया है।

६. जो जीव बहुत संक्लेशरूप परिणामोंके बिना परिणामवश संयमसे च्युत हो असंयतपनेको प्राप्त कर स्थितिसत्कर्ममें वृद्धि किये बिना पुनः अन्तर्मुहूर्तमें विशुद्ध होता हुआ संयमको प्राप्त होता है उसके न तो अपूर्वकरणरूप परिणाम होते हैं और नहीं स्थिति-अनुभागकाण्डकघात ही होते हैं, क्योंकि पहले घातकर जो स्थिति और अनुभाग शेष रहा था वह उसके तदवस्थ बना रहता है।

७. किन्तु जो संयत संक्लेशकी बहुलतावश मिथ्यात्व सहित असंयत होकर अन्तर्मुहूर्तके बाद या लम्बे कालके बाद पुनः संयमको प्राप्त करता है उसके पूर्वोक्त दोनों करण तथा स्थिति-अनुभागकाण्डकघात अवश्य होते हैं, क्योंकि इसने मिथ्यात्व अवस्थामें जो स्थिति और अनुभागको बढ़ाया है उनका घात किये बिना पुनः संयमको ग्रहण करना इसके बन नहीं सकता है।

८. आगे संयत जीवका सत्प्ररूपणा आदि आठ अनुयोगद्वारोंके माध्यमसे कथन करनेका निर्देश किया गया है। जिसे जयधवला (पु० १३, पृ० १७१–१७४) से जान लेना चाहिए।

अथ सर्वजघन्यसकलसंयमविशुद्धयविभागप्रतिच्छेदप्रमाणप्रदर्शनपूर्वकं तत्सर्वस्थानसंख्यानं प्ररूपयितुमिदमाह—

अवरे विरदट्ठाणे होंति अणंताणि फड्ढयाणि तदो ।
छट्ठाणगया सव्वे लोयाणमसंखछट्ठाणा ॥ १९२ ॥

अवरे विरतस्थाने भवन्त्यनन्तानि स्पर्धकानि ततः ।
षट्स्थानगतानि सर्वाणि लोकानामसंख्यषट्स्थानानि ॥ १९२ ॥

सं० टी०—सकलसंयमस्य सर्वजघन्यस्थाने स्पर्धकान्यविभागप्रतिच्छेदाः जीवराश्यनन्तगुणप्रमिताः सन्ति । ततः परं सर्वोत्कृष्टस्थानपर्यन्तं षट्स्थानपतितवृद्धीनि सकलसंयमलब्धिस्थानानि सर्वाण्यपि असंख्यातलोकमात्राणि भवन्ति ॥ १९२ ॥

जघन्य संयतके विशुद्धके अविभाग प्रतिच्छेदोंकी संख्याका निर्देश—

सं० चं०—सकल संयमका जघन्य स्थाननिविषैं अनंतानंत स्पर्धक कहिए अविभाग प्रतिच्छेद हैं ते जीवराशितैं अनंत गुणे जानने । तातैं गोम्मटसारका ज्ञानाधिकारविषैं पर्याय समासके स्थाननिका अनुक्रम जैसें कह्या है तैसे षट्स्थानपतित वृद्धि लीएं असंख्यात लोकमात्र स्थान हैं तिनविषैं असंख्यात लोकमात्रबार षट्स्थानपतित वृद्धि संभवै है ॥ १९२ ॥

सकलसंयमस्य प्रतिपातादिभेदं दर्शयितुमिदमाह—

तत्थ य पडिवादगया पडिवज्जगया त्ति अणुभयगया त्ति ।
उवरुवरि लद्धिठाणा लोयाणमसंखछट्ठाणा[1] ॥ १९३ ॥

तत्र च प्रतिपातगता प्रतिपद्यगता इति अनुभयगता इति ।
उपर्युपरि लब्धिस्थानानि लोकानामसंख्यषट्स्थानानि ॥ १९३ ॥

सं० टी०—तत्र प्रतिपातगतानि प्रतिपद्यमानगतान्यनुभयगतानीति त्रिविधानि सकलसंयमलब्धिस्थानानि प्रत्येकमसंख्यात लोकमात्राण्युपर्युपरि तिष्ठन्ति ॥ १९३ ॥

सकलसंयमके भेदोंका निर्देश तथा संयमके प्रतिपात आदि स्थानोंका उल्लेख तथा उनमें तारतम्यका कथन—

सं० चं०—तहां प्रतिपातगत १ प्रतिपद्यमानगत २ अनुभयगत ३ ऐसैं उपरि तीन प्रकार स्थान हैं। भावार्थ यहु—नीचैं ही नीचै तौ जघन्यस्थान लिख्या ताके ऊपरि अनन्तभागवृद्धिरूप द्वितीय स्थान लिख्या ताके ऊपरि अनन्तभाग वृद्धिरूप तृतीय स्थान लिख्या। ऐसैं पर्याय समास

---

१. एत्तो जाणि ट्ठाणाणि ताणि तिविहाणि । तं जहा—पडिवादट्ठाणाणि उप्पादट्ठाणाणि लद्धिट्ठाणाणि । पडिवादट्ठाणं णाम जहा—जम्हि ट्ठाणे मिच्छत्तं वा असंजमसम्मत्तं वा संजमासंजमं वा गच्छइ तं पडिवादट्ठाणं । उप्पादयट्ठाणं णाम जहा—जम्हि ट्ठाणे संजमं पडिवज्जइ तमुप्पादयट्ठाणं । सव्वाणि चेव चरित्तट्ठाणाणि लद्धिट्ठाणाणि । एदेसिं लद्धिट्ठाणाणमप्पाबहुअं । तं जहा—सव्वत्थोवाणि पडिवादट्ठाणाणि । उप्पादयट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि । लद्धिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ।

कसाय० चू०, जयध० पु० १३, पृ० १७५-१७९ ।

श्रुतज्ञानके स्थानवत् स्थाननिकी अनुक्रमतैं ऊपरि ऊपरि रचना करनी। इहां अनन्तभागादिक वृद्धि विशुद्धताकी अपेक्षा जाननी तहाँ नीचेके स्थान प्रतिपातगत हैं। प्रतिपद्यमान तिनके ऊपरि हैं। अनुभयगत तिनके भी ऊपरिवर्ती हैं। ते प्रत्येक असंख्यातलोकमात्र हैं। तहाँ असंख्यात-लोकमात्रबार षट्स्थानपतित वृद्धि सम्भवै है ॥ १९३ ॥

तेषु प्रतिपातस्थानभेदं प्रदर्शयितुमिदमाह—

पडिवादगया मिच्छे अयदे देसे य होंति उवरुवरिं।
पत्तेयमसंखमिदा लोयाणमसंखछट्ठाणा[1] ॥ १९४ ॥

प्रतिपातगतानि मिथ्ये अयते देशे च भवंति उपर्युपरि।
प्रत्येकमसंख्यमितानि लोकानामसंख्यषट्स्थानानि ॥ १९४ ॥

सं० टी०—मिथ्यात्वे प्रतिपाताभिमुखं सकलसंयमलब्धिस्थानं चरमसमये तीव्रसंक्लेशवशात्सर्वजघन्यं भवति। ततः परमसंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानानि गत्वा तद्योग्यसंक्लेशवशेन मिथ्यात्वप्रतिपाताभिमुखं सकलसंयमलब्धिस्थानमुत्कृष्टं तच्चरमसमये भवति। ततः परमसंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानान्यन्तरयित्वाऽसंयमप्रतिपाताभिमुखं जघन्यं सकलसंयमलब्धिस्थानं चरमसमये तद्योग्यसंक्लेशवशेन भवति। ततः परमसंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानानि गत्वा असंयमप्रतिपाताभिमुखसकलसंयमलब्धिस्थानमुत्कृष्टं तच्चरसमये तद्योग्यसंक्लेशवशाद् भवति। ततः परमसंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानान्यतीत्य तद्योग्यसंक्लेशाद्देशसंयमप्रतिपाताभिमुखं जघन्यं सकलसंयमलब्धिस्थानं तच्चरसमये भवति। ततः परमसंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानानि गत्वा तद्योग्यसंक्लेशवशेन देशसंयमप्रतिपाताभिमुखमुत्कृष्टं सकलसंयमलब्धिस्थानं तच्चरसमये भवति। एवं प्रतिपातस्थानानि तद्विषयस्वामिभेदात्त्रिविधानि। तत्र त्रीणि जघन्यानि तीव्रसंक्लेशाविष्टस्य भवन्ति। त्रीण्युत्कृष्टानि तद्योग्यमन्दसंक्लेशाविष्टस्य भवन्ति ॥ १९४ ॥

प्रतिपातस्थानोंका कथन—

सं० चं०—तहाँ प्रतिपातगत स्थान सकलसंयमतैं भ्रष्ट होतें ताका अन्तसमयविषैं पाइए है। तहाँ जघन्यतैं लगाय असंख्यातलोकमात्र स्थान तौ मिथ्यात्वकौं जो सन्मुख होइ तिनकैं होइ। तिनके ऊपरि असंख्यातलोकमात्र स्थान जे जीव असंयतकौं सन्मुख होंइ तिनकैं हो हैं। तिनके ऊपरि असंख्यातलोकमात्र स्थान जे जीव देशसंयतकौं सन्मुख होंइ तिनके हो हैं। ऐसैं प्रतिपात स्थान तीन प्रकार हैं। तहाँ तीनों जायगा जघन्य स्थान तो यथायोग्य तीव्र संक्लेश-वालाकैं अर उत्कृष्ट स्थान मन्द संक्लेशवालाकैं हो हैं। बहुरि एक एक विषैं असंख्यातलोकमात्र षट्स्थान सम्भवै हैं ॥ १९४ ॥

विशेष—संयमस्थान तीन प्रकारके हैं—प्रतिपातस्थान, उत्पादकस्थान और लब्धिस्थान।

---

१. तिव्व-मंददाए सव्वसंदाणुभागं मिच्छत्तं गच्छमाणस्स जहण्णयं संजमट्ठाणं। तस्सेवुक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। असंदसम्मत्तं गच्छमाणस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। तस्सेवुक्कस्सयं संजमट्ठाण-मणंतगुणं। संजमासंजमं गच्छमाणस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। तस्सेवुक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। क० चू०, जयध० पु० १३, पृ० १८२-१८३।

संयमके जिस स्थानके प्राप्त होने पर जीव पतन कर मिथ्यात्व, असंयमसम्यक्त्व और संयमासंयमको प्राप्त करता है उसे प्रतिपातस्थान कहते हैं, जिस स्थानमें जीव संयमको प्राप्त करता है उसे उत्पादकस्थान कहते हैं तथा सभी संयमस्थानोंको लब्धिस्थान कहते हैं। लब्धिसारमें जिन्हें अनुभय संयमस्थान कहा गया है उनसे संयमलब्धिस्थानोंमें यह अन्तर है कि इनमें संयमसम्बन्धी प्रतिपात आदि सभी संयमस्थानोंको ग्रहण किया गया है। तथा वहाँ संयम लब्धिस्थानोंको प्रतिपातस्थान और उत्पादक स्थानोंसे भिन्न अप्रतिपात-अनुत्पादकस्थानरूपसे भी स्वीकार किया गया है। इस प्रकार जयधवलामें संयमलब्धिस्थानोंके दोनों अर्थ स्वीकार किये गये हैं। लब्धिसारमें इन तीनों स्थानोंमेंसे प्रत्येकको असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थान पतित बतलाया गया है। अल्पबहुत्वका निर्देश करते हुए वहाँ लिखा है कि प्रतिपातस्थान असंख्यात लोकप्रमाण होकर भी सबसे थोड़े हैं। उनसे उत्पादकस्थान असंख्यात गुणा हैं। यहाँ गुणकारका प्रमाण असंख्यात लोक है। उनसे लब्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। यहाँ गुणकार असंख्यात लोकप्रमाण है। दूसरे प्रकारसे अल्पबहुत्वका निर्देश करते हुए लिखा है—प्रतिपातस्थान सबसे थोड़े हैं उनसे प्रतिपद्यमानस्थान असंख्यातगुणे हैं। उनसे अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानस्थान असंख्यातगुणे हैं। तथा उनसे लब्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं। तीव्रमन्दताकी दृष्टिसे लिखा है—मिथ्यात्वको प्राप्त करनेवाले संयतका तत्प्रायोग्य संक्लेशके कारण जघन्य संयमस्थान सबसे मन्द अनुभागवाला होता है। इससे उसीका उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है, क्योंकि यह पूर्वके संयमस्थानसे असंख्यात लोकप्रमाण-षट्स्थानोंको उल्लंघन कर उत्पन्न हुआ है। इसी प्रकार असंयमसम्यक्त्व और संयमासंयमको गिरकर प्राप्त होनेवाले संयतका जघन्य और उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है। उससे संयमको प्राप्त होनेवाले कर्मभूमिक मनुष्यका जघन्य संयमस्थान क्रमशः अनन्तगुणा है। उससे संयमको प्राप्त होनेवाले अकर्मभूमिक मनुष्यका जघन्य संयमस्थान क्रमशः अनन्तगुणा है। उससे इसीका उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है। उससे कर्मभूमिकका उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है। जयधवलाके अनुसार यहाँ भरत और ऐरावत क्षेत्रमें विनीत संज्ञावाला जो मध्यम खण्ड है उसमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य कर्मभूमिक लेने चाहिए। तथा शेष पाँच खण्डोंमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य अकर्मभूमिक ऐसा ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि उन पाँच खण्डोंमें धर्म-कर्मकी प्रवृत्तिका अभाव है।

कर्मभूमिक मनुष्योंमें उक्त उत्कृष्ट संयमस्थानसे सामायिक-छेदोपस्थापना संयमके सन्मुख हुए परिहारशुद्धिसंयमका जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणा है। यह सामायिक-छेदोपस्थापनासंयमके जघन्य प्रतिपातस्थान और प्रतिपद्यमानस्थानसे असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थान संयमस्थान आगे जाकर वहाँ प्राप्त होनेवाले संयमलब्धिस्थानके समान होकर उत्पन्न होता है। इससे उसीका उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है। उससे सामायिक-छेदोपस्थापनासंयमका उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है। उससे सूक्ष्मसाम्परायिकसंयमका जघन्य और उत्कृष्ट संयमस्थान क्रमशः अनन्तगुणे हैं। उससे वीतराग संयमका अजघन्य-अनुत्कृष्ट चारित्रलब्धिस्थान अनन्तगुणा है। यह एक ही प्रकारका है, क्योंकि यहाँ कषायका सर्वथा अभाव है, इसलिए चाहे उपशान्तकषाय जीव हो, चाहे क्षीणकषाय आदि गुणस्थानोंवाला जीव हो इन सबके कषायका सर्वथा अभाव होनेसे इन स्थानोंकी चारित्रलब्धिमें किसी प्रकारका भेद नहीं पाया जाता।

अथ प्रतिपद्यमानसकलसंयमलब्धिस्थानस्वामिभेदावधारणार्थमिदमाह्—

तत्तो पडिवज्जगया अज्जमिलेच्छे मिलेच्छअज्जे य।
कमसो अवरं अवरं वरं वरं होदि संखं वा॥ १९५॥

ततः प्रतिपद्यगता आर्यम्लेच्छे म्लेच्छार्ये च।
क्रमशोऽवरमवरं वरं वरं भवति संख्यं वा॥ १९५॥

सं० टी०—तस्माद् देशसंयमप्रतिपाताभिमुखोत्कृष्टप्रतिपातस्थानादसंख्येयलोकमात्राणि षट्स्थानान्यन्तरयित्वा मिथ्यादृष्टिचरस्यार्यखण्डजमनुष्यस्य सकलसंयमग्रहणप्रथमसमये वर्तमानं जघन्यं सकलसंयमलब्धिस्थानं भवति। ततः परमसंख्येयलोकमात्राणि षट्स्थानान्यतिक्रम्य म्लेच्छभूमिजमनुष्यस्य मिथ्यादृष्टिचरस्य संयमग्रहणप्रथमसमये वर्तमानं जघन्यं संयमलब्धिस्थानं भवति। ततः परमसंख्येयलोकमात्राणि षट्स्थानानि गत्वा म्लेच्छभूमिजमनुष्यस्य देशसंयतचरस्य संयमग्रहणप्रथमसमये उत्कृष्टं संयमलब्धिस्थानं भवति। ततः परमसंख्येयलोकमात्राणि षट्स्थानानि गत्वा आर्यखण्डजमनुष्यस्य देशसंयतचरस्य संयमग्रहणप्रथमसमये वर्तमानमुत्कृष्टं सकलसंयमलब्धिस्थानं भवति। एतान्यार्यम्लेच्छमनुष्यविषयाणि सकलसंयमग्रहणप्रथमसमये वर्तमानानि संयमलब्धिस्थानानि प्रतिपद्यमानस्थानानीत्युच्यन्ते। अत्रार्यम्लेच्छमध्यमस्थानानि मिथ्यादृष्टिचरस्य वा असंयतसम्यग्दृष्टिचरस्य वा देशसंयतचरस्य वा तदनुरूपविशुद्धया सकलसंयमं प्रतिपद्यमानस्य सम्भवन्ति। विधिनिषेधयोर्नियमावचने सम्भवप्रतिपत्तिरिति न्यायसिद्धत्वात्। अत्र जघन्यद्वयं यथायोग्यतीव्रसंक्लेशाविष्टस्य, उत्कृष्टद्वयं तु मन्दसंक्लेशाविष्टस्येति ग्राह्यं। म्लेच्छभूमिजमनुष्याणां सकलसंयमग्रहणं कथं संभवतीति नाशंकितव्यं दिग्विजयकाले चक्रवर्तिना सह आर्यखण्डमागतानां म्लेच्छराजानां चक्रवर्त्यादिभिः सह जातवैवाहिकसम्बन्धानां संयमप्रतिपत्तेरविरोधात्। अथवा तत्कन्यकानां चक्रवर्त्यादिपरिणीतानां गर्भेषूत्पन्नस्य मातृपक्षापेक्षया म्लेच्छव्यपदेशभाजः संयमसंभवात् तथाजातीयकानां दीक्षार्हत्वे प्रतिषेधाभावात्॥ १९५॥

प्रतिपद्यमानस्थानोंका कथन—

सं० चं०—प्रतिपात स्थाननिके ऊपरि असंख्यातलोकमात्र स्थान ऐसे हो हैं जिनिका कोऊ स्वामी नाहीं तिनिका अन्तरालकरि प्रतिपाद्यमान स्थान हो हैं। सो सकलसंयमकी प्राप्तिका प्रथम समयविषैं जे सम्भवैं ते प्रतिपद्यमान स्थान जानना। तहाँ प्रथम आर्यखण्डका मनुष्य मिथ्यादृष्टितैं सकलसंयमी भया ताकैं जघन्य स्थान हो है। बहुरि ताके ऊपरि असंख्यातलोकमात्र षट्स्थान जाय म्लेच्छखण्डका मनुष्य मिथ्यादृष्टितैं सकलसंयमी भया ताका जघन्यस्थान हो है। ताके ऊपरि असंख्यातलोकमात्र षट्स्थान जाइ म्लेच्छखण्डका मनुष्य देशसंयततैं सकलसंयमी भया ताका उत्कृष्ट स्थान हो है। बहुरि तातैं असंख्यातलोकमात्र षट्स्थान जाइ आर्यखण्डका मनुष्य देशसंयततैं सकलसंयमी भया ताका उत्कृष्टस्थान हो है। इहाँ असंख्यातलोकमात्र षट्स्थान जाइ कह्या तहाँ असंख्यात लोकमात्र षट्स्थान पतित वृद्धि जाननी। बहुरि इहां आर्य-म्लेच्छके जघन्य अर मध्यके-बीचिके जे स्थान हैं ते मिथ्यादृष्टितैं वा असंयततैं वा संयतासंयततैं सकलसंयमी भए तिनके यथासम्भव जानने। जातैं किछू नियम कह्या नाहीं।

---

१. कम्मभूमियस्स पडिवज्जमाणयस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। अकम्मभूमियस्स पडिवज्जमाणयस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। तस्सेवुक्कस्सयं पडिवज्जमाणयस्स संजमट्ठाणमणंतगुणं। कम्मभूमियस्स पडिवज्जमाणयस्स उक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। क० चु० जयध० पु० १३, पृ० १८३–१८५।

बहुरि इहाँ कोऊ कहै कि म्लेच्छ खण्डका उपज्या मनुष्यकैं सकलसंयम इहां कह्या सो कैसे सम्भवै ? ताका समाधान—जो म्लेच्छ मनुष्य चक्रवर्तीका साथि आर्यखण्डविषैं आवै अर तिनसेती चक्रवर्ती आदिककैं विवाहादि सम्बन्ध पाइए हैं तिनकैं दीक्षाका ग्रहण सम्भवै है। अथवा म्लेच्छकी कन्या जे चक्रवर्ती आदि परणें तिनके जे पुत्र होंइ तिनकौं माता पक्षकरि म्लेच्छ कहिए, तिनकै दीक्षा ग्रहण सम्भवै है ॥ १९५ ॥

अनुभयस्थानप्रतिपादनार्थमाह—

तत्तोणुभयट्ठाणे सामाइयछेदजुगलपरिहारे।
पडिबद्धा परिणामा असंखलोगप्पमा होंति[1] ॥ १९६ ॥

ततोनुभयस्थाने सामायिकछेदयुगलपरिहारे।
प्रतिबद्धाः परिणामा असंख्यलोकप्रमा भवंति ॥ १९६ ॥

सं० टी०—तस्मादार्यखण्डमनुष्यस्य प्रतिपद्यमानोत्कृष्टसंयमलब्धिस्थानादसंख्येयलोकमात्राणि षट्स्थानान्यंतरयित्वा सामायिकछेदोपस्थापनसंयमद्वयसंबंधिजघन्यमनुभयस्थानं मिथ्यादृष्टिचरस्य संयमग्रहणद्वितीयसमये भवति। ततः परमसंख्येयलोकमात्राणि षट्स्थानानि गत्वा परिहारविशुद्धिसंयमसम्बन्धिजघन्यसंयमस्थानं परिहारविशुद्धिसंयमात्प्रच्युत्य तच्चरमसमये वर्तमानस्य सामायिकछेदोपस्थापनसंयमयोः पतिष्यतो भवति। ततः परमसंख्येयलोकमात्राणि षट्स्थानानि गत्वा परिहारविशुद्धिसंयमस्योत्कृष्टं संयमलब्धिस्थानं सर्वविशुद्धस्य भवति। ततः परमसंख्येयलोकमात्राणि षट्स्थानानि गत्वा सामायिकछेदोपस्थापनसंयमयोरुत्कृष्टमनुभयस्थानमनिवृत्तिकरणक्षपकस्य चरमसमये भवति। एवं मिथ्यात्वप्रतिपाताभिमुखसर्वजघन्यस्थानादारभ्यानुभयोत्कृष्टसंयमलब्धिस्थानपर्यंतं यावन्ति संयमलब्धिस्थानानि तावन्ति सर्वाण्यपि सामायिकछेदोपस्थापनसंयमद्वयसम्बन्धीनीति ज्ञातव्यं। तानि चोत्तरमनन्तगुणविशुद्धीनि। तत्र प्रतिपातस्थानान्यसंख्यातलोकमात्राणि सर्वतः स्तोकानि $\frac{\equiv a}{9 \mid 9}$ तेभ्यः प्रतिपद्यमानस्थानान्यसंख्येयलोकगुणितानि $\frac{\equiv a\ 8}{9 \mid 9}$ तेभ्योऽनुभयस्थानान्यसंख्यातलोकगुणितानि $\frac{\equiv a\ 8}{9}$ सर्वाण्यपि संयमलब्धिस्थानानि मिलित्वासंख्येयलोकमात्राणि $\equiv a$ भागहारभूतासंख्यातलोकस्य संदृष्टिः ९ ॥ १९६ ॥

अनुभयसंयमस्थानोंका कथन—

सं० चं०—तिस उत्कृष्ट प्रतिपद्यमान स्थानके ऊपरि असंख्यातलोकमात्रस्थान ऐसै हैं जिनिका कोऊ स्वामी नाहीं। तिनका अन्तरालकरि उपरि अनुभयस्थान है सो पूर्वोक्त दोऊ विना अन्य समयनिविषैं जे सम्भवैं ते अनुभयस्थान हैं। तहाँ प्रथम मिथ्यादृष्टितैं सकलसंयमी भया ताकैं दूसरा समयविषैं सामायिक छेदोपस्थापना सम्बन्धी जघन्य स्थान हो है। ताके ऊपरि असंख्यातलोकमात्र षट्स्थान जाइ परिहार विशुद्धिका जघन्य स्थान हो है। सो यहु स्थान तिस परिहार

---

१. परिहारशुद्धिसंजदस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। तस्सेव उक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। सामाइय-छेदोवट्ठावणियाणमुक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं तस्सेवुक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। क० चु०, जयध० पु० १३ पृ० १८५-१८६।

विशुद्धि संयमतैं छूटि सामायिक छेदोपस्थापनकौं सन्मुख होतैं ताका अन्त समयविषैं हो है। इहाँ इस संयमतैं छूटि सकलसंयमी ही रह्या तातैं याकौं सकलसंयमकी अपेक्षा अनुभयस्थान कह्या, प्रतिपातस्थान न कह्या। बहुरि ताके ऊपरि असंख्यातलोकमात्र षट्स्थान जाइ परिहार विशुद्धिका उत्कृष्ट स्थान हो है बहुरि ताके ऊपरि असंख्यातलोकमात्र षट्स्थान जाइ सामायिक छेदोपस्थापनका उत्कृष्ट स्थान हो है। सो यहु क्षपक अनिवृत्तिकरणका अन्तसमयविषैं सम्भवै है ऐसा जानना। ऐसैं जघन्यतैं लगाय उत्कृष्ट पर्यन्त कहे जे अनुभयस्थान ते सर्व सामायिक छेदोपस्थापनसम्बन्धी सम्भवैं हैं। परिहारविशुद्धिसम्बन्धी स्थान कहे ते सामायिक छेदोपस्थापनविषैं भी अर तहाँ भी सम्भवैं हैं। ऐसा जानना। बहुरि ऐसे ए स्थान कहे तिनिविषैं प्रतिपातस्थान थोरे हैं तेऊ असंख्यातलोकमात्र है। तिनितैं असंख्यातलोकगुणे प्रतिपद्यमानस्थान है। तिनतैं असंख्यात लोकगुणे अनुभयस्थान हैं। इनि सबनिकौं मिलाएं भी असंख्यातलोक प्रमाण ही सकलसंयमके स्थान हो हैं जातैं असंख्यातके भेद बहुत हैं॥ १९६॥

अथ सूक्ष्मसांपराययथाख्यातचारित्रप्ररूपणार्थमिदमाह—

तत्तो य सुहुमसंजम पडिवज्जय संखसमयमेत्ता हु।
तत्तो दु जहाखादं एयविहं संजमे होदि[1]॥ १९७॥

ततश्च सूक्ष्मसंयमं प्रतिवर्ज्य संख्यसमयमात्रा हि।
ततस्तु यथाख्यातमेकविधं संयमे भवति॥ १९७॥

सं० टी०—तस्मादनिवृत्तिकरणक्षपणचरमसमयसंभविसामायिकछेदोपस्थापनद्वयोत्कृष्टस्थानादसंख्येयलोकमात्राणि षट्स्थानान्यान्तरयित्वा उपशमश्रेण्यामवरोहणे अनिवृत्तिकरणाभिमुखं सूक्ष्मसाम्परायसंयमस्य जघन्यं स्थानं तच्चरसमये भवति। ततः परमसंख्यातसमयमात्रस्थानानि गत्वा सूक्ष्मसाम्परायक्षपकचरमसमये सूक्ष्मसाम्परायसंयमस्योत्कृष्टं स्थानं भवति। तस्मादसंख्येयलोकमात्राणि षट्स्थानान्यन्तरयित्वा यथाख्यातचारित्रमेकमिदं सर्वस्थानेभ्योऽनन्तविशुद्धिकं सकलसंयमोत्कृष्टमुपशान्तकषायक्षीणकषायसयोगकेवल्ययोगकेवलिस्वामिकं भवति, सकलचारित्रमोहनीयप्रकृतीनां प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशरूपाणां सर्वोपशमात्सर्वक्षयाच्च समुद्भूतत्वात्तस्य जघन्यमध्यमोत्कृष्टस्थानविकल्पा न सन्तीत्येकविधत्वं प्रवचने प्रतिपादितं॥ १९७॥

सूक्ष्मसंपराय और यथाख्यातसंयममें संयमस्थानोंका कथन—

सं० चं०—तिस सामायिक छेदोपस्थापनका स्थानतैं उपरि असंख्यातलोकमात्र स्थाननिका अन्तरालकरि उपशमश्रेणितैं उतरतैं अनिवृत्तिकरणके सन्मुख जीवकै अपना अन्त समयविषैं सम्भवता ऐसा सूक्ष्मसांपरायका जघन्यस्थान हो है। ताके ऊपरि असंख्यात समयमात्र स्थान जाइ क्षपक सूक्ष्म सांपरायका अन्तसमयविषैं सम्भवता सूक्ष्मसांपरायका उत्कृष्टस्थान हो है। तातैं उपरि असंख्यातलोकमात्र स्थाननिका अन्तरालकरि यथाख्यात चारित्रका एकस्थान हो है। सो यहु सबनितैं अनन्तगुणी विशुद्धता लीएं उपशान्तकषाय क्षीणकषाय सयोगी अयोगीकैं हो है। यामैं सर्वकषायनिका सर्वथा उपशम वा क्षय है तातैं जघन्य मध्य उत्कृष्ट भेद ही नाहीं॥ १९७॥

---

१. वीयकसायस्स अजहण्णमणुक्कस्सयं चरिमलद्धिट्ठाणमणंतगुणं।

क० चू०, जयध० पु० १३, पृ० १८७।

अथ सामायिकादिसंयमानां प्रतिपातस्थानादिलक्षणस्थानसंख्यान्तस्थानसंख्यास्वामिविषयविभागप्रदर्शनार्थं गाथासप्तकमाह—

पडचरिमे गहणादीसमये पडिवाददुगमणुभयं तु ।
तम्मज्झे उवरिमगुणगहणाहिमुहे य देसं वा ।। १९८ ।।

पतनचरमे ग्रहणादिसमये प्रतिपातादिद्विकमनुभयं तु ।
तन्मध्ये उपरिगुणग्रहणाभिमुखे च देशमिव ।। १९८ ।।

पडिवादादीतिदयं उवरुवरिमसंखलोगगुणिदकमा ।
अंतरछक्कपमाणं असंखलोगा हु देसं वा ।। १९९ ।।

प्रतिपातादित्रितयं उपर्युपरितनमसंख्यलोकगुणितक्रमं ।
अंतरषट्कप्रमाणमसंख्यलोका हि देशमिव ।। १९९ ।।

मिच्छयदेसभिण्णे पडिवादट्ठाणगे वरं अवरं ।
तप्पाउग्गकिलिट्ठे तिव्वकिलिट्ठे कमे चरिमे ।। २०० ।।

मिथ्यायतदेशभिन्ने प्रतिपातस्थानके वरमवरम् ।
तत्प्रायोग्यक्लिष्टे तीव्रक्लिष्टे क्रमेण चरमे ।। २०० ।।

पडिवज्जजहण्णदुगं मिच्छे उक्कस्सजुगलमवि देसे ।
उवरिं सामइयदुगं तम्मज्झे होंति परिहारा ।। २०१ ।।

प्रतिपद्यजघन्यद्विकं मिथ्ये उत्कृष्टयुगलमपि देशे ।
उपरि सामायिकद्विकं तन्मध्ये भवंति परिहाराणि ।। २०१ ।।

परिहारस्स जहण्णं सामयियदुगे पडंत चरिमम्हि ।
तज्जेट्ठं सट्ठाणे सव्वविसुद्धस्स तस्सेव ।। २०२ ।।

परिहारस्य जघन्यं सामायिकद्विके पततः चरमे ।
तज्ज्येष्ठं स्वस्थाने सर्वविशुद्धस्य तस्यैव ।। २०२ ।।

सामयियदुगजहण्णं ओघं अणियट्टिखवगचरिमम्हि ।
चरिमणियट्टिस्सुवरिं पडंत सुहुमस्स सुहुमवरं ।। २०३ ।।

सामायिकद्विकजघन्यमोघं अनिवृत्तिक्षपकचरमे ।
चरमानिवृत्तेरुपरि पततः सूक्ष्मस्य सूक्ष्मवरम् ।। २०३ ।।

खवगसुहुमस्स चरिमे वरं जहाखादमोघजेट्ठं तं ।
पडिवाददुगा सव्वे सामाइयछेदपडिबद्धा ।। २०४ ।।

क्षपकसूक्ष्मस्य चरमे वरं यथाख्यातमोघज्येष्ठं तत् ।
प्रतिपातद्विकं सर्वाणि सामायिकच्छेदप्रतिबद्धानि ।। २०४ ।।

सं० टी०—प्रतिपातप्रतिपद्यमानस्थानद्विकं यथासंख्यं पतच्चरसमये संयमग्रहणप्रथमसमये च भवति। अनुभयस्थानं तयोः प्रतिपातस्थानप्रतिपद्यमानस्थानयोर्मध्ये उपरितनगुणस्थानाभिमुखे च भवति। एतत्सर्वं यथा देशसंयमे सविस्तरं प्रतिपादितं तथात्रापि ग्राह्यम्। प्रतिपातादित्रितयं स्वस्वजघन्यस्थानात् स्वस्वोत्कृष्टस्थानपर्यन्तमुपर्युपर्यसंख्यातलोकगुणितक्रमाण्यन्तरेषु षट्स्वपि प्रत्येकमसंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानानि देशसंयमवज्ज्ञातव्यानि। तत्र प्रतिपातस्थानेषु मिथ्यात्वासंयमदेशसंयमाभिमुखभेदभिन्नेषु जघन्यानि तीव्रसंक्लिष्टस्य चरमसमये भवन्ति। उत्कृष्टानि तत्प्रायोग्यमन्दसंक्लिष्टस्य भवन्ति। तथा प्रतिपद्यमानजघन्यस्थानद्वयमार्यम्लेच्छस्वामिकं मिथ्यादृष्टिचरस्य भवति, तदुत्कृष्टस्थानयुगलमपि देशसंयतचरस्य भवति प्रतिपद्यमानस्थानानामुपर्यनुभयस्थानानि सामायिकच्छेदोपस्थापनसंयमद्वयसंबन्धीनि भवन्ति। तत्संयमद्वयस्य जघन्योत्कृष्टस्थानयोर्द्वयोर्मध्ये परिहारविशुद्धिसंयमस्थानानि भवन्ति। परिहारविशुद्धिसंयमस्य जघन्यस्थानं संक्लेशवशात्सामायिकछेदोपस्थापनद्वये पतिष्यतस्तच्चरमसमये भवति। तस्य परिहारविशुद्धिसंयमस्योत्कृष्टस्थानं स्वस्मिन्नेव सर्वविशुद्धस्याप्रमत्तस्यैकान्तवृद्धिचरमसमये भवति। सामायिकच्छेदोपस्थापनद्वयस्य मिथ्यात्वाभिमुखं जघन्यस्थानमोघजघन्यस्थानं सर्वसंयमसामान्यजघन्यस्थानं भवतीत्यर्थः। तयोरुत्कृष्टस्थानमनिवृत्तिकरणक्षपकचरमसमये भवति। सूक्ष्मसाम्परायसंयमस्य जघन्यस्थानमुपशमश्रेण्यामवरोहणेऽनिवृत्तकरणस्योपरि पतिष्यतः सूक्ष्मसाम्परायोपशमकस्य चरमसमये भवति। तस्योत्कृष्टस्थानं क्षीणकषायगुणस्थानाभिमुखस्य सूक्ष्मसाम्परायक्षपकस्य चरमसमये भवति। यथाख्यातचारित्रं सर्वसंयमसामान्योत्कृष्टं तस्य जघन्यादिविकल्पाभावात्। प्रतिपातप्रतिपद्यमानस्थानानि सर्वाण्यपि सामायिकछेदोपस्थापनसंयमद्वयप्रतिबद्धान्येव नेतरसंयमसंबन्धीनि अनुभयस्थानानि पुनः सामायिकादिसर्वसंयमसंबन्धीनि संभवति। मिथ्यादृष्टयसंयतदेशसंयतानां सकलसंयमग्रहणकाले सामायिकछेदोपस्थापनसंयमयोरेव प्रथमतः प्रतिपत्तिनियमात्। संयमसामान्यापेक्षया प्रतिपद्यमानस्थानानि संयमग्रहणप्रथमसमयवर्तीनि सामायिकछेदोपस्थापनप्रतिबद्धान्येव। तथा सामायिकछेदोपस्थापनसंयमाभ्यां प्रच्यवमानस्यैव मिथ्यात्वासंयमदेशसंयमेषु प्रतिपातः संभवति, न परिहारविशुद्धयादिसंयमेभ्यः प्रच्यवमानस्य तत्प्रतिपातः परिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्परायसंयमाभ्यां प्रच्यवमानस्य सामायिकद्विके यथाख्यातचारित्रात्प्रच्यवमानस्य सूक्ष्मसाम्परायसंयमेपि च प्रतिपातस्य सिद्धान्ते प्रतिपादितत्वात्।

ननु भवक्षयादुपशमश्रेण्यां मृतस्य सूक्ष्मसाम्पराययथाख्यातचारित्रयोर्देवासंयते प्रतिपातोऽस्ति, अतः कथमसंयतप्रतिपाताभावः? इति चेत् वयमिमे ब्रूमहे—संयमघातिकषायोदयवशोत्पन्नसंक्लेशवशेन गुणस्थानाद्वा क्षयेण वाधस्तनगुणस्थानेषु प्रतिपातस्यात्र विवक्षितत्वात्। भवक्षयहेतुकः प्रतिपातः पुनरत्राविवक्षितः। तत्प्रतिपातविवक्षायां पुनर्देवासंयमाभिमुखतैव, न मिथ्यात्वदेशसंयमाभिमुखता, बद्धदेवायुष एव सकलसंयमिनः संयमकाले मृतस्य देवगतिं मुक्त्वान्यत्र गतावनुत्पादात्। देवगतौ च मिथ्यादृष्टिष्वनुत्पादात् देशसंयमस्य तत्राभावाच्च। तदेवं सामायिकादिपञ्चप्रकारसकलसंयमलब्धिस्वरूपं प्रासङ्गिकं मुख्यतस्तु प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानवर्तिक्षायोपशमिकसकलसंयमलब्धिस्वरूपं च सविस्तरं प्ररूपितम्॥ १९९–२०४॥

उन परिणाम आदि स्थानोंका विशेष कथन—

सं० चं०—संयमतैं पडतैं अंत समयविषैं अर संयमकौं ग्रहतैं प्रथम समयविषैं क्रमतैं प्रतिपात अर प्रतिपद्यमान ए दोय स्थान हैं। बहुरि इनके बीचि वा ऊपरिके गुणस्थानकौं सन्मुख होतै अनुभय स्थान हो है सो देश संयतवत् इहां भी जानना॥ १९८॥

सं० चं०—प्रतिपात आदि तीन प्रकार स्थान अपने अपने जघन्यतैं उत्कृष्ट पर्यंत उपरि उपरि असंख्यातलोक गुणा क्रम लीएं हैं। तिनके छहौ विषैं प्रत्येक असंख्यात लोकमात्र वार षट्स्थानवृद्धि देशसंयतवत् जाननी॥ १९९॥

सं० चं०—तहां प्रतिपातस्थान मिथ्यात्व असंयत देशसंयतकौं सन्मुख होनेकी अपेक्षा तीन भेद लीए है। तहां जघन्य स्थान तौ तीव्र संक्लेशवालाकैं संयमका अंत समयविषैं हो है अर उत्कृष्ट स्थान यथायोग्य मदंसंक्लेशवालेकैं हो है ॥ २०० ॥

सं० चं०—प्रतिपाद्यमानस्थ न आर्य म्लेच्छकी अपेक्षा दोय प्रकार, सो तिनका जघन्य तौ मिथ्यादृष्टितैं संयमी भया ताकैं हो है। उत्कृष्ट देशसंयततैं संयमी भया ताकैं हो है। तिनके ऊपरि अनुभय स्थान हैं ते सामायिक छेदोपस्थापनासंबंधी हैं। तिनिका जघन्य उत्कृष्टके बीचि परिहारविशुद्धिके स्थान हैं॥ २०१ ॥

सं० चं०—परिहारविशुद्धिका जघन्य स्थान तौ सामायिक छेदोपस्थापनाविषैं पडता जीवकैं ताका अंत समयविषैं हो है। अर ताका उत्कृष्ट स्थान सर्वतैं विशुद्ध अप्रमत्त गुण स्थानवर्ती तिस ही जीवकै एकांत वृद्धिका अंत समयविषैं हो है ॥ २०२ ॥

सं० चं०—सामायिक छेदोपस्थापनाका•जघन्य स्थान मिथ्यात्वकौं सन्मुख जीवकैं संयमका अंतसमयविषैं हो है बहुरि जो जघन्य संयमका स्थान सो ही है। ताका उत्कृष्ट स्थान अनिवृत्तिकरण क्षपकश्रेणिवाला ताका अंत समयविषैं हो है। बहुरि उपशमश्रेणिविषैं पड़तैं सूक्ष्मसाम्परायका अन्त समयविषैं अनिवृत्तिकरणकौं सन्मुख होतै सूक्ष्मसांपरायका अंतसमयविषै जघन्य स्थान हो है ॥ २०३ ॥

सं० चं०—क्षपक सूक्ष्मसांपरायका क्षीणकषायके सन्मुख भया ताका अंत समयविषैं सूक्ष्मसांपरायका उत्कृष्ट स्थान हो है। बहुरि यथाख्यात चारित्र सर्व सामान्य चारित्रका उत्कृष्ट स्थान अभेद रूप है। बहुरि प्रतिपात प्रतिपद्यमानके जे स्थान कहे ते सर्व ही सामायिक छेदोपस्थापनसंबंधी ही जानने। जातैं सकल संयमतैं भ्रष्ट होतैं अंत समयविषैं अर सकल संयमकौं ग्रहतैं प्रथम समयविषैं सामायिक छेदोपस्थापन संयम ही हो है। अन्य परिहार विशुद्धि आदि न हो है। इहां कोऊ कहै—

उपशमश्रेणिविषैं मरणकी अपेक्षा सूक्ष्मसांपराय यथाख्याततैं पडि देव पर्याय संबंधी असंयतविषैं पडना हो है तहां प्रतिपातका अभाव कैसैं कहिए ? ताका समाधान—यहां संयमका घात कषायनिके उदयतैं वा गुणस्थानके कालका क्षय होनेतैं जो पडना होइ ताहीकी विवक्षा है। पर्याय नाशतैं पडना होइ ताकी विवक्षा नाहीं। जो यहु विवक्षा होइ तौ ताका प्रतिपातविषैं देवसंबंधी असंयतहीके सन्मुखपना संभवै है, जातैं सकल संयमहीविषैं जो मूवा ताकैं अन्य गति वा मिथ्यात्व देश संयतपना संभवं नाहीं है। ऐसैं प्रसंग पाइ सामायिक आदि पंचप्रकार सकलचारित्रके स्थान कहे। मुख्यपने प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानविषै संभवता जो क्षायोपशमिक सकल चारित्र ताका प्ररूपण कीया ॥ २०४ ॥

विशेष—यहाँ छह अन्तरोंका निर्देश इस प्रकार किया है—प्रतिपातमान संयमके जघन्यलब्धिस्थानके पूर्व पहला अन्तर होता है। सर्वसंक्लेशरूप परिणाम होनेसे यह मिथ्यात्वको प्राप्त होता है। तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणाम होनेसे संयतके उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान होता है। यह भी मिथ्यात्वगुणस्थानमें गिरता है। इसके बाद दूसरा अन्तर प्राप्त होता है। इसी प्रकार जो संयत गिरकर असंयतगुणस्थानको प्राप्त होता है उसके ऐसा होनेपर तीसरा अन्तर प्राप्त होता है। इसी प्रकार जो संयत गिरकर संयमासंयमको प्राप्त होता हैं उसके ऐसा होनेपर चौथा अन्तर

प्राप्त होता है। इसीप्रकार जो कर्मभूमिज मनुष्य देशसंयमसे संयमको प्राप्त करता है उसके ऐसा होने पर पाँचवां अन्तर प्राप्त होता है। तथा सामायिक-छेदोपस्थापना संयम और अनिवृत्तिकरणके अभिमुख हुए सूक्ष्मसाम्पराय संयतके मध्य छठा अन्तर प्राप्त होता है। यह छह अन्तरोंका विधान है। इस सम्बन्धमें अन्य सब विशेषताओंको संस्कृत और हिन्दी टीकासे जान लेना चाहिये। वहाँ अन्य सब विशेषताओंका स्पष्ट निर्देश किया ही है। जो प्रतिपातको प्राप्त हुआ उपसमश्रेणीवाला जीव मरकर अविरतसम्यक्त्व गुणस्थानको प्राप्त होता है उसको यहाँ नहीं लिया गया है इतना यहाँ विशेष जानना चाहिये।

इति क्षायोपशमिकसकलचारित्रप्ररूपणं समाप्तं ॥

अथ चारित्रोपशमनाधिकारः ॥ ४ ॥

अथ चारित्रमोहोपशमनं परममंगलपूर्वकं प्रतिजानीते—

उवसमियसकलः (?) उपशमितसकलदोषानुपशान्तकषायवीतरागान्तानुपशमकान् प्रणम्य कषायोपशमनं वक्ष्यामीति । अथ चारित्रमोहोपशमनाभिमुखस्य स्वरूपमाह—

उवसमचरियाहि[illegible]हा वे[illegible]गसम्मा अणं विजोयित्ता ।
अंतोमु[illegible]त्तकालं अधापवत्तोऽपमत्तो य ॥ २०५ ॥

उपशमचरित्राभिमुखो वेदकसम्यक् अनं वियोज्य ।
अन्तर्मुहूर्तकालं अधाप्रवृत्तोऽप्रमत्तश्च ॥ २०५ ॥

सं० टी०—उपशमचारित्राभिमुखो वेदकसम्यग्दृष्टिर्जीवः प्रथममनन्तानुबन्धिचतुष्टयं प्रागुक्तविधिना विसंयोज्यान्तर्मुहूर्तकालपर्यन्तमथाप्रवृत्ताप्रमत्ताभिधानः स्वस्थानाप्रमत्तः प्रमत्ताप्रमत्तपरावृत्तिसहस्राणि कुर्वन् विश्राम्यति । ततः परं दर्शनमोहत्रयं क्षपयित्वा क्षायिकसम्यग्दृष्टिः सन् कश्चिज्जीवश्चारित्रमोहमुपशमयितु प्रारभते । तस्य दर्शनमोहक्षपणा विधिना प्रागुक्तेनेति नेह पुनरुच्यते । यः पुनर्द्वितीयोपशमसम्यक्त्वेनोपशमश्रेणिमारोहति तस्य दर्शनमोहोपशमविधानप्रतिपादनार्थमिदमाह ॥ २०५ ॥

अब उपशमचारित्रका विधान करते हैं—

अथ उपशान्त कीएं हैं सकल दोष जिनि ऐसे उपशान्त कषाय वीतराग तिनहि प्रणाम करि उपशम चारित्रका विधान कहिए है—

सं० चं०—उपशमचारित्रके सन्मुख भया वेदक सम्यग्दृष्टि जीव सो पहिलें पूर्वोक्त विधानतैं अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करि अन्तर्मुहूर्तकाल पर्यन्त अधःप्रवृत्त अप्रमत्त कहिए स्वस्थान अप्रमत्त हो है । तहाँ प्रमत्त अप्रमत्तविषैं हजारोंवार गमनागमन करि पीछैं अप्रमत्तविषैं विश्राम करै है । तहाँ पीछैं कोई जीव तीन दर्शन मोहकौं खिपाइ क्षायिक सम्यग्दृष्टी होइ चारित्र मोहके उपशमनका प्रारम्भ करै ताकैं तौ क्षायिक सम्यक्त्व होनेका विधान पूर्वैं कह्या है सो जानना । बहुरि कोई जीव द्वितीयोपशम सम्यक्त्व सहित उपशम श्रेणि चढ़ै ताके दर्शनमोहके उपशमनका विधान कहिए है ॥ २०५ ॥

तत्तो तियरणविहिणा दंसणमोहं समं खु उवसमदि ।
सम्मत्तुप्पत्तिं वा अण्णं च [illegible]णसेढिकरणविही ॥ २०६ ॥

ततः [illegible]त्रक[illegible]विना दर्शनमोहं समं खलु उपशमयति ।
सम्यक्त्वोत्प[illegible]मिव अन्यं च गुणश्रेणिकरणविधिः ॥ २०६ ॥

सं० टी०—ततः स्वस्थानाप्रमत्तोऽन्तर्मुहूर्तमात्रं विश्रम्य पुनर्विशुद्धिमापूरयन् करणत्रयं विधाय दर्शनमोहं युगपदेवोपशमयति । तत्रापूर्वकरणप्रथमसमयादारम्य स्थित्यनुभागकाण्डकघातो गुणश्रेणिनिर्जरा च गुणसंक्रमणं विना अन्यत्सर्वं विधानकं प्रथमोपशमसम्यक्त्वोत्पत्तौ यथा प्ररूपितं तथात्रापि द्रष्टव्यम् । अनन्तानुबन्धिविसंयोजनेऽपि पूर्ववदेव स्थितिखण्डनादिविधानं ज्ञातव्यम् ॥ २०६ ॥

स्वस्थान अप्रमत्तके कार्यविशेषका निरूपण—

सं० चं०—स्वस्थान अप्रमत्तविषैं अन्तर्मुहूर्त विश्रामकरि तहाँ पीछें तीन करणविधिकरि युगपत् दर्शनमोहकौं उपशमावे है। तहाँ अपूर्वकरणका प्रथम समयतैं लगाय प्रथमोपशम सम्यक्त्व-वत् गुणसंक्रमण विना अन्य स्थिति अनुभागकाण्डकका घात वा गुणश्रेणिनिर्जरा आदि सर्व-विधान जानना। अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन याकै हो है ताविषैं भी सर्वस्थिति खण्डनादि पूर्वोक्तवत् जानना ॥ २०६ ॥

उक्तार्थमनूद्य तद्विशेषणार्थमिदमाह—

दंसणमोहुवसमणं तक्खवणं वा हु होदि णवरिं तु ।
गुणसंकमो ण विज्जदि विज्झाद वाधापवत्तं[1] च ॥ २०७ ॥

दर्शनमोहोपशमनं तत्क्षपणं वा हि भवति नवरि तु ।
गुणसंक्रमो न विद्यते विध्यातं वा अधःप्रवृत्तं च ॥ २०७ ॥

सं० टी०—चारित्रमोहोपशमाभिमुखस्य दर्शनमोहोपशमनं वा तत्क्षपणं वा भवति नियमाभावात्। अयं तु विशेषः—दर्शनमोहोपशमनविधाने गुणसंक्रमो नास्ति, केवलं विध्यातसंक्रमो वा अथाप्रवृत्तसंक्रमः वा संभवति ॥ २०७ ॥

उपशमश्रेणिपर चढ़नेकी योग्यताका निर्देश—

सं० चं०—चारित्रमोहके उपशमावनेकौं सन्मुख भया जीवकैं दर्शनमोहका उपशम होइ वा ताकी क्षपणा होइ। तहां उपशमविधानविषैं केवल गुणसंक्रमण नाही है। विध्यात संक्रमण है सो विशेष आगे कहेंगे ॥ २०७ ॥

विशेष—क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव या द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि जीव चारित्रमोहनीयकी उपशमना करनेके सन्मुख होता है। क्षायिक सम्यग्दर्शनके उत्पन्न होनेका विधान पहले ही कर आये हैं। द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिका निर्देश यहाँ किया जा रहा है। प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि या वेदक सम्यग्दृष्टि जीव उपशम श्रेणिपर नहीं चढ़ते। जो वेदक सम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणिपर आरोहण करता है वह पहले अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना कर अनन्तर दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृत्तियोंका उपशम करनेके बाद ही उपशमश्रेणिपर चढ़नेका अधिकारी होता है। इस जीवके दर्शनमोहनीयकी उपशमना करते समय गुणसंक्रम नहीं होता। उसके स्थानपर विध्यातसंक्रम और यथासम्भव अधःप्रवृत्तसंक्रम होते हैं। अधःप्रवृत्तसंक्रम अप्रशस्त-कर्मोंका होता है। विशेष व्याख्यान आगे किया ही है।

तत्र तदानींतनस्थितिसत्त्वविशेषनिर्ज्ञानार्थमिदमाह—

ठिदिसत्तमपुव्वदुगे संखगुणूणं तु पढमदो चरिमं[2] ।
उवसामण अणियट्टीसंखाभागासु तीदासु ॥ २०८ ॥

१. णवरि एत्थ गुणसंकमो णत्थि विज्झदो चेव, अप्पसत्थकम्माणं अधापवत्तो वा। धवला० पु० ६, पृ० २८९।

२. अपुव्वकरणस्स पढमसमये ट्ठिदिसंतकम्मं तं चरिमसमए संखेज्जगुणहीणं। कसाय० चू०, जयध०

स्थितिसत्त्वमपूर्वद्विके संख्यगुणोनं तु प्रथमतः चरमम् ।
उपशामनमनिवृत्तिसंख्यभागेष्वतीतेषु ॥ २०८ ॥

सं० टी०—अपूर्वकरणस्य प्रथमसमयकर्मस्थितिसत्त्वात्काण्डकघातमाहात्म्येन तच्चरमसमये कर्मस्थितिसत्त्वं संख्यातगुणहीनं भवति । एवमनिवृत्तिकरणेऽपि स्थितिसत्त्वं ज्ञातव्यम् ॥ २०८ ॥

उस समय स्थितिसत्त्व विशेषका विचार—

सं० चं०—अपूर्वकरण वा अनिवृत्तिकरणका प्रथम समयसम्बन्धी स्थिति सत्त्वतैं अन्तसमयविषैं स्थितिसत्त्व है सो काण्डक घात करनेतैं संख्यातगुणा घाटि हो है ॥ २०८ ॥

विशेष—अपूर्वकरके प्रथम समयमें जो स्थितिसत्त्व होता है। उसमेंसे हजारों स्थितिकाण्डकोंका घात होनेसे उसके अन्तमें संख्यातगुणाहीन स्थितिसत्त्व शेष रहता है। इसी प्रकार अनिवृत्तिकरणके प्रथमसमयमें जो स्थितिसत्त्व शेष रहता है उसमेंसे हजारों स्थितिकाण्डकका घात होनेसे उसके अन्तमें संख्यातगुणाहीन स्थितिसत्त्व शेष रहता है। तथा यह जीव अनिवृत्तिकरणके कालमेंसे संख्यात बहुभागको व्यतीत करके जब उसका एकभाग शेष रहता है तब दर्शनमोहनीयत्रिककी उपशामनाका कार्य प्रारम्भ करता है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि अपूर्वकरणके प्रथमसमयसे ही गुणश्रेणि रचना, स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात ये कार्य प्रारम्भ हो जाते हैं। यहाँ गुणश्रेणिका आयाम अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके कालसे कुछ अधिक होता है। और वह गलितशेष होती है।

अथानिवृत्तिकरणकालस्य संख्येयबहुभागेषु गतेषु अवशिष्टैकभागे विधीयमानं क्रियान्तरं प्रदर्शयितुमिदमाह—

सम्मस्स असंखेज्जा समयपबद्धाणुदीरणा होदि ।
तत्तो मुहुत्तअंते दंसणमोहंतरं कुणइ ॥ २०९ ॥

सम्यस्य असंख्येयानां समयप्रबद्धानामुदीरणा भवति ।
ततो मुहूर्तान्तः दर्शनमोहान्तरं करोति ॥ २०९ ॥

सं० टी०—अपूर्वकरणप्रथमसमय आरब्धा या गुणश्रेणिः साधिकापूर्वानिवृत्तिकरणकालायामा गलितावशेषप्रमाणानिवृत्तिकरणकालबहुभागपर्यन्तं प्रवर्तते । तत्रापकृष्टद्रव्यस्य पल्यासंख्यातभागखण्डितस्य बहुभागद्रव्यमुपरितनस्थितौ निक्षिप्तं । तदेकभागस्य पुनरसंख्यातलोकखण्डितस्य बहुभागद्रव्यं गुणश्रेण्यायामे निक्षिप्तम् । तदेकभागद्रव्यमुदयावल्यां निक्षिप्तम् । एवं निक्षिप्ते उदये समयप्रबद्धस्यासंख्यातैकभागमात्रमेव द्रव्यं पतति । इदानीं पुनरनिवृत्तिकरणकालसंख्यातैकभागमात्रेऽवशिष्टे सम्यक्त्वप्रकृतिद्रव्यादपकृष्टद्रव्यस्य पल्यासंख्यातभागखण्डितस्य बहुभागमुपरितनस्थितौ निक्षिप्य तदेकभागं पुनरपि पल्यासंख्यातभागेन खण्डयित्वा बहुभागं गुण-

---

पु० १३, पृ० २०४। अपुव्वकरणस्स पढमसमयट्ठिदिसंतकम्मादो तस्सेव चरिमसमयट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणहीणं। पढमसमयअणियट्टिकरणस्स ट्ठिदिसंतकम्मादो चरिमसमयट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणहीणं।
धवला० पु० ६, पृ० २८९।

१. दंसणमोहणीयउवसामणा-अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु सम्मत्तस्स असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा। तदो अंतोमुहुत्तेण दंसणमोहणीयस्स अंतरं करेदि। कसाय० चू०, पु० १३, पृ० २०५।

श्रेण्यायामे निक्षिप्य तदेकभागं पुनरुदयावल्यां निक्षिपति। अतः कारणात्सम्यक्त्वप्रकृतिद्रव्यस्यासंख्येयाः समयप्रबद्धा उदयनिषेके निक्षिप्योदीर्यन्ते। पल्यस्य भागहारभूतासंख्येयरूपबाहुल्यमाहात्म्यात् यत्रासंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणाकरणं कथ्यते तत्र पल्यासंख्यातभाग एवापकृष्टद्रव्यस्य भागहारो नासंख्यातलोक इति वचनात्। अतः परमन्तर्मुहूर्तकाले गते दर्शमोहस्यान्तरं करोति ॥ २०९ ॥

अपूर्वकरण आदिमें कार्यविशेषका निर्देश—

बहुरि अनिवृत्तिकरण कालकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग व्यतीत भएं अवशेष एकभाग रहै है तहां कार्य हो है सो कहैं है—

सं० चं०—अपूर्वकरणका प्रथम समयविषैं जो साधिक अपूर्व अनिवृत्तिका कालमात्र आयाम धरें गलितावशेष गुणश्रेणिका आरम्भ कीया था सो अनिवृत्तिकरणका बहुभाग पर्यन्त प्रवर्तै है। तहां अपकर्षण कीया द्रव्यकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ बहुभाग उपरितन स्थितिविषैं दीजिए है। अवशेष एक भागकौं असंख्यातलोकका भाग देइ बहुभाग गुणश्रेणि आयामविषैं एकभाग उदयावलीविषैं दीजिए है। सो इहां उदयावलीविषैं दीया द्रव्य समयप्रबद्धके असंख्यातवें भागमात्र आवै है। अनिवृत्तिकरणकालका संख्यातवाँ भाग अवशेष रहैं सम्यक्त्व-मोहनीका द्रव्यकौं अपकर्षण करि याकौं पल्यका असंख्यातवाँ भागका भाग देइ बहुभाग उपरितन स्थितिविषैं देना। अवशेष एक भागकौं पल्यका असंख्यातवाँ भागका भाग देइ तहां बहुभाग गुणश्रेणि आयामविषैं दीजिए है। एकभाग उदयावलीविषैं दीजिए है। सो इहां उदयावलीविषैं दीया जो उदीरणा द्रव्य सो असंख्यात समयप्रबद्ध प्रमाण आवे हैं जातैं ऐसा कह्या है जहाँ असंख्यात समयप्रबद्धकी उदीरणा होइ तहां भागहार पल्यका असंख्यातवाँ भागमात्र है। असंख्यात लोकप्रमाण नाही है। बहुरि यातैं परें अन्तर्मुहूर्तकाल व्यतीत भएं दर्शनमोहका अन्तर करै है ॥ २०९ ॥

विशेष—जो दर्शनमोहनीयकी उपशमना कर रहा है उसके सम्यक्त्वके असंख्यात समय-प्रबद्धोंकी उदीरणा होती है। इस सम्बन्धमें चूर्णिसूत्रमें बतलाया है कि दर्शनमोहनीय उपशामना-सम्बन्धी अनिवृत्तिकरणकालके संख्यात बहुभाग जानेपर सम्यक्त्वके असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा होती है। जयधवलामें इस विषयपर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि पहले असंख्यात-लोकप्रमाण प्रतिभागके अनुसार सब कर्मोंकी उदीरणा होती थी, किन्तु इस स्थानपर परिणामोंके माहात्म्यवश सम्यक्त्वके असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा होने लगती है। इसी तथ्यको लब्धिसारकी टीकामें स्पष्ट किया गया है। बात यह है कि अपूर्वकरणके प्रथम समयसे जो गुणश्रेणि रचना होती है। वहाँ अपकर्षितद्रव्यमें पल्योपमके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर बहुभागप्रमाण द्रव्य गुणश्रेणिसे उपरितन स्थितियोंमें निक्षिप्त होता है। जो एकभाग शेष रहता है उसमें असंख्यातलोकप्रमाण समयोंका भाग देनेपर गुणश्रेणिआयाममें निक्षिप्त होता है। और शेष एकभाग उदयावलिमें निक्षिप्त होता है। इस प्रकार जबतक निक्षिप्त होता है तबतक उदयमें समयप्रबद्धका असंख्यात एकभागप्रमाणद्रव्य ही पतित होता है। किन्तु अनिवृत्तिकरणका संख्यातवाँ भागकाल शेष रहनेपर सम्यक्त्व प्रकृतिके अपकृष्टद्रव्यमें पल्योपमके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर बहुभागप्रमाणद्रव्य उपरितन स्थितियोंमें निक्षिप्त होता है। अवशिष्ट रहे एकभागमें पल्योपमके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर बहुभागप्रमाणद्रव्य गुणश्रेणि-आयाममें

निक्षिप्त होता है तथा शेष शेष एकभागप्रमाणद्रव्य उदयावलिमें निक्षिप्त होता है। इस कारण सम्यक्त्वप्रकृतिकी उदयस्थितिमें असंख्यातसमयप्रबद्ध निक्षिप्त होकर उनकी उदीरणा होती है, क्योंकि यहाँ भागहार अल्प है, इसलिए प्रति समय इतने द्रव्यकी उदीरणा होने लगती है। इसके अन्तर्मुहूर्तके बाद अन्तरकरण क्रिया सम्पन्न होती है।

अथान्तरकरणप्रदर्शनार्थमाह—

अंतोमुहुत्तमेत्तं आवलिमेत्तं च सम्मतियठाणं।
मोत्तूण य पढमट्ठिदिं दंसणमोहंतरं कुणइ[1] ॥ २१० ॥

अन्तर्मुहूर्तमात्रं आवलिमात्रं च सम्यक्त्वत्रयस्थानम्।
मुक्त्वा च प्रथमस्थितिं दर्शनमोहान्तरं करोति ॥ २१० ॥

सं० टी०—उदयावल्याः सम्यक्त्वप्रकृतेरन्तर्मुहूर्तमात्रीमनुदययोरितरयोर्मिथ्यात्वमिश्रप्रकृत्योश्च आवलीमात्रीं प्रथमस्थितिं मुक्त्वा उपर्यन्तर्मुहूर्तनिषेकाणामन्तरभावमन्तर्मुहूर्तेन कालेन करोति। सम्यक्त्वप्रकृतेर्गुणश्रेणिशीर्षं ततः संख्यातगुणितानुपरितनस्थितिनिषेकांश्च गृहीत्वा अन्तरं करोति, मिथ्यात्वमिश्रयोर्गलितावशेषगुणश्रेण्यायामं सर्वं, ततः संख्यातगुणितानुपरितनस्थितिनिषेकांश्च गृहीत्वा अन्तरं करोतीत्यर्थः। उपरि तिसृणां प्रकृतीनां द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकाः सदृशा एव। अधःप्रथमस्थित्यग्रनिषेकाः विसदृशा इति ग्राह्यम् ॥ २१० ॥

अन्तरकरणके विषयमें विशेष निर्देश—

सं० चं०—नीचेके वा ऊपरिके निषेक छोडि बीचिके केते इक निषेकनिका द्रव्यकौ अन्य निषेकनिविषैं निक्षेपण करि तिनि निषेकनिका अभाव करना सो अंतर करना कहिए है सो जाका उदय पाइए ऐसी जो सम्यक्त्व मोहनी ताकी तौ अंतर्मुहूर्तमात्र अर उदय रहित मिश्र वा मिथ्यात्व तिनिकी आवलीमात्र जो प्रथम स्थिति तीहिं प्रमाण नीचें निषेकनिकौं छोडि ताके ऊपरि जे अंतर्मुहूर्त कालप्रमाण निषेक तिनिका अंतर कहिए अभाव करै है तहां सम्यक्त्वमोहनीका अनिवृत्तिकरण कालका संख्यातवां भागमात्र गुणश्रेणिशीर्ष अर तातैं संख्यातगुणे उपरिवर्ती उपरितन स्थितिके निषेक तिनिका अंतर करै है। अर मिथ्यात्व-मिश्रमोहनीका गले पीछे अवशेष रह्या जो सर्व गुणश्रेणी आयाम अर तातैं संख्यातगुणे उपरितन स्थितिके निषेक तिनका अंतर करै है। सो जितने निषेकनिका अंतर कीया ताके प्रमाणका नाम अंतरायाम है। तिस अंतरायामके नीचैं जे निषेक छोडे तिस प्रमाण प्रथम स्थिति है अर अंतरायामके उपरिवर्ती जे निषेक तिसका नाम द्वितीय स्थिति है। तहां द्वितीय स्थितिके प्रथम निषेक तौ तीनों ही प्रकृतिनिके समान हैं जातैं सो प्रथम निषेक अंतरायामके अनंतरि पाइए। अर प्रथम स्थितिका अंत निषेक समान नाहीं है जातैं प्रथम स्थितिका प्रमाण हीनाधिक है ॥ २१० ॥

१. एत्थ सम्मत्तस्स पढमट्ठिदिमंतोमुहुत्तमेत्तं ठवेयूण सेसाणमुदयावलिपमाणं मोत्तूणंतरं करेदि त्ति वत्तव्वं। जयध० पु० १३, पृ० २०५।

अथान्तरद्रव्यस्य निक्षेपप्रकारप्रदर्शनार्थं गाथाचतुष्टयमाह—

सम्मत्तपयडिपढमट्ठिदिम्मि संछुहदि दंसणतियाणं ।
उक्कीरयं तु दव्वं बंधाभावादु मिच्छस्स[1] ॥ २११ ॥

सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितौ संपातयति दर्शनत्रयाणाम् ।
उत्कीर्णं तु द्रव्यं बन्धाभावात् मिथ्यस्य ॥ २११ ॥

सं० टी०—दर्शनमोहत्रयस्यान्तरे उत्कीर्णं द्रव्यमुदयवत्याः सम्यक्त्वप्रकृतेः प्रथमस्थितावेव निक्षिपति न द्वितीयस्थितौ यत्र नूतनबन्धोऽस्ति तत्र उत्कृष्य द्वितीयस्थितावपि निक्षिपति । अत्र पुनरप्रमत्तगुणस्थाने दर्शनमोहस्य बन्धाभावात् द्वितीयस्थितौ न निक्षिपतीत्यर्थः ॥ २११ ॥

अपकर्षित द्रव्यकी निक्षेपण विधिका विचार—

सं० चं०—तहां जिनि निषेकनिका अभाव कीजिए है तिन तीनों दर्शनमोहकी प्रकृतिके निषेकनिके द्रव्यकौं उदयरूप जो सम्यक्त्वमोहनी ताकी प्रथम स्थितिविषै ही निक्षेपण करै है। जातैं जहां नवीन बंध हो है तहां उत्कर्षण करि द्वितीय स्थितिविषैं भी निक्षेपण हो है। सो इहां सातवें गुणस्थानविषै दर्शनमोहका बंध है नाहीं, तातै द्वितीय स्थितिविषै निक्षेपण नाही करै है ॥ २११ ॥

विदियट्ठिदिस्स दव्वं ओक्कड्डिय देदि सम्मपढम्ममि ।
विदियट्ठिदिम्हि तस्स अणुक्कीरिज्जंतमाणम्हि[2] ॥ २१२ ॥

द्वितीयस्थितेर्द्रव्यमपकर्ष्य ददाति सम्यक्त्वप्रथमे ।
द्वितीयस्थितौ तस्यानुत्कीर्यमाणे ॥ २१२ ॥

सं० टी०—गुणश्रेणिनिर्जरार्थमुदयावलिबाह्यप्रथमसमयादारम्य सर्वत्रापकृष्टद्रव्यं पल्यासंख्यातभागेन खण्डयित्वा बहुभागमन्तरायामं मुक्त्वा स्वस्वोपरितनद्वितीयस्थितौ निक्षिप्य शेषैकभागं पल्यासंख्यातैकभागेन खण्डयित्वा बहुभागं सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितौ गुणश्रेण्यायामे निक्षिप्य तदेकभागमुदयावल्यां निक्षिपति । एवमन्तरस्य द्वितीयादिफालिद्रव्यं दर्शनमोहत्रयसम्बन्धि प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेण गृहीत्वा सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितावेव निक्षिपति । अन्तरे उपरि चापकृष्टद्रव्यमपि प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेण गृहीत्वा सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितौ अन्तरस्योपरिस्वस्वद्वितीयस्थितौ चाग्रेऽतिस्थापनावलिं मुक्त्वा निक्षिपति ॥ २१२ ॥

निक्षेपण विधिका विशेष विचार—

सं० चं०—इहाँ अन्तरकरणकालके प्रथमादि समयनिविषैं गुणश्रेणि निर्जराके अर्थि

१. अंतरट्ठिदीसु उक्कीरज्जमाणं पदेसग्गं बंधाभावेणविदियट्ठिदीए ण संछुहदि, सव्वमाणेदूण सम्मत्तस्स पढमट्ठिदीए णिक्खिवदि ।

२. सम्मत्तस्स विदियट्ठिदिपदेसग्गमोकड्डियूण अप्पणो पढमट्ठिदीए गुणसेढिसरूवेण णिक्खिवदि । एवं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पि विदियट्ठिदिपदेसग्गमोकड्डियूण सम्मत्तपढमट्ठिदिम्मि गुणसेढीए णिक्खिवदि । सत्थाणे वि अधिच्छावणावलियं मोत्तूण समयाविरोहेण णिक्खिवदि । अप्पणो अंतरट्ठिदीसु ण णिक्खिवदि । जयध०, पु० १३, पृ० २०६ ।

उदयावलीतैं बाह्य निषेकनिका अपकर्षण कीया जो द्रव्य ताकौं पल्यका असंख्यातवाँ भागका भाग देइ बहुभाग तौ अन्तरायामकौं छांडि ताके उपरिवर्ती जो उपरितन द्वितीय स्थिति ताविषैं निक्षेपण करि अवशेष एक भागकौं पल्यका असंख्यातवाँ भागका भाग देइ बहुभागकौं सम्यक्त्वमोहनीकी प्रथम स्थितिरूप इहाँ गुणश्रेणि आयाम ताविषैं निक्षेपण करै है। अवशेष एकभाग उदयावली-विषैं निक्षेपण करै है। ऐसैं अन्तर करनेका कालका प्रथम समयविषैं फालिद्रव्यका अर अपकृष्ट द्रव्यका निक्षेपण करिए है। तहाँ जिन निषेकनिका अन्तर कीजिए है तिनका द्रव्य अन्य निषेक-निविषैं अन्तर करनेका काल अन्तर्मुहूर्त है ताकरि निक्षेपण करिए है। तहाँ तिनिका द्रव्य तिस कालके प्रथम समयविषैं जेता निक्षेपण कीजिए सो प्रथम फालिका द्रव्य, दूसरे समय जेता निक्षेपण करिए सो दूसरी फालिका द्रव्य ऐसैं क्रमतैं अन्तसमयविषैं अवशेष रह्या तिनका द्रव्यकौं निक्षेपण करिए है सो अन्तफालिका द्रव्य जानना। बहुरि जो गुणश्रेणिके अर्थि अपकर्षण कीया द्रव्य सो अपकृष्ट द्रव्य कहिए है। सो प्रथम समय सम्बन्धी फालिद्रव्य वा अपकृष्ट द्रव्यतैं द्वितीयादि समय सम्बन्धी फालिद्रव्यका वा अपकृष्ट द्रव्यका प्रमाण समय-प्रति असंख्यातगुणा है। ताके निक्षेपण करनेका विधान जैसैं प्रथम समयविषैं कह्या तैसैं ही जानना॥ २१२॥

विशेष—सम्यग्दृष्टिके मिथ्यात्वका बन्ध नहीं होता, इसलिये अन्तरसम्बन्धी स्थितियोंमें से उत्कीरण किये जानेवाले प्रदेशपुंजको द्वितीय स्थिति (अन्तरायामके ऊपरकी स्थिति)में निक्षिप्त न कर समस्त द्रव्यको सम्यक्त्वकी प्रथम स्थिति (अन्तरायामसे नीचेकी स्थिति)में निक्षिप्त करता है। तथा सम्यक्त्वकी दूसरी स्थितिके प्रदेशपुंजको अपकर्षित कर अपनी प्रथम स्थितिमें गुणश्रेणि-रूपसे निक्षिप्त करता है। इसी प्रकार मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भी द्वितीय स्थितिके प्रदेशपुंजको अपकर्षित कर सम्यक्त्वकी प्रथम स्थितिमें गुणश्रेणिरूपसे निक्षिप्त करता है। तथा अभिस्थापनावलिको छोड़कर आगमके अनुसार निक्षिप्त करता है, अपनी अन्तरसम्बन्धी स्थितियों-में निक्षिप्त नहीं करता यह उक्त गाथाका तात्पर्य है।

सम्मत्तपयडिपढमट्ठिदीसु सरिसाण मिच्छमिस्साणं।
ठिदिदव्वं सम्मस्स य सरिसणिसेयम्हि संकमदि[1]॥ २१३॥

सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितिषु सदृशानां मिथ्यमिश्राणाम्।
स्थितिद्रव्यं सम्यस्य च सदृशनिषेके संक्रामति॥ २१३॥

सं० टी०—मिथ्यात्वमिश्रयोरुदयावलिबाह्यान्तरायामे सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितिसदृशस्थितयो ये निषेकास्तानुत्कीर्य स्वसमानस्थितिषु सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितिनिषेकेष्वेव निक्षिपति न तेषां निक्षेपविभागो-ऽस्ति यदुपरिस्थितान्तरायामा निषेकाः फालिगताः सर्वेऽपि पूर्वोक्तविधानेनैव सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितौ गुण-श्रेण्यामुदयावल्यां च विभज्य निक्षिप्तीत्यर्थः॥ २१३॥

निक्षेपणके विषयमें विशेष खुलासा—

सं० चं०—मिथ्यात्व अर मिश्रमोहनीकी प्रथम स्थितिके ऊपरि जो अन्तरायामके निषेक सम्यक्त्वमोहनीकी प्रथम स्थितिके समानवर्ती पर्यन्त पाइए है तिनिका द्रव्यकौं अपने अपने

---

१. समत्तपढमट्ठिदीए सरिसं होदूणुदयावलिबाहिरे जं ट्ठिदं मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्तपदेसग्गं तं सम्मत्तस्सुवरि समट्ठिदीए संकामेदि। जयध० पु० १३, पृ० २०६।

समानवर्ती जे सम्यक्त्वमोहनीके निषेक तिनविषैही निक्षेपण करै हैं। तहाँ द्रव्य देनेका विधान नाहीं है। भावार्थ ऐसा—जो मिथ्यात्व मिश्रमोहनीकी प्रथम स्थिति तो आवलीमात्र है अर सम्यक्त्वमोहनीकी अन्तर्मुहूर्तमात्र है ताकौं छोडि ऊपरिके निषेकनिका अन्तर करिए है। तहाँ मिथ्यात्व मिश्रमोहनीकी प्रथम स्थितिके ऊपरि जो अन्तरायामका पहिला निषेक था ताका द्रव्यकौं सम्यक्त्वमोहनीकी प्रथम स्थितिविषै जो आवलीतैं ऊपरि पहिला निषेक है तीहिंविषै निक्षेपण कीया। ऐसैं ही ताके अन्तरायामके दूसरा निषेकका द्रव्यकौं सम्यक्त्वमोहनीकी प्रथम स्थितिविषैं आवलीतैं ऊपरि दूसरा निषेक है तीहिविषैं निक्षेपण कीया ऐसैं सम्यक्त्वमोहनीकी प्रथम स्थितिका अन्तनिषेकके समान जो मिथ्यात्व मिश्रके अन्तरायामका निषेक तीहिं पर्यन्त जे निषेक तिनिका निक्षेपण अपने सम्यक्त्वमोहनीकी प्रथम स्थितिके निषेकनिविषैं जानना तहाँ द्रव्य विभाग नाही है। बहुरि तिसके ऊपरि तीनों ही दर्शनमोहके अन्तरायामके निषेकनिका द्रव्य पूर्वोक्त प्रकार फालि रूपकरि सम्यक्त्वमोहनीकी प्रथम स्थितिविषैं गुणश्रेणिविषैं उदयावली-विषैं विभाग करि निक्षेपण करिए है॥ २१३॥

जावंतरस्स दुचरिमफालिं पावे इमो कमो ताव।
चरिमतिदंसणदव्वं छुहेदि सम्मस्स पढमम्हि[1]॥ २१४॥

यावदन्तरस्य द्विचरमफालिं प्राप्नोति अयं क्रमस्तावत्।
चरमत्रिदर्शनद्रव्यं क्षेपयति सम्यस्य प्रथमे॥ २१४॥

सं० टी०—एवं फालिद्रव्यस्यापकृष्टद्रव्यस्य च यावदन्तरद्विचरमफालिं प्राप्नोति तावदयमेव निक्षेपक्रमः। पुनर्दर्शनमोहत्रयस्य चरमफालिद्रव्यं तत्रापकृष्टद्रव्यं च सर्वं सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितावेव निक्षिपति न पूर्ववदपकृष्टबहुभागस्य द्वितीयस्थितौ निक्षेपः कर्तव्य इति भावः॥ २१४॥

फालिद्रव्योंकी निक्षेपण विधिका विचार—

सं० चं०—यावत् अन्तर[illegible] द्विचरम समयवर्ती जो अन्तकी द्विचरम फालि सो प्राप्त होइ तहाँ फालि द्रव्य अर अपकृष्ट द्रव्य ताके निक्षेपण करनेका यहु ही पूर्वोक्त अनुक्रम जानना। बहुरि अन्तरकरणकालका अन्त समयसम्बन्धी जो दर्शनमोहत्रिककी अन्तफालिका द्रव्य है सो अर तहाँ अपकृष्ट द्रव्य सो भी सर्व सम्यक्त्वमोहनीकी प्रथम स्थिति ही विषैं निक्षेपण करिए है। भावार्थ यहु—पूर्वे जैसैं अपकर्षण कीया द्रव्यविषैं बहुभाग उपरितन स्थितिविषैं देने कहे थे तैसैं इहां अपकर्षण कीया द्रव्यका बहुभाग द्वितीय स्थितिविषैं निक्षेपण न करना॥ २१४॥

अथ दर्शनमोहगुणश्रेण्यवसानकथनार्थमिदमाह—

विदियट्ठिदिस्स दव्वं पढमट्ठिदिमेदि जाव आवलिया।
पडिआवलिया चिट्ठदि सम्मत्तादिमठिदी ताव[2]॥ २१५॥

---

१. जाव अंतरदुचरिमफाली ताव एसो चेव कमो। चरिमफालीए णिवदमाणाए जहा पुव्वं मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणमंतरट्ठिदिदव्वमोकड्डणासंकमेण अइच्छावणावलियं मोत्तूण सत्थाणे वि देदि तहा संपहि ण संछुहदि। किंतु तेसिमंतरचरिमफालिदव्वं सम्मत्तपढमट्ठिदीए चेव गुणसेढीए णिक्खिवदि त्ति वत्तव्वं।

जयध० पु० १३, पृ० २०६।

२. विदियट्ठिदिदव्वं पि ताव पढमट्ठिदीए आगच्छदि जाव आवलिय-पडिआवलियाओ सेसाओ

द्वितीयस्थितेर्द्रव्यं प्रथमस्थितिमेति यावदावलिका।
प्रत्यावलिका तिष्ठति सम्यक्त्वाविमर्चितः तावत् ॥ २१५ ॥

सं० टी०—यावत्सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितिः आवलिप्रत्यावलिमात्रावशेषा भवति तावद्द्वितीयस्थिति-द्रव्यमपकर्षणवशेन प्रथमस्थितिमागच्छति तावत्पर्यन्तं दर्शनमोहस्य गुणश्रेणिः प्रवर्तते। सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथम-स्थितौद्व्यावलिमात्रावशिष्टायां तस्य गुणश्रेणिर्नास्तीत्यर्थः। ज्ञानावरणादिशेषकर्मणां चारित्रपरिणामनिबन्धना गुणश्रेणी प्रवर्तत इति ग्राह्यम्। प्रथमस्थितेः समयाधिकावल्यवशेषपर्यन्तं सम्यक्त्वप्रकृतेरुदीरणा वर्तते। ततः सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितेश्चरसमयेऽनिवृत्तिकरणकालः समाप्तो भवति। तदनन्तरमन्तरप्रथमसमये द्वितीयो-पशमसम्यग्दृष्टिः भवति जीवः ॥ २१५ ॥

दर्शनमोहनीयसम्बन्धी गुणश्रेणिकी पर्यवसानविधि—

सं० चं०—सम्यक्त्वमोहनीकी प्रथम स्थितिविषैं उदय आवली अर प्रति आवली ए दोय आवली अवशेष रहैं तहां पर्यन्त द्वितीय स्थितिका द्रव्यकौं अपकर्षणका वशतैं प्रथम स्थितिविषैं निक्षेपण करिए है। तहां ही पर्यन्त दर्शनमोहकी गुणश्रेणि प्रवर्तै है। सम्यक्त्वमोहनीकी प्रथम स्थितिविषैं दोय आवली अवशेष रहैं दर्शनमोहकी गुणश्रेणि नाहीं हो है, अन्य कर्मनिकी सकल-चारित्रसम्बन्धी गुणश्रेणि तहां भी प्रवर्तै है। बहुरि सम्यक्त्वमोहनीकी प्रथम स्थितिविषैं एक समय अधिक आवली अवशेष रहै तहाँ पर्यन्त सम्यक्त्वमोहनीकी उदीरणा प्रवर्तै है। ऊपरिके निषेकनिका द्रव्यकौं उदयावलीविषैं दीजिए है। बहुरि तिस प्रथम स्थितिका अन्तसमयविषैं अनि-वृत्तिकरणकाल समाप्त हो है ॥ २१५ ॥

अथ दर्शनमोहद्रव्यस्य संक्रमप्रतिपादनार्थमाह—

सम्मादिठिदिज्झीणे मिच्छदव्वादु सम्मसंमिस्से।
गुणसंकमो ण णियमा विज्झादो संकमो होदि[1] ॥ २१६ ॥

सम्यगादिस्थितिक्षीणे मिथ्यद्रव्यात् सम्यसंमिश्रे।
गुणसंक्रमो न नियमात् विध्यातः संक्रमो भवति ॥ २१६ ॥

सं० टी०—सम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थितौ निरवशेषं गलितायां संजातद्वितीयोपशमसम्यक्त्वस्य जीवस्य मिथ्यात्वद्रव्यात् गुणसंक्रमेण विना सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रविध्यातसंक्रमेण भक्तैकभागमात्रं द्रव्यं गृहीत्वा सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्योः प्रतिसमयं विशेषहीनक्रमेण निक्षिपति ॥ २१६ ॥

त्ति। तत्तो परमागाल-पडिआगालवोच्छेदो। तत्तो पाए सम्मत्तस्स गुणसेढिविण्णासो णत्थि। पडिआवलियादो चेव उदीरणा। आवलियाए समयाहियाए सेसाए सम्मत्तस्स जहण्णिया ट्ठिदिउदीरणा। तदा पढमट्ठिदीए चरिमसमये अणियट्टिकरणद्धा समत्ता। से काले पढमसम्मत्तमुप्पाइय सम्मइट्ठी जायदे।

जयध० पु० १३, पृ० २०६।

१. सम्मत्तस्स पढमट्ठिदीए झीणाए जं तं मिच्छत्तस्स पदेसग्गं सम्मत्तसम्मामिच्छत्तेसु गुणसंकमेण संकमदि जहा पढमदाए समत्तमुप्पाएंतस्स तहा एत्थ णत्थि गुणसंकमो, इमस्स विज्झादसंकमो चेव।

कसाय० चू०, जयध० पु० १३, पृ० २०७।

प्रकृतमें संक्रमसम्बन्धी ऊहापोह—

सं० चं०—सम्यक्त्वमोहनीकी प्रथम स्थितिका क्षय होतैं ताके अनन्तरि अन्तरायामका प्रथम समय प्राप्त होइ तीहिंविषैं द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टी हो है। तहाँ गुणसंक्रमण तौ नियमतैं इहां है नाहीं तातैं मिथ्यात्वके द्रव्यकौं सूच्यंगुलका असंख्यातवाँ भागमात्र जो विध्यात संक्रमण भागहार ताका भाग देइ तहां एक भागमात्र मिथ्यात्वके द्रव्यकौं मिश्रसम्यक्त्वमोहनीविषैं निक्षेपण करै है। बहुरि तातैं द्वितीयादि समयनिविषैं विशेष घटता क्रम लीएं निक्षेपण करै है॥ २१६॥

अथ द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिविशुद्धेरेकान्तवृद्धिकालप्रमाणं दर्शयितुमिदमाह—

सम्मत्तुप्पत्तीए गुणसंकमपूरणस्स कालादो।
संखेज्जगुणं कालं विसोहिवड्ढीहिं वड्ढदि हु[1] ॥ २१७॥

सम्यक्त्वोत्पत्तौ गुणसंक्रमपूरणस्य कालात्।
संख्येयगुणं कालं विशुद्धिवृद्धिभिः बर्धते हि॥ २१७॥

सं० टी०—प्रथमोपशमसम्यक्त्वोत्पत्तौ गुणसंक्रमपूरणकालो यावदन्तर्मुहूर्तमात्रः पूर्वं प्ररूपितः तत्संख्येयभागगुणं कालमयं द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिः प्रतिसमयमनन्तगुणितक्रमेण विशुद्धया बर्धते। अयं च विशुद्धयेकान्तवृद्धिकालोऽन्तर्मुहूर्तमात्र एव॥ २१७॥

अन्तर्मुहूर्ततक निरन्तर विशुद्धिकी वृद्धिका निर्देश—

सं० चं०—प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिविषैं पूर्वें गुणसंक्रम पूरणकाल अन्तर्मुहूर्तमात्र कह्या था तातैं संख्यातगुणा काल पर्यन्त यहु द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टी प्रथम समयतैं लगाय समय समय प्रति अनन्तगुणी विशुद्धताकरि बधै है। ऐसैं इहां एकान्तविशुद्धताकी वृद्धिका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र जानना॥ २१७॥

एकान्तवृद्धिकालात्परं तस्यामवस्थाविशेषं प्ररूपयितुमिदमाह—

तेण परं हायदि वा वड्ढदि तव्वड्ढिदो विसुद्धीहिं।
उवसंतदंसणतियो होदि पमत्तापमत्तेसु[2] ॥ २१८॥

तेन परं हीयते वा बर्धते तद्वृद्धितो विशुद्धिभिः।
उपशान्तदर्शनत्रिकः भवति प्रमत्ताप्रमत्तयोः॥ २१८॥

सं० टी०—तस्मादेकान्तवृद्धिकालात्परं द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिः संक्लेशपरिणामवशात् विशुद्धया हीयते वा संक्लेशहान्या विशुद्धया वर्धते वा अयं च व्यवस्थाया कियन्तमपि कालं हानिवृद्धि विना अवस्थितो वा भवति। एवमुपशमितदर्शनमोहत्रयो जीवः संक्लेशविशुद्धिपरावृत्तिवशेन बहुवारं प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानयोः परावर्तते॥ २१८॥

१. पढमदाए सम्मत्तमुप्पादयमाणस्स जो गुणसंकमेण पूरणकालो तदो संखेज्जगुणं कालमिमो उवसंतदंसणमोहणीओ विसोहीए वड्ढदि। वही, पृ० २०८।

२. तेण परं हायदि वा वड्ढदि वा अवट्ठायदि वा। तदो चेव वा ताव उवसंतदंसणमोहणिज्जो असाद-अरदि-सोग-अजसगित्तिआदीसु बंधपरावत्तिसहस्साणि कादूण। वही, पृ० २०८।

तदनन्तर विशुद्धिमें हानि-वृद्धिका निर्देश—

सं० चं०—तिस एकान्त वृद्धिकालतैं पीछैं विशुद्धताकरि घटै वा बधै वा हानि वृद्धि विना जैसाका तैसा रहै किछू नियम नाहीं। ऐसैं उपशमाए हैं तीन दर्शनमोह जानैं ऐसा जीव बहुत बार प्रमत्त अप्रमत्तनिविषै उलटनिकरि प्राप्त हो है ॥ २१८ ॥

अथ द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्यारोहणावसरं प्रदर्शयितुमिदमाह—

एवं पमत्तमियरपरावत्तिसहस्सयं तु कादूण।
इगवीसमोहणीयं उवसमदि ण अण्णपयडीसु[1] ॥ २१९ ॥

एवं [illegible] परावृत्तिसहस्रकं तु कृत्वा।
एकविंशमोहनीयं उपशमयति न अन्यप्रकृतीषु ॥ २१९ ॥

सं० टी०—एवं पूर्वोक्तप्रकारेणायं द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिर्वा क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्वा प्रमत्ताप्रमत्तपरावृत्तिसहस्राणि कृत्वा द्वादशकषायनवनोकषायभेदभिन्नमेकविंशतिप्रकृतिकं चारित्रमोहनीयमेवोपशमयितुमुपक्रमते नान्यकर्मप्रकृतीस्तासामुपशमकरणाभावात् ॥ २१९ ॥

तदनन्तर उपशमश्रेणिमें होनेवाले मुख्य कार्यका निर्देश—

सं० चं०—ऐसैं अप्रमत्ततैं प्रमत्तविषै प्रमत्ततैं अप्रमत्तविषै हजारों बार पलटनिकरि अनन्तानुबन्धीचतुष्क विना अवशेष इकईस चारित्रमोहकी प्रकृतिके उपशमावनेका उद्यम करै है। अन्य प्रकृतिनिका उपशम होता नाहीं जातैं तिनकैं उपशम करना ही है ॥ २१९ ॥

विशेष—उक्त विधिसे यह जीव द्वितीयोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त कर विशुद्धि और संक्लेशवश हजारों बार प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानोंमें परावर्तन कर और क्रमशः सातिशय अप्रमत्तसंयत होकर उपशमश्रेणि पर आरोहण कर चारित्रमोहनीयकी अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क आदि २१ प्रकृतियोंका उपशमन करता है। यहाँ अन्य प्रकृतियोंका उपशमन नहीं होता, क्योंकि मोहनीयकर्मके अतिरिक्त अन्य कर्मोंको तीन करणपूर्वक उपशमविधिका निषेध है। उसमें यह जीव सर्वप्रथम अधःकरणको प्राप्त करता है। इसके अन्तमें कार्यविशेष आदिको सूचित करनेवाली चार गाथाओंमें निर्दिष्ट सभी बातोंका खुलासा जयधवला पृ० २१४-२२२ में किया ही है सो उसे वहाँसे जान लेना चाहिये। यहाँ मुख्यतया उपशमश्रेणिमें होनेवाले उपयोग और वेदके विषयके विषयमें विचार करना है। जयधवलामें उपयोगके प्रसंगसे दो उपदेशोंका निर्देश किया है। प्रथम उपदेशके अनुसार श्रुतज्ञानोपयोगी जीव उपशमश्रेणिपर चढ़ता है—यह बतलाया है तथा दूसरे उपदेशके अनुसार श्रुतज्ञान मतिज्ञान तथा चक्षु-अचक्षुदर्शनोपयोगवाला जीव उपशमश्रेणि पर चढ़ता है। किन्तु यह विवक्षाभेदसे कहा गया है। जैसे आगममें सामायिक और छेदोपस्थापना संयमको मिला कर कथन किया जाता है वैसे ही इन दोनों ज्ञानोंके विषयमें भी जानना चाहिये। इतना ही नहीं, आगममें श्रुतज्ञानपूर्वक श्रुतज्ञानके होने पर पिछले श्रुतज्ञानको उपचारसे मतिज्ञान भी स्वीकार किया गया है। इसलिये जिन आचार्योंने श्रुतज्ञानके अतिरिक्त मतिज्ञान तथा चक्षु-अचक्षु दर्शनोपयोगसे उपशम श्रेणिपर आरोहण करना स्वीकार किया है, सम्भवतः उन्होंने इसी तथ्यको ध्यानमें रखकर उक्त निर्देश किया होगा। इस सम्बन्धमें पहले हम जयधवलाके

---

१. तदो कसाए उवसामेदुं कच्चे अधापवत्तकरणस्स परिणामं परिणमइ। वही. पृ० २१०।

इसो प्रकरणमें लिख आये हैं, इसलिये वहाँसे जान लेना। अब रही वेदकी बात सो वस्तुतः वेद तो भावनिक्षेपका विषयभूत भाववेद एक ही प्रकारका है। और इसीलिये मूल सिद्धान्त ग्रन्थोंमें एक मात्र यही वेद स्वीकार किया गया है। लौकिक परिपाटीको ध्यानमें रख कर नाम साम्यकी दृष्टिसे उत्तर कालमें ही वेदके भाववेद और द्रव्यवेद ऐसे ही भेद स्वीकार कर लिये गये हैं।

एवं कृतपरिकरस्याप्रमत्तसंयतस्योपशमश्रेण्यारोहणे क्रियाविशेषविषयानधिकारानुद्देष्टुमिदमाह—

तिकरणबंधोसरणं कमकरणं देसघादिकरणं च।
अंतरकरणं उवसमकरणं उवसामणे होंति॥ २२०॥

त्रिकरणं बंधापसरणं क्रमकरणं देशघातिकरणं च।
अन्तरकरणमुपशमकरणं उपशामने भवन्ति॥ २२०॥

सं० टी०—चारित्रमोहोपशमने कर्तव्ये अधःप्रवृत्तकरणमपूर्वकरणमनिवृत्तिकरणं स्थितिबन्धापसरणं क्रमकरणं देशघातिकरणमन्तरकरणमुपशमकरणं चेत्यष्टाधिकारा भवन्ति। तेष्वधःप्रवृत्तकरणं सातिशयाप्रमत्तसंयतः कुरुते तत्करणस्य लक्षणं तत्र क्रियमाणकार्याणि च यथा प्रथमोपशमसम्यक्त्वाभिमुखसातिशयमिथ्यादृष्टेर्भणितानि तथैवात्रापि भणितव्यानि। अयं तु विशेषः—संयमयोग्यप्रकृतिबन्धोदयौ, अनन्तानुबन्धिचतुष्कनरकतिर्यगायुर्वर्जितसर्वप्रकृतिसत्त्वं चावसरे वक्तव्यम्॥ २२०॥

उपशमश्रेणिमें होनेवाले सभी कार्योंका निर्देश—

सं० चं०—अधःकरण १. अपूर्वकरण २. अनिवृत्तिकरण ३. ए तीन करण अर स्थितिबन्धापसरण ४. क्रमकरण ५. देशघातिकरण ६. अन्तरकरण ७. उपशमकरण ८. ऐसैं आठ अधिकार चारित्रमोहके उपशम विधानविषै पाइए है। तहां अधःकरणकौं सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनि करै है। ताका लक्षण वा ताका कीया कार्य जैसे प्रथमोपशम सम्यक्त्वकौं सन्मुख होतैं कहे हैं तैसें इहां भी जानना। विशेष इतना—इहाँ संयमीकैं सम्भवैं ऐसी प्रकृतिनिका बन्ध-उदय कहना। अर अनन्तानुबन्धीचतुष्क नरक तिर्यंच आयु विना अन्य प्रकृतिनिका सत्त्व कहना॥ २२०॥

अथापूर्वकरणकार्यविशेषप्रतिपादनार्थमिदं गाथाद्वयमाह—

बिदियकरणादिसमये उवसंततिदंसणे जहण्णेण।
पल्लस्स संखभागं उक्कस्स सायरपुधत्तं[1]॥ २२१॥

द्वितीयकरणादिसमये उपशान्तत्रिदर्शने जघन्येन।
पल्यस्य संख्यभागं उत्कृष्टं सागरपृथक्त्वम्॥ २२१॥

सं० टी०—अपूर्वकरणस्य प्रथमसमये वर्तमानस्य द्वितोयोपशमसम्यग्दृष्टेर्जघन्यं स्थितिकाण्डकं पल्यसंख्यातभागमात्रं, उत्कृष्टं सागरोपमपृथक्त्वप्रमाणम्॥ २२१॥

---

१. एदेण उवसंतदंसणमोहणीयस्स कसायउवसामगस्स अपुव्वकरणपढमसमए ट्ठिदिखंडयपमाणं जहण्णेण पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो, उक्कस्सेण सागरोवमपुधत्तमेत्तमिदि अणुत्तं पि अवगम्मदे। जयध० पु० १३, पृ० २२३।

अपूर्वकरणमें स्थितिकाण्डकका प्रमाण निर्देश—

सं० चं०—दूसरा अपूर्वकरणका प्रथम समयविषै द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टीकैं जघन्य स्थितिकाण्डक आयाम पल्यका संख्यातवाँ भागमात्र है। उत्कृष्ट पृथक्त्व सागरप्रमाण है ॥ २२१ ॥

ठिदिखंडयं तु खइये वरावरं पल्लसंखभागो दु।
ठिदिबंधोसरणं पुण वरावरं तत्तियं होदि[1] ॥ २२२ ॥

स्थितिखंडकं तु क्षायिके वरावरं पल्यसंख्यभागस्तु।
स्थितिबंधापसरणं पुनः वरावरं तावत्कं भवति ॥ २२२ ॥

सं० टी०—तस्मिन्नेवापूर्वकरणप्रथमसमये वर्तमानस्य चारित्रमोहोपशमकस्य क्षायिकसम्यग्दृष्टेर्जघन्यमुत्कृष्टं च स्थितिकाण्डकं पल्यसंख्यातभागमात्रमेव तथापि जघन्यादुत्कृष्टं संख्यातगुणितं दर्शनमोहक्षपणकाले विशुद्धिविशेषेण कर्मस्थितेर्बहुशः खण्डितत्वात्, स्थित्यनुसारेण च काण्डकाल्पबहुत्वस्य न्याय्यत्वात्। स्थितिबन्धापसरणं पुनरुपशमसम्यग्दृष्टेः क्षायिकसम्यग्दृष्टेश्च पल्यसंख्यातभागमात्रमेव। तत्रापि जघन्यादुत्कृष्टं संख्यातगुणितमपि पल्यसंख्यातभागमात्रमेव ॥ २२२ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टिकी अपेक्षा स्थितिकाण्डकका प्रमाण निर्देश—

सं० चं०—तहां ही अपूर्वकरणका प्रथम समयविषै क्षायिक सम्यग्दृष्टिकैं जघन्य वा उत्कृष्ट स्थिति कांडक आयाम पल्यके संख्यातवे भागमात्र है। जातैं दर्शनमोहकी क्षपणाका कालविषै बहुत स्थिति घटाई है। अर स्थितिके अनुसारि कांडक हो हैं तथापि जघन्य तैं उत्कृष्ट संख्यातगुणा है। बहुरि उपशम वा क्षायिक सम्यग्दृष्टीकैं स्थितिबंधापसरण पल्यका संख्यातवां भागमात्र है तथापि जघन्यतैं उत्कृष्ट संख्यातगुणा है ॥ २२२ ॥

अथानुभागकाण्डकादिनिर्देशार्थमिदमाह—

असुहाणं रसखंडमणंतभागा ण खंडमियराणं।
अंतोकोडाकोडी सत्तं बंधं च तट्ठाणे[2] ॥ २२३ ॥

अशुभानां रसखंडमनंतभागा न खंडमितरेषाम्।
अन्तःकोटीकोटिः सत्त्वं बन्धश्च तत्स्थाने ॥ २२३ ॥

सं० टी०—अशुभानां प्रकृतीनामनुभागस्यानन्तबहुभागमात्रमनुभागकाण्डकमपूर्वकरणप्रथमसमये प्रारभ्यते न पुनः शुभानां प्रकृतीनां, विशुद्धया शुभप्रकृत्यनुभागस्य खण्डनायोगात्। तत्र प्रथमादिनिषेकाणामनुभागविभागः किंचित्प्रदर्श्यते। तद्यथा—

आयुर्वजितसप्तकर्मणां मध्ये विवक्षितैककर्मणः सत्त्वद्रव्यमिदं स ∂ । १२ – अस्मिन्नानागुणहानिगत-
७

1. जो खीणदंसणमोहणिज्जो कसायउवसामगो तस्स खीणदंसणमोहणिज्जस्स कसायउवसामणाए अपुव्वकरणे पढमट्ठिदिखंडयं णियमा पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो।

कसाय० चू०, जयध० पु० १३, पृ० २२२।

2. असुभाणं कम्मणमणंता भागा अणुभागखंडयं। ट्ठिदिसंतकम्मं अंतोकोडाकोडीए ट्ठिदिबंधो वि अंतोकोडाकोडी। वही, पु० २२४।

सर्वनिषेकेषु विभज्य दीयमाने 'साहियदिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा' इत्यायातं प्रथमनिषेकद्रव्यमिदं स ∂ । १२ — । अस्मिन्ननुभागविषयानन्तनानागुणहानिगतवर्गणासु विभज्य दीयमाने 'साहियदिवड्ढगुण-
।
७ । १२
हाणिभाजिदे पढमा' इत्यनन्तात्मकसाधिकद्व्यर्धगुणहान्या भक्ते आयातं प्रथमवर्गणाद्रव्यमिदं स ∂ । १२— ।
। ।
७ । १२ । ख ३
२

इतो द्वितीयादिवर्गणासु द्रव्यं विशेषहीनक्रमेण दीयते । एवं द्वितीयादिगुणहानिष्वर्धार्धक्रमेण प्रथमादिवर्गणाद्रव्यमवतिष्ठते । तत्र चरमगुणहानिचरमस्पर्धकचरमवर्गणाद्रव्यमानीयते । तद्यथा—

प्रथमगुणहानिप्रथमवर्गणाद्रव्ये अन्योन्याभ्यस्तराश्यर्धेन भक्ते चरमगुणहानिप्रथमवर्गणाद्रव्यमागच्छति रूपोननानागुणहानिमात्रद्विकानां भागहारत्वेनान्योन्याभ्यस्तराश्यर्धोत्पत्तेः स ∂ । १२ – । अस्मिन् रूपोनगुण-
। ।
७ । १२ । ख । ३ अ
१— २ २
हानिमात्रचयेष्वपनीतेषु चरमगुणहानिचरमवर्गणाद्रव्यमायाति स ∂ । १२ – गु । एवं द्वितीयादिनिषेकद्रव्येष्व-
। ।
७ । १२ ख ३ अ गु २
२ २
प्यनुभागविभागेन तिर्यग्रचनायां प्रथमगुणहानिप्रथमवर्गणाप्रभृतिचरमगुणहानिचरमवर्गणापर्यन्तं वर्गणाद्रव्य-
१—
मानेतव्यम् । कर्मस्थितिचरमगुणहानिचरमनिषेकद्रव्यमिदं स ∂ १२ – गु । अस्मिन्ननुभागसम्बन्ध्यनन्तनाना-
।
७ । १२ । प गु २
व २
गुणहानिवर्गणासु विभज्य दीयमाने 'साहियदिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा' इत्यनुभागस्यानन्तात्मकद्व्यर्धगुणहान्या भक्ते अनुभागस्य प्रथमगुणहानिप्रथमवर्गणाद्रव्यमागच्छति स ∂ । १२ – । एवं द्वितीयादि-
। ।
७ । १२ । ख । ३ प
२ व
गुणहानिष्वनुभागसम्बन्धिनीषु तिर्यग्रचितासु वर्गणाद्रव्यमर्धार्धक्रमेणागच्छति । अनुभागस्य प्रथमगुणहानिप्रथमवर्गणाद्रव्ये अनन्तात्मकान्योन्याभ्यस्तराश्यर्धेन भक्ते अनुभागस्य चरमगुणहानिप्रथमवर्गणाद्रव्यमागच्छति पूर्ववत् स ∂ । १२ — अस्मिन् रूपोनगुणहानिमात्रचयेष्वपनीतेषु अनुभागस्य चरमगुणहानिचरम-
। ।
७ । १२ प । ख । ३ अ
व २ २

वर्गणाद्रव्यं भवति स ∂ । १२ – गु १– । । ७ । १२ प ख ३ अ गु २ व २ २ । इत्थं सर्वनिषेकसत्त्वानुभागावस्थितिर्ज्ञातव्या । अत्र तात्कालिकानुभागसत्त्वं ९ ना अनन्तेन खण्डयित्वा तद्बहुभागमात्रकाण्डकं ९ ना ख १ख ख । पुनस्तदेकभागमनन्तेन खण्डयित्वा एकभागमात्रप्रतिस्थाप्य ९ ना ख ख बहुभागमात्रानुभागे ९ ना ख १ख ख ख पूर्वखण्डितानुभागकर्मपरमाणुद्रव्यं निक्षिपति, अवशिष्टानुभागरूपेण तद्द्रव्यं परिणमयतीत्यर्थः । अपूर्वकरणप्रथमसमये आयुर्वर्जितकर्मणां स्थितिसत्त्वं स्थितिबन्धश्च अन्तःकोटीकोटिसागरोपमप्रमित एव सा अं को २ । स्थितिबन्धात् स्थितिसत्त्वं संख्यातगुणं ४ सा अं को २ अयमेव विशेषः ॥ २२३ ॥

अनुभागकाण्डक आदिके प्रमाणका निर्देश—

सं० चं०—अशुभ प्रकृतिनिका जो पूर्वे अनुभाग था ताकौं अनंतका भाग दीएं तहां एक अनुभाग कांडकविषै बहुभागमात्र अनुभागका खंडन हो है, एक भागमात्र अवशेष रहै है। विशुद्धताकरि शुभ प्रकृतिनिका अनुभाग खंडन न हो है ऐसा जानना। इहां प्रथमादि निषेकनिका अनुभाग दिखाइए है—

तहां द्रव्य स्थिति गुणहानि नाना गुणहानि दोगुणहानि अन्योन्याभ्यस्तका प्रमाण पहले जानना। सो इनिका कर्मनिकी स्थिति अपेक्षा तौ गोम्मटसारका योगमार्गणा अधिकारविषै वा कर्मस्थिति रचना अधिकारविषै वर्णन कीया है सो जानना। अर अनुभाग अपेक्षा तिन सब द्रव्यादिकनिका प्रत्येक प्रमाण यथायोग्य अनंत है। सो आयु विना सात कर्मनिविषै विवक्षित कर्मके परमाणूका प्रमाणरूप जो द्रव्य ताकौं स्थिति संबंधी साधिक ड्योढ गुणहानिका भाग दीएं प्रथम गुणहानिका प्रथम निषेकका प्रमाण आवै है। याकौं अनुभागसंबंधी साधिक ड्योढ गुणहानिका भाग दीएं प्रथम निषेकनिविषैं प्रथम गुणहानिका जो प्रथम स्पर्धक ताकी प्रथम वर्गणाके परमाणूनिका प्रमाण आवै है। सबतैं थोरे जिस परमाणूविषै अनुभागके अविभाग प्रतिच्छेद पाइए ताका नाम जघन्य वर्ग है सो ऐसे जेती परमाणू होंइ तिनके समूहका नाम वर्गणा है। बहुरि यातैं द्वितीयादि वर्गणानिविषै एक एक चय घटता क्रमकरि परमाणूनिका प्रमाण है। बहुरि द्वितीयादि गुणहानिनिविषै पूर्व गुणहानि सम्बन्धी वर्गणातैं आधा आधा क्रम लीएं वर्गणाद्रव्य का प्रमाण है। ऐसैं प्रथम गुणहानिका प्रथम वर्गणा द्रव्यकौं अनुभाग सम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्त राशितैं आधा प्रमाणका भाग दीएं अन्त गुणहानिकी प्रथम वर्गणाका द्रव्य हो है। यामैं क्रमतैं एक एक चय घटनेतैं एक घाटि गुणहानिमात्र चय घटैं अन्त गुणहानिकी अन्त वर्गणाका द्रव्य हो है। इहां ऐसा जानना—

प्रथम गुणहानिकी प्रथम वर्गणातैं लगाय यावत् वर्गनिविषै एक एक अविभाग प्रतिच्छेद

बधनेका क्रम होइ तहां पर्यन्त तिनि वर्गणानिके समूहका नाम प्रथम स्पर्धक है। तातैं ऊपरि प्रथम स्पर्धककी वर्गणाके वर्गनितैं द्वितीय तृतीय चतुर्थादिक स्पर्धककी प्रथम वर्गणानिका वर्गनिविषैं क्रमतैं दूणे तिगुणे चौगुणे अविभाग प्रतिच्छेद होंइ। उपरि द्वितीयादि वर्ग एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद बँधता क्रम लीएं जानने। ऐसा अनुक्रम अन्त गुणहानिका अन्त स्पर्धककी अन्त वर्गणा पर्यन्त जानना। ऐसैं प्रथम निषेकविषै विभाग दीया। बहुरि स्थितिके द्वितीयादि निषेक क्रमतैं चय घटता क्रम लीएं हैं। गुणहानि गुणहानि प्रति आधा-आधा क्रम लीएं हैं तिन सबनिविषै ऐसा ही अनुभाग अपेक्षा क्रम जानना। इहाँ स्थितिकी अन्त गुणहानिका अन्त निषेकविषै जो द्रव्यका प्रमाण तहाँ भी पूर्वोक्त प्रकार प्रथम गुणहानिका प्रथम वर्गणा द्रव्यका प्रमाण ल्यावना। बहुरि क्रमतैं पूर्वोक्त प्रकार अन्त गुणहानिकी अन्त वर्गणाका द्रव्य ल्यावना। ऐसैं जो अनुभाग पाइए है ताकौं अनन्तका भाग दीएं तहाँ बहुभागमात्र अनुभागकाण्डक है। अवशेष जो एक भागमात्र रह्या ताकौं अनन्तका भाग देइ तहाँ एक भागकौं अतिस्थापनरूप राखि अवशेष बहुभागरूप जिनि परमाणूनिका अनुभाग खण्डन किया था तिन परमाणूनिकौं परिणमावै है। इहाँ ऐसा जानना—

अनुभागके स्पर्धक कहे थे तिनकौं अनन्तका भाग दीएं तहाँ बहुभागमात्र स्पर्धकनिके परमाणू हैं। तिनकौं अवशेष रहैं एकभागमात्र स्पर्धक तिनिका अनन्तवाँ भागमात्र स्पर्धकनिके ऊपरिके छोडि नीचेके जे बहुभागमात्र स्पर्धक तिनिविषै निक्षेपण करैं है। ऐसी क्रिया एक अनुभागकाण्डकका कालविषैं हो है। बहुरि तिसही अपूर्वकरणका प्रथम समयविषैं स्थितिबन्ध अर स्थितिसत्त्व अन्तःकोटाकोटी सागरप्रमाण हैं। तहाँ विशेष इतना स्थितिबन्धतैं स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है ॥ २२३ ॥

अथापूर्वकरणप्रथमसमये गुणश्रेणिनिर्जरार्थनिरूपणार्थमिदमाह—

उदयावलिस्स वाहिं गलिदवसेसा अपुव्वअणियट्टी।
सुहुमद्धादो अहिया गुणसेढी होदि तट्ठाणे ॥ २२४ ॥

उदयावलेर्बाह्यं गलितावशेषा अपूर्वानिवृत्तेः।
सूक्ष्माद्धातो अधिका गुणश्रेणी भवति तत्स्थाने ॥ २२४ ॥

सं० टी०—उदयावलिबाह्यप्रथमसमयादारभ्य अपूर्वानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानकालेभ्य उपशान्तकषायकालसंख्यातैकभागमात्रेणाभ्यधिकायामा गुणश्रेण्यपूर्वकरणप्रथयसमये गलितावशेषप्रमाणा प्रारब्धा। सा च आयुर्वर्जितसप्तकर्मणामुदयावलिबाह्यद्रव्यमपकृष्य प्रागुक्तविधानेन निक्षेपस्वरूपा। नपुंकवेदादिप्रकृतीनां गुणसंक्रमोऽप्यत्रैव प्रारब्धः। बन्धवत्प्रकृतीनां गुणसंक्रमो नास्ति। एवं द्वितीयादिसमयेष्वपि स्थितिकाण्डकादिविधानं पूर्वोक्तक्रमेणैव ज्ञातव्यं ॥ २२४ ॥

गुणश्रेणिके विषयमें स्पष्टीकरण—

सं० चं०—तिस अपूर्वकरण प्रथम समयविषै उदयावलीतैं बाह्यगलितावशेष गुणश्रेणिका आरम्भ भया। तिस गुणश्रेणि आयामका प्रमाण अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसाम्पराय इनके

१. गुणसेढी च अंतोमुहुत्तमेत्ता णिक्खित्ता। वही पृ० २२४।

मिलाये कालतैं उपशान्तकषायके कालका संख्यातवाँ भागमात्र अधिक जानना। तहाँ आयु विना सातकर्मनिके उदयावलीतैं बाह्य निषेकनिका द्रव्यकौं अपकर्षण करि पूर्वोक्त प्रकार उदयावलीविषैं अर तातैं ऊपरि गुणश्रेणि आयामविषै अर तातैं उपरितन स्थितिविषैं दीजिए है। बहुरि नपुंसक वेदादिकका गुणसंक्रम लीएं भी इहाँ ही प्रारम्भ भया। जिनिका बन्ध पाइए है तिनिका गुण-संक्रम है नाहीं। बहुरि ऐसैं ही अपूर्वकरणके द्वितीयादि समयनिविषै भी स्थितिकाण्डकादि विधान जानना ॥ २२४ ॥

विशेष—उपशमश्रेणिपर आरोहण करनेवाला जीव अपूर्वकरणके प्रथमसमयमें उपरिम शेष स्थितियोंके प्रदेश पुंजका अपकर्षण कर उदयावलिके बाहर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण गुणश्रेणिरचना करता है, जो अपूर्वकरण, अनिर्वृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायके कालसे कुछ अधिक है। जयधवलामें इस आयामको अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके कालसे कुछ अधिक बतलाया है सो जानकर समझ लेना चाहिए। यहाँपर नहीं बँधनेवाली अप्रशस्त नपुंसकवेद आदि प्रकृतियोंके गुणसंक्रमको भी प्रारम्भ करता है। इसी प्रकार अपूर्वकरणके दूसरे समयमें भी जानना चाहिए। तब प्रथम समयमें प्रारम्भ हुआ वही स्थितिकाण्डक, वही स्थितिबन्ध और वही अनुभागकाण्डक भी होता है। इतना विशेष है कि यहाँ स्थित गुणश्रेणि गलितावशेष होती है। इस प्रकार हजारों अनुभागकाण्डकघातोंके समाप्त होनेपर यहींपर उनके साथ प्रथम स्थितिकाण्डक, स्थितिबन्धकाल और अन्य अनुभागकाण्डक समाप्त होता है।

अथापूर्वकरणे बन्धोदयव्युच्छित्तिविभागप्रदर्शनार्थमिदमाह—

पढमे छट्ठे चरिमे बंधे दुग तीस चदुर वोच्छिण्णा।
छण्णोकसायउदयो अपुव्वचरिमम्हि वोच्छिण्णा[1] ॥ २२५ ॥

प्रथमे षट्के चरमे बंधे द्विकं त्रिशत् चतस्रो व्युच्छिन्नाः।
षण्णोकषायोदया अपूर्वचरमे व्युच्छिन्नाः ॥ २२५ ॥

सं० टी०—अपूर्वकरणकालस्य सप्तभागेषु प्रथमभागे द्वयोर्निद्राप्रचलयोर्बन्धो व्युच्छिन्नः। षष्ठे भागे तीर्थकरत्वादीनां त्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धो व्युच्छिन्नः। सप्तमभागचरमसमये हास्यादिचतुःप्रकृतीनां बन्धो व्युच्छिन्नः। हास्यादिषण्णोकषायाणामुदयः अपूर्वकरणचरमसमये व्युच्छिन्नः ॥ २२५ ॥

अपूर्वकरणमें बन्धव्युच्छित्तिको प्राप्त हुई प्रकृतियोंकी संख्याका निर्देश—

सं० चं०—अपूर्वकरणके कालका सात भाग तहाँ प्रथम भागविषैं निद्रा प्रचला दोय अर छठा भागविषैं तीर्थंकर आदि तीस अर सातवाँ भागविषैं हास्यादि च्यारि ऐसैं छत्तीस प्रकृति

---

१. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तगदे णिद्दा-पयलाणं बंधवोच्छेदो। तदो अंतोमुहुत्ते गदे परभवियणामागोदाणं बंधवोच्छेदो। तदो अंतोमुहुत्ते गदे परभवियणामागोदाणं बंधनोच्छेदो। अपुव्वकरणपविट्ठस्स जम्हि णिद्दापयलाओ वोच्छिण्णाओ सो कालो थोवो। परभवियणामाणं वोच्छिण्णकालो संखेज्जगुणो। अपुव्वकरणद्धा विसेसाहिया। तदो अपुवकरणद्धाए चरिमसमए ट्ठिदिखंडयमणुभागखंडयं ट्ठिदिबंधो च समगं णिट्ठिदाणि। एदम्हि चेव समए हस्स-रइ-भय-दुगुंछाणं बंधवोच्छेदो। हस्स-रइ-अरइ-सोग-भय-दुगुंच्छाणं एदेसिं छण्हं कम्माणमुदयवोच्छेदो च। वही पृ० २२५-२२८।

बन्धतैं व्युच्छित्ति भई। बहुरि अपूर्वकरणका अन्त समयबिषै छह हास्यादि नोकषाय उदयतैं व्युच्छित्ति भई॥ २२५॥

विशेष—जब अपूर्वकरणमें हजारों स्थितिकाण्डकघात हो जाते हैं तब इस जीवके सर्वप्रथम निद्रा-प्रचलाकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। अपूर्वकरण गुणस्थानमें प्रविष्ट हुए संयत जीवके जिस कालमें निद्रा और प्रचलाकी बन्धव्युच्छित्ति होती है वह काल सबसे थोड़ा है, जो अपूर्वकरणके कालके सातवें भागप्रमाण है। उससे अन्तर्मुहूर्तकाल जानेपर परभवसम्बन्धी गोत्र संज्ञावाली नामकी प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। यहाँ नामकर्मकी जिन प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति होती है वे ये हैं—देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक-आहारक-तैजस-कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक-आहारकशरीर आंगोपांग, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थंकर इस प्रकार अधिकसे अधिक इन तीस प्रकृतियोंका और कमसे कम आहारकशरीर, आहारक आंगोपांग और तीर्थंकरके विना २७ प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। तथा अकेले तीर्थंकरके विना २९ की और आहारकद्विकके विना २८ की बन्धव्युच्छित्ति होती है, क्योंकि इन तीन प्रकृतियोंके बन्धका नियम नहीं है। यहाँ यह शंका होती है कि नामकर्मकी प्रकृतियोंमें यशःकीर्ति भी सम्मिलित है, इसलिए चूर्णिसूत्रमें सामान्यसे नामकर्मकी प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्तिका उल्लेख होनेसे यशःकीर्तिकी बन्धव्युच्छित्तिका भी प्रसंग प्राप्त होता है? उसका समाधान यह है कि उसे छोड़कर शेष प्रकृतियोंकी यहाँ बन्धव्युच्छित्ति होती है। कारण कि उसकी बन्धव्युच्छित्ति सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयमें होती है। इन सब प्रकृतियोंके बन्धव्युच्छित्तिके कालके अल्पबहुत्वका निर्देश करते हुए यहाँ बतलाया है कि अपूर्वकरण गुणस्थानमें प्रविष्ट हुए जीवके जिस स्थानमें निद्रा प्रचलाकी बन्धव्युच्छित्ति होती है वहाँतकका काल सबसे थोड़ा है जो अपूर्वकरणके पूरे कालके संख्यातवें भागप्रमाण है। उससे परभवसम्बन्धी नामकर्मकी प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्तिका काल संख्यातगुणा है जो अपूर्वकरणके कालके छह-सात भागप्रमाण है। तदनन्तर अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें हास्य, रति, भय और जुगुप्साकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। सर्वत्र स्थितिकाण्डकघात आदिका विधान सुगम है। यहीं पर छह नोकषायोंकी उदयव्युच्छित्ति होती है।

अथानिवृत्तिकरणे [illegible]णार्थमिदमाह—

अणियट्टिस्स य पढमे अण्णट्ठिदिखंडपहुदिमारभइ।
उवसामणा णिधत्ती णिकाचणा तत्थ वोच्छिण्णा॥ २२६॥

अनिवृत्तेः च प्रथमे अन्यस्थितिखंडप्रभृतिमारभते।
उपशमनं निधत्तिः निकाचना तत्र व्युच्छिन्ना॥ २२६॥

१. तदो से काले पढमसमयअणियट्टी जादो। पढमसमयअणियट्टिस्स ट्ठिदिखंडयं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो। अपुव्वो ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण हीणो। अणुभागखंडयं सेसस्स अणंता भागा। गुणसेढी असंखेज्जगुणाए सेढीए सेसे णिक्खेवो। तिस्से चेव अणियट्टिअद्धाए पढमसमये अप्पसत्थ-उवसामणाकरणं णिधत्तीकरणं णिकाचणाकरणं च वोच्छिण्णाणि। वही पृ० २२९–२३१।

सं० टी०—अनिवृत्तिकरणप्रथमसमये अन्यान्येव स्थितिखण्डस्थितिबन्धापसरणानुभागखण्डान्यपूर्वकरणचरमसमयसम्भवविलक्षणानि प्रारभते। चारित्रमोहोपशमकस्तत्रैव सर्वकर्मणामुपशमनिधत्तिनिकाचनकरणानिविनष्टानि। अपुव्वकरणेत्ति दसकरणा इति व्युच्छित्तिनियमकथनादनिवृत्तिकरणप्रथमसमयादारभ्य सर्वकर्माण्युदये संक्रमोदययोरुत्कर्षणापकर्षणसंक्रमोदयेषु च निक्षेप्तुं शक्यानि जातानीत्यर्थः ॥ २२६ ॥

अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें होनेवाले कार्योंका निर्देश—

सं० चं०—अनिवृत्तिकरणका प्रथम समयविषै अपूर्वकरणका अन्त समय सम्बन्धीतैं और ही प्रमाण धरैं स्थितिखण्ड स्थितिबन्धापसरण अनुभागखण्ड प्रारम्भिए है। बहुरि तहाँ ही सर्वकर्मनिका उपशम निधत्ति निकाचन इनि तीनि करणनिकी व्युच्छित्ति भई। उदयविषै प्राप्त करनेकौं अयोग्य सो उपशम कहिए। अर संक्रमण उदयविषै प्राप्त करनेकौं अयोग्य सो निधत्ति कहिए। उत्कर्षण अपकर्षण संक्रमण उदयविषै प्राप्त करनेकौं अयोग्य सो निकाचना कहिए सो इहां सर्वकर्मनिकौं उदयादिविषैं निक्षेपण करनेकौं समर्थपना पाइए है ऐसा जानना ॥ २२६ ॥

विशेष—प्रकृत गाथाकी टीकामें गोम्मटसार कर्मकाण्डकी 'संकमकरणूणा' इत्यादि गाथा ४४१ का 'अपुव्वकरणेत्ति दसकरणा' इस प्रकार अन्तिम पाद उद्धृत किया है। सो ठीक ही है कि अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें अप्रशस्त उपशमकरण, निधत्तीकरण और निकाचनकरणकी व्युच्छित्ति हो जाती है। जो कर्म अपकर्षण, उत्कर्षण और परप्रकृतिसंक्रमके योग्य होकर भी उदीरणाके अयोग्य होकर उदयस्थितिमें अपकर्षित होनेके अयोग्य होता है उसकी अप्रशस्त उपशमकरण संज्ञा है। जो कर्म अपकर्षण और उत्कर्षणके योग्य होकर भी उदय और परप्रकृति-संक्रमरूप न हों उन्हें निधत्तीकरण कहते हैं तथा जो कर्म इन चारोंके अयोग्य होकर तदवस्थ रहते हैं उनको निकाचनकरण कहते है। ये तीन उक्त करण हैं। इनकी यहाँ व्युच्छित्ति हो जानेसे जो कर्म इन तीनों करणरूप थे उन कर्मोंका अब अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयसे उदीरणा उत्कर्षण, अपकर्षण और परप्रकृतिसंक्रम होने लगता है। शेष कथन सुगम है।

अथ तस्मिन्नेवानिवृत्तिकरणप्रथमसमये कर्मणां स्थितिसत्त्वबन्धप्रमाणनिर्देशार्थमिदमाह—

अंतोकोडाकोडी अंतोकोडी य सत्त बंधं च।
सत्तण्हं पयडीणं अणियट्टीकरणपढमम्हि[1] ॥ २२७ ॥

अन्तःकोटीकोटिः अन्तःकोटिश्च सत्त्वं बंधश्च।
सप्तानां प्रकृतीनां अनिवृत्तिकरणप्रथमे ॥ २२७ ॥

सं० टी०—अनिवृत्तिकरणप्रथमसमये आयुर्वर्जितसप्तकर्मणां स्थितिसत्त्वमन्तःकोटीकोटिप्रमितं सा अं को २ स्थितिबन्धश्चान्तःकोटिप्रमितः सा अं को १। अपूर्वकरणकालकृतस्थितिखण्डस्थितिबन्धापसरण-
४
संख्यातसहस्रमाहात्म्यात् ॥ २२७ ॥

१. आउगवज्जाणं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्ममंतोकोडाकोडीए। ट्ठिदिबंधो अंतोकोडाकोडीए तद-सहस्सपुधत्तं बंधो। वही पृ० २३१–१३२।

अनिवृत्तिकरणका प्रथम समयमें बन्ध और सत्त्वके प्रमाणका निर्देश—

सं० चं०—अनिवृत्तिकरणका प्रथम समयविषै आयु विना सात प्रकृतिनिका स्थितिसत्त्व यथायोग्य अन्तःकोटाकोटी सागरमात्र है। अर स्थितिबन्ध अन्तःकोटीमात्र है। अपूर्वकरणविषै घटाएं इतना अवशेष रहै है ॥ २२७ ॥

अथ तस्मिन्नेवानिवृत्तिकरणकाले स्थितिबन्धापसरणक्रमेण स्थितिबन्धक्रमं प्रदर्शयितुं गाथात्रयमाह—

ठिदिबंधसहस्सगदे संखेज्जा बादरे गदा भागा ।
तत्थ असण्णिस्स ठिदीसरिस ट्ठिदिबंधणं होदि ॥ २२८ ॥

स्थितिबन्धसहस्रगते संख्येया बादरे गता भागाः ।
तत्र असंज्ञिनः स्थितिसदृशं स्थितिबन्धनं भवति ॥ २२८ ॥

सं० टी०—अनिवृत्तिकरणप्रथमसमयादारभ्यान्तर्मुहूर्तमन्तर्मुहूर्तं प्रति पल्यसंख्यातभागमात्रस्थितिबन्धापसरणक्रमेण संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु गतेषु तत्करणकालस्य संख्यातबहुभागा यदा गच्छन्ति तदा असंज्ञिस्थितिबन्धसदृशस्थितिबन्धो भवति। सहस्रसागरोपमप्रतिभागेन नामगोत्रयोर्द्विसप्तमभागप्रमितः ज्ञानदर्शनावरणान्तरायसातवेदनीयानां स्थितिबन्धः सागरोपमसहस्रत्रिसप्तमभागप्रमितः। चारित्रमोहस्य स्थितिबन्धः सागरोपमसहस्रचतुःसप्तमभागप्रमितो भवतीत्यर्थः। एवं वैंशतिकत्रैंशत्कचत्वारिंशत्ककर्मणां प्रतिभागक्रम उत्तरत्रापि ज्ञातव्यः ॥ २२८ ॥

वहीं स्थितिबन्धापसरणसे कम-कम होनेवाले बन्धका निर्देश—

सं० चं०—अनिवृत्तिकरणका प्रथम समयतैं लगाय एक एक अन्तर्मुहूर्तविषै पल्यका संख्यातवाँ भागमात्र स्थितिबन्ध घटै ऐसैं स्थितिबन्धापसरणका क्रमकरि हजारों स्थितिबन्ध भएं अनिवृत्तिकरणकालका संख्यात भागनिविषै बहुभाग व्यतीत भएं एकभाग अवशेष रहै असंज्ञीका स्थितिबन्ध समान स्थितिबन्ध हो है। सो असंज्ञीकैं सत्तर कोडाकोडो सागर उत्कृष्ट स्थितिका धारक दर्शनमोहका हजार सागर स्थितिबन्ध है तिसका प्रतिभाग करि हजार सागरकौं सातका भाग देइ तहां एकभागतैं दूणा बीसियनिका तिगुणा तीसयनिका चौगुणा चारित्रमोहका स्थितिबन्ध हो है। जिनकी बीस कोडाकोडीकी उत्कृष्ट स्थिति ऐसे नामगोत्र तिनकौं बीसिय कहिए। जिनकी तीस कोडाकोडीकी उत्कृष्ट स्थिति ऐसे ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तराय वेदनीय तिनकौं तीसीय कहिए। जाकी चालीस कोडाकोडी सागरकी उत्कृष्ट स्थिति ऐसा चारित्रमोह ताकौं चालीसिय कहिए। ऐसी संज्ञा आगे भी जानि लेनी ॥ २२८ ॥

ठिदिबंधपुधत्तगदे पत्तेयं चदुर तिय बि एएदि ।
ठिदिबंधसमं होदि हु ठिदिबंधमणुक्कमेणेव[२] ॥ २२९ ॥

१. तदो ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु ट्ठिदिबंधो सदसहस्सपुधत्तं। तदो अणयट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु असण्णिट्ठिदिबंधेण समगो ट्ठिदिबंधो। वही पृ० २३२।

२. तदो ट्ठिदिबंधपुधत्ते गदे चउरिंदियबंधसमगो ट्ठिदिबंधो। एवं तीइंदिय-बीइंदियट्ठिदिबंधसमगो ट्ठिदिबंधो। एइंदियट्ठिदिबन्धसमगो ट्ठिदिबंधो। वही पृ० २३३।

स्थितिबन्धपृथक्त्वगते प्रत्येकं चतुस्त्रिद्विएकेति ।
स्थितिबन्धसमो भवति हि स्थितिबन्धोऽनुक्रमेणैव ॥ २२९ ॥

सं० टी०—ततः परं संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु गतेषु चतुरिंद्रियस्थितिबन्धसदृशस्थितिबन्धो भवति नामगोत्रादिकर्मणां सागरोपमशतस्य द्विसप्तमत्रिसप्तमचतुःसप्तमभागप्रमितस्थितिबन्धो भवतीत्यर्थः । ततः परं संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु गतेषु त्रींद्रियस्थितिबन्धसदृशस्थितिबन्धो भवति । प्रागुक्तवैंशतिकादीनां कर्मणां पञ्चशत्सागरोपमद्विसप्तमत्रिसप्तमचतुःसप्तमभागप्रमितः । इतः परं संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु गतेषु द्वीन्द्रियस्थितिबन्धसदृशस्थितिबन्धो भवति । पूर्वोक्तत्रिस्थानकर्मणां पञ्चविंशतिसागरोपमद्विसप्तमत्रिसप्तमचतुःसप्तमभागप्रमितः स्थितिबन्धो भवतीत्यभिप्रायः । ततः परं संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु गतेषु एकेन्द्रियस्थितिबन्धसदृशः स्थितिबन्धो भवति । वीसियतीसियचालिसीयसंकेतितानां कर्मणामेकसागरोपमद्विसप्तमत्रिसप्तमचतुःसप्तमभागप्रमितः स्थितिबन्धो भवतीति निर्णयः । पृथक्त्वशब्दस्य बहुत्ववाचित्वेन प्रत्येकं संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु गतेष्विति व्याख्यायते ॥ २२९ ॥

सं० चं०—तातैं परैं पृथक्त्व कहिए संख्यात हजार स्थितिबन्ध भएं सौ सागरकौं सातका भाग देइ तहाँ एक भागतैं दूणा बीसियका तिगुणा तीसियका चौगुणा चालीसियका ऐसा चौंद्री समान स्थितिबन्ध हो है। बहुरि तातैं परैं संख्यात हजार स्थितिबन्ध भएं पचास सागरकौं सातका भाग देइ तहां एकभागतैं दूणा बीसियका तिगुणा तिसियका चौगुणा चालीसियका ऐसा तेंद्री समान स्थितिबन्ध हो है। बहुरि तातैं परैं संख्यात हजार स्थितिबन्ध भएं पचीस सागरकौं सातका भाग देइ तहां एकभागतैं दूणा बीसियका तिगुणा तीसियका चौगुणा चालीसियका ऐसा वेंद्रीका समान स्थितिबन्ध हो है। तातैं परैं संख्यात हजार स्थितिबन्ध भएं एक सागरकौं सातका भाग देइ तहां एक भागतैं दूणा बीसियका तिगुणा तीसियका चौगुणा चालीसियका ऐसा एकेन्द्रीका समान स्थितिबन्ध हो है ॥ २२९ ॥

एइंदियट्ठिदीदो संखसहस्से गदे दु ठिदिबंधो ।
पल्लेक्कदिवड्ढवे ठिदिबंधो वीसियतियाणं[1] ॥ २३० ॥

एकेन्द्रियस्थितितः संख्यसहस्रे गते तु स्थितिबन्धः ।
पल्यैकद्व्यर्धद्विके स्थितिबन्धो विंशतित्रिकरणाम् ॥ २३० ॥

सं० टी०—ततः परं संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु गतेषु नामगोत्रयोः पल्यमात्रः, त्रिघातिवेदनीयानां सार्धपल्यमात्रः चारित्रमोहस्य पल्यद्वयप्रमितः स्थितिबन्धो भवति । असंज्ञादिषु सर्वत्र सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमस्थितिबन्धस्य मिथ्यात्वस्य यदि सहस्रसागरोपमस्थितिं बध्नाति जीवस्तदा विंशतिसागरोपमकोटीकोटिस्थितिबन्धयोर्नामगोत्रयोः कियतीं स्थितिं बध्नातीति त्रैराशिकेन फलगुणितेच्छाप्रमाणेन भक्त्वा अपवर्तितसहस्रसागरोपमद्विसप्तमभागप्रमितो नामगोत्रयोः स्थितिबन्धो लभ्यते । एवं त्रिंशत्कोटीकोटिसागरोपमस्थितिबन्धानां त्रिंशतिसातवेदनीयानां सहस्रसागरोपमत्रिसप्तमभागप्रमितश्चत्वारिंशत्कोटीकोटिसागरोपमस्थिति-

१. तदो ट्ठिदिबंधपुधत्तेण णामा-गोदाणं पलिदोवमट्ठिदिगो ट्ठिदिबंधो णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं च दिवड्ढपलिदोवममेत्तट्ठिदिगो बंधो । मोहणीयस्स वेपलिदोवमट्ठिदिगो बंधो । वही पृ० २३४ ।

बन्धस्य चारित्रमोहस्य सहस्रसागरोपमचतुःसप्तमभागप्रमितश्च स्थितिबन्धः असंज्ञिजीवे आनेतव्यः। अतः उत्तरत्रापि चतुरिन्द्रियादिषु अनेनैव त्रैराशिकविधानेन तत्र तत्र स्थितिबन्धप्रमाणमानेतव्यम् ॥ २३० ॥

सं० चं०—तिस एकेन्द्री समान स्थितिबन्धतैं परैं संख्यात हजार स्थितिबन्ध भए वीसियका एक पल्य तीसियका ड्योढ पल्य चालीसियका दोय पल्यप्रमाण स्थितिबन्ध हो है। इहां असंज्ञीकैं सत्तर कोडाकोडी सागर स्थितिका धारक दर्शनमोहका हजार सागर बन्ध होइ तौ बीस कोडाकोडी स्थितिका धारक नाम गोत्रनिका केता होइ। ऐसैं त्रैराशिक कीएं हजार सागरका दोय सातवां भाग आवै है। ऐसैं औरनिविषै भी त्रैराशिक विधान जानना ॥ २३० ॥

अथ पल्यमात्रपल्यसंख्यातभागमात्रसंख्यातवर्षसहस्रमात्रस्थितिबन्धानां त्रयाणामुत्पत्तेः प्राक्स्थितिबन्धापसरणप्रमाणनिर्देशार्थमिदमाह—

पल्लस्स संखभागं संखगुणूणं असंखगुणहीणं।
बंधोसरणं पल्लं पल्लसंखं ति संखवस्सं ति ॥ २३१ ॥

पल्यस्य संख्यभागं संख्यगुणोनमसंख्यगुणहीनम्।
बन्धापसरणं पल्यं पल्यासंख्यमिति संख्यवर्षामिति ॥ २३१ ॥

सं० टी०—अन्तःकोटीकोटिमात्रस्थितिबन्धात्प्रभृतिपल्योत्पत्तिपर्यन्तं पल्यसंख्यातैकभागमात्रं स्थितिबन्धापसरणं भवति, पल्यमात्रस्थितिबन्धात्प्रभृति पल्यसंख्यातबहुभागमात्रं स्थितिबन्धापसरणं भवति। पल्यस्थितेरनन्तरं दूरापकृष्टिस्थितिपर्यन्तं संख्यातगुणहीनां पल्यसंख्यातैकभागमात्रीं स्थितिं बध्नातीत्यर्थः। दूरापकृष्टिस्थितेः प्रभृति संख्यातवर्षसहस्रमात्रस्थितिबन्धोत्पत्तिपर्यन्तं पल्यासंख्यातबहुभागमात्रं स्थितिबन्धापसरणं भवति। दूरापकृष्टेरनन्तरं संख्यातसहस्रमात्रस्थितिबन्धपर्यन्तं असंख्यातगुणहीनां पल्यासंख्यातैकभागमात्रीं स्थितिं बध्नातीत्यर्थः। संखगुणूणमसंखगुणमित्यत्र गुणशब्दस्य बहुभागवाचित्वात् ॥ २३१ ॥

बन्धापसरणबन्धके विषयमें विशेष खुलासा—

सं० चं०—अन्तःकोटाकोटी स्थितिबन्धतैं लगाय यावत् पल्यमात्र स्थितिबन्ध भया तावत् स्थितिबन्धापसरणका प्रमाण पल्यके संख्यातवें भागमात्र है। बहुरि पल्यमात्र स्थितिबन्धतैं लगाय दूरापकृष्टि स्थिति होइ तहां पल्यकौं संख्यातका भाग देइ बहुभागमात्र स्थितिबन्धापसरण हो है। पल्यस्थितिके अनन्तरि दूरापकृष्टि स्थितिपर्यन्त क्रमतैं संख्यातगुणा घाटि ऐसा पल्यका संख्यातवां भागमात्र स्थितिबन्ध हो है। ऐसा अर्थ जानना। बहुरि दूरापकृष्टि स्थितितैं लगाय यावत् संख्यात हजार वर्षमात्र स्थितिबन्ध होइ तहां पल्यकौं असंख्यातका भाग दीजिए बहुभागमात्र स्थितिबन्धापसरण है। दूरापकृष्टितैं लगाय संख्यात हजार वर्षमात्र स्थितिपर्यन्त क्रमतैं असंख्यातगुणी घाटि ऐसे पल्यके असंख्यातवें भागमात्र स्थितिबन्ध हो है। ऐसा जानना। एक स्थितिबन्धापसरणकालविषै जितना स्थितिबन्ध घट्या सो तौ स्थिति बन्धापसरण जानना अर ताकौं घटतैं जितना स्थितिबन्ध होइ तहां स्थितिबन्ध जानना ॥ २३१ ॥

विशेष—प्रकृत गाथामें मुख्यतासे कहाँ कितना स्थितिबन्धापसरण होता है इसका विचार किया है। उपशमश्रेणिमें अपूर्वकरणके प्रथम समयसे स्थितिबन्धापसरणका प्रमाण पल्यके संख्यातवें भागमात्र है। जबतक स्थिति घटकर पल्यप्रमाण नहीं प्राप्त होती तबतक यह क्रम चालू रहता

है। उसके बाद दूरापकृष्टिप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर शेष रही स्थितिका संख्यात बहुभागप्रमाण स्थितिबन्धापसरण होता है। उसके बाद संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर शेष रही स्थितिका असंख्यात बहुभागप्रमाण स्थितिबन्धापसरण होता है यह उक्त गाथाका तात्पर्य है।

अथ स्थितिबन्धक्रमकरणकाले स्थितिबन्धानां प्रमाणप्रदर्शनार्थमिदमाह—

एवं पल्ले जादे बीसीया तीसिया य मोहो य।
पल्लासंखं च कमे बंधेण य वीसियतियाओ[1] ॥ २३२ ॥

एवं पल्ये जाते वीसिया तीसिया च मोहश्च।
पल्यासंख्यं च क्रमे बन्धेन च वीसियत्रिकाः ॥ २३२ ॥

सं० टी०—एवमुक्तप्रकारेण वीसियतीसियमोहनीयपल्यजातस्थितिबन्धात्परं क्रमेण संख्यातसहस्रस्थितिबन्धापसरणैः क्रमकरणकालावसाने पल्यासंख्यातैकभागमात्रः स्थितिबन्धो भवति। तद्यथा—

वीसियतीसियमोहानां पल्यद्वयर्धपल्यद्वयमात्रस्थितिबन्धेभ्यः परं संख्यातसहस्रेषु नामगोत्रयोः पल्यसंख्यातबहुभागमात्रेषु तीसियमोहयोः पल्यसंख्यातैकभागमात्रेषु च स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु वीसियादीनां यथासंख्यं पल्यसंख्यातैकभागमात्रपल्यमात्रत्रिभागाधिकपल्यमात्राः स्थितिबन्धा एकस्मिन् काले जायन्ते। ततः संख्यातसहस्रेषु वीसियतीसिययोः पल्यसंख्यातबहुभागमात्रेषु मोहस्य पल्यसंख्यातैकभागमात्रेषु च स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु वीसियादीनां यथासंख्यं पल्यसंख्यातैकभागमात्रपल्यमात्रस्थितिबन्धा जायन्ते। वीसियस्थितिबन्धात् तीसियपस्थितिबन्धः संख्येयगुण इति विशेषो ज्ञेयः। ततः परं संख्यातसहस्रेषु त्रयाणामपि पल्यसंख्यातबहुभागमात्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु नामगोत्रयोर्दूरापकृष्टिसंज्ञश्चरमः पल्यसंख्यातैकभागमात्रः, तीसियमोहयोः यथायोग्यपल्यसंख्यातैकभागमात्रावस्थितिबन्धा जायन्ते। तीसियस्थितिवन्धात् चालीसियस्थितिबन्धः संख्यातगुणः इत्ययं विशेषो द्रष्टव्यः। ततः परं संख्यातसहस्रेषु वीसियस्य पल्यासंख्यातबहुभागमात्रेषु तीसियमोहयोः पल्यसंख्यातबहुभागमात्रेषु च स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु नामगोत्रयोः पल्यासंख्यातैकभागमात्रः तीसियस्य दूरापकृष्टिसंज्ञश्चरमः पल्यसंख्यातैकभागमात्रः मोहस्य यथायोग्यपल्यसंख्यातैकभागमात्रः स्थितिबन्धा जायन्ते। तीसियबन्धात् चालीसियबन्धः संख्यातगुण इत्ययं विशेषो ज्ञातव्यः। ततः परं संख्यातसहस्रेषु वीसियतीसिययोः पल्यासख्यातबहुभागमात्रेषु मोहस्य पल्यसंख्यातबहुभागमात्रेषु च स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु वीसियतीसिययोः पल्यासंख्यातैकभागमात्रो मोहस्य दूरापकृष्टिसंज्ञश्चरमः पल्यसंख्यातैकभागमात्रश्च स्थितिबन्धा युगपज्जायन्ते। वीसियबन्धात्तीसियबन्धोऽसंख्यातगुण इति विशेषः। ततः परं संख्यातसहस्रेषु त्रयाणामपि पल्यासंख्यातबहुभागमात्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु वीसियादीनां त्रयाणामपि पल्यासंख्यातैकभागमात्राः स्थितिबन्धा संभवन्ति। वीसियबन्धात्तीसियबन्धोऽसंख्येयगुणः। ततः मोहस्थितिबन्धोऽसंख्यातगुण इत्ययं विशेषो ज्ञेयः ॥ २३२ ॥

स्थितिबन्धके विषयमें विशेष निर्देश—

सं० चं०—तिस पल्यस्थितितैं परैं वीसीय तीसिय मोहनीयका स्थितिबन्ध है सो क्रमकरणकालका अन्तविषै पल्यका असंख्यातवाँ भागमात्र है। सोई कहिए है—

---

१. वही पृ० २४०।

बीसियादिकनिका पल्य डयोढ पल्य दोय पल्य स्थितिबन्धके परैं बीसयनिका तौ पल्यका संख्यात बहुभागमात्र अर तीसीय मोहका पल्यका संख्यातवाँ भागमात्र आयाम धरैं ऐसे संख्यात हजार स्थितिबन्धापसरण गएं वीसीयनिका पल्यके संख्यातवें भागमात्र तीसयनिका पल्यमात्र मोहका त्रिभाग अधिक पल्यमात्र स्थितिबन्ध एक कालविषैं हो है। बहुरि तातैं परै वीसीय तीसीयनिका पल्यका संख्यात बहुभागमात्र मोहका पल्यका संख्यातवाँ भागमात्र आयाम धरैं ऐसे संख्यात हजार स्थितिबन्धापसरण गएं वीसिय तीसीयनिका पल्यके संख्यातवें भागमात्र-मोहका पल्यमात्र स्थितिबन्ध हो है। इहां विशेष इतना वीसियकैं तैं तीसियका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हो है। बहुरि तातैं परै ·तीनोंहीकैं पल्यका संख्यात बहुभागमात्र आयाम धरैं ऐसे संख्यात हजार स्थितिबन्धापसरण गएं नाम गोत्रका दूरापकृष्टि है नाम जाका ऐसा पल्यका संख्यातवाँ भागमात्र अर तीसीय मोहका यथायोग्य पल्यका संख्यातवाँ भागमात्र स्थितिबन्ध भया। इहाँ विशेष इतना तीसीयकेतैं मोहका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है। बहुरि तातैं परै वीसीय-का पल्यका असंख्यातबहुभागमात्र अर तीसीय मोहका पल्यका संख्यातबहुभागमात्र प्रमाण धरैं ऐसे—संख्यात हजार स्थितिबन्धापसरण गएं वीसियनिका पल्यका असंख्यातवाँ भागमात्र तीसयनिका दूरापकृष्टि है नाम जाका ऐसा पल्यका संख्यातवाँ भागमात्र अर मोहका यथायोग्य पल्यका संख्यातवां भागमात्र स्थितिबन्ध युगपत् हो है। इहां तीसीयकेतैं चालीसियका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा जानना। बहुरि तातैं परैं वीसीय तीसीयनिका पल्यका असंख्यात बहुभागमात्र मोहका पल्यका संख्यात बहुभागमात्र प्रमाण धरैं ऐसे संख्यात हजार स्थितिबन्धापसरण गएं वीसीय तीसीयनिका पल्यके असंख्यातवें भागमात्र मोहका दूरापकृष्टि है नाम जाका ऐसा अन्तका पल्यका संख्यातवां भागमात्र स्थितिबन्ध हो है। इहां वीसीयकेतैं तीसीयका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा जानना। बहुरि तातैं परैं तीन्योहीका पल्यका असंख्यात बहुभागमात्र प्रमाण लीएं ऐसे संख्यात हजार स्थितिबन्धापसरण गएं तीनोंहीका पल्यके असंख्यातवें भागमात्र स्थितिबन्ध हो है। इहां वीसीयकेतैं तीसीयका तीसीयकेतैं मोहका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा जानना। इहां पर्यन्त तौ ऐसैं अनुक्रमतैं बन्ध हो है। आगैं अन्य अनुक्रम हो है सो दिखाइए है ॥ २३२ ॥

अथातः परं वीसियादीनां क्रमव्यत्यासप्रदर्शनार्थमिदमाह—

मोहगपल्लासंखट्ठिदिबंधसहस्सगेसु तीदेसु।
मोहो तीसिय हेट्ठा असंखगुणहीणयं होदि[1] ॥ २३३ ॥

मोहगपल्यासंख्यस्थितिबन्धसहस्रकेष्वतीतेषु।
मोहः तीसियं अधस्तना असंख्यगुणहीनकं भवति ॥ २३३ ॥

सं० टी०—वीसियादीनां त्रयाणामपि पल्यासंख्यातैकभागमात्रस्थितिबन्धात्परं संख्यातसहस्रेषु पल्या-संख्यातबहुभागमात्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु वीसियमोहतीसियानां स्वस्वप्राक्तनानन्तरस्थितिबन्धेभ्य असंख्येयगुणहीनाः पल्यासंख्यातैकभागमात्राः स्थितिबन्धा जायन्ते। तत्र सर्वतः स्तोकं वीसियस्थितिबन्धः। ततोऽसंख्येयगुणो मोहस्थितिबन्धस्तस्मादसंख्येयगुणस्तीसियस्थितिबन्धः। इदानींतनविशुद्धिविशेषकृतस्थितिबन्धा-

१. तदो जो एसो ट्ठिदिबंधो णामा-गोदाणं थोवो। मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। इद-रेसिं पि चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो। वही पृ० २४४।

पसरणमाहात्म्यात् पूर्वक्रमं परित्यज्य तीसियस्थितिबन्धस्याधो मोहस्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणहीनो जात इति क्रमव्यत्ययोऽत्र ज्ञातव्यः ॥ २३३ ॥

वीसियादिकके क्रमपरिवर्तनका निर्देश —

सं० चं०—तिस पल्यके असंख्यातवें भागमात्र स्थितिबन्धत पर पल्यका असंख्यात बहुभागमात्र आयाम धरैं ऐसे संख्यात हजार स्थितिबन्ध गएं पूर्वस्थितिबन्धतैं असंख्यातगुणा घटता ऐसा पल्यका असंख्यातवाँ भागमात्र स्थितिबन्ध तीनोंका हो है। तहां स्तोक तौ वीसीयनिका तातैं असंख्यातगुणा मोहका तातैं असंख्यातगुणा तीसीयनिका स्थितिबन्ध जानना। इहां विशुद्धताविशेषतैं तीसीयनितैं मोहका घटता स्थितिबन्धरूप क्रम भया ॥ २३३ ॥

अथ क्रमान्तरज्ञापनार्थमिदमाह—

तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे वीसियाण हेट्ठा वि।
एक्कसराहो मोहो असंखगुणहीणयं होदि[1] ॥ २३४ ॥

तावन्मात्रे बन्धे समतीते वीसियानां अधस्तनापि।
एकसदृशः मोहोऽसंख्यगुणहीनको भवति ॥ २३४ ॥

सं० टी०—ततः परं संख्यातसहस्रेषु पल्यासंख्यातबहुभागमात्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु मोहवीसियतीसियानां स्थितिबन्धाः पल्यासंख्यातैकभागमात्रा जायन्ते। तत्र सर्वतः स्तोकं मोहस्थितिबन्धः। ततोऽसंख्येयगुणो वीसियस्थितिबन्धः। ततोऽसंख्येयगुणस्तीसियस्थितिबन्धः। अद्यतनविशुद्धिविशेषजनितस्थितिबन्धापसरणमाहात्म्याद्वीसियस्थितिबन्धस्याधोऽसंख्येयगुणहीनो मोहस्थितिबन्धो जायत इति पूर्वक्रमादयमन्य एवं क्रमो जात इति ज्ञेयम् ॥२३४॥

पुनः क्रमान्तरका निर्देश—

स० चं०—तातैं परैं पल्यका असंख्यात बहुभागमात्र आयाम धरैं ऐसे संख्यात हजार स्थितिबन्ध गएं तीनोंका पल्यका असंख्यातवां भागमात्र स्थितिबन्ध हो है। तहां स्तोक मोहका तातैं असंख्यातगुणा तीसियनिका स्थितिबन्ध जानना। इहां विशुद्धता विशेषतैं वीसियनिकातैं भी मोहका घटता स्थितिबंध रूप क्रम भया ॥२३४॥

पुनरपि क्रमान्तरज्ञापनार्थमिदमाह—

तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे वेयणीयहेट्ठादु।
तीसियघादितियाओ असंखगुणहीणया होंति[2] ॥ २३५ ॥

---

१. तदो अण्णो ट्ठिदिबन्धो एक्कसराहेण मोहणीयस्स थोवो। णामा-गोदाणमसंखेज्जगुणो। इदरेसिं चदुण्हं पि कम्माणं तुल्लो असंखेज्जगुणो। वही. पृ. २४४।

२. तदो अण्णो ट्ठिदिबन्धो। एक्कसराहेण मोहणीयस्स ट्ठिदिबन्धो थोवो। णामा-गोदाणं पि कम्माणं ट्ठिदिबन्धो तुल्लो असंखेज्जगुणो। णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयाणं तिण्हं पि कम्माणं ट्ठिदिबन्धो तुल्लो असंखेज्जगुणो। वेदणीयस्स ट्ठिदिबन्धो असंखेज्जगुणो। वही पृ० २४५।

तावन्मात्रे बन्धे समतीते वेदनीयाधस्तनात् ।
तोसियघातित्रिका असंख्यगुणहीनका भवन्ति ॥ २३५ ॥

सं० टी०—ततः संख्यातसहस्रेषु पल्यासंख्यातबहुभागमात्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु मोहतीसियवीसियवेदनीयानां पल्यासंख्यातैकभागमात्राः स्थितिबन्धा जायन्ते । तत्र सर्वतः स्तोकं मोहस्थितिबन्धः ततोऽसंख्येयगुणो वीसियस्थितिबन्धः ततोऽसंख्येयगुणो घातित्रयस्थितिबन्धः ततोऽसंख्येयगुणो वेदनीयस्थितिबन्धः । अत्रापि विशुद्धिमाहात्म्यात्सातवेदनीयस्थितिबन्धस्याधोऽसंख्येयगुणहीनो घातित्रयस्थितिबन्धो ज्ञातव्य इति क्रमान्तरं ज्ञेयम् ॥२३५॥

दूसरे क्रमका निर्देश—

स० चं०—तातैं परैं पल्यका असंख्यात बहुभागमात्र आयाम धरैं ऐसे संख्यात हजार स्थितिबन्धापसरण गएं तीनोंका पल्यका असंख्यातवां भागमात्र स्थितिबन्ध हो है। तहां स्तोक मोहका तातैं असंख्यातगुणा बीसीयनिका तातैं असंख्यातगुणा तीसीयनिविषै तीन घातियनिका तातैं असंख्यातगुणा वेदनीयका स्थितिबन्ध हो है। इहां विशुद्धता विशेषतैं सातावेदनीयतैं तीन घातिया कर्मनिका स्थितिबन्ध घटता भया ॥२३५॥

पुनरपि क्रमभेदप्रदर्शनार्थमिदमाह—

तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे वीसियाण हेट्ठादु ।
तीसियघादितियाओ असंखगुणहीणया होंति ॥ २३६ ॥

तावन्मात्रे बन्धे समतीते वीसियानामधस्तात् ।
तोसियघातित्रिका असंख्यगुणहीनका भवन्ति ॥ २३६ ॥

सं० टी०—ततः परं संख्यातसहस्रेषु पल्यासंख्यातबहुभागमात्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु मोहतीसियवीसियवेदनीयानां स्थितिबन्धा पल्यासंख्यातैकभागमात्रा जायन्ते। तत्र सर्वतः स्तोकं मोहस्थितिबन्धः, ततोऽसंख्येयगुणस्तीसियस्थितिबन्धः । ततोऽसंख्येयगुणो वीसियस्थितिबन्धः ततः स्वर्धेनाधिको वेदनीयस्थितिबन्धः । वीसियस्थितीनामीदृशे स्थितिबन्धे $\frac{प}{a\ ५}$ तीसियस्थितीनां कीदृश इति त्रैराशिकसिद्धोऽयं $\frac{प\ ३}{a\ ५\ २}$ वेदनीयस्थितिबन्धः, अत्रापि विशुद्धिविशेषस्थितिबन्धनस्थितिबन्धासरणवशाद्वेदनीयस्थितिबन्धस्याधः संख्यातभागहीनो वीसियस्थितिबन्धो जातः । तस्याधोऽसंख्येयगुणहीनो घातित्रयस्थितिबन्धो जातस्तस्याप्यधोऽसंख्येयगुणहीनो मोहस्थितिबन्धो जात इतीदृशः क्रमभेदो ज्ञातव्यः ॥२३६॥

क्रमविशेषका कथन—

स० चं०—तातैं परैं पल्यका असंख्यात बहुभागमात्र आयाम धरैं संख्यात हजार स्थितिबन्ध गएं मोहादिकका पल्यका असंख्यातवां भागमात्र स्थितिबन्ध हो है। तहां स्तोक मोहका तातैं असंख्यातगुणा तीसियनिका तातैं असंख्यातगुणा बीसीयनिका तातैं ड्योढा वेदनीयका स्थितिबन्ध जानना। इहाँ विशुद्धताविशेषतैं ऐसा क्रम भया ॥२३६॥

---

१. तिण्हंपि कम्माणं ट्ठिदिबन्धस्स वेदणीयस्स ट्ठिदिबन्धादो आसरन्तस्स णत्थि वियप्पो संखेज्जगुणहीणो वा विसेसहीणो वा एक्कसराहेण असंखेज्जगुणहीणो। वही पृ० २४६ ।

अथ इदमेव क्रमकरणमुपसंहरन्निदमाह—

तक्काले वेयणियं णामागोदादु साहियं होदि ।
इदि मोहतीसवीसियवेयणियाणं कमो जादो ॥ २३७ ॥

तत्काले वेदनीयं नामगोत्रतः साधिकं भवति ।
इति मोहतीसवीसियवेदेनीयानां क्रमो जातः ॥२३७॥

सं० टी०—तस्मिन् मोहतीसियवीसियवेदनीयानां स्थितिबन्धक्रमकरणकाले वेदनीयस्थितिबन्धो नामगोत्रस्थितिबन्धात्साधिको भवति । अतः परमनेनैव क्रमेणान्तर्मुहूर्तपर्यंतं संख्यातसहस्रेषु पल्यासंख्यातबहुभागमात्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु मोहतीसियवीसियवेदनीयानां स्वस्वयोग्यपल्यासंख्यातैकभागमात्राः स्थितिबन्धाः क्रमकरणावसाने जायन्ते । पूर्वसूचितसंख्यातवर्षसहस्रमात्रस्थितिबन्धोऽत्रावसरे न संभवति । अन्तरकरणात्परमेव तस्य संभव इति क्रमकरणावसाने प्रतिपादितः । सर्वेषां कर्मणां स्थितिसत्त्वं संख्यातसहस्रमात्रस्थितिकाण्डकघातसद्भावेऽप्यन्तःकोटीकोटिप्रमाणमेवोपशमश्रेण्यां दीर्घस्थितिकाण्डकघातासंभवात् । एवमनुभागकाण्डकघातगुणश्रेणिनिर्जरादिविधानमप्यस्मिन्नवसरे प्रवर्तत एवेति ज्ञातव्यम् ॥२३७॥

क्रमकरणका उपसंहार—

स० चं०—तीहिं क्रमकरण कालविषैं नाम गोत्रकेतैं वेदनीयका साधिक बन्ध भया सो इस ही अनुक्रम लीएं अंतर्मुहूर्त पर्यंत पल्यका असंख्यात बहुभागमात्र आयाम धरैं संख्यात हजार स्थितिबन्धापसरण भएं क्रमकरण कालका अन्त समयविषैं अपने अपने योग्य पल्यका असंख्यातवां भागमात्र बन्ध हो है । संख्यात हजार वर्षमात्र स्थितिबन्ध इहां न हो है । अन्तरकरणतैं परैं होगा । बहुरि सर्व कर्मनिका स्थितिसत्त्व इहां संख्यात हजार स्थितिकांडक घात होतैं भी अंतःकोटाकोटी सागर प्रमाण ही रहै है, जातैं उपशम श्रेणिविषैं स्थितिकांडक आयाम दीर्घ नाही है । स्तोक प्रमाण लीएं हैं ॥२३७॥

अथ क्रमकरणावसाने संभवक्रियान्तरप्रदर्शनार्थमाह—

तीदे बंधसहस्से पल्लासंखेज्जयं तु ठिदिबंधो ।
तत्थ असंखेज्जाणं उदीरणा समयपबद्धाणं[1] **॥ २३८ ॥**

अतीते बन्धसहस्रे पल्यासंख्येयं तु स्थितिबन्धः ।
तत्र असंख्येयानां उदीरणा समयप्रबद्धानाम् ॥२३८॥

सं० टी०—मोहतीसियवीसियवेदनीयानां स्थितिबन्धक्रमप्रारम्भात्परं संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धापसर-

---

१. तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो । एक्कसराहेण मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो थोवो । णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयाणं तिण्हं पि कम्माणं ट्ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो । णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ । वही पृ० २४७ ।

२. एदेण अप्पाबहुअविहिणा संखेज्जाणि ट्ठिदिबंधसहस्साणि कादूण जाणि पुण कम्माणि बज्झंति ताणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । तदो असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा । वही पृ० २४८-२४९ ।

णेषु अतीतेषु यदा क्रमकरणावसाने मोहादीनां पल्यासंख्यातैकभागमात्राः स्थितिबन्धा जाता तदाऽसंख्येयसमय-प्रबद्धानामुदीरणा भवति। इतः पूर्वमपकृष्टद्रव्यस्य पल्यासंख्यातभागखण्डितस्य बहुभागद्रव्यमुपरितनस्थितौ निक्षिप्य तदेकभागं पुनरसंख्यातलोकेन खण्डयित्वा तद्बहुभागद्रव्यं गुणश्रेण्यायामे निक्षिप्य तद्वदेकभागमुदया-वल्यां निक्षिपतीति समयप्रबद्धासंख्यातैकभागमात्रमेवोदीरणाद्रव्यम्। इदानीं पुनरसंख्यातलोकभागहारं त्यक्त्वा पल्यासंख्यातभागेन खण्डितैकभागमुदयावल्यां निक्षिपतीति असंख्येयसमयप्रबद्धमात्रमुदीरणाद्रव्यमित्यर्थः ।।२३८।।

क्रमकरणके अन्तमें उदीरणा विशेषका निर्देश—

स० चं०—क्रमकरण प्रारम्भका समयतैं लगाय संख्यात हजार स्थितिबन्धापसरण गए जहाँ क्रमकरणका अन्तविषैं मोहादिकनिका पल्यका असंख्यातवां भागमात्र स्थितिबन्ध भया तहाँ असंख्यात समयप्रबद्धनिकी उदोरणा हो है। इहाँतैं पहिले गुणश्रेणिके अर्थि अपकर्षण कीया द्रव्यकौ पल्यका असंख्यातवाँ भागका भाग देइ तहाँ बहुभाग उपरितन स्थितिविषै निक्षेपण करि अवशेष एक भागकौं असंख्यात लोकका भाग देइ बहुभाग गुणश्रेणि आयामविषै एक भाग उदयावलीविषै निक्षेपण होतैं तहाँ उदयावलीविषै दीया ऐसा जो उदीरणा द्रव्य सो समयप्रबद्धके असंख्यातवें भागमात्र आवै है। बहुरि इहाँतैं लगाय अपकर्षण कीया द्रव्यकौं पल्यका असंख्यातवाँ भागका भाग देइ तहाँ बहुभाग उपरितन स्थितिविषैं निक्षेपणकरि अवशेष एक भागकौं पल्यका असंख्यातवाँ भागका भाग देइ बहुभाग गुणश्रेणि आयामविषै एक भाग उदयावलीविषै दीजिए है। सो इहाँ उदयावलीविषैं दीया ऐसा जो उदीरणा द्रव्य सो असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण आवै है ।।२३८।।

ठिदिबंधसहस्सगदे मणदाणा तत्तिये वि ओहिदुगं।
लाभं व पुणो वि सुदं अचक्खु भोगं पुणो चक्खु[1] ।। २३९ ।।
पुणरवि मदि-परिभोगं पुणरवि विरयं कमेण अणुभागो।
बंधेण देशघादी पल्लासंखं तु ठिदिबंधे[2] ।। २४० ।।

स्थितिबन्धसहस्रगते मनोदाने तावन्मात्रेऽपि अवधिद्विकम्।
लाभो वा पुनरपि श्रुतं अचक्षुर्भोगं पुनश्चक्षुः ।। २३९ ।।
पुनरपि मतिपरिभागं पुनरपि वीर्यं क्रमेण अनुभागः।
बन्धेन देशघातिः पल्यासंख्यं तु स्थितिबन्धे ।। २४० ।।

सं० टी०—असंख्यातसमयप्रबद्धोदीरणाप्रारम्भात्परं संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु मनः-पर्ययज्ञानावरणीयदानान्तराययोः सर्वघातिस्थानानुभागबन्धं परित्यज्य देशघातिस्पर्धकरूपद्विस्थानानुभागं

---

१. तदो संखेज्जेसु ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु मणपज्जवणाणावरणीय-दाणंतराइयाणमणुभागो बंधेण देसघादी होइ। तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधेसु गदेसु ओहिणाणावरणीयं-ओहिदंसणावरणीयं लाभंतराइयं च बंधेण देसघादिं करेदि। तदो संखेज्जेसु ठिदिबंधेसु गदेसु सुदणाणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं भोगंतराइयं च बंधेण देसघादिं करेदि। तदो संखेज्जेसु ठिबंधेसु गदेसु चक्खुदंसणावरणीयं बंधेण देसघादिं करेदि। वही पृ० २४९ से २५१।

२. तदो संखेज्जेसु ठिदिबंधेसु गदेसु आभिणिबोहियणाणावरणीयं परिभोगंतराइयं च बंधेण देसघादिं करेदि। तदो संखेज्जेसु ठिदिबंधेसु गदेसु वीरियंतराइयं बंधेण देसघादिं करेदि। वही पृ० २५१।

बध्नाति । ततः परं संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु अवधिज्ञानावरणावधिदर्शनावरणलाभान्तरायाणां देशघातिस्पर्धकद्विस्थानानुभागं बध्नाति । ततः परं संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु श्रुतज्ञानावरणाचक्षुर्दर्शनावरणभोगान्तरायाणां देशघातिस्पर्धकद्विस्थानानुभागं बध्नाति । ततः परं संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु चक्षुर्दर्शनावरणस्य देशघातिस्पर्धकद्विस्थानानुभागं बध्नाति । ततः परं संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु मतिज्ञानावरणोपभोगान्तराययोर्देशघातिस्पर्धकद्विस्थानानुभागं बध्नाति । ततः परं संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु वीर्यान्तरायस्य देशघातिस्पर्धकद्विस्थानानुभागं बध्नाति । अस्माद्देशघातिकरणप्रारम्भात्प्रागवस्थायां संसारावस्थायां च सर्वघातिस्पर्धकानुभागमेव बध्नातीत्यर्थः । चतुःसंज्वलनपुंवेदानां देशघातिस्पर्धकानुभागबन्धः कुतो न कथित इति नाशंकितव्यम्, संयमासंयमग्रहणात्प्रभृति तेषां देशघातिस्पर्धकद्विस्थानानुभागबन्धस्यैव प्रतिसमयमनन्तगुणहान्या वर्तमानत्वात् सत्कर्मानुभागः पुनः सर्वघातिस्पर्धकद्विस्थानरूप एव प्रवर्तते, तस्य देशघातिकरणाभावात् । एवं देशघातिकरणपर्यवसानेऽपि मोहतीसियवीसियवेदनीयानां स्थितिबन्धः स्वस्वयोग्यपल्यासंख्यातभागमात्रो भवति ॥ २३९–२४० ॥

सं० चं०—क्रमकरण कहिए अब देशघातीकरण कहै हैं सो पूर्वै प्रकृतिनिका सर्वघाती स्पर्धकरूप अनुभाग बांध्या था अब देशघाती करणतैं लगाय दारुलता समान द्विस्थानगत देशघाती स्पर्धकरूप ही अनुभागकौं बांधै है। तहां असंख्यात समयप्रबद्ध उदीरणाका प्रारम्भतैं परैं संख्यात हजार स्थितिबन्धापसरण गएं मनःपर्यय ज्ञानावरण दानांतरायका देशघाती बन्ध हो है। तातैं परैं तितने तितने ही स्थितिबन्धापसरण गएं क्रमतैं अवधिज्ञानावरण अवधिदर्शनावरण लाभान्तरायनिका अर श्रुतज्ञानावरण अचक्षुदर्शनावरण भोगान्तरायका चक्षुर्दर्शनावरणका अर मतिज्ञानावरण उपभोगान्तरायका अर वीर्यान्तरायका देशघाती बन्ध हो है। इहां प्रश्न—

जो संज्वलनचतुष्क पुरुषवेदनिका देशघातिकरण इहां क्यों न कह्या ? ताका समाधान—जो तिनिका अनुभागबन्ध संयमासंयमका ग्रहण समयतैं लगाय समय-समय अनन्तगुणा घटता-क्रम लीएं द्विस्थानगत हो है तातैं इहां कीया न कह्या। बहुरि तिनिका सत्तारूप अनुभाग-सर्वघाती वर्तै ही है। बहुरि देशघातीकरणका अन्तविषै भी मोहादिकनिका स्थितिबन्ध अपने योग्य पल्यका असंख्यातवाँ भागमात्र ही है ॥ २३९–२४० ॥

अथान्तरकरणनिरूपणार्थं गाथाचतुष्टयमाह—

तो देसघातिकरणादुवरिं तु गदेसु तत्तियपदेसु ।
इगिवीसमोहणीयाणंतरकरणं करेदीदि[1] ॥ २४१ ॥

अतो देशघातिकरणादुपरि तु गतेषु तावत्कपदेषु ।
एकविंशमोहनीयानामन्तरकरणं करोतीति ॥ २४१ ॥

सं० टी०—ततो देशघातिकरणस्योपरि संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धापसरणेषु गतेष्वनन्तानुबन्धिवर्जितद्वादशकषायाणां नवनोकषायाणां च चारित्रमोहप्रकृतीनां मिलित्वैकविंशतेरन्तरकरणं करोत्यनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्त्युपशमकः ॥ २४१ ॥

---

१. तदो देसघादिकरणादो संखेज्जेसु ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु अंतरकरणं करेदि । बारसण्हं कसायाणं णवण्हं णोकसायवेदणीयाणं च, णत्थि अण्णस्स कम्मस्स अंतरकरणं । वही पृ० २५२-२५३ ।

सं० चं०—तिस देशघाति करणतें उपरि संख्यात हजार स्थितिबन्ध गए इकईस मोहनीयकी प्रकृतिनिका अन्तरकरण करै है। ऊपरिके वा नीचेके निषेक छोडि बीचिके विवक्षित केते इकनिका अभाव करना सो अन्तरकरण जानना ॥ २४१ ॥

संजलणाणं एक्कं वेदाणेक्कं उदेदि तं दोण्हं।
सेसाणं पढमट्ठिदिं ठवेदि अंतोमुहुत्त आवलियं[1] ॥ २४२ ॥

संज्वलनानामेकं वेदानामेकं उदेति तत् द्वयोः।
शेषाणां प्रथमस्थितिं स्थापयति अंतर्मुहूर्तमावलिकाम् ॥ २४२ ॥

सं० टी०—संज्वलनक्रोधमानमायालोभानां मध्ये एकतमः कषायः स्त्रीपुंनपुंसकवेदानां चैकतमो वेद उदेति। एकतमकषायवेदोदयेन श्रेणिमारोहति संयत इत्यर्थः। ततस्तयोरुदयमानयोः कषायवेदयोः प्रथमस्थितिमन्तर्मुहूर्तमात्रीं शेषाणामुदयरहितानां कषायवेदानां प्रथमस्थितिमवलीमात्रीं स्थापयत्यन्तरकरणप्रारम्भकः। तावन्मात्रनिषेकान् मुक्त्वा तदुपरितननिषेकाणामन्तरं करोतीत्यर्थः ॥ २४२ ॥

सं० चं०—संज्वलन क्रोध मान माया लोभविषै कोई एकका अर स्त्री पुरुष नपुंसक वेदनिविषै कोई एकका उदय सहित श्रेणी चढै तिन उदयरूप दोय प्रकृतिनिकी तौ प्रथमस्थिति अन्तर्मुहूर्त स्थापै है। अर अवशेष उगणीस प्रकृतिनिकी प्रथम स्थिति आवलीमात्र स्थापै है। इस प्रथम स्थितिप्रमाण निषेकनिकौं नीचैं छोडि ऊपरिके निषेकनिका अन्तर करै है ऐसा अर्थ जानना ॥ २४२ ॥

उवरि समं उक्कीरइ हेट्ठा वि समं तु मज्झिमपमाणं।
तदुपरि पढमठिदीदो संखेज्जगुणं हवे णियमा[2] ॥ २४३ ॥

उपरि समं उत्कीर्यते अधस्तनापि समं तु मध्यमप्रमाणं।
तदुपरि प्रथमस्थितितः संख्येयगुणं भवेत् नियमात् ॥ २४३ ॥

सं० टी०—अन्तरायामस्याग्रनिषेका उदयानुदयप्रकृतीनां सदृशा एवोत्कीर्यन्ते, अन्तरोपरितनद्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकाणां सदृशत्वात्। अन्तरायामस्याधस्तनचरमनिषेका उदयरहितप्रकृतीनामन्योन्यं सदृशा एव। उदयवत्प्रकृत्योश्च परस्परं सदृशा एव। उदयमानानुदयप्रकृत्योस्तु विसदृशा अन्तर्मुहूर्तावलिमात्रप्रथमस्थितिवैषम्यवशात्। एवं विधान्तरायामप्रमाणं च ताभ्यां द्वाभ्यामन्तर्मुहूर्तावलिमात्रीभ्यां प्रथमस्थितिभ्यां संख्यातगुणितमेव भवति। उदयमानप्रकृत्योर्गुणश्रेणिशीर्षनिषेकान् ततः संख्येयगुणोपरितनस्थितिनिषेकांश्चान्तर्मुहूर्तमात्रान् गृहीत्वान्तरं करोतीत्यर्थः ॥ २४३ ॥

सं० चं०—अन्तरायामका अन्त निषेकतैं उपरिवर्ती जे निषेक ते उदयरूप वा अनुदयरूप सर्व प्रकृतिनिका समान हैं तातैं अन्तरायामके उपरि द्वितीय स्थितिका प्रथम निषेक सब

१. जं संजलणं वेदयदि, जं च वेदं वेदयदि एदेसिं दोण्हं कम्माणं पढमट्ठिदीओ अंतोमुहुत्तगाओ ठवेदूण अंतरकरणं करेदि। पढमठिदीदो संखेज्जगुणाओ ठिदीओ आगाइदाओ अंतरट्ठं। सेसाणमेकारसण्हं कसायाणमट्ठण्हं च णोकसायवेदणीयाणमुदयावलियं मोत्तूण अंतरं करेदि। वही पृ० २५३-२५४।

२. उवरि समठिदिअंतरं, हेट्ठा विसमठिदिअंतरं। वही पृ० २५४।

प्रकृतिनिका तहाँ एक कालवर्ती होनेतैं समान हैं। बहुरि अन्तरायामका प्रथम निषेकके नीचैं जो निषेक सो उदय प्रकृतिनिका परस्पर समान है। वा अनुदय प्रकृतिनिका परस्पर समान है अर उदय अनुदय प्रकृतिनिका समान नाहीं। जातैं इनके प्रथम स्थितिविषैं समान नाहीं। जो प्रथम स्थितिका अन्तका निषेक सोई अन्तरायामका नीचेका निषेक है। बहुरि अन्तर्मुहूर्त वा आबलीमात्र जो उदय अनुदय प्रकृतिनिका प्रथम स्थिति तातैं संख्यातगुणा ऐसा अन्तर्मुहूर्तमात्र अन्तरायाम है। इतने निषेकनिका अभाव करिए है। तहाँ उदयमान प्रकृतिनिकै तौ गुणश्रेणि शीर्षके निषेक अर तिनतैं संख्यात गुणे उपरितन स्थितिके निषेक तिनकौं ग्रहि अन्तर करै है। अर अनुदय प्रकृतिनिका अवशेष इहाँ पाइए जो गुणश्रेणी आयाम अर तिनतैं संख्यातगुणे उपरितन स्थितिके निषेक तिनकौं ग्रहकरि अन्तर करै है ॥२४३॥

अंतरपढमे अण्णो ठिदिबंधो ठिदिरसाण खंडो य।
एयट्ठिदिखंडुक्कीरणकाले अंतरसमत्ती[1] ॥ २४४ ॥

अन्तरप्रथमे अन्यः स्थितिबन्धः स्थितिरसयोः खण्डश्च।
एकस्थितिखण्डोत्करणकाले अन्तरसमाप्तिः ॥२४४॥

सं० टी—अन्तरकरणप्रथमसमये अन्य एव स्थितिबन्धः प्राक्तनस्थितिबन्धादसंख्यातगुणहीनः, स्थितिखण्डं चान्यदेव प्राक्तनस्थितिखण्डाद्विशेषहीनं अन्यदेवानुभागखण्डं च प्राक्तनानुभागखण्डादनन्तगुणहीनं प्रारभ्यते। एवंविधैकस्थितिखण्डोत्करणकालसमेनान्तर्मुहूर्तेनान्तरसमाप्तिर्भवति। तत्समाप्तौ च प्रकृतसमस्थितिखण्डोत्करणं संख्यातसहस्रानुभागखण्डोत्करणानि च युगपत् समाप्यन्त इत्यर्थः। ॥ २४४।

स० चं०—अन्तर करणका प्रथम समयविषै पूर्व स्थितिबन्धतैं असंख्यातगुणा घटता ऐसा और ही स्थितिबंध अर पूर्व स्थितिकांडकतैं किछू घटता ऐसा और ही स्थिति कांडक अर पूर्व अनुभागकांडकतैं अनन्तगुणा घटता ऐसा और ही अनुभागकांडकका प्रारम्भ हो है। तहाँ एक स्थितिकांडकोत्करणका जेता काल तितने कालकरि अन्तरकरण करिए है। ताका समाप्ति होतैं एक स्थितिकांडक घात भया। तीहिंविषै संख्यात हजार अनुभागकांडकनिका घात भया ऐसा अर्थ जानना ॥२४४॥

अथान्तरोत्कीर्णद्रव्यनिक्षेपनिरूपणार्थं गाथात्रयमाह—

अंतरहेदुक्कीरिदव्वं तं अंतरम्हि ण य देदि।
बंधंताणंतरजं बंधाणं विदियगे देदि[2] ॥ २४५ ॥

१. जाधे अंतरमुक्कीरदि ताधे अण्णो ट्ठिदिबंधो पबद्धो अण्णं ट्ठिदिखंडयसण्णमणुभागखंडयं च गेण्हदि। अणुभागखंडयसहस्सेसु गदेसु अण्णमणुभागखंडयं ते चेव ट्ठिदिखंडयं सो चेव ट्ठिदिबंधो अन्तरस्स उक्कीरणद्धा च समगं पुण्णाणि। वही पृ० २५५-२५६।

२. जे पुण कम्मंसा बज्झमाणा चेव केवलं, ण वेदिज्जमाणा जहा परोदयेण विवक्खाए पुरिसवेदो अण्णदरसंजलणो वा, तेसिमंतरट्ठिदीसु उक्कीरिज्जमाणस्स पदेसागस्स अप्पणो विदियट्ठिदीए उक्कड्डणावसेण संचारो। सोदयाणं बज्झमाणाणं पढमठिदीसु अणुदयाणं बज्झमाणाणं विदियठिदीए च संचारो ण विरुद्धो त्ति। जयध० पु० १३, पृ० १६०।

अन्तरहेतूत्कीरितद्रव्यं तदन्तरे न च ददाति ।
बध्यमानानामन्तरजं बन्धानां द्वितीयके ददाति ॥२४५॥

सं० टी०—अन्तरनिमित्तमन्तरायामे उत्कीर्णं द्रव्यमन्तरायामस्थितिषु नैव निक्षिपति । पुनः केवलबध्यमानप्रकृतीनां स्त्रीनपुंसकवेदयोरन्यतरोदयेन संज्वलनकषायाणामन्यतमोदयेन च श्रेणिमारूढस्य पुंवेदशेषत्रिसंज्वलनानामन्तरायामे उत्कीर्णं द्रव्यं तात्कालिके स्वबन्धे आबाधां मुक्त्वा द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकादारभ्य चरमपर्यंतं यथायोग्यमुत्कर्षणवशेन निक्षिपति । उदीयमानेतर (वेद) कषाययोः प्रथमस्थितौ चापकर्षणवशेन निक्षिपतीत्ययं विशेषः सिद्धान्तानुसारेण ज्ञातव्यः ॥ २४५ ॥

सं० चं०—अंतरके निमित्त उत्कीर्ण कीया द्रव्यकौं अंतरायामविषै न दे है। भावार्थ—अंतरायामके निषेकनिका द्रव्यकौं तहां अभावकरि कोई अंतरायामरूप निषेकनिविषैं ही न मिलाइए है। तौ कहां मिलाइए है सो कहै हैं—

जिनका उदय न पाइए केवल बन्ध ही पाइए है ऐसी जे स्त्री वा नपुंसक वेद अर एक कोई कषाय सहित श्रेणी चढनेवालेकैं पुरुषवेद अर तीन संज्वलन कषाय ए च्यारि प्रकृति तिनका द्रव्यकौं उत्कर्षणकरि तौ तत्काल जो अपना तिसही प्रकृतिका जो बन्ध भया ताकी आबाधाकौं छोडि ताहीका द्वितीय स्थितिकौं प्रथम निषेकतैं लगाय यथायोग्य अंत पर्यन्त निक्षेपण करै है अर अपकर्षणकरि उदयरूप जो अन्य कषाय ताकी प्रथम स्थितिविषै निक्षेपण करै है ॥२४५॥

उदयिल्लाणंतरजं सगपढमे देदि बंधविदिये च[1] ।
उभयाणंतरदव्वं पढमे विदिये च संछुहदि[2] ॥ २४६ ॥

आदयिकानामन्तरजं स्वकप्रथमे ददाति बन्धद्वितीये च ।
उभयानामन्तरद्रव्यं प्रथमे द्वितीये च संक्षिपति ॥२४६॥

सं० टी०—केवलमुदयमानयोः स्त्रीनपुंसकवेदयोरन्तरायामे उत्कीर्णं द्रव्यं स्वस्वप्रथमस्थितावपकृष्य निक्षिपति । बध्यमानेतर (वेद) कषायाणां द्वितीयस्थितौ चात्कृष्य संक्रामयतीत्ययं विशेषोऽपि राद्धान्तोक्तः संप्रधार्यः । पुनर्बन्धोदयवतोः पुंवेदान्यतमकषाययोरन्तरायामे उत्कीर्णं द्रव्यमपकृष्योदयमानप्रकृतिप्रथमस्थितौ निक्षिपति बध्यमानप्रकृतिद्वितीयस्थितौ चोत्कृष्य निक्षिपति । अत्रापि परप्रकृतिप्रथमद्वितीययोः स्थित्योरपकर्षणोत्कर्षणवशेन संक्रमयतीत्ययमपि विशेषः कृतान्तसिद्धो बोद्धव्यः ॥ २४६ ॥

सं० चं०—जिनका बन्ध न पाइए केवल उदय ही पाइए ऐसा स्त्रीवेद वा नपुंसकवेद

---

१. जे कम्मंसा ण बज्झंति वेदिज्जंति च तेसिमुक्कीरमाणयं पदेसग्गं अप्पणो पढमट्ठिदीए च देदि । बज्झमाणीणं पयडीणमणुक्कीरमाणीसु च ट्ठिदीसु देदि । क, चु, जयध, पु० १३, पृ० २४८। जे पुण कम्मंसा ण बज्झंति वेदिज्जंति च, जहा इत्थिवेदो णवुंसयवेदो वा तेसिमंतरट्ठिदिपदेसग्गं घेत्तूण अप्पणो पढमट्ठिदीए च ओकड्डणासंकमेण देदि, उदइल्लाणं संजलणाणं पढमट्ठिदीए च ओकड्डण-परपयडिसंकमेहि समयाविरोहेण णिक्खिवदि, विदयट्ठिदीए च बंधम्मि उक्कड्डियूण णिक्खिवदि । जयध, पु, १३, पृ० २६० ।

२. अंतरं करेमाणस्स जे कम्मंसा बज्झंति वेदिज्जंति तेसिं कम्माणमंतरट्ठिदीओ उक्कीरितो तासिं ट्ठिदीणं पदेसग्गं बंधपयडीणं पढमट्ठिदीए च देदि विदियट्ठिदीए च देदि । क, चु, जयध, पु. १३, पृ० २५६ ।

तिनका अन्तरसम्बन्धी द्रव्यकौं अपकर्षण करि अपनी प्रथम स्थितिविषै निक्षेपण करै है। अर उत्कर्षण करि तहां बँधै हैं जे अन्य कषाय तिनकी द्वितीय स्थितिविषै निक्षेपण करै है। (बहुरि अपकर्षण करि उदयरूप अन्य क्रोधादि कषायकी प्रथम स्थितिविषै संक्रमण हो है। तिस उदय प्रकृतिरूप परिणमै है इतना भी सिद्धान्तोक्त विशेष जानना। बहुरि जिनिका बन्ध भी अर उदय भी पाइये ऐसा पुरुषवेद वा कोई एक कषाय तिनके अन्तरसम्बन्धी द्रव्यकौं अपकर्षण करि उदयरूप प्रकृतिनिकी प्रथम स्थितिविषै निक्षेपण करै है। अर उत्कर्षण करि तहाँ बँधै हैं जे प्रकृति तिनकी द्वितीय स्थितिविषै निक्षेपण करै हैं। इहां भी अन्य प्रकृतिकी प्रथम द्वितीय स्थितिविषै उत्कर्षण अपकर्षणका वशकरि अन्य प्रकृति परिणमनेरूप संक्रमण हो है ऐसा विशेष जानना।

अणुभयगाणंतरजं बंधंताणं च विदियगे देदि[1]।
एवं अंतरकरणं सिज्झदि अंतोमुहुत्तेण ॥ २४७ ॥

अनुभयकानामन्तरजं बध्यमानानां च द्वितीयके ददाति।
एवमन्तरकरणं सिद्धयति अन्तर्मुहूर्तेन ॥ २४७ ॥

सं० टी०—बन्धोदयरहितानां मध्यमाष्टकषायहास्यादिषण्णोकषायाणामन्तरायामे उत्कीर्णं द्रव्यं तात्कालिकोदयमात्रप्रकृतिप्रथमस्थितावपकृष्य संक्रमयति। बध्यमानप्रकृतिद्वितीयस्थितौ चोत्कृष्य संक्रमयति। सर्वत्र बन्धरहितानामन्तरद्रव्यं स्वद्वितीयस्थितौ न निक्षिपति। उदयरहितानामन्तरद्रव्यं स्वप्रथमस्थितौ न निक्षिपति इति विशेषो निर्णेतव्यः। एवमन्तर्मुहूर्तकालेनान्तरकरणं सिध्यति। अत्रान्तरकरणप्रारम्भसमयादारम्य प्रथमस्थित्यन्तरायामौ व्यवस्थितप्रमाणौ द्रष्टव्यौ। उदयावल्यां एकस्मिन् समये गलिते, गुणश्रेणिसमयस्यैकस्योदयावल्यां प्रवेशात्। तदैवान्तरायामसमयस्यैकस्य गुणश्रेण्यायामे प्रवेशात्। तदैव च द्वितीयस्थितिनिषेकस्यैकस्यान्तरायामे प्रवेशात्। एवं द्वितीयस्थितिरेव हीयते प्रथमस्थित्यान्तरायामौ तदवस्थावेवेति निश्चेतव्यम् ॥ २४७ ॥

स० चं०—बन्ध उदय रहित जे अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान कषाय अर हास्यादि छह नोकषाय तिनका अन्तरसम्बन्धी द्रव्यका अपकर्षण करि तिस काल उदयरूप जे अन्य प्रकृति तिनकी प्रथम स्थितिविषै संक्रमण हो है तद्रूप परिणमैं हैं। अर उत्कर्षण करि तिस काल विषै बँधै हैं जे अन्य प्रकृति तिनकी द्वितीय स्थितिविषै संक्रमण हो है तद्रूप परिणमै है ऐसैं प्रकृतिनिका जिन निषेकनिका अभावकरि अन्तर कीया तिनके द्रव्यकौं निक्षेपण करै हैं। इहाँ इतना जानना— बन्ध रहित प्रकृतिनिका द्रव्यकौं तौ अपनी द्वितीय स्थितिविषै अर उदय रहित प्रकृतिनिका द्रव्यकौं अपनी प्रथम स्थितिविषै नाही निक्षेपण करै है। बहुरि प्रथम स्थिति तौ अन्तरायामके नीचैं है तातैं तहाँ देनेविषै स्थिति घटै है। तातैं तहाँ अपकषर्ण कह्या। अर द्वितीय स्थिति अन्तरायामके उपरिवर्ती है तातै तहाँ द्रव्य दीएं स्थिति बधै है तहां उत्कर्षण कह्या। ऐसैं अंतर्मुहूर्त कालकरि अन्तर करनेकी समाप्तता हो है। इहां अन्तर करणका प्रथम समयतैं लगाय प्रथम स्थिति अर अन्तरायामका प्रमाण जेताका तेता रहै है। जब उदयावलीका एक समय

---

१. जे कम्मंसा ण बज्झंति ण वेदिज्जंति तेसिमुक्कीरमाणं पदेसग्गं बज्झमाणीणं पयडीणमणुक्कीरमाणीसु ट्ठिदीसु देदि। क० चु० जयध० पु० १३, पृ० २५९।

व्यतीत होइ तब गुणश्रेणिका एक समय उदयावलीविषै मिलै। अर तब ही गुणश्रेणिविषै अन्तरायामका एक समय मिलै अर तब ही अन्तरायामविषे द्वितीय स्थितिका एक निषेक मिलै। द्वितीय स्थिति घटै है। प्रथम स्थिति अर अंतरायाम जेताका तेता रहै है ऐसा जानना ।।२४७।।

विशेष—(१) जयधवलामें जिन प्रकृतियोंका अन्तरकरण होता है उनकी अन्तरसम्बन्धी स्थितियोंका कहाँ किस प्रकार निक्षेप होता है इसका विशेष खुलासा इस प्रकार किया है। अन्तर करनेवाला जो जीव जिन कर्मोंको बाँधता है और वेदता है उन कर्मोंकी अन्तरको प्राप्त होनेवाली स्थितियोंमेंसे उत्कीर्ण होनेवाले प्रदेशपुंजको अपनी प्रथम स्थितिमें निक्षिप्त करता है और आबाधाको छोड़कर द्वितीय स्थितिमें भी निक्षिप्त करता है, किन्तु अन्तर सम्बन्धी स्थितियोंमें निक्षिप्त नहीं करता, क्योंकि उनके कर्मपुंजमेंसे वे स्थितियाँ रिक्त होनेवाली हैं, इसलिए उनमें निक्षिप्त नहीं करता। इस विषयमें कुछ आचार्य ऐसा व्याख्यान करते हैं कि जब तक अन्तरसम्बन्धी द्विचरम फालिका अस्तित्व रहता हैं तब तक स्वस्थानमें भी अपकर्षणसम्बन्धी अतिस्थापनावलिको छोड़कर अन्तरसम्बन्धी स्थितियोंमें भी निक्षिप्त करता है। उनके व्याख्यानके अनुसार भी सर्वत्र यह कथन करना चाहिये।

(२) जो कर्म बँधते नहीं और वेदे नहीं जाते वे आठ कषाय और छह नोकषाय हैं। सो उनकी अन्तर स्थितियोंमेंसे उत्कीर्ण होनेवाले प्रदेशपुंजको अपनी स्थितियोंमें नहीं देता है। किन्तु बँधनेवाली प्रकृतियोंकी द्वितीय स्थितिमें उत्कर्षण द्वारा बन्धके प्रथम समय निक्षिप्त करता है तथा बँधनेवाली और नहीं बँधनेवाली जिन प्रकृतियोंकी प्रथम स्थिति है उनमें भी यथासम्भव अपकर्षण और परप्रकृति संक्रम द्वारा निक्षिप्त करता है, परन्तु स्वस्थानमें निक्षिप्त नहीं करता।

(३) जो कर्मपुंज बँधते नहीं किन्तु वेदे जाते हैं। जैसे स्त्रीवेद और नपुंसकवेद। उनकी अन्तरसम्बन्धी स्थितियोंको अपनी-अपनी प्रथम स्थितिमें अपकर्षण करके निक्षिप्त करता है तथा जिन संज्वलन प्रकृतियोंका उदय हो उनकी प्रथम स्थितिमें आगमानुसार अपकर्षण और परप्रकृति संक्रमण द्वारा निक्षिप्त करता है तथा बन्धकी अपेक्षा उत्कर्षण करके द्वितीय स्थितिमें भी निक्षिप्त करता है।

(४) जिन कर्मोंको मात्र बाँधता है, वेदता नहीं। जैसे परोदयकी विवक्षामें पुरुषवेद और अन्यतर संज्वलन। इनका केवल बन्ध होता है, उदय नहीं होता। उनकी अन्तर स्थितियोंमेंसे उत्कीर्ण होनेवाले प्रदेशपुंजको उत्कर्षण द्वारा अपनी द्वितीय स्थितिमें निक्षिप्त करता है तथा उदयवाली बन्धको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियों की प्रथम और द्वितीय स्थितिमें निक्षिप्त करता है तथा जिनका उदय नहीं होता, किन्तु बन्ध होता है उनकी दूसरी स्थितिमें निक्षिप्त करता है।

अथान्तरकरणनिष्पत्त्यनन्तरसमये संभवक्रियाविशेषप्रदर्शनार्थं गाथाद्वयमाह—

सत्तकरणाणि यंतरकदपढमे होंति मोहणीयस्स।
इगिठाणियबंधुदओ ठिदिबंधो संखवस्सं च ।। २४८ ।।
आणुपुव्वीसंकमण लोहस्स असंकमं च संढस्स।
पढमोवसामकरणं छावलितीदेसुदीरणदा[1] ।। २४९ ।।

---

१. ताधे चेव मोहणीयस्स आणुपुव्वीसंकमो, लोभस्स असंकमो, मोहणीयस्स एकट्ठाणिओ बंधो, णवुंसयवेदस्स पढमसमयउवसामगो, छसु आवलियासु गदासु उदीरणा, मोहणीयस्स एगट्ठाणिओ उदओ, मोहणीयस्स संखेज्जवस्सट्ठिदिओ बंधो, एदाणि सत्तविहाणि करणाणि अन्तरकदपढमसमए होंति। वही पृ० २३३।

सप्तकरणानि अन्तरकृतप्रथमे भवन्ति मोहनीयस्य ।
एकस्थानको बन्धोदयः स्थितिबन्धः संख्यवर्षं च ॥२४८॥
आनुपूर्वीसंक्रमणं लोभस्यासंक्रमं च षण्ढस्य ।
प्रथमोपशमकरणं षडावल्यतीतेषूदीरणता ॥२४९॥

सं० टी०—अन्तरकृतस्य निष्ठितान्तरकरणस्य प्रथमे अनन्तरसमये सप्तकरणानि युगपदेव प्रारभ्यन्ते । तत्र पूर्वमन्तरसमाप्तिपर्यन्तं चारित्रमोहस्य द्विस्थानानुभागबन्धः प्रवृत्तः, इदानीं लतासमानैकस्थानानुभागबन्धस्तस्य प्रवर्तते इत्येकं करणम् । १ । तथा मोहनीयस्य द्विस्थानानुभागोदयः पूर्वमन्तरकरणचरमसमयपर्यन्तमायातः इदानीं पुनस्तस्य लतासमानैकस्थानानुभागोदय एवं प्रवर्तत इत्यपरं करणम् । २ । तथा पूर्वमन्तरकरणकालसमाप्तिपर्यन्तमसंख्येयवर्षमात्रो मोहस्य स्थितिबन्धः प्रवृत्तः, इदानीं पुनरपसरणमाहात्म्यात्संख्येयवर्षमात्रस्तस्य स्थितिबन्धः प्रारब्ध इत्यन्यत्करणम् । ३ । तथा पूर्वमन्तरकरणकालपरिसमाप्तिपर्यन्तं चारित्रमोहस्य नपुंसकवेदादिप्रकृतीनां यत्र तत्रापि द्रव्यसंक्रमः प्रवृत्त इदानीं पुनर्वक्ष्यमाणात्प्रतिनियतानुपूर्व्या तद्द्रव्यं संक्रामति । तद्यथा—

स्त्रीनपुंसकवेदप्रकृत्योर्द्रव्यं नियमेन पुंवेद एवं संक्रामति । पुंवेदहास्यादिषण्णोकषायाप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानक्रोधद्वयद्रव्यं नियमेन संज्वलनक्रोधे एव संक्रामति । सज्वलनक्रोधाप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानमानद्वयद्रव्यं नियमेन संज्वलनमाने एव संक्रामति । संज्वलनमानाप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानमायाद्वयद्रव्यं नियमेन संज्वलनमायाद्रव्ये एव संक्रामति । संज्वलनमायाप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानलोभद्वयद्रव्यं संज्वलनलोभे एव नियमतः संक्रामति इत्यानुपूर्व्या संक्रमो नामैकं करणम् । ४ । तथा पूर्वमन्तरकरणसमाप्तिपर्यन्तं संज्वलनलोभस्य शेषसंज्वलनपुंवेदेषु यथासंभवं संक्रमः प्रवृत्तः, इदानीं पुनः संज्वलनलोभस्य कुत्रापि संक्रमो नास्त्येवेत्यपरं करणम् । ५ । तथा इदानीं प्रथमं नपुंसकवेदस्यैवोपशमनक्रिया प्रारभ्यते तदुपशमनानन्तरमेवेतरप्रकृतीनामुपशमनविधानात् इत्येतदेकं करणम् । ६ । तथा पूर्वमन्तरकरणसमाप्तिपर्यन्तं प्रतिसमयबध्यमानसमयप्रबद्धो अचलावल्यतिक्रमे उदीरयितुं शक्यः प्रवृत्तः इदानीं पुनर्बध्यमानानां मोहस्य वा ज्ञानावरणादिकर्मणां वा समयप्रबद्धो बन्धप्रथमसमयादारभ्य षट्स्वावलीषु गतास्वेवोदीरयितुं शक्यो नैकसमयोनास्वपीत्यन्यत्करणम् । ७ । अधुनातननूतनबन्धस्य तथाविधस्वभावसंभवात् ॥२४८–२४९॥

स० चं०—अन्तर कीए पीछैं ताके अनंतरि प्रथम समयविषै सात करणनिका युगपत् प्रारम्भ हो है । तहाँ पूर्वें अन्तर करनेकी समाप्ति पर्यंत मोहका दारुलता समान द्विस्थानगत बंध अर उदय था अर अब लता समान एक स्थानगत बंध उदय होने लागे सो दोय करण तौ ए भए । बहुरि पूर्वें मोहका स्थितिबंध असंख्यात वर्षका होता था अब संख्यात वर्षमात्र होने लगा सो एक करण यहु भया । बहुरि पूर्वैं चारित्रमोहका परस्पर प्रकृतिनिका जहाँ तहाँ संक्रमण होता था अब आनुपूर्वी संक्रमण होने लगा सो इसविषै ऐसा नियम भया—जो स्त्री नपुंसक वेदका तौ पुरुष वेद ही विषै अर पुरुषवेद छह हास्यादिक अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान क्रोधका संज्वलन क्रोध ही विषै अर संज्वलन क्रोध अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान मानका संज्वलन मान ही विषै अर संज्वलन मान अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान मायाका संज्वलन माया ही विषै अर संज्वलन माया अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान लोभका संज्वलन लोभ ही विषैं संक्रमण हो है अन्यथा न होइ सो एक करण यहु भया । बहुरि पूर्वें संज्वलन लोभका संज्वलन क्रोधादिविषै वा पुरुषवेदविषै संक्रमण होता था अब याका संक्रमण कहीं न होइ सो एक करण यहु भया । बहुरि अब नपुंसक वेदकी उपशम-

क्रियाका प्रारम्भ भया सो एक करण यहु भया। वहुरि पूर्वे बन्ध भएँ पीछैं एक आवली काल व्यतीत भए उदीरणा करनेकी समर्थता थी अब जो बन्ध हो है ताकी बंध समयतैं छह आवली व्यतीत भए ही उदीरणा करनेकी समर्थता हो है। सो एक करण यहु भया ॥२४८-२४९॥

विशेष—यह जीव अन्तरकरण समाप्तिके कालसे ले कर जो सात करण प्रारम्भ करता है उनका खुलासा इस प्रकार है। (१) उनमेंसे प्रथम करण मोहनीयकर्मका आनुपूर्वीसंक्रम है। खुलासा इस प्रकार है—स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके प्रदेशपुंजको यहाँसे लेकर पुरुषवेदमें संक्रमित करता है। पुरुषवेद, छह नोकषाय तथा प्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरणक्रोधको क्रोध संज्वलनमें संक्रमित करना है, अन्य किसीमें नहीं। क्रोध संज्वलन, और दोनों प्रकारके मानको मान संज्वलनमें, मान संज्वलन और दोनों प्रकारकी मायाको मायासंज्वलनमें तथा माया संज्वलन और दोनों प्रकारके लोभको लोभसंज्वलनमें संक्रमित करता है। यह आनुपूर्वी संक्रम है।

(२) लोभका असंक्रम यह दूसरा करण है। अन्तरकरणके बाद लोभ संज्वलनका संक्रम नहीं होता यह इसका तात्पर्य है।

(३) मोहनीयका एक स्थानीय बन्ध होता है यह तीसरा करण है। यद्यपि इससे पूर्व मोहनीयका द्विस्थानीय बन्ध होता था। किन्तु अन्तरकरणके बाद वह एक स्थानीय होने लगता है।

(४) नपुंसकवेदका प्रथम समय उपशामक यह चौथा करण है, क्योंकि प्रथम ही आयुक्त करणके द्वारा नपुंसकवेदकी यहाँसे उपशमन क्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

(५) छह आवलियोंके जानेपर उदीरणा यह पाँचवाँ करण है। साधारणतः बन्धावलिके बाद उदीरणा होने लगती है। परन्तु यहाँ पर उसके विरुद्ध यह कहा गया है कि छह आवलियोंके जानेपर उदीरणा होती है सो ऐसा स्वभाव ही है। वैसे कल्पित उदाहरण द्वारा कषाय प्राभृत चूर्णिमें इसे स्पष्ट किया गया है। परन्तु वह उदाहरण मात्र समझानेके लिये ही दिया गया है तो उसे जयधवला पृ० २६७ आदिसे जान लेना चाहिये।

(६) मोहनीयकर्मका एकस्थानीय उदय होने लगता है। इसका तात्पर्य यह है कि अन्तरकरणके पहले मोहनीयका जो देशघाति द्विस्थानीय उदय होता रहा वह अन्तरकरणके बाद एक स्थानीय होने लगता है।

(७) अन्तरकरणके बाद मोहनीय कर्मका स्थितिबन्ध संख्यात वर्ष-प्रमाण होने लगता है यह सातवाँ करण है। आशय यह है कि अन्तरकरणके पहले मोहनीयका असंख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध होता था, वह अन्तरकरणके बाद घटकर संख्यात वर्षप्रमाण हो जाता है जो उत्तरोत्तर घटकर दसवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें अन्तर्मुहूर्तमात्र रह जाता है। इतना विशेष समझना चाहियें कि अन्तरकरणके बाद शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यात वर्ष प्रमाण होनेमें कोई बाधा नहीं है।

इस प्रकार ये सात करण हैं जो अन्तरकरणके बाद नियमसे होते हैं।

अथ चारित्रमोहोपशमनप्रक्रमप्रदर्शनार्थमिदमाह—

अंतरपढमादु कम्मे एक्केक्कं सत्त चदुसु तिय पयडिं ।
समगुच्च सामदि णवकं समऊणावलिदुगं वज्जं ॥ २५० ॥

अन्तरप्रथमात् क्रमेण एकैकं सप्त चतुर्षु त्रयी प्रकृतिम् ।
समुच्य शमयति नवकं समयोनावलिद्विकं वर्ज्यम् ॥ १५० ॥

सं० टी०—अन्तरकरणसमाप्त्यनन्तरसमयादारभ्य क्रमेणान्तर्मुहूर्तेनान्तर्मुहूर्तेन कालेन एकामेकां सप्त चतुर्ष्वन्तर्मुहूर्तेषु त्रयीं त्रयीं प्रकृतिं समयोनद्वयावलिमात्रनवकबन्धसमयप्रबद्धान् वर्जयित्वाऽयमनिवृत्तिकरण-विशुद्धसंयत उपशमयति कषायत्रयं वा परेणान्तर्मुहूर्तेन युगपदुपशमयतीति विशेषो ग्राह्यः । ता एवोपशम्य-मानाः प्रकृतीरुद्दिशति ॥२५०॥

स० चं०—अन्तर कीएँ पीछैं प्रथम समयतैं लगाय क्रमतैं एक एक अन्तर्मुहूर्तकाल करि तौ एक एक सात प्रकृतिनिकौं अर च्यारि अन्तर्मुहूर्तविषै क्रमतैं तीन-तीन प्रकृतिनिकौं उपशमावै है। तहाँ समय घाटि दोय आवलीमात्र नवक समयप्रबद्धकौं नाही उपशमावै है सो याका स्वरूप आगै कहेंगे सो जानना ॥२५०॥

एय णउंसयवेदं इत्थीवेदं तहेव एयं च ।
सत्तेव णोकसाया कोहादितियं तु पयडीओ[1] ॥ २५१ ॥

एको नपुंसकवेदः स्त्रीवेदः तथैव एकः च ।
सप्तैव नोकषायाः क्रोधादित्रयं तु प्रकृतयः ॥ २५१ ॥

सं० टी०—एको नपुंसकवेदस्तथैवैकः स्त्रीवेदः सप्त नोकषाया हास्यादयः षट् पुंवेदश्चेति क्रोधत्रयं मानत्रयं मायात्रयं लोभत्रयं चेत्युपशम्यमानाः प्रकृतयः क्रमेण ज्ञातव्याः ॥२५१॥

स० चं०—एक नपुंसक वेद एक स्त्रीवेद तैसैं ही सात नोकषाय अर तीन क्रोध तीन मान तीन माया तीन लोभ ऐसैं क्रमतैं उपशम होनेरूप इकईस प्रकृति हैं ॥२५१॥

विशेष—अन्तरकरणके पश्चात् मोहनीय कर्मकी शेष २१ प्रकृत्तियोंका किस क्रमसे और कितने कालमें उपशमन अर्थात् सर्वोपशमन करता है इस तथ्यका इस गाथामें निर्देश किया गया है। विशेष स्पष्टीकरण आचार्य स्वयं आगे करेंगे ही।

१. अंतरादो पढमसमयकदादो पाए णवुंसयवेदस्स आउत्तकरणउवसामओ णवुंसयवेदे उवसंते से काले इत्थिवेदस्स उवसामगो। इत्थिवेदे उवसंते से काले से काले सत्तण्हं णोकसायाणं उवसामगो। पढम-समयअवेदो तिविहं कोहमुवसामेइ। जाधे कोधस्स बंधोदया वोच्छिण्णा ताधे पाए माणस्स तिविहस्स उवसा-मगो। ताधे पाये तिविहाए मायाए उवसामगो। ताधे चेव जाओ दो आवलियाओ समयूणाओ एत्तियमेत्ता लोहसंजलणस्स समयबद्धा अणुवसंता। किट्टीओ सव्वाओ चेव अणुवसंताओ, तव्वदिरित्तं लोहसंजलणस्स पदेसग्गं उवसंतं। दुविहो लोहो सव्वो चेव उवसंतो णवकबंधुच्छिट्ठावलियवज्जं। क० चू०, जयध० पु० १३, पृ० २७२ से ३१८।

अथ प्रथमोद्दिष्टस्य नपुंसकवेदस्योपशमनविधानं प्रदर्शयितुमिदमाह—

अंतरकदपढमादो पडिसमयमसंख[illegible]णविहाणकमे-
णुवसामेदि हु संढं उवसंतं जाण ण च अण्णं ॥ २५२ ॥

अन्तरकृतप्रथमतः प्रतिसमयमसंख्यगु[illegible]मे-।
णोपशाम्यति हि षण्ढं उपशान्तं जानीहि न चान्यम् ॥ २५२ ॥

सं० टी०—अन्तरनिष्ठापनानन्तरसमयात्प्रभृति प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेण नपुंसकवेदद्रव्यं गुणसंक्रमभागहारासंख्यातभागेन खण्डयित्वा एकं खण्डमुपशमयति यावन्नपुंसकवेदोपशमसमाप्तिर्भवति तावदन्तर्मुहूर्तकालपर्यन्तं कामप्यन्यां प्रकृतिं नोपशमयति। कर्मणः प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशानामुदीरणाशतैरप्युदयायोग्यतया सदवस्थाकारणमुपशमनं सर्वत्र ज्ञेयम्। तत्र नपुंसकवेदस्य प्रथमसमये उपशमनफालिद्रव्यमिदं स ə । १२– । ४२
७ । १० । ४८ । गु
ə

द्वितीयसमये ततोऽसंख्येयगुणमुपशमनफालिद्रव्यमिदं स ə । १२– । ४२ । तृतीयसमये ततोऽसंख्येयगुणमुपशमन-
७ । १० । ४८ । गु
ə ə

फालिद्रव्यमिदं स ə । १२– । ४२ । एवमन्तर्मुहूर्तमात्रोपशमनकालचरमसमयमसंख्यातगुणितक्रमेण नपुंसकवेद-
७ । १० । ४८ गु
ə ə ə

मुपशमयतीत्यर्थः ॥२५३॥

नपुंसकवेदके उ[illegible]धिका निर्देश—

स० चं०—अन्तर करनेके अनंतरि प्रथम समयतैं लगाय समय समय प्रति नपुंसकवेदका उपशम हो है। तहाँ नपुंसकवेदके द्रव्यकौं गुणसंक्रम भागहारका असंख्यातवां भागमात्रभागहारका भाग देइ तहाँ एक भागमात्र द्रव्यकौं प्रथम समयविषै उपशमावै है। ऐसैं नपुंसकवेदका उपशम कालकी समाप्ति पर्यन्त असंख्यातगुणा क्रम लीएं द्रव्य उपशमावै है। सो समय समय प्रति जो द्रव्य उपशमाया ताहीका नाम उपशमन फालिका द्रव्य जानना ॥२५२॥

विशेष—नपुंसकवेदका उपशम करते समय विवक्षित प्रकृतियोंकी उदय उदीरणा होती रहती है। जैसे जो जीव क्रोध संज्वलन और पुरुषवेदके उदयमें श्रेणि आरोहण करता है उसके इन दो प्रकृतियोंकी उदय और उदीरणा होती है। अन्य वेद और कोई एक कषायके उदयसे श्रेणिपर चढ़नेवालेके उनकी उदय-उदीरणा होती है। गाथा २५३ में इष्टकी उदय-उदीरणा होती है उसका यही आशय है। तथा नपुंसकवेदको उपशमाते समय जो उसका अन्य प्रकृतियोंमें संक्रम होता है वह गुणसंक्रम होनेसे प्रत्येक समयमें असंख्यातगुणे कर्म पुंजका संक्रम होता है। और प्रति समय संक्रमको प्राप्त होनेवाले कर्मपुञ्जसे असंख्यातगुणे कर्मपुञ्जको उपशमाता है। जब नपुंसकवेदका उपशम करता है तब शेष कर्मोंकी उपशम क्रिया नहीं होती।

१. सेसाणं कम्माणं ण किंचि उवसामेदि। जं पढमसमये पदेसग्गमुवसामेदि तं थोवं। जं बिदियसमये उवसामेदि तमसंखेज्जगुणं। एवमसंखेज्जगुणाए सेढीए उवसामेदि जाव उवसंतं। वही पृ० २७२-२७३।

अथोदीरणादिद्रव्याल्पबहुत्वप्रदर्शनार्थमिदमाह—

संढादिमउवसमगे इट्ठस्स उदीरणा य उदओ य।
संढादो संकमिदं उवसमियमसंखगुणियकमा[1] ॥ २५३ ॥

षण्ढादिमोपशामके इष्टस्योदीरणा च उदयश्च।
षण्ढात् संक्रमितमुपशमितमसंख्यगुणितक्रमः ॥ २५३ ॥

सं० टी०—नपुंसकवेदोपशमकस्य प्रथमसमये विवक्षितस्योदयप्राप्तस्य पुंवेदस्योदीरणा द्रव्यमिदं—स a । १२– । २ / ७ १० । ४८ । ओ प प / a a a तत्कालापकृष्टस्य पल्यासंख्यातैकभागेन भक्तस्य बहुभागमुपरितनस्थितौ दत्वा तदेकभागं पुनः पल्यासंख्यातभागेन खण्डयित्वा बहुभागं गुणश्रेण्यां निक्षिप्य तदेकभागस्यैवोदयनिक्षेपणात्। तस्मादुदीरणाद्रव्यात्तदात्वे पुंवेदस्यैवोदयमानं द्रव्यमसंख्यातगुणं स a । १२– । २ / ७ । १० । ४८ । ओ प ८५ / a a गुणश्रेण्यां प्राग्निक्षिप्तपल्यासंख्यातबहुभागमात्रत्वात्। तस्मादुदयद्रव्यान्नपुंसकवेदस्य संक्रमणद्रव्यमसंख्यातगुणं स a । १२– । ४२ / ७ । १० । ४८ गु तद्भागहारादसंख्यातगुणहीनेन गुणसंक्रमभागहारेण खण्डितैकभागमात्रत्वात् तदात्वे नपुंसकवेदस्योपशमनफालिद्रव्यमसंख्यातगुणं—स a । १२– । ४२ / ७ । १० । ४८ । गु / a तद्भागहारादसंख्यातगुणहीनेन भागहारेण खण्डितैकभागमात्रत्वात्। एवं द्वितीयादिसमयेषु चरमसमयपर्यन्तेषूदीरणाद्रव्यचतुष्टयाल्पबहुत्वं नेतव्यम् ॥२५३॥

उदीरणादिरूप द्रव्यके अल्पबहुत्वका निर्देश—

स० चं०—नपुंसकवेदके उपशमकका प्रथम समयविषै विवक्षित उदयकौं प्राप्त भया जो पुरुषवेद ताका सर्व द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ तहां एक भागकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ बहुभाग उपरितन स्थितिविषै दीया। अवशेष एक भागकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ बहुभाग गुणश्रेणिविषै, एक भाग उदयावलीविषै दीया सो उदयावलीविषै जो दीया सो यहु उदीरणा द्रव्य जेता है तातैं तिसही पुरुषवेदका उदय द्रव्य असंख्यातगुणा है। जातैं पूर्वै गुणश्रेणिका द्रव्य इस निषेकनिविषै दीया था सो पल्यका असंख्यातवाँ भागका भाग दीएँ बहुभागमात्र है। बहुरि तिसतैं नपुंसकवेदका द्रव्य संक्रमण करि पुरुष वेदरूप भया सो असंख्यातगुणा है, जातैं तिस भागहारतैं गुणसंक्रम भागहारका प्रमाण असंख्यातगुणा घटता है। बहुरि तातैं नपुंसकवेदको उपशम फालिका द्रव्य असंख्यातगुणा है, जातै तहाँ भागहार तिस भागहारके असंख्यातवें भागमात्र है। ऐसैं ही द्वितीयादि समयनिविषै भी अल्पबहुत्व जानना ॥२५३॥

---

१. णवुंसयवेदस्स पढमसमयउवसामगस्स जस्स वा तस्स वा कम्मस्स पदेसग्गस्स उदीरणा। उदयो असंखेज्जगुणो। णवुंसयवेदस्स पदेसग्गमण्णपयडिसंकमिज्जमाणयमसंखेज्जगुणं। उवसामिज्जमाणयमसंखेज्जगुणं। एवं जाव चरिमसमय उवसंते त्ति। वही पृ० २७२ से २७४।

अस्मिन्नवसरे स्थितिखण्डादिसंभवासंभवप्रदर्शनार्थं गाथाद्वयमाह—

अंतरकरणादुवरिं ठिदिरसखंडाण मोहणीयस्स ।
ठिदिबंधोसरणं पुण संखेज्जगुणेण हीणकमं[1] ॥ २५४ ॥

अन्तरकरणादुपरि स्थितिरसखण्डानां मोहनीयस्य ।
स्थितिबंधापसरणं पुनः संख्यगुणेन हीनक्रमं ॥ २५४ ॥

सं० टी०—अन्तरकरणस्योपरि नपुंसकवेदोपशमनप्रथमसमयादारभ्य मोहनीयस्य स्थितिखण्डनमनुभागखण्डनं च नास्ति उपशम्यमानकर्मस्थितेः काण्डकघातो नास्तीति परमगुरूपदेशात् । तर्ह्यनुपशम्यमानमोहप्रकृतीनां स्थितिकाण्डकघातो भवेदिति नाशङ्कितव्यं उपशमनकाले मोहप्रकृतीनां सर्वासामपि स्थितिः सदृश्येवेति च परमागमसम्प्रदायस्य परमगुरुपर्वं क्रमायातस्य सद्भावात् स्थित्यनुसारित्वादनुभागस्यापि खण्डनं बिना तादृगवस्थं सिद्धमेव । मोहनीयस्य स्थितिबंधापसरणं पुनः संख्यातगुणहीनक्रमेण वर्तते । अंतरकरणसमाप्त्यनन्तरं संख्यातसहस्रवर्षमात्रस्थितिबन्धसंभवात् तदनुसारेण स्थितिबन्धापसरणस्य तत्संख्यातबहुभागमात्रस्थितिबन्धं प्रति संख्यातगुणहीनत्वोपपत्तेः ॥ २५४ ॥

स्थितिकाण्डकघातादिमें क्या सम्भव है, क्या नहीं इसका निर्देश—

स० चं०—अन्तरकरणतैं उपरि नपुंसकवेद उपशमावनेका प्रथम समयतैं लगाय मोहनीयका स्थितिकांडकघात अर अनुभागकांडकघात नाहीं है जातैं उपशमरूप होती जो कर्मकी स्थिति ताकैं कांडकघात न हो है। इहाँ कोऊ कहैगा कि—उपशमरूप न होतीं नपुंसकवेद बिना अन्य प्रकृतिनिका तौ कांडकघात होता होयगा सो न हो है जातैं इहाँ सर्व मोह प्रकृतिनिकी स्थिति समान है अर स्थिति अनुसारि अनुभागका भी कांडकघात बिना अवस्थितपना ही है। बहुरि मोहनीयका स्थितिबंधापसरणका आयाम संख्यातगुणा घटता क्रम लीए वर्तें हैं ॥२५४॥

विशेष—अन्तरकरण क्रिया सम्पन्न होनेके बाद मोहनीयकी किसी भी 'प्रकृतिका स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डक घात नहीं होता। इसका विशेष स्पष्टीकरण करते हुए जयधवलामें जो कुछ लिखा है उसका भाव यह है कि यदि अन्तरकरण क्रिया होनेके बाद नपुंसकवेद या चारित्रमोहसम्बन्धी अन्य प्रकृतिका स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात स्वीकार किया जाय तो उस-उस प्रकृतिकी उपशमानेकी क्रिया सम्पन्न होनेके पूर्व उस प्रकृतिके जिन प्रदेशपुंजोंको नहीं उपशमाया गया है उसके साथ जो प्रदेशपुंज उपशमाये जा चुके हैं उनके भी स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघातका प्रसंग प्राप्त होता है। किन्तु उपशमाये गये प्रदेश पुंजका न तो स्थितिकाण्डकघात ही सम्भव है और न अनुभागकाण्डकघात ही सम्भव है, क्योंकि उनका प्रशस्त उपशामना द्वारा उपशम हुआ है। (२) उक्त तथ्यके समर्थनमें दूसरा तर्क यह दिया गया है कि यदि उपशमाई जानेवाली प्रकृतिको छोड़ कर उस समय नहीं उपशमायी जानेवाली मोह प्रकृतियोंका स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात स्वीकार किया जाता है तो उपशमश्रेणिमें बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थितियोंमें विषमता हो जायगी जो युक्त नहीं है, क्योंकि इन कर्मोंकी उपशान्त अवस्थामें स्थिति सदृश रहती है ऐसा गुरु परम्परासे उपदेश चला आ रहा है। (३) साथ ही आगम प्रमाणसे भी इसका समर्थन करते हुए लिखा है

१. जाधे पाए मोहणीयस्स बंधो संखेज्जवस्सट्ठिदिगो जादो ताधे पाए ट्ठिदिबंधे पुण्णे-पुण्णे संखेज्जगुणहीणो ट्ठिदिबंधो । वही पृ० २७५ ।

कि माया वेदकके कार्योंका उल्लेख करते हुए जो चूर्णिसूत्र आये हैं उनमें जहाँ मोहनीय कर्मको छोड़ कर शेष कर्मोंका स्थितिबन्धके साथ स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात स्वीकार किया है वहाँ माया संज्वलन और लोभ संज्वलनका मात्र स्थितिबन्ध तो स्वीकार किया है पर स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात नहीं स्वीकार किया है। इस प्रकार उक्त तर्क और प्रमाणसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि अन्तरकरण क्रिया सम्पन्न होनेके बाद मोहनीयकी किसी भी प्रकृतिका स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात नहीं होता।

जत्तो पाये होदि हु ठिदिबंधो संखवस्समेत्तं तु।
तत्तो संखगुणूणं बंधोसरणं तु पयडीणं ॥ २५५ ॥

यतः प्रायेण भवति हि स्थितिबन्धः संख्यवर्षमात्रः तु।
ततः संख्यगुणोनं बन्धापसरणं तु प्रकृतीनाम् ॥ २५५ ॥

सं० टी०—यतः कारणात्संख्यातसहस्रवर्षमात्रः स्थितिबन्धः प्रायेण भवति ततः कारणात् संख्यातगुणोनं स्थितिबन्धापसरणं वध्यमानप्रकृतीनां भवतीति सूत्रोक्तत्वात्—

स्थितिबन्धः	व १ ० ० ० १	व ० ० ० १ ५	ब १ ० ० ० १ ५५
स्थितिबन्धापसरणप्रमाणं	व १ ० ० ० १ ४ ५	व १ ० ० ० १ ४ ५ । ५	व १ ० ० ० १ ४ ५ । ५ । ५

मोहनीयवर्ज्यानांणांनावरणादिशेषकर्मणांस्थितिबन्धः अन्तरकरणचरमसमयस्थितिबन्धादसंख्यातगुणहीनःपल्यासंख्यातबहुभागमात्रस्यापसरणात्। तत्र तीसियानां स्थितिबन्धः पल्यासंख्यातैकभागमात्रोऽपि सर्वतः स्तोकः प / aa अस्मादसंख्येयगुणो वीसियानां स्थितिबन्धः प / a अस्मादर्धेनाधिको वेदनोयस्य स्थितिबन्धः प ३ / a २ ॥ २५५ ॥

स० चं०—जातैं इहां मोहका स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्षमात्र हो है तातैं पूर्व स्थितिबन्धापसरणतैं इहां स्थिति बन्धापसरण संख्यातगुणा घटता सम्भवै है। बहुरि ज्ञानावरणादिकनिका स्थितिबन्ध अंतर करनेका अंत समयसम्बन्धी स्थितिबन्धतैं असंख्यातगुणा घटता है जातैं इनके स्थितिबंधापसरणका प्रमाण पल्यकौं असंख्यातका भाग दीएं बहुभागमात्र है। तहां तीसीयनिका स्थितिबंध पल्यका असंख्यातवां भागमात्र है। औरनितैं स्तोक है। तातैं असंख्यातगुणा वीसीयनिका है। तातैं ड्योढ़ा वेदनीयका है ॥ २५५ ॥

अथोपरि भविष्यत्स्थितिबन्धापसरणप्रमाणावधारणार्थमाह—

वस्साणं वत्तीसादुवरिं अंतोमुहुत्तपरिमाणं।
ठिदिबंधाणोसरणं अवरट्ठिदिबंधणं जाव[1] ॥ २५६ ॥

१. तस्समए पुरिसवेदस्स ठिदिबंधो सोलसवस्साणि। संजलणाणं ठिदिबंधो वत्तीसवस्साणि। सेसाणं पुण कम्माणं ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। वही पृ० २८९।

वर्षाणां द्वात्रिंशदुपरि अन्तर्मुहूर्तपरिमाणम् ।
स्थितिबन्धानामपसरणमवरस्थितिबन्धनं यावत् ॥ २५६ ॥

सं० टी०—द्वात्रिंशद्वर्षमात्रस्थितिबन्धस्योपरि अन्तर्मुहूर्तपरिमाणं स्थितिबन्धापसरणं सर्वजघन्यस्थितिबन्धपर्यंतं भवतीति ज्ञातव्यम् ॥ २५६ ॥

आगे स्थितिबन्धापसरणके प्रमाणका निर्देश—

स चं—बत्तीस वर्षका स्थितिबंध जहां होइ तहांतैं लगाय जहां जघन्य स्थितिबंध होइ तहां पर्यंत तिस बंधापसरणका प्रमाण अंतर्मुहूर्तमात्र जानना ॥ २५६ ॥

अथ स्थितिबन्धापसरणविषयनिर्देशार्थमिदमाह—

ठिदिबंधाणोसरणं एयं समयप्पबद्धमहिकिच्चा ।
उत्तं णाणादो पुण ण च उत्तं अणुववत्तीदो[1] ॥ २५७ ॥

स्थितिबन्धानामपसरणमेकं समयप्रबद्धमधिकृत्य ।
उक्तं नानातः पुनः न च उक्तमनुपपत्तितः ॥ २५७ ॥

सं० टी०—विवक्षितापसरणेनापसृत्य विवक्षितबन्धप्रथमसमये बध्यमानमेकं समयप्रबद्धमधिकृत्य विवक्षितं स्थितिबन्धापसरणमुक्तं न पुनरन्तर्मुहूर्तकाले द्वितीयादिसमयेषु बध्यमानसमयप्रबद्धानां प्रत्येकं स्थितिबन्धापसरणमन्तर्मुहूर्तकालपर्यन्तं समस्थितिबन्धाभ्युपगमने नानासमयप्रबद्धानधिकृत्य स्थितिबन्धपसरणानुपपत्तेः । अनेनान्तर्मुहूर्तकालपर्यंतमेकेनैकस्थितिबन्धापसरणेन प्राक्तनस्थितिबन्धादपसृत्य समस्थितीनेव समयप्रबद्धान् बध्नातीत्ययमर्थो ज्ञाप्यते ॥ २५७ ॥

स्थितिबन्धापसरणविशेषका निर्देश—

स० चं—स्थितिबंधापसरण है सो विवक्षित स्थितिबंधका प्रथम समयविषे जेता स्थितिबंधका प्रमाण हो है तितनाही अंतर्मुहूर्त कालपर्यन्त बंधते समयप्रबद्धनिके स्थितिबंधका प्रमाण हो है। समय समय प्रति नाना समयप्रबद्धनिके स्थितिबंधापसरण होनेकरि समय समय स्थितिबंध घटनेकी अनुपपत्ति कहिए अप्राप्ति है ॥ २५७ ॥

विशेष—बन्धावलिके व्यतीत होनेपर अपगतवेदी जीव अपने प्रथम समयमें जितने द्रव्यका संक्रम करता है उत्तरोत्तर अधःप्रवृत्त भागहारसे भाजितकर द्वितीय समयोंमें विशेष हीन विशेष हीन द्रव्यको संक्रमित करता है। यह जो अल्पबहुत्व है वह विवक्षित एक समयप्रबद्धके द्रव्यका संक्रम स्वीकार करनेपर ही घटित होता है, क्योंकि संक्रममें नाना समय प्रबद्धोंका संक्रम स्वीकार करनेपर योगमें वृद्धि और हानि होनेकी अपेक्षा उक्त अल्पबहुत्वरूप संक्रम नहीं घटित होता। इसलिये प्रकृतमें एक समयप्रबद्धकी अपेक्षा ही पूर्वोक्त अल्पबहुत्व समझना चाहिये। योगकी चार वृद्धि और चार हानि प्रसिद्ध ही हैं।

अथ नपुंसकवेदोपशमनान्तरकालभाविक्रियान्तरप्रदर्शनार्थमाह—

एवं संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सगेसु तीदेसु ।
संढुवसमदे तत्तो इत्थिं च तहेव उवसमदि ॥ २५८ ॥

---

१. एस कमो एयसमयपबद्धस्स चेव । वही पृ० २८९

एवं संख्येयेषु स्थितिबन्धसहस्रकेषु अतीतेषु ।
षण्ढोपशान्ते ततः स्त्रीं च तथैव उपशमयति ॥ २५८ ॥

सं० टी०—एवं पूर्वोक्तप्रकारेण संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धेषु गतेषु अन्तर्मुहूर्तकालेन नपुंसकवेदे उपशमिते ततः परं स्त्रीवेदमपि नपुंकवेदोपशमनप्रकारेणैवान्तर्मुहूर्तकालेनोपशमयति । अत्र स्त्रीवेदद्रव्यं संस्थाप्य ततः संक्रमफालिद्रव्यमुपशमनफालिद्रव्यं च गृहीत्वा उदयमानप्रकृतेरुदीरणाद्रव्यमुदयद्रव्यं च संस्थाप्य पूर्ववदल्प-बहुत्वं वक्तव्यम् । प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमश्च ज्ञातव्य इत्यर्थः । मोहर्वजितानां ज्ञानावरणादिकर्मणां स्थित्यनुभागखण्डनं नपुंसकवेदोपशमनकालचरमसमयस्थित्यनुभागखण्डनादन्यदेव स्त्रीवेदोपशमनकालप्रमसमये प्रारभ्यते । स्थितिबन्धस्त्वायुर्वर्जितसर्वकर्मणां प्राक्तनस्थितिबन्धादन्य एव प्रारभ्यते ॥ २५८ ॥

नपुंसकवेदकी उपशमनाके बाद स्त्रीवेदकी उपशमक्रियाका निर्देश—

स० चं—ऐसैं संख्यात हजार स्थितिबंध व्यतीत भए अंतर्मुहूर्त कालकरि नपुंसक वेदका उपशम हो है। तहां पीछैं तैसैं ही नपुंसकवेद उपशमवत् अंतर्मुहूर्त कालकरि स्त्रीवेदकौं उपशमावै है। इहां स्त्रीवेदका द्रव्यकौं स्थापि संक्रमण फाली द्रव्यादिकका वा अल्पबहुत्वका वा समय समय असंख्यातगुणा क्रमका वर्णन पूर्वोक्तवत् जानना बहुरि इहां इतना जानना ज्ञाना-वरणादिकनिकास्थिति अनुभागकांडकघात अर आयु विना सात कर्मनिका स्थितिबंध पूर्व प्रमाणतैं अन्य प्रमाण धरै हो है ॥ २५८ ॥

विशेष—कषायप्राभृत चूर्णिसूत्रमें नपुंसकवेदका आयुक्तकरण उपशामक होता है यह कहा है। जयधवला टीकामें आयुक्तकरणका अर्थ उद्यतकरण और प्रारम्भकरण किया है तो इसका तात्पर्य इतना ही है कि जैसे ही यह जीव चारित्रमोहनीयकी अन्तरकरण क्रिया सम्पन्न कर लेता है उसके बाद दूसरे समयमें ही वह नपुंसकवेदकी उपशमन क्रियाका प्रारम्भ कर देता है। और जिस समभ नपुंसकवेदकी उपशमन क्रिया सम्पन्न होती है उसके अनन्तर समयसे स्त्रीवेदकी उपशमन क्रिया प्रारम्भ होती है।

अथ स्त्रीवेदोपशमनकाले कार्यविशेषप्रतिपादनार्थमिदमाह—

थीयद्धासंखेज्जदिभागेपगदे तिघादिठिदिबंधो ।
संखतुवं रसबंधो केवलणाणेगठाणं तु[1] ॥ २५९ ॥

स्त्री अद्धा संख्येयभागेऽपगते त्रिघातिस्थितिबन्धः ।
संख्यातं रसबन्धः केवलज्ञानैकस्थानं तु ॥ २५९ ॥

सं० टी०—स्त्रीवेदोपशमनकालस्य संख्यातैकभागे गते सति मोहनीयस्य स्थितिबन्धः सर्वतः स्तोकः संख्यातसहस्रवर्षमात्रः । ततः संख्येयगुणः संख्यातसहस्रवर्षमात्रो घातित्रयस्थितिबन्धः । ततोऽसंख्येयगुणः पल्यासंख्यातैकभागमात्रो नामगोत्रस्थितिबन्धः । ततः साधिकः सातवेदनीयस्थितिबन्धः । तदैव केवलज्ञान-दर्शनावरणद्वयरहितस्य घातित्रयस्य लतासमानैकस्थानानुभागबन्धश्च भवति । एवं संख्यातसहस्रेषु स्थिति-

१. इत्थिवेदस्स उवसामणद्धाए संखेज्जदिभागे गदे तदो णाणाणमवरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयाणं संखेज्जवस्सठिदिगो बंधो तस्समए चेव एदासिं तिण्हं मूलपयडीणं केवलणाणावरण-केवलदंसणावरणवज्जाओ सेसाओ जाओ उत्तरपयडीओ तासिमेगट्ठाणिओ बंधो । वही पृ० २८० ।

बन्धेषु गतेषु अन्तर्मुहूर्तकालेन स्त्रीवेदोऽप्युपशमितो भवति ॥ २५९ ॥

स्त्रीवेदकी उपशमनामें कार्यविशेषका निर्देश—

सं० चं०—स्त्रीवेद उपशमावनेके कालका संख्यातवाँ भाग गएं मोहका स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्षमात्र औरनितैं स्तोक हो है। तातैं संख्यातगुणा संख्यात हजार वर्षमात्र तीन घातियानिका तातैं असंख्यातगुणा पल्यका असंख्यातवाँ भागमात्र नामगोत्रका तातैं किछू अधिक साता वेदनीयका स्थितिबन्ध हो है। बहुरि इसही कालविषै केवल ज्ञानावरण केवल दर्शनावरण बिना तीन घातियनिका लता समान एकस्थान गत ही अनुभाग बन्ध हो है ॥ २५९ ॥

विशेष—स्त्रीवेदके उपशमन करनेके कालमेंसे संख्यातवें भागप्रमाणकालके जानेपर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकी १४ प्रकृतियोंका स्थितिबन्ध पहले जो असंख्यात वर्ष-प्रमाण होता था वह न होकर अब संख्यात वर्षप्रमाण होने लगता है। तथा अनुभागबन्ध इससे पहले जो द्विस्थानीय होता था उसके स्थानपर लतारूप एक स्थानीय होने लगता है। मात्र केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरणके अनुभागबन्धके लिए यह नियम लागू नहीं है। इस गाथाका उत्तरार्ध त्रुटिपूर्ण जान पड़ता है। उसके संशोधनका कोई आधार न मिलनेसे उसे वैसा ही रहने दिया है।

स्त्रीवेदोपशमनानन्तरकालभाविक्रियाविशेषप्ररूपणार्थमिदमाह—

थीउवसमिदाणंतरसमयादो सत्तणोकसायाणं ।
उवसमगो तस्सद्धा संखज्जदिमे गदे तत्तो[1] ॥ २६० ॥

स्त्रीउपशमितानन्तरसमयात् सप्तनोकषायाणाम् ।
उपशामकः तस्याद्धा संख्याते गते ततः ॥ २६० ॥

सं० टी०—स्त्रीवेदोपशमनान्तरसमयादारभ्य पुंवेदषण्णोकषायप्रकृतीरुपशमयती ॥ २६० ॥

स्त्रीवेदकी उपशमनाके बाद सात नोकषायोंकी उपशमनाका निर्देश—

सं० चं०—ऐसैं स्त्रीवेद उपशमावनेके अनन्तर समयतैं लगाय पुरुषवेद छह हास्यादिक इन सात प्रकृतिनिकौं उपशमावै है। तिनके उपशमावनेका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है। ताका संख्यातवाँ भाग गए कहा ? सो कहैं हैं ॥ २६० ॥

तदुपशमनकालस्यान्तर्मुहूर्तस्य संख्यातैकभागे गते ततः परं संभविकार्यविशेषप्रतिपादनार्थमिदमाह—

णामदुग वेयणियट्ठिदिबंधो संखवस्सयं होदि ।
एवं सत्तकसाया उवसंता सेसभागंते[2] ॥ २६१ ॥

१. इत्थिवेदे उवसांते से काले सत्तण्हं णोकसायाणं उवसामगो। ताधे चेव अण्णं ठिदिखडयमण्ण-मणुभागखंडयं च आगाइदं, अण्णो च ठिदिबंधो पबद्धो। वही पृ० २८२।

२. एवं संखेज्जसु ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु सत्तण्हं णोकसायाणमुवसामणाद्धाए संखेज्जदिभागे गदे तदो णामागोद-वेदणोयाणं कम्माणं संखेज्जवस्सठिदिगो बंधो। एदेण कमेण ठिबंधसहस्सेसु गदेसु सत्त णोकसाया उवसंता। वही पृ० २८४।

नामद्विके वेदनीयस्थितिबन्धः संख्यवर्षको भवति ।
एवं सप्तकषाया उपशान्ताः शेषभागान्ते ।। २६१ ।।

सं० टी०—सप्तनोकषायोपशमनकालसंख्यातबहुभागावशेषावसरे सर्वतः स्तोकः संख्यातसहस्रवर्षमात्रो मोहस्थितिबन्धः । ततः संख्येयगुणः संख्यातसहस्रवर्षमात्रो घातित्रयस्थितिबन्धः । ततः संख्यातगुणः संख्यातसहस्रवर्षमात्रो वोसियस्थितिबन्धः । ततः साधिकः संख्यातसहस्रवर्षमात्रो वेदनीयस्थितिबन्धश्च भवति । एवं नपुंसकवेदोपशमनप्रकारेणैव सप्त नोकषायाः संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु गतेषु अवशेषबहुभागचरमसमये उपशमिता भवन्ति ।। २६१ ।।

सात नोकषायोंकी उपशमनाके समय कार्यविशेषका निर्देश—

सं० चं०—सर्व ही कर्मनिका स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्षप्रमाण हो है। तहाँ स्तोक मोहका तातैं संख्यातगुणा तीन घातियानिका तातैं संख्यातगुणा नामगोत्रका तातैं किछू अधिक वेदनीयका जानना। ऐसैं नपुंसकवेदका उपशमवत् सात नोकषाय हैं ते उपशमनका अनशेष बहुभाग रहे थे तिनिका अन्त समयविषै उपशमाना हो है ।। २६१ ।।

अत्र संभवद्विशेषप्रदर्शनार्थमिदमाह—

णवरि य पुंवेदस्स य णवकं समऊणदोण्णिआवलियं ।
मुच्चा सेसं सव्वं उवसंतं होदि तच्चरिमे[1] ।। २६२ ।।

नवरि च पुंवेदस्य च नवकं समयोनद्व्यावलिकाम् ।
मुक्त्वा शेषं सर्वमुपशान्तं भवति तच्चरमे ।। २६२ ।।

सं० टी०—पुंवेदनवकबन्धस्य समयोनद्व्यावलिमात्रसमयप्रबद्धान् वर्जयित्वा शेषं पुंवेदद्रव्यं सर्वमपि तदुपशमनकालचरमसमये उपशमितं भवतीत्ययं विशेषो द्रष्टव्यः । पुंवेदसत्त्वद्रव्योपशमनकालचरमसमये समयोनद्व्यावलिमात्रनवकबन्धसमयप्रबद्धानामुपशमनवर्जितमवस्थानं कथमिति चेदुच्यते, तद्यथा—

पुंवेदोपशमनकालाभ्यन्तरे आवलिद्वयेऽवशिष्टे द्विचरमावलिप्रथमसमये बद्धस्य समयप्रबद्धस्य बन्धप्रथमसमयादारभ्य बन्धावलिचरमसमयपर्यन्तमुपशमनं नास्ति । सर्वत्र नवकबन्धस्याचलावलिव्यतिक्रमे सत्येवोपशमनापकर्षणादिक्रियासम्भवो न बन्धावल्यामिति परागमसम्प्रदायाद्बन्धावल्यां व्यतिक्रान्तायां तदनन्तरचरमोपशमनावल्यां प्रथयसमयादारभ्य समयं समयं प्रत्येकैकफाल्युपशमनविधानेन उपशमनावलिचरमसमये चरमफालिद्रव्यं सर्वसंक्रमेणोपशमितं द्विचरमावलिद्वितीयसमये[2] बद्धसमयप्रबद्धस्योपशमनकालचरमावलिप्रथमसमयपर्यन्तमुपशमनं नास्ति । ततः परं समयं प्रत्येकैकफालिद्रव्योपशमनविधानेनोपशमनावलिचरमसमये चरमफालिद्रव्यं वर्जयित्वा शेषं सर्वमुपशमितं । पुनर्द्विचरमावलितृतीयसमये बद्धसमयप्रबद्धस्योपशमनचरमावलिद्वितीयसमयपर्यन्तमुपशमनं नास्ति । ततः परं समयं प्रत्येकैकफाल्युपशमनविधानेन चरमफालिद्विचरमफालिद्वयं वर्जयित्वा शेषसर्वमुपशमितम् । एवमनेन क्रमेण गत्वा द्विचरमावलिचरमसमये बद्धसमयप्रबद्धस्योपशमनचरमावलिद्विचरमसमयपर्यन्तमुपशमनं नास्ति । ततः परं चरमसमये एकफालिद्रव्यमुपशमितम्, अवशिष्टं सर्वद्रव्यमनुपशमितमास्ते, तत उपशमनकालचरमावल्यां बद्धसमयप्रबद्धानामावलिमात्राणामुपशमनचरमावलिचरयसमये किंचिदपि द्रव्यं नोपशमितं तेषामद्यापि बन्धावलिव्यतिक्रमाभावात् । पुनरुपरितनोच्छिष्टावल्यां पुंवेदस्य बन्ध एव नास्ति,

१. णवरि पुरिसवेदस्स बे आवलिया बंधा समयूणा अणुवसंता । वही पृ० २८४।

२. मुद्रितप्रतौ 'द्विचरमफालिद्विचरमसमये' इति पाठः ।

उदयोऽपि नास्ति। एवं पुंवेदोपशमनकालचरमसमये द्विचरमावलिद्वितीयादिसमयबद्धसमयप्रबद्धाः समयोनावलिमात्राश्चरमावलिबद्धसमयप्रबद्धाः सम्पूर्णावलिमात्रास्ते सर्वेऽपि मिलित्वा समयोनद्व्यावलिमात्राः समयप्रबद्धा अनुपशमिता अवतिष्ठन्ते द्विचरमावलिप्रथमसमयबद्धसमयप्रबद्धस्य पुंवेदोपशमनकालचरमावलिचरमसमये सर्वात्मनोपशमितत्वात्। द्वितीयादिसमयबद्धसमयप्रबद्धानां किंचिन्न्यूनत्वेऽपि एकदेशविकृतमनन्यवद्भवतीति न्यायेन सर्वेऽपि पुंवेदनवकबन्धसमयप्रबद्धाः समयोनद्व्यावलिमात्राः पुंवेदोपशमनकालचरमसमये उपशमनवर्जिताः सन्तीति श्रीमन्माधवचन्द्रत्रैविद्यदेवानां तात्पर्यव्याख्यानम्॥ २६२॥

०
उच्छिष्टावलिः ० १
० १ २
० १ २ ३
० १ २ ३ ४
० १ २ ३ ४ ४
० १ २ ३ ४ ४ ४

---

० १ २ ३ ४ ४ ४ ४
उपशमनावलिः १ २ ३ ४ ४ ४ ४
२ ३ ४ ४ ४ ४
३ ४ ४ ४ ४

---

४ ४ ४ ४
बंधावलिः ४ ४ ४
४ ४
४

पुरुषवेदके नवकबन्धकी उपशमनविधि—

सं० चं०—इतना विशेष है जो तिस अन्तसमयविषै पुरुषवेदका एक समय घाटि दोय आवलीमात्र नवक समयप्रबद्धनिकौं छोडि अवशेष सर्व उपशमावै हैं। नवीन जे समयप्रबद्ध बँधे ते नवक समयप्रबद्ध कहिए सो बन्ध समयतैं लगाय आवलीकालकौं बन्धावली कहिए तिस बन्धावलीविषै सो बंध्या द्रव्य उपशम होने योग्य नाहीं। अर एक समयप्रबद्धके उपशमावनेकी समय समय सम्बन्धी आवलीमात्र फालि इहां हो है तातैं समय घाटि दोय आवलीमात्र समयप्रबद्ध उपशमै नाहीं। कैसैं? सो कहिए है—

उपशमकालका अन्तविषै दोय आवली तिनका नाम इहाँ द्विचरमावली अर चरमावली है। सो द्विचरमावलीका प्रथम समयविषै जो समयप्रबद्ध बंध्या था सो बन्धावली व्यतीत भएं चरमावलीका प्रथम समयतैं लगाय समय समय प्रति एक एक फालिका उपशमन करि चरमावलीका अन्तसमयविषै सर्व उपशम्या। बहुरि द्विचरमावलीका द्वितीय समयविषै जो समयप्रबद्ध बंध्या था सो बन्धावली व्यतीत भएं चरमावलीका द्वितीय समयतैं लगाय चरम आवलीका अन्तसमय पर्यन्त अन्य फाली तौ उपशमै अर एक अन्त फाली नाही उपशमी। बहुरि ऐसैं ही द्विचरमावलीका तृतीयादि समयनिविषै बँधे समयप्रबद्ध ते बन्धावली व्यतीत भएं चरमावलीका

तृतीयादि समयतैं लगाय अन्तसमयपर्यंन्त समयनिविषै अन्य फाली तौ उपशमै अर क्रमतैं दोय तीन च्यारि आदि फाली उपशमी नाहीं। तहाँ ऐसैं क्रमतैं द्विचरमावलीका अन्तसमयविषै बन्ध्या समयप्रबद्धका चरमावलीका अन्तसमयविषै एक फाली उपशमी अवशेष उपशमी नाहीं ऐसैं तौ द्विचरमावलीविषै बँधे समयप्रबद्धनिकी फाली न उपशमी। बहुरि चरमावलीके प्रथमादि सर्व समयनिविषै बँधे समयप्रबद्धनिके किछू भी द्रव्यका उपशम भया नाहीं। जातैं तिनकी बन्धावली व्यतीत नाहीं भई। बहुरि तातैं उपरिवर्ती उच्छिष्टावलीविषै पुरुषवेदका बन्ध भी अर उदय भी है नाहीं। ऐसैं पुरुषवेदकौं उपशमकालका अन्तसमयविषै द्विचमावरलीके तौ एक समय घाटि आवलीमात्र अर चरमावलीके सम्पूर्ण आवलीमात्र मिलि एक समय घाटि दोय आवलीमात्र समयप्रबद्ध उपशमै नाहीं। इहाँ अंशकौं अंशीवत् कहिए इस न्यायकरि उपशमी नाहीं जे समय-प्रबद्धकी फाली तिनका भी नाम समयप्रबद्ध ही कह्या है ऐसा जानना ॥ २६२ ॥

विशेष—पुरुषवेदका उपशम करनेवाला जीव छह नोकषायोंके साथ ही उसका उपशम करता हैं। मात्र इसके उदय और बन्धकी व्युच्छित्ति एक साथ होनेसे छह नोकषायोंके साथ इसके उपशमन होनेपर भी एक समय कम दो आवलिप्रमाण नवकबन्धरूप समयप्रबद्ध बच जाते हैं जिनका उपशमन बादमें होता है। खुलासा इस प्रकार है—ऐसा नियम है कि नये कर्मका बन्ध होनेपर एक आवलिकालतक वह तदवस्थ रहता है। इस नियमके अनुसार पुरुषवेदके उपशम होनेकी अन्तिम उपशमनावलिके प्रथम समयमें पुरुषवेदका एक कम दो आवलिप्रमाण नवक समयप्रबद्ध अनुपशान्त रहता है, क्योंकि पुरुषवेदकी उपान्त्य उपशमनावलिमें पुरुषवेदके आवलि-प्रमाण नवक समयप्रबन्धोंमेंसे प्रथम समयप्रबद्धकी एक-एक फालिका अन्तिम उपशमनावलिके प्रत्येक समयमें उपशम होकर तदनन्तर उच्छिष्टावलिके प्रथम समयमें वह पूरा उपशान्त रहता है। यह तो उपान्त्य उपशमनावलिके प्रथम समयमें बँधे हुए समयप्रबद्धके उपशमनकी व्यवस्था है। उपान्त्य उपशमनावलिके दूसरे समयमें बँधे हुए समयप्रबद्धका अन्तिम उपशमनावलिके द्वितीय समयसे उपशमन प्रारम्भ होकर अन्तिम एक फालिको छोड़कर शेष समस्त द्रव्य उपशान्त हो जाता है। इसी प्रकार उपान्त्य उपशमनावलिके तीसरे समयमें बँधे हुए समयप्रबद्धका अन्तिम उपशमनावलिके दूसरे समयसे उपशमन प्रारम्भ होकर अन्तिम दो फालियोंको छोड़कर उसके अन्तिम समयमें शेष समस्त द्रव्य उपशान्त हो जाता है। इसी प्रकार उपान्त्य उपशमनावलिके अन्तिम समयतक बँधे हुए समयप्रबद्धका विचार कर लेना चाहिए। साथ ही इतना विशेष जानना चाहिए कि अन्तिम उपशमनावलिके प्रत्येक समयमें बँधे हुए प्रत्येक समयप्रबद्धकी उसी आवलिके भीतर उपशमनक्रिया नहीं होती, इसलिए एक तो अन्तिम उपशमनावलिके अन्तिम समयके बाद प्रथम समयमें उपान्त्य उपशमनावलिसम्बन्धी एकसमयप्रबद्धकम एक आवलि-प्रमाण समयप्रबद्ध अनुपशान्त रहते हैं। दूसरे अन्तिम उपशमनावलिसम्बन्धी समस्त समयप्रबद्ध अनुपशान्त रहते है। इस प्रकार पुरुषवेदसे उपशमश्रेणिपर चढ़े हुए जीवके उसके अन्तिम समयमें एक समय कम दो आवलिप्रमाण नवकसमयप्रबद्ध अनुपशान्त रहते हैं यह सूत्रगाथामें कहा गया है। और यह इसलिए बन जाता है कि पुरुषवेदके बन्ध और उदयकी व्युच्छित्ति तो एक साथ होती ही है। साथ उक्त नवक समयप्रवद्धोंको छोड़कर शेष पुरुषवेद सम्बन्धी पूरे द्रव्यकी उपशमनाका भी वही अन्तिम समय है। मूलमें अंक संदृष्टि दी ही है। उसमें आवलिके लिए तथा एक समयप्रबद्धकी समस्त फालियोंके लिए ४ अंक कल्पित किये गये हैं। '०' शून्य पूरे समय-

प्रबद्धके उपशम होनेको सूचित करनेके लिए कल्पित किया गया है। संदृष्टिमें उपान्त्य उपशमनावलिको बन्धावलि, अन्तिम उपशमनावलिको उपशमनावलि और उसके बादकी आवलिको उच्छिष्टावलि कहा गया है।

अथ पुंवेदोपशमनकालचरमसमये स्थितिबन्धप्रमाणप्ररूपणार्थमिदमाह—

तच्चरिमे पुंबंधो सोलसवस्साणि संजलणगाण।
तद्दुगाणि सेसाणं संखेज्जसहस्सवस्साणि[1] ॥ २६३ ॥

तच्चरमे पुंबंधः षोडशवर्षाणि संज्वलनकानाम्।
तद्द्विकानि शेषाणां संख्यसहस्रवर्षाणि ॥ २६३ ॥

सं० टी०—तस्य पुंवेदोपशमनकालस्य सवेदानिवृत्तिकरणस्य चरमसमये षोडशवर्षमात्रः पुंवेदस्थितिबन्धः। संज्वलनचतुष्टयस्य स्थितिबंधो द्वात्रिंशद्वर्षप्रमितः। घातिचतुष्टयस्य संख्यातसहस्रवर्षमात्रः स्थितिबन्धः। ततः संख्येयगुणो नामगोत्रयोः संख्यातसहस्रवर्षमात्रः स्थितिबन्धः। ततः साधिको वेदनीयस्य संख्यातसहस्रवर्षमात्रः स्थितिबन्धः ॥ २६३ ॥

पुरुषवेदके उपशमनाकालके अन्तिम समयमें स्थितिबन्धका विधान—

स० चं०—तिस पुरुषवेदका उपशमनकाल पर्यन्त सवेद अनिवृत्तिकरण है ताका अन्तसमयविषै पुरुषवेदका सोलह वर्षमात्र संज्वलनचतुष्कका बत्तीस वर्षमात्र औरनिका संख्यात हजार वर्षमात्र तहाँ स्तोक तीन घातियानिका तातैं संख्यातगुणा नामगोत्रका तातैं साधिक वेदनीयका स्थितिबन्ध हो है ॥ २६३ ॥

अथ पुंवेदस्य प्रथमस्थितौ आवलिद्वयावशेषायां संभवत्क्रियान्तरप्रतिपादनार्थमिदमाह—

पुरिसस्स य पढमठिदी आवलिदोसुवरिदासु आगाला।
पडिआगाला छिण्णा पडियावलियादुदीरणदा[2] ॥ २६४ ॥

पुरुषस्य च प्रथमस्थितिः आवलिद्वयोरुपरतयोरागालाः।
प्रत्यागालाः छिन्नाः प्रत्यावलिकात उदीरणता ॥ २६४ ॥

सं० टी०—पुंवेदस्य प्रथमस्थितिः क्रमेण गलित्वा यदा द्वयावलिमात्रावशेषा भवति तदा आगालप्रत्यागालौ व्युच्छिन्नौ। आवलिद्वयावशेषप्रथमसमयात्प्रभृति गुणश्रेणिनिजरापि व्युच्छिन्ना किन्तु तदैवोदयावलिबाह्योपरितनावलिद्रव्यस्योदयावल्यामुदीरणापि पूर्वोक्तलक्षणा प्रारब्धा ॥ २६४ ॥

प्रकृतमें अन्य कार्योंका निर्देश—

स० चं०—पुरुषवेदकी अन्तरायामके नीचैं कही थी जो प्रथमस्थिति तीहिंविषै दोय आवली अवशेष रहैं आगाल प्रत्यागालका व्युच्छेद भया। बहुरि दोय आवली अवशेष रहै तहाँ

---

१. तस्समए पुरिसवेदस्स ट्ठिदिबंधो सोलस वस्साणि। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। वही पृ० २८५।

२. पुरिसवेदस्स पढमट्ठिदीए जाधे बे आवलियाओ सेसाओ ताधे आगाल-पडिआगालो वोच्छिण्णो। वही पृ० २८५।

प्रथम समयतैं लगाय पुरुषवेदकी गुणश्रेणि निर्जराका व्युच्छेद भया तहाँ उदयावलीतैं बाह्य ऊपरि निषेकनिविषै तिष्ठता द्रव्यकौं उदयावलीविषै दीजिए है। ऐसी उदीरणा ही पाइए है। इनिका लक्षण पूर्वोक्त जानने ॥ २६४ ॥

विशेष—पुरुषवेदकी कितनी स्थिति शेष रहने तक आगाल और प्रत्यागाल होते है इसका समाधान जयधवलामें दो प्रकारसे किया गया है। प्रथम समाधानके अनुसार तो यह बतलाया गया है कि पुरुषवेदकी प्रथम स्थितिमें एक समय अधिक दो आवलियाँ शेष रहने तक आगाल और प्रत्यागाल होते हैं। पूरी दो आवलिप्रमाण स्थितिके शेष रहनेपर उन दोनोंकी व्युच्छित्ति हो जाती है किन्तु दूसरी व्याख्याके अनुसार दो आवलिप्रमाण प्रथम स्थितिके शेष रहने तक आगाल और प्रत्यागाल होते रहते हैं। किन्तु एक समय कम दो आवलिप्रमाण प्रथमस्थितिके शेष रहनेपर वे दोनों व्युच्छिन्न हो जाते हैं। इसपर प्रश्न होता है कि यदि ऐसा है तो सूत्रमें यह क्यों कहा कि जब पुरुषवेदकी प्रथम स्थिति दो आवलिप्रमाण शेष रहती है तब आगाल और प्रत्यागाल व्युच्छिन्न हो जाते हैं सो इसका समाधान यह कहकर किया है कि यह कथन उत्पादानुच्छेदनयका आश्रय लेकर किया गया है, क्योंकि उत्पादानुच्छेदके अनुसार विवक्षित वस्तुके सद्भावका जो अन्तिम समय है उस समयमें ही उसके अभावका प्रतिपादन किया जाता है। जैसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें उसके जिन १६ प्रकृतियोंका बन्ध होता है, इस नयके अनुसार वहीं उनकी बन्धव्युच्छित्ति कही जाती है। प्रथमस्थितिमें स्थित द्रव्यका उत्कर्षण कर द्वितीय स्थितिमें निक्षेप करना आगाल है और द्वितीय स्थितिमें स्थित द्रव्यका अपकर्षणकर प्रथम स्थितिमें निक्षिप्त करना प्रत्यागाल है। यहीं प्रत्यावलिमेंसे प्रतिसमय असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा होती है।

अन्तरकरणसमाप्त्यनन्तरसमयादारभ्य संक्रमविशेषप्ररूपणार्थमिदमाह—

अंतरकदादु छण्णोकसायदव्वं ण पुरिसगे देदि।
एदि हु संजलणस्स य कोधे अणुपुव्विसंकमदो[1] **॥ २६५ ॥**

अंतरकृतात् षण्णोकषायद्रव्यं न पुरुषके ददाति।
एति हि संज्वलनस्य च क्रोधे आनुपूर्विसंक्रमतः॥ २६५॥

सं० टी०—अन्तरकृतादन्तरकरणसमाप्तिसमयात्परं हास्यादिषण्णोकषायद्रव्यं पुंवेदे न संक्रमत्येव अपि तु संज्वलनक्रोधे एव संक्रमति पूर्वोद्दिष्टानुपूर्वीसंक्रमानतिक्रमात् ॥ २६५ ॥

अन्तरकरणके बाद—

सं० चं०—अन्तर करनेतैं पीछैं हास्यादि छह नोकषायनिका द्रव्य है सो पुरुषवेदविषै संक्रमण नाहीं करै है संज्वलन क्रोधविषैं ही संक्रमण करै हैं जातैं इहाँ आनुपूर्वी संक्रमण पाइए है॥ २६५॥

१. अंतरकदादो पाए छण्णोकसायाणं पदेसग्गं ण संछुहदि पुरिसवेदे, कोहसंजलणे संछुहदि। वही पृ० २६७।

अथ पुंवेदनवकबन्धद्रव्यस्योपशमनविधानप्ररूपणार्थमिदमाह—

पुरिसस्स उत्तणवकं असंखगुणियक्कमेण उवसमदि ।
संकमदि हु हीणकमेणधापवत्तेण हारेण[1] ॥ २६६ ॥

पुरुषस्य उक्तनवकं असंख्यगुणितक्रमेण उपशमयति ।
संक्रमति हि हीनक्रमेणाधःप्रवृत्तेन हारेण ॥ २६६ ॥

सं० टी०—पुंवेदस्य प्रागुक्तनवकद्रव्यं समयोनद्व्यावलिमात्रसमयप्रबद्धप्रमितं स ƀ । ४२ / ७ । २ (१०) पुंवेदानिवृत्तिचरमसमये अनुपशमितं सदवतिष्ठते । पुनरपगतवेदप्रथमसमये पुंवेदोपशमनकालद्विचरमावलिद्वितीयसमयबद्धसमयप्रबद्धस्य सर्वात्मनोपशमितत्वात् द्विसमयोनद्व्यावलिमात्रसमयप्रबद्धरूपं पुंवेदनवकबन्धसत्त्वमनुपशमितमास्ते । तस्मिन्नपगतवेदप्रथमसमये व्यतिक्रान्तबन्धावलिकसमयप्रबद्धस्य यावदुपशमितं द्रव्यं स ƀ / ७ । २ । गु तदनन्तरद्वितीयसमये ततोऽसंख्येयगुणं द्रव्यमुपशमयति स ƀ ƀ / ७ २ । गु एवं चरमफालिपर्यन्तसंख्यातगुणितक्रमेणोपशमनद्रव्यं ज्ञातव्यम् । एवमितरेषामपि समयप्रबद्धानां स्वस्वबन्धावलिव्यतिक्रान्तसमयादारभ्य प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेणोपशमनफालिद्रव्यं नेतव्यम् । एवमपगतवेदप्रथमसमयादारभ्य समयोनद्व्यावलिमात्रकाले सर्वं पुंवेदनवकबन्धमुपशमितं भवतीति ज्ञातव्यम् । एको नवकबन्धसमयप्रबद्धः एकावलिमात्रकाले उपशमितो भवति । अत एवावलिसमयमात्राणि एकसमयफालिद्रव्याणि कृतानि तान्यङ्कसंदृष्ट्या तावन्ति । ४ । तथा पुंवेदनवकबन्धस्यैकसमयप्रबद्धद्रव्यं स ƀ / ७ । २ अपगतवेदप्रथमसमये अथाप्रवृत्तभागहारेण खण्डयित्वा तदेकभागद्रव्यं संज्वलनक्रोधद्रव्ये संक्रमयति स ƀ / ७ । २ । अ अवशिष्टबहुभागद्रव्यं पुनरप्यथाप्रवृत्तभागहारेण खण्डयित्वा तदेकभागद्रव्यं द्वितीयसमये संक्रमयति स ƀ (१०) अ / ७ । २ । अ अ अवशिष्टं तद्बहुभागद्रव्यं पुनरप्यथाप्रवृत्तभागहारेण खण्डयित्वा तदेकभागं तृतीयसमये संक्रमयति स । ƀ (१० १) अ अ / ७ । २ । अ अ अ एवमनेन क्रमेण समयोनद्व्यावलिचरमसमयपर्यन्तं विशेषहीनं द्रव्यं संक्रमयति । तथा पुनः पुंवेदनवकबन्धस्यापरं समयप्रबद्धद्रव्यं प्रतिसमयमसंख्यातभागहीनक्रमेण संक्रमयति, पुनरन्यत्समयप्रबद्धद्रव्यं प्रतिसमयं संख्यातभागहीनक्रमेण, पुनरन्यत्समयप्रबद्धद्रव्यं संख्यातगुणहीनक्रमेण संक्रमयति, पुनरपरं

१. जो पढमसमयअवेदो तस्स पढमसमयअवेदस्स संतं पुरिसवेदस्स दोआवलियबन्धा दुसमयूणा अणुवसंता । जा दोआवलियबंधा दुसमयूणा अणुवसंता तेसिं पदेसग्गमसंखेज्जगुणाए सेढीए उवसामिज्जदि । परपयडीए पुण अधापवत्तसंकमेण संकामिज्जदि । एस कमो एयसमयपबद्धस्स चेव । वही पृ० २८७ से २८९ ।

समयप्रबद्धद्रव्यं प्रतिसमयमसंख्यातगुणहीनक्रमेण संक्रमयति। तथा पुनरन्यत्समयप्रबद्धद्रव्यं प्रतिसमयमसंख्यातभागवृद्धिक्रमेण, पुनरन्यत्समयप्रबद्धद्रव्यं संख्यातभागवृद्धिक्रमेण, पुनरन्यत्समयप्रबद्धं संख्यातगुणवृद्धिक्रमेण, पुनरेकं समयप्रबद्धद्रव्यमसंख्यातगुणवृद्धिक्रमेण संक्रमयति। चतुःस्थानपतितहानिवृद्धिपरिणतयोगसंचितसमयबद्धानां द्रव्यहीनाधिकभावमाश्रित्य तत्संक्रमणद्रव्यस्यापि चतुःस्थानहानिवृद्धिक्रमस्य प्रवचनयुक्त्या प्रवृत्तिर्दशिता ॥२६६॥

पुरुषवेदके नवकबन्धके उपशमनका विधान—

सं० चं०—पुरुषवेदके पूर्वोक्त समयप्रबद्ध जे नाहीं उपशमाए थे ते वेदरहित जो अपगत वेद अनिवृत्तिकरण ताके प्रथमादि समयनिविषै ऐसैं उपशमाइए हैं। जो पुरुषवेदका उपशमकालकी द्विचरमावलीका द्वितीय समयविषै बंध्या समयप्रबद्धकी एक फालि अवशेष रही थी ताका अपगतवेदका प्रथमसमयविषै उपशम हो है। ताकौं होतैं समयप्रबद्ध सर्व उपशम्या अवशेष दोय समय घाटि दोय आवलीमात्र समयप्रबद्ध रहैं तहाँ जाकी बन्धावली व्यतीत भई ऐसा जो समयप्रबद्ध ताका द्रव्य अपगतवेदका प्रथम समयविषै जितना उपशमा तातैं द्वितीयादि समयनिविषै अन्तफालि पर्यन्त क्रमतैं असंख्यातगुणा द्रव्य उपशमाइए है और अन्य समयप्रबद्धनिका द्रव्यविषै बन्धावली व्यतीत होतैं समय-समय असंख्यातगुणा क्रम लीएं उपशम फालिनिका द्रव्य जानना। एक नवक समयप्रबद्ध एक आवलीकालविषै उपशमै तातैं तहाँ एक समयप्रबद्धकी आवलीप्रमाण फाली जानना। ऐसैं अपगतवेदका प्रथमसमयतैं लगाय समय घाटि दोय आवलीमात्र कालविषै पुरुषवेदके सर्व नवक समयप्रबद्ध उपशमाइए हैं। ऐसैं तौ उपशम विधान जानना।

बहुरि पुरुषवेदका कोई एक नवक समयप्रबद्धकौं अधःप्रवृत्तभागहारका भाग देइ तहाँ एक भागमात्र द्रव्य है सो अपगतवेदका प्रथम समयविषै संज्वलन क्रोधरूप होइ संक्रमण करै है। बहुरि अवशेष बहुभागमात्र द्रव्यकौं अधःप्रवृत्त भागहारका भाग देइ तहाँ एक भाग द्वितीय समयविषै संक्रमण करै है। बहुरि अवशेष बहुभागकौं तैसैं ही भाग दीएं एकभाग तृतीय समयविषै संक्रमण करै। ऐसैं समय घाटि दोय आवलीका अन्तपर्यन्त विशेष घटता क्रम लीएं संक्रमण करै है। बहुरि अन्य कोई नवक बन्धका समयप्रबद्ध समय-समय प्रति असंख्यात भाग घटता क्रमकरि कोई संख्यात भाग घटता क्रमकरि कोई संख्यातगुणा घटता क्रमकरि कोई असंख्यातगुणा घटता क्रमकरि कोई संख्यात भागवृद्धि क्रमकरि कोई असंख्यात भागवृद्धि क्रमकरि कोई संख्यातगुणा वृद्धि क्रमकरि कोई असंख्यातगुणा वृद्धि क्रमकरि संज्वलन क्रोधविषै संक्रमण करै है। जातैं चतुःस्थान पतित हानि-वृद्धिरूप योगनिकरि बँधे समयप्रबद्धनिकौ द्रव्य हीनाधिक सम्भवै है। तातैं संक्रमण द्रव्यकै भी चतुःस्थान पतित हानि-वृद्धिका अनुक्रम सम्भवै है ॥ २६६ ॥

विशेष—अनिवृत्तिकरणके सवेदभागके अन्तिम समयमें पुरुषवेदका जो एक समय कम दो आवलिप्रमाण नवक समयप्रबद्ध अनुपशमित होकर अवशिष्ट रहा था जो कि अवेदभागके प्रथम समय एक समय कम होकर दो समय कम दो आवलिप्रमाण अनुपशमित अवस्थामें अवशिष्ट रहता है उसका इतने ही कालके भीतर एक तो उत्तरोत्तर असंख्यातगुणित श्रेणिरूपसे उपशम करता है और दूसरे अधःप्रवृत्तसंक्रमके द्वारा उसका क्रोधसंज्वलनमें संक्रम करता है। पुरुषवेदकी उसके सवेदभागके अन्तिम समयमें बन्ध व्युच्छित्ति हो जाती है, अतः जब यहाँ पुरुषवेदका बन्ध ही नहीं होता ऐसी अवस्थामें उसका गुणसंक्रम न कहकर अधःप्रवृत्तसंक्रम क्यों स्वीकार किया गया है, क्योंकि ऐसा नियम है कि जिस प्रकृतिका बन्ध होता हो उसीका अधःप्रवृत्तसंक्रम

सम्भव है। यह एक प्रश्न है। समाधान यह है कि बन्धकी व्युच्छित्ति हो जानेपर भी पुरुषवेद और तीन संज्वलन आदिके नवक बन्धका अधःप्रवृत्त संक्रम होता है ऐसा स्वीकार किया गया हैं। संक्रम विधिका खुलासा इस प्रकार है—पहले समयमें विवक्षित समयप्रबद्धमेंसे जितने द्रव्यका संक्रम और उपशम हुआ उतने द्रव्यको उस समयप्रबद्धमेंसे कम कर दूसरे समयमें जो बहुभाग-प्रमाण द्रव्य शेष बचा उसमें अधःप्रवृत्तसंक्रमका भाग देनेपर जो एकभाग प्राप्त होता है उसका उस दूसरे समयमें संक्रम करता है। इसी प्रकार तृतीयादि समयोंमें भी जान लेना चाहिए। यह संक्रम प्रकृतमें एकसमयप्रबद्धकी अपेक्षा स्वीकार किया गया है, नाना समयप्रबद्धोंकी अपेक्षा नहीं, इसलिए यहाँ योगके अनुसार चार वृद्धि और चार हानि सम्भव न होकर उत्तरोत्तर विशेषहीन होकर ही संक्रम होता है ऐसा स्वीकार किया गया है।

अथापगतवेदस्य प्रथमसमये स्थितिबन्धप्रमाणप्रदर्शनार्थमिदमाह—

पढमावेदे संजलणाणं अंतोमुहुत्तपरिहीणं।
वस्साणं बत्तीसं संखसहस्सियरगाण ठिदिबंधो[1] ॥ २६७ ॥

प्रथमावेदे संज्वलनानां अन्तर्मुहूर्तपरिहीनम्।
वर्षाणां द्वात्रिंशत् संख्यसहस्रमितरेषां स्थितिबन्धः ॥ २६७ ॥

सं० टी०—प्रथमसमयवर्तिन्यपगतवेदे संज्वलनक्रोधादिचतुष्टयस्य स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तहीनो द्वात्रिंशद्वर्षप्रमितः। सवेदचरमसमयवर्तिनः प्राक्तनस्थितिबन्धात्संपूर्णद्वात्रिंशद्वर्षमात्रादन्तर्मुहूर्तस्थितिबन्धापसरणवशेनापगतवेदप्रथमसमये एवंविधस्थितिबन्धस्य युक्तत्वात्। शेषकर्मणां तीसियवीसियवेदनीयानां प्राक्तनस्थितिबन्धात्संख्यातगुणहीनः स्थितिबन्धः संख्यातसहस्रवर्षमात्र एव पूर्वोक्ताल्पबहुत्वविधानेन ज्ञातव्यः ॥ २६७ ॥

अपगतवेदीके प्रथमसमयमें स्थितिबन्धसम्बन्धी विधान—

सं० चं०—अपगतवेदका प्रथम समयविषै संज्वलन चतुष्कका तौ अन्तर्मुहूर्त घाटि बत्तीस वर्षमात्र स्थितिबन्ध है जातैं बत्तीस वर्ष स्थिति थी तामैं एक बार स्थितिबन्धापसरण करि अन्तर्मुहूर्त घट्या। बहुरि अन्य कर्मनिका पूर्वस्थिति बन्धतैं संख्यातगुणा घटता पूर्वोक्त प्रकार हीनाधिक क्रम लीएं संख्यात हजार वर्षमात्र स्थितिबन्ध हो है ॥ २६७ ॥

अथापगतवेदस्य संभवत्क्रियान्तरप्रदर्शनार्थं गाथाद्वयमाह—

पढमावेदो तिविहं कोहे उवसमदि पुव्वपढमठिदी।
समयाहियआवलियं जाव य तक्कालठिदिबंधो[1] ॥ २६८ ॥

१. पढमसमयअवेदस्स संजलणाणं ट्ठिदिबंधो बत्तीस वस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। वही पृ० २८९।

१. पढमसमयअवेदो तिविहं कोहमुवसामेइ। सा चेव पोराणिया पढमट्ठिदी हवदि (पृ २९०)। एदेण कमेण जाधे आवलिय-पडिआवलियाओ सेसाओ कोधसंजलणस्स ताधे विदियट्ठिदीदो पढमट्ठिदीदो आगाल-पडिआगालाओ वोच्छिण्णो। पडिआवलियादो चेव उदीरणा कोहसंजलणस्स। वही पृ० २९१। आगाल-पडिआगालवोच्छेदे तदो पहुडि कोहसंजलणस्स णत्थि गुणसेढिणिक्खेवो। तदो पडिआवलिादो चेव पदेसग्गमोकड्डियूणासंखेज्जे समयपबद्धे उदीरेदि। जयध० पु० १३ पृ० २९२। पडि आवलियाए एकम्हि समए सेसे कोहसंजलणस्स जहण्णिया ट्ठिदिउदीरणा। वही पृ० २९२।

प्रथमावेदस्त्रिविधं क्रोधं उपशमयति पूर्वप्रथमस्थितिः ।
समयाधिकावलिकां यावच्च तत्कालस्थितिबन्धः ।। २६८ ।।

सं० टी०—प्रथमसमयवर्त्यपगतवेदानिवृत्तिकरणविशुद्धिसंयतः तत्कालप्रथमसमयादारभ्य पुंवेदनवकबन्धेन सहाप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनक्रोधत्रयमुपशमयति । तत्र संज्वलनक्रोधस्योदयमानस्य पूर्वमन्तरकरणप्रारम्भे स्थापितान्तर्मुहूर्तमात्री प्रथमस्थितिः पुंवेदप्रथमस्थितौ विशेषाधिका सैवेदानीमपि गलितावशेषप्रमाणा समयाधिकावलिमात्रावशेषा यावत्तावत्प्रवर्तते । उच्छिष्टावल्याः प्रथमस्थितिव्यपदेशासम्भवात् । उपरि मानादीनां यथाभिनवा प्रथमस्थितिः करिष्यति तथा संज्वलनक्रोधस्य नूतनप्रथमस्थितिकरणानुपपत्तेश्च । संज्वलनक्रोधस्य प्रथमस्थितौ यदा आवलिप्रत्यावलिद्वयमवशिष्यते तदा आगालप्रत्यागालौ व्युच्छिन्नौ । तदैव संज्वलनक्रोधस्य गुणश्रेणिनिर्जरापि व्युच्छिन्ना केवलं प्रागुक्तक्रमेण प्रत्यावलिद्रव्यस्योदीरणा भवति ।। २६८ ।।

अपगतवेदीके अन्य कार्योंका निर्देश —

सं० चं०—प्रथम समयवर्ती अपगतवेदी संयमी सो अपगतवेदका प्रथम समयतैं लगाय पुरुषवेदका नवक समयप्रबद्ध सहित अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान संज्वलन इनि तीनों क्रोधनिकौं उपशमावै है । तहाँ उदयरूप जो संज्वलन क्रोध ताकी प्रथम स्थिति पूर्वैं जो अन्तरकरणका प्रारम्भविषै अन्तर्मुहूर्तमात्र प्रथम स्थिति स्थापी थी ताका प्रमाण पुरुषवेदकी प्रथम स्थितितैं साधिक था तिसविषै व्यतीत भएं पीछैं जो अवशेष रह्या तामैं एकसमय अधिक आवलीमात्र अवशेष रहैं तहांतैं पहिलैं इहाँ संज्वलनक्रोधकी प्रथम स्थिति जाननी । जातैं उच्छिष्टावली अवशेष रहै प्रथम स्थिति नाम न पावै है । बहुरि जैसैं मानादिककी नवीन प्रथमस्थितिका स्थापन करेंगे तैसैं क्रोधकी प्रथमस्थिति नवीन न हो है जातैं संज्वलन क्रोधका ही उदय चल्या आवै है, तातैं अन्तरकरणविषै स्थापी जो प्रथम स्थिति ताका ही इहाँ ग्रहण किया सो इस प्रथम स्थितिविषै आवली प्रत्यावली ए दोय अवशेष रहैं आगाल प्रत्यागालका अर संज्वलन क्रोधकी गुणश्रेणि निर्जराका व्युच्छेद हो है । द्वितीयावलीका द्रव्यकौं उदयावलीविषै देनेरूप केवल उदीरणा ही पाइए है ।। २६८ ।।

विशेष—पुरुषवेदके पुराने सत्कर्मके उपशान्त होने पर उसके नवक बन्धको क्रमसे उपशमाता हुआ ही अपगतवेदी जीव प्रत्याख्यान, अप्रत्याख्यान और संज्वलनरूप तीन क्रोधोंकी उपशमविधिका प्रारम्भ करता है । इस जीवने पहले जो अन्तरकरण क्रिया करते हुए क्रोध संज्वलनकी प्रथम स्थिति पुरुष वेदकी प्रथम स्थितिसे साधिक स्थापित की थी, वह प्रथम स्थिति अपगत वेदके प्रथम समयमें गलित होकर जितनी शेष बची वही शेष बची प्रथम स्थिति यहाँ प्रवृत्त रहती है । जिस प्रकार आगे मानादिककी उपशामना करते समम अपूर्व प्रथम स्थिति स्थापित की जाती है उस प्रकार यहाँ पर तीन क्रोधके उपशमानेके लिये अपूर्व प्रथम स्थिति नहीं स्थापित की जाती । किन्तु पहले जो प्रथम स्थिति रची थी वही पुरानी प्रथम स्थिति तीन क्रोधोंके उपशमाने तक चालू रहती है । इस क्रमसे जब क्रोध संज्वलनकी प्रथम स्थिति उदयावलि और प्रति उदयावलिप्रमाण शेष रहती है तब आगाल-प्रत्यागालकी व्युच्छित्ति हो जाती है । यह कथन यहाँ उत्पादानुच्छेदकी अपेक्षा किया है । क्योंकि यहाँ पर दो आवलियोंसे एक समय कम दो आवलियाँ ली गई हैं । आगाल-प्रत्यागालकी व्युच्छित्ति हो जाने पर क्रोधसंज्वलनका गुणश्रेणि निक्षेप नहीं होता, क्योंकि सबसे जघन्य गुणश्रेणि आयाम एक आवलिप्रमाण है, उससे कम नहीं । इसलिये

प्रत्यावलिमेंसे ही प्रदेशपुंजका अपकर्षण कर वह जीव असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा करता है।

तस्य क्रोधत्रयस्योपशमनकालचरमसमये संज्वलनक्रोधप्रथमस्थितौ समयाधिकावलिमात्रावशेषकर्मणां स्थितिबन्ध ईदृशो भवतीति वक्ष्यते—

संजलणचउक्काणं मासचउक्कं तु सेसपयडीणं।
वस्साणं संखेज्जसहस्साणि हवंति णियमेण[1] ॥ २६९ ॥
संज्वलनचतुष्काणां मासचतुष्कं तु शेषप्रकृतीनाम्।
वर्षाणां संख्येयसहस्राणि भवंति नियमेन ॥ २६९ ॥

सं० टी०—संज्वलनक्रोधादिचतुष्टयस्यापगतवेदप्रथमसमयादारम्यान्तर्मुहूर्तमात्रस्थितिबन्धापसरणेषु संख्यातसहस्रेषु गतेषु क्रोधत्रयोपशमनकालचरमसमये स्थितिबन्धश्चतुर्मासमात्रः। शेषकर्मणां तीसियवीसिय-वेदनीयानां प्राक्तनस्थितिबन्धात्संख्यातगुणहीनोऽपि संख्यातसहस्रवर्षमात्र एव पूर्वोक्तात्पबहुत्वक्रमेण प्रवर्तते ॥ २६९ ॥

संज्वलन क्रोध आदिके स्थिति बन्धके प्रमाण निर्देश—

स० चं०—अपगतका प्रथम समयतैं लगाय अंतमुंहूर्तमात्र आयाम धरें ऐसे संख्यात हजार स्थितिबंध भएं क्रोधत्रिकका उपशम कालका अंतसमयविषै संज्वलन चतुष्कका स्थितिबंध च्यारि मासमात्र हो है। बहुरि तिस ही अंतसमयविषै और कर्मनिका पूर्वस्थितिबंधतैं संख्यातगुणा घटया ऐसा संख्यात हजार वर्षमात्र पूर्वोक्त प्रकार हीनाधिकपना लीएं स्थितिबंध हो है ॥ २६९ ॥

अथ क्रोधद्रव्यस्य संक्रमविशेषप्रदर्शनार्थमिदमाह—

कोहदुगं संजलणगकोहे संछुहदि जाव पढमठिदी।
आवलितियं तु उवरिं संछुहदि हु माणसंजलणे[2] ॥ २७० ॥
क्रोधद्विकं संज्वलनक्रोधे संक्रामति यावत् प्रथमस्थितिः।
आवलित्रिकं तु उपरि संक्रामति हि मानसंज्वलने ॥ २७० ॥

सं० टी०—अपगतवेदे प्रथमसमयादारम्य संज्वलनक्रोधप्रथमस्थितिरावलित्रयावशेषा यावत्तावद्भ-वति। तावदप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानक्रोधद्वयद्रव्यं गुणसंक्रमेण गृहीत्वा संज्वलनक्रोधे संक्रमयति। तत्र प्रथमा संक्रमावलिः, द्वितीया उपशमनावलिः, तृतीया उच्छिष्टावलिरिति व्यपदिश्यते। ततः परं तद्द्रव्यं संक्रमणावलिचरमसमयपर्यन्तं संज्वलनमाने संक्रमयति ॥ २७० ॥

क्रोधके द्रव्यके संक्रमण विशेषका विधान—

सं० चं०—अपगत वेदका प्रथम समयतैं लगाय संज्वलन क्रोधकी प्रथम स्थितिविषै तीन

१. चदुण्हं संजलणाणं ठिदिबंधो चत्तारि मासा। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्स-सहस्साणि। वही पृ० २९२।

२. कोहसंजलणे दुविहो कोहो ताव संछुहदि जाव कोहसंजलणस्स पढमट्ठिदीए तिण्णि आवलियाओ सेसाओ त्ति तिसु आवलियासु समयूणासु सेसासु तत्तो पाए दुविहो कोहो कोहसंजलणं संकमदि। वही पृ० २९३-२९४।

आवली अवशेष रहैं तावत् अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान क्रोधादिकका द्रव्यकौं गुणसंक्रम भागहार करि ग्रहि संज्वलन क्रोधविषै संक्रम कराइए है। बहुरि संक्रमावली १ उपशमावली २ उच्छिष्टावली ३ ए तीन आवली रहीं तिनविषै संक्रमावलीका अंतसमय पर्यंत तिन दोऊनिका द्रव्य संज्वलन मानविषै संक्रमण हो है ॥ २७० ॥

विशेष—क्रोधसंज्वलनकी प्रथम स्थिति तीन आवलि प्राप्त होने तक ही अप्रत्याख्यानक्रोध और प्रत्याख्यान क्रोधका क्रोधसंज्वलनमें संक्रम होता है। उसमें एक समय कम होने पर उक्त दोनों क्रोधोंका मानसंज्वलनमें संक्रम होने लगता है। इस प्रकार जब क्रोधसंज्वलनकी प्रथम स्थिति उच्छिष्टावलिमात्र शेष रहती है तब क्रोधसंज्वलनकी वन्धव्युच्छित्ति और उदय व्युच्छित्ति हो जाती है। ऐसा होने पर भी चूर्णिसूत्रमें जो यह कहा है कि जब क्रोध संज्वलनकी प्रथम स्थितिमें एक समय कम एक आवलि काल शेष रहता है तब क्रोधसंज्वलनके बन्ध-उदयकी व्युच्छित्ति हो जाती है सो यहाँ पूरी उच्छिष्टावलि न कह कर एक समय कम उच्छिष्टावलि इसलिये कही, क्योंकि जिस समय क्रोधकी उदयव्युच्छित्ति होती है उसी समय उदयव्युच्छित्तिके कारण प्रथम-निषेकस्थितिके मानसंज्वलनके उदयमें स्तिवुक संक्रमके द्वारा संक्रमित हो जाने पर उच्छिष्टा-वलिमें एक समय कम हो जाता है

अथ उपशमनावलिचरमसमये संभवत्क्रियाविशेषप्ररूपणार्थमिदमाह—

कोहस्स पढमठिदी आवलिसेसे तिकोहमुवसंतं।
ण य णवकं तत्थंतिमबंधुदया होंति कोहस्स[1] ॥ २७१ ॥
क्रोधस्य प्रथमस्थितिः आवलिशेषं त्रिक्रोधमुपशान्तं।
न च नवकं तत्रान्तिमबन्धोदया भवन्ति क्रोधस्य ॥ २७१ ॥

सं० टी०—संज्वलनक्रोधस्य प्रथमस्थितौ उच्छिष्टावलिमात्रावशेषायामुपशमनावलिचरमसमये क्रोध-त्रयद्रव्यं समयोनद्व्यावलिमात्रसमयप्रबद्धनवकबन्धं मुक्त्वा पूर्वोक्तविधानेन चरमफालिरूपेण निरवशेषं स्वस्थाने एवोपशमयति। तस्मिन्नेवोपशमनावलिचरमसमये संज्वलनक्रोधस्य वन्धोदयौ युगपदेव व्युच्छिन्नौ। तस्मिन्नेव समये संज्वलनक्रोधस्योच्छिष्टावलिप्रथमनिषेकः संज्वलनमाने थिउक्कसंक्रमेण संक्रम्योदयमागमिष्यति अतः कार-णात् संज्वलनक्रोधप्रथमस्थितौ समयोनोच्छिष्टावलिरवशिष्टेति ग्राह्यम्। एवं क्रोधत्रयमुपशमितम् ॥ २७१ ॥

उपशमनावलिके अन्तिम समयमें होनेवाले क्रियाविशेषका निर्देश—

सं० चं०—संज्वलन क्रोधकी प्रथम स्थितिविषै उच्छिष्टावली अवशेष रहैं उपशमनावलीका अंतसमयविषै समय घाटि दोय आवलीमात्र नवक समयप्रबद्ध विना पूर्वोक्त प्रकार चरम फालिरूप करि समस्त संज्वलन क्रोधका द्रव्य अपने रूप ही रहता उपशम भया। तहां ही संज्वलन क्रोधका बंध वा उदयका व्युच्छेद भया। तिस ही समयविषै उच्छिष्टावलीका प्रथम निषेक है सो संज्वलन मानविषै वक्ष्यमाण लक्षणरूप जो थिउक्क संक्रमण ताकरि संक्रमणरूप होइ उदयकौं प्राप्त होसी। यातैं संज्वलन क्रोधकी प्रथम स्थिति विषै समय घाटि उच्छिष्टावली अवशेष रही कहिए है। ऐसैं क्रोधत्रिकका उपशम भया ॥ २७१ ॥

१. पढमावलिया उदयावलियं पविसमाणा पविट्ठा। ताधे चेव कोहसंजलणे दोआवलियबंधे दुस-मयूणे मोत्तूण सेसा तिविहकोधपदेसा उवसामिज्जमाणा उवसंता। वही पृ० २९३।

विशेष—भाव यह है कि जिस समय उपशमनावलि समाप्त होकर उच्छिष्टावलि प्रारम्भ होती है उसी समय तीनों प्रकारके क्रोधके उपशम होनेके साथ नवक समयप्रबद्धोंको छोड़कर क्रोधसंज्वलनके बन्ध और उदय व्युच्छिन्न होते हैं। यहाँ जो तीनों प्रकारके उपशमनावलिके अन्तमें उपशम होनेका विधान किया है सो उसका तात्पर्य यह है कि तीनों प्रकारके क्रोधोंका प्रशस्त उपशमनविधिके द्वारा उनके पूरे द्रव्यका स्वस्थानमें ही उपशम हो जाता है, जिनका उपशम होनेके प्रथम समयसे असंख्यात गुणित श्रेणिरूपसे उपशम होता है और उपशमनावलिके अन्तमें उनका पूरा द्रव्य उपशमित हो जाता है। यतः उपशमनावलिका अन्त होकर जिस समय उसका अभाव है वही उच्छिष्टावलिके प्रारम्भ होनेका प्रथम समय है, इसलिए उपशमनावलिके अन्तिम समयकी अपेक्षा विचार करने पर उस समय नवक समयप्रबद्ध एक समय कम दोआवलि प्रमाण शेष बचता है और उच्छिष्टावलिके प्रथम समयकी अपेक्षा विचार करने पर वह दो समय कम दो आवलिप्रमाण शेष बचता है ऐसा यहाँ समझना चाहिये। विशेष व्याख्यान पुरुषवेदके प्रसंगसे कर ही आये हैं।

अथ मानत्रयोपशमनविधानप्रदर्शनार्थं गाथापञ्चकमाह—

से काले माणस्स य पढमट्ठिदिकारवेदगो होदि।
पढमट्ठिदिम्मि दव्वं असंखगुणियक्कमे देदि ॥ २७२ ॥
तस्मिन् काले मानस्य च प्रथमस्थितिकारवेदको भवति।
प्रथमस्थितौ द्रव्यं असंख्यगुणितक्रमेण ददाति ॥ २७२ ॥

सं० टी०—क्रोधत्रयोपशमनानन्तरसमये अयमनिवृत्तिकरणसंयतः संज्वलनमानस्यान्तर्मुहूर्तमात्रप्रथमस्थितेः कारको वेदकश्च भवति तद्यथा—संज्वलनमानस्य द्वितीयस्थितौ स्थितिसत्त्वद्रव्यादस्मात् स ∂ । १२-
७ । ८
अपकर्षणभागहारखण्डितैकभागं गृहीत्वा पुनः पल्यासंख्यातभागेन खंडयित्वा तदेकभागमुदयावलिप्रथमसमयादारभ्य इदानीं क्रियमाणप्रथमस्थितिचरमसमयपर्यन्तं प्रक्षेपयोगेत्यादिना प्रतिनिषेकमसंख्यातगुणितक्रमेण निक्षिपति। पुनः पल्यासंख्यातबहुभागं द्वितीयस्थितौ 'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा' इत्यनेन विशेषहीनक्रमेण उपर्यतिस्थापनावलिं मुक्त्वा निक्षिपति। पुनर्द्वितीयादिसमयेष्वपि प्रथमसमयादपकृष्टद्रव्यासंख्येयगुणितक्रमेण द्रव्यमपकृष्य प्रागुक्तप्रकारेण प्रथमद्वितीयस्थित्योर्निक्षिपति। प्रतिसमयं प्रथमस्थितिप्रथमनिषेकमेकैकमुदयमानमनुभवति च ॥ २७२ ॥

स० चं०—तीनों क्रोधका उपशम होनेके अनन्तरि समयविषै यहु संयमी संज्वलन मानकी अन्तर्मुहूर्तमात्र प्रथम स्थितिका कारक कहिए कर्ता अर वेदक कहिए उदयका भोक्ता हो है सो कहिए है—

संज्वलन मानको प्रथम स्थितिके ऊपरिवर्ती जो द्वितीय स्थितिका द्रव्य ताकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ तहाँ एक भागकौं ग्रहि ताकौं पल्यका असंख्यातवाँ भागका भाग देइ एक भागकौं उदयावलीका प्रथम समयतैं लगाय इहाँ करी जो प्रथम स्थिति ताका अन्तसमय पर्यन्त

१. माणसंजलणस्स पढमसमयवेदगो पढमट्ठिदिकारओ च। पढमट्ठिदिं करेमाणो उदये पदेसग्गं थोवं देदि, से काले असंखेज्जगुणं। एवमसंखेज्जगुणाए सेढीए जाव पढमट्ठिदिचरिमसमयो त्ति। पृ० २९५-२९६।

सम्बन्धी जे निषेक तिनविषै 'प्रक्षेपयोगोद्धृतमिश्रपिंड' इत्यादि विधानतैं असंख्यातगुणा क्रम लीएं निक्षेपण करिए है। अवशेष बहुभागकौं द्वितीय स्थितिबिषै अन्तके अतिस्थापनावलीमात्र निषेक छोडि अन्य सर्व निषेकनिविषै 'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा' इत्यादि बिधानतैं विशेष घटता क्रम लीएं निक्षेपण करिए है। बहुरि द्वितीयादि समयनिबिषै प्रथम समयविषै अपकर्षण कीया द्रव्यतैं असंख्यातगुणा क्रम लीएं द्रव्यकौं ग्रहि पूर्वोक्त प्रकार निक्षेपण करै है। बहुरि समय-समय उदय आया प्रथम स्थितिका एक-एक निषेककौं भोगवै है ॥ २७२ ॥

विशेष—जिस समय तीनों क्रोधोंका उपशम होता है उसके अनन्तर समयमें प्रथम स्थिति करनेके साथ उसी समय उसका वेदक भी होता है। तात्पर्य यह है कि इससे पहले मान संज्वलनकी प्रथम स्थिति गलकर समाप्त हो जाती है, क्योंकि उपशमश्रेणिमें क्रोधवेदक जीव क्रोधकी प्रथम स्थितिको छोड़कर शेष तीन कषायोंकी प्रथम स्थिति एक आवलिप्रमाण करता है जो इस समय नहीं पाई जाती, इसलिए वह मान संज्वलनकी द्वितीय स्थितिमेंसे प्रति समय असंख्यात कर्मपुंजका अपकर्षण कर उसका उदय समयसे निक्षेप करता है, इसीलिए ही यहाँ इस जीवको प्रथम स्थितिका कारक और वेदक कहा है।

पढमट्ठिदिसीसादो विदियादिम्हि य असंखगुणहीणं।
तत्तो विसेसहीणं जाव अइच्छावणमपत्तं[1] ॥ २७३ ॥

प्रथमस्थितिशीर्षतः द्वितीयादौ च असंख्यगुणहीनम्।
ततो विशेषहीनं यावत् अतिस्थापनमप्राप्तम् ॥ २७३ ॥

सं० टी०—प्रथमस्थितिचरमसमयनिक्षिप्तद्रव्यात् द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेके निक्षिप्तद्रव्यमसंख्यातगुणहीनं, प्रथमस्थितिशीर्षद्रव्यस्य पल्यभागहारभूतासंख्यातरूपबाहुल्यविशेषादसंख्यातसमयप्रबद्धमात्रत्वात्। द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेकनिक्षिप्तद्रव्यस्य च द्व्यर्धगुणहान्यपकर्षणभागहारभक्तत्वेनैकसमयप्रबद्धासंख्येयभागमात्रत्वात्। ततो द्वितीयस्थितेः प्रथमनिषेकद्रव्यादुपरितननिषेकेषु विशेषहीनक्रमेणातिस्थापनावलेरधोनिक्षिप्तद्रव्यं विशेषतोऽसंख्येयगुणहीनमेव। संज्वलनमानस्य प्रथमस्थितिकरणवेदनप्रथमसमयादारभ्य मानत्रयस्य द्वितीयस्थितिद्रव्यं प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेणोपशमयति। तदैव संज्वलनक्रोधस्य समयोनोच्छिष्टावलिमात्रनिषेकद्रव्यमपि संज्वलनमानस्योदयावल्यां समस्थितिनिषेकेषु प्रतिसमयमेकैकनिषेकक्रमेण संक्रम्य उदयमागमिष्यति। संज्वलनक्रोधोच्छिष्टावलिनिषेकाः मानोदयावलिनिषेकेषु संक्रम्य अनन्तरसमयेषूदयमागच्छन्तीति तात्पर्यम्। अयमेव थिउक्कसंक्रम इति भण्यते ॥ २७३ ॥

स० चं०—प्रथम स्थितिका शीर्ष जो अन्तसमय तीहिंविषै निक्षेपण कीया जो द्रव्य तातैं द्वितीय स्थितिका प्रथम निषेकविषै निक्षेपण कीया द्रव्य असंख्यातगुणा घटता है। तातैं प्रथमस्थितिका शीर्षविषै तौ भागहार पल्य ताका भागहार असंख्यात है। तातैं असंख्यात समयप्रबद्धमात्र द्रव्य निक्षेपण करै है। अर द्वितीय स्थितिका प्रथम निषेकविषै भागहार द्व्यर्ध गुणहानि है। तातैं समयप्रबद्धका असंख्यातवाँ भागमात्र द्रव्य निक्षेपण हो है। बहुरि द्वितीय स्थितिका प्रथम निषेकतैं उपरि निषेकनिविषै विशेष घटता क्रम लीएं यावत् अतिस्थापनावली प्राप्त न होइ तावत् द्रव्यका निक्षेपण हो है। बहुरि संज्वलन मानकी प्रथम स्थितिका प्रथम समयतैं लगाय

---

१. विदियट्ठिदीए जा आदिट्ठिदी तिस्से असंखेज्जगुणहीणं, तदो विसेसहीणं चेव। वही पृ० २९६।

तीन मानका द्वितीय स्थितिविषै तिष्ठता द्रव्यकौं समय-समय असंख्यातगुणा क्रम लीए उपशमावै है। तहाँ ही संज्वलन क्रोधके समय घाटि उच्छिष्टावलीमात्र निषेक ते अपनी समान स्थिति लीए जे संज्वलन मानको उदयावलीके निषेक तिनविषै समय-समय एक-एक निषेकका अनुक्रम करि संक्रमणरूप होइ ताके अनन्तरवर्ती समयविषै उदय हो है। इस प्रकार संक्रम होइ ताहीका नाम थिउक्क संक्रम कहिए है ॥ २७३ ॥

विशेष—यहाँ पुरुषवेदसे उपशमश्रेणिपर चढ़नेवाला जीव जब मान संज्वलनकी प्रथम-स्थिति करता है उस समयसे अपकर्षित द्रव्यका निक्षेप किस विधिसे होता है इसे स्पष्ट करनेके लिए प्रसंग प्राप्त यह गाथा कही गई है। गाथामें केवल यह कहा गया है कि प्रथम स्थितिके शीर्षसे द्वितीय स्थितिमें असंख्यातगुणहीन द्रव्यका निक्षेप करता है। तथा उसके आगे अति-स्थापनावलिके पूर्वतक विशेषहीन द्रव्यका निक्षेप करता है। आशय यह है कि जिस समय यह जीव मानसंज्वलनकी प्रथम स्थिति करता है उस समय उदयस्थितिमें सबसे कम प्रदेशपुंजका निक्षेप करता है। उसके बादकी स्थितिसे लेकर गुणश्रेणिशीर्षके प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे-असंख्यातगुणे द्रव्यका निक्षेप करता है। उसके बाद द्वितीय स्थितिके प्रथम निषेकमें प्रथमस्थितिके शीर्षसे असंख्यातगुणे हीन द्रव्यका निक्षेप करता है। तथा उसके बाद अति-स्थापनावलिके प्राप्त होनेके पूर्वतक विशेषहीन-विशेषहीन द्रव्यका निक्षेप करता है। यह क्रम प्रति समय चालू रहता है यहाँ प्रथम स्थिति एक आवलि अधिक अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होती है। इसे समझकर इस निक्षेप विधिको जानना चाहिए। प्रति समय प्रथम स्थितिमें और द्वितीय स्थितिमें कितने द्रव्यका निक्षेप होता है इसे टीकासे जान लेना चाहिए। तथा मायासंज्वलनके सम्बन्धमें भी मानसंज्वलनके समान कथन कर लेना चाहिए। विशेषता न होनेसे हम खुलासा नहीं करेंगे।

माणस्स य पढमठिदी सेसे समयाहिया तु आवलियं।
तियसंजलणगबंधो दुमास सेसाण कोह आलावो[1] ॥ २७४ ॥

मानस्य च प्रथमस्थितिः शेषे समयाधिकां तु आवलिकाम्।
त्रिकसंज्वलनकबन्धो द्विमासं शेषाणां क्रोधआलापः ॥ २७४ ॥

सं० टी०—संज्वलनमानस्य प्रथमस्थितौ समयाधिकावल्यामवशिष्टायां उपशमनादिविधानैः संख्यातसहस्रस्थितिबन्धापसरणेषु गतेषु मानोपशमनकालचरमसमये संज्वलनमानमायालोभानां स्थितिबंधो मासद्वयप्रमितो भवति। शेषकर्मणां स्थितिबन्धः संख्यातगुणहीनोऽपि क्रोधालापवत्त्रीसियादीनां पूर्वोक्ताल्पबहुत्वयुक्तः संख्यातसहस्रवर्षमात्र एव ॥ २७४ ॥

स० चं०—संज्वलन मानकी प्रथम स्थितिविषै समय अधिक आवली अवशेष रहैं संख्यात हजार स्थिति बन्धापसरण होनेतैं मानके उपशमकालका अन्तसमयविषै संज्वलन मान माया लोभका स्थितिबन्ध दोय मास हो है। अर और कर्मनिका पूर्व स्थितिबन्धतैं संख्यातगुणा घटता है तथापि पूर्वोक्तवत् अल्पबहुत्व लिए संख्यात हजार वर्षमात्र स्थितिबन्ध हो है ॥ २७४ ॥

---

१. ताधे माण-माया-लोभसंजलणाणं दुमासट्ठिदिगो बंधो। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। वही पृ० २९९।

माणदुगं संजलणगमाणे संछुहदि जाव पढमदि ।
आवलितियं तु उवरिं मायासंजलणगे य संछुहठिदी[1] ।। २७५ ।।

मानद्विकं संज्वलनकमाने संक्रामति यावत् प्रथमस्थितिः ।
आवलित्रयं तु उपरि मायासंज्वलनके च संक्रामति ।। २७५ ।।

सं० टी०—संज्वलनमानप्रथमस्थितौ यावदावलित्रयमवशिष्यते तावदप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानमानद्वय-द्रव्यं संज्वलनमाने एव पूर्वोक्तविधानेन संक्रामति । ततः परं संक्रमणावलिचरमसमयपर्यन्तं तद्द्वयद्रव्यं संज्वलन-मायाद्रव्ये एव संक्रामति । संज्वलनमानद्रव्यं तु नियमेन संज्वलनमायायामेव संक्रामति ।। २७५ ।।

स० चं०—संज्वलन मानकी प्रथम स्थितिविषै तीन आवली अवशेष रहैं तहाँतैं पहलैं अप्रत्या-ख्यान प्रत्याख्यान मानद्विक है सो संज्वलन मानहीविषै पूर्वोक्त विधानकरि संक्रमण करैं है। तातैं परै संक्रमणावलिके अन्त समय पर्यन्त तिन मानद्विकका द्रव्य संज्वलन मायाविषै संक्रमण करै है। बहुरि संज्वलन मानका द्रव्य है सो पहलैं वा इहाँ नियम करि संज्वलन माया ही विषै संक्रमण करै है ।। २७५ ।।

माणस्स य पढमठिदी आवलिसेसे तिमाणमुवसंतं ।
ण य णवकं तत्थंतिमबंधुदया होंति माणस्स[2] ।। २७६ ।।

मानस्य च प्रथमस्थितौ आवलिशेषे त्रिमानमुपशान्तम् ।
न च नवकं तत्रान्तिमबन्धोदयौ भवतः मानस्य ।। २७६ ।।

सं० टी०—एवं मानत्रयद्रव्यं संज्वलनमानप्रथमस्थितावावलिमात्रावशेषायामुपशमनावलिचरमसमये समयोनद्वयावलिमात्रसंज्वलनमाननवकबन्धसमयप्रबद्धान् मुक्त्वा सर्वमुपशमितं भवति । तस्मिन्नेवोपशमनावलि-चरमसमये संज्वलनमानस्य बन्धोदयौ युगपद् व्युच्छिन्नौ । पूर्ववन्मानत्रयस्योच्छिष्टावलिप्रथमनिषेको मायायां थिउक्कसंक्रमेण संक्रम्योदेष्यतीति विशेषो ज्ञातव्यः ।। २७६ ।।

स० चं०—संज्वलन मानकी प्रथम स्थितिविषै आवली अवशेष रहे उपशमनावलीका अन्त-समयविषै समय घाटि दोय आवलीमात्र नवक समयप्रबद्ध बिना अन्य समस्त तीन मानका द्रव्य उपशम्या तब ही उपशमावलीका अन्तसमयविषै संज्वलन मानका बन्ध वा उदयकी व्युच्छित्ति भई। पूर्ववत् मानत्रिककी उच्छिष्टावलीका प्रथम निषेक मायाविषै थिउक्क संक्रमण करि संक्रमणरूप होइ उदय होसी ।। २७६ ।।

---

१. माणसंजलणस्स पढमट्ठिदीए तिसु आवलियासु समयूणासु सेसासु दुविहो माणो माणसंजलणे ण संकमदि । वही पृ० २९८ ।

२. पडिआवलियाए एकम्मि समये सेसे माणसंजलणस्स दोआवलियसमयूणबंधे मोत्तूण सेसं तिविहस्स माणस्स पदेससंतकम्मं चरिमसमयउवसंतं । वही पृ० २९९ । जहा णिद्दिट्ठपमाणमाणसंजलणणवकबंधुच्छिट्ठा-वलियवज्जं सव्वोवसामणाए चरिमसमयोवसंतं जादमिदि वुत्तं होइ । × × एदम्मि चेव समए माणसंजलणस्स बंधोदया वोच्छिण्णा । जयध० पु० १३, पृ० २५९-६० ।

से काले मायाए पढमट्ठिदिकारवेदगो होदि।
माणस्स य आलावो दव्वस्स विभंजणं तत्थ[1] ॥ २७७ ॥
तस्मिन् काले मायायाः प्रथमस्थितिकारवेदको भवति।
मानस्य च आलापो द्रव्यस्य विभंजनं तत्र ॥ २७७ ॥

सं० टी०—मानत्रयोपशमनानन्तरसमये मायासंज्वलनस्य प्रथमस्थितेः कारको वेदकश्च भवति। तत्र संज्वलनमायाद्रव्यस्यापकर्षणनिक्षेपविभागो मानद्रव्यवदालाप्यतां विशेषाभावात्। तदैव संज्वलनमानोच्छिष्टावलिनिषेकाः थिउक्कसंक्रमेण संज्वलनमायोदयावलिनिषेकेषु समस्थितिकेषु संक्रम्योदेष्यन्ति। संज्वलनमानस्य समयोनद्व्यावलिमात्रा नवकबन्धसमयप्रबद्धाश्च तदैव समयोनद्व्यावलिमात्रकालेनोपशाम्यन्ते ॥ २७७ ॥

मायाकी प्रथमस्थिति करनेका निर्देश—

सं० चं०—तीन मानका उपशमके अनन्तरि संज्वलन मायाकी प्रथम स्थितिका कारक अर वेदक हो है। तहाँ संज्वलन माया द्रव्यका अपकर्षण निक्षेपणका विभाग मान द्रव्यवत् कहना। तब ही संज्वलन मानकी उच्छिष्टावलीके निषेक थिउक्क संक्रमण करि संज्वलन मायाकी उदयावलीके अपने समान स्थितिरूप निषेकविषै संक्रमकरि उदय होसी। बहुरि संज्वलन मानके समय घाटि दोय आवलीमात्र नवक समयप्रबद्ध ते तब ही समय घाटि दोय आवलीमात्र कालकरि उपशमै हैं ॥ २७७ ॥

अथ मायात्रयोपशमनविधानार्थं गाथाचतुष्टयमाह—

मायाए पढमठिदी सेसे समयाहियं तु आवलियं।
मायालोहगबंधो मासं सेसाण कोह आलाओ[2] ॥ २७८ ॥
मायायाः प्रथमस्थितौ शेषे समयाधिकां तु आवलिकाम्।
मायालोभगबन्धो मासं शेषाणां क्रोधे आलापः ॥ २७८ ॥

सं० टी०—मायासंज्वलनस्य प्रथमस्थितौ समयाधिकावल्यामवशिष्टायां संज्वलनमायालोभयोः स्थितिबन्धो मासमात्रः शेषकर्मणां क्रोधवदालापः कर्तव्यः पूर्वोक्ताल्पबहुत्वेन संख्यातवर्षसहस्रमात्रस्थितिबन्ध इत्यर्थः ॥ २७८ ॥

स० चं०—मायाकी प्रथमस्थितिविषै समय अधिक आवली अवशेष रहैं संज्वलन माया अर लोभका तौ मासमात्र स्थितिबन्ध हो है और कर्मनिका क्रोधवत् आलाप करना पूर्वोक्त प्रकार हीनाधिकपना लीएं संख्यात हजार वर्षमात्र स्थितिबन्ध है ॥ २७८ ॥

मायदुगं संजलणगमायाए छुहदि जाव पढमठिदी।
आवलितियं तु उवरिं संछुहदि हु लोहसंजलणे[3] ॥ २७९ ॥

---

१. तदो सेकाले मायासंजलणमोकड्डियूण मायासंजलणस्स पढमट्ठिदिं करेदि। वही पृ० ३००।

२. ताधे माया-लोभसंजलणाणं ट्ठिदिबंधो मासो। वही पृ० ३०३।

३. एत्तो ठिदिखंडयसहस्साणि बहूणि गदाणि, तदो मायाए पढमट्ठिदीए तिसु आवलियासु सेसासु दुविहा माया माया संजलणे ण संछुहदि, लोहसंकमणे च संछुहदि। वही पृ० ३०३।

मायाद्विकं संज्वलनगमायायां संक्रामति यावत् प्रथमस्थितिः।
आवलित्रिकं तु उपरि संक्रामति हि लोभसंज्वलने ॥ २७९ ॥

सं० टी०—मायासंज्वलनप्रथमस्थितौ आवलित्रयं यावदवशिष्यते तावदप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानमाया-द्वयद्रव्यं मायासंज्वलने एवं संक्रामति । ततः परं संक्रमणावल्यां संज्वलनलोभे संक्रामति ॥ २७९ ॥

स० चं०– संज्वलन मायाका प्रथमस्थितिविषै यावत् तीन आवली अवशेष रहैं तावत् अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान मायाद्विकका द्रव्य संज्वलन मायाविषै ही संक्रमण करै है । तातैं परैं संक्रमणावलिविषै तिनिका द्रव्य संज्वलन लोभविषै संक्रमण करे है ॥ २७९ ॥

मायाए पढमठिदी आवलिसेसे त्ति मायमुवसंतं ।
ण य णवकं तत्थंतिम बंधुदया होंति मायाए ॥ २८० ॥
मायायाः प्रथमस्थितौ आवलिशेषे इति मायमुपशान्तम् ।
न च नवकं तत्रान्तिमे बन्धोदयौ भवतः मायायाः ॥ २८० ॥

सं० टी०—संज्वलनमायाप्रथमस्थितौ आवलिमात्रावशिष्टायामुपशमनावलिचरमसमये मायात्रयं समयोनद्व्यावलिमात्रनवकबन्धसमयप्रबद्धान् मुक्त्वा अन्यत्सर्वं सर्वात्मिनोपशमितं भवति । तस्मिन्नेव समये उच्छिष्टावलिप्रथमनिषेकः संज्वलनलोभोदयावलिप्रथमनिषेके थिउक्कसंक्रमेण संक्रामति । तस्मिन्नेव समये मायासंज्वलनस्य बन्धोदयौ व्युच्छिन्नौ ॥ २८० ॥

मायाकी प्रथम स्थिति आवलिमात्र शेष रहनेपर कार्यविशेषका निर्देश—

स० चं०—मायाकी प्रथम स्थितिविषै आवली अवशेष रहैं उपशमनावलीका अन्त समय विषै समय घाटि दोय आवलीमात्र नवक समयप्रबद्ध बिना अन्य सर्वमायाका द्रव्य उपशम्या । ताही समयविषै उच्छिष्टावलीका प्रथम निषेक है सो संज्वलनलोभका उदयावलीका प्रथम निषेक-विषै थिउक्क संक्रमणकरि संक्रमै है । तिस ही समयविषै संज्वलन मायाका बन्ध वा उदयकी व्युच्छित्ति भई ॥ २८० ॥

अथ लोभत्रयोपशमनविधानप्ररूपणार्थं गाथाद्वयमाह—

से काले लोहस्स य पढमट्ठिदिकारवेदगो होदि ।
ते पुण बादरलोहो माणं वा होदि णिक्खेओ[२] ॥ २८१ ॥
स्वे काले लोभस्य च प्रथमस्थितिकारवेदको भवति ।
तत् पुनः बादरलोभः मानो वा भवति निक्षेपः ॥ २८१ ॥

सं० टी०—मायात्रयोपशमनानन्तरसमये लोभत्रयोपशमनं प्रारभमाणः संज्वलनलोभस्य प्रथमस्थितेः कारको वेदकश्च भवति । स पुनरनिवृत्तिकरणो (बादर) बादरलोभोदयमनुभवन् बादरसाम्पराय इत्युच्यते । अत्र संज्वलनलोभद्रव्यादपकृष्य प्रथमस्थितौ निक्षेपः संज्वलनमानप्रथमस्थितिनिक्षेपवत्कर्तव्यः । तस्मिन्नेव समये मायासंज्वलनस्य समयोनद्व्यावलिमात्रनवकबन्धसमयप्रबद्धान् पूर्वोक्तविधानेनोपशमयति समयोनोच्छिष्टा-वलिमात्रनिषेकांश्च प्राग्वत्स्थितोक्तसंक्रमेण संज्वलनलोभे संक्रमयति ॥ २८१ ॥

१. समयाहियाए आवलियाए सेसाए मायाए चरिमसमय उवसामगो मोत्तूण दोआवलियबंधे समयूणे । वही पृ० ३०३ । तदो से काले मायासंजलणस्स बंधोदया वोच्छिण्णा । वही पृ० ३०४ ।

१. ताधे चेव लोभसंजलणमोकड्डियूण लोभस्स पढमट्ठिदिं करेदि । वही पृ० ३०४ ।

लोभसंज्वलनकी प्रथमस्थिति करनेका निर्देश—

स० चं०—मायाका उपशमनेके अनन्तरि संज्वलनलोभकी प्रथमस्थितिका कारक अर वेदक हो है। सो अनिवृत्तिकरण जीव है सो बादर कहिए स्थूल जो लोभ ताकौं अनुभवता बादर सांपराय कहिए है। इहाँ संज्वलनलोभका द्रव्यका अपकर्षण करि प्रथम स्थितिविषै निक्षेपण कीजिए है। ताका विधान मानका प्रथमस्थितिविषै जैसैं निक्षेपण कीया था तैसैं जानना। तिस ही समय संज्वलन मायाके समय घाटि दोय आवलीमात्र नवक समयप्रबद्धनिकौं पूर्वोक्त प्रकारकरि उपशमावै है। अर समय घाटि उच्छिष्टावलीमात्र मायाके निषेकनिका संज्वलन लोभविषै थिउक्क संक्रमण हो है॥ २८१॥

पढमट्ठिदिअद्धंते लोहस्स य होदि दिणपुधत्तं तु।
वस्ससहस्सपुधत्तं सेसाणं होदि ठिदिबंधो[1]॥ २८२॥

प्रथमस्थित्यर्धान्ते लोभस्य च भवति दिनपृथक्त्वं तु।
वर्षसहस्रपृथक्त्वं शेषाणां भवति स्थितिबन्धः॥ २८२॥

सं० टी०—मायात्रयोपशमनानन्तरसमयादारभ्य संज्वलनबादरलोभवेदककालोऽनिवृत्तिकरणचरमसमयपर्यन्तो भवति। ततः परं सूक्ष्मसाम्परायचरमसमयपर्यन्तः संज्वलनसूक्ष्मलोभवेदककालो भवति। उभयोऽपि मिलित्वा लोभवेदकाद्धेति उच्यते। स च लोभवेदककालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रः तस्य संदृष्टिः २ ७। इदं संख्यातेन खण्डयित्वा तद्बहुभागं २ ९ ७ (१० / ९) त्रिषु स्थानेषु विभज्य स्थापयेत्—२ ९ ९ (१० / ७ ३) २ ९ ९ (१० / ९ ३) २ ९ ९ (१० / ९ ३)।

पुनस्तदेकभागं संख्यातेन खण्डयित्वा बहुभागं प्रथमस्थाने दद्यात् २ ९ ९ (१०) पुनरवशिष्टैकभागं अपरेण संख्यातेन खंडयित्वा तद्बहुभागं द्वितीयस्थाने दद्यात् २ ९ ९ (१० / ९ ९)। तदेकभागं तृतीयस्थाने दद्यात् स्थानत्रयसंदृष्टिः—

२ ९ ७ (१०) / ७ । ३	२ ९ ९ (१० / ९ ७ ९) / ९ । ३	२ ९ ९ (१०) / ९ । ३
२ ९ ९ (१०) / ९ ९	२ ९ ९ (१०) / ९ ९ ९	२ ९ / ९ ९ ९

अत्र प्रथमभागसंज्वलनबादरलोभवेदकाद्धा प्रथमार्धः। द्वितीयो भागः सूक्ष्मकृष्टिकरणकालः। तृतीयो भागः सूक्ष्मकृष्टिवेदक कालः। स एव सूक्ष्मसाम्परायकालः। अत्र प्रथमद्वितीयभागयोर्मेलने लोभवेदकाद्धा द्वित्रिभागमात्रं साधिकं प्रथमस्थितिप्रमाणं भवति २ ९ २ (। / ३) तद्यथा—

१. तदो अद्धस्स चरिमसमए लोभसंजलणस्स ट्ठिदिबंधो दिवसपुधत्तं। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो वस्ससहस्सपुधत्तं। चू० सू०, जयध० पु० १३, पृ० ३०६।

१०
प्रथमद्वितीयभागयोः तावद्बहुभागं मिलितमिदं २ ७ ७ २ अत्रैतावदृणं २ ७ । ७ । २ प्रक्षिप्याप-
१० ७ । ३ ७ । ३
वर्तिते एवं २ ७ । २ द्वितीयभागविशेषधने २ ७ ७ एतावदृणं २ ७ । प्रक्षिप्यापवर्त्य २ ७ प्रथम-
३ ७ ७ ७ ७ । ७ । ७ ७ ७
भागविशेषधने प्रक्षिप्यावर्तिते एवं २ ७ । अस्मिन् त्रिभिः समच्छेदीकृते २ ७ । ३ द्वितीयऋणेन साधिकं
। ७ ७ ७ ७ । ३
प्रथमऋणं २ ७ । ७ । २ विशोध्यावशिष्टं धनं पूर्वानीतप्रथमद्वितीयभागद्वयबहुभागद्रव्ये लोभवेदकाद्धा
७ । २ ।
।
द्वित्रिभागमात्रे प्रक्षिपेत् २ ७ । २ । इयमावल्यधिकसंज्वलनवादरलोभप्रथमस्थितिर्भवति । एतस्याः प्रथमार्धो
३
लोभवेदककालस्य साधिकत्रिभागमात्रो भवति । तथाहि—

१०
प्रथमभागबहुभागद्रव्ये २ ७ ७ एतावदृणं २ ७ । ७ प्रक्षिप्यापवर्तिते लोभवेदकाद्धा-
७ । ३ ७ । ३
१०
त्रिभागो भवति २ ७ । पुनः प्रथमभागविशेषधने २ ७ ७ एतावदृणं २ ७ । १ प्रक्षिप्यावर्तिते २ ७
३ ७ ७ । ७ ७ ७
अस्मिन् त्रिभिः समच्छेदीकृते द्वितीयऋणेन साधिकं प्रथमऋणं २ ७ । ७ विशोध्यावशिष्टं २ ७ । २ —
। ७ । ३ ७ । ३
प्रागानीतलोभवेदकाद्धात्रिभागे प्रक्षिपेत् २ ७ । १ । एवंकृते लोभवेदकाद्धा साधिकत्रिभागमात्रः बादरसंज्व-
३
लनलोभप्रथमस्थितिप्रथमार्द्धो भवति। तच्चरसमये संज्वलनलोभस्य स्थितिबन्धो दिनपृथक्त्वं शेषकर्मणां स्थितिबन्धः पूर्वोक्ताल्पबहुत्वेन वर्षसहस्रपृथक्त्वमात्रः ॥ २८२ ॥

स० चं०—माया उपशमनका अनन्तर समयतैं लगाय अनिवृत्तिकरणका अन्त समय पर्यन्त वादर लोभका वेदक काल है। तातैं परैं सूक्ष्मसाम्परायका अन्त समय पर्यन्त सूक्ष्मलोभका वेदक काल है। दोऊ मिलाएं लोभका वेदककाल हो है। सो लोभ वेदककाल अन्तर्मुहूर्तमात्र है। ताकौं संख्यातका भाग देइ तहाँ एकभाग बिना बहुभागकौं तीनका भाग देइ एक-एक समान भाग तीन स्थानविषै स्थापना। बहुरि अवशेष एकभागकौं संख्यातका भाग देइ तहाँ बहुभागकौं प्रथम समान भागविषै मिलाएं वादर लोभ वेदकककालका प्रथम अर्ध हो है। बहुरि अवशेष एक-भागकौं संख्यातका भाग देइ तहाँ बहुभाग दूसरा समान भागमैं मिलाएँ वादर लोभ वेदककाल-का द्वितीय अर्ध हो है सो यहु सूक्ष्म कृष्टि करनेका काल है। इनि दोउनिकौं मिलाएं लोभ वेदक-कालका दोय तीसरा भाग किछू अधिक प्रमाण वादर लोभ वेदककाल है। यातै आवली अधिक बादर लोभकी प्रथमस्थिति है। बहुरि लोभ वेदककालका तीसरा भाग किछू अधिक प्रमाण

वादर लोभ वेदककालका प्रथम अर्ध है सो अर्थ संदृष्टिकरि प्रगट जानिए है। बहुरि जो एकभाग अवशेष रह्या था ताकौं तीसरा समान भागविषै मिलाएं सूक्ष्मकृष्टिका वेदककाल है सोई सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानका काल जानना। इहाँ वादर लोभ वेदककालका प्रथम अर्धका अन्तसमयविषै स्थितिबन्ध संज्वलन लोभका तौ पृथक्त्व दिन प्रमाण अर औरनिका पूर्वोक्त क्रम लीएं पृथक्त्व हजार वर्ष प्रमाण है ॥ २८२ ॥

अथ संज्वलनलोभानुभागसत्त्वस्य कृष्टिकरणप्ररूपणार्थमिदमाह—

विदियद्धे लोभावरफड्डयहेट्ठा करेदि रसकिट्टिं।
इगिफड्डयवग्गणगदसंखाणमणंतभागमिदं[1] ॥ २८३ ॥

द्वितीयार्धे लोभावरस्पर्धकाधस्तनां करोति रसकृष्टिम्।
एकस्पर्धकवर्गणागतं संख्यानामनन्तभागमिदम् ॥ २८३ ॥

सं० टी०—संज्वलनलोभप्रथमस्थितेः प्रथमार्धं पूर्वोक्तविधानेन गालयित्वा तद्द्वितीयार्धप्रथमसमये संज्वलनलोभानुभागसत्त्वस्य जघन्यस्पर्धकादिवर्गणाविभागप्रतिच्छेदाः प्रतिपरमाणु जीवराशेरनन्तगुणाः सन्ति १६ ख। एतेषां वर्ग इति संज्ञा व। एवंविधसर्वजघन्यशक्तियुक्तानां सदृशधनानां कार्मणपरमाणूनां प्रथमपुञ्जः आदिवर्गणा भवति। तद्यथा—

लोभसंज्वलनसर्वसत्त्वद्रव्यमिदं स a १२ — अस्मिन्ननुभागसम्बन्धिसाधिकद्व्यर्धगुणहान्या भक्ते
७।८

आदिवर्गणा भवति स a १२ — तस्यां द्विगुणगुणहान्या भक्तायां विशेषो भवति स a १२ —
।   ।
७।८।ख ख ३   ७।८।ख ख ३ ख ख २
२   २

अयं लघुसंदृष्टिनिमित्तं व वि इति स्थाप्यते। अस्मिन्ननुभागसम्बन्धिद्विगुणगुणहान्या गुणिते आदिवर्गणा जायते व वि ख ख २। अत्र लघुसंदृष्टचर्थं गुणहानेरष्टाङ्कं संस्थाप्य ८ द्वाभ्यां गुणयित्वा ८। ॱ तेन षोडशाङ्केन विशेषे गुणिते आदिवर्गणान्यास एवंविधो भवति व वि १६। इदं लघुसंदृष्टिनिमित्तं व वि इति स्थापयित्वा
।
पुनरनुभागसम्बन्धिसाधिकद्व्यर्धगुणहान्या गुणिते संज्वलनलोभसर्वसत्त्वमागच्छति व १२। अस्माद् द्वितीयार्धप्रथमसमये द्रव्यमपकृष्य संज्वलनलोभजघन्यस्पर्धकलतासमानादिवर्गणाविभागप्रतिच्छेदेभ्यः अधस्तादनन्तगुणहीनाविभागप्रतिच्छेदतया एकस्पर्धकवर्गणाशलाकानन्तैकभागप्रमिताः ४ अनुभागसूक्ष्मकृष्टीः करोति। उपशम-
ख
श्रेण्यां वादरकृष्टिविधानासम्भवात्। अन्तर्मुहूर्तकालनिर्वर्त्यमानानुभागकाण्डकघातं विना इदानीं प्रतिसमयं सर्वजघन्यशक्त्यनन्तैकभागप्रमितत्वेन कृष्टिघातं कर्तुं प्रारभत इत्यर्थः ॥ २८३ ॥

संज्वलनलोभकी कृष्टिकरण विधिका निर्देश—

स० चं०—संज्वलन लोभकी प्रथमस्थितिका प्रथम अर्धकौं पूर्वोक्त प्रकार व्यतीतकरि

१. से काले विदियतिभागस्स पढमसमये लोभसंजलणाणुभागसंतकम्मस्स जं जहण्णफद्दयं तस्स हेट्ठदो अणुभागकिट्टीओ करेदि। तासिं पमाणमेयफद्दयवग्गणाणमणंतभागो। वही पृ० ३०७-३०८।

द्वितीयार्धका प्रथम समयविषै संज्वलन लोभका अनुभाग सत्त्वविषै अपकर्षण करि सूक्ष्म कृष्टि करिए है। सो विधान कहिए है—

संज्वलन लोभका अनुभागका सत्त्वविषैं जघन्य अनुभाग शक्ति सहित जो परमाणू ताविषै अनुभागके अविभाग प्रतिच्छेद जीवराशितैं अनंत गुणे हैं। सो याकौं जघन्य वर्ग कहिए। इतने इतने अविभाग प्रतिच्छेद सहित जेते कर्म परमाणूरूप वर्ग पाइए तिनके समूहका नाम प्रथम वर्गणा है सो संज्वलन लोभके सत्तारूप सर्व परमाणू तिनकौं अनुभाग सम्बन्धी किछू अधिक ड्योढ गुण-हानिका भाग दीएं जो प्रमाण आवै तितने प्रथम वर्गणाविषै परमाणू हैं। याकौं अनुभाग सम्बन्धी दो गुणहानिका भाग दीएं विशेषका प्रमाण आवै है। विशेषकौं दोगुणहानिकरि गुणें प्रथम वर्गणाविषै परमाणूनिका प्रमाण आवै है। इस प्रथम वर्गणाकौं साधिक ड्योढ गुणहानिकरि गुणें संज्वलन लोभका सर्व सत्त्व द्रव्यका प्रमाण हो है। सो यातैं द्रव्यकौं अपकर्षणकरि अनुभागकी सूक्ष्म कृष्टि करै है। सो जघन्य स्पर्धककी लता समान प्रथम वर्गणाविषै अविभाग प्रतिच्छेद हैं तिनकौं नीचैं तितने भी अनन्त गुणा घाटि अनुभागके अविभाग प्रतिच्छेदरूप सूक्ष्म कृष्टि हो है। तिन सूक्ष्म कृष्टिनिका प्रमाण जो एक स्पर्धकविषै वर्गणानिका प्रमाण ताके अनन्तवे भागमात्र जानना। पहलैं अन्तर्मुहूर्तकालकरि निपजै ऐसा अनुभाग कांडक घात होता था तीहिंविना अब समय समय कृष्टि घात करनेका प्रारम्भ करै है ऐसा अर्थ जानना ॥ २८३ ॥

विशेष——प्रकृतमें लोभकषायका जितना वेदककाल है उसमेंसे अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समय तक यह जीव बादरलोभका वेदन करता है। बादरलोभ स्पर्धकगत होता है। उसके सूक्ष्म करनेकी प्रक्रियाका नाम ही सूक्ष्मकृष्टिकरण कहलाता है। उपशमश्रेणिमें स्पर्धकगत लोभका बादर कृष्टिकरण न होकर सीधा सूक्ष्मकृष्टिकरण होता है। अब देखना यह है कि अनिवृत्तिकरणके किस कालमें यह सूक्ष्मकरण क्रिया सम्पन्न होती है। इसीका निर्देश करते हुए प्रकृतमें यह बतलाया गया है कि बादरलोभका जितना वेदनकाल है उसके प्रथमार्धमें मात्र स्पर्धक-गत लोभका ही वेदन होता है और द्वितीयार्धमें स्पर्धकगतलोभका वेदन करते हुए जघन्य स्पर्धक-गतलोभके द्वारा कृष्टीकरणकी क्रिया सम्पन्न होती है। आशय यह है कि लोभसंज्वलनका जो जघन्य स्पर्धकगत अनुभाग है उसे अपकर्षण द्वारा अनन्तगुणाहीन करके सूक्ष्मकृष्टियोंकी रचना करता है। यहाँ अनुभागका काण्डकघात न होकर प्रतिसमय उसकी उक्त विधिसे अपवर्तना होती है।

अथ द्वितीयार्धप्रथमसमये कृष्टयर्थमपकृष्टद्रव्यस्य निक्षेपविधानार्थमिदमाह—

ओक्कड्डिददइगिभागं पल्लासंखेज्जखंडिदिगिभागं।
देदि सुहुमासु किट्टिसु फड्डयगे सेसबहुभागं[1] ॥ २८४ ॥

अपकर्षितैकभागं पल्यासंख्येयखंडितैकभागम्।
ददाति सूक्ष्मासु कृष्टिषु स्पर्धके शेषबहुभागम् ॥ २८४ ॥

---

१. ओकड्डिदसयलदव्वस्सासंखेज्जभागमेत्तमेव दव्वमपुव्वकिट्टीसु समयाविरोहेण णिसिंचिय सेस-बहुभागाणमुवरिमपुव्वकिट्टीसु फद्दएसु च जहापविभागं विहंजिदूण णिसेयविण्णासकरणादो।
जयध० पु० १३, पृ० ३०८-३०९।

सं० टी०—संज्वलनलोभसर्वसत्त्वमिदं व १२ अपकर्षणभागहारेण खण्डयित्वा तदेकभागं गृहीत्वा पुनः पल्यासंख्यातभागेन खण्डयित्वा बहुभागं पृथक् संस्थाप्य व १२ प तदेकभागं अद्धाणेण सव्वधणे खण्डिदेत्यादि
१०
ओ प
a

सूत्राभिप्रायेण एकस्पर्धकवर्गणानन्तैकभागमात्रकृष्टचायामेन खण्डयित्वा पुना रूपोनकृष्टयायामार्धन्यूनद्विगुणगुण-हान्या विभज्य द्विगुणगुणहान्या गुणिते आदिवर्गणाप्रमाणं द्रव्यं प्रथमकृष्टौ निक्षिपति व १२ । १६ इयमेव
१०
ओ प ४ । १६—४
a ख ख २

प्रथमसमये क्रियमाणकृष्टीनां जघन्या कृष्टिः । तच्छक्तिप्रमाणं पुनः पूर्वस्पर्धकसर्वजघन्यवर्गस्य प्रथमसमय-कृष्टचायाममात्रवारानन्तरूपखण्डितस्यैकभागमात्रं व पुनः प्रथमकृष्टिद्रव्ये एकचयेन व १२ १०
ख ४ ओ प ४ । १६ —४
ख a ख ख २

अनेन हीने द्वितीयकृष्टिद्रव्यं भवति व १२ । १६—१ एवं तच्छक्तिप्रमाणं पुनः प्रथमकृष्टिशक्तेरनन्तगुणं
१०
ओ प ४ १६—४
a ख ख २

भवति व ख १ एवं तृतीयादिकृष्टिषु निक्षिप्यमाणद्रव्यं एकैकचयहीनं सद्गत्वा रूपोनकृष्टचायाममात्र-
ख ४
ख

चयन्यूनप्रथमकृष्टिद्रव्यप्रमितं चरमकृष्टिद्रव्यं भवति व १२ १६—४ तृतीयादिकृष्टिद्रव्याणामविभागप्रति-
१०
ओ प ४ १६—४ ख
a ख ख २

च्छेदाः रूपोनकृष्टिगच्छसंख्यातवारानन्तगुणितजघन्यकृष्टचनुभागप्रतिच्छेदप्रमिताः गच्छन्ति एवं गत्वा चरमकृष्टच-
१०
विभागप्रतिच्छेदाः रूपोनकृष्टचायाममात्रवारानन्तगुणितप्रथमकृष्टचविभागप्रतिच्छेदमात्रा भवन्ति व ख ४
ख ४ ख
ख

अपवर्तिते पूर्वस्पर्धकसर्वजघन्यवर्गानन्तैकभागप्रमिताः व एताः संज्वलनलोभद्रव्यस्य प्रथमसमयसूक्ष्मकृष्टयः पुनः

। १० ख

पृथक्संस्थापितबहुभागद्रव्यं व १२ प पूर्वस्पर्धकनानागुणहानिषु निक्षिप्यते। तद्यथा—

a

ओ प

a

तद्बहुभागद्रव्यमनुभागसंबन्धिद्व्यर्धगुणहान्या विभज्य एकभागं प्रथमगुणहानिजघन्यस्पर्धकादिवर्गणायां

। १०

निक्षिप्यते व १२ प १६ पुनर्द्वितीयादिवर्गणासु द्वितीयगुणहानिप्रथमवर्गणापर्यन्तासु एकैकोत्तरचयहीनं द्रव्यं

a

।

ओ प १२ । १६

a

निक्षिप्यते। पुनर्द्वितीयादिगुणहानीनां द्वितीयवर्गणास्वपि पूर्वगुणहानिचयार्द्धार्द्धमात्रैः एकाद्येकोत्तरचयैर्हीनं द्रव्यं निक्षिप्य चरमगुणहानिचरमस्पर्धकचरमवर्गणायां तद्गुणहानिचयैः रूपोनगुणहानिमात्रैर्हीनं द्रव्यं निक्षिप्यते। एवं निक्षिप्ते अपकृष्टद्रव्यस्य पल्यासंख्यातभागभक्तस्य बहुभागद्रव्यं समाप्तं भवति। सूक्ष्मचरमकृष्टिनिक्षिप्त द्रव्यात् पूर्वस्पर्धकरूपसत्त्वद्रव्यस्य प्रथमगुणहानिजघन्यस्पर्धकादिवर्गणायां निक्षिप्तद्रव्यमनन्तगुणहीनं। अनुभागसंबंधि द्व्यर्धगुणहानिभागहारमाहात्म्यात्। कृष्टिशब्दस्यार्थ उच्यते—कर्शनं कृष्टिः कर्मपरमाणुशक्तेस्तनूकरणमित्यर्थः। कृश तनूकरणे इति धात्वर्थमाश्रित्य प्रतिपादनात्। अथवा कृष्यते तनूक्रियते इति कृष्टिः प्रतिसमयं पूर्वस्पर्धकजघन्यवर्गणाशक्तेरनन्तगुणहीनशक्तिवर्गणाकृष्टिरिति भावार्थः ॥२८४॥

संज्वलन लोभकी कृष्टियोंकी निक्षेपणविधि—

स० चं०—संज्वलन लोभका सर्व सत्त्वरूप द्रव्य ताकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ तहां एक भागमात्र द्रव्यकौं बहुरि पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां बहुभागकौं जुदा राखि एक भागमात्र द्रव्यकौं सूक्ष्म कृष्टिरूप परिणमावै है। तहां "अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे" इत्यादि विधानतैं तिस एक भागमात्र द्रव्यकौं कृष्टिनिका प्रमाणरूप जो कृष्टयायाम ताका भाग दीएं मध्यधन आवै है। याकौं एक घाटि कृष्टयायामका आधाकरि हीन जो दो गुणहानि ताका भाग दीएं चयका प्रमाण आवै है। याकौं दो गुणहानिकरि गुणें आदि वर्गणाका द्रव्य हो है। सो इतने द्रव्यकौं तौ प्रथम कृष्टिविषै निक्षेपण करै है याकरि प्रथम कृष्टि निपजाइए है। यहु ही प्रथम समयविषै कीनी कृष्टिनिविषै जघन्य कृष्टि है। बहुरि यातैं द्वितीयादि कृष्टिनिविषै एक एक चय प्रमाण घटता द्रव्य निक्षेपण करै है। ऐसैं एक घाटि कृष्टयायाममात्र चयकरि हीन प्रथम कृष्टिमात्र द्रव्यकौं अन्त कृष्टिविषै निक्षेपण करै है। अब इनिविषै शक्तिका प्रमाण कहिए है—

पूर्व स्पर्धकनिका जघन्य वर्गविषै जो अनुभागके अविभाग प्रतिच्छेदनिका प्रमाण है ताकौं कृष्टयायामका जो प्रमाण तितनीवार अनन्तका भाग दीएं जो प्रमाण आवै तितने प्रथम कृष्टिविषै अनुभागके अविभाग प्रतिच्छेद हैं। बहुरि द्वितीयादि कृष्टिविषै क्रमतैं अनन्तगुणे है। सो एक

घाटि कृष्टयायाममात्र वार अनन्तकरि गुणें अन्त कृष्टिविषै ते अविभाग प्रतिच्छेद पूर्व स्पर्धकका जघन्य वर्गके अनन्तवां भागमात्र हैं। ऐसे प्रथम समयविषै कीनी सूक्ष्म कृष्टि हो है। बहुरि जे अपकर्षण कीए द्रव्यविषै बहुभाग जुदे स्थापे थे तिनके द्रव्यकौं पूर्वं सत्तारूप पाइए ऐसे जे पूर्व स्पर्धक तिन सम्बन्धी नानागुणहानिविषै निक्षेपण करै है। तहां "दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा' इत्यादि विधानतैं तिस बहुभाग द्रव्यकौं अनुभागसम्बन्धी साधिक ड्योढ गुणहानिका भाग दीएं जो द्रव्य आवै ताकौं प्रथम गुणहानिका प्रथम वर्गणाविषै निक्षेपण करै है। बहुरि द्वितीयादि वर्गणानिविषै एक चय घटता क्रम लीएं निक्षेपण करै है। द्वितीयादि गुणहानिनिकी [illegible] क्रमतैं पूर्व गुणहानितैं आधा आधा द्रव्य निक्षेपण करै है। ऐसैं सूक्ष्मकृष्टिकरण कालका प्रथम समयविषै अपकर्षण कीया द्रव्यका निक्षेपण करै है। इहां अन्तकृष्टिविषैं निक्षेपण कीया द्रव्य तातैं स्पर्धककी जघन्य वर्गणाविषै निक्षेपण कीया द्रव्य अनन्तगुणा घाटि जानना। अब कृष्टि शब्दका अर्थ कहिए है—

कृश तनू करणे इस धातुकरि 'कर्षणं कृष्टिः' जो कर्षं परमाणूनिकी अनुभागशक्तिका घटावना ताका नाम कृष्टि है। अथवा 'कृश्यत इति कृष्टिः' समय समय प्रति पूर्व स्पर्धककी जघन्य वर्गणातैं भी अनन्तगुणा घटता अनुभागरूप जो वर्गणा ताका नाम कृष्टि है॥ २८४॥

अथ कृष्टिकरणकालद्वितीयादिसमयेषु अपकृष्टद्रव्यप्रमाणादिविधानार्थमिदमाह—

पडिसमयमसंखगुणा दव्वादु असंखगुणविहीणकमे।
पुव्वगहेट्ठा हेट्ठा करेदि किट्टिं स चरिमो त्ति॥ २८५॥

प्रतिसमयसंख्यगुणा द्रव्यात् असंख्यगुणविहीनक्रमेण।
पूर्वगाधस्तनां अधस्तनां करोति कृष्टिं स चरमे इति॥ २८५॥

सं० टी०—कृष्टिकरणकाले द्वितीयसमयादारभ्य तच्चरमसमयपर्यन्तं प्रतिसमयं पूर्वपूर्वसमयापकृष्ट-द्रव्यादसंख्यातगुणं द्रव्यं संज्वलनलोभपूर्वस्पर्धकसर्वसत्त्वद्रव्यादपकृष्य प्रथमादिसमयकृतकृष्टयायामादसंख्येयगुण-हीनायामक्रमेण द्वितीयादिसमयेषु पूर्वपूर्वकृष्टयनुभागादधोनन्तगुणहीनशक्त्यात्मिकाः अपूर्वाः कृष्टीः करोति।

तत्र कृष्टिकरणकालस्य द्वितीयसमये प्रथमसमयापकृष्टपद्रव्यात् व १२ (।, ओ) अस्मादसंख्येयगुणं द्रव्यं व १२ a (।, ओ)

संज्वलनलोभपूर्वस्पर्धकसर्वसत्त्वद्रव्यादपकृष्य पुनः पल्यासंख्यातभागेन खण्डयित्वा तद्बहुभागं व १२ a प (। १२ — ओ प a, । a)

१. जं पढमसमए पदेसग्गं किट्टीओ करेंतेण किट्टीसु णिक्खित्तं तं थोवं, से काले असंखेज्जगुणं। एवं जाव चरिमसमयो त्ति असंखेज्जगुणं। पढमसमए जहण्णियाए किट्टीए पदेसग्गं बहुगं, विदियाए पदेसग्गं विसेसहीणं। एवं जाव चरिमाए किट्टीए पदेसग्गं तं विसेसहीणं।

—चू०सू०, जयध० पु० १३, पृ० ३०९-३१०।

पूर्वस्पर्धकनिक्षेपसंबन्धीति पृथक् संस्थाप्य तदेकभागद्रव्यमिदं व १२ ∂ / ओ प / ∂ गृहीत्वा, अत्र किंचिद्द्रव्यं प्रथमसमयकृतजघन्यकृष्टेरधोऽनन्तगुणहीनशक्तिकापूर्वकृष्टिरूपेण निक्षिपति अवशिष्टं च द्रव्यं प्रथमसमयकृतपूर्वकृष्टिशक्तिसमानशक्तिककृष्टिरूपेण निक्षिपति ॥२८५॥

द्वितीयादि समयोंमें निक्षेपणका निर्देश—

स० चं—कृष्टिकरण कालका द्वितीय समयतैं लगाय अन्त समय पर्यन्त पूर्व समयविषैं जितना द्रव्य अपकर्षण कीया तातैं असंख्यातगुणा द्रव्यकौं संज्वलन लोभका पूर्व स्पर्धकरूप सर्व सत्त्व द्रव्यतैं ग्रहिकरि अपूर्व करै है सो पूर्व समयनिविषै भई ते पूर्व कृष्टि कहिए। विवक्षित समयविषै नवीन कृष्टि भईं ते अपूर्व कृष्टि कहिए। सो पूर्व पूर्व समयविषै कीनि कृष्टिनिका प्रमाणतैं उत्तर उत्तर समयविषै करी कृष्टिनिका प्रमाण क्रमतैं असंख्यात गुणा घटता है। अर अनुभाग अनन्तगुणा घटता है। तहां कृष्टिकरण कालका दूसरा समयनिविषै जो प्रथम समयविषै जो द्रव्य अपकर्षण कीया था तातैं असंख्यातगुणा द्रव्यकौं संज्वलन लोभका सर्व सत्त्व द्रव्यतैं अपकर्षण करि ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां बहुभाग तौ पूर्व स्पर्धकनिविषैं निक्षेपण करने। अवशेष एक भागविषै कितना एक द्रव्यकौं प्रथम समयविषै करी जो जघन्य कृष्टि ताके नीचै अनन्तगुणा घटता अनुभाग लीएं अपूर्वकृष्टिनिरूप परिणमावै है। अवशेष द्रव्यकौं प्रथम समयविषैं कीनि कृष्टि तिनिरूप परिणमावै है ॥ २८५ ॥

अथ द्वितीयसमयापकृष्टिद्रव्यस्य चतुर्द्रव्यविभागादिप्रदर्शनार्थं गाथाद्वयमाह—

हेट्ठासीसे उभयगदव्वविसेसे य हेट्ठकिट्टिम्मि ।
मज्झिमखंडे दव्वं विभज्ज विदियादिसमयेसु ॥२८६॥

अधस्तनशीर्षे उभयगद्रव्यविशेषे च अधस्तनकृष्टौ ।
मध्यमखंडे द्रव्यं विभज्य द्वितीयादिसमयेषु ॥२८६॥

सं० टी०—कृष्टिकरणकालस्य द्वितीयसमये अपकृष्टकृष्टिद्रव्यं अधस्तनशीर्षविशेषेषु उभयद्रव्यविशेषेष्वधस्तनकृष्टिषु मध्यमखंडेषु चतुर्धा विभज्य निक्षिपति। तद्यथा—

प्रथमसमयादपकृष्टकृष्टिद्रव्यविशेषोऽयं व १२ / ओ प ४ १६ – ४ / ∂ ख ख२ १ ᴖ इयमेवादिं चोत्तरं च कृत्वा रूपोनप्रथमसमयकृष्टयायामं गच्छं कृत्वा पदमेगेण विहीणमित्यादिना संकलनसूत्रेणानीतं चयधनमिदं

व १२ / ओ प ४ १६ – ४ ख २ ख / ∂ ख ख२ — १ ᴖ ४ ४ / १ᴖ एतदधस्तनशीर्षविशेषेषु निक्षिप्यमाणं द्वितीयसमयापकृष्टद्रव्याद् गृहीत्वा संस्थाप्यं।

१. विदियसमए जहण्णियाए किट्टीए पदेसग्गमसंखेज्जगुणं। विदिए विसेसहीणं। एवं जाव ओघुक्कस्सियाए वि विसेसहीणं। जहा विदियसमए तहा सेसेसु समएसु। वही पृ० ३१२-३१४।

प्रथमसमयकृतपूर्वकृष्टिषु जघन्यकृष्टिद्रव्यमिदं व । १२ १६ १ ∩ एतत्प्रमाणं द्रव्यं द्वितीयसमयकृता-
ओ प ४ १६ − ४
a ख ख२

पूर्वकृष्टिषु प्रतिकृष्टि निक्षिप्यमाणं समपट्टिकारूपापूर्वकृष्टयायामेनासंख्यातापकर्षणभागहारखंडितपूर्वकृष्टया-

यामैकभागमात्रेण त्रैराशिकयुक्त्या गुणितमधस्तनापूर्वकृष्टिसर्वद्रव्यमिदं व । १२ १६ ४ १∩ अत्रैकस्यां कृष्टौ
ओ प ४ १६ − ४ ख ओ a
a ख ख२

प्र १ एतावति द्रव्ये निक्षिप्ते फ व । १२ १६ १∩ एतावतीष्वपूर्वकृष्टिषु इ ४ ख ओ a निक्षिप्यमाणं कियदिति
ओ प ४ १६ − ४
a ख ख२

त्रैराशिकमिदं, एवमानीताधस्तनापूर्वकृष्टिद्रव्यं द्वितीयसमयपाकृष्टकृष्टिद्रव्याद् गृहीत्वा पृथक् संस्थाप्यम् । पुनः

प्रथमद्वितीयसमययोरपकृष्टद्रव्ये द्वे व । १२ व । १२ a मेलयित्वा व । १ १२ १∩ a प्रथमद्वितीयसमयकृतकृष्टया-
ओ प ओ प ओ प
a a a

यामद्वयेन मिलितेनानेन । ४ ख अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदेत्यादिविधानेनोभयसमयद्रव्यं खंडयित्वा रूपोनपूर्वापूर्व-

कृष्टयायामार्धन्यूनद्विगुणगुणहान्या भक्ते उभयद्रव्यविशेषो भवति व । १२ १ ∩ a । १ ∩ इममेवादिमुत्तरं च कृत्वा
ओ प ४ १६ − ४
a ख ख२

पूर्वापूर्वकृष्टयायामद्वयमात्रं गच्छं कृत्वा पदमेगेण विहीणमित्यादिसूत्रेणानीतमुभयद्रव्यविशेषसमस्तधनं—

व । १२ १∩ a । १∩ १∩ ४ ४ । द्वितीयसमयापकृष्टद्रव्याद् गृहीत्वा पृथक्संस्थाप्यं । एतैरधस्तनशीर्षविशेषाध-
ओ प ४ १६ − ४ ख २ ख
a ख ख२

धस्तनकृष्टयुभयविशेषद्रव्यैस्त्रिभिर्हीनं द्वितीयसमयापकृष्टकृष्टिद्रव्यमिदं व । १२ a ≡ मध्यमखंडसमपट्टिकाद्रव्यं
ओ प
a

भवति । अस्मिन् द्रव्ये पूर्वापूर्वकृष्टयायामद्वयमात्रेषु । ४ ख मध्यखंडेषु एतावति द्रव्येऽपि निक्षिप्ते व । १२ a ≡
ओ प
a

एकस्मिन् खंडे कियदिति त्रैराशिकसिद्धेन पूर्वापूर्वकृष्टिद्वयायामेन भक्ते एकखंडसंबंधिद्रव्यमागच्छति

व १२ ३ ≡ अस्मिन् सर्वेषां मध्यमखंडानां सदृशत्वात् पूर्वापूर्वकृष्टिद्वयायामेन गुणिते समस्तमध्यमखंडद्रव्यद्वयं
ओ प ४
३ ख

भवति व १२ ३ ≡ ४ इदमन्यत्र संस्थाप्यम् ॥२८६॥
ख
ओ प ४
३ ख

कृष्टिगत द्रव्योंके विभागका निर्देश—

स०चं०—कृष्टिकरण कालका दूसरा समयविषै अपकर्षण कीया द्रव्य ताकौं अधस्तन शीर्ष विशेषनिविषै उभय द्रव्य विशेषनिविषै अधस्तन कृष्टिनिविषै मध्यम खंडनिविषै च्यारि प्रकार विभागकरि निक्षेपण करै है। सोई कहिए है—

पूर्व समयविषै कीनी जे कृष्टि तिनिविषैं प्रथम कृष्टिविषै तौ बहुत परमाणू है। अर द्वितीयादिकृष्टिनिविषैं एक एक चय घटता क्रम लीए है। तहाँ पूर्व कृष्टिविषै संभवता चयका प्रमाण ल्याय द्वितीय कृष्टिविषैं एक चय अर तृतीय कृष्टिविषै दोय चय ऐसैं क्रमतैं एक एक बंधता चयप्रमाण परमाणू तिन द्वितीयादि कृष्टिनिविषैं मिलाएँ सर्व कृष्टि हैं ते प्रथम कृष्टिके समान होंइ सो ऐसें जेता द्रव्य दीया ताका नाम अधस्तन कृष्टि द्रव्य है। याकौं दीएं सर्व पूर्व कृष्टि प्रथम कृष्टिके समान हो है। सो इस द्रव्यका प्रमाण ल्याइए है—

पूर्व समयविषै जो कृष्टिविषै द्रव्य दीया ताकौं पूर्व समयविषै कीना जे कृष्टि तिनका प्रमाणमात्र जो गच्छ ताका भाग दीएँ मध्यधन आवै है। ताकौं एक घाटि गच्छका आधा प्रमाण करि हीन जो दोगुणहानि ताका भाग दीएँ चय जो एक विशेष ताका प्रमाण आवै है। तहाँ एक चयकौं आदि विषै स्थापना जातैं द्वितीय कृष्टिविषै एक चय देना है। बहुरि एक चय उत्तर स्थापना जातैं तृतीयादि कृष्टिनिविषैं एक एक चय बँधता देना है। बहुरि एक घाटि पूर्व कृष्टि प्रमाण गच्छ स्थापना जातैं प्रथम कृष्टिविषै चय नाहीं मिलावना है। ऐसैं स्थापि "पदमेगेण विहीणं" इत्यादि श्रेणि व्यवहाररूप गणित सूत्रकरि एक घाटि गच्छकौं दोयका भाग देइ ताकौं उत्तर जो एक चय ताकरि गुणि तामैं प्रभव जो आदि एक चय ताकौं मिलाय बहुरि गच्छकरि गुणैं चय धन आवै है। अंक संदृष्टिकरि जैसैं एक घाटि कृष्टिप्रमाण गच्छ सात तामैं एक घटाएँ छह ताकौं दोयका भाग दीएं तीन ताकौं चयका प्रमाण सोलह करि गुणें अठतालीस यामैं प्रभव जो एक चय सोलह ताकौं मिलाएं चौसठि याकौं गच्छ सातकरि गुणें च्यारिसै अठतालीस चय धन होइ। तैसें विधानतैं जो प्रमाण आवै तितना अधस्तन शीर्ष विशेष द्रव्य जानना। बहुरि जो पूर्व कृष्टिनिविषै प्रथम कृष्टि ताका प्रमाण था ताहीके समान प्रमाण लीएं जे विवक्षित समय-विषै अपूर्व कृष्टि करी तिनिविषै जो समान प्रमाण लीएं समपट्टिकारूप द्रव्य देना। ताका नाम

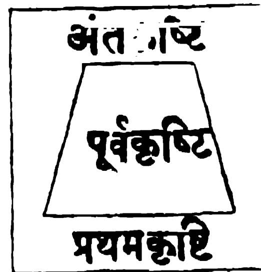
अधस्तन कृष्टि द्रव्य है। इस द्रव्यकौं दीएं अपूर्व कृष्टि हैं ते प्रथम पूर्व कृष्टिके समान हो हैं याका प्रमाण ल्याइए है—

पूर्वोक्त पूर्व कृष्टिसंबंधी चय ताकौं दो गुणहानिकरि गुणें पूर्व कृष्टिनिविषै प्रथम कृष्टिके द्रव्यका प्रमाण आवै है। सो एक कृष्टिका इतना द्रव्य होइ तौ सर्व पूर्व कृष्टिनिका केता होइ ऐसें त्रैराशिककरि तिस प्रथम पूर्व कृष्टिका द्रव्यकौं सर्व अपूर्व कृष्टिनिका प्रमाणकरि गुणें अधस्तन कृष्टि द्रव्यका प्रमाण हो है। इहां प्रथम समयविषं कोनी कृष्टिनिका प्रमाणकौं असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहारका भाग दीएं द्वितीय समयविषं कीनी कृष्टिनिका प्रमाण हो है ऐसा जानना। बहुरि पूर्वोक्त अधस्तन शीर्षविशेष द्रव्य अर अधस्तन कृष्टि द्रव्य दीएं सर्व पूर्व अपूर्व कृष्टि समान प्रमाण लीएं भईं, तहां अपूर्व कृष्टिकी प्रथम कृष्टितैं लगाय उपरि उपरि अपूर्व कृष्टि स्थापि तिनके ऊपरि प्रथमादि पूर्व कृष्टि स्थापनी ऐसें स्थापि तिनका चय घटता क्रमरूप एक गोपुच्छ करनेके अर्थि सर्वकृष्टिसंबंधी संभवता चयका प्रमाण ल्याइ अंतकी पूर्व कृष्टिविषै एक चय ताके नीचैं उपांत पूर्व कृष्टिविषं दोय चय ऐसें क्रमतैं एक एक चय बंधता प्रथम अपूर्व कृष्टि पर्यंत द्रव्य देना। याका नाम उभय द्रव्य विशेष द्रव्य है। याकौं दोएं सर्व पूर्व अपूर्व कृष्टिनिका चय घटता क्रमरूप एक गोपुच्छ हो है याका प्रमाण ल्याइए है—

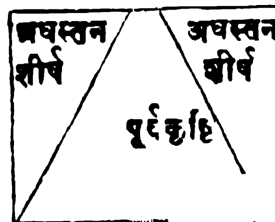
पूर्व समयनिविषै जो कृष्टिनिविषै दीया द्रव्य था अर इस विवक्षित समयविषै जो कृष्टिनिविषै देने योग्य द्रव्य है इन दोऊनिकों मिलाएँ जो द्रव्यका प्रमाण भया ताकौं पूर्व कृष्टिनिका अर अपूर्व कृष्टिनिका प्रमाण मिलाएँ जो गच्छ होइ ताका भाग दीएँ मध्यधन आवै है। ताकौं एक घाटि गच्छका आधा प्रमाण करि हीन जो दोगुणहानि ताका भाग दीएँ इहाँ चय जो एक विशेष ताका प्रमाण हो है। सो एक चय आदि स्थापि अर एक चय उत्तर स्थापि अर अपूर्व कृष्टि प्रमाण गच्छ स्थापि 'पदमेगेण विहीणं' इत्यादि सूत्रके अनुसारि एक घाटि गच्छका आधाकौं चयकरि गुणि तामैं चय मिलाय ताकौं गच्छकरि गुणैं सर्व उभय द्रव्य विशेष द्रव्य हो है। बहुरि जो विवक्षित समयविषै कृष्टिरूप परिणमावने योग्य द्रव्य अपकर्षण कीया तींहिविषै पूर्वोक्त अधस्तन शीर्षविशेष द्रव्य अर अधस्तन कृष्टि द्रव्य अर उभय द्रव्यविशेष द्रव्य घटाएँ अवशेष द्रव्य रह्या ताकौं सर्व पूर्व अपूर्व कृष्टिनिविषै समान भागकरि देना। याका नाम मध्यम खंड द्रव्य है। बहुरि याकौं दोएँ तिस अपकर्षण द्रव्यकी तौ समानता हो है अर सर्व पूर्व अपूर्व कृष्टिनिविषै चय घटता क्रमरूप ज्यूंका त्यूं रहै है। याका प्रमाण ल्याइए है—

विवक्षित समयविषै अपकर्षण कीया द्रव्यकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दोएं एक भागमात्र द्रव्य कृष्टिनिविषै देने योग्य है। तींहिविषै पूर्वोक्त तीन प्रकार द्रव्य घटाएं किंचिदून भया सो इतना द्रव्य सर्व कृष्टिनिविषै दीजिए तौ एक कृष्टिविषै केता दीजिए ऐसें त्रैराशिककरि तिस द्रव्यकौं पूर्व अपूर्वकृष्टिनिके प्रमाणका भाग दीएं एक कृष्टिविषै देने योग्य एक खंडका प्रमाण हो है। याकौं सर्वकृष्टि प्रमाणकरि गुणैं सर्व मध्यमखंड द्रव्यका प्रमाण हो है। याप्रकार इहां विवक्षित द्वितीय समयविषैं कृष्टिरूप होने योग्य द्रव्यविषैं बुद्धिकल्पनातैं ते अधस्तनशीर्ष विशेष आदि च्यारि प्रकार द्रव्य जुदे स्थापे। अैसैं ही इहां तृतीयादि समयनिविषै कृष्टिरूप होने योग्य द्रव्यविषैं विधान जानना। वा आगैं क्षपक श्रेणोका वर्णनविषैं अपूर्व स्पर्धकनिका वादरकृष्टिनिका वा सूक्ष्मकृष्टिनिका वर्णन करतैं अैसे विधान कहेंगे तहाँ ऐसा ही अर्थ समझना। विशेष होइ सो

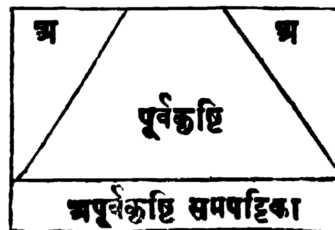
विशेष जानि लेना। इहां संदृष्टिकरि चय घटता क्रमलीएं पूर्वकृष्टिनिकी रचना ऐसी—



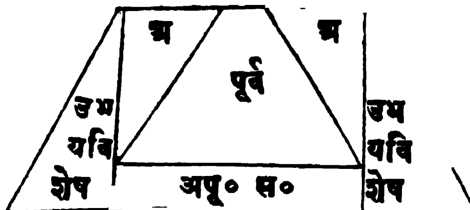
बहुरि यामैं अधस्तनशीर्ष द्रव्य मिलाएं समानरूप पूर्वकृष्टिनिकी रचना ऐसी—



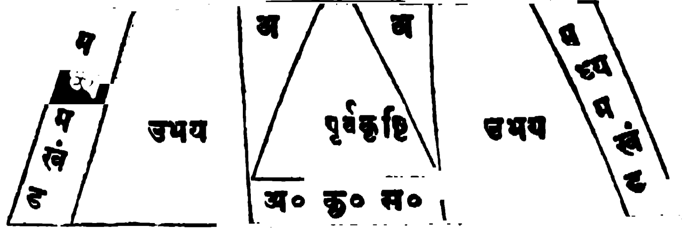
बहुरि इनके नीचैं अधस्तन कृष्टि द्रव्यकरि अपूर्वकृष्टिकी समपट्टिका रचना कीएं ऐसी—



इहां उभय द्रव्य विशेष द्रव्य निक्षेपण कीएं एक गोपुच्छकी ऐसी हो है।



यामैं मध्यम खंड द्रव्य मिलाएं ऐसी रचना हो है।



या प्रकार द्रव्य देनेका विधान जानना। यद्यपि द्रव्य तौ युगपत् जेता देने योग्य है तितना दीजिए है तथापि समझनेके अर्थि जुदा जुदा विभाग करि वर्णन किया है ॥२८६॥

हेट्ठासीसं थोवं उभएविसेसे तदा असंखगुणं।
हेट्ठा अणंतगुणिदं मज्झिमखंडं असंखगुणं ॥२८७॥

अधस्तनशीर्षं स्तोकं उभयविशेषे ततोऽसंख्यगुणं।
अधस्तनमनंतगुणितं मध्यमखंडं असंख्यगुणं ॥२८७॥

सं० टी०—एतेषु चतुर्षु द्रव्येषु मध्ये सर्वतः स्तोकमधस्तनशीर्षविशेषसमस्तधनं व १२ / ओ प ख ख ४ / a गुणकारभागहारभूतयोः पूर्वकृष्टयायामयोः सदृशापवर्तनात् रूपोनपूर्वकृष्टयायामचतुर्गुणगुणहान्योश्च यथासंभवमपवर्तितत्वात्। एवमन्यत्राप्यपवर्तनं यथायोग्यं ज्ञातव्यम्। एतस्मादधस्तनशीर्षद्रव्यादुभयद्रव्यविशेषसमस्तधनमसंख्येयगुणं व १२ a १ / ओ प ख ख ४ / a अस्मादधस्तनापूर्वकृष्टिसमस्तद्रव्यमनंतगुणं व १२ / ओ प ओ a / a अस्मान्मध्यमखंडसमस्तधनमसंख्येयगुणं व १२ a / ओ प / a ≡ यथोक्तचतुर्द्रव्याणां पूर्वापूर्वकृष्टिषु निक्षेपप्रदर्शनार्थमिदमाह ॥२८७॥

स० चं०—ए कहे च्यारि द्रव्य तिनविषैं अधस्तन शीर्ष विशेष द्रव्य सर्वतैं स्तोक है। यातैं उभय द्रव्यविशेष असंख्यातगुणा है। यातैं अधस्तन कृष्टि द्रव्य अनंतगुणा है। यातैं मध्यम खंड द्रव्य असंख्यातगुणा है ऐसा जानना ॥२८७॥

अवरे बहुगं देदि हु विसेसहीणक्कमेण चरिमो त्ति।
तत्तो णंतगुणूणं विसेसहीणं तु फड्ढयगे ॥२८८॥

अवरस्मिन् बहुकं ददाति हि विशेषहीनक्रमेण चरमे इति ।
ततोऽनंतगुणोनं विशेषहीनं तु स्पर्धके ॥२८८॥

सं० टी०—द्वितीयसमयकृतापूर्वाकृष्टीनां मध्ये जघन्यकृष्टौ बहुद्रव्यं ददाति । पुनर्द्वितीयापूर्वकृष्टयादिषु पूर्वकृष्टिचरमकृष्टिपर्यंतासु कृष्टिषु विशेषहीनक्रमेण द्रव्यं निक्षिपति । तस्मात्पूर्वचरमकृष्टिनिक्षिप्त-द्रव्यात्पूर्वस्पर्धकादिवर्गणायां निक्षिप्तद्रव्यमनंतगुणहीनं । ततः परे द्वितीयादिवर्गणासु नानागुणहानिसंबंधिनीषु चरमगुणहानिचरमवर्गणापर्यंतासु तत्तद्गुणहानिगतविशेषहीनक्रमेण द्रव्यं ददाति । अत्र द्वितीयसमयापकृष्टकृष्टि-

।
सबंधिद्रव्यस्य व १२ ဒ प्रथमद्वितीयसमयकृतपूर्वापूर्वकृष्टिषु निक्षेपविधानविशेषोऽस्ति । तं श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्य-
ओ प
ဒ

देवपरमोपदेशानुसारेण वयं व्याख्यास्यामः । तद्यथा—

द्वितीयसमयकृतापूर्वकृष्टीनां मध्ये जघन्यकृष्टावधस्तनशीर्षविशेषद्रव्यं मुक्त्वा अवशिष्टद्रव्यत्रये

। ।
अधस्तनकृष्टिद्रव्यात् व १२ १६ ४ अस्मादेककृष्टिद्रव्यं व १२ १६ ४ मध्यखंडद्रव्यात्—
१ ० १ ०
ओ प ४ १६ – ४ ख ओ ဒ ओ प ४ १६ – ४ ख ओ ဒ ४
ဒ ख ख २ ဒ ख ख २ ख ओ ဒ

। । । । १ – १ –
व १२ ဒ ≡ ४ अस्मादेकखंडद्रव्यं व १२ ဒ ≡ उभयद्रव्यविशेषादस्मात् व १२ ဒ । ।
। ख । । १ ० ४ ४
ओ प ४ ओ प ४ ओ प ४ १६ – ४ ख ख २
ဒ ख ဒ ख ဒ ख ख २

। १ _
पूर्वापूर्वकृष्टयायामद्वयमात्रविशेषांश्च गृहीत्वा व १२ ဒ १ ० । निक्षिपति, अतएव जघन्यकृष्टौ निक्षिप्तं
। । ४
ओ प ४ १६–४ ख
ဒ ख ख २

द्रव्यं बहुकमित्युक्तम् । पुनरधस्तनकृष्टिद्रव्यादेककृष्टिद्रव्यं मध्यमखण्डद्रव्यादेकखण्डद्रव्यमुभयद्रव्यविशेषद्रव्याद्रूपोन पूर्वापूर्वाकृटयायाममात्रविशेषांश्च गृहीत्वा द्वितीयसमयकृतापूर्वकृष्टीनां द्वितीयकृष्टौ निक्षपति । अतएव जघन्य-कृष्टिनिक्षिप्तद्रव्यादिकमेकेनोभयद्रव्यविशेषेण हीनमित्युक्तम् । पुनरधस्तनकृष्टिद्रव्यादेककृष्टिद्रव्यं मध्यमखण्ड-द्रव्यादेकखण्डद्रव्यमुभयद्रव्यविशेषद्रव्याद् द्विरूपोनपूर्वापूर्वकृष्टयायाममात्रविशेषांश्च गृहीत्वा द्वितीयसमय-कृतापूर्वकृष्टीनां तृतीयकृष्टौ निक्षपति । इदमपि द्वितीयकृष्टिनिक्षिप्तद्रव्याद्विशेषहीनं भवति । एवं चतुर्थादिषु द्वितीयसमयकृतापूर्वकृष्टिचरमकृष्टिपर्यन्तास्वपूर्वकृष्टिष्वधस्तनकृष्टिद्रव्यादेकैककृष्टिद्रव्यं मध्यमखण्डद्रव्यादेकैक-खण्डद्रव्यमुभयद्रव्यविशेषद्रव्यादधोऽतीतकृष्टयायामन्यूनपूर्वापूर्वकृष्टयायाममात्रविशेषांश्च गृहीत्वा तत्र तत्र निक्षपति । तत्राधस्तनकृष्टिद्रव्यादेककृष्टिद्रव्यं मध्यमखण्डद्रव्यादेकखण्डद्रव्यमुभयद्रव्यविशेषद्रव्याद्रूपोनापूर्वकृष्ट-यायामन्यूनपूर्वापूर्वकृष्टयायाममात्रविशेषांश्च गृहीत्वा द्वितीयसमयकृतापूर्वकृष्टीनां चरमकृष्टौ निक्षपति । एवं निक्षिप्तेऽधस्तनकृष्टिद्रव्यं सर्वं समाप्तम् । एवं त्रिद्रव्यन्यासः कथितः । पुनर्मध्यमखण्डद्रव्यादेकखण्डद्रव्यमुभय-

द्रव्यविशेषद्रव्यादपूर्वकृष्टयायाममात्रन्यूनपूर्वापूर्वकृष्टयायाममात्रविशेषांश्च गृहीत्वा प्रथमसमयकृतपूर्वकृष्टीनां जघन्यकृष्टौ निक्षपति। इदमपूर्वकृष्टीनां चरमकृष्टिनिक्षिप्तद्रव्यादसंख्येयभागेनानन्तभागेन च हीनं द्वितीय-समयापकृष्टकृष्टिद्रव्यादसंख्येयभागमात्रेणाधस्तनकृष्टयेककृष्टिद्रव्येण सर्वद्रव्यादनन्तैकभागमात्रेणैकेनोभय-द्रव्यविशेषेण च हीनत्वात्। एवं पूर्वकृष्टिप्रथमकृष्टौ द्विद्रव्यासो जातः। पुनरधस्तनशीर्षविशेषद्रव्यादेकविशेषं मध्यमखण्डद्रव्यादेकखण्डद्रव्यमुभयद्रव्यविशेषद्रव्यादतीतकृष्टयायामन्यूनपूर्वापूर्वकृष्टयायाममात्रविशेषांश्च गृहीत्वा प्रथमसमयकृतपूर्वकृष्टीनां द्वितीयकृष्टौ निक्षपति। इदं पूर्वकृष्टिप्रथमकृष्टिनिक्षिप्तद्रव्यात्कियता न्यूनमिति चेत् उभयद्रव्यविशेषस्यासंख्येयभागमात्रेणाधस्तनशीर्षविशेषेण व १२ । / २ प ४ १६–४ / ३ ख ख २ न्यूनोभयद्रव्यविशेषेणैकेन व १२ ३ । १–१ । ४ हीनं पूर्वकृष्टिद्वितीयादिकृष्टिष्वधस्तनशीर्षविशेषद्रव्यस्य निक्षेपसम्भवात्। पुनरधस्तनशीर्ष- । ख १ / ओ प ४ १६–४ / ३ ख ख २ विशेषद्रव्याद् द्वौ विशेषौ मध्यमखण्डद्रव्यादेकखण्डद्रव्यमुभयद्रव्यविशेषद्रव्यादतीतकृष्टयायामन्यूनपूर्वापूर्व-कृष्टयायाममात्रविशेषांश्च गृहीत्वा प्रथमसमयकृतपूर्वकृष्टीतां तृतीयकृष्टौ निक्षपति। अत्रापि पूर्ववद्वनर्ण-विवरणं ज्ञातव्यम्। एवं पूर्वकृष्टीनां चतुर्थकृष्टयादिषु चरमकृष्टिपर्यन्तासु पूर्वकृष्टिषु प्रतिकृष्टयधस्तन-शीर्षविशेषद्रव्यादनीतपूर्वकृष्टयायाममात्रविशेषान् मध्यमखण्डद्रव्यादेकैकखण्डद्रव्यमुभयद्रव्यविशेषद्रव्यादतीत-कृष्टयायामन्यूनसर्वकृष्टयायाममात्रविशेषांश्च गृहीत्वा निक्षपति। पूर्वकृष्टीनां चरमकृष्टौ अधस्तनशीर्ष-विशेषद्रव्यादवशिष्टान् रूपोनपूर्वकृष्टयायाममात्रविशेषान् मध्यमखण्डद्रव्यादवशिष्टमेकखण्डद्रव्यं उभयद्रव्य-विशेषद्रव्यादवशिष्टमेकविशेषं च गृहीत्वा निक्षिपति। एवं निक्षिप्तद्रव्यत्रयं समाप्तं भवति। इति द्रव्यन्यासो जातः। एवं निक्षिप्ते सति प्रथमसमयकृतपूर्वकृष्टिद्रव्येण सह द्रव्यमेकगोपुच्छाकारेणावतिष्ठते। तद्यथा—

प्रथमसमयकृतपूर्वकृष्टिद्रव्ये अस्मिन्नधस्तनशीर्षविशेषद्रव्ये अधस्तनकृष्टिद्रव्ये च युक्ते पूर्वापूर्वकृष्टि-मात्रायासं समपट्टिकाधनमित्थं भवति—

। व १२ १६ । ४ / १ ख / ओ प ४ १६ – ४ / ३ ख ख २

४ / ख ओ ३	४ / ख

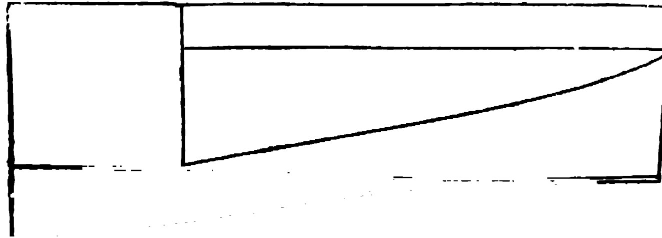
नपुरुभयद्रव्यविशेषद्रव्याद-स्मात् व १२ ३ । १–१–। ४ ४ / । ख ख २ / १ / ओ प ४ १६ – ४ / ३ ख ख२ गुणकारभूतासंख्यातोपरिस्थिताधिकरूपप्रमाणं प्रथमसमयकृतकृष्टिद्रव्य-

१ –
। । ।
सम्बन्धिविशेषद्रव्यमात्रं गृहीत्वा व १२ ४ ४ पूर्वापूर्वकृष्टयायामद्रयाधस्तनसर्वजघन्यकृष्टौ सर्व-
। ख ख२ १ᴖ
ओ प ४ १६ – ४
a ख ख २

। ।
कृष्टयायाममात्रविशेषान्निक्षिपति व १२ ४ द्वितीयादिकृष्टिष्वेकैकविशेषहीनक्रमेण निक्षिप्य
। १ᴖ
ओ प ४ ख । १६४
a ख ख २

।
सर्वचरमकृष्टावेकविशेषमात्रं व १२ निक्षिपति । एवं निक्षिप्ते अधस्तनशीर्षविशेषमात्रद्रव्या-
। १ᴖ
ओ व ४ १६ – ४
a ख ख २

धस्तनकृष्टिद्रव्योभयविशेषद्रव्यगुणकारभूतासंख्यातोपरिस्यैकरूपसम्बन्धिविशेषद्रव्यैस्त्रिभिः साधिक प्रथमसमय-कृतकृष्टिद्रव्यमितं पूर्वापूर्वकृष्टयायामसहितमेकगोपुच्छद्रव्ये भवति



प्रथमकृष्टिः

। ।।।
व १२ १ । १६ १ᴖ
।
ओ प ४ १६ – ४
a ख ख २

० ० ० ० ०

चरमकृष्टिः

। ।।। १ᴖ
व १२ १ १६ – ४
। ख
। १ᴖ
ओ प ४ १६ – ४
a ख ख २

। ।
पुनर्मध्यखण्डसर्वद्रव्यमात्रे समपट्टिकाद्रव्ये व १२ a ≡ ४ द्वितीयसमयकृतकृष्टिद्रव्यसम्बन्धिविशेषद्रव्यम्
।
ओ प ४ ख
a ख

।　१–।
व १२ ∂ ४ ४　　सर्वजघन्यकृष्टौ सर्वकृष्टयायाममात्रविशेषान्निक्षिप्य द्वितीयादिकृष्टिष्वेकैक-
ओ प । ख ख २　१ ̲
∂ ४　। १६ – ४
ख　ख २

।
विशेषहीनक्रमेण निक्षिप्य सर्वचरमकृष्टाववशिष्टैकविशेषमात्रं व १२　१ – निक्षिपति । एवं निक्षिप्ते
।
ओ प ४ १६–४
∂ ख　ख २

द्वितीयसमयकृतकृष्टिद्रव्यं अधस्तनशीर्षाधस्तनकृष्टयुभयविशेषगुणकारभूतासंख्यातोपरिष्यैकरूपसम्बन्धिविशेष-द्रव्यैस्त्रिभिर्न्यूनं पूर्वापूर्वकृष्टयायामसहितैकगोपुच्छाकारं भवति—

।　　　　　　　　　　।　　१ ̲
व १२ ∂ ≡ १६　　　　　व १२ ∂ ≡ १६ – ४
।　१ ̲　० ० ० ० ०　　। १ ̲ ख
ओ प ४ १६–४　　　　　ओ प ४ १६ – ४
∂ ख　ख २　　　　　　∂ ख　ख २

अस्मिन् प्राक्तनगोपुच्छद्रव्यस्योपरि स्थापिते प्रथम-द्वितीयसमयकृतकृष्टिद्रव्यं सर्वमप्येकगोपुच्छाकारं दृश्यं भवति । पूर्वाचार्यैः सर्वत्र तथैव सम्मतत्वात् । तन्न्यासः—

॥२८८॥

स० चं०—दूसरे समयविषै कीनी जे अपूर्वकृष्टि तिनविषै जो जघन्य कृष्टि है तिसविषै तौ बहुत द्रव्य दीजिए है। बहुरि द्वितीय अपूर्व कृष्टितैं लगाय अपूर्व कृष्टिकी अंत कृष्टि पर्यंत क्रमतैं चय घटता क्रमकरि निक्षेपण करै है। बहुरि तातैं पूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणाविषै निक्षेपण कीया द्रव्य अनंतगुणा घटता है। तातैं परैं ताकी द्वितीयादि वर्गणा जे नाना गुणहानि सम्बन्धी अंतगुणहानिकी अंतवर्गणा पर्यंत हैं तिनविषै अपनी अपनी गुणहानिविषै सम्भवता चय घटता क्रमकरि निक्षेपण करै है। सो इहाँ याकौं विशेष करि दिखाइए है—

तहाँ द्वितीय समयविषै अपकर्षण कीया द्रव्यविषै जो कृष्टि सम्बन्धी द्रव्य है ताकौं पूर्व अपूर्व कृष्टिनिविषै निक्षेपण करनेका विधान श्रीमाधवचद्र गुरुके अनुसारतैं कहैं हैं—द्वितीय

समयविषै कीनी जे अपूर्व कृष्टि तिनविषै अधस्तन शीर्ष विशेषका द्रव्य तौ न दीजिए है अर अवशेष तीन द्रव्य निक्षेपण करिए है। तहां अधस्तन कृष्टि द्रव्यतैं एक कृष्टिका द्रव्यकौं अर मध्यम खंडका द्रव्यतैं एक खंडका द्रव्यकौं अर उभय विशेष द्रव्यतैं पूर्व अपूर्व कृष्टिनिका प्रमाणकों मिलाएं जो प्रमाण होइ तितनेमात्र चयनिका द्रव्यकौं ग्रहि करि जघन्य कृष्टि विषै निक्षेपण यरै है। तातैं जघन्य कृष्टिविषै दीया द्रव्य बहुत जानना। बहुरि तातैं ऊपरि अधस्तन कृष्टि द्रव्यतैं एक एक कृष्टि द्रव्यकौं अर मध्यम खण्ड द्रव्यतैं एक एक खण्ड द्रव्यकौं उभय विशेष द्रव्यतैं पूर्व अपूर्व कृष्टिनिका प्रमाणतैं क्रमकरि एक एक घटता प्रमाणमात्र चयनिके द्रव्यकौं ग्रहि करि अनुक्रमतैं द्वितीयादि अपूर्व कृष्टिनिविषै निक्षेपण करै है। तहाँ अंतकृष्टिविषै एक कृष्टि द्रव्यकौं अर एक मध्यम खण्ड द्रव्यकौं अर एक अधिक पूर्व कृष्टिका प्रमाणमात्र चयनिके द्रव्यकौं निक्षेपण कीजिए है। इहाँ प्रथमादि कृष्टितैं द्वितीयादि कृष्टिविषै दीया द्रव्य एक एक उभय द्रव्य विशेष-मात्र घटता जानना। इहाँ अधस्तन कृष्टिका द्रव्य समाप्त भया। ऐसैं तीन द्रव्यका स्थापन कह्या। या प्रकार इतने इतने द्रव्यकरि इहाँ अपूर्व कृष्टि निपजी।

बहुरि प्रथम समयविषै करी ऐसी अपूर्व कृष्टि तिनिविषै जो जघन्य कृष्टि तीहिंविषै दोय ही द्रव्यका निक्षेपण हो है। तहाँ मध्यम खण्ड द्रव्यतैं एक खण्डके द्रव्यकौं उभय विशेष द्रव्यतैं पूर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र चयनिके द्रव्यकौं ग्रहि निक्षेपण कीजिए है। यहुँ अपूर्व कृष्टिनिका अंत कृष्टिविषै निक्षेपण कीया जो द्रव्य तातैं असंख्यातवां भाग अर अनंतवां भाग करि हीन जानना, जातैं द्वितीय समयविषै अपकर्षण कीया द्रव्यतैं असंख्यातवे भागमात्र तौ अधस्तन कृष्टिके एक कृष्टिका द्रव्य अर सर्व द्रव्यके अनन्तवें भागमात्र जो उभय विशेषका एक चय इनकरि घटता द्रव्य इहाँ निक्षेपण कीया है। बहुरि द्वितीयादि पूर्व कृष्टिनिविषै अधस्तन शीर्ष विशेष सहित तीन द्रव्यका निक्षेपण हो है। तहाँ द्वितीय पूर्व कृष्टिविषै अधस्तन शीर्ष विशेषतैं एक चयके द्रव्यकौं मध्यम खण्ड द्रव्यतैं एक खण्डके द्रव्यकौं उभय विशेष द्रव्यतैं एक घाटि पूर्व कृष्टि प्रमाणमात्र चयनिके द्रव्यकौं ग्रहि निक्षेपण करै हैं। बहुरि तृतीयादि पूर्व कृष्टिनिविषै अधस्तन शीर्ष विशेषतैं दोय तीन आदि क्रमतैं एक एक बँधता चयनिके द्रव्यकौं अर मध्यम खण्डतैं एक एक खण्डके द्रव्यकौं उभय विशेष द्रव्यतैं दोय तीन आदि घटता पूर्व कृष्टि प्रमाणमात्र चयनिके द्रव्यकौं ग्रहि करि क्रमतैं निक्षेपण करै है। तहाँ पूर्व कृष्टिनिकी अंत कृष्टिविषै अधस्तन शीर्ष विशेष द्रव्यतैं एक घाटि पूर्व कृष्टि प्रमाणमात्र चयनिके द्रव्यकौं मध्यम खण्ड द्रव्यतैं एक खण्ड द्रव्यकौं उभय विशेष द्रव्यतैं एक चयके द्रव्यकौं ग्रहि करि निक्षेपण करै है। इहाँ प्रथमादि कृष्टिविषै दोया द्रव्यतैं द्वितीयादि कृष्टिविषै दीया द्रव्य क्रमतैं उभय द्रव्य विशेषके अनंतवे भागमात्र जो अधस्तन शीर्षविशेष ताकरि हीन उभय द्रव्यविशेषमात्र जानना। ऐसैं पूर्व कृष्टि थी तिनविषै इतना द्रव्य और मिलाया या प्रकार दोया द्रव्यका निक्षेपण कीएं प्रथम द्वितीय समयविषै कीनी जे कृष्टि तिनिका द्रव्य सर्व ही एक गोपुच्छाकार हो है। जैसैं गायका पूंछ क्रमतैं घटता हो हैं तैसैं क्रमतैं घटता द्रव्य प्रमाण लीएं हो है। सो अर्थ संदृष्टि आदि करि विचारैं यहु प्रकट जानिए है। सो संस्कृतटीकातैं जानना। बहुरि बहु भागमात्र जो पूर्व स्पर्धक तिनिविषै देने योग्य द्रव्य था ताकौं 'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा' इत्यादि विधानतैं प्रथमादि वर्गणानिविषै चय घटता क्रमकरि दोजिए है। इहाँ अंत कृष्टिविषै दीया द्रव्य क्रमतैं प्रथम वर्गणा द्रव्य अनंतवें भागमात्र है जातैं इहाँ भागहार द्व्यर्ध गुणहानि है। या प्रकार इस गाथाका अर्थ जानना ॥२८८॥

विशेष —यहाँ २८४, गाथासे लेकर २८८ तकको गाथामें जिन बातोंको निर्देश किया है— उनमेंसे कतिपय बातोंका खुलासा इस प्रकार है—

१. अपकर्षित द्रव्यमेंसे कितना भाग कृष्टियोंको प्राप्त होता है और कितना भाग स्पर्धकरूप रहता है।

२. पिछले समयमें जो सूक्ष्म कृष्टियाँ की जाती हैं उनको पूर्वकृष्टि कहा गया है और उत्तरोत्तर वर्तमान समयमें जो सूक्ष्म कृष्टियाँ की जाती हैं उन्हें अपूर्वकृष्टि कहा गया है।

३. बादर लोभसे सूक्ष्मलोभमें बहुत ही कम फलदान शक्ति रह जाती है। इसीलिए स्पर्धकगत अनुभागसे कृष्टिगत अनुभागकी नीचे रचना करता है यह कहा गया है।

४. प्रथम समयसे जितने द्रव्यका अपकर्षण करता है उससे दूसरे समयमें पूर्व और अपूर्व कृष्टियोंमें सिंचन करनेके लिए असंख्यातगुणे द्रव्यका अपकर्षण करता है। उसमें प्रथम समयकी अन्तिम कृष्टिमें जितने प्रदेश पुंजका निक्षेपण होता है उससे दूसरे समयकी प्रथम जघन्य कृष्टिमें असंख्यातगुणे द्रव्यका निक्षेपण होता है। आगे अन्तिम अपूर्व कृष्टितक उत्तरोत्तर विशेषहीन-विशेषहीन द्रव्यका निक्षेपण होता है। उसके बाद प्रथम समयमें रची गई कृष्टियोंमें जो जघन्य कृष्टि है उसमें विशेषहीन द्रव्य देता है। इसके आगे ओघ उत्कृष्ट कृष्टिकी अपेक्षा प्रथम समयमें रची गई कृष्टियोंमें अन्तिम कृष्टिके प्राप्त होने तक सर्वत्र अनन्तवाँ भागप्रमाण विशेष हीन द्रव्य देता है। पुनः उससे जघन्य स्पर्धककी आदि वर्गणामें अनन्तगुणाहीन प्रदेश विन्यास करता है। पुनः उससे उत्कृष्ट स्पर्धकसे नीचे जघन्य अतिस्थापनाप्रमाण स्पर्धक छोड़कर स्थित हुए वहाँके स्पर्धककी उत्कृट वर्गणाके प्राप्त होनेतक अनन्तवाँ भागप्रमाण विशेषहीन प्रदेश विन्यास करता है।

५. यहाँ जिस प्रकार दूसरे समयमें प्रदेश विन्यासका क्रम बतलाया है उसी प्रकार शेष समयोंमें भी जानना चाहिए।

६. यह दीयमान द्रव्यकी श्रेणिप्ररूपणा है। दृश्यमान द्रव्यकी श्रेणिप्ररूपणा करनेपर प्रथम कृष्टिमें दृश्यमान द्रव्य बहुत है। उससे दूसरी कृष्टिमें अनन्तवें भागप्रमाण विशेषहीन है। इसी प्रकार अन्तिम कृष्टिके प्राप्त होने तक विशेषहीन-विशेषहीन जानना चाहिए।

अथ निक्षेपद्रव्यस्य पूर्वापूर्वकृष्टिसंधिगतविशेषं प्ररूपयति—

णवरि असंखाणंतिमभागूणं पुव्वकिट्टिसंघीसु ।
हेट्ठिमखंडपमाणेणेव विसेसेण हीणादो ।।२८९।।

नवरि असंख्यातानन्तिमभागोनं पूर्वकृष्टिसंधिषु ।
अधस्तनखंडप्रमाणेनैव विशेषेण हीनात् ।।२८९।।

सं० टी०—अयं तु विशेषः द्वितीयादिसमयेषु कृष्टिद्रव्यनिक्षेपे पूर्वापूर्वकृष्टिसंधिषु अपूर्वकृष्टीनां चरमकृष्टिनिक्षिप्तद्रव्यात् पूर्वकृष्टिप्रथमकृष्टिनिक्षिप्तद्रव्यमसंख्येयभागेनानंतभागेन च न्यूनं—

१ञ
। १ – । १ – ।
व १२ ð । १६ ००० व १२ ð १६ – ४ एकाधस्तनकृष्टिद्रव्येणैकोभयद्रव्यविशेषेण च हीनत्वात् । अय-
। १ञ । १ञख
ओ प ४ १६ – ४ ओ प ४ १६ –४
ð ख ख२ ð ख ख२
मर्थः प्राक् सप्रपंचं व्याख्यात इति नेह प्रतन्यते ।।२८९।।

अब निक्षेप द्रव्यके पूर्व और अपूर्व सन्धिगत विशेषको बतलाते हैं—

स० च०—इतना विशेष जो पूर्व अपूर्व कृष्टिकी संधिनिविषै अपूर्वकृष्टिकी अंतकृष्टिविषै निक्षेपण कोया द्रव्यतैं पूर्व कृष्टिकी प्रथम कृष्टिविषै निक्षेपण कीया द्रव्य है सो असंख्यातवाँ भागकरि वा अनंतवाँ भागकरि घटता है। जातैं एक अधस्तन कृष्टिका द्रव्य अर एक उभय द्रव्यका विशेष ताकरि हीन हो है। सो कथन पूर्वै किया हो है ॥२८९॥

अथ कृष्टीनां शक्त्यल्पबहुत्वप्रदर्शनार्थमाह—

अवरादो चरिमेत्ति य अणंतगुणिदक्कमादु सत्तीदो ।
इदि किट्टीकरणद्धा बादरलोहस्स बिदियद्धं ॥२९०॥

अवरस्मात् चरम इति च अनंतगुणितक्रमात् शक्तितः ।
इति कृष्टिकरणाद्धा बादरलोभस्य द्वितीयार्धम् ॥२९०॥

।

सं० टी०—अपूर्वकृष्टिजघन्यकृष्ट्यविभागप्रतिच्छेदेभ्यः व ख ४ द्वितीयादिकृष्टयः पूर्वकृष्टिचरम-
ख

कृष्टिपर्यंता अनंतानंतगुणितशक्तयो गच्छंति। तत्र तच्चरमकृष्टौ रूपोनपूर्वापूर्वकृष्ट्यायाममात्रवरानंतगुण-
। १२

कारैर्गुणितमविभागप्रतिच्छेदप्रमाणं व ख ४ अपवर्तिते एवं भवति व । एवं तृतीयादिसमयेषु कृष्टिकरण-
। ख ख

ख ४

ख

कालचरमसमयपर्यंतेषु असंख्यातगुणितक्रमेण द्रव्यमपकृष्य पूर्वापूर्वकृष्टिषु प्रागुक्तविधानेन द्रव्यनिक्षेपं करोति इत्युक्तप्रकारेण सूक्ष्मकृष्टिकरणे सति बादरलोभवेदककालस्य द्वितीयार्धमात्रसूक्ष्मकृष्टिकरणकालो गच्छति। यथा क्षपकश्रेण्यां पूर्वापूर्वस्पर्धकद्रव्यं सर्वमपि गृहीत्वा कृष्टीः करोति तथोपशमश्रेण्यां, किंतु पूर्वस्पर्धकद्रव्यात् कृष्टिकरणकालयोग्यमसंख्यातैकभागमात्रं द्रव्यमपकृष्य सूक्ष्मकृष्टीः करोति। शेषबहुभागमात्रस्पर्धकद्रव्यं स्वस्थाने एवोपशमयतीत्यर्थविशेषो ज्ञातव्यः ॥२९०॥

अब कृष्टियोंके शक्तिसम्बन्धी अल्पबहुत्वका कथन—

स० चं०—अपूर्व कृष्टिकी जघन्य कृष्टिके अनुभागके अविभाग प्रतिच्छेद हैं। तिनतैं द्वितीयादि पूर्व कृष्टिकी अंत कृष्टि पर्यंतके अविभाग प्रतिच्छेद क्रमतैं अनंत-अनंत गुणे हैं। तहाँ पूर्व कृष्टिकी अंतकृष्टिविषै एक घाटि पूर्व अपूर्वकृष्टिका जो प्रमाण तितनीबार अनंतका गुणकार हो है। ऐसैं द्वितीय समयविषै विधान कीया। बहुरि जैसैं द्वितीय समयविषै विधान कह्या तैसैं ही कृष्टिकरण कालके तृतीयादि अंतसमयपर्यंतनिविषै क्रमतैं असंख्यातगुणा द्रव्यकौं अपकर्षण करि पूर्वोक्त प्रकार निक्षेपण करै है। इस प्रकार बादर लोभ वेदक कालका द्वितीय अर्धमात्ररूप सूक्ष्म

---

१. तिव्वमंददाए जहण्णिया किट्टी थोवा। बिदिया किट्टी अणंतगुणा। तदिया अणंतगुणा। एवमणंतगुणाए सेढीए गच्छदि जाव चरिमकिट्टि त्ति। एसो बिदियतिभागो किट्टीकरणद्धा णाम। वही पृ. ३१४-३१५।

कृष्टि करनेका काल व्यतीत हो है। जैसैं क्षपक श्रेणीविषैं पूर्व अपूर्व स्पर्धकनिका सर्व ही द्रव्यकौं अपकर्षण करि कृष्टि करै है। तैसैं उपशम श्रेणिविषैं भी कृष्टि करै है। विशेष इतना—

इहाँ पूर्व स्पर्धकके द्रव्यतैं असंख्यातवाँ भागमात्र ही द्रव्यकौं ग्रहि सूक्ष्म कृष्टि करै है। अवशेष द्रव्य अपने स्वरूपरूप ही रहता संता उपशमैं है ॥२९०॥

विशेष – उपशमश्रेणिमें संज्वलन लोभकी की गई कृष्टियोंकी शक्तिविशेषका विचार करते हुए श्री जयधवलामें बतलाया है कि 'जघन्य कृष्टिमें सबसे स्तोक शक्ति होती है' इसका आशय है कि कृष्टिकी अपेक्षा सदृश धन (शक्ति) वाले परमाणुको छोड़कर वहाँ एक परमाणुके अविभाग प्रतिच्छेदोंको ग्रहण कर एक कृष्टि होती है। यह सबसे स्तोक है। तथा इससे दूसरी कृष्टि अनन्तगुणी होती है। सो यहाँ भी एक परमाणुमें जितने अविभाग प्रतिच्छेद हों उनका समूह लेना चाहिये। इस प्रकार एक-एक परमाणुको ही ग्रहणकर अन्तिम कृष्टिके प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर अनन्तगुणित क्रमसे अविभाग प्रतिच्छेद जानने चाहिये। अथवा 'जघन्य कृष्टि स्तोक शक्तिवाली होती है।' इस पदका यह अर्थ करना चाहिये कि जघन्य कृष्टिमें सदृशधन (शक्ति) वाले परमाणु होते हैं। वे सब मिलकर जघन्य कृष्टि कहलाते हैं। वह सबसे स्तोक होती है। इससे दूसरी कृष्टि अनन्तगुणी होती है। यहाँ भी सदृश धन (शक्ति) वाले परमाणुओंकी एक कृष्टि ग्रहण की गई है। इसी प्रकार अन्तिम कृष्टि के प्राप्त होने तक जानना चाहिये। इन्हे कृष्टि इसलिये कहा गया है, क्योंकि इनमें अविभाग प्रतिच्छेदोंकी उत्तरोत्तर क्रमवृद्धि नहीं पाई जाती। यहाँ अन्तिम कृष्टिका शक्तिकी अपेक्षा जितना प्रमाण है उससे जघन्य स्पर्धककी प्रथम वर्गणा अनन्तगुणी है, द्वितीयादि वर्गणाओंका इसी क्रमसे विचार कर लेना चाहिये।

इस प्रसंगमें इतना विशेष जानना चाहिये कि जिस प्रकार क्षपक श्रेणिमें पूर्व और अपूर्व स्पर्धकोंका अपवर्तन होकर मात्र कृष्टियोंकी ही रचना करता है वैसा उपशमश्रेणिमें नहीं करता, किन्तु सभी पूर्व स्पर्धकों के जहाँके तहाँ रहते हुए उन सब स्पर्धकोंमेंसे असंख्यातवें भाग प्रमाण द्रव्यका अपवर्तन कर एक स्पर्धकको वर्गणाओंके अनन्तवें भागप्रमाण कृष्टियोंकी रचना करता है।

अथ कृष्टीकरणकाले स्थितिबंधप्रमाणप्ररूपणार्थं गाथात्रयमाह—

विदियद्धा संखेज्जाभागेसु गदेसु लोभठिदिबंधो।
अंतोमुहुत्तमेत्तं दिवसपुधत्तं तिघादीणं[1] ॥२९१॥

द्वितीयाद्धा संख्येयभागेषु गतेषु लोभस्थितिबंधः।
अन्तर्मुहूर्तमात्रं दिवसपृथक्त्वं त्रिघातिनाम् ॥२९१॥

सं० टी०—संज्वलनलोभप्रथमस्थितेर्द्वितीयार्धमात्रकृष्टिकरणकालस्य संख्यातबहुभागेषु गतेषु तद्बहुभागचरमसमये संज्वलनलोभस्यांतर्मुहूर्तमात्रस्थितिबधः १ ७ २ घातित्रयस्य स्थितिबंधो दिवसपृथक्त्वमात्रः दि ७ ॥२९१॥

८

१. किट्टीकरणद्धासंखेज्जेसु भागेसु गदेसु लोभसंजलणस्स अंतोमुहुत्तट्ठिदिगो बंधो। तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो दिवसपुधत्तं। वही पृ० ३१५–३१६।

कृष्टिकरणके कालमें स्थिति बन्धका विचार—

स० चं०—संज्वलन लोभको प्रथम स्थितिका द्वितीय अर्धमात्र जो कृष्टि करण काल ताकौं संख्यातका भाग दीएँ तहाँ बहुभाग व्यतीत होतैं अंतसमयविषै संज्वलन लोभका अंतर्मुहूर्त-मात्र अर तीन घातियानिका पृथक्त्व दिनमात्र स्थिति बंध हो है ॥२९१॥

किट्टीकरणद्धाए जाव दुचरिमं तु होदि ठिदिबंधो ।
वस्साणं संखेज्जसहस्साणि अघादिठिदिबंधो[1] ॥२९२॥

कृष्टिकरणाद्धाया यावत् द्विचरमं तु भवति स्थितिबंधः ।
वर्षाणां संख्येयसहस्राणि अघातिस्थितिबंधः ॥२९२॥

सं० टी०—कृष्टिकरणकालस्य द्विचरमसमयं यावदघातित्रयस्य पूर्ववत्संख्यातसहस्रवर्षमात्र एव स्थितिबंधः । एवमुक्ताः संज्वलनलोभादीनां स्थितिबंधाः कृष्टिकरणकालद्विचरमसमयपर्यंतं समबंधा एव गच्छंति ॥२९२॥

स० चं०—कृष्टि करण कालका यावत् द्विचरम समय प्राप्त होइ तावत् तीन अघातिया कर्मनिका स्थितिबंध यथासम्भव संख्यात हजार वर्षमात्र है । बहुरि संज्वलन लोभादिकनिका भी स्थिति बंध है सो तिस द्विचरम समय पर्यंत पूर्वोक्त प्रमाण लीएँ समानरूप ही जानना ॥२९२॥

किट्टीयद्धाचरिमे लोभस्संतोमुहुत्तियं बंधो ।
दिवसंतो घादीणं वेवस्संतो अघादीणं[2] ॥२९३॥

कृष्टयद्धाचरमे लोभस्यांतर्मुहूर्तकं बंधः ।
दिवसांतः घातिनां द्विवर्षांतोऽघातिनाम् ॥२९३॥

सं० टी०—कृष्टिकरणकालस्य चरमसमये संज्वलनलोभस्य स्थितिबंधः अनंतरातीतस्थितिबंधात्संख्यातगुणहीनोऽप्यंतर्मुहूर्तमात्र एव २ ᳲ घातित्रयस्यानंतरातीतस्थितिबंधात्संख्यातगुणहीनोप्येकदिवसस्यांतरे एव न समो नाप्याधिक इत्यर्थः तीत दि १ – । अघातित्रयस्यानंतरातीतबंधात्संख्यातगुणहीनोऽपि वर्षद्वयस्यांतरे एव न समो नाप्याधिक इत्यर्थः वी व २ – वे व २ – ३ । एते उपशमकानिवृत्तिकरणचरमसमयस्थितिबंधाः
२
क्षपकानिवृत्तिकरणचरमसमयलोभादिस्थितिबंधेभ्यो द्विगुणप्रमाणा इति ग्राह्यम् ॥२९३॥

स० चं०—कृष्टि करणकालका अंतसमयविषैं पूर्व स्थितिबंधतैं संख्यातगुणा घाटि संज्वलन लोभका अंतर्मुहूर्तमात्र अर तीन घातियानिका दिवसांत कहिए एक दिन किछू घाटि अर तीन अघातियानिका द्विवर्षांत कहिए दोय वर्ष किछू घाटि स्थिति बंध हो है । ए उपशमक अनिवृत्ति-

---

१. जाव किट्टीकरणद्धाए दुचरिमो ट्ठिदिबंधो ताव णामा-गोद-वेदणीयाणं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ट्ठिदिबंधो । वही पृ० ३१६ ।

२. किट्टीकरणद्धाए चरिमो ट्ठिदिबंधो लोहसंजलणस्स अंतोमुहुत्तिओ । णाणावरण-दंसणावरण-अंत-राइयाणमहोरत्तस्संतो । णामा-गोद-वेदणीयाणं वेण्हं वस्साणमंतो । वही पृ० ३१६-३१७ ।

करणके अंतसमयविषै स्थितिबंध कहे ते क्षपक अनिवृत्ति करणके अंत समयके स्थितिबंधतैं दूणे हैं ॥२९३॥

विशेष—गाथा का प्रथम पाद 'किट्टीयद्धाचरिमे' पाठ है। उसका प्रकृतमें 'वादरसाम्पराय-के अन्तिम समयमें' ऐसा अर्थ समझना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

अथ संक्रमकालावधिनिर्देशार्थमाह—

विदियद्धा परिसेसे समऊणावलितियेसु लोभदुगं।
सट्ठाणे उवसमदि हु ण देदि संजलणलोहम्मि[1] ॥२९४॥

द्वितीयार्धे परिशेषे समयोनावलित्रिकेषु लोभद्विकम्।
स्वस्थाने उपशाम्यति हि न ददाति संज्वलनलोभे ॥२९४॥

सं० टी०—संज्वलनलोभप्रथमस्थितिद्वितीयार्द्धे समयोनावलित्रयेऽवशिष्टे अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यान-लोभद्वयद्रव्यं संज्वलनलोभे न संक्रामति। संक्रमणावलिप्रथमसमये एतत्संक्रमणस्य विश्रांतत्वात्, किंतु तल्लो-भद्वयद्रव्यं स्वस्वस्थाने एवोपशाम्यति। संक्रमणावलौ गतायां प्रथमस्थित्यावलिद्वयेऽवशिष्टे आगालप्रत्यागालौ व्युच्छिन्नौ प्रत्यावलिचरमसमयपर्यंतमुदीरणा वर्तते ॥२९४॥

संक्रमणकालसम्बन्धी अवधिका विचार—

सं० चं०—संज्वलन लोभकी प्रथम स्थितिका द्वितीयार्धविषै समय घाटि तीन आवली अवशेष रहैं अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान लोभ है सो संज्वलन लोभविषै संक्रमण नाहीं करै है जातैं संक्रमणावलीका प्रथम समयविषै ही इस संक्रमणका विधान भया। तौ कहा है ? तिनि दोऊ लोभनिका द्रव्य है सो स्वस्थाने कहिए अपने रूप हीं विषै होता संता उपशमै है। बहुरि संक्रमणा-वली व्यतीत भएं तहां दोय आवली अवशेष रहैं आगाल प्रत्यागालकी भी व्युच्छित्ति भई। बहुरि प्रत्यावली जो द्वितीयावली ताका अंतसमय पर्यंत उदीरणा वर्तै है। इनिका स्वरूप पूर्वै कह्या है तैसैं जानना ॥२९४॥

विशेष—कृष्टिकरणके कालमें एक समय कम तीन आवलि कालके शेष रहने पर अप्रत्या-ख्यान और प्रत्याख्यान लोभका संज्वलनलोभमें संक्रम नहीं होता क्योंकि इस समय संक्रमणावलि और उपशमनावलिका पूर्ण होना असम्भव है। इसलिये इनकी स्वस्थानमें ही उपशमनक्रिया होती है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि जब संज्वलन लोभकी प्रथम स्थितिमें दो आवलि काल शेष रह जाता है तब आगाल और प्रत्यागालकी व्युच्छित्ति हो जाती है। तथा प्रत्यावलिके अन्तिम समयमें लोभसंज्वलनकी जघन्य उदीरणा होती है।

अथ लोभत्रयोपशमनावधिनिर्ज्ञानार्थमाह—

बादरलोभादिठिदी आवलिसेसे तिलोहमुवसंतं।
णवकं किट्टिं मुच्चा सो चरिमो थूलसंपराओ य[2] ॥२९५॥

१. तिस्से किट्टीकरणद्धाए तिसु आवलियासु समयूणासु सेसासु दुविहो लोहो लोहसंजलणे ण संका-मिज्जदि सत्थाणे चेव उवसामिज्जदि। वही पृ० ३१७।

२. ताधे चेव जाओ दो आवलियाओ समयूणाओ एत्तियमेत्ता लोहसंजलणस्स समयपबद्धा अणुवसंता, किट्टीओ सव्वाओ चेव अणुवसंताओ, तव्वदिरित्तं लोहसंजलणस्स पदेसग्गं उवसंतं, दुविहो लोहो सव्वो चेव उवसंतो णवकबंधुच्छिट्ठावलियवज्जं। एसो चेव चरिमसमयबादरसांपराइयो। वही पृ० ३१८-३१९।

बादरलोभादिस्थितौ आवलिशेषे त्रिलोभमुपशांतं ।
नवकं कृष्टिं मुक्त्वा स चरमः स्थूलसांपरायो यः ॥२९५॥

सं० टी०—संज्वलनबादरलोभस्य प्रथमस्थितौ उच्छिष्टावलिमात्रेऽवशिष्टे उपशमनावलिचरमसमये लोभत्रयद्रव्यं सर्वमप्युपशमितं भवति तत्र सूक्ष्मकृष्टिगतद्रव्यं समयोनद्व्यावलिमात्रसमयप्रबद्धनवकबंधद्रव्यं उच्छिष्टावलिमात्रनिषेकद्रव्यं च नोपशमयति । एतद्द्रव्यत्रयं मुक्त्वा लोभत्रयस्य सर्वमपि सत्त्वद्रव्यमुपशमितमित्यर्थः । स एव कृष्टिकरणकालचरमसमये वर्तमानोऽनिवृत्तिकरणश्चरमसमयबादरसांपराय इत्युच्यते ॥२९५॥

लोभत्रयकी उपशमनविधिका निर्देश—

स० चं०—बादर लोभकी प्रथम स्थितिविषै उच्छिष्टावलीमात्र अवशेष रहैं उपशमनावलीका अंतसमयविषै तीनों लोभका सर्व द्रव्य उपशमरूप भया है । तहाँ विशेष जो सूक्ष्म कृष्टिकौं प्राप्त भया द्रव्य अर समय घाटि दोय आवलीमात्र नवक समयप्रबद्धनिका द्रव्य अर उच्छिष्टावलीमात्र निषेकनिका द्रव्य नाही उपशम्या है, अवशेष उपशम्या है । ऐसैं कृष्टि करण कालका अंत समयवर्ती जीवकौं चरम समयवर्ती अनिवृत्ति बादर सांपराय कहिए । या प्रकार अनिवृत्ति करणका स्वरूप कह्या ॥२९५॥

विशेष—जब प्रत्यावलिमें एक समय शेष रहता है उसी समय लोभ संज्वलनका स्पर्धकगत सभी प्रदेश पुंज तथा पूराका पूरा अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यानरूप दोनों प्रकारका लोभ उपशान्त हो जाता है । मात्र एक समय कम दो आवलि-प्रमाण नवक समयप्रबद्ध द्रव्य, उच्छिष्टावलिमात्र निषेक द्रव्य और सूक्ष्म कृष्टिगत द्रव्य उपशान्त नहीं होता । उसमेंसे सूक्ष्म कृष्टिगत द्रव्यको सूक्ष्म साम्परायमें उपशमाता है । इस प्रकार कृष्टिकरणके अन्तिम समय तक बादर साम्पराय गुणस्थान वर्तता है ।

अथ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थाने क्रियमाणकार्यविशेषप्रतिपादनार्थमाह—

से काले किट्टिस्स य पढमट्ठिदिकारवेदगो होदि ।
लोहगपढमठिदीदो अद्धं किंचूणयं गत्थ[1] ॥२९६॥

स्वे काले कृष्टेश्च प्रथमस्थितिकारवेदको भवति ।
लोभगप्रथमस्थिततः अर्धं किंचिदूनकं गत्वा ॥२९६॥

सं० टी०—अनिवृत्तिकरणकालसमाप्त्यनंतरसमये प्रथमसमयवर्तिसूक्ष्मसांपरायः अंतर्मुहूर्तमात्रस्थिति-

। । १०
स्थितसकलसूक्ष्मकृष्टिद्रव्यादस्मात् स a १२–a २ ९ अपकर्षणभागहारखंडितैकभागमात्रद्रव्यं गृहीत्वा
७ । ८ । ओ प
a

१. से काले पढमसमयसुहुमसांपराइयो जादो । तेण पढमसमयसुहुमसांपराइएण अण्णा पढमट्ठिदी कदा । जा पढमसमयलोभवेदगस्स पढमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए इमा सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदी दुभागो दोऊणाओ । वही पृ० ३१८–३२० ।

। । १०
स ३ १२ – ३ २ ? इदं पुनः पल्यासंख्यातैकभागेन खण्डयित्वा तद्बहुभागमुपरितनस्थितौ निक्षिपेत्
७ । ८ ओ प ओ
३

। । १० १० ३ । । १०
स ३ १२–३ २ ? प पुनस्तदेकभागमिमं स ३ १२ – ३ २ ? गृहीत्वा बादरलोभवेदककालात्किंचिन्न्यून-
७ । ८ ओ प ओ प ३ ७ । ८ ओ प ओ प
३ ३ ३ ३

तृतीयभागमात्री २ ? । १ – मन्तर्मुहूर्तायामां प्रथमस्थितिं कुर्वाणः प्रक्षेपयोगेत्यादिना प्रथमनिषेकादारभ्य
३

प्रतिनिषेकमसंख्यातगुणितक्रमेणोदयाद्यवस्थितिगुणश्रेण्यायामे निक्षिपति पुनः पल्यासंख्यातबहुभागमन्तर्मुहूर्ताया-मायाममुपरितनस्थितौ अद्धाणेण सव्वधणेत्यादिना विशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत् तन्न्यासोऽयं—

। १० १०
स ३ १२ – ३ २ ? १६ – २ ? – ४
१०
७ । ८ । ओ प ओ २ ? – ४ । १६ – २ ? – ४
३ ० २
०
०
०
० । १०
स ३ १२ – ३ २ ? १६
७ । ८ । ओ प ओ २ ? – ४ । १६ – २ ? – ४
३ २

। १०
स ३ १२ – ३ २ ? ६४
७ । ८ । ओ प ओ प ८५
३ ३

०
०
०

० १६
० ४

। १०
स ३ १२ – ३ २ ? । १
७ । ८ । ओ प ओ प ८५
३ ३

द्वितीयादिसमयेष्वपि सूक्ष्मसांपरायचरमसमयपर्यंतमसंख्यातगुणितकृष्टिद्रव्यमपकृष्य उक्तविधाने प्रथमस्थितौ द्वितीयस्थितौ च निक्षिपति । एवं बादरलोभप्रथमस्थितेः किंचिन्न्यूनद्वितीयार्धमात्रीं सूक्ष्मकृष्टीनां प्रथमस्थितिं
२ १ — करोतीत्यर्थः। ज्ञानावरणादिकर्मणां अपूर्वकरणप्रथमसमयारब्धा गलितावशेषा सूक्ष्मसांपराय-
३
कालाद्विशेषाधिकायामा पूर्ववदेव प्रवर्तते। तस्मिन्नेव सूक्ष्मसांपरायप्रथमसमये उदयागतं सूक्ष्मकृष्टिद्रव्यं वेदयति ॥२९६॥

सूक्ष्म-साम्परायमें किये जाने वाले कार्य विशेषका निर्देश—

स० चं०—अनिवृत्तिकरणके अनंतरि प्रथम समयवर्ती जो सूक्ष्मसांपराय है सो अंतर्मुहूर्त्त-मात्र स्थिति लिएँ समस्त सूक्ष्म कृष्टिका द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ तहां एक भाग मात्र द्रव्य ग्रहि ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ एक भागकौं सूक्ष्म लोभकी प्रथम स्थितिविषै निक्षेपण करै है। सो याका प्रमाण बादर लोभ वेदक कालतैं किछू घाटि तीसरा भागमात्र है। सो सूक्ष्म सांपरायका काल सोई सूक्ष्म कृष्टिका प्रथम स्थितिका प्रमाण जानना। सो यहु (होय) उदयादि अवस्थित गुणश्रेणि आयाम है। याके निषेकनिविषै 'प्रक्षेपयोगोद्धत-मिश्रपिंड' इत्यादि विधानतैं असंख्यातगुणा क्रम लीएँ द्रव्य दीजिए है। बहुरि अवशेष बहुभाग-मात्र द्रव्यकौं द्वितीय स्थितिविषै निक्षेपण करै है। सो यहु तिस प्रथम स्थितिके उपरिवर्ती है। याका प्रमाण अंतर्मुहूर्त्तमात्र है। यहु ही इहां उपरितन स्थिति है। याके निषेकनिविषै "अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे" इत्यादि विधानतैं चय घटता क्रम लीएँ द्रव्य दीजिए है। ऐसैं बादर लोभकी प्रथम स्थितिका द्वितीय अर्धतैं किंचित् न्यूनमात्र सूक्ष्म कृष्टिनिकी प्रथम स्थिति करै है। बहुरि ज्ञानावरण आदि कर्मनिकी अपूर्वकरणका प्रथम समयतैं लगाय गलितावशेष गुणश्रेणि आयाम पूर्ववत् प्रवर्तै है। सो ताका इहां प्रमाण किंचित् अधिक सूक्ष्मसांपराय कालमात्र है। बहुरि तिस ही सूक्ष्मसांपरायका प्रथम समयविषै सूक्ष्मकृष्टिका उदयकौं वेदै है—भोगवै है ॥२९६॥

विशेष—श्री जयधवलामें बतलाया है कि जब यह जीव सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानको प्राप्त होता है तब उसके प्रथम समयमें द्वितीय स्थितिमेंसे कृष्टिगत द्रव्यमें अपकर्षण भागहारका भाग देने पर जो लब्ध आवे उसे ग्रहणकर उस द्वारा प्रथम स्थिति करता है। इसका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है। नियम यह है कि क्रोधकषायके उदयसे उपशमश्रेणिपर चढ़कर जो जीव लोभवेदक कालको प्राप्त होता है ऐसे बादरसाम्परायिकके जो लोभवेदककालके साधिक दो बटे तीन भाग प्रमाण प्रथम स्थिति होती है उसका कुछ कम दो भाग प्रमाण सूक्ष्मसाम्परायिक जीवके प्रथम स्थिति होती है। जितनी यह प्रथम स्थिति है उतना ही सूक्ष्मसाम्परायिकका काल है। यह उदयादि अवस्थित गुणश्रेणि है। परन्तु ज्ञानावरणादि कर्मोंकी गुणश्रेणि गलितावशेष है जिसका काल सूक्ष्मसाम्परायिकके कालसे कुछ अधिक है, क्योंकि इन कर्मोंकी अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जो गुणश्रेणि रचना प्रारम्भ हुई थी, यहाँ वह इतनी ही अवशिष्ट रहती है।

अथ सूक्ष्मसांपरायप्रथमसमये निषेकगतसूक्ष्मकृष्टीनां उदयानुदयविभागप्रदर्शनार्थमिदमाह—

पढमे चरिमे समये कदकिट्टीणग्गदो दु आदीदो।
मुच्चा असंखभागं उदेदि सुहुमादिमे सव्वे[1] ॥२९७॥

---

१. पढमसमयसुहुमसांपराइयो किट्टीणमसंखेज्जे भागे वेदयदि। जाओ अपढम-अचरिमेसु समएसु

प्रथमे चरमे समये कृतकृष्टीनामग्रस्तस्तु आदितः ।
मुक्त्वा असंख्यभागं उदेति सूक्ष्मादिमे सर्वे ॥२९७॥

सं० टी०—सूक्ष्मकृष्टिकरणकालस्य प्रथमसमये कृतानां सूक्ष्मकृष्टीनां पल्यासंख्यातैकभागमात्रकृष्टयः स्वस्वरूपेण नोदयमागच्छन्ति शेषास्ते बहुभागाः द्वितीयादिद्विचरमपर्यन्तेषु समयेषु कृतकृष्टयः चरमसमयकृतकृष्टीनां पल्यासंख्यातबहुभागमात्रकृष्टयश्च स्वस्वशक्तियुक्ता एवोदयमागच्छन्ति । चरमसमयकृतकृष्टीनां पल्यासंख्यातैकभागमात्रकृष्टयस्तु स्वस्वशक्तिरूपेण नोदयमागच्छंति । या उदयमनागताः प्रथमसमयकृतकृष्टीनां चरमकृष्टेरारभ्य पल्यासंख्यातैकभागप्रमिताः कृष्टयस्ताः स्वस्वरूपं परित्यज्य स्वस्वशक्तेरनन्तगुणहीनशक्तिरूपतया परिणम्योदयमागच्छन्ति । याश्चानुदयप्राप्ताश्चरमसमयकृतकृष्टीनां जघन्यकृष्टेरारभ्य पल्यासंख्यातैकभागप्रमाणाः कृष्टयः ताश्च स्वस्वरूपं परित्यज्य स्वस्वशक्तेरनन्तगुणशक्त्यात्मतया परिणम्य मध्यमकृष्टिस्वरूपेणोदयमागच्छन्तीति तात्पर्यम् । तत्र सकलकृष्टिप्रमाणमिदं $\frac{\overset{।}{४}}{ख}$ पल्यासंख्यातैकभागेन खण्डयित्वा तद्बहुभागमात्र्यः सूक्ष्मकृष्टयः $\frac{४\;\overset{१०}{प}}{ख\;a\;\frac{प}{a}}$ स्वस्वशक्तिरूपेणैवोदयमागच्छन्ति । शेषैकभागं पुनः पल्यासंख्यातैकभागेन खंडयित्वा तदेकभागं पृथक् संस्थाप्य $\frac{\overset{।}{४}}{ख\;\frac{प}{a}\;\frac{प}{a}}$ तद्बहुभागं $\frac{\overset{।}{४}\;\overset{१०}{\overset{।}{प}}}{ख\;\frac{प}{a}\;\frac{a}{\frac{प}{a}}}$ द्वाभ्यां खण्डयित्वा एकार्धप्रमिताः $\frac{\overset{।}{४}\;प\;प\;\overset{१०}{\overset{प}{a}}\;२}{ख\;a\;a}$ चरमसमयकृतानुदयकृष्टयो भवन्ति । पुनरवशिष्टार्धे प्राक्पृथक्संस्थापितपल्यासंख्यातैकभागे प्रक्षिप्ते प्रथमसमयकृतानुदयकृष्टिप्रमाणं भवत्तत्र सर्वतः स्तोकाश्चरमसमयकृतानुदयकृष्टयः $\frac{४\;२}{ख\;\frac{प}{a}\;५}$ ततो विशेषाधिकाः प्रथमसमयकृतानुदयकृष्टयः $\frac{\overset{।}{४}\;३}{ख\;\frac{प}{a}\;५}$ ततोऽसंख्येयगुणाः प्रथमसमयोदयागतकृष्टयः $\frac{\overset{।}{४}\;\overset{१०}{प}}{ख\;\frac{प}{a}\;a}$ प्रथमचरमसमय-

अपुव्वाओ किट्टीओ कदाओ ताओ सव्वाओ पढमसमए उदिण्णाओ । जाओ पढमसमये कदाओ किट्टीओ तासिमग्गग्गादो असंखेज्जदिभागं मोत्तूण । जाओ चरिमसमए कदाओ किट्टीओ तासिं च जहण्णकिट्टिप्पहुडि असंखेज्जदिभागं मोत्तूण सेसाओ सव्वाओ किट्टीओ उदिण्णाओ । तासिं ताधे चेव सव्वासु, किट्टीसु, पदेसग्गमुवसामेदि गुणसेढीए । वही पृ० ३२०-३२३ ।

कृतानुदयकृष्टीनामधिकागमननिमित्तपल्यासंख्यातभागहारस्य लघुसंदृष्टचर्थं पञ्चाङ्कः स्थापितः। तत्र प्रथम-चरमसमयकृतानुदयकृष्टिषु विभंजनक्रमोऽर्थसंदृष्युक्तप्रकारेण कर्तव्यः ॥२९७॥

सूक्ष्मसाम्परायके प्रथम समयमें किन कृष्टियोंका उदय होता है इसका निर्देश—

स० चं०—सूक्ष्म कृष्टि करनेके कालका प्रथम समयविषै अर अंतसमयविषैं कीनी जे कृष्टि तिनकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएँ एक भागमात्र कृष्टि हैं ते अपने स्वरूप करि उदय न हो हैं। अन्य कृष्टिरूप परिणमि उदय हो है। बहुरि अवशेष पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएँ बहु भागमात्र प्रथम समय अंत समयविषै कीनी कृष्टि अर द्वितीयादि चरम समयविषै कीनी सर्व कृष्टि ते अपने स्वरूप ही करि उदय हो है। प्रथम समयविषै जे कीनी कृष्टि तिनिविषै तौ अंत कृष्टितैं लगाय पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएँ एक भागमात्र कृष्टि उदयकौं प्राप्त नाहीं ते अपने स्वरूपकौं छोड़ि अपनी अनुभाग शक्तितैं अनंतगुणी घाटि शक्तिरूप परिणमि उदय आवै हैं। बहुरि अंत समयविषै कीनी जे कृष्टि तिनविषै जघन्य कृष्टितैं लगाय पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएं एक भागमात्र कृष्टि उदय हो हैं। ते अपने स्वरूपकौं छोड़ि अपनी शक्तितैं अनंतगुणी शक्तिरूप परिणमि मध्यम कृष्टिरूप होइ उदय आवै हैं। ऐसा तात्पर्य है। तहाँ समस्त कृष्टिनिका जो प्रमाण ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएँ बहुभागमात्र कृष्टि तौ अपने स्वरूप ही करि उदय हो हैं। अवशेष एक भागकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहाँ एक भागकौं जुदा स्थापि बहुभागके दोय खंड करने। तहाँ एक खंड प्रमाण तौ अंत समयसम्बन्धी अनुदय कृष्टि है। अर एक खंडविषै जुदा राख्या एक भाग मिलाएँ जो प्रमाण होइ तितनी प्रथम समय सम्बन्धी अनुदय कृष्टि है। ऐसैं कृष्टिकरण कालका अंत समयविषै कीनी अनुदय कृष्टि स्तोक हैं, तातैं ताका प्रथम समयविषै कीनी अनुदय कृष्टि किछू अधिक हैं। तातैं सूक्ष्म सांपरायका प्रथम समयविषै उदय आई कृष्टि असंख्यातगुणी है। इहाँ ऐसा अर्थ जानना—कृष्टिकरणका प्रथम समयविषै कीनी कृष्टि ऊपरि लिखी तहाँ ऊपरि अंत कृष्टि लिखि ताके नीचैं उपांत आदि कृष्टि क्रमतैं लिखि नीचैं-नीचैं जघन्य कृष्टि लिखनी। बहुरि ताके नीचैं नीचैं द्वितीयादि समयनि-विषै कीनी कृष्टि भी याही प्रकार लिखनी। बहुरि लिखि नीचैं ही नीचैं अंत समयविषै कीनी कृष्टि लिखि तहाँ भी अंत कृष्टि ऊपरि लिखि नीचैं उपांत आदि कृष्टि लिखि नीचैं ही नीचैं जघन्य कृष्टि लिखनी। ऐसैं अंत समयविषै कीनी कृष्टिकी जघन्य कृष्टितैं लगाय प्रथम समयविषै कीनी कृष्टिकी अंत कृष्टि पर्यंत कृष्टि लिखी। तिनिविषै ऊपरि ऊपरि क्रमतैं द्रव्य तौ एक एक चय प्रमाण घटता है। अर अनुभाग अनंतगुणा है। सो सूक्ष्मसांपरायका प्रथम समयविषै ऐसैं कृष्टिरूप परमाणू थीं तिनविषै इहां जेता प्रमाण कह्या तितनी ऊपरली वा नीचली कृष्टिनिके परमाणूनिकौं बीचिकी कृष्टिरूप परिणमावै है। अंक संदृष्टिकरि जैसैं सर्व कृष्टिनिका प्रमाण एक हजार ताकौं पल्यका असंख्यातवाँ भागका प्रमाण पाँच ताका भाग दीएं बहुभागमात्र आठसै बीचिकी कृष्टि हैं ते तौ अपने रूप ही उदय हो हैं। एक भाग दोयसै ताकौं पाँचका भाग दीएं चालीस जुदा स्थापि अवशेष एकसौ साठिके दोय भाग कीएँ एक भागमात्र असी तौ अंत समयविषै कीनी कृष्टिकी जघन्य कृष्टितैं लगाय जे नीचेकी कृष्टि हैं ते अनुदयरूप हैं। इनके परमाणू अनुभाग बंधनेतैं बीचकी कृष्टिरूप परिणमि उदय हो हैं। बहुरि एक भागविषै जुदा राख्या चालीस मिलाएँ एकसौ बीस सो इतनी प्रथम समयविषै कीनी कृष्टिकी अंतकृष्टितैं लगाय उपरि

कृष्टि हैं ते अनुदय रूप हैं। इनके परमाणू अनुभाग घटनेतैं बीचिकी कृष्टिरूप परिणमि उदय हो हैं। ऐसैं ही यथार्थ कथन समझना ॥२९७॥

विशेष--सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें कहाँ किन कृष्टियोंका वेदन होता है इसे स्पष्ट करते हुए श्री जयधवलामें बतलाया है—

(१) सूक्ष्मसाम्परायके प्रथम समयमें उपशामक जीव नीचे और ऊपरकी असंख्यातवें भाग प्रमाण कृष्टियोंको छोड़कर शेष सब कृष्टियोंका प्रथम समयमें वेदन करता है। सब कृष्टियोंमेंसे प्रदेशपुंजके असंख्यातवें भागका अपकर्षण कर वेदन करता हुआ मध्यम कृष्टिरूपसे वेदन करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इसी विषयको स्पष्ट करते हुए आगे बतलाया है—

(२) किट्टीकरणके कालके भीतर प्रथम समय और अन्तिम समयको छोड़कर शेष समयोंमें जिन कृष्टियोंको किया है वे सभी सूक्ष्मसाम्परायके प्रथम समयमें उदीर्ण हो जाती हैं यह सब सदृशधनको लक्ष्यमें रखकर कहा है, अन्यथा उन सभीका प्रथम समयमें पूरी तरहसे उदीर्ण होनेका प्रसंग आता है, परन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि उनमें अपकर्षण भागहारका भाग देने पर जो एक भाग प्राप्त होता है उतने ही सदृश धनवाले परमाणुपुंजका अपकर्षण होकर उदय देखा जाता है।

(३) तथा कृष्टिकरणके प्रथम समयमें जो कृष्टियाँ की गईं उनमेंसे उपरिम असंख्यातवें भाग प्रमाण कृष्टियाँ सूक्ष्मसाम्परायके प्रथम समयमें उदीर्ण हो जाती हैं। किन्तु यह कथन सदृश धनको लक्ष्यमें रखकर किया है, क्योंकि एक समयमें उनके सब कृष्टियोंकी उदीरणा होना सम्भव नहीं है। इसलिये प्रथम समयमें जितनी कृष्टियाँ की गईं उनमें पल्योपमके असंख्यातवें भागका भाग देकर जो एक भाग लब्ध आवे उतनी कृष्टियाँ सूक्ष्मसाम्परायके प्रथम समयमें उदीर्ण होती हैं।

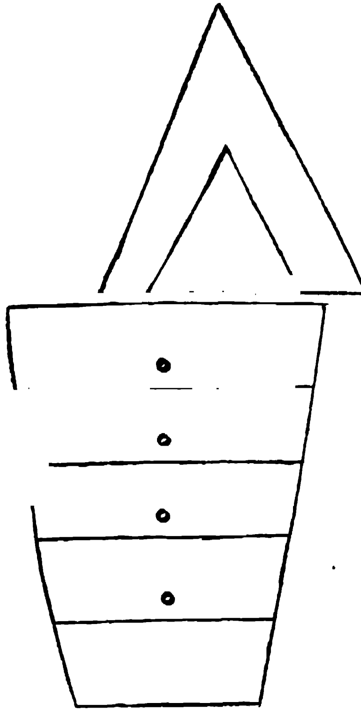
(४) तथा अन्तिम कृष्टिकरणके अन्तिम समयमें जो कृष्टियाँ की गईं उनमें पल्योपमके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे तत्प्रमाण जघन्य कृष्टिसे लेकर अधस्तन असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियोंको छोड़कर शेष सभी कृष्टियाँ सूक्ष्मसाम्परायके प्रथम समयमें उदीर्ण होती हैं। इससे सिद्ध हुआ कि सूक्ष्मसाम्पराय संयत जीव अपने प्रथम समयमें सभी कृष्टियोंके असंख्यात बहुभागप्रमाण कृष्टियोंका वेदन करता है। इतनी विशेषता है कि कृष्टि-करणके प्रथम समयमें जो कृष्टियाँ की जाती हैं उनमेंसे नहीं वेदे जानेवाले उपरिम असंख्यातवें भागके भीतरकी कृष्टियाँ अपकर्षण द्वारा अनन्तगुणी हीन होकर मध्यम कृष्टिरूपसे वेदी जाती हैं। तथा कृष्टिकरणके अन्तिम समयमें रची गई कृष्टियोंमेंसे जघन्य कृष्टिसे लेकर नहीं वेदे जाने-वाले अधस्तन असंख्यातवें भागके भीतरकी कृष्टियाँ अनन्तगुणी हीन होकर मध्यम कृष्टिरूपसे वेदी जाती हैं।

(५) सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके दूसरे समयमें जो कृष्टियाँ प्रथम समयमें उदीर्ण हुईं उनके सबसे उपरिम भागमें स्थित कृष्टिसे लेकर नीचे असंख्यातवें भागको छोड़कर अधस्तन बहुभाग प्रमाण कृष्टियोंका वेदन करता है। तथा नीचे प्रथम समयमें अनुदीर्ण हुई कृष्टियोंके अपूर्व असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियोंका वेदन करता है। प्रथम समयमें जितनी कृष्टियोंका वेदन होता है उनसे दूसरे समयमें वेदी जानेवाली कृष्टियाँ असंख्यातवें भागप्रमाण हीन हैं। इसी प्रकार तीसरे समयसे लेकर सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समय तक जानना चाहिये। हिन्दी टीकामें इसी तथ्यको अंक संदृष्टिद्वारा स्पष्ट किया ही है।

अथ सूक्ष्मसांपरायस्य द्वितीयादिसमयेषु उदयानुदयकृष्टिविभागप्रदर्शनार्थमाह—

विदियादिसु समयेसु हि छंडदि पल्लाअसंखभागं तु ।
आफुंददि हु अपुव्वा हेट्ठा तु असंखभागं तु[1] ॥२९८॥

द्वितीयादिषु समयेषु हि त्यजति पल्यासंख्यभागं तु ।
आस्पृशति हि अपूर्वा अधस्तनास्तु असंख्यभागं तु ॥२९८॥



सं० टी०—सूक्ष्मसांपरायस्य द्वितीयसमये प्रथमसमयोदयकृष्टीनामग्र-

। अनुदय ४ २ कृष्टि ख प ५ a	। १ ० उदय ४ प कृष्टि ख प a a
। अनुदय ४ ३ कृष्टि ख प ५ a	। १ ० उदय ४ प कृष्टि ख प a a

कृष्टेरारभ्य प्रथमसमयोपरितनानुदयकृष्टिपल्यासंख्यातैकभागमात्रीः कृष्टीः ४ ३ (। / ख प ५ प / a a) मुञ्चति, तावत्यः कृष्टयो नोदयमागच्छन्तीत्यर्थः । प्रतिसमयमुदयकृष्टीनामनन्तगुणहीनशक्तिकत्वान्यथानुपपत्तेः । पुनः प्रतिसमयाधस्त-

---

१. विदियसमए उदिण्णाणं किट्टीणमग्गग्गादो असंखेज्जदिभागं मुंचदि, हेट्ठदो अपुव्वमसंखेज्जदि-पडिभागमाफुंददि । एवं जाव चरिमसमयसुहुमसांपराइयो त्ति । वही पृ० ३२४ ।

।

नानुदयकृष्टिपल्यासंख्यातैकभागमात्रापूर्वकृष्टीः ४ २ आस्पृशति अवष्टभ्य गृह्णातीत्यर्थः, तावन्मात्र्यः

ख प ५ प

a a

कृष्टयः उदयमागच्छन्तीत्युक्तं भवति । एवं द्वितीयसमये उदयकृष्टयः प्रथमसमयोदयकृष्टिभ्यो विशेषहीनाः

। ।

अवष्टभ्य गृहीताः कृष्टीरेताः—४ २ उक्तकृष्टिष्वेतासु ४ ३ विशोध्यावशिष्टेन प्रथमसमयानुदय-

ख प ५ प ख प ५ प

a a a a

।

कृष्टिपल्यासंख्यातैकभागमात्रेण ४ १ विशेषेण हीना द्वितीयसमयोदयकृष्टय इत्यर्थः । एवं तृतीयादि-

ख प ५ प

a a

समयेषु सूक्ष्मसांपरायचरमसमयपर्यन्तेषु पूर्वपूर्वहानिविशेषपल्यासंख्यातैकभागमात्रविशेषेण हीनाः कृष्टयः प्रतिसमयमुदयमागच्छन्तीति ज्ञातव्यम् ॥२९८॥

द्वितीयादि समयोंमें कृष्टि सम्बन्धी निर्देश—

स० चं०—सूक्ष्मसांपरायका द्वितीय समयविषै जे प्रथम समयविषै उदयरूप कृष्टि हैं तिनकी अंत कृष्टितैं लगाय कृष्टिनिकौं छोड़े है । उदयकौं प्राप्त न करै है । तिनका प्रमाण प्रथम समयविषै हीन शक्तिरूप होने योग्य जे ऊपरिकी कृष्टि अनुदयरूप कहीं थी तिनके प्रमाणकौं पल्यका असंख्यातका भाग दीएँ एक भागमात्र जानना । इतनी नवीन ऊपरिकी कृष्टि इहाँ उदय रूप न हो हैं । ए कृष्टि अनंतगुणा घटता अनुभागरूप परिणमि अन्य नीचली कृष्टिरूप परिणमि उदय आवै हैं । और प्रकार समय समय उदय कृष्टिनिका अनन्तगुणी शक्तिनिका घटना न बनै है । बहुरि प्रथम समयविषै अनंतगुणां शक्ति रूप परिणमने योग्य जे अधस्तन अनुदयरूप कृष्टि हैं तिनकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएँ तहाँ एक भाग प्रमाण नीचैंकी नवीन कृष्टि जे प्रथम समयविषै उदय न थीं ते उदयरूप हो हैं । ऐसैं होतें प्रथम समयविषै उदयरूप कृष्टिनिका प्रमाणतैं द्वितीय समयविषै उदयरूप कृष्टिनिका प्रमाण किछू विशेषकरि घटता जानना । इहाँ नवीन उदयरूप करी कृष्टिनिका प्रमाणकौं नवीन अनुदयरूप करी कृष्टिनिका प्रमाणविषै घटाएँ अवशेष प्रमाण प्रथम समयविषै अनुकृष्टिकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएँ एक भागमात्र हैं । सो इतना प्रथम समयकी उदय कृष्टिका प्रमाणतैं द्वितीय समयकी उदय कृष्टिका प्रमाण घटता जानना । इहाँ ऐसा अर्थ जानना—

इस सूक्ष्मसांपरायका द्वितीय समयविषै जे प्रथम समयविषै अनुदयरूप कृष्टि कहीं थीं तिनविषै अंत कृष्टितैं लगाय इहाँ जेता प्रमाण कह्या तितनी कृष्टि उदयरूप न हो हैं । ते अनंत गुणी घटतीं जे मध्यम कृष्टि तिनरूप परिणमि उदय हो हैं । बहुरि तिस प्रथम समयविषै जे नीचेकी अनुदय कृष्टि कहीं थीं तिनविषै अंत कृष्टितैं लगाय इहाँ जेता प्रमाण कह्या तितनी कृष्टि उदय रूप हो हैं । अंकसंदृष्टिकरि जैसैं प्रथम समयविषैं उदय कृष्टि आठसे थी तिनविषै प्रथम समयविषैं

ऊपरिकी अनुदय कृष्टिका प्रमाण एकसौ बीस था ताकौं पाँचका भाग दीएँ चौईस पाय सा अवशेष रही कृष्टिकी अंत कृष्टितैं लगाय इतनी कृष्टि तौ इहां नवीन उदयरूप न हो हैं। अर तिस प्रथम समयविषै नीचेको असी कृष्टि उदय रूप न थीं तिनकौं पाँचका भाग दीएं सोलह पाए सो इतनी नीचेकी अनुदय कृष्टि की अंत कृष्टितैं लगाय इहाँ उदय रूप भईं ऐसैं चौईसमें सोलह घटाएँ आठ रहे सो इतनी कृष्टि प्रथम समयतैं दूसरा समयविषैं घाटि उदय हो हैं तातैं दूसरे समय सातसै बाणवैं कृष्टिका उदय जानना। ऐसैं ही यथार्थ कथन समझना। इहाँ बहुत अनुभाग युक्त जे ऊपरिकी कृष्टि तिनिका अभाव करनेतैं अर स्तोक अनुभाग युक्त जे नीचेकी कृष्टि तिनका सद्भाव करनेतैं प्रथम समयविषै उदय आया अनुभागतैं द्वितीय समयविषै उदय आया अनुभाग का घटना हो है ऐसा जानना। ऐसैं ही सूक्ष्म सांपरायका तृतीय आदि अंतसमय पर्यंत विशेष घटता क्रम लीएँ कृष्टिनिका उदय क्रमतैं जानना। विशेषका प्रमाण जेतो पूर्व समयविषै घटी थी ताकौं पल्यका असंख्यातवाँ भागका भाग दीएँ एक भागमात्र जानना ॥२९८॥

अथ सूक्ष्मकृष्टिद्रव्योपशमनविधानप्ररूपणार्थमाह—

किट्टिं सुहुमादीदो चरिमो त्ति असंखगुणिदसेढीए।
उवसमदि हु तच्चरिमे अवरट्ठिदिबंधणं छण्हं[1] ॥२९९॥

कृष्टि सूक्ष्मादितः चरम इति असंख्यगुणितश्रेण्याः।
उपशमयति हि तच्चरमे अवरस्थितिबंधनं षण्णाम् ॥२९९॥

सं० टी०—सूक्ष्मसांपरायस्य प्रथमसमये सकलसूक्ष्मकृष्टिद्रव्यस्य पल्यासंख्यातैकभागमात्रं—

```
  ।    ।  १०                                                              ।    ।   १०
स ३ १२-३ २ ९  उपशमयति। द्वितीयसमये ततोऽसंख्येयगुणं द्रव्यमुपशमयति स ३ १२ - ३ २ ९ ३
७।८।ओ प प                                                          ७।८ ओ    प प
    ३ ३                                                                      ३ ३
```

```
                                                                      ।    १०  १०
एवं तृतीयादिसमयेष्वसंख्यातगुणितक्रमेणोपशमय्य चरमसमये चरमफालिद्रव्यं स ३ १२ ३ २ ९ प उप-
                                                               ७।८।ओ  प प    ३
                                                                        ३ ३
```

शमयति। ये च समयोनद्व्यावलिमात्रसंज्वलनलोभनवकबंधसमयप्रबद्धास्ते च सूक्ष्मसांपरायप्रथमसमयादारभ्य समयं समयं प्रत्यसंख्यातगुणितक्रमेणोपशाम्यंते। सूक्ष्मसांपरायचरमसमये षण्णामायुर्मोहवर्ज्यानां कर्मणां जघन्यस्थितिबंधो भवति ॥२९९॥

कृष्टियोंकी उपशमविधिका निर्देश—

स० चं०—सूक्ष्मसांपरायका प्रथम समयविषै समस्त सूक्ष्म कृष्टिनिका द्रव्यकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएं एक भागमात्र जो द्रव्य ताकौं उपशमावै है। दूसरे समय तातैं

---

१. ताधे चेव सव्वासु किट्टीसु पदेसग्गमुवसामेदि गुणसेढीए। जे दोआवलियबंधा दुसमयूणा ते वि उवसामेदि। जा उदयावलिया छंडिदा सा त्थिवुक्कसंकमेण किट्टीसु विपच्चिहिदि। वही पृ० ३२३–३२४।

असंख्यातगुणा द्रव्यकौं उपशमावै है। ऐसैं तृतीयादि अंत पर्यंत समयनिविषैं असंख्यातगुणा क्रम लीएँ द्रव्यकौं उपशमावै है। तहाँ अंत समयविषै एक घाटि सूक्ष्मसांपराय कालका समय प्रमाण मात्रवार असंख्यातका गुणकार कीएँ जो अंत फालिका द्रव्य भया ताकौं उपशमावै है। बहुरि समय घाटि दोय आवलीमात्र संज्वलन लोभके नवक समयप्रबद्ध न उपशमे थे तिनिका द्रव्यकौं सूक्ष्मसांपरायका प्रथम समयतैं लगाय समय समय प्रति असंख्यातगुणा क्रम लीएँ उपशमावै है। बहुरि सूक्ष्मसांपरायका अंत समयविषै आयु मोह विना छह कर्मनिका जघन्य स्थितिबंध हो है ॥२९९॥

अथ तत्स्थितिबंधविशेषनिर्णयार्थमाह—

अंतोमुहुत्तमेत्तं घादितियाणं जहण्णठिदिबंधो ।
णामदुग वेयणीये सोलस चउवीस य मुहुत्ता[1] ॥३००॥

अन्तमुहूर्तमात्रं घातित्रयाणां जघन्यस्थितिबंधः ।
नामद्विकवेदनीये षोडश चतुर्विंशश्च मुहूर्ताः ॥३००॥

सं० टी०—सूक्ष्मसांपरायचरमसमये त्रयाणां घातिकर्मणां ज्ञानदर्शनावरणांतरायाणां जघन्यस्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तमात्रः, नामगोत्रयोः षोडशमुहूर्तप्रमितः, सातवेदनीयस्य चतुर्विंशतिमुहूर्तमात्रः स्थितिबन्धो भवति । ये पूर्वमुच्छिष्टावलिमात्रनिषेकाः बादरसंज्वलनलोभस्य स्पर्धकगतास्त्यक्तास्ते च पूर्वोक्तस्थितोक्तसंक्रमविधानेन कृष्टिरूपतया परिणम्योदयमागच्छन्ति ॥३००॥

सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयमें कर्मोंके स्थितिबन्धका निर्देश—

स० चं०—तहां तीनि घातियानिका अंतर्मुहूर्त, नाम गोत्रका सोलह मुहूर्त, साता वेदनीयका चौबीस मुहूर्तमात्र जघन्य स्थितिबंध हो है। इहां उपशम श्रेणीकी अपेक्षा जघन्य स्थितिबंध कह्या है। बहुरि जे पूर्वै बादरलोभके उच्छिष्टावलीमात्र निषेक रहे थे ते पूर्वोक्त थिउक्क संक्रम विधान करि कृष्टिरूप परिणमि उदय आवै हैं ॥३००॥

अथ पूर्वोक्तार्थोपसंहारं गाथाद्वयेनाह—

पुरिसादीणुच्छिट्ठं समऊणावलिगदं तु पच्चिहिदि ।
सोदयपढमट्ठिदिणा कोहादीकिट्टियंताणं[2] ॥३०१॥

पुरुषादीनामुच्छिष्टं समयोनावलिगतं तु पक्ष्यति ।
स्वोदयप्रथमस्थितिना क्रोधादिकृष्टयंतानाम् ॥३०१॥

सं० टी०—पुंसवेदादीनां समयोनावलिमात्रनिषेकद्रव्यमुच्छिष्टावलिसंज्ञं क्रोधादिसूक्ष्मकृष्टिपर्यन्तानां स्वोदयप्रथमस्थितिनिषेकैः सह तद्रूपेण परिणम्य पक्ष्यति—उदेष्यतीत्यर्थः ॥३०१॥

१. चरिमसमयसुहुमसांपराइस्स णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणमंतोमुहुत्तिओ ट्ठिदिबंधो। णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो सोलस मुहुत्ता। वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो चउवीस मुहुत्ता। वही पृ० ३२५-३२६।

२. जा उदयावलिया छंडिदा सा त्थिवुक्कसंकमेण किट्टीसु विपच्चिहिदि। वही पृ० ३२४।

आगे पूर्वोक्त अर्थका उपसंहार करैं हैं—

स० चं०—पुरुष वेदादिकनिका समय घाटि आवलीमात्र निषेकनिका द्रव्य उच्छिष्टावलीरूप है सो क्रोधादि सूक्ष्म कृष्टि पर्यंतनिके जे उदयरूप निषेकतैं लगाय प्रथम स्थितिके निषेकनिकी साथि तद्रूप परिणमिकरि पक्ष्यति कहिए उदयरूप होसी। पुरुषवेदके उच्छिष्टमात्र निषेक रहे ते तौ संज्वलन क्रोधकी प्रथम स्थितिविषै तद्रूप परिणमि उदय हो हैं। तैसैं ही संज्वलन क्रोधका संज्वलन मानविषै इत्यादि क्रमतैं बादर लोभका उच्छिष्टावलीके निषेक सूक्ष्म कृष्टिविषै तद्रूप परिणमि उदय हो हैं। सो पूर्वें वर्णन कीया ही है ॥३०१॥

विशेष—पुरुषवेद, क्रोध, मान, माया और लोभ इनका जो उस-उस स्थानमें एक समय कम दो आवलिप्रमाण नवकद्रव्य शेष रहता आया है सो वह क्रमसे क्रोध, मान, माया, लोभ और कृष्टिकी प्रथम स्थितिके कालमें समय-समय असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा उपशमित होता है। उदाहरणार्थ—पुरुषवेदका एक समय कम दो आवलिप्रमाण नवक समयप्रबद्ध क्रोधकी प्रथम स्थितिके कालमें समय-समयमें उपशमको प्राप्त होता है। ऐसेही आगे भी जानना चाहिये।

पुरिसादो लोहगयं णवकं समऊण दोण्णि आवलियं।
उवसमदि हु कोहादीकिट्टीअंतेसु ठाणेसु[1] ॥३०२॥

पुरुषात् लोभगतं नवकं समयोने द्वे आवलिके।
उपशाम्यति हि क्रोधादिकृष्टच ंतेषु स्थानेषु ॥३०२॥

सं० टी०—पुंवेदादीनां लोभपर्यन्तानां समयोनद्वयावलिमात्रनवकबन्धसमयप्रबद्धद्रव्यं क्रोधादिकृष्टिपर्यन्तोपशमनकालेषु प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेणोपशमयति। सूक्ष्मकृष्टिप्रथमस्थितौ आवलिद्वये अवशिष्टे आगालप्रत्यागालव्युच्छेदो भवति। समयाधिकावलिमात्रेऽवशिष्टे पूर्ववज्जघन्योदीरणा भवति उच्छिष्टावलिमात्रनिषेकाश्च स्वस्थाने एव कर्मरूपतया परिणम्य गलन्ति ॥३०२॥

स० चं०—पुरुषवेद आदि लोभ पर्यंतनिका समय घाटि दोय आवलीमात्र नवक समयप्रबद्धनिका द्रव्य है सो क्रोधादिक कृष्टिपर्यंतके प्रथम स्थितिके कालनिविषै समय समय असंख्यातगुणा क्रम लीएँ उपशमै है। सो भी पुरुषवेदका नवक समयप्रबद्ध संज्वलन क्रोधकी प्रथम स्थितिका कालविषैं उपशमै है इत्यादि पूर्वें वर्णन कीया ही है। बहुरि सूक्ष्म कृष्टिका प्रथम स्थिति विषै दोय आवली अवशेष रहै ताकी आगाल प्रत्यागाल क्रियाका व्युच्छेद हो है। अर समय अधिक आवलीमात्र अवशेष रहैं पूर्वोक्तवत् जघन्य उदीरणा हो है। अर उच्छिष्टावलीमात्र निषेक अवशेष रहे ते अपने रूप ही विषै उदयरूप परिणमि निर्जरै हैं ऐसैं सूक्ष्मसाम्परायका अंत समयविषैं सर्व कृष्टि द्रव्यकौं उपशमाय अनंतर समयविषै उपशांतकषाय हो है ॥३०२॥

एवं सूक्ष्मसांपरायचरमसमये सर्वकृष्टिद्रव्यमुपशमय्य तदनन्तरसमये उपशांतकषायो भवतीत्याह—

उवसंतपढमसमये उवसंतं सयलमोहणीयं तु।
मोहस्सुदयाभावा सव्वत्थ समाणपरिणामो[2] ॥३०३॥

---

१. जे दोआवलियबंधा दुसमयूणा ते वि उवसामेदि। वही पृ० ३२४।

२. से काले सव्वं मोहणीयमुवसंतं। तदो पाए अंतोमुहुत्तमुवसंतकसायवीदरागो। सव्विस्से उवसंतद्धाए अवट्ठिदपरिणामो। वही पृ० ३२६–३२७।

उपशांतप्रथमसमये उपशांतं सकलमोहनीयं तु ।
मोहस्योदयाभावात् सर्वत्र समानपरिणामः ।।३०३।।

सं० टी०—उपशान्तकषायस्य प्रथमसमये सकलं चारित्रमोहनीयं बन्धोदयसंक्रमोदीरणोत्कर्षणापकर्षणादिसर्वेषां करणानामनुद्भूतिवशेन सर्वात्मनोपशमितं, उदयादिषु निक्षेप्तुमशक्यमित्यर्थः । तस्योपशान्तकषायस्य प्रथमसमयादारभ्य स्वचरमसमयपर्यन्ते अन्तर्मुहूर्तमात्रे गुणस्थानकाले समान एव प्रतिसमयमवस्थितः विशुद्धिपरिणामो भवति । विशुद्धिविकल्पकरणस्य कषायोदयस्य तस्मिन्नत्यन्ताभावात् तत एव प्रतिसमयमेकादृशविशुद्धिरूपं यथाख्यातचारित्रमुपशान्तकषाये भवतीति प्रवचने प्रतिपादितम् ।।३०३।।

स० चं०—उपशांतकषायका प्रथम समयविषैं सकल चारित्र मोहनीय कर्म है सो बंध उदय संक्रम उदीरणा उत्कर्षण अपकर्षण आदि सर्व करणनिका न उपजनेतैं सर्वप्रकार उपशम्या । उदयादिविषै निक्षेपण करनेकौं समर्थरूप न रह्या, तिस उपशांत कषायका प्रथम समयतैं अंत समय पर्यंत अंतर्मुहूर्तमात्र अपने गुणस्थानका कालविषैं समानरूप विशुद्धि परिणाम है जातैं इहाँ हीनाधिक विशुद्धताकौं कारण कषायनिके उदयका अभाव है । ऐसा यथाख्यात चारित्र है ।।३०३।।

अथोपशान्तकषायकालप्रमाणप्रदर्शनार्थमाह—

अंतोमुहुत्तमेत्तं उवसंतकसायवीयरायद्धा ।
[1]गुणसेढीदीहत्तं तस्सद्धा संखभागो दु ।।३०४।।

अन्तर्मुहूर्तमात्रं उपशांतकषायवीतरागाद्धा ।
गुणश्रेणीदीर्घत्वं तस्याद्धा संख्यभागस्तु ।।३०४।।

सं० टी०- उपशान्ता अनुद्भूताः कषायाः यस्यासौ उपशान्तकषायः । वीतोऽपगतो रागः संक्लेशपरिणामो यस्मादसौ वीतरागः, उपशान्तकषायश्चासौ वीतरागश्च उपशान्तकषायवीतरागस्तस्याद्धा गुणस्थानकालोऽन्तर्मुहूर्तमात्र एव ततः परं कषायाणां नियमेनोदयासम्भवात् । द्रव्यकर्मोदये सति संक्लेशपरिणामलक्षणभावकर्मणः सम्भवेन तयोः कार्यकारणभावप्रसिद्धेः सोऽयमुपशान्तकषायः प्रथमसमये आयुर्मोहनीयवर्जितानां ज्ञानावरणादिकर्मणां द्रव्यं सूक्ष्मसांपरायचरमसमयापकृष्टगुणश्रेणिद्रव्यादसंख्यातगुणितमपकृष्य स्वगुणस्थानकालस्य संख्यातैकभागमात्रे आयामे उदयावलिप्रथमसमयादारभ्य प्रक्षेपयोगेत्यादिगुणश्रेणिविधानेन निक्षिपति ।।३०४।।

उपशान्तकषाय गुणस्थानका काल—

स० चं०—उपशांत कषाय वीतराग ग्यारहवां गुणस्थानका काल अंतर्मुहूर्तमात्र है तातैं परैं नियमकरि द्रव्यकर्मके उदयके निमित्ततैं संक्लेशरूप भावकर्म प्रकट हो है । बहुरि इस कालके संख्यातवें भागमात्र इहाँ उदयादि अवस्थिति गुणश्रेणि आयाम है । इसविषै सूक्ष्मसाम्परायका अंत समयविषैं जेता द्रव्य अपकर्षण कीया तातैं असंख्यातगुणा आयु मोह विना अन्य कर्मनिका द्रव्यकौं अपकर्षण करि 'प्रक्षेपयोगोद्धृतमिश्रपिंड" इत्यादि विधानतैं असंख्यातगुणा क्रम लीएँ निक्षेपण करे है ।।३०४।।

विशेष—ग्यारहवें गुणस्थानका नाम उपशान्तकषाय वीतराग है । जिसकी कषाय उपशान्त

---

१. गुणसेढिणिक्खेवो उवसंतद्धाए संखेज्जदिभागो । वही पृ० ३२७ ।

हो गई है अर्थात् उद्रेकको नहीं प्राप्त होती है उसे उपशान्तकषाय कहते हैं तथा जिसके कषायके निमित्तसे शुभाशुभ परिणामका अभाव हो गया है उसे वीतराग कहते हैं। इस प्रकार जो उपशान्तकषाय पूर्वक वीतराग अवस्थाको प्राप्त हुआ है, उसे उपशान्तकषाय वीतराग गुणस्थानवाला कहते हैं। यहाँ ज्ञानावरणादि तीन घाति कर्मोंका उदय रहने पर भी कषायके निमित्त से होनेवाले परिणामका सर्वथा अभाव है यह इसका तात्पर्य है। जिस जलमें कतकफल डालनेपर जल बिलकुल निर्मल हो जाता है उसमें कर्दम सर्वथा उपशान्त रहता है ऐसा यह वीतराग परिणाम है, क्योंकि कर्मबन्धका हेतुभूत शुभाशुभ परिणामका यहाँ अभाव ही रहता है। ऐसा यह उपशान्तकषाय वीतराग गुणस्थान है। इसका काल अन्तर्मुहूर्त है। इसमें जो गुणश्रेणि रचना होती है वह उपशान्तकषाय गुणस्थानके कालके संख्यातवें भागप्रमाण कालवाली होती है। उससे अपूर्वकरणमें की गई गुणश्रेणिका शीर्ष संख्यातगुणा होता है। सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयमें गुणश्रेणिको जितना द्रव्य प्राप्त होता है उससे इसके प्रथम समयमें असंख्यातगुणा द्रव्य प्राप्त होता है। आयुकर्ममें तो गुणश्रेणि रचना होती ही नहीं। मोहनीय कर्मका उपशम हो जानेसे यहाँ मोहनीय कर्मकी गुणश्रेणि रचनाका भी सर्वथा अभाव है। मात्र ज्ञानावरणादि कर्मोंकी ही गुणश्रेणि रचना होती रहती है। प्रकृतमें उक्त गाथाका यह आशय है।

अमुमेवार्थमभिव्यक्तुमाह—

उदयादिअवट्ठिदगा गुणसेढी दव्वमवि अवट्ठिदगं।
पढमगुणसेढिसीसे उदये जेट्ठं पदेसुदयं ॥३०५॥

उदयाद्यवस्थितका गुणश्रेणी द्रव्यमपि अवस्थितकं।
प्रथमगुणश्रेणिशीर्षे उदये ज्येष्ठं प्रदेशोदयम् ॥३०५॥

सं० टी०—उपशान्तकषायेण प्रथमसमये उदयावलिप्रथमसमयादारभ्य यावन्मात्रायामा गुणश्रेणी विहिता द्वितीयादिसमयेष्वपि तावन्मात्रायामा एव गुणश्रेणिर्विधीयते। उदयावल्यामेकस्मिन् समये गलिते उपरितनस्थितावेकस्मिन् समये गुणश्रेणिद्रव्यनिक्षेपप्रतिज्ञानात्। अत एवोदयाद्यवस्थितगुणश्रेणिः प्रतिसमयं प्रवर्तत इत्युक्तम्। उपशान्तकषायेण प्रथमसमये ज्ञानावरणादिकर्मद्रव्यं यावन्मात्रमपकृष्य गुणश्रेण्यायामे निक्षिप्तं तावन्मात्रमेव प्रतिसमयं द्रव्यमपकृष्य निक्षिपति नोनाधिकं प्रतिसमयमवस्थितविशुद्धिपरिणामनिबन्धनस्य द्रव्यापकर्षणस्य प्रतिसमयं हानिवृद्ध्यभावात्। अत एव द्रव्यमप्यवस्थितमित्युक्तम्। यदा उपशान्तकषायेण प्रथमसमयकृतगुणश्रेणिशीर्षसमयः उदयमागच्छति तदा तस्मिन् समये उत्कृष्टप्रदेशोदयो भवति। तद्यथा—

प्रथमसमयापकृष्टगुणश्रेणिद्रव्यस्य चरमनिषेकः स ∂ १२ – ६४ / ७। ओ प ८५ / ∂ द्वितीयसमयाकृष्टद्रव्यस्य द्विचरमनिषेकः—स ∂ १२ – १६ / ७ ओ प ८५ / ∂ एवं तृतीयसमयादिसाम्प्रतिकगुणश्रेण्यायामचरमसमयपर्यन्तापकृष्टगुणश्रेणिद्रव्याणां

१. सव्विसे उवसंतद्धाए गुणसेढिणिक्खेवेण पदेसग्गेण वि अवट्ठिदा। पढमे गुणसेढिसीसये उदिण्णं उक्कस्सओ पदेसुदओ। वही पृ० ३२८।

त्रिचरमादिप्रथमनिषेकपर्यन्ताश्च सर्वे निषेकाः साम्प्रतिकगुणश्रेण्यायामसमयप्रतिमिताः पुञ्जीकृताः एकसमयाप-

कृष्टगुणश्रेणिद्रव्यमात्रं द्रव्यं स a १२ − एतच्च तत्कालावस्थितिसत्त्वगोपुच्छद्रव्येण स a १२ − १८ १६−२७
७ ओ प a ७ १ । ओ १२ । १६ । ४

अनेन साधिकमुदेतीति ।

ननु प्रथमसमयकृतगुणश्रेणिशीर्षस्य उपरितनसमयेष्वपि तत्र तत्रोदयमानं द्रव्यं एकसमयापकृष्टद्रव्यमात्रमेव सम्भवति, ततः कारणात्कथं प्रथमसमयकृतगुणश्रेणिशीर्षसमये एवोत्कृष्टप्रदेशोदयः सम्भवतीति नाशङ्कितव्यं, उपरितनसमयेषूदयमागतेष्वेकसमयापकृष्टद्रव्यमात्रस्य समानत्वेऽपि प्रथमसमयकृष्टिद्रव्यमात्रस्य समानत्वेऽपि प्रथमसमयकृतगुणश्रेणीशीर्षसमयसत्त्वगोपुच्छद्रव्यात् उत्तरोत्तरसमयसत्त्वगोपुच्छद्रव्याणामेकैकचयहीनत्वेन तत्र तत्रोदयद्रव्यस्य किञ्चिन्न्यूनत्वा ० ० ० दथापूर्वकरणप्रथमादिसमयकृतगलितावशेषगुणश्रेणीशीर्षसमये साम्प्रतिकगुणश्रेण्यायामाभ्यन्तरवर्तिन्युदयागतें तदा बहुभिः प्राक्तनगुणश्रेणीनिषेकैः तात्कालिकसत्त्वगोपुच्छद्रव्येण चाभ्यधिकं बहुतरद्रव्यमुदयमागमिष्यतीत्यपि न मन्तव्यं सूक्ष्मसाम्परायचरमसमयपर्यन्तनिक्षिप्तप्राक्तनगुणश्रेणिद्रव्यात्सर्वस्मादपि उपशान्तकषायविशुद्धिमाहात्म्येन साम्प्रतापकृष्टगुणश्रेणिद्रव्यजघन्यनिषेकस्याप्यसंख्येयगुणत्वसम्भवात् । अतः कारणादधस्तनोपरितनसमयोदयनिषेकेभ्यः प्रथमसमयकृतगुणश्रेणीशीर्षसमयोदयनिषेकद्रव्यं बहुतरमिति सूक्तं ॥३०५॥

उक्त अर्थका खुलासा—

स० चं०—उपशांतकषायका प्रथम समयविषै उदयावलीका प्रथम समयतैं लगाय गुणश्रेणि आयाम जेता प्रमाण लीएँ आरम्भ कीया तितना प्रमाण लीएँ ही द्वितीयादि समयनिविषैं भी गुणश्रेणि आयाम है। जातैं उदयावलीविषै एक समय व्यतीत होतैं उपरितन स्थितिका एक समय गुणश्रेणि आयामविषै मिलै है। याहीतैं उदयादि अवस्थिति गुणश्रेणि आयाम है। बहुरि उपशांत कषायका प्रथम समयविषै जेता द्रव्य अपकर्षणकरि गुणश्रेणिविषै दीया तितना ही समय समय प्रति दीजिए है जातैं इहाँ परिणाम अवस्थित है, ताके निमित्ततैं अपकर्षणरूप द्रव्यका भी प्रमाण अवस्थित है। बहुरि प्रथम समयविषै कीनी जे गुणश्रेणि ताका शीर्ष कहिए अंत निषेक सो जिससमय उदय आवै तिस समय उत्कृष्ट कर्म परमाणूनिका उदय जानना जातैं तिस समयविषैं प्रथम समयविषै करी गुणश्रेणीका तौ अंत निषेक अर दूसरा समयविषै करी गुणश्रेणिका द्विचरम निषेक आदि इस समयविषैं करी गुणश्रेणिका प्रथम निषेक पर्यंत सर्वनिषेक मिलि गुणश्रेणिमात्र द्रव्य भया सो तिस समय सम्बन्धी निषेकविषै एकट्ठा हूवा सो तिस निषेकविषै पूर्वैं सत्तारूप तिष्ठै था जो गोपुच्छ द्रव्य तिस करि सहित उदय हो है। बहुरि यातैं ऊपरिके समयनिविषैं भी मिलिकरि गुणश्रेणिमात्र द्रव्य एकठा हो है परन्तु गोपुच्छ द्रव्यविषै एक एक चयमात्र घटता द्रव्य पाइए तातैं तहाँ ही उत्कृष्ट प्रदेशनिका उदयरूप कह्या है। कोऊ कहैगा कि पूर्वैं गलितावशेष गुणश्रेणि आयाम था ताका शीर्षरूप समय है सो अब करी गुणश्रेणि आयामके अभ्यंतरवर्ती है बीचि आय गया है तिस समय बहुत गुणश्रेणिनिके निषेक अर तिस समय सम्बन्धी गोपुच्छ द्रव्य मिलि बहुत घणा द्रव्य उदयरूप हो है तहाँ उत्कृष्ट द्रव्यका उदय क्यों न कहौ ? ताकौं कहिए है—पूर्व गुणश्रेणिविषै निक्षेपण कीया सर्व द्रव्यतैं भी इहाँ गुणश्रेणिका जघन्य निषेकविषैं भी

निक्षेपण कीया द्रव्य असंख्यातगुणा है तातैं ऊपरि नीचेके सर्व निषेकनितैं इहां प्रथम समयविषै करी गुणश्रेणिका शीर्ष जिस समयविषै उदय होइ तिस समयविषै ही उत्कृष्ट द्रव्यका उदय है ॥३०५॥

विशेष—पहले अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समय तक मोहनीयको छोड़कर शेष ज्ञानावरणादि कर्मोंका गुणश्रेणि निक्षेप उदयावलिके बाहर गलित शेष होता रहा। किन्तु यहाँ उपशान्तकषाय गुणस्थानमें वह उदय समयसे लेकर होने लगता है। तथा यहाँ अवस्थित परिणाम होनेसे गुणश्रेणि रचना और उसमें प्रति समय होनेवाला प्रदेश पुंज का निक्षेप अवस्थितरूपसे ही होता है। यह क्रम उपशान्तकषायके अन्तिम समय तक चलता रहता है। एक बात और है और वह यह कि उपशान्तकषायके प्रथम समयमें जो गुणश्रेणि शीर्ष-की रचना हुई उसकी अग्र स्थितिका उदय होनेपर ज्ञानावरणादि कर्मोंका उत्कृष्ट प्रदेश उदय होता है, क्योंकि यहाँ पर अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर संचित हुई गुणश्रेणि गोपुच्छाओंका एक साथ उदय देखा जाता है। यद्यपि इसके आगे भी प्रत्येक समयमें उतनी ही गोपुच्छाएँ एक साथ उपलब्ध होती हैं, किन्तु आगे प्रकृत गोपुच्छाओंकी अपेक्षा प्रत्येक समयमें उत्तरोत्तर एक-एक गोपुच्छा विशेषकी हानि देखी जाती है, इसलिये उपशान्तकषायके प्रथम समयमें किये गये गुण-श्रेणि शीर्षका जिस समय उदय होता है उसी समय उत्कृष्ट प्रदेश उदय होता है ऐसा समझना चाहिये।

अथोपशान्तकषायेण एकान्नषष्ट्युदयप्रकृत्यनुभागविभागप्रदर्शनार्थं गाथाद्वयमाह—

णामधुवोदयबारस सुभगति गोदेक्क विग्घपणगं च।
केवल णिद्दाजुयलं चेदे परिणामपच्चया होंति ॥३०६॥

नामध्रुवोदयद्वादश सुभगत्रि गोत्रकं विघ्नपंचकं च।
केवलं निद्रायुगलं चैते परिणामप्रत्यया भवंति ॥३०६॥

सं० टी०—उपशान्तकषाये नामकर्मणो ध्रुवोदयप्रकृतयस्तैजसकार्मणशरीरवर्णगन्धरसस्पर्शस्थिरा-स्थिरशुभाशुभागुरुलघुनिर्माणनामानो द्वादश, सुभगादेययशस्कीर्तयः उच्चैर्गोत्रं पञ्चान्तरायप्रकृतयः केवलज्ञाना-वरणीयं केवलदर्शनावरणीयं निद्रा प्रचला चेति पञ्चविंशतिप्रकृतयः परिणामप्रत्ययाः, आत्मनो विशुद्धि-संक्लेशपरिणामहानिवृद्ध्यनुसारेण एतत्प्रकृत्यनुभागस्य हानिवृद्धिसद्भावात् ॥३०६॥

अब ५९ प्रकृतियोंके उदयके विषयमें खुलासा--

स० चं०—उपशांतकषायविषै जे उदय प्रकृति गुणसठि पाइए है तिसविषै तैजस कार्माण शरीर २ वर्णादि ४ स्थिर १ अस्थिर १ शुभ १ अशुभ १ अगुरुलघु निर्माण २ ए नाम कर्मकी ध्रुवोदयी बारह प्रकृति अर सुभग आदेय यशस्कीर्ति ए तीन अर उच्चगोत्र अर पांच अंतराय अर केवलज्ञानावरण केवलदर्शनावरण अर निद्रा प्रचला ए पचीस प्रकृति परिणामप्रत्यय हैं। इनका उदय होनेके समयविषै आत्माके विशुद्धि संक्लेश परिणाम हानि वृद्धि लीएँ जैसैं पाइए तैसैं ही हानि वृद्धि लीएँ इनके अनुभागका तहाँ उदय होइ। वर्तमान परिणामके निमित्ततैं इनका अनुभाग उत्कर्षण अपकर्षणादिरूप होइ उदय हो है ॥३०६॥

तेसिं रसवेदमवट्ठाणं भवपच्चया हु सेसाओ।
चोत्तीसा उवसंते तेसिं तिट्ठाण रसवेदं[1] ॥३०७॥

तेषां रसवेदमवस्थानं भवप्रत्यया हि शेषाः।
चतुस्त्रिंशत् उपशांते तेषां त्रिस्थानं रसवेदं ॥३०७॥

सं० टी०—तासां पञ्चविंशतिप्रकृतीनामनुभागोदयः उपशान्तकषाये प्रथमसमयादारभ्य तत्कालचरमसमयपर्यन्तमवस्थित एव तत्र यथाख्यातविशुद्धिचारित्रस्य प्रतिसमयं हानिवृद्धिभ्यां विनावस्थितत्वेन तत्कर्मप्रकृत्यनुभागोदयस्यापि हानिवृद्धिभ्यां विना अवस्थितत्वसिद्धेः। शेषा मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानावरणचतुष्टयं चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणत्रयं सातासातवेदनीयद्वयं मनुष्यायुर्मनुष्यगतिपञ्चेन्द्रियजात्यौदारिकशरीरतदङ्गोपांगाद्यसंहननत्रयषट्संस्थानोपघातपरघातोच्छ्वासविहायोगतिद्वयप्रत्येकत्रसबादरपर्याप्तस्वरद्वयनामप्रकृतयश्चतुर्विंशतिरिति चतुस्त्रिंशत्प्रकृतयो भवप्रत्ययाः ३४। एतासामनुभागस्य विशुद्धिसंक्लेशपरिणामहानिवृद्धिनिरपेक्षतया विवक्षितभवाश्रयेणैव षट्स्थानपतितहानिवृद्धिसम्भवात्। अतः कारणादवस्थितविशुद्धिपरिणामेऽप्युपशान्तकषाये एतच्चतुस्त्रिंशत्प्रकृतीनां अनुभागोदयस्त्रिस्थानसंभवी भवति कदाचिद्धीयते कदाचिद्वर्धते कदाचिद्धानिवृद्धिभ्यां विना एकादृश एवावतिष्ठते इत्यर्थः। एवं चारित्रमोहनीयस्यैकविंशतिप्रकृतीनामुपशमनविधानमुपशान्तकषायगुणस्थानचरमसमयपर्यन्तं समाप्तम् ॥३०७॥

स० चं०—तिन पचीस प्रकृतिनिके अनुभागका उदय उपशांतकषायका प्रथम समयतैं लगाय अंत समय पर्यंत अवस्थित समानरूप है जातैं तहाँ परिणाम समान हैं अर इन प्रकृतिनिके अनुभागका उदय परिणामनिके अनुसारि है तातैं इनके अनुभागका उदयविषै हानि वृद्धि नाहीं है। बहुरि अवशेष ज्ञानावरणकी च्यारि दर्शनावरणकी तीन वेदनीयकी दोय मनुष्य आयु मनुष्य गति पंचेंद्री जाति औदारिक शरीर औदारिक अंगोपांग आदिके तीन संहनन संस्थान छह उपघात परघात उच्छ्वास विहायोगति दोय प्रत्येक त्रस बादर पर्याप्त स्वरकी दोय ऐसैं चौंतीस प्रकृति भवप्रत्यय हैं। आत्माके परिणाम जैसैं होंइ तैसैं होइ तिनकी अपेक्षा रहित पर्यायहीका आश्रयकरि इनके अनुभागविषै षट्स्थानरूप हानि वृद्धि पाइए है तातैं इनका अनुभागका उदय इहां तीन अवस्था लीएं हैं। कदाचित् हानिरूप हो है कदाचित् वृद्धिरूप हो है कदाचित् अवस्थित जैसाका तैसा रहै है। ऐसैं उपशांतकषाय गुणस्थानका अंत समय पर्यंत इकईस चारित्र मोहकी प्रकृतिनिका उपशमन विधान समाप्त भया ॥३०७॥

विशेष—यहाँ गाथा ३०६ और ३०७ में जो परिणामप्रत्यय और भवप्रत्यय प्रकृतियाँ गिनायी हैं उनमेंसे जितनी परिणामप्रत्यय प्रकृतियाँ हैं उनमेंसे कितनी प्रकृतियोंका यह जीव अवस्थितवेदक होता है और किन प्रकृतियोंका उदय षडगुणी हानि-वृद्धिको लिए हुए होता है। इसका विशेष स्पष्टीकरण चूर्णिसूत्रोंके आधारसे जयधवलामें विशेषरूपसे किया गया है जो इस प्रकार है—

१. केवलणाणावरण-केवलदंसणावरणीयामणुभागुदएण सव्वउवसंतद्धाए अवट्ठिदवेदगो। णिद्दापयलाणं णि जाव वेदगो ताव अवट्ठिदवेदगो। अंतराइयस्स अवट्ठिदवेदगो। सेसाणं लद्धिकम्मंसाणमणुभागोदयो वड्ढी वा हाणी वा अवट्ठाणं वा। णामाणि गोदाणि जाणि परिणामपच्चयाणि तेसिमवट्ठिदवेदगो अणुभागोदएण। वही पृ० ३३०–३३३।

(१) केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरणका अनुभागके उदयकी अपेक्षा यह जीव अवस्थितवेदक होता है, क्योंकि यहाँ अवस्थित परिणाम पाये जाते हैं।

(२) निद्रा और प्रचला प्रकृतियाँ अध्रुवोदयरूप हैं, इसलिये इनके उदयकाल तक यह जीव अवस्थित वेदक रहता है।

(३) पाँच अन्तराय यद्यपि लब्धिकर्मांश प्रकृतियाँ हैं, फिर भी यहाँ अवस्थित परिणाम होनेसे यह जीव इनका अवस्थित वेदक ही होता है। क्षयोपशमवश यहाँ इनकी छह वृद्धि और छह हानि नहीं होती।

(४) मतिज्ञानावरण आदि चार ज्ञानावरण और तीन दर्शनावरण ये भी लब्धिकर्मांश प्रकृतियाँ हैं, क्योंकि क्षयोपशमवश इनकी भी लब्धिकर्मांश संज्ञा है। यतः इनका क्षमोपशम एक समान नहीं रहता इसलिये इनका अनुभागोदय छह वृद्धि और छह हानि और अवस्थानको लिये हुए होता है। यद्यपि इनकी परिणामप्रत्यय प्रकृतियोंमें गणना होती है तो भी इनके अनुभागोदयमें छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थान सम्भव है ऐसा आगमका उपदेश है। उदाहरणार्थ—उपशान्त कषायमें यदि अवधि ज्ञानावरणका क्षयोपशम नहीं है तो उसका अवस्थित उदय होता है, क्योंकि वहाँ उसके अनवस्थित उदयका कोई कारण नहीं उपलब्ध होता। यदि उसका क्षयोपशम है तो उसका अनुभागोदय यथासम्भव छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थित होता है, क्योंकि देशावधि और परमावधिके असंख्यात लोकप्रमाण भेद हैं, इसलिये इनकी अपेक्षा अवधि ज्ञानावरणके अनुभागोदयमें उक्त वृद्धि-हानि और अवस्थान सम्भव है। हाँ जिन जीवोंके सर्वावधि ही पाई जाती है वहाँ अवधिज्ञानावरणका यह जीव अवस्थितवेदक होता है। इसीप्रकार मनःपर्यय ज्ञानावरणकी अपेक्षा तथा शेष ज्ञानावरण और दर्शनावरणका आगमके अनुसार कथन करना चाहिए।

(५) नामकर्म और गोत्रकर्मको यहाँ जो परिणामप्रत्यय प्रकृतियाँ हैं उनका भी उपशान्त-कषाय जीव अवस्थितवेदक होता है। वे प्रकृतियाँ ये हैं—मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, छह संस्थानोंमेंसे कोई एक, औदारिक शरीर आंगोपांग, प्रारम्भके तीन संहननोंमेंसे कोई एक, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, दो विहायोगतियोंमेंसे कोई एक, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर और दुःस्वरमेंसे कोई एक, आदेय, यशःकीर्ति और निर्माण तथा उच्चगोत्र। ये सब परिणाम प्रत्यय प्रकृतियाँ हैं। अतः इनका अवस्थित वेदक होता है। शेष जितनी अघाति कर्म सम्बन्धी साता वेदनीय आदि भवप्रत्यय प्रकृतियाँ हैं उनकी छह वृद्धि और छह हानिरूप तथा अवस्थितवेदक होता है।

लब्धिसारकी गाथा ३०६ की संस्कृत टीकामें ध्रुवोदयरूप १२ प्रकृतियाँ, शुभग, आदेय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र, पाँच अन्तराय, केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, निद्रा और प्रचला इन पच्चीस प्रकृतियोंको परिणाम-प्रत्यय मानकर भी आत्माके संक्लेश और विशुद्धिके अनुसार इनके अनुभागके उदयकी छह वृद्धियाँ और छह हानियाँ स्वीकार की गई हैं। जब कि गाथा ३०७ की टीकामें इन २५ प्रकृतियोंके अनुभागका अवस्थित उदय भी स्वीकार किया गया है। तथा इनके सिवाय ज्ञानावरणकी चार, दर्शनावरणकी तीन, वेदनीयकी दो, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय

जाति, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, आदिके तीन संहनन, छह संस्थान, उपघात, परघात, उच्छ्वास, दो विहायोगति, प्रत्येक शरीर, त्रस, बादर, पर्याप्त, दो स्वर, ये चौंतीस प्रकृतियाँ भवप्रत्यय हैं। आत्माके संक्लेश और विशुद्धिरूप परिणामोंकी अपेक्षाके बिना इनके अनुभागका उदय कदाचित् हानिरूप होता है, कदाचित् वृद्धिरूप होता है और कदाचित् अवस्थित रहता है। यह लब्धिसारकी संस्कृत टीकाका भाव है जिसकी कषाय प्राभृतके कथनसे किसी भी प्रकार पुष्टि नहीं होती। सो जयधवला, पृ० १३ से समझ लेना चाहिये। यहाँ हम पूर्वमें स्पष्टीकरण कर ही आये हैं।

अथेदानीमुपशान्तकषायस्य प्रतिपातविधिं प्ररूपयन् गाथाद्वयमाह—

उवसंते पडिवडिदे भवक्खये देवपढमसमयम्हि।
उग्घाडिदाणि सव्वा वि करणाणि हवंति णियमेण ॥३०८॥

उपशांते प्रतिपतिते भवक्षये देवप्रथमसमये।
उद्घाटितानि सर्वाण्यपि करणानि भवन्ति नियमेन ॥३०८॥

सं० टी०—उपशान्तकषायपरिणामस्य द्विविधः प्रतिपातः भवक्षयहेतुः उपशमनकालक्षयनिमित्तकश्चेति। तत्र भवक्षये उपशान्तकषायगुणस्थानकाले प्रथमसमयादारभ्य चरमसमयपर्यंन्ते यत्र वा तत्र वा आयुःक्षये सति उपशान्तकषायकाले मृत्वा देवासंयतगुणस्थाने प्रतिपतति। एवं प्रतिपतिते तस्मिन्नेवासंयतप्रथमसमये सर्वाण्यपि बन्धनोदीरणासंक्रमणादीनि कारणानि नियमेनोद्घाटितानि स्वस्वरूपेण प्रवृत्तानि भवन्ति। यथाख्यातचारित्रविशुद्धिबलेनोपशान्तकषाये उपशमितानां तेषां पुनर्देवासंयते संक्लेशवशेनानुपशमनरूपोद्घाटनसम्भवात् ॥३०८॥

अथ उपशांत कषायतैं पडनेका विधान कहैं हैं—

सं० च०—उपशांत कषायतैं पडना दोय प्रकार है भवक्षय हेतु १ उपशम कालक्षयनिमित्तक २। तहां मरण होतैं पर्यायका नाशके निमित्ततैं पडना होइ सो भवक्षयहेतु कहिए। अर उपशम कालके क्षयके निमित्ततैं पडना होइ सो उपशमकालक्षयनिमित्तक कहिए। तहाँ भव क्षय हेतुविषै कहिए है—

उपशांत कषायके कालविषैं प्रथमादि अंत पर्यंत समयनिविषैं जहां तहाँ आयुके नाशतैं मरिकरि देव पर्यायसम्बन्धी असंयत गुणस्थानविषै पडै तहाँ असंयतका प्रथम समयविषै बंध उदीरणा संक्रमण आदि समस्त करण उघाडै हैं। अपने-अपने स्वरूपकरि प्रगट वर्तें हैं। जातैं जे उपशांत कषायविषै उपशमे थे ते सर्व असंयतविषैं उपशम रहित भए हैं ॥३०८॥

विशेष—जो जीव ग्यारहवें गुणस्थानसे किसी भी समय आयुके अन्त होनेपर मर कर देव होता है उसके जन्मके प्रथम समय ही नियमसे चौथा गुणस्थान हो जाता है, अतः बन्धनकरण आदि आठ करणोंकी व्युच्छित्ति होकर जो चारित्रमोहनीयका सर्वोपशम हुआ था उसका यहाँ अभाव हो जानेसे वे बन्धनकरण आदि सभी करण उद्घारित हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि जिन कर्मोंका देव अविरत सम्यग्दृष्टिके बन्ध सम्भव है उनका बन्ध होने लगता है, विवक्षित कर्मोंमेंसे

१. दुविहो पडिवादो भवक्खएण च उवसामणक्खएण च। भवक्खएण पडिदस्स सव्वाणि करणाणि एक्कसमएण उग्घाडिदाणि। ता० मु०, पृ० १८९०-१८९१।

जिनकी उदीरणा सम्भव है उनकी उदीरणा होने लगती है। इसी प्रकार अपकर्षण, उत्कर्षण, अप्रशस्त उपशम आदिके विषयमें भी जान लेना चाहिये।

सोदीरणाण दव्वं देदि हु उदयावलिम्हि इयरं तु।
उदयावलिबाहिरगे गोपुच्छाए देदि सेढीये[1] ॥३०९॥

सोदीरणानां द्रव्यं ददाति हि उदयावलौ इतरत्तु।
उदयावलिबाह्यके अन्तरे ददाति श्रेण्याम् ॥३०९॥

सं० टी०—भवक्षयादुपशान्तकषायगुणस्थानात्प्रतिपतितदेवासंयतः प्रथमसमये उदयवतामप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलनक्रोधमानमायालोभानामन्यतमस्य कषायस्य पुंवेदहास्यरतीनां भयजुगुप्सयोर्यथासम्भवमन्यतरस्य च द्रव्यमपकृष्य स a १२–/७ ओ इदं पुनरसंख्यातलोकेन खण्डयित्वा एकभागमुदयावल्यां दत्त्वा स a १२–/७ ओ ≡ a तद्बहुभागमुदयावलीबाह्यप्रथमसमयादारभ्यान्तरायामे द्वितीयस्थितौ च 'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे' इत्यादिविधानेनविशेषहीनक्रमेण ददाति उदयरहितानां नपुंसकवेदादीनां मोहप्रकृतीनां द्रव्यमपकृष्य स a १२–/७ ओ उदयावलिबाह्यनिषेकेषु अन्तरायामे द्वितीयस्थितौ च पूर्वोक्तविधानेन विशेषहीनक्रमेण प्रतिनिषेकं ददाति। अनेन विधानेन चारित्रमोहस्यान्तरं पूरयतीत्यर्थः ॥३०९॥

स० चं०—सो देव असंयत जीव प्रथम समयविषै उदयरूप जो अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान संज्वलनरूप जे क्रोधादि च्यारि कषाय तिनविषै कोई एक कषाय अर पुरुषवेद १ हास्य रति २ अर भय जुगुप्साविषै यथासम्भव प्रकृति जे उदयरूप पाइए हैं तिनके द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ तहाँ एक भागकौं ग्रहण करि ताकौं असंख्यातलोकका भाग देइ एक भागकौं उदयावलीविषै दीजिए है अर अवशेष बहुभागकौं उदयावलीतैं बाह्य प्रथम निषेकतैं लगाय अवशेष अंतरायामविषै वा अंतरायामके उपरिवर्ती द्वितीय स्थितिविषै 'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा' इत्यादि विधानतैं चय घटता क्रमकरि दीजिए है। बहुरि उदय रहित जे नपुंसक वेदादिक मोहकी प्रकृति तिनके द्रव्यकौं अपकर्षणकरि उदयावलीविषै न दीजिए है उदयावलीतैं बाह्य अंतरायाम वा उपरितन स्थिति ही विषै चय घटता क्रमकरि दीजिए है। इस विधानकरि चारित्र मोहका अंतरकौं पूरै है। अंतर करनेविषै निषेकनिका अभाव कीया था तिनविषै उपशम काल व्यतीत भए पीछैं जे अवशेष अंतररूप निषेक रहैं तिनविषै इहाँ द्रव्यका निक्षेपण करि तिनका सद्भाव करै है। इहाँ गुणश्रेणिका असंयतविषै अभाव जानना ॥३०९॥

अथोपशमनाद्धाक्षयनिबन्धनं प्रतिपातं प्रारम्भमाण इदमाह—

अद्धाखए पडंतो अधापवत्तो त्ति पडदि हु कमेण।
सुज्झंतो आरोहदि पडदि हु सो संकिलिस्संतो[2] ॥३१०॥

---

१. पढमसमए चेव जाणि उदीरिज्जंति कम्माणि ताणि उदयावलियं पवेसिदाणि, जाणि ण उदीरिज्जंति ताणि वि ओकड्डियूण आवलियबाहिरे णिक्खित्ताणि। ता० मु०, पृ० १८९१।

२. जो उवसामणक्खएण पडदि तस्स विहासा। केण कारणेण पडिवददि अवट्ठिदपरिणामो संतो। सुणु कारणं, जधा अद्धाक्खएण सो लोभे पडिवदिदो होइ। ता० मु०, पृ० १८९१–९२।

अद्धाक्षये पतन् अधःप्रवृत्त इति पतति हि क्रमेण ।
शुद्धयन् आरोहति पतति स संक्लिश्यन् ॥३१०॥

सं० टी०—आयुषि सत्यद्धाक्षयेऽन्तर्मुहूर्तमात्रोपशान्तकषायगुणस्थानकालावसाने सति प्रतिपतन् स उपशान्तकषायः प्रथमं नियमेन सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थाने प्रतिपतति । ततोऽनन्तरमनिवृत्तिकरणगुणस्थाने प्रतिपतति । तदन्वपूर्वकरणगुणस्थाने प्रतिपतति । ततः पश्चादप्रमत्तगुणस्थाने अधःप्रवृत्तकरणपरिणामे प्रतिपतति । एवमधःप्रवृत्तकरणपर्यन्तमनेनैव क्रमेण प्रतिपातो नान्यथेति निश्चेतव्यं । यः पुनः शुद्धयन् वर्धमानविशुद्धिपरिणामः उत्तरोत्तरगुणस्थानान्यारोहति स एव कषायोदयवशात् विशुद्धिहान्या संक्लेशमानः अधोऽधो गुणस्थानेषु प्रतिपतति न पुनरुपशान्तकषायस्यैवंविधारोहणप्रतिपातौ सम्भवतस्तस्य स्वगुणस्थानकाल-चरमसमयपर्यन्तमवस्थितपरिणामत्वेन विशुद्धिसंक्लेशयोर्हानिवृद्धिपरावृत्त्यसम्भवात् । ननूपशान्तकषायस्याव-स्थितविशुद्धिपरिणामत्वात् कथं प्रतिपातः संभवतीति नाशङ्कनीयं उपशान्तकषायगुणस्थानकालस्यान्तर्मुहू-र्तात्परं नियमेन प्रक्षयादुपशमनकालक्षयहेतुकप्रतिपातस्य संभवाविरोधात् । अत एवायं प्रतिपातोऽद्धाक्षयहेतुक एव न विशुद्धिपरिणामहानिनिबन्धनो नाप्यन्यनिमित्तक इति ॥३१०॥

अद्धाक्षयके कारण उपशान्तकषायसे पतनका निर्देश—

स० चं०—आयु विद्यमान होतैं अद्धा क्षयविषै अंतर्मुहूर्तमात्र उपशांत कषायका काल अंत भए पडिकरि सूक्ष्मसाम्पराय होइ पीछैं अनिवृत्तिकरण होइ । पीछैं अपूर्वकरण होइ । पीछैं अधः-प्रवृत्तकरणरूप अप्रमत्त हो है । ऐसैं अधःप्रवृत्तकरणपर्यंत तौ अनुक्रमतैं पड़ना होइ ही होइ । पीछैं जो विशुद्धता युक्त होइ ऊपरिके गुणस्थानविषै चढै अर संक्लेशता करि युक्त होइ तौ नीचेके गुणस्थाननिविषै पडे किछू नियम नाहीं । बहुरि या प्रकार संक्लेश विशुद्धताके निमित्तकरि उपशांतकषायतैं पडना चढना न हो है । जातैं तहाँ परिणाम अवस्थिति विशुद्धता लीएँ वर्तै है । बहुरि तहाँतैं जो पडना हो है सो तिस गुणस्थानका काल भए पीछैं नियमतैं उपशम कालका क्षय होइ तिसके निमित्ततैं हो है । विशुद्ध परिणामनिकी हानिके निमित्ततैं तहांतैं नाही पडै है वा अन्य कोई निमित्ततैं नाहीं है ऐसा जानना ॥३१०॥

विशेष—ग्यारहवाँ गुणस्थानवाला जीव एक तो भवका अन्त होनेसे गिरता है और दूसरे सर्वोपशमका जो अन्तर्मुहूर्त काल है उसका अन्त होनेसे गिरता है । ग्यारहवें गुणस्थानसे गिरने-का अन्य कोई कारण नहीं है ऐसा यहाँ स्पष्ट समझना चाहिये । ऐसा जीव ७ वें गुणस्थान तक क्रमसे उतरता है उसके बाद परिणामोंके अनुसार गिरना-चढ़ना होता है । इसे टीकामें बतलाया ही है ।

अथ सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थाने प्रतिपतितस्य क्रियाविशेषप्रतिपादनार्थं गाथाचतुष्टयमाह—

सुहुमप्पविट्ठसमयेणद्धुवसामणतिलोहगुणसेढी ।
सुहुमद्धादो अहिया अवट्ठिदा मोहगुणसेढी[1] ॥३११॥

सूक्ष्मप्रविष्टसमयेनाध्रुवशमत्रिलोभगुणश्रेणी ।
सूक्ष्माद्धातोऽधिका अवस्थिता मोहगुणश्रेणी ॥३११॥

१. पढमसमयसुहुमसांपराइएण तिविहं लोभमोकड्डियूण संजलणस्स उदयादिगुणसेढी कदा । जा तस्स किट्टीलोभवेदगद्धा तदो विसेसुत्तरकालो गुणसेढिणिक्खेवो । ता० मु०, पृ० १८९२ ।

सं० टी०—सूक्ष्मसाम्परायप्रविष्टसमये तद्गुणस्थानप्रथमसमये विनष्टोपशमनकरणानां त्रयाणां अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनलोभानां गुणश्रेणिः प्रारभ्यते । तद्गुणश्रेण्यायामश्चारोहकसूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानकालादावलिमात्रेणाभ्यधिकः २ १ ७ एवं मोहनीयस्य गुणश्रेणिरस्मिन्नवसरे अवस्थितायामैव ग्राह्या ।।३११।।

गिरकर सूक्ष्मसाम्परायमें आये हुए जीवके कार्य विशेषका निर्देश—

स० चं०—उपशांत कषायतैं ऊपरि सूक्ष्मसाम्परायविषै प्रवेश कीया, तहां प्रथम समयविषै नष्ट भया है उपशमकरण जिनिका ऐसा जो अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान संज्वलन लोभ तिनकी गुणश्रेणिका आरम्भ हो है । तिस गुणश्रेणि आयामका प्रमाण चढनेवाले सूक्ष्मसाम्परायके कालतैं एक आवलीमात्र अधिक है सो इस अवसरविषै मोहकी गुणश्रेणिका आयाम अवस्थितरूप जानना ।।३११।।

उदयाणं उदयादो सेसाणं उदयबाहिरे देदि ।
छण्हं बाहिरसेसे पुव्वतिगादहियणिक्खेओ[1] ।।३१२।।

उदयानामुदयतः शेषाणां उदयबाह्ये ददाति ।
षण्णां बाह्यशेषे पूर्वत्रिकाधिकनिक्षेपः ।।३१२।।

सं० टी०—तत्र तावदुदयवतः संज्वलनलोभस्य द्वितीयस्थितौ स्थितं कृष्टिगतं द्रव्यमपकृष्य पल्यासंख्यातभागखण्डितैकभागमात्रमुदयसमयादारभ्य गुणश्रेण्यायामचरमसमयपर्यन्तमसंख्यातगुणितक्रमेण निक्षिप्य पुनस्तद्बहुभागद्रव्यं गुणश्रेणीशीर्षस्योपर्यन्तरायाममुल्लङ्घ्य द्वितीयस्थितौ 'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे' इत्यादिना विशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत् । उदयरहितयोरप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानलोभयोर्द्वितीयस्थितौ स्थितं द्रव्यमपकृष्य उदयावलिबाह्यप्रथमसमयादारभ्य गुणश्रेण्यायामचरमसमयपर्यन्तमसंख्यातगुणितक्रमेण तदुपर्यन्तरायाममुल्लङ्घ्य द्वितीयस्थितौ पूर्ववद्विशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत् । एवमुत्तरत्राप्युदयानुदयवतोर्गुणहानिश्रेणिनिक्षेपक्रमो वेदितव्यः । पुनः षण्णामायुर्मोहवर्जितानां ज्ञानावरणादिकर्मणां द्रव्यमपकृष्य पल्यासंख्यातभागेन खण्डयित्वा तदेकभाग पुनः पल्यासख्यातभागेन खण्डयित्वा तदेकभागमुदयावल्यां निक्षिप्य बहुभागं गुणश्रेण्यायामे अवरोहकसूक्ष्मसाम्परायानिवृत्त्यपूर्वकरणकालेभ्यो विशेषाधिकमात्रे गलितावशेषे असंख्यातगुणितक्रमेण निक्षिप्य अवशिष्टबहुभागमुपरितनस्थितौ पूर्ववद्विशेषहीनक्रमेण निक्षिपेत् ।।३१२।।

स० चं०—तहाँ उदयरूप जो संज्वलन लोभ ताकी द्वितीय स्थितिविषै तिष्ठता द्रव्यकौं अपकर्षण करि ताकौं पल्यका असंख्यातवाँ भागका भाग देइ तहाँ एक भागकौं उदयरूप प्रथम समयतैं लगाय गुणश्रेणि आयामका अन्त निषेक पर्यंत असंख्यातगुणा क्रम कीएँ निक्षेपण करै है । अर बहुभागमात्र द्रव्यकौं गुणश्रेणि आयामका अन्त निषेकतैं ऊपरि पाइए है जो अंतरायाम ताकौं छोडि ताके ऊपरि जो द्वितीय स्थिति तीहिंविषैं चय घटता क्रमकरि निक्षेपण करै है । बहुरि

१. दुविहस्स लोहस्स तत्तिओ चेव णिक्खेवो, णवरि उदयावलियाए णत्थि । सेसाणमाउगवज्जाणं कम्माणं गुणसेढिणिक्खेवो अणियट्टिकरणद्धादो अपुव्वकरणद्धादो च विसेसाहिओ, सेसे सेसे च णिक्खेवो । तिविहस्स लोहस्स तत्तिओ तत्तिओ चेव णिक्खेवो । ताधे चेव तिविहो लोभो एगसमएण पसत्थउवसामणाए अणुवसंतो । ता० मु०, पृ० १८९३ ।

उदय रहित अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान लोभ तिनकी द्वितीय स्थितिविषै तिष्ठता द्रव्यकौं अपकर्षण करि उदयावलीतैं बाह्य प्रथम समयतैं लगाय गुणश्रेणि आयामका अंत पर्यंत असंख्यातगुणा क्रम लीएँ अर ताके ऊपरि अंतरायामकौं छोडि द्वितीय स्थितिविषै चय घटता क्रमकरि पूर्ववत् निक्षेपण करै। बहुरि आयु मोह बिना छह कर्मनिका द्रव्यकौं अपकर्षण करि ताकौं पल्यका असंख्यातवाँ भागका भाग देइ तहाँ एक भागकौं बहुरि पल्यका असंख्यातवाँ भागका भाग देइ तहाँ एक भाग उदयावलीविषै दीजिए है। बहुभाग गुणश्रेणि आयामविषै दीजिए है। सो इनका यहु गुणश्रेणि आयाम उतरनेवाले सूक्ष्मसाम्पराय अनिवृत्तिकरण अपूर्वकरणनिका मिलाया हुआ काल तैं किछू अधिक प्रमाण लीएँ गलितावशेषरूप जानना। याविषै असंख्यातगुणा क्रम लीएँ द्रव्य दीजिए है। बहुरि अपकर्षण कीया द्रव्यविषै बहुभाग रहे तिनकौं उपरितन स्थितिविषै चय घटता क्रम लीएँ दीजिए है ॥३१२॥

विशेष—उपशान्तकषायसे गिरकर और सूक्ष्मसाम्परायमें आकर उसके प्रथम समयमें किसकी किस प्रकारकी गुणश्रेणि रचना होती है इसे स्पष्ट करते हुए श्री जयधवलामें बतलाया है कि—

(१) संज्वलन लोभकी उदयादि गुणश्रेणि रचना होती है। सो लोभके वेदक कालप्रमाण जो कृष्टि है सो कुछ अधिक प्रमाणको लिये हुए इसकी गुणश्रेणि रचना होती है। यहाँ कुछ अधिकसे एक आवलिकाल लेना चाहिये। यह अवस्थित गुणश्रेणि है।

(२) दो लोभोंकी ही इतने कालप्रमाण गुणश्रेणि रचना होती है। किन्तु उसका निक्षेप उदयावलि बाह्य होता है। यह भी अवस्थित गुणश्रेणि है।

(३) आयुकर्मको छोड़कर शेष कर्मोंका गुणश्रेणि निक्षेप अनिवृत्तिकरण और अपूर्वकरणके कालसे कुछ अधिक होता है। तथा इनकी गलितशेष गुणश्रेणि रचना होती है। इसलिये प्रति समय एक-एक निषेकके गलित होनेपर जितनी गुणश्रेणि शेष रहती हैं उसीमें निक्षेप होता है।

(४) ग्यारहवें गुणस्थानसे पतन होनेपर सूक्ष्मसाम्परायके प्रथम समयमें जो तीन लोभोंका प्रशस्त उपशामना द्वारा उपशम हुआ था उनकी यहाँ प्रशस्त उपशामना समाप्त हो जाती है, इसलिये यहाँ इनकी अपकर्षण आदि क्रियाके होनेमें कोई बाधा नहीं आती।

ओदरसुहुमादीए बंधो अंतोमुहुत्त बत्तीसं।
अडदालं च मुहुत्ता तिघादिणामदुगवेयणीयाणं[1] ॥३१३॥

अवतरसूक्ष्मादिके बंधो अंतर्मुहूर्तं द्वात्रिंशत्।
अष्टचत्वारिंशत् च मुहूर्ताः त्रिघातिनामद्विकवेदनीयानाम् ॥३१३॥

सं० टी०—उपशान्तकषायगुणस्थानादवतीर्णसूक्ष्मसाम्परायप्रथमसमये घातित्रयस्य स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तमात्रः। नामगोत्रयोर्द्वात्रिंशन्मुहूर्तमात्रः। वेदनीयस्याष्टचत्वारिंशन्मुहूर्तमात्रः। आरोहणे सूक्ष्मसाम्परायस्य चरमसमये स्थितिबन्धात् अवरोहणे तत्प्रथमसमये स्थितिबन्धो द्विगुण इति सिद्धान्ते प्रतिपादितत्वात् एवमवरोहकसूक्ष्मसाम्परायस्य प्रथमसमये क्रियाविशेषः प्रतिपादितः ॥३१३॥

---

१. ताधे तिण्हं घादिकम्माणमंतोमुहुत्तट्ठिदिगो बंधो, णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो बत्तीसमुहुत्ता, वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो अडतालीसमुहुत्ता। ता० मु०, पृ० १८९३।

स० चं०—उतरया हुआ सूक्ष्मसाम्परायका प्रथम समयविषै तीन घातियानिका अंतर्मुहूर्त नाम गोत्रका बत्तीस मुहूर्त वेदनीयका अठतालीस मुहूर्तमात्र स्थितिबंध जानना। जातैं आरोहक सूक्ष्मसाम्परायका अंत समयविषै जो स्थितिबंध हो है तातैं अवरोहक सूक्ष्मसाम्परायका प्रथम समयविषै दूणा स्थितिबंध है। उपशमश्रेणि चढनेवालाका नाम आरोहक कहिए। उतरनेवालाका नाम अवरोहक कहिए अथवा अवतारक कहिए है ऐसी संज्ञा आगैं भी जाननी ॥३१३॥

गुणसेढीसत्थेदररसबंघो उवसमादु विवरीयं।
पढमुदओ किट्टीणमसंखाभागा विसेसअहियकमा ॥३१४॥

गुणश्रेणी शस्तेतररसबन्ध उपशमात् विपरीतम्।
प्रथमोदयः कृष्टीनामसंख्यभागा विशेषाधिकक्रमाः ॥३१४॥

सं० टी०—अवरोहकसूक्ष्मसाम्परायस्य द्वितीयादिसमयेषु प्रथमसमयापकृष्टद्रव्यादसंख्येयगुणहीनद्रव्यमपकृष्य मोहस्येतरकर्मणां च गुणश्रेणीं करोति। गुणश्रेणिनिर्जराकारणस्यावरोहणे विशुद्धिपरिणामस्य प्रतिसमयमनन्तगुणहीनत्वसम्भवात्। सातादिप्रशस्तप्रकृतीनां ज्ञानावरणाद्यप्रशस्तप्रकृतीनां चानुभागबन्धाद्यथासंख्यमनन्तगुणहीनोऽनन्तगुणश्च प्रतिसमयं वेदितव्यः। तत्कारणस्य विशुद्धिसंक्लेशस्य चानन्तगुणहानिवृद्धिसम्भवात्। अत एवोपशमादुपशमश्रेण्यारोहणात्तदवरोहणे विपरीतमित्युक्तम्। स्थितिबन्धस्तु अन्तर्मुहूर्तपर्यन्तं तादृश एव। पुनरन्तर्मुहूर्तेऽन्तर्मुहूर्ते आरोहकस्थितिबन्धात् द्विगुणं वर्धते तच्चरमसमयं यावत्। अवरोहकसूक्ष्मसाम्परायप्रथमसमये उदयनिषेककृष्टीनां पल्यासंख्यातभागखण्डितबहुभागमात्रो मध्यमकृष्टयः

। १० (२)
४ प उदयमागच्छन्ति। तदेकभागस्य पुनरसंख्यातभागाः द्विपञ्चमभागमात्र्यः कृष्टय आदिकृष्टेरारम्या-
ख प ३
 ३

। ।
नुदयाः ४ २ उपरि च नत्रिपञ्चभागमात्र्यः कृष्टयोऽग्रकृष्टेरारम्यानुदयाः ४ ३ तासामाद्यन्तकृष्टीनां
ख ५ प ख प ५
 ३ ३

स्वस्वरूपं परित्यज्य मध्यमकृष्टिस्वरूपेण परिणम्योदयो भवतीत्यर्थः। पुनर्द्वितीयसमये आदिकृष्टीनां पल्या-
। ।
संख्यातैकभागमात्रीः ४ २ कृष्टीस्त्यक्त्वाग्रकृष्टीनां पल्यासंख्यातैकभागमात्रीः कृष्टीः ४ ३ गृहीत्वा
ख प ५ प ख प ५ प
 ३ ३ ३ ३

१. से काले गुणसेढी असंखेज्जगुणहीणा। ट्ठिदिबंधो सो चेव। अणुभागबंधो अप्पसत्थाणमणंतगुणो पसत्थाणं कम्मंसाणमणंतगुणहीणो। लोभं वेदयमाणस्स इमाणि आवासयाणि। तं जहा—लोभवेदगद्धाए पढमतिभागे किट्टीणमसंखेज्जा भागा उदिण्णा। पढमसमए उदिण्णाओ किट्टीओ थोवाओ, विदियसमए उदिण्णाओ किट्टीओ विसेसाहियाओ। ता० मु०, पृ० १८९४–१८९५।

मध्यमकृष्टयः उदयमागच्छन्ति । तत्र ऋणात् । ४ २ / ख प ५ प a a अस्माद्धनमिदं । ४ ३ / ख प ५ प a a अभ्यधिकमिति धनार्ण-योर्विवरे शेष । ४ १ / ख प ५ प a a प्रमाणेन प्रथमसमयोदयकृष्टिभ्यो द्वितीयसमयोदयकृष्टयो विशेषाधिका । ४ प / ख प a a एवं तृतीयादिसमयेष्वपि तच्चरमसमयपर्यन्तेषु विशेषाधिकाः कृष्टयः उदयमागच्छन्ति अत एव प्रतिसमयमनन्तगुणानुभागोदयः कृष्टीनां ज्ञातव्यः । एवमनेन क्रमेण सूक्ष्मसाम्परायकालो गतः ॥३१४॥

स० चं०—अवरोहक सूक्ष्मसाम्परायका द्वितीयादि समयनिविषै समय-समय प्रति प्रथमादि समय सम्बन्धीतैं असंख्यातगुणा घाटि क्रम लीएँ द्रव्यकौं अपकर्षण करि गुणश्रेणि करै है। अर प्रशस्त प्रकृतिनिका अनंतगुणा घाटि क्रम लीएँ अर अप्रशस्त प्रकृतिनिका अनंतगुणा बंधता क्रम लीएँ अनुभाग बंध हो है। जातैं इहां समय-समय विशुद्ध संक्लेशकी अनंतगुणी हानि वृद्धि हो है। यातैं उपशमश्रेणी चढनेसे उतरनेविषै विपरीतपना कह्या है। बहुरि स्थितिबंध है सो तिस प्रथम समयतैं लगाय अंतर्मुहूर्त पर्यंत समान ही है। बहुरि अंतर्मुहूर्त अंतर्मुहूर्तविषै आरोहकके स्थिति-बंधतैं यथा ठिकाणैं अवरोहककैं दूणा स्थितिबंध सूक्ष्मसाम्परायका अंतसमय पर्यंत जानना। चढतैं जिस ठिकाने जो स्थितिबध होता था तातैं उतरतैं उस ठिकानैं आय दूणा स्थितिबंध हो है। जैसैं स्थितिबंधापसरणकरि चढतैं स्थितिबंध घटाइ एक-एक अंतर्मुहूर्तविषै समान बंध करै था तैसै इहाँ स्थितिबंधोत्सरणकरि स्थितिबंध बधाइ एक-एक अंतर्मुहूर्तविषैं समान बंध करै है। बहुरि अवरोहक सूक्ष्मसाम्परायका प्रथम समयविषैं उदय आया जे निषेक कृष्टि पाइए है तिनकौं पल्यका असंख्यातवाँ भागका भाग दीजिए तहाँ बहुभागमात्र वीचिकी कृष्टि उदय आवै है। अर अवशेष एक भागकौं पल्यका असंख्यातवाँ भागकी सहनानी पाँचका अंक ताका भाग दीएं तहाँ दोय भागमात्र तो आदि कृष्टितैं लगाय जे नीचेकी कृष्टि हैं ते अनुदयरूप हैं अर तीन भागमात्र अंत कृष्टितैं लगाय जे ऊपरिकी कृष्टि हैं ते अनुदयरूप कृष्टि कहीं। ते अपने स्वरूपकौं छोडि जे आदि कृष्टितैं लगाय नीचली कृष्टि हैं ते तो अनंतगुणा अनुभागरूप परिणमि मध्यम कृष्टिरूप होइ उदय आवै हैं। अर अंत कृष्टितैं लगाय जे ऊपरिकी कृष्टि हैं ते अनंतवें भागि अनुभागरूप परिणमि मध्यम कृष्टिरूप होइ उदय आवैं हैं। अंक संदृष्टिकरि जैसैं उदय आया निषेकविषै कृष्टि हजार तिनकौं पाँचका भाग दीएं बहुभागमात्र आठसै वीचिकी कृष्टि तौ उदयरूप जाननी। अवशेष एक भाग दोयसै ताकौं पाँचका भाग देइ तहाँ एक भाग जुदा राखि अवशेषके दोय भागकरि तहाँ एकभागमात्र असो कृष्टि तौ जघन्य कृष्टितैं लगाय नीचेकी कृष्टि अनुदयरूप हैं ते अनुभाग बंधनेतैं मध्यम कृष्टिरूप होंइ परिणमि उदय हो हैं। बहुरि एक भागविषै जुदा राख्या भाग मिलाएँ एकसौ बीस कृष्टि भईं ते अंत कृष्टितैं लगाय ऊपरिकी कृष्टि अनुदयरूप हैं ते अनुभाग घटनेतैं मध्यम कृष्टिरूप होइ उदय आवै हैं ऐसा अर्थ जानना।

बहुरि दूसरा समयविषैं जे आदि कृष्टि पहले समय उदयरूप न थीं तिनकौं पल्यका असंख्यातवाँ भागका भाग दीएँ एक भागमात्र नवीन कृष्टि अनुदयरूप करीं अर अंतकी कृष्टि जे पहले समय उदयरूप न थीं तिनकौं पल्यका असंख्यातवाँ भागका भाग दीएँ एक भागमात्र कृष्टि-

निकौं नवीन उदयरूप करीं। इहाँ उदयरूप करी कृष्टिनिका प्रमाण विषैं अणुदयरूप करी कृष्टिनिका प्रमाण घटाए अवशेष जो प्रमाण रहै तितना प्रमाणकरि प्रथम समयसंबंधी उदय कृष्टिनितैं अधिक दूसरा समयविषैं उदयकृष्टि हो है। अंकसंदृष्टिकरि जैसैं पहले समय उदयकृष्टि आठसै थी इहाँ द्वितीय समयविषैं पहलैं उदय ऊपरिकी एकसौ बीस कृष्टि अनुदयरूप थीं तिनकौं पाँचका भाग दीए चौईस पाए सो इतनी तौ ऊपरिकी कृष्टि नवीन उदय भईं अर जे नीचैकी कृष्टि ऐसी अनुदयरूप थीं तिनकौं पाँचका भाग दीए सोलह पाए, सो इतनी कृष्टि इहाँ नवीन उदयरूप न हो हैं ऐसैं चौवीसमें सोलह घटाए आठ रहे सो इतनी कृष्टि बंधनेतैं द्वितीय समयविषैं आठसै आठ कृष्टि उदय हो हैं। ऐसैं ही यथार्थ कथन समझना। इहाँ बहु अनुभागयुक्त ऊपरिकी कृष्टिके उदय होनेतैं अर स्तोक अनुभागयुक्त नीचेकी कृष्टि न उदय होनेतैं प्रथम समयतैं द्वितीय समयविषैं अनुभागका बंधना हो है ऐसा अर्थ जानना। ऐसैं ही तृतीयादि अंत समय पर्यंत समयनिविषै विशेषकरि अधिक कृष्टि उदय हो है। याहीतैं समय-समय प्रति कृष्टिनिका अनंतगुणा अनुभागका उदय है। ऐसैं सूक्ष्मसाम्परायका काल व्यतीत भया ॥३१४॥

विशेष—जो जीव उपशान्तकषाय गुणस्थानसे च्युत होकर सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानको प्राप्त होता है उसके संक्लेशमें वृद्धि होनेके कारण अप्रशस्त पाँच ज्ञानावरणादि कर्मोंका प्रथमादि समयोंसे द्वितीयादि समयोंमें अनन्तगुणा अनुभागबन्ध होता है और प्रशस्त कर्म सातावेदनीय और उच्चगोत्रका अनन्तगुणा हीन अनुभागबन्ध होता है। यह व्यवस्था सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समय तक जानना चाहिये। तथा इस गुणस्थानके कालमें संख्यात हजार स्थितिबन्ध होते हैं। चढ़ते समयसे उतरते समय प्रत्येक स्थितिबन्धकी अपेक्षा यहाँ दूना स्थितिबन्ध जानना चाहिये। इन विशेषताओंके अतिरिक्त यहाँ ये आवश्यक होते हैं—

(१) लोभवेदक काल अर्थात् सूक्ष्म और बादर लोभवेदक कालके प्रथम त्रिभागमें अर्थात् सूक्ष्मसाम्पराय कालके भीतर सभी कृष्टियोंमेंसे असंख्यात बहुभाग प्रमाण कृष्टियोंकी उदीरणा होती है। पहले कृष्टिकरणके कालमें जो कृष्टियाँ की गईं थीं उनमेंसे अधस्तन और उपरिम असंख्यातवें भागको छोड़कर मध्यम कृष्टिरूपसे असंख्यातवाँ भाग तब उदीरित होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

(२) दूसरी विशेषता यह है कि उतरते समय सूक्ष्मसाम्पराय जीव प्रथम समयमें स्तोक कृष्टियोंका वेदन करता है। दूसरे समयमें असंख्यातवें भाग अधिक कृष्टियोंका वेदन करता है ऐसा सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तिम समय तक जानना चाहिये।

(३) खुलासा यह है कि सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें चढ़ते समय विशुद्धिके कारण जैसे विशेष हानिरूपसे कृष्टियोंका वेदन करता है वैसे ही उतरते समय संक्लेशके कारण असंख्यात भागवृद्धिरूपसे कृष्टियोंका वेदन करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। यह सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समय तक जानना चाहिये। विशेष खुलासा दोनों टीकाओंसे कर लेना चाहिये।

अथावरोहकस्यानिवृत्तिकरणबादरसाम्पराये गुणस्थाने क्रियाविशेषं प्रदर्शयन् गाथाद्वयमाह—

बादरपढमे किट्टी मोहस्स य आणुपुव्विसंकमणं।
णट्ठं ण च उच्छिट्ठं फड्डयलोहं तु वेदयदि ॥३१५॥

---

१. किट्टीवेदगद्धाए गदाए पढमसमयबादरसांपराइयो जादो। ताहे चेव सव्वमोहणीयस्स अणाणु-

बादरप्रथमे कृष्टिः मोहस्य च आनुपूर्विसंक्रमणम् ।
नष्टं न च उच्छिष्टं स्पर्धकलोभं तु वेदयति ॥३१५॥

सं० टी०—अनिवृत्तिकरणस्य प्रथमसमये सूक्ष्मकृष्टयः उच्छिष्टावलिमात्रनिषेकान् वर्जयित्वा सर्वाः स्वरूपेण विनष्टाः सूक्ष्मकृष्टिशक्तितोऽनन्तगुणशक्तियुक्तस्पर्धकस्वरूपेणैकस्मिन् समये परिणमिता इत्यर्थः। उच्छिष्टावलिमात्रनिषेककृष्टयस्तु प्रतिसमयमेकैकनिषेकप्रमाणेन उदयमानस्पर्धकनिषेकेषु स्थितोक्तसंक्रमेण तद्रूपतया परिणम्योदेष्यन्ति । तस्मिन्नेव प्रथमसमये मोहस्यानुपूर्विसंक्रमश्च नष्टः । अयं तु विशेषः—

अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानलोभद्वयस्य संज्वलनलोभे बध्यमाने यद्यपि संक्रमः प्रारब्धस्तथापि तदविवक्षया संज्वलनलोभस्य बध्यमानसजातीयकषायान्तरासम्भवात् आनुपूर्वीसंक्रमो व्यक्त्यपेक्षया विनष्टः । शक्त्यपेक्षया संज्वलनलोभद्रव्यस्याप्यनानुपूर्व्या परप्रकृतिसंक्रमपरिणामः सञ्जातः । सूक्ष्मसाम्पराये तु मोहस्य बन्धाभावात् संक्रमो न सम्भवत्येवेति । तथैव स्पर्धकगतं बादरसंज्वलनलोभमुदयमानमनुभवन् जीवो बादरसाम्परायानिवृत्तिकरणप्रथमसमये संज्वलनलोभद्रव्यमपकृष्य उदगसमयादारभ्य बादरलोभवेदककालसाधिकद्वित्रिभागमात्रे आवल्यभ्यधिके २ ७ ॥ २/३ अवस्थितायामे प्रतिनिषेकमसंख्यातगुणितक्रमेण निक्षिपति । प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानलोभद्वयद्रव्यमपकृष्य उदयावलिबाह्ये पूर्वोक्तायामे असंख्यातगुणितक्रमेण निक्षिपति । द्वितीयादिसमयेषु पुनरसंख्येयगुणहीनं द्रव्यमपकृष्यावस्थितायामे गुणश्रेणिं करोति ॥३१५॥

स० चं०—अवरोहक अनिवृत्तिकरणका प्रथम समयविषैं सूक्ष्मकृष्टि हैं ते उच्छिष्टावलीमात्र निषेक विना अन्य सर्वही स्वरूप करि नष्ट भईं सूक्ष्मकृष्टिकी अनुभागशक्तितैं अनंतगुणी शक्तियुक्त जो स्पर्धक तिन स्वरूप होइ एकही समयविषैं परिणईं । बहुरि कृष्टिके उच्छिष्टावलीमात्र निषेक रहे ते समय-समय प्रति एक-एक निषेककरि उदयमान जे स्पर्धकके निषेक तिनविषै थिउक्क संक्रमणकरि तद्रूप परिणमि उदय होसी । बहुरि तिसही प्रथम समयविषैं मोहका आनुपूर्वी संक्रम भी नष्ट भया । इतना विशेष—जो अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान लोभका बध्यमान जो संज्वलन लोभ तिसहीविषैं संक्रम होनेका प्रारंभ भया, तथापि याविषैं आनुपूर्वी संक्रमकी विवक्षा नाहीं । बहुरि संज्वलन लोभकैं बध्यमान और कोई स्वजातीय प्रकृति नाहीं तातैं व्यक्ति अपेक्षा आनुपूर्वी संक्रम नष्ट भया । शक्ति अपेक्षा संज्वलन लोभके आनुपूर्वीकरि अन्य प्रकृतिविषैं संक्रम होनेका परिणाम भया है । बहुरि सूक्ष्मसाम्परायविषैं मोहके बंधका अभावतैं संक्रम संभवै नाहीं । बहुरि तथैव स्पर्धकरूप जो बादर लोभ उदय आया ताकौं भोगवता जो अनिवृत्तिकरण बादरसाम्पराय ताका प्रथम समयविषैं संज्वलन लोभका द्रव्यकौं अपकर्षण करि उदयरूप समयतै लगाय बादर लोभवेदक कालका साधिक दोय तीसरे भाग आवलीकरि अधिक प्रमाणमात्र जो गुणश्रेणि आयाम तिसविषैं असंख्यातगुणा क्रमलीएँ निक्षेपणकरै है । अर प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान लोभका द्रव्यकौं उदयावलीतैं बाह्य पूर्वोक्त गुणश्रेणी आयामविषैं असंख्यातगुणा क्रमलीएँ निक्षेपण करै है । बहुरि अनिवृत्तिका द्वितीयादि समयनिविषै असंख्यातगुणा घटता क्रमलीएँ द्रव्यकौं अपकर्षणकरि

पुव्विओ संकमो । ताहे चेव दुविहो लोहो लोहसंजलणे संछुहदि । ताहे चेव फड्डयगदं लोहं वेदेदि । किट्टीओ सव्वाओ णट्ठाओ । णवरि जाओ उदयावलियब्भंतराओ ताओ त्थिवुक्कसंकमेण फड्डएसु विपच्चहिंति । ता० मु०, पृ० १८९५–१८९६ ।

अवस्थित गुणश्रेण्यायामविषै पूर्वोक्तप्रकार निक्षेपण करै है। अन्य कर्मनिकी गलितावशेष गुण-श्रेणी पूर्वै कही है सोई जाननी ॥३१५॥

ओदरबादरपढमे-लोहस्संतोमुहुत्तियो बंधो।
दुदिणंतो घादितियं चउवस्संतो अघादितियं ॥३१६॥

अवतरबादरप्रथमे लोभस्यान्तर्मुहूर्तको बन्धः।
द्विदिनान्तो घातित्रिके चतुर्वर्षान्तोऽघातित्रये ॥३१६॥

सं० टी०—अवतारकबादरसाम्परायानिवृत्तिकरणप्रथमसमये संज्वलनलोभस्य स्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्त-मात्रः, स चारोहकतच्चरमसमयस्थितिबन्धाद् द्विगुणः। ज्ञानदर्शनावरणान्तरायाणां किञ्चिन्न्यूनदिनद्वयमात्रः। नामगोत्रयोः किञ्चिन्न्यूनचतुर्वर्षमात्रः। वेदनीयस्य तीसियप्रतिभागत्वाद् द्व्यर्धगुणितकिञ्चिन्न्यूनचतुर्वर्ष-मात्रः। ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रे समबन्धकाले गते पुनः संज्वलनलोभस्थितिबन्धो विशेषाधिकः २ १। २ घाति-त्रयस्य दिनपृथक्त्वं दि ७ अघातित्रयस्य संख्यातसहस्रवर्षमात्रः १ ० ० ० १ एवं संख्यातसहस्रेषु स्थिति-
८
बन्धेषु आकृष्योत्कृष्यं संवृत्तेषु यदा लोभवेदककाल २ १ ३ (?) द्वितीयत्रिभागस्य २ १ १ संख्येयभागो
३ ३
गतः २ १ १ तदा संज्वलनलोभस्य स्थितिबन्धो मुहूर्तमात्रपृथक्त्वं। मु ७। घातित्रयस्य वर्षसहस्रपृथक्त्वं
१ ३ ८
व १ ० ० ० ७ अघातित्रयस्य संख्येयसहस्रवर्षमात्रः व १ ० ० ० १ १ एवं स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु लोभ-
८
वेदककालः समाप्तो भवति। अयं विशेषः—

आरोहकस्य लोभवेदककालादवरोहकस्य लोभवेदककालः किञ्चिन्न्यून इति ज्ञातव्यम्। एवं सर्वत्र मायावेदकादिकालेषु अपि आरोहककालादवरोहकस्य किञ्चिन्न्यूनता द्रष्टव्या ॥३१६॥

स० चं०—उतरनेवाला बादरसाम्पराय अनिवृत्तिकरणका प्रथम समयविषै संज्वलन लोभका स्थितिबंध अंतर्मुहूर्तमात्र है सो चढनेवाला अनिवृत्तिकरणका अंत समयसंबंधी स्थिति-बंधतैं दूणा जानना। बहुरि तीन घातियानिका किछू घाटि दोय दिन, नाम गोत्रका किछू घाटि च्यारि दिन, वेदनीयका यातैं ड्योढ गुणा स्थितिबंध है। बहुरि अंतर्मुहूर्त पर्यंत ऐसा समान बंध भया पीछैं संज्वलन लोभका पूर्वतैं किछू अधिक तीन घातियानिका पृथक्त्व दिनमात्र तीन अघाति-यानिका संख्यात हजार वर्षमात्र स्थितिबंध भया। बहुरि ऐसैं वृद्धिरूप संख्यात हजार स्थितिबंध भएँ लोभ वेदक कालका दूसरा त्रिभागका संख्यातवाँ भाग व्यतीत भया तब संज्वलन लोभका पृथक्त्व मुहूर्त, तीन घातियानिका पृथक्त्व हजार वर्ष, तीन अघातियानिका संख्यात हजारवर्ष प्रमाण स्थितिबंध हो है। बहुरि हजारों स्थितिबंध गएँ लोभ वेदकका काल समाप्त हो है। आरो-हकके लोभ वेदकका कालतैं अवरोहकका लोभ वेदक काल किंचित् न्यून है। ऐसैं ही मायावेदक

---

१. पढमसमयबादरसांपराइयस्स लोभसंजलणस्स ट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तो, तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो अहोरत्ताणि देसूणाणि, वेदणीय-णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो चत्तारि वस्साणि देसूणाणि। ता० मु०, पृ० १८९७।

क[redacted] विपै किंचित् न्यूनता जाननी। जिस कषायका जेता कालविषै उदयका भोगना होइ तिस प्रमाण ताका वेदक काल जानना ॥३१६॥

अथावरोहकानिवृत्तिकरणबादरसाम्परायस्य मायावेदककाले क्रियाविशेषप्रदर्शनार्थं गाथाद्वयमाह—

ओदरमायापढमे मायातिण्हं च लोभतिण्हं च।
ओदरमायावेदगकालादहियो दु गुणसेढी ॥३१७॥

अवतरमायाप्रथमे मायात्रयाणां च लोभत्रयाणां च।
अवतरमायावेदककालादधिका तु गुणश्रेणी ॥३१७॥

सं० टी०—लोभवेदककालसमाप्त्यनन्तरं मायावेदककालप्रथमसमये अवतारकानिवृत्तिकरणः, अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनमायात्रयद्रव्यं तत्तद्द्वितीयस्थितेरपकृष्य उदयवतो मायासंज्वलनस्य उदयसमयादारभ्यावतारकमायावेदककालादावल्यधिके $\frac{१-}{२}$ ७ अवस्थितायामे गुणश्रेणिं करोति। उदयरहितस्य मायाद्वयस्य उदयावलिबाह्ये तावन्मात्रायामे $\frac{१-}{२}$ ७ अवस्थितगुणश्रेणिं करोति। तथा उदयरहिस्य लोभत्रयस्यापि द्वितीयस्थितिद्रव्यमपकृष्य उदयावलिबाह्ये संज्वलनमायावेदककाल २ ७ मात्रे अवस्थितायामे गुणश्रेणिं करोति। ज्ञानावरणादिशेषकर्मणां प्रागुक्तायामे गलितावशेषगुणश्रेणिं करोति। तस्मिन्नेव मायावेदकप्रथमसमये लोभत्रयद्रव्यं मायाद्वयद्रव्यं च मायासंज्वलने संक्रामति तस्य बन्धसम्भवात्। तथा द्विविधमायाद्रव्यं त्रिविधलोभद्रव्यं च लोभसंज्वलने संक्रामति, तस्यापि बन्धसम्भवात्। बन्धरहितेषु न संक्रामति अनानुपूर्वीसंक्रमप्रतिज्ञानादेवंविधसंस्थुलसंक्रमणसम्भवः ॥३१७॥

मायावेदकके क्रियाविशेषका निर्देश—

स० चं०—लोभ वेदक कालके अनंतरि माया वेदक कालका प्रथम समयविषैं उतरनेवाला अनिवृत्तिकरण है सो अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान संज्वलन मायाके द्रव्यकौं अपनी अपनी द्वितीय स्थितिविषैतैं अपकर्षणकरि उदयरूप जो संज्वलन नाम माया ताके द्रव्यकौं तौ उदयावलीका प्रथम समयतैं लगाय अर उदय रहित दोय मायाके द्रव्यकौं उदयावलीतैं बाह्य प्रथम समयतैं लगाय आवलीकरि अधिक मायावेदक कालप्रमाण अवस्थिति आयामविषैं गुणश्रेणि करै है। बहुरि उदयरहित तीन लोभ तिनका भी द्वितीय स्थितिके द्रव्यकौं अपकर्षण करि उदयावलीतैं बाह्य साधिक मायावेदक कालमात्र अवस्थिति आयामविषैं गुणश्रेणि करै है। अर अवशेष छह कर्मनिकी पूर्वोक्त गलितावशेष आयामविषैं गुणश्रेणि करै है। बहुरि तिस ही माया वेदककालका प्रथम समयविषैं तीन लोभका द्रव्य दोय मायाका द्रव्य है सो संज्वलन मायाविषैं संक्रमण करै है। अथवा दोय मायाका द्रव्य तीन लोभका द्रव्य है सो संज्वलन लोभविषैं संक्रमण करै है जातैं इहाँ

१. से काले मायं तिविहमोकड्डियूण मायासंजलणस्स उदयादिगुणसेढी कदा, दुविहाए मायाए आवलियबाहिरा गुणसेढी कदा। पढमसमयवेदगस्स गुणसेढिणिक्खेवो तिविहस्स लोहस्स तिविहाए मायाए च तुल्लो मायावेदगद्धादो विसेसाहिओ। सव्वमायावेदगद्धाए तत्तियो तत्तियो चेव णिक्खेवो। सेसाणं कम्माणं जो पुण पुव्विल्लो णिक्खेवो तस्स सेसे सेसे चेव णिक्खवदि। मायावेदगस्स लोहो तिविहो माया दुविहा मायासंजलणे संकमदि, माया तिविहा लोभो चउव्विहो लोभसंजलणे संकमदि। ता० मु०, पृ० १८९८–१८९९।

संज्वलन लोभ वा मायाहीका बंध है। अर बंधविषै हो संक्रमण हो है। आनुपूर्वी संक्रमणके अभावतैं ऐसें बंध सभवै है ॥३१७॥

ओदरमायापढमे मायालोभे दुमासठिदिबंधो।
छण्हं पुण वस्साणं संखेज्जसहस्सवस्साणि[1] ॥३१८॥

अवतरमायाप्रथमे मायालोभे द्विमासस्थितिबन्धः।
षण्णां पुनः वर्षाणां संख्येयसहस्रवर्षाणि ॥३१८॥

सं० टी०—अवतारकमायावेदकप्रथमसमये संज्वलनमायालोभयोः स्थितिबन्धो द्विमासमात्रः। घातित्रयस्य संख्यातसहस्रवर्षमात्रः, अघातित्रयस्य ततः संख्येयगुणः। एवं स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु मायावेदककालः समाप्तो भवति ॥३१८॥

स० चं०—उतरनेवाला मायावेदक कालका प्रथम समयविषै संज्वलन माया लोभका दोय मास, तीन घातियानिका संख्यात हजार वर्ष तीन अघातियानिका तातैं संख्यातगुणा स्थितिबध हो है। ऐसैं संख्यात हजार स्थितिबन्ध भए माया वेदककाल समाप्त भया ॥३१८॥

अथ मानवेदकस्य क्रियाविशेषं प्ररूपयन् गाथाद्वयमाह—

ओदरगमाणपढमे तेत्तियमाणादियाण पयडीणं।
ओदरगमाणवेदगकालादहियं दु गुणसेढी[2] ॥३१९॥

अवतरकमानप्रथमे तावन्मानादिकानां प्रकृतीनाम्।
अवतरकमानवेदककालादधिका तु गुणश्रेणी ॥३१९॥

सं० टी०— अयमवतारकानिवृत्तिकरणे मायावेदककालपरिसमाप्त्यनन्तरसमये संज्वलनमानद्रव्यमपकृष्य उदयसमयादारभ्य मानवेदककालावलिकाभ्यधिके अवस्थितायामे गुणश्रेणिं करोति। मध्यममानद्वयस्य मायात्रयस्य लोभत्रयस्य च द्रव्यमपकृष्य उदयावलिबाह्यं तावन्मात्रायामे अवस्थितगुणश्रेणिं करोति। तस्मिन्नेव मानवेदकप्रथमसमये नवविधकषायद्रव्यमनानुपूर्व्या बध्यमानलोभमायामानेषु संक्रामति ॥३१९॥

स० चं०—ताके अनंतरि मान वेदककालका प्रथम समयविषै संज्वलन मानका द्रव्यकौं अपकर्षणकरि उदयावलीका प्रथम समयतैं लगाय अर दोय मान तीन माया तीन लोभनिके द्रव्यकौं अपकर्षणकरि उदयावलीतैं बाह्य प्रथम समयतैं लगाय आवली अधिक मान वेदक

---

१. पढमसमयमायावेदगस्स दोण्हं संजलणाणं दुमासट्ठिदिगो बंधो, सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जवस्ससहस्सणि। ता० मु०, पृ० १८९९।

२. तदो से काले तिविहं माणमोकड्डियूण माणसंजलणस्स उदयादिगुणसेढिं करेदि, दुविहस्स माणस्स आवलियबाहिरे गुणसेढिं करेदि, णवविहस्स वि कसायस्स गुणसेढिणिक्खेवो जो तस्स पडिपदमाणगस्स माणवेदगद्धा तत्तो विसेसाहिओ णिक्खेवो, मोहणीयवज्जाणं कम्माणं जा पढमसमयसुहुमसांपराइयेण णिक्खेवो णिक्खित्तो तस्स णिक्खेवस्स सेसे णिक्खिवदि। पढमसमयमाणवेदगस्स णवविहो वि कसायो संकमदि। ता० मु०, पृ० १९००।

कालका प्रमाण अवस्थित आयामविषै गुणश्रेणि करै है। औरनिको गलितावशेष गुणश्रेणि आयाम है ही। बहुरि तिस ही समयविषै अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान संज्वलन लोभ माया मानरूप नव कषायनिका द्रव्य है सो इहाँ बध्यमान संज्वलन मान माया लोभनिविषै आनुपूर्वी रहित जहाँ तहाँ संक्रमण करै है ॥३१९॥

ओदरगमाणपढमे चउमासा माणपहुदिठिदिबंधो।
छण्हं पुण वस्साणं संखेज्जसहस्समेत्ताणि[1] ॥३२०॥

अवतरकमानप्रथमे चतुर्मासा मानप्रभृतिस्थितिबन्धः।
षण्णां पुनः वर्षाणां संख्येयसहस्रमात्राणि ॥३२०॥

सं० टी०—तस्मिन्नेव मानवेदकप्रथमसमये संज्वलनमानमायालोभानां स्थितिबन्धश्चतुर्मासमात्रः। घातित्रयस्य संख्यातसहस्रवर्षमात्रः। अघातित्रयस्य ततः संख्येयगुणः। एवं स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु मानवेदककालः समाप्तो भवति ॥३२०॥

स० चं०—तिसही उतरनेवाले मान वेदक कालका प्रथम समयविषैं संज्वलन मान माया लोभनिका चारि मास तीन घातियानिका संख्यात हजार वर्ष तीन अघातियानिका तातैं संख्यातगुणा स्थितिबन्ध हो है। ऐसैं संख्यात हजार स्थितिबन्ध भए मानवेदकका काल समाप्त भया ॥३२०॥

अथानिवृत्तिकरणबादरसाम्परायस्य संज्वलनक्रोधे प्रतिपातप्ररूपणार्थं गाथाद्वयमाह—

ओदरगकोहपढमे छक्कम्मसमाणया हु गुणसेढी।
बादरकसायाणं पुण एत्तो गलिदावसेसं तु[2] ॥३२१॥

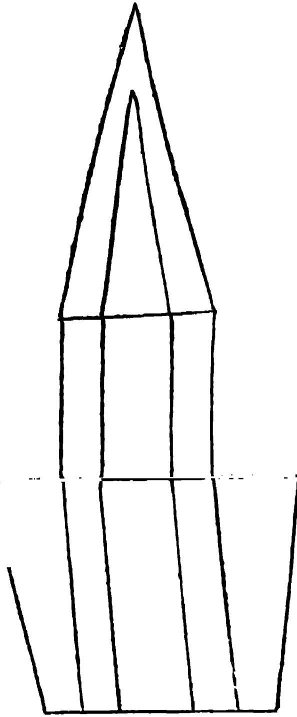
अवतरकक्रोधप्रथमे षट्कर्मसमानिका हि गुणश्रेणी।
बादरकषायाणां पुनः इतः गलितावशेषं तु ॥३२१॥

सं० टी०—संज्वलनमानवेदककालसमाप्त्यनन्तरं सोऽयमवतारकोऽनिवृत्तिकरणः संज्वलनक्रोधोदयप्रथमसमये ज्ञानावरणादिषट्कर्मणां प्रागुपक्रान्तेनावतारकानिवृत्त्यपूर्वकरणकालद्वयाद्विशेषाधिकगलितावशेषगुणश्रेण्यायामेन समाने आयामे द्वादशकषायाणां गुणश्रेणिं गलितावशेषां करोति। इतः पूर्वं मोहनीयस्यावस्थितायामा गुणश्रेणी कृता। इदानीं पुनर्गलितावशेषायामा प्रारब्धेत्ययं विशेषः। यस्य कषायस्योदयेनो-

१. ताधे तिण्हं संजलणाणं ट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा पडिपुण्णा, सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। ता० मु०, पृ० १९००।

२. से काले तिविहं कोहमोकड्डियूण कोहसंजलणस्स उदयादिगुणसेढिं करेदि। एण्हिं गुणसेढिणिक्खेवो केत्तिओ कायव्वो। पढमसमयकोधवेदगस्स बारसण्हं पि कसायाणं जो गुणसेढिणिक्खेवो सो सेसाणं कम्माणं गुणसेढिणिक्खेवेण सरिसो होदि। जहा मोहणीयवज्जाणं कम्माणं सेसे सेसे गुणसेढिं णिक्खिवदि तहा एत्तो पाए बारसण्हं कसायाणं सेसे गुणसेढी णिक्खिविदव्वा। पढमसमयकोहवेदगस्स बारसविहस्स वि कसायस्स संकमो होदि। ता० मु०, पृ० १९०१–१९०२।

पशमश्रेणीमारूढो जीवः पुनरवतरणे तस्य कषायस्य उदयसमयादारभ्य गलितावशेषगुणश्रेणिरन्तरापूरं च क्रियते। तत्रोदयवतः संज्वलनक्रोधस्य द्रव्यमपकृष्य स ३ १२- पल्यासंख्यातभागेन खण्डयित्वा तदेक-
७।८।ओ
भागं स ३ १२- उदयादिगुणश्रेण्यायामे निक्षिपति। पुनर्द्वितीयस्थितौ प्रथमनिषेकद्रव्यं स ३ १२- इदं,
७।८।ओ प
३
७।८।१२
पदहतमुखमादिधनमित्यनेनान्तर्मुहूर्तमात्रान्तरायामेन गुणयित्वा लब्धं समपट्टिकाधनं— स ३ १२-।२ ११
७।८।१२
द्वितीयस्थितिप्रथमनिषेके द्विगुणगुणहान्या विभज्य द्वाभ्यां गुणिते अधस्तनगुणहानिचयो भवति। सैकपदाह-
१-
तपददलचयहतमुत्तरधनमित्यानीतं चयधनं स ३ १२-।२।२ ११।२ ११ इदं प्रागानीते समपट्टिकाधने
७।८।१२।१६।२
साधिकं कुर्यात् स ३।१२-।२ ११ एतावद्द्रव्यमपकृष्टद्रव्यस्य पल्यासंख्यातभागखण्डितबहुभागद्रव्यात् गृहीत्वा
७।८।१२
अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदेत्यादिविधिना विशेषहीनक्रमेणान्तरायामे निक्षिपेत्। अवशिष्टबहुभागद्रव्यं
१०
स ३ १२- प द्वितीयस्थितौ 'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा' इत्यादिविधिना नानागुणहानिषु विशेषहीन-
३
७।८।ओ प
३
क्रमेण तत्तदपकृष्टनिषेकमतिस्थापनावलिमात्रेणाप्राप्य निक्षिपति। एवं निक्षिप्ते गुणश्रेणिशीर्षद्रव्यादन्तरायाम-प्रथमसमयनिक्षिप्तद्रव्यमसंख्यातगुणहीनम्। अन्तरायामचरमसमयनिक्षिप्तद्रव्याद् द्वितीयस्थितिप्रथमसमयनिक्षिप्त-द्रव्यमसंख्यातगुणहीनं द्रष्टव्यम्। एवमुदयरहितानां शेषैकादशकषायाणां द्रव्यमपकृष्य उदयावलिबाह्यगुण-श्रेण्यायामे अन्तरायामे द्वितीयस्थितौ च द्रव्यत्रयनिक्षेपविधिः कर्तव्यः।



स ə १२ १६ – ८
७ । ८ । ओ १६ प १६
ə २

स ə १२ – १६
७ । ८ । ओ । १२ । १६

स ə १२ – २ ९ । १६
७ । ८ । २ ९ । १६ – २ ९ १६
२

स ə १२ – २ ९ १६ – २ ९
७ । ८ । २ ९ । १६ – २ ९ १६
२

स ə १२ – ६४
७ । ८ । ओ प ८५
ə

स ə । १२ – १
७ । ८ । ओ प ८५
ə

संज्वलनमानादित्रयद्रव्ये स ə १२– ३ । सर्वघातिमध्यमकषायाष्टकद्रव्येण तदनन्तकभागमात्रेण—
७ । ८

स ə १२– । ८ साधिकशेषैकादशकषायद्रव्यमित्थं भवति स ə १२– । ३ अस्मादपकृष्य गुणश्रेण्यादिषु
७ । ख १७ ७ । ८

निक्षिपतीत्यर्थः । संज्वलनक्रोधोदयप्रथमसमये द्वादशकषायाणां द्रव्यं वध्यमानेषु संज्वलनक्रोधादिषु चतुर्षु अनानुपूर्व्या संक्रमति ॥३२१॥

संज्वलन क्रोधमें क्रियाविशेषका विचार—

स० चं०—ताके अनंतरि उतरनेवाला अनिवृत्तिकरण है सो संज्वलन क्रोधके उदयका प्रथम समयविषै अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान संज्वलन क्रोध मान माया लोभरूप बारह कषायनिकी ज्ञानावरणादि छह कर्मनिके समान गलितावशेष गुणश्रेणि करै है। याके आयामका प्रमाण उतरनेवालेका अनिवृत्तिकरण अपूर्वकरणके कालतैं किछू अधिक है। इहाँतैं पहलै मोहका गुणश्रेणि आयाम अवस्थित था अब गलितावशेष प्रारंभ भया। बहुरि इतना जानना—

जिस कषायके उदयकरि उपशमश्रेणी चढ्या होइ बहुरि उतरनेविषै तिस कषायका जिस समय उदय होइ तिस समयतैं लगाय सर्व मोहकी गलितावशेष गुणश्रेणी करिए है। अर

अन्तरका पूरना करिए है सो इहां क्रोधकी विवक्षा हैं तातैं तिसकी अपेक्षा ही कथन करिए है—

तहाँ उदयवान् जो संज्वलन क्रोध ताके द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ तहाँ एक भागकौं ग्रहि ताकौं पल्यका असंख्यातवाँ भागका भाग देइ तहाँ एक भाग तौ उदय समयतैं लगाय गुणश्रेणि आयामविषै निक्षेपण करै है। बहुरि बहुभागमात्र द्रव्यविषै कितना इक द्रव्यकौं अंतरायामविषै "अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे" इत्यादि विधानतैं चय घटता क्रम लीएँ निक्षेपण करि अवशेष द्रव्यकौं तिस क्रोधकी द्वितीय स्थितिविषै 'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा' इत्यादि विधानतैं नानागुणहानिविषै अंतविषै अतिस्थापनावली छोडि निक्षेपण करै है। इहाँ अंतरायामविषैं कितना द्रव्य दीया ताके जाननेकौं उपाय कहैं हैं—

द्वितीय स्थितिके प्रथम निषेकका जो द्रव्यका प्रमाण ताकौं 'पदहतमुखमादिधनं' इस सूत्रकरि अंतरायाममात्र गच्छकरि गुणैं अंतरायामविषैं समपट्टिकारूप आदिधन हो है। बहुरि द्वितीय स्थितिके प्रथम निषेककौं दो गुणहानिका भाग दीएँ द्वितीय स्थितिकी प्रथम गुणहानिविषैं चयका प्रमाण आवै है। ताकौं दोयकरि गुणैं ताके नीचैं जो अन्तरायाम तीहिंविषै चयका प्रमाण आवै है। बहुरि "सैकपदाहतपददलद्वयहतमुत्तरधनं" इस सूत्रकरि एक अधिक गच्छकरि गच्छका आधा प्रमाणकौं गुणि बहुरि ताकौं चयका प्रमाण करि गुणें उत्तर धनका प्रमाण आवै है। इहाँ प्रथम स्थानविषै भी चय मिल्या है तातैं ऐसा सूत्र कह्या है सो आदि धन उत्तर धन मिलाएँ जो प्रमाण भया तितना द्रव्य इहाँ अंतरायामविषै दीजिए है। इहाँ द्वितीय स्थितिका प्रथम निषेकके नीचैं अंतरायाम है तातैं ताकी अपेक्षातैं कथन कीया है सो इतना द्रव्य दीएँ जिनि निषेकनिका अभाव कीया था तिनिका सद्भाव जैसा प्रथम स्थितिके नीचैं चय घटता क्रम लीएँ संभवै तैसा हो है। ऐसैं निक्षेपण कीएँ गुणश्रेणि शीर्षकेविषै निक्षेपण कीया द्रव्यतैं अंतरायामका प्रथम निषेकविषै निक्षेपण कीया द्रव्य असंख्यातगुणा घटता है। बहुरि अंतरायामका अंतनिषेकविषै निक्षेपण कीया द्रव्यतैं द्वितीय स्थितिका प्रथम समयविषै निक्षेपण कीया द्रव्य असंख्यातगुणा घटता है ऐसा जानना। बहुरि संज्वलन मानादिक तीन कषायका द्रव्यविषै ताके अनंतवे भागमात्र सर्वघाती अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान आठ कषायनिका द्रव्यकौं अधिक कीएँ उदय रहित ग्यारह कषायनिका द्रव्य हो है। तिस द्रव्यतैं अपकर्षण करि उदयावलीतैं बाह्य गुणश्रेणि आयामविषैं अंतरायामविषै द्वितीय स्थितिविषै निक्षेपण पूर्वोक्त प्रकार दीजिए है। बहुरि क्रोध उदयका प्रथम समयविषैं बारह कषायनिका द्रव्यकौं तत्काल बध्यमान जे संज्वलन क्रोधादिक च्यारि तिनिविषै आनुपूर्वी विना जहाँ तहाँ संक्रमण करै है ॥३२१॥

विशेष—उपशमश्रेणिसे उतरते समय जब यह जीव क्रोध संज्वलनके वेदनके प्रथम समयमें स्थित होता है तब ज्ञानावरणादि कर्मोंके साथ बारह कषायोंका गलितशेष गुणश्रेणि निक्षेप होता है तथा जब इस प्रकारका गुणश्रेणि निक्षेप होता है तभी अन्तरको भरा जाता है। उसको भरनेकी प्रक्रिया यह है कि बारह कषायके द्रव्योंका अपकर्षण करता हुआ गुणश्रेणि निक्षेपके साथ अन्तरको पूरा करते हुए क्रोध संज्वलनके द्रव्यको उदयमें थोड़ा देता है उससे ऊपर ज्ञानावरणादि कर्मोंके पूर्व निक्षिप्त गुणश्रेणि शीर्षके प्राप्त होने तक असंख्यातगुणे द्रव्यका निक्षेप करता है। उससे आगे अन्तरसम्बन्धी अन्तिम स्थितिके प्राप्त होने तक विशेष हीन क्रमसे द्रव्य देता है। उससे आगे द्वितीय स्थितिके प्रथम निषेकमें असंख्यातगुणे द्रव्यका निक्षेप करता है।

उससे आगे अपनी-अपनी अतिस्थापनावलिके प्राप्त होने तक विशेष हीन क्रमसे द्रव्यका निक्षेप करता है। इसी प्रकार शेष कषायोंके अन्तरको पूरा करता है। इतनी विशेषता है कि उनके द्रव्यका उदयावलिके बाहर निक्षेप करता है। आगे सात नोकषायों तथा स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके अपने-अपने अन्तरको पूरा करनेका विधान भी इसी प्रकार करना चाहिये। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि जिस कषायके उदयसे श्रेणि चढ़े उसका अपकर्षण होनेपर क्रोधकषायके समान ही गुणश्रेणिनिक्षेप और अन्तरको भरनेकी विधि कहनी चाहिये।

ओदरगकोहपढमे संजलणाणं तु अट्ठमासठिदी।
छण्हं पुण वस्साणं संखेज्जसहस्सवस्साणि[1] ॥३२२॥

अवतरकक्रोधप्रथमे संज्वलनानां तु अष्टमासस्थितिः।
षण्णां पुनः वर्षाणां संख्येयस[हस्र]वर्षाणि ॥३२२॥

सं० टी०—अवतारकानिवृत्तिकरणसंज्वलनक्रोधोदयप्रथमसमये संज्वलनचतुष्टयस्य स्थितिबन्धोऽष्टमासमात्रः। घातित्रयस्य संख्यातसहस्रवर्षमात्रः। ततः संख्येयगुणो नामगोत्रयोः। ततः द्व्यर्धगुणितो वेदनीयस्य ॥३२२॥

स० चं०—उतरनेवालेकैं क्रोध उदयका प्रथम समयविषै संज्वलन च्यारि कषायनिका आठ मास, तीन घातियानिका संख्यात हजार वर्ष, नाम गोत्रका तातैं संख्यातगुणा वेदनीयका तातैं ड्योढा स्थितिबंध हो है ॥३२२॥

अथावतारकानिवृत्तिकरणस्य पुंवेदोदयकाले सम्भवत्क्रियाविशेषान् गाथाचतुष्टयेनाह—

ओदरगपुरिसपढमे सत्तकसाया पणट्ठउवसमणा।
उणवीसकसायाणं छक्कम्माणं समाणगुणसेढी[2] ॥३२३॥

अवतरकपुरुषप्रथमे सप्तकषायाः प्रणष्टोपशमकाः।
एकोनविंशकषायाणां षट्कर्मणां समान[गु]णश्रेणी ॥३२३॥

सं० टी०—संज्वलनक्रोधवेदककाले पुंवेदोदयप्रथमसमये युगपदेव पुंवेदो हास्यादिषण्णोकषायाश्च प्रणष्टोपशमनकरणाः सञ्जाताः। तदैव द्वादशकषायाणां सप्तनोकषायाणां च ज्ञानावरणादिषट्कर्मगुणश्रेण्यायामसमानेन आयामेन गुणश्रेणिं करोति। तत्रोदयवतोः पुंवेदसंज्वलनक्रोधयोः द्रव्यमपकृष्य उदयादिगुणश्रेण्यायामे अन्तरायामे द्वितीयस्थितौ च संज्वलनक्रोधोक्तप्रकारेण द्रव्यनिक्षेपं करोति। उदयरहितानां

१. ताधे ट्ठिदिबंधो चउण्हं संजलणाणमट्ठमासा पडिपुण्णा, सेसाणं कम्माणं ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। ता० मु०, पृ० १९०२।

२. तदो से काले पुरिसवेदगस्स बंधगो जादो। ताधे चेव सत्तण्हं कम्माणं पदेसग्गं पसत्थउवसामणाए सव्वमणुवसन्तं, ताधे चेव सत्तकम्मंसे ओकड्डियूण पुरिसवेदस्स उदयादिगुणसेढिसीसयं करेदि, छण्हं कम्मंसाणमुदयावलियबाहिरे गुणसेढिं करेदि, गुणसेढिणिक्खेवो बारसण्हं कसायाणं सत्तण्हं णोकसयावेदणीयाणं सेसाणं च आउगवज्जाणं कम्माणं गुणसेढिणिक्खेवेण तुल्लो सेसे सेसे च णिक्खिवदि।

ता० मु०, पृ० १९०२–१९०३।

शेषकषायनोकषायाणां द्रव्यमपकृष्य उदयावलिबाह्यगुणश्रेण्यायामे अन्तरायामे द्वितीयस्थितौ च पूर्वोक्तप्रकारेण निक्षिपति। तदैव सप्तनोकषायाणामनानुपूर्व्या संक्रमोऽपि पूर्ववज्ज्ञातव्यः। तदैव पुंवेदस्य बन्धोऽपि प्रारब्धः ॥३२३॥

क्रोध और पुरुषवेद आदिके उदयमें होनेवाले कार्यविशेष—

स० चं०—संज्वलन क्रोध वेदक कालविषै पुरुष वेदका उदय होनेका प्रथम समयविषै पुरुषवेद अर छह हास्यादिक ए सात कषाय हैं ते नष्ट भया है उपशमकरण जिनकौं ते ऐसे भए। तब ही बारह कषाय अर सात नोकषायनिकी ज्ञानावरणादि छह कर्मनिके समान आयामविषै गुणश्रेणि करै है। तहाँ उदयरूप पुरुषवेद संज्वलन क्रोधके द्रव्यकौं तौ अपकर्षण करि उदय समयतैं लगाय अर अन्य कषायनिका द्रव्यकौं अपकर्षणकरि उदयावलीतैं बाह्य समयतैं लगाय पूर्वोक्त प्रकार गुणश्रेणि आयाम अंतरायाम द्वितीय स्थितिविषै निक्षेपण करै है। बहुरि तब ही सात नोकषायनिका द्रव्य आनुपूर्वी विना जहाँ तहाँ संक्रमण करै है। बहुरि तब ही पुरुषवेदके बंधका प्रारंभ हो है ॥३२३॥

पुंसंजलणिदराणं वस्सा बत्तीसयं तु चउसट्ठी।
संखेज्जसहस्साणि य तक्काले होदि ठिदिबंधो[1] ॥३२४॥

पुं ःज्वलनेतरेषां वर्षाणि द्वात्रिंशत् चतुःषष्टिः।
संख्येयसहस्राणि च तत्काले भवति स्थितिबन्धः ॥३२४॥

सं० टी०—अवतारकस्य पुंवेदोदयप्रथमसमये पुंवेदस्य द्वात्रिंशद्वर्षमात्रः स्थितिबन्धः। संज्वलन-चतुष्कस्य च चतुःषष्टिवर्षमात्रः। घातित्रयस्य संख्यातसहस्रवर्षमात्रः। नामगोत्रयोस्ततः संख्येयगुणः। वेदनीयस्य ततो द्व्यर्धगुणः ॥३२४॥

स० चं०—उतरनेवालेकैं पुरुषवेद उदयका प्रथम समयविषै पुरुष वेदका बत्तीस वर्ष, संज्वलनचतुष्कका चौसठि वर्ष, तीन घातियानिका संख्यात हजार वर्ष, नाम गोत्रका तातैं संख्यातगुणा, वेदनीयका तातैं ड्योढा स्थितिबंध हो है ॥३२४॥

पुरिसे दु अणुवसंते इत्थी उवसंतगो त्ति अद्धाए।
संखाभागासु गदेसु असंखवस्सं अघादिठिदिबंधो[2] ॥३२५॥

पुरुषे तु अनुपशान्ते स्त्री उपशान्तका इति अद्धायाः।
संख्यभागेषु गतेष्वसंख्यवर्षं अघातिस्थितिबन्धः ॥३२५॥

१. ताधे चेव पुरिसवेदस्स ट्ठिदिबंधो बत्तीसवस्साणि, संजलणाणं ट्ठिदिबंधो चउसट्ठिवस्साणि, सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। ता० मु०, पृ० १९०३।

२. पुरिसवेदे अणुवसंते जाव इत्थिवेदो उवसंतो एदिस्से अद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु णामागोद-वेदणीयाणमसंखेज्जट्ठिदिगो बंधो। ताधे अप्पाबहुअं कायव्वं। सव्वत्थोवो मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो। तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। णामागोदाणं ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसा-हिओ। ता० मु०, पृ० १९०३–१९०४।

सं० टी०—पुंवेदोदयकालेऽन्तर्मुहूर्तमात्रे यावत् स्त्रीवेदोपशमनं न विनश्यति तावत्काले संख्यातभागेषु गतेषु अघातिकर्मणां स्थितिबन्धोऽसंख्यातवर्षमात्रः ॥३२५॥

स० चं०—पुरुषवेदका उदय कालविषैं स्त्रीवेदका उपशम यावत् काल न विनसै ताव-त्कालके संख्यात बहुभाग व्यतीत भएँ एक भाग अवशेष रहें अघातिया कर्मनिका स्थितिबंध असंख्यात हजार वर्षमात्र हो है ॥३२५॥

णवरि य णामदुगाणं वीसियपडिभागदो हवे बंधो ।
तीसियपडिभागेण य बंधो पुण वेयणीयस्स ॥३२६॥

नवरि च नामद्विकयोः वीसियप्रतिभागतो भवेद् बन्धः ।
तीसियप्रतिभागेन च बन्धः पुनः वेदनीयस्य ॥३२६॥

सं० टी०—तत्र नामगोत्रयोः पल्यासंख्यातैकभागमात्रः स्थितिबन्धः । वीसियस्थितिबन्धे एतावति तीसियस्थितिबंधः कियानिति त्रैराशिकसिद्धो वेदनीयस्थितिबन्धो द्व्यर्धगुणितपल्यासंख्यातभागमात्रः—
प्र फ इ लब्ध प ३ घातित्रयस्य संख्यातसहस्रवर्षमात्रः स्थितिबन्धः । ततः संख्येयगुणहीनो मोहनीयस्य
२० प ३० a २
a
संख्यातसहस्रवर्षमात्रः स्थितिबन्धः ॥३२६॥

स० चं०—तहाँ विशेष जो नाम गोत्रनिका पल्यके असंख्यातवे भागमात्र स्थितिबंध है। अर वीसियनिका इतना भया तौ तीसीयनिका केता होइ ऐसैं त्रैराशिक कीएँ वेदनीयका ड्योढ गुणा पल्यका असंख्यातवाँ भागमात्र स्थितिबन्ध है। बहुरि तीन घातियानिका संख्यात हजार वर्षमात्र मोहनीयका तातैं संख्यातगुणा घटता संख्यात हजार वर्षमात्र स्थितिबन्ध है ॥३२६॥

अथ स्त्रीवेदोपशमनविनाशप्ररूपणार्थं गाथाद्वयमाह—

थीअणुवसमे पढमे वीसकसायाण होदि गुणसेढी ।
संढुवसमो त्ति मज्झे संखाभागेसु तीदेसु[1] ॥३२७॥

स्त्री अनुपशमे प्रथमे विंशकषायाणां भवति गुणश्रेणी ।
षंढोपशम इति मध्ये संख्यभागेष्वतीतेषु ॥३२७॥

सं० टी०—ततः संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु अन्तर्मुहूर्तकाले गतेषु एकस्मिन् समये स्त्रीवेदोपशमो विनष्टः । ततः प्रभृति स्त्रीवेदद्रव्यं संक्रमापकर्षणादिकरणयोग्यं सञ्जातमित्यर्थः । तस्मिन् स्त्रीवेदोपशमन-विनाशप्रथमसमये स्त्रीवेदद्रव्यमपकृष्य तस्योदयरहितत्वादुदयावलिबाह्यगुणश्रेण्यायामे अन्तरायामे द्वितीय-स्थितौ च पूर्वोक्तविधानेन निक्षिपति । अत्र गुणश्रेण्यायामः शेषकर्मणां गलितावशेषगुणश्रेण्यायामसमानः । द्वादशकषायसप्तनोकषायाणां द्रव्यमपकृष्य पूर्वोक्तप्रकारेण गलितावशेषगुणश्रेण्यायामे अन्तरायामे द्वितीयस्थितौ

---

१. एत्तो ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु इत्थिवेदमेगसमएण अणुवसंतं करेदि, ताधे चेव तमोकड्डियूण आवलियबाहिरे गुणसेढिं करेदि, इदरेसिं कम्माणं जो गुणसेढि णिक्खेवो तत्तिओ च इत्थिवेदस्स वि सेसे सेसे च णिक्खिवदि । ता० मु०, पृ० १९०४ ।

च निक्षिपति। एवं विंशतिकषायाणां गुणश्रेणीकरणं प्ररूपितं। यावन्नपुंसकवेदोपशमोऽस्ति तावत्कालस्य संख्यातबहुभागेषु गतेषु तन्मध्ये ॥३२७॥

स० चं०—तातैं बंधनेरूप संख्यात हजार स्थितिबन्ध भएँ अंतर्मुहूर्त काल गएँ स्त्रीवेदका उपशम नष्ट भया। तहाँतैं लगाय स्त्रीवेदका द्रव्य संक्रम अपकर्षणादि करने योग्य भया। तिसका प्रथम समयविषै स्त्रीवेदका द्रव्यकौं अपकर्षणकरि यहु उदय रहित है तातैं उदय बाह्यतैं लगाय अन्य कर्मनिका गुणश्रेणि आयामकैं समान गलितावशेष गुणश्रेणि आयामविषै अर अंतरायामविषै अर द्वितीय स्थितिविषै निक्षेपण करै है। अर बारह कषाय सात नोकषायनिका द्रव्यकौं अपकर्षणकरि पूर्वोक्त प्रकार निक्षेपण करै हैं ऐसैं इहाँ वीसकषायनिका गुणश्रेणि हो है। बहुरि तिस ही कालविषै यावत् नपुंसकवेदका उपशम पाइए है तावत्कालका संख्यात बहुभाग व्यतीत भएँ कहा ? सो कहैं हैं ॥३२७॥

घादितियाणं णियमा असंखवस्सं तु होदि ठिदिबंधो।
तक्काले दुट्ठाणं रसबंधो ताण देसघादीणं[1] ॥३२८॥

घातित्रयाणां नियमात् असंख्यवर्षस्तु भवति स्थितिबन्धः।
तत्काले द्विस्थानं रसबन्धः तेषां देशघातिनाम् ॥३२८॥

सं० टी०—घातित्रयस्य स्थितिबन्धः पल्यासंख्यातभागः स चासंख्यातवर्षमात्रः, नामगोत्रयोस्ततोऽसंख्येयगुणः पल्यासंख्यातभागमात्रः। वेदनीयस्य द्व्यर्धगुणितस्तावन्मात्रः, मोहनीयस्य संख्यातसहस्रवर्षमात्रः स्थितिबन्धः। अस्मिन्नेवावसरे तेषां चतुर्ज्ञानावरणीयत्रिदर्शनावरणीयपञ्चान्तरायाणां देशघातिनां लतादारुसमानद्विस्थानानुभागबन्धो भवति ॥३२८॥

स० चं०—तीन घातियानिका पल्यके असंख्यातवें भागमात्र नाम गोत्रका तातैं असंख्यातगुणा वेदनीयका तातैं ड्योढा मोहका संख्यात हजार वर्षमात्र स्थितिबन्ध हो है। इस ही अवसरविषै च्यारि ज्ञानावरण तीन दर्शनावरण पाँच अंतराय इन देशघातियानिका लता अर दारु समान द्विस्थानगत अनुभागबन्ध हो है ॥३२८॥

अथ नपुंसकवेदोपशमनविनाशं तत्कालसंभविक्रियाविशेषं च प्ररूपयितुं गाथाद्वयमाह—

संढणुवसमे पढमे मोहिगिवीसाण होदि गुणसेढी।
अंतरकदो त्ति मज्झे संखाभागासु तीदासु[2] ॥३२९॥

१. इत्थिवेदे अणुवसंते जाव णवुंसयवेदो उवसंतो एदिस्से अद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणमसंखेज्जवस्सियट्ठिदिबंधो जादो। जाधे घादिकम्माणमसंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो ताधे चेव एगसमएण णाणावरणीयचउव्विहं दंसणावरणीयतिविहं पंचतराइयाणि एदाणि दुट्ठाणियाणि बंधेण जादाणि। ता० मु०, पृ० १९०४–१९०५।

२. तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु णवुंसयवेदं अणुवसंतं करेदि, ताधे चेव णवुंसयवेदमोकड्डिदूण आवलियबाहिरे गुणसेढिं णिक्खिवेदि, इदरेसिं कम्माणं गुणसेढिणिक्खिवेण सरिसो गुणसेढिणिक्खेवो सेसे सेसे च णिक्खेवो। वही पृ० १९०५।

षंढानुपशमे प्रथमे मोहैकविंशानां भवति गुणश्रेणी।
अंतरकृत इति मध्ये संख्यभागेष्वतीतेषु ॥३२९॥

सं० टी०—ततः संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु एकस्मिन् समये नपुंसकवेदोपशमो विनष्टः। तत्प्रथमसमये नपुंसकवेदद्रव्यमपकृष्य इतरकर्मगलितावशेषगुणश्रेण्यायामसमाने उदयावलिबाह्यगुणश्रेण्यायामे अन्तरायामे द्वितीयस्थितौ च पूर्वोक्तविधानेन निक्षिपति। अवशिष्टविंशतिमोहप्रकृतीनां द्रव्यमपकृष्य गलितावशेषगुणश्रेणिं प्राग्वत् करोति। नपुंसकवेदोपशमविनाशप्रथमसमयादारभ्य आरोहकानिवृत्तिकरणस्यांतरकरणनिष्ठापनचरमसमयपर्यन्तं योऽन्तर्मुहूर्तकालस्तस्य संख्यातबहुभागेषु तदन्तरे ॥३२९॥

स० चं०—तातैं बंधता क्रमकरि संख्यात हजार स्थितिबन्ध गएँ नपुंसकवेदका उपशम नष्ट भया ताके प्रथम समयविषैं नपुंसकवेदके द्रव्यकौं अपकर्षणकरि उदयावलीतैं बाह्य समयतैं लगाय अर अन्य बीस मोह प्रकृतिनिके द्रव्यकौं अपकर्षणकरि पूर्वोक्त प्रकार अन्य कर्मनिके समान गलितावशेष गुणश्रेणि आयामविषै अंतरायामविषै द्वितीय स्थितिविषै निक्षेपण करै है। बहुरि नपुंसक वेदका उपशम नाश होनेके समयतैं लगाय उतरता संता चढनेवाला जिस अवसरविषैं अंतर करणका समाप्तपना करै तिस अवसर पावने पर्यंत अंतर्मुहूर्त काल है ताका संख्यात बहुभाग व्यतीत भएँ कहा? सो कहैं हैं ॥३२९॥

मोहस्स असंखेज्जा वस्सपमाणा हवेज्ज ठिदिबंधो।
ताहे तस्स य जादं बंधं उदयं च दुट्ठाणं[1] ॥३३०॥

मोहस्य असंख्येयानि वर्षप्रमाणानि भवेत् स्थितिबन्धः।
तस्मिन् तस्य च जातो बन्ध उदयश्च द्विस्थानम् ॥३३०॥

सं० टी०—मोहनीयस्यासंख्यातवर्षमात्रः स्थितिबन्धः। ततोऽसंख्येयगुणो घातित्रयस्य स्थितिबन्धः। ततोऽसंख्येयगुणो नामगोत्रयोः स्थितिबन्धः। ततो विशेषाधिको वेदनीयस्य स्थितिबन्धः। तस्मिन्नेवावसरे मोहनीयस्य द्विस्थानानुभागबन्धोदयौ जातौ ॥३३०॥

स० चं०—मोहनीयका असंख्यातवर्ष तीन घातियानिका तातैं असंख्यातगुणा, नाम गोत्रका तातैं असंख्यातगुणा, वेदनीयका तातैं अधिक स्थितिबन्ध हो है। इस ही अवसरविषै मोहनीयका लता दारुरूप द्विस्थानगत बन्ध वा उदय भया ॥३३०॥

विशेष—उपशमश्रेणि पर चढ़ते हुए जिस स्थानपर पहुँचकर अन्तरकरण करके मोहनीयका संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध करता है, उतरते समय उस स्थानको प्राप्त करनेके अन्तर्मुहूर्त पूर्व विद्यमान इस जीवके उपशमश्रेणिसे गिरनेके कारण मोहनीयका असंख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध हो जाता है, क्योंकि चढ़ते समय जितना समय लगता है उतरनेमें विशेष हीन समय लगता है। इसलिये प्रकृतमें उपयुक्त यह अर्थ कहना चाहिये। यथा—चढ़ते समयका सूक्ष्मसाम्पराय काल और उतरते समयका सूक्ष्मसाम्पराय काल इन दोनोंको मिलाकर देखनेपर मालूम पड़ता है कि चढ़ते समयके सूक्ष्मसाम्पराय कालसे उतरते समयका सूक्ष्मसाम्पराय काल अन्तर्मुहूर्त कम है।

---

१. णवुंसयवेदे अणुवसंते जाव अंतरकरणद्धाणं ण पावदि एदिस्से अद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु मोहणीयस्स असंखेज्जवस्सिओ ट्ठिदिबंधो जादो। ताधे चेव दुट्ठाणिया बंधोदया। वही पृ० १५०५–१९०६।

इसी प्रकार चढते समय और उतरते समयके सब कालोंके विषयमें जानना चाहिये। इससे हमें यह पता लग जाता है कि उतरते समय मोहनीयका असंख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध किस स्थानसे प्रारम्भ हो जाता है। शेष कथन सुगम है।

अथावतरणे लोभसंक्रमप्रतिघातादिप्ररूपणार्थं गाथात्रयमाह—

लोहस्स असंकमणं छावलितीदेसुदीरणत्तं च।
णियमेण पडंताणं मोहस्सणुपुव्विसंकमणं[1] ।।३३१।।

लोभस्य असंक्रमणं षडावल्यतीतेषूदीरणत्वं च।
नियमेन पततां मोहस्यानानुपूर्विसंक्रमणम् ।।३३१।।

सं० टी०—अवतारकसूक्ष्मसाम्परायप्रथमसमयादारभ्याधःसर्वावस्थासु बध्यमानज्ञानावरणादिकर्मणां समयप्रबद्धद्रव्यमारोहके षडावलिकां व्यतिक्रम्य उदीयत इति नियमः प्रागुक्तः, तं परित्यज्य इदानीं बन्धावली-व्यतिक्रमे उदीयते। अवतारकानिवृत्तिकरणप्रथमसमयादारभ्य लोभस्यासंक्रमोऽधः सर्वत्रारोहकविपर्ययेण प्रतिहन्यते। संज्वलनलोभस्य मायादिषु संक्रमणशक्तिपरिणतिर्जातेत्यर्थः। तथा मोहस्य नपुंसकादिप्रकृतीनां आनुपूर्वीसंक्रमश्च नष्टः। आरोहणे य आनुपूर्वीसंक्रमः प्रागुक्तस्तं परित्यज्य इदानीमनानुपूर्व्या बध्यमाने सजातीयप्रकृत्यन्तरे यत्र तत्र वा संक्रमो जातः इत्यर्थः ।।३३१।।

स० चं०—उतरनेवालेकैं सूक्ष्मसाम्परायका प्रथम समयतैं लगाय बंधे थे जे कर्म तिनकी छह आवली व्यतीत भए उदीरणा होनेका नियम था ताकौं छोडि बन्धावली व्यतीत होतैं ही उदीरणा करिए है बहुरि उतरने वालेकैं अनिवृत्तिकरणका प्रथम समयतैं लगाय लोभका संक्रमण था सो चढनेवालेतैं विपरीत रूपकरि हणिए है। संज्वलन लोभकी मायादिकविषै संक्रम होनेकी शक्ति भई यहु अर्थ जानना। बहुरि मोहकी सर्व प्रकृतिनिका जो आनुपूर्वी संक्रमका नियम भया था सो नष्ट भया जहाँ तहाँ स्वजातीय कोई चारित्रमोहकी प्रकृतिका कोई चारित्रमोहकी प्रकृति-निविषै संक्रमण हो है ।।३३१।।

विशेष—जयधवलामें बतलाया है कि प्रकृत विषयको लक्ष्यमें लेकर चूर्णिसूत्रमें जो 'सव्वस्स' पद आया है सो उसका आशय यह है कि उतरते समय सूक्ष्मसाम्परायसे लेकर ही छह आवलि जानेपर उदीरणा होती है यह नियम नहीं रहता। अन्यथा चूर्णिसूत्रमें 'सव्वस्स' यह विशेषण देनेकी क्या आवश्यकता थी। किन्तु दूसरे आचार्य ऐसा मानते हैं कि उतरनेवाले जीवके जब तक संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध होता है तब तक छह आवलि जानेपर उदीरणा होती है यही नियम रहता है। किन्तु जहाँसे असंख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध होने लगता है वहाँसे यह नियम नहीं रहता, किन्तु एक बन्धावलिके बाद ही उदीरणा प्रारम्भ हो जाती है। पर जयधवलाकार 'सव्वस्स' पद होनेसे पूर्वोक्त अर्थको ही ठीक मानते हैं।

विवरीयं पडिहण्णदि विरयादीणं च देसघादित्तं।
तह य असंखेज्जाणं उदीरणा समयपबद्धाणं[2] ।।३३२।।

---

१. सव्वस पडिवदमाणगस्स छसु आवलियासु गदासु उदीरणा इदि णत्थि णियमो आवलियादिक्कंत-मुदीरिज्जदि। अणियट्टिप्पहुडि मोहणीयस्स अणाणुपुव्विसंकमो लोभस्स वि संकमो। वही पृ० १९०६।

२. एदेण कमेण संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु अणुभागबंधेण वीरयंतराइयं सव्वघादी जादं।

विपरीतं प्रतिहन्यते वीर्यादीनां च देशघातित्वम् ।
तथा च असंख्येयानामुदीरणा समयप्रबद्धानाम् ॥३३२॥

सं० टी०—एवमुक्तप्रकारेण स्थितिबन्धसहस्रेषु गतेषु वीर्यान्तरायस्यानुभागबन्धो देशघातिस्वरूपं परित्यज्य सर्वघातिस्वरूपो जातः। ततः स्थितिबन्धपृथक्त्वेषु गतेषु मतिज्ञानावरणीयोपभोगान्तराययोरनुभागबन्धो देशघातिरूपं मुक्त्वा सर्वघातिरूपो जातः। ततः स्थितिबन्धपृथक्त्वेषु गतेषु चक्षुर्दर्शनावरणीयस्यानुभागबन्धो देशघातिरूपं मुक्त्वा सर्वघातिरूपो जातः। ततः स्थितिबन्धपृथक्त्वेषु गतेषु श्रुतज्ञानावरणीयचक्षुर्दर्शनावरणीयभोगान्तरायाणामनुभागबन्धो देशघातिरूपं मुक्त्वा सर्वघातिरूपो जातः। ततः स्थितिबन्धपृथक्त्वेषु गतेषु अवधिज्ञानावरणीयावधिदर्शनावरणीयलाभान्तरायाणामनुभागबन्धो देशघातिरूपं त्यक्त्वा सर्वघातिरूपो जातः। ततः स्थितिबन्धपृथक्त्वेषु गतेषु मनःपर्ययज्ञानावरणीयदानान्तराययोरनुभागबन्धो देशघातिरूपं त्यक्त्वा सर्वघातिरूपो जातः। ततः स्थितिबन्धसहस्रेषु असंख्यातसमयप्रबद्धोदीरणा प्रतिहन्यते ॥३३२॥

स० चं०—ऐसैं बंधता क्रमरूप हजारौं स्थितिबन्ध गए वीर्यांतरायका, तातैं परैं बहुत स्थिति बन्ध गए मतिज्ञानावरण उपभोगांतरायका, तातैं परैं बहुत स्थिति बन्ध गए चक्षुर्दर्शनावरणका अर तातैं परें बहुत स्थितिबन्ध गए श्रुतज्ञानावरणीय अर चक्षुर्दर्शनावरणीय भोगान्तरायका बहुरि तातैं परैं बहुत स्थितिबन्ध गए अवधिज्ञानावरणीय अवधिदर्शनावरण लाभांतरायनिका अर तातैं परैं बहुत स्थितिबन्ध गए मनःपर्ययज्ञानावरण दानांतरायका क्रमतैं पूर्वोक्त देशघाती बन्ध होता था ताकौं छोडि सर्वघातीरूप अनुभागबन्ध होने लगा तातैं परैं हजारौं स्थिति बन्ध भए असंख्यात समयप्रबद्धकी उदीरणा होनेका अभाव भया ॥३३२॥

लोयाणमसंखेज्जं समयपबद्धस्स होदि पडिभागो ।
तत्तियमेत्तद्दव्वस्सुदीरणा वट्टदे तत्तो[1] ॥३३३॥

लोकानामसंख्येयं समयप्रबद्धस्य भवति प्रतिभागः ।
तावन्मात्रद्रव्यस्योदीरणा वर्तते ततः ॥३३३॥

सं० टी०—गुणश्रेणीकरणार्थमपकृष्टद्रव्यस्यारोहके यः पल्यासंख्यातमात्रो भागहारः प्रागुक्तः सोऽद्य यावदायातोऽस्मिन्नवसरे प्रतिहतः। इदानीमसंख्यातलोकमात्रो भागहारोऽपकृष्टद्रव्यस्य संजातः। ततः कारणादसंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणां विना एकसमयप्रबद्धासंख्येयभागमात्रोदीरणा संजातेत्यर्थः ॥३३३॥

स० चं०—गुणश्रेणि करनेके अर्थि द्रव्य अपकर्षण कीया ताकौं चढनेवाले जीवकैं उदयावलीविषै द्रव्य देनेके अर्थि पल्यका असंख्यातवाँ भागमात्र भागहार पूर्वै कह्या था सो इहाँ पर्यंत आया अब इस अवसरविषै नष्ट भया। अब असंख्यात लोकका भागहार तहाँ भया। तातैं असंख्यात समयप्रबद्धनिकी उदीरणा होती थी ताका नाश होइ अब एक समयप्रबद्धके असंख्यातवाँ भागमात्र द्रव्यकी उदीरणा होने लगी ॥३३३॥

(इत्यादि।)........तदो ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा पडिहम्मदि। वही पृ० १९०७–११०८।

१. जाधे असंखेज्जलोगपडिभागे समयपबद्धस्स उदीरणा। वही पृ० १९०८।

अथ स्थितिबंधक्रमकरणविपर्ययप्ररूपणार्थं गाथासप्तकमाह—

तक्काले मोहणियं तीसीयं वीसियं च वेयणियं ।
मोहं वीसिय तीसिय वेयणिय कमं हवे तत्तो[1] ॥३३४॥

तत्काले मोहनीयं तीसियं वीसियं च वेदनीयम् ।
मोहं वीसियं तीसियं वेदनीयं क्रमं भवेत् ततः ॥३३४॥

सं० टी०—तस्मिन् समयप्रबद्धस्यासंख्यातलोकमात्रभागहारप्रवेशकाले सर्वतः स्तोकः मोहनीयस्य स्थितिबन्धः पल्यासंख्यातभागमात्रः प / a ७ ततोऽसंख्येयगुणो घातित्रयस्य प / a ६ ततोऽसंख्येयगुणो नामगोत्रयोः प / a ५ ततो विशेषाधिको वेदनीयस्य प ३ / a ५ । २ ततः परं संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु गतेषु मोहस्य स्थितिबन्धः सर्वतः स्तोकः पल्यासंख्यातभागमात्रः प / a ६ । ततो व्युत्क्रमेण नामगोत्रयोरसंख्येयगुणः प / a ५ ततो विशेषाधिको घातित्रयस्य प ३ / a ५ । २ ततो विशेषाधिको वेदनीयस्य प ३ / a ५ । २ ॥३३४॥

अब क्रमकरणका नाश कहै हैं—

स० चं०—तिस असंख्यात लोकमात्र भागहार संभवनेका समयविषै मोहका सर्वतैं स्तोक पल्यका असंख्यातवाँ भागमात्र तातैं असंख्यातगुणा तीन घातियानिका तातैं असंख्यातगुणा नाम गोत्रका तातैं साधिक वेदनोयका स्थितिबंध हो है। तातैं परैं संख्यात हजार स्थितिबंध गएं मोहका स्तोक पल्यके असंख्यातवाँ भागमात्र तातैं असंख्यातगुणा नाम गोत्रका तातैं विशेष अधिक तीन घातियानिका तातैं विशेष अधिक वेदनीयका स्थितिबंध हो है ॥३३४॥

मोहं वीसिय तीसिय तो वीसिय मोहतीसयाण कमं ।
वीसिय तीसिय मोहं अप्पाबहुगं तु अविरुद्धं[2] ॥३३५॥

मोहं वीसियं तीसियं ततो वीसियं मोहतीसियानां क्रमम् ।
वीसियं तीसियं मोहं अल्पबहुकं तु अविरुद्धम् ॥३३५॥

सं० टी०—ततः संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु गतेषु सर्वतः स्तोको मोहस्य स्थितिबन्धः प / a ५ ततोऽसंख्येयगुणो नामगोत्रयोः प / a । ४ ततो विशेषाधिको घातित्रयवेदनीययोः प ३ / a ४ । २ ततः संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु गतेषु सर्वतः स्तोको नामगोत्रयोः स्थितिबन्धः पल्यासंख्यातैकभागमात्रः प / a ४ ततो मोहनीयस्य विशेषा-

१. वही पृ० १९०८। २. वही पृ० १९०८।

। ।, .
धिकः प ततो घातित्रयवेदनीययोर्विशेषाधिकः प ततः संख्यातसहस्रस्थितिबन्धेषु गतेषु सर्वतः स्तोको
a ५ a ४
नामगोत्रयोः स्थितिबन्धः प ततो विशेषाधिको घातित्रयवेदनीययोः प ३ ततोऽधिको मोहनीयस्य
a ३ a। ३। २
प २ एवं सिद्धान्ताविरोधेन स्थितिबन्धाल्पबहुत्वं ज्ञातव्यम् ॥३३५॥
a ३

स० चं० —तातैं असंख्यात हजार स्थितिबंध गएं सर्वतैं स्तोक मोहका तातैं असंख्यातगुणा नाम गोत्रका तातैं विशेष अधिक तीन घातिया अर वेदनीयका स्थितिबंध हो है। बहुरि तातैं संख्यात हजार स्थिति बंध गएं सर्वतैं स्तोक नामगोत्रका पल्यके असंख्यातवें भागमात्र तातैं विशेष अधिक मोहका तातैं विशेष अधिक तीन घातिया अर वेदनीयका स्थितिबंध हो है। बहुरि तातैं परैं संख्यात हजार स्थितिबंध गएं सर्वतैं स्तोक नामगोत्रका तातैं विशेष अधिक तीन घातिया अर वेदनीयका तातैं तीसरा भाग अधिक मोहका स्थितिबंध हो है ॥३३५॥

कमकरणविणट्ठादो उवरिट्ठविदा विसेसअहियाओ।
सव्वासिं तण्णद्धे हेट्ठा सव्वासु अहियकमं ॥३३६॥

क्रमकरणविनाशात् उपरि स्थिता विशेषाधिकाः।
सर्वासां तदद्धायां अधस्तना सर्वासु अधिकक्रमम् ॥३३६॥

सं० टी०—क्रमकरणविनाशस्य व्युत्क्रमणकालस्योपरि तत्कालावसानपल्यासंख्यातभागमात्रस्थितिबन्धात्प्रभृत्युत्तरकाले सर्वकर्मप्रकृतीनां स्थितिबन्धाः विशेषाधिकाः स्थापिताः रचिता इत्यर्थः। क्रमकरणविनाशादधस्तात्तत्कालादिनाऽसंख्येयवर्षमात्रस्थितिबन्धात्पूर्वं संख्यातवर्षसहस्रस्थितिबन्धपर्यंतमायुर्वर्जितसप्तकर्मप्रकृतीनां स्थितिबन्धाः विशेषाधिकाः ॥३३६॥

स० चं०—क्रम करणका विनाश जिस कालविषै भया तिस कालके ऊपरि तिस कालका अंत समयविषै पल्यका असंख्यातवाँ भागमात्र स्थितिबंध भया तातैं लगाय पीछैं उत्तर कालविषै सर्व कर्म प्रकृतिनिका जे स्थितिबंध हैं ते पूर्व स्थितिबंधतैं उत्तर स्थितिबंध विशेष अधिक स्थापे हैं। गुणकाररूप नाहीं हैं। बहुरि क्रमकरणका नाशके नीचैं तिस क्रमकरणका कालकी आदिविषै असंख्यात वर्षमात्र स्थितिबंध है तातैं पहिलैं संख्यात हजार वर्षप्रमाण स्थितिबंध पर्यंत आयु विना सात कर्मनिका बंध हो है। ते भी पूर्व स्थितिबंधतैं उत्तर स्थितिबंध अधिक क्रम लीए हो हैं गुणकाररूप नाहीं हैं ॥३३६॥

जत्तो पाये होदि हु असंखवस्सप्पमाणठिदिबंधो।
तत्तो पाये अण्णं ठिदिबंधमसंखगुणियकमं[1] ॥३३७॥

१. जत्तो पाए असंखेज्जवस्सट्ठिदिबंधो तत्तो पाए पुण्णे पुण्णे ट्ठिदिबंधे अण्णं ट्ठिदिबंधमसंखेज्जगुणं बंधइ। एदेण कमेण सत्तण्हं पि कम्मपयडीणं। वही पृ० १९१०।

यतः प्रभृति भवति हि असंख्यवर्षप्रमाणस्थितिबन्धः ।
ततः प्रभृति अन्यं स्थितिबन्धमसंख्यगुणितक्रमम् ।।३३७।।

सं० टी०—यतः प्रभृति नामगोत्रादिकर्मप्रकृतीनामसंख्यातवर्षमात्रस्थितिबन्धः प्रारब्धः । ततः प्रभृति पूर्वपूर्वस्थितिबन्धादुत्तरोत्तरस्थितिबन्धोऽन्योऽसंख्येयगुणो भवति यावत्सर्वपश्चिमः पल्यासंख्यातभागमात्रः स्थितिबन्धो जायते ।।३३७।।

स० चं०—जहाँतैं लगाय नाम गोत्रादिकनिका असंख्यात वर्षमात्र स्थितिबंधका प्रारंभ भया तहाँतैं लगाय पहला पहला स्थितिबंधतैं पिछला पिछला और स्थितिबंध भया सो असंख्यातगुणा है यावत् सर्वतैं पीछैं पल्यका असंख्यातवाँ भागमात्र स्थितिबंध होइ तावत् ऐसा ही क्रम जानना ।।३३७।।

एवं पल्लासंखं संखं भागं च होइ बंधेण ।
तत्तो पाये अण्णं ठिदिबंधो संखगुणियकमं[1] ।।३३८।।

एवं पल्यासंख्यं संख्यं भागं च भवति बन्धेन ।
ततः प्रभृति अन्यः स्थितिबन्धः संख्यगुणितक्रमः ।।३३८।।

सं० टी०—एवं संख्यातसहस्रेषु पल्यासंख्यातभागप्रमितेषु स्थितिबन्धेषु सर्वपश्चिमपल्यासंख्यातभागमात्रस्थितिबन्धात्परं युगपदेव सप्तकर्मणां पल्यासंख्यातभागमात्रः स्थितिबन्धो जातः । तत्र वीसियस्थितिबंधात् तीसियस्थितिबन्धो द्व्यर्धगुणितः चालीसियस्थितिबन्धो द्विगुण इति विशेषः पूर्ववद्द्रष्टव्यः । आरोहकस्य क्रमेणोपलभ्यमानो दूरापकृष्टिविषयस्थितिबन्धः कथमवरोहकस्यैकवारमेव संभवतीति नाशङ्कनीयं प्रतिपातिपरिणाममाहात्म्येन तत्र तथाभावस्य विरोधाभावात् । इतः प्रभृत्यनन्तरस्थितिबन्धोऽन्यः संख्यातगुणितः सप्तकर्मणां जायते ।।३३८।।

स० चं०—ऐसैं यथासंभव हीनाधिक प्रमाण लीए पल्यका असंख्यातवाँ भागमात्र स्थितिबंध बंधता क्रम लीएं संख्यात हजार व्यतीत भएं तहाँ सर्वतैं पीछैं जो पल्यका असंख्यातवाँ भाग मात्र स्थितिबंध भया तातैं परैं एक एक कालविषैं सातो कर्मनिका स्थितिबंध पल्यके असंख्यातवें भागमात्र हो है । तहाँ विशेष जो वीसीयनिकेतैं तीसीयनिका ड्योढा. चालीसीयनिका दूणा स्थितिबंध जानना । पल्यका असंख्यातवें भागके भेद घने तातैं हीनाधिकरूप घने स्थितिबंधनिकौं आलापकरि पल्यका असंख्यातवाँ भागमात्र ही कह्या है चढनेवालेकैं दूरापकृष्टि नाम स्थितिबंध क्रमतैं भया था इहाँ उतरनेवालेकैं प्रतिपाती परिणामनिकरि एकही बार दूरापकृष्टिनामा स्थितिबंध हो है यातैं परैं अनंतर और स्थितिबंध हो है सो सातो कर्मनिका संख्यातगुणा हो है ।।३३८।।

विशेष—जहाँ जब पल्योपमका असंख्यातवाँ भागप्रमाण अन्तिम स्थितिबंध हुआ तब उसके आगे एक बारमें पल्यके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिबंध होने लगता है । यहाँ शंका यह है कि चढ़ते समय तो दूरापकृष्टिसंज्ञक पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिबंध क्रमसे प्राप्त हुआ था, यहाँ पल्योपमके असख्यातवें भागसे एक बारमें पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण

---

१. एत्तो पाए पुण्णे पुण्णे ठिदिबंधे अण्णं ट्ठिदिबंधं संखेज्जगुणं बंधइ । एवं संखेज्जाणं ट्ठिदिबंधसहस्साणमपुव्वा वड्ढी पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो । वही पृ० १९१० ।

कैसे होने लगता है ? यह एक प्रश्न है। समाधान यह है कि उतरते हुए विशुद्धिरूपपरिणामोंमें हानिके कारण ऐसा हुआ है इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

मोहस्स य ठिदिबंधो पल्ले जादे तदा दु परिवड्ढी।
पल्लस्स संखभागं इगिविगलासण्णिबंधसमं[1] ॥३३९॥

मोहस्य च स्थितिबंधः पल्ये जाते तदा तु परिवृद्धिः
पल्यस्य संख्यभागं एकविकलासंज्ञिबन्धसमम् ॥३३९॥

सं० टी०—एवं संख्यातगुणितवृद्धिक्रमेण संख्यातसहस्रस्थितिबन्धोत्सरणेषु सर्वपश्चिमस्थितिबन्धो नामगोत्रयोः पल्यासंख्यातैकभागमात्रः प/५ ततस्तीसियस्थितिबन्धो द्वयर्धगुणितः प ३/५ २ ततः मोहनीयस्थितिबन्धो द्विगुणः प २/५ तदनन्तरस्थितिबन्धो मोहस्य संपूर्णपल्यमात्रः। प। अत्र वृद्धिप्रमाणं पल्यासंख्यातबहुभागमात्रं प ५ – २/५ तीसियस्थितिबन्धः पल्यत्रिचतुर्भागमात्रः प ३/४ अत्र वृद्धिप्रमाणं अनन्तराधस्तनस्थितिप्रमाणेन प ३/५ २ अनेन साधिकपल्यचतुर्भाग प १/४ न्यूनपल्यमात्रं प ५/५ ४ वीसियस्थितिबन्धः पल्यार्धमात्रः प १/२–अत्र वृद्धिप्रमाणं अनन्तराधस्तनस्थितिबन्धमात्रेण पल्यासंख्यातभागेन प/५ न्यूनपल्यार्धमात्रं प १/२ – पूर्वस्थितिबन्धे उत्तरोत्तर-स्थितिबन्धे शोधिते अवशेषमात्र वृद्धिप्रमाणं सर्वत्र ज्ञातव्यम्। चालीसियस्थितिबन्धस्य यदि पल्यमात्रः स्थिति-बन्धो लभ्यते तदा तीसियस्थितिबन्धस्य कीदृशः स्थितिबन्धो भवति—प फ इ/४० ५ ३० इति त्रैराशिकसिद्धः पल्यत्रिचतुर्भागमात्रस्तीसियस्थितिबन्धः। तथा वीसियस्थितिबन्धमिच्छाराशि कृत्वा त्रैराशिकसिद्धो प्र फ इ/४० ५ २० वीसियस्थितिबन्धः पल्यार्धमात्रः। एवं मोहनीयस्य स्थितिबन्धो यदा पल्यमात्रो जातः ततः परमनन्तरानन्तर-स्थितिबन्धोत्सरणेषु पल्यासंख्यातैकभागमात्रं वृद्धिप्रमाणं द्रष्टव्यम्। ततः संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धोत्सरणेषु गतेषु मोहस्य स्थितिबन्धः एकेन्द्रियस्थितिबन्धसदृशः सागरोपमचतुःसप्तमभागमात्रः सा ४/७ तीसियस्थितिबन्धः सागरोपमत्रिसप्तभागमात्रः सा ३/७ वीसियस्थितिबन्धः सागरोपमद्विसप्तमभागमात्रः स २/७ एवं प्रतिकाण्डकं संख्यातसहस्रस्थितिबन्धोत्सरणेषु गतेषु द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्थितिबन्धसदृशा मोहनीयस्य स्थितिबन्धाः परमागमोक्तप्रतिभागक्रमेण ज्ञातव्याः ॥३३९॥

१. ....एत्तो पाये ठिदिबंधे पुण्णे पुण्णे पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण वड्ढइ। एदेण कमेण पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागपरिवड्ढीए ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु अप्पणो एइंदियट्ठिदिबंधसमगो ट्ठिदिबंधो जादो। वीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-असण्णि-ट्ठिदिबंधसमगो ट्ठिदिबंधो। वही पृ० १९१२।

स० चं०—ऐसैं संख्यातगुणा क्रम लीएं संख्यात हजार स्थितिबंधोत्सरण भएं सबतैं पीछैं नाम गोत्रका पल्यके असंख्यातवें भागमात्र तातैं ड्योढा तीसीयनिका दूना मोहका स्थितिबंध होइ। ताके अनंतरि मोहका पल्यमात्र तीसीयनिका पल्यका तीन चौथा भागमात्र वीसीयनिका आधा पल्यमात्र स्थितिबंध हो है पूर्व पूर्व स्थितिबंधके प्रमाणकौं उत्तर स्थितिबंधका प्रमाणविषैं घटाएं अवशेष रहै सोई पूर्वोक्त स्थितिबंधतैं उत्तर स्थितिबंधविषै वृद्धिका प्रमाण हो है। सो इहाँ भी साधनकरि जानना। बहुरि चालीसीयनिका स्थितिबंध पल्यमात्र होइ तौ तीसीय अथवा बीसीयनिका केता होइ? ऐसैं त्रैराशिककरि तीसीयनिका पल्यका तीन चौथा भागमात्र वीसीयनिका आधापल्यमात्र स्थितिबंस सिद्ध हो है। ऐसैं अन्यत्र भी त्रैराशिक जानना जैसैं स्थिति घटावनेविषै पूर्वै स्थिति बंधापसरण संज्ञा कही थी तैसें स्थिति बधावनेविषैं इहाँ स्थितिबंधोत्सरण संज्ञा जाननी सो एक एक स्थितिबंधोत्सरणविषैं पल्यका असंख्यातवाँ भागमात्र स्थिति बंधै ऐसें प्रत्येक संख्यात हजार स्थितिबंध होइ क्रमतैं एकेंद्री बेइंद्री तेइंद्री चौइंद्री असंज्ञी पंचेंद्रीका स्थितिबंधके समान स्थितिबंध हो है ॥३३९॥

विशेष—यहाँ मुख्य बात यह लिखनी है कि जब मोहनीय आदि सातों कर्मोंका स्थितिबंध यथायोग्य किसीका पल्योपमके रूपमें और किसीका अपने-अपने उत्कृष्ट स्थितिबंधके अनुपातमें होने लगता है तब वृद्धिसहित स्थितिबंधकी परिगणना स्थितिबंधके रूपमें की जाती है। पहले शुद्ध वृद्धिकी अपेक्षा स्थितिबंधके प्रमाणका निश्चय कराया जाता था। किन्तु यहाँसे लेकर वृद्धिसहित पूरे स्थितिबंधका निर्देश किया जा रहा है ऐसा प्रकृतमें समझना चाहिये। प्रकृतमें इसे ही यत्स्थितिबंध कहा गया है।

मोहस्स पल्लबंधे तीसदुगे तत्तिपादमद्धं च।
दुतिचरुसत्तमभागा वीसतिये एयवियलठिदी ॥३४०॥

मोहस्य पल्यबन्धे त्रिंशद्द्विके तत्त्रिपादमर्धं च।
द्वित्रिचतुःसप्तमभागा वीसत्रिके एकविकलस्थितिः ॥३४०॥

स० टी०—यदा मोहस्य पल्यमात्रस्थितिबन्धो जातस्तदा तीसियस्थितिबन्धः पल्यत्रिचतुर्भागमात्रः। वीसियस्थितिबन्धः पल्यार्धमात्रः। पुनरेकेंद्रियस्थितिबन्धसदृशा वीसियतीसियमोहानां स्थितिबन्धाः सागरोपमस्य द्विसप्तमत्रिसप्तमचतुःसप्तमभागमात्राः। पुनर्द्वीन्द्रियादिस्थितिबन्धा सदृशा वीसियादिस्थितिबन्धाः पञ्चविंशतिपञ्चाशच्छतसहस्रगुणिता असंज्ञिस्थितिबन्धपर्यन्ता अनुमन्तव्याः ॥३४०॥

मो प २ a	प २ ५।५।५।५	प २ ५ ५ ५	प २ ५	प १
ती प ३ a २	प ५ ५ ५ ५ ३ २	प ५ ५ ५ ३ २	प ३ ५।२	प ३ ४
पी प a	प ५ ५ ५ ५	प ५ ५ ५	प ५	प १ २

स० च०—जब मोहका स्थितिबंध पल्यमात्र भया तब तीसीयनिका पल्यका तीन चौथा भागमात्र वीसीयनिका आधा पल्यमात्र स्थितिबंध हो है सोई कहि आए हैं। बहुरि एकेंद्री समान

स्थितिबंध भया तहाँ मोहका सागरके च्यारि सातवाँ भागमात्र तीसीयनिका सागरके तीन सातवाँ भागमात्र वीसीयनिका सागरके दोय सातवाँ भागमात्र स्थितिबंध जानना। बहुरि बेंद्री तेंद्री चौंद्री असंज्ञी समान स्थितिबंध जहाँ भया तहाँ क्रमतैं एकेंद्री समान बंध पचीसगुणा पचासगुणा सौगुणा हजार गुणा क्रमतैं जानना ॥३४०॥

अवतारकानिवृत्तिकरणचरमसमयस्थितिबन्धप्ररूपणार्थमाह—

तत्तो अणियट्टिस्स य अंतं पत्तो हु तत्थ उदधीणं।
लक्खपुधत्तं बंधो से काले पुव्वकरणो हु ॥३४१॥

ततः अनिवृत्तेश्च अन्तं प्राप्तो हि तत्र उदधीनाम्।
लक्षपृथक्त्वं बन्धः स्वे काले अपूर्वकरणो हि ॥३४१॥

सं० टी०—ततोऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्थितिबन्धात्परं संख्यातसहस्रेषु स्थितिबन्धोत्सरणेषु गतेषु अवतारकानिवृत्तिकरणचरमसमयं प्राप्तः। तस्मिन् वीसियादिस्थितिबन्धः स्वस्वप्रतिभागगुणितः सागरोपमलक्षपृथक्त्वमात्रो भवति—मो सा ल ७ । ४ तीसिय सा ल ७ । ३ वीसिय सा ल ७ । २ तदनन्तरसमये अयमव-
८ । ७   ८ । ७   ८ । ७
तारकोऽपूर्वकरणो जातः ॥३४१॥

स० चं०—तहाँ पीछैं असंज्ञी समान बंधतैं परैं संख्यात हजार स्थितिबंधोत्सरण भए उतरनेवाला अनिवृत्तिकरणके अंत समयकौं प्राप्त भया। तहाँ मोह तीसीय वीसीयनिका क्रमतैं पृथक्त्व लक्ष सागरनिका च्यारि सातवाँ भाग अर तीन सातवाँ भाग अर दोय सातवाँ भागमात्र स्थितिबंध हो है। बहुरि ताके अनंतरि समयविषै उतरनेवाला अपूर्वकरण भया ॥३४१॥

अथापूर्वकरणे संभवद्विशेषमाह—

उवसामणा णिधत्ती णिकाचणुग्घाडिदाणि तत्थेव।
चदुतीसदुगाणं च य बंधो अद्धापवत्तो य ॥३४२॥

उपशामना निधत्तिः निकाचना उद्घटितानि तत्रैव।
चतुस्त्रिंशद्द्विकानां च च बंधो अधाप्रवृत्तः च ॥३४२॥

सं० टी० तस्मिन्नवतारकापूर्वकरणे प्रथमसमयादारभ्य अप्रशस्तोपशमनकरणं निधत्तिकरणं निकाचनकरणं च युगपदेवोद्घाटितानि भवन्ति। तत्कालस्य सप्तभागीकृतस्य प्रथमभागे हास्यरतिभयजुगुप्सानां चतुःप्रकृतीनां बन्धको जातः। ततोऽवतीर्य तत्कालद्वितीयभागे तीर्थकरत्वादित्रिंशत्प्रकृतीनां बन्धको जातः। ततस्तत्कालषष्ठभागचरमसमयादारभ्य निद्राप्रचलयोर्बन्धो भवति

४
३०
०
०
०
२

ततः संख्यातसहस्रस्थितिबन्धोत्सार-

१. तदो ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु चरिमसमयमणियट्टी जादो। चरिमसमय अणियट्टिस्स ठिदिबंधो सागरोवमसदसहस्सपुधत्तमंतोकोडाकोडीए। से काले अपुव्वकरणंपविट्ठो। वही पृ० १९१२–१९१३।

२. ताधे चेव अप्पसत्थ उवसामणाकरणं णिधत्तीकरणं णिकाचणाकरणं च उग्घाडिदाणि। ताधे चेव

णेषु गतेषु अवतारकापूर्वकरणचरमसमये वीसियादिस्थितिबन्धः स्वस्वप्रतिभागगुणितः सागरोपमकोटिलक्ष-पृथक्त्वमात्रो भवति—

मो सा को ल	७ । ४ ८ । ७
ती सा को ल	७ । ३ ८ । ७
वी सा को ल	७ । २ ८ । ७

सर्वकर्मणां गुणश्रेणी गलितावशेषायामा अद्य यावत्प्रवृत्ता तदनन्तरसमये ततोऽवतीर्याप्रमत्तगुणस्थाने विशुद्धेर-नन्तगुणहानिवशेनाधःप्रवृत्तकरणपरिणामं प्राप्नोति ॥३४२॥

स० चं०—ताके प्रथम समयतैं लगाय अप्रशस्तोपशमकरण अर निधत्तिकरण अर निष्काचनकरण ए युगपत् उघाडे प्रकट कीए इनिका लक्षण पूर्वे कह्या ही था। बहुरि अपूर्वकरण कालके सात भाग कीएं तहाँ प्रथम भागविषै हास्य रति भय जुगुप्सा इन च्यारि प्रकृतिनिका दूसरे भाग विषै तीर्थंकरादि तीस प्रकृतिनिका छठा भागका अंत समयतैं लगाय निद्रा प्रचलाका बंध हो है। बहुरि तातैं संख्यात हजार स्थितिबंधोत्सरण भएं उतरनेवाला अपूर्वकरणका अंत समयविषैं मोहतीसीय वीसीयनिका क्रमतैं पृथक्त्व लक्ष कोटि सागरनिका च्यारि सातवाँ भाग तीन सातवाँ भाग दोय सातवां भाग मात्र स्थितिबंध हो है। सर्व कर्मनिकी गुणश्रेणी गलितावशेष आयाम लीए इहाँ पर्यंत वर्ते है। ताके अनंतरि समयविषैं उतरि अप्रमत्त गुणस्थान विषैं अधःकरण परिणामकौं प्राप्त हो है ॥३४२॥

विशेष—चढ़ते समय अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें अप्रशस्त उपशामनाकरण, निधत्तीकरण और निकाचनाकरण इन तीनोंकी व्युच्छित्ति हो गई थी। किन्तु उतरते समय जब जीव अपूर्वकरणमें प्रवेश करता है तब उसके प्रथम समयमें ही ये पुनः उद्घाटित हो जाते हैं। अर्थात् जिन कर्मोंकी पहले अप्रशस्त उपशामना की व्युच्छित्ति हो गई थी वे पुनः अप्रशस्त उपशामनारूप हो जाते हैं। इसी प्रकार निधत्ती और निकाचनाकी अपेक्षा भी जान लेना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

अथ द्वितीयोपशमसम्यक्त्वकालप्रमाणं गाथाद्वयमाह—

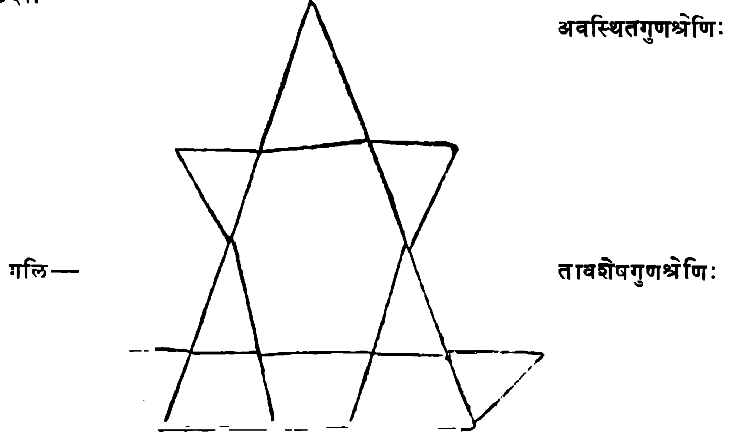
पढमो अधापवत्तो गुणसेढिमवट्ठिदं पुराणादो।
संखगुणं तच्चंतोमुहुत्तमेत्तं करेदी हु[1] ॥३४३॥

प्रथमोऽधाप्रवृत्तः गुणश्रेणीमवस्थितां पुराणात्।
संख्यगुणं तच्च अंतर्मुहूर्तमात्रं करोति हि ॥३४३॥

मोहणीयस्स णवविहबंधगो जादो। ....तदो अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जदिभागे गदे तदो परभवियाणं बंधगो जादो। तदो ट्ठिदिबंधसहस्सेहिं गदेहिं अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु णिद्दापयलाओ बंधइ। वही पृ० १९१३।

१. से काले पढमसमय अधापवत्तो जादो। तदो पढमसमयअधापवत्तस्स अण्णो गुणसेढिणिक्खेवो पोराणादो णिक्खेववादो संखेज्जगुणो। जाव चरिमसमयअपुव्वकरणादो त्ति सेसे सेसे णिक्खेवो। जो पढम-

सं० टी०—अथावतारकापूर्वकरणचरमसमये अपकृष्टद्रव्यादसंख्येयगुणहीनं द्रव्यमपकृष्य अवतारकसूक्ष्मसाम्परायप्रथमसमयारब्धात् पौराणिकगुश्रेण्यायामात् संख्यातगुणायाममवस्थितगुणश्रेणिनिक्षेपमवतारकाप्रमत्तः अधःप्रवृत्तकरणप्रथमसमये करोति । विशुद्धहान्यापकृष्टद्रव्यहानिः गुणश्रेण्यायामः संख्येयगुणोऽप्यन्तर्मुहूर्तमात्र एवं नाधिकः ॥३४३॥



स० चं०—ताका प्रथम समयविषै उतरनेवाला अपूर्वकरणका अंत समयविषै जेता द्रव्य अपकर्षण कीया तातैं असंख्यातगुणा घटता द्रव्यकौं अपकर्षणकरि गुणश्रेणि करै है। सूक्ष्मसाम्परायका प्रथम समयविषै जाका प्रारंभ भया ऐसा पुराणा गुणश्रेणिका आयामतैं संख्यातगुणा है तौ भी अंतर्मुहूर्तमात्र याका अवस्थित आयाम जानना। इहाँ विशुद्धता की हानि होनेतैं गुणश्रेणिविषै द्रव्यका प्रमाण घटि गया आयामका प्रमाण बधि गया है ॥३४३॥

अथ पुराणगुणश्रेण्यनुवादार्थमाह—

ओदरसुहुमादीदो अपुव्वचरिमो त्ति गलिदसेसे व ।
गुणसेढीणिक्खेवो सट्ठाणे होदि तिट्ठाणं ॥३४४॥

अवतरसूक्ष्मादितो अपूर्वचरम इति गलितशेषो वा ।
गुणश्रेणीनिक्षेपः स्वस्थाने भवति त्रिस्थानम् ॥३४४॥

सं० टी०—अवतारकसूक्ष्मसाम्परायप्रथमसमयादारभ्यावतारकापूर्वकरणचरमसमयपर्यंतं ज्ञानावरणादिकर्मणां गुणश्रेण्यायामो गलितावशेषमात्र एव नावस्थितः प्रवृत्तः । अयं तु विशेषः–मोहनीयस्यावतारकसूक्ष्मसाम्परायप्रथमसमयात्प्रभृति कियन्तमपि कालमवस्थितिस्वरूपेण गुणश्रेणिनिक्षेपो भूत्वा ततः परं गलितावशेषायामेन ज्ञानावरणादिकर्मगुणश्रेण्यायामसदृशो जात इति त्रिषु स्थानेषु वृद्धयावस्थितिगुणश्रेण्यायामदर्शनात् । तत्कथम् ? अवतारकसूक्ष्मसाम्परायकाले सर्वत्रावस्थितिस्वरूपेण, स्पर्धकगतलोभाकर्षणे एकवारवृद्धया बादरलोभवेदकाद्धापर्यन्तमवस्थितस्वरूपेण, पुनर्मायापकर्षणे द्वितीयवारवृद्धया मायावेदककालपर्यन्तमवस्थितस्वरूपेण,

---

समयअधापवत्तकरणे णिक्खेवो सो अंतोमुहुत्तिओ तत्तिओ चेव । वही पृ० १९१३–१९१४ ।

१. तेण परं सिया वड्ढदि सिया हायदि सिया अवट्ठायदि । वही पृ० १९१५ ।

ततः परं मानापकर्षणे तृतीयवारवृद्धया मानवेदककालपर्यन्तमवस्थितस्वरूपेण, एवं त्रिषु स्थलेषु गुणश्रेण्यायामः प्रवृत्तः। ततः परं क्रोधापकर्षणे चतुर्थवारवृद्धया गुणश्रेण्यायामः, अवतारकापूर्वकरणचरमसमयपर्यन्तं गलितावशेषमात्र एवागतः। इदानीं पुनरधाप्रवृत्तकरणप्रथमसमये ज्ञानावरणादिकर्मणां गुणश्रेण्यायामः पुराणगुणश्रेण्यायामात् संख्यातगुणितोऽवस्थितिस्वरूपोऽन्तर्मुहूर्तपर्यंतं प्रवर्तत इत्यर्थः। अधःप्रवृत्तकरणाद्धामात्रमन्तर्मुहूर्तं प्रतिसमयमेकान्तेन विशुद्धयनन्तगुणहान्याऽवतीर्य स्वस्थानाप्रमत्तसंयतो भवति। तस्य च संक्लेशविशुद्धिवशेन वृद्धिहान्यवस्थानलक्षणं स्थानत्रयं गुणश्रेण्यायामस्य सम्भवति ॥३४४॥

स० चं०—उतरनेवाला सूक्ष्मसाम्परायका प्रथम समयतैं लगाय अपूर्वकरणका अंत समय पर्यंत ज्ञानावरणादिकनिका गुणश्रेणि आयाम है सो गलितावशेष है अवशेष अवस्थित नाही है। इतना विशेष—सूक्ष्मसाम्परायका प्रथम समयतैं लगाय केते इक काल मोहका गुणश्रेणि आयाम अवस्थित हो है। पीछैं और कर्मनिका गुणश्रेणि आयामके समान मोहका भी गुणश्रेणि आयाम गलितावशेष हो है। जातैं तीन स्थाननिविषै बंधिकरि अवस्थित गुणश्रेणि आयाम हो है। सो कहिए है—

उतरनेवाला सूक्ष्मसाम्परायका प्रथम समयतैं लगाय अवस्थित आयाम ही है। बहुरि स्पर्धकरूप बादर लोभका द्रव्यके अपकर्षणविषै एकवार गुणश्रेणि आयाम बंधिकरि बादर लोभ वेदककालपर्यंत अवस्थित रहै है। बहुरि मायाके द्रव्यका अपकर्षणविषै दूसरी बार बंधिकरि मायाका वेदककालपर्यंत अवस्थित गुणश्रेणि आयाम रहै है। बहुरि मानके द्रव्यका अपकर्षणविषै तीसरी बार बंधिकरि मानका वेदककालपर्यंत अवस्थित गुणश्रेणि आयाम रहै है। ऐसैं तीन बार अवस्थित गुणश्रेणि आयाम हो है। बहुरि चौथी बार क्रोधका अपकर्षणविषै बंधिकरि अपूर्वकरणका अंतपर्यंत अन्य कर्मनिके समान मोहका भी गलितावशेष गुणश्रेणि आयाम आया। बहुरि अधःप्रवृत्तकरणका प्रथम समयतैं लगाय अंतर्मुहूर्त पर्यंत पुराना गुणश्रेणि आयामतैं संख्यातगुणा ज्ञानावरणादि कर्मनिका अवस्थित गुणश्रेणि आयाम प्रवर्तै है। अधःप्रवृत्तकरणका जेता अंतर्मुहूर्त काल है तितना कालविषै समय समय एकांतपनैं अनंतगुणी घाटि विशुद्धताकरि उतरि पीछैं स्वस्थान अप्रमत्त हो है ॥३४४॥

अथ तत्स्थानत्रयविषयविभागं प्रदर्शयति—

सट्ठाणे तावदियं संखगुणूण तु उवरि चडमाणे।
विरदाविरदाहिमुहे संखेज्जगुणं तदो तिविहं ॥३४५॥

स्वस्थाने तावत्कं संख्यगुणोनं तु उपरि चटमाने।
विरताविरताभिमुखे संख्येयगुणं ततः त्रिविधम् ॥३४५॥

सं० टी०—प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानयोः स्वस्थानसंयतो भूत्वा वृद्धिहानिभ्यां विनाऽवस्थितं गुणश्रेण्यायामं (गलं) करोति। विरताविरतगुणस्थानाभिमुखः सन् संक्लेशवशेन प्राक्तनगुणश्रेण्यायामात् संख्यातगुणं गुणश्रेण्यायामं करोति। पुनः स एवं यदि परावृत्त्योपशमकक्षपकश्रेण्यारोहणाभिमुखो भवति तदा विशुद्धिवशेन प्राक्तनगुणश्रेण्यायामात् संख्यातगुणहीनं गुणश्रेण्यायामं करोति। एवं गुणश्रेण्यायामस्य वृद्धिहान्यवस्थानलक्षणं स्थानत्रयं व्याख्यातम् ॥३४५॥

स० चं०—तहाँ प्रमत्त वा अप्रमत्त गुणस्थानविषै स्वस्थान संयत होइ वृद्धि हानि रहित अवस्थित गुणश्रेणि आयाम करै है। बहुरि सोई जीव जो विरताविरत पंचम गुणस्थानकौं सन्मुख होइ तौ संक्लेशताकरि पूर्वं गुणश्रेणि आयामतैं संख्यातगुणा बँधता गुणश्रेणि आयाम करै है। अर पलटिकरि उपशम वा क्षपकश्रेणी चढनेकौं सन्मुख होइ तो विशुद्धताकरि तिस गुणश्रेणि आयामतैं संख्यातगुणा घटता गुणश्रेणि आयाम करै है। ऐसैं स्वस्थान संयमीकैं गुणश्रेणिकी वृद्धि हानि अवस्थितरूप तीन स्थान कहे ॥३४५॥

अथावतारकाप्रमत्तस्याधःप्रवृत्तकरणे संक्रमसंभवविशेषं प्रदर्शयति—

करणे अधापवत्ते अधापवत्तो दु संकमो जादो।
विज्झादमबंधाणे णट्ठो गुणसंकमो तत्थ ॥३४६॥

करणे अधःप्रवृत्ते अधःप्रवृत्तस्तु संक्रमो जातः।
विध्यातमबन्धने नष्टो गुणसंक्रमस्तत्र ॥३४६॥

सं० टी०—अवतारकाधःप्रवृत्तकरणे बन्धवतामथाप्रवृत्तसंक्रमो जातः। अबन्धानां विध्यातसंक्रमः। तत्र गुणसंक्रमो विनष्ट एव ॥३४६॥

स० चं०—उतरनेवाला अधःप्रवृत्त करणविषै जिनि प्रकृतिनिका बंध पाइए तिनकैं तौ अथाप्रवृत्त नामा संक्रम भया, इनका अन्य प्रकृतिविषै संक्रम होनेविषैं अधःप्रवृत्त नामा भागहार संभवै है। बहुरि जिनका बन्ध न पाइए तिनकैं विध्यातसंक्रमण पाइए है। इनका अन्य प्रकृतिविषै संक्रम होनेविषैं विध्यात नामा भागहार संभवै है अर गुणसंक्रमका नाश ही भया। इनका स्वरूप पूर्वैं कह्या है सो जानना ॥३४६॥

अथ द्वितीयोपशमसम्यक्त्वकालप्रमाणं गाथाद्वयमाह—

चडणोदरकालादो पुव्वादो पुव्वगो त्ति संखगुणं।
कालं अधापवत्तं पालदि सो उवसमं सम्मं[1] ॥३४७॥

चटनावतरकालतोऽपूर्वात् अपूर्वक इति संख्यगुणम्।
कालं अधःप्रवृत्तं पालयति स उपशमं सम्यम् ॥३४७॥

सं० टी०—द्वितीयोपशमसम्यक्त्वेनोपशमकश्रेण्यामारूढस्यापूर्वकरणप्रथमसमयादारभ्य ततोऽवतोर्णापूर्वकरणचरमसमयपर्यंतं यावत्कालस्ततः संख्येयगुणं कालमन्तर्मुहूर्तप्रमितं, अधःप्रवृत्तकरणेन स हि द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमनुपालयति ॥३४७॥

स० चं०—द्वितीयोपशम सम्यक्त्व सहित जीव चढतैं अपूर्वकरणका प्रथम समयतैं लगाय उतरतैं अपूर्वकरणका अंत समय पर्यंत जितना काल भया तातैंसंख्यातगुणा ऐसा अंतर्मुहूर्तमात्र द्वितीयोपशम सम्यक्त्वका काल है। सो इस काल पर्यंत अधःप्रवृत्तकरण सहित इस द्वितीयोपशम सम्यक्त्वकौं पालै है ॥३४७॥

१. उवसामगस्स पढमसमय अपुव्वकरणप्पहुडि जाव पडिवदमाणगस्स चरिमसमयअपुव्वकरणो त्ति तदो एत्तोः संखेज्जगुणं कालं पडिणियत्तो अधापवत्तकरणेण उवसमसम्मत्तद्धमणुपालेदि। वही पृ० १९१५।

तस्सम्मत्तद्धाए असंजमं देससंजमं वापि ।
गच्छेज्जावलिछक्के सेसे सासणगुणं वापि[1] ।।३४८।।

तत्सम्यक्त्वाद्धायां असंयमं देशसंयमं वापि ।
गत्वावलिषट्के शेषे सासनगुणं वापि ।।३४८।।

सं० टी०—तस्य द्वितीयोपशमसम्यक्त्वकाले अधःप्रवृत्तकरणकालं नीत्वा पुनरप्रत्याख्यानावरणकषायोदयात् असंयमपरिणाममपि गच्छेत् । प्रत्याख्यानावरणकषायोदयाद्देशसंयममपि वा गच्छेत् । अथवा असंयमं प्राप्य तत्रान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा पश्चाद्देशसंयमं क्रमेण गच्छेत् । देशसंयमं प्राप्य तत्रान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा पश्चादसंयमं वा क्रमेण गच्छेत् । एवं क्रमेणोभयप्राप्तेः प्रवचने कथितत्वात् । अथवा तदुपशमसम्यक्त्वकालस्यावलिकषट्केऽवशिष्टेऽनन्तानुबन्धिकषायान्यतमोदयात्सासादनगुणस्थानमपि गच्छेत् ।।३४८।।

स० चं०—तिस ही द्वितीयोपशम सम्यक्त्वका कालविषै अधःप्रवृत्तकरण कालकौं समाप्तकरि अप्रत्याख्यानके उदयतैं असंयमकौं प्राप्त होइ तौ चौथे गुणस्थान आवै है । अथवा प्रत्याख्यानके उदयतैं देशसंयमकौं प्राप्त होइ तौ पाँचवें गुणस्थान आवै । अथवा असंयत होइ तहाँ अंतर्मुहूर्त्त तिष्ठि देशसंयम होइ, अथवा देशसंयत होइ तहाँ अंतर्मुहूर्त्त तिष्ठि असंयत होइ अथवा तिस कालविषै छह आवली अवशेष रहैं अनन्तानुबन्धी क्रोधादिविषै किसीका उदयतैं सासादनकौं भी प्राप्त होइ ।।३४८।।

अथ द्वितीयोपशमसम्यक्त्वात्सासादनगुणप्राप्तस्य संभवद्विशेषमाह—

जदि मरदि सासणो सो णिरयतिरक्खं णरं ण गच्छेदि ।
णियमा देवं गच्छदि जइवसहमुणिंदवयणेणं[2] ।।३४९।।

यदि म्रियते सासनः स निरयतिर्यञ्चं नरं न गच्छति ।
नियमात् देवं गच्छति यतिवृषभमुनीन्द्रवचनेन ।।३४९।।

सं० टी०—यदि स उपशमश्रेणितोऽवतीर्णः सासादनः स्वायुःक्षयवशान्म्रियते तदा नरकगतिं तिर्यग्गतिं मनुष्यगतिं च नियमेन न गच्छति किन्तु देवगतिं गच्छति । एवमुपशमश्रेणीतोऽवतीर्णस्य सासादनगुणप्राप्तेः । तस्य मरणं गतिविशेषश्च कषायप्राभृताख्यद्वितीयसिद्धान्तव्याख्याने यतिवृषभाचार्यस्य वचनप्रामाण्येन भणितम् ।।३४९।।

स० चं०—उपशमश्रेणीतैं उतरया जो सासादन जीव सो आयु नाशतैं मरै तौ नारक तिर्यंच मनुष्य गतिकौं प्राप्त न होइ नियमतैं देवगति हीकौं प्राप्त होइ । ऐसैं उपशमश्रेणीतैं उतरया जीवकैं सासादन गुणस्थानकी प्राप्ति वा ताके मरण होनेका विशेष कह्या है सो कषाय प्राभृत नामा दूसरा जयधवल शास्त्रविषै यतिवृषभ नामा आचार्य प्रतिपादन किया है । ताके अनुसारि इहाँ कथन कीया है ।।३४९।।

---

१. एदिस्से उवसमसमत्तद्धाए अब्भंतरदो असंजमं पि गच्छेज्ज, संजमासंजमं पि गच्छेज्ज, दो वि गच्छेज्ज । छसु आवलियासु सेसासु आसाणं पि गच्छेज्ज । वही पृ० १९१६ ।

२. आसाणं पुण गदो जदि मरदि ण सक्को णिरयगदिं तिरिक्खगदिं मणुसगदिं वा गंतुं णियमा देवगदिं गच्छदि । वही पृ० १९१६ ।

अथ तत्सासादनस्य गतित्रयगमने कारणमाह—

णरतिरियक्खणराउगसत्तो सक्को ण मोहमुवसमिदुं ।
तम्हा तिसु वि गदीसु ण तस्स उप्पज्जणं होदि[1] ॥३५०॥
नरकतिर्यग्नरायुष्कसत्त्वः शक्यो न मोहमुपशमयितुम् ।
तस्मात् त्रिष्वपि गतिषु न तस्य उत्पादो भवति ॥३५०॥

सं० टी०—नरकतिर्यग्मनुष्यायुःसत्त्वसहितो जीवश्चारित्रमोहनीयमुपशमयितुं न शक्तः तत्सत्त्वेन देशसंयमसकलसंयमयोः प्राप्त्यभावात् । तस्मात्करणात्तत्सासादनस्य तिसृष्वपि गतिषूत्पादो नास्ति । इदं सर्वं बद्धपरभवायुष उपशमश्रेणिमारुह्यावतीर्णस्य भणितम् । अबद्धपरभवायुषः तच्छ्रेणिमारुह्यावरूढ्य सासादनस्य मरणमेव न संभवति ॥३५०॥

स० चं—नारक तिर्यंच मनुष्य आयुका सत्त्व सहित जीव चारित्रमोह उपशमावनेकौं समर्थ नाहीं जातैं नरक तिर्यंच मनुष्यायुका सत्त्व सहित जीवकैं देशसंयम वा सकलसंयमकी भी प्राप्तिका अभाव है। तातैं उपशमश्रेणीतैं उतरया सासादनकैं देव विना अन्य तीन गतिनिमैं उपजना न हो है। बहुरि पूर्वैं आयु जाकै बन्ध्या होइ तिस ही उपशमश्रेणीतैं उतरया सासादनका मरण हो है। अबद्धायुका न हो है ॥३५०॥

अथोपशमश्रेण्यामवतीर्णस्य सासादनत्वप्राप्त्यभावमाचार्यान्तराभिप्रायेण भणति—

उवसमसेढीदो पुण ओदिण्णो सासणं ण पाउणदि ।
भूदवलिण[illegible]स्स फुडोवदेसेण ॥३५१॥
उपशमश्रेणीतः पुनरवतीर्णः सासनं न प्राप्नोति ।
भूतवलिनाथनिर्मलसूत्रस्य स्फुटोपदेशेन ॥३५१॥

सं० टी०—उपशमश्रेणीतोऽवतीर्णः सासादनत्वं न प्राप्नोत्येव । तत्प्राप्तिकारणानन्तानुबन्धिकषायोदयस्यासंभवात्, पूर्वमेवानन्तानुबन्धिचतुष्टयं द्वादशकषायस्वरूपेण परिणमय्य पश्चादुपशमश्रेणिमारूढस्य तत्सत्त्वाभावात् । इदं सर्वं भूतवलिमुनिनाथप्रोक्ते महाकर्मप्रकृतिप्राभृतार्थप्रथमस्थितिगोचरे प्रथमसिद्धान्ते निर्मलस्य पूर्वापरविरोधादिरहितस्य सूत्रस्य स्फुटोपदेशेनास्माभिर्निश्चितम् ॥३५१॥

स० चं०—उपशमश्रेणीतैं उतरया जीव सासादनकौं प्राप्त न होइ जातैं पूर्वैं अनंतानुबन्धीका विसंयोजनकरि उपशमश्रेणी चढ्या है ताके अनंतानुबन्धीका उदय न संभवै है। ऐसैं भूतवलि नामा मुनिनाथ ताका कह्या जो महाकर्मप्रकृति प्राभृत नामा पहला धवल शास्त्र तिसविषैं पूर्वापर दोष रहित निर्मल प्रगट उपदेश है ताकरि हम निश्चय कीया है ॥३५१॥

अथोपशमश्रेण्यारूढद्वादशपुरुषप्रक्रियाभेदप्रदर्शनार्थं द्वादशगाथाः प्ररूपयति—

पुंकोधोदयचलियस्सेसाह परूवणा हु पुंमाणे ।
मायालोभे चलिदस्सत्थि विसेसं तु पत्तेयं[2] ॥३५२॥

---

१. हंदि तिसु आउएसु एक्केण वि बद्धेण आउएण ण सक्को कसाये उवसामेदुं । एदेण कारणेण णिरयगदि-तिरिक्खजोणि-मणुस्सगदीओ ण गच्छदि । वही, पृ० १९१६—१९१७ ।

२. एसा सव्वा परूवणा पुरिसवेदस्स कोहेण उवट्ठिदस्स । पुरिसवेदस्स चेव माणेण उवट्ठिदस्स

पुंक्रोधोदयचटितस्य शेषा अथ प्ररूपणा हि पुंमाने ।
मायालोभे चटितस्यास्ति विशेषं तु प्रत्येकं ॥३५२॥

सं० टी०—पुंवेदसंज्वलनक्रोधोदयसहितस्योपशमश्रेणिमारूढस्य पूर्वोक्ता सर्वापि प्ररूपणा भवति । पुंवेदसंज्वलनमानोदयेन पुंवेदसंज्वलनमायोदयेन पुंवेदसंज्वलनलोभोदयेन चोपशमश्रेणिमारूढानां प्रत्येकं प्रक्रियाविशेषोऽस्ति ॥३५२॥

आगें उपशमश्रेणी चढनेवाले बारह प्रकार जीव हैं तिनकी क्रियाविषै विशेष है सो कहैं हैं—

स० चं०—पूर्वै कही जो सर्व प्ररूपणा सो पुरुषवेद अर क्रोध कषाय सहित उपशमश्रेणी चढनेवाले जीवकी कही है । बहुरि पुरुषवेद अर संज्वलन मान वा माया वा लोभ सहित उपशम श्रेणी चढनेवालोंकैं क्रिया विशेष है ॥३५२॥

तद्यथा—

दोण्हं तिण्हं चउण्हं कोहादीणं तु पढमठिदिमित्तं ।
माणस्स य मायाए बादरलोहस्स पढमठिदी[1] ॥३५३॥

द्वयोः त्रयाणां चतुर्णां क्रोधादीनां तु प्रथमस्थितिमात्रम् ।
मानस्य च मायाया बादरलोभस्य प्रथमस्थितिः ॥३५३॥

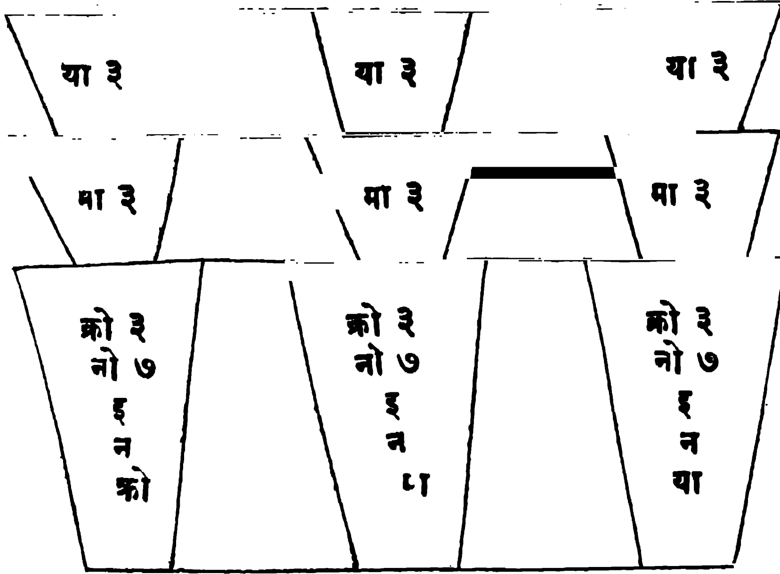
सं० टी०—संज्वलनक्रोधमानमायालोभानां मध्ये पुंक्रोधोदयेनारूढस्य द्वयोः क्रोधमानयोर्यावन्मात्री प्रथमस्थितिस्तावन्मात्री पुंमानोदयेनारूढस्य मानप्रथमस्थितिर्भवति—

मा ३ मा ३
क्रो ३ नो ७ इ न क्रो ३ नो ७ इ न
क्रोधोदय मानोदय

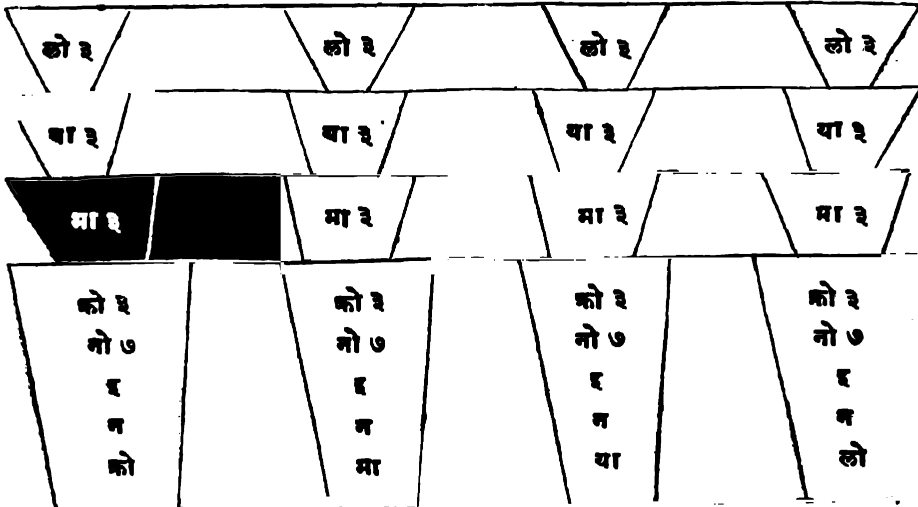
णाणत्तं । वही, पृ० १९१७ ।

२. जाव सत्तणोकसायाणमुवसामणा ताव णत्थि णाणत्तं । उवरिमाणं वेदन्तो कोहमुवसामेदि । जद्देही कोहेण उवट्ठिदस्स कोहस्स उवसामणद्धा तद्देही चेव माणेण वि उवट्ठिदस्स कोहस्स उवसामणद्धा ।········ इत्यादि । वही, पृ० १९१७–१९१८ ।

तथा पुंक्रोधोदयारूढस्य क्रोधमानमायासंज्वलनानां त्रयाणां संपिंडिता प्रथमस्थितिर्यावन्मात्री पुंमायोदयारूढस्य संज्वलनमायाप्रथमस्थितिर्भवति ।



तथा पुंक्रोधोदयारूढस्य संज्वलनक्रोधमानमायालोभानां समुदिता यावन्मात्री पुंलोभोदयेनारूढस्य सञ्ज्वलनबादरलोभस्य प्रथमस्थितिर्भवति ।



चतुर्णामुदयैः श्रेण्यारूढानां सर्वेषां सूक्ष्मलोभप्रथमस्थितिः समानैव ।

लो १	लो १	लो १	लो १
लो २	लो २	लो २	लो २
मा ३	मा ३	मा ३	मा ३
मा ३	मा ३	मा ३	मा ३
को ३	को ३	को ३	को ३
नो ७	नो ७	नो ७	नो ७
इ	इ	इ	इ
न	न	न	न
को	मा	मा	लो

तथा नपुंसकवेदस्त्रीवेदसप्तनोकषायाणामुपशमनकालश्चतुर्णां समान एव ॥३५३॥

सोई कहिए है—

सं० चं०—पुरुषवेद अर क्रोधका उदय सहित चढ्या जीवकी क्रोध अर मानकी प्रथम स्थिति मिलाई हुई जेती होइ तितनी मानका उदय सहित चढ्या जीवकैं मानकी प्रथम स्थिति हो है। भावार्थ—जो क्रोध सहित श्रेणी चढनेवालेकैं तौ पहिलैं क्रोधका उदय हो है। पीछैं मानका उदय हो है। अर मानका उदय सहित श्रेणी चढ्याकैं क्रोधका उदय न हो है मानका ही उदय हो है। ताकैं तिन दोऊनिका उदय कालके समान याकैं मानका उदय काल है इस वासतैं तिनि दोऊनिकी प्रथम स्थिति समान याकैं मानकी प्रथम स्थिति कही है। ऐसैं ही आगैं समझना। बहुरि क्रोधका उदय सहित चढ्या जीवकैं क्रोध अर मान अर मायाकी प्रथम स्थिति मिलाई हुई जेती होइ तितनी मायाका उदय सहित चढ्या जीवकैं लोभकी प्रथम स्थिति हो है। इहाँ ऐसा जानना—

क्रोधका उदय सहित श्रेणी चढ्याकैं तौ क्रमतैं च्यार्यो कषायका उदय हो है। मान सहित चढ्याकैं क्रोध विना तीनका ही उदय हो है। माया सहित चढ्याकैं माया अर लोभका ही उदय है। लोभ सहित चढ्याकैं केवल लोभ हीका उदय हो है तातैं पूर्वोक्त प्रकार प्रथम स्थिति कही है। बहुरि च्यार्योविषैं किसी कषायका उदय सहित चढैं सर्व ही जीवनिका सूक्ष्म लोभकी प्रथम स्थिति समान है। अर तिनकैं नपुंसक स्त्रीवेद सात नोकषायनिका उपशमन काल समान है ॥३५३॥

जस्सुदयेणारूढो सेढीं तस्सेव ठविदि पढमट्ठिदिं।
सेसाणावलिमेत्तं मोत्तूण करेदि अंतरं णियमा ॥३५४॥

यस्योदयेनारूढो श्रेणिं तस्यैव स्थापयति प्रथमस्थितिम् ।
शेषाणामावलिमात्रं मुक्त्वा करोति अन्तरं नियमात् ।।३५४।।

सं० टी०—यस्य वेदस्य कषायस्य वा उदयेन श्रेणीमारूढस्तस्य प्रथमस्थितिमन्तर्मुहूर्तमात्रीं स्थापयित्वा शेषवेदकषायाणां उदयरहितानामावलिमात्रीं मुक्त्वा उपर्यन्तरं करोति ।।३५४।।

स० चं०—जिस वेद वा कषायका उदय करि जीव श्रेणी चढया होइ ताकी तौ अंतर्मुहूर्तमात्र प्रथम स्थिति स्थापै है। तिस प्रथम स्थितिके ऊपरिके निषेकनिका अन्तर करै है बहुरि उदय रहित वेद वा कषायनिकी आवलीमात्र स्थिति छोडि ताके ऊपरके निषेकनिका अन्तर करै है ।।३५४।।

जस्सुदयेणारूढो सेढिं तक्कालपरिसमत्तीए ।
पढमट्ठिदिं करेदि हु अणंतरुवरुदयमोहस्स ।।३५५।।

यस्योदयेनारूढः श्रेणिं तत्कालपरिसमाप्तौ ।
प्रथमस्थितिं करोति हि अनन्तरोपर्युदयमोहस्य ।।३५५।।

सं० टी०—यस्य कषायस्योदयेन श्रेणीमारूढः तत्कषायप्रथमस्थितौ समाप्तायां पुनरनन्तरोपरितनोदयवत् कषायस्य प्रथमस्थितिं करोति । तथाहि—

यथा पुंक्रोधोदयेन श्रेणीमारूढः संज्वलनक्रोधप्रथमस्थितावंतर्मुहूर्तमात्र्यां समाप्तायां पुनर्मानसंज्वलनस्य प्रथमस्थितिमन्तर्मुहूर्तमात्रीं करोति । एवमुपर्यपि । तथा पुंमानोदयेन श्रेणीमारूढः संज्वलनमानस्थितावन्तर्मुहूर्तमात्र्यां समाप्तायां पुनः संज्वलनमायाप्रथमस्थितिमन्तर्मुहूर्तमात्रीं करोति । एवमुपर्यपि । तथा पुंमायोदयेन श्रेणिमारूढः संज्वलनमायाप्रथमस्थितावन्तर्मुहूर्तमात्र्यां समाप्तायां पुनः संज्वलनलोभस्य प्रथमस्थितिमन्तर्मुहूर्तमात्रीं करोति । एवमुपर्यपि । तथा पुंलोभोदयेन श्रेणीमारूढः संज्वलनलोभप्रथमस्थितावन्तर्मुहूर्तमात्र्यां निष्ठितायां पुनः सूक्ष्मलोभस्य प्रथमस्थितिमन्तर्मुहूर्तमात्रीं करोति ।।३५५।।

स० चं०—जिस कषायका उदय सहित श्रेणी चढया है तिस कषायकी प्रथम स्थिति समाप्त भएं ताके अनन्तरवर्ती कषायकी प्रथम स्थिति करै है। सोई कहिए है—क्रोध सहित श्रेणी चढया जीवकैं क्रोधकी प्रथम स्थितिका काल पूर्ण भएं पीछैं मानकी प्रथम स्थिति हो है। ऐसैं ही ऊपरि मायादिककी जाननी। बहुरि मान सहित चढया जीवकैं मानकी प्रथम स्थिति समाप्त भएं पीछैं मायाकी प्रथम स्थिति हो है ऐसैं ही ऊपरि जानना। बहुरि माया सहित चढया जीवकैं मायाकी प्रथम स्थिति पूर्ण भएं पीछैं लोभकी प्रथम स्थिति करै है। ऐसे ही उपरि जाननी। बहुरि लोभ सहित श्रेणी चढयाकैं लोभकी प्रथम स्थिति भएं पीछैं सूक्ष्म लोभकी प्रथम स्थिति हो है ।।३५५।।

माणोदएण चडिदो कोहं उवसमदि कोहअद्धाए ।
मायोदएण चडिदो कोहं माणं सगद्धाए ।।३५६।।

मानोदयेन चटितः क्रोधं उपशमयति क्रोधाद्धायाम् ।
मायोदयेन चटितः क्रोधं मानं स्वकाद्धायाम् ।।३५६।।

सं० टी०—पुंक्रोधोदयेनारूढस्य या संज्वलनक्रोधोदयाद्धा तस्यामेव पुंमानोदयेन श्रेण्यारूढः उदयरहितक्रोधत्रयमुपशमयति । तथा पुंमायोदयेनारूढः उदयरहितं क्रोधत्रयं मानत्रयं च पुंक्रोधोदयारूढस्य क्रोधप्रथमस्थितौ मानप्रथमस्थितौ चोपशमयति ।।३५६।।

स० चं०—क्रोधका उदय सहित चढ्या जीवकैं जो क्रोधके उदयका काल है तिस काल विषै ही मानका उदय सहित चढ्या जीव उदय रहित तीन क्रोधानिकौं उपशमावै है। बहुरि तैसैं ही मायाका उदय सहित चढ्या जीव उदय रहित तीन क्रोध अर तीन मानका क्रमतैं क्रोध सहित चढ्या जीवकैं जो क्रोधकी प्रथम स्थिति अर मानकी प्रथम स्थितिका काल है तिस कालविषै ही उपशमावै ।।३५६।।

लोभोदएण चडिदो कोहं माणं च मायमुवसमदि ।
अप्पप्पण अद्धाणे ताणं पढमट्ठिदी णत्थि ।।३५७।।

लोभोदयेन चटितः क्रोधं मानं च मायामुपशमयति ।
आत्मात्मनः अध्वाने तेषां प्रथमस्थितिर्नास्ति ।।३५७।।

सं० टी०—पुंलोभोदयेनारूढः उदयरहितं क्रोधत्रयं मानत्रयं मायात्रयं च पुंक्रोधोदयारूढस्य यथासंख्यं क्रोधप्रथमस्थितौ मानप्रथमस्थितौ मायाप्रथमस्थितौ चोपशमयति । तेषां क्रोधमानमायानां प्रथमस्थितिर्नास्त्युदयरहितत्वात् ।।३५७।।

स० चं०—लोभका उदय सहित चढ्या जीव है सो उदय रहित तीन क्रोध तीन मान तीन माया तिनकौं क्रोध सहित चढ्या जीवकैं जो क्रोधकी अर मानकी अर मायाकी प्रथम स्थितिका काल है तिस कालविषै क्रमतैं उपशमावै है। अर याकैं तिन क्रोधादिकनि की प्रथम स्थितिका अभाव है जातैं लोभ सहित चढ्या जीवकैं क्रोधादिकनिका उदय न पाइए है ।।३५७।।

माणोदयचडपडिदो कोहोदयमाणमेत्तमाणुदओ ।
माणतियाणं सेसे सेससमं कुणदि गुणसेढी ।।३५८।।

मानोदयचटपतितः क्रोधोदयमानमात्रमानोदयः ।
मानत्रयाणां शेषे शेषसमं करोति गुणश्रेणीम् ।।३५८।।

सं० टी०—पुंमानोदयेन श्रेणिमारुह्य पतितस्य मानोदयकालः क्रोधोदयारूढस्य क्रोधमानोदयकालप्रमितः। स मानोदयारूढपतितस्त्रिविधं मानमपकृष्य ज्ञानावरणादिगुणश्रेणेरायामसमानं गलितावशेषायामेन गुणश्रेणिं करोति। मायोदयारूढपतितस्य मायोदयकालः क्रोधोदयारूढस्य क्रोधमानमायोदयकालप्रमितः। स मायोदयारूढपतितस्त्रिविधमायामपकृष्य ज्ञानावरणादिगुणश्रेण्यायामसमेन गलितावशेषायामेन गुणश्रेणिं करोति। लोभोदयारूढपतितस्य लोभोदयकालः क्रोधोदयारूढस्य क्रोधमानमायालोभोदयकालमात्रः। स लोभोदयारूढपतितस्त्रिविधलोभमपकृष्य ज्ञानावरणादिगुणश्रेण्यायामसमेन गलितावशेषायामेन गुणश्रेणिं करोति ।।३५८।।

स० चं०—मानका उदय सहित श्रेणी चढ पड्या जो जीव ताकैं क्रोध उदय सहित चढ्या जीवकैं क्रोध मानका उदय काल मिलाया हुआ जितना होइ तितना मानका उदय काल है। ऐसें

ही माया उदय सहित चढ्या पड्या जीवकैं क्रोध सहित चढ्याकैं क्रोध मान मायाके उदयका जितना काल होइ तितना मायाका उदय काल है। लोभ उदय सहित चढ्या पड्या जीवकैं क्रोध सहित चढ्याकैं जितना क्रोध मान माया लोभका उदय काल होइ तितना एक लोभ हीका उदय काल हो है। बहुरि मान माया सहित चढिकरि पडे जीव क्रमतैं मान माया लोभका द्रव्यकौं अपकर्षणकरि ज्ञानावरणादिकनिकी गुणश्रेणि आयामके समान गलितावशेष आयामकरि गुणश्रेणि करै है। भावार्थ यहु—मानका उदय सहित चढि जो जीव पड्या ताकैं क्रमतैं लोभ मानका उदय होइ। तहाँ मानका उदय भएँ मोहका गुणश्रेणि आयाम और कर्मनिके समान करै है। जातैं याकैं क्रोधका उदय होना नाहीं। ऐसैं ही माया सहित चढ्या पढ्याकै लोभका उदय आया पीछैं मायाका उदय आए अर लोभका उदय सहित चढि पड्याकै लोभ हीका उदय है तातैं पहलैं ही अन्य कर्मनिके समान मोहका गलितावशेष गुणश्रेणि आयाम हो है ॥३५८॥

माणादितियाणुदये चडपडिये सगसगुदयसंपत्ते ।
णवछत्तिकसायाणं गलिदवसेसं करेदि गुणसेढिं ॥३५९॥

मानादित्रयाणामुदये चटपतिते स्वकस्वकोदयसंप्राप्ते ।
नवषट्त्रिकषायाणां गलितावशेषां करोति गुणश्रेणिम् ॥३५९॥

सं० टी०—मानमायालोभोदयैरारूढपतितः स्वस्वकषायोदयं सम्प्राप्तः यथासङ्ख्यं नवषट्त्रिकषायाणां गलितावशेषायामां पूर्वोक्तप्रकारेण गुणश्रेणिं करोति ॥३५९॥

स० चं०—मान माया लोभका उदय सहित चढ्या पड्या जीव हैं ते अपनी-अपनी कषायका उदयकौं प्राप्त होत संते क्रमतैं नव कषायनिकी अर छह कषायनिकी अर तीन कषायनिकी पूर्वोक्त प्रकार गलितावशेष आयाम गुणश्रेणि करै हैं। भावार्थ यहु—जैसैं क्रोधका उदय सहित चढि पड्या जीव क्रोधका उदय आएँ बारह कषायनिका पूर्वोक्त प्रकार गलितावशेष आयाम लीएँ गुणश्रेणि करै है तैसैं मानका उदय सहित चढि पड्या जीव मानका उदय आएँ क्रोध विना नव कषायनिका करै है। माया सहित चढि पड्या जीव मायाका उदय भएँ लोभ मायारूप छह कषायनिका करै है। लोभ सहित चढि पड्या जीव लोभका उदय आएँ तीन प्रकार लोभ हीका अन्य कर्मनिके समान गलितावशेष गुणश्रेणि आयाम करै है ॥३५९॥

जस्सुदएण य चडिदो तम्हि य उक्कड्डियम्हि पडिऊण ।
अंतरमाऊरेदि हु एवं पुरिसोदए चडिदो ॥३६०॥

यस्योदयेन च चटितः तस्मिंश्च अपकर्षिते पतित्वा ।
अंतरमापूरयति हि एवं पुरुषोदये चटितः ॥३६०॥

सं० टी०—यस्य कषायस्योदयेन श्रेणिमारुह्य पतितः तस्मिन् कषायेऽपकृष्टेऽन्तरमापूरयति। एवमुक्तप्रकारेण पुंवेदोदयेन श्रेण्यारूढावरूढो व्याख्यातः ॥३६०॥

स० चं०—जिस कषायका उदय सहित चढि पड्या होइ तिस ही कषायका द्रव्यका अपकर्षण होत संतै अंतरकौं पूरै है। नष्ट कीए निषेकनिका सद्भाव करै है। भावार्थ यहु—जैसैं क्रोध

सहित चढि पड्या जीव क्रोधका उदय आएँ द्रव्यकौं अपकर्षणकरि अंतरकौं पूरै है तैसें मान सहित चढि पड्या जीव मानका उदय आएँ अर माया सहित चढि पड्या जीव मायाका उदय आएँ अर लोभ सहित चढि पड्या जीव लोभका उदय आएँ प्रथम समयविषै द्रव्यकौं अपकर्षणकरि जे अंतर करणविषै निषेक नष्ट कीए थे तिनविषै द्रव्यका निक्षेपणकरि तिनका सद्भाव करै है। इस प्रकार पुरुषवेद सहित क्रोधादियुक्त श्रेणि चढने उतरनेवालाका व्याख्यान जानना ।।३६०।।

थीउदयस्स य एवं अवगदवेदो हु सत्तकम्मंसे ।
सममुवसामदि संढस्सुदए चडिदस्स वोच्छामि ।।३६१।।

स्त्री-उदयस्य च एवं अपगतवेदो हि सप्तकर्मांशान् ।
सममुपशमयति षंढस्योदये चटितस्य वक्ष्यामि ।।३६१।।

सं० टी०—स्त्रीवेदोदयेन सहितैः क्रोधादिकषायोदयैः श्रेणिमारूढः, अपगतवेदोदयः सन्नेव सप्त-नोकषायान् युगपदुपशमयति । अवशिष्टं सर्वमुपशमनविधानं पुंवेदारूढवद्द्रष्टव्यं ।।३६१।।

स० चं०—स्त्रीवेदयुक्त क्रोधादिकनिका उदय सहित श्रेणि चढ्या च्यारि प्रकार जीव है सो वेद उदय रहित होत संता पुरुषवेद अर छह हास्यादिकनिका इन सात नोकषायनिकौं युगपत् उपशमावै है। अन्य सर्व विधान पुरुषवेदका उदय सहित श्रेणी चढ्या जीवके समान जानना ।।३६१।।

अथ षंढोदयारूढस्य विशेषं वक्ष्यामि—

संढुदयंतरकरणो संढद्धाणम्हि अणुवसंतंसे ।
इत्थिस्स य अद्धाए संढं इत्थि च समगमुवसमदि ।।३६२।।

षंढोदयान्तरकरणः षंढाद्धायां अनुपशांतांशे ।
स्त्रियः च अद्धायां षंढं स्त्रीं च समकमुपशमयति ।।३६२।।

सं० टी०—नपुंसकवेदोदयेन सहितैः क्रोधादिकषायैः श्रेण्यारूढो नपुंसकवेदस्यान्तरं कुर्वाणः प्रथम-स्थितिपुंवेदोदयारूढस्य नपुंसकस्त्रीवेदोपशमनकालमत्रीं स्थापयित्वा प्रागेव नपुंसकवेदोपशमनं प्रारभ्य पुंवेदारूढ-नपुंसकोपशमनकालपर्यन्तं गच्छति नाद्यापि नपुंसकवेदोपशमनं समाप्तं । ततः स्त्रीवेदोपशमनं प्रारभ्य द्वावपि वेदावुपशमयन् पुंवेदारूढस्य स्त्रीवेदं पशमनकालमात्रमन्तर्मुहूर्तं गत्वा ।।३६२।।

अब नपुंसक वेदका उदय सहित श्रेणी चढ्याकै विशेष है ताहि कहस्यों—

स० चं—नपुंसकवेद युक्त क्रोधादिकनिका उदय सहित श्रेणी चढ्या च्यारि प्रकार जीव सो नपुंसकवेदका अन्तर करत संता पुरुषवेद सहित चढ्या जीवकै नपुंसकवेद स्त्रीवेदकौं उपशम करनेका जितना काल है तावन्मात्र नपुंसकवेदकी प्रथम स्थितिकौं स्थापै है। स्थापिकरि पुरुष वेद सहित चढ्या जीवकै नपुंसकवेदकै उपशमनकाल जो पाइए है ताका अन्तपर्यन्त कालकौं नपुंसक वेदकौं उपशमावता संता प्राप्त भया परि याकै नपुंसक वेदका उपशम समाप्त न भया। तहाँ पीछै स्त्रीवेद नपुंसकवेद इनि दोऊनिका युगपत् उपशम करने लगा। तहाँ पुरुषवेद सहित

चढ्या जीवकैं स्त्रीवेदके उपशम करनेका जो काल तिस कालकौं प्राप्त होइ कहा सोक हैं हैं ॥३६२॥

ताहे चरिमसवेदो अवगदवेदो हु सत्तकम्मंसे ।
सममुवसामदि सेसा पुरिसोदयचलिदभंगा हु ॥३६३॥

तस्मिन् चरमसवेदो अवगतवेदो हि सप्तकर्मांशान् ।
सममुपशमयति शेषाः पुरुषोदयचलितभङ्गा हि ॥३६३॥

सं० टी०—तदा चरमसमयसवेदः स्त्रीनपुंसकवेदोपशमनं निष्ठापयति । ततः परमपगतवेदः सप्त-नोकषायान् सममुपशमयति । शेषं सर्वं पुंवेदारूढप्रकारेण ज्ञातव्यम् ॥३६३॥

स० चं०—तहाँ सवेद अवस्थाका अन्त समयकौं प्राप्त होता संता स्त्रीवेद नपुंसकवेदके उपशमनकौं युगपत् समाप्त करै है । तातैं परै अवगतवेदी होत संता पुंवेद अर छह हास्यादिक इन सात नोकषायनिकौं युगपत् उपशमावै है । अन्य सर्व पुरुषवेद सहित श्रेणी चढया जीवकैं समान विधान जानना ॥३६३॥

अथोपशमश्रेण्यामल्पबहुत्वपदकथनप्रतिज्ञामाह—

पुंकोहस्स य उदए चलपलिदेऽपुव्वदो अपुव्वो त्ति ।
एदिस्से अद्धाणं अप्पाबहुगं तु वोच्छामि[1] ॥३६४॥

पुंक्रोधस्य च उदये चटपतितेऽपूर्वतः अपूर्व इति ।
एतस्य अद्धानामल्पबहुकं तु वक्ष्यामि ॥३६४॥

सं० टी०—पुंक्रोधोदयारूढावरूढस्यारोहकापूर्वकरणप्रथमसमयात्प्रभृति अवरोहकापूर्वकरणचरमसमय-पर्यन्ते काले सम्भवाल्पबहुत्वपदानि वक्ष्यामि ॥३६४॥

स० चं०—पुरुषवेद अर क्रोध कषायका उदय सहित चढया पडया जीवकैं आरोहक अपूर्व करणका प्रथम समयतैं लगाय अवरोहक अपूर्व करणका अन्त समय पर्यन्त कालविषैं सम्भवते जे अल्पबहुत्वके स्थान तिनकौं कहोंगा । इहाँ श्रेणी चढनेवालाका नाम तो आरोहक जानना । उतरनेवालाका नाम अवरोहक जानना । बहुरि जहाँ विशेष अधिक है तहाँ पूर्वतैं किछु अधिक जानना । ऐसी संज्ञा है ॥३६४॥

अथ तान्येवाल्पबहुत्वपदानि व्याख्यातुं सप्तविंशतिगाथाः प्ररूपयति—

अवरादो वरमहियं रसखंडुक्कीरणस्स अद्धाणं ।
संखगुणं अवरट्ठिदिखंडस्सुक्कीरणो कालो[2] ॥३६५॥

---

१. एत्तो पुरिसवेदेण सह कोहेण उवट्ठिदस्स पढमसमयअपुव्वकरणमादिं कादूण जाव पडिवदमाणस्स चरिमसमयअपुव्वकरणो त्ति एदिस्से अद्धाए जाणि कालसंजुत्ताणि पदाणि तेसिमप्पाबहुअं वत्तइस्सामो । वही, पृ० १९२५ ।

२. सव्वत्थोवा जहण्णिया अणुभागखंडयउक्कीरणद्धा । उक्कसिया अणुभागखंडयउक्कीरणद्धा विसेसा-हिया । जहण्णिया ट्ठिदिबंधगद्धा ट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धा च तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ । वही, पृ० १९२६ ।

अवरात् वरमधिकं रसखंडोत्करणस्याध्वानम् ।
संख्यगुणं अवरस्थितिखंडस्योत्करणः कालः ॥३६५॥

सं० टी०—सर्वतः स्तोको जघन्यानुभागकाण्डकोत्करणाद्धा २ १ ज्ञानावरणादिकर्मणामारोहक-सूक्ष्मसाम्परायचरमानुभागकाण्डकोत्करणाद्धा मोहनीयस्यान्तरकरणे क्रियमाणे तत्र चरमानुभागकाण्डकोत्कर-
।
णाद्धा च जघन्या कथ्यते । १ । तत उत्कृष्टानुभागखण्डोत्करणाद्धा विशेषाधिका २ १ साप्यारोहकापूर्वकरण-प्रथमसमये सर्वकर्मणां भवति । २ । ततो ज्ञानावरणादिकर्मणां जघन्यस्थितिकाण्डकोत्करणकालः सूक्ष्मसाम्पराय-चरमसमयसम्भवी अनिवृत्तिकरणचरमसमयसम्भवी मोहनीयस्य जघन्यस्थितिबन्धकालश्च संख्यातगुणौ
।
२ १ ४ परस्परं समानौ । ३ । ॥३६५॥

स० चं०—सर्वतैं स्तोक जघन्य अनुभागकांडकोत्करणका काल अंतर्मुहूर्तमात्र है सो यहु ज्ञानावरणादि कर्मनिका तौ आरोहक सूक्ष्मसाम्परायके अंतका अनुभागकांडकोत्करण जानना अर मोहका अंतर करत संता अंतका अनुभागकांडकोत्करण जानना १ । तातैं उत्कृष्ट अनुभाग-कांडकोत्करण काल विशेष अधिक है, सो यहु सर्व कर्मनिका आरोहक अपूर्वकरणका प्रथम समय विषैं संभवै है २ । तातैं सूक्ष्मसाम्परायका अंत समयविषैं संभवता ऐसा ज्ञानावरणादि कर्मनिका जघन्य स्थितिकांडकोत्करण काल अर अनिवृत्तिकरणका अंत समयविषैं संभवता ऐसा मोहनीयका जघन्य स्थितिबंध पडै सो काल संख्यातगुणे हैं । अर ते दोऊ परस्पर समान हैं ३ ॥३६५॥

पडणजहण्णट्ठिदिबंधद्धा तह अंतरस्स करणद्धा ।
जेट्ठट्ठिदिबंधठिदीउक्कीरद्धा य अहियकमा[1] ॥३६६॥

पतनजघन्यस्थितिबन्धाद्धा तथा अन्तरस्य करणाद्धा ।
ज्येष्ठस्थितिबन्धस्थित्युत्करणाद्धा च अधिकक्रमाः ॥३६६॥

सं० टी०—तस्मादवतारकसूक्ष्मसाम्परायप्रथमसमये ज्ञानावरणादिकर्मणां जघन्यस्थितिबन्धकालः अव-
। ।
तारकानिवृत्तिकरणप्रथमसमये मोहनीयस्य जघन्यस्थितिबंधकालश्च विशेषाधिकौ परस्परं समानौ २ १ । ४ । ४ ।
। ॥
एतस्मादन्तरकरणकालो विशेषाधिकः २ १ । ४ । ननु पूर्वमेकस्थितिकाण्डकोत्करणकालसमानः अन्तरकरण-काल इत्युक्तम् । इदानीं विशेषाधिक इत्युच्यते, कथने पूर्वापरविरोधः इति चेन्न मध्यमस्थितिकाण्डकोत्करण-कालेनान्तरकरणकालस्य समानत्ववचनात् । ५ । तस्मादन्तरकरणकालादारोहकापूर्वकरणप्रथमसमयसम्भविनौ
। ॥।
उत्कृष्टस्थितिबन्धकाल उत्कृष्टस्थितिकाण्डकोत्करणकालश्च विशेषाधिकौ २ १ ४ परस्परं समानौ ।६। ।३६६।

स० चं०—तातैं अवरोहक सूक्ष्मसाम्परायका प्रथम समयविषैं संभवता ज्ञानावरणादि

१. पडिगदमाणस्स जहण्णिया ट्ठिदिबंधगद्धा विसेसाहिया । अंतरकरणद्धा विसेसाहिया । उक्कस्सिया ट्ठिदिबंधगद्धा ट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धा च विसेसाहिया । वही, पृ० १९२६–१९२७ ।

कर्मनिका जघन्य स्थिति बंधापसरण काल अर अवरोहक अनिवृत्तिकरणका प्रथम समय विषैं संभवता मोहका जघन्य स्थिति बंधापसरणकाल विशेष अधिक है ते दोऊ परस्पर समान हैं ४। तातैं अंतरकरण करनेका काल विशेष अधिक है।

इहाँ कोऊ कहै—पूर्वै स्थितिकांडकोत्करण कालके समान अंतरकरण काल कह्या था इहाँ अधिक कैसैं कहो हो ? ताका समाधान—पूर्वैं तहाँ संभवता जो मध्य स्थिति कांडकोत्करण काल ताके समान अंतरकरण काल कह्या था इहाँ जघन्य स्थितिकांडकोत्करण कालतैं अधिक कह्या है। ५। तातैं आरोहक अपूर्वकरणका प्रथम समयविषैं संभवता ऐसा उत्कृष्ट स्थितिबंध काल कहिए जेते काल समानरूप उत्कृष्ट स्थितिबंध होइ ऐसा स्थितिबंधापसरण काल अर उत्कृष्ट स्थिति कांडकोत्करणकाल विशेष अधिक है ते दोऊ परस्पर समान हैं ॥३६६॥

सुहमंतिमगुणसेढी उवसंतकसायगस्स गुणसेढी।
पडिवदसुहुमद्धा वि य तिण्णि वि संखेज्जगुणिदकमा[1] ॥३६७॥

सूक्ष्मांतिमगुणश्रेणी उपशांतकषायकस्य गुणश्रेणी।
प्रतिपतत्सूक्ष्माद्धापि च तिस्रोपि संख्येयगुणितक्रमाः ॥३६७॥

सं० टी०—तत आरोहकसूक्ष्मसाम्परायचरमसमयसम्भविगलितावशेषो गुणश्रेण्यायामः संख्यातगुणः—
। ॥।
२ १ । ४ । ४ । ७, तत उपशान्तकषायस्य प्रथमसमये आरब्धगुणश्रेण्यायामः संख्यातगुणः—
। ॥। । ॥।
२ १ । ४ । ४ । ४ । ८, ततः प्रतिपतत्सूक्ष्मसाम्परायकालः २ १ ४ । ४ । ४ । ४ । ९ ॥३६७॥

स० चं०—तातैं अवरोहक सूक्ष्मसाम्परायका अंत समयविषैं संभवता ऐसा गलितावशेष गुणश्रेणी आयाम संख्यातगुणा है। ७। तातैं उपशांतकषायका प्रथम समयविषैं आरंभ्या ऐसा गुणश्रेणि आयाम संख्यातगुणा है। ८। तातैं पडनेवाला सूक्ष्मसाम्परायका काल संख्यातगुणा है। ९ ॥३६७॥

तग्गुणसेढी अहिया चलसुहुमो किट्टिउवसमद्धा य।
सुहुमस्स य पढमठिदी तिण्णि वि सरिसा विसेसाहिया[2] ॥३६८॥

तद्गुणश्रेणी अधिका चलसूक्ष्मः कृष्टयुपशमाद्धा च।
सूक्ष्मस्य च प्रथमस्थितिः तिस्रोऽपि सदृशा विशेषाधिकाः ॥३६८॥

---

१. चरिमसमयसुहुमसाम्पराइयस्स गुणसेढिणिक्खेवो संखेज्जगुणो। तं चेव गुणसेढिसीसयं ति भण्णदि। उवसंतकसायस्स गुणसेढिणिक्खेवो संखेज्जगुणो। पडिवदमाणयस्स सुहुमसांपराइयद्धा संखेज्जगुणा। वही, पृ० १९२७।

२. तस्सेव लोभस्स गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ। उवसामगस्स सुहुमसांपराइयद्धा किट्टीणमुवसामणद्धा सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदी च तिण्णि वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ। वही, पृ० १९२७।

सं० टी०— तस्मात्प्रतिपतत्सूक्ष्मसांपरायस्य संज्वलनलोभगुणश्रेण्यायामः आवलिमात्रेण विशेषाधिकः
१
२ ९ । १०, ततः आरोहकसूक्ष्मसाम्परायकालः सूक्ष्मकृष्ट्युपशमनकालः सूक्ष्मसाम्परायप्रथमस्थित्यायामश्च
१
विशेषाधिकाः २ ९ परस्परं समानाः । अत्र विशेषप्रमाणमन्तर्मुहूर्तमात्रम् ११ । ॥३६८॥

स० चं०— तातैं पडनेवाला सूक्ष्मसाम्परायकैं लोभका गुणश्रेणि आयाम आवलीमात्र विशेष करि अधिक है। १०। तातैं आरोहक सूक्ष्मसाम्परायका काल अर सूक्ष्मकृष्टि उपशमावनेका काल अर सूक्ष्मसाम्परायका प्रथम स्थिति आयाम यथासंभव अन्तर्मुहूर्तमात्र विशेषकरि अधिक हैं। ए तीनौं परस्पर समान हैं। ११ ॥३६८॥

किट्टीकरणद्धहिया पडबादरलोभवेदगद्धा हु ।
संखगुणा तस्सेव य तिलोहगुणसेढिणिक्खेओ[1] ॥३६९॥

कृष्टिकरणाद्धाधिका पतद्बादरलोभवेदकाद्धा हि ।
संख्यगुणं तस्यैव च त्रिलोभगुणश्रेणिनिक्षेपः ॥३६९॥

१ ।।
सं० टी०—ततः सूक्ष्मकृष्टिकरणकालो विशेषाधिकः २ ९ अयं चानिवृत्तिकरणकालस्य किंचिन्न्यून-
त्रिभागमात्रः २ ९ १ – । १२ । ततः पतद्बादरसाम्परायस्य बादरलोभवेदककालः संख्यातगुणः २ ९ २ । १३ ।
३ । ३
ततः पतदनिवृत्तिकरणस्य लोभत्रयगुणश्रेणिनिक्षेपः आवलिमात्रेणाधिकः २ ९ । २ ।१४ ॥३६९॥
३

स० चं०—तातैं सूक्ष्मकृष्टि करनेका काल विशेष अधिक है। सो यहु अनिवृत्तिकरण कालका किंचित् न्यून त्रिभागमात्र है। १२। तातैं पडनेवाले बादर साम्परायके बादर लोभ-वेदकका काल संख्यातगुणा है। १३। तातैं पडनेवाले अनिवृत्तिकरणके तीन लोभकी गुणश्रेणी का आयाम आवलीमात्र अधिक है। १४ ॥३६९॥

चडबादरलोहस्स य वेदगकालो य तस्स पढमठिदी ।
पडलोहवेदगद्धा तस्सेव य लोहपढमठिदी[2] ॥३७०॥

चटबादरलोभस्य च वेदककालश्च तस्य प्रथमस्थितिः ।
पतल्लोभवेदकाद्धा तस्यैव च लोभप्रथमस्थितिः ॥३७०॥

---

१. उवसामगस्स किट्टीकरणद्धा विसेसाहिया। पडिवदमाणगस्स बादरसांपराइयस्स लोभवेदगद्धा संखेज्जगुणा। तस्सेव लोभस्स तिविहस्स वि तुल्लो गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ। वही, पृ० १९२८।

२. उवसामगस्स बादरसांपराइयस्स लोभवेदगद्धा विसेसाहिया। तस्सेव पढमट्ठिदी विसेसाहिया। पडिवदमाणयस्स लोभवेदगद्धा विसेसाहिया। वही, पृ० १९२८।

सं० टी०—तस्मादारोहकानिवृत्तिकरणस्य बादरलोभवेदककालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेणाधिकः २ ७ । २ । १५ । तत आरोहकानिवृत्तिकरणस्य बादरलोभप्रथमस्थित्यायामो विशेषाधिकः २ ७ । २ । १६ । ततः पतद्बादरलोभवेदककालो विशेषाधिकः २ ७ । १७ । ततोऽवतारकस्य लोभप्रथमस्थित्यायामः आवलिमात्रेणाधिकः २ ७ । १८ ॥३७०॥

स० चं०—तातैं आरोहक अनिवृत्तिकरणकैं बादरलोभका वेदककाल अंतर्मुहूर्तकरि अधिक है । १५ । तातैं आरोहक अनिवृत्तिकरणकैं बादर लोभका प्रथम स्थितिका आयाम विशेष अधिक है । १६ । तातैं पडनेवालाकैं बादर लोभका वेदककाल विशेष अधिक है । १७ । तातैं उतरनेवालेकैं लोभकी प्रथम स्थितिका आयाम आवलीमात्र अधिक है । १८ ॥३७०॥

तम्मायावेदद्धा पडिवडछण्हंपि खित्तगुणसेढी ।
तम्माणवेदगद्धा तस्स णवण्हं पि गुणसेढी[1] ॥३७१॥

तन्मायावेदकाद्धा प्रतिपतत्षण्णामपि क्षिप्तगुणश्रेणी ।
तन्मानवेदकाद्धा तस्य नवानामपि गुणश्रेणी ॥३७१॥

सं० टी०—ततः पतन्मायावेदककालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेणाधिकः २ ७ । १९ । ततः प्रतिपतन्मायावेदकस्य षण्णां कषायाणां गुणश्रेण्यायामः आवलिमात्रेणाधिकः । २ ७ । २० । ततः प्रतिपतन्मानवेदककालोऽन्तर्मुहूर्तेनाधिकः २ ७ २१ । ततस्तस्यैव नवानां कषायाणां गुणश्रेण्यायामः आवलिमात्रेणाधिकः १ ७ २२ ॥३७१॥

स० चं०—तातैं पडनेवालेकैं मायावेदक काल अंतर्मुहूर्त करि अधिक है । १९ । तातैं पडनेवाले मायावेदकके छह कषायनिका गुणश्रेणी आयाम आवली करि अधिक है । २० । तातैं पडनेवालेकैं मान वेदककाल अंतर्मुहूर्तकरि अधिक है । २१ । तातैं तिसहीकैं नव कषायनिका गुणश्रेणी आयाम आवलीकरि अधिक है । २२ ॥३७१॥

चडमायावेदद्धा पढमट्ठिदिमायउवसमद्धा य ।
चलमाणवेदगद्धा पढमट्ठिदिमाणउवसमद्धा य[2] ॥३७२॥

---

१. पडिवदमाणगस्स मायावेदगद्धा विसेसाहिया । तस्सेव मायावेदगस्स छण्हं कम्माणं गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ । पडिवदमाणगस्स माणवेदगद्धा विसेसाहिया । तस्सेव पडिवदमाणयस्स माणवेदगस्स णवण्हं कम्माणं गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ । वही, पृ० १९२९ ।

२. उवसामयस्स मायावेदगद्धा विसेसाहिया । मायाए पढमट्ठिदी विसेसाहिया । मायाए उवसामणद्धा

चटमायावेदाद्धा प्रथमस्थितिमायाउपशमाद्धा च।
चटमानवेदकाद्धा प्रथमस्थितिमानोपशमाद्धा च ॥३७२॥

सं० टी०—तत आरोहकमायावेदककालोऽन्तमुहूर्तेनाधिकः २ ७ । २३ ततस्तन्मायाप्रथमस्थित्यायाम
१ ... १ ।
उच्छिष्टावलिमात्रेणाधिकः २ ७ २४ । ततो मायोपशमनकालः समयोनावलिमात्रेणाधिकः २ ७ २५ । तत
१ । ।
आरोहकमानवेदककालोऽन्तमुहूर्तमात्रेण विशेषाधिकः २ ७ २६ । ततस्तत्प्रथमस्थित्यायामः आवलिमात्रेणाधिकः
१ । । । १ । । । ।
२ ७ २७ । ततस्तन्मानोपशमनकालः समयोनावलिमात्रेणाधिकः २ ७ । २८ ॥३७२॥

स० चं० तातैं चढनेवालेकैं माया वेदककाल अंतमुंहूर्त करि अधिक है। २३। तातैं तिसकैं मायाकी प्रथम स्थितिका आयाम उच्छिष्टावलीकरि अधिक है। २४। तातैं मायाके उपशमावनेका काल समय घाटि आवलीमात्र अधिक है। २५। तातैं चढनेवालेकैं मान वेदक काल अंतमुंहूर्त करि अधिक है। २६। तातैं ताकी प्रथम स्थितिका आयाम आवलीमात्र अधिक है।२७। तातैं ताकैं मान उपशमावनेका काल समय घाटि आवली मात्र अधिक है। २८ ॥३७२॥

कोहोवसामणद्धा छप्पुरिसित्थीणउवसमाणं च।
खुद्दभवगहणं च य अहियकमा एक्कवीसपदा[1] ॥३७३॥

क्रोधोपशामनाद्धा षट्पुरुषस्त्रीनपुंसोपशमानां च।
क्षुद्रभवग्रहणं च च अधिकक्रमाणि एकविंशपदानि ॥३७३॥

सं० टी०—ततः क्रोधोपशमनकालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेणाधिकः २ ७ २९ । ततः षण्णोकषायोपशमनकालो
। ॥
विशेषाधिकः २ ७ ३० । ततः पुंवेदोपशमनकालः समयोनद्वयावलिमात्रेणाधिकः २ ७ । ३१ । ततः स्त्रीवेदो-
।।।
पशमनकालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेणाधिकः २ ७ ३२ । ततो नपुंसकवेदोपशमनकालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेणाधिकः २ ७ ३३ ।
ततः क्षुद्रभवग्रहणं विशेषाधिकं १ । ३४ ॥३७३॥
१८

स० चं०—तातैं क्रोधके उपशमावनेका काल अंतमुंहूर्तकरि अधिक है ॥२९॥ तातैं छह नोकषायनिके उपशमावनेका काल विशेष अधिक है ॥३०॥ तातैं पुरुषवेदके उपशमावनेका काल समयघाटि दोय आवलीकरि अधिक है ॥३१॥ तातैं स्त्रीवेद उपशमावनेका काल अंतमुंहूर्तकरि

विसेसाहिया। उवसामगस्स माणवेदगद्धा विसेसाहिया। माणस्स पढमट्ठिदी विसेसाहिया। माणस्स उवसामणद्धा विसेसाहिया। वही, पृ० १९२८–१९३०।

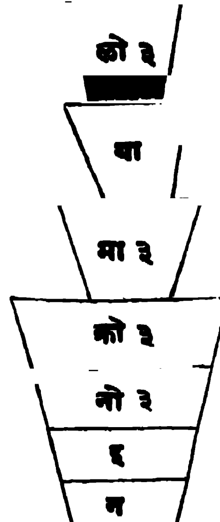
१. कोहस्स उवसामगद्धा विसेसाहिया। छण्णोकसायाणमुवसामणद्धा विसेसाहिया। पुरिसवेदस्स उवसामणद्धा विसेसाहिया। इत्थिवेदस्स उवसामणद्धा विसेसाहिया। णवुंसयवेदस्स उवसामणद्धा विसेसाहिया। खुद्दाभवग्गहणं विसेसाहियं। वही, पृ० १९३०।

अधिक है ।।३२।। तातैं नपुंसकवेद उपशमावनेका काल अंतर्मुहूर्तकरि अधिक है ।।३३।। तातैं क्षुद्रभवका काल विशेष अधिक है, सो यहु एक उश्वासके अठारहवें भागमात्र है ३४ ।।३७३।।

उवसंतद्धा दुगुणा तत्तो पुरिसस्स कोहपढमठिदी ।
मोहोवसामणद्धा तिण्णि वि अहियक्कमा होंति ।।३७४।।

उपशान्ताद्धा द्विगुणा ततः पुरुषस्य क्रोधप्रथमस्थितिः ।
मोहोपशमनाद्धा त्रीण्यपि अधिकक्रमाणि भवति ।।३७४।।

सं० टी०—तत उपशान्तकषायकालो द्विगुणः १ । २ । ३५ । ततः पुंवेदस्य प्रथमस्थित्यायामो विशेषा-
१८
। ।।
धिकः २ ७ । ३६ । ततः संज्वलनक्रोधप्रथमस्थित्यायामः किंचिन्न्यूनत्रिभागमात्रेणाधिकः २ ७ । ३७ । ततो
।।।
मोहनीयस्योपशमनकालः नपुंसकवेदोपशमनप्रारम्भात् प्रभृति मानमायालोभोपशमनकालैः साधिकः २ ७ । ३८ । ।।३७४।।



स० चं०—तिस क्षुद्रभवतैं उपशांतकषायका काल दूणा है। तातैं पुरुषवेदकी प्रथम स्थितिका आयाम विशेष अधिक है। ३६। तातैं संज्वलनक्रोधकी प्रथम स्थितिका आयाम किंचित् न्यून त्रिभाग मात्रकरि अधिक है। ३७। तातैं सर्व मोहनीयका उपशमावनेका काल है

१. उवसंतद्धा दुगुणा । पुरिसवेदस्स पढमट्ठिदी विसेसाहिया । कोहस्स पढमट्ठिदी विसेसाहिया । मोहणीयस्स उवसामणद्धा विसेसाहिया । वही, पृ० १९३१ ।

सौ नपुंसक वेदके उपशमावनेका प्रारम्भतैं लगाय मान माया लोभका उपशमकालनिकरि साधिक है। ३८ ॥३७४॥

पडणस्स असंखाणं समयपबद्धाणुदीरणाकालो ।
संखगुणो चडणस्स य तक्कालो होदि अहिया य[1] ॥३७५॥

पतनस्यासंख्यानां समयप्रबद्धानामुदीरणाकालः ।
संख्यगुणः चटनस्य च तत्कालो भवत्यधिकश्च ॥३७५॥

|||
सं० टी०—ततः पततोऽसंख्यातसमयप्रबद्धोदीरणाकालः संख्येयगुणः २ **१** ४ । ३९ । तत आरोह-
||
कस्यासंख्येयसमयप्रबद्धोदीरणाकालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण विशेषाधिकः २ **१** । ४ । ४० ॥३७५॥

स० चं०—तातैं पडनेवालेकैं असंख्यात समयप्रबद्धकी उदीरणा होनेका काल संख्यातगुणा है ३९। तातैं चढ़नेवालेकैं असंख्यात समयप्रवद्धका उदीरणा होनेका काल अंतर्मुहूर्तमात्र अधिक है। ४० ॥३७५॥

पडणाणियट्टियद्धा संखगुणा चडणगा विसेसहिया ।
पडमाणा पुव्वद्धा संखगुणा चडगणा अहिया[2] ॥३७६॥

पतनानिवृत्त्यद्धा संख्यगुणा चटनका विशेषाधिका ।
पतंत्यापूर्वाद्धाः संख्यगुणाः चटनका अधिकाः ॥३७६॥

||| |
सं० टी०—पततोऽनिवृत्तिकरणकालस्ततः संख्येयगुणाः २ **१** । ४ । ४ । ४१ । आरोहकानिवृत्ति-
||| | |
करणकालस्ततोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण विशेषाधिकः २ **१** । ४ । ४ । ४२ । ततः पतदपूर्वकरणकालः संख्येयगुणः ।
|
२ **१ १** । ४३ । तत आरोहकापूर्वकरणकालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रेणाधिकः २ **१ १** । ४४ ॥३७६॥

स० चं०—तातैं पडनेवालेकैं अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातगुणा है। ४१। तातैं चडनेवालेकैं अनिवृत्तिकरणका काल अंतर्मुहूर्तमात्र करि अधिक है। ४२। तातैं पडनेवालेकैं अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है। ४३। तातैं चडनेवालेकैं अपूर्वकरणका काल अन्तर्मुहूर्तकरि अधिक है। ४४ ॥३७६॥

१. पडिवदमाणगस्स जाव असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा सो कालो संखेज्जगुणो। उवसामगस्स असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणाकालो विसेसाहिओ। वही, पृ० १९३२।

२. पडिवदमाणयस्स अणियट्टिअद्धा संखेज्जगुणा। उवसामगस्स अणियट्टिअद्धा विसेसाहिया। पडिवदमाणयस्स अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा। उवसामगस्स अपुव्वकरणद्धा विसेसाहिया। वही, पृ० १९३२।

पडिवडवरगुणसेढी चढमाणापुव्वपढमगुणसेढी ।
अहियकमा उवसामगकोहस्स य वेदगद्धा हु[1] ॥३७७॥

प्रतिपतद्वरगुणश्रेणी चटदपूर्वप्रथमगुणश्रेणी ।
अधिकक्रमा उपशामकक्रोधस्य च वेदकाद्धा हि ॥३७७॥

सं० टी०—ततः प्रतिपततः सूक्ष्मसाम्परायप्रथमसमये प्रारब्धोत्कृष्टगुणश्रेण्यायामोऽन्तर्मुहूर्तेनाधिकः

|||

२ १ ।१। ४५ । आरोहकापूर्वकरणप्रथमसमयगुणश्रेण्यायामस्ततोऽन्तर्मुहूर्तेनाधिकः २ १ १ । ४६ । तत आरोह-

||||

कस्य क्रोधवेदककालः संख्येयगुणः २ १ १ । ४७ । अधःप्रवृत्तप्रथमसमयादारभ्य संज्वलनक्रोधवेदकत्वेनापूर्वकरणप्रथमसमयारब्धगुणश्रेण्यायामात् क्रोधवेदककालस्य संख्येयगुणत्वसंभवात् ॥३७७॥

स० चं०—तातैं पडनेवालेकैं सूक्ष्मसाम्परायका प्रथम समयविषै आरंभ्या ऐसा उत्कृष्ट गुणश्रेणि आयाम सो अंतर्मुहूर्तकरि अधिक है । ४५ । तातैं चढनेवालेकैं अपूर्वकरणका प्रथम समयविषैं जाका आरंभ भया ऐसा उत्कृष्ट गुणश्रेणि आयाम सो अंतर्मुहूर्त करि अधिक है । ४६ । तातैं चढनेवालेकैं क्रोधवेदककाल संख्यातगुणा है, जातैं याका आरंभ तो अधःकरणका प्रथम समयतैंही है अर गुणश्रेणी आयामका आरंभ अपूर्वकरणके प्रथम समयतैं है । तातैं असंख्यात गुणापना संभवै है । ४७ ॥३७७॥

संजदअधापवत्तगगुणसेढी दंसणोवसंतद्धा ।
चारित्तंतरिगट्ठिदी दंसणमोहंतरठिदीओ ॥३७८॥[2]

संयताधःप्रवृत्तकगुणश्रेणी दर्शनोपशान्ताद्धा ।
चारित्रान्तरिकस्थितिः दर्शनमोहान्तरस्थितिः ॥३७८॥

सं० टी०—ततः प्रतिपततः स्वस्थानाप्रमत्तसंयतस्य प्रथमसमयकृतगुणश्रेण्यायामः संख्येयगुणः । ४८ । ततो दर्शनमोहस्योपशान्तावस्थाकालः संख्येयगुणः । चारित्रमोहोपशमनात्पूर्वं पश्चाच्चाप्रमत्ताद्यसंयतकालपर्यंतं द्वितीयोपशमसम्यक्त्वानुपालनात् । ४९ । ततश्चारित्रमोहान्तरायामः संख्येयगुणः । ५० । ततो दर्शनमोहस्यन्तरायामः संख्येयगुणः । ५१ ॥३७८॥

स० चं०—तातैं पडनेवाला अप्रमत्तसंयमीकैं प्रथम समयविषैं कीया गुणश्रेणि आयाम सो संख्यातगुणा है । ४८ । तातैं दर्शनमोहका उपशम अवस्थाका काल संख्यातगुणा है जातैं

१. पडिवदमाणगस्स उक्कस्सओ गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ । उवसामगस्स अपुव्वकरणस्स पढमसमयगुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ । उवसामगस्स कोघवेदगद्धा संखेज्जगुणा । वही, पृ० १९३२ ।

२. अधापवत्तसंजदस्स गुणसेढिणिक्खेवो संखेज्जगुणो । दंसणमोहणीयस्स उवसंतद्धा संखेज्जगुणा । चारित्तमोहणीयमुवसामगो अंतरं करेंतो जाओ ट्ठिदीओ उक्कीरदि ताओ ट्ठिदीओ संखेज्जगुणाओ । दंसणमोहणीयस्स अंतरट्ठिदीओ संखेज्जगुणाओ । वही, पृ० १९३२–१९३३ ।

चारित्रमोहके उपशमनकालतैं पीछे वा पहलैं अप्रमत्तादि असंयत पर्यन्त द्वितीयोपशम सम्यक्त्वका सद्भाव करै है । ४९ । तातैं चारित्रमोहका अन्तर आयाम सख्यातगुणा है । ५० । तातैं दर्शन मोहका अन्तर आयाम संख्यातगुणा है । ५१ ॥३७८॥

अवराजेट्ठाबाहा चडपडमोहस्स अवरठिदिबंधो ।
चडपडतिघादिअवरट्ठिदिबंधंतोमुहुत्तो य[1] ॥३७९॥

अवराज्येष्ठाबाधा चटपतमोहस्य अवरस्थितिबन्धः ।
चटपतत्रिघात्यवरस्थितिबधान्तर्मुहूर्तश्च ॥३७९॥

सं० टी०—तत आरोहकसूक्ष्मसाम्परायचरमसमये ज्ञानावरणादिबन्धस्य जघन्याबाधा संख्येयगुणा, मोहनीयस्य पुनरारोहकानिवृत्तिचरमसमये जघन्याबाधा ग्राह्या । ५२ । ततोऽवरोहकापूर्वकरणचरमसमये सर्वकर्मणां स्थितिबन्धस्योत्कृष्टाबाधा संख्येयगुणा २ ९ साऽप्यन्तर्मुहूर्तप्रमिता एव । ५३ । तत आरोहकानिवृत्तिकरणचरम(प्रथम)समये मोहजघन्यस्थितिबन्धः संख्येयगुणः, सोऽप्यन्तर्मुहूर्तप्रमित एव । ५४ । ततोऽवरोहकानिवृत्तिप्रथमसमये मोहजघन्यस्थितिबन्धः संख्येयगुणः स चारोहकस्थितिबन्धादवरोहकस्थितिबन्धस्य द्विगुणत्वसंभवाद् युक्त एव । ५५ । ततश्चारोहकसूक्ष्मसाम्परायप्रथमसमये घातित्रयस्य जघन्यस्थितिबन्धः संख्येयगुणः । ५६ । ततोऽवरोहकसूक्ष्मसाम्परायप्रथमसमये घातित्रयस्य जघन्यस्थितिबन्धः संख्येयगुणः स पूर्वस्माद्द्विगुण एव । ५७ । तत उत्कृष्टान्तर्मुहूर्तः संख्येयगुणः २ ९–१ । ५८ । समयोनमुहूर्त उत्कृष्टान्तर्मुहूर्त इति प्रतिपादनात् । अनेनान्तदीपकपदेन इतः पूर्वपदानां सर्वेषामन्तर्मुहूर्तमात्रत्वमेव सूचितम् ॥३७९॥

स० चं०—तातैं चढनेवालेकैं सूक्ष्मसाम्परायका अंत समय विषैं संभवता ज्ञानावरणादिकका अर अनिवृत्तिकरणका अन्त समयविषैं संभवता मोहका स्थितिबन्धकी जघन्य आबाधा सो संख्यातगुणी है । ५२ । तातैं उतरनेवालेकैं अपूर्वकरणका अन्त समय विषैं संभवती सर्व कर्मनिका स्थितिबन्धकी उत्कृष्ट आबाधा संख्यातगुणी है । ५३ । तातैं चढ़नेवालेकैं अनिवृत्तिकरणका प्रथम समयविषैं संभवता मोहका जघन्य स्थितिबन्धका प्रमाण सो संख्यातगुणा है । ५४ । तातैं उतरनेवालेकैं अनिवृत्तिकरणका प्रथम समयविषैं संभवता मोहका जघन्य स्थितिबन्धका प्रमाण संख्यातगुणा है । इहाँ संख्यातका प्रमाण दोय जानना । ५५ । तातैं चढनेवालेकैं सूक्ष्मसाम्परायका अन्त समयविषैं संभवता ऐसा तीन घातिया कर्मनिका जघन्य स्थितिबन्ध सो संख्यातगुणा है । ५६ । तातैं उतरनेवालेकैं सूक्ष्मसाम्परायका प्रथम समयविषै संभवता तीन घातिया कर्मनिका जघन्य स्थितिबन्ध सो संख्यातगुणा है सो दूणा जानना । ५७ । तातैं उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त संख्यातगुणा है सो एक समय घाटि दोय घडी प्रमाण जानना । ५८ । इहाँ अंत दीपक न्यायकरि पूर्वैं जे सर्व काल कहे थे ते सर्व अन्तर्मुहूर्त मात्र ही जानने । जातैं अन्तर्मुहूर्तके भेद बहुत हैं ॥३७९॥

---

१. जहण्णिया आबाहा संखेज्जगुणा । उक्कस्सिया आबाहा संखेज्जगुणा । उवसामगस्स मोहणीयस्स जहण्णादो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । पडिवदमाणयस्स मोहणीयस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । उवसामगस्स णाणावरण-दंसणावरण-अतराइयाणं जहण्णट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । एदेसिं चेव कम्माणं पडिवदमाणयस्स जहण्णगो ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । अंतोमुहुत्तो संखेज्जगुणो । वही पृ० १९३३–१९३४ ।

चडमाणस्स य णामागोदजहण्णट्ठिदीण बंधो य ।
तेरसपदासु कमसो संखेण य होंति गुणियकमा[1] ॥३८०॥

चटतः च नामगोत्रजघन्यस्थितीनां बन्धश्च ।
त्रयोदशपदेषु क्रमशः संख्येन च भवन्ति गुणितक्रमाः ॥३८०॥

सं० टी०—तत आरोहकस्य नामगोत्रयोर्जघन्यस्थितिबन्धः संख्येयगुणः सोऽपि षोडशमुहूर्तमात्रः । ५९ । स्वस्वबन्धव्युच्छित्तिचरमसमये ग्राह्यः ॥३८०॥

स० चं०—तातैं चढनेवालेकैं नामगोत्रका जघन्य स्थितिबंध संख्यात गुणा है सो सोलह मुहूर्त मात्र है ।५९। सो यहु जघन्य बंध अपनी अपनी व्युच्छित्तिका अंत समय विषै जानना ॥३८०॥

चलतादियअवरबंधं पडणामागोदअवरठिदिबंधो ।
पडतादियस्स य अवरं तिण्णि पदा होंति अहियकमा[2] ॥३८१॥

चटतृतीयावरबन्धं पतन्नामगोत्रावरस्थितिबन्धः ।
पतत्तृतीयस्य च अवरं त्रीणि पदानि भवन्ति अधिकक्रमाणि ॥३८१॥

सं० टी०—तत आरोहकस्य वेदनीयजघन्यस्थितिबन्धो विशेषाधिकः । सोऽपि चतुर्विंशतिमुहूर्तमात्रः । ६० । ततः पततो नामगोत्रस्थितिबन्धो विशेषाधिकः । सोऽपि द्वात्रिंशन्मुहूर्तमात्रः ६१ । ततः पततो वेदनीयजघन्यस्थितिबन्धो विशेषाधिकः । सोऽष्टचत्वारिंशन्मुहूर्तमात्रः ६२ ॥३८१॥

स० चं०—तातैं चढनेवालेकैं वेदनीयका जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक है सो चौईसं मुहूर्तमात्र है । ६० । तातैं पडनेवालेकैं नाम गोत्रका जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक है सो बत्तीस मुहूर्तमात्र है । ६१ । तातैं पडनेवालेकैं वेदनीयका जघन्य स्थितिबंध विशेष अधिक है सो अठतालीस मुहूर्तमात्र है । ६२ ॥३८१॥

चडमायमाणकोहो मासादीदुगुण अवरठिदिबंधो ।
पडणे ताणं दुगुणं सोलसवस्साणि चलणपुरिसस्ता[3] ॥३८२॥

चटमायामानक्रोधो मासादिद्विगुणावरस्थितिबन्धः ।
पतने तेषां द्विगुणं षोडशवर्षाणि चटनपुरुषस्य ॥३८२॥

सं० टी०—आरोहकस्य संज्वलनमायाजघन्यस्थितिबन्धः पूर्वस्मात्संख्यातगुणो मासप्रमितः । मा १ ।

---

१. उवसामगस्स जहण्णगो णामा–गोदाणं ठिदिबंधो संखेज्जगुणे ।

२. वेदणीयस्स जहण्णगो ठिदिबंधो विसेसाहिओ । पडिवदमाणयस्स णामागोदाणं जहण्णगो ठिदिबंधो विसेसाहिओ । तस्सेव वेदणीयस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ । वही, पृ० १९३४ ।

३. उवसामगस्स मायासंजलणस्स जहण्णट्ठिदिबंधो मासो । तस्सेव पडिवदमाणगस्स जहण्णओ ट्ठिदिबिन्धो वे मासा । उवसामगस्स कोहसंजलणस्स जहण्णगो ट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा । पडिवदमाणयस्स तस्सेव जहण्णगो ट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा । उवसामगस्स कोहसंजलस्स जहण्णगो द्विदिबंधो चत्तारि मासा । पडिवदमाणगस्स तस्सेव जहण्णगो ट्ठिदिबंधो अट्ठ मासा । उवसामगस्स पुरिसवेदस्स जहण्णगो ठिदिबंधो सोलस वस्साणि । वही, पृ० १९६४ ।

६३ । तस्यैव संज्वलनमानजघन्यस्थितिबन्धो द्विगुणः मा० २ । ६४ । तस्यैव क्रोधसंज्वलनजघन्यस्थितिबन्धो द्विगुणः मा ४ । तेषामेव मायादीनां प्रतिपततो जघन्यस्थितिबन्धाः आरोहकजघन्यस्थितिबन्धेभ्यो द्विगुणाः मा २ । मा ४ । मा ८ । आरोहकस्य पुंवेदजघन्यस्थितिबन्धः षोडशवर्षमात्रः ॥३८२॥

स० चं०—तातैं चढनेवालेकैं संज्वलन मायाका जघन्य स्थितिबंध संख्यातगुणा है सो एक मास मात्र है । ६३ । तातैं तिसहीकैं मानका जघन्य स्थितिबंध दूणा है । ६४ । तातैं तिस हीकैं क्रोधका जघन्य स्थितिबंध दूणा है । ६५ । बहुरि उतरनेवालेकैं तिन ही मायादिकनिका जघन्य स्थितिबंध चढनेवालेतैं दूणा है, सो मायाका दोय मास मानका च्यारि मास क्रोधका आठ मासमात्र जानना । बहुरि चढनेवालेकैं पुरुषवेदका जघन्य स्थितिबंध सोलह वर्षमात्र है ॥३८२॥

पडणस्स तस्स दुगुणं संजलणाणं तु तत्थ दुट्ठाणे ।
बत्तीसं चउसट्ठी वस्सपमाणेण ठिदिबंधो[1] ॥३८३॥

पतनस्य तस्य द्विगुणं संज्वलनानां तु तत्र द्विस्थाने ।
द्वात्रिंशत् चतुःषष्टिः वर्षप्रमाणेन स्थितिबंधः ॥३८३॥

सं० टी०—प्रतिपततस्तद्बन्धो द्विगुणः । तत्काले संज्वलनचतुष्टयस्यारोहके स्थितिबन्धो द्वात्रिंशद्वर्षमात्रः । अवरोहके तद्बन्धश्चतुःषष्टिवर्षमात्रः ॥३८३॥

स० चं०—पडनेवालेकैं पुरुषवेदका जघन्य स्थितिबंध तातैं दूणा बत्तीस वर्षमात्र है । बहुरि तिस कालविषै संज्वलनचतुष्कका स्थितिबंध चढनेवालेकैं बत्तीस वर्ष, उतरनेवालेकैं चौसठि वर्षमात्र हो है ॥३८३॥

चडपडणमोहपढमं चरिमं तु तहा तिघादियादीणं ।
संखेज्जवस्सबंधो संखेज्जगुणक्कमो छण्हं[2] ॥३८४॥

चटपतनमोहप्रथमं चरमं तु तथा त्रिघातकादीनाम् ।
संख्येयवर्षबंधः संख्येयगुणक्रमः षण्णाम् ॥३८४॥

सं० टी०—आरोहकस्यान्तरकरणनिष्पत्त्यनन्तरसमये मोहनीयस्य प्रथमस्थितिबन्धः पूर्वस्मात्संख्यातगुणः संख्यातसहस्रवर्षप्रमितः । अवरोहकस्य तत्प्रणिधिस्थाने मोहचरमस्थितिबन्धः ततः संख्येयगुणः । सोऽपि संख्यात-

१. तस्समये चेव संजलणाणं ठिदिबंधो बत्तीस वस्साणि । पडिवदमाणगस्स पुरिसवेदस्स जहण्णओ ट्ठिदिबंधो बत्तीस वस्साणि । तस्समये चेव संजलणाणं ठिदिबंधो चउसट्ठिवस्साणि । वही, पृ० १९३४ ।

२. उवसामगस्स पढमो संखेज्जवस्सट्ठिदिगो मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । पडिवदमाणगस्स चरिमो संखेज्जवस्सट्ठिदिगो मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । उवसामगस्स णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं पढमो संखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो संखेज्जगुणो । पडिवदमाणयस्स तिण्हं घादिकम्माणं चरिमो संखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो संखेज्जगुणो । उवसामगस्स णामा-गोद-वेदणीयाणं पढमो संखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो संखेज्जगुणो । पडिवदमाणगस्स णामा-गोद-वेदणीयाणं चरिमो संखेज्जवस्सट्ठिदिओ बंधो संखेज्जगुणो । वही, पृ० १९३४–१९३५ ।

वर्षसहस्रप्रमित एव। यथा पूर्वमारोहकस्थितिबन्धादवरोहकस्थितिबन्धस्य द्विगुणत्वनियमस्तथाऽस्मिन्नवसरे तन्नियमो नास्ति, किन्तु यथासम्भवसंख्येयगुणकारो द्रष्टव्यः। आरोहकस्य घातित्रयप्रथमस्थितिबन्धः पूर्वस्मात् संख्येयगुणः। ततोऽवरोधकस्य प्रथम (चरम) स्थितिबन्धः संख्येयगुणः। तत आरोहकस्य सप्तनोकषायोपशमनकाले अघातित्रयप्रथमस्थितिबन्धः संख्येयगुणः। ततोऽवरोहकस्य तच्चरमस्थितिबन्धः संख्येयगुणः ॥३८४॥

स० चं०—तातैं चढनेवालेकैं अंतरकरण करनेकी समाप्ति होनेके अनंतर समयविषै संभवता ऐसा मोहनीयका प्रथम स्थितिबंध संख्यातगुणा है सो संख्यात हजार वर्षमात्र है। तातैं उतरनेवालेकैं तिस समयकी समान अवस्थाविषै संभवता ऐसा मोहका अंत स्थितिबंध है सो संख्यातगुणा है। सो भी संख्यात हजार वर्षमात्र है। जैसैं पूर्वैं चढनेवालेतैं उतरनेवालेकैं दूणा स्थितिबंध कह्या था तैसैं अब न जानना। अब यथासम्भव संख्यातगुणा जानना। तातैं चढनेवालेकैं तीन घातियानिका प्रथम स्थितिबंध संख्यातगुणा है। तातैं उतरनेवालेकैं तिनका तहाँ अंत स्थितिबंध संख्यातगुणा है। तातैं चढनेवालेकैं सप्त नोकषायनिका उपशम कालविषै तीन अघातिया कर्मनिका प्रथम स्थितिबंध संख्यातगुणा है। तातैं उतरनेवालेकैं तहाँ अंत स्थितिबंध संख्यातगुणा है ॥३८४॥

चडपडणमोहचरिमं पढमं तु तहा तिघादियादीणं।
असंखेज्जवस्सबंधो संखेज्जगुणक्कमो छण्हं[1] ॥३८५॥

चटपतनमोहचरमं प्रथमं तु तथा त्रिघातकादीनाम्।
असंख्येयवर्षबन्धः संख्येयगुणक्रमः षण्णाम् ॥३८५॥

सं० टी०—तत आरोहके मोहनीयस्यासंख्यातवर्षप्रमितश्चरमस्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणः, स च पल्यासंख्यातभागमात्रोऽन्तरकरणप्रारम्भसमये सम्भवति। ततोऽवरोहके मोहनीयस्यसंख्यातवर्षसहस्रमात्रः प्रथमस्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणः। तत आरोहके घातित्रयस्यासंख्यातवर्षसहस्रमात्रचरमस्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणः। स च स्त्रीवेदोपशमनकाले संख्यातभागं गत्वा सम्भवति। ततोऽवतारके तत्प्रथमस्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणः। तत आरोहकघातित्रयस्य चरमस्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणः। स च सप्तनोकषायोपशमनकाले संख्यातभागे गते सम्भवति। ततोऽवतारके तत्प्रथमस्थितिबन्धोऽसंख्येयगुणः। एषोऽपि पल्यासंख्यातभागमात्र एव प। अवतार-
कस्य स्थितिबन्धाः प्रागुक्ताः सर्वेऽपि आरोहकस्थितिबन्धकालमन्तर्मुहूर्तेनाप्राप्य सम्भवन्ति ॥३८५॥

स० चं०—तातैं चढनेवालेकैं मोहनीयका असंख्यात वर्षमात्र अंत स्थितिबंध है सो असंख्यातगुणा है। सो यहु पल्यका असंख्यातवाँ भागमात्र है, अंतरकरण करनेका प्रारम्भ समय-

---

१. उवसामगस्स चरिमो असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो मोहणीयस्स असंखेज्जगुणो। पडिवदमाणगस्स पढमो असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो मोहणीयस्स असंखेज्जगुणो। उवसामगस्स घादिकम्माणं चरिमो असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो असंखेज्जगुणो। पडिवदमाणयस्स पढमो असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो घादिकम्माणमसंखेज्जगुणो। उवसामगस्स णामा-गोद-वेदणीयाणं चरिमो असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो असंखेज्जगुणो। पडिवदमाणगस्स णामा-गोद-वेदणीयाणं पढमो असंखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो असंखेज्जगुणो।

वही, पृ० १९३५–१९३६।

विषै संभवै है। तातैं उतरनेवालेकैं मोहका असंख्यात वर्षमात्र प्रथम स्थितिबंध है सो असंख्यात-गुणा है। तातैं चढनेवालेकैं तीन घातियानिका असंख्यात वर्षमात्र अंत स्थितिबंध है सो असंख्यात-गुणा है। सो यहु स्त्रीवेदका उपशम कालका संख्यातभाग गएं हो है। तातैं उतरनेवालेकैं तीन घातियानिका असंख्यात वर्षमात्र पहिला स्थितिबंध सो असंख्यातगुणा है। तातैं चढनेवालेकैं तीन घातियानिका अंत स्थितिबंध असंख्यातगुणा है सो सप्त नोकषायनिका उपशम कालविषै संख्यातभाग भएं हो है। तातैं उतरनेवालेकैं तिनहीका प्रथम स्थितिबंध है सो असंख्यातगुणा है। सो यहु भी पल्यका असंख्यातवाँ भागमात्र है। इहाँ उतरनेवालेकैं जे स्थितिबंध कहे हैं ते सर्व ही चढनेवालेका तिस स्थितिबंध होनेका कालकौं अंतमुर्हूर्तकरि अप्राप्ति होइ सम्भवै हैं। चढने-वालेकैं जो प्रथम स्थितिबंध होइ उतरनेवालेकैं ताके निकटवर्ती अवस्थाकौं पाएं अंत स्थितिबन्ध होइ, जातैं चढनेवाला जिस अवस्थाकौं पहलैं पावै तिस अवस्थाकौं उतरनेवाला अंतविषै पावै है ॥३८५॥

चडणे णामदुगाणं पढमो पलिदोवमस्स संखेज्जो।
भागो ठिदिस्स बंधो हेट्ठिल्लादो असंखगुणो[1] ॥३८६॥

चटने नामद्विकयोः प्रथमः पलितोपमस्यासंख्येयः।
भागः स्थितेबंधः अधस्तनादसंख्यगुणः ॥३८६॥

सं० टी०—तत आरोहके नामगोत्रयोः पल्यासंख्यातैकभागमात्रः प्रथमस्थितिबन्धोऽधस्तनात् घातित्रय-स्थितिबन्धादसंख्येयगुणः प ॥३८६॥
५

स० चं०—तातैं चढनेवालेकैं नाम गोत्रका पल्यके असंख्यातवें भागमात्र भया पहला स्थितिबन्ध सो नीचेका घातित्रयका स्थितिबंधतै असंख्यातगुणा है ॥३८६॥

तीसियचउण्ह पढमो पलिदोवमसंखभागठिदिबंधो।
मोहस्स वि दोण्णि पदा विसेसअहियक्कमा होंति[2] ॥३८७॥

तीसियच[illegible]र्णां प्रथमः पलितोपमासंख्यभागस्थितिबन्धः।
मोहस्यापि द्वे पदे विशेषाधिकक्रमा भवंति ॥३८७॥

सं० टी०—तत आरोहके तीसियचतुष्कस्य प्रथमस्थितिबन्धो विशेषाधिकः, स च पल्यासंख्यातभाग
एव प ३ । तत आरोहके मोहस्य चालीसियस्थितिबन्धो विशेषाधिकः प २ विशेषप्रमाणं तत्त्रिभागमात्रं
५ । २ ५
प ३ ॥३८७॥
५ । २ । ३

१. उवसामगस्स णामा-गोदाणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागिओ पढमो ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। वही, पृ० १९३६।

२. णाणावरण-दंसणावरण-वेदणीय-अंतराइयाणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागिगो पढमो ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ। मोहणीयस्स पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागिगो पढमो ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ। वही, पृ० १९३६

स० चं०—तातैं चढनेवालेकैं तीसिय चतुष्कका पहलैं स्थितिबन्ध विशेष अधिक है सो भी पल्यके असंख्यातवे भागमात्र है तातैं चढनेवालेकैं मोहका तहाँ चालीसिय स्थितिबंध है सो ताहीका त्रिभागमात्र विशेषकरि अधिक है ।।३८७।।

ठिदिखंडयं तु चरिमं बंधोसरणट्ठिदी य पल्लद्धं ।
पल्लं चडपडबादरपढमो चरिमो य ठिदिबंधो[1] ।।३८८।।

स्थितिखंडकं तु चरमं बन्धापसरणस्थिती च पल्यार्धं ।
पल्यं चटपतद्बादरप्रथमः चरमश्च स्थितिबन्धः ।।३८८।।

सं० टी०—ततश्चरमस्थितिबन्धः संख्येयगुणः प स । स च ज्ञानावरणादिकर्मणां सूक्ष्मसाम्पराय-
१ १
चरमसमये मोहस्य चांतरकरणकाले संभवति । ततः पल्योत्पत्तिनिमित्तपल्यसंख्यातभागपर्यन्ताः बन्धापसरणे समुत्पन्ना ये स्थितिबन्धाः पल्यसंख्यातभागप्रमितास्ते सर्वेऽपि संख्यातगुणा प ० ० ० ० ० ० प । पल्या-
१ १ १ १ १
र्थात्पल्यसंख्यातभागात् पल्यं संख्यातगुणं पतत आरोहकानिवृत्तिकरणप्रथमसमये स्थितिबन्धः संख्येयगुणः । सोऽपि सागरोपमलक्षणपृथक्त्वमात्रः । ततोऽवतारकानिवृत्तिकरणचरमसमये स्थितिबन्धः संख्येयगुणः ।।३८८।।

स० चं०—तातैं अन्तका स्थितिखंड जो स्थितिकांडकायाम संख्यातगुणा है सो ज्ञानावरणादि कर्मनिका तौ सूक्ष्मसाम्परायका अन्त समयविषै अर मोहका अन्तरकरण कालविषै संभवै है, तातैं पल्यमात्र स्थितिकी उत्पत्तिके निमित्त पल्यका संख्यातवाँ भाग पर्यन्त स्थितिबन्धापसरणनिकरि उपजे पल्यके संख्यातवे भागप्रमाण स्थितिबन्ध ते सर्वं ही क्रमतैं संख्यातगुणे हैं। बहुरि पल्यका संख्यातवाँ भागतैं पल्यका प्रमाण संख्यातगुणा है तातैं चढनेवालेकैं अनिवृत्तिकरणका प्रथम समयविषै संभवता स्थितिबंध सो संख्यातगुणा है सो पृथक्त्व लक्ष सागर प्रमाण है। तातैं उतरनेवालेकैं अनिवृत्तिकरणका अंत समयविषै संभवता स्थितिबंध संख्यातगुणा है ।।३८८।।

चडपड अपुव्वपढमो चरिमो ठिदिबंधओ य पडणस्स ।
तच्चरिमं ठिदिसंतं संखेज्जगुणक्कमा अट्ठ ।।३८९।।

चटपतदपूर्वप्रथमः चरमस्थितिबंधकश्च पतनस्य ।
तच्चरमं स्थितिसत्त्वं संख्येयगुणक्रमं अष्ट ।।३८९।।

१. चरिमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं । जाओ ठिदीओ परिहाइदूण पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो जादो ताओ ठिदीओ संखेज्जगुणाओ । पलिदोवमं संखेज्जगुणं । अणियट्टिस्स पढमसमये ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । पडिवदमाणगस्स अणियट्टिस्स चरिमसमए ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । वही, पृ० १९३६–१९३७ ।

२. अपुव्वकरणस्स पढमसमये ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । पडिवदमाणयस्स अपुव्वकरणस्स चरिमसमए ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । पडिवदमाणयस्स अपुव्वकरणस्स चरिमसमए ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं ।
वही, पृ० १९३७ ।

सं० टी०—तत आरोहकापूर्वकरणप्रथमसमये स्थितिबंधः संख्येयगुणः सा अंतः को २ सोऽपि
४।४।४।४
सागरोपमांतःकोटीकोटिप्रमितः। ततः प्रतिपतदपूर्वकरणचरमसमये स्थितिबंधः संख्येयगुणः सा अंत को
४।४।४
२१ अत्र गुणकारः द्विरूपमात्रः तत्प्रायोग्यसंख्यातरूपमात्रो वा ग्राह्यः। ततः प्रतिपतदपूर्वकरणचरमसमये
१
स्थितिसत्त्वं संख्येयगुणं स अंतः को २ – २ ७ ॥३८९॥
४।४

सं० च०—तातैं चढनेवाले अपूर्वकरणका प्रथम समयविषै स्थितिबंध संख्यातगुणा है। सो अंतःकोटाकोटी सागरमात्र है। तातैं पडनेवाले अपूर्वकरणका अंत समयविषै स्थितिबंध संख्यातगुणा है। सो दूणा अथवा यथासम्भव संख्यातगुणा जानना। तातैं पडनेवालेकैं अपूर्वकरणका अंत समयविषैं स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है ॥३८९॥

तप्पढमट्ठिदिसत्तं पडिवडअणियट्टिचरिमठिदिसत्तं।
अहियकमा चलबादरपढमट्ठिदिसत्तयं तु संखगुणं[1] ॥३९०॥

तत्प्रथमस्थितिसत्त्वं प्रतिपतदनिवृत्तिचरमस्थितिसत्त्वं।
अधिकक्रमं चटबादरप्रथमस्थितिसत्त्वकं तु संख्यगुणम् ॥३९०॥

१
सं० टी०—ततः प्रतिपतदपूर्वकरणप्रथमसमये स्थितिसत्त्वं विशेषाधिकं सा अंत को २ विशेषप्रमाणं
४।४
१
समयोनापूर्वकरणकालमात्रं २ ७ अवतारणे प्रथमसमयस्थितिकरणं तेन तावत्समयानां चरमसमयस्थितिसत्त्वेन तत्त्वात्। ततः प्रतिपतदनिवृत्तिकरणचरमसमयस्थितिसत्त्वमेकसमयेनाधिकं सा अंतः को २ ततः आरोहका-
४।४
निवृत्तिकरणप्रथमसमयस्थितिसत्त्वं संख्यातगुणं सा अंतः को २ अस्याद्याप्यनिवृत्तिकरणपरिणामकृतस्थिति-
४
सत्त्वघातसम्भवात् ॥३९०॥

सं० चं०—तातैं पडनेवालेकैं अपूर्वकरणका प्रथम समयविषै स्थितिसत्त्व है सो समय घाटि अपूर्वकरणका कालमात्र विशेषकरि अधिक है जातैं उतरनेविषै प्रथम समय स्थिति सत्वतैं अंत समयविषै स्थिति सत्त्वकी हीनता तितने समयमात्र ही हो है। तातैं पडनेवाले अनिवृत्ति करणका अंत समयविषै स्थितिसत्त्व एक समयकरि अधिक है तातैं चढनेवाले अनिवृत्तिकरणका प्रथम समयविषै स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है जातैं याकौं अब भी अनिवृत्तिकरणके परिणामनिकरि स्थितिसत्त्वका खंडन संभवै है ॥३९०॥

---

१. पडिवदमाणयस्स अपुव्वकरणस्स पढमसमये ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं। पडिवदमाणयस्स अणियट्टिस्स चरिमसमए ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं। उवसामगस्स अणियट्टिस्स पढमसमये ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं। वही, पृ० १९३७।

चडमाणअपुव्वस्स य चरिमट्ठिदिसत्तयं विसेसहियं।
तस्सेव य पढमठिदीसत्तं संखेज्जसंगुणियं[1] ॥३९१॥

चटदपूर्वस्य च चरमस्थितिसत्त्वकं विशेषाधिकम्।
तस्यैव च प्रथमस्थितिसत्त्वं संख्येयगुणितम् ॥३९१॥

सं० टी०—तत आरोहकापूर्वकरणचरमसमये स्थितिसत्त्वं विशेषाधिकं प / २ सा अंतः को २ / ४ तच्चरमकाण्डकचरमफालिप्रमाणस्य पल्यसंख्यातभागस्य सम्भवात्। तत आरोहकापूर्वकरणप्रथमसमयस्थितिसत्त्वं संख्यातगुणं सा अं को २ तच्चांतःकोटीकोटिसागरोपमप्रमितं। अपूर्वकरणकाले सम्भविसंख्यातसहस्रमात्रस्थितिकांडकघातवशेन तत्प्रथमसमयस्थितिसत्त्वसंख्यातबहुभागेषु घातितेषु यत्तच्चरमसमयस्थितिसत्त्वं संख्यातैकभागमात्रं। तस्मात्तत्प्रथमसमयस्थितिसत्त्वस्य पूर्वस्थितिकांडकघाताभावात् संख्यातगुणत्वसम्भवात् ॥३९१॥

प्रणमामि महावीरं सर्वशांतिकरं जिनं।
प्रशांतदुरितानीकं शांतये सर्वकर्मणां॥

एवं चारित्रमोहोपशमनविधानं समाप्तं।

सं० चं०—तातैं चढनेवाले अपूर्वकरणका अंत समयविषै स्थितिसत्त्व विशेष अधिक है जातै तिसके अंत कांडककी अंत फालिका प्रमाण पल्यके संख्यातवें भागमात्र संभवै है सो इतना अधिक जानना। जातैं चढनेवाले अपूर्वकरणका प्रथम समयविषै स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है। सो अंतःकोटाकोटीप्रमाण है। जातैं अपूर्वकरणका कालविषै संख्यात हजार स्थितिकांडक हो है तिनकरि ताका प्रथम समयविषै जो स्थिति पाइए ताका संख्यात बहुभागमात्र स्थितिका घात हो है। ताका अंत समयविषै एकभागमात्र स्थिति रहै है। अर तिस प्रथम समयवर्ती स्थितिसत्त्वतैं पहलैं स्थितिकांडकका घात है नाहीं तातैं ताका चरम समयवर्ती स्थितिसत्त्वतैं प्रथम समयवर्ती स्थिति संख्यातगुणा जानना ॥३९१॥ ऐसैं अल्पबहुत्व जानना ॥३९१॥

दोहा—कर्म शांतिके अर्थि जिन नमों शांति करतार।
प्रशमित दुरित समूह सब महावीर जिनसार ॥ १ ॥

या प्रकार चारित्रमोहके उपशमावनेका विधान समाप्त भया।

इति लब्धिसारः समाप्तः।

१. उवसामगस्स अपुव्वकरणस्स चरिमसमये ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं। उवसामगस्स अपुव्वकरणस्स पढमसमये ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं। वही, पृ० १९३८।

अथ क्षपणासारः

स० चं०—इहाँ पर्यन्त गाथा सूत्रनिका व्याख्यान संस्कृत टीकाके अनुसारि कीया जातैं इहाँ पर्यन्त गाथानिहीकी टीकाकरिकैं संस्कृत टीकाकारने ग्रंथ समाप्त कीना है। बहुरि इहांतैं आगैं गाथा सूत्र हैं तिनिविषै क्षायिकचारित्रका वर्णन है, तिनकी संस्कृत टीका तौ अवलोकनेमैं आई नाहीं, तातैं तिनका व्याख्यान अपनी बुद्धि अनुसारि इहाँ कीजिये है। बहुरि भोज नामा राजाका बाहुवलि नामा मंत्रीकैं ज्ञान उपजावनेके अर्थि श्रीमाधवचन्द्र नामा आचार्य करि विरचित क्षपणासार ग्रंथ है तिसविषै क्षायिकचारित्र हीका विधान वर्णन है सो इहाँ तिस क्षपणासारका अनुसारि लीएँ भी व्याख्यान करिए है। तहाँ प्रथम मंगलाचरण करिए है—

श्रीवर धर्म जलधिके नंदन रत्नाकरवर्धक सुखकार।
लोकप्रकाशक अतुल विमल प्रभु संतनिकर सेवित गुणधार ॥
माधववरबलभद्रनमितपदपद्मयुगल धारैं विस्तार।
नेमिचन्द्र जिन नेमिचन्द्र गुरु चन्द्रसमान नमहुं सो सार ॥ १ ॥

याके नेमिनाथ तीर्थंकर वा नेमिचन्द्र आचार्य वा चन्द्रमाका विशेषण करने करि तीन अर्थ हैं तहाँ माधववरबलभद्रनमितपदपद्मयुगलका अर्थ—नेमिचन्द्र जिनकी पक्षविषै तो नारायण बलभद्रकरि अर नेमिचन्द्र गुरुकी पक्ष विषै माधवचन्द्र आचार्य अर कल्याणरूप बाहुबलि मंत्री तिनकरि अर चन्द्रमाकी पक्षविषै वसंतराज उत्कृष्ट सप्तसेना विषै प्रधान ताकरि नमित हैं चरण युगल जिनके ऐसे हैं। अन्य अर्थ सुगम हैं ॥ अब इहाँ गाथा सूत्र कहिए है—

तिकरणमुभयोसरणं कमकरणं खवणदेसमंतरयं।
संकमअपुव्वफड्ढयकिट्टीकरणाणुभवण खवणाये ॥३९२॥

त्रिकरणमुभयापसरणं क्रमकरणं क्षपणं देशमंतरकम्।
संक्रमं अपूर्वस्पर्धककृष्टिकरणानुभवनानि क्षपणायाम् ॥३९२॥

स० चं०—अधःकरण १ अपूर्वकरण १ अनिवृत्तिकरण १ ए तीन करण अर बंधापसरण १ सत्त्वापसरण १ ए दोय अपसरण बहुरि क्रमकरण १ अष्ट कषाय सोलह प्रकृतिनिकी क्षपणा १ देशघातिकरण १ अंतरकरण १ संक्रमण १ अपूर्वस्पर्धककरण १ कृष्टिकरण १ कृष्टिअनुभवन १ ऐसैं ए चारित्रमोहकी क्षपणाविषैं अधिकार जानने। तहाँ पीछैं ज्ञानावरणादि कर्मनिका क्षपणा अधिकार अर योग निरोध अधिकारका वर्णन होगा।

तहाँ प्रथम अधःकरणका वर्णन करिए है—पहलैं पूर्वोक्त प्रकार तीन करण विधानतैं सात प्रकृतिनिका नाशकरि क्षायिक सम्यग्दृष्टी होइ मोहनीकी इकईस प्रकृतिनिका सत्त्वसहित होइ सो जघन्य तौ अंतर्मुहूर्त अर उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त सहित आठ वर्षकरि हीन दोय कोटि पूर्व तिनिकरि

अधिक तेतीस सागरकाल क्षायिकसम्यग्दृष्टी संसारमें रहै। तहाँ किसी कालविषै चारित्रमोहकी क्षपणाकौं योग्य जे विशुद्ध परिणाम तिनकरि सहित होइ प्रमत्ततैं अप्रमत्तविषै अप्रमत्ततैं प्रमत्तविषैं हजारोंवार गमनागमनकरि महामुनि चक्रवर्ती हैं सो यथाख्यात चारित्ररूप एकछत्र राज्य करनेके अर्थ क्षपकश्रेणीरूप दिग्विजय करनेके सन्मुख होत संता प्रथम सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानविषैं अधःकरणरूप प्रस्थान करै है। ताका विशेष जाननेकौं इहाँ प्रश्नोत्तर हो है[1]—

संकामणपट्ठवगस्स परिणामो केरिसो।
जोगे कसाये उवजोगे लेस्सा वेदे य को भवे ॥१॥

संक्रामण अर्थात् क्षपणाको प्राप्त होनेवाले चारित्रमोहनीय आदि कर्मोंका अन्य प्रकृतियोंमें संक्रमण करनेके लिए उद्यत हुए जीवका परिणाम कैसा होता है तथा योग, कषाय, उपयोग, लेश्या और वेद कौन होता है ॥१॥

काणि वा पुव्वबद्धाणि के वा अंसे णिबंधदि।
कदि आवलियं पविसंति कदिण्हं वा पवेसगो ॥२॥

पूर्वबद्ध कर्म कौन कौन होते हैं, वह किन कर्मोंका बन्ध करता है, उदयावलिमें कौन कर्म प्रवेश करते हैं और किन कर्मोंका प्रवेशक होता है ॥२॥

के अंसे झीयदे पुव्वं बंधेण उदयेण वा।
अंतरं वा कहिं किच्चा के के संकामगो कहिं ॥३॥

पहले किन कर्मोंकी बन्ध व्युच्छित्ति और उदय व्युच्छित्ति हुई है, अन्तर कहाँ करेगा और चारित्रमोहकी प्रकृत्तियोंका संक्रामक कहाँ होगा ॥३॥

किट्टिवियाणि कम्माणि अणुभागेसु केसु वा।
ओवट्टियूण सेसाणि कं ठाणं पडिवज्जदि ॥४॥

किन स्थितिवाले और अनुभागवाले कर्मोंका काण्डकघात करके किन स्थानोंको प्राप्त करता है ॥४॥

इनि च्यारि सूत्रनि करि प्रश्न कीए। तहाँ प्रश्न—जो चारित्रमोहकी क्षपणाका प्रारंभक जीवकैं परिणाम कैसा होइ ? ताका उत्तर—अति विशुद्ध होइ[2]?

---

१. मुद्रितप्रतिषु पाठोऽयमुपलभ्यते :
कसायखवणो ठाणे परिणामो केरिसो हवे। कसाय उपजोगो को लेस्सा वेदा य को हवे ॥१॥
काणि वा पुव्वबद्धाणि को वा अंसेण बंधदि। कदियावलि पविसंति कदिण्हं वा पवेसगो ॥२॥
केत्तिय सेज्झीयदे पुव्वं बंधेण उदयेण वा। अन्तरं वा कहिं किच्चा के के संकामगो कहिं ॥३॥
केट्टिदीयाणि कम्माणि अणुभागेसु केसु वा। उक्कट्टिदूण सेसाणि कं ठाणं पडिवज्जदि ॥४॥

२. परिणामो विसुद्धो पुव्वं पि अंतोमुहुत्तप्पहुडि विसुज्झमाणो आगदो अणंतगुणाए विसोहीए। क० च० प० १९४२।

बहुरि प्रश्न—योग कैसा होइ ? ताका उत्तर—च्यारि मनोयोगनिविषै कोई एक वा च्यारि वचन योगनिविषै कोई एक वा सात काय योगनिविषै औदारिककाययोग होइ[1]।

बहुरि प्रश्न—कषाय कैसा होइ ? ताका उत्तर—च्यारि संज्वलन विषै कोई एक होइ, सो भी हीयमान होइ वृद्धिरूप न होइ[2]।

विशेष—क्षयकश्रेणिपर आरोहण करते समय अधःप्रवृत्तकरण के अन्तिम समयमें परिणाम अति विशुद्ध होता है, क्योंकि अन्तर्मुहूर्त पूर्वसे ही उत्तरोत्तर अनन्तगुणी विशुद्धिसे विशुद्ध होता हुआ परिणाम आ रहा है। यहाँ चारों मनोयोग, चारों वचनयोग और औदारिककाययोग इन नौ योगोंमेंसे एक समयमें कोई एक योग होता है। प्रश्न यह है कि यतः क्षपकश्रेणिपर चढ़नेवाला जीव छद्मस्थ होता है, इसलिये इसके चारों मनोयोग होवे इसमें आपत्ति नहीं। परन्तु जब कि उक्त जीव ध्यानमें उपयुक्त है ऐसी अवस्थामें उसके चारों वचनयोग कैसे सम्भव हो सकते हैं, क्योंकि सब प्रकारके बाह्य व्यापारसे निवृत्त होने पर ही ध्यान की प्रवृत्ति होना सम्भव है। समाधान यह है कि अवक्तव्यरूपसे वचनयोग वहाँ बन जाता है, इसलिये कोई विरोध नहीं है। काययोगमें एक औदारिक काययोग ही होता है। चारों कषायोंमेंसे कोई एक कषाय होती है जो उत्तरोत्तर हीयमान होती है।

बहुरि प्रश्न—उपयोग कैसा होइ ? ताका उत्तर—बहुत मुनिनिकैं प्रसिद्ध उपदेशकरि तौ श्रुतज्ञान ही उपयोग है। दर्शन उपयोग नाहीं है। अन्य आचार्यनिके मतकरि मति श्रुति ज्ञानविषैं एक वा चक्षु अचक्षुदर्शनविषै एक उपयोग है[3]।

विशेष—उपयोगके विषयमें दो सम्प्रदाय प्रचलित हैं। एक सम्प्रदाय यह है कि क्षपकश्रेणि में ध्यानकी मुख्यता है और ध्यान वह है जिसमें यह जीव बाह्याभ्यन्तर जल्पसे परावृत्त होकर अपने स्वरूपका एकाग्र होकर संचेतन करता है, इसलिये वहाँ मात्र श्रुतोपयोग होता है। किन्तु एक सम्प्रदाय यह है कि श्रुतोपयोग होता है या मत्युपयोग होता है या चक्षुदर्शन-उपयोग होता है या अचक्षुदर्शन उपयोग होता है। सो यह कथन मति-श्रुत उपयोगके योगको ध्यानमें रख लिया गया है ऐसा प्रतीत होता है। मुख्यता श्रुतोपयोगकी ही है।

बहुरि प्रश्न—लेश्या कैसी हो है ? ताका उत्तर—शुक्ल ही हो है[4]।

बहुरि प्रश्न—वेद कैसा हो है ? ताका उत्तर—भाव वेद तीनोंविषै कोई एक हो है। द्रव्यवेद पुरुषवेद ही है[5]।

१. अण्णदरो मणजोगो अण्णदरो वचिजोगो अण्णदरो ओरालियकायजोगो। वही पृ० १९४२।

२. अण्णदरो कसायो। किं वड्ढमाणो हायमाणो ? णियमा हायमाणो। वही पृ० १९४२।

३. एक्को उवएसो णियमा सुदोवजुत्तो। एक्को उवदेसो सुदेण वा मदीए वा चक्खुदंसणेण वा अचक्खुदंसणेण वा। वही पृ० १९४३।

४. णियमा सुक्कलेस्सा। णियमा वड्ढमाणलेस्सा। वही पृ० १९४३।

५. अण्णदरो वेदो। वही पृ० १९४४। इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदाणमण्णदरो वेदपरिणामो एदस्स होई, तिण्हं पि तेसिमुदएण सेढिसमारोहणे पडिसेहाभावादो। णवरि दव्वदो पुरिसवेदो चेव खवगसेढिमारोहदि त्ति वत्तव्वं, तत्थ पयारंतरासंभवादो। जयध०, ता० मु० पृ० १९४४।

बहुरि प्रश्न--पूर्वबद्ध कर्म हैं ते सत्त्वरूप कैसैं हैं? ताका उत्तर-सातमोहनी अर नरक तिर्यंच देव आयु इन दश विना सर्व प्रकृतिनिका सत्त्व होइ। तहाँ आहारक आहारकांगोपांग तीर्थंकर ए भजनीय हैं। कोईकैं न होंइ। बहुरि स्थितिसत्त्व मनुष्यायु विना तिन प्रकृतिनिका अंतःकोटाकोटी सागरप्रमाण है अर तिनविषै प्रशस्त प्रकृतिनिका गुड खंड शर्करा अमृतरूप चतुःस्थानक, अप्रशस्त प्रकृतिनिका दारु लता वा निंब कांजीररूप द्विस्थानक अनुभाग सत्त्व है। अर तिनका प्रदेशसत्त्व अजघन्य वा अनुत्कृष्ट सभवै है। जघन्य उत्कृष्ट कर्मपरमाणूनिका समूह इहाँ न पाइए है[1]।

बहुरि प्रश्न--जो नवीन कर्म किसा अंशकरि बंधै है? ताका उत्तर—ज्ञानावरण पाँच ५ दर्शनावरणको स्त्यानगृद्धित्रिक विना छह ६ सातावेदनाय १ संज्वलनचतुष्क ४ पुरुषवेद १ हास्य १ रति १ भय १ जुगुप्सा १ उच्चगोत्र १ अंतराय पाँच ५ ऐसें सताईस अर नाम कर्मविषै देवगति १ पंचेंद्रीजाति १ वैक्रियिक तेजस कार्माणशरीर ३ समचतुरस्र संस्थान १ वैक्रियिक-अंगोपांग १ प्रशस्त वर्णादिक च्यारि ४ देवगत्यानुपूर्वी १ अगुरुलघु १ उपघात १ परघात १ उच्छ्वास १ प्रशस्त विहायोगति १ त्रस १ बादर १ पर्याप्त १ प्रत्येक १ स्थिर १ शुभ १ सुभग १ सुस्वर १ आदेय १ यशस्कीर्ति १ निर्माण १ ए अठाईस वा कोईकैं तीर्थंकर सहित गुणतीस वा कोईकैं आहारकादिकसहित तीस वा कोईकैं आहारकद्विक तीर्थंकर सहित इकतीस प्रकृत्ति बँधै है। अर तिनि प्रकृतिनिका स्थितिसत्त्वतैं संख्यातगुणा घटता अंतःकोटाकोटी सागरप्रमाण स्थितिबन्ध हो है। अर तिनिविषैं अप्रशस्त प्रकृतिनिका समय समय अनन्तगुणा घटता क्रम लीएँ द्विस्थानक अर प्रशस्त प्रकृतिनिका समय-समय अनंतगुणा वँधता क्रम लीएँ चतुःस्थानिक अनुभाग वन्ध हो है। अर तिनिका अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध हो है। इहाँ जघन्य वा उत्कृष्ट समयप्रबद्ध नाहीं बन्धै है। तहाँ विशेष जो प्रचला निद्रा हास्य रति भय जुगुप्सा देवगति देवानुपूर्वी वैक्रियिकद्विक आहारकद्विक प्रथम संस्थान प्रशस्त विहायोगति सुभग सुस्वर आदेय तीर्थंकर इनि प्रकृतिनिका किसी प्रकार करि उत्कृष्ट प्रदेश बन्ध भी हो है[2]।

बहुरि प्रश्न— उदयावली प्रति कर्म कैसे प्रवेश करै है? ताका उत्तर—मूलप्रकृति तौ सर्व उदयरूप ही होइ खिरै हैं, उत्तर प्रकृति कोई उदयरूप होइ निर्जरै है, कोई विना ही उदय दिये निर्जरै है।[3]

विशेष—उदयावलिमें कौन कर्म प्रवेश करते हैं? इस प्रश्नका समाधान यह है कि वहाँ जिन कर्मोंका सत्त्व है वे चाहे उदयरूप हों चाहे अनुदयरूप हों वे सब उदयावलिमें प्रवेश करते हैं। यहाँ कौन प्रकृतियाँ उदयरूप होकर खिरती हैं और कौन प्रकृतियाँ स्तिवुक संक्रम होकर खिरती हैं यह पृच्छा नहीं की गई है। मात्र यहाँ उदयावलिमें कौन प्रकृतियाँ प्रवेश करती हैं यह पृच्छा की गई है सो इसका उत्तर इतना ही है कि वहाँ सत्त्वरूप मूल और उत्तर जितनी भी प्रकृतियाँ हैं वे सब उदयावलिमें प्रवेश करती हैं।

१. जयध० ता० मु० पृ० १९४४।

२. जयध० ता० मु० पृ० १९४४।

३. मूलपयडीओ सव्वाओ पविसंति। उत्तरपयडीओ वि जाओ अत्थि ताओ पविसंति। ता० मु०, पृ० १९४५।

बहुरि प्रश्न—केते कर्म उदीरणारूप होइ उदयावली प्रति प्रवेश करै हैं ? ताका उत्तर-सातावेदनीय अर मनुष्यायु विना स्वमुखोदयी सर्व ही कर्म उदयावलीविषै प्रवेश करैं हैं उदीरणारूप हो हैं।[1]

विशेष—आयुकर्म और वेदनीयकर्मको छोड़कर क्षपक वेदे जानेवाले सभी कर्मोंका प्रवेशक होता है। यथा—पाँच ज्ञानावरण और चार दर्शनावरणका नियमसे वेदक होता है। निद्रा और प्रचलाका कदाचित् वेदक होता है, क्योंकि कदाचित् अव्यक्त उदय होनेमें कोई विरोध नहीं है, साता और असातामेंसे अन्यतरका वेदक होता है। चार संज्वलन, तीन वेद और हास्य-शोक तथा रति-अरति इन दो युगलोंमेंसे अन्यतरका नियमसे वेदक होता है। भय और जुगुप्साका कदाचित् वेदक होता हैं। मनुष्यायु, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर, छह संस्थानोंमेंसे अन्यतर संस्थान, औदारिक शरीर आंगोपांग, वज्रवृषभनाराच संहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु आदि चार, दो विहायोगतियोंमेंसे अन्यतर विहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग-दुर्भग और सुस्वर-दुःस्वर इन युगलोमेंसे कोई एक-एक, आदेय, यशस्कीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायका वेदक होता है। इनके सिवाय अन्य प्रकृतियोंका यहाँ उदय सम्भव नहीं है। इन प्रकृतियोंमें सातावेदनीय और मनुष्यायुको छोड़कर शेषका उदीरक होता है।

बहुरि प्रश्न—पूर्वं कौन कर्म उदय अर बन्धकरि विनशै है १ ताका उत्तर—स्त्यानगृद्धित्रिक ३ असातावेदनीय १ मिथ्यात्व १ कषाय बारह १२ अरति १ शोक १ स्त्रीनपुंसकवेद २ आयु चारि ४ परावर्त अशुभ नामकी गुणतीस २९ मनुष्यगति १ औदारिकशरीर वा अंगोपांग २ वज्रवृषभनाराच १ मनुष्यानुपूर्वी १ आतप १ उद्योत १ नीचगोत्र १ इतनी प्रकृतिनिकी बन्धकी व्युच्छित्ति पहलैं भई है।

इहाँ नरक-तिर्यंचगति २ एकेंद्रियादि चारि ४, संस्थान पाँच ५ संहनन पाँच ५ नरक-तिर्यंचानुपूर्वी २ अप्रशस्त विहायोगति १ स्थावर १ सूक्ष्म १ अपर्याप्त १ साधारण १ अस्थिर १ अशुभ १ दुर्भग १ दुःस्वर १ अनादेय १ अयशस्कीर्ति १ ए गुणतीस प्रकृति परावर्त अशुभनाम कर्मकी जाननी।[2]

बहुरि स्त्यानगृद्धित्रिक ३ दर्शनमोह ३ कषाय बारह १२ नरक-तिर्यंच-देव आयु ३ नरक-तिर्यंच-देव गति वा आनुपूर्वी ६ एकेंद्रियादि जाति चारि, वैक्रियिक-आहारकशरीर वा अंगोपांग ४ वज्रवृषभ नाराच विना संहनन पांच ५ मनुष्यानुपूर्वी १ आतप १ उद्योत १ स्थावर १ सूक्ष्म १ साधारण १ अपर्याप्त १ दुर्भग १ अनादेय १ अयशस्कीर्ति १ तीर्थंकर १ नीचगोत्र १ इनके उदयकी व्युच्छित्ति पहलैं भई है, अवशेषनिका इहाँ उदय पाईए है।[3]

बहुरि प्रश्न—अंतरकरणकौं कहाँ करिकैं कौन-कौन कर्मनिका कहाँ संक्रमण करावने-

---

१. णवरि एत्थ पवेसगो त्ति वुत्ते उदीरणासरूवेणुदयावलियं पवेसेमाणो घेत्तव्वो, उदीरणोदएण पयदत्तादो। जयध०, ता० मु० पृ० १९४५।

२. ता० मु०, पृ० १९४५-१९४६।

३. ता० मु० पृ० १९४६-१९४७।

वाला हो है ? ताका उत्तर—अनिवृत्तिकरण कालका संख्यातवाँ भाग रहैं अन्तरकरण अर संक्रमण क्रियाकौं करै है । इस अवसरविषैं नाहीं करै है ।[1]

बहुरि प्रश्न—किसी स्थिति विषैं वर्तमान कर्म है सो कांडकघात करि कैसे स्थितिस्थानकौं प्राप्त हो है ? भावार्थ यहु—स्थितिकांडकघातका प्रश्न कीया, बहुरि किसा अनुभाग विषैं वर्तमान कर्म है सो कांडकघातकरि अवशेष कैसा स्थानकौं प्राप्त हो है[2] । भावार्थ यहु—अनुभाग काडकघातका प्रश्न कीया । इनि दोऊनिका उत्तर यहु—जो स्थितिकांडकघात अनुभागकांडकघात इस अधःकरण विषैं नाहीं है अपूर्वकरणविषैं हो है । ऐसा यहु चारित्रमोहकी क्षपणाकौं सन्मुख भया जीव प्रथम अधःप्रवृत्तकरण करै है ॥३९२॥

गुणसेढी गुणसंकमठिदिरसखंडाण णत्थि पढम्हि ।
पडिसमयमणंतगुणं विसोहिवड्ढीहिं वड्ढदि हु[3] ॥३९३॥

गुणश्रेणी गुणसंक्रमं स्थितिरसखंडनं नास्ति प्रथमे ।
प्रतिसमयमनंतगुणं विशुद्धिवृद्धिभिः बर्धते हि ॥३९३॥

स० चं०—पहलैं अधःप्रवृत्तकरणविषै गुणश्रेणि १ गुणसंक्रम १ स्थितिकांडकघात १ अनुभाग कांडकघात १ ए नाहीं संभवै हैं । सो जीव समय २ प्रति अनन्तगुणा क्रम लीएँ विशुद्धताकी वृद्धिकरि वर्धमान हो है ॥३९३॥

सत्थाणमसत्थाणं चउविट्ठाणं रसं च बंधदि हु ।
पडिसमयमणंतेण य गुणभजियकमं तु रसबंधे ॥३९४॥

शस्तानामशस्तानां चतुरपि स्थानं रसं च बध्नाति हि ।
प्रतिसमयमनंतेन च गुणभजितक्रमं तु रसबंधे ॥३९४॥

स० चं०—बहुरि सो जीव समय समय प्रति प्रशस्त प्रकृतिनिका अनंतगुणा क्रम लीएं चतुःस्थानक अनुभागबंध करै है । अर अप्रशस्त प्रकृतिनिका अनंतवां भागका क्रम लीएं द्विस्थानिक अनुभागबंध करै है ॥३९४॥

पल्लस्स संखभागं मुहुत्तअंतेण ओसरदि बंधे ।
संखेज्जसहस्साणि य अधापवत्तम्हि ओसरणा[4] ॥३९५॥

पल्यस्य संखभागं मुहूर्तान्तमपसरति बंधे ।
संख्येयसहस्राणि च अधःप्रवृत्ते अपसरणा ॥३९५॥

---

१. ण ताव अन्तरं करेदि, पुरदो कहिदि त्ति अन्तरं । ता० मु० पृ० १९४७ ।

२. एदीए गाहाए ट्ठिदिघादो अणुभागघादो च सूचिदो भवदि । ता० मु०, पृ० १९४७ ।

३. तदो इमस्स चरिमसमयअधापवत्तकरणे वट्टमाणस्स णत्थि ट्ठिदिघादो अणुभागघादो वा, से काले दो वि घादा पविर्त्तिहिंति । तं पुण अप्पसत्थाणं कम्माणमणंता भागा । ता० मु०, पृ० १९४८ ।

४. पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो ट्ठिदिबंधेणोसरिदो । ता० मु०, पृ० १९५१ ।

स० चं०—पूर्वं स्थितिबंधतैं पल्यका संख्यातवां भागमात्र स्थितिबन्ध घटाइ एक अन्तर्मुहूर्त्त काल पर्यंत समय समय समान बंध होइ सो यहु एक स्थितिबन्धापसरण भया। ऐसैं संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण अधःप्रवृत्तकरणविषैं हो हैं ॥३९५॥

आदिमकरणद्धाए पढमट्ठिदिबंधदो दु चरिमम्हि ।
संखेज्जगुणविहीणो ठिदिबंधो होदि णियमेण ॥३९६॥

आद्यकरणाद्धायां प्रथमस्थितिबंधतस्तु चरमे ।
संख्येयगुणविहीनः स्थितिबंधो भवति नियमेन ॥३९६॥

स० चं०—ऐसैं स्थितिबंधापसरण होनेतैं प्रथम अधःप्रवृत्तकरण कालविषैं प्रथम समय जो स्थितिबंध हो है तातैं संख्यातगुणा घटता अंत समयविषै स्थितिबंध नियमकरि हो है। ऐसैं इस अधःकरणविषै आवश्यक हो है। जहां अन्य जीवके नीचले समयवर्ती भावनिके समान अन्य जीवकैं ऊपरि समयवर्ती भाव होंहि सो अधःप्रवृत्तकरण ऐसा सार्थक नाम जानना ॥३९६॥

आगैं अपूर्वकरणका वर्णन करिए है—

गुणसेढी गुणसंकम ठिदिखंडमसत्थगाण रसखंडं ।
विदियकरणादिसमए अण्णं ठिदिबंधमारभई ॥३९७॥

गुणश्रेणी गुणसंक्रमं स्थितिखंडमशस्तकानां रसखंडम् ।
द्वितीयकरणादिसमये अन्यं स्थितिबन्धमारभते ॥३९७॥

स० चं०—दूसरा जो अपूर्वकरण ताका प्रथम समयविषै गुणश्रेणि १ गुणसंक्रम १ अर स्थितिखंडन १ अर अप्रशस्त प्रकृतिनिका अनुभागखंडन हो है। बहुरि अधःकरणका अंत समयविषै जो स्थितिबंध होता था तातैं पल्यका असंख्यातवां भागमात्र घटता और ही स्थितिबंधकौं प्रारभैं है जातैं इहां एक स्थितिबंधापसरण होनेतैं इतना स्थितिबन्ध घटाइए है ॥३९७॥

गुणसेढीदीहत्तं अपुव्वचउक्कादु साहियं होदि ।
गलिदवसेसे उदयावलिवाहिरदो दु णिक्खेओ ॥३९८॥

गुणश्रेणीदीर्घत्वं अपूर्वचतुष्कात् साधिकं भवति ।
गलितावशेषे उदयावलिवाह्यतस्तु निक्षेपः ॥३९८॥

स० चं०— इहां गुणश्रेणि आयामका प्रमाण अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसांपराय क्षीणकषाय इन च्यारि गुणस्थाननिका मिलाया हूवा कालतैं साधिक है। सो अधिकका प्रमाण क्षीणकषाय कालके संख्यातवे भागमात्र है सो उदयावलीतैं बाह्य गलितावशेषरूप जो यहु गुणश्रेणि आयाम ताविषै अपकर्षण कीया द्रव्यका निक्षेपण हो है ॥३९८॥

पडिसमयं ओकड्डदि असंखगुणिदक्कमेण सिंचदि य ।
इदि गुणसेढीकरणं पडिसमयमपुव्वपढमादो[1] ॥३९९॥

---

१. गुणसेढी असंखेज्जगुणा, सेसे च णिक्खेवो, विसोही च अणंतगुणा। ता० मु०, पृ० १९५२ ।

प्रतिसमयमपकर्षति असंख्यगुणितक्रमेण सिंचति च।
इति गुणश्रेणीकरणं प्रतिसमयमपूर्वप्रथमात् ॥३९९॥

स० चं०—प्रथम समयविषै अपकर्षण कीया द्रव्यतैं द्वितीयादि समयनिविषै असंख्यातगुणा क्रम लीए समय समय प्रति द्रव्यकौं अपकर्षण करै है। अर सिंचति कहिए उदयावलीविषै गुण-श्रेणि आयामविषै उपरितन स्थितिविषै निक्षेपण करै है ऐसैं अपूर्वकरणका प्रथम समयतैं लगाय समय समय प्रति गुणश्रेणिका करना हो है। ऐसैं गुणश्रेणिका स्वरूप कह्या ।।३९९।।

पडिसमयमसंखगुणं दव्वं संकमदि अप्पसत्थाणं।
बंधुज्झियपयडीणं बंधंतसजादिपयडीसु ॥४००॥

प्रतिसमयमसंख्यगुणं द्रव्यं संक्रामति अप्रशस्तानाम्।
बन्धोज्झितप्रकृतीनां बध्यमानस्वजातिप्रकृतिषु ॥४००॥

स० चं०—अपूर्वकरणका प्रथम समयतैं लगाय जिनिका इहां बंध न पाइए ऐसीं जे अप्रशस्त प्रकृति तिनिका गुणसंक्रमण हो है सो समय समय प्रति असंख्यातगुणा क्रम लीएं तिनि प्रकृतिनिका द्रव्य है सो इहां, जिनिका इहां बंध पाइए ऐसी जे स्वजाति प्रकृति तिनविषै संक्रम करै है तद्रूप परिणमै है। जैसैं असाता वेदनीयका द्रव्य साता वेदनीयरूप परिणमै है। ऐसैं ही अन्य प्रकृतिनिका जानना ॥४००॥

ओव्वट्टणा जहण्णा आवलियाऊणिया तिभागेण।
एसा ठिदिसु जहण्णा तहाणुभागेसणंतेसु[1] ॥४०१॥

अतिस्थापना जघन्या आवलिकोनिका त्रिभागेन।
एषा स्थितिषु जघन्या तथानुभागेष्वनंतेषु ॥४०१॥

स० चं०—संक्रमणविषै जघन्य अतिस्थापन अपना त्रिभागकरि ऊन आवलीमात्र है सो यहु ही जघन्य स्थिति है। तैसैं ही अनंत अनुभागनिविषै भी जानना ॥४०१॥

विशेष—इस गाथाका भाव यह है कि कमसे कम त्रिभागसे न्यून एक आवलिको अति-स्थापित करके अपवर्तना होती है। यह स्थितिविषयक जघन्य अतिस्थापना है। तथा अनुभाग विषयक जघन्य अतिस्थापना अनन्त स्पर्धकोंसे प्रतिबद्ध है। अर्थात् कमसे कम अनन्त स्पर्धकोंको अतिस्थापित करके अपवर्तना होती है। इसका आशय यह है कि उदयावलिसे ऊपर प्रथम स्थिति के कर्म प्रदेशोंका अपकर्षण होने पर एक समय कम एक आवलिके एक त्रिभागसे न्यून दो त्रिभाग प्रमाण अतिस्थापना होती है और एक समय अधिक त्रिभाग प्रमाण स्थितियोंमें अपकर्षित द्रव्य का निक्षेप होता है। इसके आगे एक आवलि प्रमाण स्थितिके प्राप्त होनेतक अतिस्थापनामें वृद्धि होती जाती है और निक्षेप उक्त प्रमाण ही रहता है। इसके आगे अतिस्थापना एक आवलिप्रमाण ही रहती है, मात्र निक्षेपमें क्रमशः वृद्धि होती जाती है।

१. क० पा० गा० १५२।

संकामेदुक्कड्डदि जे अंसे ते अवट्ठिदा होंति ।
आवलियं से काले तेण परं होंति भजियव्वा ॥४०२॥

संक्रामे तु उत्कृष्यंते ये अंशास्ते अवस्थिता भवंति ।
आवलिकां स्वे काले तेन परं भवंति भजितव्याः ॥४०२॥

स० चं०—संक्रमणविषैं जे प्रकृतिनिके परमाणू उत्कर्षणरूप करिए है ते अपने कालविषै आवली पर्यन्त तौ अवस्थित ही रहैं। तातैं परे भजनीय हो हैं, अवस्थित भी रहैं अर स्थित्यादिक की वृद्धि हानि आदिरूप भी होंइ ॥४०२॥

विशेष— जिन कर्मप्रदेशोंका संक्रमण अथवा उत्कर्षण करता है वे एक आवलि काल तक तदवस्थ रहते हैं। उनमें एक आवलि काल तक अन्य कोई क्रिया नहीं होती। उसके बाद वे कर्म-प्रदेश वृद्धि, हानि और अवस्थानरूपसे भजनीय हैं। उनमें अपनी-अपनी शक्ति स्थितिके अनुसार अन्य क्रिया हो सकती है यह उक्त गाथा सूत्रका भाव है।

ओक्कड्डदि जे अंसे से काले ते च होंति भजियव्वा ।
वड्डीए अवट्ठाणे हाणीए संकमे उदए ॥४०३॥

अपकृष्यंते ये अंशाः स्वे काले ते च भवंति भजितव्याः ।
वृद्धौ अवस्थाने हानौ संक्रमे उदये ॥४०३॥

स० चं०—जे प्रकृतिनिके परमाणू अपकर्षण करिए है ते अपने कालविषैं भजनीय हो हैं स्थित्यादिककी वृद्धि वा अवस्थान वा हानि अर संक्रमण अर उदय इनरूप होंइ भी अर न भी होंइ, किछू नियम नाहीं ॥४०३॥

विशेष—जिन कर्म प्रदेशोंका अपकर्षण करता है, तदनन्तर समयमें वृद्धि, अवस्थान, हानि, संक्रम और उदयकी अपेक्षा वे भजनीय हैं। अर्थात् अपकर्षण होनेके बाद अगले समयमें उन कर्मप्रदेशोंका उत्कर्षण हो सकता है, अवस्थान हो सकता है, पुनः अपकर्षण हो सकता है, संक्रम हो सकता है और उदय भी हो सकता है। अपकर्षणके दूसरे समयमें क्रियान्तर होनेमें कोई बाधा नहीं है।

एक्कं च ठिदिविसेसं तु असंखेज्जेसु ठिदिविसेसेसु ।
वड्ढदि हरस्सेदि च तहाणुभागेसुणंतेसु ॥४०४॥

एकं च स्थितिविशेषं तु असंख्येयेषु स्थितिविषेषु ।
वर्त्यते रहस्यते वा तथानुभागेष्वनंतेषु ॥४०४॥

स० चं०— एक स्थितिविशेष जो एक निषेकका द्रव्य सो असंख्यात निषेकनिविषै वर्तै है निक्षेपण करिए है तैसैं ही अनंत अनुभागनिविषै भी एक स्पर्धकका द्रव्य अनन्त स्पर्धकनिविषै

१. का० पा०, गा० १५३। २. का० प० गा० १५४। ३. का० पा०, गा० १५६।

निक्षेपण करिए हैं ऐसा जानना। इन च्यारि गाथानिका अर्थ नीकैं मेरे जाननेमें न आया अर क्षपणासारविषैं भी इनका प्रयोजन किछू लिख्या नाही तातैं बुद्धिमान होइ सो इनका यथासम्भव विशेष अर्थ जानियो। ऐसैं गुणसंक्रमका स्वरूप कह्या ॥४०४॥

विशेष—एक स्थितिविशेषको असंख्यात स्थितिविशेषोंमें बढ़ाता अथवा घटाता है। तथा इसी प्रकार एक अनुभागविशेषको असंख्यात अनुभागविशेषोंमें बढ़ाता अथवा घटाता है। तात्पर्य यह है कि स्थितिसत्कर्मकी अग्रस्थितिसे एक समय अधिक नूतन स्थितिको बाँधनेवाला जीव उस अग्रस्थितिका उत्कर्षण नहीं करता। दो समय अधिक स्थितिको बाँधनेवाला जीव भी उस अग्रस्थितिका उत्कर्षण नहीं करता। इसी प्रकार आगे जा कर एक आवलि अधिक नूतन स्थिति को बाँधनेवाला जीव उस अग्रस्थितिका उत्कर्षण नहीं करता। हाँ यदि सत्कर्मकी अग्रस्थितिसे बँधनेवाली नूतन स्थिति एक आवलि और एक आवलिके असंख्यातवें भाग अधिक हो तो वह जीव सत्कर्मको अग्रस्थितिका उत्कर्षण कर सकता है। उस समय सत्कर्मकी उस अग्रस्थितिको उत्कर्षित करता हुआ एक आवलिको अतिस्थापित कर आवलिके असंख्यातवें भागमें उस उत्कर्षित द्रव्यका निक्षेप करता है। इस प्रकार निक्षेप एक आवलिके असंख्यातवें भागसे लेकर एक-एक समय अधिक होता हुआ उत्कृष्ट निक्षेपके प्राप्त होनेतक वृद्धिको प्राप्त होता है। जो कषायोंकी अपेक्षा चार हजार वर्ष और एक समय अधिक एक आवलिसे न्यून चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण है। तथा जो आबाधाके ऊपरकी स्थितियाँ हैं, उत्कर्षणको प्राप्त होनेवाली उन स्थितियोंकी अतिस्थापना एक आवलिप्रमाण होती है। और जो आबाधाके नीचे सत्कर्म स्थितियाँ हैं उनमेंसे किसीकी एक आवलिप्रमाण अतिस्थापना होती है, किसीको एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण अतिस्थापना होती है, किसीकी दो समय अधिक और किसीकी तीन समय अधिकसे लेकर उत्कृष्ट अतिस्थापनाके प्राप्त होनेतक अतिस्थापना होती है। जिस कर्मकी जो उत्कृष्ट आबाधा है उसमेंसे एक समय अधिक एक आवलिकम उत्कृष्ट आबाधाप्रमाण उत्कृष्ट अतिस्थापना होती है।

पल्लस्स संखभागं वरं पि अवरादु संखगुणिदं तु।
पढमे अपुव्वखवगे ठिदिखंडपमाणयं होदि[1] ॥४०५॥

पल्यस्य संख्यभागं वरमपि अवरात् संख्यगुणितं तु।
प्रथमे अपूर्वक्षपके स्थितिखंडप्रमाणकं भवति ॥४०५॥

स० चं०—क्षपक अपूर्वकरणका प्रथम समयविषैं स्थितिखड कहिए स्थितिकांडकायाम ताका जघन्य वा उत्कृष्ट प्रमाण पल्यके संख्यातवें भागमात्र है तथापि जघन्यतैं उत्कृष्ट संख्यातगुणा है। तहां जो जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टी होइ उपशमश्रेणी चढि पीछैं क्षपकश्रेणी चढै ताकैं तहां उपशमश्रेणिविषै बहुत स्थितिकांडकघात होनेकरि स्थितिसत्त्व स्तोक रहै है। तातैं ताकैं इहां स्थितिकांडकायाम जघन्य हो है। बहुरि जो जीव उपशमश्रेणी न चढि क्षपकश्रेणी चढै ताकैं तिसतैं स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है। ताकैं स्थितिकांडकायाम भी संख्यातगुणा हो है, जातैं

१. ट्ठिदिखंडयमागाइदं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो। क० पु० चु० पृ० ७४२।
अपुव्वकरणे पढमट्ठिदिखंडयं जहण्णयं थोकं उक्कस्सयं संखेज्जगुणं। ध० पु० ६, पृ० ३४४

स्थितिके अनुसारि कांडकघात हो है ऐसैं दूसरा जघन्य कांडकतैं दूसरा उत्कृष्ट कांडक तीसरातैं तीसरा इत्यादि सर्वत्र जघन्य कांडकतैं उत्कृष्ट कांडक संख्यातगुणा जानना ॥४०५॥

आउगवज्जाणं ठिदिघादो पढमादु चरिमठिदिसंतो ।
ठिदिबंधो य अपुव्वे होदि हु संखेज्जगुणहीणो ॥४०६॥

आयुष्कवर्ज्यानां स्थितिघातः प्रथमात् चरमस्थितिसत्त्वम् ।
स्थितिबंधश्च अपूर्वे भवति हि संख्येयगुणहीनः ॥४०६॥

स० चं०—आयु विना सात कर्मनिका स्थितिकांडकायाम अर स्थितिसत्त्व अर स्थितिबंध ए तीनों अपूर्वकरणका प्रथम समयविषै जो पाइए है तिनितैं ताके अन्त समयविषै संख्यातगुणे घाटि हो हैं ॥४०६॥

अंतोकोडाकोडी अपुव्वपढमम्हि होदि ठिदिबंधो ।
बंधादो पुण सत्तं संखेज्जगुणं हवे तत्थ ॥४०७॥

अंतःकोटीकोटिः अपूर्वप्रथमे भवति स्थितिबन्धः ।
बन्धात् पुनः सत्त्वं संख्येयगुणं भवेत् तत्र ॥४०७॥

स० चं०—अपूर्वकरणका प्रथम समयविषै स्थितिबंध अन्तःकोटाकोटी प्रमाण है सो पृथक्त्व लक्ष कोडि सागरप्रमाण है। बहुरि तहां स्थितिसत्त्व आलाप करि तितना ही है, तथापि स्थिति-बंधतैं संख्यातगुणा है। ऐसैं स्थितिकांडकका स्वरूप कह्या ॥४०७॥

एक्केक्कट्ठिदिखंडयणिवडणठिदिओसरणकाले ।
संखेज्जसहस्साणि य णिवडंति रसस्स खंडाणि ॥४०८॥

एकैकस्थितिखंडकनिपतनस्थित्यपसरणकाले ।
संख्येयसहस्राणि च निपतंति रसस्य खंडानि ॥४०८॥

स० चं०—एकस्थितिखंडनिपतन कहिए स्थितिकांडकघात जाविषैं होइ ऐसा स्थिति-कांडकोत्करण काल तीहिं विषैं संख्यात हजार अनुभागकांडकनिका निपतन कहिए घात हो है। भावार्थ यहु—अपूर्वकरणका प्रथम समयविषैं स्थितिकांडकका अर अनुभागकांडकका युगपत् प्रारम्भ भया। तहां यथायोग्य काल गएं प्रथम अनुभागकांडक पूरा भया अर स्थितिकांडक सोई है। बहुरि अनुभागकांडक दूसरा भया, बहुरि तीसरा भया ऐसैं संख्यात हजार अनुभागकांडक भएं प्रथम स्थितिकांडकका काल पूर्ण हो है। ऐसैं ही द्वितीयादि स्थितिकांडक कालनिविषैं क्रम जानना ॥४०८॥

१. तदो ट्ठिदिसंतकम्मं ट्ठिदिबंधो च सागरोवमकोडिसदसहस्सपुधत्तमंतोकोडीए। बंधादो पुण संतकम्मं संखेज्जगुणं। वही पृ० ७४२। ध० पु० ६, पृ० ३४५।

असुहाणं पयडीणं अणंतभागा रसस्स खंडाणि ।
सुहपयडीणं णियमा णत्थि त्ति रसस्स खंडाणि ॥४०९॥

अशुभानां प्रकृतीनां अनंतभागा रसस्य खंडानि ।
शुभप्रकृतीनां नियमात् नास्तीति रसस्य खंडानि ॥४०९॥

स० चं०—अशुभ प्रकृतिनिका अनन्त बहुभागमात्र अनुभागकांडकका प्रमाण है। पूर्वै जो अनुभाग था ताकौं अनन्तका भाग दीएं तहां बहुभागमात्र प्रथम अनुभागकांडकविषैं घटाइए है अवशेष एक भागमात्र अनुभाग रहै है। बहुरि ताकौं अनन्तका भाग दीएं तहां बहुभाग दूसरा अनुभागकांडकविषैं घटाइए है अवशेष एक भाग अनुभाग रहै है। ऐसैं अन्त अनुभागकांडक पर्यन्त क्रम जानना। या प्रकार अप्रशस्त प्रकृतिनिका अनुभागखंड इहां हो है। बहुरि प्रशस्त प्रकृतिनिका अनुभागखंड नियमतैं न हो है जातैं विशुद्ध परिणामनिकरि शुभप्रकृतिनिके अनुभाग का घटावना सम्भवता नाहीं। ऐसैं अनुभागखंडका स्वरूप कह्या ॥४०९॥

पढमे छट्ठे चरिमे भागे दुग तीस चदुर वोछिण्णा ।
बंधेण अपुव्वस्स य से काले बादरो होदि ॥४१०॥

प्रथमे षट्के चरमे भागे द्विकं त्रिंशत् चतस्रो व्युच्छिन्नाः ।
बन्धेन अपूर्वस्य च स्वे काले बादरो भवति ॥४१०॥

स० चं०—पूर्वोक्त प्रकार स्थितिबंधापसरणनिकरि घटि घटि संख्यात हजार स्थितिबंध भए कहा ? सो कहिए है—

अपूर्वकरणका कालके समान सात भाग करिए तहां प्रथमभागका अंत शमयविषै निद्रा प्रचला इनि दोऊनिके बंधकी व्युच्छित्ति भई। इहां ही निद्रा प्रचलाका द्रव्य है सो गुणसंक्रमण विधान करि इहां बध्यमान स्वजातीय चक्षु अचक्षु अवधि केवलदर्शनावरणीय तिन विषै संक्रमण करै है। बहुरि यातैं परैं संख्यात हजार स्थितिबन्ध भएं ताका छठा भागका अंत समयविषैं देवगति १ पंचेन्द्री जाति १ वैक्रियिक तैजस आहारक कार्माण शरीर ४ समचतुरस्र संस्थान १ वैक्रियिक आहारक अंगोपांग २ वर्णादि च्यारि ४ देवानुपूर्वी १ अगुरुलघु १ उपघात १ परघात १ उश्वास १ प्रशस्तविहायोगति १ त्रस १ बादर १ पर्याप्त १ प्रत्येक १ स्थिर १ शुभ १ शुभग १ सुस्वर १ आदेय १ निर्माण १ तीर्थंकर १ इन तीस प्रकृतिके बंधकी व्युच्छित्ति हो है। बहुरि यातैं संख्यात हजार स्थितिबंध भए अपूर्वकरणका अंत समयविषैं हास्य १ रति १ भय १ जुगुप्सा १ इन च्यारिनिके बंधकी व्युच्छित्ति हो है। अर इहां ही छह नोकषायनिके उदयकी व्युच्छित्ति हो है। जहां उपरि समयसंबंधी भाव सर्वदा नीचले समय संबंधी भावनिके समान न होंइ सो कर्म

१. अप्पसत्थाणं कम्माणमणुभागस्स अणंते भागे खंडयं गेण्हदि। ध० पु० ६, ३४५।

२. एवं ट्ठिदिबंधसहस्सेहिं गदेहिं अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जदिभागे गदे तदो णिद्दा-पयलाणं बंधवोच्छेदो। ताधे चेव ताणि गुणसंकमेण संकमंति। तदो ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु परभवियणामाणं बंधवोच्छेदो जादो। तदो ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु चरिमसमयअपुव्वकरणं पत्तो। से काले पढमसमयअणियट्टी जादो। क० चु० पृ० ७४३।

नाश करनेवाला सार्थक नामका धारक अपूर्वकरण जानना। याकौं समाप्त होतैं ताके अनंतर समय निज कालविषैं बादर कहिए अनिवृत्तिकरण हो है ॥४१०॥ ताका व्याख्यान करिए है—

अणियट्टिस्स य पढमे अण्णं ठिदिखंडपहुदिमारभइ।
उवसामणा णिधत्ती णिकाचणा तत्थ वोच्छिण्णा ॥४११॥

अनिवृत्तेश्च प्रथमे अन्यं स्थितिखंडप्रभृतिमारभते।
उपशामना निधत्तिः निकाचना तत्र व्युच्छिन्ना ॥४११॥

स० चं०—अनिवृत्तिकरणका प्रथम समयविषै और ही स्थितिखंडादिक प्रारंभिए है। तहां अपूर्वकरणका अन्त समयवर्तीतैं अन्य ही पल्यका संख्यातवां भागमात्र तौ स्थितिकांडकायाम हो है। अर यातैं पीछैं अवशेष रह्या जो अनुभाग ताका अनंत बहुभागमात्र और ही अनुभागकांडक हो है। अर अपूर्वकरणका अन्त समयसंबंधी स्थितिबंधतैं पल्यका संख्यातवां भागमात्र घटता और ही स्थितिबंध इहां हो है। बहुरि इहां ही अप्रशस्तोपशम १ निधत्ति १ निकाचना १ इन तीन करणनिकी व्युच्छित्ति भई। अब सर्व ही कर्म उदय संक्रमण उत्कर्षण अपकर्षण करनेकौं योग्य भए ॥४११॥

बादरपढमे पढमं ठिदिखंडं विसरिसं तु विदियादि।
ठिदिखंडयं समाणं सव्वस्स समाणकालम्हि ॥४१२॥

बादरप्रथमे प्रथमं स्थितिखंडं विसदृशं तु द्वितीयादि।
स्थितिखंडकं समानं सर्वस्य समानकाले ॥४२२॥

स० चं०—अनिवृत्तिकरणका प्रथम समयविषै पहला स्थितिखण्ड है सो तो विसदृश है नाना जीवनिकैं समान नाही है। बहुरि द्वितीयादि स्थितिखंड हैं ते समान कालविषै सर्व जीवनिके समान है। अनिवृत्तिकरण माढैं जिनकौं समान काल भया तिनकैं परस्पर द्वितीयादि स्थितिकांडक आयामका समान प्रमाण जानना ॥४१२॥

पल्लस्स संखभागं अवरं तु वरं तु संखभागहियं।
घादादिमठिदिखंडो सेसा सव्वस्स सरिसा हु[3] ॥४१३॥

१. पढमसमयअणियट्टिस्स अण्णं ट्ठिदिखंडयं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो। अण्णमणुभागखंडयं सेसस्स अणंता भागा। अण्णो ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण हीणो।...सव्वकम्माणं पि तिण्णि करणाणि वोच्छिण्णाणि। जहा—अप्पसत्थउवसामणाकरणं णिधत्तीकरणं णिकाचणाकरणं च। क० चु० पृ० ७४३–७४४।

२. पढमं ट्ठिदिखंडयं विसमं जहण्णयादो उक्कस्सयं संखेज्जभागुत्तरं। पढमे ट्ठिदिखंडये हदे सव्वस्स तुल्लकाले अणियट्टिपविट्ठस्स ट्ठिदिसंतकम्मं तुल्लं ट्ठिदिखंडयं पि सव्वस्स अणियट्टिपविट्ठस्स विदियट्ठिदिखंडयादो विदियट्ठिदिखंडयं तुल्लं। तदोप्पहुडि तदियादो तदियं तुल्लं। क० चु०, पृ० ७४३।

३.

पल्यस्य संख्यभागं अवरं तु वरं तु संख्यभागमधिकम् ।
घातादिमस्थितिखंडः शेषाः सर्वस्य सदृशा हि ।।४१३।।

स० चं०—सो प्रथम स्थितिखंड जघन्य तो पल्यका संख्यातवां भागमात्र है। उत्कृष्ट ताका संख्यातवां भाग करि अधिक है। बहुरि द्वितीयादि स्थितिखंड सर्व जीवनिकैं समान हो हैं। इहां कारण कहिए है—

कोई जीवकैं स्थितिसत्त्व स्तोक है। कोईकैं तातैं संख्यातवां भाग करि अधिक है. तातैं स्थितिसत्त्वके अनुसारि स्थितिकांडक भी कोईकैं जघन्य कोईकैं उत्कृष्ट हो है सो अपूर्वकरणका प्रथम समयतैं लगाय अनिवृत्तिकरणविषै यावत् प्रथम खंडका घात न होइ तावत् ऐसै ही संभवै है। बहुरि तिस प्रथम कांडकका घात भए पीछैं समान समयनिविषैं प्राप्त सर्व जीवनिकैं स्थिति-सत्त्वकी समानता हो है, तातैं द्वितीयादि स्थितिकांडक आयामनिकी भी समानता जाननी ।।४१३।।

उदधिसहस्सपुधत्तं लक्खपुधत्तं तु बंध संतो य ।
अणियट्टिस्सादीए गुणसेढीपुव्वपरिसेसा ।।४१४।।[1]

उदधिसहस्रपृथक्त्वं लक्षपृथक्त्वं तु बंधः सत्त्वं च ।
अनिवृत्तेरादौ गुणश्रेणी पूर्वपरिशेषा ।।४१४।।

स० चं०—अपूर्वकरणका प्रथम समयविषैं पूर्वैं स्थितिबंध अन्तःकोटाकोटि सागरप्रमाण था सो अपूर्वकरण विषैं भए संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण तिनकरि घटता होइ पृथक्त्व हजार सागरप्रमाण स्थितिबंध भया। बहुरि पूर्वैं स्थितिसत्त्व अन्तःकोटाकोटि सागरप्रमाण था सो अपूर्व-करण विषै भए संख्यात हजार स्थितिकांडकघात तिनकरि घटता होइ पृथक्त्व लक्षसागरप्रमाण स्थितिसत्व भया। बहुरि गुणश्रेणि आयाम इहां अपूर्वकरण काल व्यतीत भए पीछैं जो अवशेष रह्या सो इहां जानना। समय समय प्रति असंख्यातगुणा क्रम लीएं पूर्ववत् गुणश्रेणी अर गुण-संक्रम वर्तै है ।।४१४।।

आगे स्थितिबंधापसरणका क्रम कहिए है—

ठिदिबंधसहस्सगदे संखेज्जा बादरे गदा भागा ।
तत्थासण्णिस्स ट्ठिदिसरिसं ठिदिबंधणं होदि[2] ।।४१५।।

स्थितिबंधसहस्रगते संख्येया बादरे गता भागाः ।
तत्रासंज्ञिनः स्थितिसदृशं स्थितिबंधनं भवति ।।४१५।।

स० चं०—ऐसैं प्रथम समय विषैं कह्या अनुक्रम लीए एक स्थितिबंधापसरण करि स्थिति-

१. ट्ठिदिबंधो सागरोवमसहस्सपुधत्तमंतो सद्सहस्सस्स। ट्ठिदिसंतकम्मं सागरोवमसदसहस्सपुधत्तनंतो कोडीए। गुणसेढिणिक्खेवो जो अपुव्वकरणे णिक्खेवो तस्स सेसे सेसे च भवदि। क० चु० पृ० ७४३-७४४

२. एवं संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो असण्णिट्ठिदिबंधसमगो जादो। क० चु० पृ० ७४४।

बंध घटनेतैं एक स्थितिबंध होइ। ऐसैं संख्यात हजार स्थितिबंध भएं अनिवृत्तिकरणके कालका संख्यात भागनिविषै बहुभाग व्यतीत भएं एक भाग अवशेष रह्या तहां असंज्ञी पंचेन्द्री समान स्थितिबंध हो है सो हजार सागरके चारि सातवां भाग मात्र मोहका, तीन सातवां भाग मात्र तीसीयनिका, दोय सातवां भाग मात्र वीसीयनिका स्थितिबंध हो है। चालीस तीस बीस कोडा-कोडी सागरस्थितिकी अपेक्षा चारित्रमोहका नाम चालीसीय अर ज्ञानावरणादि च्यारिका नाम तीसीय, नाम गोत्रका नाम वीसीय जानना ॥४१५॥

ठिदिबंधसहस्सगदे पत्तेयं चदुरतियबिएइंदी।
ठिदिबंधसमं होदि हु ठिदिबंधमणुक्कमेणेव[1] ॥४१६॥

स्थितिबंधसहस्रगते प्रत्येकं चतुस्त्रिद्विएकेंद्री।
स्थितिबंधसमं भवति हि स्थितिबंधमनुक्रमेणैव ॥४१६॥

स० चं०—पूर्वोक्त क्रम लीएं संख्यात हजार स्थितिबंध प्रत्येक भएं अनुक्रमतैं चौंद्री तेंद्री वेंद्री एकेंद्री समान स्थितिबंध हो है। तहां चौंद्री समान तौ सौ सागरका अर तेंद्री समान पचास सागरका, वेंद्री समान पचीस सागरका, एकेंद्री समान एक सागरका च्यारि सातवां भाग-मात्र तौ मोहका, तीन सातवां भागमात्र तीसीयनिका, दोय सातवां भागमात्र वीसीयनिका स्थिति-बंध हो है। तहां एकेंद्री वेंद्री तेंद्री चौंद्री असंज्ञीकैं सत्तर कोडाकोडी उत्कृष्ट स्थितिका धारक जो मिथ्यात्व ताका क्रमतैं एक पचीस पचास सौ हजार सागरका स्थितिबंध होइ तौ चालीस तीस बीस कोडाकोडी उत्कृष्ट स्थितिका धारक जो मोह अर ज्ञानावरणादि अर नाम गोत्र तिनका केता बंध होइ ऐसैं त्रैराशिक कीएं पूर्वोक्त स्थितिबंधका प्रमाण आवै है। ऐसैं ही त्रैराशिकका क्रम आगैं भी जानना ॥४१६॥

एइंदियट्ठिदीदो संखसहस्से गदे हु ठिदिबंधे।
पल्लेकदिवड्ढदुगं ठिदिबंधो वीसियतियाणं[2] ॥४१७॥

एकेंद्रियस्थितितः संख्यसहस्रे गते हि स्थितिबंधे।
पल्यैकद्व्यर्धद्विकं स्थितिबंधः वीसियत्रिकाणाम् ॥ ४१७ ॥

स० चं—एकेंद्रिय समान स्थितिबंधतैं परैं संख्यात हजार स्थितिबंध गएं वीसीयनिका एक पल्य, तीसीयनिका ड्योढ पल्य, मोहका दोय पल्यमात्र स्थितिबंध हो है ॥ ४१७ ॥

तक्काले ठिदिसंतं लक्खपुधत्तं तु होदि उवहीणं।
बंधोसरणो बंधं ठिदिखंडं संतमोसरदि[3] ॥४१८॥

---

१. तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु चदुरिंदियट्ठिदिबंधसमगो ट्ठिदिबंधो जादो। एवं तीइंदिय-समगो बीइंदियसमगो एइंदियसमगो जादो। क० चु० पृ० ७४४।

२. तदो एइंदियट्ठिदिबंधसमगादो ट्ठिदिबंधादो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु णामा-गोदाणं पलिदो-वमट्ठिदिगो बंधो जादो। ताधे णाणावरणीयदंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं दिवड्ढपलिदोवमट्ठिदिगो बंधो। मोहणीयस्स बेपलिदोवमट्ठिदिगो बंधो। क० चु० पृ० ७४४।

३. ताधे ट्ठिदिसंतकम्मं सागरोवमसदसहस्सपुधत्तं।

तत्काले स्थितिसत्त्वं लक्षपृथक्त्वं तु भवति उदधीनाम् ।
बंधापसरणं बंधः स्थितिखंडं सत्त्वमपसरति ।।४१८।।

स० चं—तिस कालविषै कर्मनिका स्थितिसत्त्व पृथक्त्व लक्षसागरप्रमाण हो है सो अनिवृत्तिकरणका प्रथम समयसम्बन्धी स्थितिबंधतैं संख्यातगुणा घाटि जानना। बहुरि सर्वत्र ऐसा जानना—स्थितिबंधापसरणनिकरि स्थितिबंध घटै है अर स्थितिकांडकनिकरि स्थितिसत्त्व घटै है ।। ४१८ ।।

पल्लस्स संखभागं संखगुणूणं असंखगुणहीणं ।
बंधोसरणे पल्लं पल्लासंखं असंखवस्सं ति ।।४१९।।

पल्यस्य संख्यभागं संख्यगुणोनमसंख्यगुणहीनम् ।
बंधापसरणे पल्यं पल्यासंख्यं असंख्यवर्षमिति ।।४१९।।

स० चं—पल्यका संख्यातवां भाग अर पूर्व बंधतैं संख्यातगुणा घटता अर असंख्यातगुणा घटता प्रमाण लीएं स्थितिबंधापसरणनिकरि पल्यमात्र अर पल्यका असंख्यातवां भागमात्र अर असंख्यात वर्षमात्र स्थितिबंध हो है। भावार्थ--पल्यमात्र स्थितिबंध होने पर्यंत तौ पल्यका संख्यातवां भागमात्र स्थितिबंधापसरण जानना। तहां पूर्व स्थितिबंधतैं अनंतरि स्थितिबंध किछू विशेष घटता हो है। बहुरि तातैं परैं पल्यका असंख्यातवां भागमात्र जो दूरापकृष्टि नामा स्थितिबंध ताके होने पर्यंत पल्यकौं संख्यातका भाग दीएं तहां एक भाग विना बहुभागमात्र स्थितिबंधापसरण जानना। तहां पूर्व स्थितिबंधतैं अनंतर स्थितिबंध संख्यातगुणा घटता हो है। बहुरि तातैं परैं असंख्यात हजार वर्षमात्र स्थितिबंध होने पर्यंत पल्यकौं असंख्यातका भाग दीएं तहां एक भाग बिना बहुभागमात्र स्थितिबंधापसरण जानना। तहां पूर्व स्थितिबंधतैं अनंतर स्थितिबंध असंख्यातगुणा घटता हो है। ऐसैं एक एक स्थितिबंधापसरणविषै स्थितिबंध घटाएं अवशेष स्थितिबंध रहै हैं। तहां पूर्व स्थितिबंधतैं अनंतर स्थितिबंध किछू विशेष घटता हो है। बहुरि याही प्रकार प्रमाण लीएं स्थिति कांडकनिकरि स्थितिसत्वकौं घटाइ पल्यादिमात्र स्थितिसत्त्वका होना जानना ।।४१९।।

विशेष—अनिवृत्तिकरणमें जहाँ जाकर एकेन्द्रिय जीवोंके समान स्थितिबन्ध होता है वहाँ से संख्यात हजार स्थितिबन्धापसरण होनेपर नाम-गोत्रका एक पल्योपम, ज्ञानावरण, दर्शनावरण वेदनीय और अन्तरायका डेढ़ पल्योपम तथा महोनीयका दो पल्योपम स्थितिबन्ध होने लगता है। अब विचार यह करना है कि अब तक स्थितिबन्धापसरण पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण था, आगे उत्तरोत्तर स्थितिबन्धापसरण द्वारा स्थितिबन्ध घटता क्रम लिये होने पर स्थितिबन्धापसरणका प्रमाण कितना रहता है इसी तथ्यको इस गाथा द्वारा स्पष्ट किया गया है। आशय यह है कि स्थितिबन्धापसरण द्वारा जिस किसी भी कर्मके पल्योपमप्रमाण स्थितिबन्धके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थितिबन्धापसरणका प्रमाण पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र होता है। आगे जहाँ जाकर जिस किसी-कर्मका स्थितिबन्ध प्रथम बार पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है वहाँ तक प्रत्येक स्थितिबन्धापसरणका प्रमाण पूर्व-पूर्व स्थितिबन्धसे उत्तरोत्तर संख्यातगुणा घटता क्रम लिये होता है। तथा इससे आगे जहाँ जाकर जिस किसी कर्मका स्थितिबन्ध प्रथम बार असंख्यात वर्ष प्रमाण प्राप्त होता है वहाँ तक प्रत्येक स्थितिबन्धापसरणका प्रमाण पूर्व-पूर्व

स्थितिबन्धसे उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा घटता क्रम लिये होता है। यह स्थितिवन्धापसरणके विषय में सामान्य नियम है जो बँधनेवाले सभी कर्मोंपर लागू होता है।

एवं पल्लं जादा वीसीया तीसिया य मोहो य[1] ।
पल्लासंखं च कमं बंधेण य वीसियतियाओ[2] ॥४२०॥

एवं पल्यं जाते वीसिया तीसिया च मोहश्च ।
पल्यासंख्यं च क्रमेण बंधेन च वीसियत्रिकाः ॥ ४२० ॥

स० चं—ऐसैं वीसीयनिका पल्यमात्र स्थितिबंध भया तहां पर्यंत तौ वीसीयनिकेतैं ड्योढा तीसीयनिका अर दूणा मोहका स्थितिबंध है। ऐसा ही क्रम जानना। बहुरि ताके अनंतरि एक स्थितिबंधापसरण होनेकरि वीसीयनिका तौ स्थितिबंध संख्यातगुणा घटता भया। पल्यकौं-संख्यातका भाग दीएं तहां बहुभाग घटाएं एक भागमात्र स्थितिबंध रह्या बहुरि अन्य कर्मनिका पल्य-मात्र स्थितिबंध न भया है तातै पूर्व बंधतैं पल्यका संख्यातवां भागमात्र विशेष-करि हीन स्थितिबंध भया। तहां वीसीयनिका स्तोक स्थितिबंध है। तातैं तीसीयनिका संख्यातगुणा है। जातैं इहां वीसीयनिका तौ पल्यके संख्यातवें भाग भया अर तीसीयनिका साधिक पल्यमात्र है। बहु रि तीसीयनिकेतैं मोहका विशेष अधिक है। ऐसैं अल्पबहुत्व हुआ। इस क्रमकरि संख्यात हजार स्थितिबंध भएं तीसीयनिका पल्यमात्र स्थितिबंध भया। तहां तातैं तीसरा भाग अधिक मोहका स्थितिबंध हो है, जातै तीसीयका पल्यमात्र स्थितिबंध होइ तौ चालीसीयका केता होइ असैं त्रैराशिककरि त्रिभाग अधिक पल्यमात्र मोहका स्थितिबंध आवै है। बहुरि याके अनंतरि तीसीयनिका पल्यका संख्यात बहुभागमात्र एक स्थितिबंधापसरणकरि पूर्व स्थितिबंधतैं संख्यात-गुणा घटता स्थितिबंध हो है। तहां नाम गोत्रका स्तोक तातैं तीसीयनिका संख्यातगुणा तातैं मो-हका संख्यातगुणा स्थितिबंध हो है। इहां वा आगैं अल्पवहुत्व यथासम्भव स्थितिबंधापसरण होनेतैं संभवै है सो विचारैं प्रगट भासैं हैं।

बहुरि इस अनुक्रमतैं संख्यात हजार स्थितिबंध भएं मोहका पल्यमात्र स्थितिबंध हो है। तहां अवशेष छह कर्मनिका स्थितिबंध पल्यके संख्यातवें भागमात्र हो है। ऐसैं वीसीय तीसीय मोहका पल्यमात्र स्थितिबंध होनेका क्रम जानना। बहुरि ताके अनंतरि मोहका पल्यका संख्यात बहुभागमात्र एक स्थितिबंधापसरण भया तब सातौ ही कर्मनिका स्थितिबंध पल्यके संख्यातवें भागमात्र भया। तहां नाम गोत्रका स्तोक तातैं तीसीयनिका संख्यातगुणा तातैं मोहका संख्यात-गुणा स्थितिबंध जानना। बहुरि ऐसैं अनुक्रमकरि संख्यात हजार स्थितिबंध भएं नाम गोत्रका दूरापकृष्टि नामा पल्यका संख्यातवां भागमात्र स्थितिबंध हो है। बहुरि ताके अनंतरि पल्यका असंख्यात बहुभागमात्र एक स्थितिबंधापसरण होनेतैं नाम गोत्रका पल्यका असंख्यातवाँ भागमात्र

---

१. जाधे णामा-गोदाणं पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो ताधे अप्पाबहुअं वत्तइस्साभो। तं जहा—णामा-गोदाणं ठिदिबंधो थोवो, णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं ठिदिबंधो विसेसाहिओ। मोहणी-यस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ। क० चु० पृ० ७४५।

२. तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु मोहणीयस्स वि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ठिदिबंधो जादो। ताधे सव्वेसिं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ठिदिबंधो जादो। क० चु० पृ० ७४७।

स्थितिबंध हो है तहां अन्य कर्मनिका पल्यके संख्यातवें भागमात्र ही स्थितिबंध है जातैं इनकैं दूरापकृष्टिका उल्लंघन होनेतैं स्थितिबंधापसरण पल्यके संख्यात बहुभागमात्र ही है। तहां नाम गोत्रका स्तोक तातैं तीसीयनिका असंख्यातगुणा तातैं मोहका संख्यातगुणा स्थितिबंध जानना। बहुरि इस क्रमतैं संख्यात हजार स्थितिबंध भएं तीसीयनिका स्थितिबंध दूरापकृष्टिकौं उलंघि पल्यके असंख्यातवें भागमात्र भया। तहां नाम गोत्रका स्तोक तातैं तीसीयनिका असंख्यातगुणा तातैं मोहका असंख्यातगुणा स्थितिबंध है। बहुरि इस क्रम लीएं संख्यात हजार स्थितिबंध भएं मोहका भी पल्यका असंख्यातवां भागमात्र स्थितिबंध भया। तहां सर्व ही कर्मनिका पल्यके असंख्यातवें भागमात्र स्थितिबंध हो है। ऐसें वीसीय तीसीय चालीसीयनिका पल्यके असंख्यातवें भागमात्र स्थितिबंध क्रमतैं हो है ॥ ४२० ॥

विशेष—इस गाथा द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि उत्तरोत्तर यथा सम्भव स्थितिबन्धापसरण होनेपर सर्व प्रथम वीसिय प्रकृतियोंका एक पल्योपम प्रमाण स्थितिबन्ध प्राप्त होता है। इसके बाद उत्तरोत्तर यथा सम्भव स्थितिबन्धापसरण होनेपर तीसिय प्रकृतियोंका एक पल्योपमप्रमाण स्थितिबन्ध प्राप्त होता है। उसके बाद उत्तरोत्तर यथा सम्भव स्थितिबन्धापसरण होने पर मोहनीय कर्मका एक पल्योपम प्रमाण स्थितिबन्ध प्राप्त होता है। इसके आगे उत्तरोत्तर यथा सम्भव स्थितिबन्धापसरण होनेपर वीसियत्रिक अर्थात् वीसिय, तीसिय और मोहनीयका स्थितिबन्ध क्रमसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है। यह उक्त गाथाका संक्षिप्त तात्पर्य है। विशेष खुलासा चूर्णिसूत्रोंके अनुसार इस प्रकार है—नाम-गोत्रका पल्योपमप्रमाण स्थितिबन्ध प्राप्त होनेके बाद जो अन्य स्थितिबन्ध होता है वह पूर्वके उक्त स्थितिबन्धसे संख्यातगुणा हीन होता है। शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध अपने पूर्वके स्थितिबन्धसे विशेष हीन होता है। उस समय इस प्रकार अल्पबहुत्व प्राप्त होता है—नाम-गोत्रका स्थितिबन्ध सबसे स्तोक होता है, उससे चार कर्मोंका स्थितिबन्ध परस्पर तुल्य होकर संख्यातगुणा होता है। उससे मोहनीय कर्मका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है।

आगे इस क्रमसे संख्यात हजार स्थितिबन्ध होनेपर ज्ञानावरणादि तीसिय प्रकृतियोंका एक पल्योपमप्रमाण तथा मोहनीयका त्रिभाग अधिक एक पल्योपमप्रमाण स्थितिबन्ध प्राप्त होता है। इसके बाद तीसिय कर्मोंका उक्त स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन स्थितिबन्ध प्राप्त होनेपर अल्प बहुत्वका क्रम इस प्रकार प्राप्त होता है—नाम-गोत्रका स्थितिबन्ध सबसे स्तोक होता है। उससे तीसिय कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा होता है।

इस प्रकार इस क्रमसे संख्यात हजार स्थितिबन्ध व्यतीत हो जानेपर जब मोहनीयका पल्योपमप्रमाण स्थितिबन्ध प्राप्त होता है तब शेष कर्मोंका पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिबन्ध होता है। पुनः इस स्थितिबन्धके सम्पन्न होनेके बाद मोहनीयका पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिबन्ध प्राप्त होता है। इस प्रकार यहाँपर सभी सातों कर्मोंका स्थितिबन्ध पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होनेपर अल्पबहुत्व इस प्रकार प्राप्त होता है—नाम-गोत्रका स्थितिबन्ध सबसे स्तोक होता है। उससे तीसिय प्रकृतियोंका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा होता है तथा उससे मोहनीयका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा होता है।

इस प्रकार इस क्रमसे संख्यात हजार स्थितिबन्ध व्यतीत होकर अन्य स्थितिबन्धके प्राप्त

होनेपर जब नाम-गोत्रका पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिबन्ध प्राप्त होता है तब शेष कर्मोंका पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिबन्ध होता है। उस समय यह अल्पबहुत्व प्राप्त होता है--नाम-गोत्रका सबसे थोड़ा स्थितिबन्ध होता है, उससे तीसिय चार कर्मोंका असंख्यातगुणा स्थितिबन्ध होता है, उससे मोहनीयका संख्यातगुणा स्थितिबन्ध होता है।

उसके संख्यात हजार स्थितिबन्ध जानेपर तीन घातिकर्मों और वेदनीयका पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिबन्ध हो जाता है। उस समय यह अल्पबहुत्व होता है--नाम-गोत्रका सबसे स्तोक स्थितिबन्ध होता है, उससे चार कर्मोका असंख्यातगुणा स्थितिबन्ध होता है, उससे मोहनीयका असंख्यातगुणा स्थितिबन्ध होता है।

उसके बाद संख्यात हजार स्थितिबन्ध जानेपर मोहनीयका स्थितिबन्ध भी पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हो जाता है। उस समय सभी कर्मोंका पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिबन्ध हो जाता है। इस प्रकार इस गाथामें उक्त अर्थ गर्भित है ऐसा यहाँ समझना चाहिये।

उदधिसहस्सपुधत्तं अब्भंतरदो दु सदसहस्सस्स।
तक्काले ठिदिसंतो आउगवज्जाण कम्माणं[1] ॥४२१॥

उदधिसहस्रपृथक्त्वं अभ्यंतरतस्तु शतसहस्रस्य।
तत्काले स्थितिसत्वं आयुर्वर्जितानां कर्मणाम् ॥४२१॥

स० चं—तिस मोहनीयका पल्यका असंख्यातवां भागमात्र स्थितिबंध होनेके कालविषै आयु विना अन्य कर्मनिका स्थितिसत्त्व पृथक्त्व हजार सागर प्रमाण हो है सो पृथक्त्व हजार शब्दकरि इहां लक्षके माही यथासम्भव प्रमाण जानना। पूर्वे पृथक्त्व लक्ष सागरका स्थितिसत्व था सो कांडकघातनिकरि इहां इतना रह्या है ॥ ४२१ ॥

मोहपल्लासंखट्ठिदिबंधसहस्सगेसु तीदेसु।
मोहो तीसिय हेट्ठा असंखगुणहीणयं होदि[2] ॥४२२॥

मोहगपल्यासंख्यस्थितिबंधसहस्रकेष्वतीतेषु।
मोहः तीसियं अधस्तना असंख्यगुणहीनकं भवति ॥४२२॥

स० चं—मोहका पल्यके असंख्यातवें भागमात्र स्थितिबंध भया तिस कालविषै नाम गोत्रका स्तोक तातैं तीसीयनिका असंख्यातगुणा तातैं मोहका असंख्यातगुणा स्थितिबंध हो है। बहुरि ऐसा अल्पबहुत्व लीएं संख्यात हजार स्थितिबंध भएं नाम गोत्रका स्तोक तातैं मोहका असंख्यातगुणा तातैं तीसीयनिका असंख्यातगुणा ऐसैं अन्य प्रकार स्थितिबंध हो है। इहां विशुद्धताके निमित्ततैं तीसीयनिके नीचैं अति अप्रशस्त जो मोह ताका स्थितिबंध असंख्यातगुणा घटता भया ॥४२२॥

---

१. ताधे ठिदिसंतकम्मं सागरोवसहस्सपुधत्तमंतोसदसहस्सस्स। क० चु० पृ० ७४७।

२. तदो जम्हि अण्णो ठिदिबंधो तम्हि एक्कसराहेण णामा-गोदाणं ठिदिबंधो थोवो, मोहणीयस्स ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो, चउण्हं कम्माणं ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो। क० चु० पृ० ७४७।

तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे वीसियाण हेट्ठादु ।
एक्कसराहे मोहे असंखगुणहीणयं होदि[1] ॥ ४२३ ॥

तावन्मात्रे बंधे समतीते वीसियानां अधस्तात् ।
एकसमये मोहोऽसंख्यगुणहीनको भवति ॥ ४२३ ॥

स० चं—बहुरि ऐसा अल्पबहुत्वका क्रम लीएं तितने ही संख्यात हजार स्थितिबंध भएं एक ही बार अन्य प्रकार स्थितिबंध भया। तहां मोहका स्तोक तातैं नाम गोत्रका असंख्यातगुणा तातैंच्यारयो तीसीयनिका असंख्यातगुणा स्थितिबंध हो है। इहां विशुद्धताके बलतैं अति अप्रशस्त मोहका स्थितिबंध वीसीयनिके नीचैं असंख्यातगुणा घटता भया ॥ ४२३ ॥

तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे वेदणीयहेट्ठादु ।
तीसियघादितियाओ असंखगुणहीणया होंति[2] ॥४२४॥

तावन्मात्रे बंधे समतीते वेदनीयाधस्तात् तु ।
तीसियघातित्रिका असंख्यगुणहीनका भवंति ॥ ४२४ ॥

स० चं—बहुरि ऐसा क्रम लीएं तितने ही संख्यात हजार स्थितिबंध व्यतीत भएं और ही प्रकार स्थितिबंध भया। तहां मोहका स्तोक तातैं नाम गोत्रका असंख्यातगुणा तातैं तीन घातियानिका असंख्यातगुणा तातैं वेदनीयका असंख्यातगुणा स्थितिबंध हो है। इहां विशुद्धतातैं तीसीयनिविषै भी वेदनीयतैं नीचैं अप्रशस्त तीन घातिया कर्मनिका असंख्यातगुणा घटता स्थितिबंध भया ॥ ४२४ ॥

तेत्तियमेत्ते बंधे समतीदे वीसियाण हेट्ठा दु ।
तीसियघादितियाओ असंखगुणहीणया होंति ॥४२५॥

तावन्मात्रे बंधे समतीते वीसियानामधस्तात् तु ।
तीसियघातित्रिका असंख्यगुणहीनका भवंति ॥ ४२५ ॥

स० चं—बहुरि ऐसा क्रम लीएं संख्यात हजार स्थितिबंध व्यतीत भएं तहां अन्त स्थितिबंधतैं अन्य प्रकार स्थितिबंध भया। तहां मोहका स्तोक तातैं तीन घातियानिका असंख्यातगुणा तातैं नाम गोत्रका असंख्यातगुणा तातैं वेदनीयका साधिक स्थितिबंध हो है। इहां विशुद्धताके

१. एदेण कमेण संखेज्जाणि ठिदिबंधसहस्साणि गदाणि। तदो जम्हि अण्णो ठिदिबंधो तम्हि एक्कसराहेण मोहणीयस्स ठिदिबंधो थोवो। णामा-गोदाणं ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो, चउण्हं कम्माणं ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो। क० चु० पृ० ७४७।

२. एदेण कमेण संखेज्जाणि ट्ठिदिबंधसहस्साणि गदाणि। तदो जम्हि अण्णो ठिदिबंधो तम्हि एक्कसराहेण मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो थोवो, णामा-गोदाणं ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो, तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। वेदणीयस्स ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। क० चु० पृ० ७४७-७४८।

बलतैं वीसीयनिके नीचैं अति अप्रशस्त तीन घातिया कर्मनिका असंख्यातगुणा घटता स्थितिबंध हो है ॥ ४२५ ॥

तक्काले वेयणियं णामागोदाउ साहियं होदि ।
इदि मोहतीसवीसियवेयणियाणं कमो बंधे[1] ॥४२६॥

तत्काले वेदनीयं नामगोत्रात् साधिकं भवति ।
इति मोहतीसियवीसियवेदनीयानां क्रमो बंधे ॥ ४२६ ॥

स० चं०—तिस कालविषै वेदनीयका स्थितिबंध नाम गोत्रके स्थितिबंधतैं साधिक है। ताका आधा प्रमाणकरि अधिक हो है, जातै वीसीयनिका स्थितिबंधतैं तीसीयनिका स्थितिबंध ड्योढ गुणा त्रैराशिककरि सिद्ध हो है। ऐसैं मोह तीसीय वीसीय वेदनीयका क्रमतैं बंध भया सोई क्रमकरण जानना। नाम गोत्रतैं वेदनीयका ड्योढा स्थितिबंधरूप क्रम लीएं अल्पबहुत्व होना सोई क्रमकरण कहिए है ॥ ४२६ ॥ आगैं स्थितिसत्वापसरण कहिहै है—

बंधे मोहादिकमे संजादे तेत्तियेहिं बंधेहिं ।
ठिदिसंतमसण्णिसमं मोहादिकमं तहा संते[2] ॥४२७॥

बंधे मोहादिक्रमे संजाते तावद्भिर्बंधैः ।
स्थितिसत्त्वमसंज्ञिसमं मोहादिक्रमं तथा सत्वे ॥ ४२७ ॥

सं० चं—बहुरि मोहादिका क्रम लीएँ जो क्रमकरणरूप बंध भया तातै परैं इस ही क्रम लीएँ तितने ही संख्यात हजार स्थितिबन्ध भएँ असंज्ञी पंचेंद्री समान स्थितिसत्त्व हो है। बहुरि तातैं परैं जैसैं मोहादिकका क्रमकरण पर्यंत स्थितिबंधका व्याख्यान कीया तैसैं ही स्थितिसत्त्वका होना अनुक्रमतैं जानना। तहाँ पल्य स्थिति पर्यंत पल्यका संख्यातवाँ भागमात्र तातैं दूरापकृष्टि पर्यंत पल्यका संख्यात बहुभागमात्र तातैं संख्यात हजार वर्ष स्थितिपर्यंत पल्यका असंख्यात बहुभागमात्र आयाम लीएँ जे स्थितिबन्धापसरण तिनकरि स्थितिबंधका घटना कह्या था तैसैं इहाँ तितने आयाम लीएँ स्थितिकांडकनिकरि स्थितिसत्वका घटना हो है। बहुरि तहाँ संख्यात हजार स्थितिबंधका व्यतीत होना कह्या तैसैं इहाँ भी कहिए वा तहाँ तितने स्थितिकांडकनिका व्यतीत होना कहिए, जातैं स्थितिबंधापसरणका अर स्थितिकांडकोत्करणका काल समान है। बहुरि तहाँ स्थितिबंध जहाँ कह्या था इहाँ स्थितिसत्व तहाँ कहना। बहुरि अल्पबहुत्व त्रैराशिक आदि विशेष बंधापसरणवत् ही इहाँ जानने। सो स्थितिसत्त्वका क्रम कहिए है—

प्रत्येक संख्यात हजार कांडक गएँ क्रमतैं असंज्ञी पंचेंद्री चौंद्री तेंद्री वेंद्री एकेंद्रीनिकैं स्थिति-बंधके समान कर्मनिका स्थितिसत्व हजार सौ पचास पचीस एक सागर प्रमाण हो है। बहुरि

---

१. तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो एक्कसराहेण मोहणीयस्स ठिदिबंधो थोवो, तिण्हं, घादिकम्माणं ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो, णामा-गोदाणं ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो, वेदणीयस्स ठिदिबंधो विसेसाहिओ। क० चु० पृ० ७४८।

२. एदेण कमेण संखेज्जाणि ठिदिबंधसहस्साणि जादाणि। तदो ठिदिसंतकम्ममसण्णिठिदिबंधेण समं जादं। क० चु० पृ० ७४८।

संख्यात हजार स्थितिकांडक भएँ वीसियनिका पल्य, तीसीयनिका ड्योढ पल्य, मोहका दोय पल्य स्थितिसत्त्व हो है। तातैं परैं पूर्व सत्त्वका संख्यात बहुभागमात्र एक कांडक भएँ वीसीयनिका पल्यके संख्यात भागमात्र स्थितिसत्त्व भया तिस कालविषै वीसीयनिकेतैं तीसीयनिका संख्यातगुणा मोहका विशेष अधिक स्थितिसत्त्व भया। बहुरि इस क्रमतैं संख्यात हजार स्थितिकांडक भएँ तीसीयनिका पल्यमात्र मोहका त्रिभाग अधिक पल्यमात्र स्थितिसत्त्व भया। ताके परैं एक कांडक भएँ तीसीयनिका भी पल्यके संख्यातवें भागमात्र स्थितिसत्त्व भया। तिस समय वीसीयनिका स्तोक तातैं तीसीयनिका संख्यातगुणा तातैं मोहका संख्यातगुणा स्थितिसत्त्व हो है। बहुरि इस क्रम लीएँ संख्यात हजार स्थितिकांडक भएँ मोहका पल्यमात्र स्थितिसत्त्व हो है। बहुरि एक कांडक भएँ मोहका भी पल्यके संख्यातवें भागमात्र स्थितिसत्त्व हो है। तीहि समय सातौं कर्मनिका स्थितिसत्त्व पल्यके संख्यातवें भागमात्र भया। तहाँ वीसीयनिका स्तोक तीसीयनिका संख्यातगुणा तातैं मोहका संख्यातगुणा स्थितिसत्त्व हो है। तातैं परैं इस क्रम लीएँ संख्यात हजार स्थितिकांडक भएं वीसीयनिका स्थितिसत्त्व दूरापकृष्टिकौं उलंघि पल्यके असंख्यातवें भागमात्र भया तिस समय वीसीयनिका स्तोक तातैं तीसीयनिका असंख्यातगुणा तातैं मोहका संख्यातगुणा स्थितिसत्त्व हो है। तातैं परैं इस क्रम लीएं संख्यात हजार स्थितिकांडक तीसीयनिका स्थिति भएं सत्त्व दूरापकृष्टिकौं उलंघि पल्यके असंख्यातवें भागमात्र भया। तब सर्व ही कर्मनिका स्थितिसत्त्व पल्यके असंख्यातवें भागमात्र भया। तहां वीसीयनिका स्तोक तातैं तीसीयनिका असंख्यातगुणा तातैं मोहका असंख्यातगुणा स्थितिसत्त्व हो है। बहुरि इस क्रमकरि संख्यात हजार स्थितिकांडक भएं नाम गोत्रका स्तोक तातैं मोहका असंख्यातगुणा स्थितिसत्त्व हो है। बहुरि इस क्रम लीएं संख्यात हजार स्थितिकांडक भएं मोहका स्तोक तातैं वीसीयनिका असंख्यातगुणा तातैं तीसीयनिका असंख्यातगुणा स्थितिसत्त्व हो है। बहुरि इस क्रम लीएं संख्यात हजार स्थितिकांडक भएं मोहका स्तोक तातैं वीसीयनिका असंख्यातगुणा तातैं तीन घातियानिका असंख्यातगुणा तातैं वेदनीयका असंख्यात गुणा स्थितिसत्त्व हो है। बहुरि इस क्रम लीएं संख्यात हजार स्थितिकांडक भएं मोहका स्तोक तातैं तीन घातियानिका असंख्यातगुणा तातैं नाम गोत्रका असंख्यातगुणा तातैं वेदनीयका विशेष अधिक स्थितिसत्त्व हो है। ऐसैं अंतविषैं नाम गोत्रकातैं वेदनीयका स्थितिसत्त्व साधिक भया तब मोहादिकैं क्रम लीएं स्थितिसत्त्वका क्रमकरण भया ॥ ४२७ ॥

विशेष—पहले जिस विधिसे स्थितिबन्धापसरणों द्वारा उत्तरोत्तर सातों कर्मोंके स्थितिबन्धोंके क्रमका निर्देश कर आये हैं वही क्रम स्थितिकाण्डकघात द्वारा स्थितिसत्त्वके विषयमें भी जान लेना चाहिये। टीकामें विशेष प्रकाश डाला ही गया है, इसलिये पृथक्से निर्देश नहीं किया है।

तीदे बंधसहस्से पल्लासंखेज्जयं तु ठिदिबंधे।
तत्थ असंखेज्जाणं उदीरणा समयबद्धाणं[1] ॥४२८॥

अतीते बंधसहस्रे पल्यासंख्येयकं तु स्थितिबंधे।
तत्र असंख्येयानां उदीरणा समयबद्धानाम् ॥ ४२८ ॥

स० चं—बहुरि इस क्रमकरणतैं परैं संख्यात हजार स्थितिबंध व्यतीत भएं जो पल्यका

---

१. ···· ····तदो असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा। क० चु० पृ० ७५१।

असंख्यातवां भागमात्र स्थितिबंध होइ ताकों होत संतैं तहां असंख्यात समयप्रबद्धनिकी उदीरणा हो है। इहांतैं पहलैं अपकर्षण कीया द्रव्यकौं उदयावलीविषैं देनेके अर्थि असंख्यात लोकप्रमाण भागहार संभवैं था, तहां समयप्रबद्धके असंख्यातवां भागमात्र उदीरणा द्रव्य था अब यहां पल्यका असंख्यातवां भागप्रमाण भागहार होनेतै असंख्यात समयप्रवद्धमात्र उदीरणा द्रव्य भया ।।४२८।।
आगे क्षपणाधिकारका प्रारंभ हो है—

ठिदिबंधसहस्सगदे अट्ठकसायाण होदि संकमगो ।
ठिदिखंडपुधत्तेण य तट्ठिदिसंतं तु आवलियविद्धं[1] ।।४२९।।

स्थितिबंधसहस्रगते अष्टकषायाणां भवति संक्रमकः ।
स्थितिखंडपृथक्त्वेन च तत्स्थितिसत्त्वं तु आवलिकविद्धं ।।४२९।।

स० चं—असंख्यात समयबद्धमात्र उदीरणा होनेतैं लगाय संख्यात हजार स्थितिकांडक व्यतीत भएं अप्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभरूप आठ कषायनिका संक्रम होइ है। इहां संक्रमणका अर्थ यहु—क्षपणाका प्रारंभ हो है। ए अति अप्रशस्त थे तातैं पहलै इनकी क्षपणा संभवै है। सो इनका जो द्रव्य सो कितना एक क्षपणाका प्रारंभका प्रथम समयविषैं कितना एक दूसरा समयविषैं ऐसैं समय समय प्रति एक-एक फालिका संक्रमण होते अन्तर्मुहूर्तके जेते समय तितनी फालि करि प्रथम कांडकका संक्रमण हो है। ऐसैंही द्वितीय कांडकका संक्रमण हो है। ऐसैं क्रमकरि संख्यात हजार स्थितिकांडकनिकरि आठ कषायनिके द्रव्यका च्यारि संज्वलन कषाय अर पुरुषवेदविषैं संक्रमण हो है। ऐसैं ए परमुखकरि नष्ट हो हैं। अन्य प्रकृतिरूप होनेकरि जाका नाश होइ सो परमुख करि नष्ट कहिए। ऐसैं मोह राजाकी सेनाके नायक अष्ट कषाय तिनका अंत कांडकका नाश होतैं अवशेष स्थितिसत्व काल अपेक्षा आवली मात्र रहै है। अर निषेक अपेक्षा समय घाटि आवली मात्र रहै है। जातैं अंत कांडक घातके समयविषै प्रथम निषेकका स्वमुख उदय युक्त जो कोई संज्वलन तींहिविषै संक्रम होइ उदय हो है। बहुरि उदयावलीविषैं प्राप्त निषेकका कांडकघात न होइ तातैं समय घाटि आवलीमात्र निषेक अंत फालिकी साथि नाहीं विनसै है ।।४२९।।

ठिदिबंधपुधत्तगदे सोलसपयडीण होदि संकमगो ।
ठिदिखंडपुधत्तेण य तट्ठिदिसंतं तु आवलिपविट्ठं[2] ।।४३०।।

स्थितिबंधपृथक्त्वगते षोडशप्रकृतीनां भवति संक्रमकः ।
स्थितिखंडपृथक्त्वेन च तत्स्थितिसत्त्वं तु आवलिप्रविष्टम् ।।४३०।।

---

१. तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिखंडसहस्सेसु गदेसु अट्ठण्हं कसायाणं संकामगो। तदो अट्ठ कसाया ट्ठिदि-खंडयपुधत्तेण संकामिज्जंति। अट्ठण्हं कसायाणमपच्छिमट्ठिदिखंडए उक्किण्णे तेसिं संतकम्ममावलियपविट्ठं सेसं। क० चु० पृ० ७५१।

२. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धीणं णिरयगदि-तिरिक्खगदिपाओग्गणामाणं, संतकम्मस्स संकामगो। तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण अपच्छिमे ट्ठिदिखंडए उक्किण्णे एदेसिं सोलसण्हं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्ममावलियब्भंतरं सेसं। क० चु० पृ० ७५१।

सं० चं—यातैं ऊपरि पृथक्त्व कहिए संख्यात हजार स्थितिबन्ध व्यतीत भएँ निद्रा-निद्रा १ प्रचला-प्रचला १ स्त्यानगृद्धि १ ए तीन दर्शनावरणकी अर नरक-तिर्यंचगति वा आनुपूर्वी च्यारि ४ एकेंद्रियादि च्यारि जाति ४ आतप १ उद्योत १ स्थावर १ सूक्ष्म १ साधारण १ ए तेरह नामकर्मकी ऐसैं सोलह प्रकृतिनिका संक्रमक हो है। क्षपणा प्रारंभका समयतैं लगाय समय-समय प्रति इनके द्रव्यकौं पूर्वोक्त प्रकार एक फालिका संक्रमण होतैं प्रथम कांडक होइ ऐसैं संख्यात हजार स्थितिकांडकनिकरि संक्रमण हो है। तहाँ अंत कांडक घात होतैं अवशेष स्थितिसत्त्व काल अपेक्षा आवलीमात्र निषेक अपेक्षा समय घाटि आवली मात्र रहै है। ऐसैं इनका उदयावलीतैं बाह्य सर्व निषेक द्रव्यनिका द्रव्य है स्वजाती अन्य प्रकृतिनिविषैं संक्रमण होइ क्षयकौं प्राप्त हो है। अपनी जातिकी अन्य प्रकृतिनिकौं स्वजाती कहिए है। जैसैं स्त्यानगृद्धित्रिकको स्वजाती दर्शनावरणकी अन्य प्रकृति हैं ऐसैं अन्य जाननी। बहुरि यहांतैं लगाय पृथक्त्व शब्दका अर्थ संख्यात हजार जानना। या प्रकार इहां मोहकी तौ आठका नाश भएं तेरहका सत्त्व रह्या अर दर्शनावरणकी तीनका नाश भएं छहका सत्त्व रह्या अर नामकी तेरहका नाश भएं असी प्रकृति का सत्त्व रह्या। ज्ञानावरण वेदनीय गोत्र अंतरायनिविषैं किसी प्रकृतिका नाश न भया ॥४३०॥ आगैं देशघाति करण कहिए है—

ठिदिबंधपुधत्तगदे मणदाणा तत्तिये वि ओहिदुगं।
लाभं च पुणो वि सुदं अचक्खुभोगं पुणो चक्खु ॥४३१॥
पुणरवि मदिपरिभोगं पुणरवि विरयं कमेण अणुभागो।
बंधेण देसघादी पल्लासंखं तु ठिदिबंधो[1] ॥४३२॥

स्थितिबंधपृथक्त्वगते मनोदाने तावत्यपि अवधिद्विकम्।
लाभश्च पुनरपि श्रुतं अचक्षुभोगं पुनः चक्षुः ॥४३१॥
पुनरपि मतिपरिभोगं पुनरपि वीर्यं क्रमेण अनुभागः।
बंधेन देशघातिः पल्यासंख्यस्तु स्थितिबंधः ॥४३२॥

स० चं—मनःपर्यय आदि बारह प्रकृतिनिका पूर्वैं सर्वघाती द्विस्थानगत अनुभागबंध होता था इहांतैं परैं देशघाति दारु लतारूप द्विस्थानगत अनुभागबंध होने लगा सो देशघातीकरण है। सोई कहिए है—

सोलह प्रकृति संक्रमणतैं परैं पृथक्त्व संख्यात हजार स्थितिकांडक भएं मनःपर्यय ज्ञानावरण अर दानांतरायका बहुरि तितने स्थितिकांडक व्यतीत भएं अवधिज्ञानावरण अवधिदर्शना-

१. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण मणपज्जवणाणावरणीय-दाणंतराइयाणं च अणुभागो बंधेण देसघादी जादो। तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण ओहिणाणावरणीय-ओहिदंसणावरणीय-लाहंतराइयाणमणुभागो बंधेण देसघादी जादो। तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण सुदणाणावरणीय-अचक्खुदंसणावरणीयभोगन्तराइयाणमणुभागो बंधेण देसघादी जादो। तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण चक्खुदंसणावरणीयअणुभागो बंधेण देसघादी जादो। तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण आभिणिबोहियणाणावरणीयपरिभोगंतराइयाणमणुभागो बंधेण देसघादी जादो। तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण वीरियंतराइयस्स अणुभागो बंधेण देसघादी जादो। क० चु० पृ० ७५१–७५२।

वरण लाभांतरायका बहुरि तितने स्थितिकांडक भएं श्रुतज्ञानावरण अचक्षुदर्शनावरण भोगांतरायका बहुरि तितने स्थितिकांडक भएं चक्षुदर्शनावरणका बहुरि तितने स्थितिकांडक भएं मतिज्ञानावरण उपभोगांतरायका बहुरि तितने स्थितिकांडक भए वीर्यांतरायका अनुभागबंध देशघाती हो है। पुरुषवेद संज्वलन कषायका पूर्वें संयतासंयत आदि विषैं ही देशघाती अनुभागबंध भया तातैं इहां न कह्या। इस अवसर विषैं स्थितिबंध यथासंभव पल्यका असंख्यातवां भागमात्र ही जानना ॥४३१–४३२॥ आगे अंतरकरण कहिए है –

ठिदिखंडसहस्सगदे चदुसंजलणाण णोकसायाणं।
एयट्ठिदिखंडुक्कीरणकाले अंतरं कुणइ ॥४३३॥

स्थितिखंडसहस्रगते चतुःसंज्वलनानां नोकषायाणां।
एकस्थितिखंडोत्कीरणकाले अंतरं करोति ॥४३३॥

स० चं०—देशघातीकरणतैं परैं संख्यात हजार स्थितिकांडक भए च्यारि संज्वलन अर नव नोकषाय इनका अतर करै है। औरनिका अंतर न हो है। नीचले ऊपरले निषेकनिकौं छोडि अतर्मुहूर्तमात्र वीचिके निषेकनिका अभाव करना सो अंतर करना जानना। तहां अंतरकरणकालका प्रथम समयविषैं पूर्वतैं अन्य प्रमाण लीए स्थितिकांडक अनुभाग कांडक स्थितिबध हो है। बहुरि एक स्थितिकांडकोत्करणका जितना काल तितने काल करि अंतरकौं पूर्ण करै है। इस कालके प्रथमादि समयनिविषैं तिन निषेकनिका द्रव्यकौं अन्य निषेकनिविषै निक्षेपण करै है ॥४३३॥

संजलणाणं एक्कं वेदाणेक्कं उदेदि तद्दोण्हं।
सेसाणं पढमट्ठिदिं ठवेदि अंतोमुहुत्तआवलियं[2] ॥४३४॥

संज्वलनानामेकं वेदानामेकमुदेति तद्द्वयोः।
शेषाणां प्रथमस्थितिं स्थापयति अंतर्मुहूर्तमावलिकां ॥४३४॥

स० चं०—संज्वलनचतुष्कविषैं कोई एक अर तीनों वेदनिविषैं कोई एक ऐसैं उदयरूप दोय प्रकृतिनिकी तौ अंतर्मुहूर्तमात्र प्रथम स्थिति स्थापै है। इन विना जिनका उदय न पाइए ऐसी ग्यारह प्रकृतिनिकी आवलीमात्र प्रथम स्थिति स्थापै है। जैसैं पुरुषवेद अर क्रोधका उदय सहित श्रेणी माडी ताकैं इनि दोऊनिकी तौ अंतर्मुहूर्तमात्र औरनिकी आवलीमात्र प्रथम स्थिति स्थापै है सो वर्तमान समयसंबंधी निषेकतैं लगाय प्रथम स्थिति प्रमाण निषेकनिकौं नीचैं छोडि इनके ऊपरि निषेकनिका अंतर करै है ॥४३४॥

---

१. तदो ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु अण्णं ट्ठिदिखंडयमण्णमणुभागखंडयमण्णो ट्ठिदिबंधो अंतरट्ठिदीओ च उक्कीरिदुं चत्तारि वि एदाणि करणाणि समगमाढत्तो। चउण्हं संजलणाणं णवण्हं णोकसायवेदणीयाणमेदेसिं तेरसण्हं कम्माणमंतरं। सेसाणं कम्माणं णत्थि अंतरं। क० चु० पृ० ७५२।

२. पुरिसवेदस्स च कोहसंजलणाणं च पढमट्ठिदिमंतोमुहुत्तमेत्तं मोत्तूणमंतरं करेदि। सेसाणं कम्माणमावलियं मोत्तूण अंतरं करेदि। क० चु० पृ० ७५२।

विशेष—भाववेदकी अपेक्षा तीनों वेदोंमेंसे किसी एक वेदसे और चार संज्वलन कषायोंमें से किसी एक कषायसे यह जीव क्षपकश्रेणिपर चढ़नेका अधिकारी है। आगममें भावभेदकी अपेक्षा ही गुणस्थान प्ररूपणा हुई है। कर्मशास्त्रमें बन्ध, उदय और सत्त्वकी प्ररूपणा भी इसी अपेक्षासे की गई है। द्रव्यवेदका आगममें स्थान उत्तरकालीन टीकादि ग्रन्थोंमें ही दृष्टिगोचर होता है। वस्तुतः जीवस्थानमें जीवोंकी मार्गणा, गुणस्थान और जीवसमासरूप जो विविध अवस्थाएं होती हैं उन्हींको प्ररूपणा की गई है। द्रव्यवेद शरीरसम्बन्धी आंगोपांगोंके अन्तर्गत आता है और आंगोपांग पुद्गलविपाकी आंगोपांग नामकर्मके उदयको निमित्त कर प्राप्त होता है, इसलिये द्रव्यवेदकी जीव भेदोंमें गणना होना सम्भव ही नहीं है। (१) वेदोंका अभाव नौवें गुणस्थानमें हो जाता है, पर आंगोपांग शरीरस्थितिके अन्त तक १४वें गुणस्थान तक और आंगोपांग नामकर्मके उदयकी अपेक्षा १३वें गुणस्थान तक देखे जाते हैं। (२) एकेन्द्रिय जीवोंके आंगोपांग नहीं होने पर नपुंसकवेद होता है। तथा (३) आगममें मनुष्यपदसे पुरुषवेद और नपुंसकवेदवाले मनुष्य जीव लिये गये हैं तथा मनुष्यिनी पदसे स्त्रीवेदके उदयवाले जीव ही लिये गये हैं और वेदनोकषाय जीवविपाकी कर्म है, वेदमार्गणामें पुद्गलविपाकी आंगोपांगका ग्रहण नहीं हुआ है। इन सब हेतुओंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि आगममें सर्वत्र नोआगम भावनिक्षेपके अन्तर्गत भाववेद ही लिये गये हैं, द्रव्यवेद नहीं, क्योंकि जीवोंको द्रव्यवेदी कहना यह उपचरित कथन है परमार्थरूप नहीं। शेष कथन सुगम है।

उक्कीरिदं दु दव्वं संते पढमट्ठिदिम्हि संछुहदि।
बंधे वि य आबाधमदिच्छिय उक्कड्डदे णियमा ॥४३५॥

अपकर्षितं तु द्रव्यं सत्त्वे प्रथमस्थितौ संस्थापयति।
बंधेऽपि च आबाधामतिक्रम्योत्कर्षति नियमात् ॥४३५॥

स० चं०—तिनि अतररूप निषेकनिके द्रव्यकौं अंतरकरण कालका प्रथम समयविषैं ग्रह्या सो प्रथम फालि यातैं असख्यातगुणा दूसरे समय ग्रह्या सो द्वितीय फालि ऐसैं असंख्यातगुणा क्रम लीएं अंतर्मुहूर्तमात्र फालिनिकरि सर्व द्रव्य अन्य निषेकनिविषैं निक्षेपण करै है। अंतररूप निषेकनिविषैं नाही निक्षेपण करै है। कहां निक्षेपण करिए सो कहिए है—

बंध उदय रहित वा केवल बंध सहित उदय रहित जे प्रकृति तिनिकी प्रथम स्थिति समय घाटि आवलीमात्र कही, तिनके द्रव्यकौं अपकर्षण करि उदयरूप अन्य प्रकृतिनिकी प्रथम स्थितिविषैं संक्रमणरूप करि निक्षेपण करै है। अर बंध उदय रहित प्रकृतिनिका द्रव्यकौं अपनी द्वितीय स्थितिविषैं नाहीं निक्षेपण करै है जातै बंध विना उत्कर्षण होना संभवै नाहीं। बहुरि केवल बंध सहित प्रकृतिनिका द्रव्यकौं उत्कर्षण करि अपना द्वितीयस्थितिविषैं निक्षेपण करै हैं वा बंधती जो अन्य प्रकृति ताकी द्वितीय स्थितिविषैं संक्रमणरूप करि निक्षेपण करै है। बहुरि जे प्रकृति केवल

१. जाओ अंतरट्ठिदीओ उक्कीरंति तासिं पदेसग्गमुक्कीरमाणियासु ट्ठिदीसु ण दिज्जदि। जासिं पयडीणं पढमट्ठिदी अत्थि तिस्से पढमट्ठिदीए जाओ संपहि ट्ठिदीओ उक्कीरंति तमुक्कीरमाणगं पदेसग्गं संछुहदि। अथ जाओ बज्झंति पयडीओ तासिमाबाहामधिच्छिदूण जा जहण्णिया णिसेगट्ठिदी तमादिं कादूण बज्झमाणियासु ट्ठिदीसु उक्कड्डिज्जदे। क० चु० पृ० ७५२।

उदय सहित हैं वा बंध उदय सहित हैं तिनकी प्रथम स्थिति अंतर्मुहूर्तमात्र कही तिनविषैं जे केवल उदय सहित ही हैं तिनका द्रव्यकौं अपकर्षण करि अपनी प्रथम स्थितिविषैं निक्षेपण करै है। अन्य प्रकृतिनिका भी द्रव्य इनकी प्रथम स्थितिविषैं संक्रमणरूप निक्षेपण करिए है। बहुरि इनका द्रव्य है सो उत्कर्षण करि बंधती जे अन्य प्रकृति तिनकी अंतरायामतैं संख्यातगुणा जो आबाधा ताकौं छोडि द्वितीय स्थितिविषैं जो जघन्य निषेक तीहिंस्यों लगाय बंधती स्थितिके सर्व निषेकनिविषैं निक्षेपण करिए है। केवल उदयमान प्रकृतिनिका द्रव्य अपनी द्वितीय स्थिति विषैं नाही निक्षेपण करिए है। बहुरि बध उदय सहित प्रकृतिनके द्रव्यकौं प्रथम स्थितिविषै वा बंधती द्वितीय स्थितिनिविषैं निक्षेपण करिए है।

इहां अंतरायामके नीचैं निषेकरूप तौ प्रथम स्थिति अर अंतरायामके उपरिवर्ती निषेकरूप द्वितीय स्थिति जाननी। तहां छह तो नोकषाय अर पुरुषवेद सहित श्रेणी चढ्याकैं तौ अन्य दोय वेद अर स्त्रीवेद सहित श्रेणी चढ्याकैं नपुंसकवेद अर नपुंसकवेद सहित श्रेणी चढ्याकैं स्त्रीवेद ए तौ बंध उदयरहित हैं। बहुरि स्त्री वा नपुंसकवेद सहित श्रेणी चढ्याकैं पुरुषवेद है सो अर सबनिकैं जिस कषाय सहित श्रेणी चढ्या तींहि विना तीन संज्वलन कषाय ए उदय रहित केवल बंध सहित हैं। बहुरि स्त्री वा नपुंसकवेद सहित चढ्या जीवकैं स्त्री वा नपुंसक वेद केवल उदय सहित है बहुरि पुरुष वेद सहित श्रेणी चढ्याकैं पुरुषवेद अर सबनिकै जिस कषाय सहित श्रेणी चढ्या सो कषाय ए बंध उदय सहित हैं। सो इनका अंतररूप निषेकनिका द्रव्यकौं पूर्वोक्त प्रकार सत्त्वविषै अपकर्षण करि तौ प्रथम स्थितिविषैं अर उत्कर्षण कीएं आबाधा छोडि बंधरूप स्थितिविषैं निक्षेपण करिए है। इस अंतरकरण कालविषैं अनुभागकांडक हजारौं हो हैं। अर स्थितिकांडक अर समान स्थितिबंध अर अंतरकरण इन तीनौंका काल समान है तातैं युगपत समाप्त हो हैं ॥४३५॥

विशेष—प्रकृतमें हिन्दी टीकाकार पण्डित प्रवर पं० टोडरमलजी सा० ने पर्याप्त प्रकाश डाल ही दिया है। यहाँ इतना बतला देना आवश्यक प्रतीत होता है कि बन्धकी अपेक्षा तीनों वेदोंमें से यहाँ एक पुरुषवेदका ही बन्ध होता है, किन्तु जो जिस वेदके उदयसे क्षपकश्रेणि चढ़ता है, मात्र उसीका उदय रहता है। इसलिये पुरुषवेदके उदयसे श्रेणिपर चढ़े हुए जीवके पुरुषवेदकी अपेक्षा बन्ध और उदय दोनों पाये जाते हैं। हाँ अन्य दोनों वेदोंमेंसे किसी भी वेदकी अपेक्षा श्रेणिपर चढ़े हुए जीवके पुरुषवेदका मात्र बन्ध ही पाया जाता है। इसी प्रकार यथासम्भव चारों संज्वलन कषायोंकी अपेक्षा भी विचार कर लेना चाहिये। उक्त कषायोंमेंसे किसी भी कषायके उदयसे श्रेणि आरोहण करे तो भी यथास्थान बन्ध चारोंका होता है। इस प्रकार इन सब व्यवस्थाओंको ध्यानमें रखकर यहाँ अन्तरकरणसम्बन्धी अन्य व्यवस्थाएं घटित कर लेनी चाहिये। विशेष स्पष्टीकरण हिन्दी टीकामें किया ही है।

आगैं संक्रमण कहिए है—

सत्त करणाणि अंतरकदपढमे ताणि मोहणीयस्स।
इगिठाणियबंधुदओ तस्सेव य संखवस्सठिदिबंधो ॥४३६॥

तस्साणुपुव्विसंकम लोहस्स असंकमं च संढस्स।
आजुत्तकरणसंकम छावलितीदेसुदीरणदा[1] ॥४३७॥

---

१. ताधे चेव णवुंसयवेदस्स आजुत्तकरणसंकामगो, मोहाणीयस्स संखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो, मोहणी-

सप्तकरणानि अंतरकृतप्रथमे तानि मोहनीयस्य ।
एकस्थानिकबंधोदयौ तस्यैव च संख्यवर्षस्थितिबंधः ॥४३६॥
तस्यानुपूर्विसंक्रमं लोभस्यासंक्रमं च षंढस्य ।
आयुक्तकरणसंक्रमं षडावल्यतीतेषूदीरणता ॥४३७॥

स० चं०—अंतर जानैं कीया ऐसा अंतरकृत जीव ताकैं प्रथम समयविषै सात करणनिका प्रारम्भ भया । ते कहिए है—

मोहनीयका बंध उदय हैं सो दारुपना छोडि केवल लतारूप एक स्थानगत भए ए दोय करण, बहुरि तीस ही मोहनीयका स्थितिबन्ध पल्यका असंख्यातवां भाग प्रमाणतैं घटि संख्यात वर्षमात्र भया •एक यहु करण, बहुरि मोह प्रकृतिनिका पूर्वैं जहाँ तहाँ स्वजातीय प्रकृतिनिविषै संक्रमण होता था अब आगैं कहिए है तैसैं आनुपूर्वी संक्रमण होइ अन्यथा न होइ एक यहु करण, बहुरि पूर्वैं लोभका अन्य प्रकृतिनिविषै संक्रमण होता था अब न होइ एक यहु करण, बहुरि नपुंसकवेदका आयुत्तकरण संक्रमण भया याकौं अन्य प्रकृतिरूप परिणमाइ नाश करनेका उद्यमी भया एक यहु करण, बहुरि पूर्वैं कर्मबन्ध पीछैं आवली व्यतीत भए ही उदीरणा होती थी अब छह आवली व्यतीत भए पीछैं ही उदीरणा होइ यहु एक करण, इन सात करणनिका अंतर करने के अनंतर समयविषै युगपत् प्रारम्भ भया ॥४३६–४३७॥

संछुहदि पुरिसवेदे इत्थीवेदं णउंसयं चेव ।
सत्तेव णोकसाए णियमा कोहम्हि संछुहदि[1] ॥४३८॥
कोहं च छुहदि माणे माणं मायाए णियमसा छुहदि ।
मायं च छुहदि लोहे पडिलोमो संकमो णत्थि[2] ॥४३९॥

संक्रामति पुरुषवेदे स्त्रीवेदं नपुंसकं चैव ।
सप्तैव नोकषायान् नियमात् क्रोधे संक्रामति ॥४३८॥
क्रोधश्च क्रामति माने मानो मायायां नियमेन संक्रामति ।
माया च क्रामति लोभे प्रतिलोमः संक्रमो नास्ति ॥४३९॥

स० चं०—स्त्रीवेद अर नपुंसकवेदका द्रव्य तौ पुरुषवेदविषै संक्रमण करै है । पुरुषवेद छह हास्यादि ऐसैं सात नोकषायनिका द्रव्य संज्वलन क्रोधविषै संक्रमण करै है । क्रोधका द्रव्य मानविषै संक्रमण करै है । मानका द्रव्य मायाविषै संक्रमण करै है । मायाका द्रव्य लोभविषै संक्रमण करै है ऐसैं संक्रमणकरि अन्यरूप परिणमि आप नाशकौं प्राप्त हो है यहु आनुपूर्वी संक्रमण

यस्स एगट्ठाणिया बंधोदया, जाणि कम्माणि बज्झंति तेसिं छसु आवलियासु गदासु उदीरणा, मोहणीयस्स आणुपुव्वीसंकमो, लोहसंजलणस्स असंकमो एदाणि सत्त करणाणि अंतरदूसमयकदे आरद्धाणि ।

क० चु० पृ० ७५३ ।

१. क० गा० १३८ । २. क० गा० १३९ ।

जानना। प्रतिलोम कहिए अन्यथा प्रकार संक्रमण अब न हो है। इहांतैं आगैं स्थितिबंधतैं संख्यातगुणा घाटि स्थितिबंधापसरणका प्रमाण मोहनीयका भया जातैं सख्यात वर्ष स्थितिबंध होनेतैं परैं स्थितिबन्धापसरणका प्रमाण स्थितिबन्धतैं संख्यातगुणा घटता हो है। अर बत्तीस वर्षमात्र स्थितिबन्ध भए पीछै स्थितिबन्धापसरणका प्रमाण अन्तर्मुहूर्तमात्र हो है ऐसी व्याप्ति सर्वत्र जाननी ॥४३ -४३९॥

विशेष—पहले जो सात करणोंका निर्देश किया है उनमें एक आनुपूर्वी संक्रमण भी है। उसीके अनुसार यहाँ बतलाया गया है कि नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका पुरुषवेदमें संक्रम होता है, पुरुष वेदसहित सात नोकषायोंका क्रोधसंज्वलनमें, क्रोधसंज्वलनका मानसंज्वलनमें, मानसंज्वलन का मायासंज्वलनमें और मायासंज्वलनका लोभसंज्वलनमें संक्रम होता है। तथा लोभ-संज्वलनका स्वमुखसे ही क्षय होता है। नपुंसकवेद और स्त्रीवेदके संक्रमके समयसे लेकर प्रतिलोम संक्रम नहीं होता।

ठिदिबंधसहस्सगदे संढो संकामिदो हवे पुरिसे।
पडिसमयमसंखगुणं संकामगचरिमसमओ त्ति[1] ॥४४०॥

स्थितिबंधसहस्रगते षंढः संक्रामितो भवेत् पुरुषे।
प्रतिसमयमसंख्यगुणं संक्रामकचरमसमय इति ॥४४०॥

स० चं—अंतरकरणके अनंतर समयतैं लगाय संख्यात हजार स्थितिबंध व्यतीत भएं नपुंसकवेद है सो पुरुषवेदविषै संक्रमित हो है। नपुंसकवेदकी क्षपणाका प्रथम समयतैं लगाय समय समय प्रति असंख्यातगुणा क्रम लीएं संक्रमकालका अंतसमयविषै नपुंसकवेदके द्रव्यका पुरुषवेदविषै संक्रमण हो है। सो ऐसैं गुणसंक्रमणरूप अनुक्रमतैं संख्यात हजार कांडक भएं अंत-समयविषै जो अंत कांडककी अंत फालि ताकौं सर्व संक्रमणकरि संक्रमावै है। ऐसैं नपुंसकवेदको पुरुषवेदरूप परिणमाइ नाशकौं प्राप्त करै है। ऐसा अर्थ स्त्रीवेदकी क्षपणा आदिविषै भी जोडना ॥४४०॥

बंधेण होदि उदओ अहिओ उदएण संकमो अहिओ।
गुणसेढी असंखेज्जापदेसअग्गेण बोधव्वा[2] ॥४४१॥

बंधेन भवति उदयः अधिक उदयेन संक्रमोऽधिकः।
गुणश्रेणिरसंख्येयप्रदेशांगेन बोद्धव्या ॥४४१॥

स० चं—नपुंसकवेदका संक्रमण कालविषै पुरुषवेदका बंध द्रव्यतैं उदय द्रव्य अधिक है अर उदय द्रव्यकरि संक्रमण द्रव्य अधिक है सो अधिकता असंख्यात प्रदेशसमूहकरि गुणश्रेणि कहिए गुणकारकी पंक्ति तिसरूप जाननी। भावार्थ-इहां पुरुषवेदका जितने प्रदेशनिका बंध हो है तातैं असंख्यातगुणा अधिक ताके प्रदेशनिका उदय हो है। अर तातैं असंख्यातगुणा अधिक प्रदेशनिका तहां संक्रमण हो है। सोई कहिए है—

१. तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु णवुंसयवेदो संकामिज्जमाणो संकामिदो। क० चु० पृ० ७५३।

२. क० पा० गा० १४४, क० पृ० ७६९।

प्रदेश शब्दकरि परमाणूरूप द्रव्य जानना सो इहां समयप्रबद्ध बंधै है, तीहिंकौं सातका भाग दीएं मोहका द्रव्य होइ, ताकौं कषाय नोकषायका भागके अर्थि दोयका भाग दीएं पुरुष-वेदका द्रव्य होइ सो इतना तौ प्रदेशनिका बंध हो है। बहुरि सर्व सत्तारूप पुरुषवेदका द्रव्यविषै गुणश्रेण्यादिकरि दीया द्रव्य सहित इस समयविषै उदय आवने योग्य निषेकका द्रव्य जेता होइ तितने प्रदेशनिका उदय हो है, ते ए बंध प्रदेशनितैं असंख्यातगुणे हैं। बहुरि नपुंसकवेदका सर्व द्रव्यकौं गुणसंक्रमका भाग दीएं जो प्रमाण आवै तितने नपुंसकवेदके पुरुषवेदविषै संक्रमण हो है। ते ए उदय प्रदेशनितैं असंख्यातगुणे जानने। ऐसैं अल्पबहुत्व कहनेकरि गुणसंक्रमण द्रव्यका प्रमाण जानिए है ॥४४१॥

विशेष—यहाँ बन्ध, उदय और संक्रमके माध्यमसे प्रदेशविषयक अल्पबहुत्वका निर्देश किया गया है। आशय यह है कि प्रकृतमें पुरुषवेद आदि जिस किसी भी कर्मका बन्ध होता है वह प्रत्येक एक समय प्रबद्धमात्र होनेसे उदयमें आनेवाले प्रदेशोंकी अपेक्षा सबसे कम है, क्योंकि यहाँ विवक्षित कर्मके जितने कर्मपुंजका बन्ध होता है उससे उदयमें आनेवाला कर्मपुंज असंख्यात गुणा होता है, क्योंकि आयुकर्मको छोड़कर वेद्यमान किसी भी कर्मका उदय गुणश्रेणिगोपुच्छा के माहात्म्यसे असंख्यातगुणा होता है। इसी प्रकार उसी कर्मके उदयरूप प्रदेशोंकी अपेक्षा संक्रम-रूप प्रदेशपुंज असंख्यातगुणा होता है, क्योंकि जिन कर्मोंका गुणसंक्रम होता है उन कर्मोंका गुणसंक्रम द्रव्य और जिन कर्मोंका अधःप्रवृत्त संक्रम होता है उनका अधःप्रवृत्त संक्रम द्रव्य असंख्यात समयप्रबद्ध प्रमाण होनेसे वह उदयमें आनेवाले द्रव्यकी अपेक्षा असंख्यातगुणा होता है। यहाँ शंका होती है कि जिन कर्मोंका गुणसंक्रम होता है उनका गुणसंक्रम द्रव्य उसी समयमें उदयमें आनेवाले द्रव्यसे असंख्यातगुणा होओ, क्योंकि गुणसंक्रमभागहारसे अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारके असंख्यातगुणा होनेकी अपेक्षा उदय द्रव्यसे गुणसंक्रम भागहारसे संक्रमको प्राप्त हुए द्रव्यके उस प्रकारके होनेमें कोई बाधा नहीं आती। परन्तु उदयगत गुणश्रेणि गोपुच्छा द्रव्यसे अधःप्रवृत्त संक्रमद्रव्य असंख्यातगुणा होता है यह व्यवस्था नहीं बनती, क्योंकि सर्वत्र अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारसे अधःप्रवृत्त भागहार असंख्यातगुणा देखा जाता है? समाधान यह है कि सर्वत्र अपकर्षित सम्पूर्ण द्रव्य गुणश्रेणि द्वारा ही निक्षिप्त होता है, क्योंकि उसके असंख्यातवें भाग का ही वहाँ निक्षेप देखा जाता है, इसलिये उस भागहारके माहात्म्यवश उदय द्रव्यसे संक्रमको प्राप्त हुआ द्रव्य असंख्यातगुणा बन जाता है।

गुणसेढिअसंखेज्जा पदेसअग्गेण संकमो उदओ।
से काले से काले भज्जो बंधो पदेसग्गे[1] ॥४४२॥

गुणश्रेण्यसंख्येयप्रदेशांगेन संक्रम उदयः।
स्वे काले स्वे काले योग्यो बंधः प्रदेशांगः ॥४४२॥

स० चं—अपने कालविषै स्वस्थान अपेक्षा संक्रमतैं संक्रम अर उदयतैं उदय है सो प्रदेश अपेक्षाकरि असंख्यातरूप गुणकारकी पंक्ति लीएं है। भावार्थ—नपुंसकवेद क्षपणा कालविषै प्रथम समयविषै जेते नपुंसकवेदके प्रदेशनिका पुरुषवेदविषै संक्रमण हो है, तातैं दूसरा समयविषैं असंख्यातगुणा हो है। तातैं तीसरा समयविषै असंख्यातगुणा हो है, ऐसैं अन्त समय पर्यंत जानना।

१. क० पा० गा० १४९, पृ० ७७२।

बहुरि अपना पुरुषवेदका उदय कालविषैं प्रथम समयविषै जितने पुरुषवेदके प्रदेशनिका उदय हो है तातैं दूसरे समय असंख्यातगुणा तातैं तीसरे समय असंख्यातगुणा ऐसैं अन्त समय पर्यंत जानना। बहुरि अपने पुरुषवेदका बन्धकालविषैं प्रदेशरूप बन्ध है सो भजनीय है। जातैं प्रदेशबन्ध है सो योगनिके अनुसारि है तातैं प्रथमादि समयतैं द्वितीयादि समयनिविषैं पुरुषवेदका बन्ध कदाचित् संख्यातवें भागि असंख्यातवें भागि संख्यातगुणा असंख्यातगुणा बन्धता, कदाचित् ऐसैं ही घटता कदाचित् जितनेका तितने अवस्थितरूप पुरुषवेदके प्रदेशबन्ध इहां हो हैं ॥४४१॥ इन अठाईस गाथानिका अर्थरूप व्याख्यान क्षपणासारविषै नाहीं लिख्या। इहां मोकूं प्रतिभास्या तैसैं लिख्या है।

विशेष—इसका चूर्णिसूत्रों और जयधवला टीका द्वारा इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है—विवक्षित्त समयमें प्रदेशोदय अल्प होता है, अनन्तर समयमें असंख्यातगुणा होता है। इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिये। संक्रमकी प्ररूपणा उदयकी प्ररूपणाके समान ही है। मात्र योगोंकी चार प्रकारकी हानि, चार प्रकारकी वृद्धि और अवस्थानके कारण प्रदेशबन्ध चार प्रकारकी वृद्धि, चार प्रकार हानि और अवस्थानकी अपेक्षा भजनीय है। यह व्यवस्था केवल पुरुषवेदके विषयमें ही नहीं है, क्रोधसंज्वलन आदिके विषयमें भी जाननी चाहिये। मात्र यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि जिन कर्मोंका गुणसंक्रम होता है उनकी अपेक्षा प्रथमादि समयोंके संक्रम द्रव्य से द्वितीयादि समयोंका संक्रम द्रव्य उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा घटित हो जाता है। किन्तु जिन कर्मोंका अधःप्रवृत्त संक्रम होता है उनका संक्रम द्रव्य उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा नहीं घटित होकर कभी विशेष अधिक द्रव्यका संक्रम होता है और कभी विशेष हीन द्रव्यका संक्रम होता है ऐसा यहाँ समझना चाहिये।

इदि संढं संकामिय से काले इत्थिवेदसंकमगो।
अण्णं ठिदिरसखंडं अण्णं ठिदिबंधमारभइ[1] ॥४४३॥

इति षंढं संक्राम्य स्वे काले स्त्रीवेदसंक्रमकः।
अन्यस्थितिरसखंडमन्यं स्थितिबंधमारभते ॥४४३॥

स० चं—ऐसैं नपुंसकवेदका संक्रमणकरि अपने कालविषै स्त्रीवेदका सक्रमक कहिए पुरुषवेदविषै संक्रमणकरि क्षपणा करनेवाला हो है। तहां प्रथम समयविषै पूर्वतैं अन्यप्रमाण धरैं स्थितिकांडक अनुभागकांडक स्थितिबन्धकौं प्रारंभै है ॥४४२॥

थीअद्धासंखेज्जाभागेपगदे तिघादिठिदिबंधो।
वस्साणं संखेज्जं थीसंकंतापगद्धंते ॥४४४॥

---

१. तदो से काले इत्थिवेदस्स पढमसमयसंकामगो। ताधे अण्णं ट्ठिदिखंडयमण्णमणुभागखंडयमण्णो ट्ठिदिबंधो च आरद्धाणि। क० चु० पृ० ७५३।

२. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण इत्थिवेदक्खवणद्धाए संखेज्जदिभागे गदे णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं तिण्हं घादिकम्माणं संखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो। तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण इत्थिवेदस्स जं ट्ठिदिसंतकम्मं तं सव्वमागाइदं सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मस्स असंखेज्जा भागा आगाइदा। तम्हि ट्ठिदिखंडए पुण्णे इत्थिवेदो संछुब्भमाणो संछुद्धो। क० चु० पृ० ७५३–७५४।

स्त्रीअद्धासंख्येयभागेऽपगते त्रिघातिस्थितिबंधः ।
वर्षाणां संख्येयं स्त्रीसंक्रमापगतार्धान्ते ॥४४४॥

स० चं—तहां संख्यात हजार स्थितिकांडकनिकरि स्त्रीवेद क्षपणा कालका संख्यातवां भाग व्यतीत भए ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतराय इन तीन घातियानिका स्थितिबन्ध पल्यका असंख्यातवां भागमात्र होता था ताकौं समाप्तकरि संख्यात हजार वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध करै है। तातैं परैं संख्यात हजार स्थितिकांडक व्यतीत भए स्त्रीवेद क्षपणा कालके अवशेष बहुभाग व्यतीत भए जो घात कीए पीछैं स्त्रीवेदका स्थितिसत्त्व अवशेष पल्यका असंख्यातवां भागमात्र रह्या ताकौं अंत स्थिति कांडकरूप करै है तिस ही काल विषैं अवशेष कर्मनिका स्थितिकांडकका पल्यका असंख्यातवां भागमात्र स्थितिसत्त्वके असंख्यातवें भागमात्र था सो ताका असंख्यात भागमात्र आयाम धरैं है, तहां अंत कांडककौं सम्पूर्ण भए स्त्रीवेद भी संक्रमणरूप भया। द्वितीय स्थितिविषै तिष्ठता ऐसा पल्यका असंख्यातवां भागमात्र आयाम धरैं जो अन्त स्थितिकांडक ताकी अन्त फालिकौं पुरुषवेदविषै संक्रमणकरि स्त्रीवेदकी सत्ताका नाश करै है ॥४४४॥

ताहे संखसहस्सं वस्साणं मोहणीयठिदिसंतं ।
से काले संकमगो सत्तण्हं णोकसायाणं[1] ॥४४५॥

तस्मिन् (अ) संख्यसहस्रं वर्षाणां मोहनीयस्थितिसत्त्वम् ।
स्वे काले संक्रमकः सप्तानां नोकषायाणाम् ॥४४५॥

स० चं—तहां स्त्रीवेद क्षपणाकालका अंतविषै मोहनीयका स्थितिसत्व असंख्यात वर्ष प्रमाण हो है। बहुरि ताके अनंतरि अपने कालविषैं सात नोकषायनिका संक्रमक कहिए संज्वलन क्रोधरूप परणमाइ नाश करणहारा हो है ॥४४५॥

ताहे मोहो थोवो संखेज्जगुणं तिघादिठिदिबंधो ।
तत्तो संखगुणियो णामदुगं साहियं तु वेयणियं[2] ॥४४६ ॥

तत्र मोहः स्तोकः संख्येयगुणं त्रिघातिस्थितिबन्धः ।
ततोऽसंख्येयगुणितो नामद्विकं साधिकं तु वेदनीयम् ॥४४६॥

स० चं०—तहां प्रथम समयविषै मोहका स्तोक तातैं तीन घातियानिका संख्यातगुणा बहुरि तातैं नाम गोत्रका पल्यका असंख्यातवां भागमात्र है तातैं बहुरि असंख्यातगुणा तातैं वेदनीयका त्रैराशिकतैं आधा प्रमाणकरि साधिक स्थितिबंध हो है ॥४४६॥

---

१. ताधे चेव मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्साणि । से काले सत्तण्हं णोकसायाणं पढमसमयसंकामगो । क० चु० पृ० ७५४ ।

२. सत्तण्हं णोकसायाणं पढमसमयसंकामगस्स ट्ठिदिबंधो मोहणीयस्स थोवो । णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ । क० चु० पृ० ७५४ ।

ताहे असंखगुणियं मोहादु तिघादिपयडिठिदिसंतं ।
तत्तो असंखगुणियं णामदुगं साहियं तु वेयणियं[1] ॥४४७॥

तस्मिन् असंख्यगुणितं मोहात् त्रिघातिप्रकृतिस्थितिसत्त्वम् ।
ततोऽसंख्यगुणितं नामद्विकं साधिकं तु वेदनीयं ॥४४७॥

स० चं—तहां ही प्रथम समयविषै संख्यात वर्षमात्र मोहका स्थितिसत्त्व स्तोक है। तातैं असंख्यातगुणा तीन घातियानिका स्थितिसत्त्व पल्यका असंख्यातवां भागमात्र है। तातैं असंख्यातगुणा नाम गोत्रका स्थितिसत्त्व है। तातैं साधिक वेदनीयका स्थितिसत्त्व है। क्रमकरणके अल्पबहुत्वका अनुक्रम इहां पर्यंत भी प्रवर्तै है। ऐसा जानना ॥४४७॥

सत्तण्हं पढमट्ठिदिखंडे पुण्णे दु मोहठिदिसंतं ।
संखेज्जगुणविहीणं सेसाणमसंखगुणहीणं[2] ॥४४८॥

सप्तानां प्रथमस्थितिखंडे पूर्णे तु मोहस्थितिसत्त्वं ।
संख्येयगुणविहीनं शेषाणामसंख्यगुणहीनम् ॥४४८॥

स० चं०—सात नोकषायनिका पहिला स्थितिकांडककौं पूर्ण भए पूर्व स्थिति सत्त्वतैं मोहका तौ स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा घटता भया, जातैं संख्यात वर्ष स्थितिसत्त्व होनेतैं स्थिति कांडक आयाम पूर्वस्थिति सत्त्वका संख्यात बहुभागमात्र है। बहुरि अवशेष कर्मनिका स्थितिसत्त्व पूर्व स्थिति सत्त्वतैं असंख्यातगुणा घटता भया, जातैं पल्यका असंख्यातवां भागमात्र स्थितिसत्त्व होनेतैं स्थितिकांडक आयाम पूर्वस्थिति सत्त्वके असंख्यात बहुभागमात्र है ॥४४८॥

सत्तण्हं पढमट्ठिदिखंडे पुण्णे ति घादिठिदिबंधो ।
संखेज्जगुणविहीणं अघादितियाणं असंखगुणहीणं[3] ॥४४९॥

सप्तानां प्रथमस्थितिखंडे पूर्णे इति घातिस्थितिबन्धः ।
संख्येयगुणविहीनो अघातित्रयाणामसंख्यगुणहीनः ॥४४९॥

स० चं०—सात नोकषायनिका प्रथम स्थिति खंडकौं सम्पूर्ण होत संतैं पूर्व स्थितिबन्धतैं च्यारि घातिया कर्मनिका तौ संख्यातगुणा घटता अर तीन अघातियानिका असंख्यातगुणा घटता स्थितिबन्ध हो है, जातैं एक स्थितिबन्धापसरणकरि इतनी स्थितिका घटना संभवै है ॥४४९॥

---

१. ताहं ट्ठिदिसंतकम्मं मोहणीयस्स थोवं । तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं । णामागोदाणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणं । वेदणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं । क० चु० पृ० ७५४ ।

२. पढमट्ठिदिखंडए पुण्णे मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणहीणं । सेसाणं ट्ठिदिसंतकम्मं असंखेज्जगुणहीणं । क० चु० पृ० ७५४ ।

३. ट्ठिदिबंधो णामा-गोद-वेदणीयाणं असंखेज्जगुणहीणो । घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणहीणो । ७५४ ।

ठिदिबंधपुधत्तगदे संखेज्जदिमं गदं तदद्धाए ।
एत्थ अघादितियाणं ठिदिबंधो संखवस्सं तु ॥४५०॥

स्थितिबन्धपृथक्त्वगते संख्येयं गतं तदद्धायाम् ।
अत्र अघातित्रयाणां स्थितिबन्धः संख्यवर्षस्तु ॥४५०॥

स० चं०—तातैं परै पृथक्त्व कहिए संख्यात हजार स्थितिबन्ध गएं तिस सप्त नोकषाय क्षपण कालका संख्यातवां भाग व्यतीत भया तहां नाम गोत्र वेदनीय इन तीन अघातियानिका स्थितिबन्ध पल्यका असंख्यातवां भागपनाकौं छोडि संख्यात हजार वर्षमात्र हो है ॥४५०॥

ठिदिखंडपुधत्तगदे संखाभागा गदा तदद्धाए ।
घादितियाणं तत्थ य ठिदिसंतं संखवस्सं तु ॥४५१॥

स्थितिखंडपृथक्त्वगते संख्यभागा गता तदद्धायाः ।
घातित्रयाणां तत्र च स्थितिसत्त्वं संख्यवर्षं तु ॥४५१॥

स० चं०—तातैं परैं संख्यात हजार स्थितिकांडक गएं सात नोकषाय कालका संख्यात बहुभाग व्यतीत भएं एक भाग अवशेष रहैं तीन घातियानिका स्थितिसत्त्व संख्यात वर्षप्रमाण भया। तातैं आगे च्यारि घातियानिका स्थितिबन्ध अर स्थितिसत्त्व एक कांडककाल पर्यन्त समानरूप होइ। बहुरि केई स्थितिबन्ध अर स्थितिसत्त्व पूर्वतैं संख्यातगुणे घटते हो हैं, जातैं घातिकर्मनिका स्थितिबन्ध वा स्थितिसत्त्व संख्यात वर्षमात्र होनेतैं स्थितिबन्धापसरण वा स्थिति-कांडकका प्रमाण पूर्व स्थितिबंध वा स्थितसत्त्वतैं संख्यात बहुभाग मात्र है। बहुरि नाम गोत्र वेदनीयका स्थितिकांडक पूर्ण होतैं पूर्व स्थितिसत्त्वतैं असंख्यातगुणा घटता स्थितिसत्त्व हो है। अर इनका स्थितिबन्धापसरण पूर्ण होतैं पूर्व स्थितिबन्धतैं संख्यातगुणा घटता स्थितिबंध हो है ऐसा अनुक्रम सप्त नोकषाय क्षपणाकालका अन्त पर्यन्त जानना ॥४५१॥

विशेष—इस गाथाका पूरा आशय हिन्दी टीकामें पण्डित जी ने दिया ही है। विशेष स्पष्टीकरणकी दृष्टिसे पुनः दे रहे हैं—तदनन्तर स्थितिकाण्डक पृथक्त्वके व्यतीत होनेके साथ सात नोकषायोंके क्षपणाकालके संख्यात बहुभाग व्यतीत होनेपर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायका संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिसत्त्व हो जाता है। तदनन्तर घातिकर्मोंके स्थितिबन्ध और स्थितिकाण्डकके पुनः पुनः पूर्ण होनेपर स्थितिबन्ध और स्थितिसत्त्व उत्तरोत्तर संख्यात गुणा हीन होता जाता है। तथा नाम, गोत्र और वेदनीयका स्थितिकाण्डक पूर्ण होनेपर असंख्यात गुणा हीन स्थितिसत्त्व होता है। तथा इन्हींके स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर अन्य स्थितिबन्ध संख्यात

१. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्ते गदे सत्तण्हं णोकसायाणं खवणद्धाए संखेज्जदिभागे गदे णामा-गोद-वेदणीयाणं संखेजाणि ट्ठिदिबंधो। क० चु० पृ० ७५४।

२. तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्ते गदे सत्तण्हं णोकसायाणं खवणद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं संखेज्जवस्सट्ठिदिसतकम्मं जादं। क० चु० पृ० ७५४।

गुणा हीन होता है। इस क्रमसे सात नोकषायोंके संक्रामकके अन्तिम स्थितिबन्धके प्राप्त होने तक जानना चाहिये।

पडिसमयं असुहाणं रसबंधुदया अणंतगुणहीणा।
बंधो वि य उदयादो तदणंतरसमय उदयो थ ॥४५२॥

प्रतिसमयमशुभानां रसबन्धोदयौ अनन्तगुणहीनौ।
बन्धोपि च उदयात् तदनन्तरसमय उदयोऽथ ॥४५२॥

स० चं०—अशुभ प्रकृतिनिका अनुभागबन्ध अर अनुभागका उदय सो समय समय प्रति अनन्तगुणा घटता हो है। प्रथम समयतैं दूसरे समय दूसरा समयतैं तीसरे समय ऐसैं क्रमतैं अनुभागका बंध अर उदय अनन्तगुणा घटता इहां जानना। बहुरि पूर्व समयसंबंधी उदयतैं उत्तर समयका बंध भी अर अनन्तरवर्ती समयका उदय हो है सो अनंतगुणा घटता अनुभागरूप जानना ॥४५२॥

बंधेण होदि उदओ अहियो उदएण संकमो अहियो।
गुणसेढि अणंतगुणा बोधव्वा होदि अणुभागे[1] ॥४५३॥

बन्धेन भवति उदयोऽधिक उदयेन संक्रमोऽधिकः।
गुणश्रेणिरनन्तगुणा बोद्धव्या भवति अनुभागे ॥४५३॥

स० चं०—बंधकरि तो उदय अधिक कहिए है अर उदयकरि संक्रम अधिक है ऐसैं अनुभाग अनन्तगुणा गुणश्रेणी कहिए गुणकारकी पंक्ति जाननी। भावार्थ—विवक्षित एक समय विषैं अनुभागके बंधतैं अनन्तगुणा अनुभागका तौ उदय है अर तातैं अनंतगुणा अनुभागका संक्रम हो है ॥४५३॥

विशेष—यह अनुभागसम्बन्धी वन्ध, उदय और संक्रमविषयक अल्पबहुत्वको सूचित करने वाली गाथा है। नियम यह है कि प्रत्येक समयमें घातिकर्मोंका जितना अनुभागबन्ध होता है उससे उसी समय उन कर्मोंका अनुभागोदय अनन्तगुणा होता है, क्योंकि अनुभागोदयमें प्राचीन सत्तामें स्थित कर्मोंका अनुभाग विवक्षित है। यद्यपि अशुभ कर्मोंके अनुभागकी प्रति समय अनन्तगुणी हानि होती जाती है, फिर भी वह प्रत्येक समयमें प्रत्यग्रबन्धसे अनन्तगुणा होता है। तथा प्रत्येक समयके अनुभागोदयसे अनुभागसंक्रम अनन्तगुणा होता है, क्योंकि अनुभागसत्त्व प्रति समय अनन्तगुणा हीन होकर उदयको प्राप्त होता है, जबकि प्राचीन सत्त्व तदवस्थ रहकर ही पर प्रकृतिरूपसे संक्रमको प्राप्त होता है। घातिकर्मोंकी अपेक्षा यह अल्पबहुत्त्व कहा गया है, इसी प्रकार अघातिकर्मोंके विषयमें जानकर व्याख्यान करना चाहिये।

गुणसेढि अणंतगुणेणूणाए वेदगो दु अणुभागे।
गणणादिकंतसेढी पदेसअग्गेण बोघव्वा[2] ॥४५४॥

१. क० सु० १४३, पृ० ७६९। २. क० सु० गा० १४६, पृ० ७७०।

गुणश्रेणिरनन्तगुणेनोना च वेदकस्तु अनुभागः ।
गणनातिक्रांतश्रेणी प्रदेशाग्रेण बोद्धव्या ॥४५४॥

स० चं०—यद्यपि वेदक कहिए उदयरूप अनुभाग सो समय-समय प्रति अनंतगुणा घटतारूप गुणकार पंक्ति लीएं है तथापि प्रदेश अंशकरि गणनातिक्रांत कहिए असंख्यात गुणकारकी पंक्तिरूप जानना। भावार्थ—समय-समय प्रति अनुभागका उदय अनंतगुणा घटता है तथापि प्रदेश जे कर्मपरमाणू तिनका उदय समय-समय प्रति असंख्यातगुणा बंधता जानना ॥४५४॥

विशेष—यहाँ अप्रशस्त कर्मोंका अनुभागोदय और प्रदेशोदय विवक्षित है। उन कर्मोंका प्रति समय अनुभागोदय उत्तरोत्तर अनन्तगुणा हीन होता है और प्रदेशोदय प्रति समय उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा हीन होता है यह उक्त कथनका आशय है।

बंधोदएहिं णियमा अणुभागो होदि णंतगुणहीणो ।
से काले से काले भज्जो पुण संकमो होदि[1] ॥४५५॥

बन्धोदयाभ्यां नियमादनुभागो भवति अनन्तगुणहीनः ।
स्वे काले स्वे काले भाज्यः पुनः संक्रमो भवति ॥४५५॥

स० चं०—अपने कालविषै अनुभाग है सो बंध अर उदयकरि तौ समय-समय प्रति अणंतगुणा घटता हो है। बहुरि अपने कालविषै संक्रम है सो भजनीय हैं—घटनेका नियमकरि रहित है ॥४५५॥

विशेष—इस गाथा द्वारा कालकी अपेक्षा बन्ध, उदय और संक्रमके अल्पबहुत्वका निर्देश किया गया है। आशय यह है कि विशुद्धिके माहात्म्यवश प्रत्येक समयमें कर्मोंका जो अनुभागबन्ध होता है वह उत्तरोत्तर अनन्तगुणा हीन होता है। इसी प्रकार अनुभागोदय भी प्रत्येक समयमें अनन्तगुणा हीन होता है। किन्तु अनुभाग संक्रम भजनीय है। कारण कि जब तक एक अनुभाग काण्डकका पात होता रहता है तब तक अनुभागसंक्रम अवस्थितरूपसे होता है। पुनः तदनन्तर दूसरे अनुभाग काण्डकके पतनके समय वह अनन्तगुणा हीन हो जाता है। गाथा ४५६ में संक्रमको लक्ष्यमें रखकर स्पष्टीकरण किया गया है।

संकमणं तदवत्थं जाव दु अणुभागखंडयं पददि ।
अण्णाणुभागखंडे आढत्ते णंतगुणहीणं[2] ॥४५६॥

संक्रमणं तदवस्थं यावत्तु अनुभागखंडकं पतति ।
अन्यानुभागखंडे आरब्धे अनंतगुणहीनम् ॥४५६॥

१. क० सु० गा० १४८, पृ० ७७२।

२. संकमो पुण अणंतगुणहीणेण भयणिज्जो होइ। किं कारणं १ जाव अणुभागखंडयं ण पादेदि ताव अवट्ठिदो चेव संकमो भवदि। अणुभागखंडए पुण पदिदे अणुभागसंकमो अणंतगुणहीणो जायदि त्ति। जयध० प्रे० का० पृ० ६८५०।

स० चं०—जिस अनुभागकांडकविषै संक्रमण होइ तिस अनुभागकांडकका घात न होइ निवरै तावत् समय समय प्रति अवस्थित समानरूप ही अनुभागका संक्रमण हो है। बहुरि अन्य नवीन अनुभागकांडकका प्रारम्भ भए पूर्वतैं अनन्तगुणा घटता अनुभागका संक्रम हो है ॥४५६॥

इन पांच गाथानिका अर्थरूप व्याख्यान क्षपणासारविषै लिख्या नाहीं इहां जैसैं प्रतिभास्या तैसैंअर्थ लिख्या है। बुद्धिमान होइ सो स्पष्ट अर्थ जैसा होइ तैसा जानियो।

सत्तण्हं संकामगचरिमे पुरिसस्स बंधमडवस्सं।
सोलस संजलणाणं संखसहस्साणि सेसाणं[1] ॥४५७॥

सप्तानां संक्रामकचरमे पुरुषस्य बंधोऽष्टवर्षम्।
षोडश संज्वलनानां संख्यसहस्राणि शेषाणाम् ॥४५७॥

स० चं०—सात नोकषाय संक्रमक कालका अन्त समयविषै पुरुषवेदका अन्त स्थितिबंध अष्टवर्ष प्रमाण हो है। बहुरि संज्वलन चतुष्कका सोलह वर्षमात्र अवशेष मोह आयु विना छह कर्मनिका संख्यात हजार वर्षमात्र स्थितिबन्ध हो है ॥४५७॥

ठिदिसंतं घादीणं संखसहस्साणि होंति वस्साणं।
होंति अघादितियाणं वस्साणमसंखमेत्ताणि[2] ॥४५८॥

स्थितिसत्त्वं घातीनां संख्यसहस्राणि भवंति वर्षाणां।
भवंति अघातित्रयाणां वर्षाणामसंख्यमात्राणि ॥४५८॥

स० चं०—तहां ही स्थितिसत्व है सो च्यारि घातियानिका संख्यात हजार वर्षमात्र अर तीन अघातिनिका असंख्यात वर्षप्रमाण जानना ॥४५८॥

पुरिसस्स य पढमट्ठिदि आवलिदोसुवरिदासु आगाला।
पडिआगाला छिण्णा पडिआवलियादुदीरणदा[3] ॥४५९॥

पुरुषस्य च प्रथमस्थितौ आवलिद्वयोरुपरतयोरागालाः।
प्रत्यागालाः छिन्नाः प्रत्यावलिकाया उदीरणता ॥४५९॥

स० चं०—पुरुषवेदकी प्रथम स्थितिविषै आवली प्रत्यावली ए दोय उवरैं अवशेष रहैं आगाल प्रत्यागाल नष्ट भए। द्वितीय स्थितिविषै तिष्ठते परमाणूनिकौं अपकर्ष वशतैं प्रथम स्थिति

---

१. सत्तण्हं णोकसायाणं संकामयस्स चरिमो ठिदिबंधो पुरिसवेदस्स अट्ठ वस्साणि, संजलणाणं सोलस वस्साणि, सेसाणं कम्माणं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ठिदिबंधो। क० चु० पृ० ७५५।

२. ठिदिसंतकम्मं पुण घादिकम्माणं चदुण्हं पि संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि, णामा-गोद-वेदणियाण-मसंखेज्जाणि वस्साणि। क० चु० पृ० ७५५।

३. पुरिसवेदस्स दोआवलियासु पढमट्ठिदीए सेसासु आगालपडिआगालो वोच्छिण्णो, पढमट्ठिदीदो चेव उदीरणा। समयाहियाए आवलियाए सेसाए जहण्णिया ठिदिउदीरणा। क० चु० पृ० ७५५।

विषै प्राप्त करना सो आगाल कहिए। प्रथम स्थितिविषैं तिष्ठते परमाणूनिकौं उत्कर्षण वशतैं द्वितीय स्थितिविषै प्राप्त करना सो प्रत्यागाल कहिए। बहुरि प्रत्यावली जो द्वितीयावलीतैं उदीरणा वर्तै है। प्रत्यावलीके निषेकनिका द्रव्य उदयावलीविषै दीजिए है। बहुरि एक समय अधिक प्रत्यावली अवशेष रहैं जघन्य स्थितिकी उदीरणा हो है, जातैं प्रत्यावलीका प्रथम एक निषेककी उदीरणा हो है उदयावलीविषै ताकौं प्राप्त कीजिए है। बहुरि तीहिं समयविषै वेद सहितपनाका अन्त समयविषै हो है, जातैं उच्छिष्टावली है नाम जाका ऐसी जो प्रत्यावली ताके निषेकनिका उदय न हो है ॥४५९॥

अंतरकदपढमादो कोहे छण्णोकसाययं छुहदि।
पुरिसस्स चरिमसमए पुरिस वि एदेण सव्वयं छुहदि[1] ॥४६०॥

अंतरकृतप्रथमात् क्रोधे षण्णोकषायकं संक्रामति।
पुरुषस्य चरमसमये पुरुषमपि एतेन सर्वं संक्रामति ॥४६०॥

स० चं—अंतरकरण करनेके अनन्तरवर्ती प्रथम समयतैं लगाय संक्रमण होता था सो पुरुषवेदके उदय कालका अन्त समयविषै छह नोकषायनिका सर्व सत्त्वकौं संज्वलन क्रोधविषै संक्रमण करै है। तहां अन्त समयविषै द्वितीय स्थितिविषै प्राप्त संख्यात हजार वर्षमात्र स्थिति सत्वरूप अन्त फालि ताकौं सर्व संक्रमणतैं संज्वलन क्रोधविषैं निक्षेपणकरि तिन छह नोकषायनिकी सत्ता नाश करै है। बहुरि तिस ही समयविषै पुरुषवेद भी सर्व संज्वलन क्रोधविषै निक्षेपण करै है ॥४६०॥

विशेष—यहाँ कहा गया है कि अन्तरकरण करनेके बाद प्रथम समयसे लेकर छह नोकषायोंका क्रोधसंज्वलनमें संक्रम होता है आदि। किन्तु चूर्णिसूत्रोंमें इसी बातको अन्तरकरण करनेके दूसरे समयसे छह नोकषायोंका क्रोध संज्वलनमें संक्रम होता है यह कहा गया है। सो दोनों कथनों का तात्पर्य एक ही है। कारण कि अनुदयरूप प्रकृतियों की उदयावलिका प्रभाण स्तिबुक संक्रमके कारण एक समय कम होता जाता है। इसलिये प्रतिसमय निषेक स्थिति एक कम होती जानेसे दोनों कथनों की एकरूपमें संगति बैठ जाती है।

किछू अवशेष रहै है सो कहिए है—

समऊणदोण्णि आवलिपमाणसमयप्पबद्धणवबंधो।
विदिये ठिदिये अत्थि हु पुरिसस्सुदयावली च तदा[2] ॥४६१॥

समयोनद्व्यावलिप्रमाणसमयप्रबद्धनवबंधः।
द्वितीयस्यां स्थितौ अस्ति हि पुरुषस्योदयावली च तदा ॥४६१॥

स० चं—तहां द्वितीय स्थितिविषै तौ समय घाटि दोय आवलीमात्र नवक समयप्रबद्ध अर

---

१. अंतरादो दुसमयकदादो पाए छण्णोकसाए कोधे संछुहदि, ण अण्णम्हि कम्हि वि।............तदो चरिमसमयसवेदो जादो। ताधे छण्णोकसाया संछुद्धा। क० चु० पृ० ७५५।

२. पुरिसवेदस्स जाओ दो आवलियाओ समयूणाओ एत्तिगा समयपबद्धा विदियट्ठिदीए अत्थि, उदयट्ठिदी च अत्थि। सेसं पुरिसवेदस्स संतकम्मं सव्वं संछुद्धं। क० चु० पृ० ७५५।

प्रथम स्थितिविषै असंख्यात समयप्रबद्धमात्र उदयावली कहिए उच्छिष्टावलीके निषेक पुरुषवेदका सत्त्वविषै अवशेष रहैं, अन्य सर्व संख्यात हजार वर्षमात्र स्थिति लीएं पुरुषवेदका पुरातन सत्त्व था सो संज्वलन क्रोधविषै संक्रमणरूप कीया। इहां द्वितीय स्थितिविषै समय घाटि दोय आवलीमात्र नवक समयप्रबद्ध कैसैं अवशेष रहैं ? सो कहिए है—

नवीन बन्ध्या समयप्रबद्धकौं नवक समयप्रबद्ध कहिए सो क्षपणा काल बन्धे पीछैं आवली पर्यंत जो बन्धावली तिसविषै तौ क्षपावना नाही, पीछैं समय समयविषैं एक-एक फालिकरि आवलीविषैं एक एक समयप्रबद्धकौं खिपावै है, तातैं पुरुषवेदकी प्रथम स्थितिविषैं बन्धावली क्षपणावली-उच्छिष्टावली ऐसैं तीन आवली अवशेष रहैं, बन्धावलीका प्रथम समयविषैं जो समयप्रबद्ध बन्ध्या ताकौं बन्धावली गमाइ क्षपणावलीविषैं एक एक फालिकरि सर्व क्षपाया अर बंधावलीका द्वितीय तृतीयादि समयनिविषैं जे समयप्रबद्ध बंधे तिनकी क्रमतैं एक दोय तीन आदि फालि अवशेष राखि क्षपणावलीविषैं तिनकौं खिपाए। ऐसैं बंधावलीका अंत समयविषै बंध्या समयप्रबद्धकी क्षपणावलीका अंत समयविषै एक ही फालि खिपाई। समय घाटि आवलीमात्र फालि अवशेष रही। बहुरि क्षपणावलीके प्रथमादि समयनिविषैं बन्धे समयप्रबद्ध तिनकी एक हू फालि न खिपाई। बहुरि उच्छिष्टावलीविषै बंध है ही नाहीं। ऐसैं इहां एक देशकौं सर्व कहिए इस न्यायपै अवशेष रही फालिनिकौं समयप्रबद्ध संज्ञा कहनेकरि बन्धावलीविषैं बन्धे ऐसे एक घाटि आवलीमात्र समयप्रबद्ध अर क्षपणावलीविषै बन्धे सम्पूर्ण आवलीमात्र समयप्रबद्ध मिलि समय घाटि दोय आवलीमात्र नवक समयप्रबद्ध अवशेष रहैं हैं। सो अपगतवेद होइ उच्छिष्टावलीका प्रथम समयतैं लगाय एक-एक समयविषैं एक-एक समयप्रबद्धकौं संज्वलन क्रोधरूप परिणमाइ समय घाटि दोय आवली कालविषैं इन नवक समयप्रबद्धनिकौं भी नाश करै है। अब सवेद अनिवृत्तिकरणके अनंतरि अपगतवेदी होइ अश्वकर्ण क्रिया सहित अपूर्व स्पर्धककरणका प्रारम्भ करै है। तहां यातैं पीछैं अवशेष रह्या जो संज्वलनचतुष्कका सत्त्व तिसविषै स्थिति–अनुभाग कांडककी प्रवृत्ति जाननी ॥४६१॥

अब अश्वकर्णकरणका स्वरूप कहिये है—

से काले ओवट्टणुवट्टण अस्सकण्ण आदोलं।
करणं तियसण्णगयं संजलणरसेसु वट्टिहिदि[1] ॥४६२॥

स्वे काले अपवर्तनोद्वर्तनं अश्वकर्णमादोलं।
करणं त्रिकसंज्ञागतं संज्वलनरसेषु वर्तयति ॥४६२॥

स० चं० –अपने कालविषैं अपवर्तनोद्वर्तनकरण १ अश्वकर्णकरण १ आदोलकरण १ ऐसैं तीन संज्ञाकौं प्राप्त किया है सो संज्वलनचतुष्कका अनुभागविषै प्राप्त हो है। तहां इहां आरंभ्या जो प्रथम अनुभागकांडक ताका घात भए पीछैं अवशेष अनुभाग क्रोधतैं लगाय लोभपर्यन्त अनन्तगुणा घटता वा लोभतैं लगाय क्रोधपर्यन्त अनन्तगुणा बँधता हो है। तातैं अपवर्तनोद्वर्तनकरण संज्ञा कहिए। बहुरि जैसैं घोडेका कान मध्य प्रदेशतैं आदि पर्यन्त क्रमतैं घटता हो है तैसैं प्रथम अनुभागकांडकका घात भए पीछैं क्रोध आदि लोभ पर्यन्तका क्रमतैं अनुभाग घटता हो हैं, तातैं

१. अस्सकण्णकरणे त्ति वा आदोलकरणे त्ति वा ओवट्टणउव्वट्टणकरणे त्ति वा तिण्णि णामाणि अस्सकण्णकरणस्स। क० चु० पृ० ७८७।

अश्वकर्ण संज्ञा कहिए। बहुरि जैसैं ही वार्कें (हिंडोलेके) रज्जु बँधे है सो रज्जुके वीचिका प्रदेश आदितैं अन्तपर्यंत क्रमतैं घटता हो है तैसैं पूर्ववत् क्रोधतैं लोभपर्यन्त अनुभाग घटता हो है तातैं आंदोलनकरण संज्ञा कहिए है ॥४६२॥

विशेष—जैसे घोड़ेका कान मध्यसे लेकर अग्र भागतक उत्तरोत्तर हीयमानरूपसे दिखलाई देता है उसी प्रकार क्रोधसंज्वलनसे लेकर लोभसंज्वलन तक इनके अनुभाग स्पर्धकोंकी उत्तरोत्तर अनन्तगुणे हीनरूपसे रचना है, इसलिए रचना की अपेक्षा इनकी अश्वकर्ण संज्ञा है। अथवा जैसे हिंडोलेकी रस्सियाँ ऊपरसे नीचेतक अन्तरालमें त्रिकोणरूपसे कर्णके आकाररूपसे दिखाई देती हैं उसी प्रकार क्रोधादि संज्वलनोंके अनुभागका विन्यास क्रमसे हीनमान दिखलाई देता है, इसलिए अश्वकर्णकरणकी आंदोलकरण संज्ञा है। इसी प्रकार इसकी अपवर्तन-उद्वर्तन संज्ञा जाननी चाहिये, क्योंकि क्रोधादि संज्वलनोंके अनुभागकी रचना हानि-वृद्धिरूपसे अवस्थित है। जिस समय यह जीव पुरुषवेदके प्राचीन सत्कर्मके साथ छह नोकषायोंका क्षय कर प्रथम समयवर्ती अपगतवेदी होता है उसी समयसे यह अश्वकर्णकारक होता है यह उक्त कथनका आशय है।

ताहे संजलणाणं ठिदिसंतं संखवस्सयसहस्सं।
अंतोमुहुत्तहीणो सोलसवस्साणि ठिदिबंधो[1] ॥४६३॥

तत्र संज्वलनानां स्थितिसत्त्वं संख्यवर्षसहस्रम्।
अंतर्मुहूर्तहीनः षोडशवर्षाणि स्थितिबन्धः ॥४६३॥

स० चं०—तहां अश्वकर्णका प्रारम्भ समयविषैं संज्वलनचतुष्कका स्थितिसत्त्व संख्यात हजारवर्षमात्र है। बहुरि स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त घाटि सोलह वर्षमात्र है। एक स्थितिबन्धापसरणकरि पूर्व स्थितिबन्धतैं अन्तर्मुहूर्तहीन स्थितिबन्ध इहां भया और कर्मनिके बन्धसत्त्वका आलाप पूर्ववत् इहां भी कहना ॥४६३॥

विशेष—यद्यपि पहले ही सात नोकषायोंकी क्षपणा करते समय सर्वत्र संज्वलनचतुष्कका स्थितिसत्त्व संख्यात हजार वर्ष था, किन्तु इस अवस्थामें संख्यात हजार स्थितिकांडकोंके द्वारा और भी कम होकर पूर्वोक्त स्थितिसत्त्वसे संख्यातगुणा हीन होकर वह संख्यात हजार वर्षप्रमाण शेष रहता है। इसी प्रकार स्थितिबन्ध भी जो पहले संख्यात वर्ष था वह छह नोकषायोंकी क्षपणा के समय पूरा सोलह वर्ष होकर अब अन्तर्मुहूर्त कम सोलह वर्षप्रमाण शेष रहता है, क्योंकि यहाँसे लेकर स्थितिबन्धापसरणका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त हो जाता है। इतना अवश्य है कि यहाँ पर तीन घातिकर्मोंका स्थितिबन्ध और स्थितिसत्त्व संख्यात हजार वर्षप्रमाण होता है तथा नाम, गोत्र और वेदनीयकर्मका स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्षप्रमाण और स्थितिसत्त्व असंख्यात हजार वर्षप्रमाण होता है।

---

१. छसु कम्मेसु संछुद्धेसु से काले पढमसमयअवेदो। ताधे चेव पढमसमय अस्सकण्णकारगो। ताधे ट्ठिदिसंतकम्मं संजलणाणं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। ठिदिबंधो सोलस वस्साणि अंतोमुहूत्तूणाणि।
क० चु० पृ० ७७९-७८०।

रससंतं आगहिदं खंडेण समं तु माणगे कोहे ।
मायाए लोभे वि य अहियकमा होंति बंधे वि[1] ॥४६४॥

रससत्त्वमागृहीतं खंडेन समं तु मानके क्रोधे ।
मायायां लोभेऽपि च अधिकक्रमं भवति बंधेऽपि ॥४६४॥

स० चं०—अपगतवेदो होइ जो प्रथम अनुभागकांडक आगृहीतं कहिए प्रारम्भ किया तिस सहित इस प्रथम अनुभागकांडकका घात होनेतैं पहलै मानबिषैं क्रोधविषैं मायाविषै लोभविषै अनुभागसत्त्व है सो अधिक क्रम लीएं है। एक गुणहानिविषैं जेते स्पर्धक पाइए तिस प्रमाणकौं नानागुणहानिका प्रमाण करि गुणें मानके स्पर्धक हैं ते स्तोक हैं, तिनतैं क्रोधके विशेष अधिक हैं, तिनतैं मायाके विशेष अधिक हैं, तिनतैं लोभके विशेष अधिक है। इहां अपने अपने स्पर्धकनिका प्रमाण स्थापि अनन्तका भाग दीएं विशेषका प्रमाण आवै है सो यहु विशेष भी अनन्त स्पर्धकमात्र है, याकरि अधिक अधिक जानने। जैसैं अंक संदृष्टि करि मानके स्पर्धक पांचसै वारा अर तातैं क्रोध माया लोभके क्रमतैं तीन तीन अधिक—कोध ५१५ मान ५१२ माया ५१८ लोभ ५२१। बहुरि इस अश्वकर्णका प्रारम्भ समयविषैं जो अनुभागबन्ध हो है तिसविषैं भी ऐसैं ही अल्पबहुत्वका क्रम जानना। बहुरि यहु अनुभागका कथन अन्तदीपक समान है, तातैं याके पहिले गुणस्थाननिविषै जो अनुभागसत्त्व है तिस विषैं भी ऐसैं ही अल्पबहुत्व है ऐसैं जानना ॥४६४॥

विशेष—यहाँ अश्वकर्णकरणका आरम्भ करनेवाले जीवने अनुभागकांडकका घात करनेके लिए जिस अनुभागसत्त्वको ग्रहण किया है वह मानसंज्वलनमें सबसे अल्प है। क्रोध, माया और लोभसंज्वलनमें उत्तरोत्तर विशेष अधिक है। यहाँ विशेष अधिकका प्रमाण भी अनन्त स्पर्धकस्वरूप है यह इस गाथाका तात्पर्य है। अनुभागबन्धमें भी इसी प्रकार जानना चाहिये। अर्थात् अनुभागबन्धमें जिस अनुभागको बाँधता है उसमें भी इसी विधिसे अल्पबहुत्व घटित होता है।

रसखंडफड्ढयाओ कोहादीया हवंति अहियकमा[2] ।
अवसेसफड्ढयाओ लोहादि अणंतगुणियकमा ॥४६५॥

रसखंडस्पर्धकानि क्रोधादिकानां भवंति अधिकक्रमाणि ।
अवशेषस्पर्धकानि लोभादेः अनंतगुणितक्रमाणि ॥४६५॥

स० चं०—घात करनेकौं प्रथम अनुभागकांडकरूप ग्रहे जे स्पर्धक ते क्रोधके स्तोक

१. अणुभागसंतकम्मं सह आगाइदेण माणे थोवं। कोहे विसेसाहियं। मायाए विसेसाहियं। लोभे विसेसाहियं। बंधो वि एवमेव। क० चु० पृ० ७८८।

२. अणुभागखंडयं पुण जमागाइदं तस्स अणुभागखण्डयस्स फद्दयाणि कोधे थोवाणि। माणे फद्दयाणि विसेसाहियाणि। मायाए फद्दयाणि विसेसाहियाणि। लोभे फद्दयाणि विसेसाहियाणि। आगाइदसेसाणि पुण फद्दयाणि लोभे थोवाणि। मायाए अणंतगुणाणि। माणे अणंतगुणाणि। कोधे अणंतगुणाणि। एसा परूपणा पढमसमयअस्सकरणकारयस्स। क० चु० पृ० ७८८।

हैं। तातैं मानके विशेष अधिक हैं। तातैं मायाके विशेष अधिक हैं। तातैं लोभके विशेष अधिक है। इहांतैं पहले जे अनुभागकांडक भए तिनविषैं अनुभागसत्त्वके अनुसारि मानके स्तोक, तातै क्रोध माया लोभके क्रमतैं विशेष अधिक स्पर्धक ग्रहण होते थे। अब परिणामनिके विशेषतैं विशेष घात पाइ अपने-अपने अनुभागसत्त्वकौं अनंतका भाग दीएं तहाँ बहुभागमात्र अब कीया इस कांडक-करि गृहीत जो अनुभाग है सो क्रोधका स्तोक तातैं मान माया लोभके क्रमतैं विशेष अधिक हो हैं। अंक संदृष्टिकरि इस कांडककरि ग्रहे क्रोधके तीनसै सित्यासी, मानके च्यारिसै असी, मायाके पाँचसै दश, लोभके पाँचसै उगणीस, स्पर्धक जानने—

क्रोध	मान	माया	लोभ।
३८७	४८०	५१०	५१९

बहुरि प्रथम अनुभागकांडकका घात भए पीछैं अवशेष स्पर्धक रहे ते लोभके स्तोक, तातैं मायाके अनन्तगुणे, तातैं मानके अनन्तगुणे तातैं क्रोधके अनन्तगुणे जानने। अंकसंदृष्टि करि जैसैं प्रथम कांडकका घात भए पीछै विशेष रहे स्पर्धक ते लोभके दोय, तातैं माया मान क्रोधके क्रमतैं चौगुणे चौगुणे जानना।

क्रोध	मान	माया	लोभ
१२८	३२	८	२

इहां आशंका—जो कांडकबिषैं विशेष अधिकपना कह्या तौ अवशेष अनुभागविषैं अनन्त-गुणापना कैसैं संभवै? ताका समाधान—अंक संदृष्टि अपेक्षा कहिए है। मानका अनुभागसत्त्व पाँचसै बारह, तातैं क्रोधका तीन अधिक, मायाका छह अधिक, लोभका नव अधिक है। तहाँ अधिक प्रमाणकौं जुदे राखि पाँचसै बारहकौं अनन्तकी संदृष्टि च्यारि ताका भाग देइ तहां एक भाग विना बहुभाग ५१२/४ तीनसै चौरासी, तामैं क्रोधविषैं तीन अधिक कहे थे ते मिलाएं क्रोध-कांडक विषैं तीनसै सित्यासी स्पर्धकनिका प्रमाण हो है, बहुरि अवशेष एक भागमात्र ५१२/४ एकसौ अठाईस स्पर्धकप्रमाण क्रोधका अवशेष अनुभागसत्त्व हो है। बहुरि इस अवशेष एक भागकौं च्यारिका भाग देइ तहां बहुभाग ५१२।३/४।४ छिनवै तिनकौं पहले बहुभाग तीनसै चौरासी कहे थे तिनमें जोडैं मानकांडकका प्रमाण च्यारिसै असी ४८० हो है। अवशेष एक भाग ५१२/४।४ मात्र बत्तीस स्पर्धक प्रमाण मान का अवशेष अनुभागसत्त्व हो है। बहुरि यहु अवशेष एक भाग रह्या ताकौं च्यारिका भाग देइ तहाँ बहुभाग ५१२।३/४।४।४ चौईस तिनकौं पूर्वैं मानकांडक च्यारिसै असी कह्या था तामैं जोडैं अर मायाका अधिक प्रमाण छह तिनकौं अधिक कीएँ माया कांडकका प्रमाण पाँचसै दश ५१० हो है। अवशेष एक भागमात्र ५१२/४।४।४ आठ स्पर्धकप्रमाण मायाका अवशेष सत्त्व हो है। बहुरि इस अवशेष एक भागकौं च्यारिका भाग देइ तहाँ बहुभाग—५१२।३/४।४।४।४ छह तिनकौं अधिक प्रमाण रहित जो मायाकांडक पाँचसै च्यारि तामैं जोडि इहाँ लोभका अधिक

प्रमाण नव तिनकौं अधिक कीएं लोभकांडकका प्रमाण पाँचसै उण्णीस ५१९ आवै है। अवशेष एक भागमात्र ५१२ दोय स्पर्धकप्रमाण लोभके अवशेष अनुभागसत्त्वका प्रमाण हो है। ऐसैं क्रोध
४।४।४।४
मान माया लोभ कांडकका प्रमाण तौ विशेष अधिक क्रम लीएँ हो है। अर अवशेष रह्या अनुभागका प्रमाण अनन्तगुणा क्रम लीएँ हो है। तिनकी रचना ऐसी—

नाम	क्रोध	मान	माया	लोभ
पूर्व अनुभाग	५१५	५१२	५१८	५२१
कांडक अनुभाग	३८७	४८०	५१०	५१९
अवशेष अनुभाग	१२८	३२	८	२

इहां कांडक अनुभाग अर अवशेष अनुभागके बीचि ड्योढो लीक करी है सो हीनाधिक अनुभाग प्रगट करनेके अर्थि जानना। ऐसैं क्रोधादिकविषैं घटता क्रम लीए अनुभाग प्रगट करना सो अश्वकर्णकरण है, ताका वर्णन कीया।

अब अश्वकर्णकरण अवस्थाविषै ही भए अरपूर्वै संसार अवस्थाविषै संभवते थे जे पूर्व स्पर्धक तिनतैं अनंतगुणा घटता अनुभाग लीएं अैसें जे अपूर्व स्पर्धक तिनका स्वरूप कहिए है। सो पहिले पूर्व स्पर्धकनिका स्वरूप जाने विना अपूर्व स्पर्धकनिका ज्ञान न होइ तातैं इहाँ पूर्व स्पर्धकनिका किछू स्वरूप कहिए है—

सर्व कर्म परमाणूविषै जाविषै अनुभागके थोरे अविभागप्रतिच्छेद पाइए ऐसी जो परमाणू सो जघन्य वर्ग कहिए। ऐसी ऐसी समान परमाणूनिका पुंज ताका नाम जघन्य वर्गणा है। बहुरि जघन्य वर्गणातैं एक अविभागप्रतिच्छेद जिनमें अधिक पाइए ऐसे एक एक वर्गणा परमाणू तिनका पुंजकौं द्वितीय वर्गणा कहिए। ऐसैं क्रमतैं एक एक अविभागप्रतिच्छेद-करि बंधती जे वर्ग कहिए वर्गका पुंजरूप एक एक वर्गणा यावत् होइ तावत् पर्यंत जेती वर्गणा भई तिन सर्व वर्गणानिका पुंजकौं जघन्य स्पर्धक कहिए। बहुरि ताके अनंतरि जघन्य वर्गतैं दूणा अविभागप्रतिच्छेदयुक्त जे वर्ग तिनका समूहरूप द्वितीय स्पर्धककी प्रथम वर्गणा हो है। बहुरि पूर्ववत् यातैं एक एक अविभागप्रतिच्छेद बंधती लीएं वर्गनिका पुंजरूप ताकी द्वितीयादि वर्गणा हो है। बहुरि ऐसैं ही जघन्य वर्गतैं तिगुणा चौगुणा आदि जेथवां स्पर्धक होइ तितना गुणा अविभागप्रतिच्छेद युक्त वर्गनिका समूहरूप जो वर्गणा होइ सो तो तृतीय चतुर्थ आदि स्पर्धक-निकी प्रथम वर्गणा जाननी। अर ऊपरि एक एक अविभागप्रतिच्छेद अधिक क्रम लीएं वर्गनिका समूहरूप अपनी अपनी द्वितीयादि वर्गणा जाननी। इहां सर्व कर्म परमाणूनिका प्रमाणकौं किंचित् अधिक ड्योढगुणहानिका भाग दीएं प्रथम वर्गणाके वर्गनिका प्रमाण आवे है। याकौं दोगुण-हानिका भाग दीएं विशेषका प्रमाण आवै है सो एक विशेषकरि घटता द्वितीयादि वर्गणानिविषै वर्गनिका प्रमाण हो है। ऐसैं प्रथम गुणहानिविषै क्रम जानना। बहुरि प्रथम गुणहानितैं द्वितीयादि गुणहानिनिविषै आधा आधा प्रमाण लीएं वर्गणाके वर्गनिका अर विशेषका प्रमाण जानना। ऐसैं

कर्म परमाणूनिविषै नाना गुणहानि पाइए है। इहां अनुभाग रचना विषै गुणहानि वा नाना गुणहानिनिका प्रमाण यथासम्भव अनंत है। तहां एक एक गुणहानिविषै पूर्वोक्त प्रकार स्पर्धक अनंत हैं। एक एक स्पर्धकविषै वर्गणा अनंती हैं। सो एक गुणहानिविषै जो वर्गणानिका प्रमाण सोई गुणहानि आयामका प्रमाण जानना। ऐसी गुणहानि जेती पाइए तिनके प्रमाणका नाम नानागुणहानि है।

अंकसंदृष्टिकरि सर्व कर्म प्रदेशरूप द्रव्य इकतीससै ३१००, गुणहानिप्रमाण आठ, नानागुणहानि पांच तहां सर्व द्रव्यकौं किंचित् अधिक ड्योढ गुणहानिका भाग दीएं प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाविषै वर्ग दोयसै छप्पन है। याकौं दोगुणहानिका भाग दीएं विशेष का प्रमाण सोलह सौ इतना इतना घादि द्वितीयादि वर्गणा होइ। बहुरि ऐसैं क्रमतैं जिस वर्गणाविषै प्रथम गुणहानिका प्रथम वर्गणातैं आधा एकसौ अठाईस वर्ग पाइए सो द्वितीय गुणहानिकी प्रथम वर्गणा है। इस चयका प्रमाण भी आधा आठ है। तातैं आठ आठ घटते द्वितीयादि वर्गणाके वर्ग जानने। ऐसैं गुणहानि गुणहानि प्रति आधा आधा प्रमाण जानना। ऐसी पांच गुणहानि सर्व जाननी। ऐसैं ही यथार्थ कथनका अर्थ जानना। तहां जघन्य स्पर्धकतैं लगाय अनंत स्पर्धक लता भागरूप हैं। तिनके ऊपरि अनन्त स्पर्धक दारुभागरूप हैं। तिनके ऊपरि अनन्त स्पर्धक अस्थिभागरूप हैं। तिनके ऊपरि उत्कृष्ट स्पर्धक पर्यंत अनंत स्पर्धक शैल भागरूप हैं। तहां प्रथम स्पर्धक देशघातीका जघन्य स्पर्धक है। तातैं लगाय लताभागके सर्व स्पर्धक अर दारु भागके अनंतवां भागमात्र स्पर्धक देशघाती हैं। तहां अंतविषै देशघाती उत्कृष्ट स्पर्धक भया। बहुरि ताके ऊपरि सर्व घातीका जघन्य स्पर्धक है। तातैं लगाय ऊपरिके सर्व स्पर्धक सर्वघाती हैं। तहां अंत स्पर्धक उत्कृष्ट सर्वघाती जानना। तहां केवल विना च्यारि ज्ञानावरण, तीन दर्शनावरण अर सम्यक्त्व मोहनी, संज्वलनचतुष्क, नोकषाय नव, अंतराय पांच इन छबीस प्रकृतिनिकी लता समान स्पर्धककी प्रथम वर्गणा सो एक-एक वर्गके अविभागप्रतिच्छेदनिकी अपेक्षा समान है। बहुरि वेदनीय आयु नाम गोत्र इन अघाति कर्मनिकी भी प्रथम वर्गणा तैसैं ही परस्पर समान है। बहुरि मिथ्यात्व विना केवल ज्ञानावरण केवल दर्शनावरण निद्रा पाँच मिश्रमोहनी संज्वलन विना बारह कषाय इन सर्वघाती बीस प्रकृतिनिके देशघाती स्पर्धक हैं नाहीं, तातैं सर्वघाती जघन्य स्पर्धक वर्गणा तैसैं ही परस्पर समान जाननी। तहाँ पूर्वोक्त देशघाती छव्वीस प्रकृतिनिकी अनुभाग रचना देशघाती जघन्य स्पर्धकतैं लगाय उत्कृष्ट देशघाती स्पर्धक पर्यंत होइ। तहाँ सम्यक्त्वमोहनीका तौ इहां ही उत्कृष्ट अनुभाग होइ निवरया, अवशेष पचीस प्रकृतिनिकी रचना तहाँतैं ऊपरि सर्वघाती उत्कृष्ट स्पर्धक पर्यंत जाननी। बहुरि सर्वघाती वीस प्रकृतिनिकी रचना सर्वघातीका जघन्य स्पर्धकतैं लगाय उत्कृष्ट स्पर्धकपर्यंत हैं। तहां विशेष इतना—सर्वघाती दारुभागके स्पर्धकनिका अनन्त भागमात्र स्पर्धकपर्यन्त मिश्रमोहनीके स्पर्धक जानने। ऊपरि नाहीं हैं। बहुरि इहाँ पर्यंत मिथ्यात्वके स्पर्धक नाहीं हैं। इहाँतैं ऊपरि उत्कृष्ट स्पर्धक पर्यंत मिथ्यात्वके स्पर्धक हैं। बहुरि च्यारि अघातिया कर्मनिकी भी देशघाती जघन्यतैं लगाय उत्कृष्ट पर्यंत वा सर्वघाती जघन्यतैं लगाय उत्कृष्ट पर्यंत परस्पर समान अनुभाग रचना जाननी। ऐसैं संसार अवस्थाविषै संभवते पूर्व स्पर्धक जानने[१] ॥४६५॥

---

१. तम्मि चेव पढमसमए अपुव्वफद्दयाणि णाम करेदि। तेसिं परूवणं वत्तइस्सामो। तं जहा—सव्वस्स अक्खवगस्स सव्वकम्माणं देशधादिफद्दयाणमादिवग्गणा तुल्ला। सव्वघादीणं पि मोत्तूण मिच्छत्तं

इस गाथा द्वारा दो बातोंका निर्देश किया गया है। प्रथम तो प्रकृतमें घात करनेके लिए जो अनुभागकाण्डक ग्रहण किया जाता है उसका चारों संज्वलनोंमें अल्पबहुत्व किसप्रकार प्राप्त होता है और दूसरे घात करनेपर जो अनुभाग सत्त्व शेष रहता है उसका अल्प बहुत्व किस क्रम से प्राप्त होता है। बात यह है कि अश्वकर्णकरण के पहले घातके लिये जो अनुभाग काण्डक ग्रहण किये जाते थे वे मान में सबसे स्तोक होते थे, उनसे क्रोध, माया और लोभ में उत्तरोत्तर विशेष अधिक होते थे। किन्तु अब अश्वकर्ण क्रिया करते समय काण्डकघातके लिए जो अनुभाग स्पर्धक ग्रहण किये जाते हैं वे क्रोधमें सबसे थोड़े होने हैं तथा क्रमसे मान, माया और लोभमें उत्तरोत्तर विशेष अधिक होते हैं। तथा घात करने पर जो अनुभागस्पर्धक सत्त्वरूपमें शेष रहते हैं वे लोभमें सबसे स्तोक रहते हैं। उनसे माया, मान और क्रोधमें अनन्तगुनं शेष रहते हैं। यहाँ जयधवलामें उक्त दोनों गाथाओंमें जिस तथ्यको स्पष्ट किया गया है उसे अंक संदृष्टि द्वारा इस प्रकार स्पष्ट किया है—

	क्रोध	मान	माया	लोभ
स्पर्धकरूपमें पूर्व सत्त्व	९६	९५	९७	९८
घातके लिए अनुभागकाण्डक प्रमाण	६४	७९	८९	९५
काण्डकघातेक बाद शेष रहे स्पर्धकसत्व	३२	१६	८	४

पण्डित जी ने इसी विषयको अपनी टीकामें स्पष्ट किया है, इसलिये यहाँ और अधिक नहीं लिखा जा रहा है। आशय एक ही है।

अब इहां अश्वकर्णकरणका प्रथम समयविषै भए ऐसे अपूर्व स्पर्धक तिनिका व्याख्यान करिए है—

ताहे संजलणाणं देसावरफड्ढयस्स हेट्ठादो।
णंतगुणूणमपुव्वं फड्ढयमिह कुणदि हु अणंतं[1] ॥४६६॥

तस्मिन् संज्वलनानां देशावरस्पर्धकस्य अधस्तनात्।
अनंतगुणोनमपूर्वं स्पर्धकमिह करोति हि अनंतं ॥ ४६६ ॥

स० चं०—तहां अश्वकर्णका प्रारंभ समय विषैं च्यारयो संज्वलन कषायनिका युगपत् अपूर्व स्पर्धक देशघाती जघन्य स्पर्धकतैं नीचैं अनंतगुणा घटता अनुभागरूप करै है। पूर्व स्पर्धकनिविषै जघन्य स्पर्धककी जो जघन्य वर्गणा थी ताके नीचैं घटता अनुभाग लीएँ कोई वर्गणा थी नाहीं सो अब इहां जघन्य स्पर्धककी जघन्य वर्गणाके नीचैं अपूर्व स्पर्धकनिकी वर्गणाकी रचना भई। तहाँ पूर्व स्पर्धकनिकी जघन्य वर्गणातैं भी अपूर्व स्पर्धकनिकी उत्कृष्ट वर्गणाविषै भी अनुभागके अविभागप्रतिच्छेद अनंतवां भाग मात्र हो हैं। ऐसैं अपूर्व स्पर्धक हो हैं तिनका प्रमाण अनंत जानना ॥ ४६६॥

सेसाणं कम्माणं सव्वघादीणमादिवग्गणा तुल्ला। एदाणि पुव्वफद्दयाणि णाम क० चु० पृ० ७८९।

१. तदो चदुण्हं संजलणाणमपुव्वफद्दयाइं णाम करेदि। ताणि कधं करेदि। लोभस्स तावलोभ संजलणस्स पुव्वफद्दएहिंतो पदेसग्गस्स असंखेज्जदिभागं घेत्तूण पढमस्स देसघादिफद्दयस्स हेट्ठा अणंतभागे अपुव्वफद्दयाणि णिव्वत्तयदि क० चु० पृ० ७८९।

विशेष—चारों संज्वलनोंके पूर्व स्पर्धकोंसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रदेशपुंजके असंख्यातवें भागको ग्रहण कर प्रथम देशघाति स्पर्धकके नीचे अनन्तवें भागमें अन्य अपूर्व स्पर्धकोंको रचता है। अश्वकर्णकरणके पहले संज्वलनके देशघाति जघन्य स्पर्धकका जितना अनुभाग होता है, इस समय उससे भी अनन्तवें भागप्रमाण अनुभाग स्पर्धकोंको रचता है, इसलिये इनकी अपूर्व स्पर्धक संज्ञा है।

गणणादेयपदेसगगुणहाणिट्ठाणफड्ढयाणं तु।
होदि असंखेज्जदिमं अवरादु वरं अणंतगुणं[1] ॥४६७॥

गणनादेकप्रदेशकगुणहानिस्थानस्पर्धकानां तु।
भवति असंख्येयं अवरतो वरमनंतगुणं ॥४६७॥

स० चं०—सो अनंत कैसा है ? सो कहिए है—गणनाकरिकैं प्रदेशगुणहानि कहिए अनुभाग रचना विषै जे वर्गणा तिनविषै प्रदेश जे परमाणु तिनका प्रमाण एक-एक विशेष घटतैं संतैं जहाँ आधा होइ तहांतैं पहलैं एक गुणहानि कहिए। तिस एक गुणहानिविषैं स्पर्धकनिका प्रमाण अभव्य राशितैं अनंतगुणा वा सिद्धराशिके अनंतवे भागमात्र है। ताकौं अपकर्षणभागहारतैं असंख्यातगुणा जो भागहार ताका भाग दीएं एक भागमात्र अपूर्व स्पर्धकनिका प्रमाण अनन्त संख्यातमात्र जानना। तहां जघन्य अपूर्व स्पर्धकतैं उत्कृष्ट अपूर्व स्पर्धक विषै अनुभागके अविभागप्रतिच्छेद अनंतगुणे जानना। सो अनुभागके अल्पबहुत्वका विशेष इहां कहिए है—

अपूर्व स्पर्धकनिविषै प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद जीवराशितैं अनंतगुणे हैं, तथापि औरनितैं स्तोक हैं। बहुरि याकौं अनंतका भाग देइ तहां बहुभाग तिसहीमैं मिलाएं द्वितीय स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद हो हैं। ऐसैं ही अंत स्पर्धकपर्यंत क्रम जानना। सो यहु अल्पबहुत्व वर्गणानिविषै पाइए है। जे सर्व परमाणूरूप वर्ग तिन सबनिकैं अविभागप्रतिच्छेद मिलाय करि कह्या है। बहुरि एक-एक वर्गकी अपेक्षा प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणातैं द्वितीय तृतीयादि स्पर्धकनिकी प्रथम वर्गणाविषैं दूणे तिगुणे आदि अविभागप्रतिच्छेद जानने। जातैं आदि वर्गतैं आदि वर्गके अविभागप्रतिच्छेदका प्रमाण जेथवां स्पर्धक होइ तितनागुणा ही हो है। कषायप्राभृत द्वितीय नाम महाधवलविषैं[2] भी ऐसैं ही कह्या है। सोई विशेष करि कहिए है—

स्थितिसम्बन्धी असंख्यातप्रमाण लीएँ जो स्पर्धकगुणहानि ताकरि गुणित समयप्रबद्धप्रमाण अपना-अपना द्रव्य स्थापि ताकौं अनुभागसम्बन्धी अनंत प्रमाण लीएँ जो किंचिदून ड्योढ गुणहावि ताका भाग दीएँ प्रथम वर्गणाविषैं परमाणूनिका प्रमाण आवै। एक गुणहानिविषैं जेता स्पर्धकनिका प्रमाण सो एक गुणहानि स्पर्धकशलाका कहिए है। एक स्पर्धकविषैं जेता वर्गणानिका प्रमाण सो एक स्पर्धकवर्गणा शलाका कहिए। इन दोऊनिकौं परस्पर गुणैं अनुभागसम्बन्धी गुणहानि आयामका प्रमाण होइ। बहुरि प्रथम वर्गणाकौं गुणहानितैं दूणा प्रमाण लीएं जो दो

---

१. ताणि पगणणादो अणंताणि पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरफद्दयाणमसंखेज्जदिभागो एत्तियमेत्ताणि ताणि अपुव्वफद्दयाणि। क० चु० पृ० ७८९।

२. यहाँ महाधवल पदसे जयधवल विवक्षित है।

गुणहानि ताका भाग दीएं विशेषका प्रमाण आवै है। वर्गणा वर्गणा प्रति जितनी परमाणू घटैं ताका नाम इहां विशेष जानना सो विशेषकौं दो गुणहानिकरि गुणें प्रथम वर्गणा होइ। बहुरि एक परमाणु विषैं जेते अविभागप्रतिच्छेद पाइए तिनके समूहका नाम वर्ग है, याकरि प्रथम वर्गणाकौं गुणैं प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदनिका प्रमाण हो है। बहुरि यातैं दूणे द्वितीय स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद हैं, यातैं द्वितीय भाग अधिक तृतीय स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके हैं, यातैं तृतीय भाग अधिक चतुर्थ स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके, ऐसैं क्रमतैं उत्कृष्ट संख्यातवां भाग अधिक पर्यंत तौ संख्यातभागवृद्धि, ताके ऊपरि उत्कृष्ट असंख्यातवां भाग अधिक पर्यंत असंख्यात भागवृद्धि ताके ऊपरि अंतपर्यंत अनंत भागवृद्धि हो है। तहां द्विचरम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदनिकौं एक घाटि अपूर्व स्पर्धकप्रमाणका भाग देइ तहां एक भाग तामें जोडैं चरम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदनिका प्रमाण हो है। सो प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदनितैं द्वितीय तृतीयादि स्पर्धकनिकी प्रथम वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद क्रमतैं दोय गुणा तिगुणा आदि होइ अंत स्पर्धककी प्रथम वर्गणाविषैं अपूर्व स्पर्धकप्रमाणकरि गुणित अविभागप्रतिच्छेद हो हैं। सो यहु स्थूलपनैं कथन है।

सूक्ष्मपनेकरि जेते विशेष घरैं तिन विशेषनिके जेते वर्ग होंइ तिनके अविभागप्रतिच्छेद घटावनेकौं द्वितीयादि स्पर्धकनिकी प्रथम वर्गणानिका स्थूलपनै जो अविभागप्रतिच्छेदनिका प्रमाण कह्या तामैं किंचित् न्यूनपना जानना। तहां प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणातैं द्वितीय वर्गणाविषै एक विशेष, तृतीय वर्गणाविषै दोय विशेष, चतुर्थ वर्गणाविषै तीन विशेष ऐसैं क्रमतैं विशेष घाटि घाटि पाइए है, तातैं सिद्धराशिके अनंतवे भागि वा अभव्य राशितैं अनंतगुणी जो एक स्पर्धक वर्गणाशलाका तितने विशेष प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणातैं द्वितीय स्पर्धककी प्रथम वर्गणाविषै घटते जानने। सो इन विशेषनिके परमाणूनिका प्रमाणकौं दूणा जघन्य वर्गकरि गुणैं जो प्रमाण होइ तितना द्वितीय स्पर्धककी प्रथम वर्गणाविषै ऋण जानना। बहुरि तृतीय स्पर्धककी प्रथम वर्गणानिविषै प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणातैं एक स्पर्धक वर्गणा शलाकामात्र विशेष घटैं तिनके परमाणूनिका प्रमाणकौं तिगुणा जघन्य वर्गकरि गुणैं तहां ऋण हो है। ऐसैं क्रमतैं अंत स्पर्धककी प्रथम वर्गणाविषै एक घाटि अपूर्व स्पर्धक प्रमाणकरि गुणित एक स्पर्धक वर्गणा शलाकामात्र विशेष घटैं तिनके परमाणूनिका प्रमाणकौं अपूर्व स्पर्धकका प्रमाणकरि गुणित जो जघन्य वर्ग ताकरि गुणैं तहां ऋण हो है। ऐसैं कह्या अपना-अपना ऋण ताकौं पूर्वोक्त अपना-अपना स्थूल प्रमाणमैं घटाएँ सूक्ष्म तारतम्यरूप अविभागप्रतिच्छेदनिका प्रमाण आवै है। ऐसैं अव्यवधान कहिए निरंतरपनैं स्पर्धकनिका अल्पबहुत्व कह्या। बहुरि व्यवधान कहिए सांतर तीहिंकरि कहिए है—

प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणातैं अंत स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद अनंतगुणे हैं। किंचित् ऊन अपूर्व स्पर्धक प्रमाणकरि गुणित जानने। ऐसैं क्रोध मान माया लोभके अपूर्व स्पर्धकनिविषै अनुभागके अविभागप्रतिच्छेदनिका अल्पबहुत्वका व्याख्यान समान जानना ॥४६७॥

विशेष—प्रथम देशघाति स्पर्धकके नीचे अनन्तवें भागमें जो अन्य अपूर्व स्पर्धक किये जाते हैं वे कितने होते हैं इसीका समाधान करते हुए यहाँ बतलाया है कि पूर्व स्पर्धकोंमें जो यथा-विभाग डेढ़ गुणहानिमात्र समयप्रबद्ध सत्त्वरूपसे अवस्थित हैं इनमें अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारका

भाग देने पर जो असंख्यातवां भाग लब्ध आवे उसे ग्रहण कर उसमें स्थित पूर्वस्पर्धकोंके प्रथम देशघाति स्पर्धकके नीचे उसके अनन्तवें भागमें अन्य अपूर्व स्पर्धक बनाता है जो कि अनन्त होकर भी एक गुणहानि स्थानान्तरके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होते हैं। पूर्व स्पर्धकोंकी आदि वर्गणा एक-एक वर्गणाविशेषसे हीन होती हुई जहाँ जाकर दुगुनी हीन होती है उसे एक प्रदेशगुणहानि-स्थानान्तर कहते हैं, जो कि अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवें भागमात्र स्पर्धकोंको लिए हुए होती हैं। इस एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरके भीतर जितने स्पर्धक होते हैं उनके असंख्यातवें भागमात्र ये अपूर्व स्पर्धक होते हैं ऐसा यहाँ समझना चाहिये। अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारसे असंख्यातगुणे भागहारके द्वारा एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरके भीतर प्राप्त स्पर्धकों-के भाजित करनेपर जो प्रमाण लब्ध आवे उतने होते हैं। इस प्रकार जो जघन्य अपूर्व स्पर्धक प्राप्त होते हैं उनसे उत्कृष्ट अपूर्व स्पर्धक अनन्तगुणे होते हैं। यह इस गाथाका भाव है।

पुव्वाण फड्डयाणं छेत्तूण असंखभागदव्वं तु ।
कोहादीणमपुव्वं फड्डयमिह कुणदि अहियकमा ॥४६८॥

पूर्वान् स्पर्धकान् छित्वा असंख्यभागद्रव्यं तु ।
क्रोधादीनामपूर्वं स्पर्धकमिह करोति अधिकक्रमं ॥४६८॥

स० चं—संज्वलन क्रोध मान माया लोभके पूर्व स्पर्धकनिका जो सर्व द्रव्य ताकौं अपकर्षण भागहारमात्र असंख्यातका भाग दोएं तहां एक भागमात्र द्रव्यकौं ग्रहि इहां अपूर्व स्पर्धक करै है। सोई कहिए है—

स्थितिसम्बंधी द्व्यर्धगुणहानि गुणित समयप्रबद्धमात्र मोहनीयका देशघाती द्रव्य है, जातैं मोहके सर्वघाती द्रव्यका इहां अभाव है। ताकौं अनुभागसंबंधी किंचित् अधिक द्व्यर्धगुणहानिका भाग दोएं प्रथम वर्गणा होइ, तातैं प्रथम वर्गणाकौं किंचित् अधिक ड्योढ गुणहानिकरि गुणैं मोहनीयके सर्व द्रव्यका प्रमाण हो है। ताकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां एक भागकौं जुदा राखि बहुभागनिके समान दोय भाग करिए। तहां एक भाग समान भागविषै जुदा राख्या, एक भाग मिलाएं कषायनिका द्रव्य साधिक आधा है। बहुरि एक समान भागमात्र नोकषायनिका द्रव्य किंचिदून आधा है। तहां कषायनिके द्रव्यकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां एक भाग जुदा राखि बहुभागनिके च्यारि समान भाग करने, बहुरि जुदा राख्या एक भागकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां बहुभागनिकौ प्रथम समान भागविषै जोडैं लोभका द्रव्य हो है। बहुरि अवशेष एक भागकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग देइ बहुभाग द्वितीय समान भागविषै जोडैं मायाका द्रव्य हो है। बहुरि अवशेष एक भागकौं आवली-का असंख्यातवां भागका भाग देइ बहुभाग तृतीय समान भागविषै मिलाएं क्रोधका द्रव्य हो है। बहुरि अवशेष एक भागकौं चतुर्थ समान भागविषै मिलाएं मानका द्रव्य हो है। बहुरि नोकषाय-

---

१. पढमसमए जाणि अपुव्वफद्दयाणि णिव्वत्तिदाणि तत्थ कोधस्स थोवाणि, माणस्स अपुव्वफद्दयाणि विसेसाहियाणि, मायाए अपुव्वफद्दयाणि विसेसाहियाणि, लोभस्स अपुव्वफद्दयाणि विसेसाहियाणि। विसेसो अणंतभागो। क० चु० पृ० ७९१।

निका सर्व द्रव्य क्रोधरूप संक्रमण भया तातैं याकौं क्रोधका द्रव्यविषै मिलाइए ऐसैं सर्व मोहके द्रव्यका साधिक आठवां भागमात्र लोभका द्रव्य भया। किंचिदून आठवां भागमात्र मायाका द्रव्य भया। किंचिदून आठवां भागमात्र मानका द्रव्य भया। किंचिदून पांचगुणा आठवां भागमात्र क्रोधका द्रव्य भया। ऐसैं अपने अपने द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ तहां एक भागमात्र द्रव्य ग्रहि अपूर्व स्पर्धक करिए है ते क्रोधादिकनिके अपूर्व स्पर्धक अधिक क्रम लीएं हैं। तहां क्रोधके अपूर्व स्पर्धक स्तोक हैं। यातैं याकौं अनंतका भाग दीए एक भागमात्र अधिक मानके अपूर्व स्पर्धक हैं। बहुरि यातैं याकौं पूर्व भागहारतैं एक अधिक भागहारका भाग दीएं एक भागमात्र अधिक मायाके अपूर्व स्पर्धक हैं। बहुरि यातैं याकौं पूर्व भागहारतैं एक अधिक भागहारका भाग दीएं तहां एक भागमात्र अधिक लोभके अपूर्व स्पर्धक हैं।

अंक संदृष्टिकरि जैसैं क्रोधके अपूर्व स्पर्धक अठारह १८ याकौं छहका भाग दीएं तीन पाए तिनकौं तहां अधिक कीएं मानके इकईस हो हैं। याकौं पूर्व भागहारतैं एक अधिक सात ताका भाग दीएं तीन पाए तिनकरि अधिक मायाके चौईस हो हैं। इनकौं पूर्व भागहारतैं एक अधिक आठ तिनिका भाग दीएं तीन पाए तिनकरि अधिक लोभके सत्ताईस हो हैं। ऐसैं यथार्थकरि क्रोधादिकनिके अपूर्व स्पर्धक क्रमतैं अधिक अधिक जानने। ऐसैं अपूर्व स्पर्धक करनेके कालके प्रथमादि समयनिविषै अपूर्व स्पर्धक करिए है ॥४६८॥

विशेष—यहाँ क्रोध, मान, माया और लोभके अपूर्व स्पर्धक उत्तरोत्तर विशेष अधिक होते हैं इसका स्पष्टीकरण करते हुए बतलाया है कि उस विशेषका प्रमाण अपूर्व स्पर्धकोंके संख्यातवें भागप्रमाण या असंख्यातवें भागप्रमाण न होकर उत्तरोत्तर अनन्तवें भागप्रमाण है। उदाहरणार्थ—मान लो क्रोधके अपूर्व स्पर्धक १६ और अनन्तका प्रमाण ४ है। तो १६ में ४ का भाग देने पर लब्ध ४ आये। इन्हें १६ में जोड़ने पर २० मानके अपूर्व स्पर्धक हो जाते हैं। आगे १ अधिक ४ का २० में भाग देने पर २४ मायाके अपूर्व स्पर्धक होते हैं। पुनः १ + १ = २ अधिक ४ का भाग २४ में देने पर २८ लोभके अपूर्व स्पर्धक होते हैं। जयधवलामें इसी अंक संदृष्टिकी अपेक्षा क्रोध, मान, माया और लोभके क्रमशः १६, २०, २४ और २८ अपूर्व स्पर्धक बतलाये हैं। पण्डितजीने अपनी टीकामें इसे ही दूसरी अंक संदृष्टि कल्पित कर स्पष्ट किया है। दोनोंका आशय एक है।

समखंडं सविसेसं णिक्खवियोकड्ढिदादु सेसघणं।
पक्खेवकरणसिद्धं इगिगोउच्छेण उभयत्थ ॥४६९॥

समखंडं सविशेषं निक्षिप्यापकर्षितात् शेषधनं।
प्रक्षेपकरणसिद्धं एकगोपुच्छेन उभयत्र ॥४६९॥

---

१. पढमसमए णिव्वत्तिज्जमाणगेसु अपुव्वफद्दएसु पुव्वफद्दएहिंतो ओकड्डिदूण पदेसग्गमपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए बहुअं देदि। विदियाए वग्गणाए विसेसहीणं देदि। एवमणंतराणंतरेण गंतूण चरिमाए अपुव्वफद्दयवग्गणाए विसेसहीणं देदि। तदो चरिमादो अपुव्वफद्दयवग्गणादो पढमस्स पुव्वफद्दयस्स आदिवग्गणाए असंखेज्जगुणहीणं देदि। बिदियाए पुव्वफद्दयवग्गणाए विसेसहीणं देदि। सेसासु सव्वासु पुव्वफद्दयवग्गणासु विसेसहीणं देदि। क० पु० पृ० ७९२–७९३।

स० चं०—अपकर्षण कीया जो द्रव्य तिसविषै कितने इक द्रव्य तौ विशेष सहित समखण्ड-रूप अपूर्व स्पर्धकनिविषै निक्षेपणकरि अवशेष धन हैं सो ऐसैं एक गोपुच्छकरि उभयत्र कहिए पूर्व अपूर्व स्पर्धकनिविषें निक्षेपण करना सिद्ध भया। सोई कहिए है—

अपकर्षण कोया जो द्रव्य तिसविषै केता इक द्रव्यकरि तौ अपूर्व स्पर्धक पूर्वै न थे ते नवीन सद्भावरूप करिए है अर अवशेष द्रव्य रहे सो पूर्व स्पर्धक पूर्वै थे अर अपूर्व स्पर्धक न भए तिन-विषै निक्षेपण करिए है। तहां अपूर्व स्पर्धक केते द्रव्यकरि करिए है ? सो कहिए है—

पूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणाका द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ तहां एक भागमात्र द्रव्य ग्रहि अपूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणाविषै तिस द्रव्यकरि केते इक वर्ग करिए है। बहुरि ऐसैं ही दोय घाटि अपकर्षण भागमात्र पूर्व स्पर्धककी द्वितीयादि वर्गणानिके परमाणूनिकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ तहां एक भागमात्र द्रव्यकौं ग्रहि अपूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणाविषै निक्षेपण करिए है। इनकौं मिलाएं वर्गणाके द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीएं तहां एक भाग विना बहुभागमात्र द्रव्य भया सो वर्गणाका द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग देनेतैं अर एक घाटि अपकर्षण भागहारमात्र वर्गणाका द्रव्य ग्रह्या तातैं एक घाटि अपकर्षण भागहारकरि गुणनेतैं यहु द्रव्य पूर्व स्पर्धककी वर्गणाका द्रव्यके समान हो है, जातैं पूर्व स्पर्धकनिकी सर्व वर्गणानिके द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ तहां एक भागमात्र द्रव्य अपकर्षण कीया तब तहां बहु-भागमात्र द्रव्य रह्या सो इतना यहु द्रव्य भया, सो इतने द्रव्यकरि तौ अपूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणा भई। बहुरि ताके ऊपरि इतने इतने द्रव्य ही करि अपूर्व स्पर्धककी अन्य द्वितीयादि वर्गणा भईं सो अपूर्व स्पर्धकनिका जो प्रमाण अर एक स्पर्धकनिविषै जो वर्गणानिका प्रमाण इन दोऊ-निकौं परस्पर गुणें जेता प्रमाण होइ तितनी अपूर्व स्पर्धकनिकी वर्गणा हैं सो एक वर्गणाका पूर्वोक्त प्रमाण द्रव्य होइ तौ इतनी वर्गणाका केता द्रव्य होइ ऐसैं त्रैराशिककरि पूर्वोक्त द्रव्यकौं अपूर्व स्पर्धकको वर्गणानिका प्रमाणकरि गुणैं अपूर्व स्पर्धककी वर्गणानिके आदि धनका प्रमाण हो हैं। सो यहु तौ पूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके सदृश अपूर्व स्पर्धकनिकी सर्व वर्गणानिकी समान अपेक्षाकरि समपट्टिका द्रव्य भया। अब इनविषै जो विशेष कहिए चय ते जैसैं वंधती पाइए है सो कहिए है—

पूर्व स्पर्धकनिविषैं गुणहानि गुणहानिप्रति उपरितैं नीचैं दूणा दूणा विशेषका प्रमाण है सो इहां पूर्व स्पर्धककी प्रथम गुणहानिके नीचैं अपूर्व स्पर्धकनिकी रचना भई, तातैं पूर्व स्पर्धकनिकी प्रथम गुणहानिविषैं जो विशेषका प्रमाण पूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणाकौं दो गुणहानिका भाग दीएं हो है, तातैं दूणां अपूर्व स्पर्धकनिविषैं विशेषका प्रमाण जानना सो ऐसा एक विशेष तो अपूर्व स्पर्धक-की प्रथम वर्गणाके नीचैं भई जो अंत अपूर्व स्पर्धकको अंत वर्गणा तीहिविषैं अधिक हो है। बहुरि ताके नीचैं द्विचरम वर्गणाविषै दोय विशेष अधिक हो हैं। ऐसैं क्रमतैं एक एक विशेष अधिक होइ, अपूर्व स्पर्धकनिकी वर्गणाका जेता प्रमाण तितने विशेष प्रथम अपूर्व स्पर्धकको प्रथम वर्गणाविषैं हो है सो इहां आदि एक उत्तर एक गच्छ अपूर्व स्पर्धक वर्गणामात्र स्थापि "सैकपदाहतपददले" इत्यादि सूत्रकरि जेता संकलनधन होइ तितना उत्तर धन जानना। सो पूर्वोक्त आदि धन अर इस उत्तर धनकौं जोडैं जो प्रमाण होइ तितना द्रव्यकौं तिस अपकर्षण कीया द्रव्यतैं ग्रहि करि ऐसैं अपूर्व स्पर्धकनिकी रचना करिए है। पूर्व स्पर्धक तो पर्वै थे, तातैं तिनका सद्भाव होनेकौं

इतना द्रव्य तौ जुदा हो अपूर्व स्पर्धकनिविषै दीया सो जैसैं गऊका पूंछ क्रमतैं मोटाईकी अपेक्षा घटता हो है तैसें इहां चय घटता क्रम होनेतैं अपूर्व स्पर्धकनिका एक गोपुच्छ भया। बहुरि ताके ऊपरि पूर्व स्पर्धकनिकी भी रचना चय घटता क्रम लीएं हैं। तातैं पूर्व अपूर्व स्पर्धकनिका मिलकरि भी एक गोपुच्छ हो है सो ऐसैं एक गोपुच्छ होनेकरि तिस अपकर्षण किया द्रव्यविषै पूर्वोक्त द्रव्य घटाएं जो अवशेष द्रव्य रह्या सो पूर्व स्पर्धक वा अपूर्व स्पर्धकनिविषैं सर्वत्र विभाग करि देना। तहां अपूर्व स्पर्धककरि वर्गणाप्रमाण एक शलाका स्थापि ताका भाग अपूर्व स्पर्धकवर्गणा प्रमाणकौं दीएं अपूर्व स्पर्धकसम्बन्धी तौ एक शलाका भई अर ताहीका भाग ड्योढ गुणहानि गुणित पूर्व स्पर्धक वर्गणाप्रमाणकौं दीएं असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहारका ड्योढगुणा करिए इतनी पूर्व स्पर्धककी वर्गशलाका भई। इहां पूर्व स्पर्धककी एक गुणहानिविषै जो स्पर्धकनिका प्रमाण है ताकौं असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहारका भाग दीएं अपूर्व स्पर्धकनिका प्रमाण हो है, तातैं असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहार कह्या। अर पूर्व स्पर्धकनिविषैं नाना गुणहानि अनंती है तथापि द्रव्यकी अपेक्षा ड्योढ गुणहानिगुणित वर्गणामात्र ही है, तातैं ड्योढका गुणकार कीया है ऐसा जानना। सो पूर्व अपूर्व स्पर्धकनिकी शलाकानिकौं मिलाय ताका भाग तिस अपकर्षण कीया द्रव्यविषैं जो अवशेष द्रव्य रह्या था ताकौं दीएं जो प्रमाण आया ताकौं पूर्व स्पर्धकसम्बन्धी बहु शलाकाकरि गुणैं पूर्व स्पर्धकनिविषैं देने योग्य द्रव्यका विभाग आवै है अर तिसहीकौं अपूर्व स्पर्धकसम्बन्धी एक शलाकाकरि गुणैं अपूर्व स्पर्धकनिविषैं देने योग्य द्रव्यका विभाग आवै है सो इस अपूर्व स्पर्धकका विभागरूप द्रव्य अर जिस द्रव्यकरि पूर्वौं अपूर्व स्पर्धककी रचना करनी कही थी ऐसें चयधन सहित समपट्टिकारूप धन इन दोऊनिकौं मिलाएं अपूर्व स्पर्धकसम्बन्धी सर्व द्रव्य भया। सो 'अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे 'इत्यादि सूत्रकरि ताकौं अपूर्व स्पर्धकवर्गणा प्रमाण जो गच्छ ताका भाग दीएं मध्य धन होइ। याकौं एक घाटि जो गच्छ ताका आधा प्रमाण करि हीन जो दोगुणहानि ताका भाग दीएं विशेष होइ सो एक घाटि गच्छका आधा जो प्रमाण होइ तितने विशेष तिस मध्य धनविषैं जोडें जो होइ तितना द्रव्य अपूर्व स्पर्धकनिकी आदि वर्गणाविषैं दीजिए है, तातैं एक-एक विशेष घटता क्रम लीएं द्वितीयादि वर्गणानिविषैं क्रमतैं दीजिए है। ऐसैं एक घाटि गच्छप्रमाण चयनिकरि हीन द्रव्य अंत वर्गणाविषैं दीजिए है। ऐसैं तौ अपूर्व स्पर्धक नवीन कीए।

बहुरि पूर्व स्पर्धकनिकी रचना तौ पूर्वैं थी ही, अब इनविषैं इहां पूर्वोक्त बहुशलाकानिका जो विभागरूप द्रव्य कह्या था सो देना। सो 'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा' इत्यादि सूत्रकरि तिस पूर्व स्पर्धकसम्बन्धी विभागरूप द्रव्यकौं साधिक ड्योढ गुणहानिका भाग दीएं जेता प्रमाण होइ तितना द्रव्य तो पूर्व स्पर्धकनिकी आदि वर्गणाविषैं निरूपण करिए है। बहुरि याकौं दो गुणहानिका भाग दीएँ विशेषका प्रमाण होइ सो ऊपरि द्वितीयादि वर्गणानिविषै प्रथम गुणहानि-पर्यंत एक-एक विशेष घटता क्रम लीएं अर गुणहानि गुणहानि प्रति आधा-आधा क्रम लीएं द्रव्य निक्षेपण करिए है ॥४६९॥

विशेष—यहाँ एक गोपुच्छाकार रूपसे अपूर्व और पूर्व स्पर्धकोंकी रचना कैसे होती है इसका स्पष्टीकरण करते हुए दोनों प्रकारके स्पर्धकोंमें चयक्रमसे उत्तरोत्तर हीन जो द्रव्य प्राप्त होता है उसे अलग करके दो प्रकारके स्पर्धकोंकी प्रत्येक वर्गणामें समानरूपसे कितना द्रव्य प्राप्त होता है इसका निर्देश करके पुनः जिस क्रमसे विशेष (उत्तर) द्रव्यका उत्तरोत्तर विभाजन होकर

एक गोपुच्छाकाररूपसे अपकर्षित द्रव्यकी रचना किस विधिसे बन जाती है इसे ही यहाँ स्पष्ट किया गया है। खुलासा इस प्रकार है—

अपूर्व स्पर्धकोंमें और पूर्व स्पर्धकोंमें वर्गणाक्रमसे किस प्रकार द्रव्यका निक्षेपण होता है उसका क्रम यह है कि अश्वकर्णकरणके प्रथम समयमें पूर्व स्पर्धकोंमेंसे अपकर्षण करके जो अपूर्व स्पर्धकोंकी रचना होती है उनमेंसे अपूर्व स्पर्धकोंकी आदि वर्गणामें बहुत प्रदेश देता है, उससे दूसरी वर्गणामें विशेष हीन प्रदेश देता है। इस प्रकार अपूर्व स्पर्धकोंकी अन्तिम वर्गणा तक विशेषहीन विशेषहीन द्रव्य देता है। और इस प्रकार अपूर्व स्पर्धककी जो अन्तिम वर्गणा प्राप्त होती है उससे पूर्व स्पर्धककी आदि वर्गणामें असंख्यातगुणा हीन द्रव्य देता है। उसके बाद आगे पूर्व स्पर्धककी सभी वर्गणाओंमें विशेषहीन विशेषहीन द्रव्य देता है। विशेष स्पष्टीकरण इस प्रकार है—अपूर्व स्पर्धकोंके वर्गणाविशेषोंका जितना प्रमाण प्राप्त हो उनसे पूर्व स्पर्धककी आदि वर्गणाके द्रव्यको अधिक करके निक्षिप्त करनेपर अपूर्व स्पर्धककी आदि वर्गणामें कितना द्रव्य प्राप्त होता है इसका प्रमाण आ जाता है। ऐसा करनेपर ही पूर्व और अपूर्व स्पर्धकोंकी एक गोपुच्छाकार रूपसे श्रेणिकी उत्पत्ति बन जाती है। इससे आगे दूसरी आदि वर्गणाओंमें दो गुणहानि प्रतिभागके अनुसार एक-एक वर्गणाविशेषसे उत्तरोत्तर हीन करते हुए अपूर्व स्पर्धकोंकी अन्तिम वर्गणा तक ले जाना चाहिये। ऐसा करने पर अपूर्व स्पर्धकोंकी आदि वर्गणामें निक्षिप्त हुए प्रदेशपुंजसे उन्हींकी अन्तिम वर्गणामें निक्षिप्त हुआ प्रदेशपुंज उतने वर्गणाविशेषोंसे हीन होता है आदि वर्गणासे जितने वर्गणाविशेष न्यून होकर अन्तिम वर्गणा प्राप्त हुई है। ऐसा होते हुए भी अन्तिम वर्गणा आदि वर्गणासे असंख्यातवें भागप्रमाण हीन होती है ऐसा यहाँ समझना चाहिये, क्योंकि वहाँ प्राप्त हुए अपूर्व स्पर्धक एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं, इसलिए अपूर्व स्पर्धकसम्बन्धी वर्गणाओंमें अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा अनन्तवें भाग हीन और परम्परोपनिधाकी अपेक्षा आदि वर्गणासे अन्तिम वर्गणामें असंख्यातवें भागहीन द्रव्यको निक्षिप्त करता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार अपूर्व स्पर्धकों और पूर्व स्पर्धकोंमें किस विधिसे द्रव्यका निक्षेप होता है इसकी विधि कही।

ओक्कड्डिदं तु देदि अपुव्वादिमवग्गणाए हीणकमं।
पुव्वादिवग्गणाए असंखगुणहीणयं तु हीणकमा ॥४७०॥

अपकर्षितं तु ददाति अपूर्वादिमवर्गणातः हीनक्रमं।
पूर्वादिवर्गणायामसंख्यगुणहीनकं तु हीनक्रमं ॥४७०॥

स० चं०—पूर्वोक्त विधान करिए अपकर्षण कीया जो द्रव्य तिसविषै ते अपूर्व स्पर्धककी आदि वर्गणाविषै बहुत द्रव्य दीजिए है, तातैं ताकी द्वितीयादि अंत वर्गणापर्यंत विषै विशेष घटता क्रम लीएं द्रव्य दीजिए है। बहुरि अपूर्व स्पर्धककी अंत वर्गणाविषैं जो द्रव्य दीया तातैं साधिक अपकर्षण भाग जो असंख्यात तितना गुणा घटता पूर्व स्पर्धकको प्रथम वर्गणाविषैं द्रव्य दीजिए है। इहां नवीन द्रव्य दीया तिसहीकी विवक्षा जाननी। इस पूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणाका पुरातन द्रव्य, वर्गणाके द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीएं बहुभागमात्र है। तिस सहित नवीन दीया द्रव्य है सो अपूर्व स्पर्धककी अंत वर्गणाके द्रव्यतैं एक विशेषमात्र ही घटता जानना। जातैं अपूर्व स्पर्धकनिका एक गोपुच्छ भया है। बहुरि तिस पूर्व स्पर्धककी प्रथम

वर्गणातैं उपरि द्वितीयादि वर्गणानिविषैं एक एक चय घटता द्रव्य निक्षेपण करिए है। इस ही कथनके विशेष निर्णय करनेकौं क्षेत्ररूप कल्पनाकरि स्थापि कथन कीजिए है—

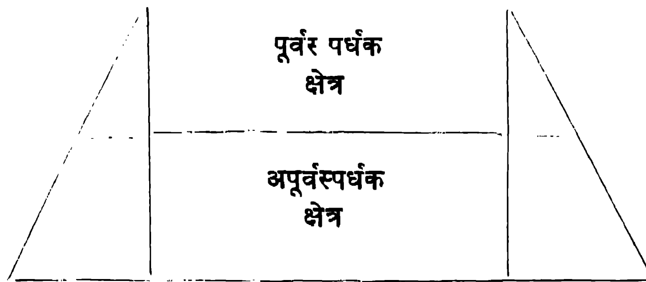
पूर्व स्पर्धकनिका सर्व द्रव्य ड्योढ गुणहानिगुणित प्रथम वर्गणामात्र है सो ड्योढ गुणहानिका जेता प्रमाण तितना लंवा अर प्रथम वर्गणाका जेता परमाणू तिनका प्रमाण तितना चौड़ा क्षेत्र ऐसा स्थापना |_| । यामैं अपकर्षण कीया द्रव्यकौं जुदा करनेके अर्थि चौडाई विषै अपकर्षणका भागहारका जेता प्रमाण तितने खंड करिए तब ऐसा हो है— |_|_|_|_|_| । तहां ऐसैं अपकर्षण भागहारका भाग दीएं एक भागमात्र चौडा क्षेत्र एक खंडका है सो अपकर्षण कीया द्रव्यका स्वरूप जानना। अवशेष बहुभागमात्र चौडा क्षेत्र अवशेष खंडनिका रह्या सो अपकर्षण कीएं पीछैं अवशेष पूर्व स्पर्धकस्वरूप जानने। लंबे ते दोऊ ही स्पर्धक गुणहानिमात्र हैं। ते एक खंड बहुखंढ ऐसैं भए |_|_| । बहुरि तहां एक खंड ऐसा |_| तीहिंविषै अपकर्षण कीया द्रव्यका विभाग करनेके अर्थि एक गुणहानिका स्पर्धक प्रमाणकौं असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहारका भाग दीएं अपूर्व स्पर्धकनिका प्रमाण होइ अर तहां लंबाई ड्योढ गुणहानिमात्र थी तातैं असंख्यातगुणा जो अपकर्षण भागहार ताकौं ड्योढगुणा कीएं जेता प्रमाण तितना तिस एक खंडकी लंबाईविषै खंड ऐसे [आकृति] करने। तहां एक खंडविषैं लंबाईका प्रमाण अपूर्वस्पर्धकनिका प्रमाण मात्र आया, चौडे पूर्वोक्त प्रमाणमात्र है ही। बहुरि इन खंडनिविषैं जिस द्रव्यकरि अपूर्व स्पर्धक नवीन बनैं तिस द्रव्यस्वरूप साधिक एक घाटि अपकर्षण भागहारमात्र खंड ग्रहण करने। इहां अपूर्व स्पर्धक प्रमाण गच्छका एकवार संकलन धनमात्र जे पूर्व स्पर्धकसंबंधी विशेषतैं दूणा प्रमाण लीएं विशेष तिनका अधिकपना साधिक शब्दकरि जानना। सो तिन खंडनिकौं ग्रहणकरि पूर्वै जे अवशेष बहुखंडमात्र पूर्व स्पर्धकस्वरूप क्षेत्र ऐसा |_| रह्या था ताके नीचैं अविरोधपने जोडिए सो जोडने योग्यतै सर्व खंडनिकौं चौडाईविषैं वरोवरि आगैं ऐसे |_|_|_|_|_| स्थापिए तब प्रथम वर्गणाकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीएं एक खंडकी चौडाई है ताकौं इहां ग्रहे हुए खंडनिका प्रमाण एक घाटि अपकर्षण भागहारमात्र ताकरि गुणैं चौडाईका प्रमाण हो है सो अवशेष पूर्व स्पर्धकरूप क्षेत्रकी चौडाईके समान हो है। बहुरि इहां ग्रहे हुए खंडनिका प्रमाणविषैं विशेषनिका साधिकपना कह्या है तातैं तिस पूर्व स्पर्धकस्वरूप क्षेत्रतैं चौडाईका प्रमाण क्रमतैं किछू साधिक जानना। अर इहां जोडनेयोग्य खंडनिकी लंबाई अपूर्वस्पर्धक प्रमाणमात्र है तातै नीचैं जोडया क्षेत्रका लंबाईका प्रमाण अपूर्व स्पर्धकप्रमाण मात्र भया सो ऐसैं पूर्व स्पर्धकनिका क्षेत्रके नीचैं तिस द्रव्यकरि अपूर्व स्पर्धककी रचना भई तिस द्रव्यरूप जो ग्रहे खंडनिका अपूर्व स्पर्धकरूप क्षेत्र ताकौं जोडैं ऐसा [पूर्वस्पर्धक क्षेत्र / अपूर्वस्पर्धक क्षेत्र] भया। ऐसैं पूर्व

पूर्वस्पर्धक क्षेत्र

अपूर्वस्पर्धक क्षेत्र

स्पर्धकको प्रथम वर्गणातैं अपूर्व स्पर्धकनिकी वर्गणा अनुक्रमतैं विशेष अधिक जाननी। बहुरि अपकर्षण कीया द्रव्यविषैं जितना द्रव्यकरि अपूर्व स्पर्धक बनै तिनरूप क्षेत्र जोडनेका विधान तौ कह्या अब अवशेष रह्या द्रव्य पूर्व अपूर्व स्पर्धकनिविषैं देना तिसरूप क्षेत्र जोडनेका विधान कहिए है—

असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहारतैं ड्योढगुणा प्रमाण लीएं खंड कीए थे तिनविषैं साधिक एक घाटि अपकर्षण भागहारमात्र खंड ग्रहण कीएं पीछैं अवशेष जे खंड रहे तिन विषैं एक खंड ऐसा |‾| ताकौं सकल खंड कहिए। ताकी चौडाई विषैं असंख्यातगुणा अपकर्षणभागहारतैं ड्योढगुणा प्रमाणमात्र खंड ऐसे |‾|‾|‾|‾|‾| करने सो इतने खंडनिकौं विकल खड कहिए। तहां एक विकल खंडकौं अपूर्व स्पर्धकसंबंधी क्षेत्रकी चौडाई विषै क्रमतै जोडना अर अवशेष विकल्प खंडनिकों तैसैं ही पूर्व स्पर्धकसंबंधी क्षेत्रकी चौडाईविषैं अनुक्रम परिपाटी लीएं जोडना। याही प्रकार जेते अवशेष सकल खंड रहे तिनकौं पूर्व अपूर्व स्पर्धकसंबंधी क्षेत्रविषैं अविरोधपने चौडाईविषैं जानने। ऐसैं जोडैं ऐसा—

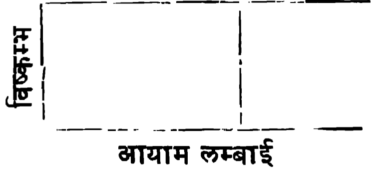


क्षेत्र भया। इहां पूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणाविषैं जोडैं समस्त विकल खंड ते मिलिकरि भी एक सकल खंडप्रमाण न भए, जाते अपकर्षण भागहारमात्र विकल खंडनिकरि हीन हो हैं। ऐसैं पूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणाविषैं दीया किंचिदून एक सकल खंड है। अर अपूर्व स्पर्धककी अंत वर्गणा विषैं पहिले वा पीछै दीए हुए एक घाटि अपकर्षण भागहारमात्र सकल खंड हैं, तातैं अपूर्व स्पर्धककी अंत वर्गणाविषैं दीया द्रव्यतैं पूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणाविषैं दीया द्रव्य असंख्यातगुणा घटता है। असंख्यातका प्रमाण इहां साधिक अपकर्षण भागहारमात्र जानना। ऐसैं पूर्वोक्त कथनकौं क्षेत्र-रूप स्थापि प्रगट कीया ॥४७०॥

विशेष—श्री जयधवलाजीमें प्रकृत विषयको इस प्रकार स्पष्ट किया है—अपूर्व और पूर्व स्पर्धकोंकी वर्गणाओंमें अपकर्षित द्रव्यका निक्षेप किस विधिसे लेकर समूचे द्रव्यकी एक गोपुच्छा-कार रचना हो जाती है इसका निर्देश हम ४६९ गाथाकी टीकाके अन्तमें ही कर आये हैं। यहाँ सर्व प्रथम यह देखना है कि पूर्व स्पर्धकोंकी आदि वर्गणामें जो द्रव्य प्राप्त होता है वह निक्षिप्त-होने वाले द्रव्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कैसे होता है। आगे इसपर विचार करते हैं। यथा—अपूर्व स्पर्धकोंकी अन्तिम वर्गणामें प्राप्त द्रव्य पूर्व स्पर्धककी आदि वर्गणासे एक वर्गणा विशेष मात्र अधिक होता है। साथ ही पूर्व स्पर्धककी आदि वर्गणामें प्राप्त हुआ द्रव्य वहाँ पूर्वके

अवस्थित द्रव्यके असंख्यातवें भागमात्र ही होता है, क्योंकि अपकर्षित हुए समस्त द्रव्यके असंख्यात बहुभागप्रमाण द्रव्यके डेढ़ गुणहानि द्वारा अपवर्तित कर पुनः साधिक अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारके द्वारा आदि वर्गणाके भाजित किये जानेपर वहाँ एक खण्डमात्र द्रव्य ही उपलब्ध होता है। अब इसी अर्थको क्षेत्रविन्यास विधिसे स्पष्ट करते हैं—

पूर्व स्पर्धकोंकी आदि वर्गणाके प्रमाणसे समस्त द्रव्यके किये जानेपर डेढ़ गुणहानिप्रमाण आदि वर्गणाएँ प्राप्त होती हैं, इसलिए उनका क्षेत्र विन्यास इस प्रकार स्थापित करना चाहिये—



जितना आदि वर्गणाका विष्कम्भ है उतनी चौड़ाई लिए यह क्षेत्र है। तथा डेढ़ गुणहानि प्रमाण लम्बा है। इस प्रकार क्षेत्रकी स्थापना कर पुनः अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारप्रमाण विष्कम्भकी ओरसे इस क्षेत्रकी फालियाँ (फाकें) करनी चाहिये।

ऐसा करके वहाँ एक कम अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारप्रमाण फालियोंको वहीं स्थापितकर उनमेंसे एक फालिको ग्रहणकर उसे पृथक् स्थापित करनेपर | ______ | ___ | उस निकाली हुई फालिप्रमाण अपूर्व स्पर्धकोंको करनेसे वह अपकर्षित समस्त द्रव्य प्रमाण होती है। अर्थात् अपूर्व स्पर्धकोंकी रचनाके लिये जितने द्रव्यका अपकर्षण किया गया उसका प्रमाण आ जाता है।

पुनः आयामसे अपूर्व स्पर्धकोंको लानेके लिये गुणहानिका जो भागहार अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारसे असंख्यातगुणा है, द्वितीय भाग अधिक उससे इस फालिको खण्डित करना चाहिये। इस प्रकार खण्डित करनेपर वहाँ एक-एक खण्डका आयाम अपूर्व स्पर्धकके अध्वानप्रमाण होता है। पुनः वहाँ एक कम अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारप्रमाण खण्डोंके पहलेके क्षेत्रके नीचे आगमके अविरोध पूर्वक जोड़ देनेपर पूर्व स्पर्धककी आदि वर्गणाके साथ अपूर्व स्पर्धककी समस्त वर्गणाएँ सदृश प्रमाणको लिये हुए उत्पन्न हो जाती हैं।

इतनी विशेषता है कि अपूर्व वर्गणाके अध्वानके संकलनमात्र वर्गणाविशेषोंके बिना गोपुच्छाकार नहीं उत्पन्न होता, इसलिए तत्प्रमाण द्रव्यको भी अवशेष खण्डोंसे ग्रहणकर आगमके अविरोध पूर्वक यहाँ मिला देना चाहिये। किन्तु यह संकलन द्रव्य अप्रधान है, क्योंकि यह एक खण्डप्रमाण द्रव्यके असंख्यातवें भागमात्र है।

पुनः एक कम अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारप्रमाण खण्डोंसे हीन डेढ़ भागहारप्रमाण शेष समस्त खण्ड पूर्व और अपूर्व स्पर्धकोंमें विभाजित होकर पतित होते हैं ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये। खुलासा इस प्रकार है—

पुनः रूपाधिक द्वितीय भागसे अधिक एक प्रदेश गुणहानिस्थानान्तररूप भागहारका विरलन कर उसपर शेष खण्डोंमेंसे एक खण्डके प्रमाणको समान खण्ड करके देयरूपसे देनेपर एक-एक विरलनके प्रति अपूर्व स्पर्धकोंका आयाम प्राप्त होता है। वहाँ एक विरलनके प्रति प्राप्त फालिको ग्रहणकर उसे अपूर्व स्पर्धकोंके समस्त खण्डोंके पासमें लाकर स्थापित करना चाहिये। पुनः

समस्त विरलन अंकोंके प्रति प्राप्त बहुत खण्ड पूर्व स्पर्धकोंमें पतित होते हैं। इसी प्रकार शेष समस्त खण्डोंको भी पूर्व-अपूर्व स्पर्धकोंमें विभाजित कर देना चाहिये। इस प्रकार देनेपर पूर्व स्पर्धकोंको आदि वर्गणामें प्राप्त हुए सभी विकल खण्डोंको ग्रहणकर एक सकलखण्ड प्रमाण नहीं होता है, क्योंकि कुछ कम एक सकल खंडप्रमाण ही वह उपलब्ध होता है।

अब कितना प्रमाणरूप द्रव्य एक सकल खण्डप्रमाणको प्राप्त है ऐसी पृच्छा होनेपर समाधान यह है कि अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारप्रमाण विकल खण्ड यदि हैं तो एक सकल खण्डका प्रमाण प्राप्त होता है। परन्तु इतने प्रमाणरूप द्रव्य है नहीं, क्योंकि अधस्तन भागहारसे उपरिम खण्डसलाकाका गुणकार अपकर्षण-उत्कर्षणप्रमाण अंकोंसे हीनरूप देखा जाता है। इसलिये पूर्व स्पर्धकोंकी आदि वर्गणामें कुछ कम एक खंड प्रमाण ही द्रव्य प्राप्त हुआ यह सिद्ध होता है। अपूर्व स्पर्धकोंसे कियत्प्रमाण द्रव्य प्राप्त हुआ ऐसी पृच्छा होनेपर कहते हैं कि एक कम अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारप्रमाण सकल खंडप्रमाण और कुछ कम एक खंडप्रमाण द्रव्य प्राप्त होता है। इसलिए अपूर्व स्पर्धककी अन्तिम वर्गणामें निक्षिप्त हुए प्रदेशपुंजसे पूर्व स्पर्धककी आदि वर्गणा-में निक्षिप्त हुआ प्रदेशपुंज असंख्यातगुणा हीन है। यहाँ गुणकार कितना है ऐसी पृच्छा होनेपर कहते हैं कि साधिक अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारप्रमाण गुणकार है। इस कारणसे प्रथम पूर्व स्पर्धककी आदि वर्गणामें असंख्यातगुणे हीन प्रदेशपुंजको निक्षिप्तकर उससे पूर्व स्पर्धककी दूसरी वर्गणामें अनन्तवें भागप्रमाण विशेष हीन देता है। तथा इसी प्रकार पूर्व स्पर्धकोंकी शेष समस्त वर्गणाओंमें भी अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा विशेष हीन, विशेष हीन ही द्रव्य देता हैं।

कोहादीणमपुव्वं जेट्ठं सरिसं तु अवरमसरित्थं।
लोहादिआदिवग्गणअविभागा होंति अहियकमा[1] ॥४७१॥

क्रोधादीनामपूर्वं ज्येष्ठं सदृशं तु अवरमसदृशं।
लोभादिआदिवर्गणाअविभागा भवंति अधिकक्रमाः ॥४७१॥

स० चं०—क्रोधादिके चार्यो कषायनिका अपूर्व स्पर्धकनिकी उत्कृष्ट वर्गणा जो अंत स्पर्धककी प्रथम वर्गणा सो अनुभागके अविभागप्रतिच्छेदनिके प्रमाणकी अपेक्षा समान हैं। बहुरि जघन्य वर्गणा जो प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणा सो असमान है। तहां लोभादिककी जघन्य वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद क्रमकरि अधिक हैं। लोभकी जघन्य वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद तौ स्तोक हैं, तातैं मायाकीके अधिक है तातैं मानकीके अधिक हैं तातैं क्रोधकीके अधिक हैं ॥४७१॥

सगसगफड्ढयएहिं सगजेट्ठे भाजिदे सगीआदि।
मज्झे वि अणंताओ वग्गणगाओ समाणाओ[2] ॥४७२॥

स्वकस्वकस्पर्धकैः स्वकज्येष्ठे भाजिते स्वकीयादि।
मध्येऽपि अनंता वर्गणाः समानाः ॥४७२॥

---

१. तेसिं चेव पढमसमए णिव्वत्तिदाणमपुव्वफद्दयाणं लोभस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं थोवं। मायाए आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं विसेसाहियं। माणस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं विसेसाहियं। कोहस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं विसेसाहियं। एवं चदुण्हं पि कसायाणं जाणि अपुव्वफद्दयाणि तत्थ चरिमस्स अपुव्वफद्दयस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं चदुण्हं पि कसायाणं तुल्लमणंतगुणं। क० चु० पृ० ७९१–७९२। २. जयध० प्रे० पृ० ६९२४–६९२८।

स० चं—सामान्य आलापकरि अभव्य राशितैं अनंतगुणा वा सिद्धराशिके अनंतवें भागमात्र हीनाधिकरूप जो अपना अपना स्पर्धकनिका जो प्रमाण ताका भाग अपनी अपनी उत्कृष्ट वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदनिका प्रमाणकौं दीएं अपनी अपनी आदि वर्गणाका प्रमाण आवै है।

अंकसंदृष्टिकरि जैसैं च्यारयो कषायनिके समान प्रमाण लीएं उत्कृष्ट वर्गणाके अविभाग-प्रतिच्छेद पन्द्रहसौ बारह १५१२, इनकौं लोभ माया मान क्रोधके स्पर्धकनिका प्रमाण क्रमतैं सत्ताईस चौबीस इकईस अठारह तिनका भाग दीएं लोभको जघन्य वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद छप्पन ५६, मायाकीके तरेसठि ६३, मानकीके बहत्तरि ७२, क्रोधकीके चौरासी ८४ हो हैं। अथवा अपनी अपनी जघन्य वर्गणानिके अविभागप्रतिच्छेदनिका प्रमाणकौं अपनी-अपनी स्पर्धकनिका प्रमाणकरि गुणैं अपनी अपनी उत्कृष्ट वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदनिका प्रमाण हो है। कैसैं? सो कहिए है—

लोभादिककी प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद समूहतैं दूसरे स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके दूणे, तीसरे स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके तिगुणे, चौथे स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके चौगुणे ऐसैं क्रमतैं जितने अपने स्पर्धकनिका प्रमाण तितनेगुणे अंत स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदनिका प्रमाण हो है सो च्यारयो कषायनिका समान है। बहुरि मध्यविषै भी अनंत वर्गणा च्यारयो कषायनिकी परस्पर समान हो है सो कथन आगैं करिए है ॥४७२॥

जे हीणा अवहारे रूवा तेहिं गुणित्तु पुव्वफलं।
हीणवहारेणहिये अद्धं (लब्धं) पुव्वं फलेणहियं ॥४७३॥

ये हीना अवहारे रूपाः तैः गुणितं पूर्वफलं।
हीनावहारेणाधिके अर्धं (लब्धं) पूर्वं फलेनाधिकं ॥४७३॥

स० चं—इस गाथाका अर्थरूप व्याख्यान क्षपणसारविषै किछू कीया नाहीं अर मेरे जाननेमें भी स्पष्ट न आया, तातैं इहां न लिख्या है। बुद्धिमान होइ यथार्थ याका अर्थ होइ सो जानियो ॥४७३॥

कोहदुसेसेणवहिदकोहे तक्कंडयं तु माणतिए।
रूपहियं सगकंडयहिदकोहादी समाणसला ॥४७४॥

क्रोधद्विशेषेणावहितक्रोधे तत्कांडकं तु मानत्रयं।
रूपाधिकं स्वककांडकहितक्रोधादि समानशलाकाः ॥४७४॥

स० चं—क्रोधद्विक अवशेष कहिए क्रोधके स्पर्धकनिका प्रमाणकौं मानके स्पर्धकनिका प्रमाणविषै घटाएं जो अवशेष रहै ताका भाग क्रोधके स्पर्धकनिका प्रमाणकौं दीएं जो प्रमाण आवै ताका नाम क्रोधकांडक है। बहुरि मानत्रिकविषै एक एक अधिक है सो क्रोधकांडकतैं एक अधिकका नाम मानकांडक है। यातैं एक अधिकका नाम मायाकांडक है। यातैं एक अधिकका नाम लोभकांडक है।

अंकसंदृष्टिकरि जैसैं क्रोधके स्पर्धक अठारह, ते मानके इकईस स्पर्धकविषैं घटाएं अवशेष तीन, ताका भाग क्रोधके अठारह स्पर्धककौं दीएं क्रोधकांडकका प्रमाण छह यातैं एक एक अधिक मान माया लोभके कांडकनिका प्रमाण क्रमतैं सात आठ नव रूप जानने। बहुरि अपने अपने कांडकनिका भाग अपने अपने स्पर्धकनिका प्रमाणकौं दीएं जो नाना कांडकनिका प्रमाण

आगै तितनी वर्गणानिके अविभागप्रतिच्छेद च्यारयो कषायनिके परस्पर समान हो हैं। कैसैं ? सो कहिए है—

क्रोधादिककी प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणातैं द्वितीय तृतीयादि स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके अविभाग प्रतिच्छेद क्रमतैं दूणे तिगुणे इत्यादि होइ अपनां अपना कांडकका जेता प्रमाण तितना स्थान भए जो स्पर्धक ताकी प्रथम वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद च्यारयो कषायनिके समान हो हैं। बहुरि तहातैं ऊपरि प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके जेते अविभागप्रतिच्छेद तितने तितने एक एक स्पर्धककी प्रथम वर्गणाविषै बंधते अपने अपने कांडकप्रमाण स्थान भए जो स्पर्धक ताकी प्रथम वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद समान हो हैं। या प्रकार अपना अपना कांडकमात्र स्पर्धक भए च्यारयो कषायनिकी वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदनिकी समानता होतैं नाना कांडक-प्रमाण वर्गणानिविषै समानता हो है।

अंकसंदृष्टिकरि जैसैं क्रोध मान माया लोभके प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके अविभाग-प्रतिच्छेद क्रमतैं चौरासी बहत्तरि तरेसठि छप्पन हैं। बहुरि ताके ऊपरि एक एक स्पर्धककी प्रथम वर्गणाविषै तितने-तितने बंधते अपना कांडकमात्र छह सात आठ नव स्पर्धक भए तहां प्रथम वर्गणाके अविभाग प्रतिच्छेद च्यारयो कषायनिके परस्पर समान पांचसै च्यारि हैं। बहुरि ताके ऊपरि तैसैं ही बधती होतैं अपने कांडकमात्र स्पर्धक भए तहां प्रथम वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद च्यारयो कषायनिके समान एक हजार आठ हो हैं। बहुरि ताके ऊपरि तैसैं ही बधती होतैं अपने कांडक-मात्र स्थान भए तहां प्रथम वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेद च्यारयो कषायनिके समान पन्द्रहसौ बारह हो हैं ऐसैं अपना अपना कांडकका भाग अपना अपना स्पर्धक प्रमाणकौं दीए नाना कांडक का प्रमाण तीन पाया सो तीन ही स्पर्धकनिकी प्रथम वर्गणा परस्पर समानरूप हैं और वर्गणानिका समानरूप नाही है।

क्रोध	मान	माया	लोभ
१५१२	१५१२	१५१२	१५१२
०	०	०	०
०	०	०	०
१०९२	१०८०	१०७१	१०६४
१००८	१००८	१००८	१००८
०	०	०	०
०	०	०	०
५८८	५७६	५६७	५६०
५०४	५०४	५०४	५०४
४२०	४३२	४४१	४४८
३३६	३६०	३७८	३९२
२५२	२८८	३१५	३३६
१६८	२१६	२५२	२८०
८४	१४४	१८९	२२४
	७२	१२६	१६८
		६३	११२
			५६

ऐसैं इहां अविभागप्रतिच्छेदनिका प्रमाण कह्या है सो विवक्षित वर्गणाविषै जो एक परमाणूरूप वर्ग तीहिंविषै जेते अविभागप्रतिच्छेद पाइए ताकी अपेक्षा कथन कीया है। सर्व वर्गनिका समूहरूप वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदनिका प्रमाण यथा सम्भव जानना ॥४७४॥

ताहे दव्ववहारो पदेसगुणहाणिफड्ढयवहारो ।
पल्लस्स पढममूलं असंखगुणियक्कमा होंति[1] ॥४७५॥

तत्र द्रव्यावहारः प्रदेशगुणहानिस्पर्धकावहारः ।
पल्यस्य प्रथममूलं असंख्यगुणितक्रमा भवंति ॥४७५॥

स० चं०—अश्वकर्णकरणका प्रथम समयविषैं अपूर्व स्पर्धक करनेका द्रव्य ग्रहण करनेके अर्थि सर्व द्रव्यकौं जिस अपकर्षण भागहारका भाग दीया तातैं प्रदेशसंबंधी एक गुणहानिविषैं जो स्पर्धकनिका प्रमाण ताकौं अपूर्व स्पर्धकनिका प्रमाण ल्यावनेके अर्थि जाका भाग दीया सो असंख्यातगुणा है। तातैं पल्यका प्रथम वर्गमूल असंख्यातगुणा है। इहां ऐसा प्रयोजन जानना—

जो अपकर्षण भागहारतैं असंख्यातगुणा वा पल्यका प्रथम वर्गमूलके असंख्यातवे भागमात्र जो भागहार ताका भाग अनुभागसम्बन्धी एक गुणहानिकी स्पर्धक शलाकाकौं दीएं प्रथम समय विषैं कीए जे अपूर्व स्पर्धक तिनका प्रमाण आवै है ॥४७५॥

विशेष—इस गाथाका आशय यह है कि अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारसे असंख्यातगुणे और पल्योपमके प्रथम वर्गमूलसे असंख्यातगुणे हीन पल्योपमके असंख्यातवें भागसे एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरप्रमाण स्पर्धकोंके भाजित करने पर जो लब्ध आवे उतने क्रोधादि संज्वलनोंके अपूर्व स्पर्धक होते हैं। खुलासा इस प्रकार है—अश्वकर्णकरणको करनेवाला जीव प्रथम समयमें जिस प्रदेशपुंजका अपकर्षण करता है उससे विवक्षित कर्मसे समस्त द्रव्यके भाजित करने पर अपकर्षण-उत्कर्षणभागहारसंज्ञावाला जो भागहार प्राप्त होता है वह सबसे स्तोक है। इससे अपूर्व स्पर्धकोंकी अपेक्षा प्रदेशगुणहानिस्थानान्तरका जो भागहार है वह असंख्यातगुणा है। किन्तु यह पल्योपमके प्रथम वर्गमूलके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिये पूर्वोक्त भागहारसे पल्योपमके प्रथम वर्गमूलको असंख्यातगुणा कहा है। अतः यह सिद्ध हुआ कि पल्योपमके प्रथम वर्गमूलके असंख्यातवें भागप्रमाण भागहारके द्वारा एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तरप्रमाण स्पर्धकोंके भाजित करनेपर जो लब्ध आवे उतने क्रोधादि संज्वलनोंके अपूर्व स्पर्धकोंको प्रथम समयमें रचता है।

ताहे अपुव्वफड्ढयपुव्वस्सादीदणंतिममुदेदि ।
बंधो हु लताणंतिमभागो त्ति अपुव्वफड्ढयदो[2] ॥४७६॥

---

१. पढमसमयअस्सकण्णकरणकारयस्स जं पदेसग्गमोकड्डिज्जदि तेण कम्मस्स अवहारकालो थोवो। अपुव्वफद्दयेहि पदेसगुणहाणिट्ठाणंतरस्स अवहारकालो असंखेज्जगुणो। पलिदोवमपढमवग्गमूलमसंखेज्जगुणं। —क० चु० पृ० ७९२।

२. पढमसमए चेव अपुव्वफद्दयाणि उदिण्णाणि च अणुदिण्णाणि च। अपुव्वफद्दयाणं पि आदीदो अणंतभागो उदिण्णो च अणुदिण्णो च। उवरि अणंता भागा अणुदिण्णा। बंधेण णिव्वत्तिज्जंति अपुव्वफद्दयं पढममादिं कादूण जाव लदासमाणफद्दयाणमणंतभागो त्ति। —क० चु० पृ० ७९३–७९४।

तस्मिन् अपूर्वस्पर्धकपूर्वस्यादितोऽनंतिममुदेति ।
बंधो हि लतानंतिमभाग इति अपूर्वस्पर्धकतः ।।४७६।।

स० चं०—तिस अश्वकर्णकरणका प्रथम समयविषै उदय निषेकसम्बन्धी सर्व अपूर्व स्पर्धक अर पूर्व स्पर्धककी आदितैं लगाय ताका अनन्तवां भाग उदय हो है। कैसैं ? सो कहिए है—

अपूर्व स्पर्धकरूप परिणया है अनुभाग सत्त्व जाका ऐसा जो कर्म ताका असंख्यातवां भाग मात्र प्रदेशनिकौं अपकर्षण करि उदीरणा कर्ता जो जीव ताकैं वर्तमान समयविषै उदय आवने योग्य जो उदय निषेक तींहि विषै सर्व ही अनुभागसत्व अपूर्व स्पर्धकस्वरूप हैं। तातैं ते तौ सर्व ही स्पर्धक उदीरणारूप हैं अर उदय निषेकतैं ऊपरिके निषेक तिनके समान अनुभाग शक्ति धरैं जे अपूर्व स्पर्धक ते उदय न हो हैं। तातैं ते अनुदीर्णरूप हैं। ऐसैं केई अपूर्व स्पर्धकनिका उदय अर केई अपूर्व स्पर्धकनिका अनुदय जानना। बहुरि पूर्व स्पर्धकनिविषै भी जे प्रथम स्थितिविषै लता दारुरूप स्पर्धक हैं तिनविषै लता समान अनुभागका अनन्तवां भागमात्र स्पर्धक उदय हो है सो उदीरणारूप है। बहुरि उदय निषेकतैं ऊपरिके निषेकनिके समान शक्ति लीएं लता भागका अनन्तवां भाग उदय न हो है सो अनुदीर्णरूप है। बहुरि ताके उपरिवर्ती लताभागका अनन्त बहुभागनिविषै बहुभाग अर समस्त दारु भाग है सो उदयकौं न प्राप्त हो है। ऐसैं पूर्व स्पर्धककी आदि वर्गणातैं लगाय अनन्तवां भाग उदयरूप हो है। अन्य अनुदयरूप है। ऐसैं अश्वकर्णकरणका प्रथम समयविषै उदय होनेका स्वरूप कह्या। बहुरि इस समयविषै संज्वलनका बन्ध हो है। तहां पूर्वै लता भागके अनन्तवें भागमात्र बन्ध होता था सो अब तातैं अनन्तवें भागमात्र अपूर्व स्पर्धक का प्रथम स्पर्धकतैं लगाय अन्त स्पर्धक पर्यन्त अर पूर्व स्पर्धकनिका लता भागका अनन्तवां भाग पर्यन्त जे स्पर्धक तिनरूप होइ बंधरूप स्पर्धक परिणमैं हैं। इहां उदयरूप अनुभागतैं बन्धरूप अनुभाग अनन्तगुणा घटता है। ऐसा जानना ।।४७६।।

विशेष—सामान्य नियम यह है कि अश्वकर्णकरणके प्रथम समयमें कितने ही अपूर्व स्पर्धक उदीर्ण रहते हैं और कितने ही अपूर्व स्पर्धक अनुदीर्ण रहते हैं। तथा पूर्व स्पर्धकोंमें भी आदिसे लेकर अनन्तवें प्रमाण स्पर्धक उदीर्ण रहते हैं और अनुदीर्ण रहते हैं तथा इनसे ऊपर अनन्त बहुभागप्रमाण स्पर्धक अनुदीर्ण रहते हैं। विशेष स्पष्टी-करण इस प्रकार है—संज्वलन कषायके अनन्तवें भागप्रमाण जो पूर्व स्पर्धक लता समान अनुभागको लिये हुए हैं तथा उनसे नीचे जो समस्त अपूर्व स्पर्धक हैं उनकी उस रूपसे उदय प्रवृत्ति होती है, उपरिम स्पर्धकस्वरूपसे उदय प्रवृत्ति नहीं होती। आशय यह है कि उसी समय अपूर्व स्पर्धकरूपसे परिणमन करनेवाले अनुभागसत्कर्मसे प्रदेशपूंजके असंख्यातवें भागका अपकर्षण कर उदीरणा करनेवाले जीवके उदयस्थितिके भीतर सभी अपूर्व स्पर्धकरूपसे अनुभाग-सत्कर्म उपलब्ध होता है। इस प्रकार उपलब्ध होनेपर ही अपूर्व स्पर्धक उदीर्ण होते हैं। किन्तु इतनी विशेषता है कि अपूर्व स्पर्धकरूपसे परिणत हुआ सत्कर्म पूरे रूपसे उदयको प्राप्त नहीं हुआ है, क्योंकि अपूर्व स्पर्धकसम्बन्धी सदृश धनवाले (समान अनुभागवाले) परमाणुओंके प्रत्येक स्पर्धकके प्रति स्थित होनेपर उनमेंसे कितने ही उदयको प्राप्त होते हैं और शेष तदवस्थ रहते हैं, इसोलिये यह स्वीकार किया गया है कि कितने हो अपूर्व स्पर्धक उदीर्ण होते हैं और कितने ही अनुदीर्ण रहते हैं। जो पूर्व स्पर्धक हैं वे भी आदिसे लेकर अनन्तवें भागप्रमाण उदीर्ण और

अनुदीर्ण होते हैं ऐसा समझना चाहिये। लतासमान पूर्ण स्पर्धकोंके अनन्तवें भागसे उपरिम अनन्त बहुभागप्रमाण पूर्ण स्पर्धक अनुदीर्ण ही रहते हैं, क्योंकि उनका अपने रूपसे उदयमें प्रवेश नहीं होता। बन्धके विषयमें ऐसा समझना चाहिये कि लतासमान स्पर्धकोंकी पहले जो अनन्तवें भागरूपसे प्रवृत्ति होती थी, अब वह उससे अनन्त गुणहानिरूपसे बहुत घटकर अपूर्व स्पर्धकोंके प्रथम स्पर्धकसे लेकर लतासमान स्पर्धकोंके अनन्तवें भागके प्राप्त होने तक इनकी स्पर्धकरूपसे प्रवृत्ति होती है। इतनी विशेषता है कि पहले जो उदयरूपसे प्रवृत्त स्पर्धक कह आये हैं उनसे य बन्धरूप स्पर्धक अनन्तगुणे हीन होते हैं।

ऐसैं यहु कही सो अश्वकर्णकरण कालका प्रथम समयसम्बन्धी प्ररूपणा जाननी :

बिदियादिसु समयेसु वि पढमं व अपुव्वफड्डयाण विही।
णवरि असंखगुणूणं णिव्वत्तयदि पडिसमयं[1] ॥४७७॥

द्वितीयादिषु समयेषु अपि प्रथमं व अपूर्वस्पर्धकानां विधिः।
नवरि असंख्यगुणोनं निर्वर्तयति तु प्रतिसमयम् ॥४७७॥

स० चं०—अश्वकर्णकरणका द्वितीयादि समयनिविषैं अपूर्व स्पर्धकनिका विधान ताके प्रथम समयवत् जानना। तहां विशेष है सो कहिए है—इस गाथाविषैं लिखनेवालेने अक्षर केते इक न लिखे तातैं आधा गाथाका अर्थ न जानि इहां नाहीं लिख्या है ॥४७७॥

विशेष—अश्वकर्णकरणके दूसरे समयमें जो स्थितिकांडक अनुभागकांडक और स्थितिबन्धापसरण प्रथम समयमें प्रवृत्त थे वे ही यहां प्रवृत्त रहते हैं। मात्र अनुभागबन्ध प्रथम समयके अनुभागबन्धसे अनन्तगुणा हीन होता है, क्योंकि प्रत्येक समयमें होनेवाली अनन्तगुणी विशुद्धिके माहात्म्यवश क्षपकश्रेणिमें अप्रशस्त कर्मोंका अनुभागबन्ध प्रत्येक समयमें अनन्तगुणा हीन होता जाता है। यहाँ अन्य प्रकार सम्भव नहीं। तथा प्रति समय विशुद्धिमें उत्तरोत्तर अनन्तगुणी विशुद्धि होने पर गुणश्रेणिरचना भी प्रति समय असंख्यातगुणे प्रदेशोंको लिए हुए होती है। साथ ही प्रथम समयमें जो एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तरके असंख्यातवे भागप्रमाण अपूर्व स्पर्धकोंकी रचना की थी, उन्हें पुनः समान अनुभागरूपसे रचता है। तथा उनसे नीचे उनसे असंख्यातगुणे हीन प्रमाणवाले अन्य अपूर्व स्पर्धकोंको भी रचता है यह इस गाथाका तात्पर्य है।

णवफड्डयाण करणं पडिसमयं एवमेव णवरिं तु।
दव्वमसंखेज्जगुणं फड्डयमाणं असंखगुणहीणं[2] ॥४७८॥

---

१. णवरि य संखगुणूणं·······पडिसमयं। मु०। एत्तो बिदियसमए तं चेव अणुभागखंडयं, सो चेव ट्ठिदिबंधो। अणुभागबंधो अणंतगुणहीणो। गुणसेढी असंखेज्जगुणा। अपुव्वफद्दयाणि जाणि पढमसमए णिव्वत्तिदाणि विदियसमए ताणि च णिव्वत्तयदि, अण्णाणि च अपुव्वाणि तदो अखंखेज्जगुणहीणाणि। —क० चु० पृ० ७९४।

२. पढमसमए अपुव्वफद्दयाणि णिव्वत्तिदाणि बहुआणि। विदियसमए जाणि अपुव्वाणि अपुव्वफद्दयाणि कदाणि ताणि असंखेज्जगुणहीणाणि। तदियसमए अपुव्वाणि अपुव्वफद्दयाणि कदाणि ताणि असंखेज्जगुणहीणाणि। एवं समए समए जाणि अपुव्वाणि अपुव्वफद्दयाणि कदाणि ताणि असंखेज्जगुणहीणाणि। गुणगारो पलिदोवमवग्गमूलस्स असंखेज्जदभागो। —क० चु० पृ० ७९५।

नवस्पर्धकानां करणं प्रतिसमयं एवमेव नवरि तु ।
द्रव्यमसंख्येयगुणं स्पर्धकमानं असंख्यगुणहीनम् ॥४७८॥

स० चं०—ऐसैं ही प्रथम समयवत् समय समय प्रति नवीन स्पर्धकनिकौं करै है। विशेष इतना–तहां द्रव्य तौ क्रमतैं असंख्यातगुणा बंधता अपकर्षण करिए है। अर नवीन स्पर्धक कीएं तिनका प्रमाण असंख्यातगुणा घटता हो है। सोई कहिए है—

अश्वकर्णकरणका द्वितीय समयविषैं जो प्रथम समयविषैं पूर्व स्पर्धकनिके द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ एक भागमात्र द्रव्य अपकर्षण किया था तातैं असंख्यातगुणा द्रव्यकौं, पूर्वस्पर्धक अर प्रथम समयविषैं कीए अपूर्वस्पर्धक तिनका जो द्रव्य था तातैं अपकर्षण करि, तिस द्रव्यका असंख्यातवां भागमात्र द्रव्यकरि तौ इहां नवीन अपूर्व स्पर्धक करिए है। ते प्रथम समयविषैं कीए अपूर्व स्पर्धक तिनकी प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके नीचैं घटता अनुभाग लीएं करिए है।

तिस प्रथम वर्गणातैं एक एक वर्गणा प्रति एक एक विशेषमात्र द्रव्यकी अधिकता द्वितीय समयसंबंधी नवीन अपूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणापर्यंत जाननी। तहां पूर्वोक्त प्रकार समपट्टिका धन चयधन जोडें जेता द्रव्य होइ तितने द्रव्यकरि तौ इहां नवीन स्पर्धक बनैं। बहुरि अपकर्षण कीया द्रव्य विषैं इतना द्रव्य घटाएं जो अवशेष द्रव्य रह्या ताकौं द्वितीय समयविषैं कीने नवीन अपूर्व स्पर्धक अर प्रथम समयविषैं कीने अपूर्व स्पर्धक अर पूर्व स्पर्धक तिनका एक गोपुच्छ भया तिसविषैं चय घटता क्रमकरि सर्वत्र देना। बहुरि प्रथम समयविषैं कीए अपूर्व स्पर्धक तिनिके प्रमाणतैं द्वितीय समयविषैं कीए नवीन अपूर्व स्पर्धक तिनका प्रमाण असंख्यातगुणा घटता जानना। बहुरि अश्वकर्णकरणका तृतीय समयविषैं जो द्वितीय समयविषैं द्रव्य अपकर्षण कीया तातैं असंख्यातगुणा द्रव्य पूर्व स्पर्धक अर प्रथम द्वितीय समयविषैं कीए अपूर्व स्पर्धक तिनके द्रव्यतैं अपकर्षण करिए है ताके असंख्यातवां भागमात्र द्रव्यकरि तौ द्वितीय समयविषै कीए स्पर्धक तिनके नीचैं इहां नवीन अपूर्व स्पर्धक करिए है अर अवशेष द्रव्यकौं तृतीय द्वितीय प्रथम समय-संबंधी अपूर्व स्पर्धकनिका अर पूर्व स्पर्धकनिका एक गोपुच्छ भया ताविषैं क्रमकरि निक्षेपण करिए है। इहां द्वितीय समयविषैं कीए नवीन अपूर्व स्पर्धकनिका प्रमाणतैं तृतीय समयविषैं कीए नवीन अपूर्व स्पर्धकनिका प्रमाण असंख्यातगुणा घटता जानना। ऐसैं ही अपूर्व स्पर्धककरण कालका अंत समय पर्यंत समय समय प्रति असंख्यातगुणा द्रव्यकौं अपकर्षण करै है अर नवीन अपूर्व स्पर्धक नीचैं नीचैं हो हैं तिनका प्रमाण असंख्यातगुणा घटता हो है। अन्य विशेष जैसैं प्रथम समयविषैं कह्या है तैसैं जानना ॥४७८॥

विशेष—प्रत्येक समयमें जो नये अपूर्व स्पर्धक किये जाते हैं वे उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे हीन होते हैं। इतने हीन कैसे होते हैं इसका स्पष्टीकरण करते हुए बतलाया है कि वर्गमूलके पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण गुणकार है, इससे दूसरे समयमें जो अपूर्व स्पर्धक किये जाते हैं उन्हें गुणित करनेपर पहले समयमें किये जानेवाले अपूर्व स्पर्धकोंका प्रमाण प्राप्त होता है, अतः सिद्ध हुआ कि प्रथम समयमें किये जानेवाले अपूर्व स्पर्धकोंसे दूसरे समयमें किये जानेवाले अपूर्व स्पर्धक असंख्यातगुणे हीन होते है। यहाँ पल्योपमके असंख्यातवें भागसे पल्योपमके वर्गमूलका असंख्यातवाँ भाग लिया गया है। इसी प्रकार आगे भी तृतीयादि समयोंमें किये जानेवाले अपूर्व

स्पर्धक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणें हीन होते हैं ऐसा यहाँ समझना चाहिये। किन्तु उत्तरोत्तर जो नूतन अपूर्व स्पर्धक किये जाते हैं उनमें गुणश्रेणि रचनाको देखते हुए निक्षिप्त होनेवाला द्रव्य उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा होता है यह स्पष्ट ही है।

पढमादिसु दिज्जकमं तक्कालजफड्ढयाण चरिमो त्ति।
हीणकमं से काले असंखगुणहीणयं तु हीणकमं[1] ॥४७९॥

प्रथमादिषु देयक्रमं तत्कालजस्पर्धकानां चरम इति।
हीनक्रमं स्वे काले असंख्यगुणहीनकं तु हीनक्रमम् ॥४७९॥

स० चं०—अपकर्षण कीया द्रव्यकौं जैसें दीया तैसें जो अनुक्रम सो देय क्रम कहिए सो ऐसें हैं—

अपूर्व स्पर्धककरण कालका प्रथमादि समयनिविषैं तिस काल कीए स्पर्धकनिका अंतपर्यंत तौ विशेष हीन क्रम लीएं अर ताके अनंतरि असंख्यातगुणा घटता ताके ऊपरि विशेष हीन क्रम लीएं जानना। सो कहिए है—

प्रथम समयविषैं अपकर्षण कीया द्रव्य तिसविषैं तिस समय कीए अपूर्व स्पर्धक तिनकी प्रथम वर्गणाविषैं बहुत द्रव्य दीजिए है। तातैं तिनकी द्वितीय वर्गणा आदि अंतवर्गणा पर्यंत चय घटता क्रम लीएं द्रव्य दीजिए है। बहुरि अपूर्व स्पर्धककी अंत वर्गणाविषैं दीया द्रव्यतैं पूर्व स्पर्धकनिकी प्रथम वर्गणाविषै असंख्यातगुणा घटता द्रव्य दीजिए है। तातैं ताके ऊपरि तिनकी अंत वर्गणा पर्यंत चय घटता क्रमकरि दीजिये है। बहुरि द्वितीय समयविषैं अपकर्षण कीया द्रव्य तिसविषैं तिस समय कीए नवीन अपूर्व स्पर्धक तिनकी प्रथम वर्गणा विषैं बहुत द्रव्य अर द्वितीयादि अंत वर्गणा पर्यंत चय घटता क्रमकरि द्रव्य दीजिए है। बहुरि तिसकी अंत वर्गणाके द्रव्यतैं प्रथम समयविषैं कीए अपूर्व स्पर्धकनिकी प्रथम वर्गणाविषैं असंख्यातगुणा घटता द्रव्य दीजिए है। तातैं ताके ऊपरि तिनकी अंत वर्गणा पर्यंत वा ताके ऊपरि पूर्व स्पर्धकनिकी प्रथमादि अंत वर्गणा पर्यंत चय घटता क्रमकरि दीजिए है। बहुरि तृतीय समयविषैं नवीन बने अपूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणाविषै बहुत द्रव्य, ताके उपरि तिनकी अंत वर्गणा पर्यंत चय घटता क्रम लीएं द्रव्य दीजिए है। ताके ऊपरि द्वितीय समयविषैं कीए अपूर्व स्पर्धकनिकी प्रथम वर्गणाविषैं असंख्यातगुणा घटता द्रव्य दीजिए है। ताके उपरि तिनकी अंत वर्गणा पर्यंत वा प्रथम समयविषैं कीए अपूर्व स्पर्धककी प्रथमादि अंत वर्गणा पर्यंत वा पूर्व स्पर्धकनिकी प्रथमादि अंत वर्गणा पर्यंत चय घटता क्रम लीएं

---

१. पढमसमए णिव्वत्तिज्जमाणगेसु पुव्वफद्दयहिंतो ओकड्डियूण पदेसग्गमपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए बहुअं देदि। विदियाए वग्गणाए विसेसहीणं देदि। एवमणंतराणंतरेण गंतूण चरिमाए अपुव्वफद्दयवग्गणाए विसेसहीणं देदि। तदो चरिमादो अपुव्वफद्दयवग्गणादो पढमस्स पुव्वफद्दयस्स आदिवग्गणाए असंखेज्ज-गुणहीणं देदि। तदो विदियफद्दयवग्गणाए विसेसहीणं देदि। सेसासु सव्वासु पुव्वफद्दयवग्गणासु विसेसहीणं देदि।—क० चु० पृ० ७९२–७९३। विदियसमए अपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए पदेसग्गं बहुअं देदि। विदिय-समए विसेसहीणं। एवमणंतरोपणिधाए विसेसहीणं दिज्जदि। ताव जाव जाणि विदियसमए अपुव्वाणि अपुव्वफद्दयाणि कदाणि। तदो चरिमादो वग्गणादो पढमसमए जाणि अपुव्वफद्दयाणि कदाणि तेसिमादिवग्गणाए दिज्जदि पदेसग्गमसंखेज्जगुणहीणं।.........आदि—क० चु० पृ० ७९४।

द्रव्य दीजिए है। ऐसैं ही चतुर्थादि समयनिविषै भी जानना। इहां विवक्षित समयविषै जे अपूर्व स्पर्धक बनैं ते तौ अपकर्षण कीया द्रव्यविषै केते इक द्रव्यतैं बनैं अर तिनके ऊपरि जे स्पर्धक हैं ते पूर्वं थे ही। बहुरि तिन सबनिविषैं अवशेष द्रव्य विभाग करि दीया तातैं निज कालविषै बने अपूर्व स्पर्धककी अंत वर्गणाविषै दीया द्रव्यतैं अनंतर वर्गणाविषैं असंख्यातगुणा घटता द्रव्य दीया कह्या, अन्यत्र चय घटता क्रम लीएं कह्या है ॥४७९॥

पढमादिसु दिस्सकमं तक्कालजफड्ढयाण चरिमो त्ति।
हीणकमं से काले हीणं हीणं कमं तत्तो[1] ॥४८०॥

प्रथमादिषु दृश्यक्रमं तत्कालजस्पर्धकानां चरम इति।
हीनक्रमं स्वे काले हीनं हीनं क्रमं ततः ॥४८०॥

स० चं०—अपूर्वस्पर्धक करणकालका प्रथमादि समयनिविषै दृश्य कहिए देखनेमें आवै ऐसा परमाणूनिका प्रमाण ताका अनुक्रम सो दृश्यक्रम कहिए। सो कैसैं है ? सो कहिए है—

तहाँ तिस विवक्षित समयविषैं बने अपूर्व स्पर्धक तिनका तो जो देय द्रव्य सो ही दृश्य द्रव्य है। जातैं तिस समय अपकर्षण कीया द्रव्य हीतैं तिनकी रचना भई हैं। सो तिनकी प्रथम वर्गणातैं लगाय अंत वर्गणापर्यंत विशेष घटता क्रम लीएं दृश्य द्रव्य है। बहुरि तिस अंत वर्गणाके द्रव्यतैं ताके ऊपरि जो वर्गणा तिसका भी दृश्य द्रव्य एक चयमात्र घटता है जातैं दीया द्रव्य तौ तिस अंत वर्गणा द्रव्यतैं असंख्यातगुणा घटता है तथापि दीया द्रव्य अर पूर्वैं वाका सत्तारूप पुरातन द्रव्य दोऊ मिलि तिसतैं एक चयमात्र घटता दृश्य द्रव्य हो है। बहुरि ताके उपरि पूर्व-स्पर्धककी अंत वर्गणा पर्यंत दीया द्रव्य अर पूर्व द्रव्य मिलि क्रमतैं चय प्रमाण करि घटता दृश्य द्रव्य जानना। ऐसैं विवक्षित समयविषैं कीए अपूर्वस्पर्धक तिनकी प्रथम वर्गणातैं लगाय पूर्व-स्पर्धकनिकी अंत वर्गणा पर्यंत एक गोपुच्छ भया तातैं तहाँ चय घटता क्रम लीएं ही दृश्य द्रव्य जानना।

ऐसैं अश्वकर्णकरणकालका प्रथमादि समयनिविषैं यावत् प्रथम अनुभाग कांडकका घात न होइ तावत् स्थितिकांडक अनुभाग कांडक स्थितिबंध अनुभाग सत्त्व तौ तिन समयनिविषैं समान रूप है। अर अप्रशस्तकर्मनिका अनुभागबंध समय-समय अनंतगुणा घटता है। अर गुणश्रेणि विषै समय-समय असंख्यातगुणा द्रव्यकौं अपकर्षणकरि दीजिए है। अर अतीत समयसंबंधी स्पर्धकनिके नीचैं अपूर्व शक्ति लीएं नवीन अपूर्व स्पर्धक समय-समय प्रति करिए है ॥४८०॥

ऐसैं प्रथम अनुभाग कांडकका घात भएं कहा हो है ? सो कहैं हैं—

पढमाणुभागखंडे पडिदे अणुभागसंतकम्मं तु।
लोभादणंतगुणिदं उवरिं पि अणंतगुणिदकमं[2] ॥४८१॥

१. तम्हि चेव पढमसमए जं दिस्सदि पदेसग्गं तमपुव्वफद्दयाणं पढमसमए वग्गणाए बहुअं। पुव्व-फद्दयआदिवग्गणाए विसेसहीणं। जहा लोहस्स तहा मायाए माणस्स कोहस्स च।—क० चु० पृ० ७९३। विदिय-समए अपुव्वफद्दएसु वा पुव्वफद्दएसु वा एक्केक्किस्से वग्गणाए जं दिस्सदि पदेसग्गं तमपुव्वफद्दयआदि-वग्गणाए बहुअं। सेसासु अणंतरोपणिधाए सव्वासु विसेसहीणं। —क० चु० पृ० ७९४–७९५।

२. तदो से काले अणुभागसंतकम्मे णाणत्तं। तं जहा—लोभे अणुभागसंतकम्मं थोवं। मायाए अणु-

प्रथमानुभागखंडे पतिते अनुभागसत्त्वकर्म तु ।
लोभादनंतगुणितमुपर्यपि अनंतगुणितक्रमं ॥४८१॥

स० चं०—ऐसैं प्रथम अनुभागखण्डका पतन होतैं लोभतैं अनंतगुणा क्रम लीए अनुभाग सत्त्वरूप कर्म हो है। तहाँ लोभका स्तोक, तातैं मायाका अनंतगुणा, तातैं मानका अनंतगुणा, तातैं क्रोधका अनंतगुणा अनुभाग सत्त्व हो है ऐसा जानना, जातैं तहां अश्वकर्ण क्रियाकरि प्रथम अनुभागकांडकका घात भए पीछैं अवशेष अनुभाग सत्त्व हो है। बहुरि यातैं उपरिवर्ती अश्वकर्ण कालके सर्व समयनिकेविषैं भी ऐसैं ही अल्पबहुत्वका क्रम लीए अनुभाग सत्त्व जानना ॥४८१॥

आदोलस्स य पढमे णिव्वत्तिदअपुव्वफड्ढयाणि बहू ।
पडिसमयं पलिदोवममूलासंखेज्जभागभजियकमा[1] ॥४८२॥

आंदोलस्य च प्रथमे निर्वर्तितापूर्वस्पर्धकानि बहूनि ।
प्रतिसमयं पलिदोपममूलासंख्येयभागभजितक्रमं ॥४८२॥

स० चं०—आंदोल कहिए अश्वकर्ण ताका प्रथम समयविषैं जे अपूर्व स्पर्धक कीए ते बहुत है। पीछे समय-समय प्रति पल्यके वर्गमूलका असंख्यातवां भागकरि भाजित क्रम लीए जानने। प्रथम समयविषैं कीए अपूर्व स्पर्धकनिका प्रमाणकौं पल्यके वर्गमूलका असंख्यातवां भागका भाग दीए द्वितीय समयविषैं नवीन कीए अपूर्व स्पर्धकनिका प्रमाण हो है। याकौं पल्य वर्गमूलका असंख्यातवां भागका भाग दीए तृतीय समयविषैं कीए नवीन अपूर्व स्पर्धकनिका प्रमाण हो है। ऐसैं ही अपूर्व स्पर्धककरण कालका अंत समय पर्यंत क्रम जानना ॥४८२॥

आदोलस्स य चरिमे अपुव्वादिमवग्गणाविभागादो ।
दोचढिमादीणादी चढिदव्वा मेत्तणंतगुणा[2] ॥४८३॥

आंदोलस्य च चरमेऽपूर्वादिमवर्गणाविभागात् ।
द्विचटितादीनामादिः चटितव्या मात्रानंतगुणा ॥४८३॥

स० चं०—ऐसैं क्रमतैं अपूर्व स्पर्धक होतैं अपूर्व स्पर्धक सहित अश्वकर्ण कालका अंत समयविषै सर्व अपूर्व स्पर्धक भए। तहां प्रथम समय स्पर्धककी आदि वर्गणाविषै अनुभागके अविभाग-प्रतिच्छेद स्तोक हैं। तातैं दूसरे स्पर्धककी आदि वर्गणाविषै दूणे, तीसरे स्पर्धककी आदि वर्गणाविषैं तिगुणे ऐसैं जेथवां स्पर्धक होइ तिसकी आदि वर्गणाविषैं तितनेगुणे होंइ सो अनंतगुणा पर्यंत चढना। अंत स्पर्धककी आदि वर्गणाविषैं अनंतगुणे हो हैं ऐसा जानना। इहां विवक्षित वर्गणाकी

भागसंतकम्ममणंतगुणं। माणस्स अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं। कोहस्स अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं।
—क० चु० पृ० ७९५।

१. क० चु० पृ० ७९६।

२. चरिमसमए लोभस्स अपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए अविभागपलिच्छेदग्गं थोवं। विदियस्स अपुव्वफद्दयस्स आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदग्गं दुगुणं। तदियस्स अपुव्वफद्दयस्स आदिवग्गणाए अविभाग-पलिच्छेदग्ग तिगुणं। एवं मायाए माणस्स कोहस्स च। —क० चु० पृ० ७९६।

एक-एक परमाणूविषै पाइए हैं जे अविभागप्रतिच्छेद तिनिकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कह्या है। सर्व परमाणू अपेक्षा किंचित् ऊन दूणा तिगुणा क्रम जानना। ऐसें पूर्वं ही यतिवृषभ आचार्यकरि प्रतिपादन कीया है। च्यारयो कषायनिविषै ऐसें ही क्रम जानना ॥४८३॥

आदोलस्स य पढमे रसखंडे पाडिदे अपुव्वादो ।
कोहादी अहियकमा पदेसगुणहाणिफड्डया तत्तो ॥४८४॥
होदि असंखेज्जगुणं इगिफड्डयवग्गणा अणंतगुणा ।
तत्तो अणंतगुणिदा कोहस्स अपुव्वफड्डयाणं च ॥४८५॥
माणादीणहियकमा लोभगपुव्वं च वग्गणा तेसिं ।
कोहो त्ति य अट्ठ पदा अणंतगुणिदक्कमा होंति[1] ॥४८६॥

आदोलस्य च प्रथमे रसखंडे पातिते अपूर्वात् ।
क्रोधात् अधिकक्रमा. प्रदेशगुणहानिस्पर्धकास्ततः ॥४८४॥
भवति असंख्येयगुणं एकस्पर्धकवर्गणा अनंतगुणा ।
ततः अनंतगुणितं क्रोधस्य अपूर्वस्पर्धकानां च ॥४८५॥
मानादीनामधिकक्रमं लोभगपूर्वं च वर्गणा तेषां ।
क्रोध इति च अष्ट पदानि अनंतगुणितक्रमाणि भवंति ॥४८६॥

स० चं०—अश्वकर्णका प्रथम समय अनुभागकांडकका घात होत संतै भए ऐसे क्रोधके अपूर्व स्पर्धक स्तोक है। तातैं मानके अपूर्व स्पर्धक विशेष अधिक हैं। तातैं मायाके अपूर्व स्पर्धक विशेष अधिक हैं। तातैं लोभके अपूर्व स्पर्धक विशेष अधिक हैं। बहुरि तातैं प्रदेशसम्बन्धी एक गुणहानिविषै स्पर्धकनिका प्रमाण असंख्यातगुणा है, जातैं याकौं असंख्यातका भाग दीएं अपूर्व-स्पर्धकनिका प्रमाण आवै है। तातैं अपूर्वस्पर्धकनिका प्रमाणकौं असंख्यात करि गुणें याका प्रमाण भया कह्या। बहुरि तातैं एक स्पर्धकविषै पाइए जे वर्गणा तिनका प्रमाण अनंतगुणा है, जातैं पूर्व वा अपूर्व स्पर्धकविषै वर्गणा अभव्य राशितैं अनन्तगुणी वा सिद्धराशिके अनन्तवें भागमात्र पाइए है। तातैं अनन्तका गुणकार संभवै है। बहुरि तिनतैं क्रोधके सर्व अपूर्व स्पर्धक-निकी वर्गणाका प्रमाण अनन्तगुणा है, जातैं एक स्पर्धककी वर्गणाका प्रमाण कह्या ताकौं क्रोधके अपूर्व स्पर्धकनिका प्रमाण प्रदेशसम्बन्धी गुणहानिविषै स्पर्धकनिके प्रमाणके असंख्यातवां भागमात्र प्रमाणकरि गुणें यहु हो है। बहुरि तातैं मानके सर्व अपूर्व स्पर्धकनिकी वर्गणा विशेष अधिक हैं। तिनतैं मायाके सर्व अपूर्व स्पर्धकनिकी वर्गणा विशेष अधिक है। तातैं लोभके सर्व अपूर्व स्पर्धकनिकी वर्गणा विशेष अधिक है। इहां इनके अपूर्व स्पर्धकनिका प्रमाण विशेष अधिक क्रम लीएं है। तातैं तिनकी वर्गणानिका प्रमाण भी विशेष अधिक क्रम लीएं कह्या। बहुरि लोभके अपूर्व स्पर्धकनिकी वर्गणानिका प्रमाणतैं लोभके पूर्व स्पर्धकनिका प्रमाण अनन्तगुणा है, जातैं लोभके अपूर्व स्पर्धकनिका प्रमाण प्रदेशगुणहानिकी स्पर्धकशलाकाके असंख्यातवें भागमात्र, ताकौं एक स्पर्धककी वर्गणाका प्रमाणकरि गुणें लोभके अपूर्व स्पर्धकनिकी वर्गणानिका प्रमाण हो

१. क० चु० पृ० ७९६-७९७।

है अर एक गुणहानिकी स्पर्धक शलाकाकौं प्रदेशसम्बन्धी नाना गुणहानिकरि गुणैं लोभके पूर्व स्पर्धकनिका प्रमाण हो है। सो इहां एक स्पर्धककी वर्गणाका प्रमाणतैं नाना गुणहानिका प्रमाण अनन्तगुणा है। तातैं अनन्तका गुणकार संभवै है। बहुरि तातैं लोभके पूर्व स्पर्धकनिकी वर्गणाका प्रमाण अनंतगुणा है, जातैं ताकौं एक स्पर्धककी वर्गणा शलाकाकरि गुणै यहु हो है। बहुरि तिसतैं मायाके पूर्व स्पर्धकनिका प्रमाण अनंतगुणा है, जातैं प्रथम अनुभागकांडकका घात कीए पीछैं अनुभागसत्त्व अश्वकर्णके आकार भया है तातैं अनंतगुणापना संभवै है। बहुरि तातैं मायाके पूर्व स्पर्धकनिकी वर्गणाका प्रमाण अनंतगुणा है। तातैं मानके पूर्व स्पर्धकनिका प्रमाण अनंतगुणा है। तातैं मानके पूर्व स्पर्धकनिकी वर्गणानिका प्रमाण अनंतगुणा है। तातैं क्रोधके पूर्व स्पर्धकनिका प्रमाण अनंतगुणा है। तातैं क्रोधके पूर्व स्पर्धकनिकी वर्गणानिका प्रमाण अनन्तगुणा है। इनविषैं कारण पूर्वोक्त हो है। ऐसैं अल्पबहुत्व जानना ॥४८४-४८६॥

रसठिदिखंडाणेवं संखेज्जसहस्सगाणि गंतूणं।
तत्थ य अपुव्वफड्ढयकरणविही णिट्ठिदा होई[1] ॥४८७॥

रसस्थितिखंडानामेवं संख्येयसहस्रकाणि गत्वा।
तत्र च अपूर्वस्पर्धककरणविधिर्निष्ठिता भवति ॥४८७॥

स० चं—ऐसैं क्रमकरि हजारौं अनुभागकांडक गए एक स्थितिकांडक होइ, ऐसैं संख्यात हजार स्थितिकांडक जाविषैं होंइ ऐसा अन्तर्मुहूर्तमात्र अश्वकर्णकरणका काल भए तहां अपूव स्पर्धक करणकी विधि है सो निष्ठिता कहिए पूर्ण भई। भावार्थ यहु—अपूर्व स्पर्धक क्रिया सहित अश्वकर्णका काल समाप्त भया। आगैं कृष्टिक्रिया सहित अश्वकर्ण क्रिया होसी ऐसा यतिवृषभ आचार्यका तात्पर्य जानना ॥४८७॥

हयकण्णकरणचरिमे संजलणाणट्ठवस्सठिदिबंधो।
वस्साणं संखेज्जसहस्साणि हवंति सेसाणं[2] ॥४८८॥

हयकर्णकरणचरमे संज्वलनानामष्टवर्षस्थितिबंधः।
वर्षाणां संख्येयसहस्राणि भवंति शेषाणां ॥४८८॥

स० चं०—अपूर्व स्पर्धक सहित अश्वकर्णकरण कालका अन्त समयविषै संज्वलन चतुष्टयका आठ वर्षमात्र स्थितिबंध है। ताका प्रथम समयविषैं सोलह वर्षमात्र था सो एक एक स्थिति बंधापसरणविषैं अन्तर्मुहूर्तमात्र घाटि इहां अवशेष आठ वर्षमात्र रहै है। बहुरि अवशेष कर्मनिका स्थितिबंध संख्यात हजार वर्षप्रमाण है। ताका प्रथम समयविषैं संख्यात हजार वर्षमात्र था सो एक एक स्थिति बंधापसरण विषैं संख्यातगुणा घादि संख्यात हजार स्थितिबंधापसरणनिकरि घट्या परंतु आलापकरि इतना ही कहिए है ॥४८८॥

---

१. एवमंतोमुहुत्तमस्सकण्णकरणं। —क० चु० पृ० ७९७।

२. अस्सकण्णकरणस्स चरिमसमए संजलणाणं ट्ठिदिबंधो अट्ठवस्साणि। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। —क० चु० पृ० ७९७।

ठिदिसत्तमघादीणं असंखवस्साण होंति घादीणं।
वस्साणं संखेज्जसहस्साणि हवंति णियमेण[1] ॥४८९॥

स्थितिसत्त्वमघातिनामसंख्यवर्षा भवंति घातिनाम्।
वर्षाणां संख्येयसहस्राणि भवंति नियमेन ॥४८९॥

स० चं—बहुरि तिस ही अंत समयविषैं अघातिया नाम गोत्र वेदनीय तिनका स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्षमात्र है। प्रथम समयविषैं असंख्यात वर्षमात्र था सो असंख्यातगुणा घटता क्रम लीए संख्यात हजार स्थिति कांडकनिकरि घट्या तथापि आलापकरि इतना ही कहिए। बहुरि च्यारि घातिया कर्मनिका स्थितिसत्त्व संख्यात वर्षमात्र है। प्रथम समयविषैं भी संख्यात वर्षमात्र था सो संख्यातगुणा घटता क्रम लीए संख्यात हजार स्थिति कांडकनि करि घट्या परंतु सामान्य आलाप करि इतना ही कहिए है ॥४८९॥

इति अपूर्वस्पर्धक—अधिकार समाप्त।

स० चं०—अब अपूर्व स्पर्धक करनेका कालके अनंतरि समयतैं लगाय कृष्टिकरणका काल है। जिस करणतैं कर्मका अनुभाग कृष कहिये हीन करिए सो सार्थक नाम कृष्टि जानना, सो दोय प्रकार है—वादर कृष्टि १ सूक्ष्म कृष्टि १। तहां संज्वलन कषायनिके पूर्व अपूर्व स्पर्धक जैसैं ईंटनिकी पंक्ति होइ तैसैं अनुभागका एक एक अविभाग प्रतिच्छेद बधती लीएं परमाणूनिका समूहरूप जो वर्गणा तिनके समूहरूप हैं। तिनके अनंतगुणा घटता अनुभाग होनेकरि स्थूल स्थूल खण्ड करिए सो वादर कृष्टिकरण है अर तिन स्थूल खण्डनिका अनंतगुणा घटता अनुभागरूप करि सूक्ष्म सूक्ष्म खण्ड करिए सो सूक्ष्मकृष्टिकरण है तहां वादर कृष्टिकरणका काल प्रमाण जाननेकौं सूत्र कहै हैं—

छक्कम्मे संछुद्धे कोहे मोहस्स वेदगद्धा जा।
तस्स य पढमतिभागो होदि हु हयकण्णकरणद्धा ॥४९०॥

षट्कर्मणि संक्षुब्धे क्रोधे क्रोधस्य वेदकाद्धा या।
तस्य च प्रथमत्रिभागः भवति हि हयकर्णकरणाद्धा ॥४९०॥

विदियतिभागो किट्टीकरणद्धा किट्टिवेदगद्धा हु।
तदियतिभागो किट्टकरणो हयकण्णकरणं चं[2] ॥४९१॥

१. णामा-गोद-वेदणीयाणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्साणि। चउण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। —क० चु० पृ० ७९७।

२. छसु कम्मेसु संछुद्धेसु जो कोधवेदगद्धा तिस्से कोधवेदगद्धाए तिण्णि भागा। जो तत्थ पढमतिभागो अस्सकण्णकरणद्धा, विदियो तिभागो किट्टीकरणद्धा, तदियतिभागो किट्टीवेदगद्धा। —क० चु० पृ०७९७।

द्वितीयत्रिभागः कृष्टिकरणाद्धा कृष्टिवेदकाद्धा हि ।
तृतीयत्रिभागः कृष्टिकरणं हयकर्णकरणं च ।।४९१।।

स० चं—छह नोकषायनिकौं संज्वलन क्रोधविषैं संक्रमणकरि नाश करनेके अनंतरि समयतैं लगाय जो अंतमुंहूर्तमात्र क्रोधबेदक काल है ताकौं संख्यातका भाग देइ तहां बहुभागके समानरूप तीन भाग करिए। बहुरि अवशेष एक भागकौं संख्यातका भाग देइ तहां बहुभागकौं प्रथम त्रिभागविषैं जोडिए। बहुरि अवशेष एक भागकौं संख्यातका भाग देइ तहां बहुभाग दूसरा त्रिभागविषैं जोडिए। अवशेष एक भाग तीसरा त्रिभागविषैं जोडिए ऐसैं करतैं पहिला त्रिभाग साधिक भया, सो तौ अपूर्व स्पर्धकसहित अश्वकर्णकरणका काल है सो पूर्वैं होइ गया। बहुरि दूसरा त्रिभाग किंचित् ऊन है सो च्यारि संज्वलन कषायनिका कृष्टि करनेका काल है सो अब वर्तैं है। बहुरि तोसरा त्रिभाग किंचिदून है सो क्रोधकृष्टिका वेदककाल है सो आगें प्रवर्तिसी[1]। बहुरि इस कृष्टिकरण कालविषैं भी अश्वकर्णकरण पाइए है। जातैं इहां भी अश्वकर्णके आकारि संज्वलन कषायनिका अनुभागसत्त्व वा अनुभागकांडक वर्तैं है। तातैं इहां कृष्टिसहित अश्वकर्ण-करण पाइए है ऐसा जानना। तहां प्रथम समयविषैं एक स्थितिबंधापसरण होने करि संज्वलन-चतुष्कका अंतमुंहूर्त घाटि आठ वर्षप्रमाण अन्य कर्मनिका पूर्व स्थिति बंधतैं संख्यातगुणा घटता संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबंध हो है[2]। बहुरि एक स्थितिकांडक घात होने करि घातिया च्यारि कर्मनिका पूर्व स्थिति सत्त्वतैं संख्यात बहुभागमात्र घटता संख्यात हजार वर्षमात्र अर तीन अघातियानिका पूर्व स्थिति सत्त्वतैं असंख्यात बहुभागमात्र घटता असंख्यात वर्षमात्र स्थितिसत्त्व पाइए है[3] ।।४९१।।

कोहादीणं सगसगपुव्वापुव्वगयफड्ढयेहिंतो ।
ओकड्डिदूण दव्वं ताणं किट्टी करोदि कमे[4] ।।४९२।।

क्रोधादीनां स्वकस्वकपूर्वापूर्वगतस्पर्धकान् ।
अपकर्षयित्वा द्रव्यं तेषां कृष्टिं करोति क्रमेण ।।४९२।।

स० चं—संज्वलन क्रोध मान माया लोभनिका अपना अपना पूर्व अपूर्वस्पर्धकरूप जो सर्व द्रव्य ताकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ एक भागमात्र द्रव्य ग्रहि यथाक्रम लीए तिन क्रोधादि-कनिकी कृष्टि करै है ।।४९२।।

---

१. एदाओ तिण्णि वि अद्धाओ सरिसीओ ण होंति। किंतु पढमतिभागो बहुओ, विदियतिभागो विसेसहीणो, तदियतिभागो विसेसहीणो त्ति घेत्तव्वो। जयध. प्र. पृ. ६९६०–६१।

२. संजलणाणमेयट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तूणट्ठवस्समेत्तो। सेसाणं कम्माणं पुव्विल्लट्ठिदिबंधादो संखेज्ज-गुणहीणो। क. चु. पृ. ७९८।

३. अण्णं ट्ठिदिखंडयं चदुण्हं घादिकम्माणं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। णामा-गोद-वेदणीयाण-मसंखेज्जा भागा। क. चु. पृ. ७९८।

४. पढमसमयकिट्टीकारगो कोधादो पुव्वफद्दएहिंतो च अपुव्वफद्दएहिंतो च पदेसग्गमोकड्डियूण कोह-किट्टीओ करेदि। माणादो ओकड्डियूण माणकिट्टीओ करेदि। मायादो ओकड्डियूण मायाकिट्टीओ करेदि। लोभादो ओकड्डियूण लोभकिट्टीओ करेदि। –क. चु. पृ. ७९८।

ओक्कट्टिददव्वस्स य पल्लासंखेज्जभागबहुभागो ।
बादरकिट्टिणिबद्धो फड्ढयगे सेसइगिभागो ॥४९३॥

अपकर्षितद्रव्यस्य च पल्यासंख्येयभागबहुभागः ।
बादरकृष्टिनिबद्धः स्पर्धके शेषैकभागः ॥४९३॥

स० चं०—अपकर्षण कीया जो द्रव्य ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां बहुभागमात्र द्रव्य तौ बादर कृष्टिसम्बन्धी है । याकरि बादर कृष्टि निपजै है । अवशेष एक भाग-मात्र द्रव्य पूर्व-अपूर्व स्पर्धकनिविषै निक्षेपण करिए है ॥४९३॥

किट्टीयो इगिफड्ढयवग्गणसंखाणणंतभागो दु[1] ।
एक्केक्कम्हि कसाये तिग तिग अहवा अणंता वा[2] ॥४९४॥

कृष्टय एकस्पर्धकवर्गणासंख्यानामनंतभागस्तु ।
एकैकस्मिन् कषाये त्रिकत्रिकमथवा अनंता वा ॥४९४॥

स० चं०—एक एक अविभागप्रतिच्छेद बंधनेका क्रम लीएं प्रत्येक सिद्धराशिका अनंतवां भागमात्र परमाणूका समूहरूप इँटनिकी पंक्तिके आकार जे वर्गणा, ते एक स्पर्धकविषै, एक गुणहानिविषै जेते स्पर्धक पाइए तिनतैं अनंतगुणी पाईए है । सो ऐसैं एकस्पर्धकविषैं जो वर्गणानिका प्रमाण ताकौं वर्गणाशलाका कहिए । ताके अनंतवें भागमात्र सर्व कृष्टिनिका प्रमाण है । अनुभागका स्तोक बहुत अपेक्षा कृष्टिनिका विभाग करिए है । तहां एक एक कषायविषै संग्रह कृष्टि तीन-तीन हैं । बहुरि एक एक संग्रह कृष्टिविषै अंतर कृष्टि अनंत हैं । तहां नीचैं ही नीचैं लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टि है तिसविषै अन्तर कृष्टि अनंत हैं । ताके ऊपरि लोभको द्वितीय संग्रह कृष्टि है । तहां अन्तर कृष्टि अनन्त हैं । ताके ऊपरि लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टि है । तहां अन्तर कृष्टि अनंत हैं । ऐसैं ही क्रोधकी तृतीय संग्रह कृष्टि पर्यंत अवशेष नव संग्रह कृष्टि जाननी । तहां एक एक संग्रह कृष्टिविषै अनंत अनंत अन्तर कृष्टि जाननी । एक प्रकार बंधता गुणकाररूप जो अन्तर कृष्टि तिनके समूह ही का नाम संग्रह कृष्टि जानना[3] ॥४९४॥

अकसायकसायाणं दव्वस्स विभंजणं जहा होई ।
किट्टिस्स तहेव हवे कोहो अकसायपडिबद्धं[1] ॥४९५॥

१. एदाओ सव्वाओ वि चउव्विहाओ किट्टीओ एयफद्दयवग्गणाणमणंतभागो पगणणादो । क० चु० पृ० ७९८ ।

२. एत्थ ताव कोहादिसंजलणकिट्टीओ पादेक्कं तीहिं पविभागाहिं रचेदव्वाओ । एवं रचणाए कदाए एक्केक्कस्स कसायस्स तिण्णि तिण्णि संगहकिट्टीओ । जयध० पृ० ६९६५ ।

३. लोहस्स जहण्णिया किट्टी थोवा । विदिया किट्टि अणंतगुणा । एवमणंतगुणाए सेढीए जाव पढमाए संगहकिट्टीए चरिमकिट्टि त्ति । तदो विदियाए संगहकिट्टीए जहण्णिया किट्टी अणंतगुणा । एत्थ गुणगारो वारसण्हं पि संगहकिट्टीणं सत्थाणगुणगारेहि अणंतगुणो । विदियाए संगहकिट्टीए सो चेव कमो जो पढमाए संगहकिट्टीए । तदो पुण विदियाए च तदियाए च संगहकिट्टीणमंतरं तारिसं चेव ।····क० चु० पृ० ७९८-७९९ ।

अकषायकषायाणां द्रव्यस्य विभंजनं यथा भवति ।
कृष्टेस्तथैव भवेत् क्रोधः अकषायप्रतिबद्धः॥४९५॥

स० चं०—अकषाय कहिए नोकषाय अर कषाय इनिके द्रव्यका विभाग जैसें हो है तैसें ही इन कृष्टिनिके प्रमाणका विभाग जानना । बहुरि नोकषायसम्बन्धी कृष्टि हैं ते क्रोधकी कृष्टिनिविषैं जोडनी, जातैं नोकषायनिका सर्व द्रव्य संज्वलन क्रोधरूप संक्रमण भया है । तहां द्रव्य विभाग कैसें हो है ? सो कहिए है—

पूर्वं अपूर्व स्पर्धककरण कालविषै जैसैं अनुक्रम कहि आए हैं तिस अनुक्रम करि सर्व चारित्रमोहका द्रव्य साधिक द्वयर्ध गुणहानिगुणित प्रथम वर्गणामात्र है । तहां लोभका द्रव्य साधिक आठवां भागमात्र, मायाका किंचिदून आठवां भागमात्र, मानका किंचिदून आठवां भागमात्र, क्रोधका किंचिदून आठवां भागमात्र अर याहीमें किंचिदून द्वितीय भागमात्र नोकषायका द्रव्य मिलाएं क्रोधका द्रव्य पांचगुणा किंचिदून आठवां भागमात्र हो हैं । बहुरि इस अपने अपने द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीएं अपना अपना अपकर्षण कीया द्रव्यका प्रमाण आवै है । याकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएं एक भागमात्र द्रव्य पूर्व अपूर्व स्पर्धकनिविषै देना है । ताकौं जुदा राखि अवशेष बहुभागनिविषै क्रोधविषैं जो नोकषायनिका द्रव्य मिल्या ताकौं जुदा कीएं जो अपना अपना द्रव्य रह्या ताकौं जुदा जुदा पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां बहुभागनिके समानरूप तीन पुंज करने । बहुरि अवशेष एक भागकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां बहुभाग प्रथम पुंजविषैं जोडने । बहुरि अवशेष एक भागकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां बहुभाग द्वितीय पुंजविषै जोडने । अवशेष एक भाग तृतीय पुंजविषैं जोडना । ऐसैं साधिक त्रिभागमात्र प्रथम पुंज सो अपनी अपनी प्रथम संग्रह कृष्टिका द्रव्य है । किंचिदून त्रिभागमात्र द्वितीय पुंज सो अपनी अपनी द्वितीय संग्रह कृष्टिका द्रव्य है । किंचिदून त्रिभागमात्र तृतीय पुंज सो अपनी अपनी तृतीय संग्रह कृष्टिका द्रव्य है । बहुरि नोकषायसम्बंधी सर्व द्रव्यकौं क्रोधकी तृतीय संग्रह कृष्टि विषै मिलावना । या प्रकार कृष्टिसम्बन्धी सर्व द्रव्यकौं चौईसका भाग दीएं क्रोधकी तृतीय कृष्टिका तेरह भागमात्र अर अन्य ग्यारह कृष्टिनिका एक एक भागमात्र द्रव्य हो है । तहां लोभकी कृष्टिविषैं साधिकपना अन्यत्र किंचित् न्यूनपना यथासम्भव जानना । ऐसैं द्रव्यका विभाग कीया । बहुरि याही प्रकार अब कृष्टिके प्रमाणका विभाग करिए है—

एक स्पर्धककी वर्गणा शलाकाके अनंतवे भागमात्र सर्व कृष्टिनिका प्रमाण है । ताकौं आवलीके असंख्यातवां भागका भाग दीएं तहां बहुभागके समान दोय भागकरि अवशेष एक भागकौं प्रथम समान भागविषै मिलाएं साधिक आधा तौ कषायनिके द्रव्यकरि कीया कृष्टिनिका प्रमाण हो है अर द्वितीय समान भागमात्र किंचिदून आधा नोकषायनिके द्रव्यकरि कीया कृष्टिनिका प्रमाण हो है । बहुरि कषायसम्बन्धी कृष्टिनिके प्रमाणकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां एक भाग जुदा राखि बहुभागनिके समानरूप च्यारि भाग करने । बहुरि अवशेष एक भागकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां बहुभाग प्रथम समान भागविषै मिलाएं साधिक चौथा भागमात्र लोभकी कृष्टिनिका प्रमाण हो है । बहुरि अवशेष एक भागकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं तहां बहुभाग दूसरे समान भागविषै मिलाएं किंचिदून चतुर्थ भागमात्र मायाकी कृष्टिनिका प्रमाण हो है । बहुरि अवशेष एक भागकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां बहुभाग तीसरा समान भागविषै मिलाएं किंचिदून चौथा

भागमात्र क्रोधकी कृष्टिनिका प्रमाण हो है। बहुरि अवशेष एक भाग चौथा समान भागविषै मिलाएं किंचिदून चौथा भागमात्र मानकी कृष्टिनिका प्रमाण हो है। बहुरि नोकषायनि-सम्बन्धी कृष्टिनिका प्रमाण क्रोधकी कृष्टिनिका प्रमाणविषै जोडना। ऐसैं सर्व कृष्टिनिका प्रमाणकौं आठका भाग देइ तहां एक एक भागमात्र लोभ माया मानकी, पांच भागमात्र क्रोधकी कृष्टिनिका प्रमाण हो है। तहां लोभकीविषैं साधिकपना अन्यकीविषैं किंचित् न्यूनपना यथासम्भव जानना। बहुरि क्रोधकी कृष्टिनिविषै नोकषायसम्बन्धी कृष्टि जुदी कीएं अवशेष अपना अपना कृष्टिनिका जो प्रमाण ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां बहुभागके समान तीन भाग करिए। बहुरि अवशेष एक भागकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां बहुभाग प्रथम समान भागविषै मिलाएं अपना अपना प्रथम संग्रह कृष्टिका आयाम साधिक हो है। बहुरि अवशेष एक भागकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां बहुभाग द्वितीय समान भागविषैं जोडैं अपना अपना द्वितीय संग्रह कृष्टिका आयाम किंचित् ऊन हो है। बहुरि अवशेष एक भाग तीसरा समान भागविषै जोडैं अपनी अपनी तृतीय संग्रह कृष्टिका आयाम किंचित् ऊन हो है। बहुरि नोकषाय सम्बन्धी कृष्टिनिका प्रमाण ताकौं क्रोधकी तृतीय संग्रहकृष्टिका आयामविषैं जोडना। ऐसैं सर्व कृष्टिनिका प्रमाणकौं चौईसका भाग देइ तहां क्रोधकी तृतीय संग्रह कृष्टिका आयाम तेरह भाग-मात्र अन्य ग्यारह संग्रह कृष्टिनिका आयाम एक भागमात्र हो है। तहां लोभकीविषै साधिकपना अन्यत्र किंचित् न्यूनपना यथासम्भव जानना। इहां संग्रह कृष्टिविषै जितनी अन्तर कृष्टिका प्रमाण होइ तीहिंका नाम संग्रह कृष्टिका आयाम है ॥४९५॥

पढमादिसंगहाओ पल्लासंखेज्जभागहीणाओ।
कोहस्स तदीयाए अकसायाणं तु किट्टीओ[1] ॥४९६॥

प्रथमादिसंग्रहाः पल्यासंख्येयभागहीनाः।
क्रोधस्य तृतीयायामकषायानां तु कृष्टयः ॥४९६॥

स० चं०—पूर्वोक्त प्रकार करि प्रथम आदि बारह संग्रह कृष्टिनिका आयाम है सो पल्यका असंख्यातवां भागका क्रमकरि घटता जानना। बहुरि नोकषायसम्बन्धी सर्व कृष्टितैं क्रोधकी तृतीय संग्रह कृष्टिविषैं प्राप्त जानना ॥४९६॥

कोहस्स य माणस्स य मायालोभोदएण चडिदस्स।
बारस णव छत्तिण्णि य संगहकिट्टी कमे होंति[2] ॥४९७॥

क्रोधस्य च मानस्य च मायालोभोदयेन चटितस्य।
द्वादश नव षट् त्रीणि च संग्रहकृष्टयः क्रमेण भवंति ॥४९७॥

स० चं—संज्वलन क्रोधका उदय सहित जो जीव श्रेणी चढ़ै ताकैं तो च्यार्यो कषायनिकी बारह संग्रह कृष्टि हो हैं। बहुरि मानका उदय सहित श्रेणी चढ़ै ताकैं क्रोधका पहिले ही संक्रमण करि क्षय होइ, तातैं अवशेष तीन कषायनिकी नव संग्रह कृष्टि हो हैं। बहुरि मायाका उदय सहित जो श्रेणी चढ़ै ताकैं क्रोध मानका पहलैं ही संक्रमणकरि क्षय होइ, तातैं दोय कषायनिकी छह संग्रह कृष्टि हो हैं। बहुरि लोभका उदय सहित जो श्रेणी चढ़ै ताकैं क्रोध मान मायाका

१. क० गा० १६३। २. क० गा० १६५।

पहलैंही संक्रमण करि क्षय होइ, तातैं एक लोभ हीकी तीन संग्रह कृष्टि हो हैं। तहां जेती संग्रह कृष्टि होंइ तिनहीविषैं कृष्टि प्रमाणका विभाग यथासंभव जानना ॥४९७॥

संगहगे एक्केक्के अंतरकिट्टी हवदि हु अणंता।
लोभादि अणंतगुणा कोहादि अणंतगुणहीणा[1] ॥४९८॥

संग्रहके एकैकस्मिन् अंतरकृष्टिः भवति हि अनंता।
लोभादौ अनंतगुणा क्रोधादौ अनंतगुणहीना ॥४९८॥

स० चं—एक एक संग्रह कृष्टि विषैं अन्तर कृष्टि अनंत पाइए हैं जातें अनंती कृष्टिनिके समूहका ही नाम संग्रह कृष्टि है। बहुरि तहां कृष्टिनिविषै लोभतैं लगाय क्रमतैं अनंतगुणा बंधता अर क्रोधतैं लगाय क्रमतैं अनंतगुणा घटता अनुभाग पाइए है। सोई कहिए है—

लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टि विषैं जो जघन्य कृष्टि है सो स्तोक है। सर्वतैं मंद अनुभाग सहित है। तातैं ताकी दूसरी कृष्टि अनंतगुणी है। अभव्यराशितैं अनंतगुणा वा सिद्ध राशिके अनंतवे भागमात्र अनंतप्रमाण लीएं जो गुणकार तिस करि जघन्य कृष्टिके अनुभागकौं गुणैं द्वितीय कृष्टिका अनुभाग हो है। ऐसैं ही आगे भी जानना। बहुरि दूसरी कृष्टितै तीसरी कृष्टि अनंतगुणी है। ऐसैं ही प्रथम संग्रह कृष्टिकी अंत कृष्टि पर्यंत अनुक्रम जानना। बहुरि तिस प्रथम संग्रह कृष्टिकी अन्त कृष्टितैं द्वितीय संग्रह कृष्टिकी जघन्य कृष्टि अनंतगुणी है, सो इहां गुणकारका प्रमाण अन्य प्रकार हो है, जातैं इहां परस्थान गुणकार भया सो सर्व स्वस्थान गुणकारनितैं यहु अनंतगुणा है, सो ऐसैं गुणकारका भेद ही करि संग्रह कृष्टिनिका भेद भया है। कृष्टिनिका अनुभाग विषैं गुणकारका प्रमाण यावत् एक प्रकार बंधता भया तावत् सो ही संग्रह कृष्टि कही। बहुरि जहां नीचली कृष्टितैं ऊपरली कृष्टिका गुणकार अन्य प्रकार भया तहांतैं अन्य संग्रह कृष्टि कही है। सो इस कथनकौं आगैं व्यक्त करि दिखाइऐगा। बहुरि द्वितीय कृष्टिकी जघन्य कृष्टितैं ताकी द्वितीय कृष्टि अनंतगुणी है। ऐसैं अन्त कृष्टि पर्यंत क्रम जानना। बहुरि द्वितीय कृष्टिकी अन्त कृष्टितै तृतीय कृष्टिकी जघन्य कृष्टि अनंतगुणी हैं। इहां परस्थान गुणकार जानना। तातैं ताकी द्वितीयादि अंत पर्यंत कृष्टि क्रमतैं अनंतगुणी है। ऐसैं लोभ की तीन संग्रह कृष्टि भई। बहुरि लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिकी अन्त कृष्टितैं मायाकी प्रथम संग्रह कृष्टिकी जघन्य कृष्टि अनन्तगुणी है। बहुरि लोभवत् क्रम जानना। बहुरि मायाकी तृतीय संग्रह कृष्टिकी अन्त कृष्टितैं मानकी प्रथम संग्रह कृष्टिकी जघन्य कृष्टि अनन्तगुणी है। बहुरि पूर्वोक्त प्रकार क्रम जानना। बहुरि मानकी तृतीय संग्रह कृष्टिकी अन्त कृष्टितैं क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिकी जघन्य कृष्टि अनन्तगुणी है। बहुरि पूर्वोक्त प्रकार क्रम जानना। बहुरि क्रोधकी तृतीय संग्रह कृष्टिकी अन्त कृष्टितैं अपूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणा अनन्तगुणी है, जातैं कृष्टिका अनुभागतैं स्पर्धकका अनुभाग अनन्तगुणापनेकौं लीए है। इहां गुणकार अनुभाग अपेक्षा ही जानना ॥४९८॥

विशेष—यहाँ क्रोधादिकसे प्रत्येककी संग्रह कृष्टियां तीन तीन रचनी चाहिये। इस प्रकार एक-एक कषायकी तीन-तीन संग्रह कृष्टियाँ होती हैं। इस प्रकार कुल संग्रह कृष्टियाँ बारह हो जाती हैं। उनमेंसे सबसे नीचे लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टि होती है। उसकी अवान्तर कृष्टियाँ अनन्त होती हैं। उसके ऊपर लोभकी दूसरी संग्रह कृष्टि होती है। उसकी भी अवान्तर कृष्टियाँ

१. धवला पु० ६, पृ० ३७५–३७६।

अनन्त होती हैं। उसके ऊपर लोभकी तीसरी संग्रह कृष्टि होती है। उसकी भी संग्रह कृष्टियाँ अनन्त होती हैं। इसी प्रकार शेष संग्रह कृष्टियोंका भी आगमके अनुसार विचार कर लेना चाहिये। तीव्र-मन्दताकी अपेक्षा विचार करने पर लोभकी जघन्य कृष्टि सबसे मन्द अनुभागवाली होनेसे स्तोक है। उससे दूसरी कृष्टि अनन्नगुणी है। यहाँ गुणकारका प्रमाण अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण है। इस प्रकार प्रथम संग्रह कृष्टिकी अन्तिम संग्रह कृष्टिके प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर तृतीयादि कृष्टियाँ अनन्तगुणी-अनन्तगुणी जाननी चाहिये। इस प्रकार जो प्रथम संग्रह कृष्टिकी अन्तिम अवान्तर कृष्टि प्राप्त होती है उससे दूसरी संग्रह कृष्टिकी जघन्य कृष्टि अनन्तगुणी है। यहाँ गुणकार क्या है इसका निर्देश करते हुए बतलाया है कि लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टिकी अवान्तर कृष्टियोंको लानेके लिए जो गुणकार ग्रहण किया था वह स्वस्थान गुणकार था। उससे यह गुणकार अनन्तगुणा है, कारण कि स्वस्थान गुणकारसे परस्थान गुणकार अनन्तगुणा है। यह गुणकार कितना बड़ा है इसका माहात्म्य बतलाते हुए लिखा है कि क्रोधकी तीसरी संग्रह कृष्टिका जो अन्तिम स्वस्थान गुणकार है उससे भी अनन्तगुणा देखा जाता है। इसी प्रकार दूसरी संग्रह कृष्टिका भी पूर्ण विचार पूर्वोक्तरूपसे जानना चाहिये। तथा तीसरी संग्रह कृष्टिके सम्बन्धमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। यहाँ पहली और दूसरी संग्रह कृष्टिके मध्य जिस प्रकार अन्तर है उसी प्रकार दूसरी और तीसरी संग्रह कृष्टिके मध्य भी अंतर जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि प्रथम और द्वितीय संग्रह कृष्टिके मध्य जो अन्तर है उससे दूसरी और तीसरी संग्रहकृष्टिके मध्यका अन्तर अनन्तगुणा है। इसे लानेके लिए कृष्टि गुणकार ही लेना चाहिये। यहाँ जो लोभकी संग्रह कृष्टियोंके सम्बन्धमें जो प्ररूपणा की गई उसी प्रकार क्रमसे माया, मान और क्रोधकी संग्रहकृष्टियों तथा उनकी अवान्तर कृष्टियोंके विषयमें जानना चाहिये। अल्पबहुत्वकी अपेक्षा विचार करनेपर लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टिका जघन्य कृष्टि अन्तर सबसे स्तोक है। इस जघन्य कृष्टिको जिस गुणकारसे गुणा करनेपर दूसरी कृष्टि उत्पन्न होती है उसकी जघन्य कृष्टि अन्तर संज्ञा है। इससे द्वितीय कृष्टि अन्तर अनन्तगुणा है। तात्पर्य यह है कि दूसरी कृष्टिको जिस गुणकारसे गुणित करने पर तीसरी कृष्टि प्राप्त होती है इस गुणकारका नाम द्वितीय कृष्टि अन्तर है। इसी प्रकार उत्तरोत्तर अन्तिम कृष्टिके प्राप्त होने तक अन्तरका प्रमाण उत्तरोत्तर अनन्तगुणा जानना चाहिये। आगे लोभकी द्वितीय संग्रह कृष्टिका अन्तर अनन्तगुणा है। यह परस्थान गुणकार है जो सभी स्वस्थान गुणकारोंसे अनन्तगुणा है। आगे दूसरी संग्रह कृष्टिकी जो अनन्त अन्तर कृष्टियाँ है उन्हें प्राप्त करनेके लिए भी गुणकारका प्रमाण उत्तरोत्तर अनन्तगुणा जानना चाहिये। यह एक क्रम है जो स्वस्थान गुणकार और परस्थान गुणकारकी अपेक्षा आगे सभी संग्रह कृष्टियों और उनकी अन्तर कृष्टियों को प्राप्त करनेके लिए जानना चाहिये। विशेष कथन चूर्णिसूत्रों और उनकी जयधवला टीकासे जानना चाहिये। यहाँ मात्र थोड़ेमें निर्देश किया है। यही आगेकी गाथामें स्पष्ट किया गया है।

अब इस कथनके स्पष्ट करनेकों सूत्र कहे हैं—

लोभादी कोहो त्ति य सट्ठाणंतरमणंतगुणिदकमं।
तत्तो बादरसंगहकिट्टी अंतरमणंतगुणिदकमं ॥४९९॥

लोभादितः क्रोधांतं च स्वस्थानांतरमनंतगुणितक्रमं ।
ततो बादरसंग्रहकृष्टेरंतरमनंतगुणितक्रमं ।।४९९।।

स० चं०—लोभतैं लगाय क्रोध पर्यन्त स्वस्थान अन्तर है सो अनन्तगुणा क्रम लीएं है। बहुरि तिस स्वस्थान अन्तरतैं बादर संग्रह कृष्टि तिनका अन्तर अनन्तगुणा क्रम लीएं है। सोई कहिए है—

बादर संग्रह कृष्टि है तहां एक एक संग्रह कृष्टिविषैं अन्तर कृष्टि सिद्धि राशिके अनन्तवें भागमात्र है। बहुरि तिनके अन्तराल एक घाटि कृष्टि प्रमाण हैं, जातैं दोय वीचि अन्तराल एक होइ, तीनि बीचि दोय होंइ ऐसैं विवक्षित प्रमाणविषैं अन्तराल एक घाटि तिस प्रमाणमात्र हो हैं। बहुरि इहां अन्तरकी उत्पत्तिकौं कारण जे गुणकार तिनकौं अन्तर कहिए। जातैं कारणविषैं कार्यका उपचार हो है। बहुरि इहां कृष्टिनिविषैं गुणकार हीका नाम अन्तर भया, तातैं तिनका नाम कृष्टयन्तर कहिए। बहुरि नीचली संग्रह कृष्टि अर ऊपरली संग्रह कृष्टिनिविषैं ग्यारह अन्तर हो हैं, जातैं संग्रह कृष्टि बारहविषैं एक घाटि अन्तरनिका प्रमाण हो है सो इनका नाम संग्रह कृष्टयन्तर कहिए। भावार्थ यहु—जेते अन्तराल होंइ तितनीवार गुणकार होइ तहां स्वस्थान गुणकारनिका नाम कृष्टयन्तर है। परस्थान गुणकारनिका नाम संग्रह कृष्टयन्तर है। एक ही संग्रह कृष्टिविषै नीचली अन्तर कृष्टितैं ऊपरली अन्तर कृष्टिविषैं गुणकार होइ ताकौं तौ स्वस्थान गुणकार कहिए है। बहुरि जहां नीचली संग्रह कृष्टिकी अन्तकी अन्तर कृष्टितैं अन्य संग्रह कृष्टिकी आदि अन्तर कृष्टिविषैं जो गुणकार होइ ताकौं परस्थान गुणकार कहिए है। ऐसैं संज्ञा कहि कृष्टयन्तर वा सग्रह कृष्टिनिका अल्पबहुत्व कहिए है। तहां निस्संदेह होनेकौं अंक संदृष्टि करि भी कथन करिए है—

तहां अनन्तकी संदृष्टि दोय अर एक संग्रह कृष्टिविषैं अन्तर कृष्टिनिके प्रमाणकी संदृष्टि च्यारि जाननी। तहां प्रथम लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टिकी जघन्य कृष्टि स्थापि ताकौं तिस अनन्त गुणकार करि गुणैं ताकी द्वितीय कृष्टि होइ। तिस गुणकारका नाम जघन्य कृष्टियन्तर है ताकी संदृष्टि दोयका अंक, बहुरि द्वितीय कृष्टिकौं जिस गुणकार करि गुणैं तृतीय कृष्टि होइ तिस गुणकारका नाम द्वितीय कृष्टयन्तर है। सो यहु जघन्य कृष्टयन्तरतैं अनन्तगुणा है। ताकी संदृष्टि च्यारिका अंक, ऐसैं क्रमतैं तृतीयादि कृष्टयन्तर क्रमतैं अनन्तगुणे होंइ, जिस गुणकार करि द्विचरम कृष्टिकौं गुणैं अन्त कृष्टि होइ सो अनन्तका गुणकार द्विचरम गुणकारतैं अनन्तगुणा है, ताकी संदृष्टि आठका अंक, बहुरि इस प्रथम संग्रह कृष्टिकी अन्त कृष्टिकौं जिस गुणकार करि गुणैं द्वितीय कृष्टिकी प्रथम कृष्टि होइ सो परस्थान गुणकार है। तातैं याकौं छोडि द्वितीय संग्रह कृष्टिकी प्रथम कृष्टिकौं जिस गुणकार करि गुणैं ताकी द्वितीय कृष्टि होइ सो प्रथम गुणकार पूर्वोक्त अन्तका स्वस्थान गुणकारतैं अनन्तगुणा है। ताकी संदृष्टि सोलहका अंक ऐसैं हीं बीचि बीचि परस्थान गुणकार छोडि एक एक कृष्टि प्रति गुणकारका प्रमाण अनन्तगुणा जानना। सो कृष्टिनिका जेता प्रमाण तिनमैं एक घाटि तो अन्तराल पाइए अर तहां ग्यारह परस्थान गुणकार पाइए अर एक जघन्य गुणकार हो है। ऐसैं तेरह घटाएं अवशेष जेता प्रमाण तितनी वार जघन्य गुणकारकौं अनन्तकरि गुणैं जो गुणकार भया तिसकरि क्रोधकी तृतीय संग्रह कृष्टिकी द्विचरम कृष्टिकौं गुणैं ताकी अन्तर कृष्टि हो है। अंक संदृष्टि करि अठतालीस कृष्टिनिविषैं तेरह घटाएं

पैंतीस रहे सो पैंतीस वार दोयकौं दोय करि गुणैं सोलहगुणा बादाल प्रमाण हो है। बहुरि इहांतैं स्वस्थान गुणकार छोडि बाहुरि करि लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टिकी अन्त वर्गणाकौं जिस गुणकार करि गुणैं द्वितीय संग्रह कृष्टिकी प्रथम वर्गणा होइ सो परस्थान गुणकार पूर्वोक्त अन्तका स्वस्थान गुणकारतैं अनन्तगुणा है। ताकी संदृष्टि बत्तीसगुणा बादाल है। बहुरि लोभकी द्वितीय संग्रह कृष्टिकी अन्त कृष्टिकौं जिस गुणकार करि गुणैं लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिकी प्रथम कृष्टि होइ सो द्वितीय परस्थान गुणकार सो प्रथम परस्थान गुणकारतैं अनन्तगुणा है। बहुरि लोभकी तृतीय कृष्टिकी अन्त कृष्टिकौं जिस गुणकार करि गुणैं मायाकी प्रथम संग्रह कृष्टिकी प्रथम संग्रह कृष्टि होइ सो तीसरा परस्थान गुणकार द्वितीय परस्थान गुणकारतैं अनन्तगुणा है। याही प्रकार ग्यारह परस्थान गुणकारनिकौं क्रमतैं अनन्तकरि गुणैं क्रोधकी द्वितीय कृष्टिकी अन्त कृष्टिकौं जिस गुणकार करि गुणैं क्रोधकी तृतीय कृष्टिकी प्रथम कृष्टि होइ तिस गुणकार प्रमाण आवै है।

यहु गुणकारनिका यन्त्र है तहां पण्णट्ठीकी संदृष्टि ऐसी ६५ = बादालकी ऐसी ४२ = अग इनके आगैं जितनेका अंक तितनेका इनकौं गुणकार जानना।

नाम	लोभ	माया	मान	क्रोध	
तृतीय संग्रहकृष्टि- विषै स्वस्थान गुणकार	५१२ २५६ १२८	६५ – ४ ६५ = २ ६५ = १	६५ = २०४८ ६५ = १०२४ ६५ = ५१२	४२ = १६ ४२ = ८ ४२ = ४	
परस्थान गुणकार	४२=६४	४२ = ५१२	४२ = ४०९६	४२ = ३२७६८	
द्वितीय संग्रहकृष्टि- विषै स्वस्थान गुणकार	६४ ३२ १६	३२७६८ १६३८४ ८१९२	६५ = २५६ ६५ = १२८ ६५ = ६४	४२ = २ ४२ = १ ६५ = ३२७६८	
परस्थान गुणकार	४२=३२	४२ = २५६	४२ = २०४८	४२ = १६३८४	
प्रथम संग्रहकृष्टि- विषै स्वस्थान गुणकार	८ ४ २	४०९६ २०४८ १०२४	६५ = ३२ ६५ = १६ ६५ = ८	६५ = १६३८४ ६५ = ८१९२ ६५ = ४०९६	अपूर्व स्पर्धक वर्गणा गुणकार
परस्थान गुणकार	जघन्य	४२ = १२८	४२ = १०२४	४२ = ८१९२	४२ = ६५ =

अंकसंदृष्टिकरि ग्यारह परस्थान गुणकारनिकौं दूणा २ कीएं जेसैं बत्तीस हजार सातसै अडसठिगुणा बादाल प्रमाण होइ। बहुरि यातैं तिस गुणकार करि क्रोधकी तृतीय संग्रह कृष्टिकी अंत कृष्टिकौं गुणैं लोभके अपूर्व स्पर्धकको प्रथम वर्गणाके अनुभागका अविभाग प्रतिच्छेदनिका प्रमाण हो है। तिस परस्थान गुणकारका प्रमाण अनंतगुणा जानना। ताकी संदृष्टि पण्णट्ठीगुणा बादाल है। ऐसैं गुणकारनिका प्रमाण कह्या। इहां ऐसा अर्थ जानना—

अंक संदृष्टिकरि जैसैं लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टिकी जघन्य कृष्टिविषैं जो अनुभाग पाइए है तातैं दूणा द्वितीय कृष्टिविषैं तातैं चौगुणा तृतीय कृष्टिविषैं है। तातैं अठगुणा अंत कृष्टिविषैं है। तातैं बत्तीस गुणित बादालगुणा लोभकी द्वितीय संग्रह कृष्टिकी प्रथम कृष्टिविषैं अनुभाग है। इहांतैं पहलैं अन्य प्रकार गुणकार था तातैं तहां पर्यन्त प्रथम संग्रह कृष्टिका ही इहां अन्य प्रकार गुणकार भया। तातैं इहांतैं लगाय द्वितीय संग्रह कृष्टि कही। ऐसैं ही अन्त पर्यन्त विधान जानना। बहुरि याहो प्रकार यथार्थ कथन जानना। दोयकी जायगा अनन्त जानना। अर संग्रह कृष्टिविषैं च्यारि अन्तर कृष्टि कहीं हैं तहां अनन्ती जाननी। ऐसैं अनुभागके अविभागप्रतिच्छेदनिकी अपेक्षा कृष्टिनिका कथन जानना ॥४९९॥

लोहस्स अवरकिट्टिगदव्वादो कोधजेट्ठकिट्टिस्स ।
दव्वो त्ति य हीणकमं देदि अणंतेण भागेण[1] ॥५००॥

लोभस्य अवरकृष्टिगद्रव्यात् क्रोधज्येष्ठकृष्टेः ।
द्रव्यमिति च हीनक्रमं दीयते अनंतेन भागेन ॥५००॥

स० चं०—लोभकी जघन्य कृष्टिका द्रव्यतैं लगाय क्रोधको उत्कृष्ट कृष्टिका द्रव्य पर्यन्त हीन क्रमलीए द्रव्य दीजिये है। सोई कहिए है—

कृष्टिविषैं देनेयोग्य अपकर्षण कीया द्रव्यविषैं जो द्रव्य सो सर्वधन है। याकौं कृष्टिनिका प्रमाणमात्र जो गच्छ ताका भाग दीएं मध्य कृष्टिविषैं जितना द्रव्य दीया ताका प्रमाणमात्र मध्य धन हो है। याकौं एक कृष्टि घाटि गच्छका आधाकरि हीन जो दो गुणहानि ताका भाग दीएँ एक विशेषका प्रमाण आवै है। याकौं दोगुणहानिकरि गुणैं जो प्रमाण आवै तितना द्रव्य तौ लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टिकी जघन्य कृष्टिविषैं दीजिए है। याके आगें द्वितीयादि कृष्टितैं लगाय सर्व संग्रह कृष्टिनिकी अंतर कृष्टि उल्लंघि क्रोधकी तृतीय संग्रह कृष्टिकी अंत कृष्टिपर्यंत एक एक विशेष घटता क्रम लीएं द्रव्य दीजिए है। इहां पूर्व-पूर्व कृष्टितैं उत्तर-उत्तर कृष्टिविषै द्रव्य दीया सो ही दृश्यमान है सो अनंतभाग घटता क्रम लीएं है पूर्व कृष्टिकौं अनंतका भाग दीएं तहां एक भागमात्र घटता उत्तर कृष्टिका द्रव्य प्रमाण हो है ॥५००॥

लोभस्स अवरकिट्टिगदव्वादो कोधजेट्ठकिट्टिस्स ।
दव्वं तु होदि हीणं असंखभागेण जोगेण[2] ॥५०१॥

लोभस्यावरकृष्टिगद्रव्यतः क्रोधज्येष्ठकृष्टेः ।
द्रव्यं तु भवति हीनं असंख्यभागेन योगेन ॥५०१॥

स० चं०—लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टिकी जघन्य कृष्टिका द्रव्य जो प्रदेशसमूह तातैं क्रोधकी

---

१. लोभस्स जहण्णियाए पदेसग्गं बहुअं। विदियाए किट्टीए विसेसहीणं, एवमणंतरोपणिधाए विसेसहीणमणंतभागेण जाव कोहस्स चरिमकिट्टि त्ति। क० चु० पृ० ८०१।

२. परंपरोपणिधाए जहण्णियादो लोभकिट्टीदो उक्कस्सियाए कोधकिट्टीए पदेसग्गं विसेसहीणमणंतभागेण। क० चु० पृ० ८०१।

तृतीय कृष्टिकी उत्कृष्ट कृष्टिका द्रव्य एक घाटि कृष्टि प्रमाणमात्र विशेषनिकरि घटता भय सो अनंतवां भागमात्र घटता भया जानना। जातैं सर्व कृष्टिनिका प्रमाण एक स्पर्धककी वर्गणाके अनंतवें भागमात्र है सो एक घाटि इतने चय घटनेतैं लोभकी जघन्य कृष्टि का द्रव्यके अनंतवें भागमात्र ही द्रव्य घटता भया है। बहुरि पूर्व अपूर्व स्पर्धकनिविषै जो देने योग्य द्रव्य कह्या था ताकौं साधिक द्व्यर्ध गुणहानिका भाग दीएं अपूर्व स्पर्धककी आदि वर्गणाविषै दीया द्रव्यका प्रमाण हो है। सो यहु क्रोधकी तृतीय संग्रह कृष्टिकी अंत कृष्टिविषै दीया द्रव्यके असंख्यातवें भागमात्र है। बहुरि तिसतैं तिनकी द्वितीय वर्गणा आदि पूर्व स्पर्धकनिकी अंत वर्गणा पर्यंतनिविषै विशेष घटता क्रम करि द्रव्य दीजिए है। ऐसैं कृष्टिकारकका प्रथम समयका निरूपण जानना ॥५०१॥

पडिसमयमसंखगुणं कमेण ओकड्डिदूण दव्वं खु।
संगहहेट्ठापासे अपुव्वकिट्टी करेदी हु[1] ॥५०२॥

प्रथमसमयमसंख्यगुणं क्रमेणापकृष्य द्रव्यं खलु।
संग्रहाधस्तनपार्श्वे अपूर्वकृष्टिं करोति हि ॥५०२॥

स० चं०--बहुरि प्रथम समयतैं द्वितीयादि समयनिविषै असंख्यातगुणा क्रम लीएं द्रव्यकौं अपकर्षणकरि संग्रह कृष्टिके नीचैं वा पार्श्वविषै अपूर्व कृष्टिकौं करै है। पूर्व समयविषै जे कृष्टि करी थीं तिनविषै बारह १२ संग्रह कृष्टिनिकी जे जघन्य कृष्टि तिनतैं अनंतगुणा घटता अनुभाग लीएं नीचैं केती इक नवीन कृष्टि अपूर्व शक्तियुक्त करिए है। याहीतैं इनका नाम अधस्तन कृष्टि जानना। बहुरि पूर्व समयनिविषै जे कृष्टि करी थीं तिनहीके समान शक्ति लीएं तिनके पास केती इक कृष्टि करिए है। भावार्थ यहु—पूर्व समयनिविषै करी कृष्टिनिविषै जो नवीन द्रव्यका निक्षेपण करिए सो पार्श्वविषैं करी कृष्टि कहिए है ॥५०२॥

हेट्ठा असंखभागं पासे वित्थारदो असंखगुणं।
मज्झिमखंडं उभयं दव्वविसेसे हवे पासे ॥५०३॥

अधस्तनमसंख्यभागं पार्श्वे विस्तारतोऽसंख्यगुणं।
मध्यमखंडमुभयं द्रव्यविशेषे भवेत् पार्श्वे ॥५०३॥

स० चं०—संग्रहकृष्टिके नीचैं करी हुई कृष्टिनिका प्रमाण तौ सर्व कृष्टिनिका प्रमाणके असंख्यातवें भागमात्र है। बहुरि पार्श्वविषै करी हुई कृष्टिनिका प्रमाण तिनतैं असंख्यातगुणा है। तहाँ पार्श्वविषै करी कृष्टि तिनविषै मध्यम खंड अर उभय द्रव्यविशेष हो हैं। अर स्तोक जानि न कह्या तथापि तहां अधस्तन शीर्षका भी होना जानना। कैसैं ? सो कहिए है—

द्वितीयादि समयनिविषै समय समय प्रति असंख्यातगुणा द्रव्यकौं पूर्व अपूर्व स्पर्धकसम्बन्धी द्रव्यतैं अपकर्षणकरि तहां पूर्व अपूर्व स्पर्धकनिविषै देने योग्य द्रव्य जुदा कीएं अवशेष कृष्टिसम्बंधी

१. विदियसमए अण्णाओ अपुव्वाओ किट्टीओ करेदि पढमसमए णिव्वत्तिदकिट्टीणमसंखज्जदिभाग-मेत्ताओ। एक्किक्के संगहकिट्टीए हेट्ठा अपुव्वाओ किट्टीओ करेदि। क० चु० पृ० ८०१।

द्रव्य हो है। तिसविषै अधस्तन शीर्ष १, अधस्तन कृष्टि २, मध्यम खंड ३, उभय द्रव्यविशेष ४ ऐसैं च्यारि विभाग करिए सो अधस्तन शीर्षादिकका स्वरूप उपशम चारित्रविषै सूक्ष्मकृष्टिका वर्णन करतैं पूर्वै विशेषकरि कह्या है सो जानना। वा इहां भी किछू कहिए है—

तहां पूर्व समयविषै करी कृष्टि तिनविषै प्रथम कृष्टितैं लगाय विशेष घटता क्रम है सो सर्व पूर्व कृष्टिनिकौं आदि कृष्टि समान करनेके अर्थि घटे विशेषनिका द्रव्यमात्र जो द्रव्य तहां दीजिए ताका नाम अधस्तन शीर्ष विशेष द्रव्य है। बहुरि पूर्वैं न थी ऐसी करीं जे नवीन कृष्टि तिनिकौं पूर्व कृष्टिकी आदि कृष्टिके समान करनेके अर्थि जो द्रव्य दीया ताका नाम अधस्तन कृष्टि द्रव्य है। बहुरि इन सर्व पूर्व अपूर्व कृष्टिनिविषै आदि कृष्टितैं लगाय अन्त कृष्टि पर्यंत विशेष घटता क्रम करनेके अर्थि जो द्रव्य दीया ताका नाम उभय द्रव्य विशेष द्रव्य है। बहुरि इन तीनोंको जुदा कीएं अवशेष जो द्रव्य रह्या ताकौं सर्व कृष्टिनिविषै समानरूप दीजिए ताका नाम मध्यम खंड है। ऐसैं संग्रह कृष्टिनिके पार्श्ववर्ती कृष्टिनिविषै तौ अधस्तन शीर्ष, मध्यम खंड, उभय द्रव्य विशेषरूप तीन प्रकार द्रव्य दीजिए है। अर संग्रहकृष्टिनिके नीचैं जे नवीन कृष्टि करीं तिनविषै अधस्तन शीर्ष, मध्यम खंड, उभय द्रव्य विशेषरूप तीन प्रकार द्रव्य दीजिए है। अब याका विशेष दिखाइए है-तहां द्वितीय समयविषै कैसैं द्रव्य दीजिए है सो वर्णन कीजिए है—

क्रोध मान माया लोभके पूर्व अपूर्व स्पर्धकसम्बन्धी द्रव्यतैं पहले समय जो अपकर्षण कीया द्रव्य तातैं असंख्यातगुणा द्रव्य अपकर्षण करै है। तहां सर्व द्रव्यकौं आठका भाग दीएं एक एक भागमात्र लोभ माया मानका, पांच भागमात्र क्रोधका द्रव्य पूर्वोक्त प्रकार यथासम्भव साधिक वा किंचित् न्यूनपना लीएं जानना। बहुरि याकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएं एक भागमात्र द्रव्य पूर्व अपूर्व स्पर्धकनिविषै देना। ताकौं जुदा राखि अवशेष द्रव्यका पल्यका प्रथम समयवत् बारह संग्रह कृष्टिनिविषै विभाग करिए तब सर्व द्रव्यकौं चौईसका भाग दीएं तहां ग्यारह संग्रह कृष्टिनिका एक एक भागमात्र अर क्रोधकी तृतीय संग्रह कृष्टिका तेरह भागमात्र द्रव्य हो है। इहां साधिकपना वा न्यूनपना यथासम्भव जानि लेना।

अब द्वितीय समयविषै अपकर्षण कीया जो द्रव्य तिसविषै एक एक संग्रह कृष्टिका द्रव्य जो कह्या तिसविषै अधस्तन शीर्षादि च्यारि प्रकार द्रव्यका प्रमाण ल्याइए है—तहां प्रथम समयविषै अन्त कृष्टितैं लगाय कृष्टि २ प्रति जितना द्रव्य बध्या सो एक विशेष है। ताका प्रमाण पूर्वैं कह्या था सो आदिविषै जो विशेषका प्रमाण सो आदि अर एक एक विशेष कृष्टि कृष्टि प्रति बध्या तातैं एक विशेष उत्तर अर प्रथम समयविषै कीनी कृष्टिनिका प्रमाणमात्र गच्छ सो ऐसैं आदि उत्तर गच्छ स्थापि श्रेणी व्यवहार नाम गणितके अनुसारि—

रूपेणोनो गच्छो दलीकृतः प्रचयताडितो मिश्रः।
प्रभवेण पदाभ्यस्तः संकलितं भवति सर्वेषां ॥ १ ॥

इस सूत्रतैं एक घाटि गच्छका आधाकौं विशेषकरि गुणि ताकौं आदिविषैं जोडि ताकौं गच्छकरि गुणैं सबनिका संकलित धन कहिए जोडया हूवा प्रमाण हो है। सो जो जो प्रमाण होइ तितना तितना अधस्तन शीर्ष द्रव्य हो है। सोई कहिए है—

एक विशेष आदि एक विशेष उत्तर अर प्रथम कृष्टिविषै विशेष मिल्या नाहीं तातैं एक

घाटि लोभको प्रथम संग्रह कृष्टिविषैं प्रथम समयविषै कीनी अन्तर कृष्टिनिका प्रमाणमात्र गच्छ स्थापि तहां संकलन धनमात्र लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिका जो द्वितीय समय विषैं अपकर्षण द्रव्यविषैं द्रव्य कह्या था तिस द्रव्यकौं द्वितीय समयविषैं अपकर्षण किया तींहिविषै जो कृष्टिनिविषै देने योग्य द्रव्य कह्या था तींहिविषै अधस्तन शीर्ष द्रव्य हो है। बहुरि ऐसैं ही लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टिकी अंतर कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेष तौ आदि अर एक विशेष उत्तर अर द्वितीय संग्रह कृष्टिकी अंतर संग्रह कृष्टिका प्रमाणमात्र गच्छ स्थापि तहां संकलन धनमात्र लोभकी द्वितीय संग्रह कृष्टिका द्रव्यविषै अधस्तन शीर्ष द्रव्य हो है। बहुरि लोभकी प्रथम द्वितीय संग्रह कृष्टिनिविषै जो अन्तर कृष्टिनिका प्रमाण तितने विशेष तौ आदि अर एक विशेष उत्तर लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिकी अन्तर कृष्टिनिका प्रमाणमात्र गच्छ स्थापि तहां सकलन धनमात्र लोभको तृतीय संग्रहकृष्टिका द्रव्यविषै अधस्तन शीर्ष द्रव्य हो है। बहुरि लोभकी प्रथम द्वितीय तृतीय संग्रहकृष्टिनिकी अन्तर कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेष तौ आदि अर एक विशेष उत्तर अर मायाकी प्रथम संग्रह कृष्टिकी अन्तर कृष्टि प्रमाणमात्र गच्छ स्थापि तहां संकलन धनमात्र माया की प्रथम संग्रह कृष्टिका प्रमाणविषैं अधस्तन शीर्ष द्रव्य हो है। ऐसैं ही अवशेष आठ संग्रह कृष्टिनिविषै अपने अपने नीचैकी संग्रह कृष्टिनिको अन्तर कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेष तौ आदि अर एक विशेष उत्तर अर अपना अपना अन्तर कृष्टिनिका प्रमाणमात्र गच्छ स्थापि तहां संकलन धनमात्र अपना अपना संग्रह कृष्टिका द्रव्यविषैं अधस्तन शीर्षका द्रव्य हो है। इस सर्वकौ जोडैं एक विशेष आदि एक विशेष उत्तर एक घाटि प्रथम समयविषैं कोनी सर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र गच्छ स्थापैं जो संकलन धन होइ तितना सर्व अधस्तन शीर्ष विशेष द्रव्य जानना।

बहुरि प्रथम समयविषैं जो लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी जघन्य कृष्टिविषै द्रव्यका प्रमाण कह्या था तींहिं प्रमाण एक एक घाटि कृष्टिका द्रव्य स्थापि ताकौं अपनी अपनी संग्रह कृष्टिनिविषै करीं जे अन्तरकृष्टि नवीन कृष्टि तिनका प्रमाणकरि गुणैं अपनी अपनी संग्रह कृष्टिका द्रव्यविषै अधस्तन कृष्टिका द्रव्य प्रमाण हो है। सर्व कृष्टिनि का प्रमाणकरि ताहीकौं गुणैं सर्व अधस्तन शीर्षकृष्टि द्रव्य हो है।

बहुरि प्रथम समय द्वितीय समयसम्बन्धी जो कृष्टिविषै देने योग्य द्रव्य ताकौं जोडैं सर्व धन होइ याकौं पुरातन वा नवीन करी कृष्टिनिका प्रमाणमात्र जो गच्छ ताका भाग दीए मध्य धन हो है। ताकौं एक घाटि गच्छका आधा प्रमाणकरि न्यून दोगुणहानिका भाग दीए एक उभय द्रव्यका विशेष हो है। सो एक विशेष आदि एक विशेष उत्तर अर क्रोधकी तृतीय संग्रह कृष्टिकी पुरातन नवीन कृष्टि प्रमाण गच्छ स्थापि तहां पूर्वोक्त सूत्र अनुसारि संकलन धनमात्र क्रोधकी तृतीय संग्रह कृष्टिविषै जो द्वितीय समयविषै कृष्टिनिविषैं देने योग्य अपकर्षण द्रव्य कह्या था तिसविषै उभय द्रव्य विशेष द्रव्यका प्रमाण हो है। बहुरि एक अधिक क्रोधकी तृतीय संग्रह कृष्टिका पुरातन नवीन कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेष तौ आदि अर एक विशेष उत्तर अर क्रोधकी प्रथम द्वितीय कृष्टिकी पुरातन नवीन कृष्टिमात्र गच्छ स्थापि तहां संकलन धनमात्र क्रोधकी द्वितीय संग्रह कृष्टिविषै उभय द्रव्य विशेष द्रव्य हो है। बहुरि एक अधिक क्रोधकी तृतीय द्वितीय संग्रह कृष्टिनिका पुरातन नवीन कृष्टि प्रमाणमात्र विशेष आदि अर एक विशेष उत्तर अर क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिकी पुरातन नवीन कृष्टिमात्र गच्छ स्थापि तहां संकलन धनमात्र क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिविषै उभय द्रव्य विशेष द्रव्य हो है। बहुरि एक अधिक क्रोधकी तीनों संग्रह कृष्टिनिकी पुरातन

नवीन कृष्टि प्रमाणमात्र विशेष आदि अर एक विशेष उत्तर अर मानकी तृतीय संग्रह कृष्टिकी पुरातन नवीन कृष्टि प्रमाणमात्र गच्छ स्थापि तहाँ संकलन धनमात्र मानकी तृतीय संग्रहकृष्टिविषै उभय द्रव्य विशेष हो है। ऐसैं एक अधिक अपनी ऊपरिकी संग्रह कृष्टिनिको पुरातन नवीन कृष्टि प्रमाणमात्र विशेष तौ आदि अर एक विशेष उत्तर अर अपनी-अपनी संग्रह कृष्टिकी पुरातन नवीन कृष्टि प्रमाणमात्र गच्छ स्थापि संकलनकी अवशेष आठ संग्रहकृष्टिनिविषै भी उभय द्रव्य विशेष द्रव्यका प्रमाण आवै हैं। इस सर्वकौं जोडैं एक उभय द्रव्य विशेष आदि एक उभय द्रव्य विशेष उत्तर सब पुरातन नवीन कृष्टिनिका प्रमाणमात्र गच्छ स्थापि संकलन धन कोएं सर्व उभय द्रव्य विशेष द्रव्यका प्रमाण आवै है। बहुरि द्वितीय समयविषै अपकर्षण कोया द्रव्यविषै जो कृष्टि सम्बन्धी द्रव्य तीहिंविषै पूर्वोक्त तीन प्रकार द्रव्य घटाएँ जो अवशेष द्रव्य रह्या ताकौं सर्व पुरातन नवीन कृष्टिके प्रमाणका भाग दीएँ एक खंडका प्रमाण आवै ताकौं अपनी-अपनी पुरातन नवीन कृष्टिनिका प्रमाणकरि गुणैं अपनी-अपनी संगृह कृष्टिका द्रव्यविषै मध्यम खंडका प्रमाण आवै है। बहुरि तिस एक खंडको सर्व पुरातन नवीन कृष्टि प्रमाणकरि गुणैं सर्व मध्यम खण्डका द्रव्य हो है। इहाँ प्रथम समयविषैं कीनी कृष्टिनिकौं पुरातन कहिए। द्वितीय समयविषै करिए है तिनकौं नवीन कहिए है। ऐसैं द्वितीय समयविषै अपकर्षण कीया द्रव्यविषै जो कृष्टिसम्बन्धी द्रव्य तिसविषैं च्यारि प्रकार कहे। अब इनके देनेका विधान कहिए है—

लोभकी प्रथभ संगृह कृष्टिके नीचैं जे अपूर्व नवीन कृष्टि करीं तिनकी जघन्य कृष्टिविषैं बहुत द्रव्य दीजिए है। तहां अघस्तन शीर्षका द्रव्य तौ न दीजिए है अर अधस्तन कृष्टिका द्रव्यतैं एक कृष्टिका द्रव्य अर मध्यम खंडका द्रव्यतैं एक खंडका द्रव्य अर उभय द्रव्य विशेषका द्रव्यतैं सर्व नवीन पुरातन कृष्टिनिका जेता प्रमाण तितने विशेषनिका द्रव्य ग्रहि तहां ही दीजिए है। ऐसा यतिवृषभ आचार्यका तात्पर्य है। बहुरि द्वितीयादि अंतपर्यंत जे नवीन कृष्टि तिनविषै अधस्तन कृष्टिका द्रव्यतैं एक कृष्टिका द्रव्य अर मध्यम खंडतैं एक खंड तौ समानरूप सर्वत्र दीजिए है अर उभय द्रव्य विशेष द्रव्यविषैं एक एक विशेषमात्र द्रव्य घटता क्रमतैं दीजिए है। सो कृष्टि-कृष्टि प्रति उभय द्रव्यका एक विशेष जो घट्या सो अनंतवें भागमात्र घट्या तातैं पूर्व कृष्टितैं उत्तर कृष्टिविषैं अनंतवे भागमात्र घटता द्रव्य दीया कहिए है। इहां प्रथम संगृहकृष्टि-का अधस्तन कृष्टि द्रव्य तौ समाप्त भया। बहुरि नवीन कृष्टिकी अंत कृष्टिके ऊपरि पुरातन कृष्टिकी जघन्य कृष्टि है तीहिविषैं मध्यम खंडका द्रव्यतैं एक खंड अर उभय द्रव्य विशेषतैं जितनी कृष्टि नीचैं नवीन होइ आईं तिनके प्रमाणकरि हीन सर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेषनि-का द्रव्य दीजिए है। सो इहां नवीन कृष्टिकी अंत कृष्टिविषै दीया द्रव्यतैं एक अधस्तन कृष्टिका द्रव्य अर एक उभय द्रव्यका विशेषका द्रव्य घटता दीया सो तिस नवीन अंत कृष्टिविषैं दीया द्रव्यतैं एक अधस्तन कृष्टिका द्रव्य तौ असंख्यातवें भागमात्र अर एक उभय द्रव्यका विशेष अनंतवें भागमात्र है तातैं तिस नवीन अंत कृष्टितैं असंख्यातवां भागमात्र द्रव्य पुरातन कृष्टिकी जघन्य कृष्टिविषैं दोया कहिए है। इहां पुरातन जघन्य कृष्टिविषैं प्रथम समयविषैं दीया द्रव्य एक अधस्तन कृष्टिका द्रव्यके समान है। ताकौं जोडैं एक गोपुच्छाकार होइ जाइ परंतु ताकी इहां विवक्षा नाहीं। इहां द्वितीय समयविषैं दीया द्रव्य हीकी विवक्षा है तातैं असंख्यातवां भाग घटता कह्या ऐसैं आगैं भी जहां नवीन अन्त कृष्टिविषै दीया द्रव्यतैं पुरातन जघन्य कृष्टिविषैं दीया द्रव्य असंख्यात बहुभागमात्र घटता है तहां ऐसी ही युक्ति जाननी। बहुरि याके ऊपरि

पुरातन कृष्टिकी द्वितीय कृष्टि तिसविषैं अधस्तन शीर्षका द्रव्यतैं एक विशेषका द्रव्य अर मध्यम खंडतैं एक खंडका द्रव्य अर उभय द्रव्य विशेषतैं जितनी कृष्टि नीचैं नवीन अर एक पुरातन होइ आई तिनके प्रमाणकरि हीन सर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेषनिका द्रव्य दीजिए है। सो इहां पुरातन जघन्य कृष्टिविषैं दीया द्रव्यतैं एक अधस्तन शीर्षके विशेषका द्रव्य बध्या अर एक उभय द्रव्यका विशेष घट्या सो उभय द्रव्यका विशेष विषैं प्रथम समयसम्बन्धी विशेषमात्र अधस्तन शीर्षका विशेष घटाएं जो अवशेष रह्या सो पुरातन प्रथम कृष्टिविषैं दीया द्रव्यके अनन्तवें भागमात्र है। तातैं तिस पुरातन प्रथम कृष्टिविषै दीया द्रव्यतैं इस द्वितीय कृष्टिविषैं दीया द्रव्य अनन्तवें भागमात्र घटता कहिए है। बहुरि पुरातन कृष्टिकी तृतीयादि अन्त पर्यन्त कृष्टिनिविषैं मध्यम खंडतैं एक एक खंडका द्रव्य तौ समानरूप अर अधस्तन शीर्ष द्रव्यतैं एक एक विशेषका द्रव्य क्रमतैं बधता अर उभय द्रव्यविशेषतैं एक एक विशेषतैं एक एक विशेषका द्रव्य क्रमतैं घटता दीजिए है। तातैं अनन्तवां भागमात्र घटता द्रव्य दीया कहिए। ऐसैं लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टिसम्बन्धी च्यारि प्रकार द्रव्य देनेका विधान कह्या। बहुरि लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टिकी पुरातन अन्त कृष्टिके ऊपरि लोभकी द्वितीय संग्रह कृष्टिकी नवीन कृष्टिकी जघन्य कृष्टि है तिसविषैं लोभकी द्वितीय संग्रहकृष्टि सम्बन्धी च्यारि प्रकार द्रव्यविषैं अधस्तन शीर्ष द्रव्य तौ न दीजिए है अर अधस्तन कृष्टिका द्रव्यतैं एक कृष्टिका द्रव्य अर मध्यम खंड द्रव्यतैं एक खंडका द्रव्य अर उभय द्रव्य विशेषतैं नीचैं होइ आई जे प्रथम संग्रह कृष्टिकी जे नवीन पुरातनकृष्टि तिनके प्रमाणकरि हीन सर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेषनिका द्रव्य दीजिए है। सो इहां प्रथम संग्रह कृष्टिकी पुरातन अन्त कृष्टिविषै दीया द्रव्यतैं एक अधस्तन शीर्ष विशेषका द्रव्य अर एक उभय द्रव्य विशेषका द्रव्य तौ घटता अर एक अधस्तन कृष्टिका द्रव्य बधता दीया सो एक अधस्तन कृष्टिका द्रव्यविषैं एक अधस्तन शीर्षका विशेष अर एक उभय द्रव्य विशेषका द्रव्य घटाएं जो अवशेष रह्या सो प्रथम संग्रह कृष्टिकी पुरातन अन्त कृष्टिविषै दीया द्रव्य असंख्यातवें भागमात्र है, तातैं तिस पुरातन अन्तकृष्टिविषैं दीया द्रव्यतैं याविषैं दीया द्रव्य असंख्यातवें भागमात्र बधता कहिए है। ऐसैं इहां दीयमान द्रव्यकी अपेक्षा गोपुच्छका अभाव भया। ऐसैं ही आगैं भी जहां पुरातन कृष्टिकी अन्त कृष्टिविषैं दीया द्रव्यतैं नवीन कृष्टिकी प्रथम कृष्टिविषैं दीया द्रव्य असंख्यातवां भागमात्र बधता है तहां ऐसी ही युक्ति जाननी। बहुरि याके ऊपरि नवीन कृष्टिकी द्वितीयादि अन्त पर्यन्त कृष्टिनिविषै एक एक उभय विशेष प्रमाण घटता द्रव्य दीजिए है। तहां क्रमतैं अनन्तवां भाग घटता दीया द्रव्य क्रमतैं जानना। इहां अधस्तन कृष्टि द्रव्य समाप्त भया।

बहुरि द्वितीय संग्रह कृष्टिकी तिस नवीन अन्त कृष्टिके ऊपरि पुरातन जघन्य कृष्टि है तिस विषैं अधस्तन शीर्षका द्रव्यतैं तौ नीचैं होईं जे प्रथम संग्रहसम्बन्धी पुरातन कृष्टि तिनके प्रमाण मात्र विशेषनिका द्रव्य अर मध्यम खंड द्रव्यतैं एक खंडका द्रव्य अर उभय द्रव्य विशेषतैं नीचैं होइ आईं जे सर्व नवीन पुरातन कृष्टि तिनका प्रमाणकरि हीन सर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेषनिका द्रव्य दीजिए। सो एक एक अधस्तन कृष्टिका द्रव्य विषैं इहां अधस्तन शीर्षका द्रव्य दीया सो घटाएं अवशेष द्वितीय संग्रहकी जघन्य कृष्टिके समान होइ उभय द्रव्यका विशेष मिलाएं जो द्रव्य भया सो नवीन अन्त कृष्टिविषैं दीया द्रव्यके असंख्यातवें भागमात्र है, तातैं नवीन अन्त कृष्टि विषैं दीया द्रव्यतै इहां जघन्य पुरातन कृष्टिविषैं दीया द्रव्य असंख्यातवां भाग मात्र घटता द्रव्य दीया कहिए। बहुरि ताके ऊपरि द्वितीयादि अन्तपर्यंत पुरातन कृष्टि-

निविषैं क्रमतैं एक एक अधस्तन शीर्षका विशेष बंधता अर एक एक उभय द्रव्यका विशेष घटता दीजिए है। तहां अनंतवां भागमात्र घटता अनुक्रमतैं पूर्वोक्त प्रकार है। ऐसैं लोभकी द्वितीय संग्रह कृष्टिका च्यारि प्रकार द्रव्य देनेका विधान है। बहुरि ताके ऊपरि लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिकी नवीन पुरातन कृष्टि है तिन विषैं द्रव्य देनेका विधान लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिका च्यारि प्रकार द्रव्य स्थापि तहां द्वितीय कृष्टिवत् जानना। विशेष इतना पुरातन कृष्टिनिविषैं अधस्तन शीर्षका द्रव्यतैं जेती नीचैं पुरातन कृष्टि भईं तितने विशेषनिका द्रव्य देना अर नवीन वा पुरातन कृष्टिनिविषैं उभय द्रव्यका विशेषतैं जेती नीचैं नवीन पुरातन कृष्टि भईं तिनके प्रमाण करि हीन सर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेषनिका प्रमाण द्रव्य देना। इहां लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिका च्यारि प्रकार द्रव्य समाप्त भया। बहुरि लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिकी पुरातन अन्त कृष्टिके ऊपरि मायाकी प्रथम संग्रह कृष्टिकी नवीन जघन्य कृष्टि है तिस विषैं मायाकी प्रथम संग्रह कृष्टिकी च्यारि प्रकार द्रव्यविषैं अधस्तन शीर्षका द्रव्य बिना एक अधस्तन कृष्टिका द्रव्य एक मध्यम खंडका द्रव्य अर लोभकी सर्व नूतन पुरातन कृष्टिनिका प्रमाणकरि हीन सर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र उभय द्रव्यके विशेषनिका द्रव्य दीजिए है। सो एक अधस्तन कृष्टिका द्रव्यविषैं लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिकी अन्त कृष्टिविषैं जो अधस्तन शीर्षका द्रव्य दिया ताकौं घटाएं अवशेष लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिकी अन्त कृष्टिका प्रथम समयविषै जो द्रव्य था ताका प्रमाण होइ तामैं एक उभय द्रव्यका विशेष घटाएं अवशेष द्रव्य लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिकी अन्त कृष्टिके असंख्यातवें भागमात्र हैं, तातैं लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिकी अन्त कृष्टिविषैं दीया द्रव्यतैं इहां मायाकी जघन्य नूतन कृष्टिविषैं दीया द्रव्य असंख्यातवां भागमात्र बधता जानना। बहुरि ताके ऊपरि द्वितीयादि अन्यपर्यंत नवीन कृष्टिनिविषैं एक एक उभय द्रव्यका विशेषप्रमाण अनंतवां भाग घटता क्रमकरि द्रव्य दीजिए है। बहुरि ताके ऊपरि मायाकी प्रथम संग्रह कृष्टिकी पुरातन जघन्य कृष्टितैं लगाय क्रोधकी तृतीय संग्रह कृष्टिका पुरातन अन्त कृष्टिपर्यंत पूवोक्त प्रकार विधान द्रव्य देनेका जानना। तहां सर्व नूतन पुरातन कृष्टिनिविषै एक एक मध्यम खंडका द्रव्यकौं देना अर जेती नींचै नूतन पुरातन कृष्टि भई तिनके प्रमाणकरि हीन सर्व नूतन पुरातन कृष्टिनिका प्रमाणमात्र उभय द्रव्यके विशेषनिका द्रव्यकौं देना अर नवीन कृष्टिनिविषैं एक एक अधस्तन कृष्टिका द्रव्य देना अर पुरातन कृष्टिविषैं जेती नीचैं पुरातन कृष्टि भईं तिनके प्रमाणमात्र अधस्तन शीर्षके विशेषनिका द्रव्य देना। ऐसैं द्वितीय समयविषैं अपकर्षण कीया द्रव्य तिस विषैं जो कृष्टिसम्बन्धी द्रव्य था तिसके निक्षेपण करनेका विधान कह्या। बहुरि जो अपना अपना पूर्व अपूर्व स्पर्धकसम्बन्धी द्रव्य था ताकौं "दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा" इत्यादि विधानकरि तिस द्रव्यकौं साधिक ड्योढ गुणहानिका भाग दीएं लब्ध प्रमाणमात्र अपूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणाविषैं बहुत द्रव्य दीजिए है। बहुरि ऊपरि प्रथम गुणहानि पर्यंत चय घटता क्रमकरि दीजिए है। बहुरि ऊपरि गुणहानि गुणहानि प्रति आधा-आधा द्रव्य दीजिए हैं। या प्रकार जैसैं यहु द्वितीय समयविषैं वर्णन कीया तैसैं ही कृष्टिकरण कालका तृतीयादि अंतपर्यंत समयनिविषैं विधान जानना। विशेष इतना—समय समय प्रति अपकर्षण कीया द्रव्यका प्रमाण क्रमतैं असंख्यातगुणा बधता जानना। अर नीचैं-नीचैं नवीन कृष्टि करिए है तिनका प्रमाण क्रमतैं असंख्यातगुणा घटता जानना ॥५०३॥

पुव्वादिम्हि अपुव्वा पुव्वादि अपुव्वपढमगे सेसे ।
दिज्जदि असंखभागेणूणं अहियं अणंतभागूणं ॥५०४॥

पूर्वादौ अपूर्वा पूर्वादौ अपूर्वप्रथमके शेषे ।
दीयते असंख्यभागेनोनमधिकं अनंतभागोनं ॥५०४॥

सं० चं०—अपूर्व जो नवीन कृष्टि ताकी अंत कृष्टितैं पूर्वैं जो पुरातन कृष्टि ताकी आदि कृष्टिविषैं तौ असंख्यातवें भाग घटता द्रव्य दीजिए है। बहुरि पूर्वैं जो पुरातन कृष्टिकी अंत कृष्टि तातैं अपूर्व जो नवीन कृष्टि ताकी प्रथम कृष्टिविषैं असंख्यातवां भागमात्र अधिक द्रव्य दीजिए है। बहुरि अवशेष सर्व कृष्टिनिविषैं पूर्व कृष्टितैं उत्तर कृष्टिविषै द्रव्य अनंतवां भागमात्र घटता दीजिए है। सो कथन करिही आए हैं ॥५०४॥

वारेक्कारमणंतं पुव्वादि अपुव्वआदि सेसं तु ।
तेवीस ऊंटकूडा दिज्जे दिस्से अणंतभागूणं ॥५०५॥

द्वादशैकादशमनंतं पूर्वादि अपूर्वादि शेषं तु ।
त्रयोविंशतिरुष्ट्रकूटा देये दृश्ये अनंतभागोनम् ॥५०५॥

सं० चं०—तहाँ पुरातन प्रथम कृष्टि तौ बारह अर प्रथम संग्रहकी विना नवीन संग्रह कृष्टि ग्यारह अर अवशेष कृष्टि अनंत जाननी। ऐसैं देय जो देने योग्य द्रव्य तिसविषै तेईस स्थाननिविषैं उष्ट्रकूट रचना हो है। जैसैं ऊँटकी पीठि पछाड़ी तौ ऊँची अर मध्यविषैं नीची अर आगैं ऊंची वा नीची हो है तैसैं इहां पहलैं नवीन जघन्य कृष्टि विषैं बहुत, बहुरि द्वितीयादि नवीन कृष्टिनिविषैं क्रमतैं घटता अर आगैं पुरातन कृष्टिनिविषैं अधस्तन शीर्षविशेष करि बधता अर अधस्तन कृष्टि अथवा उभय द्रव्य विशेषकरि घटता द्रव्य दीजिए है तातैं देयमान द्रव्य विषैं तेईस उष्ट्रकूट रचना हो है। बहुरि दृश्यमानविषैं लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टिकी नवीन जघन्य कृष्टितैं लगाय क्रोधकी तृतीय संग्रह कृष्टिकी पुरातन अंत कृष्टिपर्यंत अनंतवें भागमात्र घटता क्रम लीएँ द्रव्य जानना[3]। जातैं नवीन कृष्टिनिविषै तौ विवक्षित समयविषैं दीया द्रव्य सोई दृश्यमान है अर पुरातन कृष्टिनिविषै पूर्व समयनिविषै दीया द्रव्य अर विवक्षित समयविषै दीया द्रव्य मिलाएँ दृश्यमान द्रव्य हो है सो नूतन कृष्टिनिविषै तौ अधस्तन कृष्टिका द्रव्य दीएं अर पुरातन कृष्टिनिविषै अधस्तन शीर्षका द्रव्य दीएं तौ सर्व कृष्टि पुरातन प्रथम कृष्टिके समान हो

---

१. एदेण कमेण विदियसमए णिक्खिवमाणगस्स पदेसग्गस्स वारसस्स किट्टिट्ठाणेसु असंखेज्जदिभाग-हीणं एक्कादससु किट्टिट्ठाणेसु असंखेज्जदिभागुत्तरं दिज्जमाणगस्स पदेसग्गस्स सेसेसु किट्टिट्ठाणेसु अणंतभागहीणं दिज्जमाणगस्स पदेसगस्स। क० चु० पृ० ८०३।

२. ·······विदियसमए दिज्जमाणयस्स पदेसग्गस्स एसा उट्टकूडसेढी। जहा विदियसमए किट्टीसु पदेसग्गं तहा सव्विस्से किट्टीकरणद्धाए दिज्जमाणगस्स पदेसग्गस्स तेवीसमुट्टकूडाणि। क० चु० पृ० ८०३।

३. जं पुण विदियसमए दीसदि किट्टीसु पदेसग्गं तं जहण्णियाए बहुअं, सेसासु सव्वासु अणंत-रोपणिधाए अणंतभागहीणं।

है। तहाँ एक एक मध्यम खंडकौं दीएँ तिनका समान प्रमाण ही रह्या। बहुरि उभय द्रव्य विशेष क्रमतैं एक-एक विशेष घटता दीया सो यहु विशेष विवक्षित कृष्टिकी नीचली कृष्टिका द्रव्यके अनंतवे भागमात्र हैं। तातैं दृश्यमान द्रव्यकी अपेक्षा सर्वत्र अनंतवां भागमात्र घटता क्रम कह्या है। बहुरि अंत कृष्टितैं अपूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणा विषैं दीया द्रव्य अनंतगुणा घटता है जातैं तहां एक भागविषैं द्व्यर्ध गुणहानिका भाग दीएं ताका प्रमाण हो है ।।५०५।।

किट्टीकरणद्धाए चरिमे अंतोमुहुत्तसंजुत्तो ।
चत्तारि होंति मासा संजलणाणं तु ठिदिबंधो[1] ।।५०६।।

कृष्टिकरणद्धायाः चरमे अंतर्मुहूर्तसंयुक्ताः ।
चत्वारो भवंति मासाः संज्वलनानां तु स्थितिबंधः ।।५०६।।

सं० चं०—कृष्टि करणकाल अंतर्मुहूर्तमात्र है ताका अंत समयविषैं अंतर्मुहूर्त अधिक च्यारि मासप्रमाण संज्वलन चतुष्कका स्थितिबंध है। अपूर्व स्पर्धक करणकालका अंत समयविषैं आठ वर्षमात्र था सो एक-एक स्थितिबंधापसरणविषैं अंतर्मुहूर्तमात्र घटि इहां इतना रहै है ।।५०६।।

सेसाणं वस्साणं संखेज्जसहस्सगाणि ठिदिबंधो ।
मोहस्स य ठिदिसंतं अडवस्संतोमुहुत्तहियं[2] ।।५०७।।

शेषाणां वर्षाणां संख्येयसहस्रकानि स्थितिबंधः ।
मोहस्य च स्थितिसत्त्वं अष्टवर्षोऽन्तर्मुहूर्ताधिकः ।।५०७।।

स० चं०—बहुरि अवशेष कर्मनिका स्थितिबध संख्यात हजार वर्षमात्र है। पूर्वे भी संख्यात हजार वर्षमात्र ही था सो संख्यातगुणा घटता क्रमरूप संख्यात हजार स्थितिबंधापसरण भएं भी आलापकरि इतना ही कह्या। बहुरि मोहनीयका स्थितिसत्त्व पूर्वै संख्यात हजार वर्षमात्र था सो घटिकरि इहां अंतर्मुहूर्त अधिक आठ वर्षमात्र रह्या है ।।५०७।।

घादितियाणं संखं वस्ससहस्साणि होदि ठिदिसंतं ।
वस्साणमसंखेज्जसहस्साणि अघादितिण्णं तु[3] ।।५०८।।

घातित्रयाणां संख्यं वर्षसहस्राणि भवति स्थितिसत्त्वम् ।
वर्षाणामसंख्येयसहस्राणि अघातित्रयाणां तु ।।५०८।।

---

१. किट्टीकरणद्धाए चरिमसमए संजलणाणं ट्ठिदिबंधो चत्तारिमासा अंतोमुहुत्तब्भहिया।
क० चु० पृ० ८०३।

२. सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। तम्हि चेव किट्टीकरणद्धाए चरिमसमए मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि हाइदूण अट्ठवस्सगमंतोमुहुत्तब्भहियं जादं।
—क० चु०, पृ० ८०३–८०४।

३. तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। णामा-गोद-वेदणीयाणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। —क० चु०, पृ० ८०४।

स० चं०—तीन घातियानिका संख्यात हजार वर्षप्रमाण स्थितिसत्त्व है। बहुरि तीन अघातियानिका असंख्यात हजार वर्षमात्र इहां स्थितिसत्त्व है ॥५०८॥

पडिपदमणंतगुणिदा किट्टीयो फड्डया विसेसहिया।
किट्टीण फड्डयाणं लक्खणमणुभागमासेज्ज[1] ॥५०९॥

प्रतिपदनंतगुणिता कृष्टयः स्पर्धका विशेषाधिकाः।
कृष्टीनां स्पर्धकानां लक्षणमनुभागमासाद्य ॥५०९॥

स० चं०—कृष्टि हैं ते तौ प्रतिपद अनंतगुणा अनुभाग लीए हैं। प्रथम कृष्टिका अनुभागतैं द्वितीय कृष्टिका अनुभाग अनंतगुणा, तातैं तृतीय कृष्टिका, ऐसैं अंत कृष्टि पर्यंत क्रमतैं अनंतगुणा अनुभाग पाइए है। बहुरि स्पर्धक हैं ते प्रतिपद विशेष अधिक अनुभाग लीए हैं। स्पर्धकनिकी प्रथम वर्गणातैं द्वितीय वर्गणाविषैं तातैं तृतीय वर्गणाविषैं ऐसैं अनंत वर्गणापर्यंत क्रमतैं किछू विशेष अधिक अनुभाग पाइए है। ऐसैं अनुभागकौं आश्रय करि कृष्टि अर स्पर्धकनिका लक्षण है। द्रव्य अपेक्षा तौ चय घटता क्रम दोऊनिविषैं ही है परंतु अनुभागका क्रमकी अपेक्षा इनका लक्षण जुदा जानि जुदापना कह्या हैं ॥५०९॥

पुव्वापुव्वप्फड्डयमणुहवदि हु किट्टिकारओ णियमा।
तस्सद्धा णिट्ठायदि पढमट्ठिदि आवलीसेसे[2] ॥५१०॥

पूर्वापूर्वस्पर्धकमनुभवति हि कृष्टिकारको नियमात्।
तस्याद्धा निष्ठापयति प्रथमस्थितौ आवलिशेषे ॥५१०॥

स० चं०—कृष्टि करनेवाला तिस कालविषैं पूर्व अपूर्व स्पर्धकनिहीके उदयकौं नियम करि भोगवै है। जैसैं अपूर्व स्पर्धक करनेतैं पूर्व स्पर्धक सहित अपूर्व स्पर्धक भोगवै है तैसैं कृष्टि करतैं कृष्टिकौं नाहीं भोगवै है ऐसा जानना। या प्रकार संज्वलन क्रोधका प्रथम स्थितिविषैं उच्छिष्टावलिमात्र काल अवशेष रहैं तिस कृष्टिकरण कालकौं निष्ठापन करै समाप्त करै है। इति कृष्टिकरणाधिकारः ॥५१०॥

अथ कृष्टिवेदनाधिकार कहिए हैं—

से काले किट्टीओ अणुहवदि हु चारिमासमडवस्सं।
बंधो संतं मोहे पुव्वालावं तु सेसाणं[3] ॥५११॥

१. गुणसेढि अणंतगुणा लोभादी कोधपच्छिमपदादी। कम्मस्स य अणुभागे किट्टीए लक्खणं एदं। —१६५ गा० क०, पृ० ८०७। ..... किसं कम्मं कदं जम्हा तम्हा किट्टी। क० चु०, पृ० ८०७–८०८।

२. किट्टीओ करेंतो पुव्वफद्दयाणि अपुव्वफद्दयाणि च वेदेदि, किट्टीओ ण वेदयदि। —क० चु०, पृ० ८०४।

३. से काले किट्टीओ पवेसदि। ताधे संजलणाणं ट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा। ट्ठिदिसंतकम्ममट्ठ वस्साणि। तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो ट्ठिदिसंतकम्मं च संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। वेदणीय-

स्वे काले कृष्टीन् अनुभवति हि चतुर्मासमष्टवर्षं ।
बंधः सत्त्वं मोहे पूर्वालापस्तु शेषाणाम् ॥५११॥

स० चं०—कृष्टिकरण कालके अनंतरि अपने कृष्टिवेदक कालविषैं कृष्टिनिके उदयकौं अनुभवैं है। द्वितीय स्थितिके निषेकनिविषैं तिष्ठतो कृष्टिनिकौं प्रथम स्थितिके निषेकनिविषैं प्राप्त करि भोगवै है। तिस भोगवने ही का नाम वेदना है। ताके कालका प्रथम समयविषैं च्यारि संज्वलनरूप मोहका स्थितिबंध च्यारि मास है अर स्थिति सत्त्व आठ वर्षमात्र है। पूर्वं अंतर्मुहूर्त अधिक थे सो अंतर्मुहूर्त घाटि इतने रहे। बहुरि अवशेष कर्मनिका स्थितिबंध स्थितिसत्त्व यद्यपि घटती भया है तथापि आलापकरि पूर्वोक्त प्रकार जैसैं कृष्टिकरण कालका अंत समयविषैं करै तैसैं ही जानना ॥५११॥

ताहे कोहुच्छिट्टं सव्वं घादी हु देसघादी हु ।
दोसमऊणदुआवलिणवकं ते फड्डयगदाओ[1] ॥५१२॥

तत्र क्रोधोच्छिष्टं सर्वं घाति हि देशघाति हि ।
द्विसमयोनद्व्यावलिनवकं तत् स्पर्धकगतम् ॥५१२॥

स० चं०—इहां अनुभागबंध तौ गुड खंड शर्करा अमृतरूप यथासंभव उत्कृष्ट है। बहुरि अनुभागसत्त्व है सो क्रोधकी उच्छिष्टावलीका तौ सर्वघाती है। काहेतैं ?—समयघाटि आवली-प्रमाण क्रोधके निषेक उदयावलीकौं प्राप्त भये है। तिनविषैं पूर्वं स्पर्धकरूप अनुभाग सत्त्व लता दारु समान शक्तियुक्त है। सो ऐसी शक्तिकी अपेक्षा इहां सर्वघाती न करै है। शैल समानादिकी अपेक्षा सर्वघाती न करे है। सो ए निषेक उदय कालविषैं कृष्टिरूप परिणमि जो वर्तमान समयमें उदय आवने योग्य निषेक तिनविषैं उदयरूप होइ निर्जरै हैं। इहां आवलिविषैं एक समय घाटि कह्या है सो उच्छिष्टावलिका प्रथम निषेक वर्तमान समयविषैं कृष्टिरूप परिणमनेतैं परमुखरूप होइ उदय आवै है तातैं कह्या है। बहुरि संज्वलन चतुष्कका जे दोय समय घाटि दोय आवलि मात्र नवक समयप्रबद्ध रहे हैं तिनविषैं अनुभाग देशघाति शक्ति करि संयुक्त है। जातैं कृष्टिकरण कालविषैं कृष्टिरूप बंध नाही, तातैं ते स्पर्धकरूप शक्तिकरि युक्त है। ते दोय समयघाटि दोऊ आवली कालविषैं कृष्टिरूप परिणमि सत्तानाशकौं प्राप्त होसी। नवक समयप्रबद्धका स्वरूप वा अन्यरूप परिणमनेका विधान पूर्वैं कह्या है सोई जानना। नवक बंध अर उच्छिष्टावलिमात्र निषेक अवशेष रहे तिनका तौ ऐसैं स्वरूप जानना अवशेष सर्व निषेक कृष्टिकरण कालका अन्त समयविषैं ही कृष्टिरूप परिणमै हैं॥ ५१२ ॥

विशेष—क्रोधसंज्वलनका जो पूर्वानुभाग उदयावतिके भीतर अवस्थित है वह सर्वघाति-

---

णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्ससहस्साणि।

—क० चु०, पृ० ८०४।

१. अणुभागसंतकम्मं कोहसंजलणस्स जं संतकम्मं समयूणाए उदयावलियाए च्छट्ठिदल्लिगाए तं सव्वघादी। संजलणाणं जे दो आवलियबंधा दुसमयूणा ते देसघादी। तं पुण फद्दयगदं।

—क० चु०, पृ० ८०४।

रूपसे ही सम्भव है। इसलिए उसे सर्वघाति स्वीकार किया है। मात्र चारों संज्वलनोंका जो नवक समयप्रबद्ध दो समयकम दो आवलिमात्र अवशिष्ट रहा है उनका अनुभाग अवश्य ही देशघाति है, क्योंकि वह एक स्थानीयस्वरूप है। ऐसा होते हुए भी वह स्पर्धकस्वरूप है, क्योंकि कृष्टिकरण के कालमें स्पर्धकगत अनुभागका ही बन्ध देखा जाता है।

लोहादो कोहादो कारउ वेदउ हवे किट्टी।
आदिमसंगहकिट्टिं वेदयदि ण विदीय तिदियं च ॥५१३॥

लोभात् क्रोधात् कारको वेदको भवेत् कृष्टेः।
आदिमसंग्रहकृष्टि वेदयति न द्वितीयां तृतीयां च ॥ ५१३ ॥

स० चं०—कृष्टिका कारक तौ लोभतैं लगाय क्रम लीएं है। अर वेदक है सो क्रोधतैं लगाय क्रम लीए है। भावार्थ यहु—कृष्टिकरणविषै तौ पहिले लोभकी, पीछै मानकी, पीछै मायाकी, पीछै क्रोधकी ऐसैं क्रम लीएं कृष्टि कही थी। इहां कृष्टिका वेदनेविषै पहिले क्रोधकी, पीछै मानकी, पीछै मायाकी, पीछै लोभकी कृष्टिनिका अनुभवन हो है। बहुरि इतना जानना—

कृष्टिकरणविषै याकौं तृतीय संग्रहकृष्टि कही है ताकौं तौ इहां कृष्टिवेदनविषै प्रथम कृष्टि कहनी अर जाकौं तहां प्रथम कृष्टि कहीं ताकौं इहां तृतीय कृष्टि कहनी[1]। जो ऐसैं न होइ तो पहलै स्तोक शक्ति लीएं कृष्टिनिका अनुभवन होइ पीछैं बहुत शक्ति लीएं कृष्टिनिका अनुभवन होइ सो बनैं नाही, जातैं समय समय अनंतगुणा घटता अनुभागका उदय हो है। तातैं संग्रहकृष्टिनिविषै कृष्टिकारकतैं कृष्टिवेदककैं उलटा क्रम जानना। बहुरि तहां अंतर कृष्टिनिविषै पूर्वोक्त प्रकार ही क्रम जानना। बहुरि इहां पहलैं क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिकौं ही अनुभवै है द्वितीय तृतीय संग्रह कृष्टिकौं नाही अनुभवैं है ऐसा जानना ॥ ५१३ ॥

किट्टीवेदगपढमे कोहस्स य पढमसंगहादो दु।
कोहस्स य पढमठिदी पत्तो ओवट्टगो मोहे ॥५१४॥

कृष्टिवेदकप्रथमे क्रोधस्य च प्रथमसंग्रहात् तु।
क्रोधस्य च प्रथमस्थितिः प्राप्तः अपवर्तको मोहे ॥ ५१४ ॥

स० चं०—कृष्टिवेदक कालका प्रथम समयविषै क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टितैं क्रोधकी प्रथम स्थिति करै है कैसैं? सो कहिए है—

कृष्टिकरण कालका अन्त समयपर्यंत तौ कृष्टिनिका तौ दृश्यमान प्रदेशनिका समूह है सो चय घटता क्रम लीएं गोपुच्छाकाररूप अपने स्थानविषै तिष्ठै है अर स्पर्धकनिका अपने स्थान-

---

१. एत्थ कोहस्स पढमसंगहकिट्टि त्ति भणिदे जा कारयस्स तदियसंगहकिट्टी सा वेदगस्स पढम सगह-किट्टि त्ति घेतव्वा। तत्तो प्पहुडि पच्छाणुपुव्वीए जहाकममेव संगहकिट्टीणमेत्थ वेदगभावदंसणादो।

जयध० पु०, पृ० ७०१४।

२. तम्हि चेव पढमसमए कोहस्स पढमसमयकिट्टीदो पदेसग्गमोकड्डियूण पढमट्टिदिं करेदि।

—क० चु०, पृ० ८०४।

विषै प्रदेश समूह एक गोपुच्छाकाररूप तिष्ठै है। तहां कृष्टिनिका द्रव्यतैं स्पर्धकनिका द्रव्य असंख्यातगुणा है तातैं कृष्टि अर स्पर्धकनिकैं एक गोपूच्छाकार है नाही। बहुरि कृष्टिकरण कालकी समाप्तताके अनन्तरि सर्व ही द्रव्य कृष्टिरूप परिणमि एक गोपुच्छाकार तिष्ठै है। तहां संज्वलनके सर्व द्रव्यकौं आठका भाग देइ तहां एक एक भागमात्र लोभ माया मानका, पांच भागमात्र क्रोधका द्रव्य जानना। बहुरि बारह संग्रहकृष्टिनिविषै विभाग कीजिए तौ सर्व संज्वलन द्रव्यकौं चौईसका भाग दीएं तहां अन्य संग्रह कृष्टिनिका एक एक भागमात्र, क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिका तेरह भागमात्र द्रव्य है इहां साधिकपना न्यूनपना है सो यथासम्भव पूर्वोक्त प्रकार जानना। पूर्वै कृष्टिकरण कालका द्वितीय समयविषै जैसैं विधान कह्या है तैसैं कहना। बहुरि प्रथम समयविषैं करी कृष्टिनिका प्रमाणविषैं ताके असंख्यातवें भागमात्र द्वितीयादि समयनिविषै करी कृष्टिनिका प्रमाण जोडैं सर्व पूर्व अपूर्व कृष्टिनिका प्रमाण हो है। सो कृष्टिवेदकका प्रथम समयविषैं क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिका जो द्रव्य ताकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ तहां एक भाग ग्रहि ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां एक भागमात्र द्रव्यकौं ग्रहि प्रथम स्थितिकौं करै है। सो क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टि वेदकका कालतैं उच्छिष्टावलीमात्र अधिक प्रथम स्थितिके निषेकनिका प्रमाण है। सोई इहां गुणश्रेणि आयाम जानना। ताके वर्तमान उदयरूप प्रथम निषेकविषैं तौ स्तोक द्रव्य दीजिए है। तातैं द्वितीयादि अंत समय पर्यन्त असंख्यातगुणा क्रम लीएं द्रव्य दीजिए है। ऐसैं तिस एक भागमात्र द्रव्यका गुणश्रेणिरूप देना हो है। इहां प्रथम स्थितिका जो अंतका निषेक ताहीका नाम गुणश्रेणिशीर्ष है। बहुरि अवशेष बहुभागमात्र द्रव्य कह्या ताकौं स्थितिकी अपेक्षा क्रोधकी द्वितीय तृतीय संग्रह कृष्टितैं भी अपकर्षण कीया जो द्रव्य तामैं मिलाएं जो द्रव्य भया ताकी इहां आठ वर्षमात्र स्थिति है ताकी संख्यात आवली भई सोई गच्छ, ताका भाग दीएं मध्यधन होइ। तामैं एक घाटि गच्छका आधा प्रमाणमात्र चय मिलाएं द्वितीय स्थितिका प्रथम निषेकविषैं दीया द्रव्यका प्रमाण हो है सो यहु गुणश्रेणिशीर्षविषैं दीया द्रव्यतैं असंख्यातगुणा है। बहुरि ताके असंख्यातवां भागमात्र विशेषका प्रमाण है सो द्वितीयादि निषेकनिविषैं अतिस्थापनावलीके नीचैं एक एक विशेष घटता क्रम लीएं द्रव्य दीजिए है। ऐसैं क्रमकरि समय समय प्रति उदयादि गलितावशेष गुणश्रेणि कीजिए है। बहुरि इहां मोहका अपवर्तन घात हो है। इहांतैं पहलैं अश्वकर्णरूप अनुभाग अंतर्मुहूर्तकरि सम्पूर्ण होइ ऐसा कांडकघात वर्तै था। अब संज्वलनकी बारह संग्रहकृष्टि तिनका समय समय प्रति अनंतगुणा घटता अनुभाग होनेकरि अपवर्तनघात वर्तै है ॥५१४॥

विशेष—कृष्टिवेदन कालके प्रथम समयमें कृष्टियोंको उदयावलिमें प्रवेश कराते हुए क्रोधसंज्वलन की प्रथम संग्रह कृष्टिके प्रदेशपुंजका अपकर्षण कर अपने वेदककालसे एक आवलि अधिक करके प्रथम स्थितिको उत्पन्न करता है। यह प्रथम स्थिति इसके ऊपर जो क्रोधवेदककाल है उसके साधिक तृतीय भाग प्रमाण होती है। इस प्रकार प्रथम स्थितिको करके उदयमें सबसे स्तोक देता है, उसके बादकी स्थितिमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुंजको देता है। इस प्रकार देता हुआ प्रथम संग्रह कृष्टिके वेदककालसे एक आवलिप्रमाण स्थितियोंको अधिक करके उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे क्रमसे निक्षिप्त करता है। उसके बाद द्वितीय स्थितिको प्रथम स्थितिमें असंख्यातगुणे द्रव्यको निक्षिप्त करता है। इसके आगे सर्वत्र असंख्यात भागरूपसे विशेष हीन द्रव्यको निक्षिप्त करता है। मात्र गुणश्रेणिनिक्षेप गलितशेष जानना चाहिये। यहाँ पर क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टि ऐसा कहने

पर करनेकी अपेक्षा जो तीसरी संग्रह कृष्टि है उसे प्रथम जानना चाहिये। कारण कि जो अनुभाग की अपेक्षा जिसमें बहुत अनुभाग है उसका पहले उदय होता है। उत्तरोत्तर जो अनन्तगुणी विशुद्धि होती है उसके माहात्म्यवश इन संग्रह कृष्टियोंका उदय इस विधिसे होता है ऐसा यहाँ जानना चाहिये।

पढमस्स संगहस्स य असंखभागा उदेदि कोहस्स।
बंधे वि तहा चेव य माणतियाणं तहा बंधे[1] ॥५१५॥

प्रथमस्य संग्रहस्य च असंख्यभागान् उदयति क्रोधस्य।
बंधेऽपि तथा चैव च मानत्रयाणां तथा बंधे ॥५१५॥

स० चं०—कृष्टिवेदकका प्रथम समयविषैं क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिसम्बन्धी जे अंतर कृष्टि तिनके प्रमाणकौं असंख्यातका भाग दीएं तहां बहुभागमात्र कृष्टि उदय आवै है। तहां एक भागमात्र नीचेकी ऊपरिकी कृष्टिकौं छोडि बीचिकी बहुभागमात्र कृष्टिनिका उदय हो है। जे प्रथम द्वितीयादि कृष्टि तिनकौं नीचली कृष्टि कहिए। बहुरि अंत उपान्त आदि जे कृष्टि तिनकौं ऊपरली कृष्टि कहिए है। तहां उदयरूप न होइ ऐसी नीचली कृष्टि ते तौ अनन्तगुणा बंधता अनुभागरूप होइ करि अर ऊपरिकी कृष्टि अनन्तगुणा घटता अनुभागरूप होइ करि ते कृष्टि बीचिकी कृष्टिरूप परिणमि उदय आवै हैं। बहुरि बंधविषैं भी नीचली ऊपरली असंख्यातवां भाग-मात्र कृष्टि छोडि बीचिकी असंख्यात बहुभागमात्र कृष्टि जाननी। उदयरूप कृष्टिनिविषैं जो ऊपरली अनुदय कृष्टिनिका प्रमाण तातैं साधिक दूणा प्रमाण लीएं नीचली ऊपरली कृष्टिनिका प्रमाण घटाएं बंधरूप कृष्टिनिका प्रमाण हो है। इनका बंध इहां हो है। बहुरि इहां मानादिककी अपनी अपनी प्रथम संग्रह कृष्टिकी नीचली ऊपरली कृष्टिप्रमाणका असंख्यातवां भागमात्र कृष्टिनिकौं नीचैं ऊपरि छोडि बीचिकी बहुभागमात्र कृष्टि बंधै है। बहुरि इहां मानादिकनिकी तीनों ही संग्रह कृष्टिनिका उदय नाहीं हैं अर क्रोधकी द्वितीय तृतीय संग्रहकृष्टिका बंध वा उदय नाहीं है, ऐसा जानना[2] ॥५१५॥

विशेष—नियम यह है कि क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिसम्बन्धी जघन्य कृष्टिसे लेकर अधस्तन असंख्यातवें भागको और उसीकी उत्कृष्ट कृष्टिसे लेकर उपरिम असंख्यातवें भागको छोड़कर शेष असंख्यात बहुभागप्रमाण मध्यम कृष्टियाँ उस समय उदयको प्राप्त होती है, क्योंकि अधस्तन और उपरिम असंख्यातवें भागप्रमाण सदृश धनवाली कृष्टियोंका परिणामविशेषके कारण मध्यम कृष्टिरूपसे ही उदय होता है यह इसका तात्पर्य है। तथा बन्ध भी इसी प्रकार जानना चाहिये।

कोहस्स पढमसंगहकिट्टिस्स य हेट्ठिमणुभयट्ठाणा।
तत्तो उदयट्ठाणा उवरिं पुण अणुभयट्ठाणा ॥५१६॥
उवरिं उदयट्ठाणा चत्तारि पदाणि होंति अहियकमा।
मज्झे उभयट्ठाणा होंति असंखेज्जसंगुणिया ॥५१७॥

---

१. ताहे कोहस्स पढमाए संगहकिट्टीए असंखेज्जा भागा उदिण्णा। एदिस्से चेव कोहस्स पढमाए संगहकिट्टीए असंखेज्जा भागा बज्झंति। क० चु०, पृ० ८०४।

२. सेसाओ दो संगहकिट्टीओ ण बज्झंति ण वेदिज्जंति। पढमाए संगहकिट्टीए हेट्ठदो जाओ

क्रोधस्य प्रथमसंग्रहकृष्टेश्चाधस्तनानुभयस्थानानि ।
तत उदयस्थानानि उपरि पुनरनुभयस्थानानि ॥१६॥
उपरि उदयस्थानानि चत्वारि पदानि भवंति अधिकक्रमाणि ।
मध्ये उभयस्थानानि भवंति असंख्येयसंगुणितानि ॥५१७॥

स० चं०—क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिकी अंतर कृष्टिनिविषैं अधस्तन कहिए प्रथम द्वितीयादि नीचली जे अनुभय स्थान कहिए जिनका उदय अर बंध दोऊ नाही ऐसी नीचली कृष्टि तिनिका प्रमाण स्तोक है। ताकी संदृष्टि दोयका अंक २। बहुरि तातैं ताहीकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां एक भागमात्र विशेषकरि अधिक तिनि अनुभय कृष्टिनिके ऊपरिवर्ती जे नीचली उययस्थाना कहिए जिनिका उदय पाइए बंध न पाइए ऐसी कृष्टि तिनिका प्रमाण है। ताकी संदृष्टि तीनका अंक ३। बहुरि तातैं ताहीकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएं तहां एक भागमात्र विशेषकरि अधिक उपरितन कहिए अन्त उपान्त आदि ऊपरिकी अनुभयस्थाना कहिए बंध उदय रहित कृष्टि तिनका प्रमाण है। ताकी संदृष्टि च्यारिका अंक ४। बहुरि तातै ताहीकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां एक भागमात्र विशेषकरि अधिक तिनि कृष्टिनिके नीचैं पाइए ऐसो ऊपरली उदयस्थाना कहिए उदय सहित बंध रहित कृष्टि तिनका प्रमाण है। ताकी संदृष्टि सातका अंक ७, ऐसैं च्यारि पद तौ अधिक क्रम लीएं हैं बहुरि तातैं असंख्यातगुणा वीचिकी उभयस्थाना कहिए जिनिका बंध भी पाइए अर उदय भी पाइए ऐसी कृष्टिनिका प्रमाण है। सोई कहिए है—

क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिविषै जो कृष्टिनिका प्रमाण ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां बहुभागमात्र तौ वीचिकी उभय कृष्टिनिका प्रमाण। बहुरि अवशेष एक भाग रह्या ताकौं 'प्रक्षेपयोगोद्धृतमिश्रपिंडः' इत्यादि सूत्र विधानतैं अंक संदृष्टि अपेक्षा दोय तीन च्यारि सात शलाकानिकौं जोडैं सोलह भया ताका भाग देइ जो एक भागका प्रमाण आया ताकौं अपनी अपनी दोय आदि शलाकानिकरि गुणैं नीचली अनुभय कृष्टि आदिकनिका प्रमाण आवै है। ऐसैं ही बारह संग्रह कृष्टिनिका वेदक कालका प्रथय समय विषै अल्पबहुत्व जानना ॥ ५१६–५१७ ॥

विशेष—क्रोध संज्वलनकी प्रथम संग्रहकृष्टिसम्बन्धी अधस्तन जघन्य कृष्टिसे लेकर असंख्यातवें भागप्रमाण जिन कृष्टियोंका बंध और उदय दोनों नहीं होते वे स्तोक हैं। उनसे उपरिम कृष्टिसे लेकर समस्त कृष्टि अध्वानके असंख्यातवें भागप्रमाण जिन कृष्टिओंका मात्र उदय होता है, बंध नहीं होता वे विशेष अधिक हैं। यहाँ विशेषका प्रमाण अधस्तन अध्वानके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तात्पर्य यह कि अधस्तन अध्वानमें पल्यके असंख्यातवें भागका भाग देने पर जो प्रमाण उपलब्ध है उतना विशेषका प्रमाण है। उसी प्रथम संग्रह कृष्टिकी ऊपर जिन कृष्टियोंका न बंध होता और न उदय होता वे सकल कृष्टि अध्वानके असंख्यातवें भागप्रमाण होकर भी पूर्वोक्त उदय कृष्टियोंसे विशेष अधिक हैं। यहाँ भी विशेषका प्रमाण पहलेके समान जानना चाहिये। इनसे ऊपर जिन कृष्टियोंका मात्र उदय होता है बंध नहीं होता वे विशेष

किट्टीओ ण बज्झंति ण वेदिज्जंति ताओ थोवाओ। ········। मज्झे जाओ किट्टीओ बज्झंति च वेदिज्जंति च ताओ असंखेज्जगुणाओ। क० चु०, पृ० ८०४–८०५।

अधिक हैं। यहाँ भी विशेषका प्रमाण पहलेके समान जानना चाहिये। यहाँ पूर्वोक्त अधस्तन और उपरिम असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियोंको छोड़कर उदय और बंधको प्राप्त होनेवाली शेष समस्त मध्यम कृष्टियाँ पूर्वोक्त कृष्टियोंसे असंख्यातगुणी हैं। यहाँ गुणकार तत्प्रायोग्य पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

विदियादिसु चउठाणा पुव्विल्लेहिं असंखगुणहीणा।
तत्तो असंखगुणिदा उवरिमणुभया तदो उभया ॥ ५१८ ॥

द्वितीयादिसु चतुःस्थानानि पूर्वेभ्योऽसंख्यगुणहीनानि।
ततः असंख्यगुणितानि उपर्यनुभयानि तत उभयानि ॥ ५१८ ॥

स० चं०—अब कृष्टिकरण कालका द्वितीयादि समयनिविषै कहिए है—पूर्व समयविषै जे नीचली बंध रहित केवल उदय कृष्टि थीं ते तौ उत्तर समयविषै उभय कृष्टिरूप हो है। अर पूर्व समयविषै अनुभय कृष्टि थीं तिनविषै अंतकी केते इक कृष्टि उभयरूप तिनतैं नीचली केती इक केवल उदयरूप उत्तर समयविषै हो हैं। बहुरि पूर्व समयविषै जे ऊपरिकी केवल उदय कृष्टि थीं ते सर्व उत्तर समयविषैं अनुभयरूप हो हैं। बहुरि पूर्व समयविषै जे उभय कृष्टि थीं तिनविषै अंतकी केती इक कृष्टि अनुभयरूप तिनतैं नीचैं केती इक केवल उदयरूप कृष्टि उत्तर समयविषै हो हैं। ऐसैं समय समय प्रति बंध अर उदयविषै अनुभागका घटना हो है जातैं नीचली कृष्टिनिविषै अनुभाग स्तोक पाइए है, ऊपरिकी कृष्टिनिविषै अनुभाग बहुत पाइये है। ऐसैं होतैं अल्पबहुत्व कहिए है—

नीचेकी अनुभय कृष्टि तौ स्तोक हैं तातैं तिनके ऊपरि जे नीचली केवल उदय कृष्टि ते विशेष अधिक हैं। तातैं परै उपरि पूर्व समयविषैं जो उत्कृष्ट अनुभाग लीएं अंतकी बंधरूप कृष्टि थीं तातैं लगाय नीचैं जे उत्तर समयविषै अनुभय कृष्टि भई ते विशेष अधिक हैं। तातैं तिनके नीचैं जे विवक्षित समयविषै केवल उदयरूप कृष्टि भईं ते विशेष अधिक हैं। ऐसैं ए च्यारि स्थान तौ पूर्व समयविषै नीचली अनुभय कृष्टि आदिका प्रमाण जो था तातैं असंख्यातगुणे घाटि हैं। बहुरि तिन उदय कृष्टिनितैं पूर्व समयविषै जो ऊपरिकी उदय कृष्टि थीं तिनविषै स्तोक अनुभाग लीएं जो आदिकी जघन्य कृष्टि तीहिं समान कृष्टितैं लगाय जे उत्तर समयविषै सर्व अनुभय कृष्टि भईं ते असंख्यातगुणी हैं। जातैं पूर्व समयविषै जो ऊपरिकी अनुभय कृष्टिनिका प्रमाण था ताके असंख्यातवे भागमात्र कृष्टि पूर्व समयसंबधी ऊपरिकी जघन्य उदय कृष्टितैं नीचैं उत्तरोत्तर समयविषै ऊपरिकी जघन्य अनुभय कृष्टि हो हैं। बहुरि तातैं पूर्व समयसंबंधी ऊपरिकी उदय कृष्टिनिका प्रमाणके असंख्यातवें भागमात्र कृष्टि नीचैं उतरैं इस विवक्षित समयविषै ऊपरिकी जघन्य उदय कृष्टि हो हैं। बहुरि तिन अनुभय कृष्टिनिका प्रमाणतैं वीचिविषैं जे बंध उदय युक्त उभय कृष्टि हैं ते असंख्यातगुणी हैं। ऐसैं द्वितीयादि समयनिविषै कृष्टिनिका अल्पबहुत्व जानना ॥५१८॥

विशेष—उत्तरोत्तर परिणामोंमें विशुद्धि होते जानेके कारण एक तो सत्तामें स्थित अनु-

---

१. पढमसमयकिट्टीवेदगस्स कोधकिट्टी उदए उक्कस्सिया बहुगी। बंधे उक्कस्सिया किट्टी अणंतगुणहीणा। विदियसमये उदए उक्कस्सिया किट्टी अणंतगुणहीणा। बंधे उक्कस्सिया किट्टी अणंतगुणहीणा। एवं सव्विस्से किट्टीवेदगद्धाए। ध० पु० ६, पृ० ३८४।

भागमें उत्तरोत्तर हानि होती जाती है दूसरे प्रति समय बँधनेवाले अप्रशस्त कर्मोंके अनुभागमें हानि होती जाती है, इसलिये प्रथम समयकी अपेक्षा द्वितीयादि समयोंमें उक्त प्रकारसे अल्पबहुत्व प्राप्त होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इसी तथ्यको आगेकी तीन गाथाओं द्वारा स्पष्ट किया गया है।

पुव्विल्लबंधजेट्ठा हेट्ठासंखेज्जभागमोदरिय।
संपडिगो चरिमोदयवरमवरं अणुभयाणं च ।।५१९।।

पौर्विकबंधज्येष्ठात् अधस्तनमसंख्येयभागमवतीर्य।
सांप्रतिकः चरमोदयवरमवरं अनुभयानां च ।।५१९।।

स० चं०—पूर्व समयसंबंधी बंधकी उत्कृष्ट कृष्टि कहिए अंतकी बंध कृष्टि तातैं लगाय पूर्व समयसंबंधी उभय कृष्टिनिके असंख्यातवे भागमात्र कृष्टि नीचैं उतरिकरि साम्प्रतिक कहिए वर्तमान उत्तर समयसम्बन्धी अंतकी केवल उदयरूप उत्कृष्ट कृष्टि हो है। अर ताके अनंतरि उपरि अनुभय कृष्टिकी जघन्य कृष्टि पाइए है। बहुरि तिस उत्कृष्ट उदय कृष्टितैं नीचैं पूर्व समयसम्बन्धी उदय कृष्टिके असंख्यातवे भागमात्र कृष्टि नीचैं उतरि साम्प्रतिक उदयकी जघन्य कृष्टि हो है। ताके अनंतर नीचैं उभय कृष्टिकी उत्कृष्ट कृष्टि हो है ऐसैं तौ ऊपरि भी कृष्टिनिविषैं विधान जानना ।।५१९।।

हेट्ठिमणुभयवरादो असंखबहुभागमेत्तमोदरिय।
संपडिबंधजहण्णं उदयुक्कस्सं च होदि त्ति ।।५२०।।

अधस्तनानुभयवरात् असंख्यबहुभागमात्रमवतीर्य।
संप्रतिबंधजघन्यं उदयोत्कृष्टं च भवतीति ।।५२०।।

स० चं०—पूर्व समयसम्बन्धी अनुभय कृष्टिकी जो उत्कृष्ट कृष्टि कहिए अंत कृष्टि तातैं पूर्व समयसम्बन्धी अनुभय कृष्टिनिका असंख्यात बहुभागमात्र कृष्टि नीचैं ऊपरि साम्प्रतिक बन्ध कृष्टि जो बन्ध उदय युक्त उभय कृष्टि ताकी जघन्य कृष्टि हो है। बहुरि ताके अनन्तरि नीचली कृष्टि सो केवल उदय कृष्टिनिकी उत्कृष्ट कृष्टि है। तातैं लगाय पूर्व समयसम्बन्धी उदय कृष्टिनिके असंख्यातवे भागमात्र कृष्टि उतरि करि साम्प्रतिक उदय कृष्टिकी जघन्य कृष्टि हो है। ताके नीचैं पूर्व समयसम्बन्धी अनुभय कृष्टिनिके असंख्यातवे भाग मात्र कृष्टि नीचैं उतरि साम्प्रतिक जघन्य अनुभय कृष्टि हो है। सोई सर्व कृष्टिनिविषैं जघन्य कृष्टि है। ऐसैं नीचली कृष्टिनिविषैं विधान जानना। ऐसैं समय-समय प्रति पूर्व समयसम्बन्धी नीचली अनुभय उदय कृष्टि ऊपरली उदय अनुदय कृष्टिनिका प्रमाणतैं उत्तर समयसम्बन्धी तिनका प्रमाण असंख्यातगुणा घटता है। अर बीचिविषैं जो उभय कृष्टि हैं तिनका प्रमाण विशेष अधिक हो है ऐसा जानना ।।५२०।।

पडिसमयं अहिगदिणा उदये बंधे च होदि उक्कस्सं।
बंधुदये च जहण्णं अणंतगुणहीणया किट्टी[1] ।।५२१।।

१. पढमसमयकिट्टीवेदगस्स कोहकिट्टीउदये उक्कस्सिया बहुगी। बंधे उक्कस्सिया अणंतगुणहीणा। विदियसमये उदये उक्कस्सिया अणंतगुणहीणा। बंधे उक्कस्सिया अणंतगुणहीणा। एवं सव्विस्से किट्टीवेदगद्धाए। क० च० पृ० ८५०–८५१।

प्रतिसमयमहिगतिना उदये बंधे च भवति उत्कृष्टं।
बंधोदये च जघन्यं अनंतगुणहीनका कृष्टिः ।।५२१।।

स० चं०—समय-समय प्रति सर्पकी गतिवत् उत्कृष्ट कृष्टि तौ उदय अर बन्ध विषैं बहुरि जघन्य कृष्टि बन्ध अर उदय विषैं अनन्तगुणा घटता क्रमलीएं अनुभाग अपेक्षा जाननी। सोई कहिए है—

सर्व कृष्टिनिके अनंत बहुभागमात्र बीचिकी कृष्टि बंधरूप हैं, तिनतैं साधिक उदयरूप हैं। तिन विषैं जो सर्वतैं स्तोक अनुभाग लीएं प्रथम कृष्टि सो जघन्य कृष्टि कहिए। सर्वतैं अधिक अनुभाग लीए अन्त कृष्टि सो उत्कृष्ट कृष्टि कहिए। तहाँ कृष्टिवेदकका प्रथम समय विषैं जो उदयकी उत्कृष्ट कृष्टि सो बहुत अनुभागयुक्त है। तातैं तिसही समयविषैं बन्धकी उत्कृष्ट कृष्टि अनंतगुणा घटता अनुभाग लीए है। तातैं द्वितीय समयविषैं उदयकी उत्कृष्ट कृष्टि अनंतगुणा घटता अनुभाग लीएं है। तातैं तिसही समयविषैं बन्धकी उत्कृष्ट कृष्टि अनंतगुणा घटता अनुभाग लीएं है। तातैं तीसरा समय विषैं उदयकी उत्कृष्ट कृष्टि अनंतगुणा घटता अनुभाग लीएं है। तातैं तिस समय विषैं बन्धकी उत्कृष्ट कृष्टि अनन्तगुणा घटता अनुभाग लीएं है। या प्रकार जैसैं सर्प इधरतैं इधर उधरतैं इधर गमन करै है तैसैं विवक्षित समयविषैं उदयकीतैं बन्धकी अर पूर्व समय-सम्बन्धी बन्धकीतैं उत्तर समयसम्बन्धी उदयकी उत्कृष्ट कृष्टिविषै अनन्तगुणा घटता अनुभाग क्रमतैं जानना। बहुरि कृष्टिवेदकका प्रथम समयविषैं बन्धकी जघन्य कृष्टि बहुत अनुभागयुक्त है। तातैं तिस समयविषैं उदयकी जघन्य कृष्टि अनन्तगुणा घटता अनुभागयुक्त है। तातैं दूसरा समय विषैं बन्धकी जघन्य कृष्टि अनंतगुणा घटता अनुभागयुक्त है, तातैं तिस समयविषैं उदय की जघन्य कृष्टि अनन्तगुणा घटता अनुभागयुक्त है। ऐसैं सर्पकी चालवत् एक समयविषैं बन्धकीतैं उदयकी अर पूर्व समयसम्बन्धी उदयकीतैं उत्तर समयसम्बन्धी बन्धकी जघन्य कृष्टि विषैं अनन्तगुणा अनन्तगुणा घटता अनुभाग जानना। ऐसी प्ररूपणा क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टि वेदककालका अंत समय पर्यंत है। बहुरि ताकी द्वितीय तृतीय संग्रह कृष्टि वेदककैं भी ऐसैं ही क्रम जानना ।।५२१।।

विशेष—क्रोधसंज्वलनकी जो प्रथम संग्रह कृष्टियाँ बन्ध उदयरूपसे प्रवृत्त होती हैं उनमेंसे नीचे और ऊपरकी असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियोंको छोड़कर मध्यम कृष्टिरूपसे प्रवृत्त होती हैं। इस प्रकार प्रवृत्त होनेवाले बन्ध और उदयकी अग्र स्थितियाँ प्रत्येक समयमें अनन्तगुणी हीन होकर प्रवृत्त होती हैं। उन मध्यम कृष्टियोंमेंसे प्रथम समयमें उदयमें प्रवेश होनेवाली जो अनन्त मध्यम कृष्टियाँ हैं उनमें जो सबसे उपरिम उत्कृष्ट कृष्टि है वह तीव्र अनुभागवाली है। उससे बँधनेवाली जो उत्कृष्ट कृष्टि है वह अनन्तगुणी हीन है, क्योंकि उदयको प्राप्त होनेवाली उत्कृष्ट कृष्टि है उससे अनन्त कृष्टियाँ नीचे उतरकर इसका अवस्थान देखा जाता है। उससे दूसरे समयमें उदयको प्राप्त होनेवाली उत्कृष्ट कृष्टि अनन्तगुणी हीन है। तथा उससे दूसरे समयमें बँधनेवाली उत्कृष्ट कृष्टि अनन्तगुणी हीन है। इसी प्रकार पूरे कृष्टि वेदककालमें अल्प-बहुत्व जानना चाहिये।

अब संक्रमण द्रव्यका विधान कहिए है—

संकमदि संगहाणं दव्वं सगहेट्ठिमस्स पढमो त्ति ।
तदणुदये संखगुणं इदरेसु हवे जहाजोग्गं[1] ॥५२२॥

संक्रामति संग्रहाणां द्रव्यं स्वकाधस्तनस्य प्रथम इति ।
तदनूदये संख्यगुणमितरेषु भवेत् यथायोग्यम् ॥५२२॥

स० चं०— संग्रह कृष्टिनिका द्रव्य है सो विवक्षित स्वकीय कषायके नीचैं जो कषाय ताकी प्रथम संग्रह कृष्टिपर्यंत संक्रमण करै है। भावार्थ यहु—जो स्वस्थानविषैं विवक्षित कषायकी संग्रह कृष्टिका द्रव्य तिस ही कषायकी अन्य संग्रह कृष्टिविषैं संक्रमण करै तौ तीसरी संग्रह कृष्टिपर्यन्त करै। अर परस्थानविषैं जो अन्य कषायविषैं संक्रमण करै तौ तिस विवक्षित कषायतैं लगती जो कषाय ताकी प्रथम संग्रह कृष्टिविषैं संक्रमण करै। जो द्रव्य जिसविषैं संक्रमण करै सो द्रव्य तिस ही रूप परिणमै है। तहाँ जिस संग्रह कृष्टिकौं भोगवै है ताका अपकर्षण कीया हुआ द्रव्यतैं ताके अनन्तरि भोगने योग्य जो संग्रह कृष्टि तिसविषैं संख्यातगुणा द्रव्य संक्रमण हो है। औरनिविषै यथायोग्य संक्रमण हो है। सोई कहिए है—

जैसैं प्रवृत्तिविषै जमा-खरच कहिए तैसैं इहां आय द्रव्य व्यय द्रव्य कहिए है। जो अन्य संग्रह कृष्टिनिका द्रव्य संक्रमण करि विवक्षित संग्रह कृष्टि विषैं आया—प्राप्त भया ताका नाम आय द्रव्य है। बहुरि विवक्षित संग्रह कृष्टिका द्रव्य संक्रमण करि अन्य संग्रह कृष्टिनिविषैं गया ताका नाम व्यय द्रव्य है। बहुरि इहां क्रोधका प्रथम संग्रह कृष्टि बिना अन्य ग्यारह संग्रह कृष्टिनिका अपना-अपना जो द्रव्य ताकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीएं जो एक भाग मात्र द्रव्य संक्रमण करै है सो एक द्रव्य कहिए है। बहुरि क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिका द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीएं जो एक भागमात्र द्रव्य संक्रमण करै सो तेरह द्रव्य कहिए है, जातैं अन्य संग्रह कृष्टिका द्रव्यतैं क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिका द्रव्य नोकषायके द्रव्य मिलनेतैं तेरहगुणा है[2]। तहां लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिविषैं लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टि अर द्वितीय संग्रह कृष्टिका अपकर्षण कीया द्रव्य संक्रमण करै है, तातैं ताकैं आय द्रव्य दो है। बहुरि लोभकी द्वितीय संग्रह कृष्टिविषैं लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टिका ही अपकर्षण कीया द्रव्य संक्रमण करै है,

---

१. कोहविदियकिट्टीदो पदेसग्गं कोहतदियं च माणपढमं च गच्छदि। कोहस्स तदियादो किट्टीदो माणस्स पढमं चेव गच्छदि। माणस्स पढमादो किट्टीदो माणस्स विदियं तदियाए मायाए पढमं च गच्छदि। माणस्स विदियकिट्टीदो माणस्स तदियं च मायाए पढमं च गच्छदि। माणस्स तदियकिट्टीदो मायाए पढमं गच्छदि। मायाए पढमादो पदेसग्गं मायाए विदियं तदियं च लोभस्स पढमं किट्टि च गच्छादि मायाए विदियादो किट्टीदो पदेसग्गं मायाए तदियं लोभस्स पढमं च गच्छदि। मायाए तदियादो किट्टीदो पदेसग्गं लोभस्स पढमं गच्छदि। लोभस्स पढमादो किट्टीदो पदेसग्गं लोभस्स विदियं च तदियं च गच्छदि। लोभस्स विदियादो पदेसग्गं लोभस्स तदियं गच्छदि। क० चु० पृ० ८५६।

२. कोहस्स विदियाए संगहकिट्टीए पदेसग्गं थोवं। पढमाए संगहकिट्टीए पदेसग्गं संखेज्जगुणं, तेरसगुणमेत्तं……। क० चु० पृ० ८११–८१२।

तातैं ताके आय द्रव्य एक है। बहुरि लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टिविषै मायाकी प्रथम द्वितीय तृतीय संग्रह कृष्टिका अपकर्षण कीया द्रव्य संक्रमण करै है तातैं ताकैं आय द्रव्य तीन हैं। बहुरि मायाकी तृतीय संग्रह कृष्टिविषैं मायाकी द्वितीय प्रथम संग्रह कृष्टिका अपकर्षण कीया द्रव्य संक्रमण करै है, तातैं ताकैं आय द्रव्य दोय हैं। बहुरि मायाकी द्वितीय संग्रह कृष्टिविषैं मायाकी प्रथम संग्रह कृष्टिका अपकर्षण कीया द्रव्य संग्रह करै है, तातैं ताकैं आय द्रव्य एक है। बहुरि मायाकी प्रथम संग्रह कृष्टिविषैं मानकी प्रथम, द्वितीय, तृतीय संग्रह कृष्टिका अपकर्षण कीया द्रव्य संक्रमण हो है, तातैं ताकैं आय द्रव्य तीन हैं। बहुरि मानकी तृतीय संग्रह कृष्टिविषैं मानकी द्वितीय तृतीय संग्रह कृष्टिका अपकर्षण कीया द्रव्य संक्रमण हो है, तातैं ताकैं आय द्रव्य दोय हैं। बहुरि मानकी द्वितीय संग्रह कृष्टिविषै मानकी प्रथम संग्रह कृष्टिका ही अपकर्षण कीया द्रव्य संक्रमण हो है, तातैं ताकैं आय द्रव्य एक है। बहुरि मानकी प्रथम संग्रह कृष्टिविषैं क्रोधकी प्रथम द्वितीय तृतीय संग्रह कृष्टिका अपकर्षण कीया द्रव्य संक्रमण हो है, तातैं ताकैं आय द्रव्य पंद्रह हैं। बहुरि क्रोधकी तृतीय संग्रह कृष्टिविषैं क्रोधकी प्रथम द्वितीय कृष्टिका अपकर्षण कीया द्रव्य संक्रमण हो है, तातैं ताकैं आय द्रव्य चोदह हैं। बहुरि क्रोधकी द्वितीय संग्रह कृष्टिविषैं क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिका अपकर्षण कीया द्रव्य तेरह तातैं चौदहगुणा संक्रमण हो है, तातैं ताकैं आय द्रव्य एकसौ वियासी है। इहां चौदहगुणा करनेका प्रयोजन कहिए है—

अनंतरि भोगने योग्य संग्रह कृष्टिविषै संख्यातगुणा द्रव्यका संक्रमण होना कह्या है सो इहां संख्यातका प्रमाण अपने गुणकारतैं एक अधिक जानना। सो यहु क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिकौं भोगवै है। अर ताके अनंतरि क्रोधकी द्वितीय संग्रह कृष्टिकौं भोगवै है, तातैं क्रोधकी प्रथम कृष्टिका अपकर्षण कीया द्रव्यतैं संख्यातगुणा द्रव्यका द्वितीय संग्रह कृष्टिविषै संक्रमण हो है। बहुरि इहां प्रथम कृष्टिका द्रव्यविषैं तेरहका गुणकार है, तातैं एक अधिक कीएं संख्यातका प्रमाण चौदह इहां जानना। अन्य संग्रह कृष्टि वेदकविषै संख्यातका प्रमाण अन्य होगा सो आगै कहैंगे। बहुरि क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिविषै आय द्रव्य है नाहीं, जातैं आनुपूर्वी संक्रमण पाइए है। इहां संक्रमण द्रव्यकौं अपकर्षण द्रव्यका अनुभाग घटनेकी अपेक्षा हानि होनेतैं कह्या है। ऐसैं आय द्रव्यका विभाग कह्या। अब व्यय द्रव्यका विभाग कहिए है—

क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिका द्रव्य क्रोधकी द्वितीय तृतीय मानकी प्रथम संग्रह कृष्टिविषै गया, तातैं एकसौ वियासी तेरह तेरह द्रव्य मिलि ताकैं व्यय द्रव्य दोयसै आठ हो हैं। बहुरि क्रोधकी द्वितीय कृष्टिका द्रव्य क्रोधकी तृतीय मानकी प्रथम संग्रह कृष्टिविषै गया, तातैं ताकैं व्यय द्रव्य दोय हो हैं। बहुरि क्रोधकी तृतीय कृष्टिका द्रव्य मानकी प्रथम संग्रह कृष्टिहीविषै गया, तातैं ताके व्यय द्रव्य एक है। बहुरि मानकी प्रथम संग्रह कृष्टिका द्रव्य मानकी द्वितीय तृतीय मायाकी प्रथम संग्रह कृष्टिविषै गया, तातैं ताकैं व्यय द्रव्य तीन हैं। बहुरि मानकी द्वितीय संग्रह कृष्टिका द्रव्य मानकी तृतीय मायाकी प्रथम संग्रह कृष्टिविषै गया, तातैं ताकैं व्यय द्रव्य दोय हैं। बहुरि मानकी तृतीय संग्रह कृष्टिका द्रव्य मायाकी प्रथम संग्रह कृष्टि ही विषै गया, तातैं ताके व्यय द्रव्य एक है। बहुरि मायाकी प्रथम संग्रह कृष्टिका द्रव्य मायाकी द्वितीय तृतीय लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टिविषै गया, तातैं ताकैं व्यय द्रव्य तीन हैं। बहुरि मायाकी द्वितीय कृष्टिका द्रव्य मायाकी तृतीय लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टिविषै गया, तातैं ताकैं व्यय द्रव्य दोय हैं। बहुरि मायाकी तृतीय संग्रह कृष्टिका द्रव्य लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टिविषै ही गया, तातैं ताकैं व्यय द्रव्य एक है।

बहुरि लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टिका द्रव्य लोभकी द्वितीय तृतीय संग्रह कृष्टिविषै गया, तातैं ताकैं व्यय द्रव्य दोय हैं। बहुरि लोभकी द्वितीय संग्रह कृष्टिका द्रव्य लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिविषै गया, तातैं ताकैं व्यय द्रव्य एक है। बहुरि लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिका द्रव्य अन्यत्र न जाय है, जातैं विपरीत संक्रमणका अभाव है तातैं ताकैं व्यय द्रव्य नाही है। ऐसैं व्यय द्रव्यका विभाग कह्या ॥ ५२२ ॥

विशेष—अंक संदृष्टिकी अपेक्षा मोहनीयका पूरा द्रव्य ४९ अंक प्रमाण हैं। पुनः इसके दो भाग करनेपर उनमेंसे असंख्यातवें भागसे अधिक एक भाग चारों संज्वलन कषायोंका द्रव्य है और असंख्यातवाँ भाग हीन एक भाग नोकषायोंका द्रव्य है। उसका प्रमाण २४ है। कषायके द्रव्यको १२ संग्रह कृष्टियोंमें विभाजित करनेपर क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिको १२वाँ भाग प्राप्त होता है जो २ अंक प्रमाण है। वह मोहनीयके पूरे द्रव्यकी अपेक्षा कुछ कम २४ वें भाग प्रमाण होता है। अंक संदृष्टिकी अपेक्षा वह २ अंक प्रमाण है। किन्तु नोकषायका समस्त द्रव्य क्रोध संज्वलनकी प्रथम संग्रह कृष्टिमें संक्रमित होता है, क्योंकि उसका वेदककी प्रथम संग्रह कृष्टिरूपसे परिणमन देखा जाता है। अतएव नोकषायके समस्त द्रव्यके साथ क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिका कुल द्रव्य (२४ + २ = २६) अंक प्रमाण हो जाता है। इसे क्रोधकी द्वितीय संग्रह कृष्टिके २ अंक प्रमाण द्रव्यसे भाजित करने पर २६ ÷ २ = १३ होता है, इसीलिये क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिके द्रव्य को उसीकी दूसरी संग्रह कृष्टिकी अपेक्षा १३ गुणा कहा है।

आगैं अनुसमय अपवर्तनकी प्रवृत्तिका क्रम कहिए है—

पडिसमयमसंखेज्जदिभागं[1] णासेदि कंडयेण विणा।
बारससंगहकिट्टीणग्गदो किट्टिवेदगो णियमा[2] ॥ ५२३ ॥

प्रतिसमयमसंख्येयभागं नाशयति कांडकेन विना।
द्वादशसंग्रहकृष्टीनामग्रतः कृष्टिवेदको नियमात् ॥ ५२३ ॥

स० चं०—कृष्टिवेदक जीव है सो कांडक बिना बारह संग्रह कृष्टिनिका अग्रभागतैं सर्व कृष्टिनिके असंख्यातवें भागमात्र कृष्टिनिकौं नष्ट करै है नियमतैं। भावार्थ—कृष्टिकरण कालका अंत समयपर्यंत तौ अंतर्मुहूर्त कालकरि निष्पन्न जो कांडक विधान ताकरि अनुभागका नाश होता था अब कृष्टि भोगनेका प्रथम समयतैं लगाय समय समय प्रति अग्रयात होने लगा। तहां बारह संग्रह कृष्टिनिका जे अंतर कृष्टि तिनविषैं अंत कृष्टितैं लगतीं जे बहुत अनुभाग युक्त ऊपरिकी केते इक कृष्टि तिनका नाशकरि तिनि कृष्टिनिके द्रव्यकौं स्तोक अनुभाग यक्त नीचली कृष्टिनिविषैं निक्षेपण करिए है। तहां जिनि कृष्टिनिका नाश कीया तिनिका नाम घात कृष्टि है सो अपनी अपनी संग्रह कृष्टिविषै अन्तर कृष्टिनिका प्रमाण स्थापि ताकौं अपकर्षण भागहारके असंख्यातवें भागमात्र जो असंख्यात ताका भाग दीएं अपनी अपनी घात कृष्टिनिका प्रमाण आवै है।

---

१. मु० प्रतौ पडिसमयं संखेज्जदिभागं इति पाठः।

२. किट्टीणं पढमसमयवेदगो बारसण्हं पि संगहकिट्टीणमग्गकिट्टिमादिं कादूण एक्केक्किस्से संगहकिट्टीए असंखेज्जदिभागं विणासेदि। क० चु० पृ० ८५२।

बहुरि इन घात कृष्टिनिके जे परमाणू ताका नाम घात द्रव्य है, सो अपनी अपनी अन्त कृष्टिका द्रव्यकौं घात कृष्टिनिका प्रमाण करि गुणैं अन्त कृष्टिके नीचैं एक एक विशेष बंधता है। तातैं विशेष अधिक कीए घात द्रव्यका प्रमाण आवै हैं ॥ ५२३ ॥

विशेष—प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धिसे वृद्धिको प्राप्त होता हुआ यह प्रथम समयवर्ती कृष्टिवेदक जीव जो बारह संग्रह कृष्टियाँ हैं उनमेंसे एक-एक कृष्टिसम्बन्धी उत्कृष्ट कृष्टिसे लेकर उपरिम अनन्त कृष्टियोंके असंख्यातवें भागमात्र कृष्टियोंका अपवर्तनाघातके द्वारा एक समयमें घात करता है। उसकी कृष्टियोंकी शक्तिको अपवर्तनाघातके द्वारा अधस्तन कृष्टिरूपसे परिणमाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इसी प्रकार द्वितीयादि समयोंमें भी अपवर्तनाघात जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि प्रथम समयमें विनाशको प्राप्त होनेवाली कृष्टियोंसे द्वितीयादि समयोंमें विनाशको प्राप्त होनेवाली कृष्टियाँ उत्तरोत्तर असंख्यातगुणी हीन जानना चाहिये।

णासेदि परट्ठाणियगोउच्छं अग्गकिट्टिघादादो।
सट्ठाणियगोउच्छं संकमदव्वादु घादेदि ॥ ५२४ ॥

नाशयति परस्थानकं गोपुच्छमग्रकृष्टिघातात्।
स्वस्थानिकगोपुच्छं संक्रमद्रव्यात् घातयति ॥ ५२४ ॥

स० चं—अग्रकृष्टि घाततैं तौ परस्थान गोपुच्छकौं नष्ट करै है अर संक्रम द्रव्य जो अन्य संग्रहरूप भया ऐसा पूर्वोक्त व्यय द्रव्य तातै स्वस्थान गोपुच्छकौं नष्ट करै है। कैसैं ? सो कहिए है—

विवक्षित एक संग्रहकृष्टिविषैं जो अन्तर कृष्टिनिकैं विशेष घटता क्रम पाइए सो इहां स्वस्थान गोपुच्छ कहिए है। बहुरि नीचली विवक्षित संग्रहकृष्टिकी अन्त कृष्टितैं ऊपरिकी अन्य संग्रह कृष्टिकी आदि कृष्टिकैं विशेष घटता क्रम पाइए है सो इहां परस्थान गोपुच्छ कहिए। तहां कृष्टिनिकैं हीन अधिक द्रव्यका संक्रमण होनेतैं चय घटता क्रम नष्ट भया तातैं पूर्वै स्वस्थान गोपुच्छ था ताका संक्रमण द्रव्यकरि नाश भया। बहुरि नीचली संग्रह कृष्टिकी अन्त कृष्टि अर ऊपरली संग्रह कृष्टकी आदि कृष्टि तिनिके बीचि कृष्टिनिका घात होनेतैं एक विशेष घटता क्रम न रह्या तातैं पूर्वैं परस्थान गोपुच्छ था ताका घातद्रव्यकरि नाश भया ॥ ५२४ ॥

आयादो वयमहियं हीणं सरिसं कहिं पि अण्णं च।
तम्हा आयद्व्वा ण होदि सट्ठाणगोउच्छं ॥ ५२५ ॥

आयतो व्ययमधिकं हीनं सदृशं कुत्रापि अन्यच्च।
तस्मादायद्रव्यान्न भवति स्वस्थानगोपुच्छम् ॥ ५२५ ॥

स० चं—इहां कोऊ कहै व्यय द्रव्य गया अर आय द्रव्य आया तातैं व्यय द्रव्य करि स्वस्थान गोपुच्छका नाश कह्या, आय द्रव्यकरि स्वस्थान गोपुच्छका होना कह्या, तहां कहिए है—

कहीं संग्रहकृष्टिविषैं आय द्रव्यतैं व्यय द्रव्य अधिक है, कहीं हीन है, कहीं समान है, कहीं आय द्रव्य है, व्यय नाहीं, कहीं व्यय द्रव्य है आय द्रव्य नाहीं। तातैं आय द्रव्यतैं स्वस्थान गोपुच्छ न हो है ॥ ५२४ ॥

अब जैसैं स्वस्थान परस्थान गोपुच्छका सद्भाव हो है तैसैं कहिए है—

घादयदव्वादो पुण गय आयदखेत्तदव्वगं देदि ।
सेसासंखाभागे अणंतभागूणयं देदि ॥ ५२६ ॥

घातकद्रव्यात् पुनर्व्ययमायतक्षेत्रद्रव्यकं ददाति ।
शेषासंख्यभागं अनंतभागोनकं ददाति ॥ ५२६ ॥

स० चं—घात द्रव्यतैं व्यय द्रव्य अर आयतक्षेत्र द्रव्यकौं दीएं एक गोपुच्छ हो है। कैसैं? सो कहिए है—

पूर्वैं जो व्यय द्रव्य कह्या तामैं जिनि कृष्टिनिका घात कीया तिनि कृष्टिनिका व्यय द्रव्य घटाएं अवशेष रहैं तितना द्रव्य घातद्रव्यतैं ग्रहणकरि जिन कृष्टिनिका जितना जितना व्यय द्रव्य भया था तिन कृष्टिनिका तितना तितना देइ पूरण कीएं स्वस्थान गोपुच्छका सद्भाव हो है। घात कृष्टिसम्बन्धी व्यय द्रव्य कितना ? सो कहिए है—

अपनो अपनी संग्रहकृष्टिकी अन्त कृष्टिका द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीएं तिस अन्त कृष्टिका व्यय द्रव्यका प्रमाण आवैं हैं। ताकौं अपनी अपनी घात कृष्टिनिका प्रमाणकरि गुणैं अर तहां विशेष अधिक कीएं सर्व घात कृष्टिसम्बन्धी व्यय द्रव्यका प्रमाण हो है, सो घात कृष्टिनिका तौ नाश ही भया सो तहां द्रव्य देना ही नाही। तातैं याकौं व्यय द्रव्यविषैं घटाइ अवशेष व्यय द्रव्यमात्र द्रव्य देनेकरि स्वस्थान गोपुच्छकी सिद्धि हो है। बहुरि लोभकी तृतीय संग्रहकृष्टिका घात कीएं पीछैं अवशेष रहीं जे कृष्टि तिनविषैं जो अन्त कृष्टि तिसतैं लोभकी द्वितीय संग्रहकी प्रथम संग्रह कृष्टि है सो बीचि ही कृष्टिका घात होनेतैं एक अधिक लोभकी तृतीय संग्रहको घात कृष्टिनिका प्रमाणमात्र जे विशेष कहिए चय तिनकरि हीन भई सो अपने नीचैं लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिकी घात कृष्टिनिका को प्रमाण तितने विशेषनिका जेता द्रव्य होइ तितना द्रव्यकौं अपने घात द्रव्यतैं ग्रहणकरि तहां लोभकी द्वितीय संग्रहकी प्रथम कृष्टिविषैं दीएं यहु प्रथम कृष्टि तिस तृतीय संग्रहकी अन्त कृष्टितैं एक विशेषमात्र घटती हो है। ऐसैं ही याकी द्वितीयादि घात कीएं पीछैं अवशेष रहीं कृष्टिनिकी अन्त कृष्टिपर्यंन्त कृष्टिनिविषैं तितना तितना द्रव्य घात द्रव्यतैं ग्रहणकरि दीएं लोभकी तृतीय द्वितीय संग्रहविषै एक गोपुच्छ भया सो इहां आयतैं नीचैं तृतीय संग्रह ताकी घात कृष्टिनिका प्रमाणमात्र जे विशेष तिनका द्रव्य प्रमाण तौ चौडा अर अपनी घात कीएं पीछैं अवशेष रहीं कृष्टिनिका प्रमाणमात्र लंबा क्षेत्र कल्पना कीएं एक आयत चतुरस्र क्षेत्र भया। बहुरि ऐसैं ही आयतैं नीचैं द्वितीय तृतीय संग्रह कृष्टि तिन दोऊनिकी घात कृष्टिनिका जेता प्रमाण तितना विशेष प्रमाण तौ जुदा २ चौडा अर अपनी घात कीए पीछैं अवशेष रहीं कृष्टिनिका प्रमाणमात्र लम्बा ऐसा दोय आयत चतुरस्र क्षेत्रप्रमाण द्रव्यकौं अपनी घात द्रव्यतैं ग्रहणकरि लोभकी प्रथम संग्रहकी प्रथमादि कृष्टिनिविषैं दीए लोभकी तीनों संग्रहकृष्टिनिका एक गोपुच्छ भया। ऐसैं ही क्रमकरि अपने नीचली संग्रह कृष्टिनिकी घात कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेषनिकरि तौ जुदा जुदा चौडा अर अपनी घात कीए पीछैं अवशेष रहीं कृष्टिनिका प्रमाणमात्र लम्बा ऐसैं क्रमतैं तीन च्यारि पांच छह सात आठ नव दश ग्यारह आयत चतुरस्र क्षेत्ररूप द्रव्य ताकौं अपने अपने घात द्रव्यतैं ग्रहणकरि क्रमतैं मायाको तृतीय संग्रहादि क्रोधकी प्रथम संग्रह पर्यन्त संग्रह कृष्टिनिविषैं दीए बारह संग्रह कृष्टिनिका एक गोपुच्छ हो है।

ऐसैं आयत चतुरस्र क्षेत्ररूप द्रव्य देनेकरि परस्थान गोपुच्छकी सिद्धि भई। या प्रकार स्वस्थान परस्थान गोपुच्छ सम्पूर्ण हो है। बहुरि इहां सर्व मोहनीयका द्रव्य साधिक द्वयर्ध गुणहानि गुणित आदि वर्गणामात्र है ताकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीएं अर साधिक नवगुणा कीएं समस्त व्यय द्रव्यका प्रमाण आवै है। जातैं सर्व मोहके द्रव्यकौं चौईसका अर अपकर्षण भागहारका भाग दीएं एक व्यय द्रव्यका प्रमाण होइ अर पूर्वोक्त समस्त व्यय द्रव्यनिकौं जोडैं दोयसै छब्बीस होंइ। तहां दोयसै छब्बीस गुणकारका चौईसकरि अपवर्तन कीएं साधिक नवका गुणकार हो है। बहुरि सर्व मोहनीयके द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारके असंख्यातवां भागका भाग दीएं सर्व घात द्रव्यका प्रमाण हो है। सो इस घात द्रव्यतैं पूर्वोक्त व्यय द्रव्य अर आयत चतुरस्र क्षेत्ररूप जो द्रव्य ग्रहण कीया सो याके असंख्यातवे भागमात्र है, सो घटाएं अवशेष बहुभागमात्र द्रव्य रह्या ताकौं अनंतवां भागमात्र जो एक विशेष ताकरि घटता क्रम लीएं दीजिए है। कैसैं ? सो कहिए है—सर्व अवशेष घात द्रव्यका घात कीएं पीछैं अवशेष रही कृष्टिका प्रमाणमात्र जो गच्छ ताका भाग दीएं मध्यधन हो है। बहुरि ताकौं एक घाटि गच्छका आधा प्रमाणकरि हीन जो दो गुणहानि ताका भाग दीएं विशेषका प्रमाण हो हैं। बहुरि गच्छका एकबार संकलन धनकरि तिस चयकौं गुणैं उत्तरधन हो है। बहुरि याकौं तिस द्रव्यमें घटाएं अवशेष आदि धन हो है। ताकौं गच्छका भाग दीएं एक खण्डका प्रमाण हो है। तहां एक खंडकौं अर उत्तर धनतैं गच्छप्रमाण अवशेषनिकौं ग्रहि लोभकी जघन्य कृष्टिविर्षे दीजिए है। बहुरि ताकी द्वितीय कृष्टितैं लगाय क्रोधकी उत्कृष्ट कृष्टिपर्यंत एक एक खंड समानरूप अर उत्तर धनविषै एक एक विशेष घटता दीजिए है। अर ऐसैं अवशेष घात द्रव्य सर्व समाप्त हो है। ऐसैं होतैं सर्वत्र एक गोपुच्छ हो है ॥ ५२६ ॥

उदयगदसंगहस्स य मज्झिमखंडादिकरणमेदेण ।
दव्वेण होदि णियमा एवं सव्वेसु समयेसु ॥ ५२७ ॥

उदयगतसंग्रहस्य च मध्यमखंडादिकरणमेतेन ।
द्रव्येण भवति नियमादेवं सर्वेषु समयेषु ॥ ५२७ ॥

स० चं—उदयकौं प्राप्त जो संग्रह कृष्टि ताका इस घात द्रव्य ही करि मध्यम खंडादिक करना हो है। भावार्थ—जिस संग्रह कृष्टिकौं वेदै है ताविषै आय द्रव्यका अभाव है। तातैं संक्रमण द्रव्यकरि कीएं तौ मध्यम खंडादिक होइ नाहीं। तातै मध्यम खंड उभय द्रव्य विशेष इत्यादि वक्ष्यमाण विधान करनेके अर्थि तिस भोगवनेरूप संग्रह कृष्टिनिका घात द्रव्यतैं ताका असंख्यातवां भागमात्र द्रव्यकौं जुदा स्थापि अवशेष घात द्रव्य हीकौं पूर्वोक्त प्रकार विशेष घटता क्रम लीएं एक गोपुच्छाकारकरि दीजिए है। एक भागका आगैं मध्यम खंडादि विधानतैं द्रव्य देना कहेंगे सो जानना। ऐसैं समय २ प्रति सर्व समयनिविषैं विधान हो है।

या प्रकार घात द्रव्यकरि एक गोपुच्छ भया। अब जो अन्य संग्रहका विवक्षित संग्रहविषैं द्रव्य आया ताकौं पूर्वैं आय द्रव्य कह्या था ताका नाम इहां संक्रमण द्रव्य कहिए। बहुरि जो नवीन समयप्रबद्धविषैं द्रव्य बंधिकरि कृष्टिरूप हो है सो बंध द्रव्य कहिए। ताका विधान कैसैं है ? सो कहिए है—

केता इक संक्रमण द्रव्य अर बंध द्रव्यकरि केती इक नवीन अपूर्व कृष्टि करिए है। तहां

संक्रमण द्रव्यकरि तौ तिनि संग्रह कृष्टिनिकी जो जघन्य कृष्टि ताके नीचैं केती इक नवीन अपूर्व कृष्टि करिए है। सो इनका नाम अधस्तन कृष्टि है। बहुरि केती इक तिनि संग्रह कृष्टिनिकी पूर्व अवयव कृष्टिनिके वीचि वीचि नवीन अपूर्व कृष्टि करिए है। इनका नाम अंतर कृष्टि है। बहुरि बंध द्रव्यकरि अवयव कृष्टिनिके वीचि विचि ही नवीन अपूर्व कृष्टि करिए हैं सो इनका भी नाम अंतर कृष्टि है। बहुरि केताइक संक्रमण द्रव्य वा बंध द्रव्यकौं पूर्व कृष्टिनिहीविषै निक्षेपण करै है सो यहु विधान कहिए है ॥ ४२७ ॥

हेट्ठा किट्टिप्पहुदिसु संकमिदासंखभागमेत्तं तु।
सेसा संखाभागा अंतराकिट्टिस्स दव्वं तु[1] ॥ ५२८ ॥

अधस्तनकृष्टिप्रभृतिषु संक्रमितासंख्यभागमात्रं तु।
शेषा असंख्यभागा अंतरकृष्टेर्द्रव्यं तु ॥ ५१८ ॥

स० चं—सक्रमण द्रव्यकौं असंख्यातका भाग दीएं तहां एक भागमात्र द्रव्य तौ नीचलो कृष्टि आदिविषैं दीजिए है। भावार्थ यहु—या द्रव्यकरि अधस्तन अपूर्व कृष्टि करिए है। बहुरि अवशेष असंख्यात बहुभाग हैं ते अन्तर कृष्टिनिका द्रव्य हैं, याकरि अन्तर कृष्टि करिए है ॥५२८॥

बंधदव्वाणंतिमभागं पुण पुव्वकिट्टिपडिबद्धं।
सेसाणंता भागा अंतरकिट्टिस्स दव्वं तु[2] ॥५२९॥

बंधद्रव्यानंतिमभागं पुनः पूर्वकृष्टिप्रतिवद्धं।
शेषानंता भागा अंतरकृष्टेर्द्रव्यं तु ॥५२९॥

स० चं०—बन्ध द्रव्यकौं अनन्तका भाग दीएं तहां एकभागमात्र तौ पूर्व कृष्टिसम्बन्धी है, या द्रव्यकौं पूर्वे कृष्टि कहीं थीं तिनहीविषैं निक्षेपण करिए है। बहुरि अवशेष अनन्त बहुभाग है ते अन्तर कृष्टिनिका द्रव्य है, या द्रव्यकरि नवीन अन्तर कृष्टि करिए है ॥५२९॥

कोहस्स पढमकिट्टी मोत्तूणेकारसंगहाणं तु।
बंधणसंकमदव्वादपुव्वकिट्टिं करेदी हु[3] ॥५३०॥

क्रोधस्य प्रथमकृष्टि मुक्त्वा एकादशसंग्रहाणां तु।
बंधनसंक्रमद्रव्यादपूर्वकृष्टि करोति हि ॥५३०॥

स० चं०—क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टि विना अवशेष ग्यारह संग्रह कृष्टिनिकैं यथा सम्भव बन्ध द्रव्य अथवा संक्रमण द्रव्यतैं अपूर्व कृष्टि करै है। क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिविषैं संक्रमण द्रव्यके अभावतैं बन्ध द्रव्यकरि ही अपूर्व करण कृष्टि करिए है ॥५३०॥

---

१. धवला० पु० ६, पृ० ३८७। जयध० ता० पृ० २१७४–२१७५।

२. धवला० पु० ६, पृ० ३८६। जयध० ता० पृ० २१७२–२१७३।

३. कोहस्स पढमसंगहकिट्टि मोत्तूण सेसाणमेक्कारसगण्हं संगहकिट्टीणं अण्णाओ अपुव्वाओ किट्टीओ

बंधणदव्वादो पुण चदुसु ट्ठाणेसु पढमकिट्टीसु ।
बंधापुव्वकिट्टीदो संकमकिट्टी असंखगुणा ॥ ५३१ ॥

बंधनद्रव्यात्पुनः चतुर्षु स्थानेषु प्रथमकृष्टिषु ।
बंधापूर्वकृष्टितः संक्रमकृष्टिः असंख्यगुणा ॥५३१॥

स० चं०—बहुरि बन्ध द्रव्यतैं क्रोधादि च्यारि कषायनिकी प्रथम संग्रह कृष्टिरूप जे च्यारि स्थान तिनहीविषै अपूर्व कृष्टि करिए है। संक्रमण द्रव्यकरि पूर्वै ग्यारह स्थाननिविषैं कृष्टि करनी कही हैं। बहुरि बन्ध द्रव्यकरि निपजी अपूर्व कृष्टिनितैं संक्रमण द्रव्यकरि निपजी कृष्टि पल्यका असंख्यातवाँ भागगुणी हैं, जातैं बन्ध द्रव्य समयप्रबद्धमात्र है, तातैं संक्रमण द्रव्य असंख्यातगुणा है। अर कृष्टि हैं ते द्रव्य कृष्टिके अनुसारि निपजे हैं ॥५३१॥

विशेष—आशय यह है कि क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिके बँधनेवाले प्रदेश पुंजसे ही अपूर्व कृष्टियोंको रचता है, क्योंकि वहाँ कोई दूसरा प्रकार सम्भव नहीं है। मान, माया और लोभकी तीनों प्रथम संग्रह कृष्टियोंमें बन्धको प्राप्त होनेवाले और संक्रमित होनेवाले प्रदेशपुंजसे ही अपूर्व कृष्टियोंकी रचना होना सम्भव है। इनके अतिरिक्त शेष संग्रहकृष्टियोंमें संक्रमित होनेवाले प्रदेशपुंजसे ही अपूर्व कृष्टियोंकी रचना होती है, क्योंकि उनमें बन्धको प्राप्त होनेवाले प्रदेशपुंज नहीं पाया जाता।

संखातीदगुणाणि य पल्लस्सादिमपदाणि गंतूण ।
एक्केक्कबंधकिट्टी किट्टीणं अंतरे होदि[2] ॥ ५३२ ॥

संख्यातीतगुणानि च पल्यस्यादिमपदानि गत्वा ।
एकैकबंधकृष्टिः कृष्टीनामंतरे भवति ॥५३२॥

स० चं०—जिनि संग्रहकृष्टिनिका बन्ध सम्भवै तिनकी जे अवयव कृष्टि हैं तिनिविषैं तिनका असंख्यातवां भागमात्र नीचैकी वा उपरिकी कृष्टि तौ बन्ध योग्य ही नाहीं अर वीचिमैं जे बहुभागमात्र बध्यमान कृष्टि हैं तिनिकी दोय कृष्टिनिके बीचि एक अन्तराल बहुरि एक कृष्टि यहु अर एक कृष्टि ऊपरिकी तिनिके वीचि एक अन्तराल ऐसैं जे अन्तराल हैं तिनि विषैं पहला दूसरा आदि असंख्यात पल्यका प्रथम वर्गमूलमात्र अन्तराल उल्लंघि जो अन्तराल है तिसविषैं नवीन एक अपूर्व कृष्टि करिए है। बहुरि ताके ऊपरि तितने ही अन्तराल उल्लंघि जो अन्तराल आवै तहां दूसरी अपूर्व कृष्टि करिए है। ऐसें ही बन्धकी उत्कृष्ट कृष्टिके नीचैं पल्यका असंख्यातका वर्गमूलमात्र कृष्टि उतरैं तहां अन्तरालविषैं जो उत्कृष्ट अपूर्व कृष्टि करिए है तहां पर्यन्त ऐसें ही क्रम लीएं कृष्टिनिके वीचि अपूर्व कृष्टिनिका होना जानना ॥५३२॥

---

१. बज्झमाणयादो थोवाओ णिव्वत्तेदि। संकामिज्जमाणयादो असंखेज्जगुणाओ। जाओ ताओ बज्झमाणयादो पदेसग्गादो णिव्वज्जंति ताओ चदुसु पढमसंगहकिट्टीसु। क० चु०, पृ० ८५२।

२. किट्टी अंतराणि अंतरट्ठदाए असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि। एत्तियाणि किट्टीअंतराणि गंतूण अपुव्वाकिट्टी णिव्वत्तिज्जदि। क० चू० पृ० ८५३।

दिज्जदि अणंतभागेणूणकमं बंधगे य णंतगुणं ।
तण्णंतरे णंतगुणूणं तत्तोणंतभागूणं[1] ॥ ५३३ ॥

दीयते अनंतभागेनोनक्रमं बंधके चानंतगुणं ।
तदनंतरेऽनंतगुणोनं ततोऽनंतभागोनं ॥५३३॥

स० चं०—बंध द्रव्य कृष्टिनिविषैं कैसैं दीजिए है सो कहिए है—पूर्वकृष्टिविषैं बहुत द्रव्य दीजिए है। बहुरि दूसरी पूर्व कृष्टिविषैं ताके अनंतवे भागमात्र जो एक विशेष ताकरि घटता द्रव्य दीजिए है। ऐसैं यावत् अपूर्व कृष्टि न प्राप्त होइ तावत् अनन्तभागरूप विशेष घटता क्रम लीएं द्रव्य दीजिए है। बहुरि तहां अन्त कृष्टिविषैं जो दीया द्रव्य तातैं अपूर्व कृष्टिविषै अनंतगुणा द्रव्य दीजिए है। जातैं यहु कृष्टि इसही द्रव्यकरि नवीन निपजै है। बहुरि यातैं याके अनंतरवर्ती जो पूर्वकृष्टि तिसविषैं अनंतगुणा घटता द्रव्य दीजिए है। तातैं उपरि अनंतवां भागरूप विशेष घटता क्रम लीएं द्रव्य यावत् अपूर्व कृष्टि प्राप्त न होइ तावत् दीजिए है। ऐसैं ही अनुक्रम लीए बंधकी उत्कृष्ट कृष्टि पर्यंत बंध द्रव्य देनेका विधान जानना। नवीन बंध द्रव्य करि करी अपूर्व कृष्टि भी अनंत हैं। ऐसैं बंध कृष्टिनिका स्वरूप कह्या है ॥५३३॥

विशेष—चारों प्रथम संग्रह कृष्टियोंके नीचे और ऊपर असंख्यातवें भागको छोड़ कर शेष समस्त मध्यम कृष्टियोंरूपसे परिणमन करनेवाले नवकबन्धका अनुभाग पूर्ण कृष्टिरूप भी परिणमता है और अपूर्ण कृष्टिस्वरूप भी परिणमता है। उसमेंसे जो प्रदेश पुंज पूर्ण कृष्टियोंको प्राप्त होता है वह नवकबन्धरूप समयबद्धके अनन्तवें भागप्रमाण होता है। शेष अनन्त बहुभाग प्रमाण प्रदेश पुंज अपूर्ण कृष्टियोंको प्राप्त होता है। इसलिये नवकबन्धरूप समयप्रबद्धके अनन्त बहुभागको पृथक् रखकर जो शेष एक भागप्रमाण प्रदेशपुंज अवशिष्ट रहा उसे पूर्व कृष्टियोंके सम्बन्धसे बन्धको प्राप्त होनेवाली जघन्य कृष्टिसे लेकर सिंचन करता हुआ उनमें जो बन्धरूप जघन्य कृष्टि है उसमें बहुत प्रदेशपुंजका निक्षेपण करता है। नवक बन्धरूप समयप्रबद्धके अनन्तवें भागको पूर्व कृष्टियोंके प्रमाणसे भाजित करनेपर जो एक खण्डप्रमाण द्रव्य प्राप्त हो उसमें अनन्तवें भागप्रमाण द्रव्यके और मिलाने पर जो द्रव्य प्राप्त हो उसे विवक्षित जघन्य कृष्टिरूपसे सिंचित करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। उससे आगे दूसरी कृष्टिको विशेष-हीन द्रव्य देता है। यहाँ विशेषका प्रमाण अनन्तवाँ भाग है। तात्पर्य यह है कि बन्धरूप जघन्य कृष्टिमें जितना द्रव्य दिया है उसे निषेक भागहारसे भाजित करने पर जो द्रव्य प्राप्त हो उतना कम देता है। इसी प्रकार अन्तिम पूर्व कृष्टिके प्राप्त होने तक तृतीयादि कृष्टियोंको विशेष हीन विशेष हीन द्रव्य देता है। इस प्रकार पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलोंको उल्लंघन कर जो अपूर्व कृष्टि प्राप्त होती है उसके पूर्वतक पूर्व कृष्टियोंमें उक्त द्रव्यका निक्षेपण करता है। यहां जो पूर्व कृष्टियोंको रचनाकी विधि कही सो दो पूर्व कृष्टियोंके अन्तराल में जो अपूर्ण कृष्टियोंकी रचना होती है उसमें अनन्तगुणे द्रव्यको देता है। उसके आगे नवकबन्धके निपजनेवाली अपूर्व कृष्टियोंमें किस क्रमसे द्रव्यका विभाग होता है इसे जयधवला टीकासे जानना चाहिये।

१. तत्थ जहण्णियाए किट्टीए बज्झमाणियाए बहुअं। विदियाये किट्टीए विसेसहीणमणंतभागेण। तदियाए विसेसहीणमणंतमागेण। चउत्थीए विसेसहीणं। एवमणंतरोपणिधाए ताव विसेसहीणं जाव अपुव्व-किट्टिमपत्तो त्ति। अपुव्वाए किट्टीए अणंतगुणं। अपुव्वादो किट्टीदो जा अणंतरकिट्टी तत्थ अणंतगुणहीणं।

संकमदो किट्टीणं संगहकिट्टीणमंतरं होदि ।
संगहअंतरजादो किट्टी अंतरभवा असंखगुणा ॥ ५३४ ॥

संक्रमतः कृष्टीनां संग्रहकृष्टीनामंतरं भवति ।
संग्रहे अंतरजातः कृष्टिरंतभंवा असंख्यगुणा ॥५३४॥

स० चं०—संक्रमण द्रव्यतैं निपजीं जे अपूर्व कृष्टि ते केती इक कृष्टि तौ संग्रह कृष्टिनिके नीचैं निपजै हैं अर केती इक पूर्व अवयव कृष्टि थीं तिनिका अंतरालविषैं निपजैं हैं । तहां संग्रह कृष्टिनिका अंतरालविषैं नीचैं निपजी कृष्टिनितैं अवयव कृष्टिनिका अंतराल विषैं निपजी कृष्टि असंख्यातगुणी हैं ॥५३४॥

विशेष—पूर्वमें नवीन बन्धसे उत्पन्न हुई पूर्व-अपूर्व कृष्टियोंकी रचनाका खुलासा कर आये हैं । यहां संक्रमण द्रव्यसे निपजनेवाली कृष्टियोंकी रचनाका खुलासा करना है । उस विषय में ऐसा समझना चाहिये कि संक्रमण द्रव्यसे जो अपूर्व कृष्टियां बनती है वे कृष्टियोंके अन्तरालमें भी उत्पन्न होती हैं और संग्रह कृष्टियोंके अन्तरालमें भी उत्पन्न होती हैं । क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिको छोड़कर शेष ग्यारह संग्रह कृष्टियोंके नीचे उनके असंख्यातवें भागप्रमाणरूपसे जो अपूर्व कृष्टियां रची जाती हैं उन्हें संग्रह कृष्टयोंके अन्तरालमें उत्पन्न हुआ कहा जाता है । तथा उन्हीं ग्यारह संग्रह कृष्टियोंसम्बन्धी कृष्टियोंके अन्तरालमें जो अपूर्व कृष्टियां उत्पन्न होती हैं उन्हें कृष्टियोंके अन्तरालमें उत्पन्न हुई अपूर्व कृष्टियां कहा जाता है । उनमें जो संग्रह कृष्टियोंके अन्तरालमें अपूर्व कृष्टियां उत्पन्न होती हैं वे स्तोक हैं । उनसे कृष्टियोंके अन्तरालमें उत्पन्न हुई कृष्टियां असंख्यातगुणी हैं ।

संगहअंतरजाणं अपुव्वकिट्टिं व बंधकिट्टिं वा ।
इदराणमंतरं पुण पल्लपदासंखभागं तु[२] ॥ ५३५ ॥

संग्रहांतरजानामपूर्वकृष्टिमिव बंधकृष्टिमिव ।
इतरेषामंतरं पुनः पल्यपदासंख्यभागस्तु ॥ ५३५ ॥

स० चं—संग्रह कृष्टिनिके नीचैं जे संग्रह कृष्टि कीनी तहां द्रव्य देनेका विधान तौ जैसैं कृष्टिकारकका द्वितीय समयविषैं अपूर्व कृष्टिनिका विधान कह्या था तैसैं जानना विशेष इतना—

तहां अधस्तन अपूर्व कृष्टिकी अन्त कृष्टिविषैं दीया द्रव्यतैं पूर्व कृष्टिका जघन्य कृष्टिविषैं दीया द्रव्य असंख्यातवें भाग घटता कह्या था इहां असंख्यातगुणा घटता जानना, जातैं इहां अधस्तन कृष्टि द्रव्यतैं मध्यम खंड द्रव्य असंख्यातगुणा घटता है । बहुरि तहां पूर्व कृष्टिकी

तदो पुणो अणंतभागहीणं । एवं सेसासु सव्वासु । क० चु०, पृ० ८५३ ।

१. जाओ संकामिज्जमाणयादो पदेसग्गादो किट्टीओ णिव्वत्तिज्जंति ताओ दुसु ओगासेसु । तं जहां—किट्टीअंतरेसु च संगहकिट्टीअंतरेसु च । जाओ संगहकिट्टीअंतरेसु ताओ थोवाओ । जाओ किट्टीअंतरेसु ताओ असंखेज्जगुणाओ । क० चु०, पृ० ८५४ ।

२. जाओ संगहकिट्टी अंतरेसु ताहिं जहा किट्टीकरणे अपुव्वाणं णिव्वत्तिज्जमाणियाणं किट्टीणं विधी तहा कायव्वो । जाओ किट्टीअंतरेसु तासिं जहा बज्झमाणएण पदेसग्गेण अपुव्वाणं णिव्वत्तिज्ज माणियाणं किट्टीणं विधी तहा कायव्वो । णवरि थोवदरगाणि गंतूण संछुब्भमाणपदेसग्गेण अपुव्वा किट्टि णिव्वत्तिज्जमाणिणा दिस्सदि । ताणि किट्टी-अंतराणि पगणणादो पलिदोवसवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागो । क० चु० पृ० ८५४ ।

अन्त कृष्टिविषैं दीया द्रव्यतैं अपूर्व कृष्टिकी आदि कृष्टिविषैं दीया द्रव्य संख्यात भाग अधिक कह्या था। इहां असंख्यातगुणा बधता जानना, जातैं इहां मध्यम खंडके द्रव्यतैं अधस्तन कृष्टिका द्रव्य असंख्यातगुणा है।

बहुरि जे अवयव कृष्टिनिके बीचि नवीन कृष्टि कीनीं तहां द्रव्य देनेका विधान जैसैं बंध द्रव्यकरि निपजी अपूर्व कृष्टिनिविषैं विधान कह्या तैसैं जानना। विशेष इतना—तहां असंख्यात पल्यका वर्गमूल प्रमाण अंतरालरूप स्थान जाइ जाइ बंध द्रव्यकरि निपजी एक एक अपूर्व कृष्टि कही थी इहां पल्यका प्रथम वर्गमूलका असंख्यातवां भाग मात्र जो उत्कर्षण वा अपकर्षण भागहार ताका जितना प्रमाण तितना अन्तराल भएं संक्रमण द्रव्यकरि एक एक अपूर्व कृष्टि निपजाइए है। अब इहां प्रथम द्रव्य देनेका विशेष तात्पर्य निरूपण करिए है—

तहां प्रथम ही क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टि बिना अन्य ग्यारह संग्रह कृष्टिनिविषैं जो आय द्रव्य ताहीका नाम संक्रमण द्रव्य है ताका अर क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिविषैं आय द्रव्यका तौ अभाव है, तातैं पूर्वै कह्या था जो वेद्यमान कृष्टिविषैं घात द्रव्यका असंख्यातवां भागमात्र द्रव्य ताकौं जुदा स्थापना, तिस जुदा स्थाप्या घातद्रव्यकौं देनेका विधान कहिए है—पूर्वकृष्टिनिविषैं एक एक विशेष घटता क्रम है तिस विशेषका प्रमाण ल्याइए है—

इहां घात कीए पीछैं अवशेष सर्व कृष्टिका प्रमाणमात्र जे गच्छ तिस एक घाटि गच्छका आधा प्रमाण करि हीन जो दोगुणहानि ताकरि गुणित जो गच्छ ताका भाग सर्व द्रव्यकौं दीएं एक विशेष हो है। सो लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिविषैं एक विशेष आदि अर एकविशेष उत्तर अर एक घाटि अपनी कृष्टिनिका प्रमाणमात्र गच्छ स्थापि श्रेणी व्यवहार गणिततैं जो संकलन धन आवै तितना अधस्तन शीर्ष द्रव्य है। अर अन्य संग्रह कृष्टिनिविषैं जेती नीचली संग्रहसम्बन्धी कृष्टिका प्रमाण तितने विशेष आदि अर एक विशेष उत्तर अर अपनी अपनी कृष्टिनिका प्रमाण-मात्र गच्छ स्थापि जो संकलन धन आवै तितना तितना अधस्तन शीर्षद्रव्य है। सो याकौं ग्यारह संग्रह कृष्टिनिका आय द्रव्यतैं अर क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिका घात द्रव्यतैं ग्रहि करि जुदा स्थापना। याकौं यथायोग्य कृष्टिनिविषैं दीएं सर्व पूर्व कृष्टि लोभकी तृतीय कृष्टिकी प्रथम कृष्टीके समान होइ।

बहुरि लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिकी प्रथम कृष्टिकौं अपकर्षण भागहारतैं असंख्यात-गुणा ऐसा जो पल्यका असंख्यातवां भाग ताका भाग दीएं एक खंडका प्रमाण आवै ताकौं अपनी अपनी कृष्टिनिका प्रमाण करि गुणैं अपना अपना मध्यम खंड द्रव्य हो है। सो याकौं ग्यारह संग्रह कृष्टिनिका आय द्रव्यतैं अर क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिका घात द्रव्यतैं ग्रहि जुदा स्थापना। याकौं एक एक खंडकरि कृष्टिनिविषैं दीएं सर्व कृष्टि समान ही रहैं हैं। बहुरि एक मध्यम खंडकरि अधिक जो लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिकी प्रथम कृष्टिका द्रव्य तीहिं प्रमाण एक अधस्तन कृष्टिका द्रव्य स्थापि ताकौं अपनी अपनी कृष्टिनिका प्रमाणकौं अपकर्षण भागहारतैं असंख्यात-गुणा जो पल्यका असंख्यातवां भाग ताका भाग दीएं जो संग्रह कृष्टिनिके नीचैं करी अधस्तन कृष्टिनिका प्रमाण ताकरि गुणैं अधस्तन अपूर्व कृष्टिसम्बन्धी द्रव्य हो है। सो याकौं ग्यारह संग्रह कृष्टिनिका आय द्रव्यतैं ग्रहि जुदा स्थापना। याकरि संग्रह कृष्टिनिके नीचैं नवीन अपूर्व कृष्टि निपजै है। क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिविषैं संक्रमण द्रव्यके अभावतैं नीचैं अपूर्व कृष्टि न हो है।

बहुरि पूर्व अपूर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्रगच्छ सो एक घाटिगच्छका आधा प्रमाण करि हीन जो दो गुणहानि ताकरि गुणित गच्छका भाग इहां संभवता सर्व द्रव्यकौं दीएं उभय द्रव्यका एक

विशेष होइ सो क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिविषैं एक विशेष आदि एक विशेष उत्तर अर अपनी भोगवनेरूप क्रोधकी प्रथम संग्रहकी सर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र गच्छ स्थापि तहां जेता संकलन धन भया तितना उभय द्रव्य विशेष द्रव्य भया ताविषैं अपना एक विशेषका अनंतवां भागमात्र द्रव्य घटाएं जो द्रव्य भया ताकौं क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिका घात द्रव्यतैं ग्रहिकरि जुदा स्थापना। इहां क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिका घात द्रव्य जुदा स्थाप्या था सो पूर्ण भया। बहुरि जो पहलैं संग्रह कृष्टि भईं तिनकी कृष्टिनिका प्रमाणतैं एक अधिक विशेष तौ आदि अर एक विशेष उत्तर अर अपनी अपनी पूर्व अपूर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र गच्छ स्थापि संकलन कीएं अपना अपना उभय विशेष द्रव्य हो है। याकौं ग्यारह संग्रह कृष्टिनिका अपना अपना आय द्रव्यतैं ग्रहि जुदा स्थापना। विशेष इतना—

जो संग्रह कृष्टि बंधै है ताका उभय द्रव्य विशेषविषै एक विशेषका अनन्तवां भागमात्र द्रव्य घटावना। यह घटाया द्रव्य है सो बंध द्रव्यतैं ग्रहकरि दीजिएगा। याकौं यथायोग्य कृष्टि-निविषैं दीए सर्व पूर्व अपूर्व कृष्टिनिकैं विशेष घटता क्रमरूप गोपुच्छ हो है। बहुरि इन कहे च्यारि द्रव्यनिकौं घटाए अवशेष जो अपना अपना आय द्रव्य रह्या ताकौं अपनी अपनी संक्रमण द्रव्यकरि करीं अपूर्व अन्तर कृष्टिनिका प्रमाणका भाग दीएं एक अन्तर कृष्टिसम्बन्धी एक खंड होइ ताकौं अपनी अपनी संक्रमण द्रव्यकरि करी अन्तर कृष्टिनिका प्रमाण करि गुणैं अपना अपना संक्रमण द्रव्यकरि निपजीं जे अन्तर तिनके समान द्रव्य हो है। ताकौं जुदा स्थापना। याकरि पूर्व कृष्टिनिके वीचि वीचि नवीन अपूर्व कृष्टि निपजाइए है। इहां संक्रमण द्रव्यकरि भईं अन्तर कृष्टिनिका प्रमाण ल्यावनेकौं उपाय कहिए है—

एक मध्यम खंडकरि अधिक लोभकी तृतीय कृष्टिकी प्रथम कृष्टिका द्रव्यमात्र द्रव्य करि एक कृष्टि होइ तौ पूर्वोक्त च्यारि प्रकार द्रव्यकरि हीन अपना अपना आय द्रव्यकरि केती कृष्टि होंइ ? ऐसैं त्रैराशिक कीए लब्धमात्र संक्रमण द्रव्यकरि करीं अन्तर कृष्टिनिका प्रमाण आवै है। बहुरि याका भाग, अपनी अपनी पूर्व कृष्टिनिका भाग दीएं अपनी अन्तर कृष्टिके अन्तरालका प्रमाण आवै है। दोय अपूर्व अन्तर कृष्टिनिके वीचि इतनी पूर्व कृष्टि पाइए है। ऐसैं संक्रमण द्रव्यकरि निपजी कृष्टिनिका द्रव्य विभाग कह्या। अब बंध द्रव्य करि निपजी कृष्टिनिका द्रव्य विभाग कहिए है—

मोहनीयका एक समयप्रबद्ध ताकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीए तहां बहुभागके च्यारि समान पुंजकरि अवशेष एक भागकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं तहां बहुभाग प्रथम पुंजविषैं जोडें लोभका बंध द्रव्य हो है। अवशेष एक भागकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां बहुभाग द्वितीय पुंजविषैं जोडैं मायाका बंध द्रव्य हो है। अवशेष एक भागकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं तहां बहुभाग तृतीय पुंजविषैं जोडें क्रोधका बंध द्रव्य हो है। अवशेष एक भाग चतुर्थ पुंजविषैं जोडैं मानका बंध द्रव्य हो है। अब बंध द्रव्यकरि अन्तर कृष्टिनिका वा तहां अन्तरालनिका प्रमाण ल्यावनेके अर्थि इन द्रव्यविषैं बंध द्रव्यकरि करीं अन्तर कृष्टिनिका विशेष संकलनरूप द्रव्य अर पूर्व एक विशेषका अनन्तवां भागमात्र द्रव्य आगैं कहिए है तिनकौं घटाएं अवशेष जेता जेता द्रव्य रह्या ताकौं इच्छाराशि-करि त्रैराशिक करिए है—

एक मध्यम खंडकरि अधिक लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिकी जघन्य कृष्टिका द्रव्यमात्र द्रव्यकरि एक अन्तर कृष्टि द्रव्य होइ तौ पूर्वोक्त द्रव्यकरि केती अन्तर कृष्टि होंइ ? ऐसैं त्रैराशिक कीएं लब्धमात्र बंध द्रव्यकरि निपजीं अन्तर कृष्टिनिका प्रमाण सर्व पूर्व कृष्टिनिका प्रमाणकौं छह गुणहानिका भाग दीएं जितना प्रमाण होइ तितना हो है। ते अन्तर कृष्टि मानविषैं स्तोक, तातैं क्रोधविषै विशेष अधिक, तातैं मायाविषै विशेष अधिक, तातैं लोभविषैं विशेष अधिक जानना, जातैं इनके द्रव्यविषैं भी ऐसा ही क्रम है। इहां एक एक कषायकी एक एक संग्रह कृष्टिहीका बंध है तातैं च्यारि ही संग्रह कृष्टिनिविषैं बंध कृष्टिकी रचना जाननी। इन बंध द्रव्यकरि करीं अन्तर कृष्टिनिका प्रमाण है सो पूर्वोक्त संक्रमण द्रव्यकरि करी अन्तर कृष्टिनिका प्रमाणतैं असंख्यात-गुणा घटता है। जातैं संक्रमणकी अन्तर कृष्टिनिका प्रमाण ल्यावनेकौं सर्वकृष्टिनिकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीया तातैं इहां बंधकी अन्तर कृष्टिनिका प्रमाण ल्यावनेकौं सर्व कृष्टिनिकौं असंख्यात पल्यका प्रथम वर्गमूलका भाग दीया सो यहु भागहार तिस भागहारतैं असंख्यातगुणा है। बहुरि अपनी अपनी संग्रह कृष्टिकी उपरि नीचैं असंख्यातवां भागमात्र कृष्टि छोडि संक्रमणकी अन्तर कृष्टि सहित जे वीचिकी असंख्यात बहुभागमात्र बंधरूप पूर्व कृष्टि तिनकौं बंध द्रव्यकरि करी अपनी अपनी अपूर्व अन्तर कृष्टिनिके प्रमाणका भाग दीएं लोभ माया मानविषैं गुणहानिका चौथा भागमात्र अर क्रोधविषैं यातैं तेरहगुणा अन्तरालनिका प्रमाण हो है। बंध द्रव्यकरि करी ऐसी दोय अपूर्व अन्तर कृष्टि तिनके वीचि जेती पूर्वकृष्टि पाइए तिनके प्रमाणका नाम इहां अन्तराल जानना सो यहु संक्रमणकी अन्तर कृष्टिनिका अन्तरालतैं असंख्यातगुणा है। ऐसैं प्रमाण ल्याइ अब बंध द्रव्यका विभाग कहिए है—

अपना अपना पूर्वोक्त बंध द्रव्यकौं स्थापि ताकौं अनन्तका भाग देइ तहां एक भाग जुदा राखि अवशेष बहुभाग रहे तिनतैं बंधांतर कृष्टि विशेष द्रव्य ग्रहि जुदा स्थापना ताका प्रमाण कहिए है—बंध द्रव्यकरि करीं जे अपूर्व अन्तर कृष्टि तिनिविषैं जो अन्तकी कृष्टि तिसविषैं पूर्व अन्तकी कृष्टितैं जेती कृष्टि नीचै यहु पाइए है तितने विशेष यामैं चाहिये ताकौं तौ आदि स्थापिए। अर वीचिमें जो अन्तरालका प्रमाण तितने विशेष उत्तर स्थापिए अर अपनी अपनी बंध द्रव्यकरि करी अन्तर कृष्टिनिका प्रमाणमात्र गच्छ स्थापिए ऐसैं स्थापैं जो संकलन धन आवै तितना बन्धान्तर कृष्टिविशेष द्रव्य जानना। इस द्रव्यकरि बंध द्रव्यतैं जे नवीन अपूर्व कृष्टि करीं तिनविषैं जैसैं अन्य कृष्टिनिका अर इनका एक गोपुच्छ होइ तैसैं विशेषनिका सद्भाव हो है। सो एकविशेषका अनन्तवां भागमात्र बंध द्रव्य करि घटते जे पूर्वै उभय द्रव्यविशेष कहे थे तिनविषै इनका अवस्थान जानना। भावार्थ यहु—

जो अन्य कृष्टिनिविषै तौ पूर्वोक्त संक्रमण द्रव्यका उभय द्रव्य विशेष द्रव्य देना। अर बंधकी अंतर कृष्टिनिविषैं इहां कह्या बंधांतर विशेष द्रव्य सो देना। इहाँ भी एक विशेषका अनंतवां भागमात्र घटतापना जानना। जातैं इहां भी आगैं कहिए है जो एक विशेषका अनंतवां भागमात्र बंध द्रव्य ताका निक्षेपण हो है। ऐसैं दीएं अन्य कृष्टिनिकैं अर बंधकरि करीं नवीन कृष्टिनिकैं एक गोपुच्छ हो है। बहुरि तिन बहुभागनिविषै इतना द्रव्य घटाएं अवशेष जो द्रव्य रह्या ताकौं बंधकी नवीन अंतरकृष्टिनिके प्रमाणका भाग दीएं एक खंडमात्र एक कृष्टिका द्रव्य होइ। ताकौं बंधकी अंतरकृष्टिनिका प्रमाणकरि गुणैं सर्व कृष्टिसम्बन्धी द्रव्य होइ सो याका नाम

बंधांतरकृष्टि समान खंड द्रव्य है। इस द्रव्यकरि समान प्रमाण लीए बंधकी नवीन अपूर्व अंतर-कृष्टि निपजै है। बहुरि पूर्वै जो बंध द्रव्यकौं अनंतका भाग देइ एक भाग जुदा राख्या था तिसतैं बंधविशेष द्रव्य ग्रहि जुदा स्थापना सो कितना है ? सो कहिए है--

पूर्व अपूर्व बंध कृष्टिनिका प्रमाणमात्र इहां गच्छ सो एक गच्छका आधा प्रमाणकरि हीन जो दोगुणहानि ताकरि गुणित गच्छका भाग तिस जुदा राख्या एक भागकौं दीए एक विशेष होइ, ताकौं अपना सर्व बंध कृष्टिनिका प्रमाणकरि गुणैं बंधविशेष द्रव्य हो है। इस द्रव्यकौं जहाँ उभय द्रव्य विशेष द्रव्यविषै अनंतवां भाग घटाया था तहाँ देना। बहुरि जुदा राख्या एक भागविषै इतना द्रव्य घटाएं जो अवशेष रह्या ताकौं अपनी सर्व बंध कृष्टिके प्रमाणका भाग दीएं एक खंड होइ ताकौं अपनी बंध कृष्टिनिका प्रमाण ही करि गुणैं जो द्रव्य होइ सो बंधका मध्यम खंड द्रव्य जानना। यहु द्रव्य अवशेष रह्या ताकौं बंधकृष्टिनिविषै समानरूप जहाँ उभय द्रव्यविशेष द्रव्य विषै एक विशेषका अनंतवां भाग घटाया तहां ही दीजिए है। भावार्थ यहु—

बंधका विशेष अर मध्यम खंडका द्रव्य दीए उभय द्रव्यका विशेषविषै घटाया था द्रव्य सो पूर्ण हो है। ऐसैं बंध द्रव्यका विशेष विभाग जानना। अब इन संक्रमण द्रव्यका वा बंध द्रव्य देनेका विधान कहिए है—तहाँ लोभकी तृतीय द्वितीय संग्रहकृष्टिविषै तौ बंध द्रव्यका अभाव है, तातैं तहां संक्रमण द्रव्यहीकौं देनेका विधान कहिए है—

लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिविषैं पंचप्रकार द्रव्य कह्या। तहाँ नीचैं जे अपूर्व कृष्टि करीं तिनकी जघन्य कृष्टिविषैं अधस्तन खंडतैं एक खंड अर मध्यम खंडतैं एक खण्ड अर उभय द्रव्य विशेषतैं सर्व पूर्व अपूर्व कृष्टिमात्र विशेष ग्रहि निक्षेपण करै है सो यहु आगैं कृष्टिनिविषै दीजिए है द्रव्य तातैं बहुत हैं। बहुरि ताके ऊपरि द्वितीयादि अंतपर्यंत जे अधस्तन अपूर्व कृष्टि तिनविषैं एक एक अधस्तन खंड अर एक एक मध्यम खंड तौ समानरूप अर उभय द्रव्य विशेषविषैं एक एक विशेष घटता ऐसैं द्रव्य दीजिए है। इहाँ अधस्तन खण्ड द्रव्य तौ समाप्त भया। बहुरि ताके ऊपरि पूर्वकृष्टिकी प्रथम कृष्टि तिसविषैं मध्यम खंडतै एक खंड उभय द्रव्य विशेषतैं जेती कृष्टि होइ आई तितनीकरि हीन सर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेष ग्रहि निक्षेपण करिए है। सो यहु अपूर्व-कृष्टिकी अंतकृष्टिविषैं दीया द्रव्यतैं असंख्यातगुणा घटता है, जातैं मध्यम खंडतैं अधस्तन कृष्टि, खंड असंख्यातगुणा है। अर एक उभय द्रव्य विशेष भी इहाँ घट्या है। बहुरि ताके ऊपरि द्वितीयादि पूर्व कृष्टि तिनविषै एक दोय आदि एक एक बंधता अधस्तन शीर्षका विशेष अर एक एक मध्यम खण्ड अर होइ गईं कृष्टिनिकरि हीन सर्व कृष्टिप्रमाण उभय द्रव्यका विशेष क्रमतैं यावत् अपकर्षण भागहारका अर्ध प्रमाणमात्र पूर्व कृष्टि होइ तावत् निक्षेपण करिए है। इहां कृष्टिनिविषैं मध्य एक उभय द्रव्यका विशेषविषै एक अधस्तन शीर्ष विशेष घटाएँ जो प्रमाण होइ तितना विशेषकरि घटता दीया द्रव्यका क्रम जानना। बहुरि तिनके ऊपरि संक्रमण द्रव्यकरि करीं अपूर्व अंतरकृष्टि हैं। तीहिंविषैं अंतरकृष्टिसम्बन्धी समान खण्ड द्रव्यतैं एक खण्ड अर उभय द्रव्य विशेषतैं भईं कृष्टिनिकरि हीन सर्व कृष्टि प्रमाणमात्र विशेषनिकौं ग्रहि निक्षेपण करै है। सो यहु नीचली पूर्व कृष्टिविषै दीया द्रव्यतैं असंख्यातगुणा हैं। जातैं एक घाटि भई कृष्टिनिका प्रमाणमात्र पूर्व विशेष अर एक मध्यम खण्ड इनकरि हीन जो यहु अंतरकृष्टिसम्बन्धी एक खण्ड है सो पूर्व कृष्टिके समान है। सो तिस दीया द्रव्यतैं असंख्यातगुणा है। तहां एक उभय द्रव्यका हीनपना

जानना । बहुरि ताके ऊपरि जो पूर्व कृष्टि तिसविषै भई पूर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र अधस्तन शीर्षके विशेष अर एक मध्यम खण्ड अर भईं पूर्व अपूर्व कृष्टिनिका प्रमाणकरि हीन सर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र उभय द्रव्यके विशेष दीजिए है सो यहु संक्रमणकी अन्तरकृष्टिविषै दीया द्रव्यतैं असंख्यातगुणा घटता है, जातैं इहाँ मिलैं अधस्तन शीर्ष विशेष अर मध्यम खण्डका द्रव्य है सो इनकरि हीन अन्तरकृष्टिसम्बन्धी समान खण्डका द्रव्य पूर्वकृष्टिके समान है, तातैं असंख्यातगुणा घटता है । बहुरि ताके ऊपरि पूर्व कृष्टिनिविषैं एक एक अधस्तन शीर्ष बंधता अर एक एक मध्यम खण्ड समानरूप अर एक एक उभय द्रव्य विशेष घटता ऐसैं क्रमतैं यावत् आधा अपकर्षण भागहारमात्र पूर्वकृष्टि होइ तावत् निक्षेपण करिए है । बहुरि तिनके ऊपरि संक्रमणकी अपूर्व अन्तरकृष्टि है तिसविषैं संक्रमण अन्तरकृष्टिसम्बन्धी समान खण्ड द्रव्यतैं एक खण्ड उभय द्रव्य विशेषतैं भईं कृष्टिनिकरि हीन सर्व कृष्टि प्रमाणमात्र विशेषनिकौं ग्रहि निक्षेपण करै है । सो यहु यातैं नीचली पूर्व कृष्टिविषैं दीया द्रव्यतैं पूर्वोक्त प्रकार असंख्यातगुणा है । बहुरि याके ऊपरि पूर्व कृष्टि तिसविषैं भईं अपूर्व कृष्टिनिका प्रमाण मात्र अधस्तन शीर्षके विशेष अर एक एक मध्यम खण्ड अर भईं कृष्टिनिकरि हीन सर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र उभय द्रव्यके विशेष दीजिए है । सो यहु तिनि अन्तर कृष्टिनिविषैं दीया द्रव्यतैं पूर्वोक्त प्रकार असंख्यातगुणा घटता जानना । याही प्रकार अपूर्व कृष्टितैं पूर्व कृष्टिविषैं असंख्यातगुणा घटता अर पूर्व कृष्टितैं अपूर्व कृष्टिविषैं असंख्यातगुणा बधता क्रमकरि लोभकी तृतीय कृष्टिकी अन्तकृष्टि पर्यन्त द्रव्य देनेका विधान जानना । बहुरि ताके ऊपरि लोभकी द्वितीय संग्रह कृष्टि तिसके पंच प्रकार द्रव्य स्थापि तहाँ ताके नीचैं संक्रमण द्रव्य करि करीं जो अधस्तन अपूर्व कृष्टि तिनकी जघन्य कृष्टिविषैं अधस्तन खण्डतैं एक खण्ड मध्यम खंडतैं एक खण्ड उभय द्रव्य विशेषतैं भईं कृष्टिनिकरि हीन सर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेष ग्रहि निक्षेपण करै है । सो यहु लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिकी अन्त कृष्टिविषैं दीया द्रव्यतैं असंख्यातगुणा है । कारण पूर्वोक्त प्रकार जानना । बहुरि यातैं ऊपरि एक एक अधस्तन खण्ड एक मध्यम खण्ड समानरूप एक एक उभय द्रव्यविशेष घटता क्रमलीएं अधस्तन अपूर्व कृष्टिकी चरम कृष्टि पर्यन्त द्रव्य देना । इहां अधस्तन कृष्टि द्रव्य समाप्त भया ।

बहुरि इनके ऊपरि पूर्व कृष्टिकी आदि कृष्टि तिस विषैं भईं पूर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र अधस्तन शीर्षके विशेष अर एक मध्यम खण्ड अर भईं कृष्टिनिकरि हीन सर्व कृष्टिनिका प्रमाण मात्र उभय द्रव्यके विशेष दीजिए है सो यहु अपूर्व कृष्टिकी अन्त कृष्टिविषैं 'दीया द्रव्यतैं असंख्यातगुणा घटता है । कारण पूर्वोक्त प्रकार जानना । तातैं आगैं जैसैं लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिविषैं विधान कह्या है तैसैंही सर्व जानना । विशेष इतना—

इहां अपकर्षण भागहारमात्र वीचिमें पूर्व कृष्टि भएं अपूर्व कृष्टिकौं निपजावै है । बहुरि ताके ऊपरि लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टि है सो याका बंध भी है अर याकैं आय द्रव्य भी है । तातैं इहां पंच प्रकार संक्रमण द्रव्य अर च्यारि प्रकार बंध द्रव्य स्थापि देनेका विधान कहिए है । संक्रमण द्रव्यकरि करी नीचैं अधस्तन अपूर्व कृष्टि ताकी जघन्य कृष्टिविषैं एक एक अधस्तन खण्ड अर एक मध्यम खण्ड अर भईं कृष्टिनिकरि हीन सर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र उभय द्रव्यके विशेष निक्षेपण करिए है । सो यहु लोभकी द्वितीय संग्रह कृष्टिकी अन्त कृष्टि विषैं दीया द्रव्यतैं असंख्यातगुणा है । बहुरि ताके ऊपरि द्वितीयादि अन्त पर्यन्त अधस्तन कृष्टिनिविषैं एक एक

अधस्तन खण्ड, एक एक मध्यम खण्ड अर भईं कृष्टिनिकरि हीन सर्व कृष्टिमात्र उभय द्रव्यकौं विशेषकरि क्रमतैं दीजिए है। बहुरि तिनके ऊपरि पूर्व कृष्टिनिकी प्रथम कृष्टिविषैं भईं पूर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र अधस्तन शीर्षके विशेष अर एक मध्यम खंड अर भईं कृष्टिनिकरि हीन सर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र उभय द्रव्यके विशेष दीजिए है। सो यहु अपूर्व अधस्तन कृष्टिकी अंत कृष्टिका दीया द्रव्यतैं असंख्यातगुणा घटता है सो इहां असंख्यातगुणाका वा असंख्यातगुणा घटताका कारण पूर्वोक्त ही जानना। बहुरि ताके ऊपरि संक्रमण अन्तर कृष्टिका अन्तरालतैं एक घाटि कृष्टि पर्यन्त कृष्टिनिविषैं एक एक अधस्तन शीर्षका विशेष बंधता अर एक एक उभय द्रव्यका विशेष घटता ऐसैं क्रमकरि दीजिए है। बहुरि ताके ऊपरि संक्रमण द्रव्य करि करी अपूर्व अन्तर कृष्टि तीहिं विषैं संक्रमण अन्तरसम्बन्धी समान खंडतैं एक खंड अर उभय द्रव्य विशेषतैं भईं कृष्टिनिकरि हीन सर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेष दीजिए है। बहुरि ताके ऊपरि ऐसैं ही क्रमतैं अपकर्षण भागहारमात्र बीचिमैं पूर्व कृष्टि भएं एक संक्रमणकी अन्तर कृष्टि निपजाइए है। तहां पूर्व कृष्टिविषैं तौ भई पूर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र अधस्तन शीर्षके विशेष अर एक मध्यम खंड अर भईं कृष्टिनिकरि हीन सर्वकृष्टिनिका प्रमाणमात्र उभय कृष्टिके द्रव्यके विशेष दीजिए है। अर संक्रमणकी अन्तर कृष्टिनिविषैं संक्रमण अन्तर कृष्टिसम्बन्धी समान एक खंड अर भईं कृष्टिकरि हीन सर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र उभय द्रव्यके विशेष दीजिए है। तहां इतना विशेष जानना—

इनविषैं बंध होनेयोग्य कृष्टिकी जघन्य कृष्टितैं लगाय जे पूर्व कृष्टि अर संक्रमण द्रव्यकरि करीं अपूर्व कृष्टि हैं तिनविषैं पूर्वोक्त संक्रमण द्रव्य अपना एक निषेकका अनन्तवां भागमात्र घाटि दीजिए है। अर तहां ही बंध द्रव्यतैं पूर्व जघन्य बंधकृष्टिविषैं तौ बंध द्रव्यसम्बन्धी मध्यम खंडतैं एक खंड अर बंधविशेष द्रव्यतैं सर्व बंध कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेष द्रव्य दीजिए है। अर ताके ऊपरि कृष्टिनिविषैं यातैं एक एक बंधका विशेषमात्र घटता क्रम लीएं दीजिए है। ऐसैं द्रव्य कीएं जो संक्रमण द्रव्यविषैं एक विशेषका अनन्तवां भागमात्र घटता द्रव्य दीया था सो पूर्ण हो है। बहुरि या प्रकार द्रव्य दीया तहां अपूर्व कृष्टिविषैं दीया द्रव्य तौ आयतैं नीचली पूर्व कृष्टिविषैं दीया द्रव्यतैं असंख्यातगुणा बंधता अर पूर्व कृष्टिविषैं दीया द्रव्य आयतैं नीचली अपूर्व कृष्टिविषै दीया द्रव्यतैं असंख्यातगुणा घटता जानना। ऐसैं एक अधिक संक्रमण कृष्टिका अन्तरालका भाग गुणहानिका चौथा भागमात्र तो बंध कृष्टिका अन्तराल ताकौं दीएं जो प्रमाण आवै तितनी संक्रमणकी अपूर्व अन्तर कृष्टि यावत् पूर्ण होंइ तावत् ऐसैं ही क्रम जानना। बहुरि इहां जो संक्रमणकी अन्तर कृष्टि अन्तविषैं भई ताके उपरि जो अन्तरालविषैं बंध द्रव्यकरि अपूर्व अन्तर कृष्टि निपजाइए हैं तिस विषै संक्रमण द्रव्य न दीजिए है—

बंध द्रव्यहोके बन्धान्तर कृष्टि समान खण्ड द्रव्यतैं एक खण्ड अर उभय द्रव्य विशेषको जायगा जो अन्तर कृष्टिसम्बन्धी विशेष द्रव्य कह्या तिसतैं भईं सर्व कृष्टिनिका प्रमाणकरि हीन सर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेष अपना एक विशेषका अनन्तवां भागकरि हीन अर मध्यम खण्डतैं एक खण्ड अर बंध विशेष द्रव्यतैं भईं बंधकृष्टिनिका प्रमाणकरि हीन सर्व बंध कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेष ग्रहि दीजिए हैं सो यहु याके नीचैं जो संक्रमण द्रव्यकौ अन्तर कृष्टि तिसविषैं दीया जो बंध द्रव्य तातैं अनन्तगुणा जानना। बहुरि ताके ऊपरि पूर्व कृष्टि तिसविषैं संक्रमण

द्रव्यतैं भईं कृष्टिनिका प्रमाणमात्र अधस्तन शीर्षके विशेष अर एक मध्यम खंड अर भईं कृष्टिनिकरि हीन सर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र उभय द्रव्यके विशेष अपने एक विशेषका अनन्तवां भागकरि दीजिए है। तहां ही बंध द्रव्यतैं एक मध्यम खंड अर बंध विशेषतैं भईं बंध कृष्टिनिकरि हीन सर्व बंध कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेष ग्रहि दीजिए। सो याके नीचैं बन्धातर कृष्टिनिविषैं दीया बंध द्रव्यतैं या विषैं दीया बंध द्रव्य अनन्तगुणा घाटि है। इहां अनन्तगुणा वा अनन्तगुणा घाटि द्रव्य कह्या ताका कारण यहु ही जो इहां दीया बंध द्रव्यतैं बन्धान्तरका द्रव्य अनन्तगुणा है। बहुरि ताके ऊपरि पूर्वोक्त प्रकार वीचि वीचि पूर्व कृष्टि होइ एक संक्रमणका अपूर्व कृष्टि होइ ऐसें एक अधिक संक्रमणका अन्तरालकरि बंधके अन्तरालका भाग दीएं जो प्रमाण आवै तितनी संक्रमणकी अपूर्व अन्तर कृष्टि होंइ तहां द्रव्य देनेका विधान पूर्वोक्त प्रकार जानना। याही प्रकार तावत् बन्धान्तर कृष्टिनिकी अंत कृष्टि होइ तावत् विधान जानना। इहां बंध द्रव्यके अन्तर कृष्टिसम्बन्धी समान खंड द्रव्य अर बंधान्तर कृष्टिविशेष द्रव्य समाप्त भया। बहुरि ताके ऊपरि पूर्वोक्त प्रकार संक्रमण द्रव्य दोय प्रकार बंध द्रव्यहीका यथायोग्य निक्षेपण हो है सो बंधकी उत्कृष्ट कृष्टिपर्यंत जानना। इहां सर्व बंध द्रव्य समाप्त भया। बहुरि ताके ऊपरि च्यारि प्रकार संक्रमण द्रव्यहीका यथायोग्य निक्षेपण हो हैं सो अंत कृष्टिपर्यंत जानना। इहां सर्व संक्रमण द्रव्य भी समाप्त भया। बहुरि जैसें लोभकी तीन संग्रह कृष्टिनिविषैं द्रव्य देनेका विधान कह्या तैसैं ही मान माया विषैं भी कहना। विशेष इतना ही—जो मानका प्रथम संग्रह कृष्टिविषैं संक्रमण द्रव्यकरि निपजा अपूर्व कृष्टिनिके वीचि अंतराल अपकर्षण भागहारका पंद्रहवां भाग मात्र है। बहुरि क्रोधकी तृतीय संग्रह कृष्टिविषैं भी लोभवत् विधान जानना। विशेष इतना ही—संक्रमकी अंतर कृष्टिनिका अंतराल इहां तृतीय संग्रह कृष्टिविषैं अपकर्षण भागहारका चौदहवां भागमात्र, द्वितीय संग्रह कृष्टिविषैं अपकर्षण भागहारका एकसौ वियासीवां भाग मात्र जानना। बहुरि लोभ मान मायाकी बध्यमान संग्रह कृष्टिनिकैं बंध रहित जे नीचैं उपरि कृष्टि तिनके वीचि संक्रमण द्रव्यकरि अपूर्व अंतर कृष्टि करिए है ऐसा जानना। बहुरि ताके ऊपरि क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टि तिसविषैं संक्रमण द्रव्यका तौ अभाव है, तातैं घात द्रव्यका एक भाग जुदा स्थाप्या था ताका तीन प्रकार द्रव्य अर बंध द्रव्यका च्यारि प्रकार द्रव्य स्थापि तहाँ अधस्तन अपूर्व कृष्टि होनेका तौ अभाव है। क्रोधकी द्वितीय संग्रह कृष्टिकी अंत कृष्टिके ऊपरि प्रथम संग्रह कृष्टिकी प्रथम पूर्व कृष्टि है तिसविषैं घात द्रव्यकी भईं पूर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र अधस्तन शीर्षके विशेष अर एक मध्यम खंड अर भईं कृष्टिनिकरि हीन सर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र उभय द्रव्यके विशेष निक्षेपण करिए है। सो यहु दीया द्रव्य क्रोधकी द्वितीय संग्रह कृष्टिकी अंत कृष्टिविषैं दीया संक्रमण द्रव्यके अनंतवे भागमात्र घटता है। बहुरि ताके ऊपरि एक एक अधस्तन शीर्ष विशेष बंधता एक एक उभय द्रव्यका विशेष घटता ऐसैं क्रमतैं द्रव्य दीजिए है। इहां विशेष इतना—

बंध होने योग्य कृष्टिकी जघन्य कृष्टि समान पूर्व कृष्टितैं लगाय कृष्टिनिविषैं उभय द्रव्यका विशेष द्रव्य अपने विशेषका अनंतवां भागमात्र घटता दीजिए है। तहां जघन्य बन्ध कृष्टिविषैं बन्ध द्रव्यका एक मध्यम खण्ड अर अपनी बन्ध कृष्टिनिका प्रमाणमात्र बन्धके विशेष दीजिए है अर ताके ऊपरि कृष्टिनिविषैं एक एक बंधका विशेष घटता क्रम करि दीजिए है। ऐसैं एक जघन्य बन्ध कृष्टिके ऊपरि सवा तीन गुणहानिमात्र कृष्टि भएं ताके ऊपरि अंतरालविषैं बध द्रव्यकरि अपूर्व अन्तर कृष्टि निपजाइए है। तहां बन्धान्तर कृष्टिसम्बन्धी समान खण्डतैं

एक खण्ड अर बन्धान्तर कृष्टिके विशेष द्रव्यतैं जेती सर्व कृष्टि होइ आईं तिनकरि हीन सर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेष अपने एक विशेषके अनंतवें भागकरि हीन सर्व अर मध्यम खण्डतैं एक खण्ड अर भईं सर्व बन्ध कृष्टिनिका प्रमाणकरि हीन सर्व बन्ध कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेष ऐसैं च्यारि प्रकार बन्ध द्रव्य ही दीजिए है। घात द्रव्य न दीजिए है। सो यहु दीया द्रव्य याके नीचली पूर्व कृष्टिविषैं दीया बन्ध द्रव्यतैं दीया अनन्तगुणा है। बहुरि ताके ऊपरि पूर्व कृष्टि तिसविषैं घात द्रव्यतैं ग्रहि पूर्वैं भईं सर्व पूर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र अधस्तन शीर्षके विशेष अर एक मध्यम खण्ड अर भईं कृष्टिनिकरि हीन सर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र उभय द्रव्यके विशेष अपने अपने विशेषका अनन्तवां भागकरि हीन निक्षेपण करै है। तहाँ ही बंध द्रव्यका एक मध्यम खण्ड अर भईं बन्ध कृष्टिनिकरि हीन बन्ध कृष्टिनिका प्रमाणमात्र बन्धविशेष निक्षेपण करिए है। सो यहु बन्ध द्रव्य बधान्तर कृष्टिका बन्ध द्रव्यतैं अनन्तगुणा घटता है। याका सर्व पूर्व द्रव्य वा दीया द्रव्य मिलि तिस बन्धान्तर कृष्टितैं उभय द्रव्यका एक विशेषमात्र घटता हो है। बहुरि ताके ऊपरि पूर्वोक्त प्रमाण पूर्व कृष्टि भएं बन्ध द्रव्यकरि एक अपूर्व कृष्टि निपजै है, तिनविषैं द्रव्यका देना पूर्वोक्त प्रकार जानना। ऐसैं बंधकी उत्कृष्ट कृष्टि पर्यन्त जानना। ताके ऊपरि कृष्टिनिविषैं घात द्रव्यहीका निक्षेपण अपनी उत्कृष्ट कृष्टिपर्यन्त हो है। ऐसैं दीयमान द्रव्यकी पंक्तिका अनुक्रम जानना। सो इहां जैसैं ऊँटकी पीठ आदि विषैं ऊँची, आगै नीची, आगैं कहीं ऊँची कहीं नीची तैसैं कहीं बहुत, कहीं स्तोक, कहीं किछू हीन, किछू अधिक द्रव्य देनेतैं अनंत जायगा उष्ट्रकूट रचना हो है, जातैं ऐसैं दीएं ही सर्व कृष्टिनिका एक गोपुच्छ होइ। ऐसैं ही यतिवृषभ मुनिका उपदेश हैं। ऐसैं दीयमान प्रदेशनिका निरूपण कीया।

बहुरि दृश्यमान कहिए पूर्वैं था वा दीया द्रव्य मिलि जैसैं भया सो लोभकी तृतीय संग्रहकी जघन्य कृष्टिविषैं बहुत द्रव्य है, तातैं क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिका घात कीए पीछैं जो उत्कृष्ट कृष्टि रही तहां पर्यंत कृष्टिके द्रव्यके अनंतवें भागमात्र जो एक एक उभय द्रव्यका विशेष तीहिंकरि घटता अनुक्रमतैं दृश्यमान द्रव्य जानना। या प्रकार जैसैं प्रथम समयविषैं दीयमान द्रव्यका निरूपण कीया तैसैं ही द्वितीयादि समयनिविषैं भी जानना। ऐसैं तात्पर्य निरूपण कीया ॥ ५३५ ॥

विशेष—जो संग्रह कृष्टियाँ हैं उनके अन्तरालमें अपकर्षित होनेवाले प्रदेशपुंजसे जो अपूर्व कृष्टियां रची जाती हैं उनके सम्बन्धमें कृष्टिकरणके समय रची जानेवाली अपूर्व कृष्टियोंकी जो विधि पहले कह आये हैं वही यहाँ जाननी चाहिये, क्योंकि दिये जानेवाले प्रदेशपुंजकी उष्ट्रकूट-रूपसे जो रचना पहले बतला आये हैं उससे इसमें भेद नहीं पाया जाता। किन्तु इनमें सामान्य रूपसे भेद नहीं हैं ऐसा समझना चाहिये। वास्तवरूपसे देखनेपर तो उसके समान यह नहीं हैं, क्योंकि उससे इसमें थोड़ा अन्तर है। जो इस प्रकार है—

कृष्टिकरणके समय पहले समयमें कृष्टिरूपसे परिणत प्रदेशपुंजसे दूसरे समयमें कृष्टियोंमें दिया जानेवाला प्रदेशपुंज असंख्यातगुणा होता है। उससे तीसरे आदि समयोंमें दिया जानेवाला प्रदेशपुंज उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा होता है। इस प्रकार विशुद्धिके माहात्म्यवश कृष्टिकरणके अन्तिम समय तक जानना चाहिये। ऐसा है ऐसा समझकर वहाँ वर्तमान समयमें रची जाने-वाली अपूर्व कृष्टियोंसम्बन्धी अन्तिम कृष्टिमें निक्षिप्त होनेवाले प्रदेशपुंजसे पूर्व समयमें की गई कृष्टियोंसम्बन्धी जघन्य कृष्टिमें सींचा जानेवाला प्रदेशपुंज असंख्यातवें भाग हीन होता है, क्योंकि

उसमें मात्र पहले अवस्थित द्रव्य परिहीन देखा जाना है। पुनः वहाँ क्रमसे असंख्यात भागहानि होती हुई पूर्व समयमें की गई संग्रह कृष्टिसम्बन्धी अन्तिम कृष्टिमें निक्षिप्त हुए प्रदेशपुंजसे वर्तमान समयमें दूसरी संग्रह कृष्टिके नीचे की जानेवाली अपूर्व कृष्टिमें दिया जानेवाला प्रदेशपुंज असंख्यातवें भाग अधिक होता है। पुनः शेष कृष्टियोंमें उत्तरोत्तर अनन्तवें भागहीन ही प्राप्त होता है। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिये। दृश्यमान प्रदेशपुंज तो सर्वत्र अनन्तवें भाग हीन ही प्राप्त होता है। इस प्रकार यह क्रम कृष्टिकरणके कालके भीतर दूसरे समयसे लेकर इसके ही अन्तिम समय तक कहना चाहिये।

परन्तु कृष्टिवेदकके कालके भीतर यह विधि नहीं होती, क्योंकि कृष्टिवेदक कालके भीतर अपूर्व कृष्टियोंमें दिया जानेवाला प्रदेशपुंज।पूर्व कृष्टियोंके प्रदेशपिंडके असंख्यातवें भागमात्र ही है, इसलिये कृष्टिवेदक कालके भीतर प्रथम समयमें रची जानेवालीं अपूर्व कृष्टियोंकी अन्तिम कृष्टिमें प्राप्त हुए प्रदेशपुंजसे पूर्व कृष्टियोंकी प्रथम जघन्य कृष्टिमें प्राप्त होनेवाला प्रदेशपुंज असंख्यातगुणा हीन होता है, अन्यथा पूर्व और अपूर्व कृष्टिकी सन्धियोंमें एक गोपुच्छपना नहीं वन सकता है। इसलिए इस प्रकारका विशेष सम्भव है यह दिखलानेके लिये यहाँ श्रेणिकी प्ररूपणा करते हैं। यथा—पूर्वानुपूर्वीकी अपेक्षा लोभकी जो प्रथम संग्रह कृष्टि है उसके नीचे प्रथम समयमें कृष्टिवेदक जीव अपकर्षित होनेवाले प्रदेशपुंजसे अपूर्व कृष्टियोंकी रचना करते हुए सर्वप्रथम जो जघन्य कृष्टि प्राप्त होती है उसमें बहुत प्रदेशपुंज देता है। उसके बाद अपूर्व कृष्टियोंसम्बंधी अन्तिम कृष्टिके प्राप्त होनेतक उत्तरोत्तर अनन्तवें भागहीन प्रदेशपुंज देता है। तदनन्तर अपूर्व कृष्टियोंसम्बन्धी अन्तिम कृष्टिमें प्राप्त हुए प्रदेशपुपुंजसे लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टियोंसम्बन्धी पूर्व कृष्टियोंमें जो जघन्य कृष्टि है उसमें असंख्यातगुणा हीन द्रव्य देता है। उससे दूसरी पूर्व कृष्टिमें अनन्तवाँ भागहीन द्रव्य देता है। इस प्रकार प्रथम संग्रह कृष्टिकी अन्तिम कृष्टि तक जानना चाहिये।

पुनः उस संग्रह कृष्टिकी अन्तिम कृष्टिमें दिये गये प्रदेशपुंजसे दूसरी संग्रह कृष्टिके नीचे रची जानेवाली अपूर्व कृष्टिकी जघन्य कृष्टिमें असंख्यातगुणा प्रदेशपुंज देता है। उसके बाद अपूर्व कृष्टियोंसम्बन्धी अन्तिम कृष्टिके प्राप्त होने तक सर्वत्र अनन्त भागहीन द्रव्य देता है।

पुनः अपूर्व अन्तिम कृष्टिमें निक्षिप्त प्रदेशपुंजसे दूसरी संग्रहकृष्टिसे पूर्वमें रचित अन्तर कृष्टियोंकी जो जघन्य कृष्टि है उसमें असंख्यातगुणा प्रदेशपुंज देता है। उससे ऊपर प्रदेशपुंज अनन्त भागहीन होकर जाता है। इतनी विशेषता है कि कृष्टि-अन्तरोंमें प्रदेशविन्यासमें फरक जानना चाहिये। इस प्रकार यह विधि आगे भी जानकर कहनी चाहिये। इस प्रकार कृष्टिवेदकके द्वितीयादि समयोंमें भी इस निषेक प्ररूपणाको जानना चाहिये।

कोहादिकिट्टिवेदगपढमे तस्स य असंखभागं तु।
णासेदि हु पडिसमयं तस्सासंखेज्जभागकमं[1] ॥ ५३६ ॥

---

१. पढमसमयकिट्टीवेदगस्स जा कोहपढमसंगहकिट्टी तिस्से असंखेज्जदिभागो विणासिज्जदि। किट्टी जाओ पढमसमये विणासिज्जंति ताओ बहुगीओ। जाओ विदियसमये विणासिज्जंति ताओ असंखेज्जदि-हीणाओ। एवं ताव दुचरिमसमयअविणट्ठकोहपढमसंगहकिट्टि त्ति। क. चु. पृ. ८५४-८५५।

क्रोधादिकृष्टिवेदकप्रथमे तस्य च असंख्यभागं तु।
नाशयति हि प्रतिसमयं तस्यासंख्यभागक्रमम् ॥ ५३६ ॥

स० चं०—क्रोधकी प्रथम सग्रह कृष्टिका वेदक जीव है सो प्रथम समयविषें सर्व कृष्टिनिका असंख्यातवां भागमात्र कृष्टिनिकों नास है-घात करै है। बहुरि द्वितीय समयविषै ताके असंख्यातवें भागमात्र कृष्टिनिका घात करै है। ऐसैं ही क्रमतैं समय समय प्रति असंख्यातवाँ भागमात्र क्रमकरि घात कृष्टिनिका प्रमाण क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिका द्विचरम समयपर्यंत जानना, जातैं अन्त समयविषैं नवक बंध अर उच्छिष्टावली विना विवक्षित संग्रह कृष्टिकी सर्व ही कृष्टिनिका अभाव हो है ॥ ५३६ ॥

विशेष—विशुद्धिके माहात्म्यवश अनुसमय अपवर्तनाके द्वारा विवक्षित संग्रह कृष्टिकी अग्र कृष्टिसे लेकर असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियोंको नष्ट करता है। ये प्रथम समयमें नष्ट होनेवाली कृष्टियाँ द्वितीयादि समयोंमें नष्ट होनेवाली कृष्टियोंकी अपेक्षा बहुत होती हैं। जो दूसरे समयमें नष्ट होती हैं वे असंख्यातगुणी हीन होती हैं। अपनी कृष्टियोंके वेदक कालके भीतर द्विचरम समयके प्राप्त होने तक अनुसमय अपवर्तनाके द्वारा उक्त कृष्टियोंका इसी प्रकार विनाश होता जाता है। किन्तु अन्तिम समयमें नवक बन्ध तथा उच्छिष्टावलिको छोड़ कर नष्ट नहीं हुई क्रोधसम्बन्धी प्रथम संग्रह कृष्टियोंका अनुत्पादानुच्छेदरूपसे विनाश देखा जाता है।

कोहस्स य जे पढमे संगहकिट्टिम्हि णट्ठकिट्टीओ।
बंधुज्झियकिट्टीणं तस्स असंखेज्जभागो हु[1] ॥ ५३७ ॥

क्रोधस्य च याः प्रथमे संग्रहकृष्टौ नष्टकृष्टयः।
बंधोज्झितकृष्टीनां तस्यासंख्येयभागो हि ॥ ५३७ ॥

स० चं०—क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टि वेदकका सर्व कालविषै जे नष्ट कृष्टि भई, जिनि कृष्टिनिका घात कीया तिनिका प्रमाण कृष्टि वेदकका प्रथम समयविषैं क्रोधका प्रथम संग्रह कृष्टि-विषैं जो ऊपरिकी बंधरहित कृष्टिनिका पूर्वें प्रमाण कह्या था ताके असंख्यातवें भागमात्र जानना ॥ ५३७ ॥

विशेष—अब कृष्टिवेदकके प्रथम समयसे लेकर विवक्षित प्रथम संग्रहकृष्टिके विनाशकालके द्विचरम समय तक विनाश होनेवाली कृष्टियाँ सब मिलकर कितनी हैं इसी बातको स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि वे उपरिम बन्ध रहित कृष्टियोंके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। यहाँ प्रथम समयमें कृष्टिवेदकके क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिसम्बन्धी अधस्तन और उपरिम असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियोंकी बन्ध रहित कृष्टियाँ संज्ञा है। प्रकृतमें क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिकी अपेक्षा जो कृष्टियोंके विनाशका क्रम कहा है उसी प्रकार शेष संग्रह कृष्टियोंके विषयमें भी जानना चाहिये।

कोहादिकिट्टियादिट्ठिदिम्हि समयाहियावलीसेसे।
ताहे जहण्णुदीरइ चरिमो पुण वेदगो तस्स[2] ॥ ५३८ ॥

---

१. एदेण सव्वेण तिचरिमसमयमेत्तीओ सव्वकिट्टीसु पढम-विदियसमयवेदगस्स कोधस्स पढमकिट्टीए अबज्झमाणियाणं किट्टीणमसंखेज्जदिभागो। क. चु. पृ. ८५५।

२. कोहस्स पढमकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए समयाहियाए आवलियाए

क्रोधादिकृष्टिकादिस्थितौ समयाधिकावलीशेषे ।
तत्र जघन्यमुदीरयति चरमः पुनर्वेदकस्तस्य ॥ ५३८ ॥

स० चं—क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिकी प्रथम स्थितिविषैं समय अधिक आवली अवशेष रहैं तहां जघन्य स्थितिकी उदीरणा करनेवाला हो है। जो आवलीके उपरि एक समय है तिस सम्बन्धी निषेककौं अपकर्षणकरि उदयावलीबिषैं निक्षेपण करै है। बहुरि तहां ही क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिवेदकका अन्त समयविषै हो है ॥ ५३८ ॥

ताहे संजलणाणं बंधो अंतोमुहुत्तपरिहीणो ।
सत्तो वि य सददिवसा अडमासब्भहियछव्वरिसा ॥ ५३९ ॥

तत्र संज्वलनानां बंधोऽन्तर्मुहूर्तपरिहीनः ।
सत्त्वमपि च शतदिवसा अष्टमासाभ्यधिकषड्वर्षाः ॥ ५३९ ॥

स० चं- तहां संज्वलनचतुष्कका स्थितिबंध अन्तर्मुहूर्त घाटि शत दिवस कहिए सौ दिन ताका तीन महीना अर दश दिन है। पहले समय च्यारि मास था सो संख्यात स्थिति बंधापसरणनिकरि घटि इहां इतना रह्या। क्रोधकी तीनौं संग्रह कृष्टिनिका वेदक कालविषैं जो दोय मास घटै तौ एक संग्रहकृष्टि वेदक कालविषैं कितना घटै ऐसैं त्रैराशिकतैं स्थितिबंध घटनेका प्रमाण पूर्वोक्त आया है। बहुरि तहां संज्वलन चतुष्कका स्थितिसत्त्व अन्तर्मुहूर्त घाटि आठ महीना अधिक छह वर्ष है। प्रथम समय आठ वर्ष था सो घटिकरि इहां इतना रह्या। क्रोधकी तीनौं संग्रह कृष्टिनिका वेदक कालविषैं जो च्यारि वर्ष घटै तौ एक संग्रह कृष्टि वेदक कालविषैं कितना घटै ऐसैं त्रैराशिकतैं स्थिति सत्त्व घटनेका प्रमाण पूर्वोक्त आवै है ॥ ५३९ ॥

घादितियाणं बंधो दसवासंतोमुहुत्तपरिहीणा ।
सत्तं संखं वस्सा सेसाणं संखऽसंखवस्साणि ॥ ५४० ॥

घातित्रयाणां बंधो दशवर्षा दशवर्षा अंतर्मुहूर्तपरिहीनाः ।
सत्त्वं संख्यं वर्षाः शेषाणां संख्यासंख्यवर्षाः ॥ ५४० ॥

स० चं—घाति कर्मनिका स्थितिबंध अन्तर्मुहूर्त घाटि दश वर्षमात्र है। प्रथम समय विषैं संख्यात हजार वर्षमात्र था सो इहां संख्यातगुणा क्रमतैं घटि इतना रह्या। बहुरि घातिकर्मनिका

सेसाए एदम्हि समये जो विही तं विहिं वत्तइस्सामो। तं जहा—ताधे चेव कोहस्स जहण्णगो ट्ठिदिउदीरगो। कोहपढमकिट्टीए चरिमसमयवेदगो जादो। जा पुव्वपवत्ता संजलणाणुभागसंतकम्मस्स अणुसमयमोहट्टणा सा तहा चेव। क. चु. पृ. ८५५।

१. चदुसंजलणाणं ट्ठिदिबंधो वे मासा चत्तालीसं च दिवसा अंतोमुहुत्तूणा। संजलणाणं ट्ठिदिसंतकम्मं छ वस्साणि अट्ठ च मासा अंतोमुहुत्तूणा। क. चु. पृ. ८५५।

२. तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिबंधो दस वस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि। घादिकम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्साणि। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्साणि। क. चु. पृ. ८५५।

स्थितिसत्त्व संख्यात हजार वर्षमात्र है। पूर्वैं संख्यात हजार वर्षमात्र था सो संख्यात हजार स्थिति कांडकनिकरि संख्यातगुणा घटता क्रम लीएं घट्या तथापि आलापकरि संख्यात हजार वर्षमात्र ही रह्या। बहुरि अघाति कर्मनिका स्थितिबंध संख्यात हजार वर्षमात्र है। इहां भी पूर्ववत् तात्पर्य जानना। बहुरि आयु बिना तीन अघातियानिका स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्षमात्र है। यद्यपि पूर्वतैं असंख्यातगुणा घटता क्रमकरि घट्या तथापि आलापकरि इतना ही रह्या। ऐसैं क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिवेदकका निरूपण किया ॥ ५४० ॥

से काले कोहस्स य विदियादो संगहादु पढमठिदी।
कोहस्स विदियसंगहकिट्टिस्स य वेदगो होदि[1] ॥ ५४१ ॥

स्वे काले क्रोधस्य च द्वितीयतः संग्रहात् प्रथमस्थितिः।
क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकृष्टेश्च वेदको भवति ॥ ५४१ ॥

स० चं०—क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिवेदकका अनन्तर समयरूप अपने कालविषैं क्रोधकी द्वितीय संग्रह कृष्टितैं प्रदेश समूहका अपकर्षण करि उदयादि गुणश्रेणिरूप प्रथम स्थिति करै है। ताका प्रमाण क्रोधकी द्वितीय संग्रह कृष्टिका वेदक कालतैं आवलीमात्र अधिक है। याके प्रथमादि समयनिविषैं असंख्यातगुणा क्रम लीएं अपकर्षण कीया हुआ द्रव्य दीजिए है। बहुरि तहां ही क्रोधकी द्वितीय संग्रह कृष्टिका वेदक हो है ॥५४१॥

कोहस्स पढमसंगहकिट्टिस्सावलिपमाण पढमठिदी।
दोसमऊणदुआवलिणवकं च वि चउउदे ताहे[2] ॥५४२॥

क्रोधस्य प्रथमसंग्रहकृष्टेरावलिप्रमाणं प्रथमस्थितिः।
द्विसमयोनद्व्यावलिनवकं चापि चतुर्दश तत्र ॥५४२॥

स० चं०—तिस समयविषैं क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिकी प्रथम स्थितिविषैं उच्छिष्टावलीमात्र निषेक अर द्वितीय स्थितिविषैं दोय समय घाटि दोय आवलीमात्र नवक समयप्रबद्धरूप निषेक अवशेष सत्त्वरूप रहैं हैं। इन विना क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिका अन्य सर्व प्रदेश क्रोधकी द्वितीय संग्रह कृष्टिके नीचैं अनन्तगुणा घटता अनुभागरूप होइ ताकी अपूर्व कृष्टि होइ परिणमै है। तब ही अन्य संग्रह कृष्टिनिविषैं भी यथासंभव संक्रमण हो है। तीहिं कालविषैं क्रोधकी द्वितीय संग्रह कृष्टिका द्रव्य चौदहगुणा हो है। एकगुणा आयका था तातैं तेरहगुणा प्रथम संग्रहका आया, मिलि चौदह गुणा भया ॥५४२॥

पढमादिसंगहाणं चरिमे फालिं तु विदियपहुदीणं।
हेट्ठा सव्वं देदि हु मज्झे पुव्वं व इगिभागं[3] ॥५४३॥

१. से काले कोहस्स विदियट्ठिदीए पदेसग्गमोकड्डियूण कोहस्स पढमट्ठिदिं करेदि। ....ताहे कोहस्स विदियकिट्टीवेदगो। आदि, क. चु. पृ. ८५५-८५६।

२. ताधे कोधस्स पढमसंगहकिट्टीए संतकम्मं दो आवलियबंधा दुसमयूणा सेसा। जं च उदयावलियं पविट्ठं ते च सेसं पढमकिट्टीए। क. चु. पृ. ८५६।

३. जो कोहस्स पढमकिट्टि वेदयमाणस्स विधी सो चेव कोहस्स विदियकिट्टि वेदयमाणस्स विधी कायव्वो। क. चु. पृ. ८५६।

प्रथमादिसंग्रहाणां चरमे फालिं तु द्वितीयप्रभृतीनाम् ।
अधस्तनं सर्वं ददाति हि मध्ये पूर्वमिव एकभागम् ॥५४३॥

स० चं०—प्रथमादि संग्रह कृष्टिनिका अंत समयविषैं जो संक्रमण द्रव्यरूप फालि ताहि द्वितीयादि संग्रह कृष्टिनिके नीचैं सर्व देहै अर मध्यविषै पूर्ववत् एक भागकौं देहै। भावार्थ—जिस संग्रहकृष्टिकौं भोगवै है ताका नवक समयप्रबद्ध बिना सर्व द्रव्य सो सर्व संक्रमणरूप है। जो उच्छिष्टावली सो ही अन्त फालि है। ताकौं अनन्तर समयविषैं याके अनन्तर जो संग्रह कृष्टि भोगिए ताके नीचैं अर वीचिमैं अपूर्व कृष्टिरूप परिणमावै है। तहां तिह संग्रह कृष्टिकी अवयव कृष्टिनिके बीचि जे अपूर्व कृष्टि करिए है ते पूर्ववत् अंत समयविषै अपने द्रव्यका असंख्यातवां भागमात्र द्रव्यकरि निपजाइए है। बहुरि अवशेष सर्व द्रव्यकरि तिस संग्रहकृष्टिके अनन्तरि द्वितीय संग्रह कृष्टि भोगिए है सो इहां भी ऐसा ही विधान जानना। इहां प्रश्न—

जो पूर्वै कृष्टिवेदकका प्रथम समयका व्याख्यानविषैं नीचैं करी कृष्टिनिका प्रमाणतैं वीचिकरी कृष्टिनिका प्रमाण असंख्यातगुणा कह्या था, इहां वीचिकरी कृष्टिनिविषैं दीया द्रव्यतैं नीचैं करी कृष्टिनिविषै दीया द्रव्य असंख्यातगुणा कह्या तातैं विरुद्ध आवै है ? ताका समाधान—तहां तौ संग्रहकृष्टिके द्रव्यका असंख्यातवां भागमात्र द्रव्य ग्रह्या था ताका विधान कह्या था, इहां सर्व संग्रह कृष्टिके द्रव्यकी अपेक्षा वर्णन है, तातैं इहां ऐसा विधान जानना। बहुरि जो इहां भी पूर्ववत् विधान करिए तौ अन्तर कृष्टिनिके वीचि नवीन कृष्टि बहुत निपजैं, सर्व अवयव कृष्टिनिके वीचि वीचि अपूर्व कृष्टि होंइ तब पूर्व कृष्टिविषै दीया द्रव्यतैं असंख्यातगुणा घटता द्रव्य जो कृष्टिविषैं दीया तातैं अनंतरवर्ती कृष्टिनिविषैं दीया द्रव्य असंख्यातगुणा होइ सो ऐसैं द्रव्य देना। सूत्रविषैं नाहीं कह्या है, तातैं इहां विधान कह्या है सोई अंगीकार करना ॥५४३॥

कोहस्स विदियकिट्टीवेदयमाणस्स पढमकिट्टिं वा ।
उदओ बंधो णासो अपुव्वकिट्टीण करणं च ॥ ५४४ ॥

क्रोधस्य द्वितीयकृष्टिवेदकस्य प्रथमकृष्टिरिव ।
उदयो बंधो नाशः अपूर्वकृष्टीनां करणं च ॥ ५४४ ॥

स० चं—क्रोधको द्वितीय संग्रहकृष्टिका वेदककैं कृष्टिनिका उदय अर बंध अर घात अर संक्रमण द्रव्यकरि वा बध द्रव्यकरि अपूर्व कृष्टिका करना इत्यादि विधान जैसैं प्रथम संग्रह कृष्टिका कह्या तैसैं ही समस्त कहना ॥ ५४४ ॥

कोहस्स विदियसंगहकिट्टी वेदंतयस्स संकमणं ।
सट्ठाणे तदियो त्ति य तदणंतरहेट्ठिमस्स पढमं च ॥ ५४५ ॥

क्रोधस्य द्वितीयसंग्रहकृष्टिवेद्यमानस्य संक्रमणं ।
स्वस्थाने तृतीयांतं च तदनंतरमधस्तनस्य प्रथमं च ॥ ५४५ ॥

---

१. उदिण्णाणं किट्टीणं वज्झमाणीणं किट्टीणं विणासिज्जमाणीणं अपुव्वाणं णिव्वत्तिज्जमाणीणं वज्झमाणेण च पदेसग्गेण संछुब्भमाणेण च पदेसग्गेण णिव्वत्तिज्जमाणियाणं। क० चु० पृ० ८५६।

२. क० चु० पृ० ८५६।

स० चं०—क्रोधकी द्वितीय संग्रह कृष्टिका वेदककैं स्वस्थान कहिए विवक्षित कषाय ही विषैं संक्रमण तौ तीसरी संग्रह कृष्टिपर्यंत होइ अर परस्थान कहिए अन्य कषायविषैं संक्रमण सो आयके नीचैं जो कषाय ताकी प्रथम संग्रह कृष्टिविषैं होइ ॥ ५४५ ॥ सोई कहिए है—

पढमो विदिये तदिये हेट्ठिमपढमे च विदियगो तदिये ।
हेट्ठिमपढमे तदियो हेट्ठिमपढमे च संकमदि[1] ॥ ५४६ ॥

प्रथमो द्वितीये तृतीये अधस्तनप्रथमे च द्वितीयकस्तृतीये ।
अधस्तनप्रथमे तृतीयोऽधस्तनप्रथमे च संक्रामति ॥ ५४६ ॥

स० चं०—विवक्षित कषायकी पहली संग्रह कृष्टिका द्रव्य तौ अपनी दूसरी तीसरी अर नीचली कषायकी पहली संग्रहकृष्टिविषैं संक्रमण करै है अर दूसरी संग्रहकृष्टिका द्रव्य अपनी तीसरी अर नीचली कषायकी पहली संग्रह कृष्टिविषैं संक्रमण करै है। अर तीसरी संग्रह कृष्टिका द्रव्य नीचली कषायकी पहली संग्रहकृष्टिविषैं ही संक्रमण करै है। इहां वेदक अपेक्षा जाकौं भोगवै है ताके पीछे जाको भोगवै ताकौं नीचली कषाय कह्या है सो क्रोधकी द्वितीय संग्रहकृष्टितैं प्रदेश समूह है सो क्रोधकी तीसरी मानकी पहली संग्रहकृष्टिविषैं संक्रमण करै है। अर क्रोधकी तीसरी संग्रहकृष्टिका द्रव्यतैं मानकी पहली ही विषैं संक्रमण करै है। अर मानकी पहलीका द्रव्य मानकी दूसरी तीसरी मायाकी पहलीविषै संक्रमण करैं है। अर मानकी दूसरीका द्रव्य मानकी तीसरी मायाकी पहलीविषैं संक्रमण करैं है। अर मानकी तीसरीका द्रव्य मायाकी लोभकी पहिलीविषै संक्रमण करै है। अर गायाकी पहलीका द्रव्य मायाकी दूसरी तीसरी लोभकी पहली विषै संक्रमण करैं है। अर मायाकी दूसरीका द्रव्य मायाकी तीसरी लोभकी पहलीविषै संक्रमण करै है। अर मायाकी तीसरीका द्रव्य लोभकी पहलीविषैं संक्रमण करै है। अर लोभकी पहलीका द्रव्य लोभकी दूसरी तीसरीविषैं संक्रमण करैं है। अर लोभकी दूसरीका द्रव्य लोभकी तीसरीविषैं संक्रमण होइ प्रवेश करै है। इहां स्वस्थानविषैं तौ विवक्षित संग्रहके द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीएं तहां एक भागमात्र अपनी अन्य संग्रह कृष्टिविषैं संक्रमण करै है। अर परस्थानविषैं तिसहीकौं अधःप्रवृत्त भागहारका भाग दीएं एक भागमात्र द्रव्य अन्य कषायकी प्रथम संग्रह कृष्टिविषैं संक्रमण करै है ऐसा विशेष जानना ॥ ५४६ ॥

कोहस्स पढमकिट्टी सुण्णो त्ति ण तस्स अत्थि संकमणं ।
लोभंतिमकिट्टिस्स य णत्थि पडित्थावणूणादो ॥५४७॥

क्रोधस्य प्रथमकृष्टिः शून्या इति न तस्या अस्ति संक्रमणं ।
लोभांतिमकृष्टेश्च नास्ति प्रतिस्थापनमूनतः ॥५४७॥

स० चं०—इहां क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टि तौ शून्य भई—नास्ति भई, तातैं ताकैं संक्रमण नाहीं अर लोभकी तृतीय संग्रहकृष्टिका भी संक्रमण नाहीं, जातैं प्रतिलोम जो उलटा संक्रमण ताका अभाव है। ऐसैं दोय विना अवशेष दश संग्रहकृष्टिनिका संक्रमण कीया। तहां भोगवनेरूप द्वितीय संग्रहकृष्टिविषैं आय द्रव्यका अभाव है। तहां घात द्रव्यहीका पूर्व कृष्टिनिविषैं देना पूर्वोक्त

१. क. चु. पृ. ८५६।

प्रकार हो है। बहुरि लोभको तृतीय संग्रहकृष्टिविषैं व्यय द्रव्य नाहीं, परन्तु आय द्रव्य है, तातैं दश संग्रहकृष्टिनिविषैं संक्रमण द्रव्यका पूर्व अपूर्वकृष्टिनिविषैं देना पूर्वोक्त प्रकार हो है। ऐसा जानना ॥५४७॥

जस्स कसायस्स जं किट्टिं वेदयदि तस्स तं चेव।
सेसाणं कसायाणं पढमं किट्टिं तु बंधदि हु[1] ॥५४८॥

यस्य कषायस्य यां कृष्टिं वेदयति तस्य तां चैव।
शेषाणां कषायाणां प्रथमां कृष्टिं बध्नाति हि ॥५४८॥

स० चं०—जिस कषायकी जिस संग्रहकृष्टिकौं वेदै भोगवै है तिस कषायकी तौ तिस ही संग्रहकृष्टिकौं बांधै है। बहुरि अन्य कषायनिकी प्रथम संग्रहकृष्टिकौं बांधै है ऐसी व्याप्ति है। तातैं बंध द्रव्यका विधान च्यारि ही संग्रहकृष्टिनिविषैं जानना सो इहां क्रोधकी द्वितीय संग्रह-कृष्टिकौं अर अन्य कषायनिकी प्रथम संग्रहकृष्टिकौं बांधै है ॥५४८॥

माणतिय कोहतदिये मायालोहस्स तियतिये अहिया।
संखगुणं वेदिज्जे अन्तरकिट्टी पदेसो य[2] ॥५४९॥

मानत्रयं क्रोधतृतीये मायालोभस्य त्रिकत्रिके अधिका।
संख्यगुणं वेद्यमाने अन्तरकृष्टिः प्रदेशश्च ॥५४९॥

स० चं०—इहां संग्रहकृष्टिनिविषैं अवयव कृष्टिनिका वा द्रव्यका अल्पबहुत्व कहिए है, सो मानकी तीन अर क्रोधकी एक तीसरी हो अर माया लोभकी तीन तीन इन संग्रह कृष्टिनिविषैं तौ विशेष अधिक अर वेद्यमान क्रोधकी दूसरी कृष्टिविषै संख्यातगुणा कृष्टिनिका वा प्रदेशनिका प्रमाण क्रमतैं है। सोई कहिए है—

मानकी प्रथम संग्रहकृष्टिका स्तोक, तातैं मानकी दूसरीका, तातैं मानकी तीसरीका, तातैं क्रोधकी तीसरीका, तातैं मायाकी प्रथमका, तातैं मायाकी दूसरीका, तातैं मायाकी तीसरीका, तातैं लोभकी प्रथमका, तातैं लोभकी दूसरीका, तातैं लोभकी तीसरीका, अवयव कृष्टिनिका प्रमाण क्रमतैं विशेषकरि अधिक है। तहां विशेषका प्रमाण स्वस्थानविषै तौ पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएं आवै है। जैसैं मानकी प्रथम संग्रह कृष्टिकी अवयव कृष्टिनिका प्रमाणतैं याहीकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएं जो एक भागमात्र विशेष ताकरि अधिक मानकी द्वितीय संग्रहकृष्टिकी अवयव कृष्टिनिका प्रमाण हो है। ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि परस्थानविषैं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं विशेषका प्रमाण आवै है। जैसैं मानकी तीसरी संग्रह-कृष्टिकी अवयव कृष्टिप्रमाण क्रमतैं याहीकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं एक भागमात्र विशेषकरि अधिक क्रोधकी तृतीय संग्रहकृष्टिकी अवयव कृष्टिनिका प्रमाण हो है। ऐसैं

---

१. चदुण्हं कसायाणं जस्स जं किट्टिं वेदयदि तस्स कसायस्स तं किट्टिं बंधदि, सेसाणं कसायाणं पढमकिट्टीओ बंधदि। क. चु. पृ. ८५७।

२. क. चु. पृ. ८५७–८५८।

ही अन्यत्र जानना। बहुरि क्रोधकी द्वितीय संग्रहकृष्टिकी[1] अवयव कृष्टिनिका प्रमाण संख्यातगुणा है सो चौदह गुणा जानना। ऐसैं अवयव कृष्टिनिके प्रमाणका अल्पबहुत्व कह्या। याही प्रकार प्रदेश जे इन संग्रह कृष्टिनिके परमाणू तिनके प्रमाणका भी अल्पबहुत्व जानना, जातैं बंध द्रव्य संक्रमण द्रव्य मिलि ऐसा क्रम हो है। बहुरि इस द्रव्य ही के अनुसारि कृष्टिनिका भी अल्पबहुत्व जानना। जातैं थोडे द्रव्यकरि थोरी, बहुत द्रव्यकरि बहुत कृष्टि निपजै है ॥ ५४९ ॥

वेदिज्जादिट्ठिदीए समयाहियआवलीयपरिसेसे।
ताहे जहण्णुदीरणचरिमो पुण वेदगो तस्स[2] ॥ ५५० ॥

वेद्यमानादिस्थितौ समयाधिकावलिकपरिशेषे।
तत्र जघन्योदीरणचरमः पुनः वेदकस्तस्य ॥ ५५० ॥

स० चं०—जिस संग्रह कृष्टिकौं वेदै है तिसकी प्रथम स्थितिविषैं दोय आवली अवशेष रहैं तौ आगाल प्रत्यागालका नाश हो है। बहुरि समय अधिक आवली अवशेष रहैं जघन्य स्थिति जो उदयावलीतैं ऊपरि एक निषेक ताका उदीरक कहिए उदयावलीविषैं देनेरूप उदीर्णा करनेवाला हो है। तहां ही तिसके वेदककालका अंत समय हो है सो इहां क्रोधकी द्वितीय संग्रह कृष्टिकी प्रथम स्थितिविषैं समय अधिक आवली अवशेष रहैं जघन्य स्थितिका उदीरक अर ताके वेदकका अंत समय भया ॥ ५५० ॥

ताहे संजलणाणं बंधो अंतोमुहुत्तपरिहीणो।
सत्तो वि य दिणसीदी चउमासब्भहियपणवस्सा[3] ॥ ५५१ ॥

तत्र संज्वलनानां बंधो अंतर्मुहूर्तपरिहीनः।
सत्त्वमपि च दिनाशीतिः चतुर्मासाभ्यधिकपंचवर्षाः ॥ ५५१ ॥

स० चं०—तहां संज्वलनचतुष्कका स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त घाटि असी दिन ताका दोय मास अर बीस दिनमात्र है। अर तिनका सत्त्व अंतर्मुहूर्त घाटि च्यारि मास अधिक पंच वर्षमात्र है। इहां भी पूर्ववत् निरूपण जानना ॥ ५५१ ॥

घादितियाणं बंधो वासपुधत्तं तु सेसपयडीणं।
वस्साणं संखेज्जसहस्साणि हवंति णियमेण ॥ ५५२ ॥

---

१. टीकामें बहुरि लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिकी ऐसा पाठ है मु०।

२. तिस्से चेव पढमट्ठिदीए समयाहियाए आवलियाए सेसाए ताहे कोहस्स विदियकिट्टीए चरिमसमयवेदगो। क. चु. पृ. ८५८।

३. ताधे संजलणाणं ट्ठिदिबंधो वे मासा वीसं च दिविसा देसूणा। संजलणाणं ट्ठिदिसंतकम्मं पंच वस्साणि चत्तारि मासा अंतोमुहुत्तूणा। क. चु. पृ. ८५८।

४. तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो वासपुधत्तं। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। क. चु. पृ. ८५८।

घातित्रयाणां बंधो वर्षपृथक्त्वं तु शेषप्रकृतीनाम् ।
वर्षाणां संख्येयसहस्राणि भवंति नियमेन ॥ ५५२ ॥

स० चं०—तीन घातियनिका स्थितिबंध पृथक्त्व वर्षमात्र है। तीनके ऊपरि यथायोग्य पृथक्त्व संज्ञा जाननी। बहुरि अवशेष अघातियानिका स्थितिबंध संख्यातक हजार वर्षमात्र है नियमकरि ॥ ५५२ ॥

घादितियाणं सत्तं संखसहस्साणि होंति वस्साणं ।
तिण्हं पि अघादीणं वस्साणि असंखमेत्ताणि[1] ॥ ५५३ ॥

घातित्रयाणां सत्त्वं संख्यसहस्राणि भवंति वर्षाणां ।
त्रयाणामपि अघातिनां वर्षा असंख्यमात्राः ॥ ५५३ ॥

स० चं०—तीन घातियानिका स्थितिसत्त्व संख्यात हजार वर्षमात्र है। आयु बिना तीन अघातियानिका स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्षमात्र है ॥ ५५३ ॥

से काले कोहस्स य तदियादो संगहादु पढमठिदी[2] ।
अंते संजलणाणं बंधं सत्तं दुमास चउवस्सा ॥ ५५४ ॥

स्वे काले क्रोधस्य च तृतीयतः संग्रहात् प्रथमस्थितिः ।
अंते संजलनानां बंधं सत्त्वं द्विमासं चतुर्वर्षाः ॥ ५५४ ॥

स० चं—ताके अनंतरि अपने कालविषैं क्रोधकी तृतीय संग्रह कृष्टिका वेदक हो है। तहां याका द्रव्य एकगुणा था अर यातैं चौदहगुणा द्वितीय संग्रहका उच्छिष्टावली नवक समयप्रबद्ध बिना द्रव्य मिलनेतैं पंद्रहगुणा हो है। तिस द्रव्यतैं तिसके वेदकका कालतैं आवलीमात्र अधिक प्रथम स्थिति करै है। तहां वर्णन क्रोधकी द्वितीय संग्रहकृष्टि वेदकवत् जानना। तहां अंत समय विषैं संज्वलन चतुष्कका स्थितिबंध दोय मास अर स्थितिसत्त्व च्यारि वर्षमात्र जानना। अवशेष कर्मनिका पूर्ववत् आलाप है ॥ ५५४ ॥

से काले माणस्स य पढमादो संगहादु पढमठिदी ।
माणोदयअद्धाये तिभागमेत्ता हु पढमठिदी[3] ॥ ५५५ ॥

स्वे काले मानस्य च प्रथमात् संग्रहात् प्रथमस्थितिः ।
मानोदयाद्धायाः त्रिभागमात्रा हि प्रथमस्थितिः ॥ ५५५ ॥

---

१. तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। णामा-गोद-वेदणीयाणं ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्साणि। क. चु. पृ. ८५८।

२. तदो से काले कोहस्स तदियकिट्टीदो पदेसग्गमोकड्डियूण पढमट्ठिदिं करेदि।..... ....ताधे ठिदिबंधो संजलणाणं दो मासा पडिपुण्णा, संतकम्मं चत्तारि वस्साणि। क. चु. पृ. ८५८।

३. से काले माणस्स पढमकिट्टिमोकड्डियूण पढमट्ठिदिं करेदि। जा एत्थ माणवेदगद्धा तिस्से वेदगद्धाए तिभागमेत्ता पढमट्ठिदी। क. चु. ८५९।

स० चं०--क्रोध वेदकके अनंतरि अपने काल विषै मानकी प्रथम संग्रह कृष्टिका द्रव्य एकगुणा था अर पंद्रहगुणा क्रोधकी तृतीय संग्रह कृष्टिका द्रव्य मिल्या सो मिलिकरि सोलहगुणा भया। ताकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीएं एक भागमात्र द्रव्य ग्रहि गुणश्रेणिरूप प्रथम स्थिति करै है। सो क्रोधवेदक कालतैं किछू घाटि जो मानका वेदककाल ताका तीसरा भाग आवलीकरि अधिक तिस प्रथमस्थितिका प्रमाण है। तहाँ मानकी प्रथम संग्रह कृष्टिका वेदक हो है ।।५५५।।

कोहपढमं व माणो[1] चरिमे अंतोमुहुत्तपरिहीणो।
दिणमासपण्णचत्तं बंधं संतं तिसंजलणगाणं[2] ।।५५६।।

क्रोधप्रथमं व मानः चरमे अंतर्मुहूर्तपरिहीनः।
दिनमासपंचाशच्चत्वारिंशत् बंधः सत्त्वं त्रिसंज्वलनानां ।।५५६।।

सं० चं०—क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिका वेदकवत् मानकी प्रथम संग्रह कृष्टिका वेदकका विधान जानना। विशेष इतना—क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिका वेदकके बंध द्रव्यकरि उपजीं जे नवीन अन्तर कृष्टि तिनका प्रमाण ल्यावनेकौं भागहारका प्रमाण छह गुणहानि मात्र कह्या था, इहाँ तातैं चौथाई घाटि है, तातैं साढा च्यारि गुणहानिमात्र है। आगैं भी इतना ही घाटि जानना। सो मायाकी प्रथम संग्रह कृष्टि वेदककैं तीन गुणहानिमात्र, लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टिविषैं ड्योढ गुणहानिमात्र भागहार जानना। याका भाग सर्व कृष्टिनिकौं दीएँ क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिवेदककैं तौ गुणहानिका चौथा भागमात्र अन्तरालका प्रमाण कह्या था। इहाँ वा आगैं तातैं सोलह्वाँ भागमात्र क्रमतैं घटता जानना। सो मान माया लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टि वेदककैं बंध द्रव्यकरि निपजीं नवीन कृष्टिनिके वीचि जे कृष्टि पाइए तिनका प्रमाणमात्र अंतराल सो क्रमतैं गुणहानिका तीन सोलह्वाँ भागमात्र, दोइ सोलह्वां भागमात्र, एक सोलहवाँ भागमात्र गुणा स्थापिए। बहुरि क्रोधकी प्रथम द्वितीय तृतीय कृष्टि वेदककैं गुणकार क्रमतैं तेरह चौदह पंद्रहका अर मानकी प्रथमादि संग्रह कृष्टि वेदककैं गुणकार क्रमतैं सोलह सतरह अठारह वा मायाकी प्रथमादि संग्रह कृष्टि वेदककैं गुणकार क्रमतैं उगणीस वीस इकईसका, लोभकी प्रथमादि संग्रह कृष्टि वेदककैं गुणकार क्रमतैं बाईस तेईस चौईसका है। तहां अपने-अपने गुणकार करि गुण्यकौं गुणैं अन्तरालका प्रमाण आवै है। बहुरि इतना जानना—

क्रोध वेदककैं च्यारयो कषायोंका, मानवेदककैं क्रोध विना तीन कषायनिका, माया वेदककैं क्रोध मान विना दोय कषायनिका, लोभ वेदककैं लोभ हीका बंध है। तातैं इनके ही बंध द्रव्यकरि अन्तर कृष्टि निपजै हैं। बहुरि जिस कृष्टिकौं भोगिए है ताका द्रव्य जिन कृष्टिनिविषैं संक्रमण करै है तिनविषैं संक्रमण द्रव्यकरि निपजी जे कृष्टि तिनका अन्तरालविषैं भी यथासंभव जानना। बहुरि मान प्रथम संग्रह कृष्टि वेदकको प्रथम स्थितिविषैं समय अधिक आवली अवशेष रहैं अन्त समय होइ। तहाँ क्रोध बिना तीन संज्वलनका स्थितिबंध अन्तर्मुहूर्त

१. जेणेव विहिणा कोधस्स पढमकिट्टी वेदिदा तेणेव विधिणा माणस्स पढमकिट्टिं वेदयदि········।
—क० चु०, पृ० ८५९।

२. एदेण कमेण माणपढमकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए जाधे समयाहियावलियसेसा ताधे तिण्हं संजलणाणं ठिदिबंधो मासो वीसं च दिवसा अंतोमुहुत्तूणा। क० चु०, पृ० ८५९।

घाटि पचास दिन है। अर स्थितिसत्त्व अन्तर्मुहूर्त घाटि चालीस मासमात्र है। इहां क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिवत् त्रैराशिक आदि विधान जानना। इहांतैं आगैं पूर्व संग्रह कृष्टिका द्रव्य मिलनेतैं वेद्यमान कृष्टिका द्रव्यविषैं एक एक गुणकार क्रमतैं बंधै है। तहाँ मानकी द्वितीय तृतीय अर मायाकी प्रथम द्वितीय तृतीय अर लोभकी प्रथम द्वितीय तृतीय संग्रह कृष्टिका द्रव्य क्रमतैं सतरह अठारह उगणीस वीस इकईस बाईस तेईस चौईसगुणा है सो अपने-अपने द्रव्यकौं अपकर्षणकरि अपने वेदक कालतैं आवली मात्र अधिक प्रथम स्थिति करिए है। तहाँ पूर्वोक्त विधानतैं तिस प्रथम स्थितिविषैं समय अधिक आवली अवशेष रहैं अपनी-अपनी वेदक कालका अंत समय हो है ॥५५६॥

तहाँ स्थितिबंध स्थितिसत्त्वका विशेष कहिए है—

विदियस्स माणचरिमे चत्तं वत्तीसदिवसमासाणि।
अंतोमुहुत्तहीणा बंधो सत्तो तिसंजलणगाणं[1] ॥५५७॥

द्वितीयस्य मानचरमे चत्वारिंशद्द्वात्रिंशद्दिवसमासाः।
अन्तर्मुहूर्तहीना बंधः सत्त्वं त्रिसंज्वलनानां ॥५५७॥

स० चं०—ताके अनन्तरि मानकी द्वितीय संग्रह कृष्टिका वेदक हो है। ताका अंत समयविषैं तीन संज्वलनका स्थिति बंध अन्तमुहूर्त घाटि चालीस दिन अर स्थितिसत्व अन्तर्मुहूर्त घाटि वत्तीस मासमात्र है ॥५५७॥

तदियस्स माणचरिमे तीसं चउवीस दिवसमासाणि।
तिण्हं संजलणाणं ठिदिबंधो तह य सत्तो य[2] ॥५५८॥

तृतीयस्य मानचरिमे त्रिंशच्चतुर्विंशद्दिवसमासाः।
त्रयाणां संज्वलनानां स्थितिबंधस्तथा च सत्त्वं च ॥५५८॥

स० चं०—ताके अनन्तरि मानकी तृतीय संग्रह कृष्टिका वेदक हो है। ताका अन्त समयविषैं तीन संज्वलनिका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त घाटि तीस दिन अर स्थितिसत्त्व अन्तर्मुहूर्त घाटि चौबीस मासमात्र हो है ॥५५८॥

पढमगमायाचरिमे पणवीसं वीसदिवसमासाणि।
अंतोमुहुत्तहीणा बंधो सत्तो दुसंजलणगाणं[3] ॥५५९॥

१. से काले माणस्स विदियकिट्टीयो पदेसग्गमोकड्डियूण पढमट्ठिदिं करेदि। तेणेव विहिणा संपत्तो माणस्स विदियकिट्टि वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से समयाहियावलियसेसा त्ति ताधे संजलणाणं ट्ठिदिबंधो मासो दस च दिवसा देसूणा। संतकम्मं दो वस्साणि अट्ठ च मासा देसूणा। क० चु०, पृ० ८६०।

२. ·········ताधे तिण्हं संजलणाणं ठिदिबंधो मासो पडिपुण्णो। संतकम्मं वे वस्साणि पडिपुण्णाणि। क० चु०, पृ० ८६०।

३. ·········ताधे ठिदिबंधो दोण्हं संजलणाणं पणुवीसं दिवसा देसूणा। ठिदिसंतकम्मं वस्समट्ठ च मासा देसूणा। क० चु०, पृ० ८६०।

प्रथमगमायाचरिमे पंचविंशतिः विंशतिः दिवसमासाः।
अन्तर्मुहूर्तहीनाः बंधः सत्त्वं द्विसंज्वलनकयोः ॥५५९॥

स० चं०—ताके अनंतरि मायाकी प्रथम संग्रह कृष्टिका वेदक हो है सो याका काल माया वेदककालके तीसरे भागमात्र है। ताका अन्त समयविषैं संज्वलन माया लोभका स्थिति बंध अंतर्मुहूर्त घाटि पचीस दिन स्थितिसत्त्व अंतर्मुहूर्त घाटि वीस मासमात्र हो है ॥५५९॥

विदियगमायाचरिमे वीसं सोलं च दिवसमासाणि।
अंतोमुहुत्तहीणा बंधो सत्तो दुसंजलणगाणं[1] ॥५६०॥

द्वितीयगमायाचरिमे विंशं षोडश च दिवसमासाः।
अन्तर्मुहूर्तहीनाः बंधः सत्त्वं द्विसंज्वलनकयोः ॥५६०॥

स० चं०--ताके अनन्तरि मायाकी द्वितीय संग्रह कृष्टिका वेदक हो है। ताका अन्त समयविषैं दोय संज्वलननिका स्थितिबंध अन्तर्मुहूर्त घाटि वीस दिन अर स्थितिसत्त्व अन्तर्मुहूर्त घाटि सोलह मासमात्र हो है ॥५६०॥

तदियगमायाचरिमे पण्णरवारस य दिवसमासाणि।
दोण्हं संजलणाणं ठिदिबंधो तह य सत्तो य[2] ॥ ५६१ ॥

तृतीयकमायाचरमे पंचदश द्वादश च दिवसमासाः।
द्वयोः संज्वलनयोः स्थितिबंधस्तथा च सत्त्वं च ॥ ५६१ ॥

स० चं०—ताके अनंतर मायाकी तृतीय संग्रह कृष्टिका वेदक हो है। ताका अन्त समयविषैं दोय संज्वलननिका स्थितिबंध अन्तर्मुहूर्त घाटि पंद्रह दिन अर स्थितिसत्त्व अन्तर्मुहूर्त घाटि[3] वारह मासप्रमाण हो है ॥ ५६१ ॥

मासपुधत्तं वासा संखसहस्साणि बंध सत्तो य।
घादितियाणिदराणं संखमसंखेज्जवस्साणि[4] ॥ ५६२ ॥

मासपृथक्त्वं वर्षाः संख्यसहस्राः बंधः सत्त्वं च।
घातित्रयाणामितरेषां संख्यमसंख्येयवर्षाः ॥ ५६२ ॥

१. ·········ताधे ठिदिबंधो वीसं दिवसा देसूणा। ठिदिसंतकम्मं सोलस मासा देसूणा।
—क० चु०, पृ० ८६१।

२. ·········ताधे दोण्हं संजलणाणं ठिदिबंधो अद्धमासो पडिपुण्णो। ठिदिसंतकम्ममेक्कं वस्सं पडिपुण्णं।

३. क० चु० में 'परिपूर्ण. बतलाया है। अन्तर्मुहूर्त घाटि नहीं बतलाया। पृ० ६६९।

४. तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिबंधो मासपुधत्तं। तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। इदरेसिं कम्माणं [ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्साणि।] क० चु० ८६१। ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। क० चु० पृ० ।

स० चं०—तहां ही तीन घातियानिका स्थितिबंध पृथक्त्व मासप्रमाण है। स्थितिसत्त्व यथा योग्य संख्यात हजार वर्षमात्र है। बहुरि तीन अघातियानिका स्थितिबंध यथायोग्य संख्यात वर्ष मात्र है। स्थितिसत्त्व यथायोग्य असंख्यात वर्षमात्र है ॥ ५६२ ॥

लोहस्स पढमचरिमे लोहस्संतोमुहुत्त बंधदुगे।
दिवसपुधत्तं वासा संखसहस्साणि घादितिये[1] ॥ ५६३ ॥

लोभस्य प्रथमचरिमे लोभस्यांन्तर्मुहूर्तं बंधद्विके।
दिवसपृथक्त्वं वर्षाः संख्यस ,स्रा घातित्रये ॥ ५६३ ॥

स० चं०—ताके अनंतरि लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिका वेदक हो है। ताका काल समस्त लोभ वेदक कालके तीसरे भागमात्र वा बादर लोभ वेदक कालतैं आधा है। ताका अन्त समयविषैं संज्वलन लोभका स्थितिबंध वा स्थितिसत्त्व अन्तर्मुहूर्तमात्र है। तहां स्थितिबंधतैं स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा जानना। बहुरि तीन घातियानिका स्थितिबंध पृथक्त्व दिनमात्र अर स्थिति सत्त्व संख्यात हजार वर्षमात्र है ॥ ५६३ ॥

सेसाणं पयडीणं वासपुधत्तं तु होदि ठिदिबंधो।
ठिदिसत्तमसंखेज्जा वस्साणि हवंति णियमेण[2] ॥ ५६४ ॥

शेषाणां प्रकृतीनां वर्षपृथक्त्वं तु भवति स्थितिबंधः।
स्थितिसत्त्वमसंख्येया वर्षा भवंति नियमेन ॥ ५६४ ॥

स० चं०—अवशेष तीन अघातिया प्रकृतिनिका स्थितिबंध पृथक्त्व वर्षमात्र अर स्थितिसत्त्व यथायोग्य असंख्यात वर्षमात्र है नियमकरि ॥ ५६४ ॥

से काले लोहस्स य विदियादो संगहादु पढमठिदी।
ताहे सुहुमं किट्टिं करेदि तव्विदियतदियादी[3] ॥ ५६५ ॥

स्वे काले लोभस्य च द्वितीयतः संग्रहात् प्रथमस्थितिः।
तत्र सूक्ष्मां कृष्टिं करोति तद्द्वितीयतृतीयतः ॥५६५॥

स० चं—बहुरि ताके अनन्तरि अपने कालविषैं लोभकी द्वितीय संग्रह कृष्टिके द्रव्यतैं प्रदेश समूहका अपकर्षणकरि उदयादि गलितावशेष गुणश्रेणीरूप प्रथम स्थिति करै है ताका प्रमाण

---

१. ······ताधे लोभसंजलणस्स ट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तं। ठ्ठिदिसंतकम्मं पि अंतोमुहुत्तं। तिण्हं घादिकम्माणं ठ्ठिदिबंधो दिवसपुधत्तं। घादिकम्माणं ठ्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। क० चु०, पृ० ८६१–८६२।

२. सेसाणं कम्माणं वासपुधत्तं। सेसाणं कम्माणं असंखेज्जाणि वस्साणि। क० चु०, पृ० ८६१–८६२।

३. तदो से काले लोहस्स विदियकिट्टीदो पदेसग्गमोकड्डियूण पढमट्ठिदिं करेदि। ताधे चेव लोभस्स विदियकिट्टीदो च तदियकिट्टीदो च पदेसग्गमोकड्डियूण सुहुमसांपराइयकिट्टीओ णाम करेदि। क० चु०, पृ० ८६२।

अवशेष रह्या अनिवृत्तिकरण कालतैं आवलीमात्र अधिक है। बहुरि तिस ही कालविषैं लोभकी द्वितीय संग्रह कृष्टि अर तृतीय संग्रह कृष्टिका जो द्रव्य तातैं प्रदेशसमूहको अपकर्षण करि सूक्ष्म है अनुभागशक्ति जिनविषैं ऐसी सूक्ष्म कृष्टि करै है। सो बादर लोभकी द्वितीय संग्रह कृष्टिका द्रव्य सर्व मोहका द्रव्यका चौइसका भागतैं तेईसगुणा है। तातैं अपकर्षण कीया द्रव्य अनुभागकी अपेक्षा सर्व मोह द्रव्यका चौईसवाँ भागकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीए एक भाग तातैं पांचसै पिचहत्तरिगुणा है। तहाँ तेईसगुणा तौ लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिरूप द्रव्य है। अर अवशेष पाँचसै बावनगुणा द्रव्य रह्या ताकरि सूक्ष्म कृष्टि करिए है। इहाँ अपकर्षण कीया द्रव्यविषैं तेईसका गुणकार था ताकौं तातैं एक अधिक चौईस ताकरि गुणैं ताके अनन्तरि भोगवने योग्य सूक्ष्म कृष्टि ता विषैं संक्रमण होने योग्य द्रव्य पांचसै बावनगुणा हो है। ताके अनंतरि भोगवने योग्य कृष्टिविषैं संक्रमण द्रव्य संख्यातगुणा कह्या है। बहुरि लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिके द्रव्यतैं अपकर्षण कीया द्रव्य है सो सर्व मोह द्रव्यका चौईसवां भागकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीएं एक भागहारमात्र है ताकरि सूक्ष्म कृष्टि करिए है। मिलिकरि मोह द्रव्यका चौईसवां भागकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीएँ तातैं पाँचसै तरेपणगुणा द्रव्य भया। सो इतने द्रव्यकरि सूक्ष्म कृष्टि करिए है ऐसा तात्पर्य जानना ॥५६५॥

लोहस्स तदियसंगहकिट्टीए हेट्ठदो अवट्ठाणं।
सुहुमाणं किट्टीणं कोहस्स य पढमकिट्टिणिभा[1] ॥५६६॥

लोभस्य तृतीयसंग्रहकृष्टया अधस्तनतः अवस्थानम्।
सूक्ष्मानां कृष्टीनां क्रोधस्य च प्रथमकृष्टिनिभा ॥५६६॥

स० चं०—तिनि सूक्ष्म कृष्टिनिका लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिके नीचैं अवस्थान है। बहुरि ते सूक्ष्म कृष्टि क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिके समान हो हैं। कैसैं ? सो कहिए है—

जैसैं अपूर्व स्पर्धकनिके नीचैं अनंतगुणा घटता अनुभाग लीएं क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टि है तैसैं बादर कृष्टिके नीचैं अनंतगुणा घटता अनुभाग लीएं सूक्ष्म कृष्टिनिकी रचना हो है। बहुरि जैसैं क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिकी अवयव कृष्टिनिका प्रमाण या विना अवशेष बादर कृष्टिनिका जो प्रमाण तातैं संख्यातगुणा है। तैसैं ही सूक्ष्म कृष्टिनिका प्रमाण क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टि विना अवशेष कृष्टिनिके प्रमाणतैं संख्यातगुणा है। बहुरि जैसैं क्रोधको प्रथम संग्रह-कृष्टि जघन्य कृष्टितैं लगाय उत्कृष्ट कृष्टिपर्यन्त अनन्तगुणा अनुभाग क्रम लीएं है तैसैं ही सूक्ष्म कृष्टि भी जघन्यतैं लगाय उत्कृष्ट पर्यन्त अनन्तगुणा अनुभाग लीएं है ॥ ५६६ ॥

कोहस्स पढमकिट्टी कोहे छुद्धे दु माणपढमं च।
माणे छुद्धे मायापढमं मायाए संछुद्धे ॥ ५६७ ॥
लोहस्स पढमकिट्टी आदिमसमयकदसुहुमकिट्टी य।
अहियकमा पंचपदा सगसंखेज्जदिमभागेण[2] ॥ ५६८ ॥

१. तासिं सुहुमसांपराइयकिट्टीणं कम्हि ट्ठाणं १ तासिं ट्ठाणं लोभस्स तदियाए संगहकिट्टीए हेट्ठदो। जारिसो कोहस्स पढमसंगहकिट्टी तारिसी एसा सुहुमसांपराइयकिट्टी। क० चु०, पृ० ८६२।

२. कोहस्स पढमसंगहकिट्टीए अन्तरकिट्टीओ थोवाओ। कोहे संछुद्धे माणस्स पढमसंगहकिट्टीए

क्रोधस्य प्रथमकृष्टि: क्रोधे क्षुब्धे तु मानप्रथमं च ।
मानक्षुब्धे मायाप्रथमं मायायां संक्षुब्धायाम् ।। ५६७ ।।
लोभस्य प्रथमकृष्टिरादिमसमयकृतसूक्ष्मकृष्टिश्च ।
अधिक[illegible]माण पंचपदानि स्वकसंख्येयभागेन ।। ५६८ ।।

स० चं०—प्रथम समयविषैं कीन्ही सूक्ष्म कृष्टिनिका प्रमाण ल्यावनेके अर्थि अल्पबहुत्व कहिए है—

क्रोधकी प्रथम संग्रहकी अवयव कृष्टि स्तोक है। बहुरि कृष्टिप्रमाणका चौईसवां भागतैं तेरहगुणी है। बहुरि क्रोधकी तीनों संग्रह कृष्टि मानकीके ऊपरि मिलाएं मानकी प्रथम संग्रहकी अवयव कृष्टि विशेष अधिक हो है। पूर्व राशिकौं त्रिभाग अधिक च्यारिका भाग दीएं एक भागमात्र अधिक है सो सोलह गुणी हो है। बहुरि मानकी तीनो संग्रह कृष्टि मायाके ऊपरि मिलाएं मायाकी प्रथम संग्रहकी अवयव कृष्टि विशेष अधिक है सो पूर्व राशिकौं त्रिभाग अधिक पांचका भाग दीएं एक भागमात्र अधिक हैं सो तेरहकी जायगा उगणीस गुणी हो है। बहुरि मायाकी तीनों संग्रह कृष्टि लोभके ऊपरि मिलाएं लोभकी प्रथम संग्रहकी अवयव कृष्टि विशेष अधिक हो है। सो पूर्व राशिकौं त्रिभाग अधिक छहका भाग दीएं एक भागमात्र अधिक हो है सो बाईसगुणी हो है। बहुरि तातैं प्रथम समयविषै कीन्ही सूक्ष्म कृष्टिनिका प्रमाण विशेष अधिक है। पूर्व राशिकौं ग्यारहका भाग दीएं एक भागमात्र अधिक हो है सो चौईसगुणी हो है। ऐसें पंच स्थान संख्यातवां भाग अधिक क्रम लीएं जानने ।। ५६८ ।।

सुहुमाओ किट्टीओ पडिसमयमसंखगुणविहीणाओ[1] ।
दव्वमसंखेज्जगुणं विदियस्स य लोहचरिमो त्ति[2] ।। ५६९ ।।

सूक्ष्माः कृष्टयः प्रतिसमयमसंख्यगुणविहीनाः ।
द्रव्यमसंख्येयगुणं द्वितीयस्य च लोभचरम इति ।। ५६९ ।।

स० चं०—सूक्ष्म कृष्टिका प्रथम समयविषैं कीनी ते बहुत हैं। तातैं द्वितीय समयविषैं कोनी अपूर्व सूक्ष्म कृष्टि सख्यातगुणी घाटि हैं। ऐसें क्रमतैं समय समय प्रति करी नवीन अपूर्व कृष्टि संख्यातगुणी घाटि जाननी। बहुरि सूक्ष्म कृष्टिविषैं दीया द्रव्य प्रथम समयविषै स्तोक है। तातैं

अन्तरकिट्टीओ विसेसाहियाओ। माणे संछुद्धे मायाए पढमसंगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ। मायाए संछुद्धाए लोभस्स पढमसंगहकिट्टीए अंतरकिट्टीओ विसेसाहियाओ। सुहुमसांपराइयकिट्टीओ जाओ पढमसमये कदाओ ताओ विसेसाहियाओ। एसो विसेसो अणंतराणंतरेण संखेज्जदिभागो। क० चु०, पृ० ८६३।

१. सुहुमसांपराइयकिट्टीओ जाओ पढमसमए कदाओ ताओ बहुगाओ। विदियसमए अपुव्वाओ कीरंति असंखेज्जगुणहीणाओ। अणंतरोपणिधाए सव्विस्से सुहुमसांपराइयकिट्टीओ असंखेज्जगुणहीणाए सेढीए कीरंति। क० चु०, पृ० ८६४–८६५।

२. सुहुमसांपराइयकिट्टीसु जं पढमसमये पदेसग्गं दिज्जदि तं थोवं। विदियसमये असंखेज्जगुणं। एवं जाव चरिमसमयादो त्ति असंखेज्जगुणं। क० चु० पृ० ८६५।

दूसरा समयविषै संख्यातगुणा है। ऐसैं समय समय प्रति सूक्ष्म कृष्टिविषैं दीया द्रव्य क्रमतैं संख्यातगुणां जानना। सो द्वितीय संग्रह कृष्टिवेदक कालरूप जो सूक्ष्म कृष्टि करनेका काल ताका अन्त समय पर्यन्तजानना ॥ ५६९ ॥

दव्वं पढमे समये देदि हु सुहुमेसणंतभागूणं[1] ।
थूलपढमे असंखगुणूणं तत्तो अणंतभागूणं[3] ॥ ५७० ॥

द्रव्यं प्रथमे समये ददाति ही सूक्ष्मेष्वनंतभागोनं ।
स्थूलप्रथमे असंख्यगुणोनं तत अनंतभागोनं ॥ ५७० ॥

स० चं०—सूक्ष्म कृष्टिकरण कालका प्रथम समयविषै सूक्ष्म कृष्टिकी जघन्य कृष्टितैं लगाय अनन्तवां भाग घटता क्रम लीएं अर उत्कृष्ट सूक्ष्म कृष्टितैं प्रथम जघन्य बादर कृष्टिविषैं असंख्यातगुणा घटता अर तातैं द्वितीयादि बादर कृष्टिनिविषैं अनन्तवां भाग घटता क्रम लीयें द्रव्य दीजिए है। सो इहां विशेष निर्णयके अर्थि व्याख्यान करिए है—सो बादर कृष्टिकरणका द्वितीय समयविषै जो विधान कह्या था ताकौं स्मरणकरि इहां जो विधान कहिए है ताकौं समझना। तहां प्रथम आयद्रव्य व्ययद्रव्य घातद्रव्यनिका स्वरूप कहिए है—

लोभकी द्वितीय संग्रह कृष्टिका द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीएं तहां एक भागमात्र लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिविषैं आय द्रव्य है। बहुरि इतना ही लोभकी द्वितीय संग्रह कृष्टिविषै व्यय द्रव्य है। आनुपूर्वी संक्रमणके नियमतैं लोभकी द्वितीय संग्रह कृष्टिविषैं आय द्रव्य है नाहीं। बहुरि अपनी अपनी संग्रहकी अन्त कृष्टिका द्रव्यकौं अपनी अपनी कृष्टिनिका प्रमाणकौं अपकर्षण भागहारका असंख्यातवां भागका भाग दीए एक भागमात्र जो अन्तविषैं नष्ट करीं ऐसी घातकृष्टिनिका प्रमाणकरि गुणें अर विशेष अधिक कीए घात द्रव्यका प्रमाण हो है। तहां घातद्रव्य कृष्टिसम्बन्धी व्ययद्रव्य सर्व व्यय द्रव्यके असंख्यातवैं भागमात्र है। ताकौं घटाए जो व्यय द्रव्य रह्या तितना घात द्रव्यतैं ग्रहणकरि जिन कृष्टिनिका व्यय द्रव्य भया था तहां ही दीए स्वस्थान गोपुच्छ हो है। बहुरि घात कृष्टिनिका प्रमाणमात्र जे विशेष तिनकौं घात कीए पीछे अवशेष रहीं जे कृष्टि तिन एक एक विषैं देना। तातैं ताकौं अवशेष कृष्टिनिका प्रमाणकरि गुणैं जो द्रव्य होइ तितना द्रव्य घात द्रव्यतैं ग्रहि करि दीए परस्थान गोपुच्छ भी होइ है। ऐसैं सर्व कृष्टिनिका एक गोपुच्छ भया।

बहुरि पूर्वोक्त दोय प्रकार द्रव्य दीए पीछे अवशेष जो घात द्रव्य रह्या तिसविषैं ताकौं घात कीए पीछे अवशेष रहीं कृष्टिनिका प्रमाणमात्र गच्छका भाग दीएं जो एक खंड मध्यम धनरूप भया ताकौं एक घाटि गच्छका आधा प्रमाणमात्र जे विशेष तिनकरि अधिक कीए जो द्रव्य भया ताकौं तृतीय संग्रह कृष्टिका अवशेष घात द्रव्यतैं ग्रहि तृतीय संग्रहका जघन्य कृष्टिविषैं दीजिए है। अवशेष द्रव्यविषैं घटता क्रम लीए अन्य कृष्टिनिविषैं दीजिए है। ऐसैं अपने

१. जहण्णियाए किट्टीए पदेसग्गं बहुअं। विदियाए विसेसहीणमणंतभागेण। तदियाए विसेसहीण। एवमणंतरोपणिधाए गंतूण चरिमाए सुहुमसांपराइयकिट्टीए पदेसग्गं विसेसहीणं। चरिमादो सुहुमसांपराइयकिट्टीदो जहण्णियाए बादरसांपराइयकिट्टीए दिज्जमाणगं पदेसग्गमसंखेज्जगुणहीणं। तदो विसेसहीणं। क० चु० पृ० ८६५।

अपने अवशेष घात द्रव्यकौं दीएं अवशेष घात द्रव्य एक गोपुच्छाकार हो है। ऐसैं एक गोपुच्छाकार तिष्ठती जे कृष्टि तिनिविषैं संक्रमण द्रव्य अर बंध द्रव्यकरि निपजीं कृष्टिनिविषैं संक्रमण द्रव्य अर बंध द्रव्य देनेका विधान कहिए है—

तहां द्वितीय संग्रह कृष्टिविषैं आय द्रव्यका अभाव है। तातैं घात द्रव्यतैं किछू द्रव्य जुदा राखि इहां कहिए है तैसैं देना। अवशेषकौं पूर्वोक्त प्रकार देना। तहां बादर कृष्टिसम्बन्धी एक विशेष आदि एक विशेष उत्तर घात कीएं पीछैं तृतीय संग्रहकी अवशेष रहीं कृष्टिनिका प्रमाणमात्र गच्छ स्थापैं जो संकलन होइ तितना द्रव्य तृतीय संग्रह कृष्टिका आय द्रव्यतैं ग्रहि जुदा स्थापना। अर जितनी तृतीय संग्रहकी कृष्टि भई तितने विशेष आदि अर एक विशेष उत्तर अर अपनी अपनी अवशेष कृष्टिनिका प्रमाणमात्र गच्छ स्थापैं जो संकलन धन होइ तितना द्रव्य द्वितीय संग्रहका घात द्रव्यतैं ग्रहि जुदा स्थापना, इनि दोऊनिका नाम अधस्तन शीर्ष द्रव्य है। बहुरि तृतीय संग्रह कृष्टिकी जघन्य कृष्टिका द्रव्यकौं असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहारका भाग दीएं एक भागमात्र जो गुण्य सो एक खण्ड है। ताकौं तृतीय संग्रहसम्बन्धी कृष्टिनिका प्रमाण करि गुणैं जो होइ तितना द्रव्यकौं तृतीय संग्रहके आय द्रव्यतैं ग्रहि स्थापना। अर तिसही गुण्यकौं द्वितीय संग्रहकी कृष्टिनिका प्रमाणकरि गुणैं जो होइ तितना द्रव्यकौं तृतीय संग्रहके आय द्रव्यतैं ग्रहि स्थापना। इनिका नाम मध्यम खंड द्रव्य है। बहुरि उभय द्रव्यसम्बन्धी एक विशेष आदि अर एक विशेष उत्तर द्वितीय संग्रहकी कृष्टिनिका प्रमाणमात्र गच्छ स्थापि तहां संकलन धनमात्र उभय द्रव्यके विशेष तिनविषैं अपने एक विशेषका अनन्तवां भागमात्र घटाएं अवशेष रह्या तितना द्वितीय संग्रहकी कृष्टिके घात द्रव्यतैं ग्रहि जुदा स्थापना। यहु वेद्यमान कृष्टि है। तातैं याका बंध नाम भी है। सो घटाया द्रव्यकौं बंध द्रव्यविषैं देइ पूर्ण करैंगे, इहां द्वितीय संग्रहका घात द्रव्य पूर्ण भया। बहुरि एक अधिक द्वितीय संग्रहकी जेती कृष्टि भईं तितने विशेष आदि एक विशेष उत्तर अर संक्रमण द्रव्यकरि निपजी अपूर्व कृष्टि सहित सर्व तृतीय संग्रहकी कृष्टिनिका प्रमाणमात्र गच्छ स्थापैं तहां संकलन धनमात्र उभयद्रव्यके विशेषनिकौं तृतीय संग्रहके आय द्रव्यतैं ग्रहि स्थापने। इनि दोऊनिका नाम उभय द्रव्य विशेष द्रव्य है। बहुरि तीन प्रकार द्रव्यकरि हीन जो तृतीय संग्रहका आय द्रव्य ताकरि अपूर्व नूतन कृष्टि निपजाइए है तिनका प्रमाण ल्याइए है—

एक मध्यम खंड अधिक जो तृतीय संग्रह कृष्टिकी जघन्य कृष्टिका द्रव्य तिस प्रमाण द्रव्यकरि एक संक्रमणसम्बन्धी अन्तर कृष्टि निपजै तौ पूर्वोक्त तीन प्रकार द्रव्य रहित संक्रमण द्रव्यकरि केती नवीन कृष्टि निपजैं ऐसैं त्रैराशिक कीएं संक्रमण द्रव्यकरि निपजी कृष्टिनिका प्रमाण आवै है। याका भाग तृतीय संग्रहकी पूर्व कृष्टिनिका प्रमाणकौं दीएं संक्रमण कृष्टिनिके वीचि अन्तरालका प्रमाण आवै है सो संक्रमण कृष्टिनिके प्रमाणका भाग अवशेष संक्रमण द्रव्यकौं दीएं एक खंड होइ। ताकौं संक्रमण कृष्टिनिका प्रमाणकरि गुणैं जो द्रव्य भया ताका नाम संक्रमण अन्तर कृष्टिसम्बन्धी समान खण्ड द्रव्य है। अब बंध द्रव्यका विभाग कहिए है—

बंध द्रव्यकरि निपजीं जे अपूर्व अन्तर कृष्टि तिनिविषै जो अन्त कृष्टि तिसतैं लगाय ताके ऊपरि जेती कृष्टि पाइए तितने विशेष तौ आदि अर बंधांतर कृष्टिनिका अन्तरालमात्र विशेष उत्तर अर बन्धांतर कृष्टिनिका प्रमाणमात्र गच्छ स्थापि तहां संकलनमात्र द्रव्यकौं मोहनीयका समयप्रबद्धतैं ग्रहि जुदा स्थापना। याका नाम बंधांतर कृष्टिविशेष द्रव्य है। इहां एक मध्यम

खंड अधिक तृतीय संग्रहकी जघन्य कृष्टिका द्रव्यमात्र द्रव्यतैं एक कृष्टि निपजै तौ किंचित् ऊन मोहका समयप्रबद्धमात्र द्रव्यकरि केती निपजै ! ऐसें त्रैराशिक कीए बंध द्रव्यकरि करीं अपूर्व अन्तर कृष्टिनिका प्रमाण आवै है। याका भाग किंचिदून सर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र जो द्वितीय संग्रहकी कृष्टिनिका प्रमाण ताकौं दीए बंधांतर कृष्टिनिके वीचि अन्तरालका प्रमाण आवै है। बहुरि बंध द्रव्यतैं पूर्वोक्त बंधांतर कृष्टिविशेष द्रव्य अर बंध द्रव्यका अनंतवां भागमात्र द्रव्य जुदा स्थापि अवशेष रह्या द्रव्यकौं बंधांतर कृष्टिका भाग दीए एक खंड होइ। अर याकौं बंधांतर कृष्टिका प्रमाणकरि गुणैं पूर्वोक्त द्रव्य होइ ताका नाम बंधांतर कृष्टिसबंधी समान खंड द्रव्य है। बहुरि पूर्वै जो समयप्रबद्धका एक भागमात्र द्रव्य जुदा राख्या ताकौं बंध कृष्टिनिका प्रमाणमात्र जो इहां गच्छ तिसका एक घाटि गच्छका आधा प्रमाण करि हीन जो दो गुणहानि ताकरि गुणी ताका भाग दीएं इहां विशेषका प्रमाण होइ ताकौं सर्व बंध कृष्टिनिका प्रमाणमात्र गच्छका एकवार संकलन धनमात्र प्रमाणकरि गुणैं जो द्रव्य होइ तितना द्रव्य जुदा स्थाप्या बंध द्रव्यका अनंतवां भागमात्र द्रव्यतैं ग्रहि जुदा स्थापना। याका नाम बंध विशेष द्रव्य है। बहुरि बंध द्रव्यका अनंतवां भागविषैं इतना घटाएं जो अवशेष रह्या ताकौं सर्व बंधकृष्टिनिका प्रमाणका भाग दीएं एक खंड होइ। ताकौ बन्ध कृष्टिनिका प्रमाण ही करि गुणैं जो द्रव्य होइ ताका नाम बंधद्रव्य मध्यम खंड है। बहुरि इहां सूक्ष्म कृष्टिविषैं संक्रमण होने योग्य जो द्वितीय तृतीय संग्रहका द्रव्य अपकर्षण कीया ताका विभाग कहिए है—

सूक्ष्मकृष्टिसम्बन्धी जो द्रव्य ताकौं प्रथम समयविषैं करीं सूक्ष्म कृष्टिनिका प्रमाणमात्र गच्छकौं एक घाटि गच्छका आधा प्रमाणकरि हीन दो गुणहानिकरि गुणी ताका भाग दीए एक विशेष होइ ताकौं सूक्ष्म कृष्टिका प्रमाणमात्र गच्छका एकवार संकलन धनमात्र प्रमाणकरि गुणैं जो होइ तितना द्रव्य सूक्ष्म कृष्टिसम्बन्धी द्रव्यतैं ग्रहि जुदा स्थापना। याका नाम सूक्ष्म कृष्टि सम्बन्धी विशेष द्रव्य है। बहुरि याकौं घटाएं जो अवशेष सूक्ष्म कृष्टिसम्बन्धी द्रव्य रह्या ताकौं सूक्ष्म कृष्टिनिके प्रमाणका भाग दीएं एक खण्ड होइ, अर याकौं सूक्ष्म कृष्टिका प्रमाणकरि ही गुणैं जो द्रव्य होइ सो सूक्ष्म कृष्टिसम्बन्धी समान खण्ड द्रव्य है। ऐसैं क्रमकरि विभागरूप कीया जो द्रव्य ताके देनेका विधान कहिए है—

सूक्ष्म कृष्टिकी जो जघन्य कृष्टि तिसविषैं बहुत द्रव्य दीजिए है। तहां सूक्ष्म कृष्टिसम्बन्धी समान खण्ड द्रव्यतैं एक खण्ड अर सूक्ष्म कृष्टिसम्बन्धी विशेषतैं सूक्ष्म कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेष ग्रहि दीजिए है। बहुरि ताके ऊपरि द्वितीयादि अन्तपर्यन्त सूक्ष्म कृष्टिनिविषैं कृष्टि द्रव्यके अनंतवां भागमात्र जो एक सूक्ष्म कृष्टिसम्बन्धी विशेष ताकरि घटता अनुक्रमतैं द्रव्य दीजिए है। भावार्थ यहु—एक एक तौ सूक्ष्म कृष्टिसम्बन्धी समान खण्ड अर वीचि होइ गईं कृष्टिनिका प्रमाणकरि हीन सूक्ष्म कृष्टिनिका प्रमाणमात्र सूक्ष्म कृष्टिसम्बन्धी विशेष क्रमतैं तिनविषैं दीजिए है। इहां सूक्ष्म कृष्टिसम्बन्धी द्रव्य समाप्त भया।

बहुरि अन्त सूक्ष्म कृष्टिविषैं दीया द्रव्यतैं ताके ऊपरि जघन्य बादर कृष्टिविषैं दीया द्रव्य असंख्यातगुणा घटता है। तहां तृतीय संग्रहका च्यारि प्रकार द्रव्यविषैं मध्यम खण्डतैं एक खण्ड अर उभय द्रव्य विशेषतैं सर्व बादर कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेष ग्रहि तहां जघन्य बादर कृष्टिविषैं दीजिए है। बहुरि ताके ऊपरि द्वितीयादि बादर कृष्टिनिविषै अनंतवां भागमात्र विशेष घटता क्रम

लीएं द्रव्य दीजिए है। भावार्थ—द्वितीयादि बादर कृष्टिनिविषैं एकादि एक एक बंधता क्रम लीएं अधस्तन शीर्षके विशेष अर एकादि एक अधिककरि हीन सर्व बादर कृष्टिप्रमाणमात्र उभयद्रव्यके विशेष अर एक एक मध्यम खण्ड तहां दीजिए है। सो एक उभय द्रव्यका विशेषविषैं एक अधस्तन शीर्ष विशेष घटाइए है। इतना इतना क्रमतैं घटता द्रव्य दीजिए है सो संक्रमण द्रव्यकरि निपजीं अपूर्व कृष्टि पर्यन्त यहु अनुक्रम जानना। बहुरि जहां संक्रमण द्रव्यतैं नवीन अपूर्व कृष्टि निपजीं तिसविषैं संक्रमणांतर कृष्टिसम्बन्धी समान खण्ड उभय द्रव्य विशेष द्रव्यतैं भई कृष्टिनिका प्रमाण करि हीन सर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेष ग्रहि दीजिए है। सो यहु अपनी नीचली पूर्व कृष्टिविषै दीया द्रव्यतैं असंख्यातगुणा है। बहुरि ताके ऊपरि पूर्व कृष्टिविषैं भईं कृष्टिनिका प्रमाणमात्र अधस्तन शीर्षके विशेष एक मध्यम खण्ड, भई कृष्टिनिकरि हीन सर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र उभय द्रव्यके विशेष दीजिए है। सो यहु यातैं नीचली अपूर्व कृष्टिविषैं दीया द्रव्यतैं असंख्यातगुणा घाटि है। बहुरि ताके ऊपरि भी पूर्वोक्त प्रकार द्रव्य दीजिए है। बहुरि द्वितीय संग्रह कृष्टिकी जघन्य कृष्टिविषैं भईं कृष्टिनिका प्रमाणमात्र अधस्तन शीर्षके विशेष, एक मध्यम खण्ड, भईं कृष्टिनिका प्रमाणकरि हीन सर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र उभय द्रव्यके विशेष दीजिए है। ताके ऊपरि एक-एक अधस्तन शीर्षविशेष बंधता अर एक उभय द्रव्यका विशेष घटता क्रमकरि द्रव्य दीजिए है। विशेष इतना—

बंधकृष्टिकी जघन्य कृष्टितैं लगाय उभय द्रव्यका विशेषविषैं एक विशेषका अनंतवां भागमात्र घटता क्रमकरि द्रव्य दीजिए है। अर तहां बंध द्रव्यतैं एक एक मध्यम खंड अर भईं बन्ध कृष्टिनिकरि हीन सर्वकृष्टिनिका प्रमाणमात्र बन्ध विशेषकौं ग्रहि दीजिए है। ऐसैं क्रम होतैं जहां बन्ध द्रव्यकरि अपूर्व कृष्टि निपजाइए है तहाँ बन्धद्रव्यतैं बंधांतर कृष्टिसम्बन्धी समान खण्ड द्रव्यतैं एक खण्ड अर बंधांतर कृष्टिसम्बन्धी विशेष द्रव्यतैं भईं सर्व कृष्टिनिका प्रमाणकरि हीन सर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेष ग्रहिकरि दीजिए है। सो यहु नीचली कृष्टिविषैं दीया बंध द्रव्यतैं अनन्तगुणा है। ताके ऊपरि पूर्व कृष्टिविषै तीन प्रकार घात द्रव्य दोय प्रकार बन्ध द्रव्य दीजिए है। सो इहां दीया बन्ध द्रव्य अपूर्व अंतर कृष्टिविषैं दीया द्रव्यतैं अनंतगुणा घाटि है। ताके ऊपरि बन्धरूप पूर्व कृष्टि वा बन्धकरि निपजीं अपूर्व कृष्टि वा बन्ध रहित पूर्व कृष्टिनिविषैं द्रव्य देनेका विधान पूर्वोक्त प्रकार ही जानना। ऐसैं प्रथम समयविषै सूक्ष्म कृष्टिसम्बन्धी प्ररूपण समाप्त भया ॥५७०॥

विशेष—प्रथम समयमें सूक्ष्मसाम्पराय कृष्टियोंको करनेवाला जीव उक्त कृष्टियोंमें अपकर्षित द्रव्यका किस प्रकार बटवारा करता है, प्रकृत गाथा में इसका निर्देश करते हुए बतलाया गया है कि जघन्य सूक्ष्म कृष्टिमें सबसे अधिक प्रदेशपुंजको देता है, दूसरी कृष्टिमें अनन्तवें भागप्रमाण विशेष हीन द्रव्य देता है। इसी प्रकार अन्तिम सूक्ष्म कृष्टिके प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर विशेष हीन विशेष हीन द्रव्य देता है। आगे जघन्य बादर कृष्टिमें अन्तिम सूक्ष्म कृष्टिकी अपेक्षा असंख्यातगुणा हीन द्रव्य देता है। आगे सर्वत्र उत्तरोत्तर अनन्तवाँ भागप्रमाण विशेष हीन विशेष हीन द्रव्य देता है। तात्पर्य यह है कि अपकर्षित द्रव्यमें से बहुभाग प्रमाण द्रव्य सूक्ष्म कृष्टियोंमें देता है और एक भागप्रमाण द्रव्य बादर कृष्टियोंमें देता है। किस विधिसे देता है इसका निर्देश पूर्वमें किया ही है।

विदियादिसु समयेसु अपुव्वाओ पुव्वकिट्टिहेट्ठाओ ।
पुव्वाणमंतरेसु वि अंतरजणिदा असंखगुणा[1] ॥५७१॥

द्वितीयादिषु समयेषु अपूर्वाः पूर्वकृष्टयधस्तनाः ।
पूर्वासामंतरेष्वपि अंतरजनिता असंख्यगुणाः ॥५७१॥

स० चं०—द्वितीयादि समयनिविषै अपूर्व नवीन सूक्ष्म कृष्टि करिए है । ते पूर्व समयविषैं कीनी जे सूक्ष्म कृष्टि तिनके नीचैं करिए है अर तिनके वीचि करिए है । नीचैं करिए तिनकौं अधस्तन कृष्टि कहिए । वीचि करिए तिनकौं अन्तर कृष्टि कहिए । तहां अधस्तन कृष्टिनिका प्रमाण स्तोक है । तिनतैं अन्तर कृष्टिनिका प्रमाण असंख्यातगुणा है ॥५७१॥

दव्वगपढमे सेसे देदि अपुव्वेसणंतभागूणं ।
पुव्वापुव्वपवेसे असंखभागूणमहियं च[2] ॥५७२॥

द्रव्यगप्रथमे शेषे ददाति अपूर्वेष्वनंतभागोनम् ।
पूर्वापूर्वप्रवेशे असंख्यभागोनमधिकं च ॥५७२॥

स० चं०—द्वितीयादि समयनिविषैं प्रथम समयवत् द्रव्य दीजिए है । विशेष इतना—सूक्ष्म कृष्टिसम्बन्धी द्रव्यकौं अधस्तन अपूर्व कृष्टिनिविषैं अनन्तवाँ भाग घटता क्रम लीए बहुरि पूर्व कृष्टिका प्रवेशविषैं असंख्यातवां भागमात्र घटता अर अपूर्व कृष्टिका प्रवेश होतैं असंख्यातवां भागमात्र अधिक द्रव्य दीजिए है । सोई विशेषकरि कहिए है—

द्वितीयादि समयनिविषैं घात द्रव्य अर संक्रमण द्रव्यका विभाग तौ पूर्ववत् करना । बहुरि सूक्ष्म कृष्टिके अर्थि अपकर्षण कीया द्रव्य समय समय प्रति असंख्यातगुणा है । ताका विभागविषैं विशेष है सो कहिए है—

तिस अपकर्षण कीया द्रव्यतैं पूर्व समयविषैं कीनी कृष्टिसम्बन्धी एक विशेष आदि, एक विशेष उत्तर, पूर्व समयविषैं कीनी कृष्टिनिका प्रमाणमात्र गच्छ स्थापि तहां संकलन धनमात्र द्रव्य ग्रहि जुदा स्थापना । याका नाम अधस्तन शीर्षविशेष है । बहुरि पूर्व समयविषैं कीनी कृष्टिनिविषैं

---

१. सुहुमसंरपाइयकिट्टीकारगो विदियसमये अपुव्वाओ सुहुमसांपराइयकिट्टीओ करेदि असंखेज्ज-गुणहीणाओ । ताओ दोसु ट्ठाणेसु करेदि । तं जहा—पढम समए कदाणं हेट्ठा च अंतरे च । हेट्ठा थोवाओ । अंतरेसु असंखेज्जगुणाओ । क० चु० ८६५ ।

२. विदियसमये दिज्जमाणगस्स पदेसग्गस्स सेढिपरूवणा । जा विदियसमए जहण्णिया सुहुमसांपराइय-किट्टी तिस्से पदेसग्गं दिज्जदि बहुअं । विदियाए किट्टीए अणंतभागहीणं । एवं गंतूण पढमसमए जा जहण्णिया सुहुमसांपराइयकिट्टी तस्स असंखेज्जदिभागहीणं । तत्तो अणंतभागहीणं जाव अपुव्वं णिव्वत्तिज्जमाणगं ण पावदि । अपुव्वाए णिव्वत्तिज्जमाणियाए किट्टीए असंखज्जदिभागुत्तरं । पुव्वणिव्वत्तिदं पडिवज्जमाणगस्स पदेसग्गस्स असंखेज्जदिभागहीणं । परं परं पडिवज्जमाणगस्स अणंतभागहीणं । जो विदियसमए दिज्जमाणगस्स पदेसग्गस्स विधी सो चेव विधी सेसेसु वि समएसु जाव चरिमसमयबादरसांपराइओ त्ति । क० चु०, पृ० ८६६ ।

जो जघन्य कृष्टि ताका द्रव्यमात्र एक खण्ड ताकौं इस वर्तमान समयविषै कीनी अधस्तन कृष्टिनिका प्रमाणकरि गुणैं जो द्रव्य होइ ताकौं ग्रहि जुदा स्थापना। याका नाम अधस्तन शीर्ष अपूर्व कृष्टिसम्बन्धी समान खंड द्रव्य है। बहुरि तिस ही जघन्य पूर्व कृष्टिका द्रव्यमात्र एक खंडकौं वर्तमान समयविषैं कीनी अंतर अपूर्व कृष्टिनिका प्रमाणकरि गुणैं जो द्रव्य हो ताकौं ग्रहि जुदा स्थापना। याका नाम अंतर अपूर्व कृष्टिसम्बन्धी समान खंड द्रव्य है। बहुरि पूर्व समय अर इस विवक्षित समयसम्बन्धी सर्व सूक्ष्म कृष्टिके द्रव्यकौं पूर्व अपूर्व सर्व सूक्ष्म कृष्टिनिका प्रमाणमात्र जो गच्छ ताकौं एक घाटि गच्छका आधा प्रमाणकरि हीन दो गुणहानिकरि गुणि ताका भाग दीएं एक उभय द्रव्यसम्बन्धी विशेष होइ। ताकौं सर्व पूर्व अपूर्व सूक्ष्म कृष्टिप्रमाण गच्छका एक-बार संकलन धनमात्र प्रमाणकरि गुणें जो द्रव्य होइ ताकौं सर्व पूर्व अपूर्व सूक्ष्म कृष्टिप्रमाण गच्छका एक बार संकलन धनमात्र प्रमाणकरिगुणैं जो द्रव्य होई ताकौं ग्रहि जुदा स्थापना। याका नाम उभय द्रव्यविशेष द्रव्य है। बहुरि ऐसैं कह्या च्यारि प्रकार द्रव्यकौं इस विवक्षित समयविषैं अपकर्षण कीया द्रव्यमैं घटाएं अवशेष जो द्रव्य रह्या ताकौं सर्व पूर्व अपूर्व सूक्ष्म कृष्टिनिके प्रमाणका भाग दीएं एक खंड होइ ताकौं तिस भागहारमात्र प्रमाणकरि गुणैं जो द्रव्य होइ ताकौं जुदा स्थापना। याका नाम मध्यम धन खण्ड द्रव्य है। ऐसैं सूक्ष्म कृष्टिके अर्थि अपकर्षण कीया द्रव्यके पांच प्रकार विभाग कहे। तिनके सूक्ष्म कृष्टिनिविषैं देनेका विधान अर पूर्वोक्त प्रकार बादर कृष्टिसम्बन्धी च्यारि प्रकार संक्रमण द्रव्यका तृतीय संग्रह कृष्टिविषैं देनेका विधान अर च्यारि प्रकार बंध द्रव्य तीन प्रकार घात द्रव्यका अनंतवां भागका द्वितीय संग्रह कृष्टिविषैं देनेका विधान इस विवक्षित समय विषैं निरूपण कीजिए है—

विवक्षित समयविषैं कीनी अधस्तन अपूर्व कृष्टि तिनकी जघन्य कृष्टिविषैं बहुत द्रव्य दीजिए है। तहां इस प्रकार सूक्ष्म कृष्टिसम्बन्धी द्रव्यनिविषैं अधस्तन कृष्टिसम्बन्धी समान खण्ड द्रव्यतैं एक खण्ड, मध्यम द्रव्यतैं एक 'खण्ड', उभय द्रव्यविशेष द्रव्यतैं, सर्व पूर्व अपूर्व कृष्टिमात्र विशेष ग्रहि दीजिए है। बहुरि द्वितीय कृष्टिविषैं अनंतवां भाग घटता द्रव्य दीजिए है। तहां एक अधस्तन कृष्टिसम्बन्धी समान खण्ड, एक मध्यम खण्ड, एक घाटि सर्व पूर्व अपूर्व कृष्टिमात्र उभय द्रव्यविशेष ग्रहि दीजिए है। ऐसैं ही तृतीयादि अन्तपर्यन्त अधस्तन अपूर्व कृष्टिनिविषैं एक एक उभय द्रव्यका विशेषमात्र घटता क्रमकरि दीजिए है।

बहुरि तिस अंत कृष्टिविषैं दीया द्रव्यतैं पूर्व समयसम्बन्धी सूक्ष्म कृष्टिनिकी जो जघन्य कृष्टि तिसविषैं असंख्यातवां भागमात्र घटता द्रव्य दीजिए है। तहां मध्यम खंडतैं एक खण्ड, उभय द्रव्यविशेष द्रव्यतैं भईं कृष्टिनिकरि हीन सर्व सूक्ष्म कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेष द्रव्य ग्रहि दीजिए है। बहुरि ताके ऊपरि द्वितीय पूर्व कृष्टिविषैं अनंतवां भाग घटता द्रव्य दीजिए है। तहां अधस्तन शीर्षविशेष द्रव्यतैं एक विशेष, मध्यम खंडतैं एक खंड, उभय द्रव्यविशेषतैं भईं कृष्टिनिकरि सर्व सूक्ष्म कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेष ग्रहि दीजिए है। ऐसैं ही तृतीयादि पूर्व कृष्टिनिविषै एक एक अधस्तन शीर्षविशेष बंधता अर एक एक उभय द्रव्यविशेष घटता अर एक एक मध्यम खण्ड समानरूप द्रव्य दीजिए है। यावत् अपूर्व अन्तर कृष्टि प्राप्त न होइ तावत् ऐसा क्रम जानना। बहुरि ऐसैं पल्यका असंख्यातवां भागमात्र कृष्टि भएं तहां अन्त कृष्टिविषैं दीया द्रव्यतैं ताके ऊपरि नवीन निपजाई जो अपूर्व अन्तर कृष्टि तिसविषैं असंख्यातवाँ भागमात्र कृष्टि भएं तहां अन्तविषैं दीया द्रव्यतैं ताके ऊपरि नवीन निपजाई जो अपूर्व अन्तर कृष्टि तिसविषैं

असंख्यातवां भागमात्र अधिक द्रव्य दीजिए है। तहां अन्तर कृष्टिसम्बन्धी समान खण्ड द्रव्यतैं एक खण्ड अर मध्यम खंडतैं एक खंड अर उभय द्रव्यविशेष द्रव्यतैं भई कृष्टिनिकरि हीन सर्व सूक्ष्म कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेष ग्रहि दीजिए है। बहुरि तातैं ताके ऊपरि पूर्व कृष्टि तिसविषैं असंख्यातवां भागमात्र घटता द्रव्य दीजिए है। तहां अधस्तन शीर्षविशेषतैं एक घाटि भई पूर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेष अर मध्यम खण्डतैं एक खण्ड अर उभय द्रव्य विशेषतैं भई सर्व कृष्टिनिकरि हीन सर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेष ग्रहि दीजिए है। बहुरि ताके ऊपरि एक एक अधस्तन शीर्षविशेष बंधता, एक एक उभय द्रव्यविशेष घटता, एक एक मध्यम खण्ड समानरूप दीजिए है यावत् अपूर्व अन्तर कृष्टि न प्राप्त होइ। बहुरि ताके ऊपरि अपूर्व अन्तर कृष्टिविषैं एक अन्तर कृष्टिसम्बन्धी समान खण्ड, एक मध्यम खण्ड, भई कृष्टिनिकरि हीन सर्व कृष्टि प्रमाणमात्र उभय द्रव्यविशेष दीजिए है। सो यहु दीया द्रव्य अपनी नीचली कृष्टिनिविषैं दीया द्रव्यतैं असंख्यातवां भागमात्र अधिक है। बहुरि ताके ऊपरि पूर्व कृष्टिविषैं एक घाटि भई पूर्व कृष्टि प्रमाणमात्र अधस्तन शीर्षविशेष, एक मध्यम खण्ड, भई सर्व कृष्टिनिकरि हीन सर्व कृष्टि प्रमाणमात्र उभय द्रव्य विशेष द्रव्य दीजिए है सो यहु तिस अपूर्व अन्तर कृष्टिविषैं दीया द्रव्यतैं असंख्यातवां भागमात्र घटता है। ताके ऊपरि पूर्व अपूर्व कृष्टिनिविषै ऐसे ही अनुक्रमकरि द्रव्यका देना जानना। यावत् प्रथम समयकृत सूक्ष्म कृष्टिनिकी अंत कृष्टि होइ। बहुरि ताके ऊपरि लोभकी तृतीय बादर संग्रहकृष्टिकी जघन्य कृष्टि तिसविषैं अन्त सूक्ष्म कृष्टिविषैं दीया द्रव्यतैं असंख्यातगुणा घटता दीजिए है। तहां च्यारि प्रकार संक्रमण द्रव्यविषैं मध्यम खण्डतैं एक खण्ड, उभय द्रव्य विशेषतैं सर्व बादर कृष्टिमात्र विशेष ग्रहि दीजिए है। बहुरि ताके ऊपरि तृतीय संग्रह कृष्टिविषै च्यारि प्रकार संक्रमण द्रव्य देनेका अर द्वितीय संग्रहकृष्टिविषैं च्यारि प्रकार बन्ध द्रव्य, तीन प्रकार घात द्रव्य देनेका विधान द्वितीय संग्रहकी उत्कृष्ट कृष्टिपर्यंन्त जैसें प्रथम समय विषैं द्रव्य देनेका विधान कह्या तैसें ही जानना। या प्रकार द्वितीयादि समयनिविषैं द्रव्य देनेका विधान जानना ॥५७२॥

विशेष—दूसरे समयमें जिन सूक्ष्म कृष्टियोंको करता है उनमेंसे जघन्य सूक्ष्म कृष्टिमें बहुत प्रदेशपुंजका निक्षेप करता है। उससे दूसरी सूक्ष्म कृष्टिमें अनन्तवें भाग हीन प्रदेशपुंजका निक्षेप करता है। इस प्रकार उत्तरोत्तर निक्षेप करते हुए अपकर्षण भागहार प्रमाण स्थान ऊपर जाकर उस स्थानसम्बन्धी कृष्टि अन्तरमें प्राप्त होनेवाली अपूर्व कृष्टिको नहीं प्राप्त करके तदनन्तर अधस्तन पूर्व कृष्टिको प्राप्त करता है। यहाँ जो कृष्टि अन्तररूप सन्धिका निर्देश किया है उसमें रची जानेवाली जो अपूर्व कृष्टि है उसमें असंख्यातवें भाग अधिक प्रदेशपुंजका निक्षेप करता है। पुनः इसके आगे पूर्व कृष्टिमें असंख्यातवें भागहीन प्रदेशपुंजका निक्षेप करता है। इस प्रकार आगे भी जहां जहां उक्त विधिसे पूर्व और अपूर्व कृष्टियोंका सन्धिस्थान प्राप्त हो वहां-वहां उक्तरूपसे ही प्ररूपणा करनी चाहिये। इस प्रकार पूर्व कृष्टिसे अपूर्व कृष्टिको और अपूर्व कृष्टिसे पूर्व कृष्टिको प्राप्त करनेवालेके जो सन्धि स्थान हैं उनमें तो उक्त विधिसे ही प्ररूपणा करनी चाहिये। किन्तु इनको छोड़कर सभी स्थानोंमें पूर्व कृष्टिसे पूर्व कृष्टिको प्राप्त होनेपर अनन्त भागहीन ही प्रदेशपुंजका निक्षेप करना चाहिये। इस प्रकार इस विधिसे अन्तिम सूक्ष्म साम्पराय कृष्टिके प्राप्त होने तक जानना चाहिये। इस लिये अन्तिम सूक्ष्मसाम्पराय कृष्टिसे जघन्य बादर साम्पराय कृष्टिमें दिया जानेवाला प्रदेशपुंज असंख्यातगुणा हीन होता है। इस

प्रकार दूसरे समयमें दिये जानेवाले प्रदेशपुंजकी जो विधि कही वही विधि शेष समयोंमें भी जाननी चाहिये।

पढमादिसु दिस्सकमं सुहुमेसु अणंतभागहीणकमं।
बादरकिट्टिपदेसो असंखगुणिदं तदो हीणं[1] ॥५७३॥

प्रथमादिसु दृश्यक्रमं सूक्ष्मेष्वनंतभागहीनक्रमं।
बादरकृष्टिप्रदेशः असंख्यगुणितस्ततो हीनः ॥५७३॥

स० चं०—अब दीया द्रव्य वा पूर्व द्रव्य मिलैं कृष्टिनिविषैं देनेमें आया ऐसा दृश्यमान द्रव्य ताका क्रम कहिए है—

प्रथमादि समयनिविषैं जघन्य सूक्ष्म कृष्टिविषै दृश्यमान द्रव्य बहुत है। ताके ऊपरि द्वितीयादि अन्तपर्यन्त सूक्ष्म कृष्टिनिविषैं अनन्तगुणा घटता क्रम लीएं दृश्यमान द्रव्य है। एक-एक विशेष मात्र घटता है। बहुरि ताके ऊपरि तृतीय संग्रहकी बादर जघन्य कृष्टि ताका प्रवेश होतैं तिसविषैं दृश्यमान द्रव्य अंत सूक्ष्म कृष्टिका दृश्यमान द्रव्यतैं असंख्यातगुणा है। ताके ऊपरि द्वितीयादि द्वितीय संग्रहकी अंत बादर कृष्टिपर्यन्त दृश्यमान द्रव्य अनंतगुणा घटता क्रम लीएं एक-एक विशेष मात्र घटता है ऐसा जानना ॥ ५७३ ॥

विशेष—अब सूक्ष्म कृष्टियों को करनेवाले जीवके दृश्यमान प्रदेशपुंज किस प्रकार होता है यह बतलाते हैं—जघन्य सूक्ष्म कृष्टिमें द्रव्य बहुत होता है। उससे आगे अन्तिम सूक्ष्म कृष्टिके प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर अनन्तवाँ भागहीन द्रव्य होता है। उस अन्तिम सूक्ष्म कृष्टिसे बादर कृष्टिमें प्रदेशपुंज असंख्यातगुणा होता है, क्योंकि बादर कृष्टियोंमेंसे असंख्यातवें भाग प्रमाण प्रदेशपुंजका अपकर्षण करके सूक्ष्म कृष्टियोंको करनेवाले जीवके सूक्ष्म कृष्टियोंमें दिखनेवाले प्रदेशपुंजसे बादर कृष्टियोंमें दिखनेवाले प्रदेशपुंजके असंख्यातगुणे होनेमें कोई प्रत्यवाय नहीं दिखाई देता। अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा विचार करने पर बादर कृष्टियोंमें उत्तरोत्तर अनन्तवाँ भागहीन प्रदेशपुंज होता है ऐसा जानना चाहिये। सूक्ष्म कृष्टियोंको करनेवालेकी अपेक्षा सभी समयोंमें दृश्यमान प्रदेशपुंजोंकी यह व्यवस्था है ऐसा जानना चाहिये।

लोहस्स य तदियादो सुहुमगदं विदियदो दु तदियगदं।
विदियादो सुहुमगदं दव्वं संखेज्जगुणिदकमं[2] ॥५७४॥

---

१. सुहुमसांपराइयकिट्टीकारगस्स किट्टीसु दिस्समाणपदेसग्गस्ससेढि परूवणं। तं जहा—जहण्णियाए सुहुमसांपराइयकिट्टीए पदेसग्गं बहुगं। तत्तो अणंतभागहीणं जाव चरिमसुहुमसांपराइयकिट्टी त्ति। तदो जहण्णियाए बादरसांपराइयकिट्टीए पदेसग्गमसंखेज्जगुणं।..........णवरि सेणीयादो जदि बादरसांपराइयकिट्टीओ धरेदि तस्य पदेसग्गं विसेसहीणं होज्ज। क० चु०, पृ० ८६६–८६७।

२. सुहुमसांपराइयकिट्टीसु लोभस्स चरिमादो बादरसांपराइयकिट्टीदो सुहुमसांपराइयकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं थोवं। लोभस्स विदियकिट्टीदो चरिमबादरसांपराइयकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं संखेज्जगुणं। लोभस्स विदियकिट्टीदो सुहुमसांपराइयकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं संखेज्जगुणं। क० चु० पृ० ८६७।

लोभस्य च तृतीयतः सूक्ष्मगतं द्वितीयस्तु तृतीयगतं ।
द्वितीयतः सूक्ष्मगतं द्रव्यं संख्येयगुणितक्रमं ।।५७४।।

सं० चं०—लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टितैं जो द्रव्य सूक्ष्म कृष्टिरूप परिनम्या सो स्तोक है। तातैं लोभकी द्वितीय संग्रह कृष्टितैं जो द्रव्य लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिरूप परिनम्या सो संख्यातगुणा है। तातैं लोभकी द्वितीय संग्रह कृष्टितैं जो द्रव्य सूक्ष्म कृष्टिरूप परिनम्या सो संख्यातगुणा है, जातैं लोभकी तृतीय संग्रहकी कृष्टिनिका प्रमाणतैं सूक्ष्म कृष्टिका प्रमाण संख्यातगुणा है ।।५७४।।

किट्टीवेदगपढमे कोहस्स य विदियदो दु तदियादो ।
माणस्स य पढमगदो माणतियादो दु मायपढमगदो ।।५७५।।
मायतियादो लोभस्सादिगदो लोभपढमदो विदियं ।
तदियं च गदा दव्वा दसपदमद्धियकमा होंति ।।५७६।।

कृष्टिवेदकप्रथमे क्रोधस्य च द्वितीयतस्तु तृतीयतः ।
मानस्य च प्रथमगतं मानत्रयात् तु मानप्रथमगतः ।।५७५।।
मायात्रिकात् लोभस्यादिगतः लोभप्रथमतः द्वितीयं ।
तृतीयं च गतानि द्रव्याणि दशपदमधिकक्रमाणि भवंति ।।५७६।।

सं० चं०—इहां सूक्ष्म कृष्टिनिविषैं संक्रमण भया द्रव्यके प्रमाण ल्यावनेका साधक ऐसा बादर कृष्टिविषैं संक्रमण भया प्रदेशनिका अल्पबहुत्व कहिए है—

बादर कृष्टिवेदक कालका प्रथम समयविषैं क्रोधको द्वितीय संग्रह कृष्टितैं मानकी प्रथम संग्रह कृष्टिविषैं संक्रमण भया द्रव्य स्तोक है। तातैं क्रोधकी तृतीय संग्रह कृष्टितैं मानकी प्रथम संग्रह कृष्टिविषैं संक्रमण भया द्रव्य विशेष अधिक है। जातैं स्तोक अनुभागयुक्त तृतीय संग्रह विषैं कृष्टिनिका प्रमाण है सो वह अनुभागयुक्त द्वितीय संग्रहकी कृष्टिनिका प्रमाणतैं विशेष अधिक है, तातैं संक्रमण द्रव्य भी विशेष अधिक जानना। इहां पात्रके अनुसारि अधिकपना जानना। पात्रके अनुसारि कहा ? द्वितीय संग्रहका कृष्टिनिका प्रमाणतैं तृतीय संग्रहकी कृष्टिनिका प्रमाण जैसें अधिक कह्या तैसें ही संक्रमण द्रव्य भी अधिक कहना। सो इहां पल्यका असंख्यातवाँ भागका भाग दीएं एक भाग मात्र अधिक जानना। बहुरि तातैं मानकी प्रथम संग्रह कृष्टितैं मायाकी प्रथम संग्रह कृष्टिविषैं संक्रमण भया द्रव्य विशेष अधिक है। इहाँ भी पात्रानुसारि क्रोधकी तृतीय संग्रहकी कृष्टिनितैं मानकी प्रथम संग्रहकी कृष्टि जैसें अधिक है तैसें ही आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं एक भागमात्र अधिक जानना। बहुरि तातैं मानकी द्वितीय संग्रह कृष्टितैं मायाकी प्रथम संग्रह कृष्टिविषैं संक्रमण भया द्रव्य विशेष अधिक है। तातैं मानकी तृतीय संग्रहकृष्टितैं मायाकी प्रथम संग्रहकृष्टिविषैं संक्रमण भया द्रव्य विशेष अधिक है इहां दोऊ जायगा पात्रानुसारि अधिकका प्रमाण पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएं एक भागमात्र है। बहुरि

---

१. पढमसमयकिट्टीवेदगस्स कोहस्स विदियकिट्टीदो माणस्स पढमसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं थोवं। कोहस्स तदियकिट्टीदो माणस्स पढमाए संग्रहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं विसेसाहियं ।

—क० चु० पृ० ८६७-८६८ ।

तातैं मायाकी प्रथम संग्रह कृष्टितैं लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिविषैं संक्रमण भया प्रदेश विशेष अधिक है। इहां पात्रानुसारि विशेषका प्रमाण आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं एक भागमात्र है। बहुरि तातैं मायाकी द्वितीय संग्रहतैं लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिविषैं संक्रमण भया प्रदेश विशेष अधिक है। तातैं मायाकी तृतीय संग्रहतैं लोभकी प्रथम संग्रह विषैं संक्रमण भया प्रदेश विशेष अधिक है। इहां दोऊ जायगा विशेषका प्रमाण पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएं एक भागमात्र है। तातैं लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टितैं लोभकी द्वितीय संग्रह कृष्टिविषैं संक्रमण भया प्रदेश समूह विशेष अधिक है। इहां पात्रानुसारि विशेषका प्रमाण आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं एक भागमात्र है। इहां प्रश्न—

जो अन्य कषायकी संग्रहकृष्टिका द्रव्य अन्य कषायकी संग्रह कृष्टिविषैं संक्रमण होना कह्या तहां परस्थान संक्रमणविषैं अपने अपने द्रव्यकौं अधःप्रवृत्त भागहारका भाग दीएं एक भागमात्र द्रव्य संक्रमण हो हैं, तातै अन्य कषायविषैं संक्रमण द्रव्यतैं विशेष अधिकका क्रम कह्या सो तौ बनै है। बहुरि लोभकी प्रथम संग्रहतैं ताहीकी द्वितीय संग्रहविषैं संक्रमण भया सो इहां स्वस्थान संक्रमण है। सो इहां अपने द्रव्यकौं अपकर्ष भागहारका भाग दीएं एकभागमात्र द्रव्य संक्रमण हो है। अर अधःप्रवृत्त भागहारतैं अपकर्षण भागहार असंख्यातगुणा घटता है, तातैं पूर्वोक्त संक्रमण द्रव्यतैं याका संक्रमण द्रव्य असंख्यातगुणा कहौ, विशेष अधिक कैसे कहौ हो? ताका समाधान—

इहां परिणामके अतिशयतैं अधःप्रवृत्त भागहार भी अपकर्षण भागहारहीके अनुसारि बर्तै है सो ऐसा विशेष इहां ही संभवै है, अन्यत्र सर्वत्र अधःप्रवत्त भागहारतैं अपकर्षण भागहार असंख्यातगुणा घटता ही जानना। बहुरि तातैं लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टितैं लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टिविषैं संक्रमण भया प्रदेश विशेष अधिक है। इहां पात्रानुसारि विशेषका प्रमाण पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएं एक भागमात्र है। ऐसैं दश स्थान [1]अधिक क्रम लीएं जानने ॥५७५-५७६॥

विशेष—कृष्टिकरण कालके समाप्त होने पर तदनन्तर समयमें जो क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिका अपकर्षण कर वेदन करता है वह प्रथम समयवर्ती कृष्टिवेदक कहलाता है। उसके क्रोधकी द्वितीय सग्रह कृष्टिसे मानकी प्रथम कृष्टिमें संक्रमित होनेवाला प्रदेशपुंज सबसे थोड़ा है। उससे क्रोधकी तृतीय संग्रह कृष्टिसे मानकी प्रथम संग्रह कृष्टिमें संक्रमित होनेवाला प्रदेशपुंज विशेष अधिक है। क्रोधकी तृतीय संग्रह कृष्टिमें पल्योपमके असंख्यातवें भागका भाग देने पर जो एक भाग प्राप्त हो उतना विशेषका प्रमाण है। उससे मानकी प्रथम संग्रह कृष्टिसे मायाकी प्रथम कृष्टिमें संक्रमित होनेवाला प्रदेशपुंज विशेष अधिक है। यहाँ मानकी प्रथम संग्रह कृष्टिमें आवलिके असंख्यातवें भागका भाग देने पर जो एक भाग प्राप्त हो उतना विशेषका प्रमाण है। इसी प्रकार आगे जानना चाहिये। टीकामें स्पष्टीकरण किया ही है।

कोहस्स य पढमादो माणादी कोधतदियविदियगदं।
तत्तो संखेज्जगुणं अहियं संखेज्जसंगुणियं ॥ ५७७ ॥

---

१. कोहस्स पढमसंगहकिट्टीदो माणस्स पढमसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं संखेज्जगुणं। कोहस्स

क्रोधस्य च प्रथमात् मानादौ क्रोधतृतीयद्वितीयगतम् ।
ततः संख्येयगुणमधिकं संख्येयसंगुणितम् ।। ५७७ ।।

स० चं० —बहुरि तिस पूर्वोक्त क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टितैं मानकी प्रथम संग्रहविषैं संक्रमण भया द्रव्य संख्यातगुणा है, जातैं लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टिका द्रव्यतैं क्रोधकी प्रथम संग्रहका द्रव्य तेरहगुणा है। बहुरि तातैं क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टितैं क्रोधकी तृतीय संग्रह कृष्टिविषैं संक्रमण भया प्रदेश विशेष अधिक है। इहां विशेषका प्रमाण पात्रानुसारि पल्यका असंख्यातवां भागमात्र है। बहुरि तातैं क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टितैं क्रोधकी द्वितीय संग्रह कृष्टिविषैं संक्रमण भया प्रदेश समूह संख्यातगुणा है[1]। यद्यपि इहां पूर्वोक्ततै पात्र अल्प है, स्तोक कृष्टिनिका प्रमाण है तथापि वेदिये है जो संग्रह कृष्टि ताका द्रव्य है सो ताके अनंतरि जो संग्रह कृष्टि वेदनेमें आवै तहां संक्रमण होने योग्य औरनितैं संख्यातगुणा कह्या है, तातैं इहां वेद्यमान क्रोधकी प्रथम संग्रहका ताके अनंतरि वेद्यमान द्वितीय संग्रह विषैं संक्रमण भया द्रव्य संख्यातगुणा कह्या है। ऐसैं इस कथनका अवसर उल्लंघि आए तो भी इहां कथन कीया, सो सूक्ष्म कृष्टिका प्रमाण ल्यावनेकौं पूर्वें कथन कीया ता कर्म मिलावनेकौं कह्या है। कैसैं ? लोभकी द्वितीय संग्रह कृष्टितैं जो ताकी तृतीय संग्रह कृष्टिविषैं संक्रमण प्रदेश भया तातैं संख्यातगुणा प्रदेश सूक्ष्म कृष्टिरूप हो है। ऐसैं यह अनुक्रम कह्या, सो इहां ही यह गुणकारकी प्रवृत्ति नाहो भई है। पूर्वें बादर कृष्टिविषैं भी संख्यातगुणे द्रव्यतैं संक्रमण भया द्रव्य संख्यातगुणा कहा है। ऐसैं क्रोधका द्रव्य तेरहगुणा था, तातैं संक्रमण भया द्रव्य चौदहका गुणकार लीएं कह्या था, ऐसैं ही क्रमतैं इहां लोभकी द्वितीय कृष्टिका द्रव्य तेईसगुणा है, तातैं संक्रमण भया द्रव्य चौईसका गुणकार लीएं जानना। इस अनुक्रम जाननेकौं इहां यह कथन कीया है ।। ५७७ ।।

लोभस्स विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जाव पढमठिदी ।
आवलितियमवसेसं आगच्छदि विदियदो तदियं[2] ।। ५७८ ।।

लोभस्य द्वितीयकृष्टिं वेद्यमानस्य यावत् प्रथमस्थितिः ।
आवलित्रिकमवशेषमागच्छति द्वितीयतस्तृतीयं ।। ५७८ ।।

स० चं०—या प्रकार लोभकी द्वितीय संग्रहकृष्टिकौं वेदता जीवकैं ताकी प्रथम स्थितिविषैं यावत् तीन आवली अवशेष रहैं तावत् द्वितीय संग्रहतैं तृतीय संग्रहकौं द्रव्य संक्रमणरूप होइ प्राप्त हो है। सो कहिए है—

लोभकी द्वितीय संग्रहकी प्रथम स्थितिविषैं विश्रमणावली संक्रमणावली उच्छिष्टावली ए तीन अवशेष रहैं तावत् लोभकी द्वितीय संग्रहका द्रव्य लोभकी तृतीय संग्रहविषै दीजिए है। जातैं

पढमसंगहकिट्टीदो कोहस्स चेव विदियसंगहकिट्टीए संकमदि पदेसग्गं संखेज्जगुणं। एसो पदेससंकमो अइक्कंतो उक्खेदिदो सुहुमसांपराइयकिट्टीसु कीरमाणीसु आसओ त्ति कादूण। क० चु० पृ० ८६८।

१. हिन्दी टीका में 'असंख्यातगुणा है' यह पाठ मुद्रित है।

२. एदेण कमेण लोभस्स विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पणमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए आवलिया समयाहिया सेसा त्ति तम्हि समये चरिमसमयबादरसांपराइओ। क० चु० पृ० ८६८।

तृतीय संग्रहविषैं संक्रमण भया जो द्रव्य सो तहां विश्रमणावली पर्यन्त तौ तहां ही विश्रामकरि तिष्टैं, पीछैं संक्रमणाबलीविषै सूक्ष्मकृष्टिरूप होइ संक्रमण करै, तब उच्छिष्टावलीमात्र प्रथम स्थिति अवशेष रहि जाय, तातैं तीन आवली अवशेष रहैं तावत् द्वितीय संग्रहका द्रव्य तृतीय संग्रहविषै संक्रमण होना कह्या। बहुरि ताके ऊपरि द्वितीय संग्रहका द्रव्य अपकर्षण संक्रमणकरि सूक्ष्मकृष्टि होविषै संक्रमण करै है। यावत् दोय आवली अवशेष रहैं तावत् ऐसैं जानना। बहुरि तहां आगाल प्रत्यागालकी व्युच्छित्ति करि बहुरि समय घाटि आवलीमात्र निषेकनिकौं अधोगलनरूप क्रमतैं भोगि समय अधिक आवली अवशेष राखै है ॥५७८॥

तत्तो सुहुमं गच्छदि समयाहियआवलीयसेसाए ।
सव्वं तदियं सुहुमे णव-उच्छिट्ठं विहाय विदियं[1] च ॥५७९॥

ततः सूक्ष्मं गच्छति समयाधिकावलीशेषायाम् ।
सर्वं तृतीयं सूक्ष्मे नवकमुच्छिष्टं विहाय द्वितीयं च ॥५७९॥

स० चं०—बहुरि तहाँ द्वितीय संग्रहकी प्रथम स्थितिविषै समय अधिक आवली अवशेष रहैं अनिवृत्तिकरणका अन्त समय हो है। तहां लोभकी तृतीय संग्रहकृष्टिका तौ सर्व द्रव्य सूक्ष्मकृष्टिकौं प्राप्त हो है। बहुरि लोभकी द्वितीय संग्रहका द्रव्यविषैं समय अधिक उच्छिष्टावलीमात्र निषेक अर समय घाटि दोय आवलीमात्र नवक समयप्रबद्ध एतौ बादर कृष्टिरूप रहैं हैं। अन्य सर्व द्रव्य सूक्ष्मकृष्टिरूप द्रव्यार्थिक नय अपेक्षा तौ इस सममयविषैं परिनमैं है। बहुरि पर्यायार्थिक नय अपेक्षा अगले समयविषै उच्छिष्टावलीमात्र निषेक अर दोय समय घाटि दोय आवलीमात्र नवक समयप्रबद्ध विना अन्य सर्व द्वितीय संग्रहका द्रव्य सूक्ष्मकृष्टिरूप परिनमैं है ऐसा जानना ॥५७९॥

लोभस्स तिघादीणं ताहे अघादीतियाण ठिदिबंधो ।
अंतो दु मुहुत्तस्स य दिवसस्स य होदि वरिसस्स[2] ॥५८०॥

लोभस्य त्रिघातिनां तत्राघातित्रयाणां स्थितिबंधः ।
अंतस्तु मुहुर्तस्य च दिवसस्य च भवति वर्षस्य ॥५८०॥

स० चं०—तहाँ अनिवृत्तिकरणका अंत समयविषै संज्वलन लोभका जघन्य स्थितिबंध अंतर्मुहूर्तमात्र है। इहाँ ही मोहबंधकी व्युच्छित्ति भई। बहुरि तीन घातियानिका एक दिनतैं किछू घाटि अर तीन अघातियानिका एक वर्षतैं किंचित् न्यून स्थितिबंध हो है ॥५८०॥

---

१. एदेण कमेण लोभस्स विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए आवलिया समयाहिआ सेसा त्ति तम्हि समये चरिमसमयबादरसांपराइओ। तम्हि चेव समये लोभस्स चरिमबादरसांपराइय-किट्टी संछुब्भमाणा संछुद्धा। लोभस्स विदियकिट्टीए वि दोआवलियबंधे समयूणे मोत्तूण उदयावलियपविट्ठं च मोत्तूण सेसाओ विदियट्ठिदीए अंतरकिट्टीओ संछुब्भमाणाओ संछुद्धाओ। क० चु० पृ० ८६८-८६९।

२. तम्हि चेव लोभसंजलणस्स ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तं। तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिबंधो अहोरत्तस्स अंतो। णामा-गोद-वेदणीयाणं बादरसांपराइयस्स जो चरिमो ट्ठिदिबंधो सो संखेज्जेहिं वस्ससहस्सेहिं हाइदूण वरसस्स अंतो जादो। क० चु० पृ० ८६९।

ताणं पुण ठिदिसंतं कमेण अंतोमुहुत्तयं होइ ।
वस्साणं संखेज्जसहस्साणि असंखवस्साणि[1] ॥५८१॥

तेषां पुनः स्थितिसत्त्वं क्रमेणांतर्मुहूर्तकं भवति ।
वर्षाणां संख्येयसहस्राणि असंख्यवर्षाणि ॥५८१॥

स० चं०—तहां तिनिका स्थितिसत्त्व क्रमकरि लोभका अंतर्मुहूर्त, तीन घातियानिका यथायोग्य संख्यात हजार वर्षमात्र, तीन अघातियानिका यथायोग्य असंख्यात वर्षमात्र है ॥५८१॥

से काले सुहुमगुणं पडिवज्जदि सुहुमकिट्टिठिदिखंडं ।
आणायदि तद्दव्वं उक्कट्टिय कुणदि गुणसेढिं[2] ॥५८२॥

स्वे काले सूक्ष्मगुणं प्रतिपद्यते सूक्ष्मकृष्टिस्थितिखंडं ।
आनयति तद्द्रव्यं अपकृष्य करोति गुणश्रेणिं ॥५८२॥

स० चं०—अनिवृत्तिकरणका अंत समयके अनंतरि सूक्ष्म कृष्टिनिकौं वेदतौ संतौ अपने कालविषैं सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानकौं प्राप्त हो है । इहां ताका प्रथम समयविषैं लोभकी सूक्ष्म कृष्टिनिकी जो अंतर्मुहूर्तमात्र स्थिति है ताके संख्यातवें भागमात्र स्थितिकांडकआयाम लांछित हो है । बहुरि मोहका कृष्टिकौं प्राप्त भया अनुभाग ताका तौ अनुसमयापवर्तन अर ज्ञानावरणादिकनिका स्थितिकांडकघात अनुभागकांडकघात सो पूर्वोक्तवत् वर्तै है । बहुरि तिस समयविषैं द्रव्यनिक्षेपणका विधान कहिए है—

सूक्ष्म कृष्टिसम्बन्धी स्थितिविषै प्राप्त जो मोहका सर्व द्रव्य ताकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ तहां एक भाग अपकर्षणकरि गुणश्रेणि करै है ॥५८२॥

गुणसेढि अंतरट्ठिदि विदियट्ठिदि इदि हवंति पव्वतिया ।
सुहुमगुणादो अहिया अवट्ठिदुदयादिगुणसेढी[3] ॥५८३॥

गुणश्रेणिरंतरस्थितिः द्वितीयस्थितिरिति भवंति पर्वत्रयाणि ।
सूक्ष्मगुणतोऽधिका अवस्थितोदयादिगुणश्रेणी ॥५८३॥

१. चरिमसमयबादरसांपराइयस्स मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्ममंतोमुहुत्तं । तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिसंतकम्मं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । णामा-गोद-वेदणीयाणं ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्साणि ।
क० चु० पृ० ८६९ ।

२. से काले पढमसमयसुहुमसांपराइयो जादो । ताधे चेव सुहुमसांपराइयकिट्टीणं जाओ ठिदीओ तदो ठिदिखंडयमागाइदं । तदो पदेसमोकड्डियूण उदये थोवं दिण्णं । अंतोमुहुत्तद्धमेत्तमसंखेज्जगुणाए सेढीए देदि । क० चु० पृ० ८६९ ।

३. गुणसेढिणिक्खेवो सुहुमसांपराइयअद्धादो विसेसुत्तरो । क० चु० पृ० ८६९ । एत्थ जइ वि सुहुमसांपराइयकिट्टीणं अंतरापूरणवसेण एक्का चेव जादा, तो वि अणयट्टिचरिमसमयावेक्खाए पढम-विदिय-ट्ठिदिभेदं कादूण अंतरचरमट्ठिदी विदियट्ठिदी आदिट्ठिदी च घेत्तव्वा । जयध० ता० प्र०, पृ० २२१० ।

स० चं०—गुणश्रेणि १ अंतर स्थिति २ द्वितीय स्थिति ३ ए तीन पर्व हैं। अपकर्षण कीया हुआ द्रव्य इन तीनविषैं विभागकरि दीजिए है। इहां यावत् अपकर्षण कीया द्रव्यकौं असंख्यातगुणा क्रम लीए दीजिए ताका नाम गुणश्रेणि है। बहुरि ताके ऊपरिवर्ती जिनि निषेकनिका पूर्वै अभाव कीया था तिनका प्रमाणरूप अन्तरस्थिति है। ताके उपरिवर्ती अवशेष सर्वस्थिति ताका नाम द्वितीय स्थिति है। तहां सूक्ष्म सांपरायका जो काल तातैं किछू विशेषकरि अधिक है तौ भी इहां संभवता ज्ञानावरणादिकनिका गुणश्रेणि आयामतैं अन्तर्मुहूर्तमात्र घटता ऐसा इहां गुणश्रेणि आयाम है सो यहु उदयादि अवस्थित है। उदयरूप जो वर्तमान समय तातैं लगाय यहु पाइए है। पूर्ववत् उदयावली भए पीछैं नाहीं है, तातैं उदयादि कहिए है। बहुरि अवस्थितप्रमाण लीए है। पूर्वै गलितावशेष गुणश्रेणि आयामविषै एक एक समय व्यतीत होतैं गुणश्रेणि आयामविषै घटता होता था अब एक एक समय व्यतीत होतैं ताके अनन्तरवर्ती अन्तरायामका एक एक समय मिलि गुणश्रेणि आयामका जेताका तेता रहै है, तातैं अवस्थित कहिए ॥५८३॥

ओकट्टिदइगिभागं गुणसेढीए असंखबहुभागं।
अंतरहिद विदियठिदी संखसलागा हि अवहरिया ॥५८४॥
गुणिय चउरादिखंडे अंतरसयलट्ठिदिम्हि णिक्खिवदि।
सेसबहुभागमावलिहीणे वितियट्ठिदीए हू[1] ॥५८५॥

अपकर्षितैकभागं गुणश्रेण्यामसंख्यबहुभागम्।
अंतरहिते द्वितीयस्थितिः संख्यशलाका हि अपहरिताः ॥५८४॥
गुणित्वा चतुरादिखंडे अंतरसकलस्थितौ निक्षिपति।
शेषबहुभागमावलिहीने द्वितीयस्थितौ हि ॥५८५॥

स० चं०—अपकर्षण कीया जो द्रव्य ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागमात्र असंख्यातका भाग दीएं तहां एकभागमात्र द्रव्यकौं गुणश्रेणी आयामविषै दीजिए है। बहुरि अवशेष बहुभागमात्र द्रव्यकौं अन्तर स्थितिका भाग द्वितीय स्थितिकौं दीएं जो संख्यातप्रमाण लीएं एकशलाकाका प्रमाण आवै ताका भाग दीजिए तहां एकभागकौं संदृष्टि अपेक्षा च्यारिकरि गुणिए इतना द्रव्य अन्तर स्थितिविषै दीजिए है। बहुरि अवशेष सर्वद्रव्य सो अन्तविषैं अतिस्थापनावलीकरि हीन जो द्वितीय स्थिति तीहविषैं दीजिए है। सोई दिखाइए है—

अन्तरस्थितिका प्रमाण सर्वतैं स्तोक सो संदृष्टिकरि चौगुणा अंतर्मुहूर्तमात्र, बहुरि तातैं स्थितिकांडकायामका प्रमाण संख्यातगुणा, सो संदृष्टिकरि सोलहगुणा अन्तर्मुहूर्तमात्र, बहुरि तातैं स्थितिकांडकके नीचैं जो अवशेष स्थिति रहै ताका प्रमाण संख्यातगुणा सो संदृष्टिकरि चौसठि-

---

१. गुणसेढिणिक्खेवो सुहुमसांपराइयअद्धादो विसेसुत्तारो। गुणसेढिसीसगादो जा अंतरट्ठिदी तत्थ असंखेज्जगुणं। तत्तो विसेसहीणं ताव जाव पुव्वसमये अंतरमासी, तस्स अंतरस्स चरिमादो अंतरट्ठिदीदो त्ति। चरिमादो अंतरट्ठिदीदो पुव्वसमये जा विदियट्ठिदी तिस्से आदिट्ठिदीएदिज्जमाणगं पदेसग्गं संखेज्जगुणहीणं। तत्तो विसेसहीणं। पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स जमोकड्डिज्जदि पदेसग्गं तमेदोए सेढीए णिक्खवदि। क० चु० पृ० ८७०।

गुणा अन्तर्मुहूर्तमात्र, स्थितिकांडकायाम अर अवशेष स्थिति जोडैं सर्व द्वितीय स्थितिका प्रमाण होइ सो असोगुणा अन्तर्मुहूर्तमात्र, स्थितिकांडकायामका भाग द्वितीय स्थिति आयामकौं दीएं संदृष्टिकरि बीस पाए, सो ऐसा संख्यातप्रमाण लीएं जो शलाका ताका भाग असंख्यात बहुभागमात्र अपकर्षण द्रव्यकौं दीएं तहां एक खंडकौं अन्तर स्थितिविषैं देना कहिए तौ अन्तर स्थितिका अन्त निषेकविषै दीया द्रव्यतैं द्वितीय स्थितिविषैं दीया द्रव्य किंचित् ऊन होइ, अर दोय खण्ड देना कहिए तौ किंचित् न्यून त्रिभागमात्र होइ। ऐसैं क्रमकरि यथायोग्य संख्यात खण्ड ग्रहि अंतर स्थितिविषैं दीजिए है। सो यहु अपकर्षण कीया सर्व द्रव्यके संख्यातवै भागमात्र होइ। संदृष्टिकरि तिस असंख्यात बहुभागमात्र द्रव्यकौं बीसका भाग देइ च्यारिकरि गुणैं अंतर स्थितिविषैं दीया द्रव्यका प्रमाण आवै है। बहुरि तिस असंख्यात बहुभागमात्र द्रव्यविषैं इतना घटाएं जो अवशेष रह्या सो द्वितीय स्थितिविषैं अन्तविषैं अतिस्थापनावली छोडि सर्वत्र दीजिएं है। संदृष्टि करि तिस असंख्यात बहुभागमात्र द्रव्यकौं बीसका भाग देइ तहां सोलह भागमात्र द्रव्य द्वितीय स्थितिविषैं दीजिए है॥ ५८४—५८५ ॥

विशेष—विशेष स्पष्टीकरण टीकामें अंकसंदृष्टि द्वारा किया ही है। टीकामें जो अंक संदृष्टि दी है उसका भाव यह है कि गुणश्रेणिनिक्षेपको १ मानकर उससे अन्तर स्थितिका प्रमाण ४ गुणा है, स्थितिकाण्डकायामका प्रमाण १६ गुणा है, स्थितिकाण्डकायामके नीचे जो अवशेष स्थिति रही उसका प्रमाण ६४ गुणा है, इसलिये स्थितिकाण्डकायाम और अवशेष स्थितिका प्रमाण मिलकर ८० गुणा हुआ, यही द्वितीय स्थितिका प्रमाण है। अब यह देखना है कि गुणश्रेणिमें दिये द्रव्यके बाद जो असंख्यात बहुभागमात्र अपकर्षित द्रव्य शेष रहता है उसमेंसे कितना द्रव्य अन्तर स्थितिमें दिया जाता है और कितना द्रव्य द्वितीय स्थितिमें दिया जाता है। इसके लिये पहले जो द्वितीय स्थितिका प्रमाण ८० गुणा बतलाया है उसमें स्थितिकाण्डकायामका भाग भी सम्मिलित है, यहाँ इसकी २० शलाका मान ली गई हैं। अतः असंख्यात बहुभागमात्र द्रव्यमें २० का भाग देकर चारसे गुणा करने पर जो द्रव्य प्राप्त हुआ उतना अन्तर स्थिति आयाममें निक्षिप्त होता है और शेष बहुभागप्रमाण द्रव्य अतिस्थापनावलिको छोड़कर द्वितीय स्थितिमें निक्षिप्त होता है ऐसा समझना चाहिये। यहाँ द्वितोयादि समयोंमें प्रथम समयके समान जाननेको सूचना की है सो अपकर्षित द्रव्यके निक्षेपकी जो विधि प्रथम समयमें बतलाई है वही विधि द्वितीयादि समयोंमें भी जानना चाहिये यह इसका भाव है।

अंतरपढमठिदि त्ति य असंखगुणिदक्कमेण दिज्जदि हु।
हीणकमं संखेज्जगुणूणं हीणक्कमं तत्तो[1] ॥ ५८६ ॥

अंतरप्रथमस्थित्यंतं असंख्यगुणितक्रमेण दीयते हि।
हीनक्रमं संख्येयगुणोनं हीनक्रमं ततः ॥५८६॥

स० चं०—अंतरायामकी प्रथम स्थिति जो प्रथम निषेक तहां पर्यन्त तौ असंख्यातगुणा

१. पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स जमोकड्डिज्जदि पदेसग्गं तमेदीए सेढीए णिक्खिवदि। विदियसमए वि एवं चेव। तदियसमए वि एवं चेव। एस कमो ओकड्डिदूण णिसिंचमाणगस्स पदेसग्गस्स ताव जाव सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदिखंडयं णिल्लेविदं। क० चु० पृ० ८७०।

क्रम लीएं द्रव्य दीजिए है। ताके ऊपरि हीन क्रम लीए संख्यातगुणा घटता बहुरि हीन क्रमलीए द्रव्य दीजिए है। सोई कहिए है।

गुणश्रेणिआयामका प्रथम निषेकविषैं दीया द्रव्यकी एक शालाका, तातैं द्वितीय निषेकविषैं दीया द्रव्यकी शालाका पल्यकी असंख्यातवां भागगुणी है। ऐसैं क्रमतैं गुणकार लीए अन्त निषेकपर्यंत जेती शालाका होइ तिनका जोड दीए जो प्रमाण होइ ताका भाग गुणश्रेणिविषैं देने योग्य पूर्वोक्त द्रव्यकौं देइ तहां एक भागकौं अपनी अपनी शालाका प्रमाणकरि गुणें प्रथमादि निषेकनिविषैं द्रव्य देनेका प्रमाण आवै है। अंक संदृष्टिकरि जैसैं एकतैं लगाय चौगुणी-चौगुणी शलाका च्यारि निषेकनिविषैं स्थापि १।४।१६।६४। जोडैं पिचासी होइ। ताका भाग द्रव्यकौं देइ एक च्यारि आदिकरि गुणें प्रथमादि निषेकनिविषै दीया द्रव्यका प्रमाण आवै है। इहां गुणकारविषैं जोड़ देनेका प्रमाण करणसूत्र यह जानना—

पदमितगुणहतिगुणितप्रभेदः स्याद्गुणधनं तदा तदा द्व्यूनं।
एकोनगुणविभक्तं गुणसंकलितं विजानीयात् ॥१॥

गच्छमात्र गुणकारनिकौं परस्पर गुणैं गुणधन होइ। तहां प्रथम स्थान घटाइ अवशेषकौं एक घाटि गुणकारका भाग दीएं गुणकार विषैं संकलनधन आवै है। जैसैं इहां संदृष्टिविषैं गच्छ च्यारि, गुणकार च्यारि, सो च्यारि जायगा च्यारि च्यारि माडि परस्पर गुणैं दोयसैं छप्पन होइ, तामैं आदि एक घटाइ अवशेषकौं एक घाटि गुणकार तीन, ताका भाग दीएं जोड पिच्यासी हो है। सो ऐसैं वर्तमान उदयरूप गुणश्रेणिका प्रथम निषेकतैं लगाय गुणश्रेणि शीर्षपर्यंत दीजिए है। गुणश्रेणिका अन्तका निषेककौं गुणश्रेणिशीर्ष कहिए है, सो सूक्ष्मसांपरायका प्रथम समयविषैं तो इहां कह्या गुणश्रेणि आयाम ताका जो अन्त निषेक सोई गुणश्रेणिशीर्ष है। बहुरि द्वितीयादि समयनिविषैं एक एक समय व्यतीत होतैं जो अन्तरायामका प्रथमादि निषेक गुणश्रेणिविषैं (श्रेणि) मिल्या सो गुणश्रेणीशीर्ष है। जातैं इहां अवस्थित गुणश्रेणिआयाम है। बहुरि गुणश्रेणिके उपरिवर्ती जो अंतरायामके निषेक तिनिविषैं द्रव्य देनेका विधान कहिए है—

अंतरायामविषैं देनेयोग्य जो पूर्वोक्त द्रव्य ताकौं अंतरायाममात्र गच्छका भाग दीएं मध्यम धन होइ। तीहिविषैं एकघाटि गच्छका आधा प्रमाणमात्र विशेष जोडैं जो होइ तितना द्रव्य अंतरायामका प्रथम निषेकविषैं दीजिए है सो यहु द्रव्य गुणश्रेणिशीर्षविषैं दीया द्रव्यतैं असंख्यातगुणा है। तातैं सूत्रविषैं अन्तरायामका प्रथम निषेकपर्यंत असंख्यातगुणा देय द्रव्य कह्या। बहुरि ताके ऊपरि अंतरायामके द्वितीयादि निषेकनिविषैं एक एक विशेषकरि घटता क्रमलीएं द्रव्य दीजिए है सो यावत् अंतरायामका अंत निषेक होइ तावत् ऐसा क्रम जानना। अब द्वितीय स्थितिनिषेकनिविषैं द्रव्य देनेका विधान कहिए है—

द्वितीय स्थितिविषैं देनेयोग्य जो पूर्वोक्त द्रव्य ताकौं आवली रहित द्वितीय स्थितिका प्रमाणमात्र जो गच्छ ताका भाग दीएं मध्यधन होइ। यामै एक घाटि गच्छका आधा प्रमाणमात्र विशेष जोड़ैं जो होइ तितना द्रव्य द्वितीय स्थितिका प्रथम निषेकविषैं दीजिए है। सो यहु दीया द्रव्य अंतरायामका अंत निषेकविषैं दीया द्रव्यतैं संख्यातगुणा घटता है। तातैं सूत्रविषैं इहां दीया द्रव्य संख्यातगुणा घटता कह्या। बहुरि ताके उपरि द्वितीय स्थितिके द्वितीयादि निषेकनिविषैं एक एक विशेष घटता क्रमकरि द्रव्य दीजिए है। ऐसे देय द्रव्यका विधान कह्या ॥५८६॥

अंतरपढमठिदि त्ति य असंखगुणिदक्कमेण दिस्सदि हु ।
हीणकमेण असंखेज्जेण गुणं तो विहीणकमं[1] ॥

अंतरप्रथमस्थित्यंतं च असंख्यगुणितक्रमेण दृश्यते हि ।
हीनक्रमेण असंख्येयेन गुणमतो विहीनक्रमम् ॥५८७॥

स० चं०--पूर्व द्रव्य वा दीया द्रव्य मिलि जो दृश्यमान होइ ताका विधान कहिए है—वर्तमान समयसम्बन्धी निषेकविषैं दृश्यमान द्रव्य स्तोक है, तातैं अन्तरायामका प्रथम निषेक पर्यन्त असंख्यातगुणा क्रम लीएं है। बहुरि ताके ऊपरि अन्तरायामका अन्त निषेकपर्यन्त विशेष घटता क्रम लीएं है। इहां पर्यन्त देय द्रव्यका जैसैं क्रम कह्या तैसैं ही दृश्यमान द्रव्यका भी क्रम जानना। बहुरि तातैं ताके उपरि द्वितीय स्थितिके प्रथम निषेकका दृश्यमान द्रव्य असंख्यातगुणा है। बहुरि ताके ऊपरि ताका अन्त निषेकपर्यन्त विशेष घटता क्रमलीएं दृश्यमान द्रव्य है। याप्रकार सूक्ष्मसांपरायका प्रथम समयतैं लगाय प्रथम स्थितिकांडकका घात यावत् न होइ निबरैं तावत् ऐसा क्रम जानना। विशेष इतना अपकर्षण कीया द्रव्यका प्रमाण समय समय असंख्यातगुणा जानना ॥ ५८७ ॥ तहां प्रथम कांडककी अन्त फालिके द्रव्यका प्रमाण ल्यावने निमित्त कहिए है—

कंडयगुणचरिमठिदी सविसेसा चरिमफालिया तस्स ।
संखेज्जभागमंतरठिदिम्हि सव्वे तु बहुभागं[2] ॥ ५८८ ॥

कांडकगुणचरमस्थितिः सविशेषा चरमस्फालिका तस्य ।
संख्येयभागमंतरस्थितौ सर्वायां तु बहुभागम् ॥ ५८८ ॥

स० चं०—कांडकायामकरि गुणित जो विशेषसहित अन्त स्थिति तीहिं प्रमाण अन्त फालि द्रव्य है। ताका संख्यातवां भाग तौ अन्तर स्थितिविषैं, बहुभाग सर्व स्थितिविषैं दीजिए है, सोइ कहिए है—

द्वितीय स्थितिका प्रथम निषेकविषैं एक घाटि द्वितीय स्थिति आयाममात्र विशेष घटाएं ताका अन्त निषेकका द्रव्य होइ, तिसतैं लगाय नीचेके कांडक आयाममात्र निषेकनिका द्रव्य अन्त फालिविषैं ग्रहण करिए हैं। तातैं तिस अन्त निषेकके द्रव्यकौं जो कांडक आयाम सोई फालिका आयाम ताकरि गुणें तहां नीचले निषेकनिविषैं जे विशेष अधिक पाइए हैं तिनकौं अधिक कीएं अन्त फालिके सर्व द्रव्यका प्रमाण हो है। यामें नीचले निषेकनिका अपकर्षण कीया जो द्रव्य ताकौं जोडैं जो द्रव्य होइ ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ एक भागकौं गुणश्रेणीआयामविषैं दीएं पीछैं अवशेष जो द्रव्य रह्या ताके देनेका विधान कहिए है—

अन्तरायामका भाग फालिके आयामकौं दीएं जो संख्यातमात्र प्रमाण होइ ताका भाग

१. पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स उदये दिस्सदि पदेसग्गं थोवं। विदियाए ट्ठिदीए असंखेज्जगुणं दीसदि ताव जाव गुणसेढिसीसयादो अण्णा च एक्का ट्ठिदि त्ति। तत्तो विसेसहीणं ताव जाव अंतरट्ठिदि त्ति। तत्तो असंखेज्जगुणं। तत्तो विसेसहीणं ८७०।

२. जयध० ता० मु० पृ० २२११, २२१२।

तिस अवशेष द्रव्यकौं दीएं जो एक खंड होइ तामैं पूर्व जो अन्तर स्थितिविषैं द्रव्य दीया था ताकौं घटाय अवशेषको अङ्गीकार करि बहुरि इतना द्रव्य घटाएं जो अवशेष द्रव्य रह्या ताकौं कांडकके नीचैं अवशेष स्थिति जो पाइए ताकौं अन्तरायामका भाग दीएं जो संख्यातका प्रमाण आवै तामैं एक अधिक करि ताका भाग दीएं जो एक खंडका प्रमाण होइ ताकौं पूर्वैं अङ्गीकार किया द्रव्यविषैं जोडैं जेता होइ तितना द्रव्य अन्तरायामविषैं पूर्वोक्त प्रकार गोपुच्छ आकार करि चय घटता क्रम लीएं देना। बहुरि तिस बहुभागमात्र द्रव्यविषैं इतना द्रव्य घटाएं जो अवशेष रह्या ताकौं द्वितीय स्थितिविषैं पूर्वोक्त प्रकार गोपुच्छ-आकारकरि चय घटता क्रमलीएं देना। तहां अन्तर स्थितिका अन्त निषेकविषैं दीया द्रव्यतैं द्वितीय स्थितिका आदि निषेकविषैं दीया द्रव्य संख्यातगुणा घटता जानना। ऐसैं ही अन्त फालिका द्रव्यका संख्यातवां भाग अन्तरायामविषैं बहुभाग द्वितीय स्थितिविषै देनेका विधान जानना। इहां संदृष्टिविषैं संख्यातकी सहनानी च्यारि जानि कथन समझना। इहां इतना जानना—

जो कांडकविषैं स्थिति घटाइए, तिसके द्रव्यकौं नीचले निषेकनिविषैं देनेके अर्थि समय समय जेता ग्रहण करिए सो तौ फालिद्रव्य कहिए। अर गुणश्रेणी आदिके अर्थि जो सर्व स्थितिके द्रव्य अपकर्षण करि ग्रहिए सो अपकृष्टि द्रव्य कहिए हैं। तहां कांडकका प्रथमादि फालि पतन समयविषैं तौ अपकृष्टि द्रव्य बहुत है। फालिद्रव्य स्तोक है, तातैं अपकृष्टि द्रव्यहीका मुख्यपनैं देनेका विधान कह्या, बहुरि अन्त फालिविषैं फालि द्रव्य बहुत है, अपकृष्टि द्रव्य स्तोक है, तातैं फालि द्रव्यविषैं अवशेष रही स्थितिका अपकृष्टि द्रव्यकौं साधिक करि द्रव्य देनेका विधान कह्या है। या प्रकार प्रथम कांडक काल संपूर्ण होतैं अन्तर पूरण भया। जिनि वीचिके निषेकनिका अभाव भया था तिनका सद्भाव भया। तब अन्तर पूरण होनेकरि गुणश्रेणि-आयाम बिना ऊपरिके सर्व निषेकनिविषै एक गोपुच्छ भया। ऐसैं सूक्ष्मसांपराय कालका प्रथम समयतैं लगाय प्रथम कांडककी अन्त फालि पतनपर्यन्त तौ तीन स्थाननिविषैं द्रव्य देनेका विधान समानरूप कह्या। अब द्वितीयादि कांडकनिविषैं देय द्रव्य दृश्य द्रव्यका विधान कहिए है ॥ ५८८ ॥

विशेष—प्रथम स्थितिकाण्डककी अन्त फालिके पतित होने पर जो प्रदेश-विन्यासका क्रम है उसे बतलाते हैं—द्वितीय स्थितिके समस्त द्रव्यके संख्यातवें भागप्रमाण अन्तिम फालिको ग्रहण कर उदयमें स्तोक प्रदेशपुंजको देता है, उससे दूसरी स्थितिमें असंख्यतागुणे प्रदेशपुंजको देता है। इस प्रकार गुणश्रेणिशीर्षके प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे द्रव्यको देता है। यह गुणश्रेणिमें पतित हुआ द्रव्य अन्तिम फालिके द्रव्यके असंख्यातवें भागप्रमाण ही जानना चाहिये। इसलिए गुणश्रेणिशीर्षके ऊपर अनन्तर जो एक स्थिति है उसमें असंख्यातगुणे द्रव्यको देता है। उसके आगे भूतपूर्वन्यायसे अन्तरसंबंधी अन्तिम स्थितिके प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर विशेष हीन विशेषहीन द्रव्य देता है। गुणश्रेणिशीर्षसे ऊपर इस अन्तररूप कालमें पतित हुआ समस्त द्रव्य अन्तिम फालिके द्रव्यका संख्यातवाँ भागमात्र ही है। पुनः अन्तरकी अन्तिम स्थितिके बाद द्वितीय स्थितिकी जो आदि स्थिति है उसमें संख्यातगुणे हीन द्रव्यका निक्षेप करता है। उसके बाद समस्त स्थितियोंमें उत्तरोत्तर असंख्यातवें भागहीन द्रव्यका निक्षेप करता है।

द्वितीय स्थितिकी आदि स्थितिमें जो संख्यातगुणे हीन द्रव्यका निक्षेप करता है उसका कारण यह है कि प्रथम स्थितिकाण्डककी द्विचरम फालिके पतन होने तक प्रत्येक समयमें अपकर्षित

होकर पतित होनेवाला द्रव्य द्वितीय स्थितिके समस्त द्रव्यके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है, क्योंकि वह अपकर्षण भागहारसे भाजित एक भागप्रमाण ही है। इसलिए गुणश्रेणिको छोड़कर उपरिम अन्तर स्थितियोंमें निक्षिप्त हुआ प्रदेशपुंज एक गोपुच्छस्वरूप होकर वहाँ पाया जाता है। तथा द्वितीय स्थितिके प्रथम निषेकसे लेकर उपरिम सर्व स्थितियोंमें निक्षिप्त प्रदेशपुंज एक गोपुच्छारूपसे अन्तर स्थितिमें निक्षिप्त प्रदेशपुंजसे असंख्यातगुणा प्राप्त होता है, क्योंकि जब तक द्विचरम फालिका पतन होता है तब तक प्रत्येक समयमें अपकर्षित होकर अन्तर स्थितियोंमें निक्षिप्त होनेवाला प्रदेशपुंज द्वितीय स्थितिके समस्त प्रदेशपुंजके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होता है। होता हुआ भी तत्काल अपकर्षित होनेवाले समस्त द्रव्यके असंख्यातवें भागप्रमाण या संख्यातवें भागप्रमाण ही है। इसलिए अन्तर स्थितियोंमें और द्वितीय स्थितिमें भिन्न गोपुच्छाएं हो जाती हैं। किन्तु प्रथम स्थितिकांडककी अन्तिम फालिके पतित होनेपर दोनोंकी एक गोपुच्छाश्रेणी हो जाती है, इसलिए प्रथम स्थितिकांडककी अन्तिम फालिके द्रव्यका संख्यातवाँ भागमात्र प्रदेशपिंड अन्तरस्थितियोंमें उस समय पतित होता है ऐसा ग्रहण करना चाहिए। पुनः उस चरिम फालिके प्रदेश पिंडका असंख्यात बहुभागप्रमाण द्रव्य प्रथम स्थितिकाण्डकसे न्यून तथा प्रथम स्थितिकांडकसे संख्यातगुणी ऐसी द्वितीय स्थितिकी अवयव स्थितियोंमें पतित होता है जो उस समय अन्तिम फालिके एक-एक स्थितिके प्रदेशपुंजका संख्यातवें भागरूप प्रदेशपुंज एक-एक स्थितिविशेषमें पतित होता है। परन्तु अन्तर स्थितियोंमेंसे प्रत्येकमें संख्यातगुणा प्रदेशपुंज पतित होता है, अन्यथा दोनोंकी एक गोपुच्छा नहीं बन सकती। इसलिए अन्तरकी अन्तिम स्थितिमें निक्षिप्त हुए प्रदेशपुंजसे द्वितीय स्थितिकी आदि स्थितिमें निक्षिप्त होनेवाला प्रदेशपुंज संख्यातगुणा हो जाता है।

अथवा अन्तर की अन्तिम स्थितिमें निक्षिप्त हुए प्रदेशपुंजसे द्वितीय स्थितिके प्रथम निषेकमें निक्षिप्त होनेवाला प्रदेशपुंज इस कारण संख्यातगुणाहीन है, क्योंकि अन्तर स्थितियोंके प्रमाणसे प्रथम स्थितिकांडकके प्रमाणमें भाग देनेपर जो संख्यात अंक प्राप्त होते हैं उन्हें विरलित कर, विरलित अङ्कों पर प्रथम स्थितिकाण्डकके प्रमाणको समान खण्ड कर देनेपर वहाँ एक-एक अंकके प्रति अन्तरायामका प्रमाण प्राप्त होता है। पुनः यहाँ पर एक अंकके प्रति प्राप्त प्रमाणको ग्रहण कर तत्कालीन गुणश्रेणिशीर्षसे उपरिम अन्तर स्थितियोंके ऊपर स्थापित करने पर अन्तर स्थितिसम्बन्धी प्रदेशपुंज और द्वितीय स्थितिसम्बन्धी प्रदेशपुंज दोनों ही स्तोकरूपसे एक पुच्छरूप हो जाते हैं।

पुनः वहाँ द्वितीय अंकके प्रति प्राप्त एक खंडको ग्रहण कर संख्यात फालियाँ करनी चाहिये। वे कितनी हैं ऐसी जिज्ञासा होनेपर कहते हैं कि अन्तरस्थितिके प्रमाणसे, गुणश्रेणिको छोड़कर शेष समस्त स्थितियोंके भाजित करने पर जो लब्ध आवे उतनी फालियाँ करनी चाहिए। ऐसा करके उनमेंसे एक फालिको ग्रहण कर अन्तर स्थितियोंके ऊपर पहले स्थापित हुए खण्डके पास स्थापित कर पुनः शेष फालियोंको क्रमसे द्वितीय स्थितिमें स्थापित करना चाहिये। इसी प्रकार शेष अंकोंके प्रति व्याप्त खण्डोंको भी आगमानुसार ग्रहण करना चाहिये। ऐसा करके देखने पर अन्तरसम्बन्धी अन्तिम स्थितिमें निक्षिप्त हुए द्रव्यसे द्वितीय स्थितिकी आदि स्थितिमें निक्षिप्त हुआ प्रदेशपुंज संख्यातगुणा हीन होता है ऐसा निश्चय करना चाहिये।

अंतरपढमठिदि त्ति य असंखगुणिदक्कमेण दिज्जदि हु।
हीणं तु मोहविदियट्ठिदिखंडयदो दुघादो त्ति[1] ॥५८९॥

अन्तरप्रथमस्थितिरिति च असंख्यगुणितक्रमेण दीयते हि।
हीनं तु मोहद्वितीयस्थितिकांडकतो द्विघात इति ॥५८९॥

स० चं०—मोहकी द्वितीय स्थितिकांडकघाततैं लगाय द्विचरम कांडकघातपर्यंत कांडककरि गृहीत स्थितितैं नीचैं अर उदयावलीतैं उपरि जे निषेक तिनिका द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ तहाँ एकभागमात्र द्रव्य ग्रहि ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां एक भागकौं पूर्वोक्त प्रकार गुणश्रेणिआयामविषैं प्रथम उदय निषेकविषैं तौ स्तोक अर द्वितीयादि निषेकनिविषैं गुणश्रेणिशीर्षपर्यंत असंख्यातगुणा क्रम लीएं दीजिए है। बहुरि अवशेष बहुभागमात्र द्रव्यकौं गुणश्रेणितें ऊपरिकी अंतर्मुहूर्तमात्र स्थितिमात्र जो गच्छ ताका भाग देइ तहां एक खंडविषैं एक घाटि गच्छका आधा प्रमाणमात्र विशेष मिलाए जो होइ तितना गुणश्रेणिशीर्षके ऊपरि जो निषेक तींहिंविषैं दीजिए है। सो यहु गुणश्रेणिशीर्षविषैं दीया द्रव्यतैं असंख्यातगुणा है। ऐसैं अंतरका प्रथम निषेकपर्यंत तौ असंख्यातगुणा क्रमकरि द्रव्य दीजिए है। बहुरि ताके ऊपरि एक एक विशेष घटता क्रमलीए द्रव्य दीजिए है। सो यावत् अतिस्थापनावली प्राप्त होइ तावत् ऐसा जानना। यहाँ प्रथम स्थितिकांडककालका अंत समयविषैं ही अन्तर है सो पूरण भया तातैं अन्तरायामविषैं जुदा द्रव्य देनेका विधान कह्या।

बहुरि सर्वस्थिति कांडकनिविषैं अंत फालिपर्यंत जो अपकृष्ट द्रव्य है सो तौ सकल द्रव्यके असंख्यातवैं भागमात्र जानना। बहुरि अन्त फालिका पतन समयविषैं कांडकस्थितितैं आयाम जो फालिद्रव्य है सो सर्व द्रव्यके संख्यातवैं भागमात्र जानना ॥५८९॥

अंतरपढमठिदि त्ति य असंखगुणिदक्कमेण दिस्सदि हु।
हीणं तु मोहविदियट्ठिदिखंडयदो दुघादो त्ति[2] ॥५९०॥

अंतरप्रथमस्थितिरिति च असंख्यगुणितक्रमेण दृश्यते हि।
हीनं तु मोहद्वितीयस्थितिकांडकतो द्विघातांतम् ॥५९०॥

स० चं०—मोहका द्वितीय स्थितिकांडकघाततैं लगाय द्विचरम कांडकघातपर्यंत दृश्यमान द्रव्य गुणश्रेणिका प्रथम निषेकविषैं स्तोक है, तातैं गुणश्रेणिशीर्षके ऊपरि जो अंतरायामका प्रथम निषेक तहांपर्यन्त असंख्यातगुणा क्रम लीएं है। ताके ऊपरि अंत निषेकपर्यंत विशेष घटता क्रम लीएं दृश्यमान द्रव्य है, जातैं प्रथम कांडककी अन्त फालिका पतन समयविषैं गुणश्रेणितैं उपरि सर्व स्थितिका एक गोपुच्छ हो है ॥५९०॥

---

१. विदियादो ट्ठिदिखंडयादो ओकड्डियूण पदेसग्गमुदये दिज्जदि तं थोवं। तदो दिज्जदि असंखेज्जसेढीए ताव जाव गुणसेढीसीसयादो उवरिमाणंतरा एक्का ट्ठिदि त्ति। तत्तो असंखेज्जगुणं। तत्तो विसेसहीणं। एस कमो ताव जाव सुहुमसांपराइस्स पढमट्ठिदिखंडयं चरिमसमयअणिल्लेविदं त्ति। क० चु० पृ० ८७०–८७१।

२. पढमे ट्ठिदिखंडए णिल्लेविदे उदये पदेसग्गं दिस्सदि थोवं। विदियाए ट्ठिदीए असंखेज्जगुणं। पृ० ८७१।

पढमगुणसेढिसीसं पुव्विल्लादो असंखसंगुणियं ।
उवरिमसमये दिस्सं विसेसअहियं हवे सीसे[1] ।।५९१।।

प्रथमगुणश्रेणिशीर्षं पूर्वस्मात् असंख्यसंगुणितं ।
उपरिमसमये दृश्यं विशेषाधिकं भवेत् शीर्षे ।। ५९१ ।।

स० चं०—प्रथम समयविषैं जो गुणश्रेणिशीर्ष है सोई गाथाका अर्थकी जायगा चाहिए ।।५९१।।

इसप्रकार प्रथम गुणश्रेणिशीर्ष तक जानना चाहिये । गुणश्रेणिशीर्षके ऊपर पूर्वके द्रव्यसे उपरिम समयमें असंख्यातगुणा दृश्य द्रव्य है । आगे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक विशेषहीन प्रदेशपुंज दिखाई देता है ।। ५९१ ।।

सुहुमद्धादो अहिया गुणसेढी अंतरं तु तत्तो दु ।
पढमे खंडं पढमे संतो मोहस्स संखगुणिदकमा[2] ।। ५९२ ।।

सूक्ष्माद्धातः, अधिका गुणश्रेणी अंतरं तु ततस्तु ।
प्रथमं खंडं प्रथमे सत्त्वं मोहस्य संख्यगुणितक्रमं ।। ५९२ ।।

स० चं०—अंतर्मुहूर्तमात्र जो सूक्ष्मसांपरायका काल तातैं ताहीका असंख्यातवां भाग करि अधिक सूक्ष्मसांपरायका प्रथम समयविषैं मोहकी गुणश्रेणिका आयाम है । तातैं अंतरायाम संख्यातगुणा है । तातैं सूक्ष्मसांपरायके मोहका प्रथम स्थितिकांडक आयाम संख्यातगुणा है तातैं सूक्ष्मसांपरायका प्रथम समयविषै मोहका स्थितिसत्त्व संख्यातगुणा है ।। ५९२ ।।

एदेणप्पाबहुगविधाणेण विदीयखंडयादीसु ।
गुणसेढिमुज्झियेया गोपुच्छा होदि सुहुमम्हि ।। ५९३ ।।

एतेनाल्पबहुकविधानेन द्वितीयकांडकादिषु ।
गुणश्रेणिमुज्झित्वा एकं गोपुच्छं भवति सूक्ष्मे ।। ५९३ ।।

स० चं०—इस अल्पबहुत्व विधानकरि सूक्ष्मसांपरायविषैं द्वितीय स्थितिकांडकनिका कालविषैं गुणश्रेणिकौं छोडि ताके उपरिवर्ती सर्व स्थितिका एक गोपुच्छ हो है । कैसैं ? सो कहिए है—

इहां अंतरायामतैं प्रथम स्थितिकांडकायाम संख्यातगुणा कह्या । तातैं प्रथम स्थिति कांडककी जो अन्त फालि ताका द्रव्यविषैं अंतरायामविषैं देनेयोग्य गोपुच्छरूप द्रव्यकौं अंतरायाम-विषैं देइ द्वितीय स्थितिकैं अर इस अंतरायामकैं एक गोपुच्छ कीया जो प्रथम स्थितिकांडक आयामतैं अंतरायाम बहुत होता तो तहां अन्तरायाम पूर्ण न होता, तब अन्तर स्थितिकैं अर द्वितीय स्थितिकैं एक गोपुच्छ न होता । सो इहां अन्तरायामतैं प्रथम स्थितिकांडकायाम बहुत

१. एवं तात्र जाव गुणसेडिसीसयं । गुणसेढिसीसयादो अण्णा च एक्का ठिदि त्ति असंखेज्जगुणं दिस्सदि । तत्तो विसेसहीणं जाव उक्कस्सिया मोहणीयं ठिदि त्ति । क० चु० पृ० ८७१ ।

२. सव्वत्थोवा सुहुमसांपराइयद्धा । पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स मोहणीयस्स गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ । अंतरट्ठिदीओ संखेज्जगुणाओ । सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदिखंडयं मोहणीये संखेज्जगुणं । पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स मोहणीयस्स ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं । क० चु० पृ० ८७१ ।

३. जयध० ता० मु० पृ० २२१५ ।

कह्या, तातैं अन्तरायामकैं अर द्वितीय स्थितिकैं एक गोपुच्छ प्रथम स्थितिकांडकी अन्त फालिका पतन समयविषैं ही भया। जहां विशेष घटता क्रम लीएं होइ तहां गोपुच्छ संज्ञा है ॥ ५९३ ॥

सुहुमाणं किट्टीणं हेट्ठा अणुदिण्णगा हु थोवाओ।
उवरिं तु विसेसहिया मज्झे उदया असंखगुणा[1] ॥५९४॥

सूक्ष्माणां कृष्टीनामधस्तना अनुदीर्णका हि स्तोकाः।
ऊपरि तु विशेषाधिका मध्ये उदया असंख्यगुणाः ॥ ५९४ ॥

स० चं०—सूक्ष्मसांपरायविषैं जे सूक्ष्म कृष्टि हैं तिनिविषैं जे जघन्य कृष्टि आदि नीचैकी कृष्टि उदयरूप न हो हैं। तिनिका प्रमाण स्तोक है। बहुरि यातैं याहीकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएं तहां एक भागमात्र करि अधिक जे अन्त कृष्टितैं लगाय ऊपरली कृष्टि उदयरूप न होइ तिनिका प्रमाण है। बहुरि यातैं पल्यका असंख्यातवां भागगुणा जे वीचिका कृष्टि उदयरूप हो हैं तिनिका प्रमाण है। इहां सर्व सूक्ष्म कृष्टिनिका प्रमाणकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएं बहुभागमात्र वीचिकी उदय कृष्टिनिका प्रमाण है। एक भागकौं अंक सदृष्टि अपेक्षा पांचका भाग दीएं दोय भागमात्र नीचली, तीन भागमात्र ऊपरली अनुदय कृष्टिनिका प्रमाण है। तहां जे अनुदयरूप कृष्टि कहीं ते वीचिकी कृष्टिरूप परिणमि उदय हो हैं ऐसा जानना ॥ ५९४ ॥

विशेष—इस गाथाका खुलासा टीकामें किया ही है। विशेष इतना है कि द्वितीयादि समयोंमें भी प्रथम समयके समान कथन करना चाहिए। तथा द्वितीयादि समयोंमें नीचे असंख्यातवें भागप्रमाण अन्य अपूर्व कृष्टियोंकी भी रचना करता है। यह विधि सूक्ष्मसांपरायके अन्तिम समय तक जाननी चाहिये।

सुहुमे संखसहस्से खंडे तीदेऽवसाणखंडेण।
आगायदि गुणसेढी अग्गादो संखभागे च[2] ॥ ५९५ ॥

सूक्ष्मे संख्यसहस्रे खंडेऽतीतेऽवसानखंडेन।
आगाप्यते गुणश्रेणी अग्रतः संख्यभागे च ॥ ५९५ ॥

स० चं०—पूर्वोक्त क्रमकरि सूक्ष्मसांपरायविषैं ताका कालका संख्यात बहुभाग गएं संख्यातवां भाग अवशेष रहैं संख्यात हजार स्थितिकांडक व्यतीत होतैं अवसान खंड जो अन्तका स्थितिकांडक ताकरि पूर्व गुणश्रेणि आयामके संख्यातवें भागमात्र आयामविषैं गुणश्रेणि करै है। इहांतैं पहलैं सर्व सूक्ष्मसांपराय कालतैं साधिक अवस्थित गुणश्रेणि आयाम था अब जेता अवशेष सूक्ष्मसांपरायका काल रह्या तितना गुणश्रेणिआयाम जानना ॥ ५९५ ॥

---

१. हेट्ठा अणुदिण्णाओ थोवाओ। उवरि अणुदिण्णाओ विसेसाहियाओ। मज्झे उदिण्णाओ सुहुमसांपराइयकिट्टीओ असंखेज्जगुणाओ। क० चु० पृ० ८७२।

२. सुहुमसांपराइयस्स संखेज्जसु ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु जमपच्छिमं ठिदिखंडयं मोहणीयस्स तम्हि ठिदिखंडये उक्कीरमाणे जो मोहणीयस्स गुणसेढिणिक्खेवस्स अग्गग्गादो संखेज्जदिभागो आगाइदो ८७२।

विशेष—जब मोहनीयके संख्यात हजार स्थितिकांडकोंका घात करके अन्तिम स्थितिकांडकके घातका समय प्राप्त हो तब जो गुणश्रेणिनिक्षेपणका काल सूक्ष्मसांपरायके कालसे विशेष अधिक कहा था उस गुणश्रेणिनिक्षेपके अग्र भागको ग्रहण कर और उसे सूक्ष्मसांपरायके कालके बराबर करता हुआ उस सबको अन्तिम काण्डकके बराबर करता है। केवल इतना ही नहीं करता, किन्तु जो सूक्ष्मसांपरायके कालसे मोहनीयकी अधिक स्थितियाँ हैं जो कि गुणश्रेणिशीर्षसे संख्यातगुणी हैं उन्हें भी अन्तिम स्थितिकाण्डकरूपसे ग्रहण करता है, क्योंकि उनके विना गुणश्रेणिशीर्षका ग्रहण करना सम्भव नहीं है। तात्पर्य यह है कि गुणश्रेणिशीर्ष और उससे संख्यातगुणी स्थितियोंको अन्तिम स्थितिकाण्डकके बराबर करता है। निक्षेपसम्बन्धी शेष कथन जयधवलासे जान लेना चाहिये।

एत्तो सुहुमंतो त्ति य दिज्जस्स य दिस्समाणगस्स कमो।
सम्मत्तचरिमखंडे तक्कदकज्जे वि उत्तं व[1] ॥ ५९६ ॥

इतः सूक्ष्मांत इति च देयस्य च दृश्यमानस्य क्रमः।
सम्यक्त्वचरमखंडे तत्कृतकार्येऽपि उक्तमिव ॥ ५९६ ॥

स० चं०—इहांतैं लगाय सूक्ष्मसांपरायका अन्तपर्यन्त देय द्रव्य अर दृश्यमान द्रव्यका क्रम है। जैसैं क्षायिक सम्यक्त्व विधानविषैं सम्यक्त्व मोहनीयका अन्त स्थितिकांडकविषैं वा ताका कृतकृत्यपनाविषैं कह्या था तैसैं ही जानना। सो कहिए है—

इहां सर्व मोहकी स्थितिविषैं सूक्ष्मसांपरायका जितना काल अवशेष रह्या तितनी स्थिति बिना अवशेष सर्व स्थितिका घात अन्त कांडककरि कीजिए है। तहां इस कांडककी स्थितिके निषेकनिका द्रव्यविषैं जो द्रव्य अन्त कांडकोत्करण कालका प्रथम समयविषैं ग्रह्या ताकौं प्रथम काल कहिए है। ताके देनेका विधान कहिए है—

प्रथम फालिद्रव्यकौं अपकर्षणकरि ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां बहुभागमात्र द्रव्यकौं इहां सम्बन्धी सूक्ष्मसांपराय कालका अन्त समयपर्यन्त तौ गुणश्रेणिआयामरूप प्रथम पर्व तिसविषैं दीजिए है, तहां तिसके उदयरूप प्रथम निषेकविषै स्तोक, तातैं द्वितीयादि निषेकनिविषैं असंख्यातगुणा क्रम लीएं द्रव्य दीजिए है। तहां सर्व गुणकार शलाकाके जोडका भाग तिस द्रव्यकौं देइ अपनी अपनी गुणकार शलाकाकरि गुणैं निषेकनिविषै द्रव्य देनेका प्रमाण आवै है। इहां सूक्ष्मसांपरायका जो अन्त समय ताका नाम गुणश्रेणिशीर्ष है। बहुरि अवशेष एक भागमात्र जो द्रव्य ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां बहुभागमात्र द्रव्यकौं तिस गुणश्रेणिशीर्षतैं ऊपरि पहलें जो गुणश्रेणिआयाम था ताका शीर्षपर्यन्त जो द्वितीय पर्व तिसविषै दीजिए हैं। तहां तिस द्रव्यकौं द्वितीय पर्वमात्र गच्छका भाग देइ तहां एक भागविषैं एक घाटि गच्छका आधा प्रमाणमात्र विशेष जोडैं गुणश्रेणिशीर्षके अनंतरि जो निषेक तीहिविषैं दीया द्रव्यका प्रमाण आवै है। सो यहु गुणश्रेणिशीर्षविषैं दीया द्रव्यतैं असंख्यातगुणा घाटि है, ताके ऊपरि ताके द्वितीयादि निषेकनिविषैं चय घटता क्रमलीएं द्रव्य दीजिए है। बहुरि अवशेष

१. जयध० ता० मु० पृ० २२१८।

एक भागमात्र द्रव्य रह्या ताकौं द्वितीय पर्वके ऊपरि जो सर्व स्थिति ताका अन्तविषैं अतिस्थापना-वलो छोडि सर्व निषेकरूप जो तृतीय पर्व तिसविषैं दीजिए है। तहां तिस द्रव्यकौं तृतीय पर्वमात्र गच्छका भाग देइ तहां एक भागविषैं एक घाटि गच्छका आधा प्रमाणमात्र विशेष जोडैं जो होइ तितना द्रव्य पुरातन गुणश्रेणिका शीर्षके अनंतरिवर्ती जो निषेक तिसविषैं दीजिए है। सो यहु पुरातन गुणश्रेणिशीर्षविषैं दीया द्रव्यतैं असंख्यातगुणा घाटि है। बहुरि ताके ऊपरि चय घटता क्रम लीएं द्रव्य दीजिए है। ऐसैं अन्त कांडककी प्रथम फालि पतन समयविषैं द्रव्य देनेका विधान कह्या। याही प्रकार अन्त कांडककी द्विचरम फालि पतनपर्यन्त द्रव्य देनेका विधान जानना। बहुरि अन्त कांडककी अन्त फालिके द्रव्य देनेका विधान कहिए है—

किंचिदून द्व्यर्ध गुणहानिगुणित समयप्रवद्धमात्र अन्त फालिका द्रव्य है। ताकौं असंख्यात-गुणा पल्यका वर्गमूलमात्र पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां एक भागमात्र द्रव्यकौं वर्तमान उदयरूप जो समय तातैं लगाय सूक्ष्मसांपरायका द्विचरम समयपर्यन्त जो प्रथम पूर्व तिस विषैं दीजिए है। तहां प्रथम निषेकविषैं स्तोक, द्वितीयादि निषेकनिविषैं असंख्यातगुणा क्रम लीएं द्रव्य दीजिए है। तहां सर्व गुणकार शलाकानिके जोडका द्रव्यकौं देइ अपनी अपनी गुणकार शलाकाकरि गुणै निषेकनिविषैं देने योग्य द्रव्यका प्रमाण आवै है। बहुरि अवशेष बहुभागमात्र द्रव्यका सूक्ष्मसांपरायका अन्त समयसम्बन्धी निषेकरूप जो द्वितीय पर्व तिसविषैं दीजिए है। यहु द्विचरम विषैं दीया द्रव्यतैं असंख्यात पल्य वर्गमूलकरि गुणित जानना। ऐसैं देय द्रव्यका विधान कह्या। दृश्यमान द्रव्यका विधान भी यथासंभव जानना॥ ५९६॥

उक्किण्णे अवसाणे खंडे मोहस्स णत्थि ठिदिघादो।
ठिदिसत्तं मोहस्स य सुहुमद्धासेसपरिमाणं॥५९७॥[1]

उत्कीर्णेऽवसाने खंडे मोहस्य नास्ति स्थितिघातः।
स्थितिसत्त्वं मोहस्य च सूक्ष्माद्धाशेषपरिमाणं॥५९७॥

सं० चं०— या प्रकार मोह राजाका मस्तक समान जो लोभका अंत कांडक ताका घात करते संतैं अव मोहका स्थितिघात न हो है। अव सूक्ष्मसांपरायका जेता काल अवशेष रह्या तितना ही मोहका स्थितिसत्त्व रह्या है सो अनुसमयापवर्तमान सूक्ष्म कृष्टिरूप अनुभागकौं प्राप्त हो है, ताके एक एक निषेककौं एक एक समयविषै भोगवता संता सूक्ष्मसांपरायका अंत समयकौं प्राप्त हो है॥५९७॥

णामदुगे वेयणीये अड-वारमुहुत्तयं तिघादीणं।
अंतोमुहुत्तमेत्तं ठिदिबंधो चरिम सुहमम्हि[2]॥५९८॥

---

१. तम्हि ठिदिखंडए उक्किणे तदो प्पहुडि मोहणीयस्स णत्थि ठिदिघादो। जत्तियं सुहुमसांपराइयद्धाए सेसं तत्तियं मोहणीयस्स ठिदिसंतकम्मं सेसं। क० चु०, पृ० ८७२।

२. जाधे चरिमसमयसुहुमसांपराइयो जादो ताधे णामा-गोदाणं ट्ठिदि बंधो अट्ठमुहुत्ता। वेदणीयस्स ठिदिबंधो बारस मुहुत्ता। तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तं। क० चु०, पृ० ८९४।

नामद्विके वेदनीये अष्टद्वादशमुहूर्तकं त्रिघातिनाम् ।
अंतर्मुहूर्तमात्रं स्थितिबंधः चरमे सूक्ष्मे ॥५९८॥

स० चं०—तहां सूक्ष्मसांपरायका अंत समयविषैं नाम गोत्रका आठ मुहूर्त, वेदनीयका बारह मुहूर्त, तीन घातियानिका अंतर्मुहूर्तमात्र जघन्य स्थितिबंध हो है ॥५९८॥

तिण्हं घादीणं ठिदिसंतो अंतोमुहुत्तमेत्तं तु ।
तिण्हमघादीणं ठिदिसंतमसंखेज्जवस्साणि[1] ॥५९९॥

त्रयाणां घातिनां स्थितिसत्त्वमंतर्मुहूर्तमात्रं तु ।
त्रयाणामघातिनां स्थितिसत्त्वमसंख्येयवर्षाः ॥५९९॥

स० चं०—तहां ही तीन घातियानिका स्थितिसत्त्व अंतर्मुहूर्तमात्र है, सो क्षीण कषायके कालतैं संख्यातगुणा है । बहुरि तीन अघातियानिका स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्षमात्र है । मोहका स्थितिसत्त्व क्षयकौं सन्मुख है । द्रव्यार्थिक नयकरि इस समयविषैं विद्यमान है । तथापि नष्ट ही भया जानना । ऐसैं क्षयकौं सन्मुख जो लोभकी संग्रह कृष्टि ताकौं अनुभवे है । ऐसा पांचवां सूक्ष्मसांपराय चारित्रकरि संयुक्त सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानवर्ती जीव जानना ॥५९९॥

ऐसैं कृष्टिवेदना अधिकार समाप्त भया ।

से काले सो खीणकसाओ ठिदिरसगबंधपरिहीणो ।
सम्मत्तडवस्सं वा गुणसेढी दिज्ज दिस्सं च[2] ॥६००॥

स्वे काले स क्षीणकषायः स्थितिरसगबंधपरिहीणः ।
सम्यक्त्वाष्टवर्षमिव गुणश्रेणी देयं दृश्यं च ॥६००॥

सं चं०—समस्त चारित्रमोहका क्षयके अनंतरि अपने कालविषैं सो जीव क्षीण भए हैं द्रव्य-भावरूप समस्त कषाय जाकैं ऐसा क्षीणकषाय हो है, सो स्थिति अनुभाग बंधरहित है । योग निमित्ततैं प्रकृति प्रदेशबंध याकैं साता वेदनीयका संभवे है सो ईर्यापथ बन्ध है । प्रथम समयविषैं बंधि अनंतर समयविषैं निर्जरै है । बहुरि जैसैं क्षायिक सम्यक्त्वका विधान विषैं सम्यक्त्व मोहनीकी आठ वर्षकी स्थिति अवशेष रहैं कथन कीया था तैसैं इहां गुणश्रेणि वा देय द्रव्य वा दृश्यमान द्रव्यका जानना । सो कहिए है—

छह कर्मनिका प्रदेशसमूहकौं अपकर्षणकरि ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां एक भागकौं गुणश्रेणि आयामविषैं दीजिए है । ताका प्रमाण क्षीणकषायके काल तैं ताहीका संख्यातवां भागमात्र अधिक है । तहां पूर्वोक्त क्रमकरि उदयरूप प्रथम निषेकविषैं स्तोक द्वितीयादि गुणश्रेणिशीर्षपर्यंत निषेकनिविषैं असंख्यातगुणा क्रम लीएं दीजिए है । बहुरि अवशेष बहुभागमात्र द्रव्यकौं गुणश्रेणिशीर्षके ऊपरि जो अतिस्थापनावली रहित अवशेष स्थिति तींहि प्रमाण

---

१. तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं अंतोमुहुत्तं । णामा-गोद-वेदणीयाणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं णस्सदि । क० चु०, पृ० ८९४ ।

२. तदो से काले पढमसमयखीणकसायो जादो । ताधे चेव ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसस्स अबंधगो । क. चु. पृ. ८९४ ।

इहां गच्छ ताकौं एक घाटि गच्छका आधा प्रमाणकरि हीन जो दोगुणहानिकरि गुणी ताका भाग दीएं तहां एक खंडकौं दोगुणहानिकरि गुणैं जो होइ तितना द्रव्य गुणश्रेणिशीर्षके अनंतरवर्ती निषेकविषैं दीजिए है, सो यहु गुणश्रेणिशीर्षविषैं दीया द्रव्यतैं असंख्यातगुणा है। बहुरि ताके ऊपरि विशेष घटता क्रम लीएं द्रव्य दीजिए है, सो यावत् अतिस्थापनावली न प्राप्त होइ तावत् ऐसा क्रम जानना। बहुरि सूक्ष्मसांपरायका अंत समयविषैं अपकर्षण कीया द्रव्यतैं इहां अपकर्षण कीया द्रव्य असंख्यातगुणा जानना, जातैं सकषाय परिणामसंबंधी गुणश्रेणिनिर्जरातैं निष्कषाय गुणश्रेणि निर्जराकैं असंख्यातगुणापना संभवै है। बहुरि इहां क्षीणकषायके प्रथमादि समयनिविषैं अपकर्षण किया द्रव्यका प्रमाण समानरूप है, जातैं इहां विशुद्धता प्रमाण समान पाइए है। बहुरि इहां दीयमान वा दृश्यमान द्रव्यका अन्य विशेष निरूपण जैसैं सम्यक्त्व मोहनीकी क्षपणाविषैं कीया था तैसैं इहां तीन घातिया कर्मनिका जानना। इहां ऐसा जानना—क्षीणकषायका प्रथम समयतैं लगाय अंतर्मुहूर्तपर्यंत तौ पहला पृथक्त्व वितर्क वीचार नामा शुक्लध्यान वर्तै है। अर क्षीणकषाय कालका संख्यातवां भाग अवशेष रहैं एकत्ववितर्क अवीचार नामा दूसरा शुक्ल ध्यान वर्तै है ॥६००॥

विशेष—द्रव्य-भावरूप सम्पूर्ण मोहनीयका क्षय होनेके बाद क्षीणकषायके प्रथम समयसे ही यह जीव सभी कर्मोंके स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंका अबन्धक हो जाता है, क्योंकि स्थिति आदि-के बन्धका कारण कषायका वहाँ अत्यन्त अभाव है। परन्तु प्रकृतिबन्ध योगनिमित्तक होता है, इसलिये यहाँ उसका निषेध नहीं किया है। वह भी केवल वेदनीय कर्ममें सातावेदनीयका ही होता है, अन्यका नहीं, जो शुष्क दीवाल पर फेंकी गई धूलके समान होने से बन्धके दूसरे समयमें ही गल जाता है। यह ईर्यापथ बन्ध है। इसके लिए वर्गणा खण्डको देखना चाहिये। वहाँ ईर्यापथका विशेष लक्षण दिया है। पूर्वमें जितनी भी गुणश्रेणिनिर्जराएँ कही हैं उन सबसे यहाँ होनेवाली गुणश्रेणिनिर्जरा असंख्यातगुणी है, क्योंकि यहाँ सकषाय परिणामका अभाव होनेसे पूर्वकी गुण-श्रेणि निर्जराओंसे इसके असंख्यातगुणी होने में कोई बाधा नहीं आती।

घादीण मुहुत्तंतं अघादियाणं असंखगा भागा।
ठिदिखंडं रसखंडो अणंतभागा असत्थाणं[1] ॥६०१॥

घातिनां मुहूर्तान्तमघातिकानामसंख्यका भागाः।
स्थितिखंडं रसखंडं अनंतभागा अशस्तानाम् ॥६०१॥

स० चं०—इहां क्षीणकषायविषैं तीन घातियानिका तौ अंतर्मुहूर्तमात्र अर तीन अघातिया-निका पूर्व सत्त्वका असंख्यात बहुभागमात्र स्थितिकांडकआयाम है। बहुरि अप्रशस्त प्रकृतिनिका पूर्व अनुभागकौं अनंतका भाग दीएं तहां बहुभागमात्र अनुभाग कांडकआयाम है ॥६०१॥

बहुठिदिखंडे तीदे संखा भागा गदा तदद्धाए।
चरिमं खंडं गिण्हदि लोभं वा तत्थ दिज्जादि[2] ॥६०२॥

---

१. जयध० ता० मु०, पृ० २२६५।
२. जयध० ता० मु०, पृ० २२६५।

बहुस्थितिखंडेऽतीते संख्यभागा गतास्तदद्धायाः।
चरमं खंडं गृह्णाति लोभ इव तत्र देयादि ॥ ६०२ ॥

स० चं०—पूर्वोक्त प्रकार क्रम लीए संख्यात हजार स्थितिकांडक व्यतीय भएं क्षीणकषाय कालकौं संख्यातका भाग देतैं तहां बहुभाग गएं एक भाग अवशेष रह्या तब तीन घातियानिका अन्त कांडककौं ग्रहण करै है। तहां देयादिक द्रव्यका विधान सूक्ष्म लोभविषैं कह्या था तैसें जानना। सो कहिए है—

इहां क्षीणकषायका काल जितना अवशेष रह्या तीहिं विना तीन घातियानिकी अवशेष रही सर्व स्थितिकौं अन्त कांडककरि घातैं है। क्षीणकषायसंबंधी गुणश्रेणितैं लगाय ताके नीचला क्षीणकषाय कालका संख्यातवां भागमात्र निषेक अर तातैं संख्यातगुणा गुणश्रेणिशीर्षके उपरिवर्ती निषेकनिकौं ग्रहि अन्त कांडककरि लांछित करै है ऐसा जानना। ताके द्रव्य देनेका विधान जैसैं लोभका अन्त कांडकविषैं कह्या तैसें जानना। बहुरि ऐसैं अन्त कांडककी प्रथमादिक फालिनिकौं घातकरि पीछैं किंचित् ऊन द्वयर्धगुणहानिगुणित समयप्रबद्धमात्र जो अन्त फालिका द्रव्य ताकौं उदय निषेकतैं लगाय क्षीणकषायका द्विचरम समयपर्यन्त असंख्यातगुणा क्रम लीए अर द्विचरम समयविषैं दीया द्रव्यतैं असंख्यात पल्य वर्गमूलगुणा क्षीणकषायका अन्त समयसंबंधी निषेकविषैं द्रव्य दीजिए है—

चरिमे खंडे पदिदे कदकरणिज्जो त्ति भण्णदे एसो।
तस्स दुचरिमे णिद्दा पयला सत्तुदयवोछिण्णा[1] ॥ ६०३ ॥

चरिमे खंडे पतिते कृतकरणीय इति भण्यते एषः।
तस्य द्विचरमे निद्रा प्रचला सत्त्वोदयव्युच्छिन्ना ॥ ६०३ ॥

स० चं०—ऐसैं अन्त कांडकका घात होतैं याकौं कृतकृत्य छद्मस्थ कहिए, जातैं याके ऊपरि तीनि घातियानिका स्थितिकांडकघात नाही है। केवल उदयावलीके बाह्य तिष्ठता द्रव्यकौं उदयावलीविषैं प्राप्त करणेरूप उदीरणा ही करै है, सो यावत् अधिक समय आवली अवशेष रहै तहां पर्यन्त वर्तै है। बहुरि ताके ऊपरि एक एक समयविषैं एक एक निषेकका क्रमतैं उदय ही पाइए है। जातैं उदयावलीविषैं प्राप्त द्रव्यकी उदीरणा न हो है। बहुरि ऐसैं क्षीणकषायका द्विचरम समय प्राप्त भया तब निद्रा प्रचला कर्मका सत्त्व अर उदयका व्युच्छेद भया। इहां शुक्लध्यान होतैं भी अव्यक्त निद्रा वा प्रचलाका उदय संभवै था सो भी नाश भया। अब इहां क्षपकश्रेणि चढ़नेवाले जीव तीन वेदविषैं एक वेद अर च्यारि कषायविषैं एक कषायका उदय सहित श्रेणी चढ़नेकी अपेक्षा बारह प्रकार हैं। तहां पूर्वोक्त सर्व प्ररूपणा पुरुषवेद अर क्रोधकषाय सहित श्रेणी चढ़नेवालेकी जाननी ॥ ६०३ ॥ बहुरि अवशेष ग्यारह प्रकार जीवनिविषैं विशेष है सो कहिए है। तहां पुरुषवेद अर मानादिक कषायसहित श्रेणी चढ़नेवालेकैं विशेष है सो कहिए है—

१. तदो दुचरिमसमये णिद्दा-पयलाणमुदयसंतवोच्छेदो। क० चु०, पृ० ८९४।

कोहस्स य पढमठिदीजुत्ता कोहादिएक्कदोतीहिं ।
खवणद्धाहि कमसो माणतियाणं तु पढमठिदी[1] ॥६०४॥

क्रोधस्य च प्रथमस्थितियुक्ता क्रोधादिएकद्वित्रयाणाम् ।
क्षपणाद्धा हि क्रमशो मानत्रयाणां तु प्रथमस्थितिः ॥६०४॥

स० चं०—पुरुषवेदयुक्त मानादि कषायसहित श्रेणी चढ़्या जीवकैं। अधःकरणतैं लगाय अंतरकरणकी समाप्ति पर्यंत तौ सर्व प्ररूपणा पुरुषवेद क्रोधसहित श्रेणी चढ़्या जीवकैं समान जाननी। ताके अंनतरि क्रोधकी प्रथम स्थितिसहित क्रोधादिक एक दोय तीन कषायनिक जो क्षपणा काल सो क्रमतैं मानादिक तीन कषायनिकी प्रथम स्थिति हो है सोई कहिए है—

मानसहित श्रेणी चढ़्या जीव है सोई अंतरकरणकी समाप्तिके अनन्तर क्रोधकी प्रथम स्थिति न स्थापै है। मानकी प्रथम स्थिति अन्तमुंहूर्तमात्र स्थापै है। सो क्रोधसहित श्रेणी चढ़्याकैं नपुंसकवेदका क्षपणा कालतैं लगाय कृष्टिकारककालपर्यंत तो क्रोधकी प्रथम स्थिति अर क्रोधकी तीनों संग्रह कृष्टिका वेदककालमात्र क्रोधका क्षपणा काल इनि दोऊनिकौं मिलाएँ जेता प्रमाण होइ तितना मानसहित श्रेणी चढ्याकैं मानकी प्रथम स्थितिका प्रमाण जानना। बहुरि मायासहित श्रेणी चढ्या जीव है, सो अन्तरकरणका समाप्तिके अनन्तरि क्रोध अर मानकी प्रथम स्थिति नाहीं स्थापै है। मायाकी प्रथम स्थिति अन्तमुंहूर्तमात्र स्थापै है। सो क्रोधसहित श्रेणी चढ्या जीवकैं जो पूर्वोक्त क्रोधकी प्रथम स्थिति अर क्रोध क्षपणाकाल अर मानकी तीनौं संग्रह कृष्टिका वेदक कालमात्र मान क्षपणा काल इन तीनौंकौं मिलाएँ जो होइ तेता माया सहित श्रेणी चढ्या जीवकैं मायाकी प्रथम स्थितिका प्रमाण हो है। बहुरि लोभ सहित श्रेणी चढ्या जीव है, सो अन्तरकरणकी समाप्तिके अनन्तरि क्रोध अर मान अर मायाकी प्रथम स्थिति नाहीं स्थापै है, लोभकी प्रथम स्थिति स्थापै है। सो क्रोधसहित श्रेणी चढ्याकैं जो पूर्वोक्त क्रोधकी प्रथम स्थिति अर क्रोध क्षपणा काल अर मान क्षपणाकाल अर मायाका वेदक कालमात्र जो मायाका क्षपणा काल इन च्यारोकौं मिलाएँ जो होइ तितना लोभ सहित श्रेणी चढ्या जीवकैं लोभकी प्रथम स्थितिका प्रमाण जानना ॥६०४॥

माणतियाणुदयमहो कोहादिगिदुतिय खवियपणिधम्हि ।
हयकण्णकिट्टिकरणं किच्चा लोहं विणासेदि[2] ॥६०५॥

मानत्रयाणामुदयमथ क्रोधाद्येकद्वित्रयं क्षपकप्रणिधौ ।
हयकर्णकृष्टिकरणं कृत्वा लोभं विनाशयति ॥६०५॥

स० चं०—मानादिक तीन कषायनिका उदयसहित श्रेणी चढ्या जीव है, सो क्रमतैं क्रोधादिक एक दोय तीन कषायनिका क्षपणा कालके निकटि अश्वकर्ण सहित कृष्टिकरणकौं करि लोभकौं बिनाशे है। सोई कहिए है—तहां प्रथम मान सहित श्रेणी चढ्याका व्याख्यान करिए है—

---

१. क० चु०, पृ० ८९०–८९२। २. क० चु०, दृ० ८९०–८९२।

क्रोधसहित श्रेणी चढ्या जीव जिस कालविषैं च्यारों कषायनिका अश्वकर्णकरण अर अपूर्व स्पर्धक विधानकौं करै है तिस कालविषैं मान सहित श्रेणि चढ्या जीव पूर्व स्पर्धकरूप जो क्रोध था ताकौं मान कषायरूप परिनमाय क्षय करै है। तातैं क्रोधसहित श्रेणी चढ्याके बारह संग्रह कृष्टि हो है। मानसहित श्रेणी चढ्याकैं तोन कषायनिकी नव ही संग्रहकृष्टि हो है। बहुरि क्रोधसहित श्रेणी चढ्या जिस कालविषैं बादर कृष्टि करै है तिस कालविषैं मानसहित श्रेणी चढ्या जीव तीन कषायनिकी अश्वकर्णसहित अपूर्व स्पर्धक क्रिया करै है। बहुरि क्रोध सहित श्रेणी चढ्या जीव जिस कालविषैं क्रोधकी तीन संग्रह कृष्टिकौं वेद क्षपावै है तिस काल-विषैं मानसहित श्रेणी चढ्या जीव मानादि तीन कषायनिकी नव बादर संग्रह कृष्टि करै है। बहुरि ताके ऊपरि मानकषायका वेदक काल आदि सर्व प्ररूपणा क्रोधसहित श्रेणी चढ्याकै अर मानसहित श्रेणी चढ्याकैं समान है। अब मायासहित श्रेणी चढ्या जीवका व्याख्यान करिए है—

क्रोधसहित श्रेणी चढ्या जिस कालविषैं अश्वकर्ण क्रिया करै है तिस कालविषैं यह क्रोधकौं मानरूप परिनमाइ क्षय करै है। बहुरि क्रोधसहित श्रेणी चढ्या जिस कालविषैं कृष्टि करै है तिस कालविषैं यह मानको मायारूप परनमाइ क्षय करै है। बहुरि क्रोधसहित श्रेणी चढ्या जिस कालविषैं क्रोधकी तीन संग्रह कृष्टिकौं वेदि क्षपावैं है तिस कालविषैं यह माया अर लोभकी छह बादर संग्रह कृष्टि करै है। बहुरि ताके ऊपरि मायाकी संग्रह कृष्टिका वेदक काल आदि सर्व प्ररूपणा क्रोधसहित श्रेणी चढ्याकैं अर याकैं समान है। अब लोभसहित श्रेणी चढ्या जीवका व्याख्यान कहिए है—

क्रोधसहित श्रेणी चढ्या जिस कालविषैं अश्वकर्ण करै है तिस कालविषैं यहु पूर्व स्पर्धक-रूप क्रोधकौं मानरूप परिनमाइ क्षय करै है। बहुरि क्रोधसहित चढ्या जीव जिस कालविषैं कृष्टि करै है तिस कालविषैं यहु पूर्व स्पर्धकरूप मानकौं मायारूप परनमाइ क्षय करै है। बहुरि क्रोध सहित चढ्या जिस कालविषैं क्रोधकी तीन संग्रह कृष्टिनिकौ वेदि क्षय करै है तिस कालविषैं यहु पूर्व स्पर्धकरूप मायाकौं लोभरूप परिनमाइ क्षय करै है। बहुरि क्रोधसहित श्रेणी चढ्या जीव जिस काल मानकी तीन संग्रह कृष्टिनिकौं वेदि क्षय करै है तिस कालविषैं यहु लोभकी तीन बादर संग्रह कृष्टि करै है। तातैं उपरि लोभकी प्रथम संग्रह कृष्टि वेदक काल आदि सर्व प्ररूपणा क्रोधसहित श्रेणी चढ्याकैं अर याकैं समान है ॥६०५॥

विशेष—चूर्णिसूत्रमें 'क्रोध कषायके उदयसे चढ़ा हुआ जीव जिस कालमें मानसंज्वलनका क्षय करता है उस कालमें लोभसंज्वलनके उदयसे चढ़ा हुआ जीव अश्वकर्णकरण क्रिया करता है। इस पर टीका करते हुए जयधवलाकार कहते हैं कि यद्यपि अकेले लोभसंज्वलनका अश्वकर्ण-करणरूपसे विनाश सम्भव नहीं है तो भी अनुभागविशेषके घातको तथा अपूर्व स्पर्धकोंके विधानको देखते हुए यहाँ भी अश्वकर्णकरण काल सम्भव है; इसलिये यह कथन विरुद्ध नहीं है। तथा उक्त जीव कृष्टिकरण कालके भीतर पूर्व और अपूर्व स्पर्धकोंका अपवर्तन करके तीन बादर संग्रह कृष्टियोंको रचता है ऐसा जानना चाहिये, क्योंकि यहाँ पर शेष कषाय सम्भव नहीं है।

ऐसैं पुरुषवेद सहित चढ्या च्यारि प्रकार जीवनिके विशेषका वर्णन कीया अर स्त्रीवेद सहित चढे च्यारि प्रकार जीवनिकैं विशेष कहिए है—

पुरिसोदएण चडिदस्सित्थीखवणद्धं तं पढमठिदी ।
इत्थिस्स सत्तकम्मं अवगदवेदो समं विणासेदि[1] ॥६०६॥

पुरुषोदयेन चटितस्य स्त्रीक्षपणाद्धांतं प्रथमस्थितिः ।
स्त्रिया सप्तकर्माणि अपगतवेदः समं विनाशयति ॥६०६॥

स० चं०—स्त्रीवेदसहित चढ्या जीवकैं यावत् अंतरकरण न होइ तावत् प्ररूपणा सर्व समान है। बहुरि अंतरकरण करता संता यहु पुरुषवेदकी प्रथम स्थिति नाहीं करै है। स्त्रीवेदहीकी प्रथम स्थिति स्थापै है, जातैं जिस वेदका कषायके उदै श्रेणी चढै ताहीका प्रथम स्थिति स्थापै है। तिस स्त्रीवेदकी प्रथम स्थितिका प्रमाण पुरुषवेदका उदयसहित श्रेणी चढ्या जीवकैं जितना नपुंसक वेदका क्षपणा काल सहित स्त्रीवेदका क्षपणा काल होइ तितना जानना। बहुरि नपुंसकवेदकी वा स्त्रीवेदकी क्षपणा करनेविषैं स्त्रीवेदसहित चढ्या जीवकैं पुरुषवेद सहित चढ्या जीवकैं समान काल है। बहुरि ताके ऊपरि पुरुषवेदसहित चढ्या जीव है सो तौ पुरुषवेदका उदययुक्त हुवा सप्त नोकषायका क्षपणा कालविषैं सप्त नोकषायनिकौं क्षपावै है। तहां पुरुषवेदके नवक समय प्रबद्धनिकौं ताके पीछे समय घाटि दोय आवली काल विषैं क्षपावे है। बहुरि यह स्त्रीवेदसहित चढ्या जीव है सो वेद उदयकरि रहित होत संता सप्त नोकषायका क्षपणा कालविषै सर्व सप्त नोकषायनिकौं क्षपावै है। पुरुषवेदका बंध याकैं नाही है, तातैं नवक समयप्रबद्धका पीछैं खिपावना याकैं न संभवे है। बहुरि ताके ऊपरि अश्वकर्णादि क्रियानिविषैं जैसैं पुरुषवेदसहित चढे च्यारि प्रकार जीवनिका विशेष कह्या तैसैं ही स्त्रीवेदसहित चढे च्यारि प्रकार जीवनिका विशेष वर्णन जानना ॥६०६॥

अब नपुंसकवेद सहित चढे च्यारि प्रकार जीवनिका व्याख्यान करिए है—

थीपढमट्ठिदिमेत्ता संढस्स वि अंतरादु संढेक्क ।
तस्सद्धा त्ति तदुवरि संढं इत्थिं च खवदि थीचरिमे ॥
अवगयवेदो संतो सत्त कसाये खवेदि त्थीचरिमे ।
पुरिसुदये चडणविही सेसुदयाणं तु हेट्ठुवरिं[2] ॥६०८॥

स्त्रीप्रथमस्थितिमात्रा षंढस्यापि अंतरात् षंढैकः ।
तस्याद्धा इति तदुपरि षंढं स्त्रीं च क्षपयति स्त्रीचरमे ॥ ६०७ ॥
अपगतवेदः संतः सप्त कषायान् क्षपयति स्त्रीचरमे ।
पुरुषोदयेन चटनविधिः शेषोदयानां तु अधस्तनोपरि ॥ ६०८ ॥

स० चं०—नपुंसकवेदसहित श्रेणि चढ्या जीवकैं यावत् अन्तरकरण न करिए तावत् सर्व प्ररूपणा समान है, ताके ऊपरि पुरुषवेदकी प्रथम स्थिति नाही स्थापै है, नपुंसकवेदहीकी प्रथम

१. क० चु०, पृ० ८९३ । २. क० चु० पृ० ८९३–८९४ ।

स्थिति स्थापैं है। ताका प्रमाण स्त्रीवेद सहित चढ्याकैं जितना स्त्रीवेदकी प्रथम स्थिति ताका प्रमाण कह्या तावन्मात्र ही है। बहुरि अन्तरकरण कीएं पीछैं यावत् पुरुषवेदसहित चढ्या जीवकैं नपुंसकवेदका क्षपणा काल है तावत् याकैं एक नपुंसकवेदहीकी क्षपणा हुआ करै है। परन्तु तहां नपुंसकवेदकी क्षपणा होइ निवरै नाहीं, तहां पीछै पुरुषवेद सहित श्रेणी चड्याकैं जो स्त्री-वेदका क्षपणाकाल है तिस विषैं याकैं नपुंसकवेद अर स्त्रीवेद दोऊनिकी क्षपणा होने लगै, सो स्त्रीवेद क्षपणाकालका अन्त समयविषैं सर्व नपुंसक स्त्रीवेदकौं युगवत् क्षय करै है। इहां द्रव्यार्थिक नय विद्यमानका नाशकौं कहै है तिस अपेक्षा इस समय नष्ट भया कह्या। पर्यायार्थिक अविद्यमान वस्तुका नाशकौं कहै है। तिस अपेक्षा इस समयविषैं एक निषेकका सत्त्व है सो अगले समयविषैं नष्ट होगा ऐसा जानना। ताके अनंतरि स्त्रीवेदसहित चढ्या जीववत् अपगतवेद होत संता सप्त नोकषायनिका क्षपणा कालविषैं सर्व सप्त नोकषायनिकौं क्षपावै है। इहां भी पुरुषवेदका बंधका अभाव है। तातैं नवक समयप्रबद्धका पीछैं क्षिपावना न संभवै है। ताके ऊपरि जैसैं पुरुषवेदसहित श्रेणी चढे च्यारि प्रकार जीवनिका वर्णन कीया तैसै ही नपुंसकवेद सहित श्रेणी चढे च्यारि प्रकार जीवनिका वर्णन जानना। ऐसैं तीन प्रकार पुरुषवेदसहित श्रेणी चढे, च्यारि प्रकार स्त्रीवेद सहित चढे च्यारि प्रकार नपुंसकवेदसहित श्रेणी चढे ए ग्यारह प्रकार जीव तिनके वीचिकी क्रियानिविषैं इहां विशेष वर्णन कीया सो विशेष जानना। अब शेष नीचैं वा ऊपरी सर्व विधान क्रोधका उदय अर पुरुषवेदका उदयसहित श्रेणी चढ्याकैं जैसैं कह्या तैसैंही अवशेष ग्यारह प्रकार उदयसहित जीवनिकैं जानना। इहां तर्क—

जो अनिवृत्तिकरणविषैं एक समयवर्ती सव जीवनिकैं परिणाम समान कहे हैं इहाँ तुम परस्पर विशेष कैसैं कहो हो? ताका समाधान—परिणामनिकी विशुद्धताकी अपेक्षा समान नाहीं है, परंतु नानाप्रकार वेद कषायका उदयरूप सहकारी कारणका निकट होतै नानाप्रकार क्षपणा-कार्य हो है। ६०७। ६०८।

विशेष—अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें सब जीवोंका समान समयमें अनिवृत्ति परिणाममें भेद नहीं होता, एक ही नियम है, फिर क्रोधादि कषायों और पुरुषादि वेदोंकी अपेक्षा यह भेद कैसे होता है? यह एक प्रश्न है। समाधान यह है—सबका जीवोंका समान समयमें समान एक परिणाम होते हुए भी कषायोंके उदयके साथ वेदोंके उदयमें भेद होनेके कारण यह नानात्व बन जाता है। तात्पर्य यह कि भिन्न-भिन्न जीवोंके भिन्न-भिन्न कषाय और वेद पाया जाता है, इसलिये उक्त प्रकारसे नानात्व बननेमें कोई बाधा नहीं आती। यहाँ विशुद्धताकी अपेक्षा समान समयवर्ती जीवोंका अनिवृत्ति परिणाम समान है उनमें भेद नहीं है। भेद है तो विविध कषायों और वेदोंमें है, इसलिये उनकी अपेक्षा क्षपणाके क्रममें भेद पड़ जाता है।

ऐसैं अवसर पाइ विशेषका कथन करि पूर्वैं क्षीणकषायका द्विचरम समयपर्यंत कथन कीया था अब आगै कथन करिए है—

चरिमे पढमं विग्घं चउदंसण उदयसत्त वोच्छिण्णा।
से काले जोगिजिणो सव्वण्हू सव्वदरसी य ॥६०९॥

चरमे प्रथमं विघ्नं चतुर्दर्शनं उदयसत्त्वव्युच्छिन्नाः।
स्वे काले योगिजिनः सर्वज्ञः सर्वदर्शी च ॥६०९॥

स० चं०—क्षीणकषायका अंत समयविषैं पहला पंच प्रकार ज्ञानावरण अर विघ्न कहिए पंच प्रकार अंतराय अर चउ दंसण कहिए च्यारि प्रकार दर्शनावरण ए उदयतैं अर सत्त्वतैं व्युच्छित्तिरूप भए। इहाँ अघाति कर्मनिका स्थितिसत्त्व पल्यके असंख्यातवैं भागमात्र असंख्यात वर्षका है। जैसैं घाति कर्मनिविषैं मोहविशेष अप्रशस्त था ताका पहलैं नाश भया अवशेषनिका इहां नाश भया तैसैं कर्मनिविषैं विशेष अप्रशस्त घाति कर्म थे तिनका इहाँ नाश भया। अघातियानिका आगैं नाश होगा। बहुरि इहाँ कोऊ पूछै कि—

छद्मस्थका तौ शरीर निगोदसहित था अर केवलीका शरीर निगोदरहित कहिए हैं सो कैसैं भया ? ताका समाधान—क्षीणकषायका प्रथम समयविषैं निगोद जीव अनंत मरैं हैं. दूसरे समय तिनकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएँ एक भागमात्र अधिक मरै हैं। ऐसैं पृथक्त्व आवलीपर्यंत क्रम जानना। ताके ऊपरि पूर्वं समय विषैं मरे जीवनि तैं तिनकों संख्यातका भाग दीएं एक भागमात्र अधिक जीव मरैं हैं। सो ऐसैं क्षीणकषायका काल आवलीका असंख्यातवां भागमात्र अवशेष रहै तावत् क्रम जानना। बहुरि इस विशेष अधिकरूप मरणकालका अंत समयविषैं मरे जीवनिका प्रमाणकौं पल्यका असंख्यातवां भागकरि गुणैं ताकौं अनंतरि गुणकारकी श्रेणी लीएं मरण कालका जो प्रथम समय तीहिंविषैं मरे जीवनिका प्रमाण हो है। तातैं परैं क्षीणकषायका अंत समयपर्यंत समय-समय पल्यका असंख्यातवां भागगुणा निगोद जीव मरे हैं ऐसैं सर्व निगोद जीवनिका अभाव होतैं केवलीका शरीर निगोदरहित है। इहाँ तर्क—

जो ऐसैं मरण होतैं यथाख्यातचारित्र कैसैं कहिए ? ताका समाधान—इहां शुक्लध्यान बलकरि तिनके निपजनेका निरोध हो है। बहुरि उपजे थे ते स्वयमेव अपनी आयु नाशतैं मरै है। यावत् निगोद जीवनिका जघन्य आयुमात्र क्षीणकषायका काल अवशेष रहै तावत् निगोद जीव तहाँ उपजैं भी है। अर पूर्वैं उपजे जीव मरैं हैं तहाँ पीछै उपजे नाहीं। आयु नाशतैं केवल मरैं ही है तातैं इनकौं किछू दोष नाहीं उपजै है। ऐसैं क्षीणकषायका अंत समयविषैं घाति कर्मनिका नाशकरि ताके अनंतरि अपने कालविषैं सयोगकेवली जिन हो है। सो सर्वज्ञ अर सर्वदर्शी हो है। सर्व पदार्थनिकौं आकाररूप विशेष ग्रहण करै है। तातैं सर्वज्ञ कहिए। बहुरि सर्व पदार्थनिकौं निराकाररूप सामान्य ग्रहण करै है तातैं सर्वदर्शी कहिए है ॥६०९॥

खीणे घादिचउक्के णंतचउक्कस्स होदि उप्पत्ती।
सादी अपज्जवसिदा उक्कस्साणंतपरिसंखा ॥६१०॥

क्षीणे घातिचतुष्केऽनंतचतुष्कस्य भवति उत्पत्तिः।
सादिरपर्यवसिता उत्कृष्टानंतपरिसंख्या ॥६१०॥

सं० चं०—घातिया कर्मनिका चतुष्कका नाश होतैं अनंतचतुष्टयकी उत्पत्ति हो है। अनंतपना कैसैं संभवे है ? सो कहिए है—

सादि कहिए उपजने कालविषै आदि सहित है तथापि अपर्यवसिता कहिए अवसान जो अंत ताकरि रहित है, तातैं अनंत कहिए। अथवा अविभाग प्रतिच्छेदनिकी अपेक्षा इनकी उत्कृष्ट अनंतानंतमात्र संख्या है तातैं भी अनन्त कहिए ॥६१०॥

अब किस कर्मनिका नाशकैं कौन गुण हो है सो कहिए है—

आवरणदुगाण खये केवलणाणं च दंसणं होइ ।
विरियंतराययिस्स य खएण विरियं हवे णंतं ॥६११॥

आवरणद्विकयोः क्षये केवलज्ञानं च दर्शनं भवति ।
वीयान्तरायिकस्य च क्षयेण वीर्यं भवेदनन्तम् ॥६११॥

स० चं०—ज्ञानावरण दर्शनावरण इन दोऊनिका नाशकरि केवलज्ञान और केवलदर्शन हो है। तहाँ केवलज्ञान है सो इन्द्रिय मन प्रकाशादिकका सहाय रहित है। सो सूक्ष्म अन्तरित दूर आदि सर्व पदार्थनिकौं प्रत्यक्ष युगपत् जाने है। तहाँ परमाणू आदि सूक्ष्म कहिए। अतीत अनागत कालसम्बन्धी अन्तरित कहिए। दूर क्षेत्रवर्ती दूर कहिए। बहुरि तैसैंही केवलदर्शन है सो देखे है। जैसैं चंद्रविषैं शीतस्पर्श श्वेतवर्णपनौं युगपत् है तैसैं जिनेंद्रविषैं केवलज्ञान केवलदर्शन युगपत् प्रवर्तैं हैं, छद्मस्थवत् क्रमवर्ती नाही हैं। बहुरि वीर्यांतरायकर्मका क्षयकरि अनंत वीर्य हो है सो समस्त ज्ञेयनिकौं सदाकाल जानते भी खेद उपजनेका अभावकौं उपकारी काहूकरि घाती न जाय ऐसी समर्थतारूप है ॥ ६११ ॥

णवणोकसायविग्घचउक्काणं च य खयादणंतसुहं ।
अणुवममव्वावाहं अप्पसमुत्थं णिरावेक्खं ॥६१२॥

नवनोकषायविघ्नचतुष्काणां च क्षयादनन्तसुखम् ।
अनुपममव्याबाधमात्मसमुत्थं निरपेक्षम् ॥६१२॥

स० सं०—नव नोकषाय अर दानादि अन्तरायचतुष्कका क्षयतैं अनंत सुख हो है सो अन्यत्र ऐसा न पाइए है, तातैं अनौपम्य है। बहुरि काहूकरि बाधित नाहीं, तातैं अव्याबाध है। बहुरि आत्माकरि उत्पन्न है, तातैं आत्मसमुत्थ है। बहुरि इन्द्रियविषय प्रकाशादिअपेक्षा रहित है, तातैं निरापेक्ष है। ऐसा ज्ञानवैराग्य ताकी उत्कृष्टताकौं प्राप्त भया जो केवली तिनकैं अनाकुल लक्षण अनंत सुख जानना ॥ ६१२ ॥

सत्तण्हं पयडीणं खयादु खइयं तु होदि सम्मत्तं ।
वरचरणं उवसमदो खयदो दु चरित्तमोहस्स ॥६१३॥

सप्तानां प्रकृतीनां क्षयात् क्षायिकं तु भवति सम्यक्त्वम् ।
वरचारणं उपशमतः क्षयतस्तु चारित्रमोहस्य ॥६१३॥

स० चं०—च्यारि अनंतानुबंधी तीन मिथ्यात्व इन सात प्रकृतिनिके क्षयतैं क्षायिक सम्यक्त्व हो है सो तत्वार्थनिका यथार्थ श्रद्धानरूप जानना। बहुरि चारित्र मोहकी इकईस प्रकृतिनिके उपशमतैं वा क्षयतै उत्कृष्ट यथाख्यात चारित्र हो है सो निष्कषाय आत्मचरणरूप है। इहां क्षायिक यथाख्यात चारित्र ही है। तथापि यथाख्यातका प्रसंग पाइ उपशांत कषायविषैं पाइए है जो उपशम यथाख्यात ताका भी कारण दिखाया है ॥६१३॥

अब इहां कोऊ कहै कि केवलीकैं असाता वेदनीयके उदयतैं क्षुधादि परीषह पाइए हैं तातैं आहारादि क्रिया संभवै हैं तिस प्रति कहै हैं—

जं णोकसायविग्घचउक्काण बलेण दुक्खपहुदीणं ।
असुहपयडिणुदयभवं इंदियखेदं हवे दुक्खं ।।६१४।।

यत् नोकषायविघ्नचतुष्काणां बलेन दुःखप्रभृतीनाम् ।
अशुभप्रकृतीनामुदयभवं इंद्रियखेदं भवेत् दुःखं ।।६१४।।

स० चं०—जो नोकषाय अर अन्तरायचतुष्क इनका उदयके बलकरि दुःखरूप असाता वेदनीय आदि अशुभ प्रकृतिनिका उदय करि उपज्या ऐसा इंद्रियकैं खेद आकुलता ताका नाम दुःख है । सो केवलीकैं नाहीं संभवै है ।।६१४।।

जं णोकसायविग्घचउक्काण बलेण सादपहुदीणं ।
सुहपयडीणुदयभवं इंदियतोसं हवे सोक्खं ।।६१५।।

यत् नोकषायविघ्नचतुष्काणां बलेन सातप्रभृतीनां ।
शुभप्रकृतीनामुदयभवं इंदियतोषं भवेत् सौख्यं ।।६१५।।

स० चं०—जो नोकषाय अर अन्तराय चतुष्कका उदयके बलकरि सात वेदनीय आदि शुभ प्रकृतिनिका उदयकरि उपज्या इन्द्रियनिके संतोष किछू निराकुलता ताका नाम इंद्रिय-जनित सुख है सो भी केवलीके नाहीं संभवै है ।।६१५।।

णट्ठा य रायदोसा इंदियणाणं च केवलिम्हि जदो ।
तेण दु सादासादजसुहदुक्खं णत्थि इंदियजं ।।६१६।।

नष्टौ च रागद्वेषौ इंद्रियज्ञानं च केवलिनि यतः ।
तेन तु सातासातजसुखदुःखं नास्ति इंद्रियजं ।।६१६।।

स० चं०—जातै केवलीविषैं राग द्वेष नष्ट भए हैं। बहुरि इंद्रियजनित ज्ञान भी नष्ट भया है, तातैं साता असाता वेदनीयका उदयकरि निपज्या ऐसा इन्द्रियजनित सुख दुःख नाही है । इस हेतुतै यहु सिद्ध भया जो कारणके सद्भावतैं केवलीकैं असातावेदनीयके उदयतैं उपजे ऐसैं परीषह उपचारमात्र कहिए है, तथापि तिनका दुःख नाहीं व्यापे है, जातैं घातिकर्मनिका उदय केवल होतैं वेदनीयका उदयतैं सुख दुःख व्यापै है । जैसैं उपघात परघात नाम कर्मका उदय होतैं भी घाति कर्मनिके बल विना अपना वा अन्यका घात न हो है जो ऐसैं न होइ तो परीषहनिके निमित्ततैं केवलीकौं दुःख होइ तब लाभके अर्थि कार्य करै । जैसैं मूल नाश होइ तैसैं यहु कार्य भया सो न संभवै है तातै केवलीकैं भोजन हैं ऐसा वचन अयुक्त है ।। ६१६ ।।

अब अन्य हेतु कहैं हैं—

समयट्ठिदिगो बंधो सादस्सुदयप्पिगो जदो तस्स ।
तेण असादस्सुदओ सादसरूवेण परिणमदि ।।६१७।।

समयस्थितिको बंधः सातस्योदयात्मको यतः, तस्य ।
तेन असातस्योदयः सातस्वरूपेण परिणमति ॥६१७॥

स० चं०—जातैं केवलीकैं एक समयमात्र स्थिति लीएं सातावेदनीयका बंध हो है सो उदयरूप ही है, तातैं ताकैं असाताका उदय है सो भी सातारूप होइ परिनमै है। जातैं इहां परम विशुद्धताकरि साताका अनुभागकी बहुत अधिकता पाइए है, तातैं असाताजनित क्षुधादि परिषहकी वेदना नाही है। वेदना विना ताका प्रतिकाररूप आहार कैसैं संभवै है ? ॥६१७॥

इहां कोऊ कहै कि जो आहार न संभवै तौ शास्त्रनिविषैं केवलीकैं आहार मार्गणाका सद्भाव कैसैं कह्या हैं ? सो कहिए है—

पडिसमयं दिव्वतमं जोगी णोकम्मदेहपडिबद्धं ।
समयपबद्धं बंधदि गलिदवसेसाउमेत्तठिदी ॥६१८॥

प्रतिसमयं दिव्यतमं योगी नोकर्मदेहप्रतिबद्धम् ।
समयप्रबद्धं बध्नाति गलितावशेषायुर्मात्रस्थितिः ॥६१८॥

स० चं०—सयोगी जिन है सो समय समय प्रति नोकर्म जो औदारिक शरीर तीहिसम्बन्धी जो समयप्रबद्ध ताकौं बाधे है ग्रहण करै है। ताकी स्थिति आयु व्यतीत भएं पीछे जेता अवशेष रह्या तावन्मात्र जाननी। सो नोकर्मवर्गणाका ग्रहण हीका नाम आहारमार्गणा है, ताका सद्भाव केवलीकैं है, जातैं ओज १ लेप्य १ मानस १ केवल १ कर्म १ नोकर्म १ भेद तैं छह प्रकार आहार है। तहां केवलीकैं कर्म-नोकर्म ए दोय आहार संभवै हैं। साता वेदनीयका समयप्रबद्धकौं ग्रहै है सो कर्म आहार है। औदारिक शरीरका समयप्रबद्ध ग्रहै है सो नोकर्म आहार है ॥७१८॥

णवरि समुग्घादगदे पदरे तह लोगपूरणे पदरे ।
णत्थि तिसमये णियमा णोकम्माहारयं तत्थ ॥६१९॥

नवरि समुद्धातगते प्रतरे तथा लोकपूरणे प्रतरे ।
नास्ति त्रिसमये नियमात् नोकर्माहारकस्तत्र ॥६१९॥

स० चं०—इतना विशेष जो केवल समुद्धातकौं प्राप्त केवलीविषैं दोय तौ प्रतरके समय अर एक लोकपूरणका समय इनि तीन समयनिविषैं नोकर्मका आहार नियमतैं नाही है, अन्य सर्व सयोगी जिनका कालविषैं नोकर्मका आहार है ॥६१९॥

अब इहाँ समुद्धात कब हो है सो कहना—तहाँ क्षीणकषायके अंतरि इर्यापथबंधकौ कारण जौ योग तिनकरि सहित जो तीर्थंकर केवली भया सो समवसरणविषैं मंडपके मध्य तीन पीठिका ऊपरि जो सिंहासन तीहिविषैं विराजमान है। अष्ट प्रातिहार्य चौंतीस अतिशयसहित है। धातु-मलरहित, परम औदारिक शरीरसहित है। सर्व लोकपूज्य है। बहुरि एक योजन विषैं तिष्टते ऐसैं दूर वा निकटवर्ती तिर्यंच वा मनुष्य वा देव तिनकी अठारह महाभाषा सातसैं क्षुल्लकभाषा ताके आकारि तद्रूप परिनम्या ऐसा जो दिव्यध्वनि ताकरि आसन्न भव्य जीवनिकौं संसारतैं पार करै है। जैसैं बिना इच्छा चंद्रमा समुद्रकौं बंधावे है तैसैं अबुद्धिपूर्वकपनैं केवली जगतका

हितकौं करै हैं। जातैं सर्व जीवनिका उपकाररूप परिणामनितैं ऐसा कर्म पूर्वें बंध्या है जाके उदयतैं सर्व जीवनिका स्वयमेव उपकार हो है अर भव्य जीवनिका भला होना है, तातैं ऐसा निमित्त बना है। बहुरि भगवान विहार करैं तब आकाशविषैं दोयसै पचीस कमलनीके ऊपरि स्वयमेव गमन करैं हैं। सो या प्रकार उत्कृष्ट तौं किंचित् ऊन कोडि पूर्व अर जघन्य पृथक्त्व वर्षप्रमाण तीर्थंकर केवलीकी स्थिति सयोग गुणस्थानविषैं जाननी। सामान्य केवलीनिकैं अतिशयादिक यथासंभव जानना अर जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त जाननी। तहाँ सयोगीका प्रथम समयतैं लगाय उदयादि अवस्थित गुणश्रेणिनिर्जरा पाइए है। तहाँ प्रथम समयविषैं वेदनीय नाम गोत्रका द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ तहाँ एक भागमात्र द्रव्य ग्रहि पूर्वोक्त प्रकार गुणश्रेणिविषैं देनैं योग्य द्रव्यकौं उदयरूप प्रथम निषेकविषैं तौ स्तोक अर द्वितीयादि गुणश्रेणिशीर्षपर्यंत निषेकनिविषैं असंख्यातगुणा क्रम लीएं निक्षेपण करिए है। बहुरि उपरितन स्थितिविषैं देने योग्य द्रव्यको प्रथम निषेकविषैं गुणश्रेणिशीर्षविषैं दीया द्रव्यतैं असंख्यातगुणा अर द्वितीयादि अतिस्थापनावली यावत् न प्राप्त होइ तावत् निषेकनिविषैं विशेष घटता क्रम लीए निक्षेपण करिए है। इहां क्षीणकषाय करि अपकर्षण कीया द्रव्यतैं सयोगकेवलीकरि अपकर्षण कीया द्रव्य असंख्यातगुणा जानना। बहुरि ताके गुणश्रेणिआयामतैं याका गुणश्रेणिआयाम संख्यातगुणा घटता जानना। बहुरि सयोगकेवलीका द्वितीयादि समयनिविषैं भी ऐसा ही विधान जानना। परिणाम अवस्थित है, तातैं अपकर्षण कीया द्रव्यकी अर गुणश्रेणीआयामकी समानता जाननी। इतना ही विशेष गुणश्रेणिआयाम अवस्थित है, तातैं ज्यू-ज्यूं गुणश्रेणिआयामका एक-एक समय व्यतीत हो है त्यूं त्यूं उपरितन स्थितिका एक-एक समय गुणश्रेणिविषैं मिलै है। या प्रकार सयोगीका काल बहुत व्यतीत होतैं समुद्घातक्रिया जिस कालविषैं हो है सो कहिए है—

अंतोमुहुत्तमाऊ परिसेसे केवली समुग्घादं।
दंड कवाटं पदरं लोगस्स य पूरणं कुणई[1] ॥६२०॥

अंतर्मुहूर्तमायुषि परिशेषे केवली समुद्घातं।
दंडं कपाटं प्रतरं लोकस्य च पूरणं करोति ॥६२०॥

स० चं०—अपना आयु अन्तर्मुहूर्तमात्र अवशेष रहैं केवली समुद्घात क्रिया करैं है। तहाँ दंड कपाट प्रतर लोकपूरणरूप समुद्घात क्रियाकौं करैं है ॥६२०॥

हेट्ठा दंडस्संतोमुहुत्तमावज्जिदं हवे करणं।
तं च समुग्घादस्स य अहिमुहभावो जिणिंदस्स[2] ॥६२१॥

अधस्तनं दंडस्यांतर्मुहूर्तमावर्जितं भवेत् करणं।
तच्च समुद्घातस्य च अभिमुखभावो जिनेन्द्रस्य ॥६२१॥

१. स केवलिसमुद्घातो दंड-कवाट-प्रतर-लोकपूरणभेदेन चतुरवस्थात्मकः प्रत्येतव्यः। जयध० ता० मु०, पृ० २२७८।

२. अंतोमुहुत्ते आउगे सेसे तदो आवज्जिदकरणे कदे तदो केवलिसमुग्घादं करेदि। क० चु०, पृ० ९००।

स० चं०—दंड समुद्घात करनेका कालकैं अंतर्मुहूर्त काल आधा कहिए पहलैं आवर्जित नामा करण हो है सो जिनेंद्रदेवकैं जो समुद्घात क्रियाकौं सन्मुखपना सोई आवर्जितकरण कहिए ॥६२१॥

विशेष—जब केवली जिनकी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आयु अवशिष्ट रहती है तब केवली भगवान् अघाति कर्मोंकी स्थितिको समान करनेके लिए केवलि समुद्घातके पहले आवर्जितकरण नामकी दूसरी क्रिया करते हैं। केवली जिनका केवलि समुद्घातके संमुख होना इसका नाम आवर्जितकरण है। उसे वे अन्तर्मुहूर्तकालतक करते हैं, क्योंकि यह करण किए बिना केवलि समुद्घातके संमुख होना सम्भव नहीं है। उसी समय केवली जिन उदयादि अवस्थित गुणश्रेणिकी रचना करते हैं। इसे करते हुए उदयमें स्तोक प्रदेशपुंजका निक्षेप करते हैं। इसके आगे गुणश्रेणिशीर्षके प्राप्त होनेतक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे प्रदेशपुंजका निक्षेप करते हैं। यह गुणश्रेणिशीर्ष तदनन्तर पिछले समयमें विद्यमान सयोगि केवलीके द्वारा किये गये गुणश्रेणि आयामसे संख्यातगुणे स्थान नीचे जाकर स्थित रहता है, परन्तु प्रदेशपुंजकी अपेक्षा उससे असंख्यातगुणे प्रदेशपुंजसे युक्त होना है। गुणश्रेणिके ऊपर अनन्तर समयमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुंजको देते हैं। इससे ऊपर सर्वत्र विशेषहीन विशेषहीन प्रदेशपुंजका निक्षेप करते हैं। इस प्रकार आवर्जितकरणके भीतर सर्वत्र गुणश्रेणिनिक्षेप जानना चाहिये। यहाँसे लेकर सयोगी केवलीके द्विचरम कांडककी अन्तिम फालितक अवस्थितरूपसे इस गुणश्रेणिनिक्षेपके आयामकी प्रवृत्ति जानना चाहिये। और यह असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि सूत्रके अविरुद्ध परम गुरु सम्प्रदायके बलसे इसका निश्चय होता है।

सट्ठाणे आवज्जिदकरणे वि य णत्थि ठिदिरसाण हदी।
उदयादि अवट्ठिदया गुणसेढी तस्स दव्वं च ॥६२२॥

स्वस्थाने आवर्जितकरणेऽपि च नास्ति स्थितिरसयोः, हतिः।
उदयादिअवस्थितका गुणश्रेणिः, तस्य द्रव्यं च ॥६२२॥

स० चं०—आवर्जितकरण करने पहलैं जो स्वस्थान तीहिंविषै अर आवर्जितकरणविषै भी सयोगकेवलीकैं कांडकादि विधानकरि स्थिति अनुभागका घात नाहीं है। बहुरि उदयादि अवस्थितरूप गुणश्रेणिआयाम है अर तिस गुणश्रेणिका द्रव्य भी अवस्थित है। तहां विशेष इतना जो स्वस्थान केवलीका गुणश्रेणिआयामतैं आवर्जितकरणयुक्त केवलीका गुणश्रेणि आयाम संख्यातगुणा घाटि है। बहुरि स्वस्थान केवलीकरि अपकर्षण कीया द्रव्यतैं आवर्जितकरणयुक्त केवलीकरि अपकर्षण कीया द्रव्य असंख्यातगुणा है, जातैं गुणश्रेणिनिर्जराके ग्यारह स्थान कहे हैं तहाँ ऐसा ही क्रम कह्या है। यद्यपि केवलीकैं परिणामनिकी समानता है, तथापि आयुका अंतर्मुहूर्तमात्र अवशेष रहनेका निमित्त पाइ विशेष होनेतैं स्वस्थान जिनतैं समुद्घातकौं सन्मुख जिनकैं गुणश्रेणिआयाम वा अपकर्षण कीया द्रव्यकी समानता नाही कही है। बहुरि स्वस्थान जिनकैं प्रथमादि अंत समयपर्यन्त गुणश्रेणिआयाम अर अपकर्षण कीया द्रव्य समान है, तातैं अवस्थित जानना। बहुरि आयुवर्जित करणका प्रथम समयतैं लगाय सयोगीकैं द्विचरम स्थितिकांडककी अंतफालिका पतन जिस समय होगा तहां पर्यन्त गुणश्रेणिआयाम अर अपकर्षण कीया द्रव्य समान है तातैं अवस्थित जानना ॥६२२॥

अब आवर्जितकरणविषै गुणश्रेणिआयाम कितना है ? सो कहिए है—

जोगिस्स सेसकाले गयजोगी तस्स संखभागो य ।
जावदियं तावदिया आवज्जिदकरणगुणसेढी[1] ॥६२३॥

योगिनः शेषकाले गतयोगी तस्य संख्यभागश्च ।
यावत् तावत्कं आवर्जितकरणगुणश्रेणिः ॥६२३॥

स० चं०—आवर्जितकरण करनेके पहले समय जो सयोगीका अवशेष काल रह्या अर अयोगीका सर्वकाल अर अयोगीके कालका संख्यातवां भाग इनकौं मिलाएं जितना होइ तितना आवर्जितकरण कालका प्रथम समयतैं लगाय द्विचरम कांडककी अंतफालिका पतन समयपर्यंत समयनिविषै अवस्थित गुणश्रेणिआयाम जानना । तहाँ अपकर्षण कीया द्रव्य देनेका विधान जैसैं स्वस्थान जिनविषै कह्या तैसैं जानना ।

या प्रकार अन्तर्मुहूर्तमात्र आवर्जितकरण कालविषै क्रियाविशेष कहे, ताके अनंतरि समुद्घातक्रिया हो है । सो अघाति कर्मनिकी स्थिति समान करनेके अर्थि जीवके प्रदेशनिका समुद्गमन फैलना ताका नाम समुद्घात है । सो दंड कपाट प्रतर लोकपूरणभेदतैं च्यारि प्रकार है । सो समुद्घात करनेवाले जीव पूर्वकौं सन्मुख वा उत्तरकौं सन्मुख हो हैं । बहुरि पद्मासन वा कायोत्सर्ग आसनयुक्त हो हैं । सो प्रथम समयविषै दंड समुद्घात करै हैं । तहां उत्कृष्ट अवगाह-युक्त केवलीका शरीर एक सौ आठ प्रमाणांगुल प्रमाण ऊँचो होइ, ताके नवमे भाग चौडाई होइ । सो बारह अंगुल चौडाईकी सूक्ष्म परिधि सैंतीस अंगुल अर एक अंगुलका एकसौ तेरह भागमें पिच्याणवै भागमात्र हो है । सो यहु तो कायोत्सर्ग स्थित केवलीके परिधिका प्रमाण जानना । बहुरि पद्मासन स्थितिके चौडाईका प्रमाण तातैं तिगुणा छत्तीस अंगुल है । ताके सूक्ष्म परिधिका प्रमाण एकसौ तेरह अंगुल अर एक अंगुलका एकसौ तेरह भाग सत्ताईस भागमात्र हो है । ऐसैं परिधिरूप होइ किंचिदून चौदह राजू ऊँचे प्रदेश हो हैं । इहाँ नीचले ऊपरले वातवलयनिविषैं जीवके प्रदेश न फैलै हैं, तातैं तिनके घटावनेके अर्थि किंचिदून कह्या है । ऐसैं दंडके आकारि प्रदेश फैलनेतैं दंड समुद्घात कह्या[2] ।

---

१. केवलिसमुग्घादस्स अहिमुहीभावो आवज्जिदकरणमिदि भण्णदे । तमंतोमुहुत्तमणुपालेदि । जयध० ता० मु० २२७७ । ताधेव णामा-गोद-वेदणीयाणं पदेसपिंडमोकड्डियूण उदए पदेसग्गं थोवं देदि, से काले असंखेज्जगुणं । एवं असंखेज्जगुणाए सेढीए णिक्खिवमाणो गच्छइ जाव सेससजोगिअद्धादो अजोगि-अद्धादो च विसेसाहियभावेण समवट्ठिदगुणसेढिसीसयं त्ति । जयध० ता० मु०, पृ० २२७७–२२७८ ।

२. अंतोमुहुत्ताउगे सेसे केवलीसमुग्घादं करेमाणो पुव्वाहिमुहो उत्तराहिमुहो वा होदूण काउस्सग्गेण वा करेदि पलियंकासणेण वा । तत्थ काउस्सग्गेण दंडसमुग्घादं कुणमाणस्स मूलसरीरपरिहाणेण देसूणचोद्दस-रज्जुआयामेण दंडायारेण जीवपदेसाणं विसप्पणं दंडसमुग्घादो णाम । एत्थ देसूणपमाणं हेट्ठा उवरिं च लोय-पेरंतवादवलयरुद्धखेत्तमेदं होदि त्ति दट्ठव्वं । सहावदो चेव तदवत्थाए वादवलयब्भंतरे केवलिजीवपदेसाणं पवेसाभावादो । एवं चेव पलियंकासणेण समुदहस्स वि दंडसमुग्घादो वत्तव्वो । णवरि मूलसरीरपरिट्ठयादो दंडसमुग्घादपरिट्ठिओ तत्थ तिगुणो होदि । कारणमेत्थ सुगमं । एवंविहो अवत्थाविसेसो दंडसमुग्घादो त्ति भण्णदे । जयध० ता० मु० २२७८–२२७९ ।

बहुरि द्वितीय समयविषै कपाट समुद्घात करै है। तहां पूर्व दिशा सन्मुख कायोत्सर्ग आसनयुक्त केवलीके प्रदेश किंचिदून चौदह राजू ऊँचे सात राजू चौडे बारह अंगुल मोटे हो हैं। बहुरि पूर्व सन्मुख पद्मासन स्थित केवलीके प्रदेश ऊँचे चौडे पूर्वोक्त मोटे छत्तीस अंगुल हो हैं। बहुरि उत्तर सन्मुख कायोत्सर्गस्थित केवलीके प्रदेश किंचिदून चौदह राजू ऊँचे अर नीचे सात राजू, क्रमतैं घटि मध्य लोक निकटि एक राजू, क्रमतैं बंधि ब्रह्म स्वर्ग निकटि पांच राजू, क्रमतैं घटि ऊपरि एक राजू चौडे अर बारह अंगुल मोटे प्रदेश हो हैं। बहुरि उत्तर सन्मुख पद्मासन स्थित केवलीके प्रदेश ऊँचे चौडे तैसैं ही अर मोटे छत्तीस अंगुल हैं। ऐसैं कपाट आकारि प्रदेश फैलनेतैं कपाट कह्या[1]।

बहुरि तीसरे समय प्रतर करै है। तहाँ वातवलय विना अवशेष सर्व लोकविषैं आत्माके प्रदेश फैलैं हैं, सो याका नाम मंथान भी है[2]।

बहुरि चतुर्थ समयविषै लोकपूरण हो है। तहा वातवलयसहित सर्व लोकविषैं आत्माके प्रदेश फैले हैं।[3] ऐसैं च्यारि समयनिविषैं दण्ड कपाट प्रतर लोकपूरण क्रमतैं प्रदेश फैलैं हैं॥६२३॥

तहाँ कार्यविशेष हो है सो कहिए है—

ठिदिखंडमसंखेज्जे भागे रसखंडमप्पसत्थाणं।
हणदि अणंता भागा दंडादी चउसु समएसु[4] ॥६२४॥

स्थितिखंडमसंख्येयान् भागान् रसखंडमप्रशस्तानां।
हंति अनंतान् भागान् दंडादिचतुर्षु समयेषु ॥६२४॥

स० चं०—दंडादिकके च्यारि समयनिविषैं स्थित खंड तौ असंख्यात बहुभागमात्र, अप्रशस्तनिका अनुभागखंड अनंत भागमात्र ताकौं घाते है। सोई कहिए है—

दंडरूप प्रथम समयविषैं जो नाम गोत्र वेदनीयका स्थितिसत्त्व पूर्वे पल्यका असंख्यातवाँ

---

१. कपाटमिव कपाटं। कः उपमार्थः ? यथा कपाटं बाहल्येण स्तोकमेव भूत्वा विष्कम्भायामाभ्यां परिवर्धते, एवमयमपि जीवप्रदेशावस्थाविशेषः मूलशरीरबाहल्येन तत्त्रिगुणबाहल्येन वा देसूणचोद्दसरज्जु-आयामेण सत्तरज्जुविक्खंभेण वड्ढि-हाणिगदविक्खंभेण वा वड्ढिगूण चिट्ठदि त्ति कवाडसमुग्घादो त्ति भण्णदे। जयध० ता० मु० पृ० २२७९।

२. मथ्यतेऽनेन कर्मेति मन्थः। अघादिकम्माणं ट्ठिदिअणुभागणिम्महणट्ठो केवलिजीवपदेसाण-मवत्थाविसेसो पदरसण्णिदो मंथो त्ति वुत्तं होइ। एदम्मि अवत्थाविसेसे वट्टमाणस्स केवलिणो जीवपदेसा चदुहिं मि पासेहिं पदरागारेण विसप्पियूण समंतदो वादवलयवदिरित्तासेसलोगागासपदेसे आवूरिया चिट्ठंति त्ति दट्ठव्वं, सहावदो चेव तदवत्थाए केवलिजीवपदेसाणं वादवलयब्भंतरे संचाराभावादो। एदस्स चेव पदरसण्णा रुजगसण्णा च आगमरूढिबलेण दट्ठव्वा। जयध० ता० मु० पृ० २२८०।

३. वादवलयावरुद्धलोगागासपदेसु वि जीवपदेसेसु समंतदो पविट्ठेसु लोगपूरणसण्णिदं चतुत्थं केवलिसमुद्घादविसेसो तदवत्थाए पडिवज्जदि त्ति भणिदं होदि। जयध० ता० मु० पृ० २२८०।

४. तम्हि ठिदीए असंखेज्जे भागे हणइ। सेसस्स च अणुभागस्स अप्पसत्थाणमणंताभागे हणदि। क० चु० पृ० ९०१।

भागमात्र था ताकौं असंख्यातका भाग दीएं तहाँ बहुभागमात्र घटाइ एक भागमात्र अवशेष राखे है। बहुरि अप्रशस्त प्रकृतिनिकौं क्षीणकषायका अन्त समयविषैं जो अनुभाग रह्या था ताकौं अनन्तका भाग दीएं तहाँ बहुभाग घटाइ एक भागमात्र अवशेष राखं है। बहुरि कपाटरूप द्वितीय समयविषैं जो दंड समयविषैं स्थिति अनुभाग रहे थे तिनकौं क्रमतैं असंख्यात अनंतका भाग दीएं तहाँ बहुभाग घटाइ एक भागमात्र अवशेष राखे है। बहुरि प्रतररूप तीसरा समयविषैं कपाट समयविषैं जो स्थिति अनुभाग रह्या ताकौं असंख्यात अनंतका भाग क्रमतैं दीएं तहाँ बहुभाग घटाइ एक भागमात्र अवशेष राखै है। बहुरि लोकपूरणरूप चौथा समय विषै जो प्रतर समयविषैं स्थिति अनुभाग रह्या था ताकौं असंख्यात अनंतका भाग क्रमतैं दीएं तहाँ बहुभाग घटाइ एक भागमात्र अवशेष राखै है। प्रशस्त प्रकृतिनिका स्थितिघात हो है, अनुभागघात न हो है ऐसा जानना। बहुरि गुणश्रेणिनिर्जरा आवर्जित करणवत् हो है ॥६२४॥

चउसमएसु रसस्स य अणुसमओवट्टणा असत्थाणं।
ठिदिखंडस्सिगिसमयिगघादो अंतोमुहुत्तुवरिं[1] ॥

चातुःसमयेषु रसस्य च अनुसमयापवर्तनमशस्तानां।
स्थि[illegible]कसमयिकघातो अंतर्मुहूर्तोपरि ॥६२५॥

स० चं०—ऐसैं च्यारि समयनिविषैं अप्रशस्त प्रकृतिनिके अनुभागका अनुसमयापवर्तन भया। समय-समय अनुभागका घटना भया। बहुरि स्थितिखण्डका एक समयकरि घात भया। एक-एक समयविषैं एक-एक स्थितिकांडकघात कीया सो यह माहात्म्य समुद्घात क्रियाका जानना। बहुरि लोकपूरणके अनन्तरि अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थितिकांडक वा अनुभागकांडकका आयाम जानना। अन्तर्मुहूर्त कालकरि स्थिति-अनुभागका घटावना जानना[2] ॥६२५॥

जगपूरणम्हि एक्का जोगस्स य वग्गणा ठिदी तत्थ।
अंतोमुहुत्तमेत्ता संखगुणा आउआ होदि[3] ॥६२६॥

जगत्पूरणे एका योगस्य च वर्गणा स्थितिस्तत्र।
अंतर्मुहूर्तमात्रा संख्यगुणा आयुषो भवति ॥६२६॥

स० चं०—लोकपूरणका समयविषैं योगनिकी एक वर्गणा है। पूर्वे आत्माके प्रदेशनिविषैं हीनाधिक योगनिके अविभागप्रतिच्छेद थे। इहां आत्माके सर्व प्रदेशनिविषैं समान प्रमाण लीएं योगनिके अविभागप्रतिच्छेद भए। याका नाम समयोग परिणाम है। सो यहु सूक्ष्मनिगोदियाकैं

१. एदेसु चदुसु समएसु अप्पसत्थकम्मंसाणमणुभागस्स अणुसमयमोवट्टणा। एगसमइओ ठिदिखंडयस्स घादो। क. चु. पृ. ९०३।

२. एत्तो सेसिगाए ठिदीए संखेज्जे भागे हणइ। सेसस्स च अणुभागस्स अणंते भागे हणइ। एत्तो पाए ठिदिखंडयस्स अणुभागखंडयस्स च अंतोमुहुत्तिया उक्कीरणद्धा। क० चु० पृ० ९०३।

३. तदो चउत्थसमये लोगं पूरेदि। लोगे पुण्णे एक्का वग्गणा जोगस्स त्ति समजोगो त्ति णायव्वो। लोगे पुण्णे अंतोमुहुत्तं ठिदिं ठवेदि। संखेज्जगुणमाउआदो। क०, चू०, पृ० ९०२।

जो जघन्य योगस्थान है ताकी जघन्य वर्गणातैं असंख्यातगुणी जो यथायोग्य मध्यम वर्गणा ताका वर्गनिके समान इहां सर्व आत्मप्रदेशनिविषैं समानरूप अविभागप्रतिच्छेद हो हैं। सो यहु एक समय ही रहे है। पीछे हीनाधिकता लीएं पूर्व स्पर्धकरूप योग परिणमि जाय हैं। बहुरि तहाँ लोकपूरण समयविषैं अंतर्मुहूर्तमात्र स्थिति अवशेष राखिए है। सो यहु अवशेप रह्या आयुतैं संख्यातगुणा जानना। इहां पूर्व स्थिति थी तामै इतनी स्थिति विना अवशेष सर्व स्थितिका कांडककरि घात भया है ॥६२६॥

इस लोकपूरण क्रियाके अनंतरि समुद्घातक्रियाकौं समेटें हैं सो क्रम कहिए है—

एत्तो पदर कवाडं दंडं पच्चा चउत्थसमयम्हि।
पविसिय देहं तु जिणो जोगणिरोधं करेदीदि ॥६२७॥

अतः प्रतरं कपाटं दंडं प्रतीत्य चातुर्थसमये।
प्रविश्य देहं तु जिनो योगनिरोधं करोतीति ॥६२७॥

स० चं०—इस लोकपूरणके अनंतरि प्रथम समयविषैं लोकपूरणकौं समेटि प्रतररूप आत्मप्रदेश करै है। द्वितीय समयविषैं प्रतर समेटि कपाटरूप आत्मप्रदेश करै है। तीसरे समय कपाट समेटि दंडरूप आत्मप्रदेश करै है। ताके अनन्तरि चौथा समयविषैं दंड समेटि सर्वप्रदेश मूल शरीरविषैं प्रवेश करै है। इहां समुद्घात क्रियाके करने समेटनेविषैं सात समय भए। तहां दंडके दोय समयनिविषैं औदारिक काययोग है, जातै इहाँ अन्य योग न संभवै हैं। बहुरि कपाटके दोय समयनिविषैं औदारिकमिश्रकाययोग है, जातैं इहां मूल औदारिकशरीर अर कार्मणशरीर इन दोऊनिका अवलंबनकरि आत्मप्रदेश चंचल हो हैं। बहुरि प्रतरके दोय समय अर लोकपूरणका एक समयविषैं कार्मण काययोग है, जातैं तहाँ मूल शरीरका अवलंबन करि आत्मप्रदेश चंचल न हो हैं। वा शरीर योग्य नोकर्मरूप पुद्गलकौं नाहीं ग्रहण करैं हैं। तहां अनाहारक है ऐसा जानना। पीछैं मूल शरीरविषैं प्रवेशकरि तिस शरीरप्रमाण आत्मा भया तहां औदारिकयोग ही है। ऐसैं समुद्घात क्रियाका वर्णन किया।

बहुरि लोकपूरण पीछैं स्थिति-अनुभागकांडकघातका आरम्भ किया था सो मूल शरीर विषैं प्रवेशकरि शरीर प्रमाण आत्मा होई अन्तर्मुहूर्त काल तहां विश्राम कीया। तहां संख्यात हजार स्थिति कांडक भएं पीछैं योगनिका निरोध करै है। इहां निरोध नाम नाशका जानना ॥६२७॥

बादरमण वचि उस्सास कायजोगं तु सुहुमजचउक्कं।
रुंभदि कमसो बादरसुहुमेण य कायजोगेण[1] ॥६२८॥

बादरमनो वच उच्छ्वासकाययोगं तु सूक्ष्मजचतुष्कं।
रुणद्धि क्रमशो बादरसूक्ष्मेण च काययोगेन ॥६२८॥

१. एत्तो अंतोमुहुत्तं गंतूण बादरकायजोगेण बादरमणजोगं णिरुंभइ। तदो अंतोमुहुत्तेण बादरकायजोगेण बादरवचिजोगं णिरुंभइ तदो अंतोमुहुत्तेण बादरकायजोगेण बादरउस्सासनिस्सासं णिरुंभइ। तदो अंतोमुहुत्तेण बादरकायजोगेण संभवबादरकायजोगं णिरुंभइ ०००००० । क. चु. प. ९०३।

स० चं०—बादर काययोगरूप होइ बादर मनोयोग वचनयोग उश्वास काययोग इन च्यारयोंकों क्रमतें नष्ट करै है। बहुरि सूक्ष्म काययोगरूप होइ तिन चारयों सूक्ष्मनिकौं क्रमतै नष्ट करै है। सोई कहिए है—

केवली भगवान् बादर काययोग प्रवर्तती संती पहले बादर मनोयोगकौं नष्टकरि सूक्ष्म कृष्टिरूप करै है। पीछै बादर वचनयोगकौं नष्टकरि सूक्ष्मरूप करै है। पीछै बादर उश्वासकौं नष्टकरि सूक्ष्मरूप करै है। पीछै बादर काययोगकौं नष्टकरि सूक्ष्मरूप करैं है या प्रकार जो बादररूप इनकी शक्ति पूर्वै थी ताकौं घटाइ सूक्ष्म करी। बहुरि केवली सूक्ष्म काययोगरूप प्रवर्तती पहलैं सूक्ष्म मनोयोगकौं पीछै सूक्ष्म वचनयोगकौं पीछैं सूक्ष्म उश्वासकौं पीछैं सूक्ष्म काययोगकौं नष्ट करैं है। इहां प्रश्न—

जो विद्यमानका नाश संभवै। इहाँ काययोगरूप प्रवर्तना अन्य योग है नाहीं, जातैं सिद्धांतविषैं एकै कालि एक योग कह्या है। बहुरि जे योग नाहीं तिनका नाश कैसें करै है? ताका समाधान—जो वर्तमान व्यक्तरूप काययोग ही प्रवतै है, परंतु मन-वचनयोगकी वर्गणानिविषैं मन-वचनयोग उपजावनेकी शक्ति तहाँ पाइए है ताकौं नष्ट करै है। तिनकी पहलैं बादरयोग उपजावनेकी शक्ति दूर करि सूक्ष्म कृष्टि योग उपजावनेकी शक्तिरूप तिनकौं करैं है। पीछैं ताकौं भी मिटाइ योग उपजावनेकी शक्तिकरि रहित करै है। ऐसा अर्थ जानना। इहां कारणविषैं कार्यका उपचार हो है इस न्यायकरि योगकौं कारण जो वर्गणानिविषैं शक्ति ताकौं योग कहिए है ॥६२८॥

इहाँ पूर्वै बादरयोग थे तिनकौं सूक्ष्मरूप परिनमाएँ ते कैसैं भएँ? सो कहिए है—

सण्णिविसुहुमणि पुण्णे जहण्णमणवयणकायजोगादो।
कुणदि असंखगुणूणं सुहुमणिपुण्णवरदो वि उस्सासं[1] ॥६२९॥

संज्ञिद्विसूक्ष्मनिपूर्णे जघन्यमनोवचनकाययोगतः।
करोति असंख्यगुणोनं सूक्ष्मनिपूर्णावरतोऽपि उच्छ्वासं ॥६२९॥

स० चं०—संज्ञी पर्याप्तकैं जो जघन्य मनोयोग पाइए है तातैं असंख्यातगुणा घटता ऐसा सूक्ष्म मनोयाग करै है। अर वेंद्रिय पर्याप्तकैं जो जघन्य वचन योग पाइए है तातैं असंख्यातगुणा बादर वचनयोग था ताकौं घटाइ तातैं असंख्यातगुणा घटता सूक्ष्म वचन योग करै है। बहुरि सूक्ष्म निगोद पर्याप्तका जघन्य काययोगतैं असंख्यातगुणा बादर काययोग था ताकौं मिटाइ तातैं असंख्यातगुणा घटता सूक्ष्म काययोग करै है। बहुरि सूक्ष्म निगोदिया पर्याप्तका जघन्य उश्वासतैं असंख्यातगुणा बादर उश्वास था ताकौं मिटाइ तातैं असंख्यातगुणा घटता सूक्ष्म उश्वास करैं है ॥६२९॥

एक्कक्कस्स णिठंभणकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो दु।
सुहुमं देहणिमाणमाणं हियमाणि करणाणि[2] ॥६३०॥

---

१. जयध० ता. मु. पृ. २२८३–२२८४।

२. तदो अंतोमुहुत्तेण सुहुमकायजोया सुहुमउस्सासं णिरुंभइ। तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सुहुमकायजोगेण सुहुमकायजोगं णिरुंभमाणो इमाणि करणाणि करेदि। क. चु. पृ. ९०४।

एकैकस्य निष्टंभनकालो अंतर्मुहूर्तमात्रो हि ।
सूक्ष्मं देहनिर्माणं आनं हीयमानं करणानि ॥६३०॥

स० चं०—एक एक बादर सूक्ष्म मनोयोगादिकके निरोध करनेका काल प्रत्येक अंतर्मुहूर्तमात्र जानना। बहुरि सूक्ष्म काययोगविषैं तिष्ठता सूक्ष्म उश्वासकौ नष्ट करनेके अनंतरि सूक्ष्म काययोग नाश करनेकौं प्रवर्तै है। ताकै विना इच्छा अबुद्धिपूर्वक आगैं कहिए है ते कार्य हो हैं ॥६३०॥

सुहुमस्स य पढमादो मुहुत्तअंतो त्ति कुणदि हु अपुव्वे ।
पुव्वगफड्ढगहेट्ठा सेढिस्स असंखभागमिदो[1] ॥६३१॥

सूक्ष्मस्य च प्रथमात् मुहूर्तान्तमिति करोति हि अपूर्वान् ।
पूर्वस्पर्धकाधस्तनं श्रेण्या असंख्यभागमितं ॥६३१॥

स० चं०—सूक्ष्म काययोग होनेका प्रथम समयतैं लगाय अंतर्मुहूर्त कालपर्यन्त पूर्व स्पर्धकनिके नीचैं जगच्छ्रेणिके असंख्यातवैं भागमात्र अपूर्व स्पर्धक करै है। सोई कहिए है—

पूर्व स्पर्धकनिका स्वरूप गोम्मटसारका कर्मकांडविषैं जो बंध-सत्त्व-उदय अधिकार है तिसविषैं प्रदेशबंधका कथनका प्रसंग पाइ योगनिका वर्णन कीया है, तहाँतै जानना। इहाँ भी किछू कहिए है—

जघन्य योगस्थानयुक्त जीव ताके लोकमात्र प्रदेश तिनविषैं जिस प्रदेशविषैं सवतैं स्तोक योगशक्ति पाइए ताकौं स्थापि ताके उपरि तिसतैं बंधती अर अन्य प्रदेशनितैं हीन जिस अन्य प्रदेशविषैं योगशक्ति पाइए ताकौं स्थापैं तिस प्रदेशतैं याविषैं जितनी योग शक्ति बंधती है ताका नाम अविभागप्रतिच्छेद है। बुद्धिविषैं इतने प्रमाण खंड कल्पि याकरि योगशक्तिका प्रमाण कीजिए तब जघन्य शक्तियुक्त प्रदेशनिविषैं असंख्यात लोकमात्र अविभागप्रतिच्छेद हो हैं। इनका समूहरूप जो एक प्रदेश ताकौं जघन्य वर्ग कहिए है। बहुरि इतने इतने अविभागप्रतिच्छेद जिनि प्रदेशनिविषैं समानरूप पाइए तिनिका समूहका नाम जघन्य वर्गणा है। ते प्रदेश कितने हैं ?

सर्व जीवके प्रदेशनिकौं साधिक ड्योढ गुणहानिका भाग दीएँ एक भागमात्र हैं, सो असंख्यात जगत्प्रतरप्रमाण हैं। इहां एक गुणहानिविषैं जो स्पर्धकनिका प्रमाण ताकौं एक स्पर्धकविषैं जो वर्गणानिका प्रमाण ताकौं गुणैं जो होइ सो एक गुणहानिका प्रमाण जानना। बहुरि ताके उपरि जघन्य वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदनितैं एक अविभागप्रतिच्छेद जिनिविषैं अधिक पाइए ऐसैं वर्गनिका समूहरूप द्वितीय वर्गणा है। ते वर्गरूप प्रदेश कितने हैं ?

जघन्य वर्गणाके प्रदेशनितैं एक विशेषमात्र घटती हैं। विशेषका प्रमाण जघन्य वर्गणाकौं दोय गुणहानिका भाग दीएँ जो होइ सो जानना। बहुरि इहांतैं ऊपरि द्वितीय गुणहानिकी प्रथम वर्गणापर्यन्त वर्गणानिविषैं प्रदेशरूप वर्गणानिका प्रमाण एक एक विशेषमात्र घटता क्रमतैं जानना।

तहां द्वितीय वर्गणाका वर्गके अविभागप्रतिच्छेदनितैं एक अधिक अविभागप्रतिच्छेदयुक्त वर्गनिका समूहरूप तृतीय वर्गणा होइ ऐसैं एक एक अधिक अविभागप्रतिच्छेदयुक्त वर्गनिका क्रम लीएँ जगच्छ्रेणिका असंख्यातवां भागमात्र वर्गणानिकी रचना करिए, इनका समूहका

१. पढमसमए अपुव्वफद्दयाणि करेदि पुव्वफद्दाणं हेट्ठदो। क. चु. पृ, ९०४।

नाम जघन्य स्पर्धक है। बहुरि ताके ऊपरि जघन्य वर्गके अविभागप्रतिच्छेदनितैं दूणा अविभागप्रतिच्छेदयुक्त वर्गनिका समूहरूप द्वितीय स्पर्धककी प्रथम वर्गणा हो है। ताके ऊपरि तातैं एक अधिक अविभागप्रतिच्छेदयुक्त वर्गनिका समूहरूप ताकी द्वितीय वर्गणा है। ऐसैं क्रम लीएं श्रेणिका असंख्यातवां भागमात्र वर्गणा होइ तिनके समूहका नाम द्वितीय स्पर्धक है। बहुरि ताके ऊपरि जघन्य वर्गके अविभागप्रतिच्छेदनितैं तिगुणा अविभागप्रतिच्छेदयुक्त वर्गनिका समूहरूप तृतीय स्पर्धककी प्रथम वर्गणा होइ। ताके ऊपरि पूर्वोक्तवत् एक एक अधिक अविभागप्रतिच्छेद अधिकयुक्त वर्गनिका समूहरूप द्वितीयादि वर्गणा होइ। ऐसैं श्रेणिका असंख्यातवां भागमात्र वर्गणा होइ तिनके समूहका नाम तृतीय स्पर्धक है। या प्रकार अविभागप्रतिच्छेद बंधनेका यावत् अनुक्रम होइ तावत् सोई स्पर्धक अर युगपत् अनेक स्पर्धक बंधै अन्य स्पर्धक होइ। सो ऐसैं जगच्छ्रेणिके असंख्यातवैं भागमात्र स्पर्धक भएं तिनिका समूहरूप प्रथम गुणहानि हो है। बहुरि ताके ऊपरि एक गुणहानिविषैं जो स्पर्धकनिका प्रमाण तातैं एक अधिक प्रमाणकरि गुणित जो जघन्य वर्गके अविभाग प्रतिच्छेदनिका प्रमाण होइ तितने अविभागप्रतिच्छेदयुक्त वर्गनिका समूहरूप द्वितीय गुणहानिका प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणा होइ। याविषैं वर्गनिका प्रमाण गुणहानिकी प्रथम वर्गणाके वर्गनिका प्रमाणतैं आधा जानना। बहुरि ताके ऊपरि प्रथम गुणहानिवत् अनुक्रम जानना। वर्गणानिविषैं वर्गनिका प्रमाण एक एक विशेष घटता है। सो इहाँ विशेषका प्रमाण प्रथम गुणहानिके विशेषतैं आधा जानना। ऐसैं द्वितीय गुणहानि समाप्त होइ है।

ऐसैं जघन्य स्पर्धकतैं लगाय जितने स्पर्धक होंइ तितना गुणकारकरि जघन्य वर्गके अविभागप्रतिच्छेदनिकौं गुणैं विवक्षित स्पर्धककी प्रथम वर्गणाका वर्गविषैं अविभाग प्रतिच्छेदनिका प्रमाण होइ। ऊपरि द्वितीयादि वर्गणानिविषैं एक एक अविभागप्रतिच्छेद बंधता क्रम लीएं वर्ग पाइए है। असंख्यात लोकमात्र अविभागप्रतिच्छेदनिका समूहरूप एक प्रदेशका नाम वर्ग है। असंख्यात जगत्प्रतरमात्र वर्गनिका समूहरूप एक वर्गणा है। जगच्छ्रेणिके असंख्यातवैं भागमात्र वर्गणानिका समूहरूप एक स्पर्धक है। ताके असंख्यातवैं भागमात्र जगच्छ्रेणिका असंख्यातवाँ भाग प्रमाण स्पर्धकनिका समूहरूप एक गुणहानि हो है। गुणहानि गुणहानि प्रति वर्गणानिविषैं वर्गनिका प्रमाण वा विशेषका प्रमाण क्रमतैं आधा आधा हो है। याहीतैं गुणहानि ऐसा नाम है। ऐसैं पल्यका असंख्यातवाँ भागमात्र नाना गुणहानिका समूहरूप जघन्य योगस्थान हो है। स्पर्धकनिकी संदृष्टि इहां जघन्य वर्गविषैं अविभागप्रतिच्छेद आठ सो ऐसै वर्गनिका समूहरूप प्रथम वर्गणा है। ताके ऊपरि नव नव अविभागप्रतिच्छेदयुक्त वर्गनिका समूहरूप द्वितीय वर्गणा ऐसैं एक एक बंधता क्रम ग्यारह अविभागप्रतिच्छेदयुक्त वर्गपर्यन्त कीया इहां प्रथम स्पर्धक भया। बहुरि दूसरे स्पर्धकके प्रथम वर्गणाके वर्गनिविषैं सोलह सोलह अविभागप्रतिच्छेद, ऊपरि एक एक बंधता, बहुरि तीसरे स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके वर्गनिविषैं चौईस चौईस ऊपरि एक एक बंधता अविभागप्रतिच्छेद है। ऐसैं अंकसंदृष्टिकरि पूर्वोक्त कथनके अनुसारि रचना जाननी—

	अंतर		अंतर		अंतर		अंतर	
११	०	१९	०	२७	०	३५	०	४३
१० १०	०	१८ १८	०	२६ २६	०	३४ ३४	०	४२ ४२
९ ९ ९	०	१७ १७ १७	०	२५ २५ २५	०	३३ ३३ ३३	०	४१ ४१ ४१
८ ८ ८ ८	०	१६ १६ १६ १६	०	२४ २४ २४ २४	०	३२ ३२ ३२ ३२	०	४० ४० ४० ४०

ऐसें जघन्य योगस्थान सूक्ष्म निगोदिया लब्धिअपर्याप्तका विग्रहगतिविषैं प्रथम समयवर्ती जीवकैं हो है। ताके प्रदेशनिविषैं योगशक्तिकी हीन-अधिकता पूर्वोक्त प्रकार जाननी। बहुरि याविषैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्र जे जघन्य स्पर्धक तिनके जेते अविभागप्रतिच्छेद होंइ तिनने मिलाएं दूसरा स्थान हो है। तिस जघन्य योगस्थानतैं बंधता औरनितैं घटता योगस्थान कोई जीवके होइ तो दूसरा स्थान होइ, यातैं घाटि न होइ। या प्रकार एक एक स्थानप्रति सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्र जघन्य स्पर्धक वंधै। ऐसैं जगच्छ्रेणिका असंख्यातवां भागमात्र स्थान भएं सर्वोत्कृष्ट योगस्थान हो है। सो संज्ञी पर्याप्तककैं संभवै है। या प्रकार योगस्थान हैं, तिननिषैं सयोगि जिन हैं सो पहिले संज्ञी पर्याप्तिकैं संभवता जो बादर काययोगरूप स्थान तिस-रूप प्रवर्ततौ ताकौं नष्टकरि सूक्ष्म निगोदियाका जघन्य स्थानतैं असंख्यातगुणा घटता सूक्ष्म काययोग तिसरूप प्रवर्त्या। बहुरि तिस पूर्व स्पर्धकरूप सूक्ष्म काययोगकी शक्तिकौं अपूर्व स्पर्धक-रूप परिणमावे है। इहांतैं पहले कबहूं ऐसी क्रिया न भई तातैं सार्थक अपूर्व स्पर्धक नाम है। ते अपूर्व स्पर्धक योगनिका जघन्य स्थानसम्बन्धी जघन्य स्पर्धकके नीचै असंख्यातगुणा घटता अविभागप्रतिच्छेद लीएं हो हैं। तिनका प्रमाण जगच्छ्रेणिके असंख्यातवां भागप्रमाण है ॥६३१॥

विशेष—जब सूक्ष्म काययोग करनेके बाद यह जीव सूक्ष्म काययोगकी परिस्पन्द शक्तिको सूक्ष्म निगोदिया जीवोंके जघन्य योगसे भी असंख्यातगुणी हीन परिणमाता हुआ उसे भी अत्यधिक अपकर्षित करके अपूर्व स्पर्धकरूपसे परिणमाता है तब इसकी अपूर्व स्पर्धककरण संज्ञा होती है। अतएव यहाँ इस करणका प्ररूपण करनेके लिए पूर्व स्पर्धककों श्रेणिके असंख्यातवें भागरूपसे रचना करनी चाहिये। ऐसा करनेपर सूक्ष्म निगोदियाके जघन्य स्थानसम्बन्धी स्पर्धकोंसे वे स्पर्धक असंख्यातगुणे हीन होकर स्थित होते हैं, अन्यथा उनसे ये सूक्ष्मपनेको नहीं प्राप्त हो सकते। इस प्रकार पूर्व स्पर्धकोंसे अपूर्व स्पर्धक करनेकी यह प्रक्रिया है।

पुव्वादिवग्गणाणं जीवपदेसा विभागपिंडादो।
होदि असंखं भागं अपुव्वपढमम्हि ताण दुगं[1] ॥६३२॥

पूर्वादिवर्गणानां जीवप्रदेशाविभागपिंडतः।
भवति असंख्यं भागमपूर्वप्रथमे तयोर्द्विकम् ॥६३२॥

स० चं०—पूर्वस्पर्धकनिके जीवके प्रदेशनिका पिंडतैं अर आदि वर्गणाका अविभाग-प्रतिच्छेदनिका पिंडतैं अपूर्व स्पर्धकका प्रथम समयविषैं तिनके ते दोऊ असंख्यातवें भागमात्र हो हैं। भावार्थ—

पूर्व स्पर्धकनिके सर्व प्रदेश साधिक द्व्यर्धगुणहानिगुणित प्रथम वर्गणामात्र हैं। तिनकौं अपकर्षण भागहारमात्र असंख्यातका भाग दीएं जो एक भागमात्र प्रदेश तिनकौ अपूर्व स्पर्धकरूप हो है। बहुरि पूर्व स्पर्धकनिकी जो आदि वर्गणा ताका वर्गविषैं जे ते अविभागमात्र प्रदेश तिनकौं अपूर्व स्पर्धकरूप हो है। बहुरि पूर्व स्पर्धकनिकी जो आदि वर्गणा ताका वर्गविषैं जेते अविभाग-

१. आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदाणमसंखेज्जदिभागमोकड्डुदि। जीवपदेसाणं च असंखेज्जदिभाग-मोकड्डुदि। एवमंतोमुहुत्तमपुव्वफद्दयाणि करेदि। क. चु. पृ. ९०४।

प्रतिच्छेद पाइए है ताकौं पल्यके असंख्यातवां भागमात्र असंख्यातका भाग दीएं तहां एकभागमात्र अपूर्व स्पर्धककी अंत वर्गणाका वर्गविषैं अविभागप्रतिच्छेद पाइए हैं। इहां प्रथम समयविषैं अपकर्षण कीए जे जीवके प्रदेश तिनिविषैं अपूर्व स्पर्धकको प्रथम वर्गणाविषैं तो बहुत प्रदेश दीजिए है। अर द्वितीयादि अन्त पर्यन्त वर्गणानिविषैं विशेष घटता क्रम लीएं दीजिए है। इहां विशेषका प्रमाण प्रथम वर्गणाकौं जगच्छ्रेणिका असंख्यातवां भागका भाग दीएं आवैं है। बहुरि अपूर्व स्पर्धककी अन्त वर्गणाविषैं दीया प्रदेशसमूहकौं साधिक अपकर्षण भागहारका भाग दीएं एक भागमात्र पूर्वस्पर्धककी प्रथम वर्गणाविषैं दीया प्रदेश समूह हो है। ताके ऊपरि यथोचित विशेष घटता क्रमलीएं प्रदेश दीजिए है। इहां प्रदेश देनेका अर्थ यहु जानना जो प्रदेशनिकौं ऐसैं योगरूप परिनमाइए है। इहां प्रथम समयविषैं कीने अपूर्व स्पर्धकनिका प्रमाण जो एक गुणहानिविषैं पूर्वस्पर्धकनिका प्रमाण है ताके असंख्यातवैं भागमात्र जानना ॥६३२॥

ओकड्डदि पडिसमयं जीवपदेसे असंखगुणियकमे।
कुणदि अपुव्वफड्ढयं तग्गुणहीणक्कमेणेव[1] ॥६३३॥

अपकर्षति प्रतिसमयं जीवप्रदेशान् असंख्यगुणितक्रमेण।
करोति अपूर्वस्पर्धकं तद्गुणहीनक्रमेणैव ॥६३३॥

स० चं०—द्वितीयादि समयनिविषैं समय समय प्रति असंख्यातगुणा क्रमकरि जीव प्रदेशनिकौं अपकर्षण करै है। बहुरि असंख्यातगुणा घटता क्रमकरि नवीन अपूर्व स्पर्धक करिए है। तहां द्रव्य देनेका विधान कहिए है—

द्वितीय सकयविषैं जेते प्रथम समयविषैं प्रदेश अपकर्षण कीए तिनितैं असंख्यातगुणा प्रदेशनिकौं अपकर्षण करि प्रथम समयविषैं कीने थे जे अपूर्वस्पर्धक तिनके नीचैं इस समयविषै नवीन अपूर्व स्पर्धक करिए है। तहां अपकर्षण कीए प्रदेशनिविषैं तिन नवीन कीए अपूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणाविषै वहुत प्रदेश दीजिए है। ताके ऊपरि द्वितीयादि अन्त पर्यन्त वर्गणानिविषैं विशेष घटता क्रम लीएं दोजिए हैं। यहां प्रथम समयविषैं कीएं अपूर्व स्पर्धकनितैं द्वितीय समयविषैं कीएं नवीन अपूर्व स्पर्धकनिका प्रमाण असंख्यात गुणां घटता कानना। बहुरि तिसकी अन्त वर्गणाके ऊपरि प्रथम समयविषैं कीएं अपूर्व स्पर्धकनिकी प्रथम वर्गणा तीहिविषैं तातैं असंख्यातगुणा घटता दीजिए है। ताके ऊपरि पूर्व स्पर्धककी अन्त वर्गणापर्यन्त विशेष घटता क्रम लीएं दीजिए है। बहुरि तृतीयादि समयनिविषैं भी ऐसैं ही विधान जानना। विशेष इतना—

समय-समय प्रति अपकर्षण कीए प्रदेशनिका प्रमाण असंख्यातगुणा क्रमतैं जानना। अर नीचैं नीचैं नवीन अपूर्व स्पर्धक करिए है तिनका प्रमाण असंख्यातगुणा घटता क्रमतैं जानना। बहुरि तहाँ अपकर्षण कीया प्रदेशनिविषैं नवीन स्पर्धककी प्रथम वर्गणाविषैं बहुत प्रदेश होंइ। ताके ऊपरि ताकी अन्त वर्गणापर्यन्त तौ विशेष घटता क्रमलीएं देना। अर ताके ऊपरि पूर्व समयविषैं कीने स्पर्धककी प्रथम वर्गणा विषैं असंख्यातगुणा घटता दीजिए है। ताके ऊपरि विशेष घटता क्रम लीएं दीजिए है। ऐसैं देय प्रदेशनिका विधान कह्या अर दृश्यमान प्रदेश सर्व समयनिविषैं पूर्व अपूर्व स्पर्धकनिकैं विशेष घटता क्रमलीएं ही जानना ॥६३३॥

१. क० च० प० ९०४।

सेढिपदस्स असंखं भागं पुव्वाण फड्डयाणं वा ।
सव्वे होंति अपुव्वा हु फड्डया जोगपडिबद्धा[1] ॥६३४॥

श्रेणिपदस्यासंख्यं भागं पूर्वेषां स्पर्धकानां वा ।
सर्वे भवंति अपूर्वा हि स्पर्धका योगप्रतिबद्धाः ॥६३४॥

स० चं०—सर्व समयनिविषैं कीए योगसम्बन्धी अपूर्व स्पर्धक तिनिका जो प्रमाण सो जगच्छ्रेणिका प्रथम वर्गमूलके असंख्यातवें भागमात्र हैं। अथवा सर्व पूर्व स्पर्धकनिका प्रमाण के असंख्यातवें भागमात्र है। जातैं पूर्व स्पर्धकनिविषैं पल्यका असंख्यातवां भागमात्र गुणहानि पाइए है। तहां एक गुणहानिविषैं जो स्पर्धकनिका प्रमाण ताके असंख्यातवै भागमात्र सर्व अपूर्व स्पर्धकनिका प्रमाण है। ऐसैं अन्तर्मुहूर्त कालविषैं अपूर्व स्पर्धक क्रिया हो है। इहाँ स्थिति-अनुभागकांडकका घात गुणश्रेणीनिर्जरा पूर्ववत् ही प्रवर्तै है ॥६३४॥

एत्तो करेदि किट्टिं मुहुत्तअंतो त्ति ते अपुव्वाणं ।
हेट्ठादु फड्ढयाणं सेढिस्स असंखभागमिदं[2] ॥६३५॥

इतः करोति कृष्टिं मुहूर्तान्तमिति ता अपूर्वेषाम् ।
अधस्तनात् स्पर्धकानां श्रेण्या असंख्यभागमिताम् ॥६३५॥

स० चं०—याके अनंतरि अन्तर्मुहूर्त कालपर्यन्त अपूर्व स्पर्धकनिके नीचैं सूक्ष्म कृष्टि करै है। जो पूर्व अपूर्व स्पर्धकरूप योगशक्ति थी ताकौं घटाइ असंख्यातगुणी घाटि करै है। तिन सूक्ष्म कृष्टिनिका प्रमाण जगच्छ्रेणिके असंख्यातवें भागमात्र है। एक स्पर्धकविषैं जो वर्गणानिका प्रमाण ताके असंख्यातवै भागमात्र है ॥६३५॥

अपुव्वादिवग्गणाणं जीवपदेसाविभागपिंडादो ।
होंति असंखं भागं किट्टीपढमम्हि ताण दुगं[3] ॥६३६॥

अपूर्वादिवर्गणानां जीवप्रदेशाविभागपिंडतः ।
भवंति असंख्यं भागं कृष्टिप्रथमे तयोर्द्वयम् ॥६३६॥

स० चं०—अपूर्व स्पर्धकसम्बन्धी सर्व जीव प्रदेशनिकै अर अपूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदनिके असंख्यातवें भागमात्र कृष्टिकरणका प्रथम समयविषैं तिनके ते दोऊ हो हैं। भावार्थ—

सर्व पूर्व अपूर्व स्पर्धकनिका जो प्रदेश समूह ताकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीए

१. अपुव्वफद्दयाणि सेढीए असंखेज्जदिभागो। सेढिवग्गमूलस्स वि असंखेज्जदिभागो। पुव्वफद्दयाणं वि असंखेज्जदिभागो सव्वाणि अपुव्वफद्दयाणि। क० चु०, पृ० ९०५।

२. एत्तो अंतोमुहुत्तं किट्टीओ करेदि। क० चु०, पृ० ९०५।

३. अपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदाणमसंखेज्जदिभागमोकड्डदि। जीवपदेसाणमसंखेज्जदिभागमोकड्डदि। क० चु०, पृ० ९०५।

एकभागमात्र प्रदेश प्रथम समयविषैं ग्रहि कृष्टि करिए है। सो इनिका प्रमाण सर्व अपूर्व स्पर्धकनिके प्रदेशनिका प्रमाणके असंख्यातवै भागमात्र है। बहुरि अपूर्व स्पर्धकनिकी जघन्य वर्गणाका वर्गके जैते अविभागप्रतिच्छेद हैं तिनके असंख्यातवें भागमात्र उत्कृष्ट अन्त कृष्टिके एक प्रदेशसम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेदनिका प्रमाग हो है। बहुरि इहां प्रथम समयविषैं अपकर्षण कीया प्रदेश देनेका विधान कहिए है—

जघन्य कृष्टिविषैं बहुत प्रदेश दीजिए है। ताके ऊपरि द्वितीयादि अन्त पर्यन्त कृष्टिनिविषैं विशेष घटता क्रम लीएं द्रव्य दीजिए है। इहां विशेषका प्रमाण प्रथम कृष्टिकौं जगच्छ्रेणिका असंख्यातवां भागका भाग दीएं आवै है। बहुरि अन्त कृष्टितैं अपूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणा विषैं असंख्यातगुणा घाटि दीजिए है। बहुरि उपरि विशेष घटता क्रम लीएं प्रदेश दीजिए है। इहां प्रथम समय विषैं कीनी कृष्टिनिका प्रमाण है सो एक स्पर्धक विषैं जितना वर्गणानिका प्रमाण ताके असंख्यातवै भागमात्र है ॥६३६॥

ओकड्डदि पडिसमयं जीवपदेसे असंखगुणियकमे।
तग्गुणहीणकमेण य करेदि किट्टिं तु पडिसमए[1] ॥६३७॥

अपकर्षति प्रतिसमयं जीवप्रदेशान् असंख्यगुणितक्रमेण।
तद्गुणहीनक्रमेण च करोति कृष्टिं तु प्रतिसमयं ॥६३७॥

स० चं०—द्वितीयादि समयनिविषैं समय समय प्रति असंख्यातगुणा क्रमकरि जीवके प्रदेशनिकौं अपकर्षण करै है। बहुरि समय समय प्रति पूर्व समयविषैं कीनी जे कृष्टि तिनके नीचैं असंख्यातगुणा घटता क्रम लीएं नवीन कृष्टि करै है। इहां अपकर्षण कीया प्रदेश देनेका विधान कहिए है—

नवीन कृष्टिकी प्रथम कृष्टिविषैं जो बहुत प्रदेश दीजिए है ताके ऊपरि द्वितीयादि अन्त पर्यन्त कृष्टिनिविषैं विशेष घटता क्रम लीए दीजिए है। ताके ऊपरि पूर्व समयविषैं कीनी कृष्टिकी प्रथम कृष्टिविषैं असंख्यातगुणा घटता दीजिए है। इस कृष्टिविषैं पूर्व जेते प्रदेश थे तितने अर एक विशेष इतना प्रदेश नवीन अन्त कृष्टितैं याविषैं घाटि दीजिए है। बहुरि ताके ऊपरि अन्त कृष्टिपर्यन्त विशेष घटता क्रम लीए दीजिए है। इहां मध्यम खंडादिविधान पूर्वोक्त प्रकार जानना। बहुरि अन्त कृष्टिविषैं दीया द्रव्यतैं अपूर्व स्पर्धककी आदि वर्गणाविषैं दीया प्रदेश संख्यातगुणा जानना। ताके ऊपरि अन्त पूर्व स्पर्धक वर्गणापर्यन्त विशेष घटता क्रम लीएं प्रदेश दीजिए है ॥६३७॥

सेढिपदस्स असंखं भागमपुव्वाण फड्ढयाणं व।
सव्वाओ किट्टीओ पल्लस्स असंखभागगुणिदकमा[2] ॥६३८॥

---

१. एत्थ अंतोमुहुत्तं करेदि किट्टीओ असंखेज्जगुणहीणाए सेढीए। जीवपदेसाणमसंखेज्जगुणाए सेढीए। क० चु०, पृ० ९०५।

२. किट्टीगुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। किट्टीओ सेढीए असंखेज्जदिभागो। अपुव्वफद्दयाणं पि असंखेज्जदिभागो। क० चु०, पृ० ९०५।

श्रेणिपदस्य असंख्यं भागं अपूर्वेषां स्पर्धकानां वा।
सर्वाः कृष्टयः पल्यस्य असंख्यभागगुणितक्रमाः ॥६३८॥

स० चं०—सर्व समयनिविषैं कीनी कृष्टिनिका प्रमाण जगच्छ्रेणिका असंख्यातवां भागमात्र है। अथवा अपूर्व स्पर्धकनिका प्रमाणके असंख्यातवां भागमात्र है इहां कोऊ कहै—

स्पर्धक अर कृष्टिविषैं विशेष कहा ? ताका समाधान—अविभागप्रतिच्छेद अपेक्षा स्पर्धक तौ विशेष बंधता क्रमलीएँ हैं। अपूर्व स्पर्धकनिविषै भी पूर्व स्पर्धकवत् ही अविभागप्रतिच्छेदनिका क्रम पाइए है। बहुरि कृष्टि हैं सो गुणकार बंधता क्रमलीएँ है ऐसा विशेष है। कृष्टिनिविषै गुणकार पल्यका असंख्यातवां भागमात्र जानना। अंत कृष्टिविषैं समान अविभागप्रतिच्छेदयुक्त असंख्यात जगत्प्रतरप्रमाण जीवप्रदेश हैं। तिनविषैं जो एक प्रदेश तीहिंविषैं जेते अविभाग-प्रतिच्छेद हैं तिनतैं द्वितीय कृष्टिका एक प्रदेशविषैं पल्यका असंख्यातवां भागगुणे हैं। तातैं तृतीय कृष्टिका एक प्रदेशविषैं तितनेगुणे हैं। ऐसैं अंत कृष्टिपर्यन्त क्रम जानना। अंत कृष्टितैं अपूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणाका एक प्रदेशविषैं अविभागप्रतिच्छेद पल्यका असंख्यातवां भागगुणा हैं। इस गुणकारकौं कृष्टिस्पर्धकसंबंधी कहिए। ताके ऊपरि द्वितीयादि वर्गणानिके प्रदेशनिविषैं यथासंभव स्पर्धक विधानवत् विशेष बंधते अविभागप्रतिच्छेद पाइए है ऐसैं एक एक प्रदेश अपेक्षा कथन कीया। नाना प्रदेशनिकी अपेक्षा जघन्य कृष्टिके सर्व प्रदेशसंबंधी अविभाग-प्रतिच्छेदनिका प्रमाण हो है। ऐसैं अंत कृष्टिपर्यन्त गुणकार जानना। बहुरि अंत कृष्टितैं अपूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके सर्व प्रदेशसंबंधी अविभागप्रतिच्छेद असंख्यातगुणे घाटि हैं। जातैं अपूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणाविषैं अविभागप्रतिच्छेद अंत कृष्टितैं जेते गुणे हैं तिस गुणकारतैं असंख्यातगुणे गुणकार करि गुणित तिस प्रथम वर्गणाके प्रदेशमात्र अंत कृष्टिके प्रदेश पाइए हैं ॥६३८॥

एत्थापुव्वविहाणं अपुव्वफड्डयविहिं व संजलणे।
बादरकिट्टिविहिं वा करणं सुहुमाण किट्टीणं ॥६३९॥

अत्रापूर्वविधानं अपूर्वस्पर्धकविधिरिव संज्वलने।
बादरकृष्टिविधिरिव करणं सूक्ष्माणां कृष्टीनाम् ॥६३९॥

स० चं०—इहाँ योगनिके अपूर्व स्पर्धक करनेका विधान जैसैं पूर्वे संज्वलन कषायके अपूर्व स्पर्धक करनेका विधान कह्या तैसैं जानना। बहुरि यहां योगनिकी सूक्ष्म कृष्टि करनेका विधान पूर्वैं जैसैं संज्वलन कषायकी बादर कृष्टि करनेका विधान कह्या है तैसैं जानना। प्रमाणादिकका विशेष है सो विशेष जानना ॥६३९॥

किट्टीकरणे चरमे से काले उभयफड्डयं सव्वे।
णासेइ मुहुत्तं तु किट्टीगदवेदगो जोगी[1] ॥६४०॥

कृष्टिकरणचरमे स्वे काले उभयस्पर्धकान् सर्वान्।
नाशयति मुहुर्तं तु कृष्टिगतवेदको योगी ॥६४०॥

---

१. किट्टीकरणद्धे णिट्ठिदे से काले पुव्वफद्दयाणि अपुव्वफद्दयाणि च णासेदि। अंतोमुहुत्तं किट्टीगदजोगी होदि। क० चु०, पृ० ९०५।

स० चं०—कृष्टिकरण कालका अन्त समय भएं ताके अनंतरि अपने कालविषैं सर्व पूर्व अपूर्व स्पर्धकरूप प्रदेशनिकौं नष्ट करै है। कृष्टिकरण कालका अन्त समयपर्यंत पूर्व अपूर्व स्पर्धक दृश्यमान थे अब ते सर्व ही कृष्टिरूप परिणमे बहुरि इस समयतैं लगाय सयोगी गुणस्थानका अन्तपर्यंत जो अन्तर्मुहूर्त काल तिसविषैं कृष्टिको प्राप्त योग ताकौ वेदे है—अनुभवे है प्रदेशनिविषैं जो कृष्टिरूप योगशक्ति भई सो अब वह प्रगट परिणमै है ॥

पढमे असंखभागं हेट्ठुवरिं णासिदूण विदियादी ।
हेट्ठुवरिमसंखगुणं कमेण किट्टिं विणासेदि[1] ॥६४१॥

प्रथमे असंख्यभागं अधस्तनोपरि नाशयित्वा द्वितीयादौ ।
अधस्तनोपर्यसंख्यगुणं क्रमेण कृष्टि विनाशयति ॥६४१॥

स० चं०—कृष्टिवेदक कालका प्रथम समयविषैं स्तोक अविभागप्रतिच्छेदयुक्त नीचैंकी अर बहुत अविभागप्रतिच्छेदयुक्त ऊपरिकी जे कृष्टि तिनकौं बीचिकी कृष्टिरूप परिणमाइ नष्ट करै है। तिनका प्रमाण सर्व कृष्टिनिके असंख्यातवै भागमात्र है। बहुरि द्वितीयादि समयनिविषैं तिनतैं असंख्यातगुणा क्रमलीएं ऊपरिकी कृष्टिनिकौं तैसैं ही नष्ट करै है। इहाँ ऐसा जानना—

नीचै ऊपरिकी कृष्टिनिकौं नाहीं वेदै है। वीचिकी कृष्टिनिकौं वेदै है। वेदककालविषैं नीचै ऊपरिकी कृष्टि हैं तिनिकौ वीचिकी कृष्टिरूप परिणमाइ वेदै है ॥६४१॥

मज्झिम बहुभागुदया किट्टिं पक्खिय विसेसहीणकमा ।
पडिसमयं सत्तीदो असंखगुणहीणया होंति[2] ॥

मध्या बहुभागोदयाः कृष्टिमपेक्ष्य विशेषहीनक्रमाः ।
प्रतिसमयं शक्तितः असंख्यगुणहीनका भवंति ॥६४२॥

स० चं०—सर्व कृष्टिनिकौं असंख्यातका भाग दीए तहां बहुभागमात्र जे बीचिकी कृष्टि ते उदयरूप हो हैं। ते प्रथम समयतैं द्वितीयादि समयनिविषैं विशेष घटता क्रम लीएं जाननी। ऐसैं कृष्टिनाश करनेतैं अविभागप्रतिच्छेदरूप शक्ति अपेक्षा प्रथम समयतैं द्वितीयादि सयोगीका अंत समयपर्यंत असंख्यातगुणा घटता क्रम लीएं योग पाइए हैं ॥६४२॥

किट्टिगजोगी झाणं झायदि तदियं खु सुहुमकिरियं तु ।
चरिमे असंखभागे किट्टीणं णासदि सजोगी[3] ॥६४३॥

---

१. पढमसमय किट्टिवेदगो किट्टीणमसंखेज्जे भागे वेदेदि। पुणो विदियसमए पढमसमयवेदिदकिट्टीणं हेट्ठिमोपरिमाणसंखेज्जभागविसयाओ किट्टीओ सगसरूवं छंडिय मज्झिमकिट्टीसरूवेण वेदिज्जंति त्ति पढमसमयजोगादो विदियसमयजोगो असंखेज्जगुणहीणो होइ। एवं तदियादिसमएसु वि णेदव्वं········। जयध० ता० मु०, पृ० २२९०।

२. तदो पढमसमए बहुगीओ किट्टीओ वेदेदि, विदियसमए विसेसहीणाओ वेदेदि। एवं जाव चरिमसमओ त्ति विसेसहीणकमेण किट्टीओ वेदेदि त्ति वत्तव्वं। जयध० ता० मु०, पृ० २२९०।

३. सुहुमकिरियपडिवादझाणं झायदि। किट्टीणं चरिमसमए असंखेज्जे भागे णासेदि। क० चु०, पृ० ९०५।

कृष्टिगयोगी ध्यानं ध्यायति तृतीयं खलु सूक्ष्मक्रियं तु।
चरमे असंख्यभागान् कृष्टीनां नाशयति सयोगी ॥६४३॥

स० चं०—ऐसे सूक्ष्म कृष्टिका वेदक जो सयोगी जिन सो तीसरा सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपाति नामा शुक्लध्यानकौं ध्यावै है। सूक्ष्म कृष्टिकौं प्राप्त काययोग जनित इहाँ क्रिया जो परिस्पंद सो पाइए है। अर अप्रतिपाति कहिए पडनेतैं रहित है, तातैं तिस ध्यानका नाम सार्थ है। याका फल योगनिरोध होना ही जानना। यद्यपि प्रत्यक्ष निरंतर ज्ञानीकैं चितानिरोध लक्षणरूप ध्यान संभवै नाही तथापि योगनिका निरोध होतैं आस्रव निरोध होनेरूप ध्यान फलकौं देखि उपचारतैं केवलीकैं ध्यान कह्या है। अथवा छद्मस्थनिकैं चिंताका कारण योग है, तातैं कारण विषैं कार्यका उपचार करि योगका भी नाम चिंता है। ताका इहां निरोध हो है। तातैं भी ध्यान कहना संभवै है। छद्मस्थनिकैं चिंताका निरोधका नाम ध्यान है। केवलीकैं योगनिरोधका नाम ध्यान है ऐसा जानना। ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार समय समय प्रति असंख्यातगुणा क्रम लीएं कृष्टिनिकौं नष्ट करता संता सयोगीका अंत समय विषैं जे कृष्टिनिका संख्यात बहुभागमात्र वीचिकी कृष्टि अवशेष रहीं तिनिकौं नष्ट करै है जातैं याकै अनंतरि अयोगी होना है ॥६४३॥

जोगिस्स सेसकालं मोत्तूण अजोगिसव्वकालं च।
चरिमं खंडं गेण्हदि सीसेण य उवरिमठिदीओ[1] ॥६४४॥

योगिनः शेषकालं मुक्त्वा अयोगिसर्वकालं च।
चरमं खंडं गृह्णाति शीर्षेण च उपरिमस्थितीः ॥६४४॥

स० चं०—सयोगी गुणस्थानका अंतर्मुहूर्तमात्र काल अवशेष रहैं वेदनी नाम गोत्रका अंत स्थितिकांडककौं ग्रहै है। ताकरि सयोगीका जो अवशेष काल रह्या सो अर अयोगीका सर्व काल मिलाएं जो होइ तितने निषेकनिकौं छोडि अवशेष सर्व स्थितिके गुणश्रेणिशीर्षसहित जे उपरितन स्थितिके निषेक तिनकौं लांछित करै है—नष्ट करनेकौं प्रारंभै है ॥६४४॥

तत्थ गुणसेढिकरणं दिज्जादिकमो य सम्मखवणं वा।
अंतिमफालीपडणं सजोगगुणठाणचरिमम्हि[2] ॥६४५॥

तत्र गुणश्रेणिकरणं देयादिक्रमश्च सम्यक्त्वक्षपणमिव।
अंतिमस्फालिपतनं सयोगगुणस्थानचरिमे ॥६४५॥

स० चं०—तहाँ गुणश्रेणिका करना वा तहां देय द्रव्यादिकका अनुक्रम सो जैसैं पूर्वैं क्षायिक सम्यक्त्व होतैं सम्यक्त्व मोहनीका क्षपणा विधानविषैं कह्या था तैसैं जानना। अंत कांडकके द्रव्यकौं अपकर्षण करि पूर्वोक्त क्रमतैं उदय निषेकविषै स्तोक द्रव्य दीजिए है। ताके ऊपरि कांडकघात भए पीछैं जो अवशेष स्थिति रहैगी ताका अंत समय पर्यन्त असंख्यातगुणा

---

१. संपहि णामा-गोद-वेदणीयाणं चरिमट्ठिदिखंडयमागाएंतो जेत्तियजोगिअद्धा से समजोगिकालो च एत्तियमेत्तट्ठिदीओ मोत्तूण गुणसेढि सीसएण सह उवरिमसव्वट्ठिदीओ आगाएदि। क० चु० पृ० २२९१।

२. जयध० ता० मु०, पृ० २२९१।

क्रम लीएं द्रव्य दीजिए है। यहाँ यहु गुणश्रेणि आयाम प्रारंभ भया सो गलितावशेष जानना। बहुरि इसका अंत समयसंबंधी निषेकहीका नाम गुणश्रेणिशीर्ष है। बहुरि इसतैं याके ऊपरि जो स्थितिकांडकका प्रथम निषेक ताविषैं असंख्यातगुणा द्रव्य दीजिए है। ताके ऊपरि पूर्व जो गुण-श्रेणिआयाम था ताका अंतपर्यन्त विशेष घटता क्रमकरि दीजिए है। ताके ऊपरि जो अनंतरवर्ती निषेक ताविषैं असंख्यातगुणा घटता द्रव्य दीजिए है। ताके ऊपरि विशेष घटता क्रम लीएं द्रव्य दीजिए है। ऐसैं अंत कांडकोत्करणका प्रथमादि समयविषैं द्रव्य देनेका विधान है। सो ऐसे अंत कांडकको द्विचरम फालिका पतनरूप जो सयोगीका द्विचरम समय तहाँ पर्यन्त तौ ऐसैं ही विधान है। बहुरि सयोगीका अंत समयविषैं तिनकी अन्त फालिका पतन हो है। तहाँ तिस अन्त फालि द्रव्यकौं उदय निषेकविषैं स्तोक अर द्वितीयादि अयोगीका अन्त समयसंबंधी पर्यन्त निषेकनि-विषैं असंख्यातगुणा क्रम लीएं द्रव्य दीजिए है। तहाँ विशेष है सो जानि लेना। ऐसैं सयोगीका अन्त समयविषैं अघातियानिके अन्त कांडकको अन्त फालिका पतन अर योगका निरोध अर सयोग गुणस्थानकी समाप्ति युगपत् हो है। यातैं उपरि गुणश्रेणि अर स्थिति-अनुभागका घात न हो है। अधःस्थिति गलनकरि एक-एक समयविषैं एक-एक निषेक क्रमतैं उदयरूप होइ निर्जरै है। सो समय समय असंख्यातगुणा द्रव्यकी निर्जरा प्रवर्तै है। ऐसैं सयोग गुणस्थानका प्ररूपण समाप्त भया ॥४६५॥

से काले जोगिजिणो ताहे आउगसमा हि कम्माणि।
तुरियं तु समुच्छिण्णं किरियं झायदि अयोगिजिणो[1] ॥६४६॥

स्वे काले योगिजिनः तत्र आयुष्कसमानि कर्माणि।
तुरीयं तु समुच्छिन्नक्रियं ध्यायति अयोगिजिनः ॥६४६॥

स० चं०—ताके अनंतरि अपने कालविषैं अयोगी जिन हो है। तहाँ आयु समान तीन अघातियानिकी स्थिति हो है। सो अयोगी जिन; चौथा समुच्छिन्नक्रियानिवृत्तिनामा शुक्ल ध्यानकौं ध्यावै है। सो समुच्छिन्न कहिए उच्छेद भई मन वचन कायकी क्रिया अर निवृत्ति जो प्रतिपात ताकरि रहित यहु ध्यान है तातैं याका नाम सार्थ है। इहाँ भी ध्यानका उपचार पूर्वोक्त प्रकार जानना, जातैं वस्तुवृत्तिकरि एकाग्र चिंतानिरोध ध्यानका लक्षण है सो केवलीविषैं संभवै नाहीं। समस्त आस्रव रहित केवलीकैं अवशेष कर्म निर्जराको कारण जो स्वात्माविषैं प्रवृत्ति ताहीका नाम ध्यान है ॥६४६॥

सीलेसिं संपत्तो णिरुद्धणिस्सेसआसओ जीवो।
बंधरयविप्पमुक्को गयजोगो केवली होइ[2] ॥६४७॥

शीलेशत्वं संप्राप्तो निरुद्धनिःशेषास्रवो जीवः।
बन्धरजोविप्रमुक्तः गतयोगः केवली भवति ॥६४७॥

---

१. जोगम्हि णिरुद्धम्हि आउगसमाणि कम्माणि होंति········। समुच्छिण्णकिरियमणियट्टिसुक्कज्झाणं झायदि। क० चु०, पृ० ९०५–९०६।

२. तदो अंतोमुहुत्तं सेलेसियं पडिवज्जदि। कं० चु०, पृ० ९०५।

स० चं०—गया है योग जाका ऐसा अयोगकेवली जीव है सो समस्त शीलगुणका स्वामीपना होनेतैं शैलेश्य अवस्थाको प्राप्त हो गया है। यद्यपि सयोगी जिनकौं समस्त शीलगुणका स्वामीपना सम्भवै है, परन्तु योगनिका आस्रव पाइए है। तातैं सकल संवरके न संभवतैं ताकै शैलेश्य अवस्था न संभवै है। अयोगीकैं योगास्रव भी न पाइए है, तातैं सकल संवर होनेतैं ताकै शैलेश्य अवस्था सम्भवै है। बहुरि सो अयोगी जीव निरोधे है समस्त आस्रव जानैं ऐसा है। बहुरि कर्मबन्धरूपी रजकरि विप्रमुक्त कहिए रहित है। भावार्थ यहु—अयोगी जिन सर्वथा निरास्रव निर्बंध भया है ॥६४७॥

वाहत्तरिपयडीओ दुचरिमगे तेरसं च चरिमम्हि।
झाणजलणेण कवलिय सिद्धो सो होदि से काले[2] ॥६४८॥

द्वासप्ततिप्रकृतयः द्विचरमके त्रयोदश च चरमे।
ध्यानज्वलनेन कवलितः सिद्धः स भवति स्वे काले ॥६४८॥

स० चं०—अयोगीका काल पांच ह्रस्व अक्षर जेते कालकरि उच्चारण करिए तितना है। तहां एक-एक समयविषैं एक-एक निषेक गलनरूप जो अधःस्थितिगलन ताकरि क्षीण हुई तिस कालका द्विचरम समयविषैं बहत्तरि प्रकृति अर अन्त समय विषैं तेरह प्रकृति शुक्लध्यानरूपी ज्वलन जो अग्नि ताकरि कवलित कहिए ग्रासीभूत हो हैं। तहां अनुदयरूप वेदनीय १ देवगति १ शरीर ५ बंधन ५ संघात ५ संस्थान ६ अंगोपांग ३ संहनन ६ वर्णादिक २० देवगत्यानुपूर्वी १ अगुरुलघु १ उपघात १ परघात १ उस्वास १ अप्रशस्त प्रशस्त विहायोगति दोय २ अपर्याप्त १ प्रत्येक १ स्थिर १ अस्थिर १ शुभ १ अशुभ १ दुर्भग १ सुस्वर १ दुःस्वर १ अनादेय १ अयशस्कीर्ति १ निर्माण १ नीचगोत्र १ ए बहत्तरि प्रकृति तौ द्विचरमविषै क्षय भई। बहुरि उदयरूप वेदनीय १ मनुष्य आयु १ मनुष्यगति १ पंचेंद्री जाति १ मनुष्यानुपूर्वी १ त्रस १ बादर १ पर्याप्त १ सुभग १ आदेय १ यशस्कीर्ति १ तीर्थंकर १ उच्चगोत्र १ ए तेरह प्रकृति अंत समयविषैं क्षय भई। ऐसैं क्षयकरि अनंतर समयविषैं सिद्ध हो है। जैसैं कालिमा रहित शुद्ध सोना निष्पन्न होइ तैसैं सर्व कर्ममल रहित कृतकृत्य दशारूप निष्पन्न आतमा हो है ॥६४८॥

तिहुवणसिहरेण मही वित्थारे अट्ठजोयणुदयथिरे।
धवलच्छत्तायारे मणोहरे ईसिपब्भारे ॥६४९॥

त्रिभुवनशिखरेण मही विस्तारे अष्ट योजनान्युदयस्थिरा।
धवलछत्राकारा मनोहरा ईषत्प्राग्भारा ॥६४९॥

स० चं०—सो जीव ऊर्ध्व गमन स्वभावकरि तीन लोकके शिखरविषैं ईषत्प्राग्भार है नाम जाका ऐसी जो आठवीं पृथ्वी ताके ऊपरि एक समयमात्र कालकरि जाइ तनुवात वलयका अन्तविषैं विराजमान हो है। कैसी है वह पृथ्वी? मनुष्य पृथ्वीके समान पैंतालीस लाख योजन

२. सेलेसिं अद्धाए झीणाए सव्वकम्मविप्पमुक्को एगसमएण सिद्धिं गच्छइ। क० चु०, पृ० ९०६, जयध० ता० मु०, पृ० २२९३।

चौडी गोल आकार है। बहुरि आठ योजन ऊँची है। बहुरि स्थिर है। बहुरि श्वेत छत्रके आकारि है सो श्वेतवर्ण है। बीचिमें मोटी छेहडैं पतली ऐसी है। बहुरि मनोहर है। यद्यपि ईषत्प्राग्भार नामा पृथ्वी घनोदधि वात वलयपर्यन्त है परन्तु इहां तिस पृथ्वीके वीचि पाइए है जो सिद्धशिला ताकी अपेक्षा ऐसा प्ररूपण कीया है। धर्मास्तिकायके अभावतैं तहांतैं ऊपरी गमन न हो है। तहां ही चरम शरीरतैं किंचित् ऊन आकाररूप जीव द्रव्य अनंत ज्ञानानंदमय विराजै हैं ॥६४९॥

पुव्वण्हस्स तिजोगो संतो खीणो य पढमसुक्कं तु ।
विदियं सुक्कं खीणो इगिजोगो झायदे झाणी ॥६५०॥

पूर्वज्ञस्य त्रियोगः शांतः क्षीणश्च प्रथमशुक्लं तु ।
द्वितीयं शुक्लं क्षीण एकयोगो ध्यायति ध्यानी ॥६५०॥

स० चं—शुक्लध्यान च्यारि प्रकार है तहां सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति व्युपरतक्रियानिर्वृति ए दोऊ तो सयोगी अयोगी केवलीके हो हैं ते पूर्वे कहै। अर दोय शुक्लध्यान कौनकैं हो है? सो गाथामें वर्णन न कीया था सो अब इहां वर्णन करिए है—

जो महामुनि पूर्वनिका ज्ञाता तीन योगनिका धारक उपशमश्रेणी वा क्षपकश्रेणीवर्ती सो पृथक्त्ववितर्कवीचारनामा पहला शुक्लध्यानकौं ध्यावैं है। बहुरि दूसरे शुक्लध्यानकौं क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती तीन योगनिविषैं एक योगका धारक होइ सो ध्यावैं हैं। इहां पृथक्त्व कहिए जुदा जुदा वितर्क कहिए भावश्रुतज्ञान ताकरि वीचार कहिए अर्थ व्यंजन योगनिका संक्रमण तहाँ अर्थनैं ध्यावने योग्य द्रव्य वा पर्याय तिनका अर व्यंजन श्रुतके शब्द तिनका अर योग मन वा वचन वा काय तिनका जो पलटना सो वीचार है। ऐसैं जिस ध्यानविषैं प्रवृत्ति होइ सो पृथक्त्ववितर्कवीचार जानना। बहुरि जहाँ एकत्व कहिए एकता लिएं वितर्क कहिए भाव श्रुत ताकरि अवीचार कहिए जिस अर्थकौं जिस श्रुतशब्दरूप जिस योगकी प्रवृत्ति लीएं ध्यावै ताकौं तैसैं ही ध्यावै पलटना न होइ ऐसैं एकत्वतर्कअवीचार ध्यानविषैं प्रवृत्ति जाननी ॥६५०॥

सो मे तिहुणअमहियो सिद्धो बुद्धो णिरंजणो णिच्चो ।
दिसदु वरणाणदंसणचरित्तसुद्धिं समाहिं च ॥६५१॥

स मे त्रिभुवनमहितः सिद्धः बुद्धो निरंजनो नित्यः ।
दिशतु वरज्ञानदर्शनचारित्रशुद्धिं समाधिं च ॥६५१॥

स० चं०—सो सिद्ध भगवान त्रिभुवनकरि पूजित अर बुद्ध कहिए सबका ज्ञाता अर निरंजन कहिए कर्म रहित अर नित्य कहिए विनाश रहित ऐसा है सो मुझको उत्कृष्ट ज्ञान दर्शन चारित्रकी शुद्धता अर समाधि कहिए अनुभवदशा वा संन्यासमरण ताकौं द्यो प्राप्त करो। इहां सिद्धनिकैं जो मोक्ष अवस्था भई ताको स्वरूप सर्व कर्मका सर्वथा नाशतैं संपूर्ण आत्मस्वरूपकी प्राप्तिरूप जानना। बहुरि अन्यमती अन्यथा कहै है सो न श्रद्धान करना। तहाँ—

बौद्ध तौ कहै जैसैं दीपकका निर्वाण कहिए बुझना तैसैं आत्माका स्कंधसंतानका नाश होनेतैं जो अभाव होना सोई निर्वाण है ताको कहिए है—

जहां मूल वस्तुका नाश होइ तौ ताके अर्थि उपाय काहेकौं करिए। ज्ञानी तौ अपूर्व लाभके अर्थि उपाय करै, तातैं अभावमात्र मोक्ष कहना युक्त नाहीं। बहुरि योगमतवाला कहै है—बुद्धि सुख दुःख इच्छा द्वेष प्रयत्न धर्म अधर्म संस्कार ए नव आत्माके गुण हैं तिनका नाश सोइ मोक्ष है। ताकौं भी तिस पूर्वोक्त वचनहीकरि निराकरण समाधान कीया। जहां विशेषरूप गुणनिका अभाव भया तहाँ आत्मवस्तुका अभाव आया सो बनै नाहीं। बहुरि सांख्यमतवाला कहै है—दूरि भया है कार्य-कारणसम्बन्ध जाका ऐसा सो आत्मा ताकैं बहुत सूता पुरुषकी ज्यों अव्यक्त चैतन्यतारूप होना सो निर्वाण है। ताका भी पूर्वोक्त वचनकरि निराकरण भया। इहां भी अपना चैतन्यगुण था सो उलटा अव्यक्त भया। ऐसें नाना प्रकार अन्यथा प्ररूपै हैं। तिनिका निराकरण जैनके न्याय शास्त्रनिमें कीया है सो जानना। मोक्ष अवस्थाकौं प्राप्त सिद्ध भगवान हैं ते निरंतर अनंत अतींद्रिय आनन्दकौं अनुभवैं हैं। जातैं इन्द्रिय मनकरि किंचित् जानना होइ अर किछू निराकुलता होइ तब ही आत्मा आपकौं सुखी मानै है। तौ जहां सर्वका जानना भया अर सर्वथा निराकुलपनां भया तौ तहां परम सुख कैसें न हो है? तीन लोकके तीन कालसम्बन्धी पुण्यवंत जीवनिका सुखतै भी अनंतगुणा सुख सिद्धनिकैं एक समयविषैं हो है। जातैं संसारविषैं सुख ऐसै हैं जैसें महारोगी किंचित् रोगकी हीनता भए आपकौ सुखी मानै अर सिद्धनिकैं सुख ऐसै है जैसें रोगरहित निराकुल पुरुष सहज ही सुखी है। ऐसें अनंत सुख विराजमान सम्यक्त्वादि अष्ट गुण सहित लोकाग्रविषैं विराजमान सिद्ध भगवान् हैं सो कल्याण करो।

याप्रकार बाहुबलि नामा मंत्रीकरि पूजित जो माधवचंद्रनामा आचार्य ताकरि यतिवृषभ नामा आचार्य जाका मूलकर्ता, वीरसेन आचार्य टीकाकर्ता ऐसा धवल जयधवल शास्त्र ताके अनुसारि क्षपणासार ग्रंथ कीया। ताके अनुसारि इहां क्षपणाका वर्णनरूप जे लब्धिसारकी गाथा तिनका व्याख्यान कीया ॥६५१॥

अब आचार्य लब्धिसार शास्त्रकी समाप्ति करनेविषैं अपना नाम प्रगट करै हैं—

वीरिंदणंदिवच्छेणप्पसुदेणभयणंदिसिस्सेण।
दंसणचरित्तलद्धी सुसूयिया णेमिचंदेण ॥६५२॥

वीरेंद्रनंदिवत्सेनाल्पश्रुतेनाभयनंदिशिष्येण।
दर्शनचारित्रलब्धिः सुसूचिता नेमिचन्द्रेण ॥६५२॥

स० चं०—नेमिचंद्र आचार्य करि इस लब्धिसार नाम शास्त्रविषैं दर्शन चारित्रकी लब्धि सो सुसूत्रिता कहिए भलेप्रकार कही है। कैसा है नेमिचन्द, वीरनंदि अर इंद्रनंदि नामा आचार्य तिनिका वत्स है। ज्ञानदानकरि पोष्या है। बहुरि अभयनन्दि नामा आचार्य तिनिका शिष्य है ॥६५२॥

अब आचार्य अपने गुरूकौं नमस्काररूप अन्त मंगल करैं हैं—

जस्स य पायपसाएणणंतसंसारजलहिमुत्तिण्णो।
वीरिंदणंदिवच्छो णमामि तं अभयणंदिगुरुं ॥६५३॥

यस्य च पादप्रसादेनानंतसंसारजलधिमुत्तीर्णः।
वीरेंद्रनंदिवत्सो नमामि तमभयनंदिगुरुम् ॥६५३॥

स० चं०—वीरनंदि अर इन्द्रनन्दिका वत्स जो मैं नेमिचन्द्र आचार्य सो जाके चरणनिका प्रसाद करि अनन्त संसार समुद्रतें पार भया तिस अभयनन्दि नामा गुरुकौं मैं नमस्कार करौ हों ॥

ऐसैं लब्धिसार नामा शास्त्रके जे गाथासूत्र तिनका अर्थ उपशमश्रेणीका व्याख्यान पर्यंत संस्कृत टीकाके अनुसारि अर क्षपकका व्याख्यान क्षपणासारके अनुसारि इहाँ अपनी बुद्धि माफिक मैं कीया है। इहां जो चूक होइ ताकौं सम्यग्ज्ञानी जीव शुद्ध करियो। बहुरि इस शास्त्रका अभ्यासतैं दर्शन चारित्रकी लब्धिका स्वरूप जानि आप स्वरूप श्रद्धान आचरणतैं सम्यग्दर्शन चारित्रका धारक होइ केवलज्ञानकौं पाइ सर्व कर्मकौं नाशकर उत्कृष्ट ज्ञानानन्दमय कृतकृत्य अवस्थारूप सिद्ध पदकौं प्राप्त होइ।

दोहा

सम्यग्दर्शन चरणके कारण कर्ता कर्म।
फल भोक्ता मम देहु सब अपनौ अपनौ धर्म ॥१॥

चौपाई

मंगल तत्त्वनिकौ श्रद्धान, मंगल है फुनि सम्यग्ज्ञान।
मंगल शुद्ध चरित्र अनूप, इनके धारक मंगलरूप ॥१॥

इति श्रीलब्धिसारक्षपणासारव्याख्यानं।

संपूर्णम्।

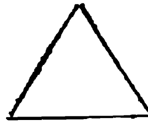


श्रीक्षपणासारगर्भित लब्धिसारका

अर्थसंदृष्टि अधिकार

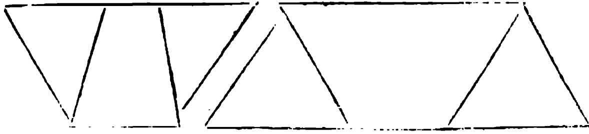
संदृष्टेर्लब्धिसारस्य क्षपणासारमीयुषः ।
प्रकाशिनः पदं स्तौमि नेमीन्दोर्माधवप्रभोः ।।१।।

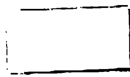
लब्धिसार क्षपणासार शास्त्रविषैं कहे जे अर्थ तिनविषै केते एक अर्थनिकी संदृष्टि जो पूर्वाचार्यनिकरि कीनी संकेतरूप सहनानी तिनके स्वरूपका निरूपण कीजिए है—सो संदृष्टि तौ मूल ग्रन्थविषै वा टीकाविषै जैसैं लिखीं तैसैं इहां लिखिए है। तहाँ परंपरा लेखक दोषतैं जे संदृष्टि तहाँ अन्यथा लिखीं तिनिने बुद्धि अनुसारि सवांरि लिखौंगा, वा बुद्धि भ्रमतैं अन्यथा लिखीं तौ विशेष बुद्धि सवांरि लीजियो। बहुरि तिनिका स्वरूप गाथानिविषै लिख्या नाहीं, टीकाविषै भी लिख्या नाहीं मैं मेरी बुद्धि अनुसारि विधि मिलाइ २ तिनके स्वरूपकौं लिखोंगा सो आकारादिरूप संदृष्टि तौ कठिन अर मेरी बुद्धि अल्प, शास्त्रविषै लिख्या नाहीं, वा बतावनेवाला मिल्या नाहीं तातैं जानौ हौं तिनके स्वरूप लिखनेमें चूक परैगी परंतु मार्ग तौ जान्या जाइ इस वासतैं मैं लिखौं हौं सो जहाँ चूक होइ तहाँ विशेष बुद्धि सवांरि शुद्ध करियो। मोकौं बालक मानि क्षमा करियो। बहुरि इहाँ संदृष्टि वा तिनका स्वरूप विषैं जिनिका मोकौं स्पष्ट ज्ञान न भया ते इहाँ नाही लिखी हैं, मूल ग्रंथतैं जानियो। बहुरि केते इक सुगम जानि ग्रंथ विस्तार भयतैं नाहीं लिखिये है तिनिकौं विधि मिलाइ जानिये। बहुरि केते इक गोम्मटसार टीकाका संदृष्टि अधिकार विषै लिखी हैं ते इस शास्त्रविषै थीं तिनकौं इहाँ नाहीं लिखिए है, तहांतैं जानियो। बहुरि जे संदृष्टि वा तिनका स्वरूप इहाँ लिखिए है ते इहाँतैं जानियो। तहाँ एकबार जिस अर्थकी जो संदृष्टि लिखी होइ सोई तिस अर्थकी जहाँ तहाँ संदृष्टि जानि लेनी। ग्रंथ विस्तारभयतैं वारम्बार लिखी नाही है। बहुरि इहाँ लिखी संदृष्टिनिके वा तिनके स्वरूपकौं जान्या चाहै सो पहलै तौ श्रीगोम्मटसारकी भाषाटीकाविषै जो जुदा जुदा संदृष्टि अधिकार कीया है ताकौं अभ्यासै तहाँ पहलैं सामान्य स्वरूप निरूपण कीया है ताकौं जानै तो संदृष्टिनिकौं पहिचानै अर विशेषकौं जानैं। वहां इहां सदृश संदृष्टि होइ तिनिका ज्ञान होइ जाइ। बहुरि इहां आकार रूप संदृष्टि बहुत हैं। तहाँ ऊर्ध्व रचनाविषै घटता क्रमलीए निषेकादिकनिकी संदृष्टि असी—

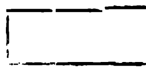
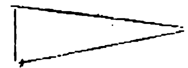


अर गुणश्रेणि आयामादिविषैं बधता क्रमकी ऐसा — / — अर पूर्वै द्रव्य था अर नवीन

द्रव्य और मिलाये तहाँ दो बडा लीक, तहां पूर्वै घटता क्रम था अर दीया द्रव्य का बधता क्रम है वा पूर्वै बधता क्रम था, दीया द्रव्य घटता क्रम लीएँ है तिनका ऐसी संदृष्टि जाननी।

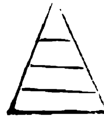


बहुरि नीचले ऊपरले निषेकनिविषै जैसैं जैसैं विधान होइ तैसैं तैसैं नीचे ऊपरि रचना लिखनी। बहुरि समपट्टिकाविषै समरूप रचना ऐसी करनी—  बहुरि अनुभाग आदि तिर्यग् रचनाविषैं आडी रचना करनी।

तहां समपट्टिकाकी सूधी ऐसी  घटता क्रमकी ऐसी करनी 

इत्यादि अनेक प्रकार हैं। सो आगैं जहां संदृष्टि लिखेंगे तहां तिनका स्वरूप भी लिखेंगे सो जानना। तहाँ पहलैं प्रथमोपशम सम्यक्त्वका विधानकी संदृष्टि कहिए है—

तहां प्रकृतिनिका बंध उदय सत्त्वविषैं कूट रचना गोम्मटसारका स्थान समुत्कीर्तन अधिकारविषैं जैसैं कही है तैसैं इहां संभवती जानि लेनी[1] बहुरि तीनों करणनिकी संदृष्टि गोम्मटसारका संदृष्टि अधिकारविषै गुणस्थानाधिकारविषै जैसैं कही है तैसैं जाननी[2]। बहुरि अपकर्षण उत्कर्षणका कथनविषै परमाणूनिकी अपेक्षा घटता क्रम लीएँ जे निषेक तिनकी ऐसी △ संदृष्टि करि तहाँ अपकर्षणविषै जघन्य अतिस्थापन, जघन्य निक्षेपकी संदृष्टिविषै तौ जघन्य अतिस्थापन अर जघन्य निक्षेप अर ग्रह्या हूवा निषेक इनका विभागके अर्थि ऐसी—

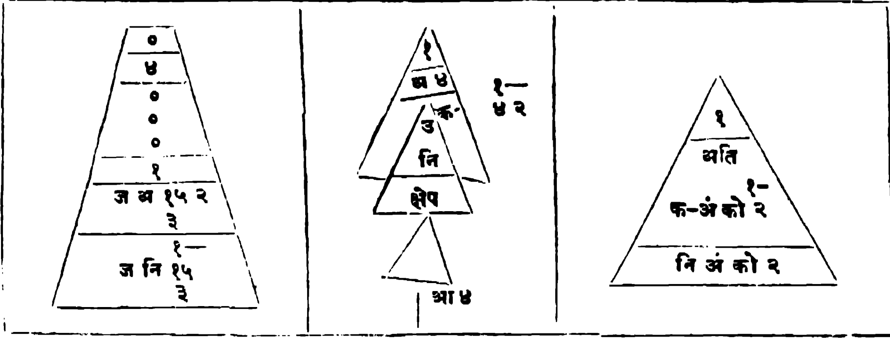


वीचिमें लीककरि तहां आवलीकी संहनानी इहां सोलह तामैं एक घटाएं पंद्रह ताका त्रिभाग एक अधिक प्रमाण नीचले निषेक जघन्य निक्षेप हैं। अर तामैं पंद्रहका दोय त्रिभागमात्र वीचिके निषेक जघन्य अतिस्थापन अर ताके ऊपरि ग्रह्या हुआ निषेक एक लिखना अर ताके ऊपरि अपकर्षणके अन्य भेदनिके अर्थि बिंदी लिखनी। बहुरि उत्कृष्ट निक्षेप अतिस्थापनकी संदृष्टिविषै नीचै तौ आवाधावली अर ऊपरि उत्कृष्ट निक्षेप, ताके ऊपरि उत्कृष्ट अतिस्थापन, ता ऊपरि ग्रह्या हूवा अंतका निषेक स्थापना। इहां आवाधाविषै निषेक रचना नाही है तातैं ऊभी लकीर ही करनी। अर अतिस्थापन ग्रह्या निषेकका विभागके अर्थि निषेक रचनाके वीचिमें लकीर करनी, तहाँ आवलीकी सहनानी च्यारिका अंक, उत्कृष्ट निक्षेपविषै कर्मस्थितिकी संहनानी ऐसी (क) ताके आगैं घटावनेकी सहनानी ऐसी (—) बहुरि ताके आगैं हीनका प्रमाण एक समय

१. बड़ी टीका ६०० से लेकर पूरे प्रकरण से उपयोगी कूट रचना लो।

२. बड़ी टीका गो-जीवकाण्ड पृ० १०२ से लेकर १५७ तक।

१—
अधिक दोय आवली ४। २ लिखनी बहुरि ग्रह्या हूवा निषेक एक लिखना। बहुरि व्याघातविषै अतिस्थापन निक्षेप ताकी रचनाविषै तहां निक्षेप, अतिस्थापन, ग्रह्या हूवा निषेकका विभागके अर्थि बीचिमें लीककरि तहां निक्षेपका प्रमाण अंतःकोटाकोटि। (अं को २) अतिस्थापनका प्रमाण कर्म-
१—
स्थिति (क) मैं घटावना (–) एक समय अधिक अंतः कोटाकोटि अं को २ अर ग्रह्या हूवा अंत निषेक एक अैसैं कीएं अपकर्षणविषैं ऐसी संदृष्टि रचना हो है—



इहां ग्रह्या हूवा निषेकका द्रव्य ग्रहि निक्षेपरूप निषेकनिविषैं दीजिए है। अतिस्थापनरूप निषेकनिविषैं न दीजिए है ऐसा जानना। बहुरि उत्कर्षण कथनविषै पूर्व सत्तारूप निषेकका द्रव्य नवीन बंध्या समयप्रबद्धका निषेकनिविषैं दीजिए है, तातैं पूर्व सत्तारूप निषेकनिकी रचनाकरि ताके आगैं द्रव्य नवीन बंध्या सो समयप्रबद्ध ताकी नीचैं तौ आबाधाकी अर ऊपरि निषेकनिकी संदृष्टि लिखनी। तहां तौ पूर्व सत्ताका निषेकका ग्रहण कीया ताकैं अर नवीन बंध्या समयप्रबद्धकैं संबंध मिलावनेके अर्थि दोऊनिकौं अंतरालविषै लीककरि मिलाय देने। बहुरि नवीन समयप्रबद्ध-विषै अतिस्थापन निक्षेपका विभाग करनेके अर्थि बीचिमें लोक करनी। तहां पूर्व सत्ताका अन्त निषेकका उत्कर्षण होतैं तहां जघन्य रचना हो है। ताका अतिस्थापनविषैं आवलीका असंख्यातवां भागकी सहनानी ऐसी ४, निक्षेपविषैं आवलीका असंख्यातवां भागकी सहनानी ऐसी २ बहुरि
a a
पूर्व सत्ताका उदयावलीतैं ऊपरि जो निषेक ताका उत्कर्षण होतैं उत्कृष्ट रचना हो है। ताका
१—
अतिस्थापनविषैं एक समय अधिक आवलीकरि हीन आबाधा काल ऐसा आ – ४। उत्कृष्ट निक्षेपविषै एक समय अर आवलीकरि युक्त जो आबाधाकाल तीहिंकरि हीन कर्मस्थितिमात्र काल
१—
ऐसा क—४, ताके ऊपरि एक समय अधिक आवलीमात्र अंत निषेकनिविषैं न दीजए है ते ऐसे
१—आ
४ जानने। बहुरि ऐसा जानना—

जो जघन्यविषैं तौ पूर्वसत्ताका निषेक ग्रह्या सो जिस समय उदय होगा तिस समय आवने योग्य जो नवीन समयप्रबद्ध ताके ऊपरि अतिस्थापनके निषेक अर तिनके ऊपरि निक्षेपरूप निषेक जानने। बहुरि उत्कृष्टविषै पूर्व सत्ताका ग्रह्या निषेक वर्तमान समयतैं आवली काल पीछैं उदय आवने योग्य है। अर एक समय उस निषेकके उदय आवनेका है। अर नवीन समयप्रबद्धकी

आबाधाका काल वर्तमान समयतैं लगाय है सो तातैं एक आवली एक समय घटाएं अतिस्थापन हो है। अर नवीन समयप्रबद्धके प्रथमादि निषेक निक्षेपरूप हो हैं। अन्त विषैं न दीजिए हैं। ऐसैं उत्कर्षणविषैं ऐसी संदृष्टि रचना हो है—

बहुरि आचार्यनिके मतकी अपेक्षा विशेष कह्या है तिनकी संदृष्टि ऐसैं ही यथासंभव जानि लेनी। बहुरि इहां रचना पहिले निषेकनिकी नीचैं लिखिए है पिछले निषेकनिका ऊपरि लिखी है। ऐसैं ही अन्यत्र जानि लेनी। बहुरि गुणश्रेणि निर्जराके कथनविषैं ऐसी रचना करनी—

इहां अपकर्षण कीएं पीछैं जो हीन क्रम लीएं निषेक रचना रही ताकी ऐसी △ संदृष्टि करि बहुरि निक्षेपण कीया द्रव्यकी सहनानी दूसरी लकीरकरि रचना करी। तहां उदयावली पर्यंत निषेकनिविषैं हीन क्रम लीएं द्रव्य दीया तातैं हीन क्रम लीएं दूसरी लीक करी। अर ताके ऊपरि गुणश्रेणि कालविषैं असंख्यातगुणा अधिक क्रम लीएं द्रव्य दीया तातैं अधिक क्रम लीएं दूसरी लीक करी। ताके ऊपरि उपरितन स्थितिविषैं हीनक्रम लीएं द्रव्य दीया तातैं हीनक्रम लीएं दूसरी लीक करी। बहुरि ऊपरि अतिस्थापनावलीविषैं द्रव्य दीया ही नाही जातैं दूसरी लीक न करी। बहुरि इहां उदयावलीका अंत निषेकविषैं दीया द्रव्यतैं गुणश्रेणिका प्रथम निषेकविषै दीया

द्रव्य बहुत है। अर गुणश्रेणिका अन्तविषै दीया द्रव्यतैं उपरितन स्थितिका प्रथम निषेकविषै दीया द्रव्य स्तोक है। तातैं दीया द्रव्यका हीनाधिक जाननेके अर्थि संकोच विस्ताररूप रचना करी है। ऐसैं ही आगैं भी रचना ऐसी आवै तहां ऐसा अर्थ समझ लेना। बारंबार लिखनेमें विस्तार होइ तातैं नाही लिखौंगा। बहुरि इन उदयावली आदिविषैं दीया द्रव्यका वा तिनके निषेकनिविषैं दीया द्रव्यका प्रमाणकी संदृष्टि गोम्मटसारका संदृष्टि अधिकारविषैं जो गुणस्थानाधिकार है ताविषैं लिखी है तैसैं जाननी। बहुरि गुणश्रेणिविषैं दीया द्रव्यकौं अंकसंदृष्टि अपेक्षा पिच्यासीका भाग देइ क्रमतैं एक च्यारि सोलह चौंसठिकरि गुणैं प्रथमादि निषेक हो है तातैं गुणश्रेणिविषै एक आदि अंक लिखे हैं। आवलीको सहनानी च्यारिका अंक है तातैं उदयावली अतिस्थापनावलीविषैं च्यारिका अंक लिख्या है ऐसैं गुणश्रेणि रचना जाननी। बहुरि स्थितिकांडकघातका व्याख्यानविषै कोई जीवकैं जघन्य स्थिति संख्यात पल्यमात्र ऐसी प ११ बहुरि कोई जीवकैं तातैं संख्यातगुणी उत्कृष्ट स्थिति ऐसी प ११ । उत्कृष्टमैं जघन्य घटावनेके अर्थि अगिला संख्यातमैं एक घटाएं अर

१—

१ –

सर्वमैं एक अधिक कीएं नाना जीवनिके सर्व स्थितिभेद ऐसे प ११ बहुरि याके संख्यातवे भाग-

१——

१ –

मात्र नाना जीवनिकैं स्थिति कांडकभेद ऐसे प ११। इहां स्थितिकांडक भेद प्रमाणराशि, स्थितिभेद

१

फलराशि, इच्छाराशि एक कीएं संख्यात स्थिति भेदनिविषैं एक कांडक भेद आवै है ताकी रचना ऐसी——

पृष्ठ ५१९ की (क) में देखो

इहां पूर्वै सत्तारूप क्रम हीन प्रमाण लीएं निषेकनिकी ऐसी △ संदृष्टिकरि तहां स्थितिकांडकविषै ऊपरले निषेक नष्ट कीए अर अवशेष नीचले निषेक राखे तिनका विभागके अर्थि बीचिमैं लीक कीएं ऐसी ⊿ संदृष्टि भई। बहुरि कैसा स्थितिसत्त्वविषैं कैसा स्थितिकांडकायाम संभवै ? ताके जाननेके अर्थि ऊपरि तौ कांडककरि घटाएं निषेकनिका प्रमाण लिख्या अर नीचैं जो स्थितिसत्त्व था ताका प्रमाण लिख्या। तहां पहलें अंक संदृष्टिकरि सात आठ नव समय स्थितिविषैं स्थितिकांडकायाम एक समयप्रमाण है। अर दश ग्यारह बारह समय स्थितिसत्त्वविषै स्थितिकांडकायाम दोय समयप्रमाण है। ऐसैं ही अंत पर्यन्त जानना। बहुरि अर्थ संदृष्टिकरि संख्यात पल्यमात्र जघन्य स्थिति अंतःकोटाकोटी सागरके संख्यातवे भागमात्र ताकी संदृष्टि ऐसी अं को २

४

ताविषै अर यातैं एक समय अधिक स्थिति सत्त्वविषै स्थितिकांडकायाम पल्यके संख्यातवै भागमात्र है ताकी संदृष्टि ऐसी प। बहुरि बीचिमैं एक एक समय अधिक स्थिति सत्त्वविषैं तावन्मात्र

१

स्थितिकांडकायाम जाननेके अर्थि बिंदोकी संदृष्टि करि जघन्यतैं संख्यात समय अधिक स्थिति ऐसी

१—१—

१ अं को २ तामैं अर यातैं एक समय अधिक स्थिति ऐसी १ १ तामैं जघन्यतैं एक समय अधिक

४ अं को २

१— ४

स्थिति कांडकायाम ऐसा हो है प। बहुरि वीचिमें स्थिति सत्त्वके स्थिति कांडकके बहुत मध्य भेद जाननेके अर्थि विंदोको संदृष्टिकरि संख्यात घाटि अंतःकोटाकोटि सागर घाटिमात्र स्थिति ऐसी

१ ᑕ

अं को २-१ तातैं एक समय अधिक ऐसी अं को २-१ तामैं एक समय घाटि पृथक्त्व सागरप्रमाण

१ ᑕ

स्थितिकांडकायाम ऐसा—सा ।७।८। इहां पृथक्त्वकी सहनानि सात वा आठ जानना। बहुरि वीचिमें एक एक समय अधिक स्थिति सत्त्वविषै तावन्मात्र स्थिति कांडकायाम जाननेके अर्थि विंदीनिकी

१ ᑕ

सहनानी करि एक घाटि अंतःकोटाकोटि सागर ऐसा—अं को २। संपूर्ण अंतःकोटाकोटि ऐसा अं को २। तामैं स्थिति कांडकायाम पृथक्त्व सागरप्रमाण ऐसा सा ७।८। बहुरि अपूर्वकरणकी आदिविषै स्थितिसत्त्व अंतःकोटाकोटि, स्थितिबंध तातैं संख्यातवें[1] भागमात्र है। तिनकी संदृष्टि ऐसी—

अं को २	अं को २ ४	अं को २ ४	अं को २ ४।४

इहां संख्यातकी संदृष्टि च्यारिका अंक है। ऐसैं स्थितिकांडकविधानविषै संदृष्टि जानना। बहुरि अनुभाग कांडकका व्याख्यानविषै जघन्य वर्गणाकौं स्पर्धक शलाका ऐसी ९। अर नाना गुणहानि ऐसो। ना। ताकरि गुणैं अंत गुणहानिकी प्रथम वर्गणा होइ। तामैं अंक संदृष्टि अपेक्षा

३——

तीन अधिक कीए अंत गुणहानिकी अंत वर्गणासंबंधी उत्कृष्ट अनुभाग ऐसा व। ९। ना। ताका

३——१ ᑕ

अनंत बहुभागमात्र प्रथम कांडक ऐसा व। ९। ना ख बहुरि अवशेष एक भागका अनंत बहुभाग-

ख

३ — १ ᑕ

मात्र द्वितीय कांडक ऐसा व ९ ना ख। ऐसैं अंत कांडक पर्यंत क्रम जानना। बहुरि एक गुणहानिके

ख ख

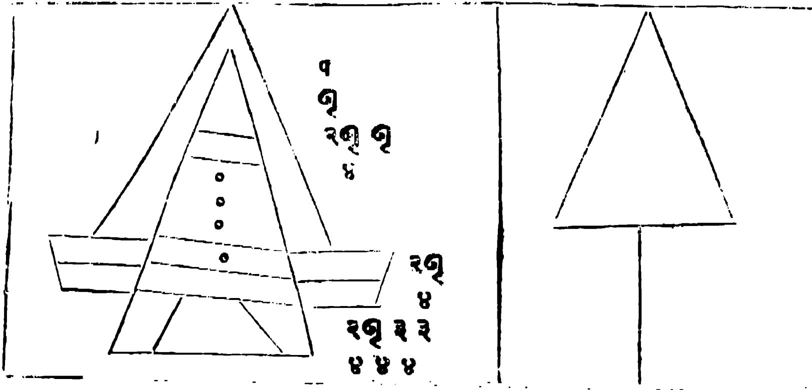
स्पर्धक संख्याकी संदृष्टि ऐसी ९। तातैं क्रमतैं अनंतगुणे वीचिके अतिस्थापनरूप स्पर्धक अर नीचेके निक्षेपरूप स्पर्धक अर ऊपरि के अनुभागकांडकायामरूप स्पर्धक तिनकी संदृष्टि ऐसी जानना—

स्पर्धक	अतिस्थापन	निक्षेप	अनुभागकांडक
९	९ ख	९ ख ख	९ ख ख ख

इहां अनुभागका कथन है तातैं आडी लीक करी है। ऐसैं अपूर्वकरणविषै भए कार्यनिकी संदृष्टि कही।

बहुरि अनिवृत्ति करणविषै अन्तरकरण हो है तहां रचना ऐसी—

१. मुद्रित प्रतिमें असंख्यातवें यह पाठ है।



इहां क्रमहीनरूप सत्व निषेकनिकी संदृष्टिकरि नीचैं उदयावलीकी ऊपरि गुणश्रेणि आयामकी ऊवरि उपरितन स्थितिकी संदृष्टि पूर्ववत्करि गुणश्रेणि आयामविषै गुणश्रेणिशीर्षकौं जुदा दिखावनेके अर्थि वीचिमें लीक करो। अर उपरितन स्थितिविषैं अन्तरायाम अर ताके ऊपरि द्वितीय स्थितिका भागके अर्थि वीचिमें लीक करी है। तहां गुणश्रेणिशीर्षरूप निषेक तो अंतर्मुहूर्तके संख्यातवै भागमात्र ताको सदृष्टि असी २ ७ / ४। इहां संख्यातकी सहनानी च्यारिका अंक है। बहुरि ताके ऊपरि तातैं संख्यातगुणे उपरितन स्थितिके निषेक अैसैं २ ७ ७ / ४। इनकौं मिलाएं अंतर करणकरि शून्य कीए हैं निषेक ते अैसे २ ७ ७ १— / ४। तहां बिंदीनिकी संदृष्टि करी है अर अंतरायामके नीचैं प्रथम स्थिति है सो अवशेष अनिवृत्तिकरण कालका संख्यातवां भागमात्र गुणश्रेणिशीर्ष ऐसा २ ७ / ४। ताका संख्यात बहुभागमात्र अंतर करनेका काल ऐसा २ ७ । ३ / ४ । ४। ताका संख्यात बहुभागमात्र है सो ऐसा २ ७ । ३ । ३ / ४ । ४ । ४ ऐसैं रचनाकरि ताके आगैं जाविषैं अंतर द्रव्य दीया तिस नवीन बंध्या समयप्रबद्धकी आबाधा सहित रचना करी है। बहुरि उपशमकालविषै प्रथम उपशम फालि ऐसी स ਤ १२— / ७ ख १७ गु। इहां दर्शनमोहके द्रव्यकौं गुणसंक्रमका भागहार जानना। द्वितीयादि फालि असंख्यातगुणा क्रमतैं जानना। तहां अंत फालि ऐसी—स । ਤ १२ — ਤ । २ ७ । ३ । ३ / ७ । ख । १७ । गु ४ । ४ । ४ (ऊपर १ ᘏ)

इहां प्रथम फालिकौं एक घाटि प्रथम स्थितिमात्र असंख्यातका गुणकार जानना। सम्यक्त्वकी प्राप्ति भएं मिथ्यात्वकौं तीन प्रकार करै है। ताकी रचना ऐसी—

नाम	मिथ्यात्व	मिश्र	सम्यक्त्वमोहनी
निषेक			
द्रव्य	स ƏЗ १२– गु १ / ७ ख १७ गु ƏЗ	स ƏЗ १२– ƏЗ / ७ ख १७ गु	स ƏЗ १२– १ / ७ ख १७ गु
अनुभाग	३___ व ९ ना	३___ व ९ ना / ख	३___ व ९ ना / ख ख

इहां ऊपरि मिथ्यात्व मिश्र सम्यक्त्व प्रकृतिके निषेक क्रमहीन रूप हैं तिनकी संदृष्टि करि नीचैं तिनके द्रव्यका प्रमाण लिख्या। तहां किंचिदून द्व्यर्ध गुणहानिगुणित समयप्रबद्धमात्र सर्व कर्म परमाणूनिका प्रमाण ऐसा स ƏЗ १२ – ताकौं सातका भाग दीएं मोहका द्रव्य होइ। ताकौं अनंतका भाग दीएं सर्वघाती द्रव्य होइ। ताकौं सतरहका भाग दीए दर्शनमोहका द्रव्य ऐसा स ƏЗ १२ — होइ। याकौं गुणसंक्रम भागहारका भाग दीएं तहां बहुभागमात्र मिथ्यात्वका द्रव्य
७। ख। १७
होइ। बहुरि तिस एक भागविषै एक अधिक असंख्यात था ताविषै एक रूप जुदा स्थापि अवशेष मिश्रमोहका द्रव्य होइ अर जुदा स्थाप्या एक रूपमात्र सम्यक्त्वमोहका द्रव्य हो है। इहां संदृष्टि-विषै गुणकार कैसैं भए ? ताका मौकौं नीकैं ज्ञान न भया है, विशेष ज्ञानी जानियो।

बहुरि ताके नीचैं अनुभागका प्रमाण लिख्या सो जघन्य वर्गणाकौं एक गुणहानिविषै स्पर्धक संख्याकी संदृष्टि नवका अंक ताकरि अर नाना गुणहानिकरि गुणैं तामैं तीन अधिक कीएं उत्कृष्ट-
३——
रूप मिथ्यात्वका अनुभाग ऐसा—व। ९। ना। ताकौं अनंतका भाग दीएं मिश्रका, ताकौं अनंतका भाग दीएं सम्यक्त्वमोहका अनुभाग हो है। बहुरि गुणसंक्रम कालविषै मिथ्यात्वका द्रव्य मिश्रमोह सम्यक्त्वमोहरूप परिणमै है ताकी संदृष्टि ऐसी—

पृष्ठ १५ (क) में देखो।

इहां गुणकार संक्रमका प्रथम समयविषैं पूर्वोक्त प्रकार मिथ्यात्व द्रव्य ऐसा स ƏЗ १२—
७ ख १७
याकौं गुणसंक्रमका भाग दीएं सम्यक्त्वमोहरूप परिणम्या द्रव्य हो है। तातैं असंख्यातगुणा मिश्ररूप परिणम्या द्रव्य है। तातैं द्वितीय समयविषै सम्यक्त्वरूप परिणम्या द्रव्य असंख्यातगुणा है। सो इहां गुणकाररूप दोयवार असंख्यातकी सहनानी करी। ऐसैं ही चतुर्थ समय पर्यंत रचना जाननी। तहां चौथे समय असंख्यातके आगैं छहका अर सातका अंक है सो छहवार वा सातवार असंख्यात जानना। बहुरि बीचि मध्य समयनिकी रचनाकी सहनानी बिंदी जाननी। बहुरि अंत समयविषैं प्रथम समय सम्यक्त्वरूप परिणम्या द्रव्यकौं दोय घाटि अंतर्मुहूर्तका दूणाकरि तामैं दोय बधताकरि गुणित जो असंख्यात ताकरि गुणैं सम्यक्त्व प्रकृतिरूप परिणम्या द्रव्यकी संदृष्टि है। अर तिसहीकौं एक घाटि अंतर्मुहूर्त दूणा एक अधिक ताकरि गुणित जो असंख्यात ताकरि गुणैं मिश्रमोहरूप परिणम्या द्रव्यकी संदृष्टि हो है। अर तहां सम्यक्त्वमोहनीतैं मिश्रमोहनीविषैं, मिश्रमोहनीतैं सम्यक्त्वमोहविषै गुणकार अपेक्षा गमन कल्पित सर्पकी चालवत् रचना करी है।

बहुरि कालका अल्पबहुत्वविषै संदृष्टि सुगम है। तहां प्रथम पद अंतमुंहूर्तमात्र ऐसा २ ९ ताके आगें संख्यातकी सहनानी च्यारिकरि जहां संख्यातवां भागमात्र अधिक होइ तहां पूर्व राशिकौं च्यारिका भाग पांचका गुणकार जानना। जहां संख्यातगुणा होइ तहां पूर्व राशिके आगें च्यारि लिखना। बहुरि ग्यारह्वांतैं वारह्वां पद समय घाटि दोय आवलीमात्र अधिक है तहां ऊपरि ऐसी—४। २ जाननी। इहां आवलीकी संदृष्टि च्यारिका अंक है। बहुरि चौदहवां पदविषै अपवर्तन कीएं संदृष्टि ऐसी २ ९। यातैं संख्यातगुणा पंद्रह्वां पदविषै ऐसा २ ९ ९ यामैं ऐसा २ ९ अर ऐसा—२ ९ मिलाएं सोलह्वां पदविषै ऐसी २ ९ ९। ४ यातैं आगैं पूर्वोक्त प्रकार। बहुरि वीसवां पदविषै पल्यका संख्यातवां भागकी ऐसी— प। इकईसवां पदविषै पृथक्त्वसागरको ऐसी सा। ७। ८। वाईसवां आदि पदनिविषै सागर अंतःकोटाकोटीकौं तीन दोय एकवार संख्यातका भाग दीएं पचीसवां पदविषै सागर अंतः कोटाकोटि की संदृष्टि जाननी। ऐसै इनकी ऐसी संदृष्टि हो है—

पृष्ठ १६ (क) में देखो।

बहुरि प्रथमोपशम सम्यक्त्व काल समाप्त भएं उदय योग्य प्रकृतिका द्रव्य अपकर्षणकरि उदयावली अंतरायाम द्वितीय स्थितिविषैं निक्षेपण करै है। अनुदय प्रकृतिका उदयावली विना अन्यत्र निक्षेपण करै है। तहां दर्शनमोहके द्रव्यकौं गुणसक्रमका भाग दीएं उदय योग्य सम्यक्त्व प्रकृतिका द्रव्य ऐसा स ∂ १२—याकौं अपकर्षण भागहारकी संदृष्टि प्राकृत आदि अक्षर अपेक्षा
७। ख। १७। गु
ऐसी (ओ) ताका भाग दीएं अपकृष्ट द्रव्य ऐसा स ∂। १२—याकौं असंख्यात लोक ≡∂ का
७ ख। १७। गु ओ
भाग दीएं उदयावलीविषै दीया द्रव्य ऐसा—स ∂ १२—याका बहुभाग ऐसा स ∂ १२— ≡ ∂
७। ख। १७। गु। ओ ≡∂ ७। ख १७। गु। ओ ≡∂
इहां गुणकारविषैं एक घाटिकौं न गिणैं ऐसा स ∂। १२—बहुरि इस अपकर्षण भागहारका भाग
७। ख। १७। गु ओ
दीएं तहां एक भागमात्र ग्रहण कीएं जो द्रव्य बहुभागमात्र अवशेष रह्या सो ऐसा स ∂। १२—ओ
७। ख १७। गु ओ
इहां गुणकारविषै एक घाटिकौं न गिणें ऐसा स ∂ १२—याकौं द्वयर्धं गुणहानि की संदृष्टि ऐसी
७। ख। १७ गु
१२। ताका भागदीएं द्वितीय स्थितिका प्रथम निषेकका द्रव्य ऐसा स ∂ १२— भया। याकौं
७। ख। १७ गु १२
अंतरायाम अंतमुंहूर्तमात्र ताकरि गुणैं अंतरायामका समपट्टिका द्रव्य ऐसा स ∂ १२—२ ९
७। ख। १७ गु १२

यामैं चयधन मिलावनेके अर्थि साधिककी ऐसी (।) संदृष्टि ऊपरि कीएं इतना स ∂ १२—२ ९
७ । ख । १७ । गु २
द्रव्य भया। ताहि तिस अपकर्षण कीया द्रव्यतैं ग्रहि अंतरायामविषै दीएं अंतरायामके अभाव कीए थे निषेक तिनका सद्भाव हो है। इसकौं घटाएं जो अपकृष्ट द्रव्य किंचित् ऊन भया सो ऐसा स ∂ १२—याकौं द्वयर्ध गुणहानिका भाग दीएं प्रथम निषेक ताकौं अंतरायाम करि गुणैं सम-
७ । ख । १७ । गु । आं
३
पट्टिका द्रव्य ताकौं साधिक कीएं इतना द्रव्य स । ∂ १२—२ ९ अंतरायामविषै और दीया अव-
७ । ख । १७ । गु । आं । १२
शेष अपकृष्ट द्रव्य ऐसा स ∂ १२— सो द्वितीय स्थिति विषैं अतिस्थापनावली छोडि
७ । ख । १७ । गु । आं
क्रम हीन करि ऐसैं उदय योग्य प्रकृतिविषैं द्रव्य देनेका विधान है। बहुरि उदय अयोग्यका उद-यावलीतैं बाह्य अंतरायाम अर द्वितीय स्थितिविषैं ही द्रव्य दीजिए है।

इति प्रथमोपशम सम्यक्त्वाधिकारसंदृष्टि समाप्त

अब क्षायिक सम्यक्त्वाधिकारविषैं संदृष्टि लिखिए है—तहां प्रथम अनंतानुबंधीका विसंयोजन है। तहां गुणश्रेणी आदिककी संदृष्टि पूर्ववत् जानना। अर तहां च्यारि पर्वनिकी वा तहां स्थितिकांडकके प्रमाणकी संदृष्टि ऐसी—

पर्वनिविषैं स्थिति	सातमध्ये ७ सागर १००० ८ १०० ५० २५	प	दूरापकृष्टि प ५ । ५ । ५ । ५	उच्छिष्टा बली ४
कांडकायाम	प ∂ ; ५ ∂	प ४ ५	१ ⌒ प ∂ ५ । ५ । ५ । ५ । ∂	

इहां स्थितिविषैं पृथक्त्व लक्ष सागरको वा मध्यविषैं सहस्र आदि सागरकी अर पल्यकी अर दूरापकृष्टिविषैं च्यारि वार संख्यातकरि भाजितकी अर उच्छिष्टावलीकी संदृष्टि प्रथमादि पर्वनिविषैं जानना। बहुरि तिनके वीचि स्थिति कांडकायामविषैं पल्यका संख्यातवां भागकी, पल्य-का असंख्यातवां बहुभागकी, दूरापकृष्टिका असंख्यात बहुभागकी संदृष्टि जानना। बहुरि सर्व कर्मके द्रव्यकौं सात अर अनंत अर सतरहका भाग दीए अनंतानुबंधी क्रोध द्रव्य ऐसा स ∂ १२—ताकौं
७ । ख । १७
अपकर्षण भागहारका भाग दीएं जो अपकृष्ट द्रव्य भया ताकौं उदयावली आदिविषैं निक्षेपण करै है। अर तिसहीकौं संख्यातका भाग दीएं जो कांडक द्रव्य ऐसा स ∂ १२ — ताकौं गुणसंक्रमका
७ । ख । १७ । ९
भाग दीएं प्रथम फालि ऐसा—स ∂ १२ — यातैं क्रमतैं असंख्यातगुणा द्वितीयादि फालि तिनकौं
७ । ख । १७ ९ । गु
बाहर कषाय नव नोकषाय तिनिरूप समय समय परिनमावै है। उच्छिष्टावली मात्र द्रव्य रहैं

ताकौं एक एक निषेककरि तिनिरूप परिनमावै है। ऐसैं अनंतानुबंधीका विसंयोजन करि दर्शनमोहकी क्षपणा प्रारंभै है। तहां अन्य क्रिया होइ जहां असंख्यात समयप्रबद्धकी उदीरणा हो है तहां सम्यक्त्वमोहनीका द्रव्य ऐसा स ∂ १२ — / ७ । ख । १७ । गु याकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीएं ऐसा स ∂ १२ — / ७ । ख । १७ । गु । ओ याकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएं बहुभाग उवरितन स्थितिविषै दीया शेष एक भागका पल्यकौं असंख्यातवां भागका भाग दीएं बहुभाग गुणश्रेणिविषै एक भाग उदयावलीविषैं दीया तहां संदृष्टि ऐसी—

उपरितन स्थिति	१ॅ स ∂ १२ – प ७ । ख । १७ । गु । ओ । प । ∂ ∂
गुणश्रेणी आयाम	१ॅ १ॅ स ∂ १२ — प । प ७ । ख । १७ । गु । ओ । प ∂ प ∂ ∂ ∂
उदयावली	१ॅ स ∂ । १२ — प १ ७ । ख । गु । ओ । प ∂ प ∂ ∂

इहां बहुभागविषैं एक घाटि भागहारका गुणकार संपूर्ण भागहारका भाग जानना। बहुरि सम्यक्त्वमोहनीकी अष्ट वर्षमात्र स्थिति जिस समय हो है तिस समय विषै क्रिया करै है।

मिश्र सम्यक्त्वमोहका अंत फालिका द्रव्य किंचिदून द्व्यर्ध गुणहानिमात्र है। कैसैं ? मिथ्यात्वका द्रव्य ऐसा— स ∂ १२ — गु / ७ । ख । १७ । गु ∂ (१ॅ ... १— / ∂) तात्रिषै उच्छिष्टावलीविना अन्य द्रव्यकौं मिश्रमोहनीविषैं निक्षेपण कीएं मिश्रमोहका द्रव्य ऐसा स ∂ १२ — / ७ । ख । १७ इहां दर्शनमोहका द्रव्यके आगैं किंचिदूनकी सहनानी ऐसी (—) जाननो। बहुरि याका असंख्यातवां भागमात्र इतर कांडक द्रव्य सम्यक्त्वमोहनीविषैं संक्रमण भएं अवशेष बहुभागमात्र मिश्रमोहका चरम कांडककी चरम फालिका द्रव्य ऐसा स ∂ । १२— ∂ / ७ । ख । १७ । ∂ (१ॅ) बहुरि सम्यक्त्वमोहका द्रव्य ऐसा— स ∂ १२— / ७ । ख । १७ । गु इहां भी इतर कांडक

द्रव्य याका असंख्यातवां भागमात्र नीचले निषेकनिविषै निक्षेपण कीएं अवशेष बहुभागमात्र

१ ^

सम्यक्त्व प्रकृतिकी चरम फालिका द्रव्य ऐसा—स ∂ । १२—। ∂ इनि दोऊनिकौं मिलाएं किंचिदून

७ । ख । १७ । गु । ∂

द्वयर्ध गुणहानिगुणित समयप्रबद्धप्रमाण मिश्राद्विककी चरम फालिका द्रव्य किंचिदून दर्शन मोहका द्रव्यमात्र ऐसा—स ∂ । १२—याकौ पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देह तहां एक

७ । ख । १७

भाग उदयादि गुणश्रेणी आयामविषै असंख्यातगुणाक्रम लीएं देना। तहां तिस द्रव्यकौं अंक संदृष्टि अपेक्षा पिच्यासीका भाग देइ पहला निषेकविषै च्यारि अर सोलहका, अंत निषेकविषै चौसठिका गुणकार कीएं ऐसी संदृष्टि—

अंतनिषेक	स ∂ । १२—६४ ७ । ख । १७ । प । ८५ ∂
मध्यनिषेक	० १६ ० ४
प्रथमनिषेक	स ∂ । १२—१ ७ । ख । १७ । प ८५ ∂

१ ^

बहुरि अवशेष बहुभागमात्र द्रव्य ऐसा स ∂ । १२—प इहां गुणकारविषै एक घाटिकौं न गिणैं

∂

७ । ख । १७ प

∂

ऐसा स ∂ । १२-याकौं गुणश्रेणि आयाम मिलावनेके अर्थि अष्ट वर्षनिविषैं किंचिदून कीएं गच्छ

७ । ख । १७

ऐसा व ८— ताका भाग दीएं मध्य धन ऐसा स ∂ १२—याकौं एक घाटि गच्छका आधा

१ ^ ७ । ख । १७ । व ८ —

प्रमाणकरि हीन दो गुणहानि ऐसा १६—व ८—ताका भाग दीएं चयका प्रमाण ऐसा—

स ∂ १२— १ ^ याकौं दोगुणहानि ऐसा (१६) ताकरि गुणें प्रथम निषेक एक

७ । ख । १७ । व ८ — १६ — व ८—

२

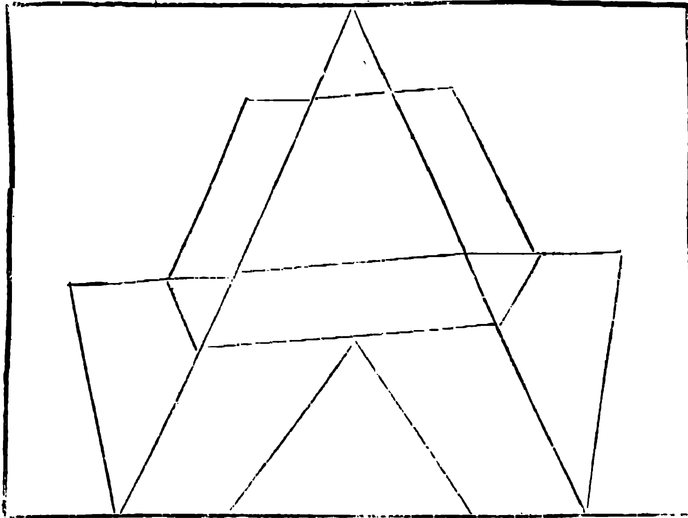
घाटि दोगुणहानि ऐसा १६—१ ताकरि गुणें द्वितीय निषेक इत्यादि क्रमतें एक घाटि गच्छकरि

१ ^

हीन दोगुणहानि ऐसा १६—व ८—ताकरि गुणें अंत निषेकविषै दीया द्रव्य है तिनकी संदृष्टि ऐसी—

अंतनिषेक	१ ⌒ स ə १२ – १६ – व ८— १ ⌓ ७ ख १७ व ८ – १६ व – ८ २
मध्य	० ० ०
चतुर्थ	स ə १२ – १६ – ३ १ ⌓ ७ ख १७ व ८ – १६ – व ८— २
तृतीय	स ə १२ – १६ – २ १ ⌓ ७ ख १७ व ८ – १६ – व ८— २
द्वितीय	स ə १२ – १६ – १ १ ⌓ ७ ख १७ व ८ – १६ – व ८— २
प्रथमनिषेक	स ə १२ – १६ १ ⌓ ७ ख १७ व ८ – १६ – व ८— २

बहुरि इहां गुणश्रेणि आयामका वा उपरितन स्थितिकी संदृष्टि ऐसी



इहां क्रमहीन सत्तारूप निषेकनिकी रचनाकरि पूर्वैं जो नीचैं उदयावलीविषै क्रमहीनरूप ताके ऊपरि गुणश्रेणि आयामविषै क्रम अधिकरूप निक्षेपण कीएं तिनकी रचनाकरि बहुरि तह

उदयरूप प्रथम समयतैं लगाय गुणश्रेणि आयामविषैं क्रम अधिकरूप अर ताके उपरितन स्थिति-विषै अतिस्थापनावली छोडि क्रम हीनरूप द्रव्य निक्षेपण किया तिनके अनुसारि लकीरनिकी संदृष्टि क्रम होनरूप वा अधिकरूप करी है। बहुरि इसही समयविषै अनुभागका अनुसमयाप-वर्तन हो है। तहां पूर्वं अनुभाग एक गुणहानिविषै स्पर्धक शलाकाकौं नाना गुणहानिकरि गुणैं ऐसा (९ ना) ताकौं अनंतका भाग दोएं द्वितीयावलोके प्रथम निषेकका अनुभाग ऐसा (९ ना) इहां
ख

१ _ ।
अवशेष बहुभाग नष्ट कीएं ते ऐसैं ९ ना ख बहुरि ताकौं अनंतका भाग दीएं उदयावलोके अंत
ख १ ॒ १ ॒

निषेकका अनुभाग ऐसा ९। ना। इहां नष्ट कीएं बहुभाग ऐसा ९। ना। ख ख बहुरि ताकौं
ख। ख ख ख

अनंतका भाग दीएं उदयावलीके प्रथम निषेकका अनुभाग ऐसा। ९ ना। इहां अवशेष बहुभाग
१ ॒ १ ॒ १ ॒ ख ख ख

नष्ट कीएं ते ऐसैं ९ ना ख ख ख ऐसैं ही अनंत गुणहानि लीएं समय समय अनुभागापवर्तनका
ख। ख। ख

विधान जानना।

बहुरि जिस समयविषैं सम्यक्त्व मोहनीकी स्थिति अष्ट वर्ष प्रमाण हो है तिस समयतैं पूर्व समयविषै विधान हो है ताको संदृष्टि कहिए है–सम्यक्त्व प्रकृतिका द्रव्य ऐसा–स ∂। १२ –
७। ख। १७। गु

इहां गुणसंक्रम विधानतैं असंख्यातगुणा द्रव्य भया है। परंतु सामान्यतैं इतना लिख्या सो नाना-गुणहानिविषै वर्तै है। तहां तिस द्रव्यकौं द्व्यर्ध गुणहानि (१२) का भाग देइ ताकौं दो गुणहानि (१६) का भाग दोएं चय होइ। ताकौं दो गुणहानिकरि गुणैं उदयावलीका प्रथम निषेक होइ। बहुरि दो गुणहानिमात्र गुणकारविषैं क्रमतैं एक एक घटाएं मध्य निषेक होइ। एक घाटि आवली
१ ॒

ऐसी १६ — ४ घटाएं ताका अंत निषेक होइ। बहुरि ताहीमैं आवली घटाएं गुणश्रेणिका आदि
१ ॒

निषेक होइ। बहुरि तैसैं ही मध्य निषेक होइ। ताहीमैं एक घाटि अंतर्मुहूर्त ऐसा १६ —। २ ✓ घटाएं ताका अंत निषेक होइ। बहुरि ताहीमें अंतर्मुहूर्त घटाएं उपरितन स्थितिका आदि निषेक
१ ॒

होइ। बहुरि तैसैं ही मध्य निषेक होइ। तिसहीविषैं एक घाटि किंचिदून आठ वर्ष ऐसैं १६ – व ८ – घटाएं अंत निषेक होइ ऐसैं तौ पूर्व सत्त्व द्रव्य पाइए।

बहुरि इहां अपकर्षणकरि दीया द्रव्य पूर्वोक्त सम्यक्त्वप्रकृतिके द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारके असंख्यातवां भागका भाग दीएं ऐसा स ∂। १२ — याकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग
७। ख। १७। गु आ
∂

१ ꣿ
दीएं बहुभागमात्र ऐसें स ∂ १२ — प उपरितन स्थितिविषैं दीया द्रव्य हो है। तहां गुणकारविषैं
∂
७। ख १७ गु ओ प
∂ ∂

एक हीनकौं न गिणैं अपवर्तन कीएं ऐसा स ∂ १२ — याकौं ड्योढ गुणहानि अर दो गुण-
७। ख। १७। गु ओ

हानिका भाग दीएं चय ऐसा स ∂। १२ — ∂
७। ख। १७। गु। ओ। १२। १६
∂

याकौं दोगुणहानिकरि गुणैं प्रथम निषेक अर दो गुणहानि गुणकार विषैं क्रमतैं एक एक घटाएं मध्य निषेक होइ। एक घटि किंचिदून आठ वर्ष घटाएं अंत निषेक हो है। बहुरि एक भाग रह्या सो ऐसा स ∂। १२ — इहां पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएं बहुभाग ऐसा
७। ख। १७। गु। ओ प
∂ ∂

१—
स ∂ १२ — प गुणश्रेणिविषैं दीया द्रव्य इहां भी गुणकारविषैं एक घाटिकौं न
∂
७। ख। १७। गु। ओ प प
∂ ∂ ∂

गिणि अपवर्तन कीएं ऐसा स। ∂। १२—याकौं अंक संदृष्टि अपेक्षा पिच्यासीका भाग
७। ख १७। गु ओ प
∂ ∂

देइ एक करि गुणैं प्रथम निषेक, च्यारि सोलहकरि गुणैं मध्य निषेक, चौसठिकरि गुणैं अंत निषेक हो है। बहुरि अवशेष रह्या एक भाग ऐसा स ∂ १२— सो उदयावलीविषैं
७। ख। १७। गु। ओ प प
∂ ∂ ∂

१ ꣿ
देना सो याकौं आवली अर एक घाटि आवलीका आधाकरि हीन दो गुणहानि ऐसा ४। १६—४
२

ताका भाग दीएं चय होइ। याकौं दो गुणहानि करि गुणैं प्रथम निषेक अर इस गुणकारविषैं एक एक घटाएं मध्य निषेक होइ। एक घाटि आवली घटाएं अंत निषेक होइ ऐसैं दीया द्रव्य जानना। इनकी संदृष्टि ऐसी—

<table>
<tr><th></th><th>पूर्वसत्त्व द्रव्य</th><th>दीया द्रव्य</th></tr>
<tr><td>उपरितनस्थिति</td><td>१ ᐱ
स ∂ १२– १६– व ८–
७ ख १७ गु १२ १६
०
०
०
स ∂ १२– १६– २७
७ ख १७ गु १२ १६</td><td>१ ᐱ
स ∂ १२– १६– व ८–
७ ख १७ गु ओ १२ १६
० ∂
०
०
स ∂ १२– १६
७ ख १७ गु ओ १२ १६
∂</td></tr>
<tr><td>गुणश्रेणि</td><td>१ ᐱ
स ∂ १२– १६– २७
७ ख १७ गु १२ १६
०
०
०
स ∂ १२– १६– ४
७ ख १७ गु १२ १६</td><td>स ∂ १२– ६४
७ ख १७ गु ओ प ८५
० ∂∂
०
०
स ∂ १२– १
७ ख १७ गु ओ प ८५
∂∂</td></tr>
<tr><td>उदयावली</td><td>१ ᐱ
स ∂ १२– १६ ४
७ ख १७ गु १२ १६
०
०
०
स ∂ १२– १६
७ ख १७ गु १२ १६</td><td>१ ᐱ
स ∂ १२– १६– ४   १ ᐱ
७ ख १७ गु ओ प प ४ १६– ४
० ∂∂∂   २
०
०
स ∂ १२– १६   १ ᐱ
७ ख १७ गु ओ प प ४ १६– ४
∂∂∂   २</td></tr>
</table>

बहुरि इन दोऊनिका मिलाएं दृश्यमान द्रव्य हो है। तहां उदयावलीका तौ सत्त्व द्रव्य बहुत है अर दिया द्रव्य स्तोक है। तातैं यहां सत्त्व द्रव्यकी संदृष्टिके ऊपरि ऐसी (।) संदृष्टि कीएं दृश्यमान द्रव्यकी संदृष्टि हो है। बहुरि गुणश्रेणिविषैं दीया द्रव्य बहुत है। सत्त्व द्रव्य स्तोक है तातैं दीया द्रव्यकी संदृष्टि ऊपरि अधिक को ऐसी (।) संदृष्टि कीएं दृश्यमान द्रव्यकी संदृष्टि हो है। बहुरि उपरितन स्थितिका प्रथम निषेकविषैं दो गुणहानिमात्र गुणकारविषैं अंतर्मुहुर्त घटाया था सो अंतर्मुहूर्तमात्र घटाएं जे चय तिनिरूप ऋण ऐसा स ∂ १२ — २ ७ / ७ । ख । १७ । गु १२ १६ अर इस प्रथम निषेकविषैं दीया द्रव्यरूप धन ऐसा—स ∂ । १२ – १६ / ७ । ख । १७ गु । ओ । १२ ।१६ / ∂ सो इस धनविषैं ऋण घटावनेके अर्थि अन्य भागहार समान जानि अपकर्षण भागहारका असंख्यातवां भागरूप भागहारकरि समच्छेद कीएं ऋण द्रव्य ऐसा स ∂ । १२—२ ७ ओ / ∂ / ७ । ख । १७ गु । ओ । १२ । १६ / ∂ अब इहां अन्य गुणकार

भागहार समान जानि ऐसा २ ᑫ ओ। गुणकारकौं परस्पर गुणैं जो असंख्यात भया ताकौं धन
a

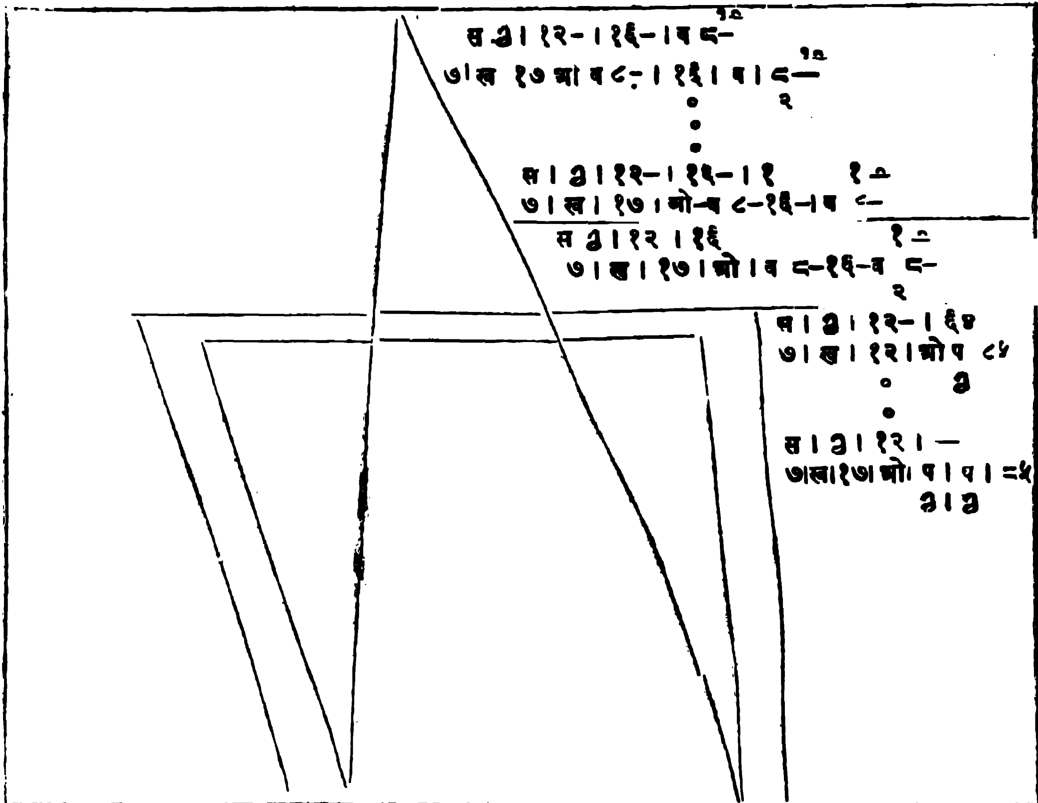
द्रव्यका दो गुणहानिविषैं घटाएं धन द्रव्य ऐसा भया स a १२—१६—a अब इहां उपरि-
७। ख। १७। गु। ओ १२। १६
ख

तन स्थितिका प्रथम निषेकविषैं जो अंतर्मुहूर्तमात्र चय घटाए थे ते तौ जुदे काढि धन द्रव्यविषैं घटाय दीएं तब दो गुणहाणि गुणित चयमात्र उपरितन स्थितिका प्रथम निषेक ऐसा—
स a। १२ — १६ रह्या। तिस ऊपरि तिस ऋण रहित धन द्रव्य मिलावनेकौं अधिककी
७। ख। १७। गु। १२।१६
ऐसी (।) संदृष्टि कीएं उपरितन स्थितिका प्रथम निषककी संदृष्टि हो है। बहुरि दो गुणहानिका गुणकारविषैं क्रमतैं एक एक धटाएं द्वितीयादि निषेक होइ। तिसहीमें एक घाटि किंचिदून आठ वर्ष घटाएं अंत निषेक हो है ऐसैं दृश्यमान द्रव्य हो है ताकी रचना ऐसी—

उपरितनस्थिति	गुणश्रेणि	उदयावलि

बहुरि ताके अनंतरि सम्यक्त्वमोहनीका अष्ट वर्ष स्थिति होनेका समयविषै अष्ट वर्षमात्र सम्यक्त्व मोहनीके निषेकानिका द्रव्य ऐसा स। a। १२–ताकरि हीन द्वयर्ध गुणहानि गुणित
६। ख। १७। गु
समयप्रबद्धमात्र मिश्र सम्यक्त्वमोहका चरम फालिका द्रव्य ताकों गुणश्रेणि आयामविषैं वा उपरितन स्थितिविषैं दीया द्रव्यका संदृष्टि पूर्वे कहि आए हैं। बहुरि ताके अनंतरि अष्ट वर्ष स्थिति-करणका द्वितीय समय ता विषैं सर्व मोहनीके द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीएं एक भाग ऐसा स a १२–१ अपकर्षणकरि ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ एक भाग गुगश्रेणि
७। ख। १७ गु। ओ
आयामविषैं असंख्यातगुणा क्रमकरि अर बहुभाग उपरितन स्थितिविषैं हीन क्रमकरि पूर्वोक्त प्रकार देना। इहां उदयादि अवस्थित गुणश्रेणि आयाम है। तातै पूर्वे गुणश्रेणि आयामविषैं एक समय उपरितन स्थितिका मिलावना तहां उपरितन स्थितिविषैं दीया द्रव्यका गुणकारिविषैं एक घाटिकौं न गिणि अपवर्तन कीएं ऐसा स। a।१२– ताकौं किंचिदून आठ वर्षमात्र गच्छका अर
७। ख। १७। गु ओ

एक घाटि गच्छका आधाकरि हीन दो गुणहानिका भाग दीएं चय धन होइ। ताकौं दो गुणहानिकरि गुणे प्रथम निषेक अर दो गुणहानिका गुणकारविषैं एक एक घटाएं अंत विषैं एक घाटि किंचिदून आठ वर्ष घटाएं द्वितीयादि निषेक हो है। बहुरि गुणश्रेणिविषैं दीया द्रव्यकौं अंक संदृष्टि अपेक्षा पिच्यासीका भाग देइ एक करि गुणैं प्रथम निषेक, च्यारि सोलह करि गुणैं मध्य निषेक, चौसठिकरि गुणैं अन्त निषेक ताकी रचना ऐसी—



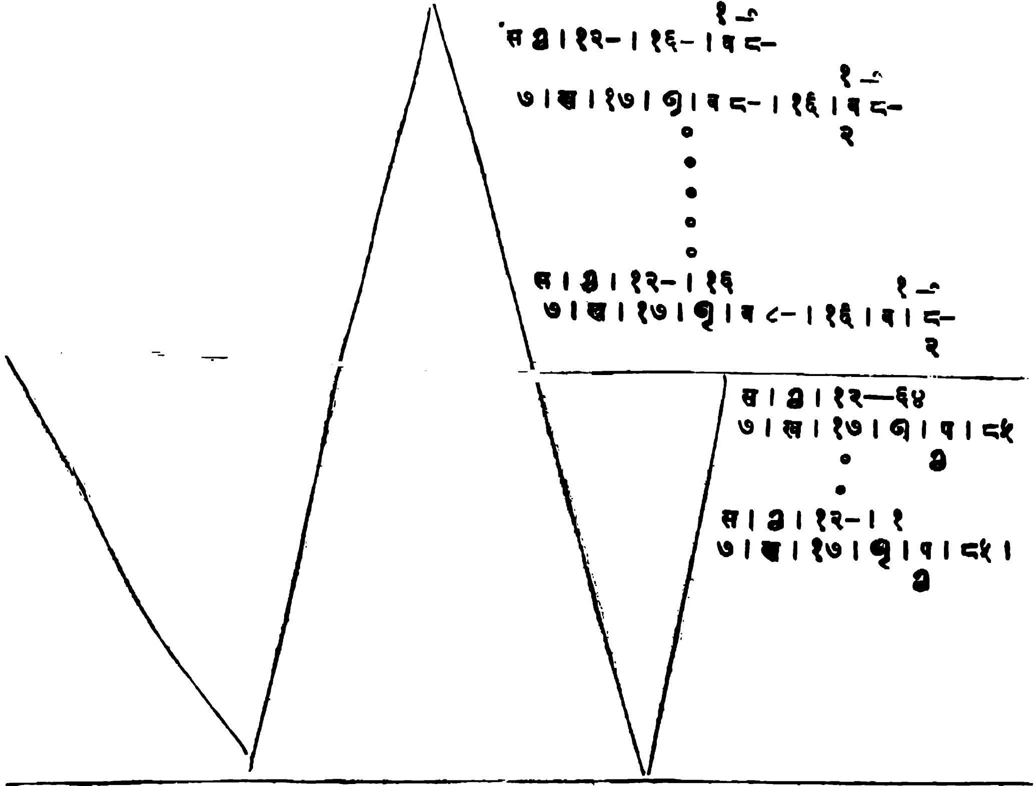
बहुरि इस ही समयविषैं सम्यक्त्वमोहनीका द्रव्यकौं संख्यातका भाग दीएं प्रथम कांडक द्रव्य होइ। ताकौं पल्यके अर्धच्छेदकौं दोयवार असंख्यातका भाग दीएं अधःप्रवृत्त भागहार ऐसा छे ताका भाग दीएं प्रथम फालिका द्रव्य ऐसा स । a । १२- सो अपकर्षण कीया द्रव्यकैं
a a ७ । ख । १७ । ? छे
a a

असंख्यातवे भागमात्र है अर देनेका विधान तैसें ही है। तातैं अपकर्षण द्रव्यविषैं याके मिलावनेकौं अधिककी संदृष्टि करि देनी। बहुरि ऐसे ही द्वितीयादि समयनिविषैं रचना करनी। बहुरि प्रथम

१ ०

कांडककी अंत फालिका द्रव्य ऐसा स । a । १२ – a कैसे ? सो कहिए है—
७ । ख । १७ ? । a

अंत फालिविना अन्य फालिनिका द्रव्य कांडक द्रव्यके असंख्यातवैं भागमात्र है। ताकौं घटाएं असंख्यात बहुभागमात्र अंत फालिका द्रव्य हो है। इहाँ गुणकारविषैं एक हीनकौं न गिणि अपवर्तनकरि बहुरि ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ एक भाग उदयादि अवस्थिति गुणश्रेणि आयामविषैं असंख्यातगुणां क्रमकरि बहुभाग उपरितन स्थितिविषैं हीन क्रमकरि देना ताकी पूर्वोक्त प्रकार संदृष्टि ऐसी—



इहां कांडक द्रव्य बहुत है। तातैं याविषैं अपकृष्ट द्रव्यका साधिकपना जानना। बहुरि ऐसैं ही अन्य कांडकनिविषैं रचना जाननी। बहुरि मिश्रद्विककी चरम फालिका द्रव्य स ə। १२—
७। ख। १७

सो यहु द्रव्य इसके पतन समयतैं पूर्व समयविषैं जो गुणसंक्रमण द्रव्य सहित सम्यक्त्व मोहनीका द्रव्य ऐसा स ə। १२—ə तातैं असंख्यातगुणा है। बहुरि अष्ट वर्ष स्थितिकरण समयविषैं जो सम्यक्त्व
७।ख।१२गु

मोहनीका द्रव्य है तातैं अष्ट वर्ष करणका द्वितीयादि प्रथम कांडकको द्विचरम फालि पतन समय पर्यंत तौ अपकर्षण कीया वा फालिका द्रव्य असंख्यातवै भागमात्र है अर चरम फालि पतन समयविषैं संख्यातवै भागमात्र है सो पूर्वोक्त भागहारतैं यहु संभवै है। बहुरि अष्ट वर्षकरण

समयविषैं जो उपरितन स्थितिके प्रथम निषेकका दृश्य द्रव्य ऐसा स । ३ । १२—१६—१ ꣸ इहां
७ ।ख१७।व८—१६ व८—
२

यहु गुणश्रेणीशीर्ष कहिए ताका जो यहु द्रव्य सो यातैं पूर्व समयविषै जो गुणश्रेणिशीर्षका दृष्य द्रव्य ऐसा स । ३ । १२—६४ तातैं असंख्यातगुणा हैं । बहुरि अष्ट वर्षकरणका प्रमथ समयके गुणश्रेणी-
७ख१७ प ८५
३

शीर्ष द्रव्यतैं द्वितीय समयके गुणश्रेणीशीर्षका द्रव्य विशेष अधिक हो है, गुणकाररूप है नाहो कैसे ! सो कहिए है—

अष्ट वर्ष स्थितिकरणका प्रथम समयविषैं गुणश्रेणीशीर्षका दृश्य द्रव्य जैसा—

स ३ १२—१६ १ ꣸ याके द्वितीय समयविषैं आया धन ऐसा स । ३ । १२—६४ बहुरि
७।ख।१७। व ८—१६—व८— ७ । ख । १७ ओ ।प। ८५
२ ३

अष्ट वर्षकी उपरितन स्थितिके द्वितीय निषेकका दृश्य द्रव्य ऐसा स । ३ । १२—। १६—१ यामैं
१
७ । ख १७ । व ८—। १६—। व ८—
२

गुणकारमें एक घटाया है सो एक चयमात्र ऋण जैसा स । ३ । १२—१ सो जुदा स्थापैं प्रथम
१꣸
७ । ख । १७ व ८—। १६ व ८—
२

समयका गुणश्रेणीशीर्ष द्रव्य अर यहु समान भया । बहुरि द्वितीय समयविषैं जो याविषैं द्रव्य दीया सो गुणश्रेणिशीर्षका धन ऐसा स ३ । १२—१६ यातैं पूर्वोक्त ऋण सो असंख्यातगुणा घाटि
१꣸
७ । ख । १७ । ओ व ८—। १६—व ८—
२

है । जातैं तहां दो गुणहानिका गुणकार नाही है । बहुरि द्वितीय समयका गुणश्रेणिके अंत निषेकका द्रव्य ऐसा स । ३ । १२—६४ जातैं तहां एक घाटि पल्यका असंख्यातवां भागका गुणकार था अर
७ । ख । १७।ओ।प।८५
३

एक हीनकौं न गिणि अपवर्तन कीया था सो इहां नाही है । ऐसैं ऋण द्रव्य अर गुणश्रेणिका चरम निषेक द्रव्य घटावनेकौं तिस धन द्रव्यमैं किंचित् ऊनकरि बहुरि तहां दो गुणहानिका गुणकर था अर अपकर्षण भागहारका भाग था तिनका अपवर्तन कीएं असंख्यातका गुककार ही रह्या भागहारदूरि भया तव ऐसा स । ३ । १२—३ १ ꣸ याकौं अष्ट वर्षकरणका प्रथम
७ । ख । १७ व ८ – १६ – व ८ —
२

समनका गुणश्रेणी शीर्ष समान जो ताके अनंतरि उपरितन स्थितिका निषेक तामैं अधिक करना। ऐसें प्रथम समयका गुणश्रेणिशीर्षतें द्वितीय समयका गुणश्रेणिशीर्षका दृश्य द्रव्य साधिक ही है–

।
स । ∂ । १२ – १६ १८ इहां एक साधिकपना आगैं था इतना यहु और साधिक
७ । ख । १७ । व ८ – । १६ – व ८—
२

भया ताके जाननेके अर्थि उपरि दूसरी ऊभी लीक [।] करी। ऐसें ही पूर्वतें उत्तर गुणश्रेणि-शीर्ष साधिक ही है। इहां ए संदृष्टि कही हैं तिनका स्वरूप पूर्वे होय आया है तातें इहां न कह्या है। बहुरि अवस्थित गुणश्रेण्यायाम अंतर्मुहूर्तमात्र ऐसा २ १ ताकौं संख्यात ऐसा (४) ताका भाग दीएं बहुभाग ऐसा २१ ३ अर गलितावशेष गुणश्रेणि आयामविषैं गुणश्रेणिशीर्ष ऐसा
४
२ १ ताका असंख्यातवां भाग एसा २ १ ताके ऊपरि द्विचरम फालि कांडकतें नीचें अवशेष रहे
४ ४ । ४
निषेक ते ऐसें २ १ । ४ । ४ । ४ इनको मिलाये चरम कांडक आयामका प्रमाण हो है। सो याकी प्रथम फालिका पतन समयतें लगाय द्विचरम फालिका पतन समय पर्यन्त फालि द्रव्य वा अपकर्षण कीया द्रव्य तीन पर्वनिविषैं देना। तहां अंतकांडककी प्रथम फालिका पतन समयविषैं जो गलितावशेष गुणश्रेणि आयाम आरंभ्या ताका शीर्ष पर्यन्त प्रथम पर्व, ताके ऊपरि पूर्वं जो अवस्थित गुणश्रेणि आयाम था ताका शीर्ष पर्यन्त द्वितीय पर्व ताके उपरि उपरितन स्थितिका अंत निषेक पर्यन्त तृतीय पर्व तहां सम्यक्त्व मोहनीका द्रव्यविषैं पूर्वे गले निषेकनिका द्रव्य ताके असंख्यातवै भागमात्र घटाएं किंचिदून द्वयर्ध गुणहानि गुणित समयप्रबद्धमात्र चरम कांडकका द्रव्य ऐसा स । ∂ । १२—याकौं असंख्यातकरि भाजित अपकर्षण भागहारका भाग दीयें एक भाग
७ । ख । १७
ऐसा स । ∂ । १२— याकौं पल्यके असंख्यातवां भागका भाग देइ बहुभाग ऐसै स ∂ । १२ —प
७ । ख । १७ । ओ ∂
१८ ∂ ७ । ख । १७ । ओ प
∂ ∂
प्रथम पर्वविषै असंख्यातगुणा क्रमकरि देना। तहां याकौं अंक संदृष्टिकरि पिच्यासीका भाग देइ एककरि गुणे प्रथम निषेक, च्यारि सोलहकरि गुणें मध्य निषेक चौंसठिकरि गुणें अंत निषेक हो है। बहुरि ताका एक भाग ऐसा स । ∂ । १२— ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग
७ । ख । १७ । ओ । प
१८ ∂ ∂
देइ बहुभाग ऐसा स । ∂ । १२—प द्वितीय पर्व विषैं हीन क्रमकरि देना। तहां याकौं गच्छ
∂
७ । भ । १७ । ओ । प । प
∂ ∂ ∂
संख्यातकी सहनानी च्यारिकरि गुणित अंतर्मुहुर्त मात्र ऐसा २ १ । ४ ताका अर एक घाटि
१८

गच्छका आधाकरि हीन दो गुणहानि ऐसा—१६ – २ ७ ७ ताका भाग दीएं चय होइ। याकौं दो गुणहानिकरि गुणें प्रथम निषेक अर गुणकारविषैं एक एक घटाएं द्वितीयादि निषेक होइ। एक घाटि गच्छ घटाऐं अंत निषेक होइ बहुरि अवशेष एक भाग ऐसा स । a । १२ —
७ । ख । १७ । ओ । प । प
a a a

तीसरा पर्वविषैं हीन क्रमकरि देना। तहां भी तैसें ही विधान जानना। विशेष इतना—इहां गच्छका प्रमाण अंक संदृष्टि अपेक्षा चौसठिगुणा अंतर्मुहूर्त ऐसा २ ७ । ६४ जानना। इनकी रचना ऐसी—

स a १२– १६– २७ ६४ १
७ ख १७ ओ प प २७ ६४ १६– २७ ६४
a a a २ २

स a १२– १६ १
७ ख १७ ओ प प प २७ ६४ १६– २७ ६४
a a a a २

स a १२– प १ १६– २७ ४ १
a
७ ख १७ ओ प प २७ ४ १६– २७ ४
a a a २

स a १२ प १ १६
a
७ ख १७ ओ प प २७ ४ १६– २७ ४ १
a a a २

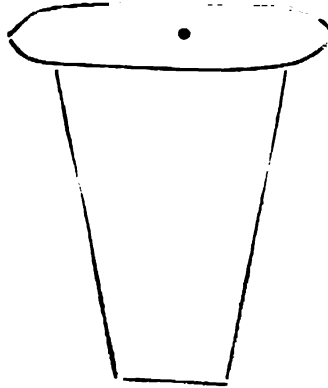
स a १२– प १ ६४
a
७ ख १७ ओ प ८५
a a

स a १२– प १ १
७ ख १७ ओ a प ८५
a a

इहां पूर्वावस्थित गुणश्रेणि आयाम था ताके दिखावनेकौं क्रम अधिकरूप संदृष्टिकरि तहां अब जो गलितावशेष गुणश्रेणि आयाम भया ताके दिखावनेकौं तौ क्रम अधिकरूप अर ताके ऊपरि हीन क्रमरूप दोया द्रव्य ताके दिखावनेकौं हीनरूप संदृष्टि करी। बहुरि उपरितन स्थितिविषैं पूर्वै भी हीन क्रम था अब भी हीन क्रमरूप द्रव्य दीया तातैं दोऊ हीनरूप लीककरि संदृष्टि करी है। बहुरि अनिवृत्तिकरणका अंत समयविषै चरमकांडककी चरम फालिका पतन हो है। तहां गले पीछैं अवशेष रह्या उदयादि गुणश्रेणि आयाम सो कृतकृत्य वेदक कालमात्र है। ताके प्रथमादि निषेक द्विचरम निषेकपर्यंत प्रथम पर्व है। ताका अंत निषेक द्वितीय पर्व है। सो

गले निषेक अर कृतकृत्य कालके निषेक विना अवशेष चरम फालिका द्रव्य ऐसा—स ∂ । १२ –
७ । ख । १७

ताकौं असंख्यातगुणा पल्यके वर्गमूलका भाग देइ एक भाग प्रथम पर्वविषैं असंख्यातगुणा क्रमकरि देना। तहां पिच्यासीका भाग देइ एकादिकरि गुणैं प्रथमादि निषेकनिकी संदृष्टि हो है। बहुरि बहुभाग द्वितीय पर्वविषैं देना। ताकी संदृष्टि ऐसी—

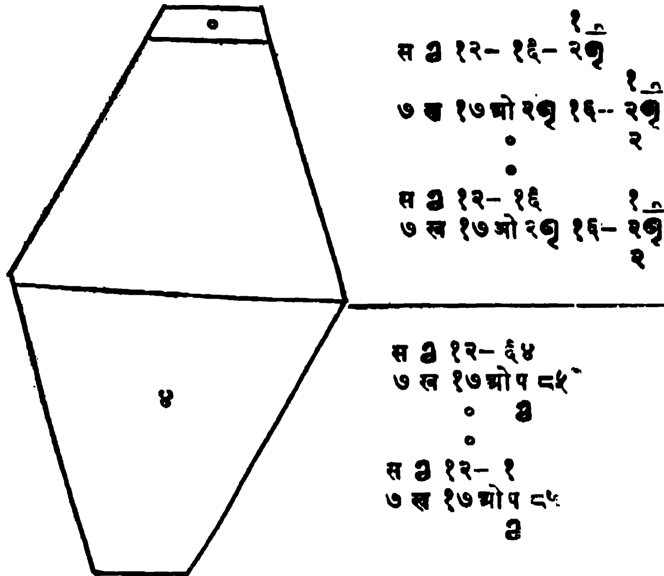


इहां गुणश्रेणिका द्विचरम समय पर्यंत अधिक क्रमरूप लीककरि ऊपरि अंत निषेककी जुदो रचनाकरि संदृष्टि करी है। ताके आगैं दीया द्रव्य लिख्या है। बहुरि कृतकृत्य वेदक काल गुणश्रेणिशीर्षके संख्यात बहुभागमात्र ऐसा २ ७। ३ तहां सम्यक्त्वमोहका सत्त्व ऐसा—
४ । ४

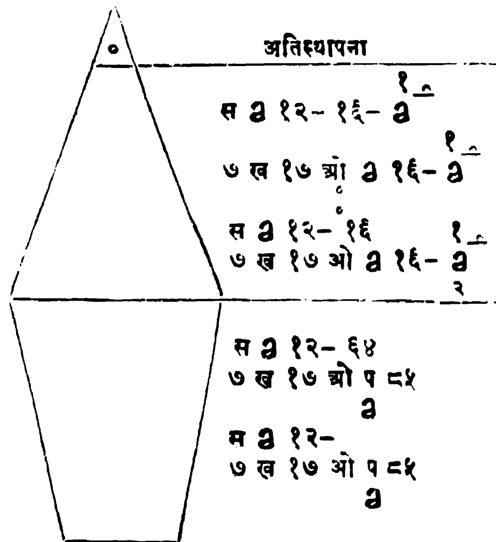
स । ∂ । १२—ताकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ एक भाग उदयावलीविषैं बाह्य निषेकनितैं
७ । ख । १७

ग्रहि ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ एक भाग उदयावलीविषैं असंख्यातगुणा क्रमकरि देना। तहां पिच्यासीका भाग देइ एकादिकरि गुणैं प्रथमादि निषेक हो हैं। बहुरि बहुभाग उपरितन स्थितिविषैं अतिस्थापनावली छोडि द्रव्य देना। तहां ताके द्रव्यका गुणकारविषैं एक होनकौं न गिणि अपवर्तन कीएं द्रव्य ऐसा स ∂ १२— ताकौं गच्छ अंतर्मुहूर्तमात्र ऐसा २ ७ ताका
७ । ख । १७ । ओ

अर एक घाटि गच्छका आधाकरि हीन दो गुणहानिका भाग दीएं चय धन होइ। ताकौं दो गुणहानिकरि गुणैं प्रथम निषेक अर गुणकारविषैं एक एक क्रमतैं घटाएं अन्तविषैं गच्छमात्र घटाएं द्वितीयादि निषेक होंइ तिनकी रचना ऐसी—



इहां नीचैं उदयावलीकी अधिक क्रमरूप उपरितन स्थितिकी हीन क्रमरूप संदृष्टि जाननी। ताके आगैं दीया द्रव्य लिख्या है। बहुरि कृतकृत्य वेदक कालविषै एक समय अधिक आवली अवशेष रहैं उदयावलीतैं उपरितन स्थितिविषैं निषेकका अपकर्षणकरि ताकौं आवलीविषै एक घाटि आवलीका दोय त्रिभाग अतिस्थापनारूप राखि एक अधिक आवलीका त्रिभागविषै दीजिए है। तहां तिस द्रव्यकौं पल्यका असंख्यातवां भाग प/a का भाग देइ एक भाग उदयादि असंख्यात समय पर्यंत असंख्यातगुणा क्रमकरि दीजिए है। इहां भाग ताके उपरिवर्ती अतिस्थापनाके नीचैं निषेक तिनविषैं हीनक्रमकरि दीजिये है इनके गच्छका प्रमाण यथासंभव असंख्यात ऐसा a इहां संदृष्टि ऐसी—



बहुरि उदयावली अवशेष रहैं एक एक निषेक क्रमतैं गालि, क्षायिक सम्यग्दृष्टी हो है। बहुरि इहां कालका अल्पबहुत्वकी संदृष्टि सुगम है। सो उपशम सम्यक्त्वविषैं अल्पवहुत्व कह्या तिस प्रकार वा अन्य यथासंभव प्रकारकरि कथनके अनुसारि तेतीस अल्पवहुत्वके पदनिविषै ऐसी संदृष्टि हो है—

२ १	२१ ५ ४	२१५ ४ ४	२१ ५ ४ ५	२ ७ ७ अपवर्तित	२ ११ ४	२ ११ ४ ४	२ ११ ४ ४ ४	२ १ १ ४ ४ ४ ४
२ ७ अपवर्तित	२ १ ४	२ १ ४ ४	२ १ ४ ४ ४	२१४४४	व ८	प-व ८ a a a	प a a a	
१⌒ प a a a a	१⌒ प a a a	प a	१⌒ प a ५५५५ a	प ४ ५ ५ ५	प ४ ५ ५	प १ १	प १	प ४ ५
प	सा a प ८ १	सा a ल ८	सा अं को २ ४ ४ ४	सा अं को २ ४ ४	सा अं को २ ४	सा अं को २		

ऐसें क्षायिक सम्यक्त्व अधिकारविषैं संदृष्टि जाननी

■

अथ देशचारित्राधिकारविषैं संदृष्टि कहिए है—तहां अधःप्रवृत्त देशसंयतविषैं चतुःस्थान पतित वृद्धि हानि लीएं अपकर्षण द्रव्य हो है। तहां सत्त्व द्रव्य ऐसा— स a। १२— ताकौ सातका भाग दीएं एक कम ताकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीएं अपकृष्ट द्रव्य ऐसा— स a। १२—ताकों असंख्यात संख्यातका भाग देइ एक अधिक असंख्यात संख्यात करि गुणैं
७ ओ
असंख्यात संख्यात भागवृद्धि हो है। अर ताहीकौं संख्यात असंख्यातकरि गुणैं संख्यात असंख्यात गुणवृद्धि हो है। अर ताहीकौं असंख्यात संख्यातका भाग देइ अर एक घाटि असंख्यात संख्यातकरि गुणैं असंख्यात संख्यात भागहानि हो है। अर ताहीकौं संख्यात असंख्यातका भाग दीएं संख्यात असंख्यात गुणहानि हो है। तिनकी संदृष्टि ऐसी—

१— स। a। १२—a ७। ओ। a	१— स। a। १२—a ७। ओ। ७	स। a। १२—१ ७। ओ	स। a। १२—a ७। ओ
१—⌒ स। a। १२—a ७। ओ a	१—⌒ स। a। १२—१ ७। ओ। ७	स। a। १२— ७। ओ ७	स। a। १२— ७। a। a

बहुरि तहां कालके अल्पबहुत्वकी संदृष्टि पूर्वोक्त प्रकारकरि वा अन्य यथा संभव प्रकार करि कथनके अनुसारि अठारह पदनिविषैं ऐसी जाननी—

२ १	२ १। ५ ४	२ १ ५। ४ ४	२ १। ५। ४। ५ ४। ४	२ १। १	२१।१।४
२ ११।४।४	२ १ १।४।४।४	२१। १। १।१	२ १ १ १ १।४	प ७ ७	प ७
प	सा। ७ ८	सा अं को २ ४। ४। ४	सा अं को २ ४। ४	सा अं को २ ४	सा अं को २

बहुरि तहां जघन्य स्थानके अविभागप्रतिच्छेद अनंतगुणी जीव राशिमात्र ऐसे १६ । ख । यातैं अनन्त जीव राशिगुणा उत्कृष्ट स्थानके ऐसे १६ । ख । १६ । ख । सर्व स्थान असंख्यात लोकमात्र ऐसें ≡ ə इन विषैं एक अधिक आवलीका असख्यातवां भागकों पांचबार माढि २ २ २ २ २
१—१—१—१—१— ə ə ə ə ə
परस्पर गुणैं जेता होइ तिनविषैं एकबार षट्स्थानपतित वृद्धि होइ तो सर्व स्थानविषैं केती होइ ऐसें त्रैराशिक कीएं एतीवार होइ— ≡ ə बहुरि तहां प्रतिपात प्रतिपद्यमान अनुभय

१– १– १– १– १–
२ २ २ २ २
ə । ə । ə । ə । ə

स्थान क्रमतें हैं इनके बीचि बीचि असंख्यात लोकमात्र स्वामी रहित अंतर स्थान हैं तिनकी संदृष्टि ऐसो ≡ ə । बहुरि तिन स्थाननिकी संदृष्टिविषैं आदि जघन्य लिखि मध्य स्थाननिके अर्थि बीचिमें विंदी लिखि अंतविषैं उत्कृष्ट लिखना । बहुरि ए स्थान नारककें तौ सर्व संभवे हैं अर तिर्यंचके केते इक मध्यस्थान ही संभवैं है, तातें तिनके आदि अक्षरकी संदृष्टि करनी । बहुरि जघन्यतैं लगाय मनुष्य हीके संभवते अर मध्यविषैं तिर्यंचकें संभवते अर अंतविषैं मनुष्यहीकें संभवते स्थान प्रत्येक असंख्यात लोकमात्र हैं । तिनकी संदृष्टि ऐसी ≡ ə । ऐसें कीएं तिन स्थाननिकी ऐसी संदृष्टि हो है—

प्रतिपातस्थान	अं	प्रतिपाद्यमानस्थान	अं
ज ०००००००००० उ न ≡ ə ज०००० उ ≡ ə न ति ≡ ə ति	ə	ज ०००००००००० उ न ≡ ə ज ०००० उ ≡ ə न ति ≡ ə ति	≡ ə

अनुभय स्थान
ज ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० उ न ≡ ə ज ० ० ० ० उ ≡ ə न ति ≡ ə ति

ऐसें देशसंयमलब्धि अधिकारविषैं संदृष्टि जाननी ।

अब सकलचारित्र अधिकारविषैं संदृष्टि कहिए है—तहां देशसंयमविषैं जैसें संदृष्टिनिका स्वरूप कह्या है तैसे इहां भी यथासंभव जानना । तहां प्रतिपातादि स्थाननिविषैं विशेष है सो कहिए है—

मिथ्यादृष्टि असंयत देशसंयतविषैं पडनेवालीकी अपेक्षा प्रतिपातस्थान तीन प्रकार है । तहां जघन्यादिकको संदृष्टि पूर्ववत् करनी अर तिनके बीचि अंतरालरूप स्थान असंख्यात लोकमात्र है तिनकी संदृष्टि करनी । बहुरि प्रतिपद्यमान स्थाननिविषैं आर्य खण्डके मनुष्यके संभवते सर्व स्थान है अर म्लेच्छ खंडके मनुष्यके संभवते वीचिके स्थान हैं । तातें जैसे देशसंयतविषैं मनुष्य तिर्यंचविषैं संभवते स्थाननिकी संदृष्टि करी थी तैसें इहां आर्य म्लेच्छ खंडनिके मनुष्यनिकें संभवते स्थाननिकी रचना करनी । इहां इनके आदि अक्षर लिखने । बहुरि अनुभय स्थाननिविषैं सामायिक द्विकविषैं संभवते सर्व स्थाननिविषैं मध्यविषैं संभवते परिहारविशुद्धिके स्थान हैं । तातें इहां भी पूर्ववत् संदृष्टि करनी । बहुरि ताके परे सूक्ष्मसांपरायके स्थान जघन्यादिरूप हैं । बहुरि ताके परे यथाख्यातका एक ही स्थान है । इनके बीचि बीचि अंतराल स्थान हैं तिनकी संदृष्टि करनी । ऐसे इनकी ऐसी संदृष्टि हो है ।

प्रतिपातस्थान					अं	प्रतिपद्यमान	अं
मिथ्यात्व	अं	असं	अं	देश			
ज००००००उ	≡ a	ज०००० उ	≡ a	ज०००० उ	≡ a	ज० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०उ आ ≡ aज००००उ ≡ a आ म्ले ≡ म्ले	≡ a

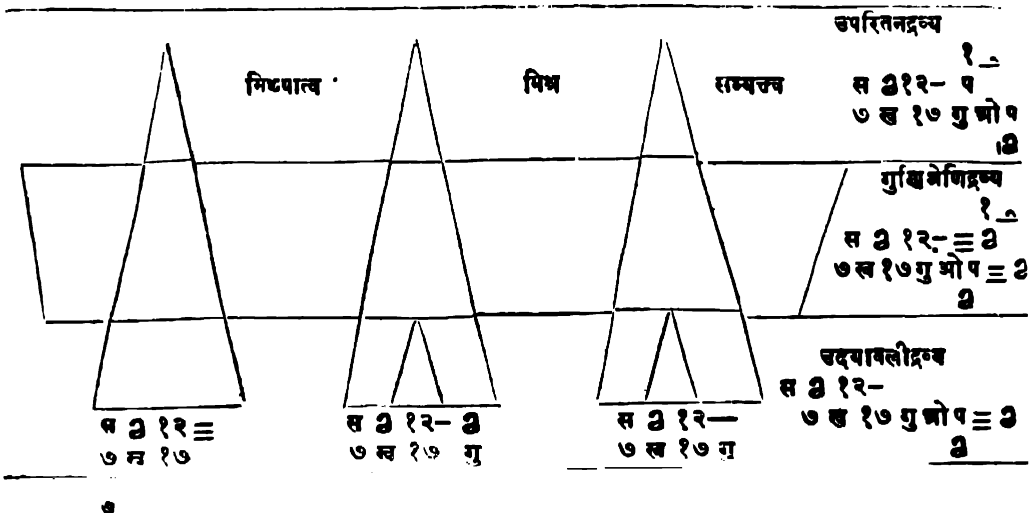
अनुभय	अं	सूक्ष्मसांपराय	अं	यथा
ज ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० । ० उ सा ≡ a ज ० ० ० ० उ ≡ a सा प ≡ a प	≡ a	ज ० ० ० ० ० ० ० । उ	≡ a	१

बहुरि सर्वस्थान ऐसें ≡ a इनकौं छोटा असंख्यात लोककी सहनानी नवका अंक ताका भाग देइ बहुभागमात्र अनुभयस्थान ऐसे ≡ a । ८ । बहुरि याकौं ताहीका भाग दाएं बहुभागमात्र
९

प्रतिपद्यमान स्थान ऐसे ≡ a । ८ । बहुरि एकभागमात्र प्रतिपात स्थान ऐसे जानने ≡ a । ऐसे
९ । ९   ९ । ९

सकलसंयमाधिकारविषैं संदृष्टि जाननी।

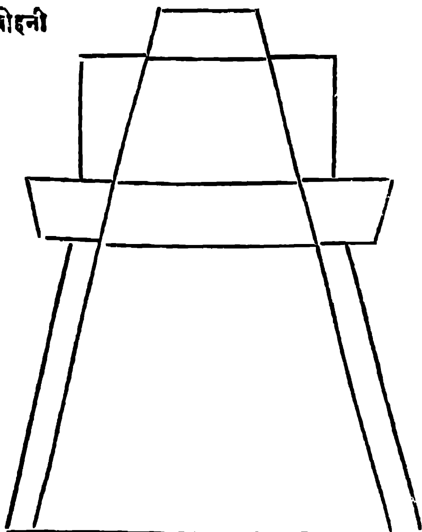
अथ चारित्रमोहका उपशमन अधिकारविषैं संदृष्टि कहिए है—तहां जो द्वितीयपोशम-सम्यक्त्व सहित श्रेणी चढ़ै ताकैं द्वितीयोपशम सम्यक्त्वसम्बन्धी अपूर्वकरणका प्रथम समयादि अनिवृत्तिकरणका बहुभाग पर्यन्त गुणश्रेणिविषैं ऐसी रचना जाननी—



इहां तीनों दर्शनमोहके निषेकानिका क्रमरूप आकार लिखि ताके नीचें तिन तीनोंके द्रव्यकी संदृष्टि लिखी। द्व्यर्धगुणहानि गुणित समयप्रबद्धकों सात अनन्त सतरहका भाग दीएं दर्शन-मोहका द्रव्य होइ। ताविषैं किंचिदून कीएं मिथ्यात्वका अर ताहीकौं गुणसंक्रमणका भाग देइ असं-

ख्यातकरि गुणें मिश्रका अर ताहीकौं गुणसंक्रमका भाग दीएं सम्यक्त्व प्रकृतिका द्रव्य हो है। बहुरि तिन तीनोंके निषेक रचनाविषैं उदयावली गुणश्रेणि उपरितन स्थिति दिखावनेकौं क्रमहीन क्रम अधिक क्रम हीनरूप संदृष्टि करी। बहुरि तिनके आगें सम्यक्त्व मोहनीका द्रव्यकौं अपकर्षण भागहर ऐसा (ओ) ताका भाग देइ ताकौं पल्यका असंख्यातवां भाग ऐसा प/a ताका भाग देइ बहुभाग उपरितन स्थितिविषैं दीया। अवशेष एक भागकौं असंख्यात लोक ऐसा ≡a ताका भाग देइ बहुभाग गुणश्रेणि आयामविषै एक भाग उदयावलीविषैं दीया। तिनकी संदृष्टि लिखी। बहुरि अनिवृत्तिकरण कालका संख्यातवां भाग रहें सम्यक्त्व मोहनीका जो द्रव्य अपकर्षण कीया तिसविषै जहां असंख्यात लोकका भाग था तहां पल्यका असंख्यतवां भाग संभवैं है। ताकी रचना ऐसी—

सम्यक्त्वमोहनी



उपरितनद्रव्य

१ ـ
स a १२- प
a
स ख १७ गु ओ प प
a a

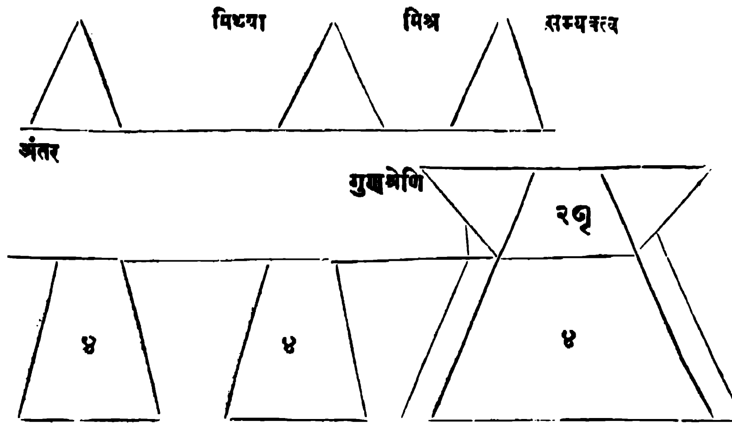
गुणश्रेणिद्रव्य

स a १२- १ ـ
प
a
७ ख १७ गु ओ प प
a a

उदयावलीद्रव्य

स a १२-
७ ख १७ गु ओ प प
a a

बहुरि अंतर्मुहूर्त काल गएं अंतर करै है। तहां मिथ्यात्व मिश्रमोहनीकी आवली ४। मात्र सम्यक्त्वमोहनीकी अंतर्मुहूर्तमात्र। २ ९। नीचैं प्रथम स्थिति छोडि वीचिके निषेकनिका अभाव करि ऊपरि तीनोंकी द्वितीय स्थितिकी रचना समान हो है। तिनकी रचना विषै नीचैं तीनोंकी उदयावली लिखी। ताके ऊपर मिथ्यात्व मिश्रकैं तौ अभावरूप निषेकनिकी संदृष्टि अर सम्यक्त्व मोहनीके गुणश्रेणिरूप निषेक लिखि ताके ऊपरि अभावरूप निषेकनिकी संदृष्टि करनी। बहुरि तिन तीनोंके अभावरूप निषेकनिके उपरि द्वितीय स्थितिकी क्रमहीन संदृष्टि बरोबरि करनी - ऐसें कीएं ऐसी रचना हो है—



बहुरि अंतर निषेकनिका द्रव्य निक्षेपण कीया ताकी वा संक्रमण द्रव्यादिकी संदृष्टि यथा-संभव जानि लेनी। बहुरि अन्य क्रिया होइ द्वितीयोपशम सम्यक्त्वी हो है। अब चारित्रमोहका उपशम विधानविषै संदृष्टि कहिए है—

बहुरि नपुंसक वेदादिका सत्त्व द्रव्य इहांतैं लगाय यहु कथन तौ पाछैं लिखना। अर पुरुष वेदादिकका बंध द्रव्यकी रचना ऐसी— पृ० ५४३ (क) देखो

इहां नपुंसक वेदादि क्रमतैं उपशमाइए है—तिनकी रचनाकरि आगैं अवशेष कर्म लिखे। बहुरि तिनके निषेकनिको क्रम हीन संदृष्टिकरि बीचिमैं गुणश्रेणि आयामकी क्रम अधिकरूप संदृष्टि करी है। बहुरि इहां पुरुषवेदादिकका सत्त्व द्रव्यके आगैं बंध द्रव्यकी ऐसी △ संदृष्टि जाननी। इहां नीचैं आबाधा ऊपरि निषेकनिकी रचना जाननी। बहुरि मोहका द्रव्य ऐसा स। ਕ १२—तामें सर्वघाती द्रव्य किंचित् घट्या ताकौं न गिणि ताकौं कषाय नोकषायका
७
भाग दीएं दोयका भाग होइ। अर नोकषायविषैं वेद हास्यद्विक रतिद्विक भय जुगुप्साका भागके अर्थि पांचका भाग होइ। दोयकौं पांचकरि गुणैं दशका भाग होइ। ऐसैं वेदादिकका द्रव्य ऐसा—

वेद ३	हास्य २	रति २	भय १	जुगुप्सा १
ਕ। १२— ७। १०	स। ਕ। १२— ७। १०	स ਕ। १२— ७। १०	स। ਕ १२— ७। १०	स। ਕ।१२— ७। १०

बहुरि अंक संदृष्टि अपेक्षा तीनौं वेदनिविषैं तिनके द्रव्यकौं अठतालीसका भाग देइ बियालीस च्यारि दोयकरि क्रमतैं गुणैं नपुंसकवेद स्त्रीवेद पुरुषवेदका द्रव्य हो है। बहुरि हास्यद्विकके द्रव्यकौं तैसैं ही भाग देइ सोलह बत्तीसकरि गुणैं हास्य शोकका द्रव्य हो है। बहुरि रति द्विकके द्रव्यकौं तैसैं ही भाग देइ सोलह बत्तीसकरि गुणैं रति अरतिका द्रव्य हो है। इहां पुरुषवेदका काल अंतर्मुहूर्तमात्र है तातैं स्त्री अर हास्य अर अरति शोकका काल क्रमतैं संख्यातगुणा है अर नपुंसक वेदादिकका विशेष अधिक है। तिस अपेक्षा ऐसैं द्रव्य कह्या है। बहुरि मोहके द्रव्यकौं अनंत अर सतरहका भाग दीएं आठकरि गुणैं अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान कषाय आठका द्रव्य हो

है। इहां यहु सर्वघाती द्रव्य है। बहुरि मोहके द्रव्यकौं आठका भाग देइ च्यारिकरि गुणैं संज्वलन-कषायचतुष्कका द्रव्य हो है। इहां मोहका आधा द्रव्य जानना। ऐसैं इनकी संदृष्टि ऐसी—

नपुं	स्त्री	हास्य	रति	अरति	शोक
स∂१२–४२ ७ १० ४८	∂ १२–४ ७ १० ४८	स ∂ १२–१६ ७ १० ४८	स ∂ १२–१६ ७ १० ४८	स∂१२–३२ ७ १० ४८	स ∂ १२ ३२ ७ १० ४८

भय	जुगुप्सा	पुरुष	अष्टकाषाय	संज्वलनचतुष्क
स ∂ १२-- ७ १०	स ∂ १२— ७ १०	स ∂ १२–२ ७ १० ४८	स ∂ १२–८ ७ ख १७	स ब १२–४ ७ ८

इनिका ऐसा सत्त्व द्रव्य है। ताकौं अपकर्षणकरि गुणश्रेणि करे है। तहां अनुभागकांडक-
                                                                                                   ।
विषैं एक कर्मका द्रव्य ऐसा— स। ∂ १२। याकौं साधिक ड्योढ गुणहानि ऐसा (१२) ताका
                                                  ७
भाग दीएं प्रथम निषेकका द्रव्य ऐसा स ∂ १२— याकौं अनुभागसंबंधी अनंत प्रमाण लीएं गुण-
                                                          ।
                                                   ७। १२
हानि है सो इस साधिक ड्योढ गुणहानिका भाग दीएं प्रथम वर्गणाका द्रव्य ऐसा स। ∂। १२—
                                                                                                   ।
                                                                                         ७। १२। ख ३
                                                                                                       २
याकौं आधा अन्योन्याभ्यस्त राशिका भाग दीएं अंत गुणहानिका प्रथम वर्गगणाका द्रव्य ऐसा स ∂। १२— याकौं दो गुणहानिका भाग देइ एक अधिक गुणहानि आयामकरि गुणैं अंत गुण-
   ।   ।
७। १२। ख ३ अ
          २ २   १—
हानिकी अंत वर्गणाका द्रव्य ऐसा स। ∂। १२—गु। बहुरि ऐसें ही द्वितीयादि निषेकनिविषैं रचना
                                          । ।
                                  ७। १२। ख। ३। अ गु २
                                                   २ २
करनी। तहां प्रथम गुणहानिका प्रथम निषेकका द्रव्यकौं अपनी वर्गशालाकाकरि भाजित पल्य-प्रमाण अन्योन्याभ्यस्तराशि ताका आधा ऐसा प ताका भाग दीएं अंत गुणहानिका प्रथम
                                                                  व २
निषेकका द्रव्य ऐसा स। ∂ १२ — याकौं दो गुणहानिका भाग दीएं एक अधिक गुणहानिकरि
                                    ।
                              ७।१२ प
                                      व २   १—
गुणैं अंत निषेकका द्रव्य ऐसा स। ∂ १२ — गु याकौं अनुभागसंबंधी ड्योढ गुण-
                                                    ।
                                          ७। १२। प। गु २
                                                     व २

हानिका भाग दीएं प्रथम वर्गणाका द्रव्य ऐसा स । ꣸ । १२ —गु (१ᓀ) । । ७ । १२ । प गु । ख । ३ / व २ २ । इहां वर्ग शलाकाकरि भाजित पल्यकैं दोयका भागहार था ताकौं दो गुणहानिकैं दोयका गुणकार था ताकरि अपवर्तन कीया । इहां एक अधिकपना न गिणि गुणहानिका भी अपवर्तन कीएं ऐसा स । ꣸ । १२ — । । ७ । १२—प । ख ३ / व २ २

याकौं अनुभागसंबंधी आधा अन्योन्याभ्यस्त राशिका भाग दीएं अनुभागसंबंधी अनंत गुणहानिकी प्रथम वर्गणाका द्रव्य ऐसा— स । ꣸ । १२— । । ७ । १२ प ख । ३ । अ / व २ २ २ याकौं दोगुणहानिका भाग दीएं एक अधिक गुणहानिकरि गुणैं अंत निषेकको अंत गुणहानिकी अंत वर्गणाका द्रव्य ऐसा स । ꣸ । १२—गु (१—) । । । ७ । १२ । प । ख । ३ । अ । गु २ / व २ २ २

इहां भी पूर्ववत् अपवर्तन कीएं ऐसा स । ꣸ । १२ — । । ७ । १२ प ख ३ अ / व २ २ । ऐसे सर्व निषेकनिविषैं अनुभाग रचना जाननी । तहां एक गुणहानिविषैं स्पर्धकनिका प्रमाणकी संदृष्टि ऐसी (९) तांकौं नाना गुणहानिकरि गुणें सर्व अनुभाग ऐसा ९ । ना ताकौं अनंतका भाग दीएं बहुभागमात्र खंडकरि नष्ट कीया अनुभाग ऐसा १ᓀ / ९ ना ख / ख । अवशेष एक भागकौं अनंतका भाग दीए एक भागमात्र अतिस्थापन ऐसा ९ । ना । ख १ᓀ / ख । ख बहुभागमात्र निक्षेपरूप अनुभाग ऐसा—९ ना । ख ख १ᓀ १ᓀ / ख ख जानना ।

बहुरि अनिवृत्तिकरणविषैं स्थितिबंध क्रमतैं हो है । तिनकी संदृष्टि आदि अक्षरादिरूप सुगम है । बहुरि इहां इकईस प्रकृतिनिका अंतरकरण हो है । तहां संदृष्टि दर्शनमोहका अंतरवत् जाननी । विशेष है सो विशेष जानि लेना । बहुरि नपुंसकवेदका उपशमनविषैं नपुंसकका सत्त्व द्रव्य पूर्वोक्त प्रकार ऐसा स । ꣸ । १३—४२ / ७ । १० । ४८ । ताकौं गुणसंक्रमका असंख्यातवां भागका भाग दीएं

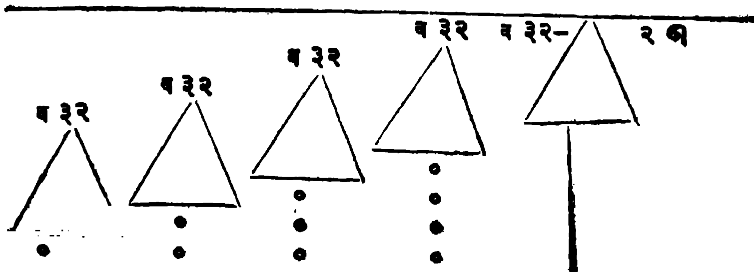
प्रथम फालि अर दोय आदि एक एक अधिकवार असंख्यातकरि भाजित गुणसंक्रमका भाग दीएं द्वितीयादि फालि होइ तिनको संदृष्टि ऐसी—

स । ə । १२ — ४२
७ । १० । ४८ । गु
ə

स । ə । १२ — ४२
७ । १० । ४८ । गु
əə

स । ə । १२ — ४२
७ । १० । ४८ । गु
əəə

बहुरि इहां अल्पबहुत्वविषैं पुरुषवेदका पूर्वोक्त प्रकार सत्त्व द्रव्य ऐसा स ə । १२—२ / ७ । १० । ४८ ताकौं अपकर्षण भागहारका असंख्यातवां भाग अर दोयवार पल्यका असंख्यातवां भाग दीएं उदयावलीविषैं दीया उदीरणा द्रव्य सो ऐसा स । ə । १२ — २ / ७ । १० । ४८ । उ । प । प (ə ə ə) । बहुरि तिसहीकौं अपकर्षण भागहारकै असंख्यातवां भागका अर पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएं गुणश्रेणि द्रव्य ताकौं पिच्यासीका भाग दीएं ताका प्रथम निषेकरूप उदय द्रव्य ऐसा—स । ə । १२ – २ / ७ । १० । ४८ । उ । प । ८५ (ə ə) सो तातैं असंख्यातगुणा हैं। बहुरि नपुंसक द्रव्यकौं गुणसंक्रमका भाग दीएं गुणसंक्रम द्रव्य ऐसा— स ə । १२ – ४२ / ७ । १० । ४८ । गु । सो तातैं असंख्यातगुणा है। बहुरि ताका उपशम द्रव्य ऐसा स ə १२ – ४२ / ७ । १० । ४८ । गु (ə) सो तातैं असंख्यातगुणा है। इहां भागहारका भागहार राशिका गुणकार होइ। इस अपेक्षा गुणसंक्रमका भागहार तिस राशिका गुणकार जानना। बहुरि जहां संख्यातगुणित हजार वर्षप्रमाण स्थिति हो है तहां संदृष्टि ऐसी व १ ० ० ० ११। याका संख्यात बहुभागमात्र स्थिति बंधापसरण ऐसा व १ ० ० ० ११ । ४/५ । इहां संख्यातकी सहनानी पांचका अंक है। ऐसें ही यथासम्भव अन्य संदृष्टि जाननी। बहुरि पूर्वं स्थिति बंधापसरण भएं बत्तीस वर्षमात्र स्थितिबंध प्रथमादि समयनिविषैं हो हैं। तिनकी संदृष्टि ऐसी—



इहां नीचैं एक दोय आदि व्यतीत भएं समयनिकी संदृष्टि विंदी लिखि ऊपरि बत्तीस वर्षमात्र स्थितिके निषेकनिकी क्रम हीन संदृष्टि करी। असैं अंतर्मुहूर्त काल गएं पीछैं अंतर्मुहूर्त घाटि बत्तीस वर्षमात्र स्थितिबंध हो है। ताकी अंतविषैं संदृष्टि करी है।

बहुरि अन्य विधान होइ पुरुषवेदके उपशम कालविषैं नवक समयप्रबद्ध एक घाटि दोय आवलीमात्र उपशमित नाहो तिनकी संदृष्टि असी—

	०
	० १
	० १ २
उच्छिष्टावली	० १ २ ३
	० १ २ ३ ४
	० १ २ ३ ४ ४
	० १ २ ३ ४ ४ ४
	० १ २ ३ ४ ४ ४ ४
उमशमना	१ २ ३ ४ ४ ४ ४
वली	२ ३ ४ ४ ४ ४
	३ ४ ४ ४ ४
	४ ४ ४ ४
बंधावली	४ ४ ४
	४ ४
	४

इहां समयप्रबद्धकी च्यारि उपशम फालि कल्पि च्यारिका अंककी संदृष्टि करी अर आवलीका प्रमाण च्यारि समय कल्पना कीएं तहां बंधावली विषैं प्रथमादि समयविषैं एक एक समयप्रबद्ध बंध्या ते तिनिविषैं क्रमतैं एक दोय तीन च्यारि समयप्रबद्ध अनुपशमरूप भए। बहुरि ता पीछैं उपशमनावलीका प्रथम समयविषैं जो बंधावलीका प्रथम समयविषै समयप्रबद्ध बंध्या था ताकी एक फालि उपशमाई तीन अवशेष रहीं। अर बंधावलीके द्वितीयादि समय विषैं बंधे तीन समयप्रबद्ध अर उपशमनावलीका प्रथम समयविषैं बंध्या एक समयप्रबद्ध संपूर्ण अनुपशमरूप रहे। बहुरि उपशमनावलीका द्वितीय समयविषैं बंधावलीका प्रथम समयविषैं बंध्या समयकी दूसरो फालि अर द्वितीय समय बंध्याकी प्रथम फालि उपशमाई तातैं तिनिकी दोय अर तीन फालि अनुपशमरूप रहीं अर बंधावलीका द्वितीय तृतीय समय विषैं बंधे अर उपशमनावलीका प्रथम द्वितीय समयविषैं बंधे संपूर्ण दोय समयप्रबद्ध अनुपशमरूप रहे। असैं ही क्रमतैं उपशमनावलीका अंत समयविषैं बंधावलीका प्रथम समयविषैं बंध्या समयप्रबद्ध सर्वं उपशम्या ताकी संदृष्टि विंदि लिखि ताके द्वितीयादि समयनिविषैं बंध समयप्रबद्धनिकी एक दोय तीन फालि अर उपशमनावलीके प्रथमादि समयनिविषैं बधे च्यारि समयप्रबद्ध तैं अनुपशमरूप रहे। ए नवीन समयप्रबद्ध हैं, तातैं फालिनिकौं भी समयप्रबद्ध कल्पैं एक घाटि दोय आवलीमात्र नवक समयप्रबद्ध अनुपशमरूप हैं। तिनिका उच्छिष्टावली मात्र सत्त्व रहैं पूर्वोक्त प्रकार एक एक फालिका उपशमन हो है। तहां प्रथम समयविषैं बंधावलीके द्वितीय समयविषैं बंध्या समयप्रबद्ध तो सर्वं उपशम्या, तृतीयादि समयनिविषैं बंधेकी एक दोय फालि अनुपशमरूप रही उपशमना-

वलीका प्रथम समयविषैं बंध्याकी एक फालि उपशमी, तातैं तीन फालि रहीं। ताहीके द्वितीयादि समयनिविषैं बंधे संपूर्ण समयप्रबद्ध अनुपशमरूप रहे। अैसै ही क्रमतैं एक घाटि दोय आवलीमात्र कालविषैं तिन सर्वनिके उपशमावै है। वहुरि इहां अपने अपने समयप्रबद्धकी फालि आदिकी रचना उपरि उपरि अपनी अपनी सूधिविषैं करी है। बहुरि पुरुषवेदके नवक समयप्रबद्धकी संदृष्टि ऐसी

स ३ । ४ । २ । (ऊपर १—, नीचे ७ । २) इहां समयप्रबद्धकौं सातका भाग दीएं मोहका बंध द्रव्य होइ, ताकौं कषाय नोकषाय भागके अर्थि दोयका भाग दीएं इहां अन्य नोकषायनिका बंध नाही है तातैं पुरुषवेदका बंध द्रव्य ऐसा स ३ १२— (नीचे ७ । २)। ताकौं दोय आवली एक समय घाटि ऐसा ४ २ (ऊपर १—) ताका गुणकार जानना। बहुरि इहां जाकी बंधावली व्यतीत भई ऐसा पुरुषवेदका एक समयप्रवद्ध ऐसा स ३ (नीचे ७ । २) ताकौं गुणसंक्रमणका भाग दीएं अपगत वेदका प्रथम समयविषैं उपशमन द्रव्य हो है। बहुरि एक दोय आदिवार असंख्यातकरि भाजित गुणसंक्रम ताहीकौ भाग दीएं द्वितीयादि समयनिविषै उपशम द्रव्य हो है। अंतविषैं एक घाटि आवलीकी संदृष्टि ऐसी ४ (ऊपर १ ०) सो इतनी वार असंख्यातकरि भाजित गुणसंक्रमणका भागहार जानना। ताकी संदृष्टि रचना ऐसी—

प्रथमफालि	द्वितीयफालि	तृतीयफालि	अंतफालि
स ३ / ७ । २ । गु	स । ३ / ७ । २ । गु / ३	स ३ / ७ । २ । गु / ३ ३	स ३ / ७ । २ । गु / १ ० / ३ ४

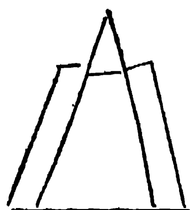
इहां क्रमहीन रूप निषेकनिको संदृष्टिकरि ताके वीचि एक फालिविषैं सर्व निषेकनिका केता इक द्रव्य उपशमाइए है, तातैं ऊभी लीककी संदृष्टि करी अर नीचैं फालिनिका द्रव्यकी संदृष्टि लिखी। बहुरि पुरुषवेदके नवक समयप्रवद्धनिविषैं एक एक समयप्रबद्ध ऐसा स ३ (नीचे ७ । २) याकौं अधःप्रवृत्त भागहारका भाग दीएं एक भागका अपगतवेदके प्रथम समयविषैं क्रोधरूप संक्रमण हो है। अवशेष बहुभागकौं ताहीका भाग दीएं एक भागका द्वितीय समय विषैं संक्रमण हो है। अवशेष बहुभागकौं ताहीका भाग दीएं एक भागका तृतीय समय विषैं संक्रमण हो है। ऐसैं समय घाटि दोय आवली पर्यंत अनुक्रम जानना। तिनकी संदृष्टि ऐसी—

नाम	प्रथम समय	द्वितीय समय	तृतीय समय
अवशेष बहुभाग- मात्र द्रव्य	१— स । ə । अ ७ । २ । अ	१⌓ १⌓ स । ə । अ अ ७ । २ । अ । अ	१⌓ १⌓ १⌓ स । ə । अ अ अ ७ । २ । अ । अ । अ
संक्रमणरूप भया द्रव्य	स । ə ७ । २ । अ	१⌓ स । ə । अ २ । २ । अ । अ	१⌓ १ स । ə । अ अ ७ । २ । अ । अ अ

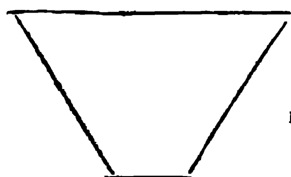
इहां अधःप्रवृत्तकी सहनानी अकार ताका भाग देइ बहुभागविषैं एक घाटि तिसहीका गुणकार जानना। बहुरि पुरुषवेद अर क्रोधकौं उपशमाइ मानकौं उपशमावै है तहां मानकी द्वितीय स्थितिका द्रव्य ऐसा स । ə । १२—इहां सर्व कर्मका सत्त्व द्रव्यकौं सातका भाग दीएं
७ । ८
मोहका होइ, ताकौं दोयका भाग दीएं कषायनिका होइ, ताकौं च्यारिका भाग दीएं मानका होइ। सो दोयकौं च्यारिकरि गुणैं इहां आठका भागहार मोहके द्रव्यकौं दीया है। याकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ एक भागकौं पल्यके असंख्यातवां भागका भाग देइ एक भाग प्रथम स्थिति-विषैं असंख्यातगुणा क्रमकरि देना। तहां ताकौं अंक संदृष्टिकरि पिच्यासीका भाग देइ एक आदिकरि गुणैं प्रथमादि निषेक हो हैं। बहुरि बहुभाग द्वितीय स्थितिविषैं हीन क्रमकरि देना।

।
तहां तिस द्रव्यकौं साधिक ड्योढ गुणहानि ऐसा १२ ताका भाग दीएं प्रथम निषेक, ताकौं दो गुणहानि ऐसा (१६) ताका भाग दीएं चय होइ। ताकौं दो गुणहानिकरि गुणैं प्रथम निषेक होइ। एक आदि घाटि दो गुणहानिकरि गुणैं द्वितीयादि निषेक होइ। ऐसैं क्रमतैं गुणहानि गुणहानि प्रति आधा आधा होइ। गुणहानिका प्रथम निषेककौं वर्गशलाकाकरि भाजित पल्यप्रमाण जो अन्योन्याभ्यस्तराशि ताका आधा ऐसा प ताका भाग दीएं अंत गुणहानिका प्रथम निषेक होइ।
व २

१⌓
तहां दो गुणहानिमात्र गुणकारविषैं एक घाटि गुणहान्यायाम ऐसा गु घटाएं अंत निषेककी संदृष्टि हो है। ऐसैं इनकी रचनाविषैं द्रव्य देनेकी अपेक्षा नीचें प्रथम स्थितिकी क्रम अधिकरूप संदृष्टिकरि ताके ऊपरि अंतरायामविषैं अभावरूप निषेकनिकी बिंदीकी संदृष्टिकरि ताके ऊपरि द्वितीय स्थितिकी क्रम हीन रूप संदृष्टि अर अंतविषैं अतिस्थापनावलीकी संदृष्टिकरि रचना जाननी। तिनिके आगैं आदि अंत निषेकविषैं दीए द्रव्यकी संदृष्टि जाननी—



१ ⌒　१ ⌒
स a १२– प १६– गु
a
७ ८ उ प १२ १६ प
a ०　व २
०
९ १ ⌒
स a १२– प १६
a



७ ८ उ प १२ १६
a
स a १२ – ६४
७ ८ व प ८५
० a
०
०
स a १२– ६४
७ ८ व प ८५
a

बहुरि ऐसैं ही माया वेदकविषैं मायाके द्रव्य देनेकी संदृष्टि जाननी, किछू विशेष नाही। बहुरि लोभवेदक काल संख्यात आवलीमात्र ऐसा २ ९। ताकौं संख्यातका भाग देइ बहुभागके तीन भागकरि तीन जायगा स्थापना। बहुरि अवशेष एक भागका संख्यात बहुभाग द्वितीय स्थानविषैं, एक भाग तृतीय स्थानविषैं मिलावना। तहां प्रथम स्थानरूप लोभवेदकका आधा काल है। दूसरा स्थानरूप कृष्टिकरण काल है। तीसरा स्थानरूप कृष्टिवेदककाल है। ते ऐसे संदृष्टिरूप जानने—

०	प्रथम	द्वितीय	तृतीय
बहुभाग	१⌒ २ । ९ । ९ ९ । ३	१⌒ स ९ । ९ ९ । ३	१⌒ २ ९ । ९ ९ । ३
विशेष	१⌒ २ । ९ । ९ ९ । ९	१⌒ स ९ । ९ ९ । ९ । ९	१⌒ २ ९ ९ । ९ । ९

१⌒
इहां प्रथम द्वितीय स्थानके मिलाए हुए बहुभाग ऐसैं २ ९ । ९ । इहाँ एक घाटि रूप
　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　९ । ३

ऋण ऐसा २ ९—२ जुदा राखि अवशेष विषैं संख्यातका अपवर्तन कीएं ऐसा २ ९ २। बहुरि
　　　　९ । ३　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　３

　　　　　　१⌒
दूसरा स्थानका विशेष धन ऐसा २ ९ । ९ इहां एक घाटिका ऋण ऐसा २ ९ जुदा राखि
　　　　　　९ । ९ । ९　　　　　　　　　　　　　९ । ९ । ९

अवशेषविषैं संख्यातका अपवर्तन कीएं ऐसा २ ७ । बहुरि प्रथम स्थान विषैं विशेष धन ऐसा—
७ ७
१०
२ ७ । ७ विषैं एक घाटिका ऋण ऐसा २ ७ सो एतावन्मात्र ही है। तातैं प्रथम स्थानका विशेष
७ ७।७
विषैं याकौं मिलाएं प्रथम स्थानका विशेष धन अैसा २ ७ भया। याकौं तीनकरि समच्छेद कीएं
७ ७
अैसा २ ७ । ३ या विषै प्रथम ऋण अैसा २ ७ । २ अर द्वितीय ऋण अैसा २ ७ घटाएं जो
७ । ७ । ३ ७ । ३ ७ । ७ । ७
अवशेष रह्या ताका अधिकका प्रथम द्वितीय बहुभाग अैसा—२ ७ । २ के उपरि अैसा (।)
। ३
संदृष्टि कीएं ऐसा २ ७ । २ । यामैं आवली मिलाएं बादरलोभकी प्रथम स्थितिका काल हो है।
३
१०
बहुरि इहां प्रथम स्थानविषैं बहुभाग ऐसा २ ७ । ७ । इहां ऋण ऐसा २ ७ । ७ जुदा कीएं अर
७ । ३ ७ । ३
१०
संख्यातका अपवर्तन कीएं ऐसा २ ७ । बहुरि तहां विशेष धन ऐसा २ ७ । ७ । इहां ऋण ऐसा
३ ७ । ७
२ ७ जुदा कीएं संख्यातका अपवर्तन कीएं ऐसा २ ७ याकौं तीनकरि समच्छेद कीएं ऐसा
७ । ७ ७ । ।
२ ७ । ३ याविषैं द्वितीय ऋणकरि अधिक प्रथम ऋण ऐसा २ ७ । ७ घटाएं ऐसा २ ७ । २—
७ । ३ । ७ । ३ ७ । ३
तिस वहुभागका घन ऐसा २ ७ विषैं अधिक कीएं वादर लोभ कालका प्रथम अर्ध साधिक लोभ
३
वेदक कालका तृतीय भागमात्र ऐसा २ ७ हो है। बहुरि कृष्टिकरण कालविषैं विधानकी संदृष्टि
३
कहिए है—

जघन्य स्पर्धककी प्रथम वर्गणाकी एक परमाणूविषैं अनुभागके प्रतिच्छेद जीवराशितैं अनंतगुणें ऐसे १६ । ख । तिनके समूहका नाम वर्ग है। ताकी संदृष्टि ऐसी (व)। बहुरि संज्वलन लोभका सत्त्व द्रव्य ऐसा स । ə । १२—। याकौं अनुभागसंबंधी गुणहानि अनंत गुणित अनंत
७ । ८
प्रमाण सो ऐसी (ख।ख)। साधिक ड्योढ गुणहानिका भाग दीएं प्रथम वर्गणा ऐसी स । ə । १२—
७ । ८ ख । ख । ३
२
याकौं दो गुणहानिका भाग दीएं विशेष ऐसा स । ə । १२— इस विशेषकरि वर्गकौं
७ । ८ । ख । ३ । ख । ख । २
२

गुणैं लघु संदृष्टि ऐसी (व वि) याकौं दो गुणहानिकरि गुणैं प्रथम वर्गणा ऐसी व वि ख ख २। इहां अंकसंदृष्टिकरि एक गुणहानिका प्रमाण आठ कल्पि दो गुणहानिका प्रमाण सोलह स्थापैं ऐसी व। वि। १६ संदृष्टि हो है। याकी लघु ऐसी (व)। यहु वर्गणाका आदि अक्षर रूप जाननी। बहुरि याकौं अनुभागसंबंधी साधिक ड्योढ गुणहानिकरि गुणैं लोभका सत्त्व

।

द्रव्य ऐसा व १२। याकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ एक भाग ग्रह्या सो ऐसा—

। ।

व १२। याकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएं बहुभाग ऐसा व १२। प जुदा
ओ ओ प

। a

स्थापि एक भाग ऐसा a १२। ताकौं इहां एक स्पर्धकविषैं वर्गणा शलाकाकी संदृष्टि ऐसी
ओ प

a

(४) ताकौं अनंतका भाग दीएं प्रथम समयविषैं कीनी कृष्टिनिका प्रमाणमात्र गच्छ ऐसा ४
१॒ ख

ताका अर एक घाटि गच्छका आधाकरि हीन दो गुणहानि ऐसा १६—४ ताका भाग दीएं
ख २

।

चय होइ। ताकौं दो गुणहानिकरि गुणैं प्रथम कृष्टिका द्रव्य ऐसा व १२ १६ याका
१॒
ओ। प। ४। १६-४
a ख ख २

अनुभाग पूर्व स्पर्धक वर्गकौं कृष्टिनिका प्रमाणमात्र वार अनंतका भाग दीएं हो है सो ऐसा—
व। बहुरि प्रथम कृष्टिविषैं एक चय घटावनेकौं दो गुणहानिका गुणकारविषैं एक घटाए द्वितीय
ख ४
ख ।

कृष्टिका द्रव्य ऐसा भया संदृष्टि व। १२। १६—१ १॒ याका अनुभाग तिस अनुभागतैं
ओ। प। ४। १६—४
a ख ख २

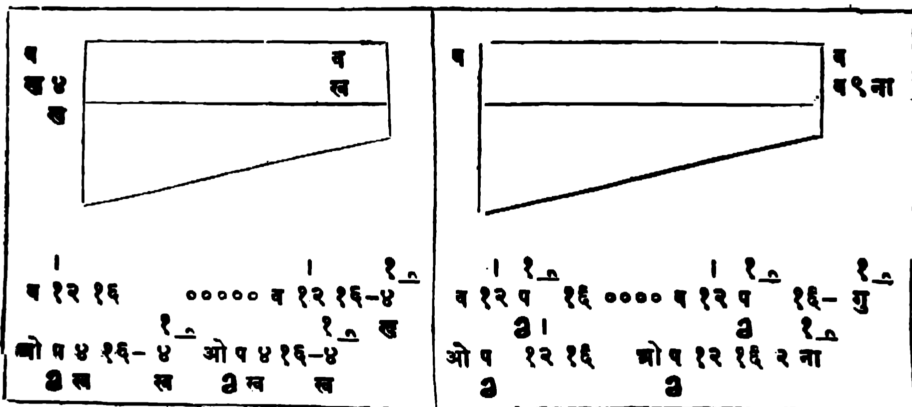
अनंतगुणा ऐसा व। ख १ ऐसैं ही क्रमतैं दो गुणहानिका गुणकारविषैं एक घाटि कृष्टिनिका
ख। ४

ख ।

प्रमाणकौं घटाएं अंत कृष्टिका द्रव्य ऐसा व। १२। १६—४ १॒ बहुरि प्रथम
ख
ओ। प। ४। १६—४
a ख ख २

कृष्टिका अनुभागकौं एक घाटि कृष्टि प्रमाणमात्र वार अनंतकरि गुणैं अंत कृष्टिकौं अनुभाग ऐसा–
१⌓
व । ख । ४ अपबर्तन कीएं वर्गणाके अनंतवै भागमात्र याका अनुभाग ऐसा व जानना । बहुरि जुदे
ख । ४ । ख ख
ख । १⌓
स्थापें बहुभाग ऐसा व । १२ । प साधिक ड्योढ़ गुणहानिनिका अर दो गुणहानिका भाग दीएं चय
ओ प ƨ
ƨ
होई ताकौं दो गुणहानिकरि गुणैं स्पर्धककी प्रथम वर्गणाविषै दीया द्रव्य ऐसा–
। १⌓
व । १२ । प १६ । बहुरि द्वितीयादि वर्गणाविषैं दो गुणहानिका गुणकारविषैं क्रमतैं एक एक घटाएं
। ƨ
ओ प । १२ १६
ƨ
अंतविषैं एक घाटि गुणहानिमात्र घटाएं प्रथम गुणहानिकी अंत वर्गणा होइ । बहुरि गुणहानि गुणहानि प्रति आधा आधा होइ । प्रथम गुणहानिके निषेकनिकौं एक घाटि नानागुणहानिका प्रमाणमात्र
१⌓
हूवा परस्पर गुणैं ऐसे (२ ना) तिनिका भाग दीएं अंत गुणहामिके प्रथमादि निषेक हो हैं ।
१⌓ १⌓
ऐसैं अंत वर्गणा ऐसी हो है व । १२ । प । १६ गु ऐसैं कृष्टिनिकी वा पूर्व स्पर्धकनिविषैं दीया
। ƨ १⌓
ओ।प।१२।१६।२।ना
ƨ

द्रव्यकी संदृष्टि ऐसी—



इहां ऐसा जानना—निषेक तौ ऊपरि ऊपरि समयविषैं उदय आवने योग्य हैं, तातैं निषेकनिकी तौ रचना वा ऊर्ध्वविषैं क्रमरूप कीजे थी अर इहां युगवत् उदय आवने योग्य एक निषेकके परमाणूनिविषैं अधिक हीन अनुभागकी रचना है, तातैं आडी रचना करी है। तहां ऊपरि तौ समपट्टिकाकी संदृष्टि करी है। नीचैं चय घटता क्रमकी क्रम हीनरूप संदृष्टि करी है। तहां कृष्टि वा वर्गणानिविषैं कृष्टिनिविषै आदि अंत कृष्टिनिके द्रव्यका अर स्पर्धकनिविषैं आदि अंत वर्गणानिविषैं दोया द्रव्यका प्रमाण लिख्या है। मध्यभेदनिके अर्थि बीचिमें बिंदी लिखी है। बहुरि कृष्टिकरण कालका द्वितीय समयविषैं अपकर्षण कीया हूवा द्रव्य प्रथम

।
समयवालेतैं असंख्यातगुणा ऐसा व । १२ । ə याकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ
ओ

। १ ‿
बहुभाग ऐसैं व । १२ । ə । प जुदे राखि अवशेष एक भागमात्र कृष्टि द्रव्य ऐसा—
ओ प ə

। ə
व । १२ ə ताके विभाग करिये है—
ओ प
ə

तहां प्रथम समयका कृष्टि द्रव्यविषैं एक विशेषका प्रमाण कह्या सो ऐसा—

।
व १२ १ ‿ । इहां इसहीकौं आदि उत्तर स्थापि एक घाटि प्रथम समयविषैं कीनी
ओ । प । ४ । १६—४
ə । ख ख २ १ ‿

कृष्टिनिका प्रमाण गच्छ ऐसा ४ स्थापि 'पदमेगेण विहीणं' इत्यादि सूत्रकरि गच्छतैं एक घटाइ
ख १ ‿ । १ ‿
दोयका भाग दीएं ऐसा ४ याकरि तिस विशेषकौं गुणैं ऐसा—व १२ । ४ यामैं आदिका
ख । २ ख २ १ ‿
ओ । प । ४ । १६—४
ə ख ख २

प्रमाण तिस विशेषमात्र ताके मिलावनेके अर्थि आगिला गुणकारविषैं दोयकरि भाजित दोय ऋण था ताका एक भया। अर इहां इस गुणकारविषैं एक ही मिलावना तातैं तिस

। । १ ‿
घाटिकौं दूर कीएं ऐसा व । १२ । ४ याकौं तिस गच्छकरि गुणैं ऐसा व १२ । ४ । ४
ख २ १ ‿ ख २ ख
ओ । प । ४ । १६—४ १
ə ख ख ओ । प । ४ । १६—४
ə ख ख २

चय धन भया सो यहु अधस्तन शीर्ष द्रव्य है। बहुरि प्रथम समयविषैं कीनी कृष्टिनिविषैं

।

आदि कृष्टिमात्र एक कृष्टि ऐसी व । १२ । १६ याकौं प्रथम समयविषैं कीनी कृष्टिनि

१ ०
ओ । प । ४ । १६ – ४
a ख २

का प्रमाणकौं असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहारका भाग दीएं द्वितीय समयविषै कीनी

।

कृष्टिनिका प्रमाण ऐसा ४ तार्कार गुणैं अधस्तन कृष्टि द्रव्य ऐसा व १२ । १६ । ४
ख । ओ । a ख ओ a
१ ०
ओ प । ४ । १६—४
a ख ख

।

बहुरि द्वितीय समय कृष्टिका द्रव्य ऐसा व । १२ a या विषै प्रथम समयका कृष्टिद्रव्य
ओ । प
a

।

ऐसा— व १२ मिलानेकौं आगिला असंख्यातकौं गुणकारविषैं एक अधिक कीएं
ओ प
a

१ ०
ऐसा— व । १२ । 8 याकौं प्रथम समयविषै कीनी कृष्टिनिका प्रमाणके
ओ । प
a

ऊपरि द्वितीय समयविषैं कीनी कृष्टिनिका प्रमाण मिलावनेके अर्थि अधिकको ऐसो—(।) संदृष्टि

। । १ ०
कीएं गच्छ ऐसा ४ ताका भाग दीएं मध्य धन ऐसा व । १२ । a । बहुरि याकौं एक घाटि गच्छका
ख ओ । प । ४
a ख

आधाकरि हीन दो गुणहानिका भाग दीएं उभय द्रव्यका एक विशेष ऐसा—

। १ ०
व । १२ । a । इसकौं आदि उत्तर स्थापि अर प्रथम द्वितीय समयकृत कृष्टिनिका
१ ०
ओ । प । ४ । १६–४
a ख ख २

प्रमाणमात्र गच्छ ऐसा ४ स्थापि 'पदमेगेण विहीणं' इत्यादि सूत्रकरि एक घाटि गच्छ दोयकरि भाजित ऐसो ४ याकरि तिस विषेषकौं गुणि इसविषैं विशेषमात्र आदि मिलावनेकौं अगिला गुणकार दोयकरि भाजित एक ऋण था तहां दोयकार भाजित दोय मिलाएं एक घाटिकी जायगा एक अधिक होइ। बहुरि याकौं तिस गच्छकरि गुणना। ऐसें कीएं उभय द्रव्यविषैं विशेष द्रव्य ऐसा—

| १० १० |
व । १२ । ∂ । ४ । ४ । बहुरि कृष्टिविषैं देने योग्य द्रव्य ऐसा था व । १२ । ∂ ताकौं आगैं
ख २ । ख ओ । प
१० ∂
ओ । प । ४ । १६–४
∂ । ख ख
१ =

पूर्वोक्त तीन द्रव्य घटावनेकी ऐसी ≡ संदृष्टि कीएं ऐसा—व । १२ । ∂ ≡ हो है। याकौं उभय
ओ प
∂

कृष्टिमात्र गच्छ ऐसा ४ ताका भाग दोएं एक खण्डका द्रव्य ऐसा हो है—

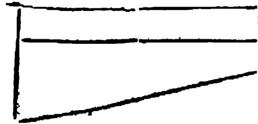
| ख
व । १२ । ∂ ≡ याकौं तिस गच्छहोकरि गुणें मध्यधन खंडका द्रव्य ऐसा हो है—
ओ प । ४
∂ ख

| |
व । १२ । ∂ ≡ । ४ । बहुरि इहां अधस्तन शीर्षादिकका द्रव्यविषैं गुणकार भागहारका यथासंभव
ओ । प । ४ ख
∂ ख

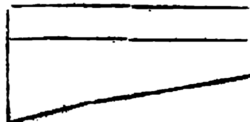
अपवर्तन कीएं ते च्यारयो द्रव्य ऐसे हो हैं—

अधस्तन शीर्ष	। व १२ ओ प। ख। ख। ४ a
उभय विशेष	। १— व। १२। a ओ। प। ख। ख। ४ a
अधस्तन कृष्टि	। व १२ ओ। प। ओ। a a
मध्यम खंड	। व १२ a ≡ ओ प a

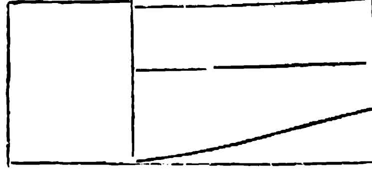
इहां अधस्तन शीर्ष द्रव्यविषै ऐसा $\frac{४}{ख}$ तौ गुणकार भागहारविषैं समान जानि अपवर्तन कीया अर भागहारविषै दो गुणहानि अंक संदृष्टि अपेक्षा ऐसा १६ लिख्या था तहां अर्थसंदृष्टि अपेक्षा ऐसा ख। ख २ करि गुणकारका ऐसा $\frac{४}{ख}$ याकौं दोयका भागहार था ताकरि गुणें ऐसा ख। ख। ४ भागहार भया। ऐसा गुणकार वा दो गुणहानिविषैं घटाया ऋण तिनकौं किंचित् जानि न गिणि अपवर्तन कीया है। ऐसैं ही यथासंभव औरनिविषैं अपवर्तन जानना। ऐसैं इनिकौं जानि जिन जिन कृष्टिनिविषैं जो जो द्रव्य दीया तिनकी संदृष्टि जाननी। तहाँ समपट्टिकाकौं चयसंयुक्त कीएं पूर्वकृष्टि क्रम हीन द्रव्य लीएं ऐसो—



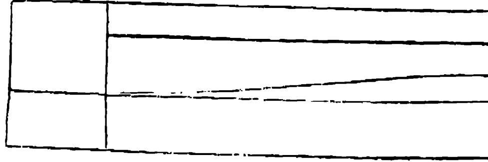
या[illegible]तनविषैं अधस्तन शीर्ष द्रव्य दोएं समान प्रमाण लीएं सर्व कृष्टिनिका प्रमाण समपट्टिकारूप ऐसा हो है—



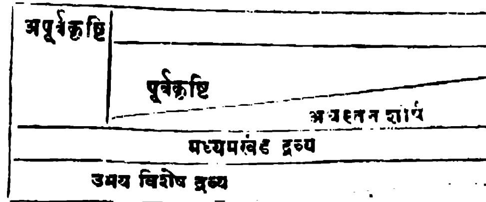
बहुरि याके नीचैं अधस्तन कृष्टि द्रव्यकरि नवीन करी कृष्टि याहीके समान प्रमाण लीएं स्थापें ऐसी कृष्टि हो है—



बहुरि कृष्टि द्रव्य करि न करी कृष्टि याविषैं मध्यम खंड द्रव्य मिलाएं समानरूप समपट्टिकारूप ऐसी—



याविषैं उभय द्रव्य विशेष मिलाएं एक एक विशेष घटता क्रम लीएं सर्व पूर्व अपूर्व कृष्टिनिका क्रम हीनरूप एक गोपुच्छाकार ऐसो रचना हो है—



इहां एक समय उदय आवने योग्य परमाणूनिकी अनुभाग अपेक्षा रचना है तातैं आडी लीककरि सहनानी करी है। तहां प्रथम कृष्टिविषैं एक अधस्तन कृष्टिका द्रव्य ऐसा—

। ।
व । १२ । १६ १० एक । मध्यम खंडका द्रव्य ऐसा व । १२ । ∂ ≡ । पूर्व अपूर्व कृष्टिका
ओ । प । ४ । १६—४ ओ प ४
∂ ख ख २ ∂ ख

। १०
प्रमाणकरि गुणित उभय द्रव्य विशेष ऐसैं व । १२ । ∂ ४ । इन तीन द्रव्यकौं दीजिए है। द्वितीयादि
ख १०
ओ । प । ४ । १६ —४
∂ ख ख २

कृष्टिनिविषैं एक एक उभय विशेष घटता द्रव्य नवीन करी कृष्टिनिका अंत पर्यंत दीजिए है। बहुरि पूर्व कृष्टिनिकी आदि कृष्टिविषैं एक मध्यम खंड अर पूर्व कृष्टि गुणित उभय विशेष द्रव्य दीजिए है। बहुरि द्वितीय कृष्टिविषैं एक अधस्तनशीर्ष विशेष ऐसा—

।
व । १२   १८ । एक मध्यम खंड एक घाटि पूर्व कृष्टिप्रमाण गुणित उभय द्रव्य
ओ । प । ४ । १६—४
ə ख   ख

। १० १०
विशेष ऐसैं—व । १२ । ə ४ दीजिए है। तृतीयादि कृष्टिनिविषैं एक एक अधस्तन शीर्ष
। ख १०
ओ । ष । १६—४
ə ख   ख २

बंधता एक एक उभय द्रव्यविशेष घटता दीजिए है। ऐसैं दीएं सर्व पूर्व अपूर्व कृष्टिनिका एक गोपुच्छ हो है। तहां प्रथम समयविषैं कीनो कृष्टिनिका द्रव्यविषैं अधस्तन शीर्षविशेषका द्रव्य अर अधस्तन कृष्टिका द्रव्य दोएं पूर्व अपूर्व कृष्टिनिका समपट्टिका द्रव्य पूर्व जघन्य कृष्टिकौं
।
पूर्व अपूर्व प्रमाणकरि गुणैं ऐसा व १२ । १६ । ४। बहुरि उभय द्रव्य विशेषका द्रव्य ऐसा—
ख १०
ओ । प । ४ । १६—४
ə ख   ख

। १— । १— ।
व । १२ । ə । ४ । ४ याविषैं असंख्यातका गुणकारकै ऊपरि जो अधिक था ताका
ख   ख
।   १०
ओ । प । ४ १६—४
ə ख । ख २

। १० ।
प्रमाण ऐसा व । १२ । ४ । ४ ग्रह्या सो यहु सर्व कृष्टि द्रव्य संबंधी चय धन भया। तहां एक
ख । ख १०
ओ प । ४ । १६—४
ə ख   ख । २

।
चयमात्र द्रव्य ऐसा व १२ याकौं पूर्व अपूर्व कृष्टिकरि गुणैं सर्व कृष्टिनिकी नीचली कृष्टि-
१०
ओ प । ४ । १६—४
ə ख   ख २

विषैं दीया द्रव्य ऐसा—व १२ ४ (ख १ ओ प ४ १६ — ४ / a ख ख) बहुरि द्वितीयादि कृष्टिनिविषैं एक एक चय घटता देइ अंतविषैं एक चयमात्र दीया द्रव्य ऐसा व १२ (ओ प । ४ । १६—४ / a । ख ख) ऐसैं प्रथम समयसंबंधी कृष्टि द्रव्यके उपरि अधस्तन शीर्ष द्रव्य अर अधस्तन कृष्टि द्रव्य अर उभय विशेष द्रव्य विषैं असंख्यातके ऊपरि एकका गुणकार था ताका द्रव्य ऐसैं तीन द्रव्य मिलावनेकौं तीन उभी लीक रूप ऐसी (।।।) संदृष्टि कीएं ऐसा भया व । १२ । १ । (ओ प / a) याकौं पूर्व अपूर्व कृष्टिमात्र अर एक घाटि गच्छका आधाकरि हीन दो गुणहानिका भाग दीएं चय ऐसा व । १२ । १ १ (ओ । प । ४ । १६—४ / a ख ख)

याकौं दो गुणहानिकरि गुणें प्रथम कृष्टिका द्रव्य भया अर इस गुणकारविषैं क्रमतैं एक एक घटाइ अंतविषैं एक घाटि गच्छमात्र घटाएं द्वितीयादि कृष्टिका द्रव्य है तहां रचना ऐसी—

अपूर्वकृष्टि द्रव्य	
	पूर्वकृष्टि द्रव्य
	अधस्तन शीर्ष
उभयविशेष द्रव्य	

प्रथमकृष्टि: व १२ १ । १६ (ओ प ४ १६ — ४ / a ख ख)

०००००

अन्तकृष्टि: व १२ १ १६ — ४ (ख / ओ प ४ १६ — ४ / a ख ख १)

इहां रचनाविषैं लीकनिकी संदृष्टि पूर्ववत् जाननी। इहां मध्यम खंड रचना नाही करी है अर उभय द्रव्यविशेष स्तोक है। नीचैं द्रव्यका प्रमाण लिख्या है। ऐसैं इहां एक गोपुच्छ भया। बहुरि मध्यम खंड द्रव्यका एक एक खंड समपट्टिकारूप स्थापना। बहुरि द्वितीय समयसंबंधी कृष्टि द्रव्यका विशेषका चय धनरूप द्रव्य सर्व उभय विशेषका द्रव्यविषैं असंख्यातका गुणकार उपरि एक अधिक था ताकौं जुदा कीएं ऐसा—

व । १२ । ३ । ४ । ४ (ऊपर: । , १ ।; नीचे: ख ख)

१
ओ । प । ४ १६—४
३ ख ख

इहां एक चयका द्रव्य ऐसा व । १२ । ३ १ । याकौं पूर्वापूर्व कृष्टि प्रमाणकरि गुणैं
ओ । प । ४ । १६—४
३ ख ख । २

प्रथम कृष्टिविषैं दीया द्रव्य अर एक एक चय घाटि क्रमकरि अंतविषैं एक चयमात्र दीया द्रव्य हो है। ऐसैं इहां द्वितीय समयसंबंधी कृष्टि द्रव्य ऐसा व । १२ । ३ ताविषैं अधस्तन
ओ प
३

शीर्ष द्रव्य अधस्तन कृष्टि द्रव्य अर उभय द्रव्यका असंख्यातका गुणकारके ऊपरि एक अधिक था ताका द्रव्य इन तीनोंके घटावनेके अर्थि आगें ऐसो ≡ संदृष्टि कीएं ऐसा—

व । १२ । ३ ≡ । याकौं पूर्वापूर्व कृष्टिमात्र गच्छका अर एक घाटि गच्छका आधाकरि हीन
ओ प
३

दो गुणहानिका भाग दीएं चय होइ ताकौं दोगुणहानिकरि गुणैं प्रथम कृष्टिका द्रव्य इस गुणकार-विषैं क्रमतैं एक एक घटाइ अंतविषैं एक घाटि गच्छमात्र घटावना तहां संदृष्टि ऐसी—

व १२ ३ ≡ १६ १ .... व १२ ३ ≡ १६—४ १ ख
ओ प ४ १६—४ ओ प ४ १६—४
३ ख ख २ ३ ख ख २

इहां मध्यम खंडकी समपट्टिकारूप अर नीचैं उभय विशेषकी क्रमहीनरूप संदृष्टि करी है ऐसें यहु गोपुच्छ भया। याकौं पूर्व गोपुच्छके ऊपरि स्थापैं क्रमहीनरूप सर्व कृष्टिनिका एक गोपुच्छ हो है। ताकी रचना ऐसी—

असंख्यात गुणकारका उभयविशेष द्रव्य
मध्यमखंड द्रव्य
पूर्वकृष्टि समपट्टिका द्रव्य
अधस्तनकृष्टि द्रव्य
पूर्वचय
अधस्तनशीर्ष
एक गुणकारका उभयविशेष द्रव्य

प्रथमकृष्टि   अंतकृष्टि

। १–   । १– १ ०
व १२ a १६ ० ० ० ० ० ० ० व १२ a १६– ४
। १ ०   ख
ओ प ४ १६– ४   १ ०
a ख ख २   ओ प ख १६– ४
a ख २

इहां पहली रचनाके उपरि पाछिली रचना लिखि क्रम हीनरूप एक गोपुच्छ कीया है। तहां द्वितीय समयसंबंधी कृष्टि द्रव्यका असंख्यातका गुणकारके ऊपरि पहिला समयसंबंधी द्रव्य मिलावनेकौं एक अधिककरि ताकौं पूर्वापूर्वकृष्टिमात्र गच्छका अर एक घाटि गच्छका आधाकरि हीन दो गुणहानिका भाग दीएं चय होइ। ताकौं दो गुणहानिकरि गुणैं प्रथम कृष्टिका अर इस गुणकारविषैं एक एक क्रमतैं घाटि होइ एक घाटि गच्छमात्र घाटि भएं अंत कृष्टिका द्रव्य हो है ताकी संदृष्टि नीचैं लिखी है। बहुरि ऐसैं ही कृष्टिकरण कालका तृतीयादि समयनिविषैं यथासंभव संदृष्टि जाननी। बहुरि अन्य क्रिया होइ अनिवृत्तिकरणका काल पूर्ण भएं सूक्ष्मसापरायका प्रथम समयविषैं कृष्टिनिका द्रव्य ऐसा—

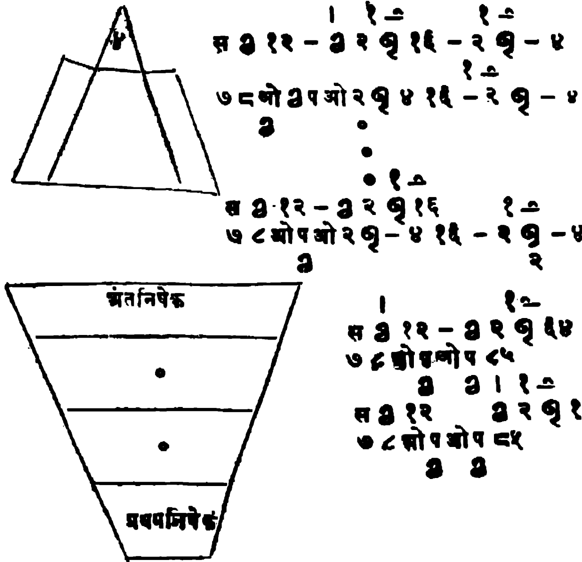
। १ ०
स a । १२ — a । २ ९ इहां लोभके द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका अर पल्यका असंख्यातवां
७ । ८ । ओ । प

भागका भाग दीएं कृष्टिकरण कालका प्रथम समयका द्रव्य होइ। ताकौं एक घाटि अंतर्मुहूर्तके समयमात्र वार असंख्यातकरि गुणें ताका अंतिम समयका द्रव्य हो है। ताविषैं पूर्व समयनिका द्रव्य मिलावनेकौं उपरि अधिककी संदृष्टि कीएं यहु संदृष्टि भई है। याकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ एक भागकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ एक भाग ऐसा—

। । १ ०
स । a । १२—a । २ ९ ताकौं प्रथम स्थितिविषैं असंख्यातगुणा क्रमकरि देना। तहां याकौं
७ । ८ । ओ । प । ओ । प
a a

पिच्यासीका भाग देइ एक च्यारि आदि करि गुणें प्रथमादि निषेक हो हैं। बहुरि बहुभाग ऐसें स।a।१२—a। २ ७।प याकौं द्वितीय स्थितिविषैं हीन क्रमकरि देना। तहां याकी ७।८।आ।प।ओ।प a a a

स्थिति अंतर्मुहूर्तमात्र तामैं अतिस्थापनावली घटाएं गच्छ ऐसा २ ७—४ सो तिस द्रव्यविषैं एक हीनकौं न गिणि पल्यके असंख्यातवां भागका अपवर्तनकरि ताकौं गच्छका अर एक घाटि गच्छका आधाकरि हीन दो गुणहानिका भाग दीएं चय होइ। ताकौं दो गुणहानिकरि गुणें प्रथम निषेक अर गुणकारविषैं क्रमतैं एक आदि घटाएं अंतविषैं एक घाटि गच्छमात्र घटाएं अन्य निषेकनिविषैं दीया द्रव्य हो है। तहां संदृष्टिविषैं नीचैं अधिक क्रम लीएं प्रथम स्थितिकी रचनाकरि ताके उपरि अंतरायामकी शून्यरूप संदृष्टिकरि ताके उपरि द्वितीय स्थितिकी वा तहां अंत स्थापनावलीकी संदृष्टि करी है। बहुरि आगैं प्रथम द्वितीय स्थितिके निषेकनिविषैं दीया द्रव्यकी संदृष्टि जाननी।



बहुरि कृष्टिकरणका प्रथम समयविषैं कीनी कृष्टिनिका प्रमाणविषैं अन्य समयनिविषैं कीनी कृष्टिनिका प्रमाण मिलावनके अर्थि उपरि अधिककी ऐसी (।) संदृष्टि कीएं सर्व कृष्टिनिका प्रमाण ऐसा ४ याकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भागका भाग दीएं बहुभाग ऐसा—

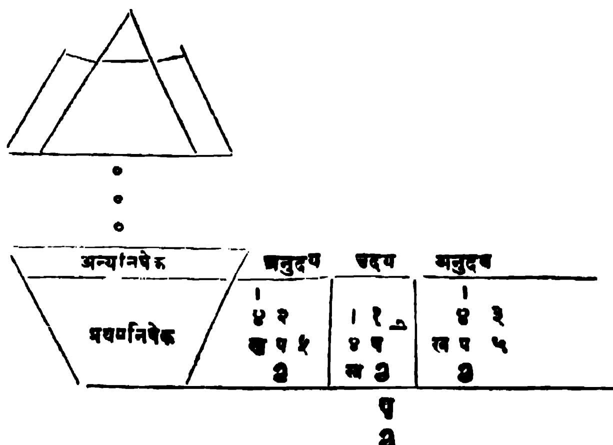
४ प उदयरूप कृष्टिनिका प्रमाण है। अवशेष एक भाग ऐसा ४ याकौं पल्यका असंख्यातवां

। १०
४ प
ख a
 प
 a

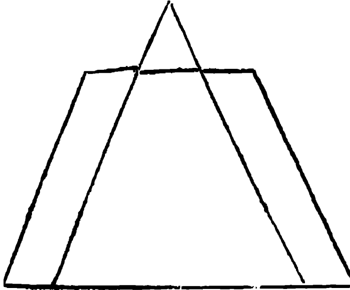
।
४
ख प
 a

१०
।
भागका भाग देइ बहुभाग ऐसे ४ प तिनिके आधे प्रमाण लोएं तौ कृष्टिकरण कालका अंत
a
ख प प
a a
समयविषैं कीनी जे आदिकी जघन्यादि कृष्टि ते अनुदयरूप हैं। बहुरि आधे ऐसे—
।१०   ।
४ प याविषैं रह्या एक भाग ऐसा ४ मिलावनेकौं अगिला गुणकारविषैं दोयकरि
a   ख प । प
ख प प २   a a
a a

।१०
भाजित एक घाटि था तहां दोयकरि भाजित एक अधिक कीएं ऐसा ४ प प्रमाण लोएं
a
ख प प २
a a
कृष्टिकरण कालका प्रथम समयविषैं कीनी अंतकी उत्कृष्टपर्यंत कृष्टितैं अनुदयरूप हो है। इहां पल्यका असंख्यातवां भागकौं सहनानी पांचका अंक कीएं जो एक भाग ऐसा—
।   ।
४ । था ताकौं पांचका भाग देइ बहुभागके आधे ऐसे ४ । २ अर इनविषैं एक अवशेष भाग
ख प   ख प । ५
a   a
।
मिलाएं ऐसैं हो है ४ । ३ ऐसैं सूक्ष्मसांपरायका प्रथम समयविषैं उदय अनुदय कृष्टिनिका प्रमाण
ख प । ५
a
जानना। इहां रचना ऐसी—



इहां प्रथम स्थिति अंतरायाम द्वितीय स्थितिका पूर्ववत् रचनाकरि प्रथम स्थितिका प्रथम समयसंबंधी निषेकनिकी कृष्टिनिविषैं आदिकी जघन्यादि अनुदय कृष्टिका अर उदय आवने योग्य वीचिकी कृष्टिनिका अर अंतकी उत्कृष्ट पर्यंत अनुदय कृष्टिनिका प्रमाण लिखा है। बहुरि सूक्ष्मसांपरायका द्वितीय समयविषैं पूर्वोक्त अंतकी अनुदय कृष्टिनिकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएं एक भागमात्र कृष्टि ऐसी ४ । ३ / ख । प । ५ । प (a a) नवीन अनुदयरूप हो हैं। ते ए कृष्टि प्रथम समयकी उदय कृष्टिनिविषैं अंतकी कृष्टि जासना। बहुरि पूर्वोक्त आदिकी अनुदय कृष्टिनिका पल्यका असंख्यातवां भागमात्र कृष्टि ऐसी ४ । २ / ख । प । ५ । प (a a) नवीन उदयरूप कृष्टि हो हैं। ते ए कृष्टि प्रथम समयकी अनुदय कृष्टिनिविषैं अंतकी कृष्टि जाननी। बहुरि इहां नवीन अनुदय कृष्टिनिविषैं नवीन उदय कृष्टिनिका प्रमाण घटाएं ऐसा ४ । १ / ख । प । ५ । प (a a) विशेषकरि घटता द्वितीय समयविषैं उदय कृष्टिनिका प्रमाण हो है। ऐसैं ही तृतीयादि समयनिविषैं विधाव जानना, तिनकी रचना कथन अनुसार ऐसी—



अंतसमय	अ	उ	अ
	अनु	उ	अनु
द्वितीयसमय	अनुदय	उदय	अनुदय
प्रथमसमय	अनुदय	उदय	अनुदय

इहां पूर्वोक्त प्रकार प्रथम स्थित्यादिककी संदृष्टिकरि तहां समय समय क्रमतैं आदिकी अनुदय कृष्टि घटती बीचिका उदय कृष्टि विशेष हीन अंतकी अनुदय कृष्टि बंधती अंतविषैं वा आदि विषैं भई तिनकी संदृष्टि करी है। तिनका प्रमाणकी संदृष्टि तहां यथा संभव लिखनी

१ ०
बहुरि सर्व कृष्टिनिका द्रव्य पूर्वोक्त प्रकार ऐसा स a । १२–a २ ९ याकौं पल्यका असंख्यातवां
७।८।ओ। प
a

भागका भाग दीएं प्रथम फालि, याकौं क्रमतैं असंख्यातकरि (गुणें) द्वितीयादि फालि होइ। द्विचरम फालि पर्यन्त सर्व फालिनिका द्रव्य घटाएं तिस सर्व द्रव्यकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएं तहां बहुभागमात्र अंत फालिका द्रव्य हो है। तिनकौं सूक्ष्मसांपरायका प्रथमादि समयविषैं उपशमावै है। तिनकी संदृष्टिरूप रचना ऐसी—

स । a । १२–a । १ २ ९ १ २ ९ प / ७ । ८ । ओ । प a प a	० ० ०	स । a । १२– । a । २ ९ । a १ २ ९ / ७ । ८ । ओ । प a प a	स । a । १२– a । २ ९ १ २ ९ प / ७ । ८ । ओ । प a प a

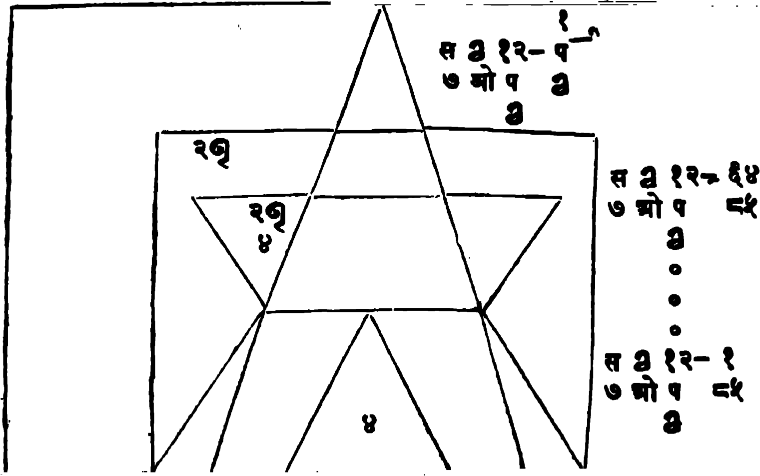
बहुरि उपशांतकषायका प्रथमादि समयनिविषैं उदयादि अवस्थिति गुणश्रेणि आयाम है। तहां प्रथम समयविषैं एक कर्मका द्रव्य ऐसा स a । १२–ताकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ
७

एक भागकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएं एक भाग ऐसा स । a । १२–ताकौं गुण-
७ । ओ । प
a

स्थान काल अंतर्मुहूर्त ताका असंख्यातवां भाग ऐसा २ ९ ताविषैं गुणश्रेणि विधानकरि द्रव्य
१ ०

देना। बहुरि बहुभाग ऐसे स । a । १२–प उपरितन स्थितिविषैं विशेष घटता क्रमकरि देने
७ । ८ । ओ प a
a

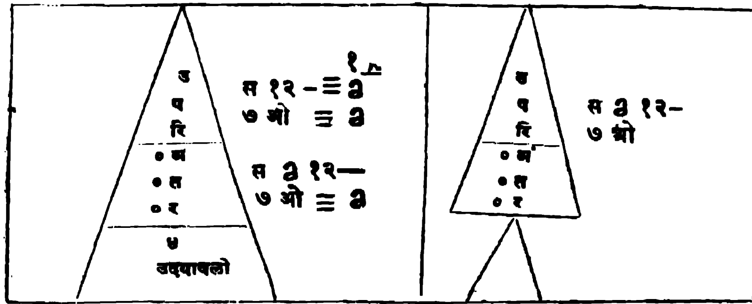
तहां संदृष्टि ऐसी—



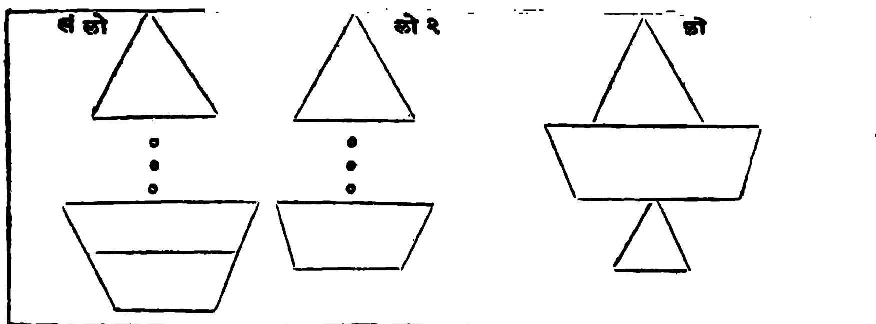
इहां पूर्वें उदयावली गुणाश्रेणि थी तिनकी संदृष्टि नीचैं क्रमहीनरूप उपरि क्रम अधिकरूप करि इहां भई, उदयादि गुणश्रेणिकी नीचैंहीतैं लगाय क्रम अधिकरूप संदृष्टि करी अर ताके उपरि उपरितन स्थितिकी संदृष्टि करी है अर तहां दीया द्रव्यको संदृष्टि आगैं करी है। बहुरि प्रथम समयविषैं कीनी गुणश्रेणिका अंत समयविषैं उत्कृष्ट प्रदेशोदय हो है। तहां प्रथम समय कृत गुणश्रेणिका अंत निषेक ऐसा स । ∂ । १२—६४ । द्वितीय समयकृत
७ । ओ । प । ८५
∂
गुणश्रेणिका द्विचरम निषेक ऐसा स । ∂ । १२–१६ । ऐसैं क्रमतैं मिलैं गुणश्रेणिमात्र द्रव्य ऐसा
७ । ओ । प ८५
∂
स । ∂ । १२—याविषैं इस समयसंबंधी गोपुच्छ द्रव्य ऐसा—
७ । ओ । प
∂
१
स । ∂ । १२—१ । १६—२ ९ साधिक कीएं इहां उत्कृष्ट प्रदेशोदय हो है। ऐसैं उपशमश्रेणी
∂ । ९ ओ ।१२ । १६ । ४
चढनेका विधान विषैं संदृष्टि कही। अव उतरनेका विधानविषैं संदृष्टि कहिए है—

तहां भव क्षयतैं उपशांत कषायतैं पड्या देव असंयमी होइ। ताके प्रथम समयविषैं उदयरूप मोह प्रकृतिनिके कर्मका द्रव्य ऐसा स । ∂ १२—ताका अपकर्षणकरि ताकौं असंख्यात
७
लोकका भाग देइ एक भागकौं उदयावलीविषैं देइ बहुभाग उदयावलीतैं वाह्य जो अंतरायाम अर द्वितीय स्थिति विषैं हीन क्रमकरि दीजिए हैं। बहुरि उदय रहित मोह प्रकृतिका द्रव्य ऐसा

स । ३ । १२—ताकौं अपकर्षण करि उदयावलीतैं वाह्य निषेक अर अंतरायाम अर द्वितीय
७
स्थितिविषैं पूर्वोक्त प्रकार हीन क्रमकरि दीजिए है । तहां संदृष्टि ऐसी—



इहां सर्वत्र हीन क्रमकरि द्रव्य दीया है । तातैं हीन क्रमरूप संदृष्टि करी । तहां उदयावली आदिका विभागके अर्थि वीचिमें लोककी संदृष्टि करी है। बहुरि अद्धाक्षय निमित्ततैं उपशांत कषायस्यों पडि सूक्ष्मसांपरायविषैं आवै तहां प्रथम समयविषैं उदयवान संज्वलव लोभका द्रव्यकौं अपकर्षणकरि ताका पल्यकौं असंख्यातवां भागका भाग देइ एक भागकौं उदयादि गुणश्रेणि आयामविषैं गुणकार क्रमकरि देइ ताके उपरि अंतरायामविषैं न देइ ताके उपरि तिनके बहुभागनिकौं द्वितीय स्थितिविषैं विशेष हीन क्रमकरि दीजिए है। बहुरि उदय रहित अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान लोभका द्रव्य अपकर्षण करि पूर्वोक्त प्रकार उदयावली बाह्य गुणश्रेणि आयामविषैं देना । अंतरायाम विषैं न देना । उपरितन स्थितिविषैं देना । बहुरि ज्ञानावरणादि छह कर्मनिका द्रव्य अपकर्षण करि उदयावलीविषैं हीन क्रमकरि गुणश्रेणि आयामविषैं गुणकार क्रमकरि उपरितन स्थितिविषैं हीन क्रमकरि देना । ताकी संदृष्टि रचना ऐसी—



इहां दीया द्रव्यकी संदृष्टि यथासंभव जानि लेनी। बहुरि सूक्ष्मसांपरायका प्रथम
।
समयविषैं सर्व कृष्टि ऐसी ४ ताकौं पल्यका असख्यातवां भागका भाग दीएं बहुभागमात्र
ख

। १ ꣲ
ऐसी ४ प उदयकृष्टि है। बहुरि एक भागकौं अंकसंदृष्टि अपेक्षा पांचका भाग देइ दोय
a
ख प

भागमात्र आदि कृष्टिविषैं अनुदयरूप है। तीन भागमात्र अंत कृष्टिविषैं अनुदयरूप हैं ते ऐसी—

।   ।
४ । २   ४ । ३ बहुरि द्वितीय समयविषैं आदि कृष्टिनिकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग
ख । प ।५ख । प । ५
a   a

दोएं एक भागमात्र उदय कृष्टिनिविषैं आदिकी नवीन कृष्टि अनुदयकृष्टिरूप हो है। बहुरि अंतकी अनुदय कृष्टिनिकौं तैसैं ही भाग दोएं एक भागमात्र अंतकी अनुदय कृष्टिनिविषैं नवीन

।
कृष्टि उदयरूप हो हैं। इहां पूर्व उदय कृष्टिनिविषैं घटी कृष्टि ऐसी ४ । २ अर बंधी कृष्टि
ख । प । ५ । प
a   a

।   ।
ऐसी ४ । ३ वंधीमैं घटाएं इतना ४ । १ इहां पूर्व उदयकृष्टितैं अधिक इहां उदय
ख । प । ५ । प   ख । प । ५ । प
a   a   a   a

कृष्टि जाननी। ऐसैं ही तृतीयादि समयनिविषैं क्रम जानना। तहां संदृष्टि रचना ऐसी—

आदिकी अनुदयकृष्टि	मध्यकी उदयकृष्टि	अन्तकी अनुदयकृष्टि

इहां आदि अनुदयकृष्टि अधिक क्रमरूप मध्य उदयकृष्टि विशेष अधिकरूप अंत अनुदय-कृष्टि हीन क्रमरूप जाननी। बहुरि अनिवृत्तिकरण लोभ वेदक कालादिविषैं गुणश्रेणि आदिकी सुगम संदृष्टि है। बहुरि क्रोधवेदक कालका प्रथम समयविषैं क्रोधका द्रव्य असा स a।१२ – ताकौ
७ । ८

अपकर्षण भागहारका भाग दीएं अैसा स a । १२ – याकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएं
। ७।८।ओ

एक भाग अैसा स । a। १२– उदयादि गुणश्रेणि आयामविषैं गुणकार क्रमकरि देना। तहां
७ । ८। ओ। प
a

याकौं अंक संदृष्टिकरि पिच्यासीका भाग देइ एक आदिकरि गुणैं प्रथमादि निषेक हो हैं। बहुरि बहुभागनिविषैं केता इक द्रव्य देइ अंतरायामकौं पूरे है। तहां क्रोध द्रव्यकौं साधिक ड्योढ गुण-हानिका भाग दीएं द्वितीयादि स्थितिके प्रथम निषेकका द्रव्य अैसा स। a। १२ – याकौं अंत-
।
७।८।१२

रायामका गच्छ अैसा २ ७ करि गुणैं समपट्टिकाधन अैसा स। a। १२ – । २ ७ । बहुरि
।
७।८। १२

तिस प्रथम निषेकका द्रव्यकौं दो गुणहानिका भाग दीएं चय होइ ताकौं दो गुणहानि कीएं तिसतैं नीचली गुणहानिका चय अैसा स। a। १२–२। याकौं एक अधिक गच्छकरि अर गच्छका
।
७।८। १२।१६

आधाकरि गुणैं उत्तर धन अैसा—

१ ᐞ
स। a। १२ – २। २ ७। १ ७ मिलावनेकौं समपट्टिका धन उपरि साधिककी संदृष्टि अैसी
। २
७।८।१२। १६
१३

(।) कीएं अंतरायामविषैं दीया द्रव्य अैसा स। a। १२ – २ ७ याकौं गच्छ अैसा २ ७
।
७।८।१२

ताका अर एक घाटि गच्छका आधाकरि न्यून दो गुणहानिका भाग दीएं चय होइ, ताकौं दो गुण-हानिकरि गुणैं प्रथम निषेक अर तिस गुणकारविषैं एक-एक क्रमतैं घटाइ अंतविषैं एक घाटि गच्छकौं घटाए अन्य निषेक हो है। बहुरि तिन बहुभागनिविषैं इतना द्रव्य घटावनेकौं आगैं अेसी (–) संदृष्टि कीएं अवशेष उपरितन स्थितिविषैं दीया द्रव्य अैसा–

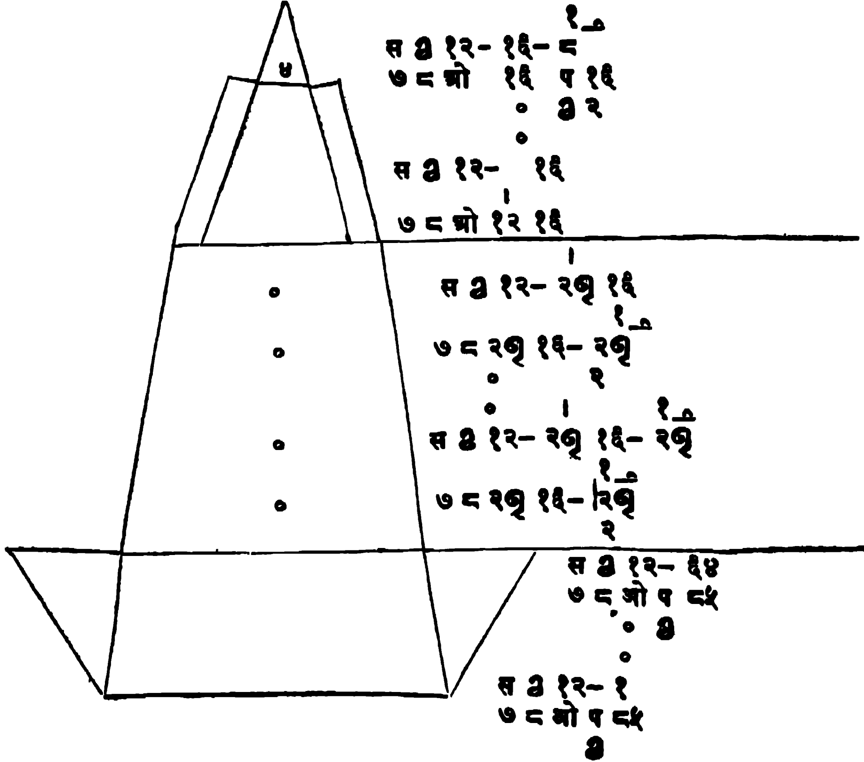
१ ᐞ
स। a। १२ – प – इहां गुणकारका हीनपनाकौं न गिणि पल्यका असंख्यातवां भागका अप-
७। ८। ओ। प a
a

वर्तन कीएं अैसा स। a। १२ – । याकौ साधिक ड्योढ गुणहानिका अर दो गुणहानिका भाग
७। ८। ओ

दीऐं चय होइ – १ ताकौं दो गुणहानिकरि गुणैं प्रथम गुणहानिका प्रथम निषेक अर याकौं आधा अन्योन्याभ्यस्तराशि ऐसा प का भाग दीए अर तिस दो गुणहानिका गुणकारविषैं एक
ə २

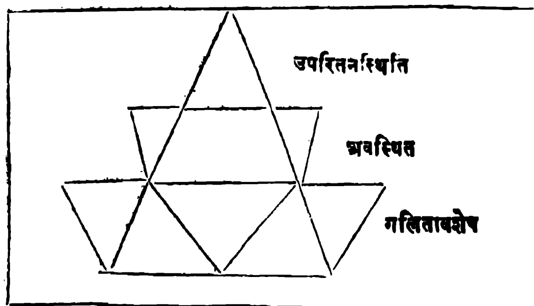
१ ᐤ

धाटि गुणहानि आयाम ऐसा– ८ घटाएं अंत निषेकका द्रव्य हो है। तहां संदृष्टि रचना ऐसी–



इहां नीचैं गुणश्रेणिके बीचि अंतरायामकी उपरितन स्थितिकी अंतविषैं अतिस्थापनावलीको संदृष्टिकरि आगैं दीए द्रव्यनिकी संदृष्टि करी है। बहुरि संज्वलन मानादिक तीनका द्रव्य ऐसा – स। ə। १२ – ३ / ७। ८ याविषैं अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यानका द्रव्य ऐसा– स। ə। १२ – ८ / ७। ख। १७

मिलावनेकौं साधिककी संदिृष्ट कीएं ऐसी स। ə। – १२ — ३ / ७। ८। याकौं अपकर्षणकरि उदयावली बाह्य गुणश्रेणी आयामविषैं अर अंतरायामविषैं अर उपरितन स्थितिविषैं ....ऐसी.............. विधान जानि संदृष्टि जाननी। बहुरि स्थिति बंधादिकी संदृष्टि सुगम है। तहां संख्यातकी सहनानी पांचका:अंक इत्यादि यथासंभव जानि लेना। बहुरि उतरनेवाले सूक्ष्मसांपरायका प्रथम समयविषैं प्रारभी गलितावशेष गुणश्रेणिका आयामतैं अधःकरणका प्रथम समयविषैं आरंभी अवस्थित गुणश्रेणि आयम संख्यातगुणी है। तहां संदृष्टि ऐसी—



इहां क्रम हीनरूप निषेकनिकी संदृष्टिकरि तहां स्तोक प्रमाण लीए गलितावशेष अर बहुत प्रमाण लिएं अवस्थित गुणश्रेणि आयामकी संदृष्टि अधिक क्रमरूप करी है। ऐसैं उपशम-श्रेणिके उतरनेका विधानकी संदृष्टि कही।

बहुरि उपशमश्रेणि चढनेवालोंके क्रमतैं नपुंसकवेद स्त्रीवेद सप्त नोकषाय तीन क्रोध तीन मान तीन माया तीन लोभ एक सूक्ष्मलोभका उपशमावना क्रमतैं हो है। विशेष इतना— नपुंसकवेद सहित चढनेवालेकैं स्त्रीवेदका उपशमन कालविषैं नपुंसकवेदका भी उपशमावना हो है। तहां क्रोध सहित श्रेणि चढ्याकैं क्रोध पर्यंतकी प्रथम स्थिति पहलैं होइ। उपरि माना-दिककी जुदी जुदी प्रथम स्थिति हो है। बहुरि मान माया लोभ सहित चढनेवालोंके क्रमतैं मान माया लोभ पर्यंतनिकी प्रथम स्थिति पहलैं होइ। उपरि अवशेषनिकी जुदी जुदी प्रथम स्थिति हो है। तहां प्रथम स्थितिविषैं अधिक क्रम लीएं द्रव्य दोजिए है। तातैं तिनकी अधिक क्रम लीएं ऐसी संदृष्टि रचना हो है—

न | स्त्री | पु | क्रोधोदय | मानोदय | मायोदय | लोभोदय

बहुरि उपशमश्रेणिका चढनो वा पडनोका कालका अल्पबहुत्वविषैं संदृष्टि पूर्वोक्त प्रकार वा एकबार आदि अधिककी उपरि एक दोय आदिवार उभी लीकनैं आदि दैकरि कथनके अणुसारि ऐसी संदृष्टि जाननी। पृष्ट ५७२ (क) में देखो

ऐसैं उपशम चारित्राधिकारविषैं संदृष्टि जाननी।

इति श्रीलब्धिसारटीका अनुसारि उपशमश्रेणिपर्यंन्त व्याख्यानकी संदृष्टि संपूर्ण भई।

अथ क्षपणासारका अनुसारि लीएं क्षपकश्रेणिका व्याख्यानरूप लब्धिसारके सूत्रनिका अर्थकी संदृष्टि लिखिए है—तहां अपूर्वकरणविषैं गुणश्रेणि गुणसंक्रमण स्थितिकांडक अनुभाग कांडककी संदृष्टि उपशमश्रेणिवत् इहां अर विशेष है तिनकी यथा संभव संदृष्टि जाननी। इहां सत्त्व द्रव्य विषैं गुणश्रेणि आदि वा बंध द्रव्यकी संदृष्टि अैसी—

पृष्ठ ५७३ (क) में देखो

इहां प्रकृति अष्ट आदि क्रमतैं जैसैं क्षपैं हैं तैसैं क्रमतैं तिनके सत्त्वरूप निषेकनिकी क्रम-हीन संदृष्टिकरि तिनविषैं नीच उदयावलीकौं हीन क्रमरूप बीचि गुणश्रेणि आयामकी अधिक क्रमरूप उपरि उपरितन स्थितिकी हीनक्रमरूप रचना जाननी। बहुरि पुरुषवेद अर क्रोधकी प्रथम स्थिति स्थापी ताकी जुदी हीन क्रमरूप संदृष्टि दिखाइए है। बहुरि इस रचनाके बीचि बीचि पुरुषवेद अर क्रोधादिकका बंध द्रव्यकी जुदी संदृष्टि अैसी △ दिखाई है। इहां नीचैं आबाधा उपरि निषेकिनिकी संदृष्टि जाननी। बहुरि ताके आगैं अवशेष कर्मनिकी क्रमहीन रूप सत्त्व निषेक रचनाविषैं नीचैं उदयावली बीचि गुणश्रेणि उपरि उपरितन स्थितिकी रचना जाननी। बहुरि ताके आगैं अवशेष कर्मनिका बंध द्रव्यकी संदृष्टि है। तहां नीचैं आबाधा ऊपरि निषेकनिकी रचना जानना। बहुरि अनिवृत्तिकरणविषैं स्थितिबंधापसरणादिककी संदृष्टि सुगम है। बहुरि अष्ट कषाय सोलह प्रकृतिकी क्षपणा अंश देशघातिकरण अंतरकरण विषैं संदृष्टि पूर्वोक्त प्रकार वा विशेष है। ताकी संभवती संदृष्टि जाननी। बहुरि नपुंसकवेदका संक्रमण कालविषैं पूर्वोक्त प्रकार नपुंसकवेदका सत्त्व द्रव्य अैसा स । a । १२—४२ / ७ । १० । ४८ ताकौं गुण-संक्रमका भाग दीएं पुरुषवेदविषैं संक्रमणरूप भया द्रव्यका प्रमाण हो है। अर पूर्वोक्त प्रकार पुरुषवेदका सत्त्व द्रव्य अैसा स । a । १२—२ / ७ । १० । ४८ ताकौं अपकर्षण भागहार अर पल्यका असंख्यातवां भाग अर अंक संदृष्टि अपेक्षा पिच्यासीका भाग दीएं गुणश्रेणिका प्रथम निषेक होइ। तिसविषैं पूर्व सत्त्व निषेक साधिक कीएं पुरुषवेदका उदय द्रव्य हो है। बहुरि समयप्रबद्ध अैसा स a ताकौं सातका भाग दीएं मोहका अर ताकौं दोयका भाग दीएं पुरुषवेदका बंध द्रव्य हो है। इनकी संदृष्टि अैसी—

संक्रमण नपुंसक द्रव्य	स । a । १२ — । ४२ ७ । १० । ४८ । गु
उदय पुंवेद द्रव्य	स । a । १२ — । २ ७ । १० । ४८ । ओ । प ८५ a
बंध पुंवेद द्रव्य	स । a ७ । २

बहुरि अश्वकरण विषै अंक संदृस्टिकरि जैसैं व्याख्यानविषैं कथन कीया तैसैं इहां अर्थ संदृष्टिकरि पूर्व अनुभाग सत्त्व एक गुणहानिसंबंधी स्पर्धक शलाका (९) कौं नानागुणहानिकरि गुनैं मानके स्पर्धक अैसे (९ । ना) याकौं अनंतका भाग देइ क्रयतैं एक दोय तीन अधिक अनंत करि गुणैं

१ २ ३
क्रोध माया लोभके अैसे ९ । ना ख । ९ ना ख । ९ ना । ख । बहुरि इहां क्रोधादिकका गुणकार
ख ख ख

उपरि एक दोय तीन अधिक थे तिनकौं जुदे कीए ते अैसे—

९ । ना । ९ ना २ । ९ ना ३ । मानकौ गुणकार विषैं अधिक है नाहीं तहां शून्य लिखनी ।
ख ख ख

बहुरि क्रोधका जुदा कीया अधिकका प्रमाण अर अधिक जुदेकरि अपवर्तन कीए क्रोधके
१ ≗

अैसे ९ । ना । स्पर्धकनिकौं अनन्तका भाग देइ बहुभाग अैसे ९ । ना । ख । इनिकौं मिलाए
ख

क्रोधकांडकको प्रमाण हो है । अवशेष एक भागमात्र अैसा ९ । ना अवशेष सत्त्व क्रोधका रहै
ख

है । बहुरि तिस क्रोधसंबंधी बहुभागनिका प्रमाण अर अवशेष एक भागका अनन्त बहुभाग
१

ऐसा ९ । ना । ख ख मिलाए मानकांडकका प्रमाण हो है । अवशेष एक भागमात्र ऐसा—
ख ख

९ । ना अवशेष सत्त्व रहै है । बहुरि जुदा कीया मायाके अधिकका प्रमाण अर क्रोधसम्बन्धी
ख ख

मानसम्बन्धी कहे थे बहुभाग तिनिका प्रमाण अर मानसम्बन्धी अवशेष सत्त्व एक भागमात्र
१ ≗

ताका अनन्त बहुभागनिका प्रमाण ऐसा ९ ना ख मिलाए मायाकांडकका प्रमाण. हो है
ख ख ख

अर अवशेष एक भाग ऐसा ९ । ना अवशेष सत्त्व रहै है । बहुरि जुदा कीया लोभका
ख ख ख

अधिकका प्रमाण अर क्रोध मान मायासम्बन्धी कहे थे बहुषाग तिनका प्रमाण अर तिस
१ ≗

मायाका अवशेष सत्त्व एक भागमात्र ताका अनन्त बहुभागनिका प्रमाण ऐसा ९ । ना । ख
ख । ख । ख । ख

इनि सबनिकौं मिलाए लोभ कांडकका प्रमाण हो है । अवशेष एक भागमात्र ऐसा ९ । ना
ख । ख । ख । ख

अवशेष सत्त्व रहै है । ऐसैं इहां उपरि जुदे कीए अधिकनिका प्रमाण लिखि नीचैं अन्य मिलाऐ तिनका प्रमाण लिखना । तिनकौ जोडै कांडकप्रकाण हो है ऐसैं समझना । बहुरि इस कांडकघात भए पीछैं अश्वकरणविषैं अनन्त गुणहानि लीए क्रोधादिकके स्पर्धक क्रमरूप हो हैं । तिनका प्रमाण नीचै ही नीचैं लिखना । ऐसैं कीए ऐसी संदृष्टि हो है—

क्रो	मा	या	लो
९ । ना । १ ख	० ०	९ । ना । २ ख	९ । ना । ३ ख
१ ∩ ९ । ना । ख ख	१ ∩ ९ । ना । ख ख	१ ∩ ९ । ना । ख ख	१ ∩ ९ । ना । ख ख
९ । ना ख	१ ∩ ९ । ना । ख ख ख	१ ∩ ९ । ना । ख ख ख	१ ∩ ९ । ना । ख ख ख
	९ । ना ख । ख	१ ∩ ९ । ना । ख ख । ख । ख	१ ∩ ९ । ना । ख ख । ख । ख
		९ । ना ख । ख । ख	१ ∩ ९ । ना । ख ख । ख । ख ख
			९ । ना ख । ख । ख । ख

बहुरि इस अपकर्षण सहित अपूर्व स्पर्धक क्रिया हो है। तहां एक परमाणूविषैं अविभाग प्रतिच्छेदका समूह वर्ग ताकी संदृष्टि ऐसी (व) । याकौं वर्गणा वर्गणा प्रति जो चय ताका नाम विशेष है ताकरि गुणैं ऐसा (व । वि) । बहुरि एक स्पर्धकविषैं जेती वर्गणा पाइए तिनका नाम वर्गणा शलाका है । ताकी संदृष्टि ऐसी (४) । बहुरि एक गुणहानिविषैं स्पर्धकनिका प्रमाण ताका नाम स्पर्धक शलाका ताकी संदृष्टि ऐसी (९) । इनि दोऊनिकौं परस्पर गुणैं गुणहानि आयाम होइ ताकी अंक संदृष्टि ऐसी (८) । याकौं दोयकरि गुणैं दो गुणहानिकी संदृष्टि ऐसी १६ । याकरि तिस विशेषकौं गुणैं प्रथम स्पर्धककी ऐसी व वि १६ । याकौं दूणा कीएं द्वितीय स्पर्धककी आदि वर्गणाकी ऐसी व वि १६ २ । बहुरि तिसहीकौं तिगुणा कीए तृतीय स्पर्धककी आदि वर्गणाकी संदृष्टि ऐसी व वि १६ ३ । ऐसैंही क्रमतैं प्रथम समय विषैं कीए अपूर्व स्पर्धकनिका प्रमाण स्पर्धक शलाकाकौं असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहारका भाग दीएं हो है सो ऐसा ९ याकरि गुणं अन्त स्पर्धककी आदि
ओ a
वर्गणाकी संदृष्टि ऐसी व त्रि । १६ । ९ हो है । ऐसैं हो जानि अन्य कथनकी संदृष्टि यथा संभव
ओ a
जानि लेनी। बहुरि क्रोधके अपूर्व स्पर्धकनिका प्रमाण पूर्वोक्त ऐसा ९ याकौं अनन्तका भाग देइ
ओ a
क्रमतैं एक दोय तीन अधिक करि गुणैं मान माया लोभके अपूर्व स्पर्धकनिका प्रमाण हो है, ते ऐसे

१– ९ । ख ओ a ख	२– ९ । ख ओ aख	३— ९ । ख ओ ख

बहुरि क्रोधकांडक अनन्तप्रमाण ऐसा (ख) यातैं एक दोय तीन अधिक मानादिकका कांडक

ऐसा १ । २ । ३ । बहुरि पूर्व स्पर्धककी आदि अर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदनिकौं अनन्तका भाग
ख । ख । ख
दीए अपूर्व स्पर्धककी अंत वगंणाके अविभागप्रतिच्छेद च्यारयों कषायनिके समान हैं। तिनकी संदृष्टि ऐसो व । याकौं अपने अपने अपूर्व स्पर्धकनिके प्रमाणका भाग दीए आदिवर्गणा हो है।
ख
याहीकौं जघन्य वर्गणा कहिए । बहुरि याकौं दोय तीन आदि क्रमतैं एक एक बंधता गुणकार करि गुणैं जहां अपने अपने कांडक प्रमाणका गुणकार होइ तहां च्यारयों कषायनिकी वर्गणानिके समान अविभागप्रतिच्छेद हो हैं। बहुरि ताके ऊपरि तैसैं ही एक एक बंधता गुणकाररूप क्रमतैं तिन समान वर्गणानिके अविभागप्रतिच्छेदनितैं दूणा प्रमाण भए समान वर्गणा हो है। ऐसैं ही तिनतै तिगुणा चौगुणा आदि एक घाटि अनन्तगुणा पर्यंत प्रमाण होइ । ताके उपरि अंत स्पर्धकविषैं पूर्वोक्त ऐसा व च्यारयो कषायनिकी आदि वर्गणानिविषै समान अविभागप्रतिच्छेद
ख
हो है। तिनकी संदृष्टि ऐसी—

क्रो	मा	माया	लो
व ख ० ०	व ख ० ०	व ख ० ०	व ख ० ०
१ ౧ ज ख । ख ० ०	१— १ ౧ ज । ख ख ० ०	२— १ ౧ ज । ख ख ० ०	३— १ ౧ ज ख ख ० c
ज । ख । २ ० ०	१— ज । ख २ ० ०	२— ज । ख २ ० ०	३— ज । ख २ ० ०
ज । ० ख ० व ख । ९ । ओ a	१— ज । ख ० व ० १— ख । ९ । ख ओ a ख	२— ज । ख ० व ० ख ९ ख ओ a ख	३— ज । ख ० व ० ३ — ख ९ ख ओ a ख

तहां मध्य भेदनिकी संदृष्टि विंदी जाननी ।

बहुरि प्रथम वर्गणाकौं अनुभागसंबंधी ड्योढ गुणहानिकरि मुणे मोहका सत्त्व द्रव्य
।
ऐसा व । १२ । याकौं आवलीका असंख्यातवां भागकी सहनानी नवका अंक ताका भाग देइ एक भाग जुदा राखि बहुभागनिके दोय भाग करने। तहां एक भागविषैं जुदा राख्या भाग
।
मिलाए साधिक आधा द्रव्य कषायनिका ऐसा व १२ । किंचिदून आधा द्रव्य नोकषायनिका ऐसा—
२

व । १२ — हो है । बहुरि कषायनिके द्रव्यविषैं साधिक चौथा भागमात्र लोभका द्रव्य है ।
२

किंचिदून चौथा भागमात्र मायाका तातैं किंचिदून क्रोधका ताते किंचिदून मानका द्रव्य है । इहां इस च्यारिका भागहारकौं पूर्व दोयका भागहार करि गुणैं आठका भागहार हो है । बहुरि क्रोधका द्रव्यविषैं नोकषायनिका द्रव्य समच्छेदकरि मिलाएं क्रोधका द्रव्य पांचगुणा हो है । तिनकी संदृष्टि ऐसी—लो माया मा क्रो बहुरि इहां लोभके द्रव्यकौं अपकर्षण

|

व १२ व १२ – व १२ = व १२ ≡ ५
८ ८ ८ ८
|

भागहारका भाग दीएं अपकृष्ट द्रव्य ऐसा व १२ । तहां लोभकी पूर्व स्पर्धककी वर्गणाकौं अपकर्षण
ओ

भागहारका भाग दीएं ऐसा व । ऐसैं ही दोय घाटि अपकर्षण भागमात्र पूर्व स्पर्धककी वर्गणानिका
ओ

अपकर्षण कीया द्रव्य ऐसा व ओ – २ । यामैं आदि वर्गणाका अपकृष्ट द्रव्य मिलावनेकौं दोय
ओ

घाटिकी जायगा एक घाटि कीएं ऐसा व । ओ – १ । इतना द्रव्य ग्रहि अपूर्व स्पर्धककी आदि
ओ

वर्गणा निपजाइए है । सो यहु पूर्व स्पर्धककी आदि पर्गणाके समान है । जातें तहां भी तिस वर्गणाकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ एक भाग ग्रहैं बहुभागमात्र द्रव्य अवशेष रहै है । सो इतना ही यहु है । बहुरि अपूर्व स्पर्धकनिका प्रमाण ऐसा ९ अर एक स्पर्घकविषैं वर्गणानिका
ओ । a

प्रमाण ऐसा [४] इनकौं परस्पर गुणैं सर्व अपूर्व स्वर्धकनिकी वर्गणाका प्रमाण ऐसा ९ । ४ भया ।
ओ । a

इहां स्पर्धक शलाकाकी सहनानी नवका अंक अर वर्गणा शलाकाकी च्यारिका अंक तिनकौं परस्पर गुणैं गुणहानि होइ, ताकी सहनानी आठका अंक कीएं ऐसी ८ संदृष्टि हो है। याकरि
ओ a

तिस आदि वर्गणाकौं गुणैं समपट्टिका धन ऐसा व ओ – १ । ८ हो है । बहुरि पूर्व स्पर्धककी
ओ । ओ । a

आदि वर्गणाकौं दो गुणहानिका भाग दीएं ताका चय होइ । तातैं दूना अपूर्व स्पर्धकनिकी वर्गणानिविषैं चयका प्रमाण है । तातैं तिस आदि वर्गणाकौं एक गुणहानिकी सहनानी आठका अंक ताका भाग दीए इहां चय ऐसा व । ओ – १ । याकौं आदि उत्तर स्थापि अपूर्व स्पर्धक वर्गणा
ओ । ८

प्रमाणकौं गच्छ स्थापि जोडैं जो चय धन भया ताकौं मिलावनेके अर्थि तिस समपट्टिका धनकी संदृष्टि उपरि साधिककी संदृष्टि कीएं ऐसा– व । ओ – १ । ८ । बहुरि याके गुणकार भागहारकौं
ओ । ओ । a

ड्योढकरि गुणें ऐसा व । १२ । ओ – १ द्रव्यतौ अपूर्व स्पर्धकनिहीविषैं दना बहुरि लोभका
ओ । ओ । a । ३
२
अपकर्षण कीया द्रव्य ऐसा व । १२ इहां मोहका सर्व द्रव्यकी अपेक्षा आठका भागहार था अर
८ । ओ
लोभहीकी वर्गणाकों ड्योढ गुणहानिकरि गुणैं लोभका द्रव्य होइ। ताकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीएं ऐसो व १२ संदृष्टि हो है। याविषैं पूर्वोक्त द्रव्य ऐसा व । १२ । ओ – १ घटावनेको
ओ ओ । ओ । a । ३
२
अैसा ओ । a । ३ करि समच्छेद कीए यहु अैसा व । १२ । ओ । a ३ भया । लहुरि याकैं अर
२ ओ । ओ । a ३ २
२
अर तिस घटावने योग्य द्रव्यकैं अन्य समान जानि अैसा ओ ओ । a । ३ गुणकारविषैं अैसा ओ – १ संदृष्टि कीए घटाए पोछै अवशेष द्रव्यकी संदृष्टि अैसी व । १२ । ओ । a । ३ ओ – १
ओ । ओ । a । ३ । २
२
संदृष्टि हो है। बहुरि अपूर्व स्पर्धक वर्गणा संबंधी एक शलाका अर याका भाग पूर्व स्पर्धक वर्गणा शलाककौं देना। तहां गुणहानिकी संदृष्टि आठका अंक ताकौं ड्योढकरि गुणैं पूर्व स्पर्धक वर्गणा शलाका अैसी ८ । ३ याकौं अपूर्व स्पर्धक वर्गणा शलाका अैसी ८ का भग दीए अैसा– ८ । ३
२ ओ a ।
८ । ३
ओ । a
इहां गुणहानिका अपवर्तन कोए अर भागहारका भागहार अैसा ओ ताकौं राशिका गुणा कोए
a
१—
अैसी ओ । a । ३ अपूर्व स्पर्धक संबंधी शलाका भई। यामैं अपूर्व स्पर्धक शलाका एक अधिक
२ १ –
कीए उभय शलाका अैसी ओ । a । ३ याका भाग तिस अपशेग द्रव्य कौं देइ
ओ । a २
३
२
अपनी अपनी शलाका करि गुणैं पूर्व स्पर्धक संबंधी द्रव्य अैसा—
व । १२ । ओ । a । ३–ओ–१ ओ a ३ याविषैं अैसा ओ । a । ३ का अपवर्तन कोएं अैसा
२ १– २ २
ओ । ओ । a । ३ । ओ । a । ३
२ २

व । १२ । ओ । a । ३ – ओ – १ हो है । बहुरि अपूर्व स्पर्धक संबंधी द्रव्य अैसा—
१– २
ओ । ओ । a । ३
२

व । १२ । ओ । a । ३ – ओ – १ याकौं पूर्वोक्त अपूर्व स्पर्धकविषैं देने योग्य द्रव्यविषैं मिलावना
२ १–
ओ । ओ । a । ३ । ओ । a । ३
२ २

सो पूर्व द्रव्य अैसा व । १२ । ओ—१ सो याविषैं गुणकाररूप अपकर्षण भागहारके आगैं एक घाटि
ओ । ओ । a । ३
२

था सो दूरिकरि भागहाररूप जो अपकर्षण भागहार था ताका गुणकार अैसा a । ३ विषैं एक
२

अधिक कीएं अैसा व । १२ । ओ । याविषैं मिलावने योग्य द्रव्यका साधिकपना जानना। बहुरि
१—
ओ । ओ । a । ३
२

याकौं अपूर्व स्पर्धक वर्गणा प्रमाण अैसा ८ ताका भाग देना तहां गुणकारविषैं ड्योढ गुणहानि
ओ a १५

अैसा १२ था ताका गुणहानि अैसा ८ का भागहारकरि अपवर्तन कीएं गुणकारविषैं ड्योढ रह्या अर भागहारका भागहार अैसा—ओ । a था ताकौं राशिका गुणकार करना। अैसैं कीएं मध्य धन अैसा व । ओ । ओ । a । ३ भया । याकौं एक घाटि गच्छका आधा प्रमाणकरि हीन दोगुण-
१— २
ओ । ओ । a । ३
२

हानिका भाग दीएं चय होइ सो अैसा— व । ओ । ओ a । ३ याकौं दोगुणहानि अैसा १६ करि
१— २ १
ओ । ओ । a । ३ । १६–८ओ । a । ३
२ २ १ =

गुणैं । प्रथम वर्गणाविषैं दीया द्रव्य होइ अर इस गुणकारविषैं क्रमतैं एक एक घाटि गच्छ अैसा ८
ओ a

अंत वर्गणाविषैं दीया द्रव्य हो है । अैसैं तौ अपूर्व स्पर्धक संबंधी दीया द्रव्यकी संदृष्टि हो है ।

बहुरि पूर्व स्पर्धक संबंधी दीया द्रव्य अैसा व । १२ । ओ । a । ३ – ओ – १ याकौं
१— २
ओ । ओ । a । ३
२

ड्योढ गुणहानि अैसा १२ का भाग देइ याहीका अपवर्तन कीएं आदि वर्गणाविषैं दीया द्रव्य हो है। बहुरि याकौं दोगुणहानिका भाग दीएं विशेष होइ ताकी लघु संदृष्टि अैसी (वि) ताकौं दोगुणहानिकरि गुणि तामैं एक एक घाटि प्रथम गुणहानि पर्यंत अर गुणहानि गुणहानि प्रति आधा आधा क्रम कीएं अंत वर्गणाविषैं दीया द्रव्यका प्रमाण विशेषकौं एक घाटि गुणहानिकरि हीन दोष गुणहानि करि गुणैं अर एक घाटि नाना गुणहानि प्रमाण दूवानिका भाग दीएं हो है। इनकी संदृष्टि अैसी—

पूर्वस्पर्धक १२	अपूर्वस्पर्धक ८/ख १ —

इहां नीचैं अपूर्व स्पर्धक ऊपरि अपूर्व स्पर्धककी रचनाकरि ताके आगे तिनकी वर्गणाविषैं दीया द्रव्यके प्रमाणकी सदृष्टि जाननी। अैसें तौ दीया द्रव्यकी संदृष्टि है। अर पूर्वस्पर्धककी वर्गणानिकौ अपकर्षण भागहारका भाग देइ तहां बहुभागमात्र पुरातन द्रव्य है सो अैसा— व। ओ — १ इस
ओ

पुरातन द्रव्य अर दीया द्रव्यकौं मिलाएं पूर्व अपूर्व स्पर्धकनिका चय घटता क्रम लीएं एक गोपुच्छ हो है अैसा जानना। बहुरि इहां क्षेत्र रचना करि इस अर्थकौं दिखाया है सो टीका विषैं लिखा ही है। तहां संदृष्टि सुगम है। बहुरि पूर्व स्पर्धक ड्योढ गुणहानिमात्र अैसे (१२) तिनकी नीचैं प्रथम समयविषैं कीएं अपूर्व स्पर्धक गुणहानिके असंख्यातवे भागमात्र अैसे ८ तिनके नीचैं तिनके असंख्यातवे
ख

भाग मात्र द्वितीय समयविषैं कीएं अपूर्व स्पर्धक अैसे ८ इनिकी रचना ऐसी—
खख

१२			१२			१२			१२	
८ a			८ a			८ a			८ a	
८ aa			८ aa			८ aa			८ aa	

इहां स्पर्धकनिकी रचनाकरि वीचिमैं पूर्व स्पर्धकादिकका विभाग करनेके अर्थि लीक करी है। असैं ही तृतीयादि समयनिविषैं नीचैं नीचैं असंख्यात गुणा घटता क्रम लीएं अपूर्व स्पर्धकनिकी रचना करनी। बहुरि प्रथम अनुभाग कांडक घात भएं अनुभागका अल्प बहुत्वविषैं क्रोध मान माया लोभके अपूर्व स्पर्धकनिका प्रमाणकी प्रथम समयविषैं कीएं अपूर्व स्पर्धकनिकी संदृष्टिके ऊपरि अन्य समयनिविषैं कीएं मिलावनेके अर्थि अधिककी संदृष्टि कीएं संदृष्टि हो है। अर एक गुणहानिविषैं स्पर्धक शलाकाकी अर एक स्पर्धक विषैं वर्गणा शलाकाकी तौ पूर्वोक्त संदृष्टि जाननी अर क्रोधादिकके अपूर्व स्पर्धकनिके आगैं वर्गणा शलाकाकी संदृष्टि कीए तिनकी वर्गणाकी संदृष्टि हो है। अर नानागुणहानि गुणित स्पर्धक शलाकाकौं क्रमतें च्यारि तीन दोय एकवार अनंतका भाग दीए लोभ माया मान क्रोधके पूर्व स्पर्धकनिका प्रमाण हो है। तिनकौं वर्गणा शलाकाकरि गुणें अपना अपना वर्गणानिका प्रमाण हो है। ऐसैं कहे तिनकी संदृष्टि ऐसी है—

क्रो अ पू	मा अ पू	या अ	लो अ	गु स्प	स्प व	क्रौ व	मा व	या व
। ९ ओ a	। १_ ९ ख ओ a ख	। २_ ९ ख ओ a ख	३_ ९ ख ओ a ख	९	४	९ ४ ओ a	१_ ९ ख ४ ओ a ख	। २_ ९ ख ४ ओ a ख
लो व	**लो पू**	**लो पू व**	**या पू**	**या पू व**	**मा पू**	**मा पू व**	**क्रो पू**	**क्रो पू व**
३_ ९ ख ४ ओ a ख	९ ना खख खख	९ ना ४ खख खख	९ ना ख ख ख	९ ना ४ ख ख ख	९ ना ख ख	९ ना ४ ख ख	९ ना ख	९ ना ४ ख

बहुरि इहां क्रोधादिकनिके पूर्वस्पर्धकनिका प्रमाणकौं अनंतका भाग दीए बहुभाग मात्र तौ द्वितीय कांडक करि घात कीजिए है। एक भागमात्र अवशेष रहै है। तिनकी संदृष्टि ऐसी—

नाम	क्रो	मा	या	लो
घात कीए स्पर्धक	१ ꣴ ९। ना। ख ख ख	१ ꣴ ९। ना। ख ख। ख। ख	१ ꣴ ९। ना। ख ख। ख। ख। ख	१ ꣴ ९। ना। ख ख। ख। ख। ख ख
अवशेष स्पर्धक	९। ना ख ख	९। ना ख। ख। ख	९। ना ख। ख। ख। ख	९। ना ख। ख। ख। ख ख

ऐसें ही तृतीयादि कांडकविषैं क्रम जानना। बहुरि तहां अनुभागकी यथासंभव संदृष्टि जाननी ऐसें अपूर्व स्पर्धक क्रिया विधानविषैं संदृष्टि कही। अब बादर कृष्टिकरण विधानविषैं संदृष्टि कहिए है—

तहां अंतर्मुहूर्तमात्र कालकौं संख्यातका भाग देइ बहुभागनिके तीन समान भागकरि अवशेष एक भागका संख्यात बहुभाग प्रथम समान भागविषैं मिलाएं अश्वकरण काल है। अवशेष एक भागका संख्यात बहुभाग द्वितीय समान भागविषैं मिलाएं कृष्टिकरण काल है। अवशेष एक भाग तृतीय समान भागविषैं मिलाएं कृष्टिवेदक काल है। तिनकी संदृष्टि रचना ऐसी—

नाम	अश्वकरण	कृष्टिकरण	कृष्टिवेदक
समभाग	१ ∩ २ । २ । २ २ । ३	१ ∩ २ । २ । २ २ । ३	१ ∩ २ । २ । २ २ । ३
देयभाग	१ ∩ २ । २ । २ २ । २	१ ∩ २ । २ । २ २ । २ । २	२ । २ २ । २ । २

बहुरि च्यारद्यो कषायनिकी बारह संदृष्टि हो हैं। तिनका अनुभाग जाननेकौं अंकसंदृष्टि अपेक्षा पूर्वैं टीकामें कथन किया है। बहुरि मोहका द्रव्य ऐसा व १२ याकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीएं अपकृष्ट द्रव्य ऐसा व १२ बहुरि वर्गणा शलाकाके अनंतवें भागमात्र प्रथम समयविषैं कीनी
ओ
कृष्टिनिका प्रमाण ऐसा ४ तहां इनकौं आठका भाग देइ एक भाग च्यारद्यो कषायनिका द्रव्य वा
ख
कृष्टिका प्रमाण हो है। तहां लोभविषै साधिक मायाविषैं किंचिदून तातैं भी क्रोधविषैं किंचिदून तातैं मानविषैं किंचिदूनपना जानना। बहुरि च्यारिभागमात्र नोकषाय संबंधी कृष्टि क्रोधविषै मिलाए तहां पांच भाग हो हैं। तिनको संदृष्टि ऐसी—

नाम	लोभ	माया	मान	क्रोध
द्रव्य	। व । १२ ८ । ओ	। व । १२ – ८ । ओ	। व । १२ । ≡ ८ । ओ	। व । १२ =५ ८ । ओ
कृष्टि	४ ख । ८	४ – ख । ८	४ ≡ ख । ८	४ =५ ख । ८

बहुरि अपना अपना द्रव्यका वा कृष्टि प्रमाणकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां बहुभागके तीन समान भाग करने। बहुरि अवशेष एक भागकौं पल्यका असंख्यातवां भागका

भाग देइ बहुभाग प्रथम समान भागविषैं मिलाए प्रथम संग्रहकृष्टिविषैं द्रव्यका वा कृष्टिका प्रमाण हो है अर अवशेष एक भागकौं तैसैं ही भाग देइ बहुभाग द्वितीय समान भागविषैं मिलाए द्वितीय संग्रहविषैं तिनिका प्रमाण हो है। अवशेष एक भाग तृतीय समान भागविषैं मिलाएं तृतीय संग्रहविषैं तिनका प्रमाण हो है। सो लोभका इस विधानकी ऐसी संदृष्टि हो है—

लोभका	प्रथम संग्रह	द्वितीय संग्रह	तृतीय संग्रह
समानभाग द्रव्य	। व । १२ । प– १ २४ ओ । a प a	। व । १२ । प– १ २४ । ओ a प a	। व । १२ । प– १ २४ । ओ a प a
देयभाग द्रव्य	। व । १२ । प– १ ८ । ओ । प a प a a	। व । १२ । प– १ ८ । ओ । प a प प a a a	। व । १२ ८ । ओ प । प । प a a a
समानभाग कृष्टि	४ । प– १ १— a ख २४ । प a	४ । प– १ ख । २४ । प a	४ । प– १ a ख । २४ प a
देयभाग कृष्टि	४ प– १ a ख । ८ । प । प a a	४ । प– १ ख । ८ । प । प । प a a a	४ ख । ८ । प । प । प a a a

इहां बहुभागनिविषैं आठका अर तीनका भागहारकौं गुणि चौईसका भागहार लिख्या है। ऐसैं ही अन्य कषायनिकी जाननी। बहुरि तहां किंचित् हीन अधिक न गिणि अपना अपना सर्व द्रव्यका वा सर्व कृष्टिका प्रमाणकौं तीनका भाग देइ आठका भाग आगे था ताकरि गुणैं चौईसका भाग हो है। तहां ग्यारह संग्रहविषैं तौ एक एक भागमात्र प्रमाण हो है। अर क्रोधकी तृतीय संग्रहविषैं नोकषाय संबंधी द्रव्यका संक्रमण भया है तातैं ताविषैं तेरह भागमात्र तिनिका प्रमाण हो है तिनकी संदृष्टि ऐसी—

नाम	लोभ			माया			मान			क्रोध		
संग्रह	प्र	द्वि	तृ	प्र	द्वि	तृ	प्र	द्वि	तृ	प्र	द्वि	तृ
द्रव्य	। व१२ २४ओ	। व१२ २४ओ	। व१२ २४ओ	। व१२– २४ओ	। व१२ २४ओ	। व१२– २४ओ	व१२ ≡ २४ओ	व१२ ≡ २४ओ	व१२ ≡ २४ओ	व१२ = २४ओ	व१२ = २४ओ	व१२=१३ १२ओ
कृष्टि	। ४ ख२४	। ४ ख२४	। ४ ख२४	। ४– ख२४	। ४– ख२४	। ४– ख२४	४≡ ख२४	४≡ ख२४	४≡ ख२४	४= ख२४	४= ख२४	४=१३ ख २४

बहुरि प्रथम समयविषैं अपकर्षण कीया द्रव्य ऐसा व । १२ / ओ ताकौं कृष्टि प्रमाणमात्र गच्छका अर एक घाटि गच्छका आधा प्रमाणकरि न्यून दोगुणहानिका भाग दीएं विशेष हो है । सो ऐसा —

व । १२ / (१० ओ।४।१६-४ / ख।ख २) याकौं दो गुणहानिकरि गुणैं प्रथम कृष्टिविषैं दोया द्रव्य होइ । बहुरि विशेष का जो दो गुणहानिका गुणकार ताविषें क्रमतैं एक एक घटाइ एक घाटि गच्छमात्र घटैं अंत कृष्टिविषैं दोया द्रव्य हो है । तिनकी संदृष्टि ऐसी--

प्रथम कृष्टि	मध्य कृष्टि	अंत कृष्टि
व । १२ । १६ / (१० ओ । ४ । १६-४ / ख ख २)	वि १६ – १०००००००००००	व । १२ । १६ – ४/ख (१) / (१० ओ । ४ । १६ – ४ / ख ख २)

बहुरि स्पर्धक संबंधी द्रव्यकौं ड्योढ गुणहानिका भाग दीएं प्रथम वर्गणाविषैं एक एक विशेष घटता द्वितीयादि वर्गणाविषैं बहुरि आधा आधा गुणहानिविषैं द्रव्य दीजिए है । ताकी संदृष्टि सुगम है । बहुरि कृष्टिकारकका द्वितीय समयविषैं प्रथम समयविषैं कीनी कृष्टिनिका प्रमाणकौं असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहारका भाग दीएं नवीन करी कृष्टिनिका प्रमाण हो है । अर प्रथम समयविषैं जो द्रव्यविषैं अपकर्षण भागहारका भाग था तहां अपकर्षण भागहारके असंख्यातवैं भागमात्र भागहारका भाग दीएं अपकर्षण कीया द्रव्य हो । तिनको संदृष्टि ऐसी—

नाम	लोभ			माया		
संग्रह	प्र	द्वि	तृ	प्र	द्वि	तृ
कृष्टि	। ४ ख २४ ओ a	। ४ ख २४ ओ a	। ४ ख २४ ओ a	। ४– ख २४ ओ a	। ४– ख २४ ओ a	। ४– ख २४ ओ a
द्रव्य	। व १२ ओ २४ a	। व १२ ओ २४ a	। व १२ ओ २४ a	। व १२– ओ २४ a	। व १२ ओ २४ a	। व १२– ओ a

नाम	माया			क्रोध		
संग्रह	प्र	द्वि	तृ	प्र	द्वि	तृ
कृष्टि	४≡ । ख २४ ओ a	४≡ । ख २४ ओ a	४≡ । ख २४ ओ a	४= । ख २४ ओ a	४= । ख २४ ओ a	४=१३ । ख २४ ओa
द्रव्य	व १२≡ ओ २४ a	व १२≡ ओ २४ a	व १२≡ ओ २४ a	व १२= ओ २४ a	व १२= ओ २४ a	व १२= १३ ओ २४ a

बहुरि द्वितीय समयविषैं अपकर्षण कीया द्रव्यविषैं अधस्तन शीर्ष अधस्तन कृष्टि उभय द्रव्य विशेष मध्यम खंडरूप च्यारि विभाग हो हैं। तहां प्रथम समय संबंधी पूर्वोक्त विशेष ऐसा है व १२ याकी आदि अक्षररूप ऐसी (वि) लघु संदृष्टिकरि याकों आदि उत्तर

१ ⌂
ओ । ४ । १६ – ४
ख ख २

१ ⌂
स्थापना अर एक घाटि लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिनिका प्रमाण ऐसा ४ ताकौं गच्छ
ख । २४

स्थापना। तहां एक घाटि गच्छका आधाकौं उत्तरकरि गुणि तामैं आदि मिलाय ताकौं गच्छकरि गुणैं लोभका प्रथम संग्रहविषैं अधस्तन शीर्ष द्रव्य हो है। बहुरि लोभकी प्रथम संग्रह [illegible] विशेष आदि स्थापि एक विशेष उत्तर स्थापि अपनी कृष्टिनिका प्रमाण गच्छ स्थापि पूर्वोक्त

विधान कीएं लोभका द्वितीय संग्रहविषैं अधस्तन शीर्ष द्रव्य हो है। ऐसैं ही क्रोधका तृतीय संग्रह पर्यन्त विधान जानना। विशेष इतना—जो आयतैं नीचैं जे कृष्टि पाइए तिनका प्रमाण विशेष आदि स्थापने। अन्य विधान पूर्ववत् जानना। तिनकी संदृष्टि ऐसी—

नाम	लोभ	माया	मान	क्रोध
तृतीय संग्रह	१⌓ ४ वि ४५ ख २४ ख २४ २	१⌓ ४ वि ४ ११ ख २४ ख २४ २	१⌓ ४ वि ४ १७ ख २४ ख २४ २	१⌓ ४ वि ४ ४ ५५ ख २४ ख २४ २
द्वितीय संग्रह	१⌓ ४ वि ४३ ख २४ ख २४ २	१⌓ ४ वि ४९ ख २४ ख २४ २	१⌓ ४ वि ४ १५ ख २४ ख २४ २	१⌓ ४ वि ४ २१ ख २४ ख २४ २
प्रथम संग्रह	१⌓ ४ वि ४१ ख २४ ख २४ २	१⌓ ४ वि ४७ ख २४ ख २४ २	१⌓ ४ वि ४ १३ ख २४ ख २४ २	१⌓ ४ वि ४ १९ ख २४ ख २४ २

इहां लोभका प्रथम संग्रहविषैं एक घाटि गच्छ ऐसा (१⌓ / ४ / ख। २४) ताकौं आधा कीएं ऐसा—(१⌓ / ४ / ख। २४। २) ताकौं उत्तर जो विशेष ताकरि गुणैं ऐसा (१⌓ / ४ वि / ख। २४। २)। यामैं एक विशेषमात्र आदि मिलावनेके अर्थि विशेषका गुण्यविषैं दोयकरि भाजित दोय घाटि थे तिनकौं दूरि कीएं ऐसा—(४। २। वि / ख। २४। २)। बहुरि याकौं गच्छ ऐसा (१⌓ / ४ / ख। २४) करि गुणना सो इस गुणकारकौं गुण्य कीएं संकलन धन ऐसा हो है (१⌓ / ४ वि। ४। / ख। २४। ख। २४। २)। बहुरि लोभका द्वितीय संग्रहविषैं एक घाटि गच्छका आधाकौं उत्तर जो विशेष ताकरि गुणैं ऐसा (१⌓ / ४। वि / ख। २४। २)। यामैं प्रथम संग्रहका गच्छमात्र विशेष ऐसा—(१⌓ / ४ वि / ख। २४)। मिलावना सो याकौं दोयकरि समच्छेद कीये यहु ऐसा—(१⌓ / ४ वि २ / ख। २४। २) भया। याकौं अरवाकौं अन्य सर्व समान जानि दोयका गुणकारविषैं एक गुणकाररूप वाकौं स्थापि मिलाएं ऐसा—(१⌓ / ४। वि। ३ / ख। २४। २)। याकौं गच्छ ऐसा—(१⌓ / ४ / ख। २४) करि गुणैं गुणकार गुण्यनिकौ आगैं पीछैं लिखें द्वितीय संग्रह-

१≏
विषैं संकलन धन ऐसा ४ । वि । ४ । ३ । बहुरि लोभका तृतीय संग्रह विषैं एक घाटि गच्छका
ख । २४ । २ । ख । २४ । २

१≏
आधा उत्तर करि गुणित ऐसा ४ । वि । याविषैं प्रथम द्वितीय संग्रहका गच्छमात्र विशेषरूप आदि
ख । २४ । २

१≏ १≏
मिलावना सो ऐसा ४ । २ याकौं दोय करि समच्छेद कीएं ऐसा ४ । ४ । याका च्यारिका
ख । २४ । २ ख । २४ । २
गुणकारविषैं वाका एक गुणकार मिलाएं तृतीय संग्रहविषैं संकलन धन ऐसा—
१≏
४ । वि । ४ । ५ याही प्रकार मायाकी प्रथमादि संग्रहनिविषैं विधान कीएं भाज्य राशिका
ख । २४ । ख । २४ । २
गुणकारविषैं दोय दोय अधिकका अनुक्रम हो है। बहुरि क्रोधकी तृतीय संग्रहविषैं गच्छ ऐसा—
४ । १३ । यामैं एक घटाइ ताका आधाकौं विशेष करि गुणैं ऐसा—
ख । २४
१≏
४ । १३ । वि । याविषैं पूर्वै ग्यारह संग्रह तातैं एक संग्रहका गच्छकौं ग्यारहकरि गुणैं अर ताकौं
ख । २४ । २

१≏
विशेषकरि गुणि तिनिका गच्छमात्र विशेष ऐसा ४ । ११ । वि । याकौं दोयकरि समच्छेद
ख । २४

१≏
कीएं ऐसा ४ । २२ । वि । इनिके मिलावनेकौं अन्य समान जानि तेरह अर बाईसका गुण-
ख । २४ । २

१≏ ।
कारकौं मिलाएं ऐसा ४ । ३५ । वि । बहुरि याकौं गच्छ ऐसा ४ । १३ करि गुणैं ऐसा—
१≏ ख । २४ । २ ख । २४
४ । ३५ । वि । ४ । १३ इहां पैंतीस अर तेरहघा गुणकारकौं परस्पर गुणैं क्रोधकी तृतीय संग्रह-
ख । २४ । २ । ख । २४

१≏
विषैं च्यारिसै पचावनका गुणकार हो है। सो ऐसा ४ । वि । ४ । ४५५ इहां गुण्य गुणकारादिविषैं
ख । २४ । ख । २८ । २
एक हीन वा अधिककौं न गिणि संदृष्टि स्थापी हैं। ऐसा जानना। बहुरि इस सबकौं मिलाएं
१≏
एक घाटि सर्व कृष्टिमात्र गच्छ ऐसा ४ ताका आधाकौं विशेषकरि गुणैं तामैं एक विशेष मिलाय
ख

गच्छकरि गुणें सर्व अधस्तन शीर्ष द्रव्य ऐसा वि । ४ । ४ इहां गुण्य गुणकार पीछैं आगैं लिखे हैं ।
ख । ख । २

बहुरि लोभकी प्रथम संग्रहकृष्टिका पूर्वोक्त प्रकार द्रव्य ऐसा व । १२ । १६ इहां भागहारविषैं
१
ओ । ४ । १६—४
ख । २४ । ख । २४ । २

दोगुणहानिका ऋणकौं न गिणि अपवर्तन कीएं ऐसा व याकौं अपनी अपनी द्वितीय समयविषैं
ओ ४
ख २४

कीनी नवीन कृष्टिनिका प्रमाणकरि गुणैं अपना अपना अधस्तन कृष्टि द्रव्य हो है। ताकी संदृष्टि ऐसी—

नाम	लोभ	माया	मान	क्रोध
तृतीय संग्रह	व १२ ४ ओ ४ ख २४ ओ ä ख २४	व १२ ४ ओ ४ ख २४ ओ ä ख २४	व १२ ४ ओ ४ ख २४ ओ ä ख २४	व १२ ४ १३ ओ ४ ख २४ ओ ä ख २४
द्वितीय संग्रह	व १२ ४ ओ ४ ख २४ ओ ä ख २४	व १२ ४ ओ ४ ख २४ ओ ä ख २४	व १२ ४ । ओ ४ ख २४ ओ ä ख २४	व १२ ओ ४ ख २४ ओ ä ख २४
प्रथम संग्रह	व १२ ४ ओ ४ ख २४ ओ ä ख २४	व १२ ४ ओ ४ ख २४ ओ ä ख २४	व १२ ४ ओ ४ ख २४ ओ ä ख २४	व १२ ४ ओ ४ ख २४ ओ ä ख २४

बहुरि तिसही लोभकी प्रथम कृष्टिकौं सर्व नवीन कृष्टिका प्रमाणकरि गुणें सर्व अधस्तन कृष्टि द्रव्य ऐसा व । १२ । ४ बहुरि प्रथम समयविषैं अपकर्षण कीया द्रव्य ऐसा व १२
ओ । ४ । ख । ओ । ä
ख । २४
ओ

यातैं असंख्यात गुणा द्वितीय समयविषैं द्रव्य अपकर्षण कीया सो ऐसा व । १२ । ä याका
ओ १—

असंख्यातका गुणकार ऊपरि एक अधिककी संदृष्टि कीएं उभय द्रव्य ऐसा व । १२ । ä ।
ओ

याकौं प्रथम समयविषैं कीनी कृष्टि ऐसी ४ याके ऊपरि द्वितीय समयविषैं कीनी कृष्टिनिका
ख ।

प्रमाण मिलावनेकौं अधिककी ऐसी (।) संदृष्टि कीएं उभयमात्र द्रव्य ऐसा ४ ताका अर
ख

एक घाटि गच्छका आधाकरि न्यून दोगुणहानिका भाग दीएं उभय द्रव्यका विशेष ऐसा

व । १२ । २ । याकी लघु संदृष्टि ऐसी (वि) याकौं आदि उत्तर स्थापना अर क्रोधकी तृतीय
| १०

ओ । ४ । १६–४
ख । ख २

संग्रहकी उभयद्रव्य कृष्टिमात्र गच्छ स्थापना तहां पूर्वोक्त प्रकार एक घाटि गच्छका आधाकौं विशेषकरि गुणि तामैं आदि मिलाय गच्छकरि गुणैं क्रोधकी तृतीय कृष्टिविषैं उभय द्रव्यविशेष द्रव्य हो है। बहुरि क्रोधकी तृतीय संग्रह कृष्टिमात्र विशेष आदि अर एक विशेष उत्तर अर एक घाटि अपनी उभय कृष्टिमात्र गच्छ स्थापैं संकलन धनमात्र क्रोधकी द्वितीय कृष्टिविषैं उभय द्रव्य विशेष द्रव्य हो है। ऐसैं ही लोभका प्रथम संग्रह पर्यन्त क्रम जानना। विशेष इतना—

अपनी-अपनी एक अधिक पहिली कृष्टिका प्रमाणमात्र विशेष आदि स्थापन करना तिनकी संदृष्टि ऐसी—

नाम	लोभ	माया	मान	क्रोध
तृतीय संग्रह	| वि ४ ४ ४३ ख २४ ख २४ २	| वि ४ ४ ३७ ख २४ ख २४ २	| वि ४ ४ ३१ ख २४ ख २४ २	| वि ४ ४ १६९ ख २४ ख २४ २
द्वितीय संग्रह	| वि ४ ४ ४५ ख २४ ख २४ २	| वि ४ ४ ३९ ख २४ ख २४ २	| वि ४ ४ ३३ ख २४ ख २४ २	| वि ४ ४ २७ ख २४ ख २४ २
प्रथम संग्रह	| वि ४ ४ ४७ ख २४ ख २४ २	| वि ४ ४ ४१ ख २४ ख २४ २	| वि ४ ४ ३५ ख २४ ख २४ २	| वि ४ ४ २९ ख २४ ख २४ २

इहां क्रोधकी तृतीय संग्रहविषैं गच्छ ऐसा–४ । १३ । यामैं एक घटाय ताका आधाकौं
ख । २४

१—०

|

उत्तर जो विशेष ताकरि गुणं ऐसा ४ । १३ वि । यामैं आदि एक विशेष मिलावनेकौं दोय करि
ख । २४ । २

|

भाजित एक होनकी जायगा एक अधिक चाहिए सो न गिणैं ऐसा ४ । १३ । वि । याकौं गच्छकरि
ख । २४ । २

|

गुणैं ऐसा ४ । १३ । वि । ४ । १३ इहां भाज्यविषैं तेरह तेरहके दोय गुणकारनिकौं परस्पर गुणैं
ख । २४ । २ । ख । २४

अर गुण्य गुणकारनिकौं आगैं पीछैं लिखैं क्रोधकी तृतीय संग्रह विषैं ऐसी ४ । ४ । १६९
ख । २४ । ख । २४ । २

।
बहुरि क्रोधकी द्वितीय संग्रहविषैं गच्छ ऐसा ४　　तामैं एक घटाइ ताका आधाकौं विशेषकरि
ख । २४

१ ⌂
गुणैं ऐसा ४ । वि । यामैं एक अधिक क्रोधकी तृतीय संग्रहका गच्छमात्र विशेष आदि मिलावना
ख । २४ । २

१ ⌂　　　　१ ⌂
सो ऐसा ४ । १३ । वि । याकौं दोयकरि समच्छेद कीएं ऐसा ४ । २६ । वि । बहुरि याकैं अर
ख । २४　　　　ख । २४

वाकैं एक अधिक होनकौं न गिणि अन्य समानता जानि याका छवीसका गुणकारविषैं एक गुण-
।
कार वाका मिलाएं क्रोधको द्वितीय संग्रहविषैं ऐसा वि । ४ । ४ । २७ । बहुरि क्रोधकी प्रथम
ख । २४ । ख २४ । २

१ ⌂
संग्रहविषैं एक घाटि गच्छका आधा विशेष करि गुणित ऐसा ४ । वि । याविषैं एक अधिक
ख । २४

१ ⌂
क्रोधकी प्रथम द्वितीयका मिलाया हुवा गच्छमात्र विशेष आदि सो ऐसा—४ । ४ याकौं दोयकरि
ख । २४

समच्छेदकरि पूर्वोक्त प्रकार मिलाएं संकलन धन ऐसा वि । ४ । ४ । २९ । ऐसैं ही विधान कीएं
ख । २४ । ख । २४ । २

मानकी प्रथम संग्रह आदि लोभकी तृतीय संग्रह पर्यन्त भाज्यराशिका गुणकारविषैं दोय दोय अधिकका क्रम हो है। बहुरि तिस विशेष प्रमाण आदि उत्तर स्थापि सर्व उभय कृष्टिमात्र गच्छ

१ ⌂
। ।
स्थापैं सर्व उभय द्रव्य ऐसा—वि । ४ । ४ । बहुरि अपना अपना द्वितीय समयविषै अपकर्षण
ख । ख

कीया द्रव्यका भागहार असंख्यात ताके आगैं पूर्वोक्त तीन द्रव्य घटावनेके अर्थि तीनबार किंचि-दूनकी ऐसी—(≡) संदृष्टि कीएं अर अपनी अपनी उभय कृष्टिका गुणकार ताहीका भागहार कीएं अपना अपना मध्य खंड द्रव्यकी संदृष्टि ऐसी हो है—

नाम	लोभ	माया	मान	क्रोध
तृतीय संग्रह	। व १२ ४ ओ ४ ख २४ a ≡ ख २४	। व १२ ४ ओ ४ ख २४ a ≡ ख २४	। व १२ ४ ओ४ ख २४ a ≡ ख १४	। व १२ ४ १३ ओ ४ ख २४ a ≡ ख २४
द्वितीय संग्रह	। व १२ ४ ओ ४ ख २४ a ≡ ख२४	। व १२ ४ ओ ४ ख २४ a ≡ ख २४	। व १२ ४ ओ ४ ख २४ a ≡ख २४	। व १२ ४ ओ ४ ख २४ a ≡ ख २४
प्रथम संग्रह	। व १२ ४ । ओ ४ ख २४ a ≡ ख २४	। व १२ ४ ओ ४ ख २४ a ≡ख २४	। व १२ ४ ओ ४ ख २४ a ≡ख २४	। व १२ ४ ओ ४ ख २४ a ≡ ख २४

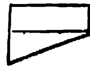
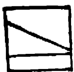
बहुरि अपकृष्ट द्रव्यविषैं तैसं ही संदृष्टि कोएं सर्व मध्यम खंड द्रव्यको ऐसी—

।
व १२ ४ हो है। बहुरि इस च्यारि प्रकार द्रव्य देनेका विधान जानि तहां यथा संभव संदृष्टि

।
ओ ४ ख
a ≡। ख

जाननी। बहुरि यहु दीया द्रव्य पूर्व कृष्टितैं अपूर्वकृष्टिविषैं असंख्यात भाग वृद्धि रूप दीजिए है। सो ऐसैं ग्यारह स्थान हैं। बहुरि अपूर्व कृष्टितैं पूर्व कृष्टिविषैं असंख्यात भाग हानि लीएं द्रव्य दीजिए है सो ऐसैं बारह स्थान हैं। अवशेष स्थाननिविषैं अनंतभाग हानि लीएं द्रव्य दीजिए है सो इनकी तेवीस ऊँट कूटनिके समान रचना हो हैं। सो यथा संभव जाननी। बहुरि इहां अपूर्व कृष्टिनिकी रचना ऐसी है—

पृ० नं० ५९१ (क) में देखो

इहां नीचैं लोभकी प्रथम कृष्टि ताविषैं नीचैं अपूर्व कृष्टिनिविषैं अधस्तन कृष्टि दीया ताकी संदृष्टि ऐसी (८) बहुरि तिनके ऊपरि पूर्वकृष्टि तिनविषैं समपट्टिकारूप द्रव्य विशेष सहित था ताकी संदृष्टि ऐसी  ताविषैं अधस्तन शीर्ष विषैं द्रव्य दीया ताकी संदृष्टि ऐसी  ऐसैं भएं पूर्व अपूर्व कृष्टिनिकी समपट्टिका भई ऐसैं हो लोभकी द्वितीयादि

क्रोधकी तृतीय पर्यन्त विधान जानने। बहुरि इन सबनिविषैं समानरूप मध्यम खंड द्रव्य दीया ताकी समलकीररूप सहनानी जाननी। बहुरि इन सबनिविषैं एक एक विशेष घटता उभय द्रव्य विषैं विशेष द्रव्य दीया था ताकी क्रमहीन लकीररूप सहनानी जाननी। ऐसैंही कृष्टि करण कालका तृतीयादि अंत समय पर्यन्त विधान जानना। बहुरि कृष्टि करण काल समाप्त भएं कृष्टि वेदक कालका प्रथम समयविषैं जो सर्व द्रव्य कृष्टिरूप परिनमि तिनि कृष्टिनिविषैं गोपुच्छाकार भया ताकी संदृष्टि कृष्टि कारक विधानविषैं कही थी तैसैं ऐसी जाननी—

नाम	लोभ	माया	मान	क्रोध
द्रव्य	। व १२ ७ । ८	। व १२ ७ । ८	व १२≡५ ७ । ८	व १२=५ ७ । ८

बहुरि सर्व द्रव्य ऐसा व १२ याकौं चौइसका भाग देइ अन्य संग्रह विषैं एक एक भाग क्रोधकी तृतीय संग्रह विषैं तेरह भागमात्र द्रव्य है। सो इहां कृष्टि कारक कालविषैं जाकौं तृतीय संग्रह कृष्टि कही थी ताकौं कृष्टि वेदक कालविषैं प्रथम कृष्टि कहनी अर जाकौं प्रथम कृष्टि कही थी ताकी तृतीय कृष्टि कहनी तातैं क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिका द्रव्य ऐसा–व । १२ । १३
२४

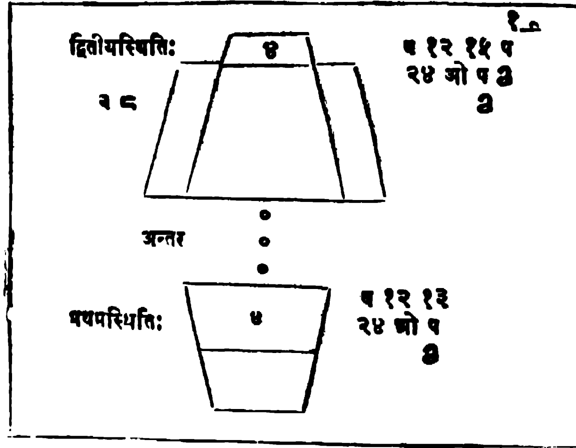
याकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीएं ऐसा व । १२ । १३ याकौं पल्यका असंख्यातवां भागका
२४ । ओ

भाग दीएं एक भाग मात्र द्रव्य तौ उच्छिष्ठावली अधिक वेदककाल मात्र प्रथम स्थिति विषै असंख्यात गुणां क्रमकरि देना। बहुरि बहुभाग मात्र द्रव्य ऐसा—

१ ‿
व १२ । १३ । प ताविषैं क्रोधकी द्वितीय तृतीय संग्रहका द्रव्य ऐसा व । १२ । २ मिलाएं तेरहकी
२४ । ओ । प a २४ । ओ
a

जायगा पन्द्रहका गुणकार भएं ऐसा व १२ । १५ । द्रव्य भया। ताकौं आठ वर्षमात्र द्वितीय
२४ । ओ । प
a

स्थितिविषैं अतिस्थापनावली छोडि विशेष घटता क्रमकरि देना ताकी संदृष्टि रचना ऐसी—



इहां प्रथम स्थितिकी बंधता क्रमरूप संदृष्टिकरि तिनिके वीचि उच्छिष्टावली वा अतिस्थापनावलीका विभागके अर्थि संदृष्टि करो है। आगैं दीया द्रव्यका प्रमाण लिख्या है। बहुरि कृष्टिकारकका प्रथम समयविषैं कीनी कृष्टिका प्रमाण ऐसा ४ ताविषैं अन्य
ख

समयनिविषैं कीनी कृष्टिनिकौं मिलावनेके अर्थि अधिककी संदृष्टि कीएं सर्व कृष्टिनिका
।

प्रमाण ऐसा ४ ताकौं चौवीसका भाग देइ तेरहकरि गुणैं क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टि ऐसी—
ख

। । १
४ । १३ याकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ बहुभाग ऐसैं ४ । १३ । प कृष्टि
ख । २४ a
ख । २४ । प
a

वेदकका प्रथम समयविषैं बंध उदय रूप जे वीचिकी उभय कृष्टि तिनका प्रमाण है। बहुरि एक भाग ऐसा ४ । १३ ताकौं अंक संदृष्टि अपेक्षा शलाकानिका जोड सोलहका अंक ताका
ख । २४ । प
a

भाग देइ दोय शलाकाकरि गुणें तो नीचैंकी बंध उदय रहित अनुभय कृष्टिनिका अर तीन शलाकानिकरि गुणैं तितके ऊपरि जे नीचेंकी उदय कृष्टि तिनिका च्यारि शलाकानिकरि गुणैं ऊपरिका अनुभय कृष्टिनिका सात शलाकानिकरि गुणैं तिनके नीचैं जे ऊपरिकी उदय कृष्टि तिनका प्रमाण है। तिनकी संदृष्टि ऐसी—

अनुभय	उदय	उभय	उदय	अनुभय
। ४ । १३ । २ ख । २४ । प । १६ a	। ४ । १३ । ३ ख । २४ । प । १६ a	१ ॒ ४ । १३ । प a ख । २४ । प । १६ a	। ४ । १३ । ७ ख । २४ । प । १६ a	। ४ । १३ । ४ ख । २४ । प । १६ a

इहां युगपत् उदय आवने योग्य एक निषेकविषैं ऐसा अनुभाग है। तातैं आडी रचना करी है। तहां नीचैंतै प्रथमादि कृष्टिनिकी क्रमतैं रचना जाननी। तिनविषैं अनुभय उदय उभय अनुभय कृष्टि क्रमतैं पाइए है तिनका प्रमाण लिख्या है। बहुरि द्वितीय समयविषैं निचली उदय कृष्टि थी सो तौ उदय रूप भई। अर निचली अनुभय कृष्टि थी ताकौं पल्यका

असंख्यातवां भागका भाग देइ एक भाग ऐसा
।
४ । १३ । २
ख । २४ । प । १६ । प
a a
। ताकौं अंक संदृष्टिकरि पाँचका भाग देइ तहाँ दोय भाग प्रमाण जघन्यादि कृष्टि तौ अनुभय रूप हो हैं। अर ताके उपरि तीन भाग प्रमाण कृष्टि उदय रूप हो हैं अर ताके उपरि बहुभागमात्र कृष्टि ऐसी

। १ ॒
४ । १३ । प
a
ख । २४ । प । १६ । प
a a

उभय रूप हो हैं। बहुरि जे उभय कृष्टि थीं तिनिविषैं पूर्वै जे उदय कृष्टि थीं तिनकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएं एकमात्र कृष्टि इहां उदयरूप अर अनुभ(द)य रूप भई ऐसी—

।
४ । १३ । ७
ख । २४ । प । १६ । प
a a

।
४ । १३ । ४
ख । २४ । प । १६ । प
a a

इनिकौं मिलाएं ऐसा

।
४ । १३ । ११
ख । २४ प । १६ । प
a a

याकौं पूर्वैं उभय कृष्टिनिका प्रमाण ऐसा

१ ॒
४ । १३ । प
ख । २४ । प a
a

तामैं घटावना सो अन्य भागहार समान जानि ऐसा १६ प (a) भागहारकरि समच्छेद कीएं ऐसा—

। १ ̄
४ । १३ । प । १६ । प
a a
ख । २४ । प । १६ । प
a a
१ ॒

। बहुरि याकैं अर तिस राशिकैं अन्य गुणकार भागहार समान जानि

आगला ऐसा प । १६ । प । गुणकार विषैं ग्यारह घटावनेकी संदृष्टि कीएं जे पूर्वें उभय
a a । १२

कृष्टि थीं तिनविषैं जे उभय कृष्टि होन रूप रहीं तिनिका प्रमाण ऐसा ४ । १३ । प १६प—११
a a
ख । २४ । प । १६ । प
। a a

हो है। बहुरि तिनके उपरि जे उदय रूप कृष्टि भईं ते ऐसी—४ । १३ । ७ बहुरि
ख । २४ । प । १६ प
। a a

तिनके उपरि जे अनुभय कृष्टि भईं ते ऐसी ४ । १३ । ४ बहुरि तिनके उपरि जे
ख । २४ प । १६ । प
a a

पूर्वें उदय कृष्टि थी ते अनुभय रूप भईं। बहुरि तिनके उपरि जे पूर्वें अनुभय कृष्टि थी ते अवु-भय रूप ही रही। तिनकी संदृष्टि पूर्ववत् जाननी। ऐसें द्वितीय समयविषैं अवस्था भई तिनकी रचना ऐसी—

पृ० (५९५ क) में देखो

इहां गुणश्रेणि रूप क्रम अधिक निषेकनिकी रचनाकरि तहां प्रथम निषेकविषैं अनुभयादि कृष्टिनिविषैं जघन्य मध्यम उत्कृष्टनिकी संदृष्टिकरि उपरि द्वितीय निषेकविषैं रही – वा भई अनुभयादि कृष्टिनिकी रचना क्रमतैं करी है। ऐसैं ही यथासंभव तृतीयादि समयनिविषैं रचना जाननी। बहुरि लोभकी तृतीय संग्रह आदि क्रोधकी प्रथम संग्रह पर्यन्त बारह कृष्टिनिविषैं द्व्यर्ध गुणहानि गुणित आदि वर्गणामात्र द्रव्य ऐसा (व १२) अर साधिक
।

वर्गणा शलाकाके अनन्तवै भागमात्र कृष्टिनिका प्रमाण ऐसा ४ इनिकौं चौवीसका भाग देइ
ख

अन्यत्र एक भागमात्र अर क्रोधकी प्रथम संग्रहविषैं तेरह भागमात्र द्रव्य वा कृष्टिनिका प्रमाण हो है। बहुरि सर्व द्रव्यकौं चौइसका अर अपकर्षण भागहारका भाग दीएं एक आय द्रव्य वा व्यय द्रव्य ऐसा व १२ हो है। ताकौं अपना-अपना आय द्रव्य व्यय द्रव्यका प्रमाणकरि गुणैं
२४ । ओ

आय द्रव्य वा व्यय द्रव्यका प्रमाण हो है। बहुरि जहां आय द्रव्य वा व्यय द्रव्य नाही तहां शून्यकी संदृष्टि जाननी। बहुरि अपना-अपना द्रव्यका वा कृष्टिका प्रमाणकौं अपकर्षण भागहारका असंख्यातवां भाग ऐसा ओ ताका भाग दीएं घात द्रव्य वा घात कृष्टिनिका प्रमाण हो है।
a

तिनकी संदृष्टि ऐसी—

पृ० नं० (५९५ क) में देखो

इहां आय द्रव्य वा व्यय द्रव्यका जोड ऐसा व । १२ । २२६ । तहां चौइसकरि दोयसै
ओ २४

छब्बीसका अपवर्तन कीएं साधिक नवका गुणकार हो है ऐसा जानना। बहुरि क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिनिविषैं आय द्रव्यका अभाव है तातैं याका तौ घात द्रव्य है अर अन्य संग्रहका आय द्रव्यतैं द्रव्य ग्रहि अधस्तनशीर्षविशेष आदि द्रव्य स्थापने। तहां कृष्टिकौं प्राप्त भया सर्व द्रव्य ऐसा (व। १२) ताकौं सर्व कृष्टिमात्र गच्छ ऐसा ४ ताका अर एक धाटि गच्छका आधाकरि न्यून दो गुणहानिका भाग दोएं पूर्व विशेष ऐसा व १२ याकी लघु

‌	‌
व १२	
।	१ ⁰
४ । १६—४	
ख । ख	२

संदृष्टि ऐसी (वि) बहुरि इहां गच्छका प्रमाण सर्व कृष्टिमात्र स्थापि जैसैं कृष्टिकारकका द्वितीय समयविषैं विधान कह्या है तैसैं अधस्तनशीर्षविशेषकी संदृष्टि हो है। विशेष इतना—

तहां ताकौं प्रथम संग्रह कृष्टि कही थी ताकौं इहां तृतीय संग्रह कहनी। तृतीय कही थी ताकौं प्रथम कहनी। बहुरि लोभकी तृतीय संग्रहकी जघन्य कृष्टि ऐसी। व। १२ इहां

।
४
ख

सर्व द्रव्यकौं सर्व कृष्टिके प्रमाणका भाग दीएं मध्यम धन होइ। ताविषैं विशेषका अधिकपना कीएं जघन्य कृष्टि भई है। बहुरि याकौं दोयवार असंख्यातकरि गुणित अपकर्षण भागहारका भाग दीएं एक मध्यम खंड ऐसा व। १२ याकौं अपनी अपनी संग्रहके कृष्टि

।
४ । ओ । a a
ख

का प्रमाणकरि गुणैं अपना अपना मध्यम खंड द्रव्य हो है। बहुरि लोभकी तृतीय संग्रहकी जघन्य कृष्टिविषैं एक मध्यम खंड मिलावनेकौं साधिककी संग्रह कृष्टि कीएं ऐसा व। १२

।
४
ख

बहुरि अपनी अपनी संग्रहके नीचे संक्रमण द्रव्यकरि करीं जे नवीन कृष्टि तिनिका प्रमाण अपनी पूर्व कृष्टिनिकौं असंख्यात गुणां अपकर्षण भागहारका भाग दीएं ऐसा ४ भागहारका गुण्य

ख । ओ । a

गुणकारनिकौं आगैं पीछैं लिखैं ऐसा ४ ताकरि तिस लोभकी जघन्य कृष्टि समान

ख । a । ख

द्रव्यकौं गुणैं अपना अपना संग्रहके नीचैं संक्रमण द्रव्यकरि भई नवीन कृष्टि संबंधी समान द्रव्य हो है। तहां क्रोधकी प्रथम कृष्टिविषैं यहु द्रव्य नाहीं संभवै है। तहां शून्य जाननी। बहुरि पूर्व

उत्तर द्रव्यकौं पुरातन नूतन कृष्टिमात्र गच्छका अर एक घाटि गच्छका आधाकरि न्यून दोगुण-हानिका भाग दीएं एक उभय द्रव्य विशेष होइ ताकी लघु संदृष्टि ऐसी (वि) स्थापि जैसे कृष्टिकारकका द्वितीय समयविषैं विधान कह्या था तैसैं इहां उभय द्रव्यविशेष कीएं संदृष्टि हो है। विशेष इहां मध्यम खंडवत् जानना। बहुरि एक मध्यम खंड सहित लोभकी तृतीय संग्रहकी

॥
जघन्य कृष्टिका द्रव्य ऐसा व १२ ताकी एक शलाका होइ तौ लोभकी तृतीय संग्रहका आय द्रव्य
४
ख

विषैं पूर्वोक्त च्यारि द्रव्य घटावनेकौं आगैं किंचिदूनकी संदृष्टि कीएं ऐसा व । १२ । २— सो
२४ ओ

इतने द्रव्यकी केतो शलाका होइ ? ऐसैं त्रैराशिक कीएं लब्धिराशि ऐसा व । १२ । २—इहां
२४ । ओ । व । १२
४
ख ।

किंचित् हीन अधिक न गिणि ऐसा व । १२ का अपवर्तन कीएं अर भागहारका भागहार ऐसा ४ ताकौं
ख ।

भाज्य कीएं अर राशिका गुणकार ऐसा २—ताकौं भागहारका भागहार कीएं ऐसा ४ । ओ
ख । २४ । २—

भया सो यहु लोभकी तृतीय संग्रहकी संक्रमणांतर कृष्टिनिका प्रमाण हो है। पूर्वं कृष्टि थीं तिनके वीचि वीचि इतनी नवीन कृष्टि संक्रमण द्रव्यकरि भई हैं। ऐसैं ही अवशेष दश संग्रह-विषैं विधान कीएं अन्य संदृष्टि तौ समान हो हैं। अर भागहारका भागहार अपना अपना एक आदि आय द्रव्यका प्रमाण किंचिदून हो है। अर क्रोधकी तृतीय संग्रहविषैं आय द्रव्यका अभाव है। तातैं तहां यहु विधान संभवै है। तहां शून्य जाननी। तिनकी संदृष्टि ऐसी—

।	।	।	।	।	।	।	।	।	।	।
४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ख२४ओ	ख२४ओ	ख२४ओ	ख२४ओ	ख२४ओ	ख२४ओ	ख२४ओ	ख२४ओ	ख२४ओ	ख२४ओ	ख२४ओ
२–	१–	३–	२–	१–	३–	२–	१–	१५–	१४–	१८२–

अपनी संग्रह कृष्टिनिके प्रमाणकौं भाग देइ ऐसा ४ का अपवर्तन कीएं अर भाग-
ख । २४

हारका भागहारकौं राशि कीएं संक्रमणांतर कृष्टिनिके वीचि जे अन्तर कृष्टि हैं तिनका प्रमाण
।
हो है। तहां लोभका प्रथम संग्रहविषैं पूर्व कृष्टि ऐसी ४ याकौं नवीन करी कृष्टि
ख । २४

। । ।
ऐसी ४ ताका भाग दीएं ऐसा ४ । इहां ऐसेका ४ अपवर्तन कीएं अर भाग-
ख । २४ । ओ ख । २४ । ४ ख । २४
२ ख । २४ । ओ २

हारका भागहार ऐसा ओ ताकौं राशि कीएं लोभकी तृतीय संग्रहविषैं नवीन कृष्टिनिके वीचि
२—
जे पूर्व कृष्टि हैं तिनका प्रमाण हो है। ऐसैं ही अन्य विषैं जानना तिनकी संदृष्टि ऐसी—

ओ	ओ	ओ	ओ	ओ	ओ	ओ	ओ	ओ	ओ	ओ
२—	१—	३—	२—	१—	३—	२—	२—	१५—	१४—	१८२—

बहुरि इहां जो पूर्व कृष्टिनिके वीचि नवीन भईं संक्रमणांतर कृष्टि तिनिका प्रमाण कह्या ताका भाग अपने अपने किंचिदून आय द्रव्यकौं दीएं एक नवीन कृष्टिका द्रव्य होइ। बहुरि याकौं तिसही संक्रमणांतर कृष्टिप्रमाण करि गुणि अपवर्तन कीएं अपना अपना किंचिदून आय द्रव्यमात्र संक्रमणांतर कृष्टिसंबंधी समान खंड द्रव्य हो है। आय द्रव्यकी संदृष्टि पूर्वैं कही है। ताके आगैं किंचिदूनकी संदृष्टि करनी। क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिविषैं यहु विधान नाहीं तहां शून्य जाननी। असैं ग्यारह संग्रह कृष्टिनिका संक्रमण द्रव्यविषैं क्रोधको प्रथम संग्रहका घात द्रव्यविषैं विभाग हो है तिनकी संदृष्टि असी—

पृ० नं० ५९८ (क) में देखो

ऐसैंही संक्रमण द्रव्यका विधानकी संदृष्टि कहि अब बंध द्रव्यका विधानकी संदृष्टि कहिए है—

मोहनीयका समयप्रबद्धकी संदृष्टि ऐसी (स)। ताकौं च्यारिका भाग दीएं एक कषायका द्रव्य होइ। तहां मानका स्तोक, तातैं क्रोध माया लोभका क्रम अधिक है। तिनकी संदृष्टि रचना ऐसी—मान क्रोध माया लोभ। बहुरि मध्यम खंड सहित लोभकी तृतीय संग्रहकी जघन्य
स स स स
४ ४ ४ ४
कृष्टिका द्रव्य ड्योढ गुणहानि गुणित समयप्रबद्धकौं सर्व कृष्टिका भाग देइ साधिक कीएं ऐसी
।
स १२ सो इतने द्रव्यकी एक कृष्टिरूप एक शलाका होइ तो पूर्वोक्त मानका द्रव्यकी केती होइ?
।
४
ख
ऐसैं त्रैराशिक कीए लब्धिराशि मानविषैं ऐसी स इहां समयप्रबद्धका अपवर्तन कीएं
४ स १२
४
ख
अर भागहारका भाग ऐसा ४ ताकौं भाज्य कीएं अर भागहारविषैं च्यारि अर ड्योढ गुणहानि ऐसा
ख
(१२) इनिकौं परस्परगुणैं छह गुणहानि भईं। तहां गुणहानिकी संदृष्टि आठका अंक करि ताके आगैं छहका गुणकार कीएं संदृष्टि हो है। बहुरि क्रोधादिक विषैं ऐसी ही अधिक क्रमरूप संदृष्टि हो है। ऐसैं बंधांतर कृष्टिनिका प्रमाणकी संदृष्टि ऐसी—

मान	क्रोध	माया	लोभ
।	।	।	।
४	४	४	४
ख ८।६	ख ८।६	ख ८।६	ख ८।६

बहुरि इनि बंध कृष्टिनिके वीचि पाइए हैं जे अंतर कृष्टि तिनका प्रमाण गुणहानिके चौथा भागमात्र है। तहाँ क्रोधविषैं नोकषाय द्रव्य संबंधी कृष्टि मिलनेतैं तेरहका गुणकार जानना। तिनकी संदृष्टि ऐसी लो मा या क्रो एक एक कषायकी एक एक संग्रह बंधरूप होइ सो इहां चारयो

८ ८ ८ ८ १३
४ ४ ४ ४

कषायनिकी पहली संग्रह बंधरूप हो है। सो इहां नवीन बंधरूप भया समयप्रबद्ध च्यारो कषानिका

। ।। ।।।
ऐसा— स स स स । इनिकौं अनंतका भाग देइ एक भाग तौ जुदा राखी अर बहुभागनिकरि
४ ४ ४ ४

नवीन बंधातर कृष्टि निपजाइए है। तहाँ अंत कृष्टितैं लगाय जेथवी अंतकी नवीन कृष्टि होइ तितने विशेष तौ आदि अर अपना अपना अंतरालरूप कृष्टिनिका पूर्वोक्त प्रमाणमात्र विशेष उत्तर अर अपनी अपनो बंधांतर कृष्टिनिका पूर्वोक्त प्रमाणमात्र गच्छस्थापि संकलनधन कीएं बंधांतर कृष्टि विशेष द्रव्य हो है। सो अन्य कृष्टिनिविषैं तौं उभय द्रव्य विशेषद्रव्य देना जहां कह्या था तहां बंध कृष्टिनिविषैं इस द्रव्यकौं देना। सो इहां क्रोध मान माया लोभकी प्रथम संग्रहके बंधांतर विशेष विषैं आदि उत्तर गच्छकी अर संकलन कीया धनकी ऐसी संदृष्टि हो है—

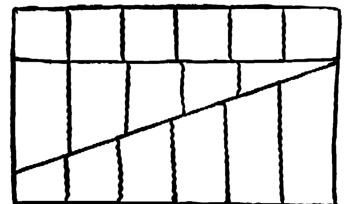
नाम	क्रोध प्र०	मान प्र०	माया प्र०	लोभ प्र०
संकलित धन	। वि।४।१३।४ ख।२४।२।ख ८।६	। वि।४।३१।४ ख।२४।२। ख ८।६	। वि।४।४३।४ ख २४।२।ख ८।६	। वि।४।४३।४ ख।२४।२।ख ८।६
गच्छ	४ ख।८।६	४ ख।८।६	४ ख।८।६	४ ख।८।६
उत्तर	१— वि।८।१३ ४	१— वि।८ ४	१— वि।८ ४	१— वि।८ ४
आदि	। वि।४।१३ ख।२४	। वि।४।१५ ख।२४	। वि।४।१८ ख।२४	वि।४।२१ ख।२४

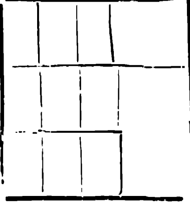
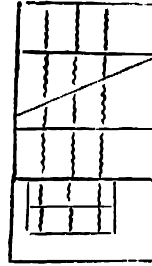
बहुरि बहुभागनिविषैं इतना द्रव्य घटाएं अवशेष द्रव्य जो रह्या ताकौं अपना अपना बंधांतर कृष्टि प्रमाणका भाग दीएं एकका कृष्टिका द्रव्य होइ। ताकौं तिसही प्रमाणकरि गुणैं बंधांतर कृष्टि समान खंड द्रव्य होइ। याकरि लोभकी जघन्य कृष्टिके समान बंध कृष्टि निपजै है। बहुरि एक भाग जुदा राख्या था तिसविषैं दोय भाग करने। तहां तिस एक भागकौं सर्व पूर्व अपूर्व कृष्टि प्रमाण गच्छका अर एक घाटि गच्छका आधाकरि हीन दो गुणहानिका भाग दीएं विशेष होइ सो एक विशेष आदि, एक विशेष उत्तर सर्व कृष्टि प्रमाणमात्र गच्छ स्थापि संकलन धन कीएं

बंध विशेष द्रव्य हो है। सो याकौं सर्व बंध कृष्टिनिविषैं जहां उभय द्रव्य विशेषविषैं घटता द्रव्य देना कह्या तहां याकौं देइ पूर्ण करना। बहुरि तिस एक भागविषैं याकौं घटाए जो अवशेष रह्या ताकौं अपनी अपनी सर्वकृष्टि प्रमाणका भाग दीए एक खंड होइ ताकौं तिसहीकरि गुणैं सर्व मध्यम खंड द्रव्य होइ। ऐसैं बंध द्रव्यविषैं च्यारि प्रकार कहे। इनिकी संदृष्टिनिका मोकौं नीकैं ज्ञान न भया तातैं इहां नाही लिखी है। बहुरि इनि द्रव्यनिके देनेका विधान पूर्वै व्याख्यानविषैं कहि आए हैं। बहुरि इहां अनंती जायगा पहलैं बहुत पीछैं घाटि पीछैं वाधि वाधि द्रव्य दीए हैं तातैं अनंत उष्ट्र कूट रचना हो है। बहुरि बारह संग्रहनिविषैं नीचैं नवीन भई कृष्टि अर पूर्व अर अपूर्व कृष्टिनिके वीचि वीचि संक्रमण द्रव्यकरि निपजीं नवीन कृष्टि अर च्यारि संग्रहनिविषैं बंध कृष्टि तिनकी रचना अैसी जाननी। —

पृष्ठ नं० ६०० (क) में देखो।

इहां अनुभागकी रचना युगवत् कालविषैं संभवै है तातैं आडी रचना करी है। तहां नीचैं लोभकी तृतीय संग्रह कृष्टि तिसविषैं नीचैं नवीन कृष्टिनिकी रचना अैसी [ ] तिनके उपरि पूर्व कृष्टिनिकी रचना अैसी [ ] याविषैं समपट्टिकाकी समान लीक अर विशेष घटता क्रमकी क्रम हीन रूप लीक अर तिनविषैं अधस्तन शीर्ष विशेषका द्रव्य दीया ताका क्रम अधिक-रूप लीकको संदृष्टि कीएं अैसी ऐसैं [ ] कीएं सर्व पूर्व अपूर्व कृष्टिनिकी समपट्टिका भई। अैसैं ही लोभकी द्वितीयादिविषैं संदृष्टि जाननी। तहां क्रोधकी तृतीय संग्रहविषैं नीचैं नवीन कृष्टि नाही भई तातैं तिनकी रचना नाही करी है। पूर्व कृष्टिनिहीकी रचना करी है। बहुरि इनि पूर्व कृष्टिनिके वीचि संक्रमण द्रव्यकरि नवीन कृष्टि भई तिनकी सूधी ऊभी लीकरूप संदृष्टि अर बंध द्रव्यकरि नवीन कृष्टि भई तिनकी बांकी ऊभी लीकरूप संदृष्टि जाननी। तहां लोभादिक च्यारयो कषायनिकी तृतीय द्वितीय संग्रहविषैं तौ संक्रमण द्रव्यहीकरि नवीन कृष्टि भई तिनकी संदृष्टि ऐसी [ ] अर लोभ माया मानकी प्रथम संग्रहविषैं संक्रमण द्रव्य-करि अर बंध द्रव्यकरि नवीन कृष्टि भई तिनकी संदृष्टि अैसी



अर क्रोधकी प्रथम संग्रहविषै बंध द्रव्य ही करि नवीन कृष्टि भई तिनकी संदृष्टि ऐसी  जाननी। बहुरि इन सर्व पूर्व अपूर्व कृष्टिनिविषैं मध्यम खंड द्रव्य दीया ताकी समानरूप लोककी संदृष्टि जाननी। बहुरि इन सर्व पूर्व अपूर्व कृष्टिनिविषैं क्रम हीन रूप उभय द्रव्य विशेष द्रव्य दीया ताकी क्रम हीन रूप लोक संदृष्टि जाननी। बहुरि बंध होने योग्य पूर्व कृष्टिनिका उभय द्रव्य विशेष द्रव्यविषै वा बंध द्रव्यकरि निपजो नवीन कृष्टिका बंधांतर विशेष द्रव्यविषैं घटता द्रव्य दीया तहां बंध विशेष द्रव्य दीया अर बंध द्रव्यका मध्यम खंड द्रव्य दीया ताकी उभय द्रव्य विशेष द्रव्यकी संदृष्टि  अैसी जाननी। अैसैं इहां रचना जाननी। बहुरि क्रोधकी प्रथम संग्रहका द्रव्य असा—व १२ १३/२४। सो द्वितीय संग्रह रूप भया। अर द्वितीय संग्रहका द्रव्य पूर्वे अैसा व। १२/२४। १ था ही सो मिलि द्वितीय संग्रहका द्रव्य अैसा व। १२/२४। १४। भया। ऐसैं ही अन्य संग्रहविषैं लोभकी द्वितीय संग्रहपर्यंत पूर्व पूर्व संग्रहका द्रव्य अपने द्रव्यविषैं मिलनेतैं अपना अपना द्रव्य हो है। सो जानना ताकी संदिृष्ट रचना अैसी—

नाम	क्रोध			मान		
संग्रह	प्र	द्वि	तृ	प्र	द्वि	तृ
द्रव्य	व १२ १३ २४	व १२ १४ २४	व १२ १५ २४	व १२ १६ २४	व १२ १७ २४	व १२ १८ २४
नाम	माया			लोभ		
संग्रह	प्र	द्वि	तृ	प्र	द्वि	तृ
द्रव्य	व १२ १९ २४	व १२ २० २४	व १२ २१ २४	व १२ २२ २४	व १२ २३ २४	व १२ २४ २४

तहां अपने अपने द्रव्यका अपकर्षणकरि प्रथम स्थितिविषैं गुणकार क्रमकरि द्वितिय स्थिति-विषैं विशेष हीन क्रमकरि देनेका विधान पूर्ववत् जानना। बहुरि आयुद्रव्य आदि यथासंभव जानि तिनकी संदृष्टि पूर्ववत् जाननी। बहुरि तहां संक्रमण द्रव्य बंध द्रव्यका विधान यथासंभव जानि तिनकी संदृष्टि पूर्ववत् जाननी। विशेष होइ सो विशेष जानि लेना। बहुरि क्रोध मान माया लोभ वेदककैं क्रमतैं च्यारि तीन दोय एक कषायनिका बंध है। तहां जिस कषायकी जिस संग्रहकौं वेदै

है तिस कषायकी तौ तिसही संग्रहका बंध है। अन्य कषायकी प्रथम संग्रहका बंध है। तिस बंधांतर कृष्टि शलाकाविषैं क्रोधवेदकके कृष्टिप्रमाणकौं छह गुणहानिका भागहार कह्या था। मान माया लोभवेदककैं क्रमतैं साढा च्यारि, तीन, ड्योढ गुणहानिका भागहार जानना। तिनकी संदृष्टि ऐसी—

नाम	लोभ	माया	मान	क्रोध
क्रोधवेदक	४ / ख।८।६	४ / ख।८।६	४ / ख।८।६	४ / ख।८।६
मानवेदक	४ / ख।८।९/२	४ / ख।८।९/२	४ / ख।८।९/२	
मायावेदक	४ / ख।८।३	४ / ख।८।३		
लोभवेदक	४ / ख।८।३/२			

बहुरि बंधांतर कृष्टिनिके वीचि जे अन्तर कृष्टि तिनिका प्रमाण क्रोधका प्रथमसंग्रहका वेदकविषैं अन्य कषायनिकी गुणहानिका चौथा भागमात्र क्रोधका तातैं तेरह गुणा कह्या था। बहुरि ताकरि द्वितीय तृतीय कृष्टि वेदकविषैं अन्य कषायनिका पूर्ववत् अर क्रोधका चौदह पंद्रह गुणा जानना। बहुरि मानकी प्रथमादि संग्रह वेदककै अन्यकषायनिका गुणहानिकैं तीन सोलहवां भागमात्र मानका तातैं सोलह सतरह अठारह गुणा क्रमतैं जानना। बहुरि मायाकी प्रथमादि संग्रह वेदककैं लोभका गुणहानिका दोय सोलहवां भागमात्र, मायाका तातैं उगणीस वीस इकईस गुणा क्रमतैं जानना। लोभकी प्रथमादि संग्रह वेदकके लोभका गुणहानिका सोलहवां भाग वाईस तेईस चौवीस गुणा जानना। तिनकी संदृष्टि ऐसी—

नाम	लोभ	माया	मान	क्रोध
क्रोधवेदक	८ / ४	८ / ४	८ / ४	८।१३।१४।१५ / ४
मानवेदक	८।३ / १६	८।३ / १६	८।३।१६ / १६	१७।१८
मायावेदक	८।२ / १६	८।१८ / १६	२०।२१	
लोभवेदक	८।२२ / १६	२३।२४		

बहुरि द्वितिय संग्रहका द्रव्य ऐसा व।१२।२३ / २४ याकौं अरकर्षण भागहार का भाग देइ पचीस भागमात्र संक्रमण द्रव्य ऐसा व।१२।५७५ / २४।ओ तिसविषैं एक भागमात्र तृतिय संग्रह रूप परिणया द्रव्य ऐसा— व।१२।२३ / २४।ओ अर चौईस भागमात्र सूक्ष्मकृष्टिरूप परिणया द्रव्य ऐसा व।१२।५५२ / २४।ओ बहुरि तृतीय संग्रहका द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीएं एक भाग सूक्ष्मकृष्टिरूप परिणया

ऐसा व । १२ । १ इनिकौं मिलाएँ सर्व सूक्ष्म कृष्टिरूप परिणया द्रव्य ऐसा व । १२ । ५५३ इतने
२४ । ओ   २४ । ओ
द्रव्यकरि सर्व सूक्ष्मकृष्टि करण कालका प्रथम समय विषैं बादरकृष्टिनिके नीचैं सूक्ष्मकृष्टि करिए है । तिनिका प्रमाण कहिए है—

क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टि ऐसी ४ । १३ बहुरि पूर्व पूर्व संग्रह उत्तर उत्तर संग्रहरूप होइ
ख । २४
परिनमैं है तातैं पूर्व प्रमाणकौं विवक्षित संग्रहकृष्टिका प्रमाणविषैं मिलाएं अपना अपना वेदक कालविषैं कृष्टिनिका प्रमाण ऐसा—

नाम	क्रोध			मान		
संग्रह	प्र	द्वि	तृ	प्र	द्वि	तृ
कृष्टिप्रमाण	४ १३ ख २४	४ १४ ख २४	४ १५ ख २४	४ १६ ख २४	४ १७ ख २४	४ १८ ख २४
नाम	माया			लोभ		
संग्रह	प्र	द्वि	तृ	प्र	द्वि	सूक्ष्मकृष्टि
कृष्टिप्रमाण	४ १९ ख २४	४ २० ख २४	४ २१ ख २४	४ २२ ख २४	४ २३ ख २४	४ २४ ख २४

हो है । तहां सूक्ष्म कृष्टिनिका प्रमाण ऐसा ४ । २४ अपवर्तन कीएं ऐसा ४ हो है । बहुरि इहां लोभ-
ख २४   ख
का द्वितिय संग्रहविषैं आय द्रव्यका तौ अभाव है । तृतीय संग्रहरूप भया व्यय द्रव्य ऐसा हो है
व । १२ । २३ सोई तृतीय संग्रहका आय द्रव्य है । इसहीका नाम संक्रमण द्रव्य है । बहुरि लोभकी
२४ । ओ
द्वितीय तृतीय संग्रहविषैं अपनी अपनी कृष्टि प्रमाणकौं अपकर्षण भागहारका असंख्यातवां भागका भाग दीएं अपना अपना घात कृष्टिका प्रमाण हो है । ताकरि अपनी अपनी अंत कृष्टिका द्रव्यकौं गुणि किछू साधिक कीएं अपना अपना घात द्रव्य हो है । तहां घात द्रव्यकौं यथासंभव दीएं स्वस्थान परस्थान गोपुच्छरूप होइ कृष्टि हो हैं । तिनविषैं संक्रमण द्रव्य वा घात द्रव्यका विभाग कहिए है—

एक विशेष आदि अर एक विशेष उत्तर अर एक घाटि घात कीएं पीछैं रही अपनी कृष्टिनिका प्रमाणमात्र गच्छ स्थापैं संकलन धनमात्र द्रव्य तृतीय संग्रहविषैं आय द्रव्यतैं ग्रहि स्थापना अर तृतीय संग्रह कृष्टिमात्र विशेष आदि अर एक विशेष उत्तर अर घात कीएं पीछैं रही अपनी कृष्टिमात्र गच्छ स्थापैं संकलन धनमात्र द्वितीय संग्रहविषैं घात द्रव्यतैं ग्रहि स्थापने । इसका

नाम बादर कृष्टिसंबंधी अधस्तन शीर्षविशेष द्रव्य है। इहां 'पदमेगेण विहीणं' इत्यादि सूत्रकरि संकलन धन कहिए है—

तृतीय संग्रहविषैं गच्छ ऐसा ४ इहां घात कृष्टिनिका वा एक घाटिका किंचिदूनपनाकौं नाही
ख। २४ १ ⌒

गिण्या है। यामैं एक घटाइ दोयका भाग दीएं ताकरि ऐसा ४ याकरि उत्तर जो विशेष
ख। २४। २

१ ⌒
ताकौं गुणैं ऐसा वि ४ यामैं आदि एक विशेष मिलावनेकौं एक घाटि था तहां एक अधिककरि
ख। २४। २

ताकौं गच्छ ऐसा ४ करि गुणि तहां गुण्य गुणकारनिकौं आगैं पीछैं लिखैं संकलन धन ऐसा
१— ख। २४

वि। ४। ४ हो है। बहुरि द्वितीय संग्रहविषैं गच्छ ऐसा—४। २३ यामैं एक घटाइ दोयका
ख। २४। ख २४। २ ख। २४

१ ⌒
भाग देइ ताकरि उत्तर जो विशेष ताकौं गुणैं ऐसा—त्रि। ४। २३ यामैं आदि ऐसा वि ४
ख। २४। २ ख २४

मिलावना सो याकौं दोयकरि समच्छेद कीएं ऐसा—वि। ४। २ अर याकैं वाकैं अन्य समान
ख। २४। २ १ ⌒

देखि तेईसका गुणकारविषैं दोयका गुणकार मिलाएं ऐसा वि। ४। २५ याकौं गच्छ ऐसा
१ ⌒ ख। २४। २

४। २३ करि गुणैं ऐसा वि। ४। २५। ४२३ इहां पचीस अर तेइसकौं परस्पर गुणैं पांचसै पिचहत्तरिका
ख। २४ ख। २४। २। ख २४। १ ⌒

गुणकार कीएं अर गुण्य गुणकार आगैं पीछैं लिखैं संकलन धन ऐसा। वि। ४। ४। ५७५ हो है।
ख। २४। ख २४ २

इहां एक अधिक हीनकौं न गिणि संदृष्टि करी है ऐसा जानना। बहुरि तृतीय संग्रहकी जघन्य कृष्टि ऐसी व १२ याकौं असंख्यातगुणां अपकर्षण भागहार ऐसा (ओ ∂) ताका भाग देइ ताकौं
४
ख

तृतीय संग्रहविषैं कृष्टिप्रमाण ऐसा ४ अर द्वितीय संग्रहविषैं कृष्टिप्रमाण ऐसा ४। २३ सो
ख। २४ ख। २४

इनकरि गुणैं अपना अपना बादर कृष्टिसंबंधी मध्यम खंड द्रव्य हो है। बहुरि एक विशेष आदि एक विशेष उत्तर अर अपनी अपनी पूर्व कृष्टिप्रमाणमात्र गच्छ स्थापि तहां जेता संकलन धन भया ताविषैं एक विशेषका अनंतवां भाग घटाएं जो होइ सो द्वितीय संग्रहका घात द्रव्यतैं ग्रहि स्थापना। इहां एक विशेषका अनंतवां भाग घटाया है। तहां बंध द्रव्य देइ पूर्ण करिए है ऐसा जानना। बहुरि एक अधिक द्वितीय संग्रहकी कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेष आदि अर एक विशेष उत्तर अर संक्रमण द्रव्यकरि निपजी कृष्टिसहित अपनी पुरातन कृष्टिप्रमाणमात्र गच्छ स्थापि

तहां संकलन धनमात्र तृतीय संग्रहका आय द्रव्यतैं ग्रहि स्थापना, इसका नाम उभय द्रव्यविशेष द्रव्य है। इहां 'पदमेगेण विहीणं' इत्यादि सूत्रकरि द्वितीय संग्रहविषै गच्छ ऐसा ४। २३ तामैं एक
ख। २४
१ ८
घटाइ ताकौं दोयका भाग देइ ताकरि उत्तर जो विशेष ताकौं गुणैं ऐसा वि। ४। २३ बहुरि
ख। २४। २
आदि एक विशेष मिलावनेकौं एक हीनकी जायगा एक अधिककरि ताकौं गच्छकरि गुणैं ऐसा
१ ८
वि ४ २३ ४ २३ बहुरि इहां ते ईसकरि तेइसकौं गुणि पांचसै गुणतीसका गुणकार कीएं अर गुण्य
ख २४ २ ख २४ १—
गुणकारनिकौं आगैं पीछैं लिखैं संकलन धन ऐसा वि। ४। ४। ५२९ हो है। बहुरि तृतीय संग्रह-
ख। २४। ख। २४। २
विषैं गच्छ ऐसा—४ यामैं एक घटाइ दोयका भाग देइ ताकरि उत्तर जो विशेष ताकौं गुणैं
१ ८ ख। २४
ऐसा वि। ४। ४ यामैं आदि ऐसा वि। ४। २३ मिलावना सो याकौं दोयकरि समच्छेद कीएं यहु
ख। २४। २ ख। २४।
ऐसा—वि। ४। ४६ अर याकै वाकैं अन्य समान देखि याका छयालीसका गुणकारविषैं वाका एक
ख। २४। २ १ ८
गुणकार मिलाएं ऐसा वि। ४। ४७ बहुरि याक गच्छ ऐसा ४ करि गुणैं गुण्य गुणकारनिकौं
ख। २४। २ १ ८ ख। २४
आगैं पीछैं लिखैं संकलन धन ऐसा वि। ४। ४। ४७ इहां घात कृष्टिनिका हीनपना वा
ख। २४। ख। २४। २
संक्रमण कृष्टिनिका अधिकपना वा एकका अधिक हीनपनाकौं न गिणि संदृष्टि करी है ऐसा जानना। बहुरि इस तीन प्रकार द्रव्यकरि हीन तृतीय संग्रहका आय द्रव्य ऐसा व। १२। २३ ≡
२४। आ
तहां किंचिदूनको न गिणि ताका मध्यम खंड सहित तृतीय संग्रहकी जघन्य कृष्टि ऐसी व। १२
४
ख
ताका भाग देइ अपकर्षण कीएं वा भागहारका भागहारकौं राशि कीएं संक्रमण द्रव्यकरि वीचि वीचिमें भई नई कृष्टिनिका प्रमाण ऐसा ४। २३ बहुरि इसका भाग अपनी सर्व कृष्टिनिका
ख। २४। ओ
प्रमाणकौं दोएं संक्रमणांतर कृष्टिनिके वीचि जे कृष्टि पाइए तिनका प्रमाण ऐसा ४
ख। २४। ४। २३
ख। २४। ओ
इहां अपवर्तन कोएं वा भागहारका भागहारकौं राशि कोएं ऐसा ओ बहुरि पूर्वोक्त संक्रमणांतर
२३

कृष्टिनिका प्रमाण ऐसा ४ । २३ ताका भाग अवशेष आय द्रव्यकौं दीएं एक खंड होइ ताकौं तिस-
ख । २४ । ओ

हीकरि गुणैं अपने अवशेष आय द्रव्यमात्र संक्रमणांतर कृष्टि समान खंड द्रव्य हो है। द्वितीय संग्रहविषैं आय द्रव्यके अभावतैं ऐसा द्रव्य नाही है। तहां शून्य जाननी। इनकी संदृष्टि ऐसी—

नाम	लोभकी तृतीय संग्रह	लोभकी द्वितीय संग्रह
अधस्तन शीर्ष पूर्वविशेष द्रव्य	१— वि । ४ । ४ ख । २४ । ख । २४ । २	१ ॒ वि । ४ । ४ । ५७५ ख । २४ । ख । २४ । २
मध्यम खंड	व । १२ ४ ४ । ओ । ३ । ख । २४ ख	व । १२ । ४ । २३ ४ । ओ । ३ । ख । २४ ख
उभय द्रव्य विशेष द्रव्य	१ ॒ वि । ४ । ४ । ४७ ख । २४ । ख । २४ । २	१ ॒ वि । ४ । ४ । ५२९ ख । २४ । ख । २४ । २
संक्रमणांतर कृष्टि संबंधीसमानद्रव्य	व १२ । २३ २४ । ओ ।	०

बहुरि बंध द्रव्यविषैं विभाग कहिए है—

अंतकी बंधांतर कृष्टि सहित याके ऊपरि पूर्व कृष्टिनिका प्रमाणमात्र विशेष आदि ऐसा—
वि । ४ । २३ । १ अर एक अधिक गुणहानिका सोलहवां भागकरि हीन ड्योढ गुणहानिमात्र
ख । २४ । प । १६
३

विशेष ऐसे—वि । ८ । २३ । सो उत्तर अर पूर्व सर्व कृष्टि प्रमाणकौं द्वयर्ध गुणहानिका भाग दीएं
१६

सर्व नवीन भईं बंधांतर कृष्टिमात्र गच्छ ऐसा ४ । ८ । ३ इहां गुणहानिकी संदृष्टि आठका अंक
ख । २

है। ऐसैं स्थापि तहां संकलन धनमात्र बंधांतर कृष्टि विशेष नामा द्रव्य हो है। सो इसकी संदृष्टि-के विधानका मोकौं ज्ञान न भया तातैं नाही लिख्या है। बहुरि समयप्रबद्धका अनंतवां भाग जुदा जुदा स्थापैं अवशेष किंचिदून समयप्रबद्ध ऐसा (स ⁻) ताकौं द्वयर्ध गुणहानि गुणित समय प्रबद्धमात्र द्रव्यकौं कृष्टि प्रमाणका भाग दीएं एक बंधांतर कृष्टिका द्रव्य ऐसा स १२ ताका भाग
४
ख

दीएं बंधांतर कृष्टिनिका प्रमाण ऐसा स—इहां किंचिदून न गिणि समयप्रबद्धका अपवर्तन कीएं
स १२
४
ख

अर ऐसा ४ जो भागहारका भागहार था ताकौं राशि कीएं ऐसी नवीन निपजी कृष्टिनिका प्रमाण
ख

४ भया । बहुरि याका भाग सर्व कृष्टिनिका प्रमाण ऐसा ४ । २३ ताकौं दीएं ऐसा ४ । २३ इहां
ख । १२ ख । २४ ख । २४ । ४
ख । १२

ऐसे का अपवर्तन कीएं ४ अर भागहारका भागहार ऐसा (१२) कौं राशि कीएं तहां ड्योढकरि
ख

अपवर्तन कीएं ड्योढ गुणहानि ऐसा (१२) ड्योढ गुणहानिमात्र भाज्य था ताका तौ एक गुण-हानिमात्र ऐसा (८) भाज्य भया। अर चौईसका भागहार था सो सोलहका भागहार भया तब ऐसा ८ । २३ नवीन निपजी बंध कृष्टिनिके वीचि जे कृष्टि तिनका प्रमाण हो है बहुरि पूर्वोक्त
१

बंधांतर कृष्टिनिका प्रमाण ऐसा ४ ताका भाग किंचिदून समय प्रवद्ध ऐसा (स –) ताकौं
ख । १२

दीएं एक खंड होइ। ताकौं तिसहो करि गुणैं बंधांतर कृष्टि संबंधी समान खंड हो है। बहुरि जो समय प्रबद्धका अनंतवां भाग जुदा राख्या था ताकौं सर्व पूर्व अपूर्व बंध कृष्टि प्रमाण गच्छका अर एक घाटि गच्छका आधाकरि न्यून दोगुणहानिका भाग दीएं विशेष होइ सो सर्व बंध कृष्टि प्रमाण गच्छका संकलन धनमात्र विशेष तिस जुदा राख्या भागविषैं ग्रहणकरि स्थापना। सो इहां एक विशेष ऐसा (वि) आदि एक विशेष उत्तर अर सर्व कृष्टिनिका प्रमाणविषैं अनुभय उदय कृष्टिका प्रमाण घटाएं बंध कृष्टि हो है। सो तिस प्रमाणकौं किंचित् जानि न गिण्या। तब बंध
।

कृष्टिमात्र गच्छ ऐसा ४ । २३ । इहां गच्छमैं एक घटाइ ताकौं दोयका भाग देइ उत्तर जो
ख । १४ १ ◡

विशेष ताकरि गुणैं ऐसा वि । ४ । २३ यामैं एक विशेष आदि मिलावनेकौं एक हीनकी जायगा एक
ख । २४ । २

१ ◡
अधिक भया ताकौं न गिणि बहुरि गच्छकरि गुणैं ऐसा वि । ४ । २३ । ४ । २३ इहां तेईस तेईस-
ख । २४ । २ । ख । २४ ।

कौं परस्पर गुणि पांचसै गुणतीस कीएं अर गुण्य गुणकार आगे पीछैं लिखें ऐसा भया वि।४।४।५२९
ख।२४।ख।२४।२।

याका नाम बंध विशेष है। बहुरि जुदा स्थाप्याविषैं याकौं घटाएं अवशेष समय प्रबद्धका अनंतवां भाग ऐसा स ताकौं सर्व बंधकृष्टिप्रमाणका भाग दीएं एक खंड होइ ताकौं तिसहीकरि गुणैं
ख

बंध मध्यम खंड द्रव्य होइ। ऐसैं बंध द्रव्यका विधान कह्या ताकी संदृष्टि ऐसी—

नाम	लोभ द्वितीयसंग्रह
बंधांतर कृष्टि विशेषद्रव्य	वि । ४ । २३ । ४ ख । २४ । २ । ख । ८ । ३
बंधांतरसंबंधी समान खंड	स—४ ख । २४ । ख । १२
बंधविशेष खंड	वि । ४ । ४ । ५२९ ख । २४ । ख । २४ । २
बंध मध्यम खंड	स । ४ । २३ ख । ४ । २३ । ख । २४ ख । २४

इहां द्वितीय संग्रह हीका बंध है। तातैं तिसहीविषैं ऐसा विधान जानना। बहुरि संक्रमण द्रव्यकरि निपजी सूक्ष्म कृष्टिनिका द्रव्यविषैं विभाग कहिए है—

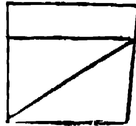
सूक्ष्मकृष्टि संबंधी द्रव्य पूर्वोक्त ऐसा व । १२ । ५५३ / २४ । ओ ताकौं प्रथम समयविषैं कीनी सूक्ष्मकृष्टिनिका प्रमाणमात्र गच्छ ऐसा ४ / ख ताका अर एक घाटि गच्छका आधाकरि न्यून दोगुणहानिका भाग दीएं विशेष ऐसा व । १२ । ५५३ १ᒣ / २४ । ओ । ४ । १६—४ / ख ख २ गच्छ अर संपूर्ण गच्छकौं दोय अर एकका भाग दीएं एक वार संकलन धन होइ तिहिंकरि तिस विशेषकौं गुणें सूक्ष्मकृष्टि संबंधी विशेष द्रव्य हो है। बहुरि याकरि हीन सूक्ष्मकृष्टिका द्रव्यकौं सूक्ष्मकृष्टि प्रमाण ऐसा ४ / ख का भाग दीएं एक खंड ताकौं तिसही करि गुणें सूक्ष्मकृष्टि संबंधी समान द्रव्य हो है। तिनकी संदृष्टि ऐसी—

नाम	सूक्ष्मकृष्टि
विशेष द्रव्य	१ᒣ व । १२ । ५५३ । ४ । ४ १ᒣ २४ । ओ । ४ । १६—४ । ख । ख । २ ख ख २
समान खंड द्रव्य	व । १२ । ५५३ । ४ ४ २४ । ओ । ख । ख

बहुरि सूक्ष्मकृष्टि संबंधी विशेष ऐसा व । १२ । ५५३ १ᒣ / २४ । ओ । ४ । १६—४ / ख ख याकौं दोगुणहानिकरि गुणें

प्रथम कृष्टिका द्रव्य होइ। इस गुणकारविषै क्रमतैं एक एक घटाइ एक घाटि सूक्ष्मकृष्टिमात्र घटैं अंत कृष्टिका द्रव्य हो है। इनि सबनिकी रचना ऐसी—

सूक्ष्मकृष्टि	लोभकी तृतीयसंग्रह	लोभकी द्वितीयसंग्रह
४ ख	४ ख २४	४ २३ ख २४
१ ॰ व १२ ५५३ १६००० व १२ ५५३ १६ – ४ १ ॰ १ ॰ ख २४ ओ ४ १६ – ४ २४ ओ ४ १६ ४ ख ख २ ख ख २	४७	१२९

इहां अनुभागकी रचना है। तातै आडो महनानी करी है। तहां नीचैं सूक्ष्मकृष्टि लिखी है। ताकी समपट्टिका अर विशेष घटता क्रमको संदृष्टिकरि नीचैं आदि अंत कृष्टिनिके द्रव्यका प्रमाण लिख्या है। बहुरि ताके ऊपरि लोभकी तृतीय कृष्टि अर ताके ऊपरि द्वितीय कृष्टि लिखी है। तहां समपट्टिका पूर्व विशेष अधस्तन कृष्टि उभय द्रव्य विशेषकी संदृष्टि पूर्वोक्त प्रकार करीहै। बहुरि तिन कृष्टिनिके वोचि जे नवीन कृष्टि भई तिनको संदृष्टि वीचिमें लीककरी है। तहां संक्रमण द्रव्यकरि निपजीकी नौ सूधी लीक अर बंध द्रव्यकरि निपजी कृष्टिनिकी वक्र कहिए वाकी लीक करी है। बहुरि द्वितीय कृष्टिकी जिनि पुरातन नूतन बंध कृष्टिनिविषैं बंधान्तर कृष्टि विशेष बंध मध्यम खंडरूप बंध द्रव्य दीजिये है। तहां उभय द्रव्य विशेषविषैं इतना द्रव्य घटता दीया है ताकी संदृष्टि उभय द्रव्यकी रचनाविषैं ऐसी  करी है। बहुरि सूक्ष्म कृष्टिकारक कालका द्वितीयसमयविषैं प्रथमसमयविषैं जेती कृष्टि कीनीं तिनके असंख्यातवे भागमात्र नवीन कृष्टिकरिए है तिनकी संदृष्टि ४/ख ǝ तिनविषैं पूर्व कृष्टिनिके नीचैं जे कृष्टि करिए है तिनके असंख्यातवे भागमात्र ऐसी ४/ख ǝ ǝ अर पूर्व कृष्टिनिके वोचि करिए है ते बहुभागमात्र ऐसी ४ । ǝ १ ॰/ख ǝ ǝ इहां गुणकारका एक

होनपनांकों न गिणि अपवर्तन कीएं ऐसी ४ हो है। बहुरि इस समयविषैं द्रव्य असंख्यात गुणा
ख ∂

अपकर्षण करिए है। ताकी संदृष्टि ऐसी व। १२। ५५३ इहां असंख्यातका गुणकारकौं अपकर्षण
२४ ओ
∂

भागहारका भाग कीया है। बहुरि याविषैं एक पूर्व विशेष आदि एक विशेष उत्तर एक घाटि प्रथम
१
समयविषैं कीनी कृष्टि प्रमाणमात्र गच्छ ऐसा ४ करि तहां संकलन सूत्रके अनुसारि गच्छ अर एक
ख

अधिक गच्छकौं दोयका भाग दीएं संकलन धन हो है। सो इतने विशेषमात्र द्रव्य ग्रहि जुदा स्थापना। याका नाम अधस्तन शीर्ष विशेष है। बहुरि प्रथमसमय संबंधी सूक्ष्म कृष्टि द्रव्यकौं प्रथम समयविषैं कीनी कृष्टि प्रमाणका भाग दीएं अर विशेष अधिक है। तिनिकौं न गिणैं तिनकी जघन्य कृष्टि का द्रव्य ऐसा व। १२ ताकौं द्वितीय समयविषैं पूर्व कृष्टिनिके नीचैं करी कृष्टिनिका प्रमाण
२४। ओ। ४

ख

ऐसा ४ ताकरी गुणैं नीचैं निपजाई अपूर्व कृष्टि संबंधी समान खंड द्रव्य हो है।
ख। ∂। ∂

बहुरि ताहीकौं वीचिकरी कृष्टिनिका प्रमाण ऐसा ४ ताकरि गुणैं वीचि निपजाई अपूर्व कृष्टि
ख। ∂

संबंधी समान खंड द्रव्य हो है बहुरि प्रथम द्वितीय समय संबंधी सूक्ष्म कृष्टिका द्रव्यकौं मिलाय ताकौं प्रथम द्वितीय समय संबंधी सर्व सूक्ष्म कृष्टि प्रमाणमात्र गच्छका अर एक घाटि गच्छका आधाकरि न्यून दोगुणहानिका भाग दीएं एक उभय विशेष होइ ताकी संदृष्टि ऐसी [वि] ताकौं प्रथम समय संबंधी कृष्टि प्रमाणविषैं द्वितीय समय संबंधी कृष्टि प्रमाण मिलावनेकौं अधिककी

।

संदृष्टि कीएं गच्छ ऐसा ४ ताकरि अर एक अधिककरि गुणि दोयका भाग दीएं संकलन धनमात्र
वि

उभय विशेष द्रव्य हो है। बहुरि इस च्यारि प्रकारका द्रव्य घटावनेकौ सर्व द्रव्यके आगैं किंचिदून

।

की संदृष्टिकरि ताकौं सर्व पूर्व अपूर्व कृष्टि प्रमाण ऐसा ४ ताका भाग दीएं एक खंड होइ।
ख

याकौं तिसही गच्छकरि गुणैं सर्व मध्यम खंड दव्य हो है। ऐसैं द्वितीय समयविषैं सूक्ष्म कृष्टि संबंधी द्रव्यविषैं पांच प्रकार द्रव्य कहे तिनकी संदृष्टि ऐसी—

नाम	द्रव्य
अधस्तन शीर्ष	व । ४ । ४ ९/१ ख । ख । २
अधस्तन कृष्टि समान खंड	व । १२ । ५५३ । ४ ख ३ ३ / २४ । ओ । ४ । ख ख
मध्यम अपूर्व कृष्टि समान खंड	व । १२ । ५५३ । ४ ख । ३ / २४ । ओ । ४ । ख
उभय द्रव्य विशेष	वि । ४ । ४ ९/१ ख ख २
मध्यम खंड	व । १२ । ५५३ ≡ ४ ख / २४ ओ ४ ख

बहुरि बादर कृष्टि संबंधी च्यारि प्रकार संक्रमण द्रव्य अर द्वितीय कृष्टिविषैं च्यारि प्रकार बंध द्रव्य अर तीन प्रकार घात द्रव्य देनेका पूर्ववत् विधान जानना। इहां तिनकी रचना ऐसी—

अपूर्व अधस्तनकृष्टि	पूर्व अपूर्व सूक्ष्मकृष्टि	तृतीयसंग्रह	द्वितीयसंग्रह
४ ख ३ ३			

इहां पहलैं द्वितीय समयविषैं नवीन करी नीचली कृष्टिनिकी रचना करी। ताके ऊपरि प्रथमसमयविषैं कीनी कृष्टिनिकी रचना करी। तहां समपट्टिका पूर्व विशेष अधस्तनकृष्टिकी रचना करी। अर वीचि वीचि नवीन भई कृष्टिनिकी ऊभी लीककी सहनानी करी। बहुरि तिन दोऊ रचनानिके मध्यम खंड अर उभय द्रव्य विशेषकी समरूप क्रम हीन रूप सहनानी करी। बहुरि

ताके ऊपरि तृतीय द्वितीय संग्रहकी रचना करी ताका विधान प्रथम समयवत् जानना। ऐसैं ही आडी रचना इहां करी है। बहुरि ऐसैं ही सूक्ष्म कृष्टिकारकका तृतीयादि अनिवृत्तिकरणका अंत-समय पर्यंत विधानकी रचना यथासंभव जाननी। बहुरि ताके अनंतरि सूक्ष्म सांपराय हो है। तहां प्रथम समयविषैं सर्व मोहनीयका सत्त्व द्रव्य ऐसा स। a। १२ इहां उत्कृष्ट समय प्रबद्धकौं
७

द्व्यर्ध गुणहानिकरि गुणैं सर्व सत्त्व द्रव्य होइ ताकौं सातका भाग दोएं मोहका सत्त्व द्रव्य जानना। याकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीएं अपकृष्ट द्रव्य ऐसा स a। १२ याकौं पल्यका असंख्यातवां
७ ओ

भागका भाग दोएं एक भाग ऐसा स। a। १२ ताकौं सूक्ष्म सांपरायका कालतैं किछू अधिक जो
७। ओ प
a

अवस्थित गुणश्रेणि आयाम ताविषैं गुणकार क्रमकरि देना। तहां अंकसंदृष्टि अपेक्षा पिच्यासीका भाग ताकौं देइ एककरि गुणैं प्रथम निषेकविषैं चौसठिकरि गुणैं अंत निषेकविषैं दीया द्रव्य हो है।

१ ८
बहुरि बहुभाग ऐसै स a। १२—प इहां गुणकारविषैं एक हीनकौं न गिणि पल्यके असंख्यातवै
७। ओ। प a
a

भागका अपवर्तन कोएं ऐसा स a। १२ बहुरि अंतरायामका प्रमाण संख्यात गुणा अंतर्मुहूर्तमात्र
७। ओ

ऐसा २ ९। ४ यातैं संख्यात गुणा स्थिति कांडकायाम ऐसा २ ९। ४। ४ यातैं संख्यात गुणो कांडकके नीचैं अवशेष रही स्थिति सो ऐसी २ ९। ४। ४। ४ इहां गुणकारनिकौं परस्पर गुणैं कांडकायाम ऐसा २ ९। १६ अर अवशेष स्थिति ऐसी—२ ९। ६४ इनिकौं मिलाएं द्वितीय स्थितिका प्रमाण ऐसा २ ९। ८० याकौं अंतरायामका भाग दीएं वीस पाए ताका भाग तिस बहुभागकौं देइ च्यारितौ अंतरायामविषैं दोएं तिनकी संदृष्टि ऐसी स। a। १२। ४ अर सोलह
७। ओ। २०

भाग प्रमाण द्रव्य द्वितीय स्थितिविषैं दीया ताकी संदृष्टि ऐसी स a। १२। १६ इहां यथा योग्य
७। ओ। २०

संख्यातकी सहनानी च्यारिका अंककरि ऐसी संदृष्टि करी है। बहुरि अपना अपना द्रव्यकौं अपना अपना आयाममात्र गच्छका अर एक घाटि गच्छका आधाकरि न्यून दोगुणहानिका भाग दोएं विशेष होइ। ताकौं दोगुणहानिकरि गुणैं प्रथम निषेकविषैं अर तिस गुणकारविषैं क्रमतैं एक एक घटाइ एक घाटि अपने गच्छमात्र घटैं अंत निषेकविषैं दीया द्रव्य हो है। इहां अंतरायामका गच्छ ऐसा २ ९। ४ अर द्वितीय स्थितिका गच्छ ऐसा २ ९। ८० जानना। तहां द्वितीय स्थितिविषैं अंतकी अतिस्थापनावलीविषैं द्रव्य दीजिए है। तातैं तिस गच्छविषैं इतना घाटि है। तथापि ताकौं किंचित् जानि संदृष्टिविषैं नाहीं गिन्या है। इनकी संदृष्टि ऐसी—

सूक्ष्मसांपराय प्रथम कांडक प्रथम समय रचना

अतिस्थापनावली

द्वितीयस्थिति

अंतरायाम

गुणश्रेणि आयाम

स ∂ १२ १६ १६-२ ७ ८० १-
७ ओ २० २ ७ १६ १६ - २ ७ ८०

स ∂ १२ १६ १६ १-
७ ओ २० २ ७ ८० १६ - २ ७ ८०
२

१-
स ∂ १२ ४ १६ - २७ ४ १-
७ ओ २० २ ७ ४ १६ - २७ ८०

स ∂ १२ ४ १६ १-
७ ओ २० २ ७ ४ १६ - २७ ४
२

स ∂ १२ ६४
७ ओ प ८५
० ∂
७
०
स ∂ १२ १
७ ओ प ८५
∂ .

इहां नीचैं गुणश्रेणि आयामकी क्रम अधिक रूप ऊपरि अंतरायामकी ताके ऊपरि द्वितीय स्थितिकी क्रम हीन रूप संदृष्टि करि तहां आदि अंत निषेकविषैं दीया द्रव्य आगैं लिख्या है। मध्य निषेकनिकी बिंदी सहनानी करी है। इनिके ऊपरि अतिस्थापनावलीकी सहनानी च्यारिका अंक कीया है। अर इहां अंतरायामविषैं पूर्वैं द्रव्यका अभाव था, नवीन ही द्रव्य दीया, तातैं दो वडी लीक करी। द्वितीय स्थितिविषैं पूर्वैं द्रव्य था, नवीन ही दीया, तातैं दो बड़ी लीक करी। बहुरि द्वितीयादि समयविषैं भी ऐसा क्रम जानना।

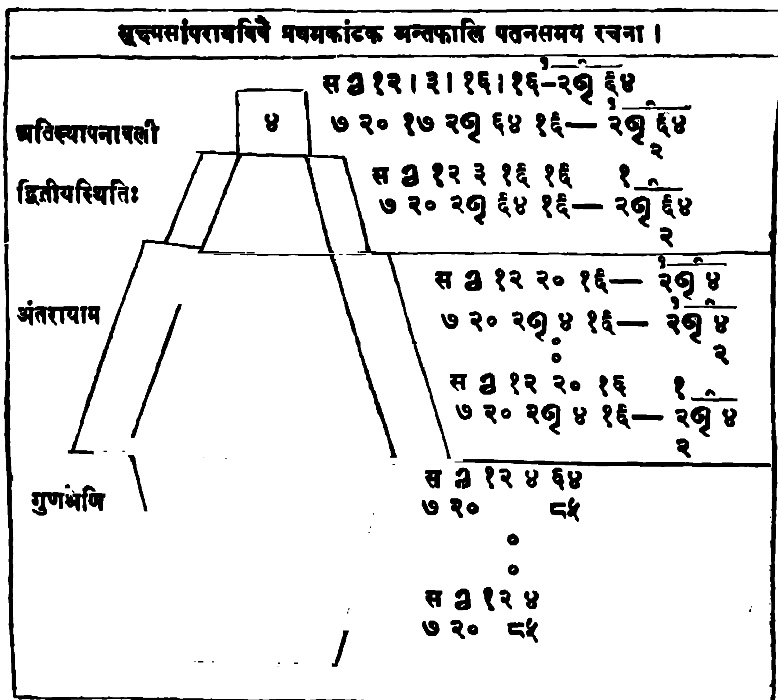
बहुरि प्रथम स्थितिकांडककी अंत फालिका पतनसमयविषैं विधान कहिए है-द्वितीय स्थितिका प्रथम निषेकविषैं एक घाटि द्वितीय स्थितिमात्र विशेष घटाएं चरम फालिका अंत निषेक ऐसा स । ∂ । १२
७ । २ ७ । ४ । २० इहां सत्त्व द्रव्यकौं द्वितीय स्थितिका भाग दीएं मध्य निषेक हो है। ताविषैं जो विशेष हीन है तिनकौं द्रव्यका प्रमाण किंचित जानि नाही गिन्या है। बहुरि ताकौं अंतरायाममात्र जो चरम फालिके निषेकनिका प्रमाण ताकरि गुणैं चरम फालिका सर्व द्रव्य ऐसा स । ∂ । १२ । २ ७ । ४ । ४
७ । २ ७ । ४ । २० इहां विशेष अधिक है तिनिका द्रव्यकौं किंचित्त जानि नाही गिन्या है। इहां ऐसैं २ ७ । ४ का अपवर्तन कीए ऐसा स । ∂ । १२ । ४
७ । २० याविषैं गुणश्रेणिके अर्थि अपकर्षण कीया द्रव्य मिलावना, ताकौं किंचित् जानि संदृष्टिविषैं नाही गिन्या है। बहुरि याकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ एक भाग ऐसा-स । ∂ । १२ । ४
७ । २० । प
∂ गुणश्रेणि आयामविषैं पूर्वोक्त

प्रकार क्रमरूप देना। बहुरि बहुभाग ऐसा स। ॿ। १२। ४। प इहां गुणकारविषैं एक हीनकौं न
७।२०। प ॿ
ॿ

गिणि पल्यके असंख्यातवे भागका अपवर्तन कीएं ऐसा स। ॿ। १२। ४ याविषैं अंतरायामविषैं
७।२०।

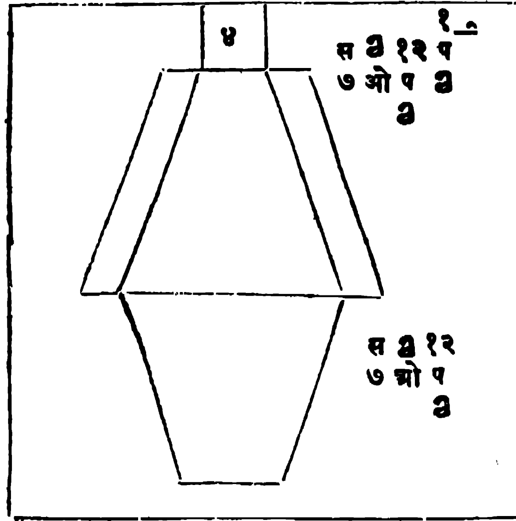
दीया द्रव्य ऐसा स ॿ। १२। २० अर द्वितीय स्थितिविषैं दीया द्रव्य ऐसा स ॿ। १२। ३। १६
७। २०। १७ ७। २०। १७

इनि दीए दोऊ द्रव्यनिविषैं ऐसा गुणकार भागहार कैसैं भया ताका मोकौं नीकैं ज्ञान नाहीं भया, तातैं विधान नाही लिख्या है। बहुरि अंतरायामका गच्छ ऐसा २ ९। ४ अर कांडक घात इहां संपूर्ण भया तातैं कांडकायाम सहित अवशेष द्वितीय स्थितिका गच्छ ऐसा २ ९। ४। ४ सो अपने अपने गच्छका अर एक घाटि गच्छका आधाकरि न्यून दो गुणहानिका भाग दीएं विशेष होइ ताकौं दो गुणहानिकरि गुणैं प्रथम निषेक इस गुणकारविषैं एक घाटि गच्छ घटाएं अंत निषेक हो है। इनकी रचना ऐसी—

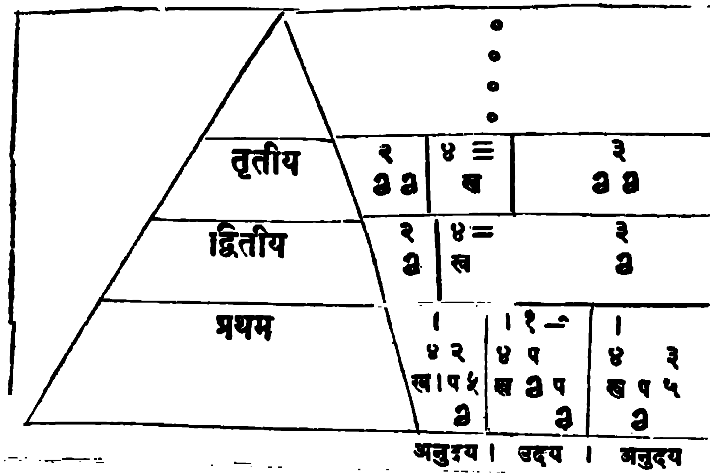


इहां रचना पूर्वोक्त प्रकार जाननी। अंतरायामविषैं पूर्वैं भी द्रव्य था तातैं इहां दो बडी लीक करी हैं। बहुरि द्वितीय कांडकका प्रथम फालि पतन समयविषैं सर्व द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीएं ऐसा स। ॿ। १२ द्रव्य ग्रहि ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ एक
७। ओ

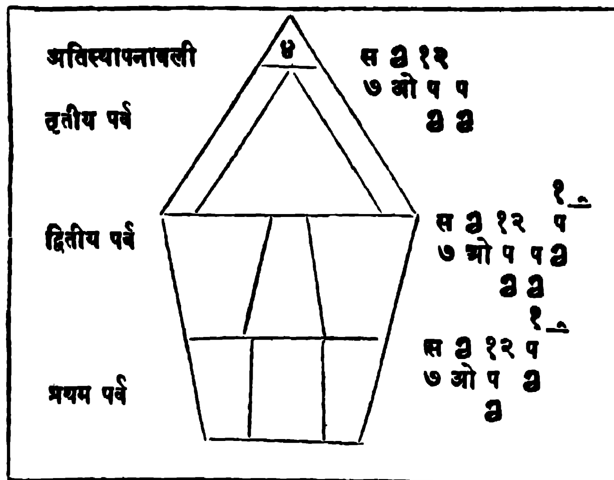
भाग गुणश्रेणि आयामविषैं बहुभाग ऊपरितन स्थितिविषैं अतिस्थापनावली छोड दीजिए है। इहां अंतरायाम पूर्ण होनेतैं अंतरायाम अर द्वितीय स्थितिका एक गोपुच्छ भया। तातैं एक रचना ही क्रम हीनरूप जाननी। इनिकी संदृष्टि ऐसी—



बहुरि सूक्ष्मसांपरायका प्रथम समयविषैं सर्व सूक्ष्म कृष्टिनिका प्रथम समयविषैं कीनी
।
सूक्ष्म कृष्टिनिका प्रमाणविषैं साधिक कीएं ऐसा ४ ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएं
ख
बहुभागमात्र मध्य कृष्टि उदयरूप हो हैं। एक भागकौं अंक संदृष्टि अपेक्षा पांचका भाग देइ तहां दोय भागमात्र नीचली तीन भागमात्र ऊपरिको कृष्टि अनुदयरूप हो हैं। बहुरि द्वितीयादि समयनिविषैं नीचली कृष्टि नवीन उदयरूप भईं। ऊपरिलो कृष्टि नवीन अनुदयरूप भईं। तिनिका प्रमाण पूर्वे नीचली ऊपरली अनुदय कृष्टिनिकैं असंख्यातवां भागमात्र क्रमतैं है। मध्य उदय कृष्टि किंचित हीन क्रम लीएं है। तिनकी संदृष्टि ऐसी—

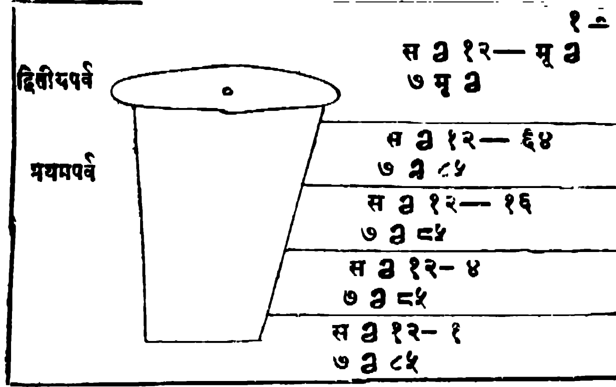


इहां क्रम हीनरूप प्रथमादि समयनिविषैं उदय आवने योग्य प्रथमादि निषेक तिनकी ऊर्ध्व रचनाकरि तहां प्रथमादि निषेकनिविषैं नीचली अनुदय मध्यकी ऊपरली अनुदय कृष्टिनिकी आडी रचना करी है। अर तिनिका प्रमाण लिख्या है। तहां द्वितीयादि निषेकनिविषैं नीचली ऊपरली कृष्टिनिविषैं दोय तीन भाग थे तिनकी संदृष्टि दोय तीनका अंककरि ताकौं क्रमतैं एक दोय आदि वार असंख्यातका भाग देइ नवीन उदय अनुदय कृष्टिनिका प्रमाण लिख्या है। वीचि-में सर्व कृष्टिनिकौं दोय तीन आदि करि किंचिद्की सहनानीकरि उदय कृष्टिनिका प्रमाण लिख्या है ऐसा जानना। बहुरि सूक्ष्मसांपरायका अंत कांडका द्रव्य ऐसा—स $\frac{a}{७}$ । १२ इहां किंचित् ऊन है ताकौं न गिण्या है। याकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीएं ऐसा—स $\frac{। a। १२}{७। ओ}$ प्रथम फालिका द्रव्य हो है। याकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ बहुभाग सूक्ष्मसांपरायका अंत समय-पर्यंत गुणकार क्रमकरि दीजिए है। इहां यहु गुणश्रेणिशीर्ष है। बहुरि अवशेष एक भागकौं पल्य का असंख्यातवां भागका भाग देइ बहुभाग पुरातन गुणश्रेणिका अंतपर्यंत विशेष घटता क्रमकरि दीजिए है। बहुरि अवशेष एक भाग ताके ऊपरि स्थितिविषैं अतिस्थापनावली छोडि विशेष घटता क्रमकरि दीजिए है। ऐसैं तीन पर्वनिविषैं द्रव्य दीजिए है ताकी रचना ऐसी—

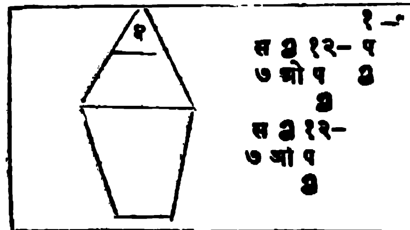


इहां नीचैं अधिक क्रमरूप पुरातन गुणश्रेणिकी रचनाकरि ताविषैं दीया द्रव्यकी दूसरी लीक नीचैं प्रथम पर्वकी अधिक क्रमरूप ताके ऊपरि द्वितीय पर्वकी क्रमहीनरूप संदृष्टि करी है बहुरि ताके ऊपरि तृतीय पर्वका पुरातन नवीन द्रव्यकी दोऊ लीक क्रमहीनरूप करी हैं। इनके आगैं दीया द्रव्यका प्रमाण लिख्या है। ऊपरि अतिस्थापनावली लिखी है ऐसा जानना। बहुरि ऐसैं ही द्वितीयादि फालिविषैं विधान जानना। बहुरि अंत फालिका द्रव्य किंचिदून द्व्यर्धगुणहानि-गुणित समयप्रबद्धप्रमाण ऐसा स $\frac{। a।}{७}$ १२ ताकौं पल्यका असंख्यात वर्गमूलमात्र असंख्यातका

भाग देइ एक भागमात्र ताकौं सूक्ष्मसांपरायका द्विचरम समय पर्यंत प्रथम पर्वविषैं असंख्यातगुणा क्रमकरि देना। तहां ताकौं अंक संदृष्टि करि पिच्यासीका भाग देइ एक च्यारि सोलह चौंसठिकरि गुणैं प्रथमादि निषेक हो हैं। बहुरि बहुभाग सूक्ष्मसांपरायका अंत समय संबंधी निषेकविषैं दीजिए है। यह दूसरा पर्व है। इनकी संदृष्टि रचना ऐसी—



इहां नीचैं प्रथम पर्वकी अधिक क्रमरूप संदृष्टि करी है। ताके आगैं प्रथमादि निषेकका द्रव्य लिख्या है। ताके ऊपरि एक निषेक बडा लिख्या है। ताके आगें तहांही दिया द्रव्य लिख्या है ऐसैं कृष्टि वेदनाधिकारका विधानविषैं संदृष्टि जाननी। बहुरि क्षीणकषायविषैं छह कर्मनिविषैं विवक्षित एक कर्मका सत्त्व द्रव्य ऐसा स । a । १२ ताकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ एक
७
भागमात्र द्रव्य ग्रहि ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां एक भाग गुणश्रेणि आयाम विषैं गुणकार क्रमकरि बहुभाग उपरितन स्थितिविषैं अतिस्थापनावली छोडि विशेष घटता क्रमकरि देना तिनकी संदृष्टि ऐसी—



बहुरि निद्रादिक चौदह घातियानिका अंत कांडकविषैं प्रथमादि फालिनिका वा अंत फालिका द्रव्य देनेका विधान जैसैं सूक्ष्मसांपरायविषैं मोहका कह्या तैसैं ही जानना। तिनकी रचना पूर्वोक्त प्रकार ऐसी—

निद्रादिक प्रथमादिफालि	चौदह घातियानिकी प्रथमादिफालि	निद्रादिककी अंतफालि	चौदह घातियानिकी अन्तफालि
४	४	०	०

बहुरि तीन वेद च्यारि कषायनिविषैं एक सहित चढनेकी अपेक्षा क्षपक जीव बारह प्रकार हैं। तहां पुरुषवेद क्रोध सहित चढनेवालेकैं नपुंसक स्त्री सात नोकषाय क्षपणा अश्वकरण कृष्टि-करण क्रोध मान माया लोभ क्षपणा क्रमतैं हो है। बहुरि मान माया लोभ सहित चढ्याकैं नोकषाय क्षपणा पर्यंत तौ समान है, पीछैं क्रोधकी अर क्रोध मानकी अर क्रोध मायाकी क्रमतैं क्षपणा हो है। पीछैं अश्वकरण कृष्टिकरण हो है, पीछै क्रमतैं अवशेष कषायनिकी क्षपणा हो है। बहुरि अंत-करण पीछैं कृष्टिकरण पर्यंत तौ जिस कषाय सहित चढ्या ताकी प्रथम स्थिति स्थापै है। पीछैं अवशेष कषायनिकी जुदी जुदी प्रथम स्थिति स्थापै है, सो प्रथम स्थिति गुणश्रेण्यायामरूप है तातैं तिनकी अधिक क्रमरूप रचना जाननी। बहुरि नपुंसक स्त्रीवेद सहित चढ्या जीवकैं स्त्री-वेदका क्षपणा कालविषैं दोऊ वेदनिकी क्षपणा हो है। इहां जिस वेद सहित चढ्या ताहीकी प्रथम स्थिति स्थापै है ऐसा जानना। ऐसैं ए नव कालके प्रत्येक यथायोग्य अंतर्मुहूर्तमात्र जानने तिनकी संदृष्टि रचना ऐसी—

२७				लो क	लो क	लो क	लोक
२७				या क	या क	या क	कि का
२७				मा क	मा क	कि का	अ स्स
२७				को क	कि का	अस्स	या क
२७				कि का	अस्स	मा क	मा क
२७				अस्स	को क	को क	को क
२७			नो ७	नो ७	नो ७	नो ७	नो ७
२७	न इ	न इ	इ	इ	इ	इ	इ
२७	न	न	न	न	न	न	न
	न	इ	क्षी	को	मा	या	लो

इहां इनका प्राकृत नामका आदि अक्षरकी संदृष्टि जाननी। बहुरि अवशेष तीन घाति कर्मनिका नाशकरि सयोगकेवली हो है। तहां प्रथमादि समयविषैं आयुविना तीन अघातियानिका[1] द्रव्यकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ उदयादि गुणश्रेणि आयामविषैं गुणकार क्रमकरि उपरितन स्थितिविषैं विशेष घटता क्रमकरि अतिस्थापनावली छोड दीजिए है। ताकी संदृष्टि सुगम है। इहां स्वस्थान केवलीतें आवर्जित करणविषैं अपकर्षण द्रव्य असंख्यातगुणा, गुणश्रेणि काल संख्यातवे भागमात्र जानना। बहुरि दंड कपाट प्रतर लोकपूरणविषैं स्थिति सत्त्व घात कीया ताका प्रमाण दंडविषैं पल्यका असंख्यातवां भागकौं असंख्यातका भाग देइ बहुभागमात्र अर कपाटविषैं अवशेष एक भागकौं तैसैं ही भाग देइ बहुभागमात्र बहुरि प्रतरविषैं अवशेष एक भागकौं तैसै ही भाग देइ बहुभागमात्र अर लोकपूरणविषैं अवशेष एक भाग संख्यातगुणा अंतर्मुहूर्तकरि हीन जानना। ऐसैं समय समय घात भएं अवशेष स्थिति संख्यातगुणा अंतर्मुहूर्तमात्र रहै है। ताका संख्यात बहुभाग आयामरूप कांडक विधानकरि क्रमतैं घात कीएं आयुके समान तीन अघातियानिकी अंतर्मुहूर्तमात्र स्थिति रहै है। ताकी संदृष्टि ऐसी—

---

१. प्रथम संस्करणमें पंक्ति २ व ११ में घातियानि पाठ है।

	तीनघातिया	तीनघातिया	आयु
दंड	१ – प a a a		
कपाट	१ – प a a a a		
प्रतर	१ – प a a a a a		२ ७
लोकपूरण	प २ ११ a a a a २ ७ ७	२ ७ २ ७ ७	

इहां क्रम हीनरूप निषेकनिकी संदृष्टि रचना जाननी। बहुरि सयोगी जिनकैं पूर्व स्पर्धक अपूर्व स्पर्धक सूक्ष्म कृष्टिरूप योग अनुक्रमतैं हो है। तहां एक जीव प्रदेशविषैं असंख्यात लोक प्रमाण अविभागप्रतिच्छेद हैं। याहीका नाम वर्ग है, ताकी संदृष्टि ऐसी [व] बहुरि समान अविभागप्रतिच्छेद लीएं वर्गनिका समूहरूप वर्गणा, ताविषैं वर्गनिका प्रमाण असंख्यात जगत्प्रतर प्रमाण है। बहुरि वर्गणा समूहरूप एक स्पर्धक, तीहिविषैं वर्गणा श्रेणिका असंख्यातवां भागमात्र है। याहीका नाम वर्गणाशलाका है। याकी संदृष्टि च्यारिका अंक है। बहुरि स्पर्धक समूहरूप गुणहानि, तीहिविषैं स्पर्धकनिका प्रमाण असंख्यात है। याहीका नाम स्पर्धकशलाका है। ताकी संदृष्टि नवका अंक है (९)। बहुरि गुणहानि समूहरूप एक स्थान तीहिविषैं गुणहानिका(प्रमाण) पल्यके असंख्यातवे भागमात्र है। याहीका नाम नाना गुणहानि है। ताकी संदृष्टि ऐसो (ना)। ऐसैं जघन्य स्थान हो है। इनके प्रमाणकी संदृष्टि ऐसी जाननी—

अवि	वर्ग	वर्गणा	स्पर्धक	गुणहानि	नानागुणहानि
≡	≡ a	a	a a	प a	१

बहुरि स्थान स्थान प्रति सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागप्रमाण मात्र जघन्य स्पर्धक बंधै है। ऐसैं उत्कृष्ट परिणाम योगपर्यंत क्रम है। ऐसैं पूर्व स्पर्धकविषै विधान है। तहां पूर्व स्पर्धकका जघन्य वर्गके अविभागप्रतिच्छेदनिकी संदृष्टि ऐसी (व)। याकौं स्पर्धकशलाका अर नाना गुणहानिकरि गुणै अंत स्वधंकका प्रथम वर्गकी संदृष्टि होइ। तामैं अंक संदृष्टि अपेक्षा वर्गणा शलाकाका प्रमाण च्यारि तामैं एक घटाएं तीन होइ, सो अधिक कीएं पूर्व स्पर्धकका उत्कृष्ट वर्गके

३—

अविभागप्रतिच्छेदनिकी संदृष्टि ऐसी-व। ना ९। ना। बहुरि इनके नीचैं अपूर्व स्पर्धक हो है, तिनका

इस पृष्ठकी संदृष्टिमें प्रथम संस्करणके अनुसार "तीन घातिया तीन घातिया" पाठ दो बार छपा है वहाँ "तीन घातिया तीन अघातिया" पाठ होना चाहिये।

प्रमाण स्पर्धकशलाकाकौं असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहारका भाग दीएं एक भागमात्र हो है सो ऐसा— ८। याका उत्कृष्ट वर्गविषै अविभागप्रतिच्छेद पूर्व स्पर्धकका जघन्य वर्गके असंख्यातवें
ओ a
भागमात्र है, सो ऐसा व। याकौं अपूर्व स्पर्धकप्रमाणका भाग अपूर्व स्पर्धकके जघन्य वर्गका अवि-
a
भागप्रतिच्छेद हो है। सो ऐसा— व ९। बहुरि सर्व प्रदेशनिकौं द्वयर्ध गुणहानिका भाग दीएं
a ओ a
पूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणाका द्रव्य हो है। याकौं दो गुणहानिका भाग दीएं एक विशेष हो है। बहुरि प्रथम वर्गणातैं द्वितीयादि अंत वर्गणापर्यंत एक एक विशेष घटता द्रव्य प्रथम गुणहानिविषैं हो है। बहुरि द्वितीयादि गुणहानिविषैं आधा आधा क्रम अंत गुणहानिपर्यंत जानना। बहुरि आदि वर्गणाकौं द्वयर्द्ध गुणहानिकरि गुणें सर्व प्रदेशप्रमाण ऐसा (व १२) ताकौं अपकर्षण भागहारका भाग देइ एक भागमात्र द्रव्य ग्रहि ताकौं अपूर्व पूर्व स्पर्धकनिविषैं यथायोग्य दीजिए है। इनकी संदृष्टि यथासंभव जानि लेनी। पूर्व अपूर्व स्पर्धकनिकी रचना ऐसी—

	३—
पूर्वस्पर्धक	व ९ ना
९ ना	यहां द्रव्यकी संदृष्टि यथा संभव जाननी
अपूर्वस्पर्धक	व व a व ९ a ओ a
९ ओ a	

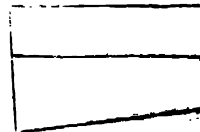
इहां रचना ऊभी लीक करी है। बहुरि द्वितीय समयविषैं प्रथम समयतैं असंख्यातगुणा द्रव्य अपकर्षण करै है, सो ऐसा—व १२। इहां गुणकारकौं भागहारका भागहार कीया है। बहुरि
ओ
a

प्रथम समयविषैं कीने अपूर्व स्पर्धकनिके नीचैं नवीन अपूर्व स्पर्धक करिए है। तिनका प्रमाण प्रथम समयसंबंधी स्पर्धकनिके असंख्यातवे भागमात्र है, सो ऐसा—९। इहां संदृष्टि रचना ऐसी—
a a a

९ ना	पूर्व स्पर्धक	
९ ओ a	प्रथम समय अपूर्व स्पर्धक	
९ ओ a a	द्वितीय समय अपूर्वस्पर्धक	

३—
व ९ ना
व
व
a
व
७ ९
ओ a
व । ९
a । ओ । a । a

इहां सर्व स्पर्धकनिकी वर्गणाकी संदृष्टिविषैं समपट्टिका करि आगैं विशेष घटता क्रम की संदृष्टि करी है। तहां ऊपरि पूर्व स्पर्धक नीचैं प्रथम समयविषैं कीने, अपूर्व स्पर्धक नीचैं द्वितीय समयविषैं कीने। अपूर्व स्पर्धककी रचना जाननी। ऐसैं ही अपूर्व स्पर्धककरण कालका अंत समयपर्यंत जानना। बहुरि कृष्टिकरण कालका प्रथम समयविषैं सर्व पूर्व अपूर्व स्पर्धक-संबंधी जीव प्रदेश ऐसे—व १२। इनिकौं अपकर्षण भागहारका भाग दीएं एक भागमात्र ऐसा व । १२। ग्रहि प्रथम समयविषैं कीनी प्रथमादि कृष्टिनिविषैं अर अपूर्व स्पर्धककी प्रथमादि
ओ
वर्गणानिविषैं द्रव्य दीजिए है। इहां कीनी कृष्टिनिका प्रमाण वर्गणाशलाकाके असंख्यातवे भाग-मात्र ऐसा ४। इनकी रचना ऐसी—
a



इहां कृष्टिकी समपट्टिकारूप संदृष्टिकरि नीचैं विशेष घटता क्रमकी संदृष्टिकरी है। बहुरि द्वितीय समयविषैं पूर्व द्रव्यतैं असंख्यातगुणा द्रव्य ऐसा व । १२ ग्रहि ताकौं प्रथम समयविषैं कीनी कृष्टि
ओ
a
प्रमाणकौं असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहारका भाग दीएं एक भागमात्र ऐसा ४। तिनके नीचैं
a a

नवीन कृष्टि करै है। तिनविषैं अर प्रथम समयसंबंधी प्रथम कृष्टिकौं आदि देय अंत कृष्टि-पर्यंत कृष्टिनिविषैं निक्षेपण करै है। इनकी रचना ऐसी—

द्वितीय समय कृत कृष्टि ६ / a ओ a

प्रथम समयकृतकृष्टि समपट्टिका

प्रथम समयकृतकृष्टि विशेष

अधस्तनशीर्ष

मध्यमखंड

उभय द्रव्य विशेष

इहां नीचैं नवीन कृष्टिनिकी ऊपरि पुरातन कृष्टिकी संदृष्टि करी है। तहां पुरातन कृष्टि-विषैं समपट्टिका अर विशेष घटता क्रमकी संदृष्टि करी है। बहुरि पुरातन कृष्टिविषैं अधस्तन-शीर्ष विशेष द्रव्य दीएं सर्व कृष्टिकी समपट्टिका भई। ताकी सर्व कृष्टिनिविषैं मध्यम खंड द्रव्य दीएं समपट्टिका रही। ताकी अर उभय द्रव्य विशेष द्रव्य दीएं विशेष घटता क्रम भया ताकी रचना करी है। इहां ऐसैं आडी रचना करी है। बहुरि इहां प्रथम समयविषैं ग्रह्या द्रव्य ऐसा व। १२ / ओ याकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएं कृष्टिसंबंधी द्रव्य ऐसा व। १२ / ओ प / a। अवशेष बहुभाग-मात्र द्रव्य पूर्व अपूर्व स्पर्धकनिविषैं दीजिए है। बहुरि कृष्टिसंबंधी द्रव्यकौं प्रथम समयविषैं कीनी कृष्टि प्रमाणमात्र गच्छ ऐसा ४ / a ताका अर किंचिदून दो गुणहानि ऐसा १६— ताका भाग दीएं प्रथम समयसंबंधी विशेष होइ, सो ऐसा व। १२ / ओ प ४ १६— / a a। ताकौं दो गुणहानि करि गुणैं प्रथम वर्गणा ऐसी व। १२। १६ / ओ प ४ १६—। ताकौं द्वितीय समयविषैं कीनी कृष्टिप्रमाण ऐसा—४ ओ a / ७। ताकरि गुणैं अधस्तन कृष्टिका द्रव्य हो हैं। बहुरि प्रथम समयसंबंधी विशेष ऐसा—व। १२ / ओ प ४ १६— / a a। ताकौं एक घाटि प्रथम समयसंबंधी कृष्टिप्रमाण गच्छ अर तातैं एक अधिक प्रमाणकौं दोयका भाग दीएं तिस गच्छका संकलन धन होइ, सो ऐसा— ४ / १ । ४ / a a २ याकरि गुणैं अधस्तनशीर्षविशेष द्रव्य हो

है। बहुरि द्वितीय समयविषैं द्रव्य ऐसा व १२ ओ। इहां भागहारका भागहारकौं राशिका
 a
गुणकार कीएं ऐसा व १२। a। याकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीएं कृष्टिसंबंधी द्रव्य
ओ
ऐसा व। १२। a। याविषैं प्रथम समयसंबंधी कृष्टिसंबंधी द्रव्य मिलावनेकौं अगिला असंख्यातका
ओ प
a १ —
गुणकार ऊपरि एक अधिक कीएं उभयसंबंधी कृष्टि द्रव्य ऐसा व। १२ a। याकौं प्रथम समय-
ओ। प
a
विषैं कीनी कृष्टि प्रमाणविषैं द्वितीय समयसंबंधी कृष्टि मिलावनेकौं साधिक कीएं उभय समय-
।
संबंधी कृष्टि प्रमाणमात्र गच्छ ऐसा ४ ताका अर किंचिदून दो गुणहानिका भाग दीएं उभय द्रव्य
१— a
विशेष ऐसा व १२ a । याकौं उभयकृष्टि प्रमाणमात्र गच्छ अर तातैं एक अधिक प्रमाणकौं
।
ओ प ४ १६—
a a । १—
दोयका भाग दीएं तिस गच्छका संकलन धन ऐसा ४ । ४ । ताकरि गुणैं उभय द्रव्यविशेष द्रव्य
a । a । २
हो है। बहुरि द्वितीय समयसंबंधी द्रव्यविषैं पूर्वोक्त तीन द्रव्य घटावनेकी आगैं ऐसी (≡) संदृष्टि
कीएं अवशेष द्रव्य ऐसा व। १२। a। ≡। याकौं उभयसंबंधी कृष्टिनिका भाग दीएं एक खंड
ओ। प
a
होइ। ताकौं तिस ही करि गुणैं सर्व मध्यम खंड द्रव्य हो है। इनकी संदृष्टि ऐसी—

अधस्तन कृष्टि	व। १२। १६। ४ ओ प। ४। १६ – a। ओ a a a
अधस्तन शीर्ष	१ व। १२। ४। ४ ओ। प। ४। १६ – a a। २ a a
उभय द्रव्य विशेष	१ १ व। १२। a। ४। ४ ओ। प। ४। १६ – a a। २ a a
मध्यम खंड	। व। १२। a ४ ≡। ४ ओ। प। ४ a a a

बहुरि अंत कृष्टिकरण कालका तृतीयादि समयनिविषैं यथासंभव रचना जाननी। इहां अपूर्व स्पर्धकनिका वा सूक्ष्म कृष्टिका विधान अनिवृत्तिकरणवत् जानना। तहां कर्मपरमाणूनिविषैं अनुभाग शक्ति अपेक्षा कथन है। इहां जीव प्रदेशनिविषैं योग शक्तिका निरूपण है। तहां प्रमाणादिकका विशेष है सो विशेष जानना। बहुरि कृष्टिवेदक कालका प्रथम समयविषैं विधान कहिए है—

कृष्टिकरण कालका प्रथम समयविषैं कीनी कृष्टि प्रमाणविषैं अन्य समयविषैं कीनी कृष्टि प्रमाण मिलावनेकौं अधिकको संदृष्टि कीएं सर्व कृष्टि प्रमाण ऐसा ४ ताकौं पल्यका असंख्यातवां
a

भागका भाग दीएं बहुभाग ऐसा ४ प वीचिकी उदय कृष्टिनिका प्रमाण है। बहुरि एक भाग

| १० | a | a | प | a |

ऐसा ४ । प । ताकौं अंक संदृष्टि अपेक्षा पांचका भाग देइ दोय भागमात्र नीचेकी तीन भागमात्र
a । a

ऊपरिकी अनुदय कृष्टिनिका प्रमाण जानना। बहुरि द्वितीय समय विषैं नीचेकी अनुदय कृष्टिनिविषैं तिनके असंख्यातवे भागमात्र उदय रूप हो हैं। अर ऊपरिकी अनुदयकृष्टिनिविषैं तिनके असंख्यातवें भागमात्र उदयकृष्टि हैं। ते अनुदयरूप हो हैं। ऐसैं ही तृतीयादि समयनिविषैं विधान जानना। इस सूक्ष्म कृष्टि वेदक कालविषैं सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती शुक्लध्यान हो है। ताकी संदृष्टि ऐसी—

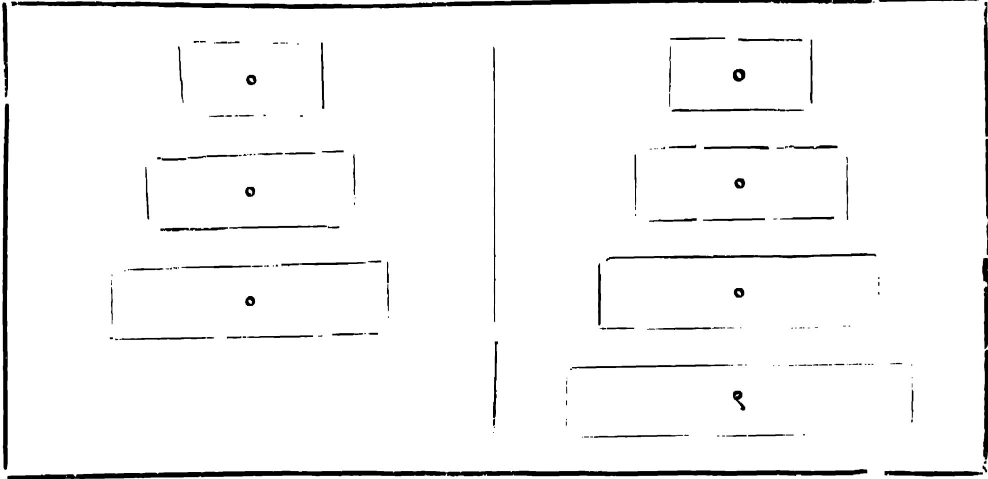
		० ० ०	
द्वितीयसमय	अनुदय	उदय	अनुदय
	। ४ २ a a प ५ a	४=	। ४ ३ a a प ५ a a
प्रथमसमय	अनुदय	उदय	अनुदय
	। ४ २ a प ५ a	। १० ४ प a प a a	। ४ ३ a प ५ a

इहां प्रथमादि समयनिकी रचनाकरि तहां कृष्टिनिकी रचना आगैं करी है। तहां समपट्टिका विशेष घटता क्रमरूप संदृष्टि करी है अर अनुदय उदय अनुदय कृष्टिनिका प्रमाण लिख्या हैं। बहुरि सयोगीविषैं अंतर्मुहूर्त काल अवशेष रहैं वेदनीय नाम गोत्रका अंत कांडककी प्रथम फालिका पतन हो है। तहां ताके द्रव्यकौं ग्रहि स्थितिकांडकघात कीएं पीछैं अवशेष जो स्थिति रहैगी ताविषैं असंख्यातगुणा क्रमकरि अर ताके ऊपरि पुरातन गुणश्रेणि आयामका अंत पर्यंत चय घटता क्रमकरि अर ताके ऊपरि अतिस्थापनावली छोडि उपरितन स्थितिविषैं चय घटता क्रमकरि द्रव्य दीजिए है। ऐसैं इहां तीन पर्व जानने। ऐसैं ही ताकी द्वितीयादि चरम फालि पतन समयपर्यंत विधान जानना। बहुरि अंत फालि पतन समयविषैं अवशेष स्थितिका द्विचरम समय पर्यंत एक पर्व अर अंत समयरूप द्वितीय पर्व ऐसैं दोय पर्वनिविषैं द्रव्य दीजिए है। इहां पिच्यासी प्रकृतिनिका सत्त्वविषैं बहत्तरि प्रकृति तौ अयोगीका द्विचरम समयविषैं अर तेरह प्रकृति ताका अंत समयविषैं खिपैंगी, तातैं जुदी जुदी रचना करिए है। अर तेरह प्रकृतिनिविषैं मनुष्यायुका स्थितिकांडकघात नाहीं। तातैं इहां बारह प्रकृतिनिका ग्रहण कीया है। सो इहां जैसैं क्षीणकषायविषैं ज्ञानावरणादिकनिका अंत कांडकविषैं विधान वा सम्यग्दृष्टिका स्वरूप कह्या था तैसैं इहां जानना। बहुरि आयुकी अंतर्मुहूर्तमात्र स्थिति रही ताकी घटता क्रमलीएं निषेकनिकी रचना जाननी। ऐसैं इनकी संदृष्टि ऐसी हो है—

अंतकांडककी प्रथमादिफालि	अंतकांडककी अंतफालि	आयुकर्म
अतिस्थापनावली ४ तृतीय पर्व २७७७ द्वितीय पर्व २७४ प्रथम पर्व २७७	प्रकृति ७२ अंत०समय प्रथमपर्व प्रकृति १२ अंत०समय प्रथमपर्व	२८

बहुरि ताके अनंतरि अयोगी गुणस्थान हो है। तहां पांच लघु अक्षर उच्चारण कालमात्र स्थिति है। ताकौं प्रथमादि समयनिविषैं तिन पर्वनिका एक एक निषेककौं गलावै है। तहां बहत्तरि प्रकृतिनिका द्विचरम समयविषैं तेरह प्रकृतिनिका अंत समयविषैं अंत निषेककौं गलावैं है। सो इहां

अयोगी कालका अंक संदृष्टिकरि च्यारि समय मानि बहत्तरि प्रकृतिनिकी तीन निषेकरूप अर बारह प्रकृतिनिकी च्यारि निषेक रूप रचना ऐसी जाननी।



अर निषेक घटते क्रम लीएं हैं अर अधोगलनरूप जुदे जुदे हैं, तातैं तिनकी जुदी जुदी रचना घटता क्रम लीएं करी है। ऐसैं सर्व कर्मनिका क्षयकरि ताका अनंतर समयविषैं पर द्रव्य-संबंधी रहित केवल आत्मा ऊर्ध्वगमन करि लोकका अग्रभागविषैं जाइ विराजमान हो है। तहां अनंत कालपर्यंत तैसैं ही रहै है, तातैं कृतकृत्य अवस्थाकौं प्राप्त भए। तातैं तिनकौं सिद्ध कहिए। सो सिद्ध भगवान परम मंगलकारी होऊ। ऐसैं श्रीलब्धिसार नामा शास्त्र अर इसहीविषैं क्षपणासार शास्त्रका अर्थ गर्भित है। ताविषैं अर्थनिकी संदृष्टि अर तिन संदृष्टिनिका स्वरूप निरूपण किया है। तहां जो चूक होइ सो विशेष ज्ञानी संवारि शुद्ध करियो, मोकौं अल्पज्ञ मानि क्षमा करियो।

श्लोक—

गर्भितक्षपणासारं लब्धिसारश्रुतं महत्।
तत्संदृष्टिसमाख्यातिः पूर्णजातार्थभासिका॥ १॥
मंगलं मलहंताहंन् सिद्धात्मा शुद्धमंगलं।
मंगलं साधुसंघस्तद्धर्मो मंगलमुत्तमं॥ २॥

इति क्षपणासार अर्थगर्भित लब्धिसारके अर्थनिकी संदृष्टिनिका वर्णन संपूर्ण भया,
याकौं संपूर्ण होतैं यहु ग्रंथ समाप्त भया, ग्रंथ समाप्त होतैं प्रारंभ कीया
कार्यकी सिद्धि होनेकरि हम आपकौं कृतकृत्य मानि इस कार्य
करनेकी आकुलता रहित होइ सुखी भए। याके प्रसादतैं
सर्व आकुलता दूरि होइ हमारैं शीघ्र ही स्वात्मज
सिद्धिजनित परमानंदकी प्राप्ति होउ।

नाम	लोभ			माया		
संग्रहनाम	तृ	द्वि	प्र	तृ	द्वि	प्र
अधस्तनशीर्ष विशेषद्रव्य	१ ⌢ । वि ४ ४ १ ख २४ ख २४ २	१ ⌢ । वि ४ ४ ३ ख २४ ख २४ २	१ ⌢ । वि ४ ४ ५ ख २४ ख २४ २	१ ⌢ वि ४ ४ ७ ख २४ ख २४ २	१ ⌢ वि ४ ४ ९ ख २४ ख २४ २	१ ⌢ वि ४ ४ ११ ख २४ ख २४ २
मध्यमखंड द्रव्य	। व १२ ४ । ४ ओ ə ə ख २४ ख	। व १२ ४ । ४ ओ ə ə ख २४ ख	। व १२ ४ । ४ ओ ə ə ख २४ ख	। व १२ ४— । ४ ओ ə ə ख २४ ख	। व १२ ४— । ४ ओ ə ə ख २४ ख	। व १२ ४— । ४ ओ ə ə ख २४ ख
नूतनकृष्टि संबंधी समानकृष्टि द्रव्य	॥ । व १२ ४ । ४ ओ ə ख २४ ख	॥ । व १२ ४ । ४ ओ ə ख २४ ख	॥ । व १२ ४ । ४ ओ ə ख २४ ख	॥ । व १२ ४— । ४ ओ ə ख २४ ख	॥ । व १२ ४— । ४ ओ ə ख २४ ख	॥ । व १२ ४— । ४ ओ ə ख २४ ख
उभयद्रव्य विशेषद्रव्य	१ ⌢ वि ४ ४ ४७ ख २४ ख २४ २	१ ⌢ वि ४ ४ ४५ ख २४ ख २४ २	१ ⌢ वि ४ ४ ४३ ख २४ ख २४ २	१ ⌢ वि ४ ४ ४१ ख २४ ख २४ २	१ ⌢ वि ४ ४ ३९ ख २४ ख २४ २	१ ⌢ वि ४ ४—३७ ख २४ ख २४ २
संक्रमणांतरकृष्टि संबंधी समानखंड द्रव्य	व १२ २— २४ ओ	व १२ १— २४ ओ	व १२ ३— २४ ओ	व १२ २— २४ ओ	व १२ १— २४ ओ	व १२ ३— २४ ओ

लब्धिसार-क्षपणासार अर्थसंदृष्टि अधिकार पृष्ठ संख्या ५९८

नाम	मान			क्रोध		
संग्रहनाम	तृ	द्वि	प्र	तृ	द्वि	प्र
अधस्तनशीर्ष विशेषद्रव्य	१_ । वि ४ ४ ≡ १३ ख २४ ख २४ २	१_ । वि ४ ४ ≡ १५ ख २४ ख २४ २	१_ । वि ४ ४ ≡ १७ ख २४ ख २४ २	१_ । वि ४ ४ ≡ १९ ख २४ ख २४ २	१_ । वि ४ ४ ≡ २१ ख २४ ख २४ २	१_ । वि ४ ४ = ४४५ ख २४ ख २४ २
मध्यमखंड द्रव्य	। व १२ ४ ≡ । ४ ओ ２ ２ ख २४ ख	। व १२ ४ ≡ । ४ ओ ２ ２ ख २४ ख	। व १२ ४ ≡ । ४ ओ ２ ２ ख २४ ख	। व १२ ४ ≡ । ४ ओ ２ ２ ख २४ ख	। व १२ ४ = । ४ ओ ２ ２ ख २४ ख	। व १२ ४ १३ = । ४ ओ ２ ２ ख २४ ख
नूतनकृष्टि संबंधी समानकृष्टि द्रव्य	॥ । व १२ ४ ≡ । ४ ओ ２ ख २४ ख	॥ । व १२ ४ ≡ । ४ ओ ２ ख २४ ख	॥ । व १२ ४ ≡ । ४ ओ ２ ख २४ ख	॥ । व १२ ४ = । ४ ओ ２ ख २४ ख	॥ । व १२ ४ = । ४ ओ ２ ख २४ ख	०
उभयद्रव्य विशेषद्रव्य	१_ वि ४ ४ ≡ ३५ ख २४ ख २४ २	१_ वि ४ ४ ≡ ३३ ख २४ ख २४ २	१_ वि ४ ४ ≡ ३१ ख २४ ख २४ २	१_ वि ४ ४ = २९ ख २४ ख २४ २	१_ वि ४ ४ = २७ ख २४ ख २४ २	१_ वि ४ ४ = १६९ ख २४ ख २५ २
संक्रमणांतरकृष्टि संबंधी समानखंड द्रव्य	व १२ २— २४ ओ	व २२ १— २४ ओ	व १२ १५— २४ ओ	व १२ १४-- २४ ओ	व १२ १८२— २४ ओ	०

लब्धिसार-क्षपणासार अर्थसंदृष्टि अधिकार पृष्ठ संख्या ३१९

१ १ १ २ २ २ ३ ३ ३ ४ ४ ४ ५ ५ ५

७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१

अं को २ / ४ ... ० ० ० ... सा ७ ८ ... अ को २

लब्धिसार-क्षपणासार अर्थसंदृष्टि अधिकार पृष्ठ संख्या ५७३

८ ११ म खो छद्मा: पु क्रो मा या लो

दोषकर्म

संज्वलन

लब्धिसार-क्षपणासार अर्थसंदृष्टि अधिकार पृष्ठ संख्या ५४३

नाम	लोभ			माया			मान			क्रोध			जोड दीए समस्त प्रमाण
संग्रहनाम	तृ	द्वि	प्र	तृ	द्वि	प्र	तृ	द्वि	प्र	तृ	द्वि	प्र	संग्रह बारह
द्रव्यप्रमाण	व १२ २४	व १२ २४	व १२ २४	व १२ २४	व १२ २४	व १२ २४	व १२ २४	व १२ २४	व १२ २४	व १२ २४	व १२ २४	व १२।१३ २४	व १२
कृष्टिप्रमाण	। ४ ख २४	। ४ ख २४	। ४ ख २४	। ४ ख २४	। ४ ख २४	। ४ ख २४	। ४ ख २४	। ४ ख २४	। ४ ख २६	। ४ ख २४	। ४ ख २४	। ४ १३ ख २४	। ४ ख
आयद्रव्य	व १२ २ २४ ओ	व १२ १ २४ ओ	व १२ ३ २४ ओ	व १२ २ २४ ओ	व १२ १ २४ ओ	व १२ ३ २४ ओ	व १२ २ २४ ओ	व १२ १ २४ ओ	व १२ १५ २४ ओ	व १२ १४ २४ ओ	व १२ १८२ २४ ओ	०	। व १२ ९ ओ
व्ययद्रव्य	०	व १२ १ २४ ओ	व १२ २ २४ ओ	व १२ १ २४ ओ	व १२ २ २४ ओ	व १२ ३ २४ ओ	व १२ १ २४ ओ	व १२ २ २४ ओ	व १२ ३ २४ ओ	व १२ १ २४ ओ	व १२ २ २४ ओ	व १२ २०८ २४ ओ	व १२ २२६ २४ ओ
घातद्रव्य	व १२ २४ ओ ७	व १२ २४ ओ ७	व १२ २४ ओ ७	व १२ २४ ओ ७	व १२ २४ ओ ७	व १२ २४ ओ ७	व १२ २४ ओ ७	व १२ २४ ओ ७	व १२ २४ ओ ७	व १२ २४ ओ ७	व १२ २४ ओ ७	व १२ १३ २४ ओ ७	व १२ ओ ७
घातकृष्टि	। ४ ख २४ ओ ७	। ४ ख २४ ओ ७	। ४ ख २४ ओ ७	। ४ ख २४ ओ ७	। ४ ख २४ ओ ७	। ४ ख २४ ओ ७	। ४ ख २४ ओ ७	। ४ ख २४ ओ ७	। ४ ख २४ ओ ७	। ४ ख २४ ओ ७	। ४ ख २४ ओ ७	। ४ १३ ख २४ ओ ७	। ४ ख ओ ७

२ ७	२ ७ ५ ४	२ ७ ५ ४ ४	२ ७ ५ ४	२ ७ ५ ४ ५ ४ ४	२ ७ ५ ४ ५ ४ ४	२ ७ ५ ४ ५ ५ ४ ४ ४	२ ७ ५ ४ ५ ५ ४ ४ ४	२ ७ ५ ४ ५ २ ४ ४ ४ ४

२ ७ ५ ४ ५ ५ ४ ४ ४ ४ २	२ ७ ५ ४ ५ ५ ५ ४ ४ ४ ४ ४	१ ८ ४ २ २ ७ ५ ४ ५ ५ ४ ४ ४ ४ ४ ४	२ ७ अपवर्तित	२ ७ ७	१_१_ २ ७ ७ ४ ४

१ ८ १ ८ २ ७ ७ ४ ४ ४	१_ १_ २ ७ ७ ४ ४	१_१_ २ ७ ७ ४ ४ ४ ४ ४	१_ २ ७ ७ ४ ४ ४ ४ ४ ४	प ७	सा ७८	सा अं को २ ४ ४ ४	सा अं को १ ४ ४	सा अं को २ ४	सा अं को २

लब्धिसार-क्षपणासार अर्थसंदृष्टि अधिकार पृष्ठ संख्या ५२२

नाम	मिश्रद्रव्यपरिणम्याद्रव्य	सम्यक्त्वप्रकृतिरूपपरिणम्या द्रव्य
अंतसमय	१____ १_ स a १२- a २७ृ २ ७ ख १७ गु	२____ २^ स a १२— २७ृ २ ७ ख १७ गु
मध्यसमय	० ०	० ०
चतुर्थसमय	a ७	a ६
तृतीयसमय	a a a a a	a a a a
द्वितीयसमय	a a a	a a
प्रथमसमय	स a १२- a ७ ख १७ गु	स a १२- १ ७ ख १७ गु

लब्धिसार-क्षपणासार अर्थसंदृष्टि अधिकार पृष्ठ संख्या ५९१

लोभकी संग्रहकृष्टि						मायाकी संग्रहकृष्टि						मानकी संग्रहकृष्टि						क्रोधकी संग्रहकृष्टि					
प्रथम		द्वितीय		तृतीय		प्रथम		द्वितीय		तृतीय		प्रथम		द्वितीय		तृतीय		प्रथम		द्वितीय		तृतीय	
अ	पू	अ	पू	अ	पू	अ	पू	अ	पू	अ	पू	अ	पू	अ	पू	अ	पू	अ	पू	अ	पू	अ	पू

लब्धिसार-क्षपणासार अर्थसंदृष्टि अधिकार पृष्ठ संख्या ५९५

	अनुभयरही	उदयभई	उभयभई	उभयभई	उभयरही	उदयभई	अनुभयभई	अनुभयभई	अनुभयरही
द्वितीयनिषेक	। ४ १३ २ । २ ख २४ प १६ प ५ a a	। ४ १३ २ । ३ ख २४ प १६ प ५ a a	। १_ ४ १३ २ प a ख २४ प १६ प a a	। ४ १३ ३ ख २४ प १६ a	। १_ ४ १३ प १६ प-११ a a ख २४ प १६ प a a	। ४ १३ ७ ख २४ प १६ प a a	। ४ १३ ४ ख २४ प १६ प a a	। ४ १३ ७ ख २४ प १६ a	। ४ १३ ४ ख २४ प १६ a
प्रथमनिषेक	जघन्य ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० उत्कृष्ट			उदय ज ० ० ० उ	ज ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० उ			उदय ज ० ० ० उ	अनुभय ज ० ० ० उ

लब्धिसार-क्षपणासार अर्थसंदृष्टि अधिकार पृष्ठ संख्या ६००

लोभकी संग्रहकृष्टि			मायाकी संग्रहकृष्टि		
तृतीय	द्वितीय	प्रथम	तृतीय	द्वितीय	प्रथम

मानकी संग्रहकृष्टि			क्रोधकी संग्रहकृष्टि		
तृतीय	द्वितीय	प्रथम	तृतीय	द्वितीय	प्रथम

२ग्र	। २ग्र	। २ग्र ४ स्थान दोयसमान	। । २ग्र ४ दोयस्थान समान	। ॥ २ग्र ४	। ॥। २ग्र ४	। ॥। २ग्र ४ ४	। ॥। २ग्र ४ ४ ४	। ॥। २ग्र ४ ४ ४ ४	१_ २ग्र	। १_ २ग्र तीनस्थानसमान	। १_ २ग्र अथवा २ग्र ग्र- ३							
। २ग्र २ ३	॥ २ग्र २ ३	२ग्र	१_ २ग्र	१। २ग्र	१॥ २ग्र	१॥। २ग्र	१॥॥ २ग्र	२ग्र	१_ २ग्र	१। २ग्र	१॥ २ग्र	१॥। २ग्र	१॥॥ २ग्र	२ग्र	। २ग्र	॥ २ग्र		
॥। २ग्र	२ग्र	१- १८	१ २ १८	। २ग्र	॥ २ग्र	॥। २ग्र	॥॥ २ग्र ४	॥॥ । २ग्र ४	॥॥ । २ग्र ४ ४	॥॥ । । २ग्र ४ ४	२ग्र ग्र	। २ग्र ग्र	॥ २ग्र ग्र					
॥। २ग्र ग्र	॥॥ २ग्र ग्र	४	यातैं आगैं स्थान नव क्रमतैं संख्यात गुणे हैं ताके आगैं एक स्थान दूणा है	२ग्र-२	मु १६	मु २४												
मु ३२	मु ४८	मा १	मा २	मा ४	मा २ मा ४ मा ८	न १६	न ३२	न ६४	यातैं आगैं छह स्थान संख्यात गुणे हैं									
यातैं आगैं छह स्थान असंख्यातगुणे	प ५	प ३ २ २	प २ ५	प ३ ५ २ ३	प ग्र ग्र	प ० ० ० ० ० प ग्र ग्र ग्र ग्र ग्र	यातैं आगैं दोय स्थान संख्यात गुणे हैं											
सा अं को २ ४ ४ ४ ४	सा अं को २ ४ ४ ४	१ १ सा अं को २ - २ग्र ४ ४	१ सा अं को २ ४ ४	सा अं को २ ४ ४	सा अं को २ ४	प ग्र सा अं को २ ४	सा अं को २											

अथ ग्रंथप्रशस्तिवर्णन ।*

श्रीमत लब्धिसार वा क्षपणासार सहित श्रुत गोम्मटसार
ताकी सम्यग्ज्ञान चंद्रिका भाषामय टीका सुखकार ।
प्रारंभी अर पूरण भइ अब भए समस्त मंगलाचार
सफल मनोरथ भयो हमारो पायो ज्ञानानंद अपार ॥ १ ॥

दोहा

आप अर्थमय शब्दजुत ग्रंथ उदधि गंभीर । अवगाहैं ही जानिये याकी महिमा धीर ॥ २ ॥
षट्कारक या ग्रंथके निश्चय अर व्यवहार । जानहु जानत होत है जातैं सत्य विचार ॥ ३ ॥

सवैया

सिद्ध श्रुत शब्द सोई है स्वतंत्र करतार भया यहु ग्रंथ सोई कर्म पहिचानिए ।
ग्रंथरूप जुरनेकी शक्ति सो करण जैन शासनके अर्थि ऐसौ संप्रदान जानिए ।
ग्रंथहीतैं भयो ग्रंथ यहु अपादान जैन श्रुतविषैं यहु अधिकरण प्रमानिए ।
स्वाश्रित स्वरूप षट्कारक विचारो ऐसैं निश्चय करि आनकौ विधान न वखानिये ॥ ४ ॥
जिन गन इंद नेमि इंदु आदि करतार भयो ग्रंथ काज सोई कर्म शर्म थान है ।
याके होत भए जे सहाई हैं करण तेई भव्यनिके अर्थि किया ऐसैं संप्रदान है ।
आन काज छूटनेतैं भयो यहु काज सोई अपादान नाम ऐसैं जानत सुजान हैं ।
भयो क्षेत्रविषैं अधःकरण कहावे सोई ऐसैं व्यवहार षट्कारक विधान हैं ॥ ५ ॥

दोहा

ग्रंथ होंनके जे भए समाचार सुखकार । तिनकौं जानहु कहत हो जाने जाने सार ॥ ६ ॥

सवैया ॥३१॥

वर्धमान केवलीके देहरूप पुद्गल ते जीव नाहि मेरै तौऊ उपकार करै हैं ।
मेघवत् अक्षर रहित दिव्य ध्वनि करि धर्मामृत वरसाय भवताप हरै हैं ।
ताहीका निमित्त पाइ आन स्कंध पुद्गलके नानाविध भाषारूप होइ विसतरे है ।
जाकौं जैसौ इष्ट सो सुने हैं सो सत्य अर्थ सभा माहि ऐसौ जिन महिमा अनुसरै है ॥ ७ ॥
गनधर गौतम जु च्यारि ज्ञानधारी आप महा रुचि धारि तिनकीं तहां सुने है ।
तिनकों निमित्त अर श्रुतज्ञान शक्ति सेती साचे नाना अर्थिनिकों नीकी भांति मुने है ।
राग अंश उदै होत भई उपकार बुद्धि तातें ग्रंथ गुथनेकौं भले वर्ण चुने हैं ।
अंग अंग बाह्यरूप रचना बनाई ताकों करिके अभ्यास भव्य सर्व कर्म धुने हैं ॥ ८ ॥
बुद्धि ऋद्धि धारी कोई संपूरण जानि ताहि कोई ताके अंग अंश जानि अर्थ पायो है ।
केई ताके अनुसार ग्रंथ जोरै हैं नवीन करिकें संक्षेप सोई अर्थ तहां गायो है ।
गणधरके गूंथे ग्रंथ तिनकों न पाठी अब ऐसो कलिकाल दोष आपको दिखायो है ।
अनुसारी ग्रंथनितैं शिव पंथ पाइ भव्य अबहू करि साधन स्वभाव भाव भायो है ॥ ९ ॥

---

* बादमें पूरी प्रशस्ति मिल जानेसे यहाँ दे दी गई है ।

मुनि भूतबलि यति वृषभ प्रमुख भए तिनि हूनें तीन ग्रंथ कीने सुखकार हैं।
प्रथम धवल अर दूजो है जयधवल तीजो महाधवल प्रसिद्ध नाम धार हैं।
श्लोक तो हैं लाखो अर अर्थ है कठिन घनो तातें बुद्धिमान विनु जानै नाहि सार है।
दक्षिणमें गोम्मट निकटि मूलविद्रपुर तहां ठीक कीए ग्रंथ पाइए अवार है ॥१०॥
दक्षिण दिशामें नेमिचंद्र आदि मुनिराज भये तिनहूकें भयो तिनकों अभ्यास है।
जैनी राजमल्ल राजा ताको मंत्री आप राजा भयो है चामुंडराय तहां ताकों वास हैं।
तीहि कीनी प्रश्न तब धवलादि शास्त्रनिके अनुसारि कीयो इस ग्रंथको उजास है।
बंधकादि संग्रहतैं नाम पंचसंग्रह है अथवा गोम्मटसार नामको प्रकाश है ॥११॥

दोहा

बहुत सूत्रके करनतैं नेमिचंद गुनधार। मुख्यपने यों ग्रंथके कहिए है करतार ॥१२॥

चौपई

कनकनंदि फुनि माधवचन्द। प्रमुख भए मुनि बहु गुन कंद।
तिनहूकौ है यामैं सीर। सूत्र कितेक किए गंभीर ॥ १३ ॥
मौक्तिक रत्न सूत्रमें पोय। गूंथ्या ग्रंथ हार सम सोय।
अर्थ प्रकाशक अमल अनूप। हृदय धरे सो है सुखरूप ॥ १४ ॥
नेमिचंद जिन शुभपद धारि। जैसे तीर्थ कियो गिरिनारि।
तैसें नेमिचंद मुनिराय। ग्रंथ कियो है तरण उपाय ॥ १५ ॥
देशनिमें सुप्रसिद्ध महान। पूज्य भयो है यात्रा थान।
यामैं गमन करै जो कोय। उच्चपना पावत है सोय ॥ १६ ॥
गमन करणकौं गली समान। कर्णाटक टीका अमलान।
ताकौं अनुसरती शुभ भई। टीका सुंदर संस्कृतमई ॥ १७ ॥
केशववर्णी बुद्धि निधान। संस्कृत टीकाकार सुजान।
मार्ग कियो तिहिं जुत विस्तार। जहं स्थूलनिकों भी संचार ॥ १८ ॥
हमहू करिके तहां प्रवेश। पायो तारन कारण देश।
चितवन करि अर्थनिकों सार। ऐसें कीनो बहुरि बिचारि ॥ १९ ॥
संस्कृत संदृष्टिनिकौ ज्ञान। नहि जिनके ते बाल समान।
गमन करणकों अति तरफरें। बल विनु नाहि पदनिकों धरें ॥ २० ॥
तिनि जीवनिकों गमन उपाय। भाषा टीका दई बनाय।
वाहन सम यहु सुगम उपाव। याकरि सफल करो निज भाव ॥ २१ ॥
पूर्व कहे सिद्धान्त महान। तिनहीमें जयधवल प्रधान।
ताका पंच दशम अधिकार। ताकरि करके अर्थ विचार ॥ २२ ॥
नेमिचंद नामा मुनिराय। लब्धिसार श्रुतसार बनाय।
वर सम्यक्त्व चरित्र वखान। करिके प्रगट किए गुणथान ॥ २३ ॥

उपशम श्रेणि कथन पर्यंत। ताकी टीका संस्कृतवंत।
देखी देखे शास्त्रनि माहि। संपूरण हम देखी नाहि॥ २४॥
माधवचंद यती कृत ग्रंथ। देख्यो क्षपणासार सुपंथ।
संस्कृत धारामय सुखकार। क्षपक श्रेणि वर्णनयुत सार॥ २५॥
यह टीका यह शास्त्र विचार। तिनि करि किछू अर्थ अवधार।
लब्धिसारकी टीका करी। भाषामय अर्थनसों भरी॥ २६॥
असे ग्रंथ दोयकी बनी। भाषा टीका सुंदर घनी।
इनिमैं जैसे कियो बखान। क्रमतैं जानो ताहि सुजान॥ २७॥

सवैया

करिकै पीठबंध जीवकांड भाषा कीनी तामैं गुणथान आदि दोय बीस अधिकार हैं।
प्रकृति समुत्कीर्तन आदि नव ग्रंथनिकौ समुदाय कर्मकांड ताकी भाषा सार है।
ऐसैं अनुक्रम सेती पीछें लिख्यो इनिहीकी संदृष्टीनिकौ स्वरूप जहां अर्थभार है।
पूरण गोम्मटसार ग्रंथ भाषा टीका भई याकौं अवगाहैं भव्य पावैं भव पार हैं॥ २८॥
समकित उपशम क्षायिककौ है बखान। पीछे देश सकल चारित्रको बखान है।
उपशम क्षपक श्रेणी दोय तिनहूकौ कीयो है बखान ताकौं जाने गुणथान है।
सयोगी अयोगी जिन सिद्धनिकौं वर्णनकरि लब्धिसार ग्रंथ भयो पूरण प्रमान है।
इनकी संदृष्टिनिकौं लिखिकैं स्वरूप ताकी संपूरन भाषा टीका कीनी भयो ज्ञान है॥ २९॥

याविध गोम्मटसार लब्धिसार ग्रंथनिकी
भिन्न भिन्न भाषा टीका कीनी अर्थ गायकें।
इनिकैं परस्पर सहायपनौ देख्यो तातैं
एक करि दई हम तिनिकी मिलायकें।
सम्यग्ज्ञान चंद्रिका धर्यो है याकौ नाम
सो ही होत है सफल ज्ञानानंद उपजायकें।
कलिकाल रजनीमैं अर्थकौ प्रकाश करे
यातैं निज काज कीने इष्ट भाव भायकें॥ ३०॥

संशयादि ज्ञाननिकौं हेतुभूत जीवनिकैं
तथाविध कर्मको क्षयोपशम जानिए।
ताकरि हमारें किछू संशय विपर्यय वा
अनध्यवसाय भया होसी ऐसें मानिये।
तिनकरि ग्रंथविषैं कहीं लिएं संशयकौं
कहीं विपरीत कहीं स्पष्ट न वखानिये।
लिख्यो होइ अर्थ ताकौं मेरी बस नाहिं तातैं
क्षमा करो गुणी, शुद्ध करो चूक मानिये॥ ३१॥

दोहा ।

संशयादि होते किछू जो न कीजिए ग्रंथ । तौ छद्मस्थनिकैं मिटे ग्रंथ करनको पंथ ॥ ३२ ॥
जो कषाय उपजायकैं धरै अर्थ विपरीत । तौ पापी है आप ही आज्ञा भंग अभीत ॥ ३३ ॥
आज्ञा अनुसारी भए अर्थ लिखे या मांहि । धरि कषाय करि कल्पना हम किछु कीन्हों नाहि ॥ ३४ ॥

चौपाई

सम्यग्ज्ञान चंद्रिका नाम भाषामय टीका अभिराम ।
भई भले अर्थनिकरि युक्त, जाविध सो सुनिये अब उक्त ॥ ३५ ॥

सवैया

मैं हौं जीव द्रव्य नित्य चेतना स्वरूप मेरो लग्यो है अनादितें कलंक कर्ममलको ।
ताहीको निमित्त पाय रागादिक भाव भए भयो है शरीरको मिलाप जैसो खलको ।
रागादिक भावनिकौं पायकैं निमित्त फुनि होत कर्मबंध ऐसो है बनाव कलको ।
ऐसैं ही भ्रमत भयो मानुष शरीर जोग बने तो बने इहां उपाव निज थलको ॥ ३६ ॥

दोहा

रमापति स्तुत गुन जनक जाको जोगी दास । सोई मेरो प्रान है धारे प्रगट प्रकाश ॥ ३७ ॥

चौपई

मैं आतम अर पुद्गल स्कंध । मिलिकै भयो परस्पर बंध ।
सो असमान जाति पर्याय । उपज्यो मानुष नाम कहाय ॥ ३८ ॥

मातगर्भमैं सो पर्याय । करिकैं पूरण अंग सुभाय ।
वाहिर निकसि प्रगट जब भयो । तब कुटुंबको भेलो थयो ॥ ३९ ॥

नाम धरयो तिनि हरषित होइ । टोडरमल्ल कहै सब कोय ।
ऐसो यहु मानुष पर्याय । बधत भयो निज काल गमाय ॥ ४० ॥

देश ढूंढाहडमांहि महान । नगर सवाई जयपुर थान ।
तामैं ताकों रहनौ घनो । थोरो रहनो औढे बनो ॥ ४१ ॥

तिस पर्यायविषैं जो कोय । देखन जानन हारो सोय ।
मैं हौं जीव द्रव्य गुन भूप । एक अनादि अनंत अरूप ॥ ४२ ॥

कर्म उदयको कारण पाय । रागादिक हो है द्रव्य दाय ।
ते मेरे औपाधिक भाव । इनिकौ विनशैं मैं शिवराव ॥ ४३ ॥

वचनादिक लिखनादिक क्रिया । वर्णादिक अर इंद्रिय हिंया ।
ए सब हैं पुद्गलका खेल । इनिमैं नाहि हमारो मेल ॥ ४४ ॥

रागादिक वचनादिक घना । इनके कारण कारिजपना ।
तातैं भिन्न न देखे कोय । विनु विवेक जन अंधा होइ ॥ ४५ ॥

सवैया

† कर्मको क्षयोपशम होत भयो मेरे किछू
बुद्धिको विकास तातैं विद्याभ्यास कर्यो है।
होनहार नीको तातैं ऐसा ही बनाव बन्यो
नाना जैन ग्रंथनिमैं ज्ञान विस्तरयो है।
सार्थक गोम्मटसार लब्धिसार शास्त्रनिकौं
अर्थ अवभास्यो तब ऐसो भाव धरयो है।
इनिकी जो भाषा टीका ह्वै तौ तुच्छबुद्धि घनी
जानै सार अर्थ जो प्रमाण अनुसरयो है॥ ४६॥

चौपाई

रायमल्ल साधर्मी एक। धर्म सधैया सहित विवेक।
सो नानाविध प्रेरक भयो। तब यहु उत्तिम कारज थयो॥ ४७॥
ज्ञान राग तौ मेरो मिल्यो। लिखनौ करनौ तनकौ मिल्यो।
कागदमहि अक्षर आकारि। लिखिया अर्थ प्रकाशनहार॥ ४८॥
ऐसैं पुस्तक भयो महान। जानैं जानै अर्थ सुजान।
यद्यपि यहु पुद्गलकौ स्कंध। है तथापि श्रुतज्ञान निबंध॥ ४९॥
संवत्सर अष्टादश युक्त। अष्टादश शत लौकिक युक्त।
माघ शुक्ल पंचम दिन होत। भयो ग्रंथ पूरन उद्योत॥ ५०॥
लिखो लिखावो वांचौ पढौ। सांधौ सोखो रुचिजुत बढो।
अर्थ विचारो धारन करौ। दुखदायक रागादिक हरौ॥ ५१॥
ऐसैं करि याकौ अभ्यास। पावो सम्यग्ज्ञान प्रकाश।
आशिर्वाद दयो है एह। होउ सफल सब विधि सुख गेह॥ ५२॥
धर्म रागतैं करत अभ्यास। हो है शुभ उपयोग प्रकाश।
हीन होइ मोहादिक पाप। तातैं प्रगटैं आप प्रताप॥ ५३॥
वीतराग ह्वै ध्यावै अर्थ। होइ शुद्ध उपयोग समर्थ।
तातैं ज्ञानानंद स्वरूप। पावै निजपद अमल अनूप॥ ५४॥
ऐसैं शुद्ध परमपद पाय। केवल दर्शन ज्ञान लहाय।
भासैं सर्व अर्थ प्रत्यक्ष। गुणपर्यय लक्षणयुत लक्ष॥ ५५॥
आकुलता कारन नहि कोय। तातैं सुखी सर्वथा होइ।
ऐसी दशा सर्वदा रहे। कबहूँ आन दशा नहि गहै॥ ५६॥

---

† यह प्रशस्ति अधूरी है। इसके पूर्वका भाग गोम्मटसार जीवकाण्ड-कर्मकाण्डकी संदृष्टिसे संबंधित होना चाहिये ऐसा प्रतीत होता है।

दोहा

ऐसा शास्त्राभ्यासको, उत्तम फल पहिचानि ।
रमौ शास्त्र आराममहि, सीख लेहु यहु मानि ।। ५७ ।।
हम किछु शास्त्राभ्यास करि, फल पायो सुखकार ।
अब संपूरण सुखमई, होसी फल विस्तार ।। ५८ ।।
शास्त्राभ्यासविषैं सुभग, बढ्यो अधिक उत्साह ।
तातैं भाषा शास्त्र रचि, कियो अर्थ अवगाह ।। ५९ ।।
आरंभ्यो पूरण भयो, शास्त्र सुखद प्रासाद ।
अब भए कृतकृत्य हम, पायो अति आल्हाद ।। ६० ।।
उपकारिकौ मानिए, भएं आपनौ काज ।
तातैं इस अवसर विषैं, बंदौं गुरु महाराज ।। ६१ ।।
आदि अंत मंगल करन, होत काज हितकार ।
तातैं मंगलमय नमौं, पंच परम गुरु सार ।। ६२ ।।

सवैया

अरहंत सिद्ध सूरि उपाध्याय साधु सर्व
अर्थके प्रकाशी मंगलीक उपकारी हैं ।
तिनकौ स्वरूप जानि रागतैं भई है भक्ति
तातैं कायकौं नमाय स्तुतिकौं उचारी है ।
धन्य धन्य तुम तुमहीतैं सब काज भयो
करजोरि वारवार बंदना हमारी है ।
मंगल कल्याण सुख ऐसो अब चाहत हैं
होहु मेरो ऐसी दशा जैसी तुम धारी है ।। ६३ ।।

इति श्रीलब्धिसार वा क्षपणासारसहित गोम्मटसार शास्त्रकी सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामा भाषा टीका संपूर्ण ।

गाथाअनुक्रमणिका

परिशिष्ट २

ऐतिहासिक नामसूची

५ करणसूत्रोल्लेख

६ रूपेणोनो गच्छा दलीकृतः प्रचयताडितो मिश्रः ।
प्रभवेण पदाभ्यस्तः संकलितं भवति सर्वेषाम् ॥१॥ ४१०

७ पदमिनगुणहतिगुणितप्रभेदः स्याद् गुणधनं तदा तदा द्व्यूनम् ।
एकोनगुणविभक्तं गुणसंकलितं विजानीयात् ॥१॥ ४७४

८ एक करणसूत्र पृ० ३८८ मूलमें भी आया है। यथा—
जे हीणा अवहारे रूवा तेहिं गुणित्तु पुव्वफलं ।
हीणवहारेणहिये अद्धं (लद्धं) पुव्वं फलेणहियं ॥४७३॥

परिशिष्ट ३

पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका

१ इसमें एक तो संख्यावाची शब्दोंका संग्रह नहीं किया गया है, दूसरे इसमें पारिभाषिक शब्द बार-बार आये हैं, अतः उनका मात्र एक-दो या तीन बार निर्देश कर दिया गया है। तीसरे सब शब्द संस्कृत छाया रूपमें दिये गये हैं।

■

श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास द्वारा संचालित

श्री परमश्रुतप्रभावक मण्डल (श्रीमद् राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला) के

प्रकाशित ग्रन्थोंकी सूची

(१) गोम्मटसार जीवकाण्ड

श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तीकृत मूल गाथाएँ, श्री ब्रह्मचारी पं० खूबचन्दजी सिद्धान्तशास्त्रीकृत संस्कृत छाया तथा नयी हिन्दी टीका युक्त। अबकी बार पंडितजीने धवल, जयधवल, महाधवल और बड़ी संस्कृतटीकाके आधारसे विस्तृत टीका लिखी है। पंचमावृत्ति। मूल्य—उन्नीस रुपये।

(२) गोम्मटसार कर्मकाण्ड

श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तीकृत मूल गाथाएँ, पं० मनोहरलालजी शास्त्रीकृत संस्कृत छाया और हिन्दी टीका। पं० खूबचन्दजी द्वारा संशोधित। जैन सिद्धान्त-ग्रन्थ है। चतुर्थावृत्ति। मूल्य—सत्रह रुपये।

(३) स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा

स्वामिकार्तिकेयकृत मूल गाथाएँ, श्री शुभचन्द्र कृत बड़ी संस्कृत टीका तथा स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसीके प्रधानाध्यापक पं० कैलासचन्द्रजी शास्त्रीकृत हिन्दी टीका। डॉ० आ० ने० उपाध्येकृत अध्ययन-पूर्ण अंग्रेजी प्रस्तावना आदि सहित आकर्षक संपादन। द्वितीयावृत्ति। मूल्य—उन्नीस रुपये।

(४) परमात्मप्रकाश और योगसार

श्री योगीन्दुदेवकृत मूल अपभ्रंश दोहे, श्री ब्रह्मदेवकृत संस्कृत टीका व पं० दौलतरामजीकृत हिन्दी टीका। विस्तृत अंग्रेजी प्रस्तावना और उसके हिन्दीसार सहित। महान् अध्यात्मग्रन्थ। डॉ० आ० ने० उपाध्येका अमूल्य सम्पादन। नवीन चतुर्थ संस्करण। मूल्य—अठारह रुपये।

(५) ज्ञानार्णव

श्री शुभचन्द्राचार्यकृत महान् योगशास्त्र। सुजानगढ़ निवासी पं० पन्नालालजी बाकलीवालकृत हिन्दी अनुवाद सहित। चतुर्थ आवृत्ति। मूल्य—बारह रुपये।

(६) प्रवचनसार

श्री कुन्दकुन्दाचार्य विरचित ग्रन्थरत्नपर श्री अमृतचन्द्राचार्य कृत तत्त्वप्रदीपिका एवं श्री जयसेनाचार्यकृत तात्पर्यवृत्ति नामक संस्कृत टीकाएँ तथा पांडे हेमराजजी रचित बालावबोधिनी भाषाटीका। डॉ० आ० ने० उपाध्येकृत अध्ययनपूर्ण अंग्रेजी अनुवाद तथा विशद प्रस्तावना आदि सहित आकर्षक सम्पादन। तृतीयावृत्ति। मूल्य—पन्द्रह रुपये।

(७) बृहद्द्रव्यसंग्रह

आचार्य नेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवविरचित मूल गाथाएँ, संस्कृत छाया, श्री ब्रह्मदेवविनिर्मित संस्कृतवृत्ति और पं० जवाहरलाल शास्त्रीप्रणीत हिन्दीभाषानुवाद। षड्द्रव्यसप्ततत्त्वस्वरूपवर्णनात्मक उत्तम ग्रन्थ। चतुर्थावृत्ति। मूल्य—बारह रुपये पचास पैसे।

(८) पुरुषार्थसिद्धयुपाय

श्री अमृतचन्द्रसूरिकृत मूल श्लोक। पं० टोडरमल्लजी तथा पं० दौलतरामजीकी टीकाके आधार पर पं० नाथूरामकी प्रेमी द्वारा लिखित नवीन हिन्दी टीका सहित। श्रावकमुनिधर्मका चित्तस्पर्शी अद्भुत वर्णन। षष्ठावृत्ति। मूल्य—पाँच रुपये।

(९) पञ्चास्तिकाय

श्री कुन्दकुन्दाचार्यविरचित अनुपम ग्रन्थराज। श्री अमृतचन्द्राचार्यकृत 'समयव्याख्या' (तत्त्वप्रदीपिका वृत्ति) एवं श्री जयसेनाचार्यकृत 'तात्पर्यवृत्ति' नामक संस्कृत टीकाओंसे अलंकृत और पांडे हेमराजजी रचित बालावबोधिनो भाषाटीकाके आधारपर पं० पन्नालालजी बाकलीवालकृत प्रचलित हिन्दी अनुवाद सहित। तृतीयावृत्ति। मूल्य—सात रुपये।

(१०) स्याद्वादमञ्जरी

कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्यकृत अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका तथा श्री मल्लिषेणसूरिकृत संस्कृत टीका। श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री एम० ए० पी० एच० डी० कृत हिन्दी अनुवाद सहित। न्यायका अपूर्व ग्रन्थ है। बड़ी खोजसे लिखे गये ८ परिशिष्ट हैं। चतुर्थावृत्ति। मूल्य—इक्कीस रुपये।

(११) इष्टोपदेश

श्री पूज्यपाद-देवनन्दि आचार्यकृत मूल श्लोक, पंडितप्रवर श्री आशाधरकृत संस्कृतटीका, पं० धन्यकुमारजी जैनदर्शनाचार्य एम० ए० कृत हिन्दीटीका, बैरिस्टर चम्पतरायजीकृत अंग्रेजी टीका तथा विभिन्न विद्वानों द्वारा रचित हिन्दी, मराठी, गुजराती एवं अंग्रेजी पद्यानुवादों सहित भाववाही आध्यात्मिक रचना। द्वितीय आवृत्ति। मूल्य—दो रुपये पचास पैसे।

(१२) लब्धिसार (क्षपणासार गर्भित)

श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तीरचित करणानुयोग ग्रन्थ। पंडितप्रवर टोडरमल्लजीकृत बड़ी टीका सहित। श्री फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्रीका अमूल्य सम्पादन द्वितीयावृत्ति। मूल्य—छत्तीस रुपये।

(१३) द्रव्यानुयोगतर्कणा

श्री भोजकविकृत मूल श्लोक तथा व्याकरणाचार्य ठाकुरप्रसादजी शर्माकृत हिन्दी अनुवाद। द्वितीयावृत्ति। मूल्य—ग्यारह रुपये पचीस पैसे।

(१४) न्यायावतार

महान् तार्किक आचार्य श्री सिद्धसेन दिवाकरकृत मूल श्लोक व जैनदर्शनाचार्य पं० विजयमूर्ति एम० ए० कृत श्री सिद्धर्षिगणिकी संस्कृतटीकाका हिन्दीभाषानुवाद। न्यायका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। द्वितीयावृत्ति। मूल्य—छः रुपये।

(१५) प्रशमरतिप्रकरण

आचार्य श्री उमास्वातिविरचित मूल श्लोक, श्री हरिभद्रसूरिकृत संस्कृतटीका और पं० राजकुमारजी साहित्याचार्य द्वारा सम्पादित सरल अर्थ सहित वैराग्यका बहुत सुन्दर ग्रन्थ है। प्रथमावृत्ति। मूल्य—छः रुपये।

(१६) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र (मोक्षशास्त्र)

श्री उमास्वातिकृत मूलसूत्र और स्वोपज्ञ भाष्य तथा पं० खूबचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीकृत विस्तृत भाषाटीका। तत्त्वोंका हृदयग्राह्य गम्भीर विश्लेषण। द्वितीयावृत्ति। मूल्य—छः रुपये।

(१७) सप्तभंगीतरंगिणी

श्री विमलदासकृत मूल और पंडित ठाकुरप्रसादजी शर्मा कृत भाषाटीका। न्यायका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ। तृतीयावृत्ति। मूल्य—छः रुपये।

(१८) समयसार

आचार्य श्री कुन्दकुन्दाचार्य विरचित महान् अध्यात्म ग्रन्थ, तीन टीकाओं सहित नयी आवृत्ति। (अप्राप्य)

(१९) इष्टोपदेश

मात्र अंग्रेजी टीका व पद्यानुवाद। मूल्य—पचहत्तर पैसे

(२०) परमात्मप्रकाश

मात्र अंग्रेजी प्रस्तावना व मूल गाथाएँ। मूल्य—दो रुपये।

(२१) योगसार

मूल गाथाएँ व हिन्दी सार। मूल्य—पचहत्तर पैसे।

(२२) कार्तिकेयानुप्रेक्षा

मूल गाथाएँ और अंग्रेजी प्रस्तावना। मूल्य—दो रुपये पचास पैसे।

(२३) प्रवचनसार

अंग्रेजी प्रस्तावना, प्राकृत मूल, अंग्रेजी अनुवाद तथा पाठांतर सहित। मूल्य—पाँच रुपये।

(२४) अष्टप्राभृत

श्री कुन्दकुन्दाचार्य विरचित मूल गाथाओंपर श्री रावजीभाई देसाई द्वारा गुजराती गद्य-पद्यात्मक भाषान्तर। मूल्य—दो रुपये।

(२५) मोक्षमाला (भावनाबोध सहित)

श्रीमद् राजचन्द्रकृत मूल गुजराती ग्रन्थका श्री हंसराजजीकृत हिन्दी अनुवाद। इसमें जैन धर्मको यथार्थ समझानेका प्रयास किया गया है। भाषाशैली बहुत सुन्दर और सरल है। इसमें १०८ शिक्षापाठ हैं। साथमें भावनाबोधमें बारह भावनाओंका सुन्दर दृष्टान्तसहित वर्णन है। पुनः छप रहा है।

(२६) श्रीमद् राजचन्द्र

श्रीमद् राजचन्द्रके मूल गुजराती पत्रों व रचनाओंका श्री हंसराजजीकृत हिन्दी अनुवाद। तत्त्वज्ञान-पूर्ण महान् ग्रन्थ है। मूल्य—बाईस रुपये पचास पैसे।

अधिक मूल्यके ग्रन्थ मँगानेवालोंको कमिशन दिया जायेगा। इसके लिये वे हमसे पत्रव्यवहार करें।

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगासकी ओरसे

प्रकाशित गुजराती ग्रन्थ

१. श्रीमद् राजचन्द्र २. मोक्षमाला ३. तत्त्वज्ञान ४. श्रीमद् राजचन्द्र जीवनकला ५. पत्रशतक ६. समाधिसोपान (रत्नकरण्ड श्रावकाचारके विशिष्ट स्थलोंका अनुवाद) ७. सहजसुख-साधन ८. सुबोध संग्रह ९. नित्यनियमादि पाठ (भावार्थ सहित) १०. पूजासंचय ११. आठ दृष्टिनी सज्झाय १२. ज्ञानमञ्जरी (अप्राप्य) १३. आलोचनादि पद संग्रह १४. चैत्यवंदन चोवीसी (अप्राप्य) १५. नित्यक्रम १६. श्रीमद् लघुराजस्वामी (प्रभुश्री) उपदेशामृत १७. आत्मसिद्धि शास्त्र १८. श्री समयसार संक्षिप्त (अप्राप्य) १९. धर्मामृत (अप्राप्य) २०. अनित्यपंचाशत् तथा हृदयप्रदीप २१. नित्यनियमादि पाठ भावार्थयुक्त (हिन्दी) २२. परमात्मप्रकाश २३. तत्त्वज्ञान तरंगिणी २४. आत्मानुशासन २५. अध्यात्म राजचन्द्र (अप्राप्य) २६. अध्यात्मरसतरंग २७. श्रीमद् राजचन्द्र जन्मशताब्दी महोत्सव पूजादि स्मरणांजलि काव्यो २८. सुवर्ण-महोत्सव–आश्रम परिचय २९. Shrimad Rajchandra, A Great Seer 30. Mokshamala (Out of Print).

आश्रमके गुजराती प्रकाशनोंका पृथक् सूचीपत्र मंगाइये। सभी ग्रन्थोंपर डाकखर्च अलग रहेगा।

: प्राप्तिस्थान :

१. श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम,

स्टेशन–**अगास**; पोस्ट–**बोरिया**

वाया–**आणंद** (गुजरात)

पिन : ३८८१३०

२. श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल,

(श्रीमद् राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला)

चौकसी चेम्बर, खारा कुंवा, जौहरी बाजार

बम्बई–४००००२